॥ श्री ॥

जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला

४९

आयुर्वेदीय प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग

प्रथम भाग

प्रसूतितन्त्र

लेखिका

प्रो. (कु०) प्रेमवती तिवारी

ए. एम्. बी. एस्.; पीएच्. डी.

कोऑ:डिनेटर आयुर्वेद संकाय

भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, प्रसूति-तन्त्र विभाग

एवं संकाय प्रमुख आयुर्वेद संकाय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, का० हि० वि० वि०

वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य विद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा वितरक

वाराणसी

Scanned with CamScanner

प्रकाशक
चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो० बाक्स नं० १०३२
गोकुल भवन, के० ३७/१०९, गोपाल मंदिर लेन
गोलघर, मैदागिन
वाराणसी - २२१००१ (उ०प्र०) (भारत)
E-mail: co@chaukhambha.com • info.covns@gmail.com
टेलीफोन : ०५४२-२३३३४७६,२३३४३५६
टेलीफैक्स : ०५४२-२३३४३५६

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

संशोधित-परिवर्धित-नवीन
द्वितीय संस्करण : १९९९
पुनर्मुद्रित : २०१४
मूल्य ₹ : ४५०.००

प्रकाशकाधीन भारतीय कॉपीराइट ऐक्ट के तहत इस पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री स्वत्वाधिकारी प्रकाशक के पास सुरक्षित है। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था के लिए पुस्तक का नाम, फोटो, कवर डिजाइन इत्यादि को किसी भी तरह से तोड़-मरोड़कर आंशिक या पूर्ण रुप से किसी पुस्तक, पत्रिका या समाचार पत्र में प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक की अनुमति लेना अनिवार्य है। अन्यथा समस्त कानूनी हर्जे के जिम्मेवार होंगे।

चरक संहिता
महर्षिणा पुनर्वसुनोपदिष्टा तच्छिष्येणाग्निवेशेन प्रणीता चरक दृढबलाभ्यां प्रतिसंस्कृता
श्री चक्रपाणि दत्त विरचिता 'आयुर्वेद दीपिका' की 'आयूषी' हिन्दी व्याख्या विभूषिता
उपोद्घात श्री यादव जी त्रिकम जी शर्मा, प्राक्कथन प्रो० बनवारी लाल गौड़, आशीर्वचन आचार्य विनायक जयानन्द ठाकर
'आयूषी' हिन्दी व्याख्याकार वैद्य हरिश्चन्द्र सिंह कुशवाहा (एम. डी. आयुर्वेद संहिता)।
प्रथम भाग (सूत्र स्थान, निदान स्थान, विमान स्थान, शारीर स्थान एवं इन्द्रिय स्थान)
द्वितीय भाग (चिकित्सा, कल्प तथा सिद्धि स्थान)

शालाक्य विज्ञान (सचित्र)
रवीन्द्रचन्द्र चौधुरी (संपूर्ण)

ISBN : 978-81-7637-050-9 (Vol.-I)
ISBN : 978-81-7637-049-3 (Set)

मुद्रक : चारू प्रिन्टर्स, गोलघर, वाराणसी-२२१००१

JAIKRISHNADAS AYURVEDA SERIES
NO. 49

ĀYURVEDĪYA PRASŪTITANTRA EVAṂ STRĪROGA

PART I

PRASŪTITANTRA

(OBSTETRICS)

By
Prof. (Km.) PREMVATI TEWARI
A. M. B. S.; Ph. D.
Coordinator Faculty of āyurveda
Ex. Head, Department of Prasūti-Tantra
and dean Faculty of Āyurveda
Institute of Medical Sciences
B. H. U., Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI

Scanned with CamScanner

Publishers :
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
Post Box No. 1032
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
Golghar, Maidagin
VARANASI - 221001 (U.P.) **(India)**
E-mail: co@chaukhambha.com • info.covns@gmail.com
Telephone: 0542-2333476,2334356 Telefax: 0542-2334356

© Chaukhambha Orientalia

Revised and Enlarged
Second Edition : 1999
Reprint : 2014

All rights reserved by the Publisher. No Part of this publication may be reproduced in any form or by any means, electronically, mechanically, by photocopying recording or otherwise, with the prior permission of the Copy Right owners.

Kayacikitsa
The Principles and Practice (Ayurveda's Internal Medicine)
Dr. S. Suresh Babu M.D. (Ayu.)
(According to CCIM Syllabus, N. Delhi)
Complet in 4 Vols.

Kaumārabhṛtya
(Paediatrics in Āyurveda)
Dr. V.L.N. Sastry, Foreword by Dr. Premvati Tewary

A Text Book On Śalya Tantra
Dr. Rajneesh V. Giri
(According to BAMS syllabus approved
by C.C.I.M., N. Delhi)
Complete in 2 Vols.

Printed by: Charu Printers, Golghar Varanasi-1

Dedicated to My

Reverend Father

ŚRI RAMĀŚAṄKARA TEWĀRĪ

(23rd Feb. 1914 — 7th Feb. 1987, Vill. Amour, Dist. — Kanpur, U. P.)

Premvati Tewari

Scanned with CamScanner

पूज्य पितृदेव

श्री रमाशंकर तिवारी

(जन्म - २३ फरवरी, १९१४, ग्राम - अमौर, जिला - कानपुर, उ. प्र.; निर्वाण ७ फरवरी १९८७)



की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

प्रेमवती तिवारी

Scanned with CamScanner

द्वितीय संस्करण के लिए दो शब्द

आयुर्वेदीय प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग के प्रथम भाग प्रसूतितंत्र एवं द्वितीय भाग स्त्रीरोग के प्रथम संस्करण का प्रकाशन क्रमशः बारह एवं आठ वर्ष पूर्व हुआ था। प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन के अन्तराल में पठनपाठन में प्राप्त अनुद्धृत परन्तु उपयोगी सन्दर्भों को यद्यपि द्वितीय भाग के परिशिष्ट पाँच में प्रथम भाग के उस शीर्षक तथा पृष्ठ संख्या को निर्देशित करते हुए उद्धृत कर दिया गया था, जहाँ इन सन्दर्भों को वास्तव में लिखा जाना चाहिए था, परन्तु प्रथमभाग की मूल विषय वस्तु में इन सन्दर्भों का कोई संकेत न होने के कारण पाठक इस तथ्य से तब तक अनभिज्ञ ही रहता था जब तक कि वह द्वितीय भाग के इस अंश को नहीं पढ़ता था। पृष्ठों का यह व्यवधान सन्दर्भों की उपयोगिता को भी प्रभावित करता था। अध्ययन एवं मनन के इन आठ वर्षों में एकाध स्थानों में विषय का स्थानान्तरण या अध्याय का पुनर्व्यवस्थापन उपयोगी प्रतीत हुआ। कतिपय अन्य अनुद्धृत सन्दर्भ मिले, कुछ विचारों में परिवर्तन या परिवर्धन हुआ, जिन्हें सुधी पाठकों तक पहुँचाने का लोभ संवरण नहीं कर सकी, अतः प्रस्तुत है यह किञ्चित परिवर्तित, परिवर्धित एवं परिसंस्कृत द्वितीय संस्करण, इस आशा, आकांक्षा एवं विश्वास के साथ कि विद्वद्जन अपनी सकारात्मक आलोचनाओं एवं विचारों से लेखिका को निश्चित ही अवगत कराने की कृपा करेंगे।

२३ जून, १९९८

प्रेमवती तिवारी

Scanned with CamScanner

TWO WORDS ABOUT SECOND EDITION

First part Prasūtitantra and second part Strīroga of Āyurvedīya Prasūtitantra evaṃ Strīroga were published respectively twelve and eight years back. In the intervening period of four years between publication of first and second part, few important but unquoted references coming to light were presented in Appendix V of Part II, indicating relevant heading and page no. of Part I, however the text of Part I did not contain any hint of this fact, naturally the reader remained ingorant about these, till he could read Appendix V of Part II. This difference of hundreds of pages between exact text and relevant reference minimised the utility of these references. Within the period of these eight years after publication of second part, in the process of teaching, learning and study it was felt that few topics or even chapters if rearranged will become more intelligible, Certain new references came to light, few ideas and explanations flashed in mind. As I could not refrain myself from conveying these references, ideas and explanations to learned readers, thus, this modified, slightly rearranged / changed and elaborated second edition is presented with the fond hope that their constructive criticism will make my path of learning clearer and easier.

23rd, June 1998

Premvati Tewari

भूमिका

(प्रथम संस्करण से)

प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग आयुर्वेद की आधुनिक शाखायें हैं, प्राचीन अष्टाङ्गविभाग में इनका उल्लेख नहीं है किन्तु अष्टाङ्ग में अन्यतम कौमारभृत्य का यदि विश्लेषण किया जाय तो ये उसी में समाहित दृष्टिगत होंगे। कुमार के आविर्भाव के पूर्व मातृ-गर्भाशय में ९-१० मास की अवधि में उसका जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। यह सब कौमारभृत्य के ही अन्तर्गत आता है। गर्भाधान न हो तो कुमार का अस्तित्व कैसे होगा ? और सम्यक् गर्भाधान के लिए स्त्री के यौन अङ्गों तथा बीज (रजस्) का स्वस्थ होना आवश्यक है। यदि इनमें कोई विकृति है तो उसका निराकरण करना भी आवश्यक होगा। क्षेत्र यदि उत्तम एवं स्वस्थ नहीं होगा तो उसमें बीज-वपन निरर्थक ही सिद्ध होगा। इस प्रकार प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग कौमारभृत्य का ही आधारभूत अङ्ग या उपाङ्ग है।

प्राचीनकाल में आयुर्वेद के आठ अङ्ग निर्धारित हुए थे किन्तु आजकल इनकी संख्या दूनी हो गई है अतः अब आयुर्वेद षोडशाङ्ग हो गया है। प्राचीन अङ्गों में भूतविद्या अपने मौलिक अर्थ में अब अप्रचलित हो गया है तथा उनेक नये नये अङ्गों का विकास हुआ है जिनमें प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग भी है। कालक्रम से आवश्यकता के अनुरूप इन अङ्गों की संरचना होती गई। उदाहरण स्वरूप, मध्य कालीन तन्त्र की शाखा के रूप में 'रसशास्त्र' नामक एक नवीन एवं अद्भुत अङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार द्रव्यों के गुणकर्म के अध्ययन के लिए 'द्रव्यगुण' नामक अङ्ग संघटित हुआ। १९वीं शती के द्वितीय चरण में जब भारत में आधुनिक चिकित्सा की शिक्षा के लिए मेडिकल कालेज खुले तो उनमें अनेक अङ्गों की शिक्षा विस्तार से दी जाने लगी। इसके प्रभाव से आयुर्वेद में भी नवीन अङ्गों का विभाजन एवं विशदीकरण प्रारंभ हुआ। आयुर्वेद के विद्वान इस नये आलोक से अपने घर को सजाने सवाँरने में लग गये और आयुर्वेदीय ग्रन्थों में निहित सूत्रों, टीकाओं एवं संग्रहों को विषयक्रम से व्यवस्थित किया जाने लगा। १९१० ई० के आसपास जब निखिल भारतवर्षीय विद्यापीठ ने आयुर्वेदीय शिक्षा तथा परीक्षा का क्रम प्रवर्तित किया तो इसी विषयक्रम-शैली को अपनाया। आगे चल कर १९२५ ई० से जो नये आयुर्वेदिक कालेज खुले उनमें भी यही क्रम निर्धारित हुआ जो आज तक चला आ रहा है। इस प्रकार आयुर्वेदीय प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग अपने विकसित रूप में आधुनिक युग की देन है।

आर्तव को पुष्प और अपत्य को फल कहा गया है। जिस प्रकार वनस्पति में पुष्प फल का पूर्वसूचक और बीजाधायक दोनों है उसी प्रकार स्त्री में आर्तव होता है।[1] किन्तु गर्भाधान के लिए रज और शुक्र का संयोग आवश्यक है जो मैथुन (स्त्रीपुं-समागम) द्वारा संपन्न होता है अतः मैथुन को गर्भ का कारण माना गया। चरक ने शेषवत् (कार्य से कारण के) अनुमान में यह दृष्टान्त दिया है (च० सं० सू० ११/२१)। शुक्र और रज दोनों 'बीज' हैं तथा ऋतु, क्षेत्र, जल आदि की सम्यक् स्थिति से इसके द्वारा गर्भ की उत्पत्ति होती है।[2] सुश्रुतोक्त कृषि के इन चार भावों का प्रतिपादन चरक ने युक्ति के दृष्टान्तरूप में किया है तथा इसके बाद ही गर्भ का दृष्टान्त भी दिया है किन्तु भिन्न रूप में। वस्तुतः बीज के अतिरिक्त अन्य भाव सहकारी कारण के अन्तर्गत आते हैं जिनका सम्यक् योग फल की निष्पत्ति के लिए आवश्यक है। चरक ने पूर्ववत् अनुमान के दृष्टान्तरूप में बीज से फल की उत्पत्ति का उल्लेख किया है। चक्रपाणि ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है-'बीजादिति सहकारिकारणान्तरयुक्तादिति बोद्धव्यम्'। इन्द्रियस्थानोक्त पुष्प-फल के दृष्टान्त में भी इसका संकेत किया गया है।

युक्ति-प्रकरण में जो दृष्टान्त दिये हैं उन्हें थोड़ा ध्यान से देखना चाहिए। अनेक कारणों के (सम्यक्) योग से कार्य

१. पुष्प और फल में यह कार्यकारण-भाव चरक ने पुष्पितक इन्द्रिय (इन्द्रिय स्थान, अ० २) में स्पष्ट किया है।

२. सुश्रुत ने इन चार भावों का स्पष्टतः निरूपण किया है (सु० सं० शा० २/३३)।

Scanned with CamScanner

की उत्पत्ति होती है यह अर्थ तिस्रैषणीय प्रमाण प्रकरण तथा परादि गुणोक्त युक्ति के लक्षणों के सामञ्जस्य से निकलता है। इस प्रकार युक्ति में बहुकारण योग, सम्यक् योग तथा इनके लिए अपेक्षित बुद्धि इन तीनों का भाव अन्तर्निहित है। इस प्रकरण में गर्भसंभव का जो दृष्टान्त दिया है उसमें पञ्चमहाभूत तथा चेतना इन छः धातुओं के संयोग का उल्लेख है क्योंकि पुरुष षड्धात्वात्मक है और बिना इन छः धातुओं के समुचित सन्निवेश के उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। स्पष्टतः यह तात्त्विक दृष्टि से गर्भोत्पत्ति का निरूपण है जब कि कृषिपरक दृष्टान्त में प्रायः बाह्य सहकारी कारणों का निर्देश है। चरक ने बीज के अतिरिक्त, बीजभाग तथा बीजभागावयव का भी उल्लेख किया है जो उनके आनुवंशिकी संबन्धी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचायक है।

स्त्रियों में शुक्रधातु का अस्तित्व है या नहीं इस पर पर्याप्त चर्चा हुई है और प्रस्तुत ग्रन्थ में भी विस्तार से इसका विवेचन किया गया है। यदि शरीर सप्तधात्वात्मक है तो उस दृष्टि से स्त्री तथा पुरुष के शरीर में भेद नहीं किया जा सकता। यह सर्वशरीरव्याप्त होकर अन्य धातुओं तथा ओज को प्रभावित करता है इसका एक अंश पुरुषों में व्यक्त होकर अपत्योत्पादन का कार्य करता है किन्तु उनमें भी यह व्यक्तता एवं तत्संबद्ध कार्य युवावस्था में ही होते हैं। आदि (बाल्यावस्था) तथा अन्त (वृद्धावस्था) में यह अव्यक्त ही रहता है तथा सन्तानोत्पादन का कार्य भी नहीं करता। अतः स्पष्ट है कि जिसे कतिपय आचार्यों ने प्रादुर्भूत शुक्र कहा है वह शुक्र का एक अंशमात्र है जो एक अवस्था विशेष में उपलब्ध होता है। किन्तु इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इसका मूल स्वरूप अव्यक्त है और इस रूप में स्त्री तथा पुरुष दोनों शरीरों में विद्यमान होता है। यह आश्चर्य की बात है कि परवर्ती आचार्यों तथा टीकाकारों ने व्यक्त शुक्र को ही आधार बना कर वितण्डा खड़ा किया।

पुष्प के उदाहरण को ही लें। आचार्यों ने पुष्पमुकुल का दृष्टान्त देकर यह समझाने का प्रयत्न किया है कि बाल्यावस्था में अव्यक्तता के कारण शुक्र की उपलब्धि नहीं होती न कि अभाव के कारण, किन्तु मेरे विचार से शुष्क पुष्प का भी दृष्टान्त दिया जाना चाहिए था जो वार्धक्य में शुक्रशोष के कारण अव्यक्तता का द्योतक होता तथा इस प्रकार मानवशरीर में आदि से अन्त तक शुक्र के अव्यक्त प्रवाह की धारणा का निदर्शक बनता। अब इसी दृष्टान्त को सामने रख कर क्या कोई कह सकता है कि स्त्रीशरीररूपी पुष्प निर्गन्ध है ?

प्राचीनतम उपलब्ध चरक संहिता में ऐसा कोई विभेदक वचन नहीं मिलता। धातुनिर्माण की प्रक्रिया जहाँ बतलाई है वहाँ सामान्य रूप से ही वर्णन किया गया है, स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर नहीं दिखलाया गया (देखें च० सं० सू० २८/४, शा० ६/१० आदि), ऐसा प्रतीत होता है कि सुश्रुत के वचनों से इस संबन्ध में भ्रान्ति का श्रीगणेश हुआ जिसमें परवर्ती ग्रन्थकारों ने और योगदान किया। इस कारण प्रबुद्ध टीकाकारों को भी प्राचीन मान्यता की रक्षा में परेशानी हुई। सुश्रुत के कथन 'एवं मासेन रजः शुक्रीभवति, स्त्रीणाञ्चार्तवम्' (सु० सं० सू० १४/१४) की व्याख्या में डल्हण को यह लिखना पड़ा कि यहाँ आर्तव शब्द शुक्र का बोधक है। शुक्र के समकक्ष आर्त्तव को खड़ा करने से यह कठिनाई प्रारंभ हुई। वस्तुतः आर्तव इससे पृथक है और इसके अतिरिक्त है जिसका अपत्योत्पादन से संबन्ध है इसी कारण आर्तव को धातु न मान कर उपधातु की श्रेणी में रक्खा गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि अपत्योत्पादन की दृष्टि से पुरुष तथा स्त्री में बीजभेद है। पुरुष में यह व्यक्तीभूत शुक्र है तथा स्त्री में आर्तव है किन्तु शुक्रधातु के जो वीर्यादि लक्षण हैं वह अव्यक्त रूप में दोनों में समानरूप से स्थित हैं जिसका प्रादुर्भाव (व्यक्तीभाव) वय विशेष में पुरुष में बीजार्थ होता है तथा नारी में रोमराजी आदि के उद्गम में हेतुभूत होता है। इसी कारण सुश्रुत ने यहाँ (सु० सं० सू० १४/१८) 'शुक्र-प्रादुर्भाव' शब्द दिया है। इसी परिप्रेक्ष्य में सुश्रुत के उपर्युक्त वचन की भी व्याख्या करनी चाहिए जैसा डल्हण आदि टीकाकारों ने किया है।

प्रादुर्भूत शुक्र में स्थूलदृष्ट्या पुरुष तथा स्त्री के जननेन्द्रिय से जो स्राव होता है वह समान प्रतीत होता है। इसी को देखकर 'मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यम्' आदि वचनों की कल्पना की गई किन्तु वास्तव में वह स्राव पुरुष एवं स्त्री दोनों में साधारण

रूप से उपस्थित कतिपय ग्रन्थियों से प्रादुर्भूत होता है जिसका अपत्योत्पादन से संबन्ध नहीं है। प्रजोत्पादनार्थ जो शुक्र प्रादुर्भूत होता है वह वृषण से उत्पन्न होता है तथा उसमें बीजाणु (शुक्रकीट) होते हैं जो गर्भजनन में समर्थ होते हैं। यह केवल पुरुष में होता है, इसके समकक्ष स्त्री में आर्त्तव (स्त्रीबीज) है। इस दृष्टि से दोनों में भेद है। स्त्रीशुक्र से गर्भोत्पादन की बात चरक में कहीं नहीं आई है। वस्तुतः सुश्रुतोक्त 'अनस्थिस्तत्र जायते' भी गर्भ का द्योतक नहीं है।

स्त्री में शुक्रधातु के अस्तित्व की पुष्टि चरक के अनेक प्रसङ्गों से होती है जिनमें दो का उल्लेख पर्याप्त है–

(क) शुक्रदोषों का वर्णन करते हुए चरक में न केवल पुरुषगत प्रत्युत स्त्रीगत तथा अपत्यगत लक्षणों का भी वर्णन किया है। गर्भस्राव आदि स्त्रीगत शुक्रदुष्टि के लक्षण है–'शुक्रं कि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते नरम्' (च० सं० सू० २८/१८-१९), चक्रपाणि ने इसकी व्याख्या में लिखा है–'अत्रापत्यबाधा रोगिक्लीबाद्यपत्यजनकत्वेन, दारबाधा तु स्त्राविगर्भादि-जनकत्वेन'।

(ख) इन लक्षणों में क्लैब्य और अहर्षण प्रमुख हैं जो पुरुष के साथ साथ स्त्री में भी होते हैं। चरक ने नरषण्ढ के साथ साथ नारीषण्ढ का भी वर्णन किया है (च० सं० शा० २/१७-१९), यहाँ भी बीजभाग की दृष्टि से क्लैब्य में अन्तर होगा किन्तु बल और हर्ष दोनों में समान हैं। हर्षण स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति होता है कामवासना के क्रम में, किन्तु यही हर्ष स्त्री में अपत्य के प्रति वात्सल्य के कारण स्तन्य-प्रादुर्भाव का कारण बनता है। इसी दृष्टि से आचार्यों ने शुक्र एवं स्तन्य में समानता जतलाई है किन्तु यह प्रवृत्तिमूलक है, स्वरूपमूलक नहीं। स्वरूप में इतनी ही समानता है कि जिस प्रकार शुक्र अव्यक्त रूप से समस्त शरीर में व्याप्त होते हुए भी स्त्री के समागम में प्रादुर्भूत होता है वैसे ही स्तन्य भी (बीजरूप में) सर्वदेहाश्रित होते हुए भी अपत्य के प्रति स्नेह से व्यक्त होता है (हर्षात्तर्षात्··· प्रसिच्यते-च० सं० चि० २-४/४६-४९; संहर्षाच्चप्रवर्तते-सु० सं० नि० १०/१९-२३)।

वीर्य (धैर्य, पराक्रम, शक्ति का समुच्चय) भी शुक्र का एक प्रमुख कर्म है। इसकी प्रमुखता के कारण ही वीर्य शुक्र का पर्याय बन गया है। वीर्य का अस्तित्व स्त्रियों में प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है। कहीं कहीं तो वह इसमें पुरुषों की भी नाक काटती हैं। वीरता-शूरता के अनेक दृष्टान्त स्त्री-समाज में मिलते हैं। इसके अधिक्य के कारण स्त्रीवाचक 'दार' शब्द को पुंल्लिङ्ग (उसमें भी बहुवचन) रक्खा गया (पुंभूम्निदाराः-अमरकोष २/६/६)।

सारांश यह कि तिल में तैल, दूध में घृत तथा इक्षु में रस जिस प्रकार समस्त (अव्यक्त रूप में) व्याप्त रहता है उसी प्रकार शुक्र बिना लिंगभेद के समस्त शरीर में समान रूप से व्याप्त है। इस प्रकार सर्वदेहाश्रितत्व शुक्र का प्रथम लक्षण हुआ (सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते-सु० सं० नि० १०/९)। दूसरा लक्षण वीर्यादि कर्तृत्व है, यह भी सामान्य रूप से स्त्री-पुरुष दोनों में मिलता है। ये दोनों लक्षण अव्यक्त शुक्र के हैं। तीसरा लक्षण अपत्योत्पादकत्व प्रादुर्भूत शुक्र का लक्षण है जो केवल पुरुष में मिलता है। इस प्रकार 'सर्वदेहाश्रितत्वे सति वीर्यादिकर्तृत्वं शुक्रत्वम्' यह सामान्य लक्षण घटित हुआ। 'अपत्योत्पादकत्वं' विशिष्ट लक्षण हुआ।

आधुनिक काल के आचार्यों ने जो 'अन्तःशुक्र' तथा 'बहिःशुक्र' संज्ञायें निर्धारित की हैं उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि अव्यक्त तथा व्यक्त ये प्राचीन संज्ञायें अर्थद्योतन के लिए पर्याप्त समर्थ हैं। किन्तु यदि यह कहना ही है तो ये विभाग प्रादुर्भूत शुक्र के होंगे। इसे इस प्रकार रक्खा जा सकता है–

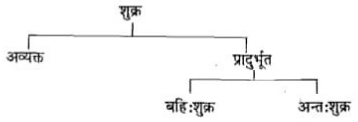

Scanned with CamScanner

इस विषय पर विदुषी लेखिका ने सभी संभावनाओं पर विचार कर समीचीन विश्लेषण चित्ररूप में प्रस्तुत किया है।

'योनि' शब्द 'यु' धातु से निष्पन्न है जो दो अर्थों में प्रयुक्त है-एक मिश्रण (एवं अमिश्रण) तथा दूसरा जुगुप्सा। इसके अनुसार 'योनि' का अर्थ होगा 'जहाँ (शुक्र एवं रज का) मिश्रण हो'। यह सदा नहीं होगा जब स्त्री-पुरुष मिलेंगे तभी होगा अतः अमिश्रण का अर्थ भी इसमें निहित है। अनेक तन्तु परस्पर मिल कर पट की संरचना करते हैं अतः 'योनि' शब्द कारण का भी बोधक बना। स्त्री-पुरुष जननेन्द्रियों की स्वेच्छाचारिता से समाज में अनाचार फैलता है अतः ये पाप का मूल मानी गई हैं। इस अर्थ में 'योनि' में जुगुप्सा का भाव निहित है। इसी प्रकार पुरुष-शिश्न के लिए एक शब्द 'कौपीन' का प्रयोग हुआ है। मूलतः 'कौपीन' शब्द पाप का बोधक है क्योंकि इससे मनुष्य कुएँ में डूब जाने की स्थिति में आ जाता है। पाप का साधन होने के कारण शिश्न भी 'कौपीन' कहलाया तथा परम्परया उसका आच्छादक वस्त्र भी कौपीन कहा जाने लगा[१]।

गर्भाशय की स्थिति के विषय में भी संहिताओं में जो वचन आये हैं उनकी व्याख्या में मतभेद है तथा यह विवादास्पद बना हुआ है। कविराज गणनाथ सेन ने 'पित्तपक्वाशयोर्मध्ये' के स्थान पर 'बस्तिपक्वाशयोर्मध्ये' यह पाठान्तर स्वीकृत कर इसका समाधान प्रस्तुत किया था। उनकी मान्यता थी कि संहिताओं की प्राचीनता तथा लिपिकारों के प्रमाद की संभावना को देखते हुए उनमें प्रतिसंस्कार अपेक्षित है। अतः जहाँ ऐसी कठिनाई हो वहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए। डॉ० घाणेकर ने इसका प्रतिरोध किया, उनका कहना था कि जो लिखा है बिलकुल सही है, हमें केवल उसकी सही व्याख्या करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस क्रम में उन्होंने अपना मत भी प्रस्तुत किया। प्रस्तुत ग्रन्थ की लेखिका ने भी इस संबन्ध में अपना एक मौलिक विचार दिया है जिस पर और विवेचन की आवश्यकता है। 'आवर्त्त' में 'आवर्त्त' शब्द आवृत्ति (आवरण) तथा जलावर्तवत् वृत्ताकार रचना दोनों का बोधक हो सकता है। शंखनाभि से द्वितीय अर्थ का संकेत मिलता है।

ऋतुचक्र की विभिन्न अवस्थाओं में दोषों की उल्वणता पर भी विचार किया गया है और अनेक विद्वानों ने इस पर अपने मत व्यक्त किये हैं। इस संबन्ध में मेरा इतना ही निवेदन है कि रज का मौलिक स्वरूप आग्नेय है अतः इसकी प्रवृत्ति या सक्रियता के काल में पित्त को उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। रजःस्राव की प्रक्रिया में यद्यपि बहिर्मुखी गति में अपना वायु का योग है तथापि रक्त तो आग्नेय ही है जो पैत्तिक कहा जा सकता है। इसी कारण इसकी अतिप्रवृत्ति में रक्तपित्तवत् उपचार करने का विधान है। ऋतुकाल में भी स्त्री-पुरुष समागम के पूर्व स्त्री को माष-तैल आदि पित्तकर आहार करने का उपदेश है। यह दूसरी बात है कि कफ इसको देर तक स्थिर रखने का कार्य करता हो जैसे दीपक में वर्ति-ज्वाला को स्थिर रखने का कार्य तैल करता है। माष और तैल पित्त के साथ साथ कफ को भी बढ़ाने वाले द्रव्य हैं। अष्टांगसंग्रहोक्त श्लोक 'आर्त्तवं तिष्ठति चिरं' का भी यही अभिप्राय है।

'गर्भावक्रान्ति' शब्द की व्याख्या चक्रपाणि ने अत्यन्त सरल ढंग से की है- 'गर्भस्यावक्रान्तिः मेलकः, गर्भोत्पत्तिरिति यावत्।' किन्तु इसमें दार्शनिक रहस्य छिपा है। उत्क्रान्ति एवं 'अवक्रान्ति' जीव के शरीर से संबन्ध के द्योतक शब्द हैं। 'उत्क्रान्ति' का अर्थ है 'शरीर से (निकल कर) ऊपर चले जाना और 'अवक्रान्ति' का अर्थ है (ऊपर से उतर कर) शरीर में आ जाना। ब्रह्मसूत्र (२/३/१९) के सूत्र 'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्' के भाष्य में इसका विशद विवेचन किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (४/४/२) में 'उत्क्रमण' के लिए 'निष्क्रमण' शब्द भी दिया है-'तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति···', उपर्युक्त ब्रह्मसूत्र की व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने लिखा है, 'उत्क्रमणं हि मरणे निरूढम्' अर्थात् स्पष्ट शब्दों में उत्क्रमण का अर्थ मरण है। इस प्रकार अवक्रमण का अर्थ जीवन होगा। शुक्रशोणितसंयोग में जब जीव अवक्रान्त होता है (जीवोऽवक्रामति) तभी उसमें चैतन्याधान होता है तथा उसकी गर्भसंज्ञा होती है। वस्तुतः उत्क्रान्ति

१. कूपपतनमर्हति कौपीनं पापम्, तत्साधनत्वात् तद्गोप्यत्वाद् वा पुरुषलिङ्गमपि, तत्संबन्धात्तदाच्छादनमपि-सिद्धान्तकौमुदी (शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ५/३/२० की वृत्ति। और देखें अमरकोष-अकार्यगुह्ये कौपीनम् ३/३/१२२)।

और अवक्रान्ति ऊपर और नीचे दिशा के बोधक शब्द नहीं हैं अपितु चैतन्य की स्थिति के द्योतक हैं। जब परिच्छिन्न देह से उसका संबन्ध टूटता है तब उसके विभुत्व का स्फुटन होता है और इसके विपरीत जब देह की सीमा में बँधता है तो वह अपने मूल स्वरूप से नीचे उतरता है। इसीको संकोच और प्रसार भी कहते हैं। अवक्रान्ति चैतन्य का संकोच है और उत्क्रान्ति उसका प्रसार। किन्तु काश्यप ने इस पारिभाषिकता का ध्यान न रख कर पूर्वशरीर से आने को अवक्रमण और परशरीर में प्रवेश को उत्क्रमण कहा (पूर्वशरीराच्चावक्रामति, परशरीरञ्चोपक्रामति)।

द्वादश प्राणों में प्रथम तीन हैं- 'अग्निः सोमो वायुः'। गर्भ में प्राण का सञ्चरण कर उसकी वृद्धि इनके द्वारा होती है। नाभि में अग्नि का स्थान कहा गया है। तन्त्र में भी वहाँ मणिपूर चक्र की स्थिति बतलाई गई है जो अग्नि का केन्द्र है। माता के आहार रस से प्राप्त पोषण सोम है। उसका कार्य-शरीर में सञ्चारण तथा विभिन्न अवयवों को विकसित करने वाला वायु है। सुश्रुतोक्त सन्दर्भों को ध्यान से देखने पर यही स्थिति स्पष्ट होती है।

'व्यञ्जनानि' और 'व्यक्तीभावः' (च० सं० शा० ४/१४) ये दोनों शब्द यौन भावों से संबन्ध रखते हैं। 'व्यञ्जन' शब्द करणवाची है अर्थात् वह साधन जिससे यौन प्रस्फुटन ज्ञात हो। इसमें दाढ़ी, मूँछ आदि आते हैं। रोग के संदर्भ में इसी स्थिति के द्योतन के अर्थ में 'व्यञ्जन' लक्षण का पर्याय है-वह लक्षण जिससे व्यक्त व्याधि का ज्ञान हो। 'व्यक्तीभाव' में अभूततद्भाव अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय है जिसका अर्थ है उन पदार्थों का व्यक्त होना जो पहले अव्यक्त थे। जब यह प्रश्न उठा कि बालकों में शुक्र होता है या नहीं तो यह कहा गया कि उस काल में वह अव्यक्त होता है जो आगे चल कर व्यक्त हो जाता है। इसी आधार पर टीकाकारों ने इसका अर्थ 'शुक्रजसोराविर्भावः' किया है।

'दौहृद' शब्द पर भी विचार करें। यह गर्भिणी की इच्छा के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालक्रम से इस शब्द में किञ्चित् रूपान्तर होता गया है। चरक ने इसके लिए 'दैहृदय्य' शब्द का प्रयोग किया है जो दो हृदय (एक माता का और दूसरा गर्भ का) के अर्थ पर आधारित है। सुश्रुत में 'दौहृद' (या 'दौर्हृद') शब्द आया है यद्यपि इसका आधार उपर्युक्त ही बतलाया गया है। आगे चल कर इसका रूप 'दोहद' हो गया जो अमरकोष में मिलता है। इस प्रकार यह शब्द दैहृदय्य-दौहृद-दोहद इस क्रम से रूपान्तरित हुआ है किन्तु मूल भाव चरकोक्त शब्द में सुरक्षित है। चतुर्थ मास में हृदय के व्यक्त होने के कारण इस मास तथा आग्रिम मास में हृद्य अन्न का विधान गर्भिणी के लिए किया गया है।

गर्भिणी-चर्या के प्रसंग में पुराणों में वर्णित ४९ मरुतों की उत्पत्ति का आख्यान ध्यान देने योग्य है। पद्मपुराण में यह कथानक इस प्रकार है-दिति ने अपने पति काश्यप से ऐसे पुत्र की याचना की जो इन्द्र का वध कर सके। काश्यप ने ऐसा ही किया। दिति गर्भवती हुई, काश्यप ने उसे सावधानी से नियत समय तक गर्भिणीचर्या का पालन करने का उपदेश किया। इन्द्र को जब इसका पता चला तो वह प्रच्छन्न कुटिल भाव से दिति के पास इस ताक में लगे रहे कि उसकी चर्या में कोई व्यवधान हो तो मैं गर्भ को नष्ट कर दूँ। नियत अवधि के केवल तीन दिन शेष रहे तो दिति असावधानी से बिना पैर धोये और बालों को ठीक किये सो गई। इस बीच अवसर पाकर इन्द्र गर्भाशय में प्रविष्ट हो गये और गर्भ को वज्र से सात खण्डों में काट दिया। गर्भ रोने लगे मना करने पर भी चुप नहीं हुए तो पुनः प्रत्येक खण्ड के सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार ४९ मरुत् हुये। (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० ७)। इस कथानक से गर्भिणीचर्या का पूर्णतः पालन करने का संकेत मिलता है।

ऐसे महत्वपूर्ण विषय की शिक्षा अर्धशती से अधिक काल से प्रचलित होने पर भी कोई ऐसा ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध नहीं था जो समस्त विषय का शास्त्रीय स्वरूप प्रस्तुत करने के साथ साथ इसका एक समन्वित एवं व्यावहारिक रूप स्पष्ट कर सके। प्रोफेसर डॉ० (कु०) प्रेमवती तिवारी की रचना से इस अभाव की पूर्ति हुई है बल्कि यह कहना अधिक संगत होगा कि आयुर्वेदीय प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग का यह सर्वप्रथम आधार ग्रन्थ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विदुषी लेखिका ने अपने दीर्घकालीन अध्यापन एवं शोध के अनुभवों का पूरा उपयोग किया है।

Scanned with CamScanner

उन्होंने प्रत्येक पक्ष पर आयुर्वेद की सभी उपलब्ध संहिताओं, संग्रहग्रन्थों तथा टीकाओं से उपयुक्त सामग्री का संकलन कर उसे युक्तिपूर्वक व्यवस्थित किया है। इसके अतिरिक्त, आयर्वेदेतर वाङ्मय में भी विकीर्ण प्रासंगिक वचनों को भी उद्धृत किया है। इस प्रकार यह अपने विषय का एक महाकोश बना गया है। ग्रन्थ की वस्तुयोजना भी युक्तिसंगत है। अनेक विचारणीय विषयों पर विमर्श भी विस्तार से दिया है जिसमें विषय का विश्लेषण कर विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा कर वैज्ञानिक आधार पर अपना विचार प्रस्तुत किया गया है। अनेक संदर्भों में जो विचार दिये गये हैं उनमें नितान्त मौलिकता है जो लेखिका के सूक्ष्मान्वीक्षण का संकेत देती है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ न केवल छात्रों अपितु अध्यापकों तथा शोधकर्ताओं के लिए अत्युपयोगी एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगा। साथ साथ अंग्रेजी अनुवाद होने से इससे देश-विदेश के अधिक से अधिक लोग लाभ उठा सकेंगे।

अपने विषय के प्रति ऐसी निष्ठापूर्ण साधना एवं उत्तम प्रस्तुति के लिए मैं प्रो० प्रेमवती तिवारी जी को साधुवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि चिकित्सालयीय कार्यों में व्यस्त रहने पर भी वह कुछ क्षण सरस्वती-साधना में लगाती रहेंगी जिससे उनके द्वारा आयुर्वेद-वाङ्मय की निरन्तर श्रीवृद्धि होती रहे।

गुरुधाम कालोनी,
१० फरवरी १९८६

प्रियव्रत शर्मा

आमुख

(प्रथम संस्करण से)

काल के कुचक्र ने विश्व की प्राचीनतम एवं सर्वाधिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद की प्रगति में एक व्यवधान उत्पन्न किया, जो व्यवधान अनेकों सामाजिक, नैतिक एवं वैधानिक कारणों से प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग में अपेक्षाकृत अधिक अनुभूत हुआ।

आयुर्वेद के प्रति विश्व के वैज्ञानिकों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अभिरुचि एवं देश के वर्तमान-काल में किञ्चित् परिवर्तित या प्रगतिशील आयुर्वेद की प्रशिक्षण परम्परा में एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न सामने आता है, "क्या आयुर्वेदिक संहिताओं में वर्णित विषय के आधार पर प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग को क्रियात्मक स्वरूप दिया जा सकता है" ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए आवश्यकता है, वर्णित विषय के समष्टि स्वरूप के ज्ञान की, उसके विश्लेषण, परिसंस्करण, परिमार्जन एवं परिवर्धन की।

प्रयोजन–

आयुर्वेदीय संहिताओं में वर्णित प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धित विषय के समष्टिस्वरूप के ज्ञानार्थ संहिताओं का आद्योपान्त अवलोकन आवश्यक हो जाता है, क्योंकि विषय किसी एक स्थान या अध्याय में न होकर विभिन्न स्थानों या अध्यायों में एवं कभी कभी अन्य विषय के साथ भी वर्णित है। विशेषत: अधुना प्रचलित शीर्षकों पर आधारित अंश-विशेष के ज्ञान के लिए सम्पूर्ण संहिता अथवा संहिताओं का अवलोकन करने पर पाठक के मूल विषय से दूर हट जाने का भय एवं समय का अपव्यय होता है।

प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द अनेकार्थवाची होते हैं। यह सम्भव है कि विभिन्न लेखक शब्दों के आधार पर विषय का स्पष्टीकरण पृथक् पृथक् विधि से करें, अत: यह आवश्यक होता है कि ग्रन्थों के मौलिक शब्दों का ज्ञान प्राप्त किया जाय। इसी विचार से प्रेरित हो प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गयी है, जिसका मूल उद्देश्य प्रचलित आयर्वेदीय संहिताओं में वर्णित प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धित विषयों का अधुना प्रचलित शीर्षकों के अन्तर्गत व्यवस्थित करना है, जिससे विषय का क्रमबद्ध एवं विशद् ज्ञान हो सके।

आयुर्वेद के अष्टाङ्गों में प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग–

सम्प्रति उपलब्ध एवं प्रचलित प्राचीनतम संहिता चरक के अनुसार भरद्वाज मुनि को भगवान् इन्द्र ने त्रिसूत्र या त्रिस्कन्ध आयुर्वेद का उपदेश किया[1]। पुनश्च आयुर्वेद के अङ्गों के संदर्भ में इसके आठ अङ्गों का नामोल्लेख तो है,[2] परन्तु प्रत्येक अङ्ग के क्षेत्र में आने वाले विषय का स्पष्टीकरण नहीं है। महर्षि सुश्रुत एवं परवर्ती आचार्यों के मतानुसार आयुर्वेद का

---

१. हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्। त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः॥ २४॥
सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं ..... ॥ २५॥ (च० सं० सू० १)

२. .....। कतिकानि चास्याङ्गानि ? ..... ॥ २० ॥
तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ, ... ॥ २८ ॥ (च० सं० सू० ३०/२० व २८)

Scanned with CamScanner

पृथ्वी में अवतरण उसके अष्टाङ्ग स्वरूप में ही हुआ[1]। महर्षि सुश्रुत ने विभिन्न आठ अङ्गों में सन्निहित विषयों का स्पष्टतम वर्णन किया है, जो पुनः अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय आदि ग्रन्थों में दृष्टिगोचर नहीं होता, जिसका सम्भाव्य कारण इन आचार्यों द्वारा अति संक्षिप्त वर्णन का आग्रह हो सकता है। महर्षि काश्यप ने चरक के समान ही केवल अष्टाङ्गों का नामोल्लेख तथा महर्षि हारीत ने विभिन्न अङ्गों में समाविष्ट विषय का वर्णन दिया है। ऐसा आभास होता है कि चरक का काल आयुर्वेद के अष्टाङ्ग विभाजन का प्रारम्भिक काल था। सुश्रुत के काल में इस प्रक्रिया में परिपक्वता आई, विभिन्न अङ्गों के विशेषज्ञ हुए, जिन्होंने सम्भवतः अपनी-अपनी संहितायें भी लिखी हों। यह परम्परा विशिष्ट सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण स्थिर न हो सकी और पुनः सम्पूर्ण आयुर्वेद का समस्त रूप में ही अध्ययन किया जाने लगा।

पुस्तक से सम्बन्धित विषय अष्टाङ्गों में कौमारभृत्य के अन्तर्गत आता है। इस विशिष्ट अङ्ग के लिए महर्षि चरक ने कौमारभृत्यक[2], सुश्रुत ने कौमारभृत्य या कुमारतन्त्र,[3] काश्यप[4] ने कौमारभृत्य एवं अष्टाङ्गसंग्रह,[5] अष्टाङ्गहृदय[6] तथा हारीत[7] ने बालचिकित्सा शब्द का प्रयोग किया है।

जैसा पहले कहा गया, महर्षि सुश्रुत तथा हारीत के अतिरिक्त किसी भी अन्य आचार्य ने इन विशिष्ट अङ्गों में समाविष्ट होने वाले विषय का वर्णन नहीं दिया। टीकाकार चक्रपाणि के मत से कुमार के भरण से सम्बन्धित विषय कौमारभृत्य के अन्तर्गत आता है[8]। भरण शब्द के अनेकों अर्थों में 'प्राप्त करना', 'ढोना' या 'वहन करना' (गर्भाशय स्थित गर्भ को), 'जन्म देना', 'रक्षा करना', 'आश्रय या अवलम्ब देना' तथा 'पोषित करना' आदि का शब्दकोषों में उल्लेख है[9]। इसके अनुसार कुमार या शिशु को प्राप्त करने के उपायों से लेकर उसे वहन करने, जन्म देने, रक्षा करने, अवलम्ब देने तथा पोषित करने से सम्बन्धित विषय का वर्णन कौमारभृत्य के अन्तर्गत आता है। कुमार के प्राप्त करने से सम्बन्धित विषय के अन्तर्गत स्त्री-शरीर-रचना एवं क्रिया तथा गर्भावक्रान्ति के साथ-साथ समस्त आर्तव तथा योनिदोषों का भी समावेश हो जाता है, क्योंकि आचार्यों ने स्पष्ट लिख दिया है कि आर्तव या योनि के दूषित होने से गर्भाधान

१. सु० सं० सू० १/६; अ० सं० सू० १/१०, ११; एवं का० सं० वि० २/१०।

२. तस्यायुर्वेदस्याङ्गान्यष्टौ, तद्यथा कायचिकित्सा, शालाक्यं, शल्यापहर्तृकं विषगरवैरोधिकप्रशमनं, भूतविद्या, कौमारभृत्यकं, रसायन, वाजीकरणमिति ॥ (च० सं० सू० ३०/२८)

३. (अ) तद्यथा-शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति ॥ (सु० सं० सू० १/७)

(आ) सु० सं० सू० ३/३७।

४. इति अष्टाङ्गः; तस्य कौमारभृत्यं कायचिकित्सा शल्यापहर्तृकं शालाक्यं विषतन्त्रं भूततन्त्रमगदतन्त्रं रसायनतन्त्रमिति। (का० सं० वि० २/१०)

५. कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषैः ॥ १० ॥ (अ० सं० सू० १/१०)

६. कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ॥ ५ ॥ (अ० ह० सू० १/५)

७. शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम्। अगदं विषतन्त्रञ्च भूतविद्या रसायनम्।
वाजीकरणमेवेति चिकित्सा चाष्टधा स्मृता ॥ (हा० सं० प्र० स्था० २/५)

८. कुमारस्य भरणमधिकृत्य कृतं कौमारभृत्यं ॥ (च० सं० सू० ३०/२८ की चक्र० टीका)

९. 'संस्कृत-इंग्लिश शब्दकोष' सर मोनियर मोनियर विलियम विरचित, पृ० ७४७ एवं 'संस्कृत-इंग्लिश शब्दकोष' वामन शिवराम आप्टे विरचित, पृष्ठ ४००।

नहीं होता[1] अर्थात् गर्भ-प्राप्ति के लिए इन व्याधियों एवं उनकी चिकित्सा का ज्ञान आवश्यक है।

महर्षि सुश्रुत ने अङ्गों के संक्षिप्त लक्षणों के वर्णन में कौमारभृत्य के सम्बन्ध में लिखा है कि कौमारभृत्य आयुर्वेद का वह अङ्ग है जिसके अन्तर्गत कुमार के भरण, धात्री, क्षीरदोष एवं उनके संशोधन के उपाय, दुष्ट स्तन्य एवं ग्रहों से उत्पन्न होने वाली व्याधियों तथा उनके शमन के उपायों का वर्णन है[2]। पुनश्च उत्तरतन्त्र के अध्यायों का निर्देश करते हुए लिखा है कि नवग्रहों की आकृति का ज्ञान, स्कन्द का निषेध (स्कन्दग्रह प्रतिषेध) अपस्मार (स्कन्दापस्मार), शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धा (अन्धपूतना), मण्डिका (मुखमण्डिका), शीतपूतना तथा नैगमेष की चिकित्सा (विभिन्न ग्रहप्रतिषेधाध्याय) एवं ग्रहोत्पत्ति के हो साथ योनिव्यापद् (योनिव्यापद्-प्रतिषेध) का वर्णन (२७ वें से ३८ वें अध्याय तक) कौमारतन्त्र है। इसके अतिरिक्त, शरीरस्थान में भी वर्णित विषय कौमारतन्त्र के अन्तर्गत आता है[3]। टीकाकार डल्हण ने स्पष्टीकरण दिया है कि रजःशुद्धि एवं गर्भावक्रान्ति (शरीरस्थान अध्याय २ एवं ३) आदि विषय भी कौमारतन्त्रान्तर्गत हो आते हैं[4]। चूँकि शरीरस्थान के ही दशम् अध्याय में गर्भिणी, गर्भस्राव, गर्भपात, सामान्य प्रसव, सूतिका-परिचर्या के ही साथ नवजात शिशु-परिचर्या, धात्री, स्तन्य तथा बालक की कतिपय व्याधियों का भी वर्णन है, अतः इस अध्याय के सम्पूर्ण विषय को कौमारभृत्य में अन्तर्भूत कर सकते हैं, जिसका स्पष्ट निर्देश चक्रपाणि ने अपनी टीका में दिया[5] है। योनिव्यापत्प्रतिषेध नामक अध्याय के प्रारम्भ में टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि कुमार-जन्मविकार में कारणभूत होने से योनिव्यापद् की चिकित्सा के लिए इस अध्याय की रचना की गई है[6]। इसी अध्याय में अन्त में 'इति कौमारभृत्यतन्त्रम्' का उल्लेख होने से योनिव्यापद् का कौमारभृत्य में समावेश और भी स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार 'भरण' शब्द की व्याख्या एवं सुश्रुतसंहिता के उपर्युक्त वर्णन के आधार पर बालक से सम्बन्धित सभी विषयों के साथ ही प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धी विषय भी कौमारभृत्य के क्षेत्र में आ जाते हैं। मूढ़गर्भ की चिकित्सा शल्य-विशेषज्ञ ही करते थे, अतः इसका समावेश शल्यतन्त्र के अन्तर्गत किया गया है[7]।

१. (अ) आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति। (सु० सं० शा० २/५)
आर्तवमपि शुक्रवद्दोषैरुपसंसृष्टमबीजमेव। (अ० सं० शा० १/२५)
वातादि कुणपग्रन्थिपूयक्षीणमलाढ्यम्। बीजासमर्थं रेतोस्रं ·····। (अ० ह० शा० १/१०)

(आ) न शुक्रं धारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रुता। तस्माद्गर्भं न गृह्णाति स्त्री ····· ॥ (च० सं० चि० ३०/३८)
इति योनिगदा नारी यैः शुक्लं न प्रतीच्छति ॥
ततो गर्भं न गृह्णाति ·····॥ (अ० सं० उ० ३८/५३ एवं अ० ह० उ० ३३/५२ शुक्लं के स्थान में शुक्रं)

२. कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ (सु० सं० सू० १/८(५))

३. नवग्रहाकृतिज्ञानं स्कन्दस्य च निषेधनम्। अपस्मारशकुन्योश्च रेवत्याश्च पुनः पृथक् ॥
पूतनायास्तथान्धायाः शीतपूतनमण्डिका। नैगमेषचिकित्सा च ग्रहोत्पत्तिः सयोनिजा ॥
कुमारतन्त्रमित्येतच्छारीरेषु च कीर्तितम् ॥ (सु० सं० सू० ३/३५-३७)

४. शरीरेषु च कीर्तितमिति। किं तच्छरीरेषूक्तम्? तद्यथा-रजःशुद्धिः गर्भावक्रान्तिरित्यादि ॥ (सु० सं० सू० ३/३७ की डल्ह० टीका)

५. शरीरेषु च कीर्तितमिति कुमारतन्त्राभिधेयं गर्भावक्रान्ति-प्रतिमासविधि-जातकर्मादि बहु शरीरस्थाने कीर्तितम् ॥ (सु० सं० सू० ३/३७ की चक्र० टीका)

६. कुमारजन्मविकारकारणत्वाच्च योनिव्यापच्चिकित्सितार्थं·····॥ (सु० सं० उ० ३८/१ की डल्ह० टीका)

७. तत्र शल्यं नाम ····· नखपूयास्रावदुष्टव्रणान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं ·····। (सु० सं० सू० १/८(१))

Scanned with CamScanner

टीकाकार इन्दु[1] एवं अरुणदत्त ने सम्भवतः मूल लेखक द्वारा 'बाल' शब्द के प्रयोग के कारण इस अङ्ग को बालकों से सम्बन्धित चिकित्सा में सीमित कर दिया है। टीकाकार अरुणदत्त ने स्पष्ट लिखा है कि बालक के देह, धातु एवं बल के असम्पूर्ण होने, वय के अप्रकृष्ट होने तथा अवस्था के प्रभाव के कारण उससे सम्बन्धित चिकित्सा का अङ्ग पृथक् निर्दिष्ट है तथा बालकों की व्याधियों के लिए किए गए प्रयत्न तथा औषधियों, धात्री-दुग्ध-लक्षण तथा दुग्धजन्य व्याधियों आदि के शमन के उपायों का निर्देश भी इसी में है[2]। ये दोनों ही टीकाकार प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग से सम्बन्धित आयुर्वेद के अङ्ग के प्रति मौन हैं।

महर्षि हारीत ने बालचिकित्सा शब्द देते हुए गर्भोपक्रमविज्ञान, सूतिकोपक्रम तथा बालकों के रोगशमन सम्बन्धित विषय को बालचिकित्सा का विषय माना है[3]। गर्भोपक्रम के अन्तर्गत समस्त स्त्रीरोग समाविष्ट हो जाते हैं, जो पहले कहा जा चुका है।

प्राचीनकाल में आयुर्वेदीय वाङ्मय का अधिकांश सृजन राजतन्त्र में ही हुआ, जहाँ राजा के उत्तराधिकारी के रूप में कुमार की उत्पत्ति, उसका पालन तथा पोषण अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आर्तवव्यापद् या योनिव्यापद् गर्भाधानबाधक होते हैं, सामान्य रजःस्वलाचर्या, ऋतुचर्या, गर्भिणी के लिए निर्दिष्ट आहार-विहार एवं पथ्य आदि का सम्यक् पालन न करने अथवा प्रसव में कठिनाई होने से बालक को विकार उत्पन्न हो सकते हैं, इसी भाँति सूतिका की भी अवस्था या व्यवस्था बालक के पालन-पोषण को प्रभावित करती है, अर्थात् सम्पूर्णाङ्ग, स्वस्थ एवं सुन्दर कुमार की प्राप्ति के उपायों के लिए समस्त स्त्रीरोगों का चिकित्सा सहित ज्ञान, स्त्री-शारीर का रज एवं ऋतुचक्र सहित ज्ञान, गर्भावक्रान्ति, गर्भिणी, प्रजायिनी तथा सूतिका आदि सम्बन्धी विषय का सम्पूर्ण ज्ञान अत्यावश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में कुमार का अधिक महत्व होने के कारण उसे ही आधार या अक्ष मानकर इस अङ्ग को कौमारभृत्य की संज्ञा दी गई। यह तथ्य काश्यप द्वारा वर्णित बालक की 'गर्भ, बाल एवं कुमार'[4] इन तीन संज्ञाओं में आयु के विभाजन से स्पष्टतर हो जाता है, क्योंकि गर्भावस्था का बालक गर्भिणी द्वारा ही सेवित आहार से पोषित होता है अतः गर्भिणी-परिचर्या बालक के लिए अत्यावश्यक है।

समाज की वर्तमान स्थिति में स्त्री एवं बालक दोनों का ही स्वतन्त्र महत्व होने, चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र के अत्यधिक विस्तृत हो जाने तथा विशेषज्ञों द्वारा सीमित क्षेत्र ही चिकित्सित होने के कारण स्त्री तथा बालक दोनों ही अलग अलग विशेषज्ञों के क्षेत्र के विषय माने जाते हैं। सम्भवतः इसी विचारधारा के आधार पर आचार्य गणनाथ सेन जी ने प्रसूति-तन्त्र को कौमारभृत्य से पृथक् विशिष्टता, परन्तु स्त्रीरोग को कौमारभृत्य का ही अङ्ग माना[5] है; परन्तु जब तक आयुर्वेद के अङ्गों की संख्या आठ में ही सीमित है प्रसूतितन्त्र, स्त्रीरोग एवं बालचिकित्सा सम्बन्धी समस्त विषय को कौमारभृत्य के ही अन्तर्गत मानना युक्तिसंगत होगा।

सङ्कलन में प्रयुक्त ग्रन्थों में प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धी विषय–

प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धी विषय-वस्तु की दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि महर्षि चरक ने स्त्री-श्रोणि की अस्थियाँ, स्त्री-शारीर-क्रिया (रजःस्राव आदि); गर्भ एवं गर्भाधान, गर्भावक्रान्ति; गर्भिणी-लक्षण, गर्भिणी-परिचर्या,

१. बालस्य विशेषवक्तव्यत्वात् पृथक्करणम्॥ (अ० सं० सू० १/१० की इन्दु टीका)

२. बालदेहेऽसम्पूर्णधत्वधातुत्वादप्रकृष्टवयोवस्थाप्रभावात् तच्चिकित्साङ्गपृथङ्निर्दिष्टम्। तथा बालौपायिकभेषजं धात्रीदुग्धलक्षणं दुग्धोद्भवव्याधिप्रशमादिनिर्देशाच्च॥ (अ० ह० सू० १/५ व ६ की अरुण० टीका)

३. गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा। बालानां रोगशमनं क्रिया बालचिकित्सितम्॥ (हा० सं० प्र० स्था० २/१७)

४. गर्भबालकुमाराख्यमित्येतत् त्रिविधं वयः॥ (का० सं० खि० स्था० ३/७२)

५. ..... एवञ्च सर्व्वथा कौमारभृत्यात् प्रथगेव प्रसूतितन्त्रं मन्तव्यम्। स्त्रीरोगास्तु केचित् कौमारभृत्यान्तर्गता एव, ...।
(प्रत्यक्षशारीर के उपोद्घात का "आयुर्वेदस्य प्राचीन गौरववर्णनं द्वितीय पाद" पृष्ठ ३६)

गर्भिणी को होने वाली व्याधियों के चिकित्सा-सिद्धान्त, गर्भिणी-उदावर्त; गर्भस्राव, उपविष्टक, उपशुष्क, भूतहृत-गर्भ आदि गर्भ विकार, विकृत गर्भोत्पत्ति; सूतिकागार, सामान्य प्रसव, सूतिका, रक्तगुल्म, असृग्दर तथा योनिव्यापद् आदि विभिन्न स्त्री-रोगों के ही साथ नवजात शिशु-परिचर्या, असम्यक् परिचर्याजन्य व्याधियाँ, धात्री एवं स्तन्यदोषों आदि का विस्तृत वर्णन दिया है।

सुश्रुत संहिता शल्य प्रधान ग्रन्थ है, स्वाभाविक ही है कि इस संहिता में शल्य-सम्बन्धी विषयों यथा स्त्री-शारीर-रचना तथा मूढ़गर्भ आदि का वर्णन (जो कि चरकसंहिता में नहीं) दिया गया है। शल्यचिकित्सक होने के कारण ही महर्षि सुश्रुत चिकित्सिकीय आचार-शास्त्र के विषय में भी सचेत थे एवं उन्होंने मूढ़गर्भा की चिकित्सा के पूर्व अधिपति की आज्ञा लेने का स्पष्ट निर्देश दिया है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त महर्षि सुश्रुत ने चरक-संहिता में वर्णित विषय को देते हुए कुछ का अनुल्लेख एवं कुछ विषयों का समावेश किया है। वर्णन निम्नाङ्कित है।

सुश्रुत संहिता में वर्णित परन्तु चरक संहिता में अवर्णित विषय–

१. स्त्री-शरीर के रचनात्मक घटकों यथा पेशी, आर्तववहस्रोतस् आदि का विस्तृत वर्णन एवं शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों की उत्पत्ति के घटक।

२. स्त्रीशुक्र, रजोदर्शन के पूर्व बाला के शारीरिक परिवर्तन, रस से एक मास में शुक्र के साथ ही आर्तव की उत्पत्ति, रज का निर्माण एवं कार्य, रजोदर्शन एवं रजोनिवृत्ति की आयु, गर्भाशयिक धमनियों में सम्पूर्ण मास रक्त का एकत्रीकरण, रजःस्वला के द्वारा अज्ञानादि के प्रयोग से हानि, ऋतुस्राव के समय संभोग का पणिाम, ऋतुस्राव के चौथे दिन पति के दर्शन का प्रभाव एवं ऋतुकाल।

३. गर्भोत्पत्ति में महाभूतों के कार्य, जरायु की उत्पत्ति, स्त्री के आहार का गर्भ के वर्णोत्पत्ति में प्रभाव, नेत्र की वर्णोत्पत्ति, बह्वपत्यता में दो जीवों का कुक्षि में आगमन, अस्थि-विरहित गर्भोत्पत्ति, गर्भस्थ शिशु के अरुदन एवं मलमूत्रादि के अत्याग का कारण।

४. गर्भिणी के स्तन-परिवर्तनों का कारण, युग्मगर्भ में गर्भिणी-चिह्न, गर्भावस्था के चतुर्थ मास में मांसरस, षष्ठमास में गोक्षुरू तथा अष्टम मास में बस्ति का प्रयोग एवं गर्भज वमन।

५. गर्भस्राव एवं पात की परिभाषा, गर्भस्राव के विभिन्न उपद्रवों की चिकित्सा, गर्भस्राव की मासानुमासिक चिकित्सा, गर्भक्षय एवं गर्भवृद्धि के लक्षण तथा कृत्रिम गर्भपात का निर्देश।

६. जाति के आधार पर विभिन्न काष्ठ से सूतिकागार का, निर्माण, प्रसव-हेतु, गर्भसङ्ग-चिकित्सा, अपरा का हाथ से निकालना एवं मूढ़गर्भ।

७. सूतिकाकाल, देश के आधार पर सूतिका-परिचर्या, मक्कल्लशूल एवं रक्तविद्रधि।

८. आर्तवक्षय, आर्तववृद्धि, नष्टार्तव तथा अष्टार्तवदोष, योन्यर्श एवं स्तनविद्रधि।

९. स्तन्य का निर्माण, स्तन्य-प्रवृत्ति-हेतु, असम्पत् स्तन अथवा नाना स्तन्य एवं अपरिस्रुत स्तनपान-जन्य दोष, स्तन-पान-वर्जित अवस्थायें, स्तन्यनाश हेतु, स्तन्यक्षय तथा वृद्धि के लक्षण एवं माता या धात्री के दुग्ध के अभाव में अन्य दुग्ध॥

सुश्रुतसंहिता में अवर्णित परन्तु चरकसंहिता में वर्णित विषय–

चरक संहिता में वर्णित समाज, धर्म एवं दर्शन शास्त्र से सम्बन्धित अधिकांश विषयों का सुश्रुत ने वर्णन नहीं दिया। प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग सम्बन्धी चरक संहिता में वर्णित परन्तु सुश्रुत संहिता में अवर्णित विषय निम्न हैं:

१. विभिन्न शारीरिक या मानसिक स्थितियों में सम्भोग का परिणाम, पुत्रेष्टि यज्ञ एवं गौर वर्णादि पुत्र की प्राप्ति के लिए विशिष्ट यज्ञ।

Scanned with CamScanner

२. गर्भ में पञ्चमहाभूतों का अवतरण क्रम, उनके स्रोत एवं निर्मित अङ्गावयव, गर्भोत्पत्ति में माता-पिता आदि के कारणत्व का विवरण, गर्भ के सत्वज भाव, गर्भ के सात्विक, राजसिक आदि होने का कारण, स्त्रीकरादि भाव एवं युग्म-गर्भ में पुत्र या पुत्री होने का कारण।

३. गर्भाङ्ग-विकृति में आशय, काल, आहार, विहार तथा बीज आदि के दोषों का प्रभाव एवं उपविष्टक तथा उपशुष्कादि गर्भ के विकार।

४. गर्भिणी के मासानुमासिक लक्षण, गर्भस्थापक औषधियाँ, किक्किस, गर्भिणी का उदावर्त, नवम मास में गर्भिणी का पथ्य तथा बस्ति, पिचु आदि परिचर्या, गर्भिणी को वमनादि देने से होने वाले उपद्रव, गर्भोदक, सूतिकागार में संग्रहणीय द्रव्य।

५. अपरा का गर्भ के पोषण से सम्बन्ध।

६. अचेष्ट शिशु एवं शिशु के नाभिपाक की चिकित्सा, नाभि के असम्यक् उपकल्पन से उत्पन्न व्याधियाँ एवं अष्टक्षीरदोष।

७. असृग्दर के दोषानुसार भेद, हेतु तथा सम्प्राप्ति आदि एवं शल्य कर्म चिकित्स्य योनिरोगों का चिकित्सासूत्र।

८. बीजांशदुष्टि तथा उसमें वन्ध्या एवं वार्ता आदि की उत्पत्ति।

महर्षि सुश्रुत सदृश लब्धप्रतिष्ठ शल्यवेत्ता ने अपरा के गर्भ के पोषण से सम्बन्ध, गर्भोदक तथा योनिरोगों में प्रयुक्त शल्यकर्मों आदि का वर्णन क्यों नहीं दिया ? कहना कठिन है।

अष्टाङ्गसंग्रह–

परवर्ती लेखक वाग्भट ने अपने ग्रन्थ अष्टांगसंग्रह में चरक एवं सुश्रुत दोनों ही संहिताओं में वर्णित विषयों का लगभग समावेश कर लिया है। केवल चरक संहिता में वर्णित पञ्चभूतों का अवतरण क्रम एवं उनके स्रोत, असृग्दर के भेद, अष्टक्षीर दोष तथा सुश्रुत संहिता में वर्णित युग्म गर्भ में गर्भिणी चिह्न, गर्भस्राव तथा गर्भपात की परिभाषा; दोनों संहिताओं में वर्णित गर्भ का प्रथम उत्पन्न अङ्ग आदि के ही साथ समाजशास्त्र सम्बन्धी विषय का विस्तृत विवरण नहीं दिया।

विषय के वर्णन क्रम में अष्टसंग्रह के निम्नाङ्कित योगदान है।

१. रज या शोणित की बाल्यावस्था से ही उपस्थिति, रज का प्रमाण।

२. युग्म एवं अयुग्म दिवसों में सहवास से पुत्री या पुत्र-प्राप्ति के कारण का स्पष्टीकरण।

३. गर्भ के राजसिक तथा तामसिक भाव; देश, काल तथा अनुवृत्ति एवं शुक्र के वर्ण का गर्भ के वर्ण-निर्माण में प्रभाव, पक्षत्रय में ही दौहृद तथा रोमराजी।

४. माता के वातलादि दोषप्रकोपक आहारों के प्रयोग का गर्भ पर प्रभाव तथा गर्भिणी को बस्ति देने की विधि या बस्ति प्रवेशकाल में स्त्री की शारीरिक स्थिति।

५. गर्भस्राव की अपेक्षाकृत विस्तृत चिकित्सा, उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ के वातादि दोषाधिक्य के लक्षण तथा चिकित्सा एवं वातोदर।

६. प्रसव के लिए प्रयुक्त आस्तरण पर चर्मच्छद का प्रयोग, प्रसूता की योनिभ्रंश की चिकित्सा एवं षष्ठी रात्रि का रक्षाकर्म।

७. शिशु का उल्वक रोग; नाभिव्रणादि की चिकित्सा।

८. स्तन्य का प्रमाण, स्तन्य अपनयन विधि एवं काल तथा विभिन्न रस या वर्ण के स्तन्यपान जन्य विकार।

९. योनिव्रणेक्षण, योनि-नाड़ीव्रण-प्रक्षालन एवं योनि-नाड़ीव्रण-अभ्यङ्ग यन्त्र।

अष्टाङ्गहृदय–

अष्टाङ्गहृदय में अष्टाङ्गसंग्रह वर्णित लगभग सभी विषय का अपितु अपेक्षाकृत संक्षिप्त वर्णन है। इस पुस्तक में मूढ़-गर्भ की गतियों का वर्णन न होकर विष्कम्भ मूढ़गर्भ का उल्लेख है।

सङ्कलन में प्रयुक्त अन्य सभी ग्रन्थों में उपलब्ध विषय वस्तु का पूर्ण विवरण न देकर उन उन लेखकों के विशिष्ट योगदानों का क्रमानुसार उल्लेख किया जा रहा है।

काश्यप संहिता–

जाति के आधार पर ऋतुकाल की मर्यादा, गर्भावस्था के विभिन्न मासों में उत्पन्न व्याधियों का चिकित्सासूत्र, दोषप्राधान्य के आधार पर गर्भिणी-वमन-चिकित्सा, गर्भिणी की विभिन्न व्याधियों की विस्तृत चिकित्सा, ज्वरित गर्भिणी को प्रदत्त धूम्र-पानादि के परिणाम; जातहारिणी या रेवती शीर्षकान्तर्गत आर्तवव्यापद्, प्रायिक गर्भस्राव, गर्भशयान्तर गर्भमृत्यु, नवजात शिशु मृत्यु आदि का वर्णन; गर्भिणी, गर्भ अथवा उत्पन्न शिशु के विनाश-सूचक अरिष्ट; वरणबन्ध; रक्तगुल्म का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन; आवी का प्रसव में प्रभाव, पुत्र या पुत्री के अनुसार प्रसव के समय योनिस्राव, प्रसवोपरान्त पुनः रजोदर्शन हेतु; पुत्र या पुत्री तथा देशादि के आधार पर सूतिका परिचर्या का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन, सूतिका-व्याधियाँ एवं उनकी अति विस्तृत चिकित्सा; ग्रहों से दूषित स्तन्य तथा धात्री की चिकित्सा का विस्तृत दर्णन एवं स्तनवज्र/स्तनकीलक का दोष प्राधान्य के आधार पर वर्गीकरण।

हारीत संहिता–

उपलब्ध हारीत संहिता में स्त्री की आयु का बाला, मुग्धा आदि विभाजन, रेतस् का शुक्र से पृथक वर्णन; मूढ़गर्भ के वातजादि भेद, गर्भचलन की मांसानुमासिक, चिकित्सा, अपूर्ण दिवसों में प्रसव, लज्जा से भग-सङ्कोच तथा गर्भकोष की आपन्नता एवं मन्थर गति का मूढ़गर्भ के निदान एवं असाध्यता के लक्षणों में क्रमशः उल्लेख; आर्तव के अरिष्ट एवं बन्धया के ६ भेदों का वर्णन आदि विशिष्ट विषय मिलते हैं।

भेल संहिता–

इस संहिता में कोई भी नवीन विषय नहीं मिलता।

माधव निदान–

सूतिकारोगों की गणना एवं योनिकन्द का वर्णन इस ग्रन्थ के विशिष्ट योगदान हैं।

शार्ङ्गधर संहिता–

इस ग्रन्थ में गर्भ के आठ दोषों, स्तन्य रोग के पाँच भेदों, स्त्रीदोष के तीन भेदों, सोमरोग, जरायु-रोगों के नामोल्लेख के ही साथ कुछ चिकित्सा योगों का भी वर्णन है।

भावप्रकाश–

योनि की समीरणा आदि नाड़ियों; आर्तव का स्त्री शरीर की अष्टम धातु के रूप में वर्णन तथा शुक्र एवं आर्तव के कार्यों का विभाजन; योनिसङ्कोच के कारण प्रसव में विलम्ब, मूढ़गर्भ चिकित्सिका के विशिष्ट गुण; योनिसंवरण, फिरङ्ग, सोमरोग एवं मूत्रातिसार व्याधियाँ; गर्भाधाननिरोध के लिए आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियों का वर्णन इस ग्रन्थ के योगदान हैं।

योगरत्नाकर–

गर्भिणी की व्याधियों की अपेक्षाकृत स्पष्टतर एवं विस्तृत चिकित्सा; गर्भपातक एवं स्थानिक या बाह्य प्रयुक्त गर्भाधान-निरोधक औषधियों तथा आभ्यन्तर प्रयुक्त गर्भाधान-निरोधक अन्य योगों के ही साथ चिकित्सा में प्रयुक्त अन्य औषधियों तथा

Scanned with CamScanner

रसौषधियों का उल्लेख आदि विशिष्ट योगदान है।

उपयुर्क्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि विषय के विकास की यद्यपि गति मन्द थी तथापि क्रमशः इसमें वृद्धि होती रही है। परवर्ती काल में यद्यपि चिकित्सा के लिए प्रयुक्त विभिन्न योगों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई, तथापि विषय के सैद्धान्तिक पक्ष में कोई विशिष्ट उन्नति या प्रगति नहीं हो सकी।

शैली–

संकलन में चरक संहिता, अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय के अतिरिक्त कौमारभृत्य के विशिष्ट आकर ग्रन्थ काश्यप-संहिता को आधार बना, वर्णित विषयों का उपर्युक्त क्रमानुसार सङ्कलन कर हिन्दी अनुवाद दिया गया है। यत्र-तत्र चक्रपाणि, डल्हण, इन्दु एवं अरुणदत्त आदि टीकाकारों के विचारों को उद्धृत कर सन्दर्भों को पादटिप्पणी में दे दिया गया है। पुस्तक के अत्यधिक विस्तार एवं अधिकांशतः पुनरावृत्तिभय के कारण, माधवनिदान एवं इसकी मधुकोष व्याख्या, शार्ङ्गधर संहिता, भेल संहिता, हारीत संहिता, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर में वर्णित विषय का शब्दशः अनुवाद न देकर मुख्य विषय का उल्लेख कर, इनके उद्धरणों को पादटिप्पणी में दिया गया है। एक दो स्थानों पर शार्ङ्गधर की आढमल्ल टीका तथा वङ्गसेन को भी उद्धृत किया गया है।

चिकित्सा के वर्णन में आधारभूत संहिताओं के भी विषय का अनुवाद नहीं किया गया, क्योंकि योगों में अधिकांश पुनरावृत्ति है एवं योगों तथा प्रयोग-विधि के आधार पर चिकित्सा वर्णित होने पर उसके क्रियात्मक प्रयोग में सुविधा होती है, अतः यहाँ पर सभी संहिताओं में उपलब्ध विषय का योगों या प्रयोग-विधि के आधार पर वर्णन कर, संदर्भ उस शीर्षकान्तर्गत वर्णित विषय के अन्त में पादटिप्पणी में दिए गए हैं, जिस व्याधि लक्षण की चिकित्सा आधारभूत ग्रन्थों में से केवल एक ग्रन्थ में ही वर्णित है उसमें अनुवाद परम्परा का भी निर्वाह किया गया है।

संहिताओं में वर्णित विषय का उल्लेख कर, यथास्थान विमर्श के रूप में लेखिका के स्वयं के विचार हैं, जिनमें संहिताओं में वर्णित विषय की अभिप्रेत सीमा का उल्लंघन न करते हुए, आधुनिक ग्रन्थों में उपलब्ध विषय अथवा वैज्ञानिक युक्तियों के माध्यम से विषय के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया गया है।

यत्र-तत्र शुद्ध पाठ लिखकर पुस्तकों के मुद्रणक्रम में समाविष्ट त्रुटियों के निराकरण का भी प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में उल्लिखित माप एवं तौलों के आधुनिक मानक परिशिष्ट में संलग्न हैं।

आंग्ल भाषा में, संहिताओं में वर्णित विषय को पृथक् पृथक् न देकर समष्टि स्वरूप का रूपान्तरण करते हुए आचार्यों के मतवैभिन्य का भी उल्लेख एवं लेखन शैली में अन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर मान्य स्वरभेदक या ध्वनिनिर्देशक चिह्नों का प्रयोग किया गया है। संस्कृत शब्दों के आंग्ल भाषा में अर्थ के लिए सर मोनियर मोनियर-विलियम एवं आप्टे के शब्दकोषों तथा आंग्ल भाषा के शब्दों को हिन्दी में लिखने पर कामिलबुल्के के शब्दकोष में लिखित उच्चारणों का आश्रय लिया गया है।

पुस्तक दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में प्रसूतितन्त्र तथा द्वितीय भाग में स्त्रीरोग से सम्बन्धित विषय का वर्णन है। द्वितीय भाग के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत चिकित्सा में प्रयुक्त वर्गद्रव्यों, गणों या कषायों में निर्दिष्ट द्रव्यों का वर्णन, औषधियों का अकारादि क्रम से व्यवस्थापन तथा उनके वैज्ञानिक नामों का उल्लेख करने का भी प्रयत्न किया गया है।

सम्प्रति प्रस्तुत प्रथम भाग (प्रसूतितन्त्र) में सम्पूर्ण विषय को ग्यारह अध्यायों में वर्णित किया गया है चूँकि नवजात-शिशु-परिचर्या, स्तनपान-निर्देश आदि की व्यवस्था बालरोग विशेषज्ञ के साथ साथ प्रसूतितन्त्र-वेत्ता को भी करनी पड़ती है अतः उन विषयों का भी यहाँ समावेश कर लिया गया है। विषय के स्पष्टीकरणार्थ यत्र-तत्र संहिताओं में वर्णित विषय-वस्तु के आधार पर निर्मित रेखाचित्रों का भी समावेश है जो लेखिका के निर्देश पर चित्रकारों ने रेखांकित किए हैं।

आभार प्रदर्शन–

उन महर्षियों एवं मनीषियों के प्रति, जिनकी रचनाओं का इस पुस्तक में प्रयोग है, कृतज्ञता की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए शब्द असमर्थ एवं लेखनी अशक्त है।

गुरुवर आचार्य प्रियव्रत शर्मा के पितृवत् वात्सल्य, सतत प्रोत्साहन, सामयिक मार्गदर्शन एवं गूढ़ विषयों के सुस्पष्ट स्पष्टीकरण का ही परिणाम है यह पुस्तक। यत्र-तत्र उल्लिखित संस्कृत पाठशोध गुरुवर का ही प्रसाद हैं, यदि इस पुस्तक में कुछ भी उपयोगी अंश हैं तो वह आपकी ही अनुकम्पा एवं निर्देशन के कारण आ सके हैं, अपने अतिव्यस्त जीवन में भी कुछ पल निकाल भूमिका लिखकर पुस्तक की उपयोगिता एवं शोभा बढ़ाई। आपके प्रति कृतज्ञता में नतमस्तक हूँ।

विभिन्न संहिताओं से विषय के सङ्कलन, उसके स्पष्टीकरण एवं टंकण आदि में समय समय पर सहयोगी डा० चन्दन चतुर्वेदी के द्वारा दी गई सहायता के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ।

टङ्कित प्रति के संशोधन में डॉ० वृद्धाकुमारी नेगी तथा मुद्रित प्रूफ के संशोधन में डॉ० रमेशदत्त शर्मा, डॉ० हरिशङ्कर तथा डॉ० अभिमन्यु कुमार ने अथक परिश्रम किया है। सम्पूर्ण शब्दानुक्रमणिका डॉ० रमेशदत्त शर्मा तथा अधिकांश शुद्धि-पत्र डॉ० अभिमन्यु कुमार की देन है। डॉ० देवेन्द्रनाथ मिश्र तथा श्रीमती सुरेष्टा शर्मा ने भी प्रूफ संशोधन में सहायता दी है। इन सभी सहयोगियों के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी का टंकण कार्य सम्पादित करने के लिए पं० देवनन्दन मिश्र, श्रीरामव्यास सिंह, श्री गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, श्री शिवकुमार शर्मा एवं रेखाचित्र-निर्माण के लिए भाई बाबूलाल तिवारी (लखनऊ) तथा श्री जनक कुमार खन्ना के प्रति हार्दिक रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने बहुत ही कुशलता, शीघ्रता तथा निःस्वार्थ भाव से यथासमय कार्य पूर्ण किया।

भाई कृष्णचन्द्र चुणेकर द्वारा प्रदत्त अष्टाङ्गसंग्रह की सूत्र से चिकित्सास्थान तक की इन्दुटीका तथा सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान की चक्रपाणि टीका पुस्तकों का उपयोग हुआ। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के मुखपृष्ठ को सुरुचिपूर्ण सज्जा के लिए श्री जनककुमार खन्ना धन्यवाद के पात्र हैं।

चौखम्भा ओरियन्टालिया परिवार के प्रति कृतज्ञ हूँ जिसने अनेकों बाधाओं को दूर करते हुए एक अज्ञ लेखिका द्वारा लिखित पुस्तक का अतिशीघ्र प्रकाशन किया।

पूज्य पिता श्री रमाशंकर तिवारी तथा अग्रजा डॉ० (श्रीमती) पुष्पावती तिवारी द्वारा प्राप्त स्नेह, वात्सल्य एवं प्रोत्साहन के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।

उन सभी महानुभावों या सहयोगियों के प्रति जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में योगदान दिया, आभारी हूँ।

अन्त में सर्वशक्तिमान के चरणकमलों में बन्दना है जीवन की त्रुटियों के लिए क्षमायाचनार्थ एवं भावी जीवन में कुछ कर सकने के आशीर्वाद।

क्षमायाचना–

भाषा एवं विषय दोनों के ज्ञानाभाव में पुस्तक-लेखन का प्रयास हास्यास्पद सा ही है, फिर भी साहस किया है पुस्तक-लेखन के दुरूह मार्ग पर प्रथम पग रखने का, इस आशा, आकांक्षा एवं विश्वास के साथ कि विद्वज्जन अपनी रचनात्मक आलोचनाओं द्वारा भविष्य में विषय के स्पष्टीकरण में सहायता एवं प्रोत्साहन देंगे पुनः कुछ कार्य कर सकने का। इस क्षेत्र की अनुभवहीनता पुस्तक के मुद्रण में आई हुई त्रुटियों एवं शैलीवैभिन्य का कारण है। यद्यपि पुस्तक के अन्त में शुद्धि-पत्र देकर त्रुटियों के निराकरण का प्रयत्न किया है फिर भी वह अपूर्ण है। इन सभी कमियों के लिए करबद्ध क्षमायाचना है।

दिनांक २०-२-८६ **प्रेमवती तिवारी**

Scanned with CamScanner

PROLOGUE

The passage of time caused unprecedented obstacle in the progress of *āyurveda*, the oldest and most accurate science of life. The obstacle was relatively more marked in the field of *prasūittantra* and *strī-roga* (obstetrics and gynecology) due to various social, ethical, moral and legal reasons.

Keen interest and inquisitiveness of the scientists world-over on the one hand and changed or advanced method of teaching of *āyurveda* on the other, has posed a big question, " Can the subject of *prasūtitantra* and *strīroga* be made practically useful on the basis of material available in *āyurvedika* classics" ? To answer this question, it is imperative to study the subject in its entirety with correct augmentations, explanations, redactions and understanding.

Aims—

To know the subject of *prasūtitantra* and *strīroga* in *āyurveda*, study of classics as a whole is indispensible, because the subject concerned is not given at one *sthāna* or chapter, rather it is scattered in whole book, sometimes even interspersed with other subjects specially when one tries to know it, on the basis of headings given in modern obstetrics and gynecology, he/she is likely to get too much deviated from original subject, besides it is also quite time consuming task.

In every language few words are equivocal, naturally can be interpreted differently by workers, thus it is essential to know exact words used in the classics. With this idea in mind, the present book purporting to be an original work but merely a compilation is written; basic idea being the arrangement of subject from commonly read *āyurvedika* classics under the headings of today's obstetrics and gynecology, so that one is able to get systematic and comprehensive knowledge of the subject available in *āyurveda*.

Place of prasūtitantra and strīroga amongst eight branches of āyurveda—

According to presently available oldest treatise of *āyurveda* i.e. Caraka Saṃhitā the *āyurveda was* tought to ṛṣi Bharadwāja by lord Indra in the form of *trisūtra* or *triskandha* (three principles or three pillars) i.e. *hetu* (etiology), *liṅga* (clinical features) and *auṣadha* (treatment). Though one does find names of eitht branches of *āyurveda* in subsequent pages of this very book, yet, specific subjects to be incorporated in these specialities have not been spelled out. Suśruta and latter

author says that *āyurveda* descended from divine or celestial to terrene or terrestrial stage in its *aṣṭāṅga* (eight branches) shape. Suśruta has defined very vividly specific subjects of these eight branches, the clarity is again missing in AṣṭāṅgSaṅgraha and AṣṭāṅgaHṛdaya, which might have come up due to insistance on comprehensive or summarized description in these classics. Kāśyapa has also just enumerated eight branches, however, Hārīta has detailed the subjects of these. It appears, that during the period of Caraka a motion was set-in towards specialization, which attained maturity and stability during the period of Suśruta, thus all these eight branches had their specialists, who probably wrote their compendiums. The motion could not sustain for long, due to various social, political and economic reasons again study of *āyurveda* in its entirety started.

The subject of present book comes under *'kaumārabhṛtya'*, one of the eight branches of *āyurveda*. To this particular speciality Caraka has used the term *'kaumārabṛtyaka'*; Suśruta *'kaumārabhṛtya* or *kaumāratantra'*; Kāśyapa *'kaumārabhṛtya'* and both Vāgbhaṭas and Hārīta *'bālacikitsā'*

As stated earlier, only Suśruta and Hārīta have detailed the subjects of these eight branches of *āyurveda*. Cakrapāṇi commenting upon the verse of CarakaSaṃhitā says that the subject concerned with *bharaṇa* of *kumāra* comes under *kaumārabhṛtya*. Laxicons explain the word *'bharaṇa'* as 'procuring, carrying, bearing or act of bearing also in womb, bringing, maintaining, supporting and nourishing' etc. Accordingly the subject concerned with achievement of conception, its maintenance and delivery, then its protection, support and nourishment comes under the perview of *kaumārabhṛtya*. To know the physiopathologies of achievement of conception, the knowledge of anatomy and physiology of female reproductive system, descend of embryo as well as abnormalities of *ārtava* and *yonivyāpad* (menstrual and other gynecological disorders) is essential, because in the presence of menstrual or other gynecological disorders woman may not conceive.

Suśruta says that subject related to *bharaṇa* (explained earlier) of *kumāra* (child), wet-nurse, disorders of milk and their treatment, diseases of the child caused by consumption of vitiated milk and affliction by *grahas* alongwith their treatment is described under *kaumārabhṛtya*. In further elaboration he writes that features of all the nine *grahas*, treatment of *skanda, apasmāra (skandāpasmāra), śakunī, rewatī, pūtanā, andhā (andhapūtanā), maṇḍikā (mukhamaṇḍikā), śitapūtanā* and *naigameṣa* all *bālagrahas*, gynecological disorders and the subject described in *śārīrasthāna are* included in *kaumārabhṛtya*. Explaining this Ḍalhaṇa says that physiology of menstruation and descend of embryo etc. described in *śārīrasthāna* also come under *kaumārabhṛtya*. Cakrapāṇi says that as antenatal management, embryology, abortions, normal labour, management of puerperium and neonate, wet-nurse, breast milk and certain diseases of children are described

Scanned with CamScanner

in *śārīrasthāna*, thus these are also included under *kaumārabhṛtya*. In the beginning of chapter dealing with *yoni-vyāpad* (gynecological disorders) Dalhaṇa has mentioned that this is being written to impart knowledge of treatment for gynecological disorders responsible for failure in birth of a child. At the end of this very chapter Suśruta writes that 'now ends the *kaumārabhṛtya*'. Considering the explanation of word '*bharaṇa*' and above description of Suśruta alongwith its commentators, it can be said that todays obstetrics (excluding dystocias), gynecology and pediatrics come under *kaumārabhṛtya*. Obstructed labour was considered as a *śalya*, thus was dealt under *śalyatantra* (surgery).

Commentators Indu and Aruṇadatta have limited the perview of this branch to the pediatrics, probably due to use of term '*bāla*' a 'child' by principal authors in Aṣṭāṅga-Saṅgraha and AṣṭāṅgaHṛdaya respectively. Aruṇadatta has explained that due to immaturity of deha (body) *dhātu* and *bala* of the child, indistinguished state of its age or strength and influence of this specific period of life, the management of the child is discussed in a separate branch, which also includes various measures adopted to treat a child, qualities of wetnurse and her milk, diseases due to vitiated milk and their treatment. Both these commentators are silent about the place or branch of *prasūtitantra* and *strīroga* (obstetrics and gynecology).

Hārīta though used the term '*bālacikitsā*' yet has included measures or process to achieve conception and its maintenance, delivery, puerperium and treatment of diseases of children under this heading. In the measures of achievement of conception, the knowledge of gynecological disorders is essential, which has already been mentioned earlier.

In olden days *āyurvedika* literature was written under monarchism, wherein birth and proper brought-up of a son (*kumāra*) as a heir was very important. Menstrual and gynecological disorders influence impregnation, non-observance of regulations prescribed or negligence during menstrual period, *ṛtukāla* (optimum period for fertilization) and pregnancy as well as improper management during labour can produce certain abnormalities in the child, similarly improper management of puerperal woman can influence nourishment and brought-up of the child. In other words, to get a physically and psychologically healthy and handsome son, knowledge of gynecological disorders alongwith their treatment, physio-pathologies of menstrual cycle, pregnancy, labour, puerperium alongwith their management and treatment of disorders of these stages is essential. It appears that due to utmost importance of the child, it was made as pivot and entire physio-pathologies of woman revolved around it. Hypothesis becomes clearer with discription of '*garbha, bāla* and *kumāra*' three divisions of age of a child by Kāśyapa. *Garbha* or embryo is nourished and maintained by the woman, naturally knowledge of her management becomes a part of the management of a child.

In present changed circumstances of society, due to equal importance of

woman and child, advancements in the field of medicine and specializations, the woman and child or being dealt by different specialists. Influenced by this changed attitude Gaṇanātha sen jī has accepted *prasūtitantra* and *kaumārabhṛtya* as distinct specialities, however, he has included *strīroga* (gynecology) under *kaumārabhṛitya* (pediatrics). Till the number of branches of *āyurveda* is to be limited only to eight, this type of dichotomy is not advisable, the subject of *prasūtitantra, strīroga* and *bālaroga* (obstetrics, gynecology and pediatrics) all should be accepted under *kaumārabhṛtya* only.

Subject of prasūtitantra and strīroga in the books taken for collecting the matter—

From the view point of *prasūtitantra* and *strīroga* it appears that Caraka has described bones of female pelvis; physiology of menstruation; fertilization, descend of *garbha, garbha* (zygote, embryo, fetus) including its growth, development and nourishment; *dauhṛda*, clinical features of pregnant woman; *udāvarta* and *kikkisa* of a pregnant woman; abortions, *upaviṣṭaka, upaśuṣka and bhūtahṛta garbha* etc. fetal disorders and teratologic abnormalities; accouchement ward, labour, puerperium; *raktagulma, asṛgdara, yonivyāpad* (gynec. disorders); care of new born and diseases caused due to improper care; wetnurse and disorders of milk etc. in detail.

SuśrutaSaṃhitā is basically a compendium of surgery, naturally comparatively detailed description of anatomy of female reproductive system and obstructed labour is given, Suśruta being surgeon was conscious about medical ethics, thus has advised to take consent of guardian before dealing a case of obstructed labour. Besides above specialities Suśruta has described the entire subject given by Caraka, albeit deleting and adding a few here and there.

Subject matter given by Suśruta but not by Caraka—

1. Detailed anatomy of female reproductive system, specific components taking part in the development of different body parts.

2. *Strīśukra*, physical changes preceding menarche, formation of *ārtava* also along-with *śukra* from *rasa* in one month, formation and functions of *raja*, age of menarche and menopause, accumulation of blood within uterine vessels for whole month in menstrual cycle; effects of use of mascara etc. and coitus during menstruation, effect of seeing hushand on fourth day of menstruation and *ṛtukāla*.

3. Functions of *mahābhūtas* in development of embryo, formation of placenta, effect of diet of mother on body-complexion of fetus, development of colour of eyes, descend of two *jīwas* in twin pregnancy, birth of boneless fetus and cause of absence of cry, micturition and defecation etc. by fetus.

4. Cause of breast changes during pregnancy, clinical features of twin pregnancy, use of meat-soup in fourth, *gokṣuru* in sixth and *basti* in eighth month of pregnancy and hyperemesisgravidarm.

Scanned with CamScanner

5. Definition of *garbhāsrāva* and *garbhapāta*, treatment of various complications of abortion, monthwise treatment of abortions, clinical features of *garbhavṛddhi* and *garbhakṣaya*, advice for termination of pregnancy.

6. Construction of accouchement room with different woods according to caste of the woman, causes of onset of labour, treatment of *garbhasaṅga*, manual removal of placenta, obstructed labour.

7. Period of puerperium, care of puerperal woman on the basis of her place of living, *makkallaśula*, *raktavidradhi*.

8. *Ārtavakṣaya*, *ārtavavṛddhi*, *naṣṭārtava*, and eight disorders of *ārtava*; *yonyarśa* and *stanavidradhi*.

9. Formation of milk, cause of ejection of milk, diseases caused due to use of milk of different women or from over filled or improper breasts, unfit stages for breast feeding, causes of loss of breast-milk, clinical features during decrease or increase in quantity of breast milk, substiute milk in place of wetnurse or mother.

Subjects not given by Suśruta but mentioned by Caraka—

Suśruta has not described sociological or philosophical subjects given by Caraka,. Besides, following subjects have also not been given by Suśruta :—

1. Effect of coitus during different physical and psychological status, *putreṣṭiyajña*, specific rituals for achievement of fair complexioned progeny.

2. Descend of *pañcamahābhūtas* in embryo, sources of *pañcamahābhūtas* and different body parts developing from these; details of the causation of mother and father etc. all factors for conception; *satwaja* features of fetus, cause of *sātwika*, *rājasika* etc. features in fetus; *strīkarabhāwa* and cause of sex of children in twin pregnancy.

3. Role of abnormalities of *āśaya*, *kāla*, *āhāra*, *vihāra* and *bija* etc. in teratologic abnormalities, *upaviṣṭaka* and *upaśuṣka* etc. fetal disorders.

4. Clinical features of woman during different months of pregnancy, *garbhasthāpaka* drugs, *kikkisa*, *udāvarta* of a pregnant woman; dietetic management, *basti* and *picu* etc. in ninth month of pregnancy, complications of emesis etc. given to a pregnant woman, liquor amni, articles to be stored in accouchement ward.

5. Relation of placenta with fetal nourishment.

6. Resuscitation of asphyxiated newborn, treatment of umbilical sepsis of a new born, abnormalities due to improper cutting of umbilical cord, eight milk disorders.

7. Classification and etiopathogenesis of *asṛgdara* and principles of surgical procedures to be used in gynecological disorders.

8. Abnormality of *bījāṃśa* and birth of *vandhyā* and *vārtā* etc. due to abnormalities of *bījāṃśa*.

Omission of reference about relation of placenta with fetal nourishment, liquor amni and even principles of surgical procedures for gynecological disorders by Suśruta, the surgeon of such a high repute, is difficult to explain.

Aṣṭāṅga Saṅgraha—

Vāgbhaṭa, the latter author, has tried to incorporate entire subject given by Caraka and Suśruta in his compendium AṣṭāṅgaSaṅgraha, except sociological subject, sequence of descent and sources of *pañcamahābhūtas* in embryo, classification of asṛgdara and eight milk disorders described by Caraka and clinical features of twin pregnancy, definition of *garbhasrāva* and *garbhapāta* described in Suśruta and part of fetal body developing first etc. given by both the authors.

Following are the contributions of Aṣṭāṅga-Saṃgraha—

1. Presence of *raja* or *śoṇita* from early childhood and amount of *raja*.

2. Explanation of cause of birth of female or male child with the coitus done on odd or even days respectively.

3. *Rājasika* and *tāmasika* features of fetus; effect of place of living, season, profession and colour of *śukra* on the body complexion of progeny; presence of *dauhrda* in fortyfive days and *romarājī*.

4. Effect on the fetus of the diet capable of vitiating *vāta* etc. *doṣas* taken by the pregnant woman and method of giving *basti* to a pregnant woman.

5. Comparatively detailed description of abortion etc.; clinical features and treatment of *upaviṣṭaka* and *upaśuṣka* associated with vitiation of *vāta* etc. *doṣas*. and *vātodara*.

6. Use of skin over the bed to be used during labour, bath to a puerperal woman, *yonibhraṃśa* of a puerperal woman and *rakṣākarma* on sixth night after delivery.

7. *Ulbaka* diseases of new born and treatment of umbilical wound.

8. Amount of breast milk, weaning and diseases due to use of milk of different tastes and colours.

9. Description of *yonivraṇeksaṇa*, *yoninādīvraṇa prakṣālana* and *yoninādīvraṇa-abhyaṅga yantras*.

AṣṭāṅgaHṛdaya—

In AṣṭāṅgaHṛdaya almost entire subject given in AṣṭāṅgaSaṅgraha is described albeit in summarized way, however, instead of different presentations/positions of *mūḍhagarbha* only *viṣkambha mūḍhagarbha* is mentioned.

Instead of giving the account of whole subject, only specific contributions of other books used for collecting the subject are being given here-under—

KāśyapaSaṃhitā—

Variation in duration of *ṛtukāla* in different castes; principles of treatment of dis-

Scanned with CamScanner

eases afflicting the woman in different months of pregnancy, treatment of vomiting during pregnancy on the basis of predominating *doṣa*, detailed treatment of diseases of pregnant woman, effect of smoking etc. given to a febrile pregnant woman; mention of various menstrual disorders, abortions, intrauterine deaths and neonatal deaths etc. under the heading of *jātahāriṇī; varaṇabandha;* bad prognostic features of pregnant woman indicative of death of fetus, woman her self or the born child; comparatively detailed description of *raktagulma;* effect of *āvīs* (labour pains) on progress of labour; colour of 'show' according to sex of the fetus; causes of reappearance of menstruation after delivery; comparatively detailed management of puerperium on the basics of place of living and also sex of born child, puerperal disorders and their elaborate treatment; vitiation of breast milk by *grahas;* detailed description of wetnurse; classification on *stanavajra* of *stanakīlaka* according to predominance of *doṣas.*

HārītaSaṃhitā—

Classification of epochs of woman's life in *bālā* and *mugdhā* etc.; acceptance of *retas* as different from *śukra;* classification of *mūḍhagarbha* on the basis of *doṣas* i.e., *vātaja* etc.; monthwise treatment of excessive quivering of fetus; premature labour; mention of perineal rigidity due to shyness and abnormalities/diseases of uterus alongwith slow movement under causes and bad prognostic features of *mūdhagarbha* respectively; bad-prognositic features of *ārtava* and classification of *vandhyā* under six types.

BhelaSaṃhitā—

No specific contribution has been made.

MādhavaNidāna—

Enumeration of *sūtikārogas* and description of *yonikanda* are its contributions.

ŚārṅgadharaSaṃhitā—

Enumeration of eight fetal disorders, five types of breast diseases, and three *strīdoṣas, somaroga, gūḍhagarbha* and *jarāyudoṣa* etc. conditions and few recipes are its contributions.

Bhāwaprakāśa—

Sanūraṇā etc. *nāḍīs* of *yoni; ārtava* as eighth *dhātu* of female; division of functions of *śukra* and *ārtava;* delay in labour due to constriction of *yoni;* specific qualifications of woman handling obstructed labour; detailed description of *yonisaṃvaraṇa, phiraṅga, somaroga* and *mūtrātisāra* diseases and oral contraceptives are its specific contributions.

Yogaratnākara—

Relatively detailed and clear description of treatment of diseases during pregnancy; local or external use of drugs to induce abortion or for contraceptions, additions of few more oral contraceptives, good number of recipes including *rasauṣadhis* for treatment

of various conditions have been added in this book.

Preceding description clearly indicates that though the process of development was slow, yet there has been continuous progress. In latter period besides good number of recipes progress on conceptual side remained almost static.

Style—

CarakaSaṃhitā, SuśrutaSaṃhitā, AṣṭaṅgaSaṅgraha AṣṭāgaHṛdaya and specific source book of *kaumārabhṛtya* i.e. Kāśyapa-Saṃhitā have been taken as base books. From these books, the subject has been collected and translated in consecutive order, citing specific contributions of commentators i.e. Cakrapāṇi (CarakaSaṃhitā and *sūtrasthāna* of SuśrutaSaṃhitā), Ḍalhaṇa (SuśrutaSaṃhitā), Indu (AṣṭāṅgaSaṃgraha) and Aruṇadatta (AṣṭāṅgaHṛdaya), references of these commentators have been given as footnotes. Subject matter from MādhavaNidāna including its Madhukoṣa commentary, ŚārṅgadharaSaṃhitā, BhelaSaṃhitā, HārītaSaṃhitā, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara has been given in summarized way without translating in verbatim due to fear of too much repetition, however, references of all these books have also been added in footnotes. At one or two places views of Āḍḥamalla (commentator of ŚārṅgadharaSaṃhitā) and Vaṅgasena have also been cited.

While writing the treatment, path of translation has been abondoned, because of repetition of prescriptions. Moreover, description of recipes on the basis of different preparations i.e. powder, decoction etc. and/or method of use i.e. local, oral etc., gives better and practical understanding. Thus, in treatment, subject matter of all the eleven books has been given on the basis of specific preparation and/or method of use and then at the end references have been added in footnotes. However, in case, the treatment is described only in one book taken as base, the system of translation has continued.

After recapitulating textual description, own ideas are given under the heading of comments, where-in attempt has been made to give intelligible explanations on the basis of subject available in books of modern medicine or scientific logics, but without transgressing the limits of descriptions of *āyurvedika* classics.

Here and there few corrections of textual description necessitated for correct understanding of subject and probably entered during printing have been done.

In english translation, without translating the matter of each book separately, subject as a whole has been mentioned, citing the difference of opinions of authors if any. In translation internationally accepted diacritical marks have been used. While translating sanskṛta words in english, Sanskṛta English dictionaries of Sir Monier Monier-Williams and V. S. Apte and in writing english words in hindi, the pronunciations given in Hindi English dictionary of C. Bulcke have been followed.

In appendix, presently used weights of metric system, of those *āyurvedika* weights referred in the book, have been given.

Scanned with CamScanner

The book is divided in two parts i.e. *Prasūtitantra* and *Strīroga*. At the end of second part specific ingredients of group of drugs, *gaṇas* or *kaṣāyas* referred in both the parts and list of drugs in alphabetical order with their botanical names have been appended.

First part i.e. *Prasūtitantra* is divided in eleven chapters. Since knowledge of neonatal management and breastfeeding is essential even to an obstetrician, hence, this subject has been included in this book. For clarification of subjcet, few line-drawings made on the instructions of authoress have been added.

Acknowledgement—

To express the gratitude for those *ṛṣis*, whose work is the basis of present book, laxicons have failed to coin befitting words, thus only mute reverence is offered.

The book is the result of paternal affection, constant encouragement, timely guidance and exact explanation of controversial subject given by my reverend teacher Prof. P.V. Sharma. Sanskṛta corrections given here and there are done on his advice. If this book has any useful portion, it is due to his kind and tender guidance, but for his constant encouragements, the work would never have seen the light of the day. He has very kindly spared his valuable time for writting the introduction, which has made the book more useful. I bow before him in gratitude.

I am thankful to my colleague Dr. C. Chaturvedi for his in-valuable help rendered at every stage of this work.

In collation of typed script Dr. (Miss) S. K. Negi and in collation and correction of printed material Drs. R. D. Sharma, Harishankar and Abhimanyu Kumar have done very hard work. Word index has been prepared by Dr. R. D. Sharma and major work of errata is done by Dr. Abhimanya Kumar. Dr. Devendra Nath Mishra and Mrs. Sureshta Sharma have also helped in collation and correction of printed material. I am very much thankful to these colleagues.

I shall be failing in my duty if I do not express my thanks to Pandit D.N. Mishra, Shri R. V. Singh, Shri. G. C. Srivastava and Shri S. K. Sharma for typing work and Shri B. L. Tewari (Lucknow) and Shri J. K. Khanna for making the line drawings of this book, who all have completed the work with dexterity.

My elder brother Dr. K. C. Chunekar kindly provided me his books i.e. Indu commentary on AṣṭāṅgaSaṅgraha (*sūtra* to *cikitsā sthāna)* and Cakrapāṇi commentary on *sūtra-sthāna* of SuśrutaSaṃhitā. I am thankful for this help.

For decorating cover page Mr. J. K. Khanna deserves special thanks.

Chaukhambhā family deserves special gratitude, who have worked with a novice, thus inspite of facing various difficulties have published the book very efficiently and quickly.

I am extremely thankful to my father shri Rama Shankar Tewari and elder sister

Dr. (Mrs.) Pushpavati Tewari, whose affection and blessings have been a fountain source of encouragement throughout my life.

I am also thankful to all those who have helped directly or indirectly in completion of this work.

At the end I bow at the feet of almighty to forgive me for my shortcomings and bless me to do something fruitful in future.

Apology—

An attempt to write a book, inspite of ignorance about subject and language is sure to be derided, still have dared to contemplate this arduous journey by keeping first step in this direction. with the fond hope, desire and confidence that constructive criticism and suggestions of erudites will pave the way for better clarification and presentation of the subject in future and will provide me an impetus to work further. Inexperience in the field is the cause of variations and mistakes in printing. Though at the end errata is appended, however, many more mistakes must have been left. I apologise with folded hands for enumerable shortcomings of the work.

Premvati Tewari

20th Feb. 1986

Scanned with CamScanner

KEY TO TRANSLITERATION

(1) Vowels

अ	a	ऌ	lr
आ	ā	ए	e
इ	i	ऐ	ai
ई	ī	ओ	o
उ	u	औ	au
ऊ	ū	अं (anuswāra)	m or rh
ऋ	r	अः (Visarga)	h

(2) Consonants

क्	k	द्	dh
क	ka	ढ	dha
ख्	kh	ण्	n
ख	kha	ण	na
ग्	g	त्	t
ग	ga	त	ta
घ्	gh	थ्	th
घ	gha	थ	tha
ङ्	ṅ	द्	d
ङ	ṅa	द	da
च्	c	ध्	dh
च	ca	ध	dha
छ्	ch	न्	n
छ	cha	न	na
ज्	j	प्	p
ज	ja	प	pa
झ्	jh	फ्	ph
झ	jha	फ	pha
ञ्	ñ	ब्	b
ञ	ña	ब	ba
ट्	ṭ	भ्	bh
ट	ṭa	भ	bha
ठ्	ṭh	म्	m
ठ	ṭha	म	ma
ड्	ḍ	य्	y
ड	ḍa	य	ya

र्	r	स्	s
र	ra	स	sa
ल्	l	ह्	h
ल	la	ह	ha
व्	v,w	क्ष्	kṣ
व	va, wa	क्ष	kṣa
श्	ś	त्र्	tr
श	śa	त्र	tra
ष्	ṣ	ज्ञ्	jñ
ष	ṣa	ज्ञ	jña

(2) Singular to Plural

Singular	Plural
a, ā (Vāgbhaṭa, haridrā)	as, ās (Vāgbhaṭas, haridrās)
i, ī (gati, nādi)	īs or ies (gatis or gaties; nāḍīs or nāḍīes
u, ū etc. all others just like a, ā	

(4) Number

Hindī	English	Hindi	English
१	1 (one)	६	6 (six)
२	2 (two)	७	7 (seven)
३	3 (three)	८	8 (eight)
४	4 (four)	९	9 (nine)
५	5 (five)		

Scanned with CamScanner

संकेत-निर्देश
(Abbreviation)

(१) ग्रन्थ (Books)

अष्टाङ्गसंग्रह (Aṣṭāṅga Saṅgraha)	अ० सं०; वाग्भट (A. S.; Aṣ. Sa.; Aṣṭā. Saṃ; Vāgbhaṭa or VāgbhaṭaI)
अष्टाङ्गहृदय (Aṣṭāṅga Hrdaya)	अ० हृ०; वाग्भट (A. H.; Aṣ. Sa.; Aṣṭā. Saṃ; Vāgbhaṭa II)
काश्यप संहिता (Kāśyapa Saṃhitā)	का० सं० (Kā, KS)
चरक संहिता (Caraka Saṃhitā)	च० सं० (C. S.)
भावप्रकाश (Bhāwaprakāśa)	भा० प्र० (B. P.; Bh. P.)
भेल संहिता (Bhela Saṃhitā)	भे० सं० (Bh. S.)
माधव निदान (Mādhava Nidāna)	मा० नि० (M. N.)
योगरत्नाकर (Yogaratnākara)	यो० र० (Y. R.)
शार्ङ्गधर संहिता (Śārṅgadhara Saṃhitā)	शा० सं०; (Śā. S.)
सुश्रुत संहिता (Suśruta Saṃhitā)	सु० सं०; (S. S. Su.S.)
हारीत संहिता (Hārīta Saṃhitā)	हा० सं०; (Hā. S.)

(१) ग्रन्थ

अरुणदत्त	अरुण०
आढमल्ल	आढ०
इन्दु	इन्दु
चक्रपाणिदत्त	चक्र० (C. P.)
डल्हण	डल्ह०
श्री विजयरक्षित श्रीकण्ठदत्त कृत मधुकोष टीका	मधु०

(३) खण्ड

पूर्व खण्ड	पू० ख०; पूर्व०
मध्य खण्ड	म० ख०; मध्य
उत्तर खण्ड	उ० ख०; उ०

(४) स्थान

सूत्रस्थान	सू०
निदानस्थान	नि०
विमानस्थान	वि०
शारीरस्थान	शा०

इन्द्रियस्थान	इ०
चिकित्सास्थान	चि०
कल्पस्थान	क०
सिद्धिस्थान	सि०
उत्तरस्थान या उत्तरतन्त्र	उ०
खिलस्थान	खि०

(५) अन्य

(अ)	
प्रथम स्थान	प्र० स्था०
द्वितीय स्थान	द्वि० स्था०
तृतीय स्थान	तृ० स्था०
चतुर्थ स्थान	च० स्था०
पञ्चम स्थान	पञ्च० स्था०
षष्ठ स्थान	षष्ठ० स्था०
(आ)	
योनिरोगाधिकार	योनिरो०
योनिव्यापच्चिकित्सा	योनिव्या० चि०
स्त्रीरोगचिकित्सा	स्त्रीरो० चि०
क्षीरदोषचिकित्सा	क्षीरदो० चि०

Scanned with CamScanner

चित्र-सूची
(List of figures)

	पृष्ठ संख्या
1 योनि के आवर्त एवं पेशियाँ (Āvartas and peśīs of yoni)	9
2 गर्भाशय-स्थिति (Situation of uterus)	11
3 अधोगामी धमनियाँ (Adhogā dhamanīs)	15
4/1 योनिबहिर्मुख की पेशियाँ (Peśīs of yonibahirmukha)	23
4/2 शुक्रार्तव प्रवेशिनी एवं गर्भछिद्रसंश्रित पेशियाँ (Śukrārtavapraveśinī peśīs and peśīs of garbhachidra)	24
4/3 गर्भछिद्र संस्थित पेशियाँ (Peśīs of garbhachidra)	25
4/4 लक्षण एवं मुष्क के समकक्ष पेशियाँ (Peśīs analogous to lakṣaṇa and muska)	30
5 स्त्री-शरीर के परिपेक्ष्य में शुक्रार्तव (Śukra and ārtava in relation to female body)	54
6 गर्भ-पोषण (Fetal nourishment)	145
7 सूतिकागार (Sūtikāgāra)	428
8 स्फिगुदय की विभिन्न गतियाँ (Different presentations of sphigudaya)	497
9 पृष्ठोदय या परिघ मूढ़गर्भ (Pṛṣṭhodaya or parigha mūḍhagarbha)	498
10 बीजक मूढ़गर्भ (Bījaka mūḍhagarbha)	498
11 बीजक मूढ़गर्भ (Bījaka mūḍhagarbha)	498
12. प्रतिखुर मूढ़गर्भ (Pratikhura mūḍhagarbha)	499
13. अष्टमगति या एक पाद गुदा तथा दूसरा पायु में (Eighth gati, one foot in anus other in vagina)	499
14. शिर से अवरोध (Obstruction by śira)	499
15. मुखोदय (Mukhodaya)	500
16. कुब्जदेहोदय (Presenting with kubjadeha)	500
17. मूढ़गर्भ-निर्हरणार्थ स्त्रीस्थिति (Position of woman for delivering mūḍhagarbha)	517
18. मूढ़गर्भ-निर्हरणार्थ उपकरण (Assets for delivering mūḍhagarbha)	518
19. उभय पादोदय में प्रसव-विधि (Method of delivery in footlings presentation)	519
20. पादोदय में प्रसव-विधि (Method of delivery in footling presentation)	520
21. स्फिगुदय में प्रसव-विधि (Method of delivery in sphigudaya)	520

गर्भस्थापक औषधियाँ (Garbhasthāpaka drugs or the drugs beneficial for maintenance of pregnancy) २३८

अध्याय ६

CHAPTER 6

गर्भिणी-व्याधियाँ एवं उनकी चिकित्सा

(Disorders During Pregnancy and their Management)

गर्भिणी की व्याधियों का सामान्य चिकित्सा सूत्र (General principles of treatment for pregnant woman) २४२

गर्भिणी की विशिष्ट व्याधियाँ एवं चिकित्सा (Specific diseases of pregnant woman and their treatment) २४४

गर्भावस्था के विभिन्न मासों में उत्पन्न विशिष्ट व्याधियों के चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of the diseases occuring in various gestational months) २४४

गर्भिणी को ही होने वाली व्याधियाँ (Pregnancy disorders) २४६

गर्भज वमन (Vomiting during pregnancy) २४६

किक्किस (Kikkisa or striae gravidarum) २५१

अन्य व्याधियाँ (Other disorders during pregnancy) २५४

गर्भिणी ज्वर (Fever of pregnant woman) २५४

गर्भिणी के उदावर्त की चिकित्सा (Treatment of udāvarta during pregnancy) २६६

गर्भिणी-अतिसार (Garbhiṇī-atisāra or diarrhoea during pregnancy) २६८

गर्भिणी को स्वयं या उसके गर्भ को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण (Bad prognostic signs/symptoms likely to injure mother or fetus) २८६

गर्भजन्य विषमयता (Toxaemia of pregnancy) २९०

गर्भजन्य विषमयता में गर्भपात का निर्देश (Indication for abortion in toxaemia of pregnancy) २९३

गर्भिणी को आक्रान्त करने वाली रेवती या जातहारिणी (Revatī or jātahāriṇīs afflicting a pregnant woman) २९३

जातहारिणी के द्वारा आक्रमण (नाश) योग्य स्थिति एवं काल (Appropriate condition and period for seizure by jātahāriṇī) २९४

जातहारिणी के भेद (Classification) २९५

जातहारिणी-प्रवेश के सामान्य कारण (Causes of affliction by jātahāriṇī) २९६

दैवी आदि विशिष्ट जातहारिणी वर्णन (Description of daivy etc. specific jātahāriṇī) ३००

जातहारिणी-लक्षण (Clinical features of jātahāriṇīs) ३०८

जातहारिणी-आविष्ट होने पर सामान्य लक्षण (General clinical features) ३०८

साध्य जातहारिणी (Curable jātahāriṇīs) ३०९

याप्य जातहारिणी (Yāpya or having tendency of relapse jātahāriṇīs) ३१२

असाध्य जातहारिणी (Asādhya or incurable jātahāriṇīs) ३१४

अध्याय ७

CHAPTER 7

गर्भव्यापद्

(Disorders of Fetus)

गर्भस्राव एवं गर्भपात (Garbhasrāva and garbhapāta or abortion of first or second trimester) ३२०

गर्भस्राव एवं पात की परिभाषा (Definition of garbha srāva and pāta) ३२०

गर्भस्राव या पात का निदान (Causes of abortion) ३२१

सम्प्राप्ति (Pathogenesis) ३२८

लक्षण (Clinical features) ३२९

गर्भस्राव अथवा गर्भपात के उपद्रव (Complications of abortion) ३३१

Scanned with CamScanner

गर्भस्राव चिकित्सा (Treatment of abortion) ३३४
गर्भ-चलन की चिकित्सा (Treatment of garbha calana) ३५२
गर्भपात प्रतिषेधार्थ वरणबन्ध (Varaṇabandha for preventing abortion) ३५५
गर्भशोष या वाताभिपन्नगर्भ (Garbhaśosa or vātābhipanna garbha) ३५९
उपविष्टक गर्भ (Upaviṣtaka garbha) ३६१
निदान, सम्प्राप्ति एवं सामान्य लक्षण (Etiopathogenesis and clinical features) ३६१
नागोदर या उपशुष्क गर्भ (Nāgodara or upaśuṣka garbha) ३६३
कारण, सम्प्राप्ति एवं लक्षण (Etiopathogenesis and clinical features) ३६३
उपविष्टक एवं उपशुष्क में वाताधिक्य होने पर लक्षण (Clinical features of upaviṣtaka and upaśuṣka garbha having predominance of vāyu) ३६५
उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ में पित्त का प्रकोप होने पर लक्षण (Clinical features of upaviṣtaka and upaśuṣka garbha dominated by pitta) ३६६
उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ में श्लेष्मा का प्रकोप होने पर लक्षण (Clinical features of upaviṣtaka and upaśuṣka garbha dominated by śleṣmā) ३६६
उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ-चिकित्सा (Treatment of upaśuṣka and upaviṣtaka garbha) ३६७
लीन गर्भ (Līna garbha) ३७१
निदान एवं लक्षण (Etiology and clinical features) ३७१
लीनगर्भ-चिकित्सा (Treatment of līna garbha) ३७२
गर्भक्षय (Garbhakṣaya) ३७४
गर्भवृद्धि (Garbhavṛddhi) ३७५
भूतहत या नैगमेषहत गर्भ (Bhūta or naigameṣahṛta garbha) ३७६
जरायु दोष (Jarāyudoṣa) ३८७
रक्तगुल्म (Raktagulma) ३८७
रक्तगुल्म के स्त्रियों में ही होने का कारण (Cause of its presence only in women) ३८८
निदान एवं सम्प्राप्ति (Etiopathogenesis) ३८९
पूर्वरूप (Prodromal symptoms) ३९३
लक्षण (Clinical features) ३९३
रक्तगुल्म के उपद्रव (Complications of raktagulma) ४०२
रक्तगुल्म की असाध्यता के लक्षण (Clinical features denoting bad prognosis) ४०२
रक्तगुल्म-चिकित्सा (Treatment of raktagulma) ४०३

अध्याय ८

CHAPTER 8

प्रसवविज्ञानीय (सामान्य एवं विकृत प्रसव)
(Eutocia and Dystocia or Normal and Abnormal Labour)

सामान्य प्रसवकाल (Gestational period for normal labour) ४२४
प्रसव प्रारम्भ होने के कारण (Causes of onset of labour) ४२६
सूतिकागार (Sūtikāgāra or accouchement ward) ४२७
प्रसव के समय गर्भाशयान्तर गर्भ की स्थिति (Intrauterine situation of the fetus during labour) ४३४
प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के लक्षण (Clinical features of different stages of labour) ४३६
आवी का प्रसव में प्रभाव (Effect of āvīs or accouchement force on labour) ४४१
पुत्र या पुत्री के अनुसार प्रसव-पूर्व स्राव (Colour of 'show' according to sex of the fetus) ४४१

प्रसव के समय परिचर्या (Management of labour) ४४२
गर्भसङ्ग-चिकित्सा या प्रसव में विलम्ब होने पर प्रयुक्त औषधियाँ (Treatment of garbhasanga or delayed labour) ४५२
अपरा पतन (Placental expulsion) ४५७
स्वाभाविक अपरा-पतन (Normal expulsion of placenta) ४५७
अपरा का पतन न होने पर उपद्रव (Complications of retention of placenta) ४५७
अपरा की पातन-विधि (Treatment of retention of placenta) ४५८
अकाल प्रसव (Akāla prasava or untimely labour) ४६५
पूर्वकालिक या अप्रगल्भ शिशु का प्रसव या विप्रसव (Premature labour) ४६६
कालातीत प्रसव या अतिप्रगल्भ शिशु का प्रसव (Delayed labour or post maturity) ४६८
प्रसवपूर्व रक्तस्राव (Antepartum haemorrhage) ४७०
मृत एवं मूढ़गर्भ (Mṛtagarbha and mūḍhagarbha or intrauterine death of fetus and obstructed labour) ४७१
गर्भाशयान्तर मृतगर्भ (Intrauterine death of fetus) ४७१
निदान (Etiology) ४७१
सम्प्राप्ति (Pathogenesis) ४७४
लक्षण (Clinical features) ४७५
चिकित्सा (Treatment) ४७७
मूढ़गर्भ (Mūḍhagarbha or obstructed labour) ४७८
परिभाषा (Definition) ४७८
मूढ़गर्भ-निदान (Etiology) ४८३
मूढ़गर्भ की सम्प्राप्ति (Samprāpti or pathogenesis of mūḍhagarbha) ४८७
मूढ़गर्भ के लक्षण (Clinical features of mūḍhagarbha) ४९०
असाध्य मूढ़गर्भ के लक्षण (Clinical features denoting incurability of mūḍhagarbha) ५०२
मूढ़गर्भ की चिकित्सा (Treatment of mūḍhagarbha) ५०८
मूढ़गर्भ की चिकित्सिका/चिकित्सक के गुण (The qualifications of accoucheur or accoucheuse handling mūḍhagarbha) ५०८
मूढ़गर्भ के सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त (General Principles of treatment of mūḍhagarbha) ५०९
जीवित मूढ़गर्भ की प्रसव-विधि (औषधि एवं मन्त्र चिकित्सा) (Method of delivery of alive mūḍhagarbha with medicine and mantras) ५१०
दोषिक मूढ़गर्भ की चिकित्सा (Treatment of mūḍhagarbha due to different doṣas) ५१३
मृत मूढ़गर्भ की चिकित्सा में विलम्ब या उपेक्षा का परिणाम (Effect of negligence or delay in the treatment of dead mūḍhagarbha) ५१४
गर्भशल्योद्धरण की कठिनाइयाँ (Difficulties during extraction of garbhaśalya) ५१४
शस्त्रकर्म के पूर्व भोजन-निषेध (Contraindication of ingestion of food before surgical procedure) ५१५
गर्भ-शल्योद्धरण के पूर्व अधिपति की आज्ञा (Consent of guardian before surgical intervention) ५१६
गर्भ-शल्योद्धरण के समय स्त्री की स्थिति एवं वैद्य द्वारा हस्त-प्रवेश-विधि (The position of woman during extraction of mūḍhagarbha and method of insertion of hand by surgeon) ५१७
मूढ़गर्भ को हाथ से आहरण करने की विधि (Procedure of manual extraction of fetus) ५१९
शस्त्रकर्मार्ह मूढ़गर्भ (The mūḍhagarbha fit for instrumentation) ५२३
सचेतन गर्भ-छेदन का परिणाम (The effect of rending or decapitation and other destructive procedures of alive fetus) ५२५

Scanned with CamScanner

मूढ़गर्भ का शस्त्रकर्म (Surgery or destructive operations for mūḍhagarbha) ५२६
शल्योद्धरण के पश्चात् चिकित्सान्तर्गत प्रयुक्त बलादि तैलों का वर्णन (Description of balā etc. oils used in post-operative management of mūḍhagarbha) ५३४
मूढ़गर्भ में उदर-विपाटन (Laparotomy or cesarean section fer extracting mūḍhagarbha) ५३८

अध्याय ९

CHAPTER 9

सूतिकाविज्ञानीय

(Normal and Abnormal Puerperium)

सूतिका की परिभाषा (Definition of sūtikā or puerperal woman) ५४३
सूतिकाकाल (Sūtikākāla or duration of puerperium) ५४३
प्रसवोपरांत पुनः रजोदर्शन-हेतु (The factors responsible for reappearance of menstruation after delivery) ५४५
सूतिका-परिचर्या (Management of puerperal woman) ५४६
सूतिका की व्याधियाँ एवं उनकी चिकित्सा (Diseases of puerperal woman and their management) ५५६
सूतिका की व्याधियों के कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होने का कारण (Cause of incurability or difficult curability of puerperal disorders) ५५७
सूतिका की व्याधियों का सामान्य चिकित्सा-सूत्र (General principles of treatment for puerperal disorders) ५५८
सूतिकाव्यापद् (Puerperal disorders) ५५९
सूतिका-व्याधियों की गणना (Number of puerperal disorders) ५५९
पूर्ववर्णित सूतिकाव्याधियों के सामान्य निदान (General etiology of these puerperal disorders) ५६२
सूतिकाव्याधियों की सामान्य चिकित्सा (General treatment of puerperal disorders) ५६३
सूतिका रोग (Sūtikā roga) ५६४
प्रसूता की योनिभ्रंश की चिकित्सा (Treatment of yonibhraṃśa i.e. uterovaginal prolapse or inversion of uterus of puerperal woman) ५७२
प्रसूता के योनिक्षत की चिकित्सा (Treatment of yonikṣata or vaginal ulcer of puerperal woman) ५७३
मक्कल्ल शूल (Makkallla śūla or puerperal after-pains) ५७३
रक्तविद्रधि (Raktavidradhi) ५७६
सूतिका-ज्वर (Sūtikā-jwara or puerperal fever) ५८५
सामान्य प्रसवान्तराल (Normal duration of interpregnancy period) ६०७
प्रसवोपरान्त योनि-गाढ़ीकरण-विधि (Medicines for constriction of vagina after delivery) ६०८
प्रसवोपरान्त कुक्षि-ह्रासार्थ औषधि (Prescription for reducing the belly after delivery) ६०८
गर्भाधानरोधक एवं गर्भस्राव-कारक औषधियाँ या विधि (Contraceptives and abortifacients) ६०८

अध्याय १०

CHAPTER 10

नवजात शिशु-परिचर्या विज्ञानीय

(Management of New Born Child)

नवजात शिशु की तत्काल परिचर्या (Care of new born immediately after birth) ६१४
जन्मोत्तर अचेष्ट बालक की चिकित्सा-विधि (Resuscitation of unconscious or asphyxiated child) ६१९
नाभि-उपकल्पन-विधि (Method of cutting of umbilical cord) ६२१
नवजात शिशु के सद्यः स्नान के लिए प्रयुक्त विशिष्ट जल एवं स्नान-विधि (Procedure of bath of neonate and water to be used for batheing) ६२२

22. परिघ मूढ़ गर्भ की प्रसव-विधि (Method of delivery of parigha mūḍhagarbha) 521
23. बीजक मूढ़ गर्भ की प्रसव-विधि (Method of delivery of bījaka mūḍhagarbha) 522
24. मुखोदय की प्रसव-विधि (Method of delivery in mukhodaya) 522
25. शीर्षोदय में शिरोविदारण एवं निर्हरण-विधि (Craniotomy in obstruction due to śira) 527
26. मुखोदय में शिरोविदारण (Craniotomy in mukhodaya) 528
27. तिर्यगागत में अङ्गछेदन (Destructive operation in tiryagāgata) 528
28. जठरोदय में उदरविदारण (Evisceration in jatharodaya) 529
29. स्फिगुदय में अङ्गछेदन (Destructive operation in sphigudaya) 530
30. उदरविपाटन (Laparotomy) 539
31. कुमारागार (Kumārāgāra) 631

Scanned with CamScanner

विषयावलि
(CONTENTS)

विषय	पृष्ठ
द्वितीय संस्करण के लिए दो शब्द	७
Two words about second edition	८
भूमिका	९
आमुख	१५
Prologue	२४
Key to transliteration	३४
संकेत-निर्देश (Abbreviations)	३६
चित्र-सूची (List of figures)	३८
अध्याय १	
CHAPTER 1	
स्त्री-शरीर-रचना	
(Anatomy of female Reproductive System)	
श्रोणि (Waist or pelvis)	३
भग (Vulva)	५
योनि (Vagina)	६
गर्भाशय (Uterus)	१०
आभ्यन्तर स्रोतस् या आर्तववह स्त्रोतस् (Ārtavavaha srotas)	१३
धमनी (Arteries or channels)	१४
शिराएँ (Venis)	१६
मर्म (Vital parts)	१६
पेशी (Peśī or muscles)	२०
अध्याय २	
CHAPTER 2	
ऋतुचक्र एवं उसका शारीर-क्रिया विवेचन	
(Physiology of Menstrual Cycle)	
शारीरिक वृद्धि की अवस्थायें (Stages of life according to development)	३२
स्त्री-शरीर की विशिष्ट अवस्थायें (Specific epochs of woman's life)	३६
स्त्री की आयु की विभिन्न अवस्थाओं में दोषों की स्थिति (Status of doṣas in these epochs of woman's life)	३८
ऋतुस्रावादि के द्योतक विभिन्न शब्द (Different words used to denote menstrual blood and ovum etc.)	४०
आर्तव, रज या रक्त शब्दों का कुछ अन्य अर्थों में प्रयोग (Other substances for which also these words are used)	४५
स्त्रीशुक्र (Female śukra)	४९
शुक्रधातु (स्त्री-शरीर के परिपेक्ष्य में) (Śukradhātu in relation to female body)	५०
रज, शोणित, आर्तव का वर्णन (Description of raja, śonita or ārtava)	५७
रजोदर्शन के पूर्व बाला के शारीरिक परिवर्तन (Changes before menarche)	६०
प्रथम रजोदर्शन एवं रजोनिवृत्ति की आयु (Age of menarche and menopause)	६१
ऋतुचक्र (Menstrual cycle)	६२
अध्याय ३	
CHAPTER 3	
गर्भाधान-विधि	
(Method of Impregnation)	
विवाह एवं गर्भधारण के योग्य आयु (Proper age for marriage and first conception)	७९
अतिबाला या अतिवृद्धा में गर्भधारण-निषेध एवं परिणाम (The result of impregnation in very young or old woman)	८१
मैथुन के लिए अयोग्य स्त्री की अन्य शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाएँ एवं संभोग का परिणाम (Contraindicated conditions of woman for coitus and their effects)	८२
सामान्य मैथुन की स्थिति एवं विभिन्न स्थितियों में मैथुन निषेध तथा उनके परिणाम (Normal and abnormal postures for coitus and their effect)	८५
गर्भोत्पत्ति के लिए आवश्यक घटक (Factors essential for conception)	८६
पुत्र अथवा पुत्री की प्राप्ति के लिए संयोगदिवस (The days of coition for having a male or female child)	८८
युग्मायुग्म दिवसों में संभोग से पुत्र या पुत्री के जन्म का कारण (The cause of birth of male or female on even or odd days respectively)	८९
ऋतुकाल की उत्तरोत्तर रात्रियों में गर्भाधान का परिणाम (Effect of impregnation on different days of ṛtukāla)	९०
गर्भप्राप्ति के लिए कर्त्तव्य (Specific acts for achieving conception)	९१
अध्याय ४	
CHAPTER 4	
गर्भ-विज्ञानीय अध्याय	
(Embryology)	
गर्भ की परिभाषा (Definition of garbha or embryo)	१०५
गर्भावक्रान्ति (Process of descent of various components in embryo)	१०६
गर्भ के मुख्य षड्घटक या षड्धातु (Six major components or ṣaḍdhātu of fetus)	११०
मन, आत्मा एवं पञ्चमहाभूतों का गर्भ में अवतरण क्रम (The sequence of descent of mana, ātmā and pañcamahābhūtas in embryo)	१११
गर्भ में पञ्चमहाभूतों के विभिन्न स्रोत (Sources of pañcamahābhūtas in fetus)	११२
गर्भ के पाञ्चभौतिक अङ्गावयव (Bhautika components of fetus)	११४
गर्भ की वृद्धि में पञ्चमहाभूतों का कार्य (Specific function of pañcamahābhūtas in fetal development)	११९
गर्भ की वृद्धि में वायु की प्रधानता (The importance of vāyu in fetal development)	१२१
गर्भ की मातृजादि भावों के समुदाय से उत्पत्ति (Formation of garbha with the combination of maternal etc. all the components)	१२३
मातृजादि घटकों के स्वतन्त्र कारणत्व का खण्डन (Contradiction of formation of embryo with maternal etc. singular component)	१२५
गर्भोत्पत्ति में मातृजादि भावों की कारणता एवं उनसे उत्पन्न अङ्ग (The importance of all mother etc. six factors in the formation of embryo and various body parts derived from these)	१२७
गर्भ के मन के सात्विक, राजस आदि होने का कारण (The cause of dominance of mana with satwa, raja etc.)	१३९
मनुष्य से मनुष्य की ही उत्पत्ति का कारण (The cause of progeny being of similar species)	१४०
जरायु की उत्पत्ति (Formation of placenta)	१४१
गर्भ का पोषण (Fetal nourishment)	१४३
गर्भ की मासानुमासिक वृद्धि (Monthwise development of fetus)	१४८
अष्टम मास में ओज का अस्थिरत्व एवं उसका परिणाम (Status of ojas in eighth month and its effect)	१५६
अष्टम मास में प्रसव प्रतिषेधार्थ कर्त्तव्य (Measures to prevent labour in eighth month)	१५८

Scanned with CamScanner

गर्भ का सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला अङ्ग (First born body part of the fetus) १५८
गर्भ के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की उत्पत्ति के घटक (Constituents of different body parts of the fetus) १६१
गर्भ के स्त्रीकर, पुरुषकर एवं नपुंसककर भाव (Specific features depending upon sex of fetus) १६४
गर्भ के जन्मोपरान्त उत्पन्न होने वाले अङ्गावयव (The body parts developing after birth) १६६
गर्भ की वर्णोत्पत्ति का कारण (Factors for formation of body complexion) १६६
गर्भ की जात्यन्धता एवं नेत्र की वर्णोत्पत्ति का कारण (Cause of congenital blindness and formation of colour of eyes) १६८
गर्भ के लिङ्ग-निर्माण के कारण (Factors for sex formation) १६९
बहुपत्यता (Multiple pregnancy) १७२
गर्भाङ्ग-विकृति (Teratologic abnormalities) १७६
गर्भस्थ शिशु के अरुदन का कारण (Reasons for absence of fetal cry) १८५
गर्भ में मल इत्यादि के अभाव का कारण (Reasons for absence of fetal excretas) १८६
गर्भिणी की व्याधियों का गर्भ पर प्रभाव (Effect of mother's diseases upon the fetus) १८७
गर्भ के शुभ एवं अशुभ भाव (Auspicious or śubha and inauspicious or aśubha features of fetus) १८७
गर्भ के पूर्णकाल में परिपूर्ण देह होकर सुख से उत्पन्न होने के कारण (Factors responsible for normal delivery of normally developed full term fetus) १८८
गर्भाशयान्तर गर्भस्थिति (Intrauterine situation of fetus) १८८
पुंसवनकर्म (Puṃsawanakarma) १९०

अध्याय ५

CHAPTER 5

गर्भिणी-चिह्न एवं गर्भिणी-परिचर्या

(Signs/symptoms of Pregnancy and Antenatal Care)

गर्भिणी-लक्षण (Signs/symptoms of pregnancy) १९७
सद्योगृहीत गर्भा के लक्षण (Signs/symptoms of sadyograhītagarbhā or immediately conceived woman) १९७
व्यक्तगर्भा के लक्षण (Signs/symptoms of vyakta-garbhā or after conspicuousness of body parts of embryo) १९८
गर्भिणी के मासानुमासिक लक्षण (Signs/symptoms during different gestational periods) २०१
गर्भ के लिङ्ग-द्योतक गर्भिणी-लक्षण (The signs/symptoms of mother denoting fetal sex) २०३
युग्म गर्भ में गर्भिणी के शारीरिक लक्षण (Signs in twin pregnancy) २०५
गर्भिणी में होने वाले स्तन-परिवर्तनों का कारण (Cause of breast changes during pregnancy) २०५
दौहृद (Dauhṛda) २०६
गर्भिणी-परिचर्या (Antenatal care) २१३
गर्भिणी का मासानुमासिक पथ्य एवं पथ्य-प्रयोग से लाभ (Monthwise dietary regimen for pregnant woman and its effect) २१८
गर्भिणी के लिए सामान्य वर्ज्य आहार-विहार या गर्भोपघातकर भाव (Dietetics and mode of life to be avoided by pregnant woman or garbhopaghātakara bhāvas or factors likely to harm the fetus) २२८
गर्भिणी के द्वारा विशिष्ट वर्ज्य आहार-विहार के सेवन का परिणाम (Effect of the use of contraindicated things by pregnant woman) २३४

बालक की सामान्य परिचर्या (General nursing care of child) ६२३
रक्षाकर्म (Rakṣākarma or measures adopted to protect the child against diseases) ६२३
शिशु की जन्म से लेकर चतुर्थ दिवस तक की आहार व्यवस्था (Feeding schedule of neonate from first to fourth day after birth) ६२७
शिशु का नामकरण संस्कार (Naming ceremony of the child) ६२८
नवजात-शिशु की असम्यक् परिचर्या-जन्य व्याधियाँ (Diseases afflicting the child due to improper care immediately after birth) ६३२
नाभिगत व्याधियाँ (Diseases of umbilicus) ६३३
उल्बक (Ulbaka) ६३६

अध्याय ११

CHAPTER 11

स्तन्य एवं धात्री-प्रकरण

(Stanya or Breast Milk and Dhātrī or Wet Nurse)

स्तन्य-निर्माण (Formation of stanya or breast milk) ६३८
स्तन्य-प्रवृत्ति-हेतु (Cause of stanya pravṛtti or milk ejection) ६४०
स्तन्य का प्रमाण (Amount of stanya) ६४२
धात्री (Dhātrī or wet-nurse) ६४२
स्तन-सम्पत् (Stanasampat or merits of breasts) ६४६
असम्पत् स्तनजन्य दोष (Abnormalities due to feeding with imperfect breasts) ६४६
स्तनपान-विधि (Method of breast feeding) ६४७
नाना स्तन्यपान-परिणाम (Effect of lactation by different women) ६४८
अपरिस्रुत स्तन्यपान जन्य विकार (Diseases due to feeding with unexpressed breasts) ६४९
स्तन्यपान वर्जित अवस्थायें (The woman unfit for lactation) ६५०
स्तन्यसम्पत् या शुद्ध स्तन्य के लक्षण (Stanyasampat or characteristics of normal breast milk) ६५१
तैलवर्णादि स्तन्य-पान का प्रभाव (Effect on the child of the milk having different colours) ६५२
स्तन्यनाश एवं स्तन्यक्षय (Stanyanāśa and stanyakṣaya) ६५३
स्तन्यवृद्धि (Stanyabṛddhi or increase in amount of milk) ६५८
धात्री या माता के स्तन्य के अभाव में अन्य उपयोगी दुग्ध (Substitute milk in case of non availability of milk of mother or wet nurse) ६५९
स्तन्य अपनयन का काल (Stanya apanayana-kāla or weaning period) ६६०
स्तन्य अपनयन-विधि (Stanya apanayana-vidhi or method of weaning) ६६१
धात्री-चिकित्सा (Dhātrī-cikitsā or treatment of wet-nurse) ६६१
धात्री के मिथ्याहार जन्य षष्ठी रोग (Saṣṭhī disease caused by abnormal dietetics of wet nurse) ६७०
धात्री की प्रकृति, प्रजा या स्तन्य की मात्रा का शिशु पर प्रभाव (Effect of prakṛti, parity of wet nurse or amount of milk on the child) ६७१
शिशु के व्याधि-युक्त होने पर धात्री की शोधन-चिकित्सा (Purifying measures for wet-nurse in the diseases of breast-fed infant) ६७१
स्तन्यदुष्टि (Abnormalities of breast-milk) ६७२
सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibliography) ७१४
परिशिष्ट १ - मान (Appendix I - Measures) ७१९
परिशिष्ट २ - औषधि-योग सूची (Appendix II - List of Recipes) ७२१
अनुक्रमणिका ७२६
Index ७३१
७४३

Scanned with CamScanner

आयुर्वेदीय प्रसूतितन्त्र एवं स्त्रीरोग

(ĀYURVEDĪYA PRASŪTITANTRA EVAṂ STRĪROGA)

प्रथम खण्ड

प्रसूतितन्त्र

Part I

(PRASŪTITANTRA)

Scanned with CamScanner

अध्याय १

CHAPTER I

स्त्री-शरीर-रचना

(ANATOMY OF FEMALE REPRODUCTIVE SYSTEM)

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के समकक्ष आयुर्वेदिक संहिताओं में शरीर-रचना का उतना विस्तृत एवं सुस्पष्ट वर्णन दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी यत्र-तत्र वर्णित विभिन्न संदर्भों को एक स्थान पर संग्रह करने से अंगों का एक सामान्य स्वरूप सामने आ जाता है।

The descriptive anatomy of female reproductive system is not so intelligible and clear in āyurvedika texts as in allopathic books of anatomy, however, on collecting scattered references available here and there, a gross picture emerges out.

श्रोणि (Waist or pelvis)

(अ) सामान्य माप (Normal measurements)

पुरुषोरः प्रमाणविस्तीर्णा स्त्रीश्रोणिः; अष्टादशाङ्गुलविस्तारमुरः। तत्प्रमाणा पुरुषस्य कटी।
(सु० सं० सू० ३५/१२)

पूर्वभागो गुरुः पुंसामधोभागस्तु योषिताम्। (सु० सं० सू० ४६/१३२)
कुमाराणामुरस्तु विशालतरं जघनं तु कुमारीणाम्। (का० सं० सू० २८/६)

पुरुषों के उरस् के प्रमाण की स्त्री की श्रोणि होती है। स्त्री के उरस् का विस्तार १८ अंगुल का होता है। पुरुष की कटि का भी यही अर्थात् १८ अंगुल प्रमाण होता है। पुरुषों का पूर्वभाग (वक्ष) एवं स्त्रियों का अधोभाग अर्थात् कटि अधिक विस्तृत होती है। टीकाकार चक्रपाणि ने २४ अंगुल का पुरुष का उर एवं उसी प्रमाण की स्त्री की श्रोणि का वर्णन किया है, टीकाकार डल्हण ने १२ एवं २४ अंगुल का पुरुष का उर, इस प्रकार दो मतों का प्रतिपादन किया है। टीकाकारों के मत से यह प्रमाण स्त्री या पुरुष के यौवन प्राप्त होने के बाद होते हैं। टीकाकार डल्हण ने उरुसन्धि के नीचे एवं स्मरमन्दिर के ऊपर के भाग को श्रोणि माना है।[1]

महर्षि काश्यप ने भी कुमारों के उरस् एवं कुमारियों के जघन के विशालतर होने का वर्णन दिया है।

---

१. (अ) चतुर्विंशत्यङ्गुलमुरोविस्तारमुक्तं, तत्प्रमाणा स्त्रीश्रोणिर्ज्ञेया, अष्टादशाङ्गुलविस्तारमुरः स्त्रिया एव ·····। अत्र स्त्रीश्रोणिपुरुषोरःप्रभृतीनामङ्गानां केषाञ्चिद्यौवन एव सम्पूर्णमानता भवति ·····। (सु.सं.सू. ३५।१२ की चक्रपाणि टीका)

(ब) श्रोणिरत्रोरुसन्धेरधस्तात् स्मरमन्दिरोपरितन विभागः। ····· पुरुषोरो द्वादशाङ्गुलं, तत्प्रमाणा स्त्रीश्रोणिरित्यर्थः। अन्येषां मते चतुर्विंशत्यङ्गुलविस्तारमुर इति; तन्मते स्त्रीश्रोणिरपि तत्प्रमाणैवेति। ·····अष्टादशाङ्गुलविस्तीर्णमुरः स्त्रिया इत्यर्थः ·····। (सु० सं० सू० ३५/१२ की डल्हण टीका)

(स) तत्र स्त्रीश्रोणिपुरुषोरःप्रभृतीनां यौवन एव यथोक्तप्रमाणता भवति न त्वल्पेवयसि। (सु.सं.सू. ३५।१३ की डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

The measurement of chest of male and waist of female is identical. The chest of female is 18 *aṅgulas* so is the waist of male. The chest of male is said to be 12 and 24 *aṅgulas* by Ḍalhaṇa and 24 *aṅgulas* by Cakrapāṇi. The chest of male and waist of female is relatively broader. Ḍalhaṇa opines that these measurements are attained after maturity; and *śroṇi* is below *urusandhi* and above *smaramandira.*

विमर्श (Comments)

टीकाकार डल्हण ने उरु-सन्धि के नीचे एवं स्मरमन्दिर से ऊपर के भाग को श्रोणि माना है। उरु-सन्धि, उरु अस्थि-शिर के श्रोणिफलक से सन्धि स्थान का द्योतक माना जा सकता है। यदि दोनो ओर की इन सन्धियों को मिलाते हुए एक सीधी रेखा खींची जाय तो यह स्मरमन्दिर (भगशिश्निका) के किञ्चित ऊपर से जाएगी। स्त्रियों में श्रोणिफलक से उरु-अस्थि के संयोग-स्थान के ऊपर त्वचान्तर्गत वसा का अधिक्य होने से यह स्थान सर्वाधिक विस्तृत दिखाई देता है। आधुनिक विज्ञान में कतिपय दशकों पूर्व गर्भिणी-परीक्षण करते समय उरु अस्थि के वृहत् कण्टकों के बीच की दूरी का माप स्त्री-श्रोणि की प्रासविक स्थिति-निर्धारण के लिए किया जाता था, यह माप श्रोणि के बहिर्मापन से प्राप्त व्यासों में अपेक्षाकृत बड़ा होता है, सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से स्त्री की श्रोणि को अधिक विस्तृत लिखा गया हो।

Śroṇi is said to be the area below *urusandhi* and above *smaramandira. Urusandhi* refers to union of femur head with pelvic bones. If a straight line is drawn between both these joints, it will pass slightly above the clitoris. In women, good quantity of subcutaneous fat is depositted above these joints, making this area quite broad. Few decades back during external pelvimetery intra-trochanteric diameter was measured to assess the female pelvis. This diameter is relatively bigger in comparision to other diameters obtained by external pelvimetery. Probably, this could be the reason for description of wide female's waist.

(आ) श्रोणि की अस्थियाँ एवं उनका आकार (Number and type of bones in pelvic cavity)

द्वे श्रोणिफलके, एकं भगास्थि । (च० सं० शा० ७/६)
श्रोण्यां पञ्च, तेषां गुदभगनितम्बेषु चत्वारि, त्रिकसंश्रितमेकम् । (सु० सं० शा० ५/१९)
एकैकं भगे त्रिके । नितम्बयोश्च द्वे । (अ० सं० शा० ५/७०)
तेषां—नितम्ब—शिरःसु कपालानि । (सु० सं० शा० ५/२०)
तानि जानुनितम्ब—कपालसंज्ञानि । (अ० सं० शा० ५/७२)

महर्षि चरक के मतानुसार श्रोणिगुहा के निर्माण में दो श्रोणिफलक एवं एक भगास्थि इस प्रकार तीन अस्थियाँ भाग लेती हैं। महर्षि सुश्रुत ने गुदास्थि एवं भगास्थि एक-एक, नितम्बास्थियाँ दो एवं त्रिकास्थि एक, इस प्रकार पाँच अस्थियाँ गिनाई हैं। वाग्भट में भग एवं त्रिक में एक-एक तथा नितम्ब में दो, इस प्रकार चार अस्थियों का उल्लेख है। नितम्ब में कपालास्थियाँ होती हैं।

Caraka has enumerated three bones i.e. two *śroṇiphalaka* and one *bhagāsthi;* Suśruta mentioned five - one *gudāsthi*, one *bhagāsthi*, two *nitambāsthis* and one *ṭrkāsthi*. Vāgbhaṭa wrote four i.e. one each in *bhaga* and *ṭrka* and two *nitambāsthis*. The bones of *nitamba* are of *kapāla* (flat) type.

विमर्श (Comments)

आचार्यों के मत-वैभिन्य का कारण सम्भवतः अनुत्रिकास्थि का सुश्रुत संहिता में गुदास्थि नाम से स्वतन्त्र वर्णन एवं

चरक संहिता में त्रिकास्थि को भी श्रोणिफलक का ही एक अंग माना जाना है।

Suśruta has enumerated *gudāsthi* or coccyx as a separate bone and Caraka has included even *ṭrkāsthi* or sacrum in hip bones. that is why the difference in number is seen.

(इ) श्रोणि की संधियाँ (Joints of pelvis)

त्रयः कटीकपालेषु । (सु० सं० शा० ५/२६)
गुदभगनितम्बेषु सामुद्गाः,..... कटीकपालेषु तुन्नसेवन्यः । (सु० सं० शा० ५/२७)
त्रयः कटिकपालेषु । (अ० सं० शा० ५/७५)
गुदभगनितम्बेषु सामुद्गाः ..... कटिकपालेषु तूनसेवनीसंज्ञाः । (अ०सं०शा० ५/७७)

कटिकपालों में तीन संधियाँ होती हैं। गुद, भग एवं नितम्ब में सामुद्ग तथा कटिकपालों में तुन्नसेवनी संज्ञक संधियाँ होती हैं। महर्षि वाग्भट ने उपर्युक्त वर्णन सदृश ही लिखते हुए 'तुन्नसेवनी' के स्थान में तूनसेवनी शब्द दिया है।

Flat bones of pelvis have three joints which are *tunna sevanī* (suture) type. In *guda, bhaga* and *nitamba* the bones have *sāmudga* type of joints.

भग (Vulva)

द्वादशाङ्गुलानि भगविस्तारः ..... । (सु० सं० सू० ३५/१२)

भग का विस्तार १२ अंगुल का होता है। आचार्य डल्हण ने भग से योनि एवं विस्तार से रंध्र का अर्थ मानकर इस द्वादशांगुल परिणाह को कामसूत्र वर्णित हस्तिनी जाति की स्त्रियों का भग-प्रमाण बताया है।[1] अन्यत्र टीकाकार डल्हण ने इसका आकार पिप्पल-पत्र सदृश लिखा है।[2]

Vulva is of twelve *aṅgulas*. According to commentator Ḍalhaṇa, this is the measurement of vaginal introitus of the women called *hastinī* in the books of sexology, at other place it is said to resemble leaf of *pippala.*

विमर्श (Comments)

डल्हण लिखित परिणाह से परिधि का अर्थ ले, वाम वृहत् भगोष्ठ-भगपीठिका-दक्षिण वृहत् भगोष्ठ-मूलाधार इस प्रकार परिधि बनाएँ तो सामान्य स्त्री का भग-प्रमाण द्वादशांगुल प्रमाणित हो जाता है। पिप्पलपत्र सदृश वर्णन आकृति-साम्य के कारण किया गया होगा क्योंकि पिप्पल-पत्र आकृति में त्रिकोणाकार सा होता है जिस त्रिकोण की पार्श्व रेखाएं गोलाभ होती हैं। भग भी कुछ त्रिकोणाकार सा ही होता है जिस त्रिकोण का आधार जघनशैल तथा शिखर योनिबहिर्मुख एवं गुदद्वार के बीच होता है।

The twelve *aṅgulas* measurement seems to be description of circumference of entire vulva instead of introitus of vagina. Its simile with leaf of *pippala* might have been given due to resemblance in shape. The leaf is triangular, having slight convexity of lateral

१. भगो योनिः, तस्य विस्तारो रन्ध्रः, तस्य परिणाहो द्वादशाङ्गुलः, इदं तु भगप्रमाणं हस्तिनीजातिस्त्रिया ज्ञेयम्, कामशास्त्रोक्तत्वात्। (सु०सं०सू० ३५/१२ डल्हण टीका)

२. अधस्ताद् रक्तवहं स्मरातपत्रस्याधः आर्तववहम्। स्मरातपत्रं भगस्योपरितने भागे। ..... उक्तंच–
विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्य शिरस्तलमाश्रितम्। सकलकामशिरामुखचुम्बितं निगदितं मदनातपवारणम्॥
(सु०सं०शा० ५/१० डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

borders, vulva is also some-what triangular having its base at mons pubis and apex mid way between vaginal introitus and anal orifice, with slight convexity of its lateral walls.

स्मरातपत्र या भगशिश्निका (Clitoris)

इसका वर्णन टीकाकार डल्हण ने किया है। यह, बड़े पिप्पल-पत्र सदृश आकृति के अङ्ग भग के ऊपर के भाग में स्थित होता है, इसके नीचे आर्तव-वहन का स्थान या योनि-बहिर्मुख होता है। कामकला के समय यह अङ्ग अत्यन्त हर्षण युक्त होता है।[1] अन्यत्र इसके लिए स्मरमन्दिर शब्द भी आया है।[2] आचार्य भावमिश्र ने इसके लिए मदनातपत्र शब्द का प्रयोग किया है।[3]

Smarātapatra is situated in upper portion of the organ resembling leaf of *pippala* i.e. vulva, below to this is the orifice for discharge of menstrual blood. During sexual act it is highly stimulated/erectile structure. Words *smaramandira* and *madanātapatra* are also used for this.

योनि (Vagina)

(अ) बहिर्मुख (External orifice)

श्रवणनयन·····। नव स्रोतांसि नराणां बहिर्मुखाणि। एतान्येव स्त्रीणामपराणि च त्रीणि-द्वे स्तनयोरधस्ताद्रक्तवहं च। (सु० सं० शा० ५/१०)

·····अन्यानि च त्रीणि स्त्रीणां स्तनौ रक्तपथश्च। (अ० सं० शा० ६/३४)

श्रवण नयनादि बहिर्मुख नौ स्रोतस् पुरुषों में होते हैं, स्त्रियों में दो स्तन में एवं एक रक्त को नीचे की ओर वहन करने के लिए तीन अधिक होते हैं।

आचार्य डल्हण ने इस अंग की व्याख्या करते हुए लिखा है कि भग के ऊपर के भाग में स्थित स्मरातपत्र (कामेच्छा में अत्यधिक उत्तेजित होने वाले अंग) के नीचे यह आर्तववह स्रोतस् स्थित है। इस अंग की व्याख्या के लिए साहित्यिक उद्धरण भी दिया है (सन्दर्भ १)।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी दो स्तन एवं एक रक्तपथ इस प्रकार तीन स्रोतस् स्त्रियों में अधिक माने हैं। टीकाकार इन्दु ने इन्हें स्पष्टतया बहिर्मुख स्रोतस् माना है।[4]

आचार्य भावमिश्र ने दो स्तन एवं एक गर्भ-वर्त्म इस प्रकार तीन रन्ध्र स्त्रियों में अधिक माने हैं।[5]

Females have three extra external orifices, two in breasts (one in each breast) and one downwards to excrete *ārtava*, which is situated below the *smarātapatra* (clitoris).

१. सु० सं० शा० ५/१० डल्हण टीका (पृष्ठ ५)।

२. सु० सं० सू० ३५/१२ डल्हण टीका (पृष्ठ ३)।

३. भा० प्र० पूर्व० ३/१८ (पृष्ठ ७)

४. स्त्रीणां तु त्रीण्यधिकानि·····इति बाह्यानि स्रोतांसि॥ (अ० सं० शा० ६/३४, इन्दु टीका)

५. स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयोर्गर्भवर्त्मनि॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२६९)

विमर्श (Comments)

कतिपय आधुनिक विद्वान गर्भाशय-मुख या गर्भाशय, योनि एवं इनकी रक्तवाहिनियाँ आदि रक्तवह स्रोतस् से मानते हैं।

रजोवह स्रोतस् का वर्णन सभी बहिर्मुख स्रोतसों के साथ होना एवं आचार्य डल्हण के मतानुसार भगशिश्निका के नीचे इसकी स्थिति इस अंग के योनिद्वार होने के प्रमाण स्वरूप दिये जा सकते हैं।

Some recent workers interpret *raktavaha srotas* as uterus, cervix, vagina and its vasculature; however, due to its enumeration amongst external orifices and situation below clitoris, it appears to be description of vaginal orifice or introitus.

(आ) योनि की आकृति (Shape of yoni)

शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्त्तिता। (सा च कीर्त्तिता–भा०प्र०)
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता। (सु० सं० शा० ५/४३ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/३१ तथा ८६ व ८७)

योनिस्तु शङ्खनाभ्याकृतिस्त्र्यावर्ता तस्यास्तृतीय आवर्ते·····गर्भशय्या। (अ० सं० शा० ५/९१)

योनि की आकृति शंखनाभि सदृश होती है। इसमें तीन आवर्त होते हैं। तीसरे आवर्त में गर्भशय्या स्थित होती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि योनि शंखनाभि के आकार की होती है, उसके तीसरे आवर्त में गर्भशय्या रहती है। टीकाकार इन्दु ने स्पष्टीकरण दिया है कि गर्भशय्या योनि के तीसरे आवर्त में प्रतिबद्ध रहती है।[1]

Yoni resembles *śaṅkhanābhi* (hollow portion of conch shell) in shape and has three *āvartas* (envelops or circles). *Garbhāśaya* is attached in third *āvarta*.

(इ) योनि की नाड़ियाँ एवं उनकी विशेषता (Nāḍis of yoni and their specifications)

मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम्। समीरणा चन्द्रमुखी च गौरी विशेषमासामुपवर्णयामि॥
प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेषनाडी। तस्या मुखे यत् पतितं तु वीर्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलिः॥
या चापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना। सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्या भवेदल्परतोत्सवेषु॥
गौरीति नाडी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात्। पुत्रं प्रसूते बहुधाऽङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/१७ से २०)

स्त्रियों के मनोभवागारमुख (स्त्रीजननाङ्ग या योनि) में समीरणा, चन्द्रमुखी एवं गौरी नामक तीन नाड़ियाँ होती हैं जिनकी विशेषता का वर्णन इस प्रकार है–

मदनातपत्र (भगशिश्निका) में प्रधानरूप से समीरणा नाम की नाड़ी रहती है जिसके मुख में यदि शुक्र गिरता है तो वह निष्फल होता है।

जिस स्त्री के कन्दर्पगेह (योनिनालिका-मध्य) में प्रधानरूप से चान्द्रमसी नामक नाड़ी होती है वह स्त्री रति में सुख-साध्य एवं कन्या-प्रसविनी होती है।

स्वभाव से ही जिस स्त्री के उपस्थगर्भ (योनिनलिका की अत्यधिक गहराई) में गौरी नामक नाड़ी होती है वह कष्टोपभोग्या या अधिक रति से संतुष्ट होने वाली एवं अधिकांशतः पुत्र-प्रसविनी होती है।

१. सा (गर्भशय्या) च योनौ शंखनाभ्याकृत्या तृतीय आवर्ते निबद्धा। (अ०सं०शा० ५/९१ इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

In *manobhavāgāra-mukha* (vaginal canal) of females there are three *nāḍīs*: *samīraṇā*, *candramukhī* and *gaurī*.

At *madanātapatra* (clitoris) is mainly *samīraṇā*, *śukra* (semen) falling over it becomes futile.

The woman having mainly *cāndramasī* in *kandarpageha* (mid vaginal canal) is easily satisfied with coitus and delivers female children.

Sexual satisfaction to the woman possessing *gaurī nāḍī* in *upasthagarbha* (depth of vaginal canal) is attained with difficulty and she delivers usually male children.

विमर्श (Comments)

साहित्य में योनि शब्द प्राणियों के जाति-वैभिन्य का द्योतक है, पर आयुर्वेदिक संहिताओं में यह स्त्री-जननांग के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द योनिनलिका का ही द्योतक न होकर अधिकांशत: स्त्री-जननांगों के समष्टि स्वरूप के लिए एवं कहीं-कहीं पृथक्-पृथक् अंगों के वर्णन के लिए प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ योनि-स्थित विशिष्ट पेशी-वर्णन, योनि-व्यापद् एवं काश्यप वर्णित बाला की हीन योनि आदि समस्त स्त्री-जननांगों के द्योतक हैं। योनि की नाड़ियाँ, योनि-कण्डु, योनि-अतिपैच्छिल्यादि वर्णन योनिनलिका एवं भग को इंगित करते हैं। अष्टाङ्गहृदय आदि में वर्णित ऋतु के अन्त में योनि के द्वारा शुक्र का धारण न करना वर्णन में योनि शब्द गर्भाशय एवं गर्भाशय-ग्रीवा का द्योतक है।

योनि की आकृति शंखनाभि-सदृश मुख में संकुचित एवं मध्य में विस्तृत होती है। शरीर-रचना की पुस्तकों में योनि-नलिका का भी लगभग ऐसा ही वर्णन मिलता है यथा अविवाहित स्त्री में अधोभाग की परिधि लगभग ४-५ से. मी. एवं ऊर्ध्वभाग की परिधि इससे दुगुनी होती है।

योनि-स्थित आवर्तों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. जोशी ने प्रथम आवर्त से योनिनलिका एवं पार्श्व-स्थित रचनाएँ, द्वितीय आवर्त से गर्भाशय-ग्रीवा एवं पार्श्व-स्थित रचनाएँ एवं तृतीय आवर्त से गर्भाशय एवं पार्श्व-स्थित रचनाओं को ग्रहण किया है। आचार्य घाणेकर ने योनिनलिका-स्थित श्लेष्मल कला के उभारों का वर्णन किया है। इन आवर्तों की अन्य भी व्याख्या दी जा सकती है।

(१) आवर्त का शाब्दिक अर्थ घुमाव या मोड़ या चक्कर आदि होता है। योनिनलिका स्त्री-श्रोणि के लगभग समानान्तर स्थित होती है। यह भग से प्रारम्भ हो १/३ भाग तक सीधी जा फिर थोड़ा सा पश्चिम भाग की ओर झुककर पीछे गर्भाशय की ओर जाती है। अत: प्रथम आवर्त से योनि का बहिर्मुख, द्वितीय आवर्त से पश्चिम की ओर झुकने वाला स्थान या सम्पूर्ण योनिनलिका एवं तृतीय आवर्त से गर्भाशय-ग्रीवा के पार्श्व का योनि भाग (तोरणिका) लिया जा सकता है।

(२) यदि आवर्त से योनि के चारों ओर की रचना ग्रहण की जाय, तो प्रथम आवर्त मूत्रनलिका एवं मलाशय या मलद्वार से पृथक् करने वाला नाड़ियों एवं रक्तवाहिनियों से युक्त सौत्रिक एवं संयोजक-तन्तु-निर्मित घना आच्छद, द्वितीय आवर्त से योनि-स्थित मांसपेशी-स्तर एवं तृतीय आवर्त से योनि की श्लेष्मल कला ग्रहण कर सकते हैं (चित्र १)।

(३) आवर्त शब्द को रचना का द्योतक मानकर भग को प्रथम आवर्त, योनिनलिका को द्वितीय आवर्त एवं गर्भाशयादि को तृतीय आवर्त लिया जा सकता है।

(४) योनि की पूर्व भित्ति में ३ सॅल्काय होते हैं[१] यथा एक द्वार के ठीक ऊपर या सबमिएटॅल सॅल्कॅस, दूसरा इससे लगभग ३५ मि. मी. ऊपर मूत्रनलिका एवं वस्ति के संयोग-स्थान-स्थित ट्रांसवर्सवैजिनॅल सॅल्कॅस और तीसरा बस्ति

१. शा. द्वारा लिखित टेक्स्टबुक आफ गाइनिकॉलॉजि, पृ. ५

के योनिनलिका की पूर्वभित्ति से संयोग-स्थान-स्थित ब्लैडर सॅल्कॅस। इन तीनों सॅल्काय को तीन आवर्त माना जा सकता है।

उपरि वर्णित नं. २ की व्याख्या अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है क्योंकि आचार्य डल्हण ने भी मुखाश्रित दो पेशियों की स्थिति की व्याख्या करते हुए आवर्तत्रय की स्थिति गर्भमार्ग में ही मानी है। इन्होंने आवर्तत्रय से गर्भशय्या को पृथक् माना है क्योंकि आवर्तत्रय गर्भमार्ग में होते हैं न कि गर्भशय्या में।[१] टीकाकार इन्दु ने भी गर्भशय्या को तृतीय आवर्त में प्रतिबद्ध माना है (पृ.७), अर्थात् गर्भशय्या योनि के आवर्तों से पृथक् अङ्ग है।

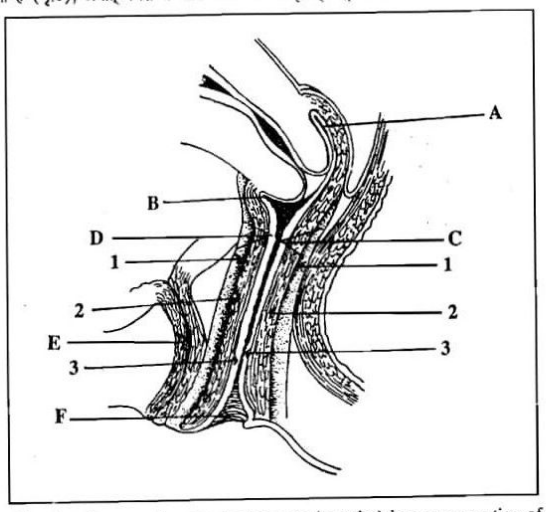

Fig. (1) : Showing *āvartas* of *yoni* and also *peśīs* (muscles) in a cross section of vagina.

A. Posterior fornix, B. Anterior fornix
C. Posterior vaginal wall } Two muscles spreading
D. Anterior vaginal wall } inside the canal
E. Urethra, F. Introitus of vagina

1. Thick connective and fibrous layer separating vaginal canal from bladder and urethra anteriorly and rectum posteriorly
2. Muscular coat of vaginal canal
3. Mucous membrane of vaginal canal

} Three *āvartas* of *yoni*

१. गर्भच्छिद्रसंश्रिता इति गर्भमार्गमाश्रितास्तिस्र आवर्तत्रयरूपेण, तृतीये चावर्ते मत्स्यमुखाकारा गर्भशय्या (यत्र गर्भस्तिष्ठति) (सु० सं० शा० ५/३९ डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

The word *yoni* in āyurvedika classics refers to entire reproductive system and also to individual organs separately. Its shape resembles the mid part of conchshell as it is narrow at the introitus and very wide at fornices. Its three *āvartas* are explained as vagina with its adnexal structures, cervix with adnexa and uterus with adnexa by Dr. Joshi, Dr. Ghāṇekara takes these to be mucous membranous folds. Other few explanations can also be given for these three *āvartas* as **(A)** (i) introitus, (ii) mid canal and (iii) fornices; (B) (i) thick connective and fibrous layers separating vaginal canal from urinary bladder and urethra anteriorly and rectum and anus posteriorly, (ii) muscular layer and (iii) mucous membrane (fig.1). (C) (i) external genitalia, **(ii)** vagina and (iii) uterus with adnexa. (D) (i) submeatal sulcus, (ii) transeverse vaginal sulcus (iii) and bladder sulcus. Out of all these four explanations, number 'B' seems to be more logical because Ḍalhaṇa and Indu have accepted *garbhāśaya* as separate from three *āvartas* and these *āvartas* are said to be situated in *garbhamārga* (vaginal canal).

गर्भाशय (Uterus)

स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम इति। (सु० सं० शा० ५/८)
पित्तपक्वाशयोर्मध्ये गर्भशय्या यत्र गर्भस्तिष्ठति॥ (सु० सं० शा० ५/३९)
शङ्खनाभ्याकृतियोनिस्व्यावर्त्ता सा प्रकीर्तिता। तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता॥
(सु० सं० शा० ५/४३)
यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः। तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः॥
(सु० सं० शा० ५/४४ एवं भा० प्र० पूर्व ३/३२)
स्त्रीणान्तु वस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः सन्निकृष्टः॥ (सु० सं० चि० ७/३३)
स्त्रीणां पित्तपक्वाशयोर्मध्ये गर्भाशयोऽष्टमः॥ (अ० सं० शा० ५/४६)
योनिस्तु शङ्खनाभ्याकृतिस्व्यावर्ता। तस्यास्तृतीय आवर्ते पित्तपक्वाशयान्तरे रोहितमत्स्यमुखाकारा गर्भशय्या॥ (अ० सं० शा० ५/९१)
स्त्रीणां तु वस्तिः पार्श्वगतो गर्भाशय सन्निकृष्टः॥ (अ० सं० चि० १३/२७)
गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे॥ (अ० ह० शा० ३/११)
तेषामधस्ताद्विपुलं स्रोतः कुण्डलसंस्थितम्। जरायुणा परिवीतं स गर्भाशय उच्यते॥
(का० सं० शा० ३/६ व ७)
स्त्रिया गर्भाशयोऽष्टमः। (का० सं० शा० ३/९)
स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः॥ (का० सं० खि० ९/१६)

स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा एक आठवाँ आशय गर्भाशय अधिक होता है।

यह गर्भाशय, शंखनाभ्याकृति योनि के तीसरे आवर्त में, पित्ताशय एवं पक्वाशय के मध्य स्थित, गर्भ का आधार होता है।[1] अश्मरीचिकित्साध्याय में महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने इसकी स्थिति वस्ति के पार्श्व में वर्णित की है। यह रोहितमत्स्य-मुखवत् होता है। महर्षि काश्यप-मतानुसार यह महास्रोत की कुण्डलिकाओं के बीच जरायु से आच्छादित हो स्थित रहता है। आचार्य डल्हण ने रोहितमत्स्य के मुख से उस सदृश ही गर्भाशय की आभ्यन्तर सुषिरता का वर्णन

१. गर्भाशयो गर्भाधारो—। पित्तपक्वाशयोरन्तरं-मध्यं, पित्तपक्वाशयान्तरं तस्मिन् गर्भस्य आशयः।
(अ० ह० शा० ३/११ अरुणदत्त टीका)

किया है[1], चिकित्सास्थान-वर्णित बस्ति के पार्श्व की स्थिति के स्पष्टीकरण में वैतरण टीका का उद्धरण देते हुए लिखा है कि स्त्रियों में भग के नीचे (पीछे) वस्ति तथा ऊपर (वस्ति के ऊपर) गर्भाशय स्थित है। गर्भाशय एवं वस्ति महास्रोतस् के आश्रित हैं।[2] (चित्र २)।

आचार्य भावमिश्र ने वर्णन में सु. सं. शा. ५।४६ का अक्षरशः पालन करते हुए रोहितमत्स्याकृति का स्पष्टीकरण देते हुए मत्स्य की जल के मध्य की स्थिति से ही गर्भाशय की पित्तपक्वाशयान्तर-स्थिति की तुलना की है।[3] अन्यत्र आशयोल्लेख

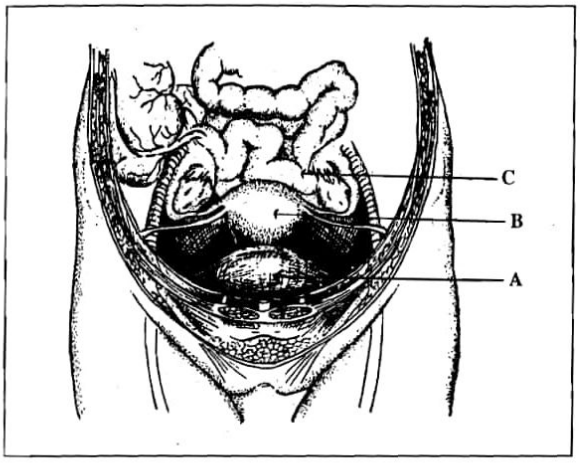

Fig. (2) : Showing situation of *garbhāśaya* (uterus) behind the *basti* (urinary bladder) and inbetween *vipula kuṇḍala* of *srotas* (multiple coils of intestines).
A. Urinary bladder　　B. Uterus
C. Coils of small intestine

१. तत्संस्थानामिति अल्पमुखामन्तर्महासुषिरामित्यर्थः। (सु० सं० शा० ५/४४ डल्हण टीका)
२. भगस्याधः स्त्रिया वस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयः स्थितः। गर्भाशयश्च वस्तिश्च महास्रोतः समाश्रितौ॥ (सु० सं० चि० ७/३३ डल्हण टीका)
३. (अ) स एव गर्भस्याधानं कुर्याद्गर्भाशये स्त्रियाः। (भा० प्र० पूर्व० ३/८६)
(आ) अयमर्थः-गर्भशय्याया मुखं रोहितमत्स्यस्येव भवति यथा च रोहितमत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशयपक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्येव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/३२)

Scanned with CamScanner

में पित्ताशय एवं पक्वाशय के बीच स्थित "धरा" को गर्भाशय तथा प्रवृद्ध स्तनों को स्तन्याशय की संज्ञा दी है।[1] महर्षि शार्ङ्गधर ने भी शब्दभेद से यही वर्णन दिया है।[2] अष्टाङ्गहृदय में कोष्ठाङ्गों के अन्तर्गत डिम्भ का उल्लेख है। टीकाकार अरुणदत्त ने इसे रक्त एवं मांस के प्रसाद से निर्मित तथा आन्त्र-सम्भव वर्णित किया है।[3]

Women possess one extra eighth *āśaya* as *garbhāśaya*, which is situated in third *āvarta* of *yoni*, behind the urinary bladder, in between *pittāśaya* and *pakwāśaya*; or in between '*uipula kuṇḍala* of *srotas*' (multiple coils of intestine), covered with *jarāyu* (peritoneum). It resembles mouth of *rohita* fish (fig.2). Dalhaṇa says that it is hollow inside just like mouth of *rohita* fish; the *vasti* (urinary bladder) is behind the *bhaga* (vulva) and uterus is above this. Vāgbhaṭa II has enumerated *dimbha* amongst the structures of *koṣṭha*, Aruṇadatta says that it is made from essence of *rakta* and *māṃsa* and is derived from intestines.

विमर्श (Comments)

गर्भाशय की तुलना रोहित-मत्स्य-मुख से सम्भवतः दो कारणों से की गई हो। (१) आकृति में सामञ्जस्य - क्योंकि दोनों का ही आकार त्रिकोणाकार सा होता है, एवं आभ्यन्तर सुषिरता होती है, मुख नीचे चपटा तथा ऊपर उन्नतोदर होता है इसी प्रकार गर्भाशय की अग्रिम भित्ति कुछ चपटी तथा पश्चिम भित्ति किञ्चित उन्नतोदर होती है। (२) इस मत्स्य के ओष्ठ मांस-निर्मित मोटे लटके हुए से होते हैं, इनके ठीक पीछे दन्त-पंक्ति न होकर यह कुछ अन्दर की ओर होती है। ये गोल, लटकते हुए से मृदु ओष्ठ गर्भाशय-ग्रीवा से सामञ्जस्य रखते हैं।

पित्ताशय एवं पक्वाशय के मध्य गर्भाशय की स्थिति एक विवाद का विषय बना हुआ है। यदि पित्ताशय से आधुनिक मान्यता प्राप्त अंग गालब्लेडर लिया जाय तो गर्भाशय की स्थिति स्पष्ट करने में कठिनाई होगी, क्योंकि इस अंग के निकट गर्भाशय केवल गर्भावस्था के अंतिम सप्ताहों में ही पहुँच पाता है। अतः यहाँ पर पित्ताशय से पित्तधरा कला जिसका स्थान ग्रहणी (क्षुद्रांत्र) है, लेना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस कला का पित्तधरा नाम ही इसके पित्त के आशय या स्थान होने का द्योतक है। पक्वाशय शब्द बृहदांत्र एवं मलाशय के लिए प्रयुक्त होता है। टीकाकार अरुणदत्त ने पुरीषता प्राप्त अन्न के स्थान को पक्वाशय माना है।[4] इस अर्थ से गर्भाशय की स्थिति सुस्पष्ट हो जाती है कि यह आशय बस्ति के पार्श्व (पश्चिम पार्श्व) या बस्ति एवं मलाशय के बीच (श्रोणिगुहा) में स्थित रहता है एवं पित्तधरा कला के स्थान क्षुद्रान्त्र की कुण्डलिकाएँ इसके ऊपर रहती हैं जो गर्भाशय-भेदनादि उपद्रव होने पर गर्भाशय गुहा में भी प्रवेश कर जाती हैं। काश्यपसंहिता में यह स्थिति और भी सुस्पष्ट है क्योंकि यह अंग कुण्डलिकाओं के मध्य स्थित वर्णित है एवं इसकी पूर्व तथा पश्चिम भित्तियाँ उदर्याकला द्वारा आच्छादित रहती हैं।[5]

१. पुरुषेभ्योऽधिकाद्यान्ये नारीणामाशयास्त्रयः। धरा गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयान्तरे।
स्तनौ प्रवृद्धौ तावेव बुधैः स्तन्याशयौ मतौ। (भा० प्र० पूर्व० ३/२१७, २१८)

२. पुरुषेभ्योऽधिकाद्यान्ये नारीणामाशयास्त्रयः। धरा गर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ॥ (शा० सं० पूर्व० ५/१०)

३. कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोम फुप्फुसम्। यकृत्प्लीहोन्दुकं वृक्कौ नाभिडिम्भान्त्रबस्तयः॥
(डिम्भं स्याद्रक्तमांसस्य प्रसादादान्त्रसम्भवः - अरुणदत्त) (डिम्बं-पादटीका) (अ० हृ० शा० ३/१२)

४. तथा पक्वस्थान्नस्य पुरीषतां प्राप्तस्य य आधारः स पक्वशब्देनोच्यते॥ (अ० हृ० शा० ३/११ अरुण० टीका)

५. संस्कृत-व्याकरण दृष्ट्या काश्यप-वर्णित श्लोक अशुद्ध सा प्रतीत होता है, क्योंकि गर्भाशय पुल्लिंग शब्द के सभी विशेषण नपुंसकलिंग में वर्णित हैं, जिसके कारण ही कतिपय विद्वानों ने कुण्डलिकाचक्र-स्थित-स्रोत ऐसा वर्णन किया है। गर्भाशय स्रोत न होकर आशय है, पाठान्तरों में त्रुटि का आ जाना असम्भव नहीं कहा जा सकता, अतः आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी के मतानुसार श्लोक का निम्न पाठ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है-
तेषामधस्ताद्विपुलस्स्रोतस्कुण्डलसंस्थितः। जरायुणा परिवीतः स गर्भाशय उच्यते॥

अष्टाङ्गहृदय वर्णित डिम्भ या डिम्ब शब्द सम्प्रति स्त्रीबीज के लिए प्रयुक्त होता है। अङ्ग के अन्य वर्णन की अनुपस्थिति तथा स्त्री एवं पुरुष में समान रूप से उपस्थिति, इसके किसी भी रचना से सामञ्जस्य में कठिनाई उत्पन्न करती है। डिम्ब शब्द से अमरकोष (२/५/३८) में बालक तथा वैद्यक शब्दसिन्धु में मूत्राशय एवं गर्भाशय अर्थ ग्रहण किया गया है। गर्भाशय मांस निर्मित एवं रक्ताधिक्य युक्त अङ्ग है तथा आन्त्रों के बीच में रहता है अतः स्त्री-शरीर-दृष्ट्या इससे गर्भाशय अर्थ लिया जा सकता है।

The simile of uterus with mouth of *rohita* fish might have been given probably due to two reasons i.e. (1) similarity in shape, as both are triangular and hollow inside; the mouth of fish is flat below and slightly convex above, similarly anterior wall of uterus is slightly flat, while posterior wall is slightly convex. (2) the lips of fish are fleshy and hanging, teeth are not just behind the lips, rather situated slightly behind these giving appearance of a rounded soft structure, which resembles cervix of uterus.

In the context of situation of uterus the word *pittāśaya* should not be considered as gallbladder, rather it should be taken as small intestine, the seat of *pittadharā kalā*, *pakwāśaya* refers to the place of digested food i.e. large bowel. The uterus is above sigmoid colon, behind the urinary bladder and multiple coils of small bowel rest upon uterus, it is covered with peritoneum and is an intraabdominal structure, which has been mentioned by Kāśyapa and Dalhaṇa.

The word *dimbha* in not clear, presently it is used to donote ovum. Due to absence of specific structural description and its presence in male and female both, it is difficult to equate it with any structure. In Amarakoṣa it is translated as child, while Vaidyaka Śabdasindhu book explains it as urinany bladder or uterus, thus, in context of females this can be considerd as uterus as it is made up of flesh, is good vascular and is situated amongst the intestines.

आभ्यन्तर स्रोतस् या आर्तववह स्रोतस् (Ārtava vaha srotas)

आर्तववहे द्वे, तयोर्मूलं गर्भाशय आर्तववाहिन्यश्च धमन्यः,
तत्र विद्धायां वन्ध्यात्वं मैथुनासहिष्णुत्वमार्तवनाशश्च। (सु० सं० शा० ९/१२)

आर्तववह स्रोतस् दो होते हैं, इनके मूल गर्भाशय एवं आर्तववाही धमनियों में होते हैं। इनका वेध होने पर वन्ध्यत्व, मैथुनासहिष्णुत्व एवं आर्तवनाश लक्षण होते हैं।

These are two in number, having roots in *garbhāśaya* and *ārtavavāhī dhamanīs*, injury to these produces infertility, dyspareunia and amenorrhoea.

विमर्श (Comments)

आचार्यों ने शरीर में बहिर्मुख एवं अन्तर्मुख दो प्रकार के स्रोतसों का वर्णन किया है। बहिर्मुख स्रोतसों में स्तन्यवाही दो एवं रजोवाही एक वर्णित है। रजोवाही बहिर्मुख स्रोतस् का वर्णन पूर्वपृष्ठों में आ चुका है। आभ्यन्तर स्रोतस् वे सुषिर नलिकाएँ हैं जिनके मुख हमें सामान्य रूप से दृष्टिगोचर नहीं होते। स्त्री-शरीर-स्थित विशिष्ट आभ्यन्तर स्रोतसों का वर्णन केवल महर्षि सुश्रुत ने किया है। अन्य आचार्यों ने शुक्रवह स्रोतस् के समकक्ष स्त्री-शरीर में स्तन्यवह स्रोतस् माना है जिसका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

Scanned with CamScanner

इन आर्तववह स्रोतसों के आधुनिक विज्ञान में वर्णित अंगों से सामंजस्य के बारे में विद्वानों में मतभेद है। पंडित गंगाधर जोशी ने इन्हें गर्भाशयान्तर स्थित श्लेष्मल कला माना है।[1] जिस मान्यता को प्रमाणित करने के लिए आधारभूत-दृष्टान्त में गर्भावस्था के समय आर्तववह स्रोतस् के मुख का अवरोध हो अनार्तव होना दिया है। गर्भावस्थाजन्य स्रोतस्मुख-अवरोध-वर्णन एवं स्रोतोवेध में अनार्तव की उत्पत्ति आदि उद्धरणों को दृष्टिगोचर करते हुए आचार्य घाणेकर ने इन्हें गर्भाशयिक धमनियाँ माना है।[2] डॉ० नि० ग० जोशी ने आर्तववह स्रोतस् में डिम्बग्रन्थि, डिम्बप्रणाली एवं उनकी रक्तवाहिनियों का समावेश किया है।[3]

गर्भाशयान्तःकला संख्या में एक तथा डिम्बप्रणाली एवं डिम्बग्रंथियाँ मिलकर चार हो जाती हैं, जब कि आर्तववह स्रोतसों की संख्या दो ही बताई गई है, अतः ये वर्णन तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते एवं आचार्य घाणेकर का विचार ही अधिक मान्य प्रतीत होता है। संहिताओं में आर्तवविमोचिनी धमनियों का वर्णन है, जो गर्भाशयिक धमनियाँ मानी जा सकती हैं (धमनी वर्णन में स्पष्ट किया जायगा), अतः यदि ये दोनों धमनियाँ एवं गर्भाशय आर्तववहस्रोतस् के मूल मान लिए जाएँ तो वेध से उत्पन्न सभी लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं, क्योंकि यदि ये गर्भाशयिक धमनियाँ विद्ध हो जायें तो गर्भाशयान्तःकला का पोषण न होकर अनार्तव एवं बन्ध्यत्व हो जाएगा, साथ ही वेधजन्य उत्पन्न शोथादि एवं अनार्तवजन्य मानसिक विकार से मैथुनासहिष्णुता भी उत्पन्न हो जायगी।

These may be considered as uterine arteries, specially their capillary bed, because these arteries are responsible to carry *ārtava* (*ārtavavāhī dhamanī*), are two in number, have attachment with uterus and injury to these vessels may result in infertility and amenorrhoea due to absence of proper blood supply to uterus alongwith endometrium, dyspareunia may also occur due to associated inflammation caused during injury and psychological upset due to amenorrhoea etc.

धमनी (Arteries or channels)

(अ) ऊर्ध्वगा धमनी (Arteries or channels tending upwards)

द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः स्तनसंश्रिते, ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः। (सु० सं० शा० ९/५)
द्वे च स्तनाश्रिते नार्याः स्तन्यं नरस्य शुक्रम्। (अ० सं० शा० ६/३१)

स्त्रियों के स्तनों में स्तन्य का वहन करने के लिए दो धमनियाँ होती हैं। वे ही पुरुषों में (स्तन से सुश्रुत मतानुसार) शुक्र का वहन करती हैं।

Women possess two *dhamanīs* to carry *stanya* (milk) to the breasts, analogous to those carry *śukra* in males.

(आ) अधोगामी धमनियाँ (Arteries or channels tending downwards)

अधोगमास्तु—आर्तवादीन्यधो वहन्ति। —— **शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय, द्वे विसर्गाय, ते एव रक्तमभिवहतो नारीणामार्तवसंज्ञम्।** (सु० सं० शा० ९/७)
द्वे शुक्रं वहतो द्वे च मुञ्चतः। ते एव नारीणामार्तवम्। (अ० सं० शा० ६/३२)

१. सु.सं.शा. ९।१२ घाणेकर टीका, पृष्ठ २२९
२. सु.सं.शा. ९।१२ घाणेकर टीका, पृष्ठ २२९
३. आयुर्वेदिक कॉन्सेप्ट्स इन गाइनिकॉलॉजि, नि. ग. जोशी।

आर्तवादि को नीचे की ओर वहन करनेवाली अधोगामी धमनियाँ होती हैं।

पुरुषों में शुक्रप्रादुर्भाव (सुश्रुत) या शुक्रवहन (वाग्भट) के लिए दो एवं शुक्र विसर्ग के लिए दो इस प्रकार चार धमनियाँ होती हैं। वे ही स्त्रियों में रक्त के अभिवहन के लिए (दो प्रादुर्भाव या वहन के लिए एवं दो विसर्ग के लिए) होती हैं।

Channels tending downwards carry *ārtava* etc. downwards.

Males have two *dhamanīs* (arteries) for formation of *śukra* (semen) and two for its excretion. Analogous to these carry *ārtava* in females.

विमर्श (Comments)

संहिताओं में वर्णित धमनी शब्द विवादास्पद है, कुछ विद्वान इस शब्द से शुद्ध रक्तवाही नलिकाएँ एवं कुछ नाड़ियाँ ग्रहण करते हैं। आचार्य घाणेकर ने स्तन्यवह धमनी से मैमॅरी आर्टॅरि ग्रहण किया है। आधुनिक शरीर रचना या क्रिया-विज्ञान दृष्ट्या इनका शुक्र से कोई सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त कठिन है। पण्डित गंगाधर शास्त्री ने इनके समकक्ष किसी भी नाड़ी का वर्णन नहीं किया।

डॉ० घाणेकर ने आर्तव वहन एवं विमोचन करने वाली धमनियों को यूटॅरिन तथा ओवॅरिन वेसॅल माना है। पंडित

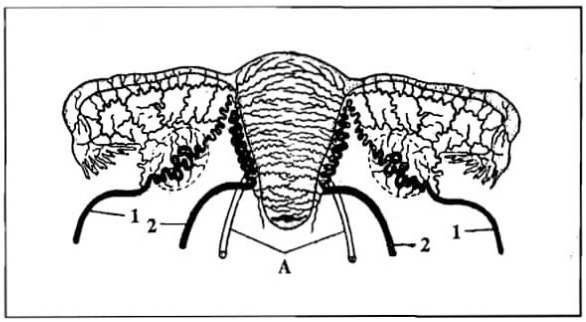

Fig. (3) : Showing *adhogā dhamanīs* (channels tending downwards).
A. Ureters
1. Ovarian arteries (*ārtavavāhī dhamanīs*).
2. Uterine arteries (*ārtavavimocinī dhamanīs*).

गंगाधर शास्त्री इनसे हाइपोगैस्ट्रिक एवं ओवॅरिन न:थॉइन प्लेक्सॅस ग्रहण करते हैं। आचार्य घाणेकर का मत अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि आर्तव निर्माण एवं विसर्ग में नाड़ियों का उतना प्रभाव न होकर रक्तसंवहन या धमनियों का ही अधिक प्रभाव होता है, अतः आर्तव प्रादुर्भाव या वहन एवं विसर्जन की धमनियों से क्रमशः ओवॅरिन एवं यूटॅरिन आर्टॅरि ले सकते हैं (चित्र ३)।

Scanned with CamScanner

Arteries tending upwards may be considered as mammary arteries and those of downwards as ovarian arteries (responsible for formation of *ārtava* i.e. ovum and/or ovarian hormones) and uterine arteries (responsible for excretion of *ārtava* or menstrual blood) (fig. 3).

शिराएँ (Veins)

स्त्री-शरीर-स्थित विशिष्ट शिराओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अवेध्य शिराओं में आचार्य सुश्रुत ने शा० ७/१९-२२ में स्तनमूल में स्थित २-२ अर्थात् चार शिराओं को अवेध्य माना है जो आचार्य घाणेकर के मत से इन्टर्नल मैमॅरी वेन्स मानी जा सकती हैं।

Suśruta has described two veins situated in root of each breast not suitable for venesection. These may be considered as internal mammary veins.

मर्म (Vital parts)

स्तनों में स्तनरोहित एवं स्तनमूल दोनों २-२ यानी चार मर्मों का वर्णन है[1], इनमें स्तनरोहित मांस मर्म तथा स्तनमूल शिरा मर्म[2] हैं। ये चारो ही कलान्तर प्राणहर मर्म हैं[3]। दोनों स्तनों में दो अङ्गुल नीचे स्तनमूल नामक मर्म होते हैं, जिनके विद्ध होने पर कोष्ठ कफ से भर कर कासश्वास से मृत्यु होती है; दोनों स्तनचूचुकों के दो अङ्गुल ऊपर स्तनरोहित नामक मर्म हैं, वहाँ पर वेध होने से कोष्ठ रक्त से पूर्ण हो कास-श्वास से मृत्यु होती है।[4] स्तनमूल मर्म २ अङ्गुल एवं अन्य (स्तनरोहित) आधे अङ्गुल के होते हैं।[5]

अश्मरीचिकित्सा-वर्णन में महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने निम्नांकित वर्णित आठ मर्मस्थानों को आघात से सुरक्षित रखने का निर्देश दिया है।

मूत्रवहशुक्रवहमुष्कस्रोतोमूत्रप्रसेकसेवनीयोनिगुदवस्तीनष्टौ परिहरेत्। (सु० सं० चि० ७/३६)

सेवनी शुक्रहरणी स्रोतसी फलयोर्गुदम्। मूत्रसेकं मूत्रवहं योनिर्वस्तिस्तथाष्टमः॥
(सु० सं० चि० ७/३८)

कर्मणि तु मूत्रवहशुक्लवहमुष्कस्रोतोमूत्रप्रसेकसेवनीयोनिगुदवस्तयोऽष्टौ परिहर्तव्याः॥
(अ० सं० चि० १३/३२)

मूत्रवह, शुक्रवह, मुष्कस्रोत, मूत्रप्रसेक, सेवनी, योनि, गुदा तथा बस्ति का परिहार करना चाहिये। गद्य में मुष्कस्रोत एवं पद्य में "स्रोतसीफलयो:" शब्द का प्रयोग हुआ है जो एक दूसरे के पर्याय माने जा सकते हैं। ऐसा आभास होता है कि युग्म अंगों को (शुक्रवह एवं मुष्कवह स्रोतस् दो-दो होते हैं) गद्य में एकवचन में ही वर्णित किया गया है परन्तु पद्य में 'द्विवचन' में। "शुक्रहरणी" शब्द स्त्रीलिंग होने से युक्तिसंगत न हो 'शुक्रहरणे' द्विवचन शब्द उचित प्रतीत होता है। "स्रोतसीफलयो:" या "मुष्कस्रोतस्" का संख्यागणन शारीरस्थान अध्याय ९ वर्णित स्रोतसों में नहीं किया गया। मुष्क

१. सु० सं० शा० ६/६; अ० सं० शा० ७/१२,१३

२. सु० सं० शा० ६/७; अ० सं० शा० ७/२९

३. सु० सं० शा० ६/१०; अ० सं० शा० ७/३०(२)

४. सु० सं० शा० ६/२५; अ० सं० शा० ७/१२,१३

५. सु० सं० शा० ६/२८,२९

(स्क्रोटम या टेस्टीज) के समकक्ष स्त्री में डिम्बग्रन्थि (ओवरि) ले सकते हैं क्योंकि वे भी दो ही होती हैं। वाग्भट ने मूत्रवह, शुक्रवह, मुष्कस्रोत, मूत्र (प्रसेक), सेवनी, योनि, गुद एवं वस्ति आठ मर्मों का परिहरण करने का निर्देश दिया है।

मर्म क्या है ? आधुनिक शरीर-रचना-विज्ञान-वर्णित किसी भी एक अंग से मर्म का सामंजस्य स्थापित करना कठिन सा प्रतीत होता है। ये ऐसे स्थान हैं जिनमें आघात लगने पर व्यक्ति की मृत्यु (सद्यःप्राणहर या कालान्तर प्राणहर या विशल्यघ्न), अत्यधिक पीड़ा (रुजाकर) या स्थायी विकृति (वैकल्यकर) उत्पन्न होती है। अतः इन्हें वाइटॅल पार्ट्स कह सकते हैं।

उपरोक्त वर्णित मर्मों में गुद एवं वस्ति को छोड़कर अन्य किसी भी मर्म का नामोल्लेख सु०सं० शरीरस्थान ६ एवं अ०सं०शा०७ में मर्म-संख्या-गणना में नहीं किया गया। संभवतः इन अंगों का महत्व अश्मरी-निर्हरण के लिए किये गए शल्यकर्म के ही समय होता हो, अतः यहाँ वर्णित किये गए हैं। स्त्री-शरीर-दृष्ट्या इन मर्मों में से निम्नांकित मर्म अधिक महत्वपूर्ण हैं।

(१) सेवनी (२) योनि (३) फलस्रोतस् (४) मूत्रप्रसेक (५) गुदा (६) वस्ति (७) मूत्रवह

सेवनी

सेवनीच्छेदाद्रुजाप्रादुर्भावः॥ (सु० सं० शा० ९/१२)
सेवनीयोनिच्छेदनाद्रुजाप्रार्दुभावः॥ (अ० सं० चि० १३/३२)

सेवनी के छेदन होने से रुजा या वेदना का प्रादुर्भाव होता है।

सेवनी स्त्री पुरुष दोनों में ही समान रूप से वर्णित है। यह वर्णन पेरीनियल रेफी को इंगित करता है।

योनि

सेवनीयोनिच्छेदाद्रुजः प्रादुर्भावः। (सु० सं० चि० ७/३६)
सेवनीयोनिच्छेदनाद्रुजाप्रार्दुभावः॥ (अ० सं० चि० १३/३२)

सेवनी सदृश योनिच्छेद से भी रुजा का प्रादुर्भाव होता है।

योनि शब्द से योनिनलिका के ही साथ संदर्भानुसार समस्त स्त्रीजननांग का भी ग्रहण किया जाता है एवं इनके आघात या छेदन होने पर विभिन्न प्रकार के विकार या वेदनाएँ हो सकती हैं।

फलस्रोतस्

द्विवचन शब्द के प्रयोग के कारण एवं पुरुष के मुष्क (टेस्टीज) के समकक्ष स्त्री में डिम्बग्रन्थि होने से यहाँ फल शब्द से डिम्बग्रन्थि का बोध होता है, यद्यपि इनके छेदन के स्पष्ट लक्षणों का कहीं निर्देश नहीं है, पर यदि ये दोनों विद्ध हो जाँय (नष्ट हो जाँय) तो अनार्तव, बन्ध्यत्व आदि लक्षण हो सकते हैं।

मूत्रप्रसेक

मूत्रप्रसेकक्षणनान्मूत्र प्रक्षरणं॥ (क्षणनात् छेदनात्, मूत्रक्षरणं मूत्रस्त्रवणं-डल्हण।)
(सु० सं० चि० ७/३६)

मूत्रप्रसेकच्छेदनान्मूत्रस्त्रवणम्॥ (अ० सं० चि० १३/३२)

मूत्रप्रसेक के छेदन से मूत्र का स्राव होता रहता है।

Scanned with CamScanner

गुद एवं वस्ति

ये दोनो ही मांसमर्म,[१] हाथ की हथेली की बराबर की आकृति[२] के एवं सद्यःप्राणहर मर्म[३] हैं। वस्ति मूत्राशय को कहते हैं। अश्मरी-चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से इसमें दोनों ओर छिद्र होने से तत्काल मृत्यु हो जाती है, एक ओर छेदन होने से मूत्रस्रावी व्रण बन जाता है जो बहुत प्रयत्न करने पर ही ठीक होता है।[४]

मूत्रवह

मूत्रवह मर्म का छेदन होने से वस्ति मूत्र से पूर्ण हो जाती है तथा मृत्यु हो जाती है।[५]

मूत्र का वहन गवीनियों से मूत्राशय (वस्ति) की ओर होकर एकत्र होने के बाद मूत्र का स्रवण मूत्रप्रेसक से होता है, परन्तु गवीनी संख्या में दो होती हैं एवं यहाँ मूत्रवह शब्द का प्रयोग एकवचन में है। गवीनियों का वेधन होने से वस्ति के पूर्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता अतः यदि यहाँ मूत्रवह शब्द से मूत्रनलिका का अभ्यन्तर मुख ग्रहण करें तथा वेधन से आघात हो कर अवरोध होना मान ले तो वस्ति की पूर्णता सिद्ध हो सकती है।

संहिताओं में स्त्रियों के गर्भाशय की वस्ति-पार्श्व-स्थिति वर्णित कर उनमें अश्मरी-निर्हरणार्थ उत्सङ्गवत् शस्त्र-पातन निर्दिष्ट किया है क्योंकि ऐसा नहीं करने से उनमें मूत्रस्रावी व्रण बन सकता है।[६] टीकाकार डल्हण ने स्पष्ट किया है कि यदि उत्सङ्गवत् अर्थात् उत्तान शस्त्रपात न कर, अवगाढ़ शस्त्रपात किया गया तो बहिर्गत त्वचा तथा मांस का भेदन हो बस्तित्वचा के साथ भगवस्तु एवं बस्ति-पार्श्व में आश्रित होने के कारण गर्भाशय की भी त्वचा का भेदन हो जाता है जिससे भगान्तर्गत मूत्रस्रावी व्रण बन जाता है।[७] टीका में गर्भाशयद्वार का छेदन हो मूत्रस्रावी व्रण निर्मिति के साथ योनि में भी व्रण हो स्राव होने का वर्णन है।[८] यद्यपि प्रारम्भ में मूत्रप्रसेक में आघात होने से केवल पुरुषों में मूत्रक्षरण होने का उल्लेख[९] है, परन्तु इसी सन्दर्भ में आगे ऐसा कोई भी लिङ्ग-भेद वर्णित नहीं है।[१०] मूत्रप्रसेक मर्म मूत्रवाही नलिका का द्योतक है

१. सु० सं० शा० ६/७; अ० सं० शा० ७/२९

२. सु० सं० शा० ६/२९; अ० सं० शा० ७/३३

३. सु० सं० शा० ६/९,२५; अ० सं० शा० ७/३०(१); अ० सं० चि० १३/३२

४. सु० सं० शा० ६/२५; सु० सं० चि० ७/३३; अ० सं० शा० ७/८,९

५. सु० सं० चि० ७/३६; अ० सं० चि० १३/३२

६. (अ) स्त्रीणां तु बस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः सन्निकृष्टः, तस्मात्तासामुत्सङ्गवच्छस्त्रं पातयेत् अतोऽन्यथा खल्वासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत्॥ (सु० सं० चि० ७/३३)
(आ) स्त्रीणां -उत्सङ्गवदधः शस्त्रं पातयेत्। व्रणो भवति॥ (सु०सं०सदृश) (अ० सं० चि० १३/२७)

७. उत्सङ्गवत् उत्तानमित्यर्थः। अन्यथेऽति यदाऽवगाढः शस्त्रपातः स्यात्तदा बहिर्गतं त्वङ्मांसं भित्त्वा बस्तित्वचा सह भगवस्तुबस्तिपार्श्वाश्रयस्य गर्भाशयस्यापि त्वचो भेदः स्यात्। ततस्तासां भगान्तर्गतो मूत्रस्रावी व्रणः स्यादित्यर्थः॥
(सु० सं० चि० ७/३३ की डल्ह० टीका)

८. -गर्भाशयस्य तद्द्वारस्य च च्छेदभयादित्याकूतम्।···। ··· मूत्रस्रावी व्रणोऽन्यथा प्रकारो भवेत् योनिव्रणोभयमुखप्रस्रावित्वादिति हृदयम्॥ (सु० सं० चि० ७/३३ की चौ०ओ० द्वारा प्रकाशित पुस्तक की टीका)

९. (अ) पुरुषस्य वा मूत्रप्रसेकक्षणनान्मूत्रक्षरणम्। (सु० सं० चि० ७/३३)
(आ) ···मूत्रस्रावी व्रणो भवति पुरुषस्य च मूत्रप्रसेकक्षणनात्। (अ० सं० चि० १३/२७)

१०. (अ) मूत्रप्रसेकक्षणनान्मूत्रप्रक्षरणम्॥ (सु० सं० चि० ७/३६)
(आ) मूत्रप्रसेकच्छेदान्मूत्रस्रवणम्॥ (अ० सं० चि० १३/३२)

जो स्त्री एवं पुरुष दोनों में ही समान रूप से विद्यमान होती है, जिसका स्पष्ट निर्देश टीकाकार डल्हण ने किया है।[१] पूर्ववर्णित बस्तित्वचा या गर्भाशयत्वचा में त्वचा शब्द अङ्ग के ऊपरी भाग के लिए उपलक्षण में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। बस्ति के साथ गर्भाशय अथवा गर्भाशयद्वार का छेदन होने से बस्ति-गर्भाशयगत मूत्रस्रावी व्रण (वेजिको यूटेरिन फिस्ट्युलॅ); बस्ति तथा योनि में आघात होने पर बस्ति-योनिगत मूत्रस्रावी व्रण (वेजिको वेजिनॅल फिस्ट्युलॅ) तथा मूत्र-प्रसेक अर्थात् मूत्रनलिका तथा योनि में आघात होने पर मूत्रनलिका-योनिगत मूत्रस्रावी व्रण (यूरेथ्रा वेजिनलॅ फिस्ट्युलॅ) बन जाने की सम्भावना होती है।

गवीनी, मूत्रप्रसेक, गुद तथा बस्ति आदि अंगों का महत्व स्त्रीरोग सम्बन्धित सभी शल्यकर्मों में अत्यधिक होता है विशेषकर जहाँ गर्भाशय या योनिनलिका में शल्यकर्म किया जाय क्योंकि असावधानी से किया गया शल्यकर्म इन अंगों के स्रावी व्रणों (फिस्ट्युलॅ) का निर्माण कर सकता है।

In breasts four *marmās*, two called *stanarohita*, the *māṃsa marma* of $^1/_2$ *aṅgula* size situated above the nipples on both the sides, and two termed *stanamūla*, the *sirā marmas* of 2 *aṅgula* size situated below both the breasts are present. All these cause death after sometimes, thus are called *kālāntaraprāṇahara*. Death occures by cough and dyspnoea due to filling of *koṣtha* (chest cage) by *kapha* or *rakta* as a result of injury to *stanamūla* or *stanarohita marma* respectively.

In the chapter of treatment of urinary bladder-stone, Suśruta and Vāgbhaṭa I have cautioned to avoid injury to eight vital parts i.e. *mūtravaha, śukravaha, muṣkasrotas* or *phalasrotas, mūtrapraseka, sevanī, yoni, guda* and *basti*.

Amongst these *sevanī, yoni, phalasrotas, mūtrapraseka, guda, basti* and *mūtravaha* etc. seven are important for females. Out of these only *guda* and *vasti* have been included in the enumeration of *marmas*, it is possible that others are important only during extraction of stone.

Sevanī and yoni

Sevanī refers to perineal raphe, while *yoni* to entire reproductive system also besides vaginal canal; injury to these causes pain.

Phalasrotas

Phalasrotas refer to ovaries of females, which are counterpart of testicles of males. Though specific symptoms of injury to these are not described in classics, however, injury to both these may cause amenorrhoea, infertility etc.

Mūtrapraseka

This refers to urethra. Injury to this causes flow (continuous) of urine.

१. इदानीमुभयोरपि स्त्रीपुंसयोरपप्रकारेण सामान्यं मूत्रस्रावि व्रणं निर्दिशन्नाह-पुरुषस्येत्यादि। पुरुषस्य वेति वा शब्दश्चार्थे,-तेन स्त्रियाः पुरुषस्य चेत्यर्थः। मूत्रप्रसेकस्रोतसी स्त्रीपुंसयोः, अभेदेनोक्तत्वात्। मूत्रप्रसेको नाम मूत्रं येन बस्तिमुखाग्रयेण स्रोतसां क्षरति; तस्य छेदनादित्यर्थः॥ (सु० सं० चि० ७/३३ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

Guda and basti

Guda refers to rectum and *basti* to urinary bladder. These both are *māṃsa marmas* of the size equal to palm, and cause immediate death, if injured.

Mūtravaha

Injury to this produces fullness of urinary bladder followed by death.

Generally with *mūtravaha* ureters should be considered, because these fill the bladder with urine, however, these are two in number, while word *mūtravaha* is a word of singular number and injury to these can never cause fullness (retention of urine) of bladder, rather the bladder mill remain empty, if it is taken as internal urethral meatus, it can explain the fullness of bladder, as its injury may prevent excretion of urine, thus bladder may become full.

In classics after describing the location of uterus behind the basti, it is advised that for extracting the urinary bladder-stone in the females, the instrument should be passed directing it upwards, or else an ulcer discharging urine may be formed. Dalhaṇa says that if the instrument is insterted forcefully, deeper and directing it downwards instead of upwards, then, after puncturing the external skin and flesh, it will puncture the bladder, *bhaga* (vagina) and the uterus, situated behind the bladder, thus produce a wound discharging urine inside the *bhaga* (vagina). Besides injury to the orifice of uterus, the vagina is also injured. Though initially continuous discharge of urine due to injury to *mūtraprasека* of only males is described, however lateron in this very context the sex differentiation has disappeared. *Mūtraprasека marma* refers to urethra which is present in male and females both. Injury to the bladder with uterus or vagina results in development of utero-vesical or vesico-vaginal fistula respectively and injury to the urethra with vagina to urethro-vaginal fistula.

Besides, above structures others i. e. ureters, urinary bladder, urethra, rectum and anus have to be taken special care during any gynecological surgery, as injury to these may produce fistula.

पेशी (*Peśīs or muscles*)

स्त्रीणां तु विंशतिरधिका। दश तासां स्तनयोरेकैकस्मिन् पञ्च पञ्चेति, यौवने तासां परिवृद्धिः, अपत्यपथे चतस्रः-तासां प्रसृते अभ्यन्तरतो द्वे, मुखाश्रिते बाह्ये च वृत्ते द्वे, गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः। शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्र एव।

(सु० सं० शा० ५/३९)

स्त्रीणां तु विंशतिरधिका। तत्र दश स्तनयोः तासां यौवने परिवृद्धिर्भवति। दश योनौ। तासामभ्यन्तराश्रिते द्वे मुखाश्रिते वृत्ते द्वे। तिस्रो गर्भमार्गाश्रयाः। यस्यां गर्भस्तिष्ठति—गर्भशय्या। तस्यां शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रः पेश्यः।

(अ० सं० शा० ५/९०, ९१)

पुंसा पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता लक्षणमुष्कजाः। स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गतं हि ताः॥

(सु०सं०शा० ५/४१ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/१४७-लक्षण के स्थान पर मेहन शब्द)

स्त्रियों के शरीर में बीस पेशियाँ अधिक होती हैं, जिनमें दस में से एक-एक स्तन में पाँच-पाँच, जिनकी यौवन

में वृद्धि होती है। अपत्यपथ में चार, जिनमें आभ्यन्तर प्रसृत दो तथा मुखाश्रित बाहर की ओर वर्तुलाकार दो, गर्भच्छिद्र संश्रित तीन तथा शुक्रार्तव प्रवेशिनी तीन पेशी होती हैं।

महर्षि वाग्भट ने सुश्रुत का अनुगमन किया है। उन्होंने लिखा है कि स्त्रियों में बीस पेशियाँ अधिक होती हैं इनमें दस स्तनों में जिनकी यौवन आने पर वृद्धि होती है। दस योनि में होती हैं-आभ्यन्तर प्रसृत दो, मुखाश्रित वृत्ताकार दो, गर्भमार्ग जिसमें गर्भ स्थित होता है में आश्रित तीन, शुक्रार्तवप्रवेशिनी तीन पेशियाँ। टीकाकार इन्दु ने शुक्रार्तवप्रवेशिनी पेशियों को गर्भशय्या से प्रतिबद्ध माना है[1]।

आचार्य भावमिश्र ने वर्गीकरण में इनकी स्थिति निश्चित रूप से गर्भाशय में तीन, गर्भमार्ग या गर्भछिद्र में आश्रित शुक्रार्तव प्रवेशिनी तीन, योनि में चार एवं स्तन में पाँच-पाँच वर्णित की है[2]। महर्षि शार्ङ्गधर ने केवल संख्योल्लेख किया है[3]।

पुरुषों की पूर्ववर्णित लक्षण एवं मुष्क की पेशियों के समकक्ष स्त्रियों में तीन पेशियाँ अन्तर्गत फल को आवृत किये रहती हैं।

Women posses twenty extra *peśīs*; ten in breasts i.e. five in each one which develop in adolescence; four in *apatyapatha* i.e. two spreading inside and two situated in orifice in circular fashion, *garbhachidra* or *grabhamārga* has three and three are responsible for entry of *śukra* (semen) and *ārtava* (ovum).

Analogous to the *peśīs* of *lakṣaṇa* and *muṣka* of males, the females have three more, covering internally situated *phala*.

विमर्श (*Comments*)

संहिताओं में पेशी शब्द मांसपेशी, कला एवं स्नायु आदि अनेक रचनाओं के लिए स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुआ है; अतः पेशी शब्द से किसी विशिष्ट रचना का निर्देश कठिन हो जाता है। स्त्री-शरीर-वर्णित सभी विशिष्ट पेशियों का आधुनिक वर्णित रचनाओं से निश्चित सामंजस्य करना कठिन है, फिर भी निम्नाङ्कित वर्णन ग्रहण किया जा सकता है।

(अ) स्तन में स्थित दस पेशियाँ

स्त्री स्तन में पुरुष से अधिक कोई विशिष्ट पेशी नहीं होती। स्त्री का प्रत्येक स्तन सौत्रिक तंतु से निर्मित आच्छदों द्वारा विभिन्न भागों में विभाजित होता है। युवावस्था का स्तन संयोजकतन्तु, वसा, दुग्ध-ग्रन्थियाँ एवं दुग्धहारणी नलिकाओं से बना होता है। इन नलिकाओं एवं चूचुक में मांसतन्तु अवश्य होते हैं पर उनका इन पाँच पेशियों से सामंजस्य कठिन प्रतीत होता है।

(आ) जननांग की दस पेशियाँ

स्त्री-जननांग-स्थित पेशियों को आचार्यों ने चार वर्गों में विभक्त किया है। इन पेशियों का स्पष्टीकरण विभिन्न विद्वानों ने किया है जो तालिका संख्या एक से स्पष्ट है।

१. तिस्रश्च गर्भाशये शुक्रार्तवप्रवेशिन्यो गर्भशय्यायां प्रतिबद्धाः॥ (अ० सं० शा० ५/९१ इन्दु टीका)

२. स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तरा। गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि॥
स्त्रीणामधिका विंशतिर्यथा-गर्भाशये तिस्रः ३। गर्भच्छिद्रसंस्थिताः शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रः ३। योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २। योनावेव बहिर्निर्गते स्रोतःपार्श्वद्वयस्थिते वर्तुले योनिकर्णिकेति यावत् द्वे २। स्तनयोः पञ्च ५ पञ्च ५। यौवने तासां वृद्धिर्भवति॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१४६)

३. स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः। (शा० सं० पूर्व० ५/४)

Scanned with CamScanner

तालिका १		
पेशी-वर्ग	आचार्य घाणेकर का मत[1]	पं० गंगाधर जोशी का मत[2]
१-मुखाश्रित वृत्ताकार स्थित दो पेशियाँ	स्फिन्क्टर वॅजाइनी	लेब्रॅय मेजॉरा तथा माइनॉरा
२-अभ्यान्तर आश्रित या प्रसृत दो पेशियाँ	दू मस्क्युलें लेअॅ ऑव् वैजिनॅल कॅनैल (इनॅ सॅक्युल तथा आउटॅ लॉन्जिट्युडिनॅ)	दोनो ब्रॉड लिगॅमॅन्ट
३-गर्भमार्ग या गर्भछिद्र-स्थित तीन पेशियाँ	थ्री मस्क्युलें लेअॅ ऑव् युटॅरॅस	काडिनल तथा यूटॅरोसैक्रॅल लिगॅमॅन्ट एवं प्यूबॉसॅ:वइकॅल फेशॅ
४-शुक्रार्तव प्रवेशिनी तीन पेशियाँ	मस्क्युलें लेअॅ ऑव् फैलोपिअॅन ट्यूब	इन्डॉसॅल्पिक्स २ इन्डॉमॅट्रिअॅम १

उपर्युक्त तालिका में वर्णित दोनों ही विद्वत्-जनों में किसी एक के मत को अक्षरश: स्वीकार करने में निम्न बाधायें उपस्थित होती है:

(अ) योनिनलिका में मांसतन्तु आड़े-तिरछे कुण्डलिकाकार फैले होते हैं, प्राचीन पुस्तकों का बहिर्लम्बाकार तन्तु एवं अंत:वर्तुलाकार तन्तु वर्णन युक्तिसंगत नहीं है।

(आ) यद्यपि गर्भाशय में तीन पेशी-स्तर होते हैं पर उन्हें पृथक् करना सामान्यतया सम्भव नहीं होता, अत: इन पेशी-स्तरों को पृथक् पेशी की संज्ञा देना समुचित प्रतीत नहीं होता।

(इ) डिम्बप्रणाली में तीन पेशी-स्तर न हो कर दो ही होते हैं, जब कि शुक्रार्तव प्रवेशिनी पेशियाँ तीन मानी गई हैं।

(ई) पेशी शब्द को यदि बन्धन एवं आच्छद आदि के समकक्ष मान लिया जाय तो भी श्लेष्मल कलाओं को पेशी के अन्तर्गत समावेश करने में कठिनाई होगी क्योंकि ये बहुत ही सूक्ष्म स्तर होते है, यद्यपि गर्भाशयिक अंत:कला को सुगमता से पृथक् किया जा सकता है, परन्तु डिम्बप्रणाली-स्थित श्लेष्मल कला का पृथकीकरण उतना सुगम नहीं है।

(उ) वर्ग तीन में वर्णित काडिनल तथा यूटॅरोसैक्रॅल लिगॅमॅन्ट्स युग्म बन्धन होते हैं अत: संख्या तीन के स्थान में पाँच हो जाती है, यदि युग्म बन्धनों को दो न मानकर एक माना जाय तो वर्ग दो में वर्णित दो पेशियों के समकक्ष युग्म बन्धन ब्रॉ:ड लिगॅमॅन्ट को दो पेशी मानना युक्तिसंगत नहीं होगा।

उपर्युक्त आंशकाओं को दृष्टि में रखते हुए इन पेशियों के बारे में एक अन्य वर्णन निम्न प्रकार से दे सकते हैं।

(१) योनि के बहिर्मुख में स्थित वर्तुलाकार पेशियाँ

यद्यपि योनिनलिका की आकृति का निर्माण अधिकांशत: लिवॅटॅएनी पेशियों द्वारा सम्पन्न होता है, परन्तु इसके बहिर्मुख या इन्ट्रॉइटॅस की आकृति निर्धारण में बल्बॉकैवॅनोसस् पेशी-तन्तु भाग लेते हैं; जो योनिद्वार में संकोचक प्रभाव डालते हैं, अत: इन्हें स्फिन्क्टॅर्वेजाइनी शब्द से भी सम्बोधित किया गया है। शवच्छेद के समय त्वचा एवं वसा के स्तर को पृथक् करने के उपरान्त यह वर्तुलाकार आकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यह पेशी दोनों लिंगों में समान रूप से उपस्थित रहती है पर यह तर्क निराधार है क्योंकि योनिबहिर्मुख निर्माण करने वाले वर्तुलाकार पेशीतन्तुओं

१. सु० सं० शा० ५/५१ एवं ५३ आचार्य घाणेकर टीका। (पृष्ठ सं० १६३)

२. आयुर्वैदिक कन्सेप्ट्स इन गायनिकॉलॅजि। (डॉ० नि० ग० जोशी)

का पुरुषों में अभाव होता है (चित्र ४/१)।

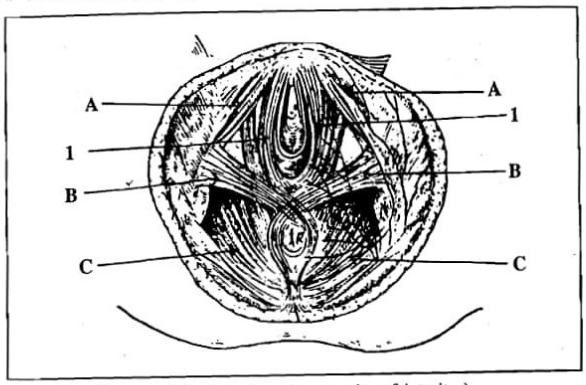

Fig. (4/1) : Showing *peśīs* of *yonibahirmukha* (muscles of introitus)
U. Urethra, V-Vagina
A. Ischiocavernous muscles
B. Transversus perinei muscles
C. Levatorani muscles
1. Bulbocavernosus muscles-*vartulākāra* (outer circular) two *peśīs* (muscles) of *yonibahirmukha* (introitus)

(२) आभ्यन्तर प्रसृत दो पेशियाँ

योनि की पूर्व एवं पश्चिम भित्तियाँ सामान्यत: आपस में मिली सी रह कर नलिका को 'यच्' अक्षर का आकार प्रदान करती हैं। शरीर-रचना-दृष्ट्या ये दोनों ही भित्तियाँ प्रमुख विशेषतायें रखती है क्योंकि पूर्व भित्ति योनि को मूत्रनलिका एवं मूत्राशय तथा पश्चिम भित्ति मलाशय से पृथक् करती है, अत: इन दोनों भित्तियों को आभ्यन्तर प्रसृत दो पेशियाँ माना जा सकता है (पृष्ठ ९ का चित्र १)।

योनिनलिका के मांसपेशी-स्तर के बाहर की ओर संयोजक तन्तुओं से निर्मित एक घना आच्छद होता है जो पूर्व में प्यूबॉसॅ:वइकॅल एवं पश्चिम में रेक्टॉवैजिनल फेशॅ का निर्माण करता है; यदि इस आच्छद को भी पेशी के अन्तर्गत मान लिया जाय तो आभ्यन्तर प्रसृत दो पेशियों में मांसपेशी स्तर एवं संयोजकतन्तु निर्मित उपर्युक्त फेशॅ को ग्रहण कर सकते हैं।

(३) गर्भछिद्र-संस्थित तीन पेशियाँ

महर्षि सुश्रुत ने वर्णन के समय गर्भछिद्र शब्द प्रयोग किया है जिससे गर्भाशयग्रीवा ग्रहण किया जा सकता है एवं युग्म बन्धों को एक मानकर गर्भाशयग्रीवा से सम्बन्धित प्यूबॉसॅ:वइकॅल, काडिनल तथा यूटॅरोसैक्रॅल बन्धनों को तीन पेशियाँ माना जा सकता है। महर्षि वाग्भट ने गर्भमार्ग-स्थित तीन पेशियाँ बताई हैं। गर्भमार्ग एवं अपत्यपथ दोनों का शब्दार्थ एक ही होता है। अपत्यपथ या योनिनलिका का वर्णन पूर्ववर्णित पेशियों में आ जाता है, अत: पुनरुक्ति दोष होता है, सम्भवत: इसी विचार से 'गर्भमार्गाश्रया: यस्यां गर्भस्तिष्ठिति' स्पष्टीकरण दिया है, जो निश्चय ही गर्भाशय का वर्णन है। गर्भाशय स्थित

Scanned with CamScanner

तीन पेशियों से गर्भाशय के फ़ंडस, कॉ:पॅस तथा इस्थ्मॅस को लिया जा सकता है (चित्र ४/२, ३)। इन तीनों अंगों को विभिन्न पेशी मानने से सम्बन्धित तर्क निम्नांकित हैं।

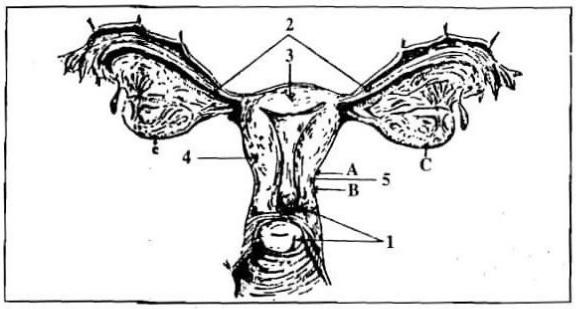

Fig.(4/2) : Showing *peśīs* of females.

1. Cervix of uterus—*śukrapraveśinī peśī* (muscle responsible for entry of sperms).
2. Both fallopian tubes—*ārtavapraveśinī* two *peśīs* (two muscles responsible for entry of ovum).
3. Fundus of uterus
4. Corpus of uterus } Three muscles situated in *garbhachidra.*
5. Isthmus of uterus

A. Anatomical os. B. Histological os. C. Ovaries.

(अ) गर्भाशय-बुध्न (फ़न्डॅस)

१-डिम्बप्रणाली के प्रवेश से ऊपर का भाग सामान्य रूप से एवं विशेषकर अनुलम्ब छेदन में शेष गर्भाशय से पृथक् सा दिखाई देता है।

२-कतिपय जन्मजात-विकार जैसे यूटॅरॅस आक्युइटॅस एवं यूटॅरॅस बाइकॉर्निस आदि गर्भाशय के केवल इसी भाग को प्रभावित करते हैं।

३-प्रसव के समय यह भाग सर्वाधिक क्रियाशील रहता है।

(आ) गर्भाशय-अधोभाग (इस्थ्मॅस)

(१) यह गर्भाशय का सबसे निचला गर्भाशयग्रीवा से सम्बन्ध स्थापित करने वाला ०.१ से ०.५ से०मी० भाग है। इस भाग में अपेक्षाकृत मांसतन्तु विशेषत: लम्बाकृति मांसतन्तु बहुत कम होते हैं, एवं यहाँ की श्लेष्मल कला रचना एवं क्रिया दृष्ट्या गर्भाशय-शरीर एवं गर्भाशय-ग्रीवा-स्थित श्लेष्मल कला के मध्य की होती है। गर्भाशय-शरीर एवं इस्थ्मॅस के मिलने वाले संकुचित भाग को एनॅटॉमिकॅल ऑस कहा जाता है।

(२) यह भाग गर्भावस्था के प्रारम्भिक दिनों में अति मृदु हो हेगार लक्षण उत्पन्न करता है।

(३) गर्भ की वृद्धि के साथ यह अंग सामान्य गर्भाशय में एकाकार सा हो मांसतन्तुओं की अपेक्षाकृत कमी के कारण पतला होकर लोअॅर सेग्मॅन्ट का निर्माण करता है।

(४) अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह भाग प्रसव के समय सक्रिय रूप से संकुचित नहीं होता।

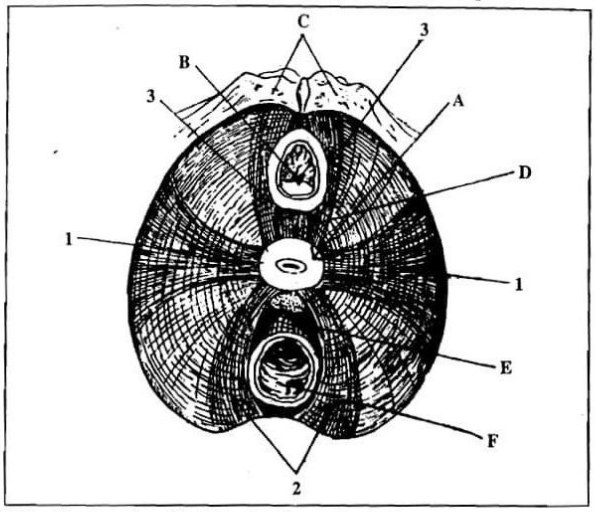

Fig. (4/3) : Muscles of *garbhachidra* (another explanation)

A. Cervix. B-Internal urethral orifice. C-Pubis. D-Ant. vaginal wall. E-Cul-DE-Sac., F. Rectum

1. Transverse cervical or cardinal ligaments
2. Uterosacral ligaments } Three muscles situated in *garbhachidra.*
3. Pubocervical ligaments

(इ) गर्भाशय-शरीर (वाडी)

गर्भाशय के दो भाग गर्भाशय-बुध्न एवं इस्थ्मॅस पृथक् हो जाने के बाद तीसरा गर्भाशय-शरीर स्वयमेव पृथक् हो जाता है।

(४) शुक्रार्तव प्रवेशिनी तीन पेशियाँ

शुक्र (स्पॅ:म) तथा आर्तव (ओवॅम) के प्रवेश में सहायक पेशियों को दो भागों में विभक्त करना पड़ेगा अर्थात् शुक्रप्रवेशिनी एवं आर्तवप्रवेशिनी। प्रथम वर्ग में एक पेशी-स्वरूप गर्भाशय-ग्रीवा एवं द्वितीय वर्ग में दो पेशियों के रूप में डिम्बप्रणालियों को ग्रहण कर सकते है (चित्र ४/२)। इस तर्क के निम्नांकित प्रमाण हैं। टीकाकार इन्दु ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ये तीन पेशियाँ गर्भाशय्या से प्रतिबद्ध रहती हैं।[1]

१. तिस्रश्च गर्भाशये शुक्रार्तवप्रवेशिन्यो गर्भशय्यायां प्रतिबद्धाः। (अ० सं० शा० ५/९१ इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

(अ) शुक्रप्रवेशिनी एक पेशी या गर्भाशय-ग्रीवा

(१) सामान्यतया योनिनलिका की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है जिसमें शुक्राणु जीवित नहीं रह सकते। संभोग के समय गर्भाशय-ग्रीवा-ग्रन्थिस्राव, गर्भाशयान्तःकला-स्राव एवं बार्थोलिन आदि ग्रन्थियों के स्राव मिलकर इसे क्षारीयता में परिवर्तित कर शुक्राणु-जीवन-योग्य बनाते हैं। गर्भाशय-ग्रीवा की कुछ वैकारिक अवस्थाएं यथा जीर्णशोथ या अवरोध आदि शुक्राणु-प्रवेश-बाधक हो सकते हैं।

(२) सामान्य अवस्था में गर्भाशय-ग्रीवा शुक्र-स्राव में भली-भाँति आप्लावित हो शुक्राणु-प्रवेश-सहायक होती है। गर्भाशय की तीव्र अग्रिम या पश्चिम भ्रंश की अवस्था में गर्भाशय-ग्रीवा अत्यधिक उद्वर्त या अपवर्त हो शुक्राणु-प्रवेश-बाधक होती है।

(३) गर्भाशय-ग्रीवा-स्थित श्लेष्मा सामान्यतया ऋतुकाल में (रजःकाल के बाद लगभग १२ या १६ दिन या ईस्ट्रॉजेन-प्राधान्य की अवस्था में) शुक्राणु-प्रवेश-योग्य होता है, यही, बाद में (प्रोजेस्टॅरॉन की प्रधानता में) शुक्राणु-प्रवेश-बाधक होता है।

(आ) आर्तवप्रवेशिनी पेशियां या दो डिम्बप्रणालियां

डिम्बग्रन्थि से स्त्रीबीज निकलकर डिम्बप्रणाली में प्रविष्ट हो डिम्बप्राणाली की गति एवं अन्तःकला (श्लेष्मल कला) स्थित लोमों (सेलिअॅ) के सहारे आगे बढ़ता है, यदि डिम्बप्रणाली में अवरोध हो जाय तो स्त्रीबीज आगे नहीं आ सकता।

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि शुक्राणु भी अंततोगत्वा डिम्बप्रणाली में ही प्रवेश करते हैं अतः इन्हें शुक्रप्रवेशिनी पेशी क्यों न माना जाय, परन्तु डिम्बप्रणाली के अतिरिक्त कोई अन्य अंग स्त्रीबीज के प्रवेश से सम्बन्धित दृष्टिगोचर नहीं होता, अतः उपर्युक्त विभाग करना पड़ता है।

Word *peśī* in āyurveda has been used to denote facia, muscle, tendon and ligaments etc. in different contexts.

Breasts or even chest of female do not contain any extra muscle than male, thus, it is difficult to explain ten *peśīs* of breasts.

The muscles of female reproductive system have been classified under four sub-groups. These muscles have been explained in following way by previous writers-

Groups of **Peśī**	OPINION OF	
	Dr. Ghāṇekara	Pt. Gaṅgādhara Jośī & Dr. N. G. Jośī.
1.Two outer circular	Sphincter vaginae	Labia majora and minora
2.Two spreading inside	Two muscular layers of vaginal canal (inner circular and outer longitudinal)	Both broad ligaments
3.Three situated in *garbha-mārga* or *garbhachidra*	Three muscular layers of uterus	Cardinal ligaments, uterosacral ligaments and pubocervical facia
4.Three responsible for entry of *śukra* and *ārtava*	Muscular layers of fallopian tubes	Endosalpinx-2 Endometrium-1

The above explanation of either of the authors can not be accepted in toto due to following reasons-

(a) The fibres of muscle-coat of vaginal canal are nearly all arranged in criss-cross fashion, rather than in the outer longitudinal and inner circular pattern; (b) uterine muscle fibres in most part run obliquely in criss-cross fashion, though most superficial and deepost fibres are, however, arranged longitudinally, thus layers become three, but it is not easy to separate these layers; (c) fallopian tubes contain only two muscular layers, not three; (d) if broad ligaments are to be considered as two separate *peśīs* then uterosacral and cardinal ligaments being twin ligaments should also be considered as four, which will increase the number to five of this sub-group; (e) though endometrium can be seen with naked eye yet mucous membrane of fallopian tubes is not easily discernible, as it is microscopic structure, thus, to consider this as a separate *peśī* is also not proper.

Considering these facts, other explanations may be given in following way-

i) Outer circular (in orifice of vagina)

Muscle fibres of bulbocavernosus muscles encircling introitus or sphincter vaginae may be considered under this heading. Though this muscle is present in both sexes, yet, these particular groups of fibres are absent in male (page 23; fig 4/1).

ii) Two spreaded inside (the vaginal canal)

Either anterior and posterior vaginal wall or muscular layer of vagina and connective tissue layer making pubocervical and rectovaginal facia can be taken (page 9; fig. 1).

iii) Three situated in garbhachidra

Considering twin ligaments as one structure and with ' *garbhachidra* the cervix uteri, the pubocervical, cardinal and uterosacral ligaments may be kept in this group. If this is to be taken as uterus, then fundus, corpus and isthmus may be considered as three *peśīs* (page 24, 25; fig. 4/2 & 3.) due to following points--

In transeverse section the portion of uterus above the insertion of fallopian tubes i.e. fundus looks separate from remaining body. Fundus and isthmus are anatomically and physiologically distinct as fundus has thickest muscular layer, uterus arcuatus etc. congenital abnormalities involve only fundus, it plays dominant role in expulsion of fetus. Isthmus, the lowest part of uterus, joins it with cervix, has relatively lowest amount of muscle fibres specially longitudinal, mucous lining is inbetween endometrium of uterus and endocervix, it gets softend in early months of pregnancy giving rise to Hegar's sign, it forms lower uterine segment and does not take active part in expulsion of fetus. Once fundus and isthmus are isolated remaining portion i. e. corpus automatically becomes third one.

iv) Three responsible for entry of sperms and ovum

Cervix uteri may be taken as responsible for entry of sperms, as it is accepted that certain conditions of cervix or its mucus can hinder entry of sperms in uterus. Ovum enters

Scanned with CamScanner

through fallopian tubes, hence these two may be taken as responsible for entry of ovum (page 24; fig. 4/2).

***(इ) लक्षण एवं मुष्क के समकक्ष पेशियाँ** (Peśīs analogous to lakṣaṇa and muṣka)*

सुश्रुत टीकाकार डल्हण ने लक्षण शब्द से पुरुष का शिश्न ग्रहण किया है; मुष्क वृषण (स्क्रॉटम) को निर्दिष्ट करता है; इनकी पेशियों के समकक्ष स्त्री-शरीर-स्थित 'फल' की पेशियों को एवं 'फल' से गर्भाशय मानकर गर्भाशय का ही वर्णन स्वीकार किया है। गर्भाशय का वर्णन इसके पूर्व आ चुका है, सम्भवतः इसी विचार से प्रेरित होकर इन्होंने भोज-वाक्य उद्धृत करते हुए स्त्रियों में इन पेशियों की अनुपस्थिति बताई है[1]। भावप्रकाश में भी यही विचार मिलते है[2]।

श्री गणनाथ सेन तथा आचार्य घाणेकर ने लक्षण से स्त्री की भगशिश्निका (क्लिटॅरिस) एवं मुष्क या वृषण के समकक्ष डिम्बग्रन्थि (ओवॅरिज) की पेशियों का ग्रहण किया है।

विषय पर आगे विचार करने से पूर्व 'फल' शब्द पर विचार आवश्यक है। यह शब्द यहाँ पर एकवचन में प्रयुक्त है। संहिताओं में उद्वृत्त एवं / अथवा अपवृत्त फल-योनि में क्षारकर्म निषिद्ध बताया गया है[3]। यहाँ पर 'फल' शब्द से आचार्य डल्हण ने गर्भाशय, हारणचन्द्र ने आंत्र एवं अरुणदत्त ने रज का अर्थ ग्रहण किया है[4]। आधुनिक लेखकों ने 'फल' को बीज-साधन होने से डिम्बग्रन्थि का द्योतक माना है।

इस स्थान पर 'फल' शब्द का प्रयोग भ्रंश के सम्बन्ध में किया गया है। डिम्बग्रन्थि या आंत्र का अधोभ्रंश तो किसी सीमा तक दृष्टिगत होता है, पर इनके ऊर्ध्व-भ्रंश की स्थिति होती ही नहीं, यदि किसी प्रकार ऊर्ध्व-भ्रंश मान भी लिया जाय, तो दृष्टिगत न होने से क्षार-कर्म का प्रश्न नहीं उठता; रज का भ्रंश नहीं होता, अतः यहाँ पर 'फल' शब्द से गर्भाशय अर्थ लेना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, एवं 'फलयोनयः' को 'फलस्य (प्रसवस्य) योनयः' मान लेने से 'फल' (प्रसव) का साधनभूत 'गर्भाशय' अर्थ समझा जा सकता है।

१. केचित्तन्त्रकाराः स्त्रीणां मेढ्रमुष्कभावात्तदाश्रितानां पेशीनामन्यत्रावस्थानं पठन्ति। तन्मतमाह-भवति चात्रेत्यादि। लक्षणमुष्कजा इति लक्ष्यते ज्ञायते पुमाननेनेति लक्षणं लिङ्गं शिश्नमिति यावत्। फलं गर्भाशयः। ता इति पेश्यः। गयी तु अमुं तन्त्रान्तरीय श्लोकं न पठति। किन्तु एवमेतानि पञ्च पेशीशतानि इत्यत्र' पुंसामिति पदं पठित्वा पुंसामेव पञ्चपेशीशतानि, स्त्रीणान्तु तिसृभिरूनानि पञ्चशतानीति व्याख्याति। अत्रार्थे च भोजवाक्यं दृष्टान्तौ करोति। तथाच भोजवाक्यं- 'पञ्चपेशीशतान्येव स्त्रीवर्जं विद्धि भूमिप। अतश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः' - इति॥ (सु० सं० शा० ५/४१ डल्हण टीका)

२. अस्यायमर्थ। पुंसां मेहनमुष्कयोश्च यास्तिस्रो मांसपेश्यः पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्काभावात् फलं गर्भाशयमावृत्य तिष्ठन्ति। (इन्होंने भी गायदास एवं भोज-वाक्य उद्धृत किया है)। (भा० प्र० पूर्व० ३/१४७)

३. (अ) अथ नैते क्षारकृत्याः - तद्यथा-दुर्बल ··· क्लीवापवृत्तोद्वृत्तफलयोनयः। (सु० सं० सू० ११/२८)
(आ) न तूभयोऽपि योज्यो·····उद्वृत्तफलयोनि ····। (अ० सं० सू० ३९/५)
(इ) न तूभयोऽपि योक्तव्य ·····। ·····प्रोद्वृत्तफलयोनिषु॥ (अ० ह० सू० ३०/४ एवं ६)॥

४. (अ) उद्वृत्तापवृत्तफलयोनयः। इति उद्वृत्तापवृत्तशब्दौ फलयोनिभ्यां सह प्रत्येकं सम्बध्येते। फलमण्डम्, योनिर्गर्भाशयः उद्वृत्तफलः स्थानदूर्ध्वगताण्डः अपवृत्तफलः स्थानात् स्रस्ताण्डः, उद्वृत्तयोनिः स्थानादूर्ध्वगतयोनिः, अपवृत्तयोनिः स्थानात् स्रस्तयोनिः अन्ये तु फलयोनिशब्देन समुदितेन गर्भाशयमाचक्षते तत्रायमर्थः- उद्वृत्तफलयोनिः स्थानादूर्ध्वगतगर्भाशयः, अपवृत्तफलयोनिः स्थानात् स्रस्तगर्भाशयेत्यर्थः ; अपरे तु फलशब्दं रजसि वर्तयन्ति, कुतः ? गर्भस्य फलसाधनत्वात्। तेन यस्याः योनेः सकाशात् फलं रज उद्वृत्तमूर्ध्वगतम्, अपवृत्तं अधोगतम्, सा उद्वृत्तापवृत्तफलयोनिः॥ (केचितु फलशब्देनेहान्यं ग्राह्यन्त्युपचारादगङ्गायां घोष इतिवत्, इति हारणचन्द्रः - पुस्तक की पाद टीका में)
(सु० सं सू० ११/२८ डल्हण टीका)

(आ) प्रकर्षेणोद्वृतं फलं-रजोरूपं, यस्या योनेः सा प्रोद्वृत्तफलयोनिः। रज एव फलं गर्भाख्यफलसाधनोपायत्वात्॥
(अ० ह० सू० ३०/६ अरुण० टीका)

जैसा मर्मान्तर्गत वर्णित है कि महर्षि सुश्रुत ने अश्मरी की चिकित्सा करते समय विचारणीय आठ मर्मों में 'स्रोतसीफलयोः' शब्द का प्रयोग किया[1] है, इसे स्त्री-शरीर-स्थित डिम्बग्रन्थि माना जा सकता है। गर्भाशय को मर्म नहीं मान सकते क्योंकि इसकी न तो मर्म-संख्या में ही कहीं गणना की गयी है और न ही इस अंग में आघात या सम्पूर्ण छेदन होने से मर्म-वेध से उत्पन्न होने वाले प्रभाव (सद्यःप्राणहर, कालान्तरप्राणहर, विशल्यघ्न, रुजाकर एवं वैकल्यकर) ही देखे जाते है; अतः ऐसा माना जा सकता है कि एकवचन में प्रयुक्त 'फल' शब्द गर्भाशय का एवं द्विवचन में प्रयुक्त डिम्बग्रन्थियों का द्योतक है।

जैसा पूर्व वर्णित है, लक्षण एवं मुष्क शिश्न एवं वृषण माने गये हैं। वृषणों में पेशी तन्तु नगण्य होते हैं परन्तु अण्डकोष पेशी-निर्मित होता है, अतः यहाँ मुष्क से अण्डकोष अर्थ लेना युक्तिसंगत होगा एवं शिश्न के समकक्ष स्त्री की भगशिश्निका तथा अण्डकोष के समकक्ष बृहत्भगोष्ठ मान सकते हैं। वृहत् भगोष्ठों में पुरुष-अण्डकोष-स्थित डार्टॉस पेशी सदृश मांसतन्तु रहते हैं (चित्र ४/४)। इस वर्णन को मान लेने पर 'फलमन्तर्गतं हि ताः' 'जिसके अन्तर्गत या नीचे फल या गर्भाशय स्थित है' ऐसा अर्थ करने से विषय स्पष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त सभी पेशियों का वर्णन संक्षिप्त रूप में तालिका २ में किया गया है।

तालिका २

संहिता-वर्णन	समकक्ष पेशियाँ
१.स्तनगत दस पेशियाँ	स्तन के भिन्न विभाग
२.जननांग की पेशियाँ	
(अ) बहिर्द्वार-स्थित वर्तुलाकार दो पेशियाँ	सिफन्क्टॅर वॅजाइनी
(आ) अपत्यपथ में आभ्यन्तर प्रसृत दो पेशियाँ	योनि की पूर्व एवं पश्चिम भित्ति या योनि के मांसल एवं संयोजक-तन्तु-निर्मित आच्छद
(इ) गर्भच्छिद्र सम्बन्धित तीन पेशियाँ	गर्भाशय-बुध्न, शरीर एवं निम्न भाग या प्यूबॉसॅर्वं इकल, यूटॅरोसैक्रॅल तथा काडिनल बन्धन
(ई) शुक्रार्तवप्रवेशिनी तीन पेशियाँ	
i)शुक्रप्रवेशिनी-एक	गर्भाशय-ग्रीवा
ii)आर्तवप्रवेशिनी-दो	दोनों डिम्बप्रणालियाँ
३. पुरुष के समकक्ष पेशियाँ	
(अ) लक्षण (शिश्न) की पेशी-एक	भगशिश्निका
(आ) मुष्क (अण्डकोष) की पेशीयाँ-दो	दोनों वृहत् भगोष्ठ

Dalhaṇa explains *lakṣaṇa* as penis and *muṣka* as *vṛṣaṇa* and has opined that muscles of uterus may be considered analogous to these muscles, however, quoting Bhoja he writes that as uterus is already described earlier, thus, these may be considered absent in woman.

Before proceeding further let us examine the word '*phala*' which has appeared here.

The word *phala* has appeared in refrence to *kṣāra karma* where in its application in

१. सु० सं० चि० ७/३६ एवं ३८ (पृ० १६)

Scanned with CamScanner

"*udvṛtta* or *apavṛtta-phala-yoni*" is contraindicated. The question of application of *kṣāra* in ovaries in their displacements does not arise, because these are intraperitoneal structures. Again *'phala'* in dual number has appeared in the list of vital parts. Uterus can not be considered a vital part because injury to this does not produce immediate death (*sadyaḥ prāṇahara marma*), delayed death (*kālāntara prāṇahara marma*), death after removal of foreign body from this (*viśalyaghna marma*), severe pain (*rujākara marma;* endometrial biopsy is performed without much pain to woman) or permanent disability (*vaikalyakara marma*); while injury to ovaries can produce at least permanent disability. With this description it may be concluded that word 'phala' in dual number indicates ovaries and in singular number the uterus.

Clitoris of female is similar to *lakṣaṇa* or penis of male which has got sufficient erectile muscle fibres; testes and their counterpart ovaries do not contain muscles, the fibers

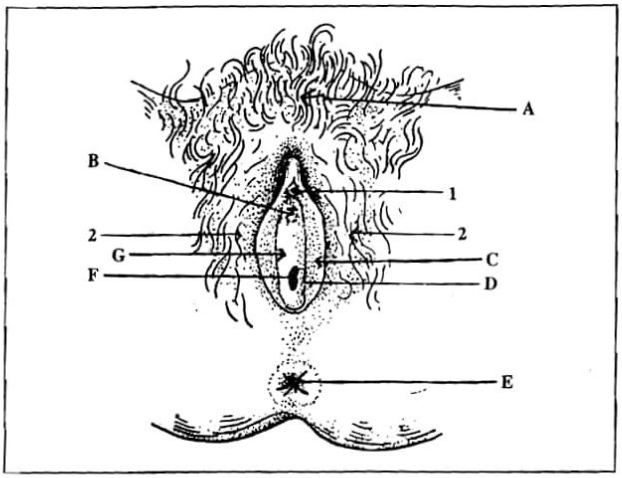

Fig. (4/4) : Showing *peśīs* (muscles) of female analogous to *lakṣaṇa* (penis) and *muṣka* (scrotum) of male.
1. Clitoris—muscle analogous to penis
2. Labia majora—muscles analogous to scrotum

A. Mons Pubis B. External urethral meatus C. Labia minora
D. Hymen E. Anal orifice F. Introitus of vagina
G. Vestibule

present are microscopic structure, thus with *muṣka* scrotum should be considered and analogous to the scrotum female possess labia majora, and behind these uterus is situtated (fig. 4/4).

Preceding interpretation of *peśīs* is summarized in tabular form:

Description in classics	Muscles
A) *Peśīs* of breasts	Different parts of breasts
B) *peśīs* of reproductive system	
1) Outer circular—1	Sphincter vaginae
2) Spreading inside—2	Anterior and posterior vaginal wall or muscular layer and pubocervical alongwith rectovaginal facia
3) Situated in *garbhachidra*—3	A) Uterosacral, cardinal and pubocervical ligaments B) Fundus, corpus and isthmus of uterus.
4) Responsible for entry of sperm and ovum-3	
a) for sperm—1	cervix uteri
b) for ovum—2	both fallopian tubes
5) Analogous to penis—1	clitoris
to scrotum—2	labia majora.

❑

Scanned with CamScanner

अध्याय २

CHAPTER II

ऋतुचक्र एवं उसका शारीर-क्रिया विवेचन
(PHYSIOLOGY OF MENSTRUAL CYCLE)

शारीरिक वृद्धि की अवस्थायें (Stages of life according to development)

यद्यपि आयुर्वेदिक संहिताओं में रजःस्रावादि पर आधारित अवस्थाओं का वर्णन नहीं मिलता, पर यत्र-तत्र वर्णित विषय का संकलन करने से एक सामान्य रूपरेखा प्रकट होती है। अतः विशिष्ट विषय में प्रवेश के पूर्व इन अवस्थाओं का सामान्य ज्ञान वांछित है। सम्बन्धित संदर्भ निम्नांकित हैं-

वयो यथास्थूलभेदेन त्रिविधम्-बालं, मध्यं, जीर्णमिति। (च० सं० वि० ८/१२२)
वयस्तु त्रिविधं, बाल्यं मध्यं वृद्धमिति। (सु० सं० सू० ३५/२९)
वयस्त्रिविधं बालं मध्यं वृद्धं च। (अ० सं० शा० ८/२४)
गर्भं बालकुमाराख्यमित्येतत्त्रिविधं वयः।
यौवनं मध्यमं वृद्धमेतच्च त्रिविधं पुनः॥ (का० सं०खि० ३/७२)

सभी आचार्यों ने सम्पूर्ण आयु को स्थूल रूप से बाल्यावस्था, मध्यमावस्था एवं वृद्धावस्था इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया है; महर्षि काश्यप ने लिखा है कि गर्भ, बाल एवं कुमार तीन प्रकार तथा पुनः यौवन, मध्य एवं वृद्ध तीन प्रकार की आयु होती है, अर्थात् इन्होंने बालावस्था के तीन यथा गर्भ, बाल एवं कुमार तथा शेष आयु के तीन यथा यौवन, मध्य एवं वृद्ध, विभाग किए हैं। महर्षि हारीत ने मध्यमावस्था को दो यथा यौवन एवं मध्यम में विभाजन करते हुए चार अवस्थाओं का वर्णन किया है[1]। इन सभी अवस्थाओं में शरीर के अन्तर्गत विशिष्ट परिवर्तन होते हैं। स्त्री-शरीर की विशिष्ट प्रक्रियाओं में बाला एवं मध्यमावस्था ही भाग लेती हैं।

There is no clear description of various epochs of woman's life, however, scattered references present a general picture. Before discussing specific epochs of woman, revision of general classification of age is essential.

The life span is divided into there stages--*bālāwasthā* (childhood), *madhyamāwasthā* (adult age) and *vṛddhāwasthā* (old age). Kāśyapa has classified age into three groups, *garbha, bāla* and *kumāra* and again into three groups i. e. *yauwana, madhyama* and *vṛddha*, In other words after classifying the age of childhood separately into three, the remaining span of life is divided into *yauwana* etc. three stages. Hārīta has classified age into four subdividing middle age into two i. e. *yauwana* and middle.

१. बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं च तथैव च। चतुर्विधं वयः सम्यक् तत्समासेन वक्ष्यते॥ (हा० सं० प्र० स्था० ५/२)

(अ) बालावस्था (Childhood)

तत्र बालमपरिपक्वधातुमजातव्यञ्जनं सुकुमारमक्लेशसहमसंपूर्णबलं श्लेष्मधातुप्रायमाषोडशवर्षम्।
(च० सं० वि० ८/१२२)

तत्रोनषोडशवर्षीया बालाः। (सु० सं० सू० ३५/२९)
बाले विवर्द्धते श्लेष्मा ..... (सु० सं० सू० ३५/३१, भा० प्र० पूर्व० ४/४९)
तत्राषोडशाद्वर्षाद्बालम्। ..... तस्मिन् देहप्रमाणवृद्धिः श्लेष्मोद्रेकश्च।
तेन बालस्य स्नेहमार्दवसौकुमार्याल्पक्रोधत्वसौभाग्यानि भवन्ति॥ (अ० सं० शा० ८/२४)

बालावस्था १६ वर्ष पर्यन्त रहती है, इस अवस्था में शरीर की धातुयें अपरिपक्व होती है, व्यञ्जनादि चिह्न (मूँछ आदि) उत्पन्न नहीं हुए रहते, शरीर कोमल, क्लेश सहने में असमर्थ एवं असम्पूर्ण बल से युक्त होता है। श्लेष्मा का प्राधान्य रहता है।

महर्षि सुश्रुत ने भी लिखा है कि १६ वर्ष तक बालावस्था होती है तथा इसमें कफ का प्राधान्य रहता है।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि १६ वर्ष पर्यन्त बालावस्था रहती है, इस अवस्था में देह-प्रमाणों की वृद्धि होती है, श्लेष्मोद्रेक रहता है, जिसके कारण बालक में स्नेहाधिक्य, मृदुता, सुकुमारता, क्रोधाल्पता एवं सौभाग्य आदि होते हैं।

महर्षि काश्यप ने इस अवस्था को पुनः तीन भागों में विभाजित किया है यथा गर्भ, बाल एवं कुमार; तथा एक वर्ष के बालक को क्षीरप एवं बाद में अन्नाद माना है।[1] विभाजन तो किसी अंश तक सुश्रुत, वाग्भट-द्वय तथा भावप्रकाशकार ने भी माना है,[2] परन्तु इनका विभाजन बालक की आहारादि की विशिष्ट आवश्यकताओं के आधार पर किया गया है। महर्षि वाग्भट एवं भावमिश्र ने एक स्थान पर बालावस्था की अवधि दस वर्ष तक[3] मानी है। महर्षि चरक ने इसी बालावस्था के वर्णन में रसादि धातुओं की वृद्धि एवं मन की अस्थिरता के कारण आयु की सीमा तीस वर्ष तक कही है।[4] महर्षि हारीत एवं भावमिश्र ने सोलह वर्ष तक की अवस्थाओं को बालावस्था माना है तथा बालावस्था को अल्प शरीर वाला माना है।[5]

This age lasts upto sixteen years. During this span the *dhātus* are immature, hair on face and axilla are not grown, body is soft and can not withstand troubles, *bala* (strength), is

१. गर्भबालकुमाराख्यमित्येतत्त्रिविधं वयः। वर्षावरः क्षीरपः स्याद्यावत् पिबति वा पयः।
वयस्तद्वालमस्माच्च यावत् षोडशवार्षिकः। अन्नादः सर्व एव स्यात् कैमारे वयसि स्थितः। (का० सं० खि० ३/७२,७३,७४)

२. (अ) तेऽपि त्रिविधा :- क्षीरपाः, क्षीरान्नादाः, अन्नादा इति। (सु० सं० सू० ३५/२९)
(आ) तेष्वपि स्तन्याहारोभयवृत्त्या बालं त्रिविधम्। (अ० सं० शा० ८/२४)
(इ) त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः। (अ० ह० उ० २/१)
(ई) त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथाऽन्नभुक्। (भा० प्र० पूर्व० ४/४३)

३. (अ) बाल्ये वृद्धिं प्रधामेधात्वक्शुक्राक्षिश्रुतीन्द्रियम्। दशकेषु क्रमाद्याति मनः सर्वेन्द्रियाणि च॥ (अ० सं० शा० ८/२५)
(आ) बाल्यं वृद्धिश्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ। बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत्॥ (भा०प्र०पूर्व० ४/५०)

४. विविधमानधातुगुणं पुनः प्रायेणानवस्थितसत्त्वमात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टं॥ (च० सं० वि० ८/१२२)

५. (अ) आषोडशाद्भवेद्बालः। .....। (हा० सं० प्र० स्था० ५/४)
(आ) ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते। (भा० प्र० पूर्व० ४/४२)
(इ) चतुर्विधं शरीरं स्याद्बाल्यं .....। ..... तथा प्रोक्तं बाल्यमल्पशरीरकम्।
षोडशवार्षिकं यावद्बाल्यं तावत् प्रवर्तते। (हा० सं० ष० स्था० १/३)

Scanned with CamScanner

also not fully developed. This span is dominated by *kapha*, so the body is more unctuous, soft, delicate with relatively less anger and in endowed with good fortune.

Kāśyapa has subdivided this span in *garbha* (fetal stage), *bāla* (preschool age), *kumāra* (school age including adolescence). Suśruta etc. have subdivided it on the basis of dietetic cosideration i. e. *kṣīrapa* (milk as main diet) upto one year, *kṣīrānnāda* (milk and cereals both) from one to two years and *annāda* (cereals) two years onwards, however, Kāśyapa has clubbed *kṣīrānnāda* and *annāda* into one. Vāgbhaṭa and Bhāvamiśra at one place bring down the limit just upto **ten** years, on the other hand, Caraka stretches it upto thirty years considering the attainment of full maturity of *dhātus* and stability of *mana*.

(आ) मध्यमावस्था (Middle age)

मध्यं पुनः समत्वागतबलवीर्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानसर्वधातुगुणं बलस्थितमवस्थितसत्त्वमविशीर्यमाणधातुगुणं पित्तधातुप्रायमाषष्टिवर्षमुपदिष्टम् ॥ (च० सं० वि० ८/१२२)

षोडशसप्तत्योरन्तरे मध्यं वयः तस्य विकल्पो-वृद्धिः,यौवनं संपूर्णता परिहाणिरिति। तत्र आविंशते-र्वृद्धिः, आत्रिंशतो यौवनं, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबलवीर्यसम्पूर्णता, अत ऊर्ध्वमीषत्परिहाणिर्यावत् सप्ततिरिति। (सु० सं० सू० ३५/२९)

..... मध्यमे पित्तमेव तु ॥ (सु० सं० सू० ३५/३१)

आषष्टेर्मध्यमम् .....। मध्यमपि त्रिविधं यौवनं सम्पूर्णत्वमपरिहानिश्च। तस्मिन् पित्तोद्रेकः तेन दीप्ताग्निता प्रज्ञाधिक्यपरिपाकौ व्यवसायश्च। तत्रात्रिंशतो यौवनमाचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबलवीर्यपौरुषस्मरणवचन-विज्ञानप्रश्रयगुणसम्पूर्णत्वमतः परमपरिहानिः॥ (अ० सं० शा० ८/२४)

अतः परं धातुसत्त्वबलवीर्यपराक्रमैः ॥ ७४॥
वर्धमानैश्चतुस्त्रिंशद्युवा वर्षाण्युदर्कतः। धात्वादिभिः स्थिरीभूतैर्यावदासमतिर्नरः ॥ ७५॥
(का० सं० खि० ३)

मध्यमावस्था में बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, धारण, स्मरण, वचन एवं विज्ञान की शक्ति सम्पूर्ण रूप में आ जाती है। सभी धातुयें पूर्ण हो जाती हैं, बल एवं सत्व अच्छे रूप में स्थित हो जाते हैं, धातुओं के गुणों में क्षय नहीं हुआ रहता। यह अवस्था ६० **वर्ष** तक चलती है एवं इसमें पित्त की प्रधानता रहती है।

महर्षि सुश्रुत ने इस **अवस्था** की मर्यादा ७० वर्ष मानकर इसे पुनः वृद्धि, यौवन, सम्पूर्णता एवं हानि आदि चार अंगो में विभाजित किया है। **बीस वर्ष** तक वृद्धि की अवस्था, तीस वर्ष तक यौवनावस्था, चालीस वर्ष तक सर्वधातु, इन्द्रिय, बल एवं वीर्य की सम्पूर्णतादि एवं इसके पश्चात् ७० वर्ष तक धातुओं आदि के किञ्चित क्षय की अवस्था होती है। इस अवस्था में पित्त का प्रधान्य रहता है। भावमिश्र ने भी यही विचार व्यक्त किए हैं।[1]

महर्षि वाग्भट ने आयु **की** सीमा चरकानुसार ६० वर्ष मानकर इस अवस्था को यौवन, सम्पूर्णता एवं अपरिहानि (न क्षय) इस प्रकार तीन भागों में **विभाजित** किया है। इस अवस्था में पित्त का प्राधान्य होने से दीप्ताग्निता, प्रज्ञा का आधिक्य

१. **मध्ये षोडशसप्तत्योर्मध्यम: कथितो बुधै: ॥ ४४॥**
चतुर्धा मध्यमं वृद्धिर्युवापूर्णक्षयान्वितम्। भवेदाविंशतेर्वृद्धिर्युवा त्वात्रिंशतो मत: ॥ ४५॥
चत्वारिंशत्समा यावत्तिष्ठेद्वीर्यादिपूरित:। तत: क्रमेण क्षीण: स्याद्यावद्भवति सप्तति: ॥ ४६॥
वीर्यादीत्यादिशब्देन रसादिसर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहा उच्यन्ते। क्षीण: = सर्वधात्विन्द्रियबलोत्साहैर्हीन:॥
(भा० प्र० पूर्व० ४/४४ से ४६)

एवं परिपाक तथा व्यवसाय रहता है। तीस वर्ष तक यौवन तथा चालीस वर्ष तक सर्वधातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य, पौरुष, स्मरण-शक्ति, वाक्शक्ति एवं, विज्ञानशक्ति के आश्रित गुणों की सम्पूर्णता हो जाती है; तत्पश्चात् ये इसी अवस्था में ६० वर्ष तक बने रहते हैं।

महर्षि काश्यप ने धातु, बल, वीर्य, सत्व एवं पराक्रम की वृद्धि की युवा अवस्था ३४ वर्ष तक, तदुपरांत धातुओं की स्थिरता के साथ ७० वर्ष तक मध्यमावस्था मानी है।

महर्षि हारीत ने इस अवस्था को दो भागों में विभक्त किया है युवा एवं मध्यमावस्था। इसमें २५ वर्ष तक युवावस्था तथा सत्तर वर्ष तक मध्यमावस्था मानी है। इस अवस्था में भी स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्यक्षमता की दृष्टि से पुनः उत्तम, मध्यम एवं अधम अवस्था की कल्पना की है, अर्थात् बाल, युवा एवं मध्यम अवस्था वाले तथा सुकुमार व्यक्ति मध्यम संज्ञक; सोलह से बीस वर्ष की आयु में भी कृश स्त्री-पुरुष तथा परिपूर्णावस्था में भी ऐसे ही रहने वाले मध्यम आयु वाले अधम संज्ञक; पच्चीस वर्ष से पचास वर्ष तक कठोर कर्म करने वाले स्त्री-पुरुष एवं सत्ताइस वर्षोपरान्त पचास वर्ष तक बालों की वृद्धि होने वाले उत्तम संज्ञक होते है। स्थूल, अति लम्बा तथा कठोर पुरुष या बड़े पेट वाली स्त्री उत्तमोत्तम संज्ञक कहलाती है।[1] शरीरस्थान में पुनः आयु का वर्णन करते हुए इस मध्यमावस्था को प्रौढ़ एवं प्रगल्भ दो भागों में विभाजित किया है, पर इसकी कोई आयु-मर्यादा नहीं वर्णित की।[2]

During this stage energy, potence, strength, working capacity, understanding, retention power, memory, vocabulary, analysing capacities and all the *dhātus* are fully developed and mature, psychology is stable. There is no decline in the qualities of *dhātus*. This span is dominated by *pitta*.

Caraka and Vāgbhaṭa keep the age limit of this span upto sixty years, while Suśruta, Kāśyapa and Hārīta to seventy years.

Various authors have subdivided this span in following way:

(a) Suśruta--*Vṛddhi* (developmental stage) upto twenty years; *yauwana* (adult age) upto 30 years, *sampūrṇatā* (full maturity) upto forty years and slight *hāni* (decline) upto seventy years.

(b) Vāgbhaṭa- *Yawana* upto 30 years, *sampūrṇatā* upto forty years and *aparihāni* (no decline) upto sixty years.

(c) Kāśyapa-*Yuvāwasthā* upto forty years then *madhyamāwasthā* (middle age) upto seventy years.

(d) Hārīta-*Yuwāwasthā* upto twentyfive, *madhyamāwasthā* upto seventy years. He has further classified it on the basis of health and working capacity, as *uttama* (excellent), *madhyama* (average) and *adhama* (low). Children, young or middle aged and soft persons

१. .....पञ्चविंशो युवा नरः। मध्यमं सप्ततिर्य्यावत्.....॥ ४॥
तथा च सुकुमाराश्चेत्येते मध्यमसंज्ञकाः। वयसः षोडशाधिक्यं समयश्च भवेत्तु यः ॥ ५॥
आविंशति समाः प्राप्तो यथा च कृशदेहवान्। पूर्ण वयः स्त्रियः प्राप्ता मध्यमे चाधमं वयः ॥ ६॥
पञ्चविंशत्समादूर्ध्वमापञ्चाशद्गतः पुमान्। कर्मकठोरा वनिता दृश्यते चोत्तमं वयः ॥ ७॥
सप्तविंशत्समादूर्ध्वं पञ्चाशत्संयुताः समाः। बालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥ ८॥
स्थूलोऽतिदीर्घकठिनस्तथा स्त्री बृहदौदरा। इत्युत्तमोऽवयववाञ्जातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥ ९॥ (हा० सं० प्र० स्था० ५/४ से ९)

२ चतुर्विधं शरीरं .....प्रौढं प्रगल्भकम्। (हा० सं० ष० स्था० १/३)

Scanned with CamScanner

are *madhyama*; emaciated even at the age of sixteen or twenty years and who maintain same health upto full maturity along with middle aged persons are *adhama*; persons doing very hard work in between twentyfive to fifty years of age, having growth of hair even between twentyseven to fifty years are the *uttama* persons. Tall, fat, stout males and females of big belly are categorized as *uttamottama* (best).

(इ) वृद्धावस्था (Old age)

यह अवस्था ६० या ७० वर्षोपरान्त सामान्य क्षयावस्था की है, इसमें वायु का प्राधान्य रहता है। स्त्री-शरीर की रजःस्राव एवं प्रजननादि क्रियाओं से इस अवस्था का सम्बन्ध न होने के कारण यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं दिया जा रहा है।

This age starts after sixty or seventy years and is dominated by *vāyu*. Since menopause occurs before beginning of this stage, hence, it is not being described in detail here.

स्त्री-शरीर की विशिष्ट अवस्थायें (Specific epochs of woman's life)

पूर्व पृष्ठों का वर्णन सामान्य दृष्टि से स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिए दिया गया है, परन्तु ऐसा देखा जाता है कि स्त्री की प्रजनन-शक्ति सम्पूर्ण मध्यमावस्था में नहीं रहती, बल्कि इसी अवस्था में रजोनिवृत्ति हो जाती है। स्त्री बालावस्था की अंतिम सीमा अर्थात् १६ वर्ष की अवस्था में पूर्ण वीर्य वाली होकर संभोग एवं गर्भाधान-योग्य हो जाती है।[1] महर्षि काश्यप ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि आरोग्य एवं आहारादि सामान्य हों तो यह पूर्णता या गर्भाधान-योग्यता की अवस्था इसके पूर्व भी आ सकती है।[2] सम्भवतः गर्भाधान-क्षमता को दृष्टिगोचर करते हुए आचार्य भावमिश्र ने स्त्री की मध्यमावस्था को 'तरुणी ३२ वर्ष तक एवं अधिरूढ़ा ५० वर्ष तक' इस प्रकार दो भागों में विभाजित किया है।[3]

महर्षि हारीत ने पाँच वर्ष तक की कन्या को बाला, आगे ६ वर्ष तक की बालिका को (अर्थात् ११ वर्ष की अवस्था तक) मुग्धा अथवा बारह वर्ष की अवस्था तक बाला एवं आगे ७ वर्ष (अर्थात् १९ वर्ष की अवस्था) तक मुग्धा की संज्ञा दी है। इसके बाद नौ वर्ष (अर्थात् २८ वर्ष) की अवस्था तक प्रौढ़ा, बाद के तेरह वर्ष (अर्थात् ४१ वर्ष) की अवस्था तक प्रगल्भा कहलाती है। इसके बीच २४ वर्ष से ३७ वर्ष तक मध्यमावस्था की स्त्री पूर्ण अवस्था को प्राप्त होती है, यह उत्तम अवस्था है[4]। उपर्युक्त वर्णन में महर्षि हारीत ने बाला एवं मुग्धा की दो विभिन्न अवस्थायें दी हैं, सम्भवतः देश, जाति एवं काल आदि के भेद के कारण यह अन्तर आया होगा।

१. (अ) पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥ (सु० सं० सू० ३५/१३)
(आ) तस्यां षोडशवर्षायां .....॥ (अ० सं० शा० १/४)
(इ) ऊनषोडशातीतसप्ततिवर्षस्य। (अ० सं० शा० १/२१)
(ई) पूर्णषोडशवर्षा स्त्री .....। (अ० हृ० शा० १/८)
(उ) षोडशवर्षयोर्हि .....॥ (का० सं० शा० ५/४)

२. अर्वागपि यदाहारविशेषादारोग्याच्च पूर्णे भवत इति परिषत्॥ (का० सं० शा० ५/४)

३. बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश। ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि॥
तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशत्वत्सरावधि। वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता॥ (भा० प्र० पूर्व० ५/२८१ व २८२)

४. पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समावधिम्। द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम्॥
प्रौढ़ा च नववर्षाणि प्रगल्भा च त्रयोदश। चतुर्विंशद्वर्षादूर्ध्वं सप्तत्रिंशति मध्यगः।
पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता इत्येतदुत्तमं वयः॥ (हा० सं० प्र० स्था० ५/१३ व १४)

धर्मशास्त्र की पुस्तक पराशर स्मृति में बाला की अवस्था को आठ वर्ष तक गौरी, नव वर्ष तक रोहिणी, दस वर्ष तक कन्या एवं उसके उपरान्त रजस्वला की संज्ञा दी है[1]। ऐसा प्रतीत होता है की महर्षि हारीत एवं आचार्य भावमिश्र ने स्त्री की इन विशिष्ट अवस्थाओं का वर्णन तत्कालीन साहित्य में वर्णित नायिका या मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है; यद्यपि आयुर्वेदिक आचार्यों ने इसमें आयु की सीमा का भी वर्णन कर दिया है, जो समुचित प्रतीत नहीं होता। स्त्री की अवस्थाओं का विभाजन उसके शरीर में होने वाले परिवर्तनों विशेषकर अंगरसों की न्यूनाधिक्यता के आधार पर पुरुष-शरीर-वर्णित स्थितियों के समकक्ष ही करना चाहिए जो निम्नांकित प्रकार से हो सकता है।

तालिका ३
आयु का विभाजन

पुरुष	स्त्री
बाल्यावस्था	**बाल्यावस्था**
बालावस्था–१६ वर्ष	बाला–१० वर्ष कुमारी–१० से १२ वर्ष रजोमती–१२ से १६ वर्ष
मध्यमावस्था	**मध्यमावस्था**
वृद्धि–१६ से २० वर्ष	युवती–१६ से ४० वर्ष
युवा–२० से ३० या ३४ वर्ष	प्रौढ़ा–४० से ५० वर्ष
सर्वधातु-सम्पूर्णता–३० से ४० या ६० वर्ष	वृद्धा–५० वर्ष के बाद
क्षय-प्रारम्भ–४० से ७० वर्ष (केवल सुश्रुत)	

सामान्य अवस्था विभाजन में भी आचार्य चरक ने मध्यमावस्था ६० वर्ष तक एवं सुश्रुत ने ७० वर्ष तक मानी है तदुपरान्त वृद्धावस्था मानी गई है। स्त्रियों में आचार्य भावमिश्र ने ५० वर्ष के बाद वृद्धावस्था मानी है। चूँकि समान्यतः इस आयु तक स्त्री को रजोनिवृत्ति हो जाती है अतः मध्यमावस्था की सीमा ५० वर्ष तक रखना अधिक युक्तिसंगत है।

Preceding description relates to both sexes, but in females the reproductive capacity does not last even for the whole middle age, rather menopause ensues. In the last few years of childhood itself woman is fully mature to achieve conception, this maturity can come even earlier if she is free from diseases and has good diet. Bhāvamiśra has mentioned the woman as *taruṇī* (ever young) upto thirtytwo years and *adhirūḍhā* (middle aged) upto fifty years, after which she is *vrddhā* (old lady).

Hārīta has classified the age of female as *bālā* upto five years followed by *mugdhā* for another six years (upto 11 years) or *bālā* up to twelve years followed by *mugdhā* for another seven years (upto 19 years; this difference might be due to individual variation), *praudhā* upto 28 years and *pragalbhā* upto 41 years. In between twentyfour to thirtyseven she is in best age.

Parāśara smṛti has mentioned a girl upto 8 years as *gaurī*, upto nine as *rohiṇī*, upto ten as *kanyā* followed by *rajaswalā*. It seems that this classification is based on the prevalent socio-religious conditions thus, is not suited to our purpose.

१. अष्टावर्षा भवेत् गौरी नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजःस्वला॥ (पराशर स्मृति ७/६)

Scanned with CamScanner

The specific life span of female should be dealt-with on the basis of her reporductive capacity or hormonal status maintaining parity with general description, which is given in tabular form as under-

Division of Age	
Male	**Female**
Childhood: upto 16 years	**Childhood:** (a) *Bālā*—10 years (b) *Kumārī*—10 to 12 (c) *Rajomatī*—12 to 16 years
Middle age: (a) *Vṛddhi*--16 years (b) *Yuwā*--20 to 30 or 34 yrs. (c) *Dhātu* maturity--30 to 40 or 60 yrs (d) Beginning of decline--40 to 70 yrs. (only Suśruta)	**Middle age:** (a) *Yuwatī*—16 to 40 yrs. (b) *Prauḍhā*— 40 to 50 yrs. (c) *Vṛddhā*—50 yrs onwards.

स्त्री की आयु की विभिन्न अवस्थाओं में दोषों की स्थिति (Status of doṣas in these epochs of woman's life)

शरीर में तीनों दोष हर समय उपस्थित रहते हैं, विभिन्न परिस्थितियों में तर-तम का भेद होता है। पूर्व पृष्ठों में वर्णित बाला एवं मध्यमावस्था के समस्त उपवर्गों में स्त्री-शरीर की दृष्टि से दोषों की स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्यम्भावी हैं, क्योंकि आर्तव के आग्नेय होने के कारण उसकी उत्पत्ति-काल में शरीर में तेज-महाभूत की वृद्धि होगी, जिसके कारण पुरुष की अपेक्षा स्त्री में पित्त का प्राधान्य कुछ पहिले हो जायगा। दोषों की संभावित स्थिति निम्नांकित तालिका में प्रदर्शित है:

तालिका ४

आयु की अवस्थायें	अवस्थाओं के उपवर्ग	आयु-सीमा	शारीरिक-परिवर्तन	दोष-स्थिति
बाल्यावस्था	१. बाला (गौरी, रोहिणी, कन्या, बाला आदि)	१० वर्ष	सर्वांगीण शारीरिक वृद्धि	कफोल्वण पित्त एवं वायु हीन
	२. कुमारी (रजोदर्शन पूर्वावस्था या मुग्धावस्था)	१० से १२ वर्ष	स्तन एवं योनि-वृद्धि आदि	कफोल्वण, पित्त मध्य एवं वायु हीन
	३. रजोमती (रजोदर्शनावस्था या रजस्वला, सम्पूर्ण वीर्य की अवस्था या मुग्धावस्था)	१२ से १६ वर्ष	रजोदर्शन प्रारम्भ एवं पूर्णरूपेण उपस्थित, स्त्री गर्भाधान-योग्य (अंतिम चरण में)	कफपित्तोल्वण एवं वायु हीन

मध्यमावस्था	१. युक्ती (वृद्धि की अवस्था, यौवनावस्था, तरुणी एवं प्रौढ़ा)	१६ से ४० वर्ष तक	उच्चतम प्रजनन-शक्ति, सर्वांगीण-वृद्धि एवं सम्पूर्णता	पित्तोल्वण, कफ मध्यम एवं वायु हीन
	२. प्रौढ़ावस्था (अधिरूढा या प्रगल्भा)	४० से ५० वर्ष	अल्प प्रजनन-शक्ति, रजोनिवृत्ति के लक्षण प्रारम्भ	पित्तोल्वण, वायु मध्य एवं कफ हीन
	३. वृद्धावस्था	५० वर्ष के बाद	रजोनिवृत्ति	वातोल्वण, पित्त मध्य एवं कफ हीन
वृद्धावस्था	वृद्धावस्था	५० से ५५ वर्ष के बाद	सर्वांगीण क्षय की अवस्था	वातोल्वण, पित्त एवं कफ हीन

All the three *doṣas* are always present in the body, but relative predominace changes in different conditions or ages. *Ārtava* being *āgneya* in character is likely to increase *tejas mahābhūta* of the body, which may cause increase in the amount of *pitta* relatively in earlier age than seen in males. Considering this aspect, probable status of *doṣas* may be considered in following way—

Status of doṣas in different epochs of life				
Classification of age	**Subclassification**	**Age limit (yrs)**	**Changes in the body**	**Status of Doṣas**
Childhood	1) *Bālā (gaurī,* rohiṇī, *kanyā* and *bālā* etc.)	10	General development.	*Kapha* + + + *Pitta* and *Vāyu* +
	2) *Kumārī* (premenarche or *mugdhā*)	10 to 12	Development of secondary sex characteristics	*Kapha* + + + *Pitta* + + *Vāyu* +
	3) *Rajomatī* (menarche established, maturity stage or *mugdhāwasthā*)	12 to 16	Menstruation starts and cycle is fully established, she is capable to conceive.	*Kapha* + + + *Pitta* + + + *Vāyu* +
Middle Age	1) *Yuvatī* (*yuvā, taruṇī or prauḍhā*)	16 to 40	Maximum reproductive capacity, full maturity.	*Pitta* + + + *kapha* + + *Vāyu* +
	2) *Prauḍhāwasthā* (*adhirūḍhā* or *pragalbhā*)	40 to 50	Premenopausal symptoms evident	*Pitta* + + + *Vāyu* + + *Kapha* +

cont. .....

Scanned with CamScanner

	3) *Vṛddhā*	50 onwards	Menopause	*Vāta* + + + *Pitta* + + *Kapha* +
Old age	*Vṛddhā*	After 50 or 55	General decline	*Vāta* + + + *Pitta* + *Kapha* +

ऋतुस्रावादि के द्योतक विभिन्न शब्द *(Different words used to denote menstrual blood and ovum etc.)*

विषय का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ऋतुस्राव, ऋतुचक्र एवं स्त्रीबीज को परिलक्षित करने के लिए संहिताओं में यत्र-तत्र विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है। चूँकि इन शब्दों के सन्दर्भ-भेद से ही भिन्न-भिन्न अर्थ करने होते हैं, अतः विषय में अग्रसर होने के पूर्व इस शब्दावली का ज्ञान आवश्यक है।

Certain words have been used to describe menstrual blood and ovum. Their specific connotation is to be taken with reference to context. This terminology is described as follows:—

(अ) रजःस्राव एवं स्त्रीबीज को प्रदर्शित करने वाले विभिन्न शब्द (Words used to describe menstrual blood and ovum)

रजःस्राव एवं स्त्रीबीज को प्रदर्शित करने के लिए संहिताओं में आर्तव, शोणित, असृक्, रज, रक्त, लोहित आदि शब्दों का; केवल रजःस्राव को परिलक्षित करने के लिए रुधिर एवं पुष्प तथा स्त्रीबीज के लिए बीज शब्द का प्रयोग हुआ है। अग्रिम पंक्तियों में इन रजादि शब्दों के दोनों अर्थों (रजःस्राव एवं स्त्रीबीज अर्थ) में प्रयुक्त कुछ सन्दर्भ विषय के स्पष्टीकरण की दृष्टि से उद्धृत किये जा रहे हैं। इन सभी सन्दर्भों का विस्तृत विवरण स्वस्थानों पर आयेगा, अतः यहाँ पर केवल संकेत मात्र ही किया जा रहा है। यद्यपि टीकाकार अरुणदत्त ने आर्तव शब्द से रजःस्राव ग्रहण करने का स्पष्ट निर्देश किया है[1] परन्तु संदर्भ-भेद से अष्टांगहृदयकार ने आर्तव से स्त्रीबीज आदि भी माना है, क्योंकि रजःस्राव के रक्त से गर्भाधान न हो, शुक्र के साथ स्त्रीबीज (आर्तव) मिलकर गर्भ का निर्माण करता है।

Ārtava, śoṇita. asṛk, raja, rakta, lohita etc. words are used in the classics to denote menstrual blood or ovum at different places, while *rudhira* and *puṣpa* denote only menstrual blood and *bīja* is used for ovum. Though commentator Aruṇadatta has specifically indicated to consider menstrual blood with word *ārtava*, yet, in A.H. word *ārtava* is used to denote ovum also. In subsequent description only references are cited, details are given at respective places.

(१) आर्तव (Ārtava)

(अ) रजःस्राव के लिए (for menstrual blood)

वह (वायु) प्रकुपित होकर आर्तव का अवरोध कर देती है; आर्तव का विमोचन होते ही तत्क्षण सुखानुभूति होती

१. ऋतौ भवमार्तवम्, स्त्रीणां यदपत्यमार्गात् शुद्धमीषत् कृष्णं विगन्धं च वायुप्रेरितं लोहितं प्रवर्तते तदार्तवमुच्यते।
(अ० ह० शा०१/१की० अरुण० टीका०)

है; न बहुत अधिक, न बहुत अल्प, इन्द्रगोप के वर्ण का आर्तव शुद्ध होता है आदि अनेकों स्थलों पर आर्तव शब्द रजःस्राव को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1]

The *vāyu* getting aggravated, obstructs the *ārtava;* discharge of *ārtava* brings immediate relief; neither too less, nor too much, resembling *indragopa* in colour is pure *ārtava,* in similar number of places the word *ārtava* is used to denote menstrual blood.

(आ) स्त्रीबीज के लिए (for ovum)

शुक्र एवं आतर्व के सम्मिश्रण (गर्भ) को वायु विभाजित करती है, उचित पथ से गर्भाशय में (शुक्र) प्रविष्ट होकर आर्तव से अभिसंसर्ग को प्राप्त होता है; इसी भांति के गर्भाधान या गर्भ से सम्बन्धित अनेकों स्थलों पर आर्तव शब्द का प्रयोग स्त्रीबीज (ओवम्) को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है[2]।

The word *ārtava* is used to connote ovum at number of places in relation to fertilization or zygote/embryo/fetus i.e. *vāyu* divides the combination of *śukra* and *ārtava; śukra* after entering uterus through appropriate passage gets admixed with *ārtava* etc.

---

१. स प्रकुपितो····· आर्तवमुपरुणद्धि ····· तदार्तवमुपरुध्यमानं॥ (च० सं० नि० ३/१४); आर्तवे सा विमुक्ते तु·····। (च० सं० चि० ३०/२६); नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत्। इन्द्रगोपकसङ्काशमार्तवं शुद्धमादिशेत्। (च० सं० चि० ३०/२२५-२२६)। योनिमभिप्रपन्नाः ····· योनिमुपप्रपन्त्यार्तवक्षं॥ (सु० सं० नि० २/१७)। आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः·····॥ (सु० सं० शा० २/५); तदार्तवं प्रशंसन्ति ·····। (सु० सं० शा० २/१७); दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति। (सु० सं० शा० २/२१)। ऋतुस्नाता ·····। आर्तवं वायुरादाय। (सु० सं० शा० २/४८); ऋतुस्तु॰ दृष्टार्तवः। अदृष्टार्तवापि ·····। (सु० सं० शा० ३/६); मासेनोपचितं ····· धमनीभ्यां तदार्तवम्। (सु० सं० शा० ३/१०); गृहीत ·····आर्तववहानां ····· गृहीतगर्भाणामार्तवं। (सु० सं० शा० ४/२४); बन्ध्यां नष्टार्तवां ····· । (सु० सं० उ० ३८/१०); अनार्तवस्तना षण्डी ·····। (सु० सं० उ० ३८/१८); शुक्रार्तवादयो दोषाः ·····। (सु० सं० उ० ३८/३१)। तथा रक्तमेव च ·····, ·····प्रवर्तमानमार्तवमित्याहुः॥ (अ० सं० शा० १/१०); तदेव कदाचिदार्तवं ·····। (अ० सं० शा० १/१६); आर्तवमपि शुक्रवद्दोषैः ····· (अ० सं० शा० १/२५); तत्राद्यांस्त्रीन् शुक्रार्तवदोषान् ·····। (अ० सं० शा० १/२६)। तथा ग्रन्थ्यार्तवे ····· (अ० सं० शा० १/३७)। कुणपपूयार्तवे ·····। (अ० सं० शा० १/३८)। सर्वेषु शुक्रार्तवदोषेषु ·····। इत्येवं विशुद्धशुक्रार्तवौ ·····। ऋतुस्तु दृष्टार्तवो ·····। (अ० सं० शा० १/३९, ४०); ····· तस्मात्ततः परमार्तवं न दृश्यते·····। (अ० सं० शा० २/१०); ····· गर्भकोष्ठार्तवोपगमन ·····। (अ० सं० नि० ११/४४); योन्यामुखमनुप्रविश्यार्तवमुपरुणद्धि ·····। (अ० सं० नि० ११/४५); तेऽशांसि ····· भगार्तवम्। (अ० सं० उ० ३८/१०); फेनिलारुण ····· रूक्षार्तवस्रुतिम्। (अ० सं० उ० ३८/३३); भृशोष्ण ····· सितार्तवाम्। (अ० सं० उ० ३८/४४)। निरुणद्ध्यार्तवं योन्यां ·····। (अ० ह० नि० ११/५०); ····· तनुरूक्षार्तवस्रुतिम्। (अ० ह० उ० ३३/३०)। ····· नीलपीतसितार्तवाम्। (अ० ह० उ० ३३/४३)।

२. भिनत्ति यावद्बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्तवं ·····। (च० सं० शा० २/१४); उचितेन पथा गर्भाशयमनुप्रविश्यार्तवेनाभिसंसर्गमेति॥ (च० सं० शा० ४/७); तथाऽपि आर्तवोत्पत्तिर्गर्भकाल एव भवति। (च० सं० शा० ४/३० की चक्र० टी०)। रक्तलक्षणमार्तवं गर्भकृच्च। (सु० सं० सू० १५/५); एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्तवा च ॥ (सु० सं० शा० २/२४); सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयम्·····। (सु० सं० शा० ३/३); संसृज्यते चार्तवेन। (सु० सं० शा० ३/४)। अथ शुद्धशुक्रार्तवमरोगं ·····। (अ० सं० शा० १/२२)। शुद्धयोनिगर्भाशयार्तवाया ·····। (अ० सं० शा० १/४०)। महाभूतैरनुगतमार्तवेनाभिमूर्च्छितम्·····। (अ० सं० शा० २/३); शुक्रार्तवेऽनिलेन ·····। (अ० सं० शा० २/६); आर्तवस्य च दोषेण ·····। अ० सं० नि० ११/३४)। शुद्धे शुक्रार्तवे सत्वः ·····। (अ० ह० शा० १/१)। शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं ·····। (अ० ह० शा० १/१९)।

Scanned with CamScanner

(२) शोणित *(Śoṇita)*

(अ) स्त्रीबीज के लिए *(for ovum)*

शुद्ध योनि, शोणित एवं गर्भाशय युक्त स्त्री; शुक्र एवं शोणित का गर्भाशय के अन्तर्गत संसर्ग; शुक्र एवं शोणित बीज हैं; शुक्र, शोणित एवं जीव का संयोग आदि अनेकों गर्भाधान या गर्भ से सम्बन्धित स्थलों पर शोणित शब्द का प्रयोग स्त्रीबीज (ओवम्) को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है।[1]

The word *śoṇita* is used to denote ovum at number of places in relation to fertilization or zygote/embryo/fetus i.e. the woman possessing healthy *yoni, sóṇita* and *garbhāśaya;* union of *śukra* and *sóṇita* inside the uterus; *śukra* and *śoṇita* are the seed; union of *śukra, sóṇita* and *jīva* etc.

(आ) रजःस्राव के लिए *(for menstrual blood)*

ऋतुस्राव से सम्बन्धित सन्दर्भों में यथा सद्योगृहीत गर्भा में शोणित का अवबन्ध ; स्त्री एवं पुरुष में शोणित एवं शुक्र का प्रादुर्भाव आदि में शोणित शब्द का प्रयोग रजःस्राव के लिए किया गया है[2]।

The word *śoṇita* is used to denote menstrual blood also at certain places i. e. cessation of *śoṇita* after conception, appearance of *śukra* and *śoṇita* at appropriate age in male and female respectively etc.

(३) असृक् *(Asṛik)*

(अ) स्त्रीबीज के लिए *(for ovum)*

गर्भाधान एवं गर्भ से सम्बन्धित स्थलों पर प्रयुक्त असृक् शब्द स्त्रीबीज (ओवम्) का द्योतक है यथा असृक् का सम्पत् होना भी सुखी गर्भ के लिए आवश्यक, असृक् दोष से गर्भाङ्ग-विकृति आदि[3]।

The word *asṛk* used in relation to fetus i. e. normalcy of *asṛk* for normal fetus, abnormality of *asṛk* a cause of teratologic abnormality etc. refer to ovum.

१. ..... स्त्रियाश्चाप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयाया ... ... शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाशयगतं .....। (च० सं० शा० ३/३); बीज इति शुक्रशोणिते .....। (च० सं० शा० ३/१७ की चक्र० टी०); शुक्रशोणितजीवसंयोगे.....। (च० सं० शा० ४/५); .....अव्यापन्नयोनिशोणितगर्भाशया.....। (च० सं० शा० ४/७); .....शोणितगर्भाशयावुपपद्यन्ते, ...शोणितगर्भाशयौ दूषयन्ति .....।शोणिते गर्भाशयबीजभागः शोणिते गर्भाशयबीजभागावयवः .....। (च० सं० शा० ४/३०); दुष्टशोणितजं नार्याः..... । (च० सं० चि० ३०/२९)। तस्य खल्वेव ..... शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य.....। (सु० सं० शा० ४/४); शुक्रशोणितसंयोगे .....। (सु० सं० शा० ४/६३); शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मविकार .....। (सु० सं० शा० ५/३); शुक्रशोणितं वायुनाभिप्रपन्नमवक्रान्त .....। (सु० सं० शा० १०/५७)। यदा तु स्त्रियाः शोणितगर्भाशयौ .....। (अ० सं० शा० २/४७)। यदा ह्यस्याःशोणिताख्ये बीजे.....। (अ० सं० शा० २/४८)। बीजशोणितवाय्वाकाश .....। (का० सं० शा० ३/३)।

२. तत्र सद्योगृहीतगर्भाया..... शुक्रशोणितयोरवबन्धः । (सु० सं० शा० ३/१३)। ..... स्त्रीपुंसयोः शोणितशुक्रे .....। .....शोणितशुक्रयोर्मध्ये .....। (का० सं० शा० ५/४); वायुः शोणितमादाय ..... वहति शोणितम्। (का० सं० खि० ९/२६); ....प्रतिघातात् सशोणितः। (का० सं० खिल० ९/२७); संवृत्तं शोणितं तत्र .....। (का० सं० खिल० ९/२८)।

३. शुक्रासृगात्माशयकालसम्पत् .....। (च० सं० शा० २/६); शुक्रासृगाहारविहारदोषात् .....। (च० सं० शा० २/७); शुक्रासृजोर्वृद्धिमुपैति .....। (च० सं० शा० २/१६); ..... शुक्रास्राऽननुबन्धनम् ॥ (अ० ह० शा० १/३८)।

(आ) रजःस्राव के लिए *(for menstrual blood)*

असृग्दर शब्द इसी भाँति के अनेकों स्थलों पर प्रयुक्त असृक् शब्द रजःस्राव का द्योतक है[1]।

The term *asṛk* used in *asṛgdara* and similar conditions refers to menstrual blood.

(४) रज *(Raja)*

(अ) स्त्रीबीज के लिए *(for ovum)*

माता, पिता, रज एवं शुक्र के माध्यम से पञ्चमहाभूतों का गर्भ में आगमन आदि स्थलों पर रज शब्द स्त्रीबीज (ओवम्) के लिए प्रयुक्त है[2]।

The word *raja* for ovum is used in certain references i.e. mother, father, *raja* and *śukra* as a source of *mahābhūtas* in fertilization etc.

(आ) रजःस्राव के लिए *(for mensturtal blood)*

रज का अधिक प्रदरण आदि सन्दर्भों में रज शब्द रजःस्राव का द्योतक है[3]।

Excess discharge of *raja* etc. references denote it to be menstrual blood.

(५) रक्त *(Rakta)*

(अ) स्त्रीबीज के लिए *(for ovum)*

रक्त का विदाह, रक्त का पीड़न, रक्त की शुद्धता, रक्त से शुक्र का परिवेष्टन आदि गर्भ या गर्भाधान से सम्बन्धित सन्दर्भों में रक्त शब्द स्त्रीबीज के लिए प्रयुक्त हुआ है[4]।

१. असृग्निरुद्धं पवनेन नार्या...। .... तदासृगस्रावि .....। ८। दुष्टाऽसृगेकं न च गर्भसंज्ञं । ९। (च० सं० शा० २); तस्मादसृग्दरं प्राहुः .....। (च० सं० चि० ३०/२०८) (एवं विभिन्न दोषिक असृग्दर के लक्षणों में)। असृग्दरं विजानीयात्.....। असृग्दरो भवेत् सर्वैः। (सु० सं० शा० २/१८-१९); तद्गर्भ..... असृक् पुनः। (सु० सं० शा० ३/११); सदाहं प्रस्रस्त्यस्रं यस्यां .....। (सु० सं० उ० ३८/१२)। अतिप्रसङ्गेन ..... तदेवासृग्दरं .....। (अ० सं० शा० १/११) । शून्ना ..... नीलपीतास्रवाहिनी.....। (अ० सं० उ० ३८/४८)। ..... दुष्टासृगाश्रये। (अ० ह० नि० ११/५३); ..... रक्तयोन्याख्यासृगतिस्तुते । (अ० ह० उ० ३३/४३); नीलपीतास्रवाहिनी। (अ० ह० उ० ३३/४७)।

२. भूतानि मातापितृसंभवानि रजश्च शुक्रं....। (च० सं० शा० २/३४)। सवातमुद्गिरेद् ... रजसायुतम्। (सु० सं० उ० ३८/१२)।

३. गते पुराणे रजसि नवे .....। (च० सं० शा० ४/७); रजः प्रदीर्यते यस्मात् .....। (चि० सं० चि० ३०/२०९)। रसादेव ..... रजः सङ्ग .....। (सु० सं० सू० १४/६); सफेनिल ..... रजःकृच्छ्रेण .....। (सु० सं० उ० ३८/९)। योषितश्चोन ..... रजस्तन्यादय इति। (अ० सं० शा० १/२१)। तस्याश्च रजोवाहिनां .....। (अ० सं० शा० २/१०); सा फेनिलं रजः .....। (अ० सं० उ० ३८/३६ एवं अ० ह० उ० ३३/३३); कर्णिकां .....रजोमार्गनिरोधिनीम्॥ (अ० सं० उ० ३८/५१)। मासि मासि रजः स्त्रीणां .....। (अ० ह० शा० १/७); ..... वातपित्ताभ्यां क्षीयते रजः। (अ० ह० उ० ३३/४५); रजोमार्गनिरोधिनीं (अ० ह० उ० ३३/५०)। रजस्वलायाश्चेत् .....। (का० सं० शा० ५/५)। रजोवहाः सिरा यस्मिन् रजःप्रविसृजन्त्यतः ॥ (का० सं० खि० ९/१७)। रजोवहाः समावृत्तः .....। (का० सं० खि० ९/२९)

४. तदस्याः पीडितं विदहति रक्तं शुक्रं च .....। (च० सं० शा० ८/६)। .....वामपार्श्वगायाः ..... रक्तशुक्रे। (अ० सं० शा० १/५९)। ..... रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि। (अ० ह० शा० १/८)। ..... रक्तेन परिवेष्टयते। (का० सं० शा० २/१)।

Scanned with CamScanner

Vitiation of *rakta*, obstruction/compression of *rakta*, enveloping of *śukra* by *rakta* etc. references pertaining to fertilization or zygote refer to the use of word *rakta* for ovum.

(आ) रजःस्राव के लिए (for menstrual blood)

रक्त का प्रवर्तमान होना, वायु के द्वारा रक्त का परिग्रहण आदि सन्दर्भों में रक्त शब्द रजःस्राव के लिए प्रयुक्त है[1]।

Appearance/discharge of *rakta*, withholding of *rakta* by *vāyu* etc. refer it to be menstrual blood.

(६) लोहित (Lohita)

(अ) स्त्रीबीज (For ovum)

लोहित एवं रेतस् की चेतनावान या चेतना धातु से युक्तता आदि सन्दर्भ में लोहित शब्द स्त्रीबीज के लिए प्रयुक्त है[2]।

Association of *lohita* and *retas* with *chetanā* indicate that word *lohita* is used for ovum.

(आ) रजःस्राव के लिए (for menstrual blood)

स्त्री में लोहित की अवस्थिति सन्दर्भ रजःस्राव का द्योतक है[3]।

Reference of situation of *lohita* in women indicate it to be menstrual blood.

(७) रुधिर (Rudhira)

रुधिर शब्द केवल रजःस्राव के लिए प्रयुक्त हुआ है यथा रुधिर का योनि में सञ्चय आदि[4]।

The word *rudhira* is used for menstrual blood only.

(८) पुष्प (Puspa)

पुष्प शब्द केवल योनिपथ से होने वाले रक्तस्राव के लिए ही अनेकों स्थलों में प्रयुक्त हुआ है[5]।

Word *puspa* is used to denote only bleeding through vaginal passage.

१. न च प्रवर्तमाने रक्ते बीजं। (सु० सं० शा० २/३१); वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं ..... । (सु० सं० उ० ४२/१४) । ततो विपरीतैः ..... प्रवृत्ते रक्ते ..... । (अ० सं० शा०१/१७); मासेनोपचितं रक्तं .....। (अ० सं० शा० १/४३) । मासेनोपचितं रक्तं ..... । (अ० ह० शा० १/२३) । ..... केवल एव रक्ते । (अ० ह० शा० २/६१) । यदारक्तवहा रक्तं .....। (का० सं० खिल० ९/२३)।

२. चेतनावन्तः शाश्वता लोहितरेतसो .....। (सु० सं० शा० १/१६) ।

३. अवस्थितं लोहितमङ्गनाया .....। (अ० ह० शा० २/६१) ।

४. संचितं रुधिरं योनिः .....। (का० सं० खिल० ९/२२) ।

५. ततः पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत .....। (च० सं० शा० ८/५) । पुष्पकाले शुचिस्तस्मात् .....। (सु० सं० शा० ३/१२) । ततः पुष्पदर्शने .....। (अ० सं० शा० १/४४); ततः स्नानात् .....। पुष्पदिनात् .....। (अ० सं० शा० १/४७) । ततः पुष्पेक्षणादेव । (अ० ह० शा० १/२४); पुष्पभूतं हि तद्दैवात् ...। (का० सं० खिल० ९/१७) ।

(९) बीज (Bija i.e. ovum)

स्त्री-शरीर-क्रिया से सम्बन्धित स्थलों पर प्रयुक्त बीज शब्द स्त्रीबीज (ओवम्) का द्योतक है[1]।

Word *bīja* used in relation to female physiology refers to ovum.

(आ) आर्तव, रज या रक्त आदि शब्दों का कुछ अन्य अर्थों में प्रयोग (Other substances for which these words are used)

(१) गर्भ की लिङ्गोत्पत्ति के कारणभूत (Factor responsible for formation of sex of embryo)

संहिताओं में गर्भ की लिङ्गोत्पत्ति के लिये आर्तव, रज, रक्त एवं शुक्र को कारणभूत माना गया है, आचार्यों ने लिखा है कि शुक्र की बहुलता से पुत्र एवं आर्तव, रज या रक्त के बाहुल्य से पुत्री की उत्पत्ति होती है।[2] इसका आधुनिक विषय से सामञ्जस्य बहुत ही कठिन है।

Predominace of *ārtava*, *rakta* or *raja* of female and *śukra* of male gives rise to birth of female and male respectively. Congruity of these with any substance known to-day is not possible.

(२) स्त्री-शरीर से संभोग के समय होने वाले स्राव के लिए (For excretion during coitus)

घृतपिण्डो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते । विसर्पत्यार्तवं नार्यास्तथा पुंसां समागमे॥ (सु० सं० शा० २/३६)

जिस प्रकार अग्नि के आश्रित होने पर घृत द्रवीभूत होता है, उसी प्रकार पुरुष के समागम से स्त्रियों में आर्तव प्रसरण करता है।

टीकाकार डल्हण ने इस श्लोक का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि पुराणार्तव तीन दिवस रजःस्रावकाल में स्रवित हो जाता है। नवीनार्तव अल्प एवं घन होने के कारण प्रवर्तन में अक्षम होता है, एवं समागम-काल में इन्द्रियद्वय के घर्षण से उत्पन्न ऊष्मा के कारण विलीन हो उपसर्पित हो शुक्र एवं जीव के साथ मिल गर्भोत्पत्ति करता है। यह आर्तव ऋतुकाल में उत्पन्न होने वाला शोणित है। इसी वर्णन में आगे इन्होंने वृद्ध वाग्भट का उद्धरण देते हुए समागम के समय स्त्री-शरीर से शुक्र का भी क्षरण माना है जो गर्भ के लिए अनुपयोगी है[3]; अतः आचार्य डल्हण इस आर्तव को स्त्रीबीज मानते

१. बीजेन कन्यां च सुतं ...। (च० सं० शा० २/१२); बीजात् समांशादुपतप्तबीजात् । (च० सं० शा० २/१८); बीजात्मकमाशयकालदोषैः ...। (च० सं० शा० २/२९); यस्य यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तोभवति ...। (च० सं० शा० ३/१७); जायन्ते बीजदोषाच्च ...। (च० सं० चि० ३०/८); बीजदोषातु गर्भस्य ...। (च० सं० चि० ३०/२४)। बीजेऽन्तर्वायुनाभित्रे ... (सु० सं० शा० २/३७); जायन्ते बीजदोषाच्च ... (सु० सं० उ० ३८/६) ... मातृजस्यावयवस्य बीजे बीजांशे वा ... (अ० सं० शा० २/४७); यदाह्यस्याः ..... बीजे गर्भाशयस्थे ....। (अ० सं० शा० २/४८) । ... निर्वर्तका ये बीजांशास्तेषाम् ....। (अ० सं० शा० २/५०); दुष्टार्तवादपद्रव्यैर्बीजदोषेण .....। (अ० सं० उ० ३८/३२) । स्त्रीगर्भे बीजदोषतः .....। (अ० सं० उ० ३८/४२) । दुष्टार्तवात् ..... बीजदोषेण दैवतः । (अ० ह० उ० ३३/२८); ..... स्त्रीगर्भे बीजदोषतः (अ० ह० उ० ३३/३९) ।

२. च० सं० शा० २/१२,१३; सु० सं० शा० ३/५; अ० सं० शा० १/५० तथा शा० २/५ एवं अ० ह० शा० १/५।

३. ननु पुराणमार्तवमुपचयाद् दिनत्रयं स्रुत्वा स्वयमेव विनिवृत्तं त्वल्पं स्त्यानीभूतमिवप्रवर्तितुमक्षमं तत् कथमार्तवसङ्गारो येन तत्संसृष्टं शुक्रं गर्भजननसमर्थं भवतीत्याशङ्क्याह-घृतेत्यादि । पुंसां समागमे इन्द्रियद्वयसंघर्षजेनोष्मणा विलीनमार्तवं विसर्पति । तच्च विसर्पितं शुक्रोपगतं गर्भाशयमनुप्राप्तं जीवोपगतं गर्भसम्भवहेतुर्भवति । आर्तवमृतुकालजं शोणितं, शुक्रमप्यासां पुंसां सामागमे क्षरति, न तु तद्गर्भोपयोगीति तत्क्षरणप्रतिपादनं न युक्तम् । तथा च वृद्धवाग्भटः-यौषितोऽपि .....। (सु० सं० शा० २/३६ की डल्हण टी०)

Scanned with CamScanner

हैं। विद्वद्वर घाणेकर जी भी इस मत से सहमत हैं[1]।

वैज्ञानिक तथ्यों से अभी तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिल सका है कि मानव जाति में सम्भोग से स्त्रीबीज के क्षरण में कोई भी प्रभाव पड़ता हो, अतः इस आर्तव को स्त्रीबीज मानना युक्तिसंगत नहीं होगा। टीकाकार डल्हण सम्भोग के समय गर्भ के लिए अनुपयोगी शुक्र का भी क्षरण मानते हैं। एक ही क्रिया (सम्भोग) से शुक्र एवं आर्तव दोनों का क्षरण भी युक्तिसंगत नहीं है ; अतः इस आर्तव से यहाँ पर सम्भोग के समय स्त्री-प्रजननांग से होने वाले अन्य स्राव ही अभिप्रेत प्रतीत होते हैं।

As butter melts in contact with fire, similarly woman secrets *ārtava* during coitus with male. Ḍalhaṇa has explained that *purāṇārtava is* excreted during three days of menstrual blood loss. *Navīnārtava* being less and solid can not come out, but due to heat generated during coitus it is melted, excreted and gets mixed with *śukra*, thus, initiates conception. Further he quotes Vāgbhaṭa and says that woman secretes *śukra* during coitus which is useless for conception. Probably Ḍalhaṇa refers to this *ārtava* as ovum, which is accepted by Ghāṇekara jī.

In human being coitus does not initiate ovulation, thus, it is not advisable to accept *ārtava* or *śukra* excreted during coitus as ovum, this may be considered only as local discharges of female reproductive system coming out during coitus.

***(३) गर्भावस्था के समय होने वाले रक्तस्राव के लिए** (For bleeding during pregnancy)*

संहिताओं में पुष्प, रक्त, शोणित, आर्तव आदि शब्द गर्भावस्था के समय होने वाले रक्तस्राव के लिए भी प्रयुक्त हुए है[2]।

The words *'puṣpa'*, *'rakta'*, *'śoṇita'* *'ārtava'* etc. have been used to denote bleeding during pregnancy (as in abortions) also.

***(४) स्त्री-शरीर के अंगरसों को प्रदर्शित करने के लिए** (To denote ovarian hormones)*

यद्यपि संहिताओं में अंगरसों का कोई स्पष्ट वर्णन प्रतीत नहीं होता, फिर भी यत्र-तत्र उपलब्ध विषय को एकत्र करने पर ऐसा आभास होता है कि महर्षियों को शरीर के प्रजनन-सम्बन्धी विशिष्ट अंगरसों का ज्ञान था, जिसे उन्होंने आर्तव, शोणित या रज शब्द से व्यक्त किया है। इस विचार की पुष्टि के लिए सम्बन्धित उद्धरण निम्नांकित हैं :-

(१) महर्षि वाग्भट, काश्यप एवं सुश्रुत संहिता के टीकाकार डल्हण ने रज या शोणित को उपस्थिति शुक्र के सदृश बाल्यावस्था से मानी है एवं अनुद्भूति का कारण अति सूक्ष्मत्व कहा है[3]। मासिकस्राव का रक्त शरीर में कहीं सूक्ष्म रूप में एकत्र नहीं रहता क्योंकि इसका निर्माण गर्भाशय में प्रतिमास सूक्ष्म रक्तवाहिनियों के पूरण से होता है। यदि इस रज से स्त्रीबीज (ओवॅम) माना जाय क्योंकि ये शरीर में बाल्यावस्था से ही विद्यमान रहते हैं तो द्वादश वर्ष में उसकी उद्भूति सिद्ध करना कठिन होगा; क्योंकि यह अतिसूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्य चक्रपाणि ने स्पष्ट लिखा है कि जिस आर्तव की अभिव्यक्ति १२ वर्ष में होती है उसका निर्माण शरीर में गर्भकाल में ही हो जाता है[4]। अतः यह बाल्यावस्था

१. सु० सं० शा० २/३८ घाणेकर-टीका (पृष्ठ सं० ४१)

२. च० सं० शा० ८/२४, २५, २६; सु० सं० शा० १०/५७; अ० सं० शा० ४/३, ५, ६, ७, ११, १२, १३; अ० हृ० शा० २/१

३. अ० सं० शा० १/२१; का० सं० शा० ५/४; सु० सं० सू० १४/१८ की डल्हणटीका

४. आर्तवं च यद्यपि द्वादशवर्षादूर्ध्वं व्यज्यते, तथाऽपि आर्तवोत्पत्तिगर्भकाल एव भवति।
(च० सं० शा० ४/३० की चक्र० टीका)

में उपस्थित रज आदि शब्द अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों (ईस्ट्रॉजन आदि) के ही प्रतीक प्रतीत होते हैं।

(२) महर्षि सुश्रुत ने धातु-परिणाम का वर्णन करते हुए एक मास में शुक्र की उत्पत्ति के साथ स्त्रियों में आर्तव की भी उत्पत्ति मानी है[1]। आचार्य भावमिश्र ने इस वर्णन का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि स्त्रियों में एक आशय (गर्भाशय) अधिक होने के कारण आर्तव सातवीं तथा शुक्र आठवीं धातु होती है। स्त्रियों में गर्भोपयोगी समस्त कार्य आर्तव द्वारा सम्पन्न होते हैं, एवं बल तथा वर्ण की पुष्टि शुक्र के द्वारा होती है[2]।

महर्षि शार्ङ्गधर ने शुक्र के साथ स्त्रियों में एक मास में रज की उत्पत्ति मानी है[3]।

अन्यत्र टीकाकार डल्हण ने आर्तव को रक्त-लक्षण होने के कारण रक्त के कर्म आर्थात् जीवन को इसका कर्म माना है[4]।

यहाँ पर आर्तव शब्द से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों का बोध होता है।

(३) महर्षि सुश्रुत ने युवावस्था के प्रारम्भ में रज के उपचय से शनैः शनैः स्तन, गर्भाशय एवं योनि की वृद्धि का वर्णन किया है[5]। आधुनिक विज्ञान में यह स्पष्ट हो चुका है कि स्तनादि की वृद्धि ईस्ट्रॉजन नामक अंगरस के कारण होती है। अतः यहाँ पर रज शब्द इस अंगरस का द्योतक माना जा सकता है।

(४) महर्षि सुश्रुत ने धातुओं आदि के क्षय के लक्षण वर्णन करते समय आर्तव-क्षय से आर्तव का यथोचित काल में अदर्शन, अल्पमात्रता एवं योनिवेदना आदि लक्षण बताए हैं। टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने योनि-प्रदेश के अभिपूरक आर्तव के क्षय-जन्य कुपित वायु से इन लक्षणों की उत्पत्ति मानी है[6]। रजःस्राव गर्भाशय के सम्पूर्ण मास में संचित रक्त का स्राव है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संचय की प्रक्रिया में अल्पता होने से ही उपर्युक्त लक्षण मिलते हैं जिस संचय के लिए डिम्बग्रन्थि के ईस्ट्रॉजन की अत्यधिक आवश्यकता होती है, अतः यहाँ इस आर्तव-क्षय से ईस्ट्रॉजन की कमी को ग्रहण कर सकते हैं।

(५) महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने अपरा-निर्माण के वर्णन में लिखा है कि गर्भ से आर्तववह स्रोतस् का मुख अवरुद्ध होने के कारण वह आर्तव ऊपर भाग में उपचयित हो अपरा का निर्माण करता है, एवं वहाँ से बचा हुआ रक्त और ऊपर जाकर स्तनों की वृद्धि करता है तथा स्तनों एवं ओष्ठ के कृष्णत्व का उत्पादक होता है[7]। यही रक्त कफ से उपरंजित हो स्तन्यता को प्राप्त हो प्रसूता में स्तन्य के रूप में हो जाता है[8]। गर्भाधान के कारण डिम्बग्रन्थि का सतत कार्यरत कॉर्पस लुटिअॅम अपरा-निर्माण में सहायक होता है। अपरा का सूक्ष्मतम स्वरूप भी अन्य अंगरसों के साथ मेमोजेनिक अङ्गरस का निर्माण कर पीयूषग्रन्थि एवं डिम्बग्रन्थि की सहायता से स्तनवृद्धि करता है। यद्यपि चूचुक एवं ओष्ठ आदि की कृष्णता

१. एवं मासेन रसः शुक्रं स्त्रीणांच आर्तवं भवति। (सु० सं० सू० १४/१४)

२. स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वसम्मतम्। तासामपि बलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि॥
एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्तवं शुक्रमष्टममिति बोधितम्। आशयाधिक्यवत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१८८)

३. पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात्। शुक्रत्वं यन्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत्॥ (शा० सं० पूर्व० ६/१०)

४. चकारात् रक्तकर्मापि जीवनसंज्ञं करोति। (सु० सं० सू० १५/५ की डल्हण टीका)

५. सु० सं० सू० १४/१८

६. आर्तवक्षये यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च। (आर्तवक्षय इत्यादौ योनिवेदना तद्देशाभिपूरकार्तवक्षयकुपितेन वायुना-चक्र०) (सु० सं० सू० १५/१२ एवं चक्रपाणि टीका)

७. सु० सं० शा० ४/२४; अ० सं० शा० २/१०, ११

८. सु० सं० शा० ४/२४ की डल्हण टीका; अ० सं० शा० २/१२

Scanned with CamScanner

में मुख्यत: मिलैनिन का प्रभाव होता है पर ईस्ट्रोजन भी इस लक्षण के सम्पादन में सहायक होता है[1], अत: यह वर्णन भी अंगरसों के अर्थ का ही द्योतक प्रतीत होता है।

(६) सभी आचार्यों ने योनिरोगों के कारणों में आर्तव-दोष एवं बीज-दोष को माना है[2]। समस्त योनिरोगों का अध्ययन करने पर ऐसा आभास होता है कि कतिपय व्यापद् स्त्री-शरीर के विशिष्ट अंगरसों की न्यूनता के लक्षणों से सामजस्य रखते हैं। चूँकि यहाँ बीज शब्द पृथक् दे दिया गया है, अत: आर्तव शब्द से अंगरसों का अर्थ ग्रहण किया जा सकता है।

(७) महर्षि वाग्भट ने आस्थापनार्ह व्याधियों में आर्तवनाश तथा रज:क्षय दोनों ही व्याधियों का समावेश किया है[3]। आर्तव एवं रज दोनों ही शब्दों का एक साथ प्रयोग किसी एक शब्द के अङ्गरस परक होने का आभास देता है। स्त्रीबीज का नाश या क्षय अनुमानगम्य है दृष्टिगम्य नहीं, अत: यहाँ विचारणीय नहीं है।

(८) महर्षि हारीत[4] ने बन्ध्या स्त्रियों में स्तन्य की अनुपस्थिति के कारण अल्पार्तव की उपस्थिति का वर्णन किया है। हाइपॉथैलमस, प्रोलेक्टिन के अतिरिक्त पीयूष ग्रन्थि के अन्य सभी स्रावों के लिए उत्तेजक पदार्थ भेजता है अर्थात् यदि हाइपॉथैलमस अधिक कार्य करे तो प्रोलेक्टिन (स्तन्योत्पदक अङ्गरस) नहीं आएगा तथा पीयूष ग्रन्थि के अन्य अङ्गरस अधिक मात्रा में हो अल्पार्तव उत्पन्न कर सकते हैं, अर्थात् यह वर्णन भी अङ्गरसों का ही द्योतक है।

(९) टीकाकार चक्रपाणि ने 'रज' के भी विषम होकर व्याधि उत्पादन का उल्लेख कर[5] इसका अप्रत्यक्ष रूप से धातु के अन्तर्गत समावेश किया है। इस धातु रूप 'रज' को अङ्गरस का परिचायक माना जा सकता है।

Explicit description of hormones is not available in *āyurvedika* classics, however, indirect inference can be drawn from scattered references such as:-

(i) Vāgbhaṭa, Kāśyapa and Ḍalhaṇa accept presence of *raja* or *śoṇita* from the very childhood just like *śukra*, which is not visible due to very minute quantity. Menstrual blood is not accumulated anywhere in the body, rather it is formed every month in the uterus. If with this description ovum is accepted due to its presence from embryonic life, then its explicitness at twelve years of age would be difficult to explain, because it is microscopic structure. Cakrapāṇi has written that *ārtava* which is explicit at twelve years is formed in embryonic life. This reference probably indicates description of hormones specially ovarian.

(ii) Suśruta while describing the formation of *dhātus* accepts formation of *ārtava* also alongwith *śukra* in females. Bhāvamiśra elaborating this, writes that women possess one extra *dhātu* just as presence of one extra *āśaya* (*garbhāśaya*), thus, have *ārtava* as seventh and *śukra* as eighth *dhātu*. All the functions relating to conception are performed by *ārtava*, while energy and complexion etc. are promoted by *śukra*. It is also very essential for life. Here also *ārtava* refers to hormones.

---

१. प्रिंसिंपल ऑव् गाइनिकॉलॅजि (जे. कॉट पृष्ट ११२)

२. च० सं० चि० ३०/८; सु० सं० उ० ३८/५; अ० सं० उ०३८/३२; अ० ह्र० उ० ३३/२८

३. तत्रास्थाप्या ..... शुक्रार्तवस्तन्यनाशरज:क्षयोन्माद .....। (अ० सं० सू० २८/१०)

४. बन्ध्यानां .....। क्षीरं च न भवेत्तस्मादार्तवं चाधिकं यत: ॥ (हा० सं० प्रथ० स्था० ८/१०)

५. .....विकारो धातुवैषम्यं। धातवो वातादयो रसादयश्च तथा रज: प्रभृतयश्च तेषां वैषम्यं .....।
(च० सं० सू० ९/४ की चक्र० टीका)

(iii) Suśruta accepts the development of breasts, uterus, vagina and vulva etc. during adolescence due to gradual accumulation of *raja*, here *raja* refers to hormones specially estrogen.

(iv) Suśruta has enumerated amenorrhoea, oligomenorrhoea and pain in vagina etc. symptoms due to decrease of *ārtava*. Cakrapāṇi has explained that these symptoms are caused by *vāyu* aggravated due to decrease of *ārtava* responsible for proper nourishment of reproductive system. This reference also indicates that probably *ārtava* refers to estrogen.

(v) Suśruta and Vāgbhaṭa, while describing the formation of placenta write that due to obstruction to orifices of *ārtavavaha srotas* by fetus the *ārtava* goes upwards, gets accumulated and forms placenta, left over *ārtava* moves further upwards and helps in the development of breast and increases black pigmentation of areola and lips etc. After conception the hormones formed from corpusluteum help in placentation and placental hormones alongwith ovarian and pituitary hormones help in development of breasts and formation of breast milk. Though excess pigmentation over face or areola is caused by melanin, yet estrogen plays important role in this process. Since the sex hormones are responsible for all these changes i.e. amenorrhoea, placenta formation, breast changes and pigmentation, thus this description can also be taken for hormones.

(vi) For gynecological disorders *ārtava* and *bija* are also causative factors, since *bīja* or ovum is already included, hence, *ārtava* probably refers to hormones.

(vii) While giving indications for *basti*, Vāgbhaṭa has included *ārtavanāśa* and *rajaḥkṣaya* both. Use of both the words i. e. *ārtava* and *raja* indicates that probably one word refers to hormones; as ovum is invisible, thus, can not be considered here.

(viii) Hārīta says that infertile women have more amount of *ārtava*, because they can not secrete milk. The hypothalamus has inhibiting factor for prolactine responsible for milk secretion and releasing factors to all other anterior pituitary hormones. If hypothalamus becomes hyperactive, then prolactine will not be secreted, while secretion of more amount of other pituitary hormones may cause menorrhagia, or in other words this also refers to hormones.

(ix) Cakrapāṇi says that ailments develop due to disequilibrium of *dhātus* i.e. *vāta* etc., *rasa* etc. and '*raja*' etc., this reference may be considered for ovarian hormones responsible for certain gynecological disorders.

स्त्री शुक्र (Female śukra)

यदा नार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन। मुञ्चतः शुक्रमन्योऽन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥
(सु० सं० शा० २/४७ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/५७ व १८७)

योषितोऽपि स्ववन्त्येव शुक्रं पुंसः समागमे। गर्भस्य तत्र किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥
(अ० सं० शा० १/७२ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/१८७ -'गर्भस्य तत्र' के स्थान में 'तत्र गर्भस्य')

जब अत्यन्त कामातुर हुई स्त्रियाँ समागम करती हैं, और किसी प्रकार एक दूसरे में शुक्र का उत्सर्ग करती हैं, तब

Scanned with CamScanner

अनस्थि गर्भ पैदा होता है। अन्यत्र भी स्त्री में शुक्र की उपस्थिति का वर्णन है[1]।

महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि स्त्रियाँ भी पुरुष के साथ संगम करते समय शुक्र का क्षरण करती हैं परन्तु यह शुक्र गर्भ-स्थिति में कोई भाग नहीं लेता।

टीकाकार अरुणदत्त ने संभोग के समय स्त्री-शरीर से (रक्त) रेतस् के क्षरण की कल्पना की है एवं उसे गर्भ के लिए अनुपयोगी बताया है, जिसमें अष्टांगसंग्रह का उपर्युक्त श्लोक भी उद्धृत किया है[2]।

महर्षि हारीत ने भी संभोग के समय स्त्री के द्वारा शुक्रोत्सर्ग का उल्लेख किया है।[3]

इस स्त्री-शुक्र की आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में कोई भी संज्ञा निश्चित करने के साथ ही शुक्र-धातु का स्त्री-शरीर-दृष्ट्या विचार आवश्यक प्रतीत होता है।

When two hypersexual women indulge in sexual act, they secrete *śukra* in each other, which results in fetus devoid of bones. Vāgbhaṭa I clarifies that though woman also secrets *śukra* during coitus however, that is useless for conception.

Commentator Aruṇadatta has accepted discharge of *retas* by women also during coitus which is useless for conception. Hārīta says that females also discharge *śukra* during coitus.

Before attempting to discuss this *śukra*, it would be advisable to reconsider *śukra-dhātu* in relation to female body.

शुक्रधातु (स्त्री-शरीर के परिपेक्ष्य में) (Śukra-dhātu in relation to female body)

शरीर सप्तधात्वात्मक है। अन्तिम धातु शुक्र का स्थान सर्वशरीर कहा गया है। यद्यपि इसके उद्भव की प्रतीति षोडश वर्षोपरांत होती है, पर सूक्ष्मरूप में उपस्थिति जन्मोपरांत से रहती है[4]। यदि शुक्र के कार्यों का उसके क्षयादि के लक्षणों को दृष्टिगत रखते हुए समष्टि रूप से अवलोकन किया जाय तो वे निम्नांकित होंगे:-

(१) धातु रूप होने से शरीर के धारण एवं परवर्ती धातु के पोषण के लिए आवश्यक[5]।

१. सु० सं० शा० २/३७; युग्म में पुत्र पुत्री होने के कारणों के अन्तर्गत उद्धृत।

२. अ० ह० शा० १/५ की अरुणदत्त टीका। (पृष्ठ ५२)

३. ..... स्त्री शुक्रं विचिनोति च ॥ (हा० सं० तृ० स्था० ३१/५)

४. (अ) यथा हि पुष्पमुकुलस्थो गन्धो न शक्यमिहास्तीति वक्तुं, नैव नास्तीति चास्ति, सतां भावानामभिव्यक्तिरिति ज्ञात्वा केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते, स एव गन्धो विवृतपत्रकेशरे कुसुमे कालान्तरेणाभिव्यक्तिं गच्छति; एवं बालानामपि वयः परिणामाच्छुक्रस्य प्रादुर्भावो भवति॥ (सु० सं० सू० १४/१५)

(आ) यथा मुकुलपुष्पस्य सु(स्व)गन्धो नोपलभ्यते। लभ्यते तद्विकाशात् तथा शुक्रं हि देहिनाम्॥ (च० सं० चि० २/४ का ३९)

(इ) अ० सं० शा० १/२१ एवं का० सं० शा० ५/४।

(ई) बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यान्न दृश्यते। पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥
तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वाद्व्यक्तिमेति हि। कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१९३, १९४)

(उ) तरुणस्य कुमारस्य वर्धमानेषु धातुषु। अस्थिमज्जसु पूर्णेषु शुक्रं न प्रतिपद्यते ॥
अङ्गाङ्गेषु प्रवृद्धेषु प्रतिमूलेषु धातुषु। शुक्लं च षोडशे वर्षे सुव्यक्तं प्रतिपद्यते॥ (भे० सं० शा० २/२,३)

५. रसादयस्तु शरीरधारकतया धात्वन्तरपोषकतया च धातु शब्देनोच्यन्ते .....। शुक्रं, तु ओजोजनकत्वाद् धात्वन्तर्गतमेव। (च० सं० चि० १५/१७ की चक्र० टीका)

(२) गर्भोत्पादन के लिए आवश्यक[1], गर्भांगों को विकृत करने में समर्थ[2] एवं गर्भ-लिंग निर्माण में सहायक।[3]

(३) शरीर के बल-वर्ण उपचय के लिए आवश्यक एवं हर्ष तथा प्रीति कारक[4]।

(४) दोषों से विकृत होने का स्वभाव एवं विकृत होने पर गर्भाधान में असमर्थता[5]।

शुक्र का स्थान यद्यपि शुक्रधराकला आश्रित सर्वशरीर है,[6] परन्तु यह विशेष रूप से मज्जा, मुष्क एवं स्तनों में स्थित रहता है[7]। विभिन्न आचार्यों के मत से शुक्रवाही स्रोतस् का मूल वृषण, शेफ, स्तन एवं मज्जा है[8]। शुक्रधरा कला यद्यपि सर्व शरीर में व्याप्त है, पर इसका विशिष्ट स्थान बस्तिद्वार एवं मूत्रमार्ग के पार्श्व में है[9]। संभोग के समय शुक्र पुरुष के शरीर से च्युत होकर योनि में प्रविष्ट हो गर्भ का निर्माण करता है[10]।

शुक्र एवं शुक्र के निर्माण के अंगों का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुरुष के शुक्र एवं शुक्राणुओं का वर्णन है। यदि हर्ष एवं प्रीतिकारक कारणों का समावेश भी कर लिया जाय तो वृषण से निकलने वाले अंगरस

१. (अ) च० सं० शा० ४/५; सु० सं० शा० ५/२; अ० सं० शा० २/३
(आ) ..... शुक्रादृर्भः प्रसादजः। (च० सं० चि० १५/१६)
(इ) .....। अपरे पुनः शुक्रस्य सारं गर्भमेवामनन्ति॥ (अ० सं० शा० ६/६६)
(ई) .....। शुक्रादृर्भः प्रजायते॥ (अ० ह० शा० ३/६३)
(उ) .....। शुक्लं शुक्लाद्गर्भस्य संभवः। (भे० सं० सू० ११/३)

२. च० सं० सू० २८/१८, शा० २/२९

३. च० सं० शा० २/१२; सु० सं० शा० ३/५; अ० सं० शा० २/५

४. (अ) शुक्रं धैर्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलं हर्षं बीजार्थञ्च। (सु० सं० सू० १५/५ (१))
(आ) हर्षबलगर्भोत्पादनैः शुक्रम्। (अ० सं० सू० १९/४)
(इ) भा० प्र० पूर्व० ३/१८८ (पृष्ठ ४७)

५. सु० सं० शा० २/३, ४; अ० सं० शा० १/२३ व २४

६. (अ) रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलं तिले यथा। सर्वज्ञानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा ॥ (च० सं० चि० २/४ का ४६)
(आ) यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षो रसे यथा। शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद् भिषग्वरः॥ (सु० सं० शा० ४/२१)

७. ततु क्षीर इव सर्पिरिक्षुरस इव गुडः शरीरे शुक्रधरां कलामाश्रित्य सर्वाङ्गव्यापितया स्थितं विशेषतश्च मज्जमुष्कस्तनेषु॥ (अ० सं० शा० १/७)

८. (अ) शुक्रवहानां स्रोतसां वृषणौ मूलं शेफश्च। (च० सं० वि०५/८)
(आ) शुक्रवेहे द्वे, तयोर्मूलं स्तनौ वृषणौ च। (सु० सं० शा० ९/१२)
(इ) शुक्रवाहिनां स्तनौ मुष्कौ मज्जा च। (अ० सं० शा० ६/४३)

९. (अ) सप्तमी शुक्रधरा नाम या सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी। (सु० सं० शा० ४/२०)
(आ) सप्तमी शुक्रधरा नाम द्वयङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्तयति॥ (अ० सं० शा० ५/४१)

१०. (अ) शुक्रं तदस्य प्रवदन्ति धीरा यद्धीयते गर्भसमुद्भवाय। चाय्वग्निभूम्यम्बुगुणपादवत्तत् षड्भ्यो रसेभ्यः प्रभवञ्च तस्य॥ (च० सं० शा० २/४)
(आ) द्वयङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतः पथाच्चुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ (सु० सं० शा० ४/२२)

Scanned with CamScanner

(टेस्टॅस्टॅरॉन) का अंतर्भाव शुक्रान्तर्गत हो जाता है जिसका स्पष्टीकरण आचार्य गणनाथ सेन जी ने अंत: एवं बहि: शुक्र के रूप में किया है[1]।

शुक्र के इस वर्णन को स्वीकार करने से इसके स्त्री-शरीर-स्थित प्रतिनिधि का निर्धारण कठिन हो जाता है शुक्र की सर्वशरीर व्याप्ति के समकक्ष स्तन्य का वर्णन है, परन्तु स्तन्य की उत्पत्ति रस से होती है[2] जब कि शुक्र मज्जा धातु के बाद उत्पन्न होता है। आचार्य भावमिश्र ने स्तन्य को रस की उपधातु माना है[3]; अत: शुक्र के समकक्ष स्तन्य को नहीं माना जा सकता।

विषय के प्रारम्भ में ही महर्षि वाग्भट का मत वर्णित है कि स्त्री-शुक्र शुक्र धातु नहीं हो सकता, क्योंकि इसका गर्भोत्पादन में कोई योगदान नहीं है, जब कि शुक्र का विशिष्ट कार्य गर्भोत्पादन है[4]। यही मत टीकाकार चक्रपाणिदत्त का भी है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि शुक्र के निर्मल होने से उसके प्रसाद से ही गर्भ की उत्पत्ति होती है, मल से नहीं। कुछ आचार्य शुक्र के मल से श्मश्रु की उत्पत्ति मानते हैं पर ऐसा नहीं है क्योंकि इस ग्रन्थ में यह मान्य नहीं है तथा यदि शुक्र के मल से श्मश्रु होते हैं तो स्त्रियों में भी शुक्र की उपस्थिति के कारण श्मश्रु होने चाहिए। स्त्रियों में भी शुक्र होता है परन्तु वह गर्भ का आरम्भक नहीं होता[5]। इसी स्राव को महर्षि सुश्रुत ने आर्तव शब्द से वर्णित किया है[6]। टीकाकार अरुणदत्त ने संभोग के समय स्त्री-शरीर से (रक्त) रेतस् का क्षरण माना है, उन्होंने लिखा है कि यह स्राव बिना पुरुष के संभोग के भी कामातुर स्त्रियों को पुरुष की स्मृति आदि से होता है, परन्तु यह पुंशुक्र के अभाव में गर्भ उत्पन्न नहीं कर सकता[7]। दो स्त्रियों के परस्पर संभोग से क्षरित शुक्र द्वारा अनस्थि गर्भोत्पत्ति का सुश्रुत[8] द्वारा वर्णन भी वैज्ञानिक दृष्टया उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि पुरुष के सहयोग के बिना गर्भ असम्भव है। अत: इस स्त्री-शुक्र को भी शुक्र धातु मानना उचित नहीं है।

---

१. प्रत्यक्षशारीरम्-गणनाथ सेनजी विरचित

२. (अ) रसप्रसादो मधुर: पञ्चाहारनिमित्तज:। कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्त: स्तन्यमित्यभिधियते ॥
सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते॥ (सु० सं० नि० १०/१८, १९)
(आ) रसात् स्तन्यमित्यादि। रसात् स्तन्यं प्रसादजं। (च० सं० चि० १५/१७ की चक्र० टीका)

३. भा० प्र० पूर्व० ३/२१२

४. (अ) प्रीणनं जीवनं लेप: स्नेहो धारणपूरणे। गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनां क्रमशो विदु:॥ (अ० सं० सू० १/३३)
(आ) प्रीणनं ···· ···· ····। गर्भोत्पादश्च धातुनां श्रेष्ठं कर्म क्रमात्स्मृतम् ॥ (अ० ह० सू० ११/४)
(इ) प्रीणनं ···· ···· ···· । गर्भोत्पादश्च ···· ···· ···· धातूनां कथितानि हि। (भा० प्र० पूर्व० ३/१३४)

५. (अ) शुक्रात्तु निर्मलतया प्रसादज एव गर्भो भवति, न तु मलजन्यं किञ्चित्। केचित्तु शुक्रमलतया श्मश्रूणि वदन्ति; तत्र, तन्त्रेऽनभिधानात्। तथा शुक्रमलं यदि श्मश्रूणि स्युस्तदा स्त्रीणामपि सशुक्रतया श्मश्रूणि भवेयु; स्त्रियश्च सशुक्रा एव, परं तासां शुक्रं गर्भारम्भकं न भवतीत्यादि ···· ···· ···। (च० सं० चि० १५/१६ की चक्र० टीका)
(आ) यत्तु स्त्रीशुक्रस्य गर्भानारम्भकत्वं, तद्वचनादेव तथा नारीरजसो गर्भारम्भकत्वादेव लब्धम्। उक्तं च तन्त्रान्तरे। "स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद्गर्भाय चार्तवम् ··· ···। (सु० सं० सू० १४/१४ की चक्र० टीका)

६. सु० सं० शा० २/३६ व डल्हण टीका (पृष्ठ ४५)

७. तदेव तरुणीनां कुसुमशराक्रान्तमानसानां तथाविधेन पुरुषसंयोगेन बिना केवलात् स्मृतिसंस्पर्शदर्शनाच्चलितप्रस्रुत (रक्त) रेतसां किमिति गर्भो; न जायते? शुक्रार्तवं हि गर्भकारणं ··· ···। पुंशुक्रं हि स्त्रीरोरुयुक्तं गर्भकारणम्। न च तदस्ति। ·····तदभावाद्गर्भस्यानुत्पत्ति:॥ (अ० ह० शा० १/५ की अरुणदत्त टीका)

८. सु० सं० शा० २/४७ (पृष्ठ ४९)

संभवत: उपर्युक्त शंकाओं से प्रेरित होकर ही आचार्य भावमिश्र ने स्त्री-शरीर में आठ धातुओं की कल्पना तो की है; परन्तु यह शुक्र धातु स्त्री-शरीर में कहाँ है? क्या है ? आदि वर्णन स्पष्ट नहीं है, यद्यपि बल-वर्ण उपचय रूपी कार्य का वर्णन दिया है[1]। टीकाकार चक्रपाणि ने भी रज को व्याधि उत्पादक मानकर इसका धातुओं के अन्तर्गत समावेश किया है[2]।

पुरुष शरीर में भी जननांगो के अत: एवं बहि: स्रावों तक ही शुक्र को सीमित करना युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि शुक्र एक धातु (धारण एवं अग्रिम धातु पोषण कृत) एवं एक प्राणायतन भी है[3] जिसका सम्पूर्ण रूपेण विनाश होने पर जीवन असम्भव हो जायेगा, जब कि जन्मजात ही जननांग-विरहित या व्याधि युक्त होने पर शल्य द्वारा सम्पूर्ण जननांग निकाल दिये गये हुये पुरुष भी सामान्य आयु के होते हैं। यदि 'पोषणात्' से गर्भ पोषण मानकर जननांग-विरहित पुरुष की सन्तानोत्पादन असमर्थता के आधार पर शुक्र धातु को जननांगों में सीमित करने का प्रयत्न किया जाय, तो भी कठिनाई होगी, क्योंकि ओज का निर्माण या पोषण शुक्र से ही होता है,[4] महर्षि वाग्भट ने ओज को गर्भ का सर्वप्रथम सार, गर्भ की प्रथम धातु का प्रसाद, शुक्र का सार एवं मल भी माना है[5] यह दश प्राणायतनों में से भी एक है[6]। आचार्य भावमिश्र एवं शार्ङ्गधर ने ओज को शुक्र का उपधातु माना है,[7] अत: जननांग या शुक्र की अनुपस्थिति में ओज का निर्माण न हो सकने

---

१. भा० प्र० पूर्व० ३/१८८ (पृष्ठ ४७)

२. ···· विकारोधातुवैषम्यं। धातवो वातादयो रसादयश्च तथा रज: प्रभृतयश्च. तेषां वैषम्यं ·····।
(च० सं० सू० ९/४ की चक्र० टीका)

३. (अ) दशैवायतनान्याहु: प्राणा एव प्रतिष्ठिता:। शंखौ ···· शुक्रौजसी ·····॥ (च० सं० सू० २९/३)
(आ) ····। आयतनानीव आयतनानि, तदुपघाते प्राणोपघातात्, तन्नाशे प्राणनाशादित्यर्थ:॥ (च० सं० सू० २९/१-२ की चक्र० टीका)
(इ) दश: प्राणायतनानि, तद्यथा मूर्धा ·····ओज: शुक्रं शोणितं ·····॥ (च० सं० शा० ७/९)
(ई) दशप्राणायतनानि मूर्धा ····· शुक्रमोजोरक्तम्॥ (अ० सं० शा० ५/५९)

४. (अ) शुक्रं तु ओजोजनकत्वाद् धात्वन्तर्गतमेव। ····· ओजस्तु ····· सप्तधातुसारूपतया सप्तधात्वन्तरगतत्वादेव ·····।
(च० सं० चि० १५/१७ की चक्र० टीका)
(आ) तत: पुन: पच्यमानदुपमलो नोत्पद्यते सहस्रधाध्मातसुवर्णवत्,·····। स्नेहभाग: सूक्ष्मस्तेजोभूतं ओज:।
(सु० सं० सू० १४/१० की डल्हण टीका)
(इ) तस्मात् रसादिधातुस्नेहपरम्पराहेतुक: स्नेह: शुक्रम् , क्षीरस्थघृतमिवाभिन्नमोज: शुक्रेण। ····· शुक्रवर्णेनैवौजोवर्णानां निर्दिष्टत्वात्। (सु० सं० सू० १५/२१-२२ की डल्हण टीका)
(ई) शुक्रस्य सारमोज:। (अ० सं० शा० ६/६६)
(उ) तत: सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवत: स्थूल: सूक्ष्मश्च। तत्र स्थूलो भाग: शरीरारम्भकं शुक्रं याति सूक्ष्म: स्नेहभागं ओजस् ·····। (भा० प्र० पूर्व० ३/१८१)
(ऊ) तथैवौजश्च सप्तमम्। (शा० सं० पूर्व० ५/१७)

५. (अ) यत्सार आदौ गर्भस्य यत्तद्दर्पणसाद्रस:॥ (अ० सं० सू० १९/३५)
(आ) शुक्रस्य सारमोज:। ···· (अ० सं० शा० ६/६६)
(इ) कफ:पित्त: ····। ···· ओजो धातूनां क्रमशो मला:॥ (अ० सं० शा० ६/७९ एवं अ० ह० शा० ३/६३,६४)

६. च० सं० सू० २९/३; च० सं० शा० ७/९; अ० सं० शा० ५/५९

७. (अ) स्तन्यं रजो वसा स्वेदो दन्ता: केशास्तथैव च। ओजश्च सप्तधातूनां क्रमात् सप्तोपधातव: ॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२१२)
(आ) स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति। शुद्धमांसभव: स्नेह: सा वसा परिकीर्तिता।
स्वेदोदन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम्। इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातव:॥ (शा० सं० पूर्व० ५/१६, १७)

Scanned with CamScanner

के कारण तात्कालिक मृत्यु होनी चाहिए जो नहीं होती, इसलिए शुक्र को जननांगों के स्रावों में ही सीमित करना उचित प्रतीत नहीं होता।

शुक्र की धात्वात्मकता, इसका दश प्राणायतनों में से एक होना, सर्वशरीर-व्याप्ति, बल-वर्ण-उपचय तथा हर्ष-प्रीति एवं गर्भोत्पादनादि कार्य तथा स्त्री एवं पुरुष में समान रूप से उपस्थिति, इन समस्त बातों को ध्यान में रखकर यदि आधुनिक विज्ञान-वर्णित-विषय से सामञ्जस्य किया जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्र धातु से आचार्यों ने शरीर की समस्त अंतःस्रावी ग्रन्थियों विशेषतः हाइपॉथैलमस एवं पीयूषग्रन्थि के स्राव का वर्णन किया है।

आधुनिक विज्ञान में यह निश्चित हो चुका है कि शरीर के संभवतः प्रत्येक कोष्ठक से विभिन्न परिस्थितियों में कुछ स्राव निकलते हैं जिन्हें प्रॉस्टग्लैन्डीन की संज्ञा दी गई है, इनका प्रभाव प्रजनन संस्थान में भी पड़ता है। यद्यपि अभी

CONCEPT OF SHUKRA AND ARTAVA IN RELATION TO FEMALE BODY

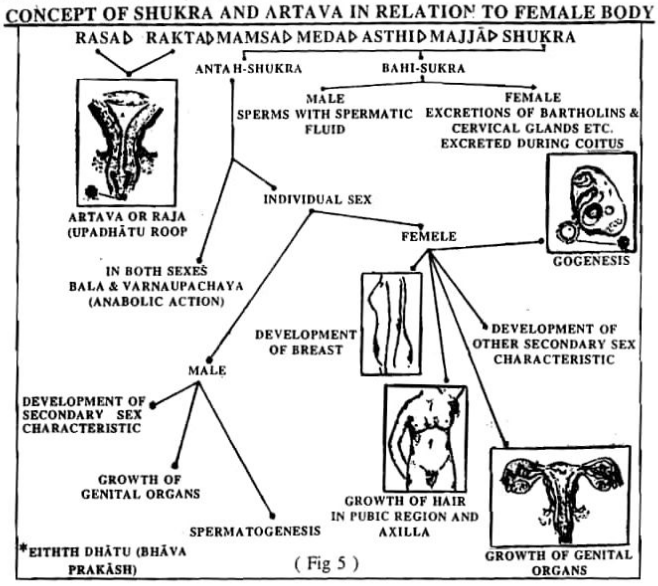

(Fig 5)

तक इनके बारे में पूरा ज्ञान नहीं है, फिर भी इनकी सर्वशरीर व्याप्ति, जीवन के लिए आवश्यकता एवं प्रजनन-संस्थान पर प्रभाव के आधार पर शुक्र का परिचायक सोचा जा सकता है।

शरीर सप्तधात्वात्मक है, इसका निर्माण अतिसूक्ष्म कोष्ठकों से है। यद्यपि इन धातुओं के शरीर में अपने अपने विशिष्ट स्थान हैं परन्तु सूक्ष्मतम स्वरूप में ये प्रत्येक कोष्ठक में विद्यमान रहती हैं। प्रत्येक कोष्ठक विभाजित हो नए कोष्ठक को

जन्म देता है। जन्म देना शुक्र का मुख्य कार्य है। शरीर-क्रिया-ज्ञान-वृद्धि के उपरान्त यह सम्भव है कि हमें कोष्ठक-स्थित किसी ऐसे तत्व का ज्ञान हो जाय जिसका मुख्य कार्य कोष्ठक-विभाजन करना हो, इस तत्व को शुक्र के समकक्ष रखा जा सकेगा।

पुरुष-शरीर के वृषण के स्राव भी शुक्र के ही अन्तर्गत आते हैं जिनका प्रतिनिधि स्त्री-शरीर में आर्तव है, अतः इस आर्तव को भी संदर्भ भेद से शुक्र का स्त्री-शरीर-स्थित प्रतिनिधि मान सकते हैं (चित्र ५)। संभवतः इसी आधार पर महर्षि हारीत ने पुरुष एवं स्त्री दोनों के ही शरीर में रेतस् की उपस्थिति की कल्पना की है, एवं शुक्र तथा रज को रेतस् से भिन्न माना है, क्योंकि पुत्रोत्पादन में पुरुष एवं स्त्री के रेतस् तथा शुक्र एवं रज दोनों की ही अधिकता का वर्णन दिया है[1]। टीकाकार डल्हण ने स्थानभेद से आर्तव को शुक्र का परिचायक माना है[2]।

स्त्री-शरीर वर्णित शुक्र, संभोग के समय स्त्री-जननांगों से होने वाले स्रावों का ही वर्णन है। जिस पदार्थ को ही संभवतः महर्षि हारीत ने स्त्री-रेतस् की संज्ञा दी है।

टीकाकार अरुणदत्त ने भी स्त्री-शरीर की सप्तधात्वात्मकता का प्रश्न तो उठाया है, उसका निश्चित स्पष्टीकरण नहीं दिया, यद्यपि इन्होंने स्त्री-शरीर-स्थित रक्त में गर्भोत्पादक रेतस् की कल्पना की है, परन्तु उस रेतस् का शुक्र धातु से स्पष्ट सामञ्जस्य स्थापित नहीं किया[3]।

Body is composed of seven *dhātus, śukra* is seventh and is situated in whole body; though explicit only after sixteen years of age, it is present from childhood.

Functions of *śukra* are the following ones:--

(1) Nourishment of subsequent *dhātu* or *ojas*.

(2) Formation of *garbha* and its sex, capable of producing teratologic abnormalities.

(3) Betterment of complexion and strength alongwith affection and penile erection,

(4) When vitiated by *doṣas* it can not be effective for fertilization.

Śukra though is situated in whole body within *śukradharākalā*, yet its specific location is bonemarrow and scrotum. Roots of *śukravaha srotas* are testes, penis, breasts and bonemarrow. Though *śukradharā kalā* is spread over entire body, yet it is specifically situated laterally to urinary bladder and urethra. During coitus, it is excreted by male, enters female reproductive system and forms fetus.

With the above description *śukra* may be correlated with sperms including spermatic fluid or even testosterone etc. sex hormones and same has been explained by Gaṇanātha Sena Ji as *antaḥ-śukra* and *bahi-śukra*.

१. नरेरतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु। ···· ···· ···· ···· ····। स्त्रीरतसोधिकत्वेन ···· ···· ···· ···· ···· ····। रजसोप्यधिकत्वेन ···· ···· ···· ···· ···· ····। (हा० सं० षष्ठस्थान १/२६, २७)

२. अत्र आर्तवशब्दोऽयं शुक्रे वर्तते न तु रजसि। ····। अथ यद्ययमार्तवशब्दः शुक्रं न वर्तते तदा अत्र शुक्रोत्पत्त्यधिकारे स्त्रीणां शुक्रस्यानुक्तत्वात् षड्धातुत्वं स्यात्। तस्मात् आर्तवशब्दः शुक्रे वर्तते। (सु० सं० सू० १४/१५ की डल्हण टीका)

३. ···· स्त्रीरतसो-रक्तस्य ···· ···· उभयोरपि च स्त्रीपुंसयोरवश्यं सप्तधातुकत्वमभ्युपगन्तव्यम्, न पुंस एव ··· ··· दर्शनाच्चलितप्रस्रुत (रक्त) रेतसां ··· ··· पुं शुक्रं हि स्त्रीतोरक्तयुक्तं गर्भकारणम् ··· ···।

(अ० ह० शा० १/५ की अरुणदत्त टीका)

Scanned with CamScanner

Alike *śukra* in males, *stanya* (milk) is said to be present in whole female's body, but this milk is a by-product or *upadhātu* of *rasadhātu*, while *śukra* is *dhātu* and formed after *majjā*. *Strī-śukra* excreted during coitus as per Vāgbhaṭa I can also not be considered parallel to *śukra-dhātu* as former is useless for conception, while main function of latter is conception. This very coital discharge has been termed as *ārtava* by Suśruta and *retas* by Vāgbhaṭa II. Cakrapāṇi accepting presence of *śukra* in women, has clarified that the *garbha* is formed from essence part of pure *śukra*, not from its by-product; quoting openion of others, writes that few erudites accept development of mousatche from by-product (waste) of *śukra* which is not accepted by Caraka, had this been the process, even women would have had the moustache due to presence of *śukra*, moreover, the *śukra* of female-body does not take part in fertilization. Achievement of boneless fetus with sexual pleasure in-between two women is also a pure hypothetical possibility never a reality; probably considering these points, Bhāvamiśra advanced the idea of eight *dhātus* in females i. e. *ārtava* as seventh and *śukra* the eighth one, but exact description regarding location, characteristiscs etc. is lacking there too. Hārīta has accepted presence of retas in both male and female in addition to *śukra* or *rajas*, predominance of this *retas* of both partners alongwith *śukra* or *rajas* and (power of) male and female respectively is said to form sex of embryo. Commentator Cakrapāṇi has also included *rajas* in the list of *dhātus* because of its capability of getting vitiated.

Even in males to limit the *śukra* in reproductive system only is not justified; because *śukra* is a *dhātu*, essential for sustenance of body and nourishment of subsequent *dhātu*. Complete absence of any specific *dhātu* will make the life impossible, moreover it is also included amongst ten *prāṇāyatanas* i.e. seats of life of the body. Individuals with complete absence of reproductive system either congenitally or due to surgical excision have a fairly normal life-span, which should not have been possible because of absence of *śukra* alongwith *ojas* which is formed or is nourished from *śukra* and is said to be its essence, byproduct or *upadhātu*,

Considering the importance of *śukra* for sustenance of life alongwith its earlier enumerated functions and presence in both sexes, it seems to be description of entire endocrine orchestra specially hypothalamic-pituitary axis. It can also be equated with prostaglandins, since these are also present in every cell and play important role in reproduction. Human body possesses seven *dhātus* and is composed of microscopic cells. Though all these *dhātus* have their specific locations in the body, however, in subtle form these are present in each and every cell. Every cell divides or reproduces itself; reproduction is function of *śukra dhātu*. It is just possible that with the advancement in the knowledge, we may come across some such substance within the cell which has specfic function of cell division, then this substance would be equated with *śukradhātu*. Sperms alongwith spermatic fluid and male sex hormones are also one part of *śukra*, parallel to which females possess *ārtava* which has been clearly indicated by Ḍalhaṇa (fig.5). *Strī-śukra* excreted during coitus is just secretion of bartholin's, cervical and endometrial glands coming out at the end of orgasm.

रज, शोणित, आर्तव का वर्णन (Description of raja, śoṇita or ārtava)

(अ) रज या शोणित की बाल्यावस्था से शरीर में उपस्थिति (Presence of raja or śoṇita since childhood)

यथा च बालस्य जीर्णस्य वा तरोः पुष्पफलं पुष्पफलस्य वा तद्विधस्य गन्धो नोपलभ्यते तथैव नोनषोडशातीतसमतिवर्षस्य पुंसः शुक्रसेकादयः। योषितश्चोनद्वादशातीतपञ्चाशद्वर्षाया रजस्तन्यादय इति ॥
(अ० सं० शा० १/२१)

यथा च पुष्पमध्ये फलमनिर्वृत्तं सुसूक्ष्ममस्ति न चोपलभ्यते, यथा चाग्निर्दारुषु सर्वगतः प्रत्यत्नाभावन्नोपलभ्यते, तथा स्त्रीपुंसयोः शोणितशुक्रे कालावेक्षे स्वकर्मावेक्षे च भवतः ॥ (का० सं० शा० ५/४)

जिस प्रकार बालक एवं वृद्ध वृक्ष में पुष्प एवं फल की तथा नवीन (कलिका) या जीर्ण पुष्प एवं फल में गंध की प्रतीति नहीं होती, उसी भाँति १६ वर्ष से पूर्व एवं ७० वर्ष के पश्चात् पुरुषों में शुक्र-प्रसेक आदि तथा १२ वर्ष से पूर्व एवं पचास वर्ष के बाद स्त्रियों में रज (मासिक स्राव) एवं स्तन्य आदि दृष्टिगोचर नहीं होते। आचार्य भावमिश्र ने भी स्तन्य एवं आर्तव आदि की उत्पत्ति युवावस्था में मानी है[1]।

जिस प्रकार पुष्प के मध्य में फल अनुत्पन्न अथवा सूक्ष्म होने से उपलब्ध नहीं होता, काष्ठ में अग्नि सर्वत्र रहते हुए भी प्रयत्न के अभाव से उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार स्त्री एवं पुरुष में क्रमशः शोणित एवं शुक्र काल एवं कर्म की अपेक्षा रखते हैं अर्थात् अपने स्वाभाविक काल (आयु में) तथा स्वाभाविक कर्मों (संभोग से शुक्र क्षरण) से प्रकट होते हैं।

महर्षि चरक एवं सुश्रुत ने बाल्यावस्था में शरीर में शुक्र की उपस्थिति का स्पष्ट उल्लेख किया है (पृष्ठ ५०), पर शोणित या रज की उपस्थिति का उतना स्पष्ट उल्लेख नहीं है। महर्षि सुश्रुत के 'रोमराज्यादयश्च विशेषा नारीणां' की टीका करते हुए टीकाकार डल्हण ने आदि शब्द से स्तन्य एवं आर्तव की उत्पत्ति वय के परिणाम (सामान्य आयु होने पर) से मानी है, टीकाकार इन्दु ने आदि शब्द से रोम आदि ग्रहण किया है[2]। टीकाकार चक्रपाणि ने आर्तव की बाल्यावस्था से उपस्थिति स्वीकार की है।[3]

As in young or aged plants flowers and fruits do not come up, as in bud and decaying flower or fruit the fragrance is not explicit, similarly in males *śukra* before sixteen and after seventy years of age and in females *raja* (menstrual blood) and *stanya* (milk) before twelve years and after fifty years of age are not visible.

As the fruit situated within the flower can not be seen being very small and the fire located within the wood can not be noticed without specific efforts, similarly *śoṇita* and *śukra* require appropriate time (just like fruit) and specific effort (just like fire of wood) for

---

१. रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने। जायतेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥
व्याख्यानं यथा-पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः। नारीणान्तु रोमराजीस्तन्यार्त्तव प्रभृतयः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१९५)

२. (अ) रोमराज्यादयश्च विशेषा भावा वयःपरिणामान्नारीणामपि प्रादुर्भवन्ति। आदिशब्दात् स्तन्यार्तवादयः॥
(सु० सं० सू० १४/१८ की डल्हण टीका)
(आ) आदिशब्देन रोमादीनां परिग्रहः॥ (अ० सं० शा० १/२१ की इन्दु टीका)

३. आर्तवं च यद्यपि द्वादशवर्षादूर्ध्वं व्यज्यते, तथाऽपि आर्तवोत्पत्तिर्गर्भकाल एव भवति। येन सतामेवार्तव ..... काले व्यक्तिर्भवति .....। (च० सं० शा० ४/३० की चक्र० टीका)

Scanned with CamScanner

their gross appearance. Commentators like Ḍalhaṇa and Cakrapāṇi also corroborate the view.

(आ) रज का निर्माण (Formation of raja)

रसात् स्तन्यं ततो (स्त्रिया-पादटीका) रक्तं ·····। (च० सं० चि० १५/१७)।
रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्त्तते ॥ (सु० सं० सू० १४/६)
तथा रक्तमेव च स्त्रीणां मासे मासे गर्भकोष्ठमुपाप्य त्र्यहं प्रवर्तमानमार्तवमित्याहुः ॥ (अ० सं० शा० १/१०)
मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहं॥ (अ० ह० शा० १/१७)।

स्त्रियों में रजःसंज्ञक रक्त की प्रवृत्ति रस से होती है। वाग्भट-मतानुसार जो रक्त गर्भाशय को प्राप्त होकर प्रतिमाह तीन दिन स्रवित होता है, वह आर्तव कहा जाता है। रज की उत्पत्ति रस के प्रसाद भाग से होती है[1]। अ० ह० में लिखा है कि रस धातु से उत्पन्न रज स्त्रियों में प्रत्येक मास तीन दिन तक स्रवित होता है।

उपर्युक्त आचार्यों के दृष्टिकोण में यद्यपि सामान्यतः कुछ भेद सा प्रतीत होता है क्योंकि महर्षि चरक, सुश्रुत, टीकाकार डल्हण एवं अष्टांगहृदयकार रस से ही रज (मासिक स्राव) तथा टीकाकार चक्रपाणि रस के प्रसाद भाग से ही रज संज्ञक रक्त की उत्पत्ति मानते हैं,[2] जब कि अष्टाङ्गसंग्रह में गर्भाशय में एकत्रीभूत रक्त को आर्तव की संज्ञा दी है, यद्यपि इस संहिता में ही रस के प्रसाद भाग से रज की उत्पत्ति का भी वर्णन है[3]। वास्तव में इन दोनों ही कथनों में कोई भेद नहीं है, क्योंकि रक्त की उत्पत्ति तो रस से ही होती है, चाहे रज या आर्तव रूप हो, चाहे धातु रूप। टीकाकार चक्रपाणि ने रस से रज की उत्पत्ति एवं आगे वर्णित आर्तव के आग्नेयत्व में सामंजस्य उपस्थित करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि रस से उत्पन्न रज आविर्भाव के काल में सौम्य रहता है, परन्तु तिरोभाव के काल में रक्त सदृश हो जाने से उसमें आग्नेयत्व आ जाता है। इस स्पष्टीकरण के परिपेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि महर्षि सुश्रुत ने रक्त के आरम्भ काल के एवं वाग्भट ने विसर्जन काल के गुणों का वर्णन किया है। सौम्य आर्तव में आग्नेयत्व का आधान परिवर्तन के कारण होता है, उदाहरण स्वरूप तेज के संयोग से पार्थिव द्रव्य भी धूम सदृश हो जाते हैं, श्लेष्मकारी इक्षुरस से उत्पन्न फाणित त्रिदोषकारी होता है, इसी प्रकार आर्तव में भी आग्नेयत्व का आगमन हो जाता है[4]।

टीकाकार अरुणदत्त ने रज को रक्त का पर्याय मानकर, रस से उत्पत्ति का स्पष्टीकरण दिया है कि यह रज रक्त के सदृश रस धातु से उत्पन्न न होकर आहार रस से ही उत्पन्न होता है[5]। भावमिश्र ने रज को रक्त का उपधातु माना है एवं इसकी प्रवृत्ति मासान्तर से तीन दिन तक की कही है[6]।

१. रसात् स्तन्यमार्तवञ्च। (सु० सं० सू० १४/१० की डल्हण टीका)

२. रक्तमपि रजःसंज्ञं रसादेव प्रसादभागजन्यम् ·····। (च० सं० चि० १५/१७ चक्रपाणि टीका)

३. स्त्रीणां रजसोऽज्ञलयक्षत्वारः। स्तन्यस्य द्वौ। उभयमपि चैतद्रसप्रसादात्मकमिति॥ (अ० सं० शा० ५/९८)

४. अत्र च कर्मवशात् कालविशेषे आविर्भावतिरोभावौ ज्ञेयौ। अस्य धातुशोणिताद्विशेषमाह,--आर्तवशोणितं त्वाग्नेयमिति। तु शब्दः पूर्वस्मात् सौम्याग्नेयाद्रक्ताद्वशाद्वर्तयति। अस्य च सौम्याद्रसादुत्पन्नस्याग्नेयत्वं परिणामविशेषादेव कारणविसदृशं कार्यं भवति, यथा तेजसः पार्थिवो धूमो भवति, इक्षुरसाच्छ्लेष्महेतोस्त्रिदोषकारिफाणितं भवति। अस्यैवाग्नेयत्वावगमे हेतुम्॥
(सु० सं० सू० १४/७ की चक्रपाणि टीका)

५. रजो-रक्तं ·····। किम्भूतं रजः? रसाज्जातं रसजम्। ननु, रक्तं रसजमेव। ····· "रसाद्रक्तं ततो मांस" इत्यादि। तत्किमर्थं रसजमित्युक्तम्? ····· रसात्-आहाररसात् परिणमतो जातं रसजमित्यत्र निर्दिष्टम्, न तु रस धातोः, ·····॥
(अ० ह० शा० १/७ की अरुणदत्त टीका)

६. अ) रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं स्रवेत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२०४)
आ) भा० प्र० पूर्व० ३/२१२ (पृष्ठ ५३)

महर्षि हारीत ने स्त्रियों में रज की उत्पत्ति बिना किसी योग या प्रयत्न के ही मानी है[1]।

महर्षि शार्ङ्गधर ने भी रज को रक्त की उपधातु तथा इसका प्रादुर्भाव एवं समाप्ति समय पर आधारित मानी है[2]। टीकाकार चक्रपाणि ने रज का वैषम्य हो व्याधि उत्पादन की क्षमता के आधार पर इसे धातु-रूप भी माना है[3]।

From *rasa (dhātu)*, the *rakta* named *raja* is formed. *Rakta* reaching uterus and coming out for three days in every month is called *ārtava*. The *raja* is formed from essence part of *rasa*.

There appears some difference of opinion regarding formation of *raja* (menstrual blood). Caraka, Suśruta, Vāgbhaṭa II, Ḍalhaṇa and Cakrapāṇi opine that it is formed from *rasa*, while Vāgbhaṭa I says that blood accumulated in uterus, then discharged is *ārtava*, the *raja* is derived from essence portion of *rasa*; actually both these descriptions are indentical, because *rakta* either *dhātu-rūpa* or menstrual blood is always derived from *rasa*, thus it appears that Suśruta etc. have mentioned the earlier stage of *raja* formation while Vāgbhaṭa I the later stage. The point has been clarified by Cakrapāṇi that during the process of formation, the *ārtava* is *saumya* due to influence of *rasa*, while at the time of its excretion due to specific changes it assumes *āgneya* character. This alteration is brought due to change in character caused by *doṣas* in the same way as solid substances are changed into fume due to action of fire, cane-juice a vitiating factor of *kapha* is changed after fermentation into wine which vitiates all the three *doṣas*. Aruṇadatta opines that this *raja* is formed from *āhārarasa* and not from *rasadhātu*. Śārṅgadhara and Bhāwamiśra mention r*aja as* by-product (*upadhātu*) of *rakta*.

विमर्श (Comments)

संहिताओं में रज / आर्तव की उत्पत्ति रस या रक्त से वर्णित है जो वास्तव में रज / आर्तव की निर्मित के दो चरणों का द्योतक है। हाइपॉथैलामस, पीयूषग्रन्थि एवं डिम्बग्रन्थि के स्राव रस (प्लाज्मा) के माध्यम से ही वांछित स्थान अर्थात् गर्भाशयान्तःकला तक पहुँचते हैं जिनसे प्रभावित गर्भाशयान्तःकला की धमनियों में रक्त का सञ्चय हो कर वह प्रतिमास स्रवित होता है, इस तथ्य को ही टीकाकार चक्रपाणि ने आविर्भाव एवं तिरोभाव के शब्दों से वर्णित किया है। प्रारम्भ में इस रज के निर्माण के लिए सभी अंतःस्रावी ग्रन्थियों एवं गर्भाशय आदि के लिए पोषक रस के साथ ही, रस के माध्यम से अङ्गरसों का वहन आवश्यक है, तत्पश्चात् आर्तव विमोचिनी धमनी की केश सदृश सूक्ष्म शाखाओं में रक्त का एकत्रीकरण हो कर वह रक्त के रूप में प्रतिमास स्रवित होता है।

In classics *raja/ārtava* (menstrual blood) is said to be formed from *rasa* or *rakta*, which is actually description of two stages of its formation. The hormones of hypothalamus to pituitary then to ovary and ultimately to their target organ i.e. endometrium are carried through *rasa*, the plasma, in this endometrium the blood is accumulated and then discharged during menstruation. This very process has been explained by Cakrapāṇi with the words *āvirbhāva* (formation) and *tirobhāva* (discharge). Initially besides nourishment to endocrine

१. दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/९)

२. स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति। ··· ··· सप्तोपधातवः॥ (शा० सं० पूर्व० ५/१६)

३. च० सं० सू० ९/४ की चक्र० टीका (पृष्ठ ५३)

Scanned with CamScanner

glands as-well-as uterus and endometrium by *rasa*, the transportation of hormones to target organs through *rasa* (plasma) is essential, then, the blood accumulated in hair thin branches of *ārtavavimocinī dhamanī* (uterine artery) is discharged during menstruation.

(इ) आर्तव का आग्नेयत्व एवं स्वरुप (Functions and āgneya character of ārtava)

आर्तवं शोणितं त्वाग्नेयम् ॥ (सु० सं० सू० १४/७) ।
रक्तलक्षणमार्तवं गर्भकृच्च ॥ (सु० सं० सू० १५/५) ।
..... आर्तवमाग्नेयम् .....। (सु० सं० शा० ३/३) ।

आर्तव आग्नेय, रक्त के लक्षणों वाला एवं गर्भोत्पादक है। साथ ही रक्त के कर्म अर्थात जीवन (के लिए आवश्यक) भी है[1]।

आग्नेयता के कारण यद्यपि आर्तव में अग्नि महाभूत की ही प्रधानता होती है परन्तु अन्य महाभूत भी सूक्ष्मरूप में उपस्थित रहते हैं। जिसका कारण उनके अणुओं का परस्पर उपकार, अनुग्रह एवं प्रवेश होता है[2]।

Ārtava is *āgneya*, has characteristics of *rakta* (blood), forms *garbha* (fetus) and is also essential for life. Though dominant *mahābhūta* in this is *tejas*, however, others also exist in smaller amounts, the reason being assistance, acceptance and access of their *aṇus* (atoms) for each other.

(ई) आर्तव का परिमाण (Amount of ārtava)

स्त्रीणां रजसोऽञ्जलयश्चत्वारः॥ (अ० सं० शा० ५/९८)
चत्वारो रजसः स्त्रियाः॥ (अ० हृ० शा० ३/८१)

स्त्रियों के रज की सामान्य मात्रा चार अंजली होती है।

It is four *añjalī* (approximately four ounces).

रजोदर्शन के पूर्व बाला के शारीरिक परिवर्तन (Changes before menarche)

बालानामपि वयःपरिणामात् शुक्रस्य प्रादुर्भावो भवति। रोमराज्यादयश्च विशेषा नारीणाम्।
(सु० सं० सू० १४/१८)

बालकों में आयु के परिणाम से शुक्र का प्रादुर्भाव होता है ; उसी भाँति बालिकाओं में रोमराजी आदि (कक्षा एवं भग में केशोत्पत्ति) का प्रादुर्भाव होता है। टीकाकार डल्हण ने इस आदि शब्द से आर्तव एवं स्तन्य का ग्रहण किया है, एवं स्पष्ट किया है कि 'रोमराज्यादयश्च' शब्द का चकार स्त्री में भी (पुरुष के श्मश्रु प्रभृति के समकक्ष) केशोत्पत्ति का द्योतक है[3]। स्त्रियों में रज के उपचय होने से धीरे-धीरे स्तन, गर्भाशय एवं योनि की वृद्धि होती है[4]।

१. रक्त लक्षणमित्यादि। .....। रक्तस्य यानि लक्षणानि तान्यस्य सम्भवन्तीति स्वभावकथनम्॥ ..... चकरात् रक्तकर्मापि जीवनसंज्ञं करोति। (सु० सं० सू० १५/५ की डल्हण टीका)

२. सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण, परस्परोपकारात् (परस्परानुग्रहात्) परस्परानुप्रवेशाच्च॥ (सु० सं० शा० ३/३)

३. आदिशब्दात् स्तन्यार्तवादयः, रोमराज्यादयश्चेति चकारो नारीणां चेत्यत्र द्रष्टव्यः॥ (सु० सं० सू० १४/१८ की डल्हण टीका)

४. ··· नारीणां रजसि चोपचीयमाने शनैः शनैः स्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति॥
(सु० सं० सू० १४/१५; सी० के० सेन० कलकत्ता प्रकाशन)

महर्षि काश्यप ने यद्यपि बालावस्था में होने वाले विशिष्ट शारीरिक परिवर्तनों का कोई वर्णन नहीं किया, परन्तु बाला की योनि को हीन माना है, उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि बालिकाओं की योनि हीन होने के कारण रक्त सर्वशरीर में परिभ्रमण करता है; परन्तु स्वभाववश शारीरिक परिपूर्णता प्राप्त हो जाने पर शरीर एवं योनि दोनों ही स्थलों में जाता है[1]।

महर्षि भेल ने शारीरिक धातुओं की परिपूर्णता को रजःस्राव के प्रारम्भ का कारण माना है[2]।

आचार्य भावमिश्र ने भी तरुणावस्था में शुक्र का प्रादुर्भाव तथा स्त्रियों में रोमराजी, स्तन्य तथा आर्तव की उत्पत्ति का वर्णन किया है।[3]

In boys *śukra* (seminal ejaculate) appears after specific age, similarly in girls *romarājī* (pubic and axillary hair) grow in specific age, Dalhana includes *ārtava* (menstruation) and *stanya* (milk) also. Due to accumulation of *raja* there is gradual development of breasts, uterus and vagina alongwith vulva. The *yoni* (reproductive system) of young girls is *hīna* (under developed thus menstruation does not occur), with the natural maturity specially of *dhātus* the menstruation starts.

प्रथम रजोदर्शन एवं रजोनिवृत्ति की आयु (Age of menarche and menopause)

तद् वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्। (सु० सं० सू० १४/६)
तद् वर्षाद् द्वादशात् काले वर्तमानमसृक् पुनः।
जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम्॥ (सु० सं० शा० ३/११)
योषितश्चोनद्वादशातीतपञ्चाशद्वर्षाया रजस्तन्यादय इति। (अ० सं० शा० १/२१)
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्। (अ० हृ० शा० १/७)

स्त्रियों में १२ वर्ष की अवस्था से रजःस्राव होना प्रारम्भ होकर ५० वर्ष की आयु में समाप्त हो जाता है अर्थात् १२ वर्ष से पूर्व एवं ५० वर्ष के बाद यह उपस्थित नहीं रहता।

महर्षि काश्यप ने शोणित की अभिव्यक्ति की अवस्था शुक्र के सदृश ही १६ वर्ष मानी है[4]; परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि विशिष्ट आहार एवं आरोग्य आदि से प्रभावित हो, ये शोणित या शुक्र आयु से पूर्व भी परिलक्षित हो सकते हैं। सम्भवतः यहाँ पर महर्षि काश्यप ने यह प्रथम रजोदर्शन की आयु न देकर गर्भाधान की दृष्टि से आयु की पूर्णता की अवस्था का वर्णन दिया हो, अथवा यह आयु-वैभिन्य व्यक्ति, देश, काल आदि अवस्थाओं के कारण भी माना जा सकता है।

आचार्य भावमिश्र ने भी सुश्रुतादि सदृश ही आयु का वर्णन दिया है[5]।

टीकाकार अरुणदत्त ने द्वादश वर्ष की आयु प्रायिक मानी है एवं यह स्पष्ट कर दिया है कि स्त्रियों में ग्यारह वर्ष

१. हीनयोन्यास्तु बालायाः कायं गच्छति शोणितम्। अथ पूर्णस्वभावायाः कायं योनिं च गच्छति॥ (का० सं० खि० ९/१९)

२. परिपूर्णधातुशरीरास्तु यदा भवन्ति तदा विवेकजललोहितं मासे मासे प्रतिवेदयन्ति। (भे० सं० शा० ५/६)

३. भा० प्र० पूर्व० ३/१९३ से १९५ (पृष्ठ ५० एवं ५७)

४. षोडशवर्षयोहि शोणितशुक्रयोर्गर्भ्ये प्रभवतः; अर्वागपि यदाहारविशेषादारोग्याच्च पूर्णे भवत इति परिषत्॥
(का० सं० शा० ५/४)

५. द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापञ्चाशत्समाःस्त्रियः॥
तद्वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१ एवं २०४)

Scanned with CamScanner

को भी अवस्था में रजःस्राव प्रारम्भ हो सकता है। इसी भाँति पचास वर्ष की अवस्था में क्षय भी प्रायिक है[1] अर्थात् थोड़ा आगे-पीछे भी हो सकता है।

Twelve and fifty years is the age of menarche and menopause respectively. Kāśyapa mentioned the age as sixteen years which is probably the description of appropriate age for conception. He further says that this age can be influenced by specific *āhāra* (dietetics), and *ārogya* (health). Arunadatta opines that these are probable ages. There may be slight variation in individual cases as menarche may come at eleven years similarly age of menopause may also be delayed.

ऋतुचक्र *(Menstrual cycle)*

सामान्य स्त्री-शरीर में ऋतुचक्र एक मास (चन्द्रमास-२८ दिन) का वर्णित है, विभिन्न शारीरिक परिवर्तन दृष्टया आचार्यों ने इसे स्पष्ट तीन भागों में विभक्त किया है।

१. रजःस्राव काल-३ या ५ दिन।

२. ऋतुकाल-१२ या १६ दिन।

३. ऋतु व्यतीत काल-ऋतुकाल एवं रजःस्राव काल के बीच का समय जो सामान्यतः २८ दिन के ऋतुचक्र में ९ या १३ दिन का होता है (रजःस्राव ३ दिन + १२ या १६ दिन ऋतुकाल=१५ या १९ दिन, २८-१५ या १९=१३ या ९ दिन)। तीनों अवस्थाओं का विवेचन अग्रिम पृष्ठों में किया जायगा।

Entire period of one month *(candramāsa*=28 days) is divided in three i.e.

i) *Rajaḥsrāva* (menstruation)— 3 to 5 days.

ii) *Rtukāla* (proliferative phase including ovulation)—12 or 16 days.

iii) *Rtu vyatītakāla* (post ovulatory phase or secretory phase)—9 or 13 days.

(१) रजःस्राव *(Menstruation)*

(अ) रजःस्राव काल एवं अन्तराल-अवधि *(Duration of menstruation and intermenstrual period)*

सभी आचार्यों के मत से यह मासिक स्राव एक-एक मास के अन्तर से आता है। स्राव की अवधि महर्षि चरक मतानुसार ५ दिन एवं वाग्भट मतानुसार तीन दिन मानी गई है। यह मतभेद सम्भवतः स्त्रियों के वैयक्तिक स्वभाव के कारण है, अतः सामान्य ३ से ५ दिन की अवधि मान सकते हैं।[1]

आचार्य भावमिश्र ने भी एक-एक मास के अन्तर से ही प्रकृतितः आर्तवस्राव का वर्णन दिया है जो कि ३ दिन तक रहता है[2]। अन्यत्र शुद्ध आर्तव के लक्षणों के वर्णन में इस रजःकाल के वैभिन्य का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि

१. द्वादशादिति प्रायिकमेतत्, एकादशवार्षिकाणामपि स्त्रीणां रक्तप्रवृत्तिदर्शनात्। पञ्चाशतः क्षयमित्यत्राप्येवमेव चिन्त्यम्॥ (अ० ह० शा० १/७ की अरुणदत्त टीका)

२. (अ) मासात्··· पञ्चरात्रानुबन्धि ···। (च० सं० चि० ३०/२२५)
(आ) मासे मासे गर्भकोष्ठमनुप्राप्य त्र्यहं प्रवर्तमानम्॥ (अ० सं० शा० १/१०)
(इ) मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ॥ (अ० ह० शा० १/७)

३. (अ) मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत्। (भा० प्र० पूर्व० ३/१)
(आ) भा० प्र० पूर्व० ३/२०४ (पृष्ठ ६१)

अत्यधिक रक्त की प्रवृत्ति होने पर तीन दिन एवं मध्यम प्रवृत्ति होने पर पाँच दिन रजःस्राव रहता है। किसी-किसी को अल्प स्राव होने पर थोड़ा-थोड़ा सोलह दिन तक रक्तस्राव होता रहता है किन्तु यदि यह शुद्ध आर्तव (शुद्ध आर्तव के लक्षणों से युक्त) है, तो इसे भी सामान्य आर्तव जानना चाहिए।[1]

महर्षि हारीत[2] एवं भेल[3] ने रजःस्राव काल ७ दिन तथा अन्तराल एक मास का वर्णन किया है।

आधुनिक प्रत्यक्ष ज्ञानानुसार तीन से पाँच दिन का रजःस्राव-काल मानना युक्तिसंगत है।

Intermenstrual period has been given as of one month by all the writers, however, there is difference of opinion regarding duration of menstruation as three days (Vāgbhaṭa and Bhāwamiśra), five days (Caraka) and seven days (Hārīta and Bhela). Bhāwamiśra has further said that if flow is exessive it lasts for three days; if average then for five days; however, if slight flow without any other symptom of abnormality persists even for sixteen days, it may be considered as normal.

(आ) आर्तवोत्पत्ति के लिये गर्भाशयान्तर धमनियों में आर्तव का एकत्रीकरण एवं विसर्जन *(Collection of blood in vessels of uterus for excretion)*

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तादार्तवम्।
ईषत्कृष्णं विवर्णं च (विगन्धञ्च-पा० भे०) वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ (सु० सं० शा० ३/१०)।
मसेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृतौ पुनः। ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखाम्रुदेत्॥
(अ० सं० शा० १/४३ एवं अ० ह० शा० १/२३, २४)
रजोवहाः सिरा यस्मिन् रजः प्रविसृजन्यतः। पुष्पभूतं हि तद्दैवान्मासि मासि प्रवर्त्तने।
(का० सं० खि० ९/१७)

दोनों धमनियों (आर्तव विमोचिनी) के द्वारा पूरे महीने में संचयित (गर्भाशयान्तर श्लेष्मकला में एकत्रित), कुछ कृष्णवर्ण एवं विवर्ण (विशिष्ट गन्ध युक्त) आर्तव को वायु योनिमुख की ओर (स्रवण करने के लिए) ले जाती है। आचार्य भावमिश्र ने भी यही भाव व्यक्त किए है।[4]

महर्षि काश्यप के मतानुसार रजोवहा सिराएँ जिस रज का विसर्जन करती है, पुष्परूप हो वह प्रत्येक मास में प्रवर्तित होता है।

टीकाकार विश्वामित्र का मत है कि केश के सदृश सूक्ष्म बीजरक्तवहा सिराएँ गर्भाशय को सम्पूर्ण महीने बीज की उत्पत्ति (वृद्धि) के लिए पूरित करती हैं।[5]

१. पञ्चरात्रानुबन्धि = प्रभूतप्रवृत्त्या विरात्रानुबन्धि, ततो मध्यमप्रवृत्त्या पञ्चरात्रानुबन्धि, ततः परं कस्याञ्चिच्चेल्स्रवति, तदा स्वल्पप्रवृत्त्या षोडशदिनानि यावत्तदपि शुद्धमेव॥ (भा० प्र० चि० ६८/१० टीका)

२. मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां दृष्ट्वा ऋतुमतीस्त्रियः। रजः ससर्दिनं यावद्वृक्षं भिषजां वर ॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/८)

३. स एष आसप्तरात्रात् सर्वसञ्चारोभिऽदद्यत्यतः ·····॥५॥ ····· मासे मासे प्रतिवेदयन्ति। प्रतिगतप्रवेशं च तत् पुनर्मासेन समागच्छत्यार्तवम्॥ ६॥ (भे० सं० शा० ५)

४. मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्तवम्। ईषद्विवर्णं कृष्णञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२०५)

५. सूक्ष्मकेशप्रतीकाशा बीजरक्तवहाः सिराः। गर्भाशयं तर्पयन्ति (पूरयन्ति-पा० भे०) मासाद्बीजाय कल्पते॥
(विश्वामित्र, सु० सं० सू० १४/१४ की चक्र० टीका से उद्धृत)

Scanned with CamScanner

The blood collected for whole month by both the *dhamanīs* (uterine vessels and their endometrial capillaries) assuming slight black colour and specific odour is brought downwards to vaginal orifice by *vāyu* for excretion. Viśwāmitra has clarified that hair thin vessels fill the uterus for whole month to receive *bīja* (both *strī* and *pumbīja* or zygote).

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन यह स्पष्ट कर देते हैं कि रजःस्राव-काल में आने वाला रक्त गर्भाशय के अन्दर पूरे माह में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम होता है, जो आधुनिक ग्रन्थों में वर्णित गर्भाशय की श्लेष्मलकला में होने वाले चक्रिक परिवर्तनों की ओर इंगित करता है।

Above description clearly indicates that menstruation is a result of changes going on in vascular apparatus of uterus for whole month, or in other words this refers to cyclic changes of endometrium.

(इ) शुद्ध आर्तव का स्वरूप (Character of normal menstruation)

मासान्निच्छिदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ २२५॥
गुञ्जाफलसवर्णं च पद्मालक्तकसन्निभम्। इन्द्रगोपकसङ्काशमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ २२६॥
(च० सं० चि० ३०)

शशासृक्प्रतिमं यत् तु यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसन्ति यद् वासो न विरञ्जयेत्॥
(सु० सं० शा० २/१७)॥

आर्तवं पुनः शशरुधिरलाक्षारसोपमं धौतं च विरज्यमानं शुद्धमाहुः ॥ (अ० सं० शा० १/२०)॥

···आर्तवं पुनः। लाक्षारससशास्त्राभं धौतं यच्च विरज्यते ॥ (अ० ह० शा० १/१८-१९)॥

एक मास के अन्तर से आने वाला, पिच्छिलता एवं दाह तथा वेदना से रहित, पाँच रात्रि तक रहने वाला, मात्रा में न बहुत अल्प, न बहुत अधिक, रंग में गुञ्जाफल या पद्म (पुष्प) या अलक्तक अथवा इन्द्रगोप के सदृश, आर्तव शुद्ध माना जाता है।

महर्षि सुश्रुत के मत से जो वर्ण में शशक-रक्त सदृश या लाक्षा-रस सदृश हो, एव कपड़ों को रंजित न करे वह आर्तव शुद्ध माना जाता है।

महर्षि वाग्भट ने शब्दभेद से सुश्रुत के ही मत का समर्थन किया है। योगरत्नाकरकार, माधव एवं भावमिश्र ने भी महर्षि चरक एवं सुश्रुत का ही अनुगमन किया है।[1]

मासिक स्राव के रक्त का वर्ण उपर्युक्त संहिताओं में वर्णित अधिक रक्तवर्ण न हो किंचित् कृष्ण वर्ण का होता है। महर्षि सुश्रुत, वाग्भट एवं भावमिश्र ने अन्यत्र (पृष्ठ ६३) रंग में ईषत्कृष्णवर्णता स्वीकार की है। जिस वर्णद्विविधता का स्पष्टीकरण आचार्य भावमिश्र ने वातादि प्रकृति-भेद कहकर दिया है,[2] एवं निष्पिच्छ होना या दाह आदि न होने का स्पष्टीकरण वायु आदि के विकार की विरहितता बताया है;[3] अर्थात् शुद्ध आर्तव आने पर किसी भी भाँति की अतिपिच्छिलता तथा दाह, शूल आदि नहीं होना चाहिए।

१. मासात् ····· शुद्धमादिशेत् (च० सं० सदृश), शशासृक ····· विरञ्जयेत्। (सु० सं० सदृश) मा० नि० ६१/६, ७; यो० र० स्त्री० रो०; भा० प्र० पूर्व० ३/२०६ (सु० सं० सदृश) ; भा० प्र० चि० ६८/१० (च० सं० के मासात् ·····सदृश)

२. आर्तवस्य वर्णद्वयाभिधानम् वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात्। (भा० प्र० पूर्व० ३/२०६ टीका)

३. निष्पिच्छदाहार्ति=अपिच्छिलमदाहमशूलम्, एतेन विकृतवातादिलक्षणरहितमित्यर्थः॥ (भा० प्र० चि० ६८/१० टीका)

The normal menstruation is that which has intermenstrual period of one month; duration of blood loss as five days (this may differ according to opinions of different authors); is not associated with pain or burning sensation. excreted blood is not unctuous, not very scanty or excessive in amount; the colour resembles the red juice of lac, red lotus flower, fruit of jequirity or rabbit's blood.

Menstrual blood is not bright red in colour as mentioned above, but is of slight blackish nature, which has been accepted by some authors at different places (page 64). Bhāwamiśra has explained that this difference in colour is due to *prakrti* (*vātaja* etc.) of individuals, and vitiated *doṣas* are responsible for symptoms like pain and burning sensation etc.

(ई) रजःस्वला-चर्या (Mode of living during menstruation)

ततः पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत ब्रह्मचारिण्यधःशायिनी, पाणिभ्यामन्नमजर्जरपात्राद् भुञ्जाना, न च काङ्क्षिन्मृजामापद्येत । ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्य सशिरस्कं स्नापयित्वा शुक्लानि वासांस्याच्छादयेत् पुरुषं च। ततः शुक्लवाससौ सुग्विणौ सुमनसावन्योऽन्यमभिकामौ संवसेयातां ॥ (च० सं० शा० ८/५)।

ऋतौ प्रथमदिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपातस्नानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् ···। दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजिनीं हविष्यं, त्र्यहं च भर्तुः संरक्षेत्। ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवासःसमलङ्कृतां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां भर्तरि दर्शयेत् ॥
(सु० सं० शा० २/२५)।

ततः पुष्पदर्शने प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी स्नानाद्यलङ्करहिता दर्भसंस्तरशायिनी त्रिरात्रमासीत। पर्णशरावकरतलान्यतमे च यावकं पयसा सिद्धमल्पं कर्शनार्थमश्नीयात्। तीक्ष्णोष्णाम्ललवणानि वर्जयेत् ॥

चतुर्थेऽहन्युद्वर्तिता शीतसलिलस्नाताऽनुलिप्ताऽलङ्कृता शुक्लमाल्याम्बरा कृतमङ्गलस्वस्त्ययनैवंविधमेव भर्तारं पश्येदनन्यमनाः ॥ (अ० सं० शा० १/४४-४५)।

ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी त्र्यहम् ॥ २४॥
मृजालङ्काररहिता दर्भसंस्तरशायिनी। क्षैरेयं यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ॥ २५॥
पर्णे शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी। चतुर्थेऽह्नि ततः स्नाता शुक्लमाल्याम्बरा शुचिः ॥२६॥
(अ० ह० शा० १/२४ से २६)।

अथ शुद्ध स्नातां (ता) स्त्रियं (स्त्री) चतुर्थेऽहनि स्नानगृहे श्वेतेन एवाऽन्येन वाससाऽवगुण्ठ्यानवलोकयन्ती शुचिर्देवगृहं प्रविश्योद्धटाग्निं प्रज्वलन्तं घृताक्षतेनाभ्यर्च्य ब्राह्मणमीक्षेरं विष्णुं स्कन्दं च संप्रेक्ष्याभिवाद्य, निष्क्रम्य सूर्याचन्द्रमसाविति, न तु प्रेतपिशाचरक्षांसि ॥ (का० सं० शा० ५/७)।

रजोदर्शन के समय से लेकर तीन रात्रि (दिन एवं रात्रि) ब्रह्मचारिणी रहकर भूमि में शयन करे। हाथ में अजर्जर (बिना टूटा हुआ) पात्र में अन्न रखकर भोजन करे, किसी भी प्रकार का प्रक्षालन न करे। तदुपरांत चतुर्थ दिवस उबटन लगाकर, शिर से स्नान कर, श्वेत वस्त्र धारण करे, पुरुष भी श्वेतवस्त्र धारण करे। इस प्रकार श्वेतवस्त्र एवं पुष्पमाला-धारित, प्रसन्न मन एक दूसरे को चाहने वाले उन पति-पत्नियों को वैद्य सहवास की आज्ञा दे।

महर्षि सुश्रुत ने रजःस्वलाचर्या का विशिष्ट वर्णन दिया है। उनके मत से ऋतुस्राव के प्रथम दिन से ही ब्रह्मचारिणी स्त्री दिन में सोना, अंजन, अश्रुपात, स्नान, अनुलेपन (चन्दनादि सुगंधित द्रव्य-प्रयोग), अभ्यंग (तैल का), नखों का काटना,

Scanned with CamScanner

तेजी से दौड़ना, हँसना, बोलना (अधिक), अत्यधिक शब्दों का सुनना, केश-प्रसाधन करना, वायु एवं परिश्रम (अत्यधिक) का त्याग करे। दर्भ (कुश-जाति) के बने बिस्तर पर सोने वाली, हथेली या शराव(मिट्टी का बर्तन) या पत्ते (पत्तल) पर हविष्य (घृत के साथ शाल्योदन अथवा क्षीर-संस्कृत यवान्न[1]) भोजन करने वाली स्त्री तीन दिन तक पति से पृथक् रहे। तदुपरांत चौथे दिन शुद्ध-स्नाता, नवीन-वस्त्र-धारिता एवं अलंकृत (आभूषणों एवं माल्यादि से) स्त्री को स्वस्तिवाचन एवं मंगलाचरण के साथ पति के दर्शन करावे। टीकाकार डल्हण ने 'शुद्ध' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जीर्ण शोणित के चले जाने एवं नये शोणित के अवस्थित होने से स्त्री शुद्ध हो जाती है[2], तथा रजःस्वलाः को नस्य प्रयोग का निषेध किया है[3]।

महर्षि वाग्भट (अं० संग्रह, अं० हृदयकार) ने भोजन में यावक (यव से बने खाद्य) को दुग्ध के साथ थोड़ी मात्रा में ही शरीर के कर्शनार्थ एवं कोष्ठ-विशोधनार्थ खाने का विशिष्ट विधान बताया है, एवं पति-दर्शन का विधान सुश्रुत सदृश ही वर्णन किया है। पुष्पिता अर्थात् रजःस्वला को स्वेदन का निषेध किया है[4]। अष्टाङ्गहृदयकार ने तीन दिन तक कल्याणध्यायिनी या शुभचिन्तन करने वाली रहने का भी वर्णन किया है; तथा प्रथम तीन दिन अलङ्कार-प्रयोग भी निषिद्ध बताया है।

महर्षि काश्यप ने रजःस्वला को नस्य[5] एवं वमन[6] कर्म का निषेध किया है तथा लिखा है कि तत्पश्चात् (ऋतुस्राव के पश्चात्) चौथे दिन स्नान से शुद्ध स्त्री स्नानगृह में ही श्वेत या अन्य (शुभ्र) वस्त्रों से अपने आपको ढककर इधर-उधर न देखती हुई, पवित्र मन से देवगृह में प्रवेश कर, प्रज्वलित तथा हवन की हुई अग्नि को घृत एवं अक्षत आदि से पूजा करके, ब्राह्मण, ईश्वर, विष्णु तथा स्कन्द को देखकर तथा उनका अभिवादन करके, सूर्य एवं चन्द्रमा को नमस्कार करे। प्रेत, पिशाच एवं राक्षस आदि को नमस्कार न करे।

महर्षि भेल ने रजःस्राव के समय होने वाले रक्त को पुराण रज की संज्ञा देते हुए इस काल में संभोग का निषेध किया है।[7]

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत का पूर्णरूपेण अनुगमन किया है।[8]

From the day of onset of menstruation the lady should observe chastity; should avoid sleeping in day time, application of collyrium, shedding of tears, ablution, bathing, anoint-

१. हविष्यं सघृतशाल्योदनादि, क्षीरसंस्कृतं यवान्नमित्येके ॥ (सु० सं० शा० २/२५ की डल्हण टीका)

२. शुद्धा जीर्णशोणितापगमेन, अनन्तरं स्नाता, तदुक्तं-"नवे तनौ च सञ्जाते विगते जीर्णशोणिते। नारी भवति संशुद्धा पुंसा संसृज्यते तदा" ॥ (सु० सं० शा २/२५ की डल्हण टीका)

३. अनार्तवे चेत्यादि चकारादार्तवेऽप्यप्रे ··· ···। (सु० सं० चि० ४०/४७ की डल्हण टीका)

४. गर्भिणीं पुष्पितां सूतां ··· ···। (अ० सं० सू० २६/३२; अ० हृ० सू० १७/२४)

५. न रजःस्वलायाः ··· ···। (का० सं० सि० ४/५)

६. पुष्पिण्यर्तुमती ··· ··· न वाम्याः। (का० सं० सि० ७/५)

७. (त्रय) हन्त खलु पुराणरुधिरं परिवर्जयेत्। किञ्च तत् पुराणम् ? यदादितस्त्र्यहं परिस्रवेदृतुकाले तत्पुराणम् ॥
(भै० सं० शा० ५/५)

८. आर्तवस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी। शयीत दर्भशैय्यायां पश्येदपि पतिं न च ॥
करे शरावे पर्णे वा हविष्यं ज्यहमाहरेत्। अञ्जपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥
नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम्।
अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम्। आयासं भूमिखननं प्रवातञ्च विवर्जयेत् ॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३ से ५)

ing, massaging, paring of nails,fast racing, laughing, talking (too much), listening of so many types of topics, combing and fast winds as well as excessive exercise. She should sleep on the bed made of *darbha* (specific sacred leafy plant) spread over ground. She should eat *haviṣya* (meal made of *ghee*, *śāli* rice and milk) or *yāwaka* (meal made of barley and milk) keeping the same directly over palm or in a utensil made of clay or leaves or unbroken utensil held in hand.She should not adorn herself with ornaments. Use of *nasya* (inhalations), *swedana* (sudation) and *vamana* (emesis) are contraindicated during this period. In order to get her body slightly emaciated and digestive system purified, she should take less quantity of meals.She should avoid pungent *(tīkṣṇa)*, hot *(kaṭu)* and salty *(lavaṇa)* substances; always concentrate on thinking good or auspicious things. On fourth day after use of unguents, should take bath washing her head also, wear white or new garments alongwith garland of flowers and ornaments etc., then with the enchantation of religious or pious hymns, should first of all see her husband clad in white garments. Kāśyapa advises that the lady should cover herself inside the bath room itself and without looking all around enter the place of god with pious feelings; should worship the oblation fire with *rice* and *ghee* and after looking at *brāhmaṇas*, god, *viṣṇu* and *skanda* etc. should perform obeisance to them, should not salute *preta, piśāca* or *rākṣasas.*

विमर्श (Comments)

आधुनिक काल में किसी भी विशिष्ट रजःस्वलाचर्या का निर्देश नहीं मिलता। संहिताओं में वर्णित निर्देशों की उपादेयता संदेहास्पद है, फिर भी उस काल की सामाजिक स्थिति को (व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता था) दृष्टिगोचर रखते हुए सम्भवतः इन निर्देशों की उपयोगिता को सिद्ध किया जा सकता है।

The utility of all these restrictions is doubtful, however, this reflects the social customs of that period, in which for earning livelihood hard work was needed, these restrictions might help in avoiding this hard labour at least for those three days when the lady is definitely physically and psychologically in some changed status. However, in to-day's changed social structure, it is not possible to observe these strictly. Consequences due to non-observance described later do not seem to be correct one.

(उ) रजस्वला में अञ्जनादि एवं नस्य से हानि (Consequences due to non-avoidance of restricted acts)

दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलः,अञ्जनादन्धः, रोदनाद् विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलः, तैलाभ्यङ्गात् कुष्ठी, नखापकर्तनात् कुनखी, प्रधावनाच्चञ्चलः, हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठतालुजिह्वः, प्रलापी चातिकथनात्, अतिशब्द-श्रवणाद् बधिरः, अवलेखनात् खलितः, मारुतायाससेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् ॥

(सु० सं० शा० २/२५)

····· रजःस्वलाया ऋतुर्व्यापद्यते ·····। (का० सं० सि ४/६)

ऋतुस्राव के समय स्त्री के दिन में सोने से गर्भ निद्रालु, अंजन करने से अन्धा, रोने से विकृत दृष्टि का, स्नानानुलेपन से दुःखशील (हर समय दुःखी रहने वाला), तैल के अभ्यंग से कुष्ठरोग-पीड़ित, नख काटने से विकृत नख वाला या कुनखी, तेजी से दौड़ने से चंचल, हँसने से श्याव वर्ण के दाँत, ओष्ठ, तालु एवं जिह्वा वाला, बहुत बोलने से वाचाल, अतिशब्द

Scanned with CamScanner

श्रवण से बधिर, अवलेखन से अर्थात् कंघी आदि से केश-सज्जा करने से खलित या गंजा, वायु के अतिसेवन या अतिपरिश्रम करने से उन्मत्त होता है (जिस रजःस्राव के समय यह क्रियाएं स्त्री करती है उसके तुरंत बाद होनेवाले गर्भाधान से उत्पन्न बालक में उपर्युक्त शारीरिक या मानसिक विकार पाए जाते हैं)। अतः इन क्रियाओं का परित्याग करना चाहिए।

महर्षि काश्यप का मत है कि रजस्वला को नस्य देने से उसे ऋतुस्राव सम्बन्धी व्याधियाँ हो जाती हैं। इन व्याधियों की पुष्पाध्याय एवं यूषाध्याय आदि अध्यायों में वर्णित औषधियों के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये; विशेषकर जीवनीय द्रव्यों से साधित क्षीर का प्रयोग करना चाहिये।[1]

आचार्य भावमिश्र ने सुश्रुत का ही अक्षरशः पालन करते हुए स्पष्टीकरण दिया है कि निषिद्ध कर्म करने से प्रकुपित दोष गर्भ में विकृति उत्पन्न करते हैं एवं अवलेखन के स्थान पर भूमिखनन का वर्णन देकर भूमिखनन से गर्भ में चलते चलते लड़खड़ाकर गिर जाने की विकृति का वर्णन दिया है।[2]

If the woman does not avoid earlier described acts due to ignorance, neglect, greed or fortune, the vitiated *doṣas* reaching the fetus produce following abnormalities.

Restricted acts of woman	*Abnormalities in the child*
Day sleeping	Over sleepy.
Use of collyrium	Blindness.
Weeping	Abnormality of vision.
Batheing & anointing	Saddish.
Oil massage	Leprosy and other skin disorder.
Paring of nails	Deformity of nails.
Fast racing	Wanton or fickle.
Laughing	Black colour of teeth, lips and tongue.
Over talking	Garrulous.
Over hearing	Deafness.
Combing	Baldness.
Exposure to draughts and exertion	Insane.
Scrapping or digging of earth	Falls during walking.
Use of *nasya* (inhalation)	Menstrual abnormalities.

The complications arising due to use of *nasya* during menstrual period should be treated with the drugs prescribed in *puṣpādhyāya, yūṣādhyāys* etc. chapters specifically with the milk treated with *jīvanīya* group of drugs.

१. रजस्वलायाः ··· ··· पुष्पाध्याययू(षाध्याय) ··· ··· येभ्योऽध्यायेभ्यो भेषजं विद्द्धयात्। क्षीरं वा जीवनीयोपसिद्धमिति परिषत्॥ (का० सं० सि० ४/७)

२. आज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा। सा चेत् कुर्यात्रिषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाऽऽप्नुयात्॥
एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः। नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत्॥
अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःखशीलोऽञ्जनाददृक्। स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात्॥
अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते। तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत्॥
प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्। स्खलते भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/६ से १०)

(ऊ) रजःस्राव के अन्त में (चतुर्थ दिवस) पति-दर्शन या अन्य मानसिक स्थिति का परिणाम (Effect of psychological status of woman on fourth day of menstruation upon the child)

पुर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना। तादृशं जनयेत् पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः॥ (सु० सं० शा० २/२६)
तदा हि यादृशमेव पश्यति चिन्तयति वा तादृशं प्रसूत इति॥ (अ० सं० शा० १/४६)

इच्छन्तीं भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम्। (अ० हृ० शा० १/२७)

शुद्धस्नातमात्रा हि स्त्री यं वा पश्यति मनसा वाऽभिध्यायति तादृशाचारवपुषं प्रायेण जनयति; तस्माद्देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धाचार्यान् सतः पश्येत् कल्याणमनाश्च स्यात्। (का० सं० शा० ५/७)

ऋतुस्नाता (ऋतुस्राव के चतुर्थ दिन स्नानोपरांत) स्त्री जिस तरह के पुरुष को देखती है, उसी तरह के पुत्र को जन्म देती है, अतः सर्वप्रथम पति-दर्शन का निर्देश है।

महर्षि वाग्भट ने बालक पर स्त्री के चिंतन के प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार के पुरुष को देखेगी या सोचेगी वैसा ही प्रसव होगा।

महर्षि काश्यप के मतानुसार शुद्ध-स्नाता स्त्री जिसको देखेगी या जिसका ध्यान करेगी, उसी प्रकार के आचार एवं शरीर वाली सन्तान का जन्म देगी, अतः वह देवता, गो, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धजन या आचार्य का दर्शन करे, तथा कल्याण मन वाली रहे।

भावमिश्र ने पति के अतिरिक्त अन्य प्रियजन यथा पुत्र आदि के दर्शन का भी निर्देश दिया है।[1]

महर्षि हारीत ने विषय का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है कि सात धातुओं के बल से प्रकृति एवं विकृति सम होने पर, रजःस्राव के समाप्त हो जाने पर तथा ऋतुकाल के व्याप्त हो जाने पर, स्त्री की सात्विकी, राजसी तथा तामसी जिस जिस प्रकार की भावनाएँ होती हैं, उसी प्रकार के गुण वाले पुत्र को वह जन्म देती है। वह चित्त में भ्राता या पिता या जिस भी अन्य पुरुष का स्मरण करती है, उसी प्रकार के बालक को वह जन्म देती है।[2]

महर्षि भेल ने ऋतुकाल में स्त्री तथा पुरुष (संभवतःयहाँ पुरुष के सम्भोग काल का तात्पर्य है) की मानसिक स्थिति से गर्भ में पड़ने वाले परिणामों का वर्णन करते हुए लिखा है, कि यदि दोनों प्रसन्न हैं तो सात्विक, व्यायस्त या चिन्तित मन होने से राजसी तथा प्रदीन मन रहने से तामसी पुत्र की उत्पत्ति होती है।[3]

The child will have similar physical and psychological characteristics to whom-so-ever the lady sees, remembers or thinks, after taking her bath on fourth day of menstruation, that is why she should first of all see her husband or else the son, kith and kin, god, cow, *brāhmaṇa,* teacher or old persons etc. The child will also have similar *sātwika, rājasika* or *tāmasika* nature as that dominant in mother after menstruation. If the couple (during coitus)

१. पूर्वं पश्येत्··· ··· ··· ···। ··· ··· ··· ··· ततः पश्येत्पतिम् प्रियम्॥ ११॥ (सु० सं० सदृश)
प्रियमिति। भर्तर्यनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/११)

२. सप्तधातुबलेनापि प्रकृत्या विकृतेः समे। ऋतुव्याप्तरजःस्त्रीणां या या भवति भावना॥ २८॥
सात्विकी राजसी वापि तामसी वापि सत्तम !। तादृशं जनयेद्बालं गुणैर्वा तादृशैरपि॥ २९॥
या च भावयते चित्ते भ्रातरं पितरं नरम्। येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिषग्वर !॥ ३०॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/२८, २९, ३०)

३. ऋतौ यदा स्त्रीपुरुषौ प्रसन्नमनसौ रहः। उपेयातामथ तदा गर्भो भवति सात्त्विकः॥ १७॥
ऋतौ यदा स्त्रीपुरुषौ व्यायस्तमनसौ भृशम्। उपेयातामथ तदा गर्भो भवति राजसः॥ १८॥
ऋतौ यदा स्त्रीपुरुषौ प्रदीनमनसौ रहः। उपेयातामथ तदा गर्भो भवति तामसः॥ १९॥ (भे० सं० शा० ३/१७, १८, १९)

Scanned with CamScanner

is happy, the born child would be *sātwika*, if worried then *rājasika* and if sorrowful then *tāmasika*.

(ए) रजःस्राव के समय संभोग का परिणाम (Effect of coitus performed during menstruation)

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां भवति; यश्च तत्राधीयते गर्भः, स प्रसवमानो विमुच्यते। द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा, तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुर्वा भवति। चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घायुश्च भवति। न च प्रवर्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति, यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्द्ध्वं गच्छति तद्वदेव दृष्टव्यम्। तस्मात्त्रियमवर्तीं त्रिरात्रं परिहरेत्। अतः परं मासादुपेयात्॥ (सु० सं० शा० २/३१)

··· ··· गर्भः कुक्षिस्थ एव विनाशमाप्नुयादल्पायुर्बलारोग्यविभवो वा स्याद्विकलेन्द्रियो वा ऋतावाद्ये च रात्रित्रये ··· ··· ····। (अ० सं० शा० १/५)

····· पूर्वास्तिस्रोऽत्रनिन्दिताः ··· ··· ··· ···। (अ० ह० शा० १/२७)

रजस्वलायाश्चेत् प्रथमेऽहनि गर्भं आपद्येत तं वातगर्भमाचक्षते विफलं वातपुष्पमिवोद्विदानां; द्वितीयेऽहनि चेत् स्रंसते च्यवते वा; तृतीयेऽहनि सूतिकासने म्रियते, न वा दीर्घायुर्भवति, हीनाङ्गश्च जायते।।

(का० सं० शा० ५/५)

ऋतुस्राव के प्रथम दिवस में ऋतुमती के साथ संभोग पुरुषों की आयु का नाशक होता है, यदि उस दिन (के संभोग से) गर्भाधान हो भी गया तो बालक प्रसव के बाद तुरंत ही मर जाता है, द्वितीय दिवस भी ऐसा ही होता है। तीसरे दिन (गर्भाधान होने पर) बालक असम्पूर्णांगों वाला एवं अल्पायु होता है। चतुर्थ दिवस का (गर्भित बालक) सम्पूर्णांग एवं दीर्घायु होता है। रक्तस्राव की स्थिति में बीज (शुक्र) का प्रवेश गुणकारी नहीं होता। जिस प्रकार नदी के प्रवाह के विरुद्ध फेंका हुआ तैरने वाला पदार्थ धारा के विपरीत नहीं जाता, वही दृष्टांत समझना चाहिए अर्थात् रक्तस्राव के समय प्रस्थापित शुक्र गर्भाशय में ऊपर प्रवेश नहीं कर सकता। अतः नियमों को पालन करने वाली स्त्री तीन रात्रि तक (संभोग का) परित्याग करे, उसके पश्चात् सम्पूर्ण मास सेवन (संभोग का) करे।

अष्टांगसंग्रहकार के मतानुसार ऋतु के प्रथम तीन दिन में गर्भाधान होने पर गर्भ या तो कुक्षि में ही मर जाता है अथवा अल्पायु, हीन-बल, अल्पारोग्य वाला एवं विकलेन्द्रिय होता है। अष्टांगहृदयकार ने केवल तीन दिनों के निन्दित होने का वर्णन दिया है।

महर्षि काश्यप-मतानुसार रजस्वला में स्राव के प्रथम दिन ही यदि गर्भ स्थित हो जाय तो वह वृक्षों के वात-पुष्प की तरह फलशून्य वातगर्भ होता है अर्थात् उससे सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। दूसरे दिन गर्भाधान होने पर गर्भस्राव हो जाता है। तीसरे दिन गर्भाधान होने पर हीनांग एवं अल्पायु बालक की उत्पत्ति होती है।

महर्षि भेल ने उपर्युक्त मतों का ही प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि रजःस्राव के तीन दिन संभोग करने से गर्भाधान नहीं होता, यदि होता भी है तो बालक हीनायु होता है।[1]

आचार्य भावमिश्र ने सुश्रुत के मत का समर्थन करते हुए स्त्री की अस्पृश्यता की श्रेणियों का भी वर्णन किया है कि वह स्त्री प्रथम दिन चाण्डाली सदृश, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी सदृश एवं तीसरे दिन रजकी सदृश अस्पृश्या होती है।[2]

१. तास्मिन् त्र्हे गर्भोऽपक्रमेण न तिष्ठति, अवस्थितो वा सो (ना)युषि(षे) समर्थो भवति। (भे० सं० शा० ५/५)

२. प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा। तथा वहति रक्ते तु क्षिप्तं वीर्यमधो व्रजेत्॥ १२॥
आयुः क्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम्। द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदृतुमतीं तथा॥ १३॥
तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति। आहितो यस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः॥ १४॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाङ्गना॥ २६॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/१२ से १४ एवं २६)

रजस्वला के साथ सम्भोग के निषेध एवं परिणाम का वर्णन करते हुए लिखा है कि रजस्वला-गमन से हानि विशेषकर दृष्टि, आयु एवं तेज की हानि तथा अधर्म होता है।[1]

If copulation occurs on first day of menstruation, the life span of husband shortens, however, if coitus takes place with menstruating woman (on any day) then also the life of husband shortens, his eye-sight and glory (*teja*) declines, as well as this becomes the act of unrighteousness. The penetration of *bīja* (sperms) during menstrual flow is not good; as a light article thrown in the flowing river against the current never reaches upwards, similarly sperms deposited during menstruation do not reach uterus, hence, for three days the lady should avoid coitus. Effects on the child impregnated during these four days of menstruation are given here under:

Menstrual day of impregnation	*Eflect on the child*
First	No pregnancy or pseudocyesis or intrauterine death or death immediately after delivery.
Second	Either abortion or intrauterine death or death immediately after birth or within few days of delivery.
Third	Deficient or defective body-parts and short lived.
Fourth	With all body parts, normal, healthy.

विमर्श (Comments)—

आधुनिक पुस्तकों में यद्यपि रजःस्राव-काल में संभोग का कोई विशिष्ट निषेध नहीं है, पर शारीरिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य-दृष्ट्या संभोग न करना ही श्रेयस्कर होता है, क्योंकि यह एक सम्भावना हो सकती है कि इस काल में चूँकि क्षारीय प्रतिक्रिया वाले रक्त का प्रवाह हो रहा होता है, अतः योनिनलिका की नैसर्गिक उपसर्ग-प्रतिरोधात्मक अम्लीय प्रतिक्रिया का अभाव होगा एवं संभोग से प्रविष्ट जीवाणु सीधे गर्भाशयादि अंगों में प्रविष्ट हो व्याधि उत्पन्न करने में समर्थ हो सकेंगे।

It is difficult to explain these abnormal effects, however, it is just possible that this might have been prescribed to deter the couples from sexual act. During menstrual blood loss the normal defence mechanism i. e. acid media of vaginal canal is lost, coitus can facilitate entry of some organisms which can reach unchecked upto peritoneal cavity via uterus and fallopian tubes.

(२) ऋतुकाल (Rtukāla)

(अ) अवधि (Duration)

ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तवः। अदृष्टार्तवाऽप्यस्तीत्येके भाषन्ते॥ (सु० सं० शा० ३/६)

१. रजस्वलामकामां ····· भूरिवैगुण्यशङ्कया॥ ३००-३०२॥
रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः। दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत्॥ ३०३॥ (भा० प्र० पूर्व० ५)

Scanned with CamScanner

ऋतुस्तु दृष्टार्तवो द्वादशरात्रं भवति। षोडशरात्रमित्यन्ये। शुद्धयोनिगर्भाशयार्तवाया मासमपि तु केचित्। तद्वददृष्टार्तवोष्यस्तीत्यपरे। (अ० सं० शा० १/४०)

ऋतुस्तु द्वादशनिशाः ..... । (अ० हृ० शा० १/२७)

अत ऊर्ध्वमृतुर्द्वादशाहं ब्राह्मणीनां, एकादशाहं क्षत्रियाणां, दशाहं वैश्यानां, नवरात्रमितरासाम्॥

(का० सं० शा० ५/५)

आर्तव-दर्शन के बाद ऋतुकाल १२ दिन का होता है, अन्य आचार्यों का कथन है कि आर्तव-दर्शन न होने पर भी स्त्री ऋतुमती होती है।

महर्षि वाग्भट ने भी महर्षि सुश्रुत-सदृश ही लिखा है कि दृष्टार्तव ऋतुकाल बारह रात्रि का होता है। अन्य आचार्य कहते हैं कि सोलह रात्रि तथा शुद्ध योनि, गर्भाशय एवं आर्तव होने पर पूरे एक मास का भी होता है। ऋतुकाल आर्तव के अदृश्य रहने पर भी होता है, ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं।

टीकाकार डल्हण ने ऋतुकाल के १६ एवं १२ दिनों के वर्णन का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि १२ दिन की गणना में १६ दिनों में से आदि के तीन तथा योनि-सङ्कोच के कारण अन्तिम सोलहवाँ दिन नहीं गिना जाता[1]। इसके पूर्व आर्तव की व्याख्या करते हुए टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि निषिक्त बीज के फल-स्वरूप उत्पन्न होने के ही कारण इसे ऋतुकाल कहते हैं।[2] उपर्युक्त सभी विभिन्न मतों के सामंजस्य का प्रयत्न करते हुए टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि गर्भाधान की विशेषता के कारण ऋतुकाल-वर्णन एक उपदर्शन मात्र है, क्रमशः उपचय एवं अपचय होने के कारण सदैव ही ऋतु होकर गर्भाधान नहीं होता।[3]

महर्षि काश्यप ने ब्राह्मणी के लिए १२ दिन, क्षत्राणी के लिए ११ दिन, वैश्या के लिए १० दिन एवं अन्यों के लिए ९ रात्रि का ऋतुकाल माना है।

आचार्य भावमिश्र ने १२ एवं १६ दिन की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आर्तवस्राव के दिन से ऋतुकाल १६ दिन का एवं गर्भ के ग्रहण योग्य काल होता है एवं इन्होंने भी महर्षि काश्यप-सदृश ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या एवं शूद्रा के लिए क्रमशः १२, १०, ८ एवं ६ दिन का ऋतुकाल माना है।[4]

It is of twelve days, according to other opinions it may be of sixteen days; if *yoni, garbhāśaya* and *ārtava* are healthy, it may be of entire month; sometimes *ṛtukāla* may come up without menstruation. Dalhana has explained that in twelve days duration, the first three days and last one day of constriction of *yoni* out of sixteen days duration are not counted. Since the seeds (sperms) deposited during this period are likely to bear fruit (conception), hence it is termed as *ṛtukāla*. Its duration as twelve days for *brāhmaṇīs*, eleven

१. द्वादशरात्रमिति षोडशदिनेषु मध्ये आद्यं दिनत्रयमन्तिमं च षोडशं योनिसङ्कोचदिनं न गणनीयम्॥
(सु० सं० शा० ३/६ की डल्हण० टीका)

२. ऋतुश्च निषिक्तस्य बीजस्य फलप्रसवानुगुणः कालः। (अ० सं० शा० १/१० की इन्दु टीका)

३. अत्र सदैवर्तुः क्रमोच्चयापचये तु विशेषःगर्भाधानाय न विशेषः। ऋतुत्वोपदर्शनरहितमन्ये ऋतुमिच्छन्ति॥
(अ० सं० शा० १/४० की इन्दु टीका)

४. (अ) आर्तवस्रावदिवसादृतुः षोडश रात्रयः। गर्भग्रहणयोग्यस्तु स एव समयः स्मृतः॥
सर्वासामेव चतुर्वर्णस्त्रीणां सर्वादिसम्मतः पूर्वोक्तः समयः। ग्रन्थान्तरे तु विशेषः। तद्यथा-स्रानदिवसादूर्ध्वं द्वादशरात्रावधि ब्राह्मण्याः, दशरात्रावधि क्षत्रियायाः, अष्टरात्रावधि वैश्यायाः, षड्रात्रावधि शूद्राया गर्भधारणे शक्तिः। (भा० प्र० पूर्व० ३/२)
(आ) ऋतुः=स्त्रीणां रजोदर्शनात् षोडशनिशाः, तत्र भवमार्त्तवम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२०६)

or ten days for *kṣatriyās*, ten or eight days for *vaiśyās* and nine or six days for *śūdrās* has been mentioned by Kāśyapa and Bhāwamiśra respectively. This is termed as period most suitable for achievement of conception

विमर्श (Comments)

अवधि-वर्णन-दृष्ट्या अवलोकन करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह ऋतुकाल का वर्णन आधुनिक संहिताओं में वर्णित ऋतुचक्र की प्रथम अवस्था (प्रोलिफेरेटिव फेज या संचयावस्था) का वर्णन है, जिस अवस्था का अन्त स्त्री के बीजोत्सर्ग से होता है; परन्तु शुद्ध योनि, गर्भाशयादि में पूरे मास के ऋतुकाल का वर्णन इस सामंजस्य के विरुद्ध है। ऋतुकाल का विचार आचार्यों ने गर्भोत्पत्ति के लिए सबसे उपयुक्त काल के सन्दर्भ में किया है। स्त्री-बीजोत्सर्ग सामान्य २८ दिन के ऋतुचक्र में १४ वें दिन होता है, पर ८ दिन तक कम या ज्यादा अर्थात् ७ वें से २१ वें दिन तक भी बीजोत्सर्ग देखा गया है। स्त्रीबीज की आयु उत्सर्ग के बाद १८ से २४ घण्टे तक की मानी गई है। स्त्री-शरीर में शुक्राणु प्रवेश के बाद अधिकांशतः २४ से ४८ घण्टे तक ही कार्य-क्षम अवस्था में रहते हैं अर्थात् यदि संभोग ऋतुचक्र के १२ वें से १६ वें दिन तक किया जाय तो गर्भोत्पत्ति की सम्भावना अधिक होती है; परन्तु विशिष्ट अवस्थाओं अर्थात् स्त्री-बीजोत्सर्ग-काल के अनुसार गर्भ-ग्रहण-काल परिवर्तित भी होता है। यह तथ्य 'बिना आर्तव-दर्शन के भी ऋतुकाल होना' इस वर्णन से और भी स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि कभी-कभी विशेषतया शिशु की स्तन्यपानावस्था में ऐसा देखा जाता है कि किसी-किसी को रजःस्राव के बिना भी गर्भाधान हो जाता है। अतः यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऋतुकाल का वर्णन प्रधानतया स्त्री-बीजोत्सर्ग-काल का वर्णन है साथ ही यह संचयावस्था को भी इंगित करता है।

अन्यत्र महर्षि सुश्रुत ने आहाररस से एक मास में शुक्र की निर्मिति के साथ स्त्रियों में आर्तव की निर्मिति मानी है। स्त्री-बीजोत्सर्ग सामान्यतया एक मास के अन्तर से होता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने भी एक मास में रज की उत्पत्ति का उल्लेख किया है। यह एक मास में उत्पन्न होने वाला आर्तव या रज स्त्रीबीजोत्सर्ग माना जा सकता है।[1]

जातिभेद से ऋतुकाल की अवधि में अन्तर का स्पष्टीकरण वैज्ञानिक-दृष्ट्या कठिन है। सम्भवतः सामाजिक व्यवस्थाओं से प्रेरित हो यह वर्णन दिया गया हो।

Apparently, it looks to be description of proliferative phase, which ends after ovulation, however, considering its existence for entire month or even without menstruation and its specific importance for conception, it seems to be description of ovulation; thus it, can be said that *ṛtukāla* denotes proliferative phase including ovulation. The description of difference in duration for different castes has no scientific relevance, it might have come up due to contemporary social structure.

In the process of formation of *dhātus* Suśruta says that from *rasa* the *śukra* and also *ārtava* in females is formed in a month, Śārṅgadhara has also accepted the formation of *raja* in a month. This *raja* or *ārtava* formed in a month may be considered as ovulation.

(आ) ऋतुकाल में ही गर्भाधान होने का कारण *(The reason for conception occurring only during ṛtukāla)*

नियतं दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुजं यथा। ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा॥
(सु० सं० शा० ३/९)

पद्मं सङ्कोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा। ऋतावतीते योनिः सा शुक्रं नान्तः प्रतीच्छति॥
(अ० सं० शा० १/४२ एवं अ० हृ० शा० १/२२)

१. सु० सं० सू० १४/१४; शा० सं० पूर्व० ६/१० (पृष्ठ ४७)

Scanned with CamScanner

जिस प्रकार दिवस का अन्त होते ही कमल-पुष्प संकुचित हो जाता है, उसी प्रकार ऋतुकाल बीत जाने पर स्त्री की योनि संकुचित हो जाती है।

महर्षि वाग्भट ने भी सुश्रुत-सदृश ही वर्णन करते हुए लिखा है कि दिवसान्त में जिस प्रकार कमल संकुचित हो जाता है, ऋतुकाल बीत जाने पर योनि भी उसी प्रकार (संकुचित हो) शुक्र का अन्तःभाग (गर्भाशय) में ग्रहण नहीं करती। टीकाकार इन्दु ने स्पष्टीकरण दिया है कि योनि बीज का ग्रहण नहीं करती अर्थात् गर्भाशय में बीज नहीं प्राप्त होता।[1]

इसी काल को आचार्य भावमिश्र ने गर्भ-ग्रहण-योग्य-काल से सम्बोधित किया है[2], एवं इन्होंने भी ऋतुकाल के पश्चात योनिसंवरण का वर्णन किया है।[3]

महर्षि भेल ने भी ऋतुकाल में ही गर्भाधान का वर्णन किया है।[4]

As lotus flower closes after sun-set, similarly after *ṛtukāla* the *yoni* of woman gets costricted and does not accept *śukra* or permits the entry of *bīja* (sperms) into its inner components i.e. uterus.

विमर्श (Comments)

ऋतुकाल का समय ऋतुचक्र के पहिले के १२ या १६ दिन का कहा गया है, उसके पश्चात अर्थात बीजोत्सर्ग के बाद प्रोजेस्टेरॉन हार्मोन के प्रभाव के कारण गर्भाशय-ग्रीवा-मुख के श्लेष्मा में ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं कि शुक्राणु आसानी से गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर सकते, जिससे गर्भाधान की सम्भावना कम हो जाती है।[5] सम्भवतः इसी दृष्टिकोण को उपर्युक्त शब्दों से आचार्यों ने व्यक्त किया है।

After ovulation, during secretory phase due to influence of progesterone hormone cervical mucus becomes hostile to sperm penetration, probably this very phenomenon has been explained with difference of words.

(इ) ऋतुकाल के पश्चात गर्भाधान-परिणाम (Effect on the child conceived after ṛtukāla)

अतः परं तूत्तरोत्तरमेवायुरादीनां ह्रासः। (अ० सं० शा० १/४९)

अत ऊर्ध्वमकालजमाहुः। अकालजं हीनं दुर्बलमस्थिरमदृढमपीनभङ्गुरं धान्यमिव भवति।

(का० सं० शा० ५/५)

उत्तरोत्तर काल में गर्भाधान होने पर आयु आदि का ह्रास होता है। ऋतुकाल के पश्चात हुए गर्भाधान को अकालज कहते हैं, वह अपने यथोचित समय के अतिरिक्त समय में उत्पन्न धान्य की भाँति हीन गुणों वाला, दुर्बल, अस्थिर,अदृढ़, पतला एवं भंगुर होता है।

Life span of child shortens gradually with the impregenation occuring after *ṛtukāla*. As the paddy sown after its apropriate season possesses less properties, is weak, unstable, unsteady, thin and fragile, similar is the case with the child.

१. योनिर्बीजं न गृह्णाति, गर्भाशयं न प्रापयतीत्यर्थः॥ (अ० सं० शा० १/४२ की इन्दु टीका)

२. भा० प्र० पूर्व० ३/२ (पृष्ठ ७२)

३. दिने व्यतीते नियतं सङ्कुचत्यम्बुजं ···। (सु० सं० सदृश) ऋतौ = रजोदर्शनात् षोडशनिशाऽऽत्मके काले। योनिरवधरा द्वारम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३८)

४. ऋतौ च गर्भोऽप(व)तिष्ठते॥ (भे० सं० शा० ८/२)

५. प्रिन्सेंपेल्स ऑव गाइनिकॉलॉजि। (जेफकॉट पृ० ७९)

(ई) ऋतुमती स्त्री के लक्षण (Characteristic features of ṛtumatī woman)

गते पुराणे रजसि नवे चावस्थिते शुद्धस्नातां स्त्रियमव्यापन्नयोनिशोणितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महे॥

(च० सं० शा० ४/७)

पीनप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्यमुखद्विजाम्। नरकामां प्रियकथां स्वस्तकुक्ष्यक्षिमूर्धजाम्॥
स्फूरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरूजघनस्फिचाम्। हर्षोत्सुक्यपराञ्चापि विद्यादृतुमतीमिति॥

(सु० सं० शा० ३/७, ८)

क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम्। स्वस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं स्त्रियम्॥

(अ० सं० शा० १/४१ एवं अ० हृ० शा० १/२१)

पुराने रज के बीत जाने पर (रजःस्राव होने से पिछले ऋतुकाल के पश्चात संचित रक्त निकल जाने के बाद[1]) नए रज के अवस्थित होने पर (नए ऋतुचक्र के प्रारम्भ हो जाने पर) शुद्ध स्नान की हुई, व्याधि-विरहित योनि एवं गर्भाशय तथा शुद्ध शोणित (स्त्रीबीज) वाली स्त्री को ऋतुमती कहा जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने स्त्री की मानसिक स्थिति का ही विशिष्ट वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस स्त्री का मुख स्वस्थ एवं प्रसन्न हो, शरीर, मुख एवं दंत क्लेद युक्त हों, जो पुरुष (संभोग) तथा प्रेम कथाओं की आकांक्षिणी हो, जिसकी कुक्षि, आँखें तथा बाल शिथिल हों, भुजा, स्तन, श्रोणि, जंघा एवं नितम्ब प्रदेश में स्फुरण हो रहा हो तथा जिसमें अत्यंत हर्ष एवं उत्सुकता हो, उसे ऋतुमती जानना चाहिए।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि कृश परन्तु प्रसन्न मुख, श्रोणि एवं स्तनों में स्फुरण वाली, अक्षि एवं कुक्षि में शिथिलता युक्त, पुरुषाकांक्षी स्त्री को ऋतुमती जानना चाहिए।

महर्षि हारीत ने भी सप्तरात्रि तक रजःस्राव होने के बाद शुद्ध योनि वाली स्त्री को ही ऋतुमती माना है।[2]

Caraka says that after the previous *raja (raja* accumulated in previous *ṛtukāla)* is gone and new one has settled (one menstrual cycle is over and another has set in), and after taking the bath, the woman possessing healthy *yoni, garbhāśaya* and *śoṇita* (healthy reproductive system and ovum) is termed as *ṛtumatī.*

According to Suśruta and others, she looks bright and healthy, her mouth and teeth are moist, she is anxious to hear love stories and have sexual relations, her flanks, eyes and hair are lax, she has quivering or twitching over arms, breasts, pelvis, umbilicus, thighs and hips and is happy and excited.

विमर्श (Comments)

चूँकि ऋतुकाल के वर्णन का मुख्य उद्देश्य गर्भाधान-क्षमता प्रदर्शित करने से है, अतः महर्षि चरक ने ऋतुमती के लक्षणों में विशेषकर जननांगों की ही स्थितियों का वर्णन किया है, उनके मतानुसार यदि योनि या गर्भाशय में गर्भाधान-बाधक कोई विशिष्ट विकार है तो सामान्य रजःस्राव के होते हुये भी स्त्री ऋतुमती नहीं कही जानी चाहिए। महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट-वर्णित समस्त लक्षणों की उपस्थिति का कारण सम्भवतः उस काल में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था है। रजःकाल में ३ दिन तक स्नानादि से वंचित रहकर जब स्त्री पुनः स्नान एवं शृङ्गार आदि करेगी, तो स्वाभाविक है कि कुछ ज्यादा

१. पुराण इति ऋतुकालातिक्रमसञ्ज्ञिते·····। (च० सं० शा० ४/७ की चक्र० टीका)

२. सप्तरात्राद्योनिशुद्धिस्तस्मादृतुमती भवेत्॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/९)

Scanned with CamScanner

प्रसन्न एवं स्वस्थ दिखाई देगी, साथ ही चूँकि इस रज:स्राव-काल में उसे एकदम अलग रखा गया था एवं अब पुन: वह परिवार में सामान्य रूप से सम्मिलित हो पति के साथ वार्तालाप एवं संभोग करेगी, इस विचार से स्फुरण आदि लक्षण उपस्थित हो सकते हैं।

Importance of *ṛtukāla* is for conception. Caraka has emphasized on the healthy condition of reproductive system and ovulation, lest abnormalities of these hamper fertilization, others have described just psychological changes. It is mentioned earlier that woman was kept secluded for three days, after that use of bath and adornment on fourth day, permission or anxiety to have sexual relation might be responsible for above mentioned changes.

(ए) ऋतुमती को क्षार कर्म एवं नस्य निषेध, नस्य-दान के उपद्रव एवं चिकित्सा (Contraindications for the use of kṣāra and nasya by ṛtumatī, consequences of use of nasya etc.)

क्षार-कर्म के वर्णन में सभी आचार्यों ने ऋतुमती को क्षार-प्रयोग (अंत: एवं बहि: या पानीय एवं प्रतिसारणांय दोनों) निषिद्ध किया है[1]।

महर्षि काश्यप ने ऋतुमती को वमन निषिद्ध किया है।[2] यद्यपि नस्य-निषेध के वर्णन में सद्य:शिर से स्नान किए व्यक्ति को नस्य का निषेध है परन्तु परिणाम में शुद्ध-स्नाता को नस्य देने से योनि के शोषण का वर्णन है, अत: इस निषेध को ऋतुमती के लिए भी निषेध मान कर पाठ शोध भी दिया गया है। नस्य से उत्पन्न हुए उपद्रवों के लिए पुष्पाध्याय एवं यूषाध्याय आदि अध्यायों में वर्णित चिकित्सा विशेषकर जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध दुग्ध के प्रयोग का निर्देश है।[3]

Application of *kṣāra* (either internal or external) to a *ṛtumatī* woman is contraindicated. *Nasya* (inhalation) is also contraindicated. If *nasya* is given to a *ṛtumatī* woman then it causes dryness of her vagina, which should be treated with use of the drugs mentioned in *puṣpādhyāya* and *yūṣādhyāya* chapters, however, milk treated with the *jīvanīya* group of drugs should specifically be used.

(३) ऋतुव्यतीत-काल (Ṛtuvyatīta-kāla)

इस काल में होने वाले विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों का कोई स्पष्ट उल्लेख संहिताओं में नहीं मिलता, केवल योनि-संवरण होना ही वर्णित है (देखें पृष्ठ ७३, ७४)। शरीर-रचना-दृष्ट्या योनि या गर्भाशय में इस काल में कोई परिवर्तन नहीं होता, परन्तु गर्भाधान की क्षमता अवश्य कम हो जाती है जिसका स्पष्टीकरण पूर्वपृष्ठों में दिया जा चुका है। इस स्थिति को ऋतुकाल (प्रोलिफरेटिव स्थिति तथा बीजोत्सर्ग) के बाद की होने के कारण आधुनिक विज्ञान-दृष्ट्या सिक्रीटॅरि स्थिति के अन्तर्गत रख सकते हैं।

Except the closure or constriction of *yoni* described earlier, any other physical or psychological changes are not described for this stage. This stage coming after *ṛtukāla* (proliferative phase and ovulation) is secretory phase.

१. (अ) अथ नैते क्षारकृत्या:। ऋतुमती ··· ···। (सु० सं० सू० ११/२८)
(आ) न तूभयोऽपि योज्यो ··· ··· ऋतुमती ··· ···। (अ० सं० सू० ३९/५ एवं अ० ह० सू० ३०/४, ६)

२. पुष्पिण्यर्तुमती गर्भिणी ··· ···। (का० सं० सि० ७/५)

३. न सद्य: शिर:स्नातस्य (शिर: स्नाताया:-पा० शो०)··· ···। शुद्धस्नाताया योनिरुपशुष्यति। ····· । स्नाताया पुष्याध्याययू-(ष्याध्याय)— येभ्योऽध्यायेभ्यो भेषजं विदद्ध्यात्। क्षीरं वा जीवनीयोपसिद्धमिति परिषत्। (का० सं० सि० ४/७)

ऋतुचक्र की विभिन्न अवस्थाओं में दोष-प्राधान्य (Status of doṣas during phases of menstrual cycle)

रज:काल– रज:स्राव करना वायु का कार्य है, क्योंकि यही सञ्चित रक्त को योनि में लाती है[1] अत: इस काल में वायु का ही प्राधान्य रहता है।

ऋतुकाल– नवीन रज या शोणित के आधान से यह काल प्रारम्भ होता है[2] एवं गर्भाधान का योग्यतम काल है।

जैसा कि पूर्ववर्णित है, ऋतुकाल आधुनिक विज्ञान-वर्णित सञ्चयकाल एवं बीजोत्सर्ग का वर्णन है, इस काल में जीर्ण गर्भाशयान्त:कला का पुनर्निर्माण होता है, वह मोटी एवं घनी हो जाती है। शरीर में कहीं भी घनता लाने के लिए पृथ्वी महाभूत की आवश्यकता होती है, इस घनता के साथ आर्द्रता के लिए जल भी विद्यमान रहता है, कफ इन्हीं पृथ्वी एवं जल का मिश्रण है, अत: निश्चत है कि इस काल में कफ का प्राधान्य रहेगा। महर्षि वाग्भट ने स्पष्ट लिखा है कि घृत-क्षीरादि का प्रयोग करने वाली कफ-प्रधान स्त्रियों में आर्तव देर तक ठहरता है[3] अर्थात् गर्भ-ग्रहण योग्य रहता है।

टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने भी सुश्रुत की टीका में स्पष्ट किया है कि आर्तव आरम्भ के काल में सौम्य होता है, सौम्य द्रव्य कफ प्रधान होते हैं अर्थात आर्तव उत्पत्ति के काल में सौम्य रहता है; बाद में काल-चक्र या ऋतुचक्र के परिवर्तन से जब आर्तव के विसर्जन होने का उपक्रम होने लगता है या आर्तव का विसर्जन (बीजोत्सर्ग) होता है तब वह आग्नेय हो जाता है। आर्तव या स्त्रीबीज आग्नेय होता है, जिसके साथ सौम्य शुक्र या शुक्राणुओं का संयोग होने से ही अग्निसोमीय गर्भ का निर्माण होता है[4]।

ऋतुव्यतीत काल– यह काल स्त्री के बीजोत्सर्ग के बाद का काल है जिस काल में पुराण रज या शोणित गर्भाशय में स्थित रहता है[5]। गर्भाशयान्त:कला की ग्रन्थियों में अत्यधिक कार्यक्षमता होती है। शरीर का ताप ०.८ से १.० डिग्री फैर० तक बढ़ जाता है; अर्थात् गर्भाशयान्त:कला-ग्रन्थि-स्थित-धात्वग्नि (आर्तव के आग्नेय तत्त्व की वृद्धि) के कार्य के साथ ही सार्वदैहिक अग्नि भी वृद्धि की अवस्था में रहती है अर्थात् इस अवस्था में सामान्यतया पित्त का प्राधान्य रहता है।

तालिका ५ में तीनों अवस्थाओं का स्पष्टीकरण दिया गया है।

तालिका ५

	रज:काल	ऋतुकाल	ऋतुव्यतीतकाल
अवधि	३-५ दिन	१२ या १६ दिन या सम्पूर्ण मास या रज:स्राव के बिना भी	९-१३ दिन

१. (अ) सु० सं० शा० ३/१०; अ० सं० शा० १/४३; अ० ह० शा० १/२३, २४ (पृष्ठ ६३)
(आ)··· ···अपान··· ···। मूत्रत्यार्तवगर्भा च ··· ··· (च० सं० चि० २८/१०, ११)
(इ) ····· अपान: ·····। मगैरण: शकृन्मूत्रं शुक्रगर्भार्तवान्यध: (सु० सं० नि० १/१९)
(ई) अपानो··· विण्मूत्रशुक्रार्तवगर्भनिष्क्रमणादि क्रिय:। (अ० सं० सू० २०/४)
(ए) अपानो ·····शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रिय:। (अ० ह० सू० १२/९)

२. च० सं० शा० ४/७ (पृ० ७५); सु० सं० शा० २/२५ (पृ० ६५)

३. घृतक्षीरादिनित्यासु मुदितासु कफात्मसु। आर्तवं तिष्ठति चिरं विपरीतास्वतोऽन्यथा॥ (अ० सं० शा० १/६७)

४. सु० सं० सू० १४/७ की चक्रपाणिदत्त टीका (पृष्ठ ५८)

५. च० सं० शा० ४/७ व चक्रपाणि टीका (पृष्ठ ७५); सु० सं० शा० २/२५ की डल्हण टीका (पृष्ठ ६५,६६)

Scanned with CamScanner

	रजःकाल	ऋतुकाल	ऋतुव्यतीतकाल
जननांग स्थिति	रजःस्राव	नवीन रज या शोणित का आधान, गर्भ ग्रहण का सुयोग्यतम काल, हर्ष औत्सुक्य, कामेच्छादि मानसिक परिवर्तन	पुराण रज या शोणित उपस्थिति, योनिसम्वरण, गर्भग्रहण अयोग्यता
दोष प्राधान्य	वात	कफ	पित्त
आधुनिक वर्णन	रजःस्राव	संचयकाल या प्रोलिफेरेटिव फ़ेज तथा वीजोत्सर्ग	विसर्गकाल या सिक्रीटॅरि फ़ेज

Rajaḥkāla—Excretion or movement of any substance from one place to other is the function of *vāyu*, hence this is dominated by *vāyu*.

Ṛtukāla—The phase is characterized with proliferation of endometrium followed by ovulation. The reconstruction of tissue or proliferation or regeneration is done by *pṛthvī* (solid substance) and *jala* (water or liquid substances), which are the *bhautika* components of *kapha*. Vāgbhaṭal has clarified that in woman having domination of *kapha* and using *ghṛta* and milk etc. daily the *ārtava* stays for longer period. It is already mentioned earlier that *ārtava* in its stage of formation is *saumya* or has characteristics like *kapha*, thus this stage is dominated by *kapha*.

Ṛtuvyatīta-kāla— After ovulation or *ṛtukāla* the *ārtava* becomes *āgneya* and increases the basal body temperature by 0.8° to 1.0° F. (thermogenic effect of progesterone hormone of secretory phase) or this stage is governed by *pitta*.

Preceding description is summarized in tabular from:

Specific stage	Duration	Condition of reproductive system	Dominant Doṣa
1) **Rajaḥkāla** (menstrual phase)	3-5 or 7 days	Menstrual blood loss	*Vāta*
2) **Ṛtukāla** (proliferative phase in cluding ovulation)	12 or 16 days or whole month, even without menstruation	Establishment of *navīna raja* (new cycles), optimum chances of fertilization, increased sexual desire, etc.	*kapha*
3) **Ṛtuvyatīta-kāla** (secretory phase)	9-13 days	Presence of *purāṇs raja* and constriction of *yoni*, less chances of conception, raised body tempeature.	*Pitta*

❑

अध्याय ३

CHAPTER III

गर्भाधान-विधि

(METHOD OF IMPREGNATION)

विवाह एवं गर्भाधारण के योग्य आयु (Proper age for marriage and first conception)

(अ) विवाह के योग्य आयु एवं कन्या (Marriageable age and girl)

··· ··· पञ्चविंशतिवर्षाय षोडशदशवर्षां पत्नीमावहेत्। (सु० सं० शा० १०/५३)

अथ खलु पुमानेकविंशतिवर्षः कन्यामतुल्यगोत्रामतुल्याभिजनामसञ्जारिरोगकुलप्रसूतां रूपशीललक्षणसम्पन्नामनूनामविनष्टदन्तौष्ठकर्णनखकेशस्तनीं मृदुमरोगप्रकृतिमकपिलामपिङ्गलामहीनाधिकाङ्गीं द्वादशवर्षदेशीयाममरभुजगसरिदचलवृक्षपक्षिनक्षत्रान्त्यप्रेष्यभीषणकनामान्युद्वहनीमनघामनिन्द्यामनिन्द्येन विधिनोद्वहेत॥ (अ० सं० शा० १/३)

पच्चीस वर्ष का पुरुष सोलह वर्ष की स्त्री से विवाह करे। महर्षि वाग्भट ने विवाह-योग्य कन्या के गुणों का विस्तृत वर्णन किया है, जैसे इक्कीस वर्ष का पुरुष अतुल्य एवं अभिजन गोत्र में उत्पन्न[1] (मातृ एवं पितृ दोनों ही कुल की असमानता), सञ्जारी रोग (औपसर्गिक रोग) से ग्रसित कुल में अनुत्पन्न, रूप, शील, एवं गुण सम्पन्न, सम्पूर्ण अंगों वाली (हाथ, पैर, अंगुली आदि), दन्त, ओष्ठ, कर्ण, नख, केश एवं स्तन जिसके नष्ट न हुए हों (उत्पन्न होने के बाद किसी कारण से नष्ट न हुए हों), कोमलांगी, स्वस्थ प्रकृति वाली, न (अधिक) कपिल न पिंगल वर्ण, न हीन न अधिक अंगों वाली, बारह वर्ष की आयु वाली; देवता (लक्ष्मी, उमा आदि), भुजंग (तक्ष आदि), नदी (गंगा, कावेरी आदि), पर्वत (विंध्य आदि), वृक्ष (चमेली आदि), पक्षी (कोकिला आदि), नक्षत्र (रोहिणी आदि), अन्त्य (नीच जाति-बोधक जैसे चाण्डाली आदि), प्रेष्य (दासी आदि बोधक जैसे शिवदासी आदि) एवं भीषण (डरावने नाम जैसे पूतना आदि) नामों को न धारण करने वाली, पाप-रहित, अनिन्द्य कन्या के साथ अनिन्द्य विधि से विवाह करे।

महर्षि भेल ने भी असमान गोत्र वाली स्त्री के ही सेवन को श्रेष्ठ माना है, एवं स्पष्ट लिखा है कि असमान गोत्र वाली ऋतुस्नाता स्त्री का ही सेवन करना चाहिए, इससे मेधावी एवं स्वस्थ पुत्र ही उत्पन्न होता है।[2]

Suśruta has prescribed the age of man as twentyfive and of girl as sixteen years.

A man of twentyone years should marry a girl of twelve years, who is born in a family not belonging to parents, not suffering from any contageous disease, who is beautiful, modest, possesses good qualities with complete body parts, whose teeth, lips, ears, hair and breasts are not destructed, who is delicate, good or healthy natured, has neither excessive tawny nor golden complexion, neither less nor more body parts; does not bear a name

१. पाठभेद में-'अतुल्यगोत्रां तुल्याभिजनाम्' वर्णन है अर्थात् गोत्र तो असमान हो पर कुल की समानता अर्थात् बहुत ऊँचा या नीचा कुल न हो। (अ० सं० शा० १/३ इन्दु व्याख्या की पुस्तक में पाठभेद)

२. इहासमानगोत्रां वै ऋतुस्नातां स्त्रियं व्रजेत्। मेधादि(वि)नमरोगं सा पुत्रमेवं प्रसूयते॥ (भे० सं० शा० ३/१)

Scanned with CamScanner

identical to goddesses, snakes, rivers, mountains, plants, birds, planets, denoting lowest castes and slaves or frightening names; and who is free from sins and is praiseworthy. The marriage should be performed with auspicious methods.

(आ) गर्भधारण या पूर्णवीर्यता की आयु (The age of full maturity or appropriate age for conception)

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥
(सु० सं० सू० ३५/१३)

तस्यां षोडशवर्षायां पञ्चविंशतिवर्षः पुरुषः पुत्रार्थं प्रयतेत। तदा हि तौ प्राप्तवीर्यौ वीर्यान्वितमपत्यं जनयतः॥ (अ० सं० शा० १/४)

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता। ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥

वीर्यवन्तं सुतं सूते ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥ (अ० हृ० शा० १/८, ९)

पचीस वर्ष की आयु में पुरुष एवं सौलह वर्ष की आयु में स्त्री सम्पूर्ण वीर्य को प्राप्त हो जाते हैं। अष्टांगसंग्रहकार ने इस आयु में पुत्रोत्पत्ति के लिए प्रयत्न का विधान बताया है, क्योंकि इस आयु में पति-पत्नी सम्पूर्ण वीर्य के हो जाने के कारण वीर्यान्वित पुत्रोत्पत्ति में समर्थ होते हैं।

अष्टांगहृदयकार के मत से सोलह वर्ष की स्त्री एवं बीस वर्ष का पुरुष सम्पूर्ण वीर्य के हो जाते हैं एवं वीर्यवान पुत्र को उत्पन्न करते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने इस आयु को प्रायिक माना है, क्योंकि इस आयु के पूर्व भी सामान्य गर्भोत्पत्ति हो सकती है[1]।

महर्षि चरक ने केवल पुरुष की संभोग-क्षम आयु का वर्णन किया है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि सोलह वर्ष से पूर्व तथा सत्तर वर्ष के उपरान्त आयु (दीर्घायु) की इच्छा रखने वाले पुरुष को संभोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि असम्पूर्ण धातु वाला बालक (१६ वर्ष से पूर्व आयु का) यदि सम्भोग करता है तो वह थोड़े जल वाले तालाब की तरह शीघ्र शुष्क हो जाता है; जिस प्रकार शुष्क, रुक्ष, जन्तुओं से खाया हुआ एवं जर्जर काष्ठ स्पर्शमात्र से ही शीघ्र टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, उसी भाँति (धातु-क्षीण) वृद्ध पुरुष स्त्री-गमन से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है[2]।

महर्षि काश्यप ने शुक्र-सम्प्रवर्तन की आयु १६ वर्ष ही बताई[3] है जो उपर्युक्त चरक के वर्णन से सामञ्जस्य रखती है। इन्होंने भी विवाह या गर्भाधान के लिए किसी विशिष्ट आयु का निर्देश नहीं किया। अन्य संहिताओं में गर्भाधान-योग्य आयु २५ वर्ष लिखी है, इन दोनों ही वर्णनों में कोई वैभिन्य नहीं है। क्योंकि यद्यपि पुरुष में शुक्र का प्रादुर्भाव तो १६ वर्ष में ही हो जाता है, परन्तु वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार उसे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य अवस्था में रहने के बाद ही गृहस्थाश्रम में आने का आदेश है, अतः गर्भाधान कराने की आयु पच्चीस वर्ष ही रखी गई है। सम्भवतः इस व्यवस्था में अष्टांगहृदय के काल में कुछ परिवर्तन आया, क्योंकि इन्होंने गर्भाधान की आयु बीस वर्ष ही बताई है।

१. पूर्णानि षोडश वर्षाणि ··· ··· ···। प्रायिकं चैतत्, अर्वागपि साधुगर्भदर्शनात्॥ (अ० हृ० शा० १/८ की अरुण० टीका)

२. नर्तं वै षोडशाद्वर्षात् सप्तत्यः परतो नरः। स्त्रीषु: संयोगं कर्तुमर्हति॥ ४०॥
अतिबालो ह्यसंपूर्णसर्वधातुः स्त्रियं व्रजन्। उपशुष्येत सहसा तडागमिव काञ्जलम्॥ ४१॥
शुष्कं रूक्षं यथा काष्ठं जन्तुदग्धं विजर्जरम्। स्पृष्टमात्रा विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन्॥ ४२॥
(च० सं० चि० २-४/४० से ४२)

३. अ) शुक्रं तु षोडशे वर्षे सम्पूर्णं सम्प्रवर्तते॥ (का० सं० शा० ४/३६)
आ) षोडशवर्षयोर्हि ··· ··· शुक्र ··· ···॥ (का० सं० शा० ५/४)

सुश्रुतसंहिता के पाठभेद में स्त्री की विवाह-योग्य आयु बारह वर्ष[1] एवं पूर्ण-वीर्यता की आयु १६ वर्ष लिखी है। यदि १२ वर्ष की स्त्री से पच्चीस वर्ष का पुरुष विवाह करेगा एवं १६ वर्ष की स्त्री में गर्भाधान करायेगा तो उस समय पुरुष की आयु उन्तीस वर्ष की हो जायेगी, परन्तु दोनों ही स्थितियों में पुरुष की पच्चीस वर्ष की ही आयु का वर्णन मिलता है, अतः यह मान सकते हैं कि सम्भवतः विवाह-योग्य बारह वर्ष की आयु का वर्णन मुद्रण-त्रुटि हो अर्थात् महर्षि सुश्रुत के मतानुसार विवाह एवं गर्भाधारण-योग्यता की एक ही आयु है।

Male at the age of twentyfive and female at the age sixteen are fully mature, hence, they should attempt for achievement of conception.

Since both the partners are full of valour and vigour at this age, the born child also possesses these qualities. In one edition of Suśruta Saṃhitā twelve and sixteen years age of woman for marriage and full maturity respectively is given; while age of the male at both these places is mentioned as twentyfive, hence, it apperars that reference of twelve years of age for marriage could be a printing mistake. In Aṣṭāṅga Hṛdaya, the age of man is prescribed as twenty years, Aruṇadatta explains that this is usual age of man and woman. Caraka and Kāśyapa opine that the man is not fit for coitus before age of sixteen, after this he is capable of ejaculating semen, however, these authors have not mentioned appropriate age for impregnation.

विमर्श (Comments)

अष्टांगसंग्रह में विवाह तथा गर्भधारण-क्षमता की पृथक्-पृथक् आयु-वर्णन का कारण सामाजिक व्यवस्था हो सकता है। इस पुस्तक के रचनाकाल तक चूँकि देश में विदेशियों का आगमन हो चुका था, अतः परिवार की मर्यादा-रक्षण के विचार से बाल-विवाह प्रथा का प्रारम्भ हुआ, एवं विवाहोपरांत बालिका मातृ-गृह में ही रहकर द्विरागमन के समय से सामान्य दाम्पत्य जीवन व्यतीत करती थी, जो व्यवस्था आज भी देश के अधिकांश प्रदेशों में प्रचलित है। सभी आचार्यों ने गर्भाधारण के लिए स्त्री की १६ वर्ष की आयु को ही सर्वोत्तम माना है। आधुनिक विज्ञान में भी प्रासविक दृष्टि से १६ वर्ष की आयु को ही सर्वोत्तम माना गया है।[2]

The mention of marriageable age and age for conception separately by Vāgbhaṭa indicates the social pattern of that time. By the period of this book the foreign culture has established its foot firmly, the marriage of girls was ceremonized at a very early age, lest the girls were forcibly married by the authorities. The girl was sent to her inlaws only after *gaunā* (second marriage). The system is prevalent in some parts of the country even to-day.

In all the āyurvedika classics best age for conception is said to be sixteen. This observation is confirmed by Harris, who after analysing the statistics found that from a purely obsterical point of view, sixteen was the most favourable age to have a baby.

अतिबाला, अतिवृद्धा में गर्भधारण निषेध एवं परिणाम (The result of impregnation in very young or old woman)

अतिबालामतिवृद्धां ··· ··· ··· वर्जयेत्। (च० सं० शा० ८/६)

१. ··· ··· पञ्चविंशति वर्षाय द्वादशवर्षां (षोडशवर्षा-पा० भे०) (सु० सं० शा० १०/५८ आयुर्वेदतत्व-संदीपिका हिन्दी व्याख्या युक्त चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस-वाराणसी १ द्वारा प्रकाशित तृतीय संस्करण सन् १९६९ पृ० ८२)।

२. हैरिस (१९२२) बुलि-जॉन हाप० हास्पि० ३३:१२ (मुनरॉकर द्वारा लिखित ऑप० ऑब्स्टे० से उद्धृत)

Scanned with CamScanner

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ५४॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ५५॥
अतिवृद्धायां ··· ··· गर्भाधानं नैव कुर्वीत ··· ··· ॥ ५६॥ (सु० सं० शा० १०)

ऊनपञ्चविंशतिवर्षेणोनषोडशवर्षायामाहितो गर्भः कुक्षिस्थ एव विनाशमाप्नुयादल्पायुर्बलारोग्यविभवो वा स्याद्विकलेन्द्रियो वा ··· ॥ (अ० सं० शा० १/५)

··· ··· ··· ··· ··· ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥ (अ० ह० शा० १/९)

अतिबाला एवं अतिवृद्धा का परित्याग करना चाहिए।

सोलह वर्ष से कम आयु वाली स्त्री में यदि पच्चीस वर्ष से कम आयु वाला पुरुष गर्भाधान करता है तो वह गर्भ कुक्षि में ही नष्ट हो जाता है, यदि उत्पन्न भी हुआ तो अधिक काल तक जीवित नहीं रहता, यदि जीवित भी रहा तो दुर्बल इन्द्रियों वाला होता है। अतः अत्यन्त बाला में गर्भाधान नहीं कराना चाहिए। अतिवृद्धा में भी गर्भाधान नहीं करना चाहिए।

वाग्भट मतानुसार इस अवस्था का गर्भ कुक्षि में ही मर जाता है अल्पायु, हीन-बल, अल्पारोग्य, अल्पविभव एवं विकलेन्द्रिय होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि हीन (वर्ष की) आयु होने पर या तो गर्भ रहता ही नहीं या रोगी, अल्पायु तथा अधन्य होता है।

Very young or old woman should not be impregnated. If a woman below sixteen is impregnated by a man of below twentyfive, either she will not conceive, or if at all conceives, she will have intrauterine death of the fetus; if the child is born, it would not live long or will have weak organs, ill health, deformed body parts etc. Aged woman also should not be impregnated.

मैथुन के लिए अयोग्य स्त्री की अन्य शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाएँ एवं संभोग का परिणाम (Contraindicated conditions of woman for coitus and their effects)

तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्ता क्रुद्धाऽन्यं च पुमांसमिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा न गर्भं धत्ते, विगुणां वा प्रजां जनयति। अतिबालामतिवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत्। पुरुषेऽप्येत एव दोषाः। अतः सर्वदोषवर्जितौ स्त्रीपुरुषौ संसृज्येयाताम् ॥ (च० सं० शा० ८/६)

अतिवृद्धायां दीर्घरोगिण्यामन्येन वा विकारेणोपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वीत। पुरुषस्याप्येवंविधस्य त एव दोषाः सम्भवन्ति। (सु० सं० शा० १०/५६)

तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्ता कुद्धाऽतिमेदुराऽन्यकामाऽव्यवायकामा वा न गर्भं धत्ते विगुणं वा। तथापुरुषोऽपि। (अ० सं० शा० १/५८)

अत्यधिक भोजन की हुई, क्षुधित, डरी हुई, बिना मन के, शोक युक्त, क्रुद्ध, अन्य पुरुष को चाहने वाली एवं अत्यधिक कामातुर स्त्री गर्भ का धारण नहीं करती, यदि करती भी है तो विगुण एवं विकृत सन्तान को उत्पन्न करती है। अति बाला, अति वृद्धा, दीर्घ रोग से पीड़ित (लम्बे काल से या जीर्ण विकारों से पीड़ित) या अन्य विकारों से आक्रान्त स्त्री का भी परित्याग करना चाहिए। पुरुष के भी ये ही दोष हैं (अर्थात् उपर्युक्त शारीरिक या मानसिक व्याधि से आक्रांत पुरुष को भी मैथुन निषिद्ध है), अतः सर्वदोष-रहित स्त्री-पुरुष को ही संभोग करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत के मत से अतिवृद्धा के अतिरिक्त दीर्घ रोगिणी या अन्य विकारों से पीड़ित स्त्री में गर्भाधान नहीं कराना चाहिए। पुरुष में भी इसी प्राकार के दोष होते हैं। अन्यत्र पुरुष को संभोग सम्बन्धी निर्देश देते हुए तन्मय हो कर संभोग करने, अत्यधिक मैथुन न करने, सभी ऋतुओं में तीसरे दिन तथा ग्रीष्म ऋतु में १५ वें दिन संभोग का निर्देश देते हुए मैथुन के लिए परित्याज्य स्त्री का वर्णन किया है यथा-रजस्वला, अकामा अर्थात मैथुन के लिए अनिच्छा वाली, मलिन, अप्रिय, अपने से ऊँचे वर्ण की, आयु में बड़ी, व्याधि-पीड़ित, हीनाङ्गी, गर्भिणी, द्वेष रखने वाली, योनिदोष से पीड़ित, सगोत्रा, गुरुपत्नी, सन्यासिनी तथा अगम्या स्त्री के साथ सम्भोग नहीं करना चाहिए। सन्ध्या काल, पर्व के दिन, गोसर्ग-काल, अर्ध रात्रि, मध्य दिन, लज्जा अनुभव होने वाले, खुले हुए एवं अशुद्ध स्थान में संभोग नहीं करना चाहिए। बलवान् व्यक्ति को भी दूषित योनि में शुक्रोत्सर्ग नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त सभी निषिद्ध स्त्रियों के साथ अथवा स्थानों में मैथुन करने से पुरुष को विभिन्न हानियाँ होती है जो प्रस्तुत पुस्तक से सम्बन्धित न होने के कारण उद्धृत नहीं हैं। गर्भिणी के साथ सम्भोग करने से गर्भ को पीड़ा होती है[1]।

महर्षि वाग्भट ने महर्षि चरक का ही अनुगमन किया है एवं क्षुधिता आदि के साथ ही अति मेदुरा को भी इसी श्रेणी में रखा है एवं अति कामातुर के स्थान में मैथुन की अनिच्छा वाली स्त्री का वर्णन किया है। अन्यत्र आधान के काल में होने वाली व्याधि को क्लेश या मरण कारक होना लिखा है[2] अर्थात् आधान (गर्भाधान) काल में पति-पत्नी के बीजों की शुद्धता के साथ दोनों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य भी वांछित है।[3]

आचार्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त वर्णन सदृश ही लिखा है कि रजस्वला, व्याधि-युक्त (असुन्दर आदि) विशेषकर योनि रोगों से पीड़ित, वय में अधिक, वर्ण में वृद्ध अर्थात् अपने से उच्च कुल में उत्पन्न, मैथुनेच्छा रहित, मलिन, गर्भिणी, हीनाङ्गी, द्वेष करने वाली, सगोत्र, गुरुपत्नी तथा सन्यासिनी के साथ मैथुन नहीं करना चाहिए इससे हानि होती है[3]।

महर्षि भेल ने सत्व हीन, जीर्ण (वृद्धा), व्याधि-पीड़ित, मलिन, विकृत अङ्गों वाली, विजातीय तथा दूषित कोष्ठ (गर्भाशय) वाली स्त्रियों में संभोग का निषेध किया है, क्योंकि इस प्रकार की स्त्री-गमन से बल, आरोग्य, शरीर एवं तेज आदि का नाश होता है, अतः ऋतुकाल में ही यथासमय स्त्री-सेवन करना चाहिए[4]।

---

१. उत्सर्गमैथुनाहारशोधने स्यातु तत्परः ।···॥ ११०॥ अतिस्त्रीसंप्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान ।···॥ १११॥
··· स्त्रीषु संयताः। त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्वा समीयात् प्रमदां नरः ॥ ११३॥
सर्वेष्वृतुषु, धर्मेषु पक्षात् पक्षाद्व्रजेद्बुधः। रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा ॥११४॥
वर्षवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधि प्रपीडिताम्। हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् ॥ ११५॥
सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि। सन्ध्यापर्वस्वगम्यां च नोपेयात् प्रमदां नरः ॥ ११६॥
गोसर्गे चार्धरात्रे च तथा मध्यदिनेषु च। लज्जासमावहे देशे विवृतेऽशुद्ध एव च ॥ ११७॥
दुष्टयोनौ विसर्गे तु बलवानपि वर्जयेत् ॥ ११९॥
गर्भिण्या गर्भपीडा स्याद् ··· ॥ १२३॥ (सु० सं० चि० २४)

२. आधान जन्मनिधन प्रत्वराख्य विपत्करे। नक्षत्रे व्याधिरुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय वा ॥ (अ० सं० शा० १/२१)

३. (अ) रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी। वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥
एतासां संगमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ॥ २६॥
व्याधिमती च वर्ज्या। तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदराद्यस्तथुक्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषाद्योनिरोगिणी ॥ (भा०प्र०पूर्व० ३/२६)
(आ) रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा ॥
वर्षवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम्। हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् ॥
सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि। नाधिगच्छेत् पुमान्नारीं भूरिवैगुण्यशङ्कया ॥ (भा० प्र० पूर्व० ५/३०० से ३०२)

४. जीर्णामासन्नसत्त्वां च व्याधितां मलिनां कृशाम्। व्यङ्गिनीं परजन्यां च पूतिकाङ्गां(कोष्ठां) च वर्जयेत्।
बलमारोग्यमायुश्च वपुस्तेजश्च देहिनाम्। हीयते हीदृशीं गत्वा प्राप्याकालजलामिव।
ऋतावृतौ यथाकालं मैथुनं तत्समाचरेत् ॥ (भे० सं० सू० ७/५ से ७)

Scanned with CamScanner

The coitus should not be done with a woman having done over-eating or who is hungry, thirsty, frightened, averse, sorrow-striken, angry, longing some one else, having absence or excessive desire for sex, fatty, chronically ill specially suffering from gynecological disorders or menorrhagia, menstruating, pregnant, emaciated or weak, dirty, unloving, elder and coming from higher caste, possessing less body-parts, jealous, belonging to one's own *gotra* (subcaste), wife of teacher and a female ascetic. These types of women either do not conceive, if conceive then the born child suffers from teratologic abnormalities. The man having gone to such woman looses his energy and health. Coitus should also not be done during twilights, festival days, early morning, mid-night, mid-day, improper place likely to cause embarrassment, open or unclean place. The man doing coitus with above contraindicated woman or place suffers from different disorders, which are not described here. The coitus done with pregnant woman troubles her fetus.

विमर्श (Comments)

संभोग के समय की पति-पत्नी की मानसिक स्थिति के प्रभाव का वर्णन अन्यत्र भी आचार्यों ने किया है कि स्त्री-पुरुष जिस प्रकार का आहार विहार एवं चेष्टाएं करते हैं उसी प्रकार के पुत्र को जन्म देते हैं। गर्भाधारण के लिए पति पत्नी में सौमनस्य होना अत्यावश्यक है। गर्भाधान के काल में स्त्री जिस प्रकार के जन्तु का ध्यान करती है, उसी प्रकार के चरित्र/ आकृति-सादृश्य के गर्भ को जन्म देती है[1]। टीकाकार डल्हण का कथन है कि विभिन्न ऋतुओं में निषिक्त गर्भ उस ऋतु के अनुसार रूप तथा आयु वाले होते है[2]।

पन्द्रह वर्ष से कम आयु की स्त्री में गर्भधारण होने पर न्यूरल कैनाल की विकृतियाँ तथा तीस वर्ष के बाद उत्तरोत्तर आयु की वृद्धि में प्रथम गर्भधारण होने पर डाउन सिण्ड्रोम होने की सम्भावना अधिक होती है। स्त्री की अनेकों व्याधियाँ यथा थायरायड क्रिया होनता, मधुमेह, उपसर्ग यथा फिरङ्ग, रुबेला, साइटोमेगॉलोवाइरस, टाक्सोप्लाज्मा एवं हरपिस सिम्प्लेक्स गर्भाङ्गविकृति एवं गर्भ-मृत्यु-कारक हो सकती हैं। व्याधि-चिकित्सा के लिए प्रयुक्त विशेषकर प्रथम त्रैमास में प्रयुक्त औषधियाँ गर्भ-मृत्यु अथवा जन्मजात विकृति उत्पादक हो सकती है। मानसिक अथवा/ एवं शारीरिक व्याधियों से पीड़ित स्त्री में बन्ध्यत्व होने की भी सम्भावना अधिक होती है। उपरि वर्णित निषेध इसी दृष्टिकोण से दिए गए प्रतीत होते हैं।

रात्रिचर्या के अन्तर्गत ग्रीष्म एवं शरदऋतु में बाला स्त्री का सेवन तथा बाला के नित्य सेवन से बलवर्धन का वर्णन कामशास्त्र के आधार पर है, स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं।[3]

Influence of psychological status of couple has been described at other places also i.e. what-so-ever type of diet and mode of life is used by couple, the born child has similar character. Normalcy of psychology or happiness of couple is most important for conception. During impregnation, what-so-ever animal is thought by the woman, the child takes the

१. चं० सं० सू० २५/४०; च० सं० शा० २/२५; च० सं० शा० ८/१४; सु० सं० शा० २/४६; अ० सं० सू० १३/३; अ० सं० शा० १/५३; अ० हृ० शा० १/३१ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/६२ (गर्भप्राप्ति के लिए कर्तव्य में वर्णित)

२. ऋतवः प्राग्विनिर्दिष्टा बलयोगस्वभावतः।
तेषु गर्भा निषिक्तास्तु तथारूपास्तथायुषः॥ (सु० सं० सू० ६/३५-३६ की डल्ह० टीका)

३. निदाघशरदोर्बाला हिता विषयिणां मता। ··· ···॥ २८३॥
नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम्। ··· ···॥ २८४॥ (भा० प्र० पूर्व ५/२८३,२८४; यो० र० रात्रिचर्या)

characters of the same. The child impregnated during specific season gets respective charcter or longevity.

Chances of neural canal defects in the fetus of a girl of fifteen years or less and increasing incidence of Down's syndrome in first pregnancy after thirty years onwards age of woman are noted. Certain diseases of the woman i. e. hypothyroidism, diabetes mellitus, infections such as syphilis, rubella, cytomegalovirus, toxoplasma, herpes simplex are causative factors for congenital anomalies, abortions or IUDS. Tuberculosis can cause missed abortion. Drugs used specially during first trimester can cause congenital abnormalites. Physically or mentally ill woman can become infertile. Mentioned contraindications might have been given keeping these facts in mind.

Reference of sex with *bālā* (girl before sixteen) during summer and early winter and also enhancement of vigour and potence by daily sex with *bālā* is given with the point of view of sexology not health.

सामान्य मैथुन की स्थिति एवं विभिन्न स्थितियों में मैथुन का निषेध तथा परिणाम (Normal and abnormal postures for coitus and their effect)

न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत। न्युब्जाया वातो बलवान् स योनिं पीडयति, पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा स च्युतः पिदधाति गर्भाशयं, वामे पार्श्वे पित्तं तदस्याः पीडितं विदहति रक्तं शुक्रं च, तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात्; तथाहि यथास्थानमवतिष्ठन्ते दोषाः। (च० सं० शा० ८/६)

पुरुषोऽपि न चासावधिष्ठेत्। तथा हि स्त्रीचेष्टाः पुमान् जायते पुंचेष्टा वा स्त्री ।५८।

न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा सेवेत। न्युब्जायां वातो बलवान् स योनिं पीडयति। दक्षिणपार्श्वगाया श्लेष्मा पीडितश्च्युतोऽपिदधाति गर्भाशयम्। वामपार्श्वगायास्तद्वत्पित्तं विदहति रक्तशुक्रे। तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात्। तथाहि यथास्थानमेव तिष्ठन्ति दोषाः। (अ० सं० शा० १/५८, ५९)

न्युब्ज अथवा पार्श्व में लेटकर स्त्री को मैथुन का सेवन नहीं करना चाहिए। न्युब्ज स्थिति में मैथुन से वायु बलवती हो योनि का पीड़न करती है। दक्षिण पार्श्व में लेटकर मैथुन करने से श्लेष्मा च्युत होकर गर्भाशय को अवरुद्ध कर देता है। उसी भाँति वामपार्श्व-स्थिति में मैथुन से पित्त पीड़ित हो च्युत होकर रक्त एवं शुक्र का विदाह उत्पन्न कर देता है, अतः बीज-ग्रहण के लिए स्त्री को उत्तान लेटना चाहिए, जिससे सभी दोष यथास्थान स्थित रहते हैं।

महर्षि वाग्भट ने पुरुष को स्त्री के नीचे रहकर मैथुन करने का निषेध किया है, क्योंकि इस प्रकार करने से यदि पुत्र का जन्म हुआ तो वह स्त्री चेष्टा वाला एवं पुत्री पुरुष की चेष्टा वाली उत्पन्न होती है। इन्होंने भी मैथुन की विभिन्न स्थितियों का महर्षि चरक सदृश ही अक्षरशः वर्णन किया है।

Coitus should not be done with a woman in her flexed (hump-back) or lateral position. In flexed position *vāyu* gets aggravated and compresses the *yoni*, in right lateral position the *kapha* getting displaced obstructs the *garbhāśaya*, similarly in left lateral position displaced *pitta* burns (*vidāha*) the *rakta* (ovum) and *śukra* (sperms), hence for reception of *bīja* the woman should lie in supine position, so that all the *doṣas* remain in their normal locations. The man should not lie below the woman, because after this postural copulation if woman delivers a male child, he will have feminine characters and if female child then she will have masculine habits.

Scanned with CamScanner

विमर्श (Comments)

उपरिवर्णित स्त्री की शारीरिक स्थितियों में सम्भोग होने पर शुक्र का निषेचन यथास्थान न हो सकने अर्थात् अपूर्ण-सम्भोग होने की सम्भावना अधिक होती है, जिस स्थिति में गर्भाधान की सम्भावना कम हो जाती है।

Above mentioned postures of the woman during coitus may become like a incomplete coitus, in which chances of conception become very less.

गर्भोत्पत्ति के लिए आवश्यक घटक (Factors essential for conception)

यथोक्तेन विधिनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्रीपुरुषयोर्मिश्रीभावमापन्नयोः शुक्रं शोणितेन सह संयोगं समेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टे गर्भाशये गर्भमभिनिर्वर्तयत्येकान्तेन। यथा-निर्मले वाससि सुपरिकल्पिते रञ्जनं समुदितगुणमुपनिपातादेव रागमभिनिर्वर्तयति, तद्वत्; यथा वा क्षीरं दध्नाऽभिषुतमभिषवणाद्विहाय स्वभावमापद्यते दधिभावं, शुक्रं तद्वत्॥ (च० सं० शा० ८/१७)

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्यात् गर्भः स्याद् विधिपूर्वकं। ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्याद्दक्कुरो यथा॥
(सु० सं० शा २/३३)

निपातादेव गृह्णाति रागं वासोयथाऽमलम्। ध्रुवं गर्भं तथा बीजं क्षेत्रं बीजमुपस्कृतम्॥
(अ० सं० शा० १/६८)

शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि। वीर्यवन्तं सुतं सूते — ॥ (अ० ह० शा० १/८,९,)

··· ··· ऋतुर्बीजकालमवेक्षत ··· ··· ···॥ (का० सं० शा० ५/५)

यथोक्त विधि के अनुसार उपसंस्कृत शरीर वाले स्त्री-पुरुष के संभोग से दोष-रहित शुक्र जब व्याधि-रहित योनि (मार्ग) से अक्षिकृत गर्भाशय में पहुँच कर, शुद्ध आर्तव के साथ मिलता है, तो अवश्य ही गर्भ रहता है, जिस प्रकार स्वच्छ वस्त्र सम्पूर्ण गुणों से युक्त रंग डालने पर अवश्य ही रंग ग्रहण करता है, अथवा दधि के साथ मिश्रित क्षीर अपना स्वभाव छोड़कर दही बन जाता है, उसी प्रकार शुक्र भी (आर्तव से मिलकर अपना स्वभाव छोड़कर गर्भ बन जाता है)।

महर्षि सुश्रुत ने धान्योत्पत्ति से गर्भाधान का सामञ्जस्य करते हुए बताया है कि जिस प्रकार ऋतु, बीज, क्षेत्र एवं अम्बु का सान्निध्य होने से धान्य का अंकुरण होता है, उसी प्रकार इनके संयोग से निश्चित ही गर्भोत्पत्ति होती है। टीकाकार डल्हण ने इन चारों का स्पष्टीकरण करते हुए ऋतु से रजःकाल-समय, क्षेत्र से गर्भाशय, अम्बु से आहारपाकोत्पन्न रस-धातु एवं बीज से स्त्री तथा पुरुष बीज ग्रहण किया है[1]। अन्यत्र अकृत्रिम या शुद्ध आर्तव को ही गर्भकृत माना है, एवं अष्टार्तवदोष युक्त अथवा असुन्दर आदि को कृत्रिम आर्तव की संज्ञा दी है[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने स्वच्छ वस्त्र की रङ्ग ग्राहता का उद्धरण देते हुए बीज से उपस्कृत क्षेत्र (स्त्रीबीज-युक्त गर्भाशय) एवं बीज (पुरुष-बीज) की ही प्रधानता बताई है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने गर्भाशय, मार्ग (योनिनलिका एवं डिम्बप्राणाली), रक्त (स्त्रीबीज), शुक्र (पुंबीज), अनिल (अपान

१. ऋतुरङ्गनाया रजः समयः, क्षेत्रं गर्भाशयः, अम्बु पुनराहारपाकजो व्यापी रसधातुः, बीजं स्त्रीपुंसयोरार्तवशुक्रे॥
(सु०शा०२/३३ की डल्हण टीका)

२. गर्भकृच्चेति प्राकृतकर्मकथनम्।·····। केचिदाचार्या 'रक्तलक्षणमार्तवं यथोक्तमकृत्रिमं गर्भकृच्च' इति पठन्ति व्याख्यानयन्ति च यथोक्तमिति 'ग्रहासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्' इत्याद्युक्तलक्षणम्। अकृत्रिममिति वातपित्तकफैरष्टः प्रसृतैरष्टपाऽऽर्तवदूषकैरसृग्दररूपतया वा कृतं कृत्रिमं, न कृत्रिममकृत्रिमं शुद्धं, गर्भकृद्भवतीत्यर्थः॥
(सु० सं० सू० १५/५ की डल्हण टीका)

वायु) एवं हृदय (पति-पत्नी की मानसिक स्थिति) की शुद्धता (स्वस्थता या दोष विरहितता[1]) से वीर्यवान पुत्रोत्पत्ति का वर्णन किया है।

काश्यपसंहिताकार ने ऋतु की प्रधानता प्रदर्शित करते हुए ऋतुकाल एवं बीज (स्त्री एवं पुरुष-बीज) का प्राधान्य बताया है।

महर्षि भेल ने स्त्री एवं पुरुष के सामान्य हिताहार आदि की उपादेयता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जीर्ण हुए भोजन वाले, हित तथा मित-भोजी, अनुदावर्ती स्त्री-पुरुष में यदि गर्भ होता है तो वह बलवान,वर्णवान तथा चक्षुमान आदि होता है। विपरीत होने पर विपरीत होता है[2]। अन्यत्र महर्षि भेल ने गर्भाशय के अप्रदुष्ट होने तथा स्रोतस् के शुद्ध होने की भी गर्भाधान के लिए उपादेयता वर्णित की है[3]।

When both male and female after observing the advocated dietetic regimen and other mode of life perform coitus and ejaculated unvitiated *śukra*, passing through healthy *yoni*, reaches healthy *grabhāśaya* and gets mixed with disease free *śoṇita*, then conception is definite, in the same way as a white cloth definitely takes up any dye; as milk mixed with curdling yeast changing original character forms curd, similarly *śukra* also gets changed (in the form of *garbha*).

Suśruta equating germination of a seed with achievement of conception says that if *ṛtu* (season or period near ovulation or *ṛtukāla*), *bīja* (seed i.e. ovum and sperms), *kṣetra* (field i.e. female reproductive system) and *ambu* (water i.e. nourishing substances) assemble together, the conception will definitely occur.

Vāgbhaṭa I has given the importance to *kṣetra* and *bīja*, while Vāgbhaṭa II has emphasized that besides healthy *garbhāśaya*, *mārga* (vaginal canal), *rakta* (ovum) and *śukra* (sperms), properly functioning *vāyu* and normal psychological status (happy mood) are also essential.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सभी आचार्यों के वर्णनों में यद्यपि अन्तर दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यदि विषय के समष्टि स्वरूप का अवलोकन किया जाय तो प्रतीत होगा कि स्थान-स्थान पर सभी आचार्यों ने स्त्री-जननांग, स्त्री एवं पुरुष-बीज, ऋतुकाल, पोषण तथा स्त्री एवं पुरुष की मानसिक स्थिति का गर्भाधान में प्राधान्य वर्णित किया है। महर्षि सुश्रुत एवं अष्टाङ्गहृदयकार ने उन्हें एक स्थान में संकलित कर वर्णन कर दिया है। महर्षि चरक के वर्णन में सभी संहिताओं में वर्णित विचारों का समावेश हो जाता है। शब्द-भेद से महर्षि चरक ने भी सुश्रुत द्वारा वर्णित चार घटकों का महत्व प्रदर्शित किया है यथा-जिस प्रकार जल, कर्षण, बीज एवं ऋतु के संयोग से धान्य की उत्पत्ति सम्भव होती है, उसी प्रकार षड्धातु के संयोग

१. गर्भस्याशयो गर्भाशयः, तस्मिन्। शुद्धे-निर्मले, वातादिभिरदुष्टे। तथा, मार्गे-प्रकृतत्वादपत्यमार्गे, वातादिभिरदुष्टे। तथा, रक्ते स्त्रीरजसि, शुद्धे। तथा, शुक्रे-पुंबीजे, शुद्धे। तथा, अनिले शुद्धे-पित्तादिभिरनावृते। तथा, हृदि शुद्धे-दोषानधिष्ठितेऽसन्तोषे॥
(अ० ह० शा० १/८-९ की अरुण० टीका)

२. इह या स्त्रीः पुमांश्चैव जीर्णे हितमिताशनौ। अनुरा(दा)वर्तिना(नौ) चैव स्यातां गर्भस्तयोः खलु॥ १५॥
बलवान् वर्णवाँश्चैव चक्षुष्मांश्च भवत्यथ। विपर्यये वर्तमानो विपरीतमिहर्चितः(च्छति)॥ १६॥ (भे० सं० सू० १२/१५ व १६)

३. इह खलु भोः याः स्त्रियः पथ्यलघुभोजिन्योऽनुदावर्तनशीला अप्रदुष्टा यथा गर्भाशयाः सुविशुद्धस्रोतसो भवन्ति, ता आचक्षतेऽवन्ध्या कुशला इति। ता इष्टरूपं मेधावि चापत्यं जनयन्ति, विपर्यये विपर्ययः॥ (भे० सं० शा० ८/१)

Scanned with CamScanner

से गर्भ की उत्पत्ति हुआ करती है। कर्षण शब्द से टीकाकार चक्रपाणि ने कर्षण से संस्कारित भूमि के ग्रहण का निर्देश दिया है[1]। यद्यपि इस वर्णन में गर्भ के लिए षड्धातु को अनिवार्य माना है परन्तु जल आदि को भी माना जा सकता है।

In summarizing the above description it can be said that for achievement of conception, proper functioning *vāyu* (nervous system), normal psychology, healthy and properly functioning female reproductive system, well prepared uterus, healthy sperms and ovum are essential factors. Caraka has also accepted four factors just like Suśruta, albeit in indirect way. He says that as with water, ploughed field, seed and season the procurement of cereals is definite, similarly with union of *saddhātu*, achievement of *grabha* is definite. Here, water etc. also can be considered for achievement of conception.

पुत्र अथवा पुत्री की प्राप्ति के लिए संयोग-दिवस (The days of coition for having a male or female child)

स्नानात् प्रभृति युग्मेष्वहःसु पुत्रकामी, अयुग्मेषु दुहितृकामी। (च० सं० शा० ८/५)
विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः॥ २८॥
अतः परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः। त्रयोदशीप्रभृतयो निन्द्याः॥ ३०॥
(सु० सं० शा० २/२८,३०)
युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला। पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत्॥
(सु० सं० शा० ३/१२)
ततः स्नानात्पुनरपि गुणवत्पुत्रार्थी चतूरात्रमुपेक्षेत। पुष्पदिनात्सप्तरात्रम्॥ ४७॥
अथाष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां वा रात्रौ पुत्रकामः संविशेत्। पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यां वा दुहितृकामः॥ ४८॥
एकादशीत्रयोदश्योस्तु नपुंसकं स्यात्॥ ५२॥ (अ० सं० शा० १/४७, ४८ व ५२)
ऋतुस्तु द्वादशनिशाः पूर्वास्तिस्त्रोऽत्र निन्दिताः॥
एकादशी च युग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका॥ (अ० हृ० शा० १/२७ व २८)
युग्मेष्वहःसु पुत्रकामोऽन्यत्र कन्यार्थी हर्षितस्तृमोऽनुरुद्धः (अनुरक्तः-शु० पा०) स्त्रियमुपेयादिति सिद्धम्॥ (का० सं० शा० ५/६)

महर्षि चरक ने युग्म दिवसों में संभोग से पुत्र तथा अयुग्म दिवसों में संभोग से कन्या की उत्पत्ति का वर्णन किया है।

महर्षि सुश्रुत ने रजःस्राव के बाद शुद्ध हो, पुत्र या पुत्री की उत्पत्ति के प्रयत्न में युग्म एवं अयुग्म दिनों की चरक-प्रतिपादित विचारधारा का समर्थन करते हुए स्पष्टीकरण दिया है कि चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, दशमी एवं द्वादशी में पुत्र तथा पञ्चमी, सप्तमी, नवमी तथा एकादशी में गर्भाधान होने से कन्या उत्पन्न होगी। त्रयोदशी आदि निन्द्य हैं।

अष्टांगसंग्रहकार ने गुणवान पुत्रोत्पत्ति के लिए स्नान के पश्चात् चार रात्रि अर्थात् रजःस्राव प्रारम्भ होने के पश्चात् सात रात्रि तक संभोग न करने का आदेश दिया है। यह भी लिखा है कि अष्टमी, दशमी, द्वादशी में संभोग से पुत्र, पञ्चमी, सप्तमी और नवमी में गर्भाधान से पुत्री तथा एकादशी एवं त्रयोदशी में गर्भाधान से नपुंसक की उत्पत्ति होगी।

अष्टांगहृदयकार ने बारह दिन के ऋतुकाल में अयुग्म रात्रि की विचारधारा का समर्थन करते हुए पहिले की तीन रात्रि एवं एकादशी को निषिद्ध बताया है। टीकाकार अरुणदत्त ने 'च' शब्द से त्रयोदशी को भी निषिद्ध माना है, क्योंकि

१. जलकर्षणबीजर्तुसंयोगात् सस्यसंभवः। युक्तिः षड्धातु संयोगाद्गर्भाणां संभवस्तथा॥
(कर्षण शब्देन कर्षणसंस्कृता भूमिर्गृह्यते-चक्र०) (च० सं० सू० ११/२३ एव चक्र० टीका)

इस दिन संभोग होने से नपुंसक की उत्पत्ति की संभावना रहती है।[1]

महर्षि काश्यप ने भी लिखा है कि पुत्रेच्छा से युग्म दिनों में तथा कन्यार्थी अन्य दिनों में, हर्षित (प्रसन्न), तृप्त (सन्तुष्ट) तथा अनुरुद्ध (अनुरक्त अर्थात् अपनी पत्नी के प्रति अनुराग रखने वाला) होकर स्त्री के साथ सहवास करे।

महर्षि भेल ने भी षष्ठी, अष्टमी आदि में गर्भाधान होने पर पुत्र तथा पञ्चमी आदि में कन्या की उत्पत्ति का वर्णन दिया है।[2]

आचार्य भावमिश्र ने भी युग्म एवं अयुग्म रात्रियों में क्रमशः पुत्र या कन्या की उत्पत्ति का वर्णन दिया है।[3]

With the coitus done on even days the born child would be male and with odd days it would be a female. On *caturthī, aṣṭamī, daśamī* and *dwādaśī* it would be a male and on *pañcamī, saptamī, navamī* and *ekādaśī* it would be a female. *Trayodaśī* etc. are contraindicated dates for coitus. According to Vāgbhaṭa I a person desirous of having an offspring of high qualities should not have coitus for three days in *ṛtukāla* (upto 7th day of menstruation). The child conceived on *ekādaśī* and *trayodaśī* would be *napuṃsaka* (hermaphrodite).

विमर्श (Comments)

इस सन्दर्भ में वर्णित चतुर्थी, षष्ठी आदि तिथि-बोधक न होकर ऋतुकाल के दिनों के बोधक हैं अर्थात् चतुर्थी या षष्ठी से ऋतुकाल का चौथा या छठवाँ दिन समझना चाहिए।

These *caturthī* etc, should not be considered as specific days of lunar month, rather the days after onset of menstruation.

युग्मायुग्म दिवसों में संभोग से पुत्र या पुत्री के जन्म का कारण (The Cause of birth of male or female on even or odd days respectively)

तत्र युग्मासु रात्रिष्वल्पीभवत्यार्तवमयुग्मास्वाप्यायते। तस्मात्तासु क्रमात्पुत्रस्य दुहितुश्च जन्म। अतएव चानुपरतार्तवदर्शनां पुत्रार्थी विषमेष्वप्यहस्सु नोपेयात्॥ ५०॥

यदि त्वाहारानुरोधादयुग्मासु शुक्रस्याधिकता युग्मासु च न्यूनता स्यात् ततः पुमान् स्त्र्याकृतिर्दुर्बलो हीनाङ्गो वा जायते। स्त्री च पुरुषाकृतिर्दुर्बला हीनाङ्गी वा॥ ५१॥ (अ० सं० शा० १/५०, ५१)

युग्म रात्रियों में आर्तव अल्प होता है एवं अयुग्म रात्रियों में बढ़ता है, अतः क्रमशः पुत्र या पुत्री का जन्म होता है। अतः आर्तव-दर्शन हो चुकने वाली स्त्री के साथ पुत्रार्थी व्यक्ति विषम दिनों में भी (अर्थात् विषम दिनों में दिन के समय भी) सहवास न करे।

१. च शब्दोऽत्रानुक्तायास्त्रयोदश्याः समुच्चयार्थः। त्रयोदश्यां हि मिथुनीभावे नपुंसकस्योत्पत्तिरिति केचिदाहुः।
(अ० हृ० शा० १/२७-२८ की अरुण० टीका)

२. निर्गवे(ते) तु त्र्यहेण पुराणे रुधिरे, (स्व)वस्थिते (च) शुद्धस्नातायाश्चतुर्थषष्ठाष्ट(म)दशमद्वादशसु(शेषु) अहस्सु गर्भोव(प) क्रमाम(मणे)ण(न) पुमान् भवति। पञ्चमसप्तमनवै(वमै)कादशसु(शेषु) स्त्रीत्वायोपकल्पते॥ (भे०सं०शा० ५/५)

३. युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२१)

Scanned with CamScanner

यदि आहार आदि की विशेषता के कारण अयुग्म दिनों में शुक्र की अधिकता या युग्म दिनों में न्यूनता हो जाती है तो यदि पुरुष (पुत्र) उत्पन्न हुआ तो स्त्री की आकृति वाला, दुर्बल एवं हीनांग होगा तथा यदि स्त्री (कन्या) उत्पन्न हुई तो वह पुरुषाकृति, दुर्बल तथा हीनांगी होगी।

टीकाकार डल्हण ने भी शुक्र-बाहुल्य से पुत्र एवं रज-बाहुल्य से कन्या की उत्पत्ति एवं युग्म तथा अयुग्म दिनों का सामञ्जस्य स्थापित करते हुए विदेह एवं भोज के वाक्यों का उद्धरण दिया है। विदेह ने स्पष्ट लिखा है कि युग्म दिनों में रज की अल्पता होने से गर्भाधान होने पर पुत्र तथा अयुग्म दिनों में रज की अधिकता होने से कन्या की उत्पत्ति होती है। भोज ने भी अयुग्म दिनों में तथा रज की अधिकता से कन्या की उत्पत्ति एवं युग्म दिनों में तथा शुक्र की अधिकता से पुत्र तथा संध्याकाल में सम्भोग एवं शुक्र-शोणित-साम्य से नपुंसक की उत्पत्ति का वर्णन किया है।[1]

टीकाकार अरुणदत्त ने अष्टाङ्गसंग्रह के वर्णन का ही केवल शब्द-भेद से उल्लेख किया है तथा पुत्रेच्छा से युग्म एवं कन्या की इच्छा से अयुग्म दिनों में ही पुंसवन कर्म के भी करने का निर्देश दिया है। इन्होंने एकादशी तथा त्रयोदशी में नपुंसक की उत्पत्ति का वर्णन दिया है।[2]

On even days *ārtava* is less which increases on odd days, thus there is birth of male and female respectively. A man desirous of having a son should not have sexual relation even during day time on odd days. If on odd days *śukra* is more and on even days it is less, then the born male child will have feminine features and would be weak, with less body parts; and if it is a female, she will be of masculine features, weak and with less body parts.

ऋतुकाल की उत्तरोत्तर रात्रियों में गर्भाधान का परिणाम (Effect of impregnation on different days of ṛtukāla)

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च। प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै॥ (सु० सं० शा० २/२९)
तासूत्तरोत्तरमायुरारोग्यैश्वर्यसौभाग्यबलवर्णेन्द्रियसम्पदपत्यस्य भवति। अतः परं तुत्तरोत्तरमेवायुरादीनां ह्रासः॥ (अ० सं० शा १/४९)

उत्तरोत्तर दिनों में गर्भाधान होने पर प्रसवित बालक की आयु, आरोग्य, सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं बल अधिकाधिक होते हैं।

महर्षि वाग्भट ने आयु आदि के साथ ही इन्द्रिय एवं वर्ण की भी गणना की है, तथा अत्यधिक उत्तरकाल में गर्भाधान होने पर क्रमशः आयु आदि के ह्रास का वर्णन दिया है।

१. तदुक्तं विदेहे –
युग्मेषु तु दिनेष्वासां भवत्यल्पतरं रजः। संयोगं तत्र या गच्छेत् सा पुमांसं प्रसूयते॥
अयुग्मेषु दिनेष्वासां भवेद् बहुतरं रजः। संयोगं तत्र या गच्छेत् सा तु कन्यां प्रसूयते॥ इति॥
तथा–भोजोऽपि-अयुग्मे स्त्री पुमान् युग्मे सन्ध्ययोस्तु नपुंसकम्।
शुक्राधिकत्वात् पुरुषः प्रमदा रजसोऽधिकात्। शुक्रशोणितयोः साम्यात् तृतीया प्रकृतिर्भवेत्॥ इति॥
(सु० सं० शा० ३/१२ की डल्हण टीका)

२. युग्मासु-चतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशलक्षणासु निशासु, सङ्गमे पुत्रः स्यात्, अचिन्त्यत्वादृतुभावस्य। तासु हि रात्रिष्वार्तवमल्पीभवति। अन्यासु-अयुग्मासु निशासु पञ्चमीसप्तमीनवमीषु, कन्या जायते। तदा हि शुक्रमल्पीभवति, पूर्वोक्तोद्धेतोः। यदि पुनराहारादिवशात् शुक्रस्याधिकत्वमयुग्मासु, युग्मासु चार्तवपूर्णता स्यात्, तदा पुमान् स्त्र्याकृतिर्दुर्बलो हीनाङ्गो वा जायते, स्त्री च पुरुषाकृतिर्दुर्बला हीनाङ्गी वा। एकादशी त्रयोदश्योस्तु नपुंसकमिति। तदेवं दम्पती पुंगर्भमिच्छन्तौ युग्मासु निशासु पुंसवनादिकं कर्माचरेताम्, स्त्रीगर्भमिच्छन्तौ त्वयुग्मासु रात्रिषु। (अ० ह० शा० १/२८ की अरुण० टीका)

भावमिश्र ने भी इसी की पुष्टि की है।[1]

The child conceived on successive days of *ṛtukāla* has long life, good health and fortune, power of supremacy, energy, complexion and better specific motor or sensory organs. In further delay all these qualities gradually decline.

विमर्श (Comments)

उत्तरोत्तर काल से तात्पर्य ऋतुकाल के दिवसों से है, अर्थात् द्वादशी का गर्भित पुत्र उपर्यक्त गुणों में सर्वश्रेष्ठ होगा, दशमी का उससे कम, अष्टमी का उससे भी कम आदि; इसी प्रकार अयुग्म दिनों में गर्भित कन्या की स्थिति होगी। वाग्भट वर्णित अल्पाधिक उत्तरकाल भी इसी से सम्बन्धित है। अर्थात् ऋतुकाल समाप्त होने के दो दिन बाद गर्भाधान होगा तो उसमें आयु आदि का ह्रास कुछ कम होगा। उसके बाद गर्भित बालक की आयु दो दिन वाले से भी कम होगी आदि।

Taking *ṛtukāla* of twelve days, the child conceived on 12th day will have maximum qualities, there will be gradual decline of these on preceding or following days i.e. less qualities on 11th or 13 day and lesser on 10th or 14th day etc.

गर्भ की प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य (Specific acts for achieving conception)

महर्षि चरक ने स्पष्ट लिखा है कि गर्भ की प्राप्ति के लिए किए गए संभोग आदि कर्त्तव्य शुद्ध शुक्र, शोणित एवं गर्भाशय वाले दम्पति में ही सफल होते हैं एवं अग्रिम वर्णित विधि ऐसे ही लोगों के लिए है।[2] अष्टाङ्गहृदयकार[3] एवं महर्षि भेल ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है।[4]

The specific acts done to achieve conception are successful only in those couples who possess pure or healthy *śukra* (sperms), *ārtava* (ovum) and *garbhāśaya* (uterus). Following are the acts to be done by couple.

(अ) पुत्रीय विधि करने का आदेश (Specific rituals to be permitted by preceptor)

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत्। कर्मान्ते च क्रमं होतमारभेत विचक्षणः॥ (सु० सं० शा० २/२७)

अथोपाध्यायः पुत्रीयं विधानमाचरेत्॥ (अ० सं० शा० १/५३)
उपाध्यायोऽथ पुत्रीयं कुर्वीत विधिवद्विधिम्॥
अवन्ध्य एवं संयोगः स्यादपत्यं च कामतः॥ (अ० ह० शा० १/२८ व २९)

पश्चात् (ऋतुस्राव के) उपाध्याय पुत्रीय विधि का संस्कार करे, और कर्म के अंत में बुद्धिमान (पति) इस (आगे वर्णित) क्रम को आरम्भ करे। अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदयकार ने भी उपाध्याय द्वारा विधिवत पुत्रीय विधि करने का वर्णन दिया है। अष्टाङ्गहृदयकार का मत है कि इस विधि का प्रयोग करने से बन्ध्या स्त्री को भी वांछित पुत्र की प्राप्ति होती है।

१. अतोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च। प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलञ्चाभिगमात् फलम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/१६)

२. स्त्रीपुंसयोरव्यापन्नशुक्रशोणितगर्भाशययोः श्रेयसीं प्रजामिच्छतोस्तदर्थाभिनिर्वृत्तिकरं कर्मोपदेक्ष्यामः॥ (च० सं० शा० ८/३)

३. शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः॥ (स्वस्थं-अरोगं, रोगलेशेनाप्यनाक्रान्तम्। तथा, मिथः-परस्परं, संरक्तं-अनुरागयुक्तमन्योन्यदर्शनेन कुसुमचापाविष्टमेवंविधम्-अरुणदत्त टीका) (अ० ह० शा० १/१९-२)

४. भे० सं० सू० १२/१५,१६ तथा भे० सं० शा० ८/१ (पृष्ठ ८७)

Scanned with CamScanner

Afterwards (after menstrual flow is over) the preceptor should guide for specific rituals and the wise person (husband) should start the rituals described further.

(आ) शुद्रा के लिए मंत्र-प्रयोग निषेध (Contraindication for use of hymns by śūdra or untouchable women)

शुद्रा तु नमस्कारमेव कुर्यात् (देवाग्निद्विजगुरुतपस्विसिद्धेभ्यः) ॥ (च० सं० शा० ८/१३)
शूद्रायास्तु मन्त्रवर्जितम् । (अ० सं० शा० १/५३)
नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मन्त्रवर्जितम् ॥ (अ० ह० शा० १/२९)

शुद्र जाति की स्त्री के लिए मंत्र-प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। उसे देव, अग्नि, ब्राह्मण, गुरु, तपस्वी एवं सिद्धजनों को केवल प्रणाम करने का विधान है।

A *śūdrā* should not use hymns, perform only obeisance to god. fire, *brāhmaṇa*, preceptor, devout and celebrated persons.

(इ) पूर्वकर्म एवं संयोग-विधि (Method of conjugation and its prior acts)

अथाप्येतौ स्त्रीपुंसौ स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य, वमनविरेचनाभ्यां संशोध्य, क्रमेण प्रकृतिमापादयेत्। संशुद्धौ चास्थापनानुवासनाभ्यामुपाचरेत् उपाचरेच्च मधुरौषधसंस्कृताभ्यां घृतक्षीराभ्यां पुरुषं, स्त्रियं तु तैलमाषाभ्याम् ॥ ४॥

संजातहर्षौ मैथुने चानुकूलाविष्टगन्धं स्वास्तीर्णं सुखं शयनमुपकल्प्य मनोज्ञं हितमशनमशित्वा नात्यशितौ दक्षिणपादेन पुमानारोहेद् वामपादेन स्त्री ॥ ७॥ (च० सं० शा० ८/४, ७)

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धं सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयात् रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य ॥ (सु० सं० शा० २/२८)

कर्मान्ते च पुमान्मासं ब्रह्मचारी सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनमभिप्राश्य नात्याशितः सुखी स्रग्वी सुमनाः प्रीणिताङ्गः शुक्लनिवसनो मौहूर्तिकानुमते रात्रिभागे कल्याणानि चिन्तयंस्तदभिकामः स्वास्तीर्णं शयनं दक्षिणेन पादेन प्रागारोहेत्। तद्विधैव च प्रमदा कर्शिताङ्गी तैलमाषोत्तराहारा पूर्वं वामपादेन पुरुषस्य दक्षिणतः शय्यामधिरोहेत् ॥ ५४॥

ततः परस्परं सामभिरभिसान्त्य्य सहर्षमनुकूलं संवसेताम्। पर्यासे चैनां शीतोदकेन सहसा परिषिञ्चेत् ॥ ५७॥

सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टाश्च प्रियहितानुवर्तिनः परिचारकास्तथा भर्तेति ॥ ६३॥
पुनश्चैनां मासादुपेयात् ॥ ६४॥ (अ० सं० शा० १/५४, ५७, ६३ तथा ६४)
स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलितबस्तिकम्। नरं विशेषात्क्षीराद्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ॥ २०॥
नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् ॥ २१॥
कर्मान्ते च पुमान् सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः। प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया ॥ ३२॥
आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणापार्श्वतः। तैलमाषोत्तराहारा तत्र मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥ ३३॥
सान्त्वयित्वा ततोऽन्योन्यं संविशेतां मुदान्वितौ। उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदङ्गैः सुसंस्थितैः ॥ ३६॥
तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ॥ ३७॥ (अ० ह० शा० १)

स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनैः क्रमशः उपचरेन्मधुरौषधसिद्धाभ्यां क्षीरघृतपुष्टं पुरुषं, स्त्रियं तु तैलमांसा(माषा)भ्यामित्येके; सात्म्यैरेवेति प्रजापतिः ॥ ३॥

..... कल्याणमनाश्च स्यात्। न तु सन्धययोः स्त्रानं मैथुनं वोपेयान्नान्यमना इति ॥ ७॥
(का० सं० शा० ५/३ व ७)

महर्षि चरक ने स्नेहन-स्वेदनादि का वर्णन करते हुए लिखा है कि इसके पश्चात् (ऋतुस्राव के पश्चात्) स्त्री एवं पुरुष को स्नेहन-स्वेदन कर, तत्पश्चात् वमन-विरेचन के द्वारा शरीर की शुद्धि कराकर क्रमशः प्राकृतिक अवस्था (आहार आदि) में ले आवें। शोधन के पश्चात् यथाविधि आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग करें; तत्पश्चात् पुरुष को मधुर (वर्ग की) औषधियों से सिद्ध घृत एवं क्षीर तथा स्त्री को तैल एवं माष का सेवन करावें।

शरीर में हर्ष एवं मैथुनेच्छा होने पर प्रिय गन्धों से युक्त सुखकारी शय्या पर सुखकारी बिस्तर बिछाकर, मनोनुकूल हित भोजन कर एवं अत्यधिक भोजन न कर, दक्षिण पैर से पुरुष एवं बाँयें पैर से स्त्री (शैय्या में) आरोहण करे। मैथुन के पश्चात् शीतोदक से परिषेचन करे[1]।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार तत्पश्चात् (पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात्) एक मास तक ब्रह्मचर्य रहता हुआ घृत-स्निग्ध पुरुष अपराह्न में घृत एवं क्षीर के साथ शाली चावल के भात का भोजन कर, एक मास तक ब्रह्मचारिणी, तैल से स्निग्ध तथा तैल एवं माष-भूयिष्ठ आहार का सेवन की हुई स्त्री के साथ साम आदि से आश्वासन देकर रात्रि में सहवास करे।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने सुश्रुत के मत का अनुमोदन करते हुए लिखा है कि पुत्रेष्टि विधि की समाप्ति पर, एक मास का ब्रह्मचारी पुरुष क्षीर एवं सर्पि के साथ शाल्योदन खाए, अत्यधिक न खाए; फिर प्रसन्नचित्त, पुष्पों की माला से विभूषित, निरोग एवं स्वस्थ अंगोंवाला पुरुष श्वेत वस्त्र धारण कर, महूर्त्त का विचार कर, रात्रि के कल्याणकारी भाग में उसकी (स्त्री की) चिंतना करते हुए, बिछाई हुई शय्या पर पहिले दक्षिण पैर से आरोहण करे; उसी भाँति कर्शित अंगों वाली, विशेष रूप से तैल एवं माष का भोजन की हुई स्त्री प्रथम बाँयें पैर से पुरुष के दक्षिण की ओर शैय्या में आरोहण करे।

अन्यत्र लेखक ने लिखा है कि परिचायक एवं पति स्त्री के साथ सौम्य आकृति, सौम्य वचन, सौम्य उपचार एवं चेष्टा करें! पुनः एक मास बाद (ऋतुस्राव होने के बाद) सहवास करे।

तत्पश्चात् परस्पर साम आदि से सान्त्वना देकर, हर्ष होने पर सहवास करे। उसके पश्चात स्त्री शीतल जल से सहसा (तत्काल ही) परिसिंचन करे।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि स्नेहों से (फलघृत या महाकल्याणघृत से[2]) स्निग्ध तथा शुद्ध (वमन विरेचनादि से शुद्ध[2]), मैथुन के अभ्यास में अनुष्ठित पुरुष मधुरौषध से[2] साधित क्षीर एवं घृत आदि का प्रयोग कर तैल, माष एवं पित्तल आहार सेवित स्त्री से सम्भोग करे, एवं इन्होंने भी अष्टांगसंग्रह-वर्णित शैय्या-आरोहण आदि का वर्णन किया है, (पुरुष के वस्त्र-माला आदि का वर्णन नहीं है), तथा लिखा है कि स्त्री को उत्तान स्थिति में शयन करना चाहिये, क्योंकि उससे दोषों की यथास्थान स्थिति हो समुचित रूप से बीज-ग्रहण होता है। वैसे तो सभी आचार्यों ने एक मास ब्रह्मचर्य के बाद ही संभोग का वर्णन किया है, पर इन्होंने तो स्पष्ट रूप से केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही एकांत में संभोग करने का निर्देश दिया है (जिससे उत्तम संतानोत्पत्ति होती है)। महाकुलोत्पन्न भी दुष्ट संतान कुल के लिये अंगार होती है[3]।

महर्षि काश्यप के मतानुसार स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन एवं अनुवासन से क्रमशः शुद्ध, मधुरौषध-सिद्ध क्षीर एवं घृत से पुष्ट पुरुष, तैल तथा माष सेवित स्त्री के साथ सहवास करे। स्त्री मन से कल्याण या सुख चाहने वाली हो, अन्य पुरुष को चाहने वाली न हो। दोनों सान्ध्यकाल (प्रातः एवं सायं) में मैथुन एवं स्नान नहीं करना चाहिए।

---

१. पर्यासे चैनां शीतोदकेन परिषिञ्चेत्॥ (च० सं० शा० ८/६)

२. स्नेहैः पुंसवनैः-यथाभिमतगर्भग्रहणप्रभावैः फलसर्पिर्महाकल्याणकादिभिः, स्निग्धम्। तथा, शुद्धं-कृतवमनविरेचनम्। तथा शीलितबस्तिकम्, शीलिताः अभ्यासेनानुष्ठिताः, बस्तयो येन-मिथुनेन, तच्छीलितबस्तिकम्।
(अ० ह० शा० १/२० की अरुण० टीका)

३. सन्तो ह्याहुरपत्यार्थं दम्पत्योः सङ्गतिं रहः। दुरपत्यं कुलाङ्गारो गोत्रे जातं महत्यपि। (अ० ह० शा० १/३०)

Scanned with CamScanner

आचार्य भावमिश्र ने शब्द भेद से उपर्युक्त आचार्यों के ही विचारों का प्रतिपादन किया है,[1] एवं इन्होंने गर्भाधान के लिये संसर्ग के पश्चात एक मास तक पुनः संसर्ग न करने का निर्देश दिया है। सुश्रुत एवं वाग्भट के 'मास ब्रह्मचारी' शब्द का भी यही अर्थ है, कि एक बार गर्भाधान के लिये संभोग कर दुबारा पुनः ऋतुस्राव के पश्चात् गर्भ-प्राप्ति के लिए ही सहवास करें। परन्तु आचार्य भावमिश्र जी ने कारण का स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है कि यदि गर्भाधान हो गया तो गर्भाशय-द्वार में धक्का लगने से गर्भच्युति की संभावना रहती है, अतः पुनः आर्तव-दर्शन से गर्भाधान नहीं हुआ ऐसा निश्चित होने पर ही दुबारा सहवास करे। गर्भाधान हो जाने पर सहवास न करे।[2]

टीकाकारों ने पुरुष द्वारा घृतादि तथा स्त्री द्वारा तैलादि के प्रयोग के विधान का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि मधुर आदि द्रव्य शुक्र-वृद्धिकारक होते हैं, तथा तैल एवं पित्तल द्रव्य रक्त-वृद्धिकारक होते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने स्त्री को तैलादि के साथ क्षीरादि के प्रयोग का भी विधान प्रारम्भ में बताया है, परन्तु बाद में उसके प्रयोग का निषेध है[3] (पित्तवृद्धि-कारक द्रव्य गर्भस्राव-कारक हो सकते हैं)।

After menstruation i.e. 4th day onwards the couple after being purified by use of oleation, sudatory measures, emetics, purgatives and brought to normal condition (dietetics) should be given *āsthāpana* (evacuative enema) and *anuvāsana* (nutritive enema) *basti*. After these purifying measures, the man should use the *ghṛta* and milk medicated with the drugs of *madhura varga* (sweet or anabolic drugs) and the woman should consume oil and *māṣa* (a sort of kindney bean). The couple having feeling of carnal relation, avoiding over eating but consuming desirous beneficial food should go to the comfortable cot spreaded with soft mattress and sprinkled with pleasant fragrance. The man should go to the bed by keeping his right leg first while the woman the left one. After coition they should irrigate (wash the genital organs) with cold water.

Suśruta opines that the man properly oleated with *ghṛta*, having observed celibacy for one month, after taking *śāli* rice with *ghṛta* and milk in the afternoon should have sex plays and coitus in the night with the woman properly oleated with oil having observed chastity for one month and taken food prepared mainly with oil and *māṣa*.

VāgbhaṭaI agreeing with the above view elaborates that a healthy man possessing

१. स्नातक्षुन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः। भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः॥ २२॥
ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः। पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे॥ २३॥
अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः। बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम्॥ २४॥
पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यूनभोजना। नारी ऋतुमतो पुंसं संगच्छेस्तु सुतार्थिनी॥ २५॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२२ से २५)

२. एवं तामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद् भजेदसौ॥ ४१॥ मासादूर्ध्वमिति शेषः। अर्वाग्गमनेन गर्भद्वारविघट्टनाद् गर्भच्युतिप्रसङ्गः स्यात्, केचित्तु, पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भालाभनिश्चये मासादूर्ध्वं गच्छेद्, लब्धगर्भे नैव गच्छेदिति वदन्ति। (भा० प्र० पूर्व० ३/४१)

३. (अ) मधुरस्य विशेषेण शुक्रवृद्धिकरत्वात् (च० सं० शा० ८/४ की चक्र० टीका)
(आ) पित्तलानि हि रक्तवृद्धि हेतवः।.....। एवं च तैलं पित्तकृत्वादेवोपन्यस्तम्। विशेषादित्यत्राप्यनुवर्तते। क्षीराज्येभ्योऽपि विशेषेण नारीं तैलादिभिः समुपाचरेदित्यर्थः। पुरुषस्य तु रजसोऽभावात्तद्वृद्धिहेतवस्तैलादयो नोपयुज्यन्त एव। (अ० ह० शा० १/२०, २१ की अरुण० टीका०)
(इ) उत्तरग्रन्थोऽत्र तैलमाषौ पित्तलौ रक्तवृद्धिहेतूत्तयाऽत्यन्तं सेवितव्यौ। न पुनस्तथा शुक्रवृद्धिकराण्यन्यान्यपि क्षीरादीनि द्रव्याणीति प्रतिपादयति। (अ० ह० शा० १/३३ की अरुण० टीका)

healthy organs should be in high spirit, adorn himself with garland of flowers and psychologically thinking only about his wife should have coitus in appropriate auspicious period of night with the woman emaciated by specific dietetic regimen. Husband and other attendants should wear happy faces, use polite words and do gentle behaviour and acts with the woman (for whole month).

VāgbhaṭaII has specified the *ghṛtas* as *phalaghṛta* and *mahākalyāṇa ghṛta* and besides above mentioned diet for woman advocates the use of edibles by woman capable of increasing *pitta*. He has specifically indicated the coitus to be performed in seclusion exclusively for reproduction (so that one gets a good progeny). The progeny with bad character even if born in high family destroys the reputation of whole family.

Kāśyapa stresses that woman should be wanting of happiness and pleasure psychologically, she should love only her husband none the else. In dawn and twilight coitus and bath should not be done.

Bhāwaprakāśa clarifying the reason for observance of celibacy for remaining period of month after initial coitus says that if conception has taken place, then jerks to *garbhāśaya-mukha* (cervix uteri) caused by coitus can initiate abortion, hence, on being sure about absence of pregnancy by reappearance of menstruation the subsequent coitus should be done,

The commentators have explained that *madhura* drugs increase *śukra* and *pittala* drugs increase *rakta*. Aruṇadatta clarifies that initially the woman should also be given milk etc. alongwith oil etc., however, later on these should not be used (*pittavardhaka* drugs can initiate abortion).

(ई) संभोग के समय प्रयुक्त मंत्र (The hymn to be recited before coitus)

तत्र मन्त्रं प्रयुञ्जीत 'अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठाऽसि धाता त्वा दधातु विधिता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसा भव' इति।

ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ। भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम्॥
इत्युक्त्वा संवसेयाताम्॥ (च० सं० शा० ८/७ व ८)
तत्र मन्त्रं प्रयुञ्जीत-अहिरसि ··· ··· ··· वीरं दधातु मे सुत। इति॥
(अ० सं० शा० १/५५ व ५६; च० सं० सदृश ही)

अहिरसि ··· ··· ··· धाता। त्वा ··· ··· त्वां ··· ब्रह्मवर्चसा भवेति। ब्रह्मा ··· सुतम्॥
(अ० ह० शा० १/३४ व ३५; च० सं० सदृश)

इस मन्त्र का प्रयोग करें, जिसका शाब्दिक अर्थ यह है-(हे गर्भ) तुम सूर्य के समान हो, तुम मेरी आयु हो, तुम सब प्रकार से मेरी प्रतिष्ठा हो। धाता (धारण करने वाला ईश्वर) एवं विधाता (विश्व के निर्माता ब्रह्मा) तुम्हारी रक्षा करें। तुम ब्रह्मा से युक्त होओ।

ब्रह्मा, बृहस्पति, विष्णु, सोम, सूर्य, अश्विनीकुमार और मित्रावरुण जो दिव्य शक्तिरूप हैं वे मुझे वीर पुत्र प्रदान करें।

इस मंत्र को पढ़कर सहवास करे।

Scanned with CamScanner

Following hymn should be recited just before the coitus: (O *garbha*) you are like sun, you are my longevity, you are my prestige by all means. *Dhātā* (god of protection) and *vidhātā* (the god of creation) should protect you. You should have *brahmā* in you.

Lords *brahmā, bṛhaspati, viṣṇu, soma, sūrya, aświnīkumāra* and *mitrāvaruṇa* having divine powers bless me with courageous son.

(ङ) पुत्रेष्टि यज्ञ की विधि (The method of performing putreṣṭi yajña)

तत ऋत्विक् प्रागुत्तरस्यां दिश्यगारस्य प्राक्प्रवणमुदक्प्रवणं वा प्रदेशमभिसमीक्ष्य, गोमयोदकाभ्यां स्थण्डिलमुपलिप्य, प्रोक्ष्य चोदकेन, वेदीमस्मिन् स्थापयेत्। तां पश्चिमेनाहतवस्त्रसञ्चये श्वेतार्षभे वाऽप्यजिन उपविशेद् ब्राह्मणप्रयुक्तः, राजन्यप्रयुक्तस्तु वैयाघ्रे चर्मण्यानडुहे वा, वैश्यप्रयुक्तस्तु गौरवे वास्ते वा। तत्रोपविष्टः पालाशौभिरिङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वा समिद्भिरग्निमुपसमाधाय, कुशैः परिस्तीर्य, परिधिभिश्च परिधाय, लाजैः शुक्लाभिश्च गन्धवतीभिः सुमनोभिरुपकिरेत्। तत्र प्रणीयोदपात्रं पवित्रपूतमुपसंस्कृत्य सर्पिराज्यार्थं यथोक्तवर्णानाजानेयादीन् समन्ततः स्थापयेत् ॥ १०॥

ततः पुत्रकामा पश्चिमतोऽग्निं दक्षिणतो ब्रह्मणमुपविश्यान्वालभेत सह भार्यां यथेष्टं पुत्रमाशासाना। ततस्तस्या आशासानाया ऋत्विक् प्रजापतिमभिनिर्दिश्य योनौ तस्याः कामपरिपूरणार्थं काम्यामिष्टिं निर्वर्तयेद् 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' इत्यनयर्चा। ततश्चैवान्येन स्थालीपाकमभिधार्य त्रिर्जुहुयाद्यथाम्नायम्। मन्त्रोपमन्त्रितमुदपात्रं तस्यै दद्यात् सर्वोदकार्थान् कुरुष्वेति। ततः समाप्ते कर्मणि पूर्वं दक्षिणपादमभिहरन्तीं प्रदक्षिणमग्निमनुपरिक्रामेत् सह भर्त्रा। ततो ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वाऽऽज्यशेषं प्राश्नीयात् पूर्वं पुमान्, पश्चात् स्त्री, न चोच्छिष्टमवशेषयेत् ततस्तौ सह संवसेयातामष्टरात्रं, तथाविधपरिच्छदावेव च स्यातां, तथेष्टपुत्रं जनयेताम् ॥ ११॥

(च० स० शा० ८/१०, ११)

तत ऋत्विक् पुत्रीयामिष्टिं निर्वपेत्। सिद्धमांसौदना वातघ्नौ (?) वाऽऽज्यभागौ, यवमयः पुरोडाशोऽष्टकपालो, व्रीहिमयश्चरुः, उभौ वागायुर्यतौ प्रजायेते; न त्वदे .....क्षे, 'आब्राहान्ब्राह्मण' इति यजमानभागमभिमन्त्र्य शेषं दम्पती प्राश्नीयाताम्। श्वेत ऋषभोऽश्वो वा हिरण्यं वा भिषजे सैव दक्षिणा, सैवमनाहिताग्नेः, शालाग्नौ नित्यं होमं हुत्वा, तेनैव मन्त्रेण हुतशेषं तौ प्रा(श्नीतः)। शयनीये मृदुस्वास्तीर्णोपहितेऽस्यै भर्ता ..... त्र लक्ष्मणामद्धिरालोड्य 'सोमः पवन' इत्येतेन शतजप्तेन सावित्र्या व्याहृतिभिः 'अपो देवीरुपसृज' इति मन्त्रेण नस्यं दत्त्वा, वामदेव्यं जपित्वा, दक्षिणेन पार्श्वेन स्वियं शाययीत, वामपार्श्वेन पुमानूर्ध्वोत्तरेणोपशयीत। शनैः प्रजार्थं चाचरेत्। बीजेऽवसिक्ते विधायावसर्पेत्। शीतोदकेन च शौचं कुर्यात्। तत ऊर्ध्वमग्निकर्मप्रतापाया-सव्यायामशोकादिवर्जनमिति। (का० सं० शा० ५/८)

इसके पश्चात् ऋत्विक् गृह की पूर्व या उत्तर दिशा की ओर पूर्व या उत्तर में ही प्रवृण (निम्न) स्थान को देखकर, उस पूजन स्थान को गोबर एवं जल से लीपकर, पुनः जल से पोंछकर वेदी की स्थापना करे। पश्चात् ऋत्विक् उस वेदी के पश्चिम भाग में यदि यजमान ब्राह्मण हो तो बिना फटे (नए) वस्त्रों के समूह से बने या श्वेत वृषभ के चर्म से बने आसन पर, क्षत्रिय हो तो व्याघ्र या वृषभ के चर्म से बने एवं यदि वैश्य हो तो मृग (रुरु) या बकरे के चर्म से बने आसन पर बैठे। वहाँ बैठकर पलाश, इंगुदी, उदुम्बर या मधूक की लकड़ियों (समिधाओं) से अग्नि का उपसमाधान (स्थापना) कर, कुशाओं को चारों ओर फैलाकर, (वेदी को) चारो ओर से सजाकर, लाज तथा सुगन्धित एवं श्वेत पुष्प सभी तरफ बिखेर दे। तब मन्त्रादि द्वारा पवित्र एवं उपसंस्कृत (स्वच्छ), प्रणीय (पवित्र) उदक पात्र एवं हवन के लिए घृत (वेदी के पास) रखे एवं जिस वर्ण के पुत्र की इच्छा हो उस वर्ण के घोड़े आदि (अन्य सजावट की सामग्री) चारो ओर रखे।

इसके पश्चात् यथेष्ट पुत्र की आकांक्षा वाली स्त्री, अग्नि के दक्षिण भाग में ब्राह्मण को बैठाकर, स्वयं पति के साथ अग्नि के पश्चिम भाग में बैठे, एवं ऋत्विक् की आज्ञा का पालन करे। तब उस स्त्री के मनोरथ की पूर्ति के लिये स्त्री

की योनि में प्रजापति का निर्देश कर 'विष्णुर्योनिं' आदि ऋचा का पाठकर काम्य-इष्टि (पुत्रेष्टियज्ञ) का प्रारम्भ करे। पश्चात् स्थाली में चरु को पूर्वाभिमन्त्रित घृत से मिलाकर यथावेद (जो जिस वेद का मानने वाला हो) विधि से तीन बार आहुति दे। फिर मन्त्र से उपमन्त्रित जल-पात्र को उस स्त्री को दे दे, एवं जल के सभी कार्य इसी पात्र के जल से करने का निर्देश दे। इस यज्ञ-कर्म के समाप्त होने पर, अपने दाहिने ओर अग्नि को रखती हुई, पहिले दाहिना पैर उठाकर पति के साथ प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर हवन से बचे हुए घृत को पहिले पुरुष बाद में स्त्री पिए, उसमें उच्छिष्ट (जूठा) न छोड़ें। इस प्रकार आठ रात्रि तक सहवास करे। जिस प्रकार के वस्त्र आदि का प्रयोग करेंगे उसी प्रकार के पुत्र को उत्पन्न करेंगे।

महर्षि काश्यप ने भी यज्ञ-विधि का वर्णन किया है परन्तु वह उपर्युक्त वर्णन से कुछ वैभिन्य रखती है। इसके बाद ऋत्विक् पुत्रेष्टि यज्ञ को करे। हवन करने के लिये सिद्ध मांस, ओदन, वातघ्न औषधि, आठ कपालों में संस्कृत यव का पुरोडाश एवं व्रीहि (धान्य) से युक्त चरु (समिधा) को तैयार करे। इससे पति पत्नी दोनों वाणी और आयु से युक्त हो जाते हैं। फिर 'आब्राह्मन्ब्राह्मण' आदि मन्त्र से यजमान के भाग को अभिमंत्रित करके शेष भाग को दम्पति खाये। श्वेत वृषभ या अश्व अथवा हरिण अनहिताग्नि वैद्य को दक्षिणा दें। शालाग्नि में नित्य हवन कर, उसी मंत्र से अभिमंत्रित, हवन से शेष बची सामग्री नित्य भोजन करें। इसके बाद पति मृदु, सुखकर बिस्तर पर पत्नी को लिटाकर, लक्ष्मणा (औषधि) को पानी में घोलकर 'सोमः पवन' मंत्र सौ बार जप कर, सावित्री मंत्र को कह कर, 'अपोदेवीरुपसृज' मन्त्र द्वारा नस्य देकर, वामदेव्य (ऋषि वामदेव के वंशज) का जाप कर, दक्षिण पार्श्व में स्त्री को शयन करावे। वाम पार्श्व से पुरुष ऊपर (स्त्री के) लेटे, एवं संतान प्राप्ति के लिए धीरे धीरे आचरण (मैथुन) करे। बीज (शुक्र) के अवसिक हो जाने पर स्त्री उसे धारण कर पृथक् हो जाय, पश्चात् शीतल जल से प्रक्षालन करे। तत्पश्चात् अग्निकर्म (अग्नि के पास काम करना), तेज धूप, अधिक परिश्रम, व्यायाम एवं शोक का परित्याग करे।

Only two authors i.e. Caraka and Kāśyapa have described the detailed methods of *putreṣṭi yajña* which is actually a subject of sociology or religion. The methods of both these authors differ considerably.

Now the priest should search a space in the north or east direction of the house (courtyard) which is slopy towards north or east, besmear it with cow-dung and water, rewipe the same with water and establish an altar. Now the priest should sit on the west side of that altar over a cushion made with new cloths or over the skin of white ox if the client is *brāhmaṇa*, lion or ox if the client is *kṣatriya*, and deer or goat if the client is *vaiśya*. Sitting over there he should lit the pious fire (in the altar) with the woods of *palāśa, iṅgudī, udumbara* or *madhūka*, spread all around *kuśa*, decorate it, and strew *lājā* (parched paddy) and fragrant white flowers. Now he should place near the altar the sacred water, treated with *mantras* (sacred words) and *ghṛta* for oblation and also the horse and other articles of decoration of the colour desired for the child.

Now the lady anxious to have the desired child, placing the *brāhmaṇa* on the south direction of fire should sit alongwith her husband on the west side of fire and follow the instructions of the priest. The priest should start the *putreṣṭi yajña* for fulfilment of the desires of the lady by indicating or characterizing *prajāpati* to the *yoni* (vagina) of the woman and reciting *"viṣṇuryoni"* etc. hymn. Now he should place the *caru* (oblation prepared with rice, barley etc. mixed with milk and *ghṛta* etc.) in saucepan, mix it with *ghṛta*

Scanned with CamScanner

already treated with *mantras* and put thrice in oblation fire by the method indicated in *vedas* (the *vedas* according to ones own belief), and then handover the water-pot already sanctified with *mantras* to the woman and advise her to use the water of this pot wherever needed. After completion of this *yajña* the lady keeping fire towards her right side, lifting her right leg first should go round (the fire) alongwith her husband. After having benediction or pronouncement of the word *'swasti'* from *brāhmaṇas*, the *ghṛta* left over after sacrifice should be taken first by the husband then wife without leaving it. In this way they should have coition for eight nights. They will produce the child of the type of which cloths etc. have been used by them.

The procedure of *putreṣṭi yajña* given by Kāśyapa is slightly different. He says that now the priest should start *putreṣṭi yajña*. For oblation he should prepare material (*caru*) in eight bowls with the prepared meat, cooked rice, drugs capable of suppressing the *vāta*, a type of barley cake (*purodāśa*) and rice. By this the couple attain better expression power and longevity. Now the hymn *"ābrāhmanbrāhmaṇa"* should be enchanted over the leftover substances after oblation performed for client and should be taken by the couple. White ox or horse or deer should be offered to physician not participating in the ceremony of preparing the pure sacred fire. They should perform the oblation daily in the fire kept in (altar of) the house and eat daily left over material after oblation properly enchanting the same *mantras*. Now the husband making the wife lie down on a soft comfortable bed, should take *lakṣmaṇā* (a drug), mix it with water, recite hundred times the hymn *"somaḥ pavana"* and *"sāvitrī mantras"*, and give its inhalation to her reciting *"apodevīrupasṛja" mantras*. Repeating name of *"vāmadevya"* in low tone, keeping the wife on his right side the husband should go above the wife from left side and gradually act (do coition) for achievement of conception. After excretion of *bīja* (semen), the wife retaining the same should separate herself, lateron irrigate (both of them their external genital organs) with cold water. After this (the woman) should avoid working near fire, hot sun, excessive labour, exercise and grief.

(ऊ) गौर वर्ण एवं ओजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए कर्तव्य (The methods to get fair complexioned and energetic son)

सा चेदेवमाशासीत-बृहन्तमवदातं हर्यक्षमोजस्विनं शुचिं सत्त्वसंपन्नं पुत्रमिच्छेयमिति, शुद्धस्नानात् प्रभृत्यस्यै मन्थमवदातयवानां मधुसर्पिर्भ्यां संसृज्य श्वेताया गोः सरूपवत्सायाः पयसाऽऽलोड्य राजते कांस्ये वा पात्रे काले काले सप्ताहं सततं प्रयच्छेत् पानाय। प्रातश्च शालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिः पयोभिर्वा संसृज्य भुञ्जीत, तथा सायमवदातशरणशयनासनपानवसनभूषणा च स्यात्। सायं प्रातश्च शाश्वच्छेवतं महान्तं वृषभमाजानेयं वा हरिचन्दनाङ्गदं पश्येत्। सौम्याभिश्चैनां कथाभिर्मनोनुकूलाभिरुपासीत। सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्च स्त्रीपुरुषानितरानपि चेन्द्रियार्थानवदातान् पश्येत्। सहचर्यश्चैनां प्रियहिताभ्यां सततमुपचरेयुस्तथा भर्ता। न च मिश्रीभावमापद्येयातामिति। अनेन विधिना सप्तरात्रं स्थित्वाऽष्टमेऽहन्याप्लुत्याद्भिः सशिरस्कं सह भर्त्रा अहतानि वस्त्राण्याच्छादयेदवदातानि, अवदाताश्च स्रजो भूषणानि च बिभृयात्॥ ९॥ (च० सं० शा० ८/९)

सा चेदिच्छेद् गौरमोजस्विनं शुचिमायुष्मन्तं पुत्रं जनयेयमिति, तस्या एवं शुद्धस्नानात् प्रभृति शुक्लयवसक्तूनां मधुघृताभ्यां श्वेतायाः श्वेतपुंवत्साया गोःक्षीरेण संसृज्य मन्थं राजते पात्रे कांस्ये वा सदा पाययेत्। शालिगौरयवक्षीरदधिघृतप्रायं च काले मात्रया अश्नीयात्, पुष्पाभरणवासांसि च शुक्लानि विभृयात्, सायं प्रातश्च श्वेतमश्वं वृषभं वा पश्येत्, सौम्यहितप्रियकथाभिरासीत, अनुकूलपरिवारा च स्यादिष्टमपत्यं जनयति॥

(का० सं० शा० ५/९)

यदि स्त्री चाहती है कि मेरा पुत्र विशाल एवं पुष्ट शरीर, गौर वर्ण, सिंह सदृश (पराक्रमी), ओजस्वी, पवित्र, सात्विक मन वाला हो तो उसे स्नान कर शुद्ध होने के पश्चात् (आर्तव-स्राव के चौथे दिन) श्वेत यव के मन्थ (सत्तू) को मधु एवं सर्पि के साथ मिलाकर, श्वेत वर्णा एवं श्वेत वत्सा गौ के दूध में आलोडन कर चाँदी या काँसे के पात्र में रखकर, समय समय पर (प्रातः एवं सायं) एक सप्ताह तक पीने को दें। वह प्रातःकाल शालि (विशिष्ट धान्य) एवं यव से बने विभिन्न पदार्थों को दधि, मधु, घृत या दुग्ध के साथ मिलाकर खाये तथा सायंकाल श्वेत वर्ण के ही शरण (गृह), शयन (बिस्तर), आसन (बैठने का स्थान), पान (खान, पान), वस्त्र एवं आभूषणों का प्रयोग करे। प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल श्वेत वर्ण के बृहत् वृषभ, अश्व, चन्दन एवं अंगद (विशिष्ट आभूषण) को देखे। उस स्त्री को मनोनुकूल एवं सौम्य कथाएँ सुनायें। सौम्य आकृति, वचन, उपचार (व्यवहार) एवं चेष्टा (इच्छाएँ) वाले स्त्री-पुरुषों को तथा अन्य इन्द्रियों की इच्छा वाले श्वेत पदार्थों को ही देखे (घ्राण इन्द्रियार्थ श्वेत पुष्प, दर्शन एवं श्रवण इन्द्रियार्थ श्वेत वाद्य यन्त्र आदि)। उस स्त्री के साथ उसकी सहेलियाँ तथा पति सतत प्रिय एवं हितकर उपचार करें। इस काल में संभोग न करे। इस प्रकार सात रात्रि व्यतीत हो जाने पर, आठवें दिन पति के साथ जल से शिर से स्नान कर, श्वेत एवं नूतन वस्त्र धारण कर, श्वेत माला एवं आभूषण धारण करे। (पश्चात् पूर्ववर्णित पुत्रेष्टि यज्ञ करें)।

महर्षि कश्यप ने भी उपर्युक्त विधि को ही केवल शब्द-भेद से एवं संक्षेप में वर्णन किया है कि यदि स्त्री गौर वर्ण, ओजस्वी, पवित्र तथा दीर्घायु पुत्र को जन्म देने की आकांक्षा रखती है तो उसे स्नान के पश्चात् श्वेत यव के मन्थ को मधु एवं घृत के साथ मिलाकर श्वेतवर्ण-वत्सा एवं श्वेतवर्णा गौ के दुग्ध में मिलाकर, चाँदी या काँसे के पात्र में सदा पीने को दें। मात्रानुसार शालि, श्वेत यव, दुग्ध, दधि एवं घृत समय पर भोजन के लिए दें। पुष्प, आभरण एवं वस्त्र श्वेत ही प्रयोग करें। श्वेत वृषभ एवं अश्व को देखे। उसे सौम्य, हित एवं प्रिय कथाएँ सुनाएँ तथा उसके पास उसके अनुकुल परिवार के लोग ही रहें, इस भाँति वह वांछित पुत्र को जन्म देती है।

महर्षि भेल ने गौर वर्ण, दीर्घायु पुत्र की प्राप्ति के लिए उपायों का वर्णन करते हुए लिखा है, कि स्त्री सात रात्रि तक यव का ओदन सर्पि से युक्त कर खाए, दौहद में श्वेत एवं सुन्दर वत्स वाली, श्वेत गौ के क्षीर में बनाई हुई पायस का भोजन करे, श्वेत वस्त्र धारण करे, सभी प्रकार के कार्य श्वेत संस्कृत करे, श्वेत वृषभ का दर्शन करे तो गौरवर्ण के पुत्र को जन्म देगी। महर्षि शौनक कहते हैं ऐसा नहीं है क्योंकि इससे पैंगल्य बाधा उत्पन्न होगी। महर्षि आत्रेय ने कहा क्या आबाधक होगा ? पिंगल अवयव वाला व्यक्ति आयुष्मान एवं नीरोग होता है।[1]

Carak says that if the woman desires to have a son of tall, robust personality, fair complexion, resembling the lion (in courage), energetic, chaste, endowed with the qualities

---

१. साध्वेव(चेदा)कांक्षो(क्षे)द्वा(द्दी)हि(र्घा)कि(युः) शिवावदातपुत्रं जनय(ये)(यमिति),यवानाम(मो)दनं सर्पिस्संयुक्तं सप्तरात्रमनुपहितं भुञ्जीत। ततो दौहदे श्वेताया गोः सरूप वत्साया पयसि पायसं पाचयित्वा तदेवात्मी(स्त्री)यात्। शुक्ले च वासस(सी)परिर(द)भ्या(ध्या)त्। सर्वश्वेतं चास्याः संस्कृतं विमानं कारयेत्। (श्वेतं) वृषभमव(ष्या)स्या दर्शयेदेवमवदातं पुत्रं जनयेत्॥ ३॥

नेत्याह शौनकः। पैङ्गल्यं वा ततोप्यत्रेत्यात्रेय उवाच किं स्यादाबाधकः, पिङ्गलावयवा आयुष्मन्तो नीरोगाश्च भवन्तीति॥ ४॥

(भे० सं० शा० ८/३,४)

Scanned with CamScanner

of goodness (*sātwika),* then after getting purified and having taken bath (purification due to cessation of menstrual flow on 4th day of period), she should be given the flour of parched white barley with honey and *ghṛta,* churned with milk of white cow having white calf with the utensil of silver or bronze timely (morning and evening) for seven days. In the morning she should take the edibles prepared with *śāli* (a type of rice) and barley with curd, honey, *ghṛta* or milk and in the evening should live in white coloured abode and use all the things like bed, cushion, edibles, drinks, clothe and ornaments etc. of white colour. Daily in the morning and evening she should look at white ox, white horse, sandal wood and *aṅgada* (specific ornament used in upper arm near elbow joint). She should be entertained with favourite and pleasing stories. She should look at men and women of charming personality, having pleasant words, gentle behaviour, good conduct and use other white objects desired by her sense organs (white flowers for olfactory sense, white instruments for auditory sense etc). Husband and other female companions should always do pleasant and gentle behaviour with her. She should not indulge in coition during this period. Living like this for seven nights, on eighth day she should take full bath (from head to toe) along with her husband, wear white and new garments, garland and ornaments, (this should, follow the *putreṣṭi yajña* described earlier).

Almost similar views have been expressed by Kāśyapa and Bhela.

(ए) श्याम आदि वर्ण के पुत्र की इच्छा होने पर स्त्री के लिए कर्तव्य (The procedures to get dark complexioned red-eyed son)

या तु स्त्री श्यामं लोहिताक्षं व्यूढोरस्कं महाबाहुं च पुत्रमाशासीत, या वा कृष्णं कृष्णमृदुदीर्घकेशं शुक्लाक्षं शुक्लदन्तं तेजस्विनमात्मवन्तम्; एष एवानयोरपि होमविधिः। किन्तु परहोर्वर्णवर्जं स्यात्। पुत्रवर्णानुरूपस्तु यथार्शरिव तयोः परिबर्होऽन्यः कार्यः स्यात्॥ (च० सं० शा० ८/१२)

या तु श्यामं लोहिताक्षं व्यूढोरस्कं पुत्रमिच्छेत् कृष्णं वा तत्र तादृगुपचारो भोजनवसनकुसुमालङ्काराणां, तादृग्देशानुचिन्तनं चेति। यवागूं तु कन्यार्थिनीभ्यो दद्यात्; क्षीरोदकतिलसिद्धास्तु वर्ण्याः। गौरश्यामकृष्णेभ्योऽन्ये वर्णा निन्दिताः॥ (का० सं० शा० ५/९)

यदि स्त्री श्याम वर्ण, रक्ताक्ष, विस्तृत एवं उन्नत उर तथा लम्बी बाहु वाले पुत्र की आकांक्षा रखती है या कृष्ण वर्ण, काले, मृदु तथा लम्बे केश, श्वेत आखें एवं दन्त वाले तथा तेजस्वी एवं जितेन्द्रिय पुत्र की इच्छा रखती है, तो उसके लिए भी (पूर्ववर्णित) यही हवन-विधि है, केवल परिबर्ह (गृह, शयन, आसन, पुष्प, वस्त्र आदि) के वर्ण में परिवर्तन होता है। वांछित पुत्र के वर्ण के अनुरूप ही परिबर्ह का प्रयोग एवं अन्य कार्य (दर्शनादि) करना चाहिए।

महर्षि काश्यप ने भी यही लिखा है कि यदि स्त्री श्याम वर्ण, रक्ताक्ष, विस्तृत एवं उन्नत उर वाले अथवा कृष्ण वर्ण के पुत्र की आकांक्षा रखती है, तो उसी प्रकार के उपचार, भोजन, वस्त्र, पुष्प एवं अलंकारों का प्रयोग करे, उसी प्रकार के (पुरुषों के) देश का चिन्तन करे। कन्यार्थी स्त्री को यवागू का भोजन देना चाहिए। सिद्ध किये हुए क्षीरोदक एवं तिल वर्ण (शारीरिक) के वृद्धिकारक होते हैं। गौर, श्याम एवं कृष्ण के अतिरिक्त अन्य वर्ण निन्दित माने गये हैं।

महर्षि भेल ने लिखा है कि यदि स्त्री श्याम वर्ण के एवं लोहिताक्ष पुत्र को उत्पन्न करने की इच्छा करती है, तो वह ('द्वितीय मासे से शब्दं कारयेत्' तक का अर्थ स्पष्ट नहीं है अतः यहाँ नहीं दिया गया) लोहित वर्ण के कुक्कुट के रक्त को रक्तशाली के साथ मिला कर, सात रात्रि तक (तथा) दौहद में भोजन करे। ताम्र वर्ण के वस्त्र धारण करे। इसके

शयन एवं आसन (के वस्त्र या स्थान) ताम्र वर्ण के हों। रक्त वर्ण के वृषभ एवं अज का दर्शन करे। इससे श्याम वर्ण, लोहिताक्ष पुत्र को जन्म देगी।[1]

For the woman desirous of having a dark complexioned, red eyed son possessing broad chest and long arms; or a son having dark complexion, long-soft-black hair, white eyes and teeth and who is brilliant, possesses good control over his sensory and motor organs, the procedure of oblation is same, the only difference being in the colours of surroundings (abode, bed, cushion, flowers, garments etc.). The colours of surroundings and other articles to be used should be identical with the wanted complexion for the child.

Kāśyapa corroborating the above statement says further that the woman desirous of having female child should use gruel. Medicated milk, water and *tila* (sesamum seed) are beneficial for complexion. Besides fair (*gaura),* dark (*śyāma)* and black (*kṛṣṇa)* other complexions are unwanted.

Bhela opines that the woman desiring to have red eyed and dark complexioned son should consume the blood of red cock mixed with red *śāli* for seven days and also during *dohṛda.* she should use the garments, bed and cushion of copper colour, look at the red ox and goat, thus she will deliver red eyed dark complexioned son.

(ऐ) स्त्री की मानसिक अवस्था का गर्भ में प्रभाव (Effect of psychology of the woman on the fetus)

या या च यथाविधं पुत्रमाशासीत तस्यास्तस्यास्तां तां पुत्राशिषमनुनिशम्य तांस्ताञ्जनपदान्मनसाऽनुपरिक्रामयेत्। ततो या या येषां येषां जनपदानां मनुष्याणामनुरूपं पुत्रमाशासीत सा मः तेषां तेषां जनपदानां मनुष्याणामाहारविहारोपचारपरिच्छदाननुविधत्स्येति वाच्या स्यात्। इत्येतत् सर्वं पुत्राशिषां समृद्धिकरं कर्म व्याख्यातं भवति।
(च० सं० शा० ८/१४)

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥
(सु० सं० शा० २/४६ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/६२)

यादृशं च पुत्रमाशासीत तद्रूपवर्णचरितान् जनपदाननुचिन्तयेति स्त्री वाच्या। तज्जनपदाहारविहारोपचारपरिच्छदांश्चानुविदधीत॥ (अ० सं० शा० १/५३)

इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ। चिन्तयेतां जनपदास्तदाचारपरिच्छदौ॥
(अ० ह० शा० १/३१)

जो स्त्री जिस जिस प्रकार के पुत्र की इच्छा रखती हो, उसकी उस पुत्रेच्छा को सुनकर (वैद्य) उन उन भाँति के देशों को मन से ध्यान करने को कहे। वह स्त्री जिस-जिस देशवासी मनुष्यों के अनुरूप पुत्र की इच्छा रखती हो, उन उन देशवासी मनुष्यों के आहार, विहार, उपचार (व्यवहार) एवं परिच्छद (वस्त्र आदि) का उन्हीं की विधि एवं वाणी के अनुसार प्रयोग करे। इस प्रकार सभी पुत्र की इच्छाओं के समृद्धिकर कर्मों की व्याख्या हो गई।

१. साचेदेवमाशास(सी)त श्यामं लोहिताक्षं पुत्रं जनयिते(तास्मि) यावत्, द्वितीये मासे पुष्पं पश्येत्। यमिति येषामवचनानां (यमितमासामनुच्चं वा) शब्दं कारयेत्। लोहितकुक्कुटरक्तं सप्तरात्रं रक्तशाल्यन्नमनुपहतं भुञ्जीनं(त) दौहृदि(दे), सा ताम्रेण च वाससा परिदध्यात्, ताम्रे चास्याः शयनासने दद्यात्, रक्तवृषभमर्द(जं) वास्या दर्शयेत्। एवं श्यामं लोहिताक्षं पुत्रं जनयति॥
(भे० सं० शा० ८/४)

Scanned with CamScanner

महर्षि चरक ने अन्यत्र स्पष्ट कर दिया है कि गर्भ की उत्पत्ति के समय स्त्री का मन जिस प्राणी की ओर आकृष्ट होता है वह उस प्राणी के सदृश सन्तान उत्पन्न करती है।[1] सूत्रस्थान में गर्भधारण के लिये मन की प्रसन्नता होना सर्वश्रेष्ठ माना है।[2]

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार स्त्री एवं पुरुष जिस प्रकार के आहार, आचार एवं चेष्टा से युक्त हो कर संभोग करते हैं उसी भाँति का पुत्र भी उत्पन्न करते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने उपर्युक्त मत का ही अनुमोदन करते हुए संक्षेप में लिखा है कि स्त्री जिस प्रकार के पुत्र की कामना करती है उसी प्रकार के रूप, वर्ण एवं चरित्र (आचरण) वाले देशों का मन से चिंतन करे तथा उसी देशानुसार आहार, विहार, उपचार एवं परिच्छद का उसी विधि से प्रयोग करे। महर्षि चरक-सदृश इन्होंने भी गर्भधारण के लिए मन की प्रसन्नता को सर्वश्रेष्ठ माना है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी उपर्युक्त मत का सूत्र रूप में वर्णन किया है, कि स्त्री जिस प्रकार के पुत्र की इच्छा करे, उसी प्रकार के रूप एवं चरित्र वाले देशों का चिंतन करे एवं उन्हीं की भाँति आचार तथा परिच्छद का प्रयोग करे। परिच्छद से टीकाकार अरुणदत्त ने मनुष्य, गौ, अश्व, धन, धान्य, वस्त्र, अलङ्कार, रत्न, रथ, आयुध, गृह, उद्यान, वीणा, पणव (ढोल), गायन, शय्या एवं स्मरण आदि का ग्रहण किया है, अर्थात् स्त्री मानसिक रूप से तथा वातावरण की दृष्टि से उसी देश की परिस्थिति में रहे, जिस देश के वर्ण, संस्थान, प्रमाण एवं आकृति वाली सन्तान की इच्छा करती है या श्रद्धा, श्रुत, सत्य, आर्जव, मानवता, दान, दया, दाक्षिण्य आदि के अनुसार जिस प्रकार के स्वभाव की संतान चाहती है उस प्रकार का आचरण करे।[3]

The physician after eliciting the desire of woman about the type of child, should advise her to always think of those type of countries. The woman desirous of having a child resembling to the persons of any specific country should use diet, mode of life, behaviour and garments identical to the persons of that very country and also by the same methods as practised by them.

The born child emulates the characters of creature who comes in thoughts of the woman during coitus / fertilization. For achievement of conception happy mood is essential.

Suśruta opines that what-so-ever type of diet, behaviour and conduct is followed by the couple at the time of coitus, born child possesses similar characters.

Vāgbhata I and II agree with the above sayings. Aruṇadatta elaborates that with the word surroundings, the persons, cow, horses, money, grain, clothes, ornaments, jewels, chariot, weapons, abode, garden, lyre, drum, songs, bed, bed-sheets etc. all the things comming in contact should be taken or in other words environment and psychology of woman should be identical to the persons of the country, whose complexion, size, features etc. she wishes to be emulated by her child. She should practice similar behaviour in terms of faith, hearing, truth, honesty or straightforwardness, humanity, charity, compassion or mercy and politeness or courtesy as she wishes to be the nature of her child.

१. गर्भोपपत्तौ तु मनः स्त्रिया यं जन्तुं वृजेत्तत्सदृशं प्रसूते॥ (च० सं० शा० २/२५)

२. सौमनस्यं गर्भधारणानां ·····। (च० सं० सू० २५/४० एवं अ० सं० सू० १३/३)

३. रूपं वर्णसंस्थानप्रमाणाकृत्यादि। तथा चरितं-श्रद्धाश्रुतसत्यार्जवानृशंस्यदानदयादाक्षिण्यस्वभावादि। ····· परिच्छदोमनुजगवाश्वधनधान्यवस्त्रालङ्काररत्नरथायुधगृहोद्यानवीणापणवगायनशय्यास्तरणादिः। (अ० ह० शा० १/३१ की अरुण० टी०)

(ओ) पुत्रीय विधि के पालन से लाभ (Benefits of specific mode of life or putrīyavidhi)

एवं जाता रूपवन्तः सत्त्ववन्तश्चिरायुषः। भवन्त्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणो(णो)हिताः।
(सु० सं० शा० २/३४)

देवताब्रह्मणपराः शौचाचारहिते रताः। महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान्॥
(सु० सं० शा० ३/३५)

जातश्चैवं रूपवन्तौ महासत्त्वाश्चिरायुषः। ऋणान्मोचयितारः स्युः सुपुत्राः पुत्रिणां मताः॥७०॥
दैवताचारशौचादिरता सूते महागुणम्। धावत्येवं चाचरितं प्राग्जन्माभ्यासयोगतः॥७१॥
(अ० सं० शा० १/७० व ७१)

इस प्रकार से (रजःस्वलाचर्या-पालन, पुत्रीयविधि-पालन आदि से) उत्पन्न पुत्र रूपवान, सत्यवान, चिरायु, माता-पिता के ऋण का मोचन करने वाले सत्पुत्र होते हैं।

देवता एवं ब्राह्मण परायण, शुद्ध और हितकर आहार में रत (पति, पत्नी या व्यक्ति) महागुणवान पुत्र को एवं विपरीत (कर्मकर्ता) गुण-विहीन पुत्र को जन्म देते हैं।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी महर्षि सुश्रुत के सदृश ही रूपवान आदि पुत्र की उत्पत्ति का अक्षरशः समर्थन किया है एवं देवता तथा ब्राह्मण के स्थान पर केवल देवपरायणता का ही वर्णन किया है; साथ ही इन्होंने महागुणी पुत्रोत्पत्ति के लिये पूर्वजन्म-कर्म के फल को भी कारण-स्वरूप माना है।

By observing this specific mode of life (during menstruation and *putrīya yajña* etc. described in preceding pages) the born children are handsome, endowed with goodness, have long life, repay the debts of parents and are excellent; the couple respecting or worshiping deities and *brāhmaṇas*, observing chastity and using beneficial dietetics give birth to the child possessing all good qualities, while having opposite deeds deliver the child devoid of good qualities.

Vāgbhata I corroborating the views of Suśruta says further that besides specific mode of life the deeds of previous life also influence qualities of the child.

विमर्श (Comments)

पूर्वपृष्ठों में वर्णित गर्भ-प्राप्ति के लिए कर्त्तव्यों (अ से ऐ तक) का आधुनिक विज्ञान-दृष्ट्या स्पष्टीकरण कठिन है, फिर भी यह हो सकता है कि विशिष्ट खान, पान, आचार, विहार आदि का कुछ प्रभाव बालक के ऊपर पड़ता हो। ब्रह्मचर्य एवं पौष्टिक आहार-प्रयोग तथा पूर्वकर्म में शोधनादि के प्रयोग से शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ा हुआ प्रभाव प्रजोत्पादन-समर्थता को प्रभावित कर सकता है। यज्ञ-विधि, मन्त्र-प्रयोग आदि उस समय की सामाजिक व्यवस्था के परिचायक हैं। स्त्री एवं पुरुष की मानसिक स्थिति का गर्भोत्पादन में प्रभाव आधुनिक विज्ञान भी मानता है। यह संभव है कि लगातार एक ही वर्ण का प्रयोग होने से गर्भ के वर्ण आदि में भी कुछ प्रभाव पड़े, जो एक अनुसंधान का विषय है। उस काल में संभोग केवल प्रजोत्पादन के लिये ही वर्णित है, वासना-पूर्ति के लिये नहीं; जो कि नैसर्गिक परिवार-नियोजन की विधि का कार्य करता होगा, साथ ही यह उस काल के मनुष्यों की मानसिक दृढ़ता का भी परिचायक है।

Though it is difficult to explain the entire subject discussed under *a* to *ai*, however, hypothetically it is just possible that specific environment might influence characters of the child to certain extent. Celebacy, specific dietetics and cleansing measures might influence

Scanned with CamScanner

the reproductive capabilities. *Yajña* and *mantras* reflect the social customs and belief. Psychology of couple might influence the mental build up of the child. Continuous use of one particular colour may influence to certain extent complexion of the child, which is a subject of research. The coition was exclusively for reproduction, not for carnal pleasure. this shows the strong will-power of the persons and also a method of limiting the family.

❑

अध्याय ४

CHAPTER IV

गर्भ-विज्ञानीय अध्याय

(EMBRYOLOGY)

गर्भावक्रान्ति, गर्भ-वृद्धि एवं गर्भाङ्ग-विकृति तथा पुंसवन कर्म आदि (Descent of embryo, its development, teratologic abnormalities and puṃsawana karma etc.)

गर्भ की परिभाषा (Definition of garbha or embryo)

··· स गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोगमेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मनाऽऽत्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे।
····· यथा-सतामेव शुक्रशोणितजीवानां प्राक् संयोगाद्गर्भत्वं न भवति, तच्च संयोगाद्भवति॥
(च० सं० शा० ३/८)

शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति॥ (च० सं० शा० ४/५)
शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं गर्भ इत्युच्यते॥ (सु० सं० शा० ५/३)

वह जीव गर्भाशय में प्रवेश कर शुक्र एवं शोणित से संयुक्त हो, गर्भत्व को प्राप्त हो, स्वयं (आत्मा) को उत्पन्न करता है एवं गर्भ में आत्मा की संज्ञा ही रखता है। शुक्र, शोणित एवं जीव के संयोग के पूर्व उसे गर्भ नहीं कह सकते। इन सबके संयोग के बाद ही इसकी गर्भ संज्ञा होती है।

शुक्र, शोणित एवं जीव के कुक्षि (गर्भाशय) के अन्तर्गत संयोग को गर्भ की संज्ञा दी जाती है।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार गर्भाशय में स्थित, आत्मा, प्रकृति एवं विकारों से सम्मूर्च्छित शुक्र तथा शोणित को गर्भ कहा जाता है; एवं बढ़ता हुआ जब वह हस्त, पाद, जिह्वा, घ्राण, कर्ण एवं नितम्ब आदि अङ्गों से युक्त हो जाता है तब शरीर की संज्ञा प्राप्त करता है[1]।

महर्षि वाग्भट ने भी कुक्षि या गर्भशयान्तर्गत शुक्र एवं शोणित के साथ आत्मा या जीव तथा प्रकृति एवं अन्य विकारों के सम्मिश्रण से ही गर्भ की उत्पत्ति मानी है।[2]

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत के विचारों का अनुमोदन किया है।[3]

महर्षि हारीत ने देह को पञ्च तत्व, पञ्चेन्द्रिय, सप्त धातु तथा दश वायु से निर्मित बताया है, तथा वीर्य एवं रज से उत्पन्न शरीर को जीव, मन एवं आकाश से युक्त, त्रिगुणात्मक माना है, एवं लिखा है कि शुक्र एवं शोणित से निर्मित

१. एवं विवर्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितम्बादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा शरीरमिति संज्ञां लभते। (सु० सं० शा० ५/३)

२. अ० सं० शा० २/३, अ० ह० शा० १/१ (पृष्ठ १०६)

३. गर्भाशयगतं शुक्रमार्तवं जीवसंज्ञकः। प्रकृतिः सविकारा च तत्सर्वं गर्भसंज्ञकम्॥
कालेन विर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्गसंयुतः। भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/६३,६४)

Scanned with CamScanner

यह शरीर दोष का पात्र अर्थात् दोषों से दूषित होता है। हे श्रेष्ठ वैद्य! इस शरीर को पञ्चमहाभूतों से युक्त जानो।[1]

महर्षि शार्ङ्गधर ने भी शुद्ध शुक्र एवं शोणित के संयोग से गर्भ की उत्पत्ति का वर्णन किया है, यही गर्भ पैदा हो जाने पर "बाल" संज्ञा से कहा जाता है।[2]

The union of *śukra* (sperm), *ārtava* (ovum) and *ātmā* or *jīva* inside the *kukṣī* (uterus) is known as *grabha* (zygote, embryo or fetus). Besides *ātmā*, the association of *prakṛti* and *vikāras* is also essential; after development of arms, legs, tongue, nose, ears and hips etc. body-parts, it is termed *śarīra*. Hārīta defines that the body is composed of five *tatwas*, five *indrivas*, seven *dhātus* and ten *vāyus*. The body formed with combination of *vīrya* (sperms) and *raja* (ovum) is *trguṇātmaka* due to influence of *jīva*, *mana* and *ākāśa*. This *pāñcabhautika* body is vulnerable for being vitiated by *doṣas*. Śārṅgadhara clarifies that this very fetus after its delivery is termed as *bāla* (child).

गर्भावक्रांति (Process of descent of various components in embryo)

पुरुषस्यानुपहतेरतसः स्त्रियाश्चाप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयाया यदा भवति संसर्गः ऋतुकाले, यदाचानयोस्तथायुक्ते संसर्गे शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाशयगतं जीवोऽवक्रामति सत्त्वसंप्रयोगात्तदा गर्भोऽभिनिर्वर्तते, स सात्म्यरसोपयोगादरोगोऽभिवर्धते सम्यगुपचारैश्चोपचर्यमाणः, ततः प्राप्तकालः सर्वेन्द्रियोपपन्नः परिपूर्णशरीरो बलवर्णसत्वसंहनन-संपदुपेतः सुखेन जायते समुदादेषां भावानां–मातृजश्चायं गर्भः पितृजश्चात्मजश्च सात्म्यजश्च रसजश्च, अस्ति च खलु सत्त्वमौपपादुकमिति होवान भगवानात्रेयः ॥ (च० सं० शा० ३/३)

तया सह तथाभूतया यदा पुमानव्यापन्नबीजो मिश्रीभावं गच्छति, तदा तस्य हर्षोदीरितः परः शरीरधात्वात्मा शुक्रभूतोऽङ्गादङ्गात् संभवति। स तथा हर्षभूतेनात्मनोदीरितश्चाधिष्ठितश्च बीजरूपो धातुः पुरुषशरीरादभिनिष्पत्त्योचितेन पथा गर्भाशयमनुप्रविश्यार्तवेनाभिसंसर्गमेति ॥ (च० सं० शा० ४/७)

तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद् वायुरुदीरयति, ततस्तेजोऽनिलसन्निपाताच्छुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन। ततोऽग्नीषोमसंयोगात् संसृज्यमानो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्वष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ (सु० सं० शा० ३/४)

गते पुराणे रजसि नवेऽवस्थिते शुद्धे गर्भस्याशये मार्गे च बीजात्मना शुक्रमविकृतमविकृतेन वायुना प्रेरितमन्यैश्च महाभूतैरनुगतमार्तवेनाभिमूर्च्छितमन्वक्षमेव रागादिक्लेशवशानुवर्तिना स्वकर्मचोदितेन मनोजवेन जीवेनाभिसंसृष्टं गर्भाशयमुपयाति। (अ० सं० शा० २/३)

शुद्धे शुक्रार्तवे सत्त्वः स्वकर्मक्लेशनोदितः। गर्भः सम्पद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥ १॥
तेजो यथाऽर्करश्मीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम्। नेन्धनं दृश्यते गच्छत्, सत्त्वौ गर्भाशयं तथा ॥ ३॥
(अ० हृ० शा० १/१ व ३)

१. पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम्। सप्तधातुगुणोपेतं दशवातात्मिकं विदुः॥ १॥
जीवो मनस्तथाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मकः। शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोषभाजनम्।
पञ्चभूतमयं चैतद्विज्ञेयं भिषजां वर॥ २॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/१ व २)

२. कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः। गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते॥ (शा० सं० पूर्व० ६/११)

जीवस्तु खलु भो सर्वगतत्वादीश्वरगुणसमन्वितः पूर्वशरीराच्चावक्रामति परशरीरं चोपक्रामति युगपत्, न कदाचिदपि बीजशोणितवाय्वाकाशादिमनोबुद्धिभिर्वियुक्तपूर्वः, सर्वगतत्वाच्च न कस्याञ्चिद्योनौ नोपपद्यते स्वकर्मफलानुभवादिति ॥ (का० सं० शा० ३/३)

जब अदुष्ट या शुद्ध शुक्र वाला पुरुष, शुद्ध योनि, गर्भाशय एवं शोणित वाली स्त्री के साथ ऋतुकाल में सम्भोग करता है, एवं इस प्रकार का संसर्ग होने पर जब शुक्र एवं शोणित का गर्भाशय के अन्दर संयोग होता है, तब क्रियाशील मन के साथ होने से जीवात्मा गर्भ में प्रविष्ट होती है। वह गर्भ (गर्भिणी द्वारा) सात्म्य रसों के प्रयोग से एवं अन्य बताए हुए उपचारों से (गर्भिणी-परिचर्या में वर्णित उपचारों से) उपचरित होता हुआ निरोग या स्वस्थ होकर बढ़ता है। इसके बाद प्राप्तकाल (प्रसवकाल) होने पर सर्वेन्द्रिय युक्त हो, पूर्ण शरीराङ्गों को प्राप्त कर, बल, वर्ण, सत्व एवं संहनन से युक्त होकर, मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज एवं रसज आदि भावों से युक्त, मन के नित्य सम्बन्ध के साथ उत्पन्न होता है; ऐसा भगवान आत्रेय ने कहा है।

लगभग इसी वर्णन की महर्षि चरक ने पुनरावृत्ति की है, कि जिस अनुपूर्वी क्रम से कुक्षि (गर्भाशय) में गर्भ अवतरित होता है, उसकी व्याख्या करेंगे। ऋतुमती स्त्री[1] के साथ जब शुद्ध बीज वाला पुरुष सम्भोग करता है तो हर्ष के कारण शरीर-धातु रूप[2] शुक्र अंगों-अंगों से उत्पन्न होता है एवं उस हर्ष के ही कारण (धातुओं में) अधिष्ठित शुक्र-धातु निःसरित हो बीज-रूप में पुरुष के शरीर से निकल कर उचित पथ (योनि-मार्ग) के द्वारा गर्भाशय में प्रविष्ट होकर आर्तव के साथ मिश्रित होता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि स्त्री-पुरुष संयोग के समय तेज (शरीर की ऊष्मा) वायु को उत्तेजित करता है[3], तब तेज और वायु के सन्निपात से क्षरित हुआ शुक्र, योनि को प्राप्त होकर अर्थात् गर्भाशय में पहुँच कर आर्तव से मिल जाता है, इस प्रकार अग्नि (आर्तव) और सोम (शुक्र) के संयोग से उत्पन्न गर्भ गर्भाशय में आश्रय करता है; तत्पश्चात क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुष, स्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता एवं वक्ता आदि पर्यायवाची नामों से जाना जाने वाला, अक्षय, अव्यय एवं अचिन्त्य होते हुए भी दैव के संयोग से भूत, सत्व, रज, तम, देव एवं असुर या अन्य भावों से युक्त, वायु के द्वारा प्रेरित हो (वह जीव) गर्भाशय में प्रविष्ट हो अवस्थान करता है।

अष्टांगसंग्रह-मतानुसार पुराण रज के समाप्त एवं नवीन रज के स्थित हो जाने तथा गर्भाशय एवं योनिमार्ग के शुद्ध हो जाने पर, अविकृत शुक्र, बीज रूप में अविकृत वायु के द्वारा प्रेरित हो, अन्य महाभूतों द्वारा अनुगत हो, आर्तव के साथ अभिमूर्च्छित होता है; तत्क्षण ही रागादि क्लेशों के वशीभूत, पूर्वजन्म के कर्मों से प्रेरित होकर मन के वेग के कारण जीव से मिश्रित हो (वह शुक्रार्तव) गर्भाशय में आता है।

अष्टांगहृदयकार ने भी शब्द-भेद से अष्टांगसंग्रह-सदृश ही वर्णन किया है कि स्वकर्म एवं क्लेश से प्रेरित सत्व शुद्ध शुक्र तथा आर्तव के संयोग में मिलकर गर्भ को उसी प्रकार सम्पादित करता है, जिस प्रकार युक्ति के वश से (मथ्य, मन्थन एवं मन्थनकर्ता) अरणि से अग्नि उत्पन्न होती है। जिस प्रकार स्फटिक मणि से इन्धन की ओर जाती हुई अग्नि एवं सूर्य से निकलती हुई किरणें दिखाई नहीं देतीं (केवल अग्नि एवं ताप या परिणाम ही दिखाई देता है), उसी प्रकार गर्भाशय में सत्व का प्रवेश दिखाई नहीं देता।

महर्षि काश्यप ने भी पूर्व वर्णित विचारों के सदृश ही पूर्वजन्म के महात्म्य को दर्शाते हुए लिखा है कि जीव सर्वगत

१. च० सं शा० ४/७ (पृष्ठ ७५)

२. "शरीरधात्वात्मा" शब्द से कुछ विद्वानों ने शुक्र स्वरूप आत्मा लिखा है पर टीकाकार चक्रपाणि ने 'शरीरधात्वात्मा' 'शरीरधातुरूपः' लिखा है जो ज्यादा युक्तिसंगत है।

३. उदीरयति उत्कटं करोति। (सु० सं० शा० ३/४ की डल्हण टीका।)

Scanned with CamScanner

होने से ईश्वर के गुणों से युक्त, पूर्व शरीर का त्याग एवं पर (अगले) शरीर में प्रवेश एक साथ ही करता है। अतः इसका (इस जीव का) बीज (शुक्र), शोणित, वायु आदि पञ्चमहाभूत, मन एवं बुद्धि आदि से कभी भी वियोग नहीं होता (गर्भ इन सभी के संयोग से ही बनता है)। यह जीव सर्वगत होने से जिस किसी भी योनि में न जाकर पूर्वजन्म-कर्मफल के अनुसार ही योनि को प्राप्त करता है।

आचार्य भावमिश्र ने गर्भावक्रान्ति के वर्णन में महर्षि सुश्रुत का ही अनुसरण किया है, साथ ही जीव के प्रवेश का वर्णन अष्टांगहृदय सदृश दिया है।[1]

महर्षि हारीत ने शरीर-स्थित धातुओं की प्रधानता का वर्णन करते हुए लिखा है कि मैथुन से गर्भ की उत्पत्ति होती है। सर्व प्रथम धातु बल, धातु बल से सत्व, सत्व से रज, रज से काम उत्पन्न होता है तथा काम से संगम होता है। यद्यपि स्त्रियों में रज बिना योग या प्रयत्न के ही दृष्टिगोचर होता है पर बिना योग या प्रयत्न (संभोग) के फल अर्थात गर्भ की स्थिति नहीं होती।[2] अन्यत्र शिष्यों के द्वारा किये गये इस प्रश्न "कि स्त्रियों में पुष्प (ऋतुस्राव) हो जाने पर वृक्षादि की तरह बिना संयोग के ही गर्भ क्यों नहीं होता ?" के उत्तर में स्पष्टीकरण दिया है, कि वृक्षों में निश्चल शिव एवं व्याप्त शक्ति अर्थात् पुरुष एवं स्त्री गुण साथ ही प्रवृत्त होते हैं, परन्तु स्त्रियाँ केवल रजोमय होती हैं, बीज पुरुष की इन्द्रिय में रहता है, अतः संयोग से ही गर्भ की उत्पत्ति होती है।[3]

महर्षि भेल ने संक्षेप में लिखा है कि स्त्री की योनि में आये हुये शुक्र को वायु ग्रहण कर लेती है, जो शुद्ध आर्तव से मिलकर स्त्री को गर्भवती कर देता है।[4]

महर्षि भेल ने पुनःश्च गर्भावक्रान्ति का विस्तृत वर्णन करते हुये कहा है, कि ऋतुकाल में ही गर्भाधान होता है। जिस प्रकार भली भाँति निर्मित क्षेत्र में डाला हुआ बीज यदि व्रीहि (धान) है तो धान्यत्व को, यव है तो यवत्व को प्राप्त होता है (अर्थात् बीज से पौधा उत्पन्न हो धान्य की उत्पत्ति करता है), उसी प्रकार अदुष्ट या स्वस्थ योनि में, ऋतुकाल में, इन्द्रिय (शिश्नेन्द्रिय) से त्यक्त (शुक्र या बीज) गर्भाशय में जाता है। यहाँ वह योनि के आवर्तों में ग्रहण किया जाता हुआ आगे

१. कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणित शुक्रजः। गर्भः सञ्जायते नार्याः सजातो बाल उच्यते ॥ २७॥
ऋतौ स्त्रीपुंसयोर्योगे मकरध्वजवेगतः। मेढ्रयोन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्माऽनिलाहतः ॥ २८॥
पुंसः सर्वशरीरस्थं रेतो द्रावयतेऽथ तत्। वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यङ्गनाभगे ॥ २९॥
तत् संश्रुत्य व्यानमुखं याति गर्भाशयं प्रति। तत्र शुक्रवदायातेनार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३०॥
शुक्रार्त्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते। जीवस्तदैव विशति युतः शुक्रार्त्तवान्तरः ॥ ३३॥
सूर्याशोः सूर्यमणित उभयस्माद्युताद्यथा। वह्निः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् ॥ ३४॥
आत्माऽनादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते। चिदानन्दैकरूपोऽयं मनसाऽपि न गम्यते ॥ ३५॥
एवं भूतोऽपि जगतो भावितो बलवत्तया। अविद्यास्वीकृते कर्मवशो गर्भे विशत्यसौ ॥ ३६॥
स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ। श्रोता वक्ता च कर्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यापि ॥ ३७॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

२. तस्माच्च मैथुनात्सम्यगायते गर्भसम्भवः ॥ ६॥
आदौ धातुबलं तस्मात्सत्त्वं तस्माद्रजो विदुः। रजसा जायते कामः कामात्सुरतसङ्गमः ॥ ७॥
दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक !॥ ९॥ दृश्यते न विना योगात्फलं स्त्रीणां तु पुत्रक !॥ १०॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/६, ७, ९, १०)

३. संयोगेन बिना प्राज्ञ! कथं गर्भो न जायते। संयोगेन बिना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥ ११॥
स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्तिमयं विदुः ॥ १४॥ निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तशक्तिर्महामते ॥ १५॥
स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाढ्यमिन्द्रियं नरे। तस्मात्संयोगतः पुत्र! जायते गर्भसम्भवः ॥ १६॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/११, १४ से १६)

४. ग्रहाति वायुर्यस्यां च योनौ शुक्रमुपागतः(म्)। बिभर्ति गर्भि(र्भि)णी गर्भं शुद्धार्तवसमन्वितः॥ (भे० सं० शा० ३/६)

दौड़ता है या जाता है (योनि-गर्भाशय-डिम्बप्रणाली इस प्रकार शुक्राणु आगे जाते हैं)। तत्पश्चात् शुक्र एवं शोणित गर्भाशय में क्षीर सदृश अस्थिर रहते हैं (अर्थात् प्रारम्भ में शुक्र एवं शोणित द्रव के समान गर्भाशय एवं डिम्बप्रणाली में अस्थिर रूप में रहते हैं)। (इस शुक्र के) निषेक के पश्चात् (आर्तव के साथ) एकत्व को प्राप्त होकर, उदुम्बर-सदृश अनेकोत्पादक (बिना पुष्प के दृष्टिगोचर हुए ही उदुम्बर के फल की वृद्धि होती है, उसी भाँति बिना अंग-प्रत्यंग-विभाग के दृष्टिगोचर हुये ही शरीर के अनेकों अंगों के उत्पादक) शरीर की वृद्धि होती है।[1]

There is some difference in the events described by various authors. Caraka says that when a man copulates with a *rtumatī* woman (described earlier), then due to excitement and pleasure the *dhāturūpa śukra* situated in various body parts is excreted. This excreted *śukra-dhātu* coming out of male's body, in the form of *bīja* (seed or sperms) enters the uterus through proper passage (vagina) and gets mixed with *ārtava* or *śoṇita* (ovum). At this very time, due to association of *satwa* or *mana*, the *jīvātmā* comes there in the *garbha* (zygote). Due to constant use of congenial diet by the pregnant woman, this *garbha* (fetus) grows normally and gets delivered at appropriate time with all *indriyas* (sensory and motor organs), complete body parts, *bala* (energy), *varṇa* (complexion), *satwa* (endurance) and *saṃhanana* (compactness) alongwith *mātṛja* (maternal), *pitṛja* (paternal), *ātmaja*, *sātmyaja* and *rasaja bhāwas* (physical and psychological components) having constant association of *mana*.

Suśruta opines that *teja* or heat generated at the time of coitus activates *vāyu*, then the *śukra* excreted due to the action of both *vāyu* and *teja* reaches uterus, gets mixed with *ārtava*, thus formed zygote with the union of *agni (ārtava)* and *soma (śukra)* stays in uterus. Then the *ātmā* or *jīva*, known by synonyms of *kṣetrajña*, *vedayitā*, *spraṣṭā*, *ghrātā*, *draṣṭā*, *śrotā*, *rasayitā*, *puruṣa*, *sraṣṭā*, *gantā*, *sākṣī*, *dhātā* and *vaktā* etc., inspite of being *akṣaya* (imperishable), *avyaya* (eternal), *acintya* (inconceivable) but due to effect of *daiva* (destiny), associated with *bhūta (pañcamahābhūtas)*, *satwa*, *raja*, *tama*, *daiva and asura* etc. *bhāvas* and impelled by *vāyu* reaches the uterus and stays there.

Vāgbhaṭa I corroborating the views of Caraka explains that due to effect of *rāga* (love or passion) etc. and impelled by deeds of previous life the *mana* propells *jīva* to come to the uterus.

Vāgbhaṭa II explaining this very point says further that as fire is generated from the wood by contrivance, similarly *satwa* with the association of *śukra* and *ārtava* forms zygote. As the rays emanating from sun or fire being emitted from quartz (*sphaṭikamaṇi*) and reaching wood are not actually seen, but are accepted because of their results i. e. heat of the sun and fire in the wood, similarly entry of *satwa* in the uterus is not seen (but is accepted due to its effect).

Kāśyapa writes that the omnipresent *jīva* having qualities of god simultaneously re-

१. ऋतौ च गर्भोऽप(व)तिष्ठते। तद्यथा-सुकृष्टक्षेत्रे बीजं प्रक्षिप्तं तत्र (यदि) व्रीहिः व्रीहित्वाय कल्पते, यवो यवत्वायः एवमे(मि)ग्रि(न्द्रि)यमृतुकाले विसृष्टमा(म)दुष्टायां योनौ गर्भाशयमुपगच्छति। तद्यथा(ऽऽ)य(प) आवर्तगृहीतः प्रतीपं प्रतिधावन्ति। तद्वत् शुक्लशोणितं गर्भाशये अस्ति(स्थि)कं(रं) क्षीरमिव। तं चा (तच्चाऽऽ)नेक(ज)नकमिवौदुम्बरेण (रंसु)निषिक्तमेकत्वमापन्नमृद्धिं लभते॥ (भे० सं० शा० ८/२) (इस गद्य की भाषा स्पष्ट नहीं है।)

Scanned with CamScanner

signs from former body and enters into next one, thus, it is never dissociated from *bīja, śoṇita, vāyu* etc. *mahābhūtas, mana* and *buddhi*. The *jīva* due to its omnipresence does not enter randomly in either of the species, but the entry in specific species is guided by the deeds of previous life.

Bhāvamiśra has summed up the opinions of Suśruta and Vāgbhaṭa II.

Hārīta explains that from energy of *dhātu, satwa* is activated, from *satwa* the *rajas;* from *rajas* comes longing which results in copulation. Though in female *raja* (menstruation) is evident without efforts, however, conception can not be achieved without specific efforts. Answering the question of his pupils that why woman inspite of possessing *puṣpa* (flower i.e. ovum) just like trees does not conceive without copulation (while in trees fruits are formed from flowers without copulation), he says that in trees immobile *śiva* (male components) and *vyāpta śakti* (permeated energy) or male and female both components are present, but the female possesses only *raja*, the *bīja* resides in male organ, hence only after union of both conception occurs.

Bhela opines that *vāyu* carrys *śukra* deposited in vagina, which with association of *ārtava* makes *garbha*. Further he elaborates that as a seed of paddy or barley sown in well prepared field will nicely grow as paddy or barley, similarly healthy *śukra* deposited in healthy vagina reaches uterus by running through *āvartas* of *yoni* (vagina-uterus-fallopian tubes). For some time *śukra* and *śoṇita* remain unstable in uterus like (liquid) milk, afterwards (both these *śukra* and *ārtava*) getting mixed together give rise to all body parts just as seen in wild fig (Ficus glomerata, in this plant flower is not explicit, but gives rise to all components of fruit).

गर्भ के मुख्य षड्घटक या षड्धातु (Six major components or ṣaḍdhātu of fetus)

गर्भस्तु खल्वन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः। एवमनया युक्त्या पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मको गर्भश्चेतनाधिष्ठानभूतः, स ह्यस्य षष्ठो धातुरुक्तः॥ (च० सं० शा० ४/६)

महागुणमयेभ्यश्च खपवनतेजोजलभूम्याख्येभ्यो महाभूतेभ्यश्चेतनाधिष्ठितेभ्योऽभिनिर्वृत्तिः॥ (अ० सं० शा०५/४)

गर्भ आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी का विकार तथा चेतना का आश्रय स्थान है अर्थात् इस युक्ति से पञ्चमहाभूतों के विकारों का समुदायात्मक यह गर्भ चेतना का अधिष्ठानभूत होता है। यह चेतना गर्भ की छठी धातु (पाँच धातुयें = पञ्चमहाभूत एवं छठी धातु आत्मा) है। अन्यत्र भी महर्षि चरक ने गर्भ को षड्धात्वात्मक वर्णित किया है।[1]

अष्टांगसंग्रहकार के मतानुसार चेतना (आत्मा) के अधिष्ठान (आश्रय) में महागुणों (सत्व, रज, तम) से युक्त आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी महाभूत शरीर का निर्माण करते हैं अन्यत्र ओज को गर्भ का सर्वप्रथम सार या गर्भ की प्रथम धातु का प्रसाद-भाग माना है।[2]

आचार्य भावमिश्र ने गर्भोत्पादक, रक्षक एवं वर्धक पदार्थों में उपर्युक्त षड्धातु के ही साथ रज, तम एवं पंचेन्द्रियों आदि का भी उल्लेख किया है।[3]

१. षड्धातुसंयोगाद्भर्भाणां सम्भवस्तथा। (च० सं० सू० ११/२३)

२. यत्सारमादौ गर्भस्य यत्तद्धर्परसाद्रसः॥ (अ० सं० सू० १९/३५)

३. अग्नीषोमौ मही वायुर्नभः सत्त्वं रजस्तमः। पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३२०)

The embryo is product of *akāśa, vāyu, agni, jala* and *pṛthvi* etc. five *mahābhūtas* and seat of *cetanā (ātmā)*, thus *cetanā* is sixth *dhātu*. Vāgbhaṭa I mentions the association of *mahāguṇas (satwa, rajas* and *tamas)* alongwith above components of embryo, at other place the *ojas* is said to be essence of *garbha* or essence part of first *dhātu* of *garbha*.

मन, आत्मा एवं पञ्चमहाभूतों का गर्भ में अवतरण क्रम (The sequence of descent of mana, ātmā and pañcamahābhūtas in embryo)

तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्तते, स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्ता मन्ता वेदिता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्रधानमव्यक्तं जीवो ज्ञः पुद्गलश्चेतनावान् विभुर्भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। स गुणोपादानकालेऽन्तरिक्षं पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते, यथा– प्रलयात्यये सिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूत आत्मा सत्त्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजति, ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून्वाय्वादिकांश्चतुरः; तथा देहग्रहणेऽपि प्रवर्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते, ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः। सर्वमपि तु खल्वेतद्गुणोपादानमणुना कालेन भवति॥ (च० सं० शा० ४/८)

सर्व प्रथम सत्त्व का आधार लेकर चेतना धातु गुण ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है। यह आत्मा ही हेतु, कारण, निमित्त, अक्षर, कर्ता, मन्ता, वेदिता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुष, प्रभव, अव्यय, नित्य, गुणी, ग्रहण, प्रधान, अव्यक्त, जीव, ज्ञ, पुद्गल, चेतनावान, विभु, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा एवं अन्तरात्मा आदि कहा जाता है। यह आत्मा गुण ग्रहण करने के समय सर्वप्रथम आकाश का निर्माण करता है। जिस प्रकार कि प्रलय के बाद भौतिक सृष्टि की इच्छा रखने वाला ब्रह्मा सत्त्व रूपी उपादान से युक्त आकाश की ही उत्पत्ति करता है, तत्पश्चात् क्रमशः व्यक्ततर गुण वाले वायु आदि चारो महाभूतों की सृष्टि करता है, उसी प्रकार शरीर के पूर्वरूप गर्भ[1] के स्वरूप-ग्रहण के समय भी आत्मा सर्व प्रथम आकाश ही ग्रहण करता है, तत्पश्चात् क्रम से व्यक्तर गुण वाले वायु आदि चारो धातुओं को ग्रहण करता है। इन सभी गुणों (महाभूतों) का उपादान या ग्रहण बहुत ही अल्प काल में हो जाता है।

आत्मा के देहान्तर-गमन का वर्णन करते हुए लिखा है कि आत्मा चार (आकाश को छोड़कर) सूक्ष्म महाभूतों के साथ मन की गति से एक देह (मृत देह) को छोड़कर, पूर्वकृत कर्मों के अनुसार नवीन देह में प्रविष्ट होता है जो दिव्य दृष्टि से ही देखा जा सकता है; यह आत्मा सर्वत्र व्यापक, सभी शरीरों को धारण करने वाला, सभी कर्म करने वाला (विश्वकर्मा), सभी आकृति धारण करने वाला (विश्वरूप), चेतना धातु, अतीन्द्रिय, (इन्द्रियों एवं बुद्धि आदि से) सर्वदा युक्त या बँधा हुआ तथा (राग-दोष से) घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहता है।[2]

महर्षि हारीत ने लिखा है कि इस पञ्चभूतात्मक शरीर में सर्व प्रथम शून्य या आकाश होता है, आकाश से वायु, वायु से प्राण होता है। प्राण सम्पूर्ण जीवों में होने वाला सत्व गुण है। आकाश से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से तेज एवं तेज से तम की उत्पत्ति होती है।[3]

१. देह ग्रहणेऽपीति गर्भस्वरूपग्रहणेऽपि। (च० सं० शा० ४/८ की चक्र० टी०)

२. भूतैश्चतुर्भिः सहितः सूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात्। कर्मात्मकत्वात्र तु तस्य दृश्यं दिव्यं विना दर्शनमस्ति रूपम्॥
स सर्वगः सर्वशरीर भृच्च स विश्वकर्मा स च विश्वरूपः। स चेतनाधातुरतीन्द्रियश्च स नित्यभुक् सानुशयः स एव॥
(च० सं० शा० २/३१, ३२)

३. पञ्चभूतमयं देहमाकाशं शून्यमेव च। शून्याद्वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते॥
प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्त्वे प्रतिष्ठितः॥ ४८॥
आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा। तस्यास्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः॥ ४९॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/४८, ४९)

Scanned with CamScanner

With the help or companionship of *mana*, the *cetanā dhātu* proceeds for taking hold of *guṇa (satwa, raja* and *tama)*. This very *cetanā* is called as *hetu, kāraṇa, nimitta, akṣara, kartā, mantā, veditā, boddhā, draṣṭā, dhātā, brahmā, viśwakarmā, viśwarūpa, puruṣa, prabhava, avyaya, nitya, guṇī, grahaṇa, pradhāna, avyakta, jīva, jña, pudgala, cetanāvāna, vibhu, bhūtātmā, indriyātmā* and *antarātmā*. This *ātmā* at the time of beholding of *guṇas* first of all creates *ākāśa*, in the same way as after complete annihilation of entire universe, the god of creation *brahmā* first of all created *ākāśa* with the assistance of *satwa*, followed by gradual creation of more perceptible *bhūtas* as *vāyu* etc. Similarly in the formation of embryo also first acquisition of *ākāśa* followed by more perceptible other four *bhūtas* as *vāyu* etc. occures. In acquiring all the *mahābhūtas* time taken is very negligible.

Describing transmigration of self, Caraka writes that the self alongwith four subtle *bhūtas* and with the speed of mind transmigrates from one body to the other on the basis of past deeds. it can not be seen without divine visual sense. The self is all pervasive, sustains all bodies, performs all actions, takes all forms; is the source of consciousness, transcends all senses, is ever united and closely attached.

Hārīta opines that from *ākāśa* comes *vāyu*, from *vāyu* is *prāṇa* which is *satwaguṇa* of all the living beings. From *ākāśa* comes *jala*, from *jala* the *pṛthvī*, from *pṛthvī* is *teja* and from *teja* is *tama*.

गर्भ में पञ्चमहाभूतों के विभिन्न स्त्रोत (Sources of pañcamahābhūtas in fetus)

गर्भस्य चत्वारि चतुर्विधानि भूतानि मातापितृसंभवानि। आहारजान्यात्मकृतानि चैव सर्वस्य सर्वाणि भवन्ति देहे॥ २६॥
तेषां विशेषाद्बलवन्ति यानि भवन्ति मातापितृकर्मजानि। तानि व्यवस्येत् सदृशत्वहेतुं सत्त्वं यथानूकमपि व्यवस्येत् ॥ २७॥
रसात्ममातापितृसंभवानि भूतानि विद्याद्दशधद् च देहे। चत्वारि तत्रात्मनि संश्रितानि स्थितस्तथाऽऽत्मा च चतुर्षु तेषु ॥ ३३॥
भूतानि मातापितृसंभवानि रजश्च शुक्रं च वदन्ति गर्भे। आप्याय्यते शुक्रमसृक् च भूतैर्यैस्तानि भूतानि रसोद्भवानि ॥ ३४॥
भूतानि चत्वारि तु कर्मजानि यान्यात्मलीनानि विशन्ति गर्भम्। स बीजधर्मा ह्यपरापराणि देहान्तराण्यात्मनि याति याति॥ ३५॥
रूपाद्धि रूपप्रभवः प्रसिद्धः कर्मात्मकानां मनसो मनस्तः। भवन्ति ये त्वाकृतिबुद्धिभेदा रजस्तमस्तत्र च कर्म हेतुः ॥ ३६॥
(च० सं० शा० २)

बीजात्मकैर्महाभूतैः सूक्ष्मैः सत्त्वानुगैश्च सः। मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ विवर्धते ॥ (अ० हृ० शा० १/२)

गर्भ के शरीर की उत्पत्ति में चार स्त्रोतों अर्थात् माता (रक्तगत[1]), पिता (शुक्रगत[1]), आहाररस (शुक्रशोणित संयोग के पश्चात माता के आहार रस से गए हुए[1]), एवं आत्मा (पूर्वजन्म के कर्म के वशीभूत हो आत्मा से प्रतिबद्ध[1]) के द्वारा चार चार (वायु, तेज, जल, पृथ्वी[1]) महाभूत आकर सभी के सभी भाग लेते हैं। इनमें से माता, पिता एवं कर्मज कारणों में से जिस कारण की विशेषरूप से प्रधानता होती है, उस प्रधान रूप के महाभूतों के सदृश एवं मन में सत्वादि (सत्व, रज, तम) जिस गुण की प्रधानता होती है, एवं वह मन पूर्वजन्म की जिस देह को छोड़कर आया होता है, उसके सदृश संतान की उत्पत्ति होती है; अर्थात् यदि वह देव शरीर को त्याग कर आया होता है तो देव सत्त्व, यदि पशु शरीर को

१. चत्वारीति निर्विशेषमाकाशं वर्जयित्वा।·····मातृसम्भवानि रक्तगतानि, पितृसम्भवानि शुक्रगतानि, आहारजानि तु शुक्रशोणितसंयोगोत्तरकालं मातुराहारसंभूतरसजानि, आत्मजानि तु आत्मप्रतिबद्धकर्मवशभूतानि ज्ञेयानि।
(च० सं० शा० २/२६ की चक्र० टी०)

त्याग कर आया होता है तो पशु सत्त्व आदि होता है। साथ ही कर्म एवं जाति का भी सम्बन्ध रहता है, अर्थात् कर्म के कारण भी मन राजस, तामस या सात्विक आदि होता है तथा कर्म के वशीभूत होकर ही शरीर मनुष्यादि जाति के अनुरूप होता है।[1]

शरीर में रसज, आत्मज, मातृज, एवं पितृज भेद से १६ महाभूत विद्यमान रहते हैं (चार-चार महाभूतों के चार स्त्रोत)। आत्मज चारो महाभूत आत्मा में आश्रित रहते हैं एवं आत्मा उनमें आश्रित रहती है। गर्भ में मातृज एवं पितृज महाभूत रज और शुक्र कहे जाते हैं। रज और शुक्र की पञ्चमहाभूतों से वृद्धि होती है एवं इन पञ्चमहाभूतों की रस से पुष्टि होती है।

जो आत्मा में लीन (आश्रित) होकर चार महाभूत गर्भ में प्रवेश करते हैं वे कर्मज होते हैं। वह बीजधर्मा (गर्भोत्पत्ति के लिए या अंकुर के लिए बीज स्वरूप[2]) आत्मा मन के साथ (कर्म के अनुसार) शुभ (देवादि[1]) एवं अशुभ (कृमि आदि[2]) देहान्तर में गमन करती है।

आत्मा के साथ आने वाले महाभूतों का कर्म के कारण जो स्वरूप होता है, उसी प्रकार के भौतिक शरीर के रूप की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार पूर्व जन्म में जिस प्रकार का मन रहा है, कर्म से प्रभावित हो इस जन्म में उसी प्रकार के मन की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जो आकृति एवं बुद्धि में अन्तर होता है उसके कारण रज, तम एवं कर्म हैं।

अष्टांगहृदयकार के मत से बीज (शुक्र, रज) के आधारित महाभूत, सत्त्वानुगत (आत्माश्रित) सूक्ष्म महाभूत एवं माता के आहार-रसज महाभूत सभी मिलकर क्रम से कुक्षि में गर्भ की वृद्धि करते हैं।

Four *mahābhūtas (vāyu, teja, jala* and *pṛthvī)* comming from four sources i. e. mother (through *śoṇita* or ovum), father (through *śukra* or sperms), *āhāra-rasa* (through the *rasa* derived from maternal diet for supplying nourishment to the embryo) and *ātmā* (encircling *ātmā* due to effect of the deeds of previous life) participate in the formation of embryo. The born child reflects the *bhautika* (physical) characteristics of maternal, paternal or *ātmaja* etc. factors depending upon their relative predominance; and others (psychological) depending upon the preponderance of *satwa* etc. *(satwa, raja* and *tama)* in *mana;* besides, the *mana* is also influenced by its left over previous abode, such as comming after leaving the body of *devas* or animals etc. it will have some of their characters *(daiva* or *paśu satwa* etc.). The deeds and species are also related, or in other words due to influence of deeds it will be *sātwika, rājas* and *tāmas* etc. and it is also due to deeds that it comes to human or other species and acquires similar characters.

विमर्श (Comments)

चरकसंहिता में सांख्य दर्शन का अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। पुनर्जन्म एवं इस जन्म में होने वाले शारीरिक एवं

१. अनूकं प्राक्तनाऽव्यवहिता देहजातिः, तेन यथानूकमिति यो देवशरीरादव्यवधानेनागत्य भवति स देव सत्वो भवति, यः पशुशरीरादेति स पशुसत्वो भवतीत्यादि। अपिशब्दात् कर्मसंबन्धं जातिसंबन्धं च दर्शयति, तेन कर्मवशादपि सत्त्वं राजसं तामसं, सात्त्विकं वा भवति, तथा मानुषादिजात्यनुरूपं च भवति। (च० सं० शा० २/२७ की चक्र० टी०)

२. स बीजधर्मेत्यादि। स आत्मलीनभूतसन्तानो बीजधर्मा बीजस्वरूपः, बीजं हि स्वसदृशमङ्कुरं करोति, तेन अयमप्यात्मलीनो भूतसन्तानः सदृशं देहरूपं भूतान्तरसङ्गं कुर्वन् बीजधर्मा भवति। ····· आत्मनीति मनोयुक्तात्मनि।····· पराणि श्रेष्ठानि देवादिशरीराणि, अपराणि अश्रेष्ठानि क्रिम्यादिशरीराणीति योजनीयम्। (च० सं० शा० २/३५ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

मानसिक वैभिन्य को, साथ ही भौतिक तत्व अर्थात् शुक्र एवं रज से अधिक आत्मा से सम्बन्धित मन या पूर्वजन्म-कर्म के फल का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए ही उपर्युक्त वर्णन दिया गया है। उदाहरणार्थ यदि गर्भ में मातृज महाभूतों एवं दैव-शरीर को छोड़कर आए हुए मन में सत्व गुण का प्राधान्य है तो उत्पन्न बालक मातृ-सदृश एवं दैव-सत्व होगा (श्लोक २६, २७ के आधार पर)। परन्तु अन्त में आचार्य ने पुनः पूर्वजन्म के कर्म की प्रधानता को दर्शाने के लिए सांख्य के मत का अनुसरण करते हुए आत्मा में स्थित तथा कर्म से प्रभावित सूक्ष्म महाभूतों को ही भौतिक स्वरूप का एवं पूर्वजन्म के कर्म-फलानुसार सत्वादि की मन में प्रधानता के आधार पर मानसिक स्थिति का निर्माण माना है, अर्थात् यद्यपि शरीर के निर्माण में रसज, शुक्रज, रक्तज एवं कर्मज चारों ही प्रकार के महाभूत भाग लेते हैं पर आकृति एवं बुद्धि आदि के निर्माण में आत्म-कर्मज महाभूत एवं मन की ही प्रधानता रहती है।

The authors are influenced by *sāmkhya* philosophy where in maximum emphasis is laid on the influence of the deeds of previous life through *mahābhūtas* comming alongwith *ātmā* and *mana*. The *ākāśa* being vacuum and omnipresent does not come with any object. it is automatically incorporated in zygote.

गर्भ के पाञ्चभौतिक अङ्गावयव (Bhautika components of fetus)

(१) आकाशीय अङ्गावयव (Components derived from ākāśa)

आकाशात्मकं शब्दः श्रोत्रं लाघवं सौक्ष्म्यं विवेकश्च। (च० सं० शा० ४/१२)
तत्राकाशजानि श्रोत्रं शब्दः स्रोतांसि विविक्तता। च। (अ० सं० शा० ५/९)
तत्र खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो विविक्तता। (अ० ह० शा० ३/३)
शब्दश्च श्रोत्रं च लाघवं च सौक्ष्म्यं च विवेकश्च मुखं च कण्ठश्च कोष्ठं चाकाशात्मकानि भवन्ति॥
(का० सं० शा०३/४)

महर्षि चरक के मत से आकाशात्मक भाव शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय, लाघव, सौक्ष्म्य एवं विवेक (विच्छेद)[1] हैं। अन्यत्र आकाशीय भावों में महान् तथा अणु स्रोतों का भी समावेश किया है।[2]

अष्टांगसंग्रहकार के मत से श्रोत्रेन्द्रिय, शब्द, शरीर के सभी स्रोतस् एवं विविक्तता (अङ्गों-प्रत्यङ्गों का विभाग) आकाशज हैं।

अष्टांगहृदयकार ने अष्टांगसंग्रह सदृश ही वर्णन दिया है, पर स्रोतस् को आकाशज नहीं माना अर्थात् इनके मत से श्रोत्रेन्द्रिय, शब्द एवं विविक्तता ही आकाशज है; परन्तु टीकाकार अरुणदत्त ने आकाश को सत्व-गुण-प्रधान मानकर सभी शारीरिक छिद्रों की उत्पत्ति में पंचमहाभूतों के साथ आकाश का ही प्राधान्य माना है, एवं उदाहरण-स्वरूप घट का निर्माण प्रस्तुत किया है, जिसमें मृत्तिका, दण्ड, चक्र, सलिल, सूत्र आदि सभी कारणभूत होते हुये भी मृत्तिका का ही प्राधान्य रहता है उसी प्रकार छिद्रों के निर्माण में आकाश का प्राधान्य है। 'विविक्तता' का स्पष्टीकरण भी रिक्तता शब्द से दिया है।[3]

१. विवेको विच्छेदः। (च० सं शा० ४/१२ की चक्र० टी०)

२. यद्विविक्तं यदुच्यते महान्ति चाणूनि स्रोतांसि तदान्तरीक्षं शब्दः श्रोत्रं च॥ (च० सं० शा० ७/१६)

३. खात् आकाशात् सत्व बहुलात् , खानि-छिद्राणि, 'भवन्ति' इति शेषः ····· विविक्तता-शून्यता रिक्तता, खादेव छिद्रविशेषः। यद्यपि छिद्रादिषु सर्वभूतानामेव व्यापारः, तथाऽप्याकाशस्यैवात्र विशिष्टं कारणत्वं। यथा-घटादौ मृद्दण्डचक्रसलिलसूत्रादिकारणसमुदायनिष्पन्नेऽपि मृद एव विशिष्टकारणत्वम्॥ (अ० ह० शा० ३/३ की अरुण० टी०)

महर्षि काश्यप ने कतिपय शारीरिक अंगों का भी परिगणन किया है, इनके मतानुसार शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय, लाघव, सौक्ष्म्य, विवेक, मुख, कण्ठ एवं कोष्ठ आकाशात्मक हैं।

महर्षि हारीत ने मन, बुद्धि, निद्रा, आलस्य तथा मद की आकाश से उत्पत्ति वर्णित की है।[1]

The opinion of autors differs slightly regarding the different components of the body derived from *ākāśa*. All these are given in tabular form.

Components	*CS*	*AS*	*AH*	*KS*
1. *Śabda* (sound)	+	+	+	+
2. *Śrotrendriya* (auditory system)	+	+	+	+
3. *Lāghava* (lightness)	+	—	—	+
4. *Saukṣmya* (minuteness)	+	—	—	+
5. *Viveka* (division)	+	+	+	+
6. *Srotasas* (channels)	+ (big and minute)	+	—	—
7. *Chidras* (orifices)	—	—	+ (Aruṇadatta)	—

Besides above mentioned body parts Kāśyapa has included *mukha* (oral cavity), *kaṇṭha* (throat) and *koṣṭha* (abdominal cavity) and Hārīta has enumerated *mana* (psyche), *buddhi* (intelligence), *nidrā* (sleep), *ālasya* (lethargy) and *mada* (pride).

(२) वायवीय अङ्गावयव (Components derived from vāyu)

वाय्वात्मकं स्पर्शः स्पर्शनं रौक्ष्यं प्रेरणं धातुव्यूहनं चेष्टाश्च शारीर्यः। (च० सं० शा० ४/१२)
वायवीयानि स्पर्शनं स्पर्शः, प्रश्वासोच्छ्वासादिपरिस्पन्दनानि लाघवं च। (अ० सं० शा० ५/१०)
वातात्स्पर्शत्वमुच्छ्वासा ·····। (अ० ह० शा० ३/३)
स्पर्शश्च स्पर्शनं च रौक्ष्यं प्रेरणं च धातुव्यूहनं च प्राणश्चापानश्च शरीरचेष्टा च वाय्वात्मकानि भवन्ति॥
(का० सं० शा० ३/४)

स्पर्श, स्पर्शनेन्द्रिय, रुक्षता, प्रेरण, धातुव्यूहन[2] (धातु-रचना या धातु-वहन) एवं शरीर की सभी चेष्टायें वायवीय हैं। अन्यत्र उच्छ्वास, निश्वास, उन्मेष, निमेष, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन एवं धारण आदि क्रियाओं का भी समावेश है।[3]

अष्टंगसंग्रहकार के मत से स्पर्शनेन्द्रिय, स्पर्श, प्रश्वास, उच्छ्वास, परिस्पन्दन (शरीर की चेष्टाएं) एवं लाघव वायवीय हैं।

१. मनोबुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च। शून्यात्पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/४४, ४५)

२. धातुव्यूहनं धातुरचना धातुवहनं च। (च० सं० शा० ४/१२ की चक्र० टी०)

३. यदुच्छ्वास प्रश्वासोन्मेषनिमेषाकुञ्चनप्रसारणगमनप्रेरणधारणादि तद्वायवीयं स्पर्शः स्पर्शनं च॥ (च० सं० शा० ७/१६)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गहृदय रचयिता ने केवल स्पर्श एवं उच्छ्वास को वातज तथा वायु को रजो-बहुल माना है।[1]

महर्षि काश्यप ने चरक वर्णित सभी अवयवों की गणना के ही साथ प्राण एवं अपान की भी वायवीय भावों के अन्तर्गत गणना की है।

महर्षि हारीत ने कर्ण, स्पर्श, उच्छ्वास, स्वेद, चंक्रमण तथा वात के लक्षणों की वायु से उत्पत्ति मानी है।[2]

The components derived from *vāyu* are given here under :—

Components	*CS*	*AS*	*AH*	*KS*	*Hā.S*
Sparśa (sense of touch)	+	+	+	+	+
Sparśanendriya (organs of sense of touch)	+	+	—	+	—
Raukṣya (roughness)	+	—	—	+	—
Preraṇa (impulsion)	+	—	—	+	—
Ceṣṭā or *parispandana* (activity of body)	+	+	—	+	—
Dhātu-vyūhana (formation or transportation of *dhātus*)	+	—	—	+	—
Ucchwāsa (expiration)	+	+	+	—	+

Beside these inspiration, opening and closure of eye-lids, contraction and relaxation, movement, propulsion and retention by Caraka, *lāghava* (lightness) and *praśwāsa* (inspiration) by Vāgbhaṭa I; *prāṇa* and *apāna* by Kāśyapa and *karṇa* (ear), *sweda* (sweat or perspiration), *caṅkramaṇa* (walking) and other characteristics of *vāta* by Hārīta have also been enumerated.

(३) आग्नेय अङ्गावयव *(Components derived from agni)*

अग्न्यात्मकं रूपं दर्शनं प्रकाशः पक्तिरौष्ण्यं च। (च० सं० शा० ४/१२)
आग्नेयानि दर्शनं रूपं पित्तमूष्मा पक्तिः सन्तापो मेधा वर्णो भास्तेजः शौर्यं च ॥
(अ० सं० शा० ५/११)

वह्नेर्दृग्रूपपक्तयः ·····। (अ० ह० शा० ३/३)
रूपं च चक्षुश्च प्रकाशश्च पित्तं च पक्तिश्चोष्मा च शरीरवृद्धिश्च तैजसनि भवन्ति ॥
(का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक ने रूप, इन्द्रिय, प्रकाश, पक्ति (पाचन-क्रिया) एवं शरीर की उष्णता को आग्नेय वर्णित किया है। अन्यत्र आग्नेय भावों मे प्रभा का भी समावेश है।[3]

१. न्नातात् -अनिलाद्रजोबहुलात् ·····। (अ० ह० शा० ३/३ की अरुण० टी०)
२. श्रुतिः स्पर्शस्तथोच्छ्वासः स्वेदं चंक्रमणादि च। वाता ह्येते पंक्तिेया अन्या प्रकृतिरेव च। (हा० सं० षष्ठस्थान १/४३, ४४)
३. यत् पित्तमूष्मा च यो या च भाः शरीरे तत् सर्वमाग्नेयं रूपं दर्शनं च॥ (च० सं० शा० ७/१६)

अष्टांगसंग्रहकार के मत से दर्शनेन्द्रिय, रूप, पित्त, शरीर की ऊष्मा, पक्ति, सन्ताप, मेधा, वर्ण, कांति, तेज एवं शौर्य आदि आग्नेय भाव हैं।

अष्टांगहृदयकार ने दृगेन्द्रिय, रूप एवं पक्ति (पाक) आग्नेय भाव माने हैं। टीकाकार अरुणदत ने अग्नि को सत्व-रजो-बहुल तथा पित्त, ऊष्मा मेधा, वर्ण, शौर्य आदि को भी आग्नेय माना है।[1]

महर्षि काश्यप ने रूप, चक्षु, प्रकाश, पित्त, पक्ति, ऊष्मा, शरीर की वृद्धि एवं तेज को आग्नेय माना है।

महर्षि हारीत ने अग्नि के द्वारा पित्त, नेत्र (दो), तम तथा क्रोधादि पाँच की उत्पत्ति मानी है।[2]

The openion of authors about body components derived from *agni* is given here under :

Components	*C*	*AS*	*AH*	*KS*	*Hā.S*
Rūpa (form)	+	+	+	+	—
Cakṣu indriya (ophthalmic apparatus)	+	+	+	+	+
Pakti (metabolism)	+	+	+	+	—
Ūṣmā (body heat)	+	+	+*	+	—
Prakāśa (light)	+	—	—	+	—
Pitta (metabolic enzymes)	+	+	+*	+	+
Teja (sharpness or brightness)	—	+	—	+	—
Bhā (lusture)	+	—	—	—	—
Darśana (visual sense)	+	—	—	—	—

* given by Aruṇadatta.

Besides these *medhā* (brain), *varṇa* (complexion), *śaurya* (valour or prowess) by Vāgbhaṭa I and Aruṇadutta; *santāpa* (temperature) and *kānti* (splendour) by Vāgbhaṭa I; *śārīra-vṛddhi* (growth of body) by Kāśyapa, *tama* (darkness) and *krodha* (anger) by Hārīta have been included.

(४) जलीय अङ्गावयव *(Components derived from jala)*

अबात्मकं रसो रसनं शैत्यं मार्दवं स्नेहः क्लेदश्च। (च० सं० शा० ४/१२)
आप्यसानि रसनं रसः स्वेदक्लेदवसासृक्शुक्रमूत्रादिद्रवसमूहाः शैथिल्यं स्नेहश्च।
(अ० सं० शा० ५/१२)

आप्या जिह्वारसक्लेदा ·····। (अ० ह० शा० ३/४)

रसश्च रसनं च शैत्यं च मार्दवं च द्रवश्च स्नेहश्च क्लेदश्च श्लेष्मा च मेदश्च रक्तं च मांसं च शुक्रं चाप्यानि भवन्ति ॥
(का० सं० शा० ३/४)

रस; रसनेन्द्रिय, शीतलता, मृदुता, स्नेह एवं क्लेद का जलीय भावों के अर्न्तगत महर्षि चरक ने उल्लेख किया है। पुनःश्च लिखा है कि जो भी द्रव, सर, मन्द, स्निग्ध, मृदु, पिच्छिल, रस, रुधिर, वसा, कफ, पित्त, मूत्र स्वेदादि है वे आप्य

१. वह्नेः सत्वरजोबहुलात् ···। ··· तेजः पित्तोष्ममेधावर्णशौर्यादयोऽपि वह्नेरेव वेद्याः। (अ० ह० शा० ३/३ की अरुण० टीका)
२. अग्निं पित्तञ्च नेत्रञ्च तमः क्रोधादिपञ्चकम्। (हा० सं० षष्ठस्थान १/४३)

Scanned with CamScanner

भाव हैं।[1]

अष्टांगसंग्रहकार ने चरकोक्त भावों के साथ कुछ अन्य विशिष्ट अवयवों का समावेश करते हुए लिखा है कि रसनेन्द्रिय, रस, स्वेद, क्लेद, वसा, असृक्, शुक्र, मूत्रादि द्रव समूह, शैथिल्य एवं स्नेह आदि जलीय भाव हैं।

अष्टांगहृदयकार ने केवल जिह्वा (रसनेन्द्रिय), रस एवं क्लेद का वर्णन दिया है। टीकाकार अरुणदत्त ने जल को सत्त्व-तमो-बहुल माना है।[2]

महर्षि काश्यप के मत से रस, रसनेन्द्रिय, शैत्य, मार्दव, द्रव, स्नेह, क्लेद, श्लेष्मा, मेद, रक्त, मांस तथा शुक्र जलीय भाव हैं।

महर्षि हारीत ने रस, रक्त, लाला, मूत्र तथा शुक्र जो जलीय माना है।[3]

Different body parts developing from *jala* are being given here under :

Components	*CS*	*AS*	*AH*	*KS*	*Hā.S*
Rasa (taste)	+	+	+	+	+
Rasanendriya (gustatory system)	+	+	+	+	—
Śaitya (coldness)	+	—	—	+	—
Mārdava (softness)	+	—	—	+	—
Sneha (unctuousness)	+	+	—	+	—
Kleda (moisture)	+	+	+	+	—
Asrk (blood)	+	+	—	+	+
Śukra (semen)	—	+	—	+	+
Urine etc. watery substances	+	+	—	+	+
Vasā or *Meda* (fat)	+	+	—	+	—

Alongwith above components others like all liquids, mobile, dull, soft, slimy, *rasa, kapha, pitta* and sweat by Caraka; *sweda* (sweat or perspiration) and *śaithilya* (laxity) by Vāgbhaṭa I, *māṃsa* (muscles) by Kāśyapa and *lālā* (saliva) by Hārīta have been described.

(५) पार्थिव अङ्गावयव *(Components derived form Pṛthvī)*

पृथिव्यात्मकं गन्धो घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्चेति। (च० सं० शा० ४/१२)
पार्थिवानि घ्राणं गन्धः केशनखास्थ्यादिमूर्तिसमूहो धैर्यं गौरवं च। (अ० सं० शा० ५/१३)
घ्राणगन्धास्थिपार्थिवम् ·····। (अ० हृ० शा० ३/४)
गन्धश्च घ्राणं च गौरवं च स्थैर्यं च मूर्तिश्च पार्थिवानि भवन्ति॥ (का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक ने गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गौरव, स्थिरता एवं शारीरिक मूर्ति (काठिन्य)[4] को पार्थिव माना है पुनश्च विस्तृत

१. यद्द्रवसरमन्दस्निग्धमृदुपिच्छिलं रससृधिरवसाकफपित्तमूत्रस्वेदादि तदाप्यं रसो रसनं च॥ (च० सं० शा० ७/१६)
२. अद्भ्यः सत्त्वतमोबहुलाभ्यो जाता ·····। (अ० हृ० शा० ३/३ की अरुण० टीका)
३. रसं रक्तञ्च लालाञ्च मूत्रं शुक्रं जलानि च॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/४२)
४. मूर्तिं काठिन्यम्। (च० सं० शा० ४/१२ की चक्रपाणि टीका)

वर्णन करते हुए स्थूल, गुरु, खर एवं कठिन अङ्ग; नख, अस्थि, दन्त, मांस, चर्म, वर्च, केश, श्मश्रु, लोम एवं कण्डरा आदि का भी समावेश किया है।[1]

अष्टांगसंग्रहकार के मत से घ्राणेन्द्रिय, गन्ध, केश, नख, अस्थि आदि मूर्तिसमूह, धैर्य एवं गौरव पार्थिव भाव हैं।

अष्टांगहृदयकार ने घ्राणेन्द्रिय, गन्ध एवं अस्थि का उल्लेख किया है। पृथ्वी को तमो-बहुल टीकाकार अरुणदत्त ने माना है।[2]

महर्षि काश्यप ने वर्णन में चरक का अक्षरशः पालन करते हुए गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गौरव, एवं मूर्तित्व पार्थिव भाव माने हैं।

महर्षि हारीत ने त्वक्, मांस, केश, रोम एवं अस्थि को पृथ्वी से उत्पन्न माना है।[3]

The body component developing from *pṛthvī* are given here under :

Components	*CS*	*AS*	*AH*	*KS*	*Hā.S*
Gandha (smell)	+	+	+	+	—
Ghrāṇendriya (olfactory organs)	+	+	+	+	—
Gaurava (heaviness)	+	+	—	+	—
Sthairya (stability)	+	—	—	+	—
Mūrti (stiffness or structure of body)	+	—	—	+	—
Keśa (hair)	+	+	—	—	+
Asthi (bones)	+	+	+	—	+

Other components described are particularly thick, heavy, coarse, and hard body-parts, nails, bones, teeth, flesh, skin, feces, hair, moustaches, body-hair and tendons etc by Caraka; *nakha* (nail) and *dhairya* (patience) by Vāgbhaṭa I and *twaka* (skin), *māṃsa* (muscle) and *roma* (body hair) by Hārīta.

गर्भ की वृद्धि में पञ्चमहाभूतों का कार्य (Specific function of pañcamahābhūtas in fetal development)

तं चेतनावस्थितं वायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवर्धयति। (सु० सं० शा० ५/३)

इस चेतनावस्थित गर्भ में वायु विभाजन, तेज पाचन, जल क्लेदन, पृथ्वी संहनन एवं आकाश विवर्धन करता है।

टीकाकार डल्हण ने उपर्युक्त गद्य का स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है कि चेतना के ही कारण गर्भ प्रसव-काल तक स्थिर रहता है, चेतना-विहीन होने पर कुथित या विशीर्ण हो जाता है। वायु उसमें (गर्भपिंड में) दोष, धातु, मल, अंग एवं प्रत्यंग आदि का विभाजन करती है। तेज पाचन करके रूप से रूपान्तर की अवस्था को प्राप्त कराता है, अर्थात गर्भ

१. तत्र यद्विशेषतः स्थूलं स्थिरं मूर्तिमद्गुरुखरकठिनमङ्गं नखास्थिदन्तमांसचर्मवर्चः केशश्मश्रुलोमकण्डरादि तत् पार्थिवं गन्धं घ्राणं च॥ (च० सं० शा० ७/१६)
२. पृथिव्याख्यात्तमोबहुलात्। (अ० हृ० शा० ३/३ की अरुण० टी०)
३. त्वङ्मांसकेशरोमास्थिभूधातं जनयेत्तथा॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/४२)

Scanned with CamScanner

को मनुष्य आदि का रूप प्रदान करता है तथा उस मनुष्य को अपना रूप एवं वर्ण आदि देता है। जल इस गर्भ में क्लेदन करता है अर्थात् वायु के विभाग आदि के कारण तथा अग्नि से उत्पन्न शोषण या शुष्कता की आर्द्रता करता है। पृथ्वी संहनन करती है अर्थात् जल से क्लिन्न उस गर्भ को काठिन्य देकर मूर्तिमान करती है। आकाश विवर्धन करता है अर्थात् वायु एवं अग्नि के द्वारा विदारित तथा ऊर्ध्व, अधो एवं तिर्यक् या सभी ओर को बढ़ते हुये स्रोतसों में आध्मापन द्वारा अवकाश प्रदान कर विवर्धन करता है।[1]

आचार्य भावमिश्र ने अग्नि (तेज) को पाचक, आलोचक, रंजक, भ्राजक तथा साधक पित्त के रूप में तथा पाञ्चभौतिक एवं सप्तधात्वग्नि के रूप में शरीर में स्थित बताया है, तथा इसे वाणी का आधिदेव भी कहा है। इसका कार्य शरीर में पाचन आदि कर्म के द्वारा गर्भ को जीवित रखना है। जल का वर्णन इस प्रकार किया है कि सोम (जल) पाँचों प्रकार के श्लेष्मा, रस, शुक्रादि जलात्मक भावों के रूप में तथा रसनेन्द्रिय की शक्ति के रूप में अवस्थित मन का आधिदेव है। यही सोम ओज-प्रभृति सौम्य धातु का पोषण करने से तथा वायु एवं अग्नि से शुष्क हुए भाग को आर्द्र करने से गर्भ को जीवित रखता है। पृथ्वी, वायु एवं आकाश का वर्णन टीकाकार डल्हण सदृश ही किया है।[2]

In *cetana* (alive) *garbha* (embryo) *vibhājana* (division), *pācana* (metabolism), *kledana* (moistening), *saṃhanana* (solidification) and *vivardhana* (increase in size) are done by *vāyu, teja, jala, pṛthvī* and *ākāśa* respectively. Ḍalhaṇa clarifying the above verse says that only because of *cetanā* the *garbha* remains alive upto the time of delivery, in absence of this it gets putrified or degenerated. The division of *doṣa, dhātu, mala* (excretas), *aṅga* and *pratyaṅga* (major and minor body parts) is done by *vāyu.* The *teja* by its function of metabolism changes the shape, provides general appearance like human structure etc. along with specific features and complexion. Moistening is done by *jala* or in other words the dryness or absorption caused by division and metabolism being done by *vāyu* and *teja* respectively is normalized by moistening action of *jala.* The *pṛthvī* solidifies or gives shape to the embryo already moistened by *jala.* The increase in size is done by *akāśa* by providing vacuum with *ādhmāpana* (inflating or blowing upon) to the *srotasas* (channels) running all-around the body i.e. in up, down and oblique directions, which are created by *vidāraṇa* (splitting or divison) done by *vāyu* and *agni.*

Bhāvamiśra corroborating the earlier views regarding *pṛthvī, vāyu* and *ākāśa* explains that *agni* or *teja* stays in the body in the form of *pācaka, ālocaka, rañjaka, bhrājaka* and *sādhaka pitta* alongwith specific *agnis* of *pañcamahābhūtas* and seven *dhātus.* It is

१. चेतनया हेतुभूतया यावद् गर्भप्रसवकालमवस्थितं चेतनावस्थितं, अन्यथा कुथितविशीर्णं स्यात्। तं वायुर्विभजति दोषधातुमलाङ्गप्रत्यङ्गविभागेन। तेज एनं पचति रूपाद्रूपान्तरेणावस्थानं प्रापयति। आपः क्लेदयन्ति विभागपरिणाम-कारिणोरनिलानलयोः शोषणेऽप्यार्द्रतां जनयन्ति, पृथिवी संहन्ति अद्भिः क्लिन्नमपि कठिनं मूर्तिमत् करोति। आकाशं विवर्द्धयति अनिलानलविदारितस्रोतसामाध्मापनेनोद्ध्वमधस्तिर्यग्विवर्धितमवकाशदानेन विवर्धयति॥

(सु०सं०शा० ५/३ की डल्हण० टी०)

२. अग्निरत्र-पाचकालोचकरञ्जकभ्राजकसाधकानाम; तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातुगतानामग्नीनां शक्तिरूपतयाऽवस्थितो वाचोऽधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स च पाचकादिकर्मणा जीवयति। सोमश्च-पञ्चात्मकश्लेष्मरसशुक्रादीनां तोयात्मकानां भावानां रसनेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतयाऽवस्थितो मनक्षाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स च सौम्यधातोरोजः प्रभृतेः पोषणेन पवनपावकसंशुष्कभागस्यार्द्रताविधानेन जीवयतीति शेषः। मही च-जलेन क्लिन्नस्यापि कठिनविधानेन। वायुर्दोषधातुमलाङ्गोपाङ्गादीनां सञ्चारणेनोच्छ्वासनिःश्वासाध्याङ्ग। नभो-(ऽनिलोनलविदारितस्रोतसामूर्ध्वाधस्तिर्यगवकाश-दानेन)। (भा० प्र० पूर्व० ३/३२०)

ādhideva (god or commander) of *vāṇī* (speech). By performing metabolic functions it maintains the life of fetus. *Jala* stays in the body in the form of all the five types of *śleṣmā, rasa* and *śukra* etc. liquid substances and power of taste organ. It is god of *mana.* This very *jala* or *soma* by nourishing *oja* etc. *dhātus* and moistening the dryness created by *vāyu* and *agni* maintains the life of fetus.

विमर्श (Comments)

सामान्य सृष्टि से शरीर की तुलना करते हुये सभी पाञ्चभौतिक तत्वों का वर्णन सभी संहिताओं में मिलता है। महर्षि चरक ने स्पष्ट लिखा है कि लोक एवं पुरुष में सभी भाव समान रूप से स्थित होते हैं।[1] वर्णन में विभिन्न आचार्यों के मत में कुछ वैभिन्य है, जैसे लाघव को महर्षि चरक ने आकाशीय परन्तु महर्षि वाग्भट ने वायवीय माना है। विवेक, विविक्तता या विच्छेद कार्य महर्षि चरक एवं वाग्भट के मत से आकाश का है परन्तु महर्षि सुश्रुत ने विभाजन कार्य वायु का बताया है। महर्षि सुश्रुत ने विवर्धन या शारीरिक वृद्धि को आकाशीय भाव माना है जब कि महर्षि काश्यप ने आग्नेय।

यद्यपि आगे महर्षियों ने गर्भ के मातृज, पितृज आदि अङ्गों का भी वर्णन दिया है परन्तु महर्षि चरक ने स्पष्ट कर दिया है कि ये मातृज आदि भाव भी पाञ्चभौतिक ही होते हैं[2] अर्थात् शरीर के सभी घटक पाञ्चभौतिक ही होते हैं, विभिन्न भूतों की स्थिति में तर, तम का ही भेद होता है।

In preceding pages specific organs are mentioned to have been derived from specific *bhūtas.* Similarly in subsequent pages certain body parts derived form maternal *bīja* (ovum) etc. would be described. Each and every body part is *pāñcabhautika,* the mention of specific *bhūtas* shows its relative predominance over the other.

गर्भ की वृद्धि में वायु की प्रधानता (The importance of vāyu in fetal development)

गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता च परिवृद्धिर्भवति।
तस्यान्तरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम्। तदाधमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्धते॥
ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः। ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा॥
(सु० सं० शा० ४/५७ से ५९)

वायुर्हि कालसहितः शरीरं विभजति संदधाति चेति॥ (का० सं० शा० ३/४)

स्वभावतो ह्यस्य वायुपरमाणवः संयोगविभागचेष्टाधिकारा आकुञ्चनप्रसारणकोष्ठाङ्गप्रत्यङ्गधातुचेतनास्रोतांसि विभजन्ति॥ (का० सं० शा० ५/३)

यद्यपि गर्भावक्रान्ति आदि का वर्णन करते समय महर्षि चरक ने वायु की प्रधानता का विशिष्ट उल्लेख नहीं किया परन्तु वायु के सामान्य कार्यों का उल्लेख करते समय इसे गर्भ की आकृति का निर्माणकर्ता माना है।[3]

गर्भ की वृद्धि के लिये वायु की प्रधानता का वर्णन करते हुये महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि गर्भ की वृद्धि निश्चित रूप से रस-निमित्त (माता से प्राप्त आहार-रस के कारण) तथा वायु के द्वारा आध्मापन के कारण होती है। नाभि के अन्तर में (उदरगुहा में) निश्चित ही ज्योतिस्थान (अग्नि का स्थान) होता है। वायु उसको (उस स्थान की अग्नि को) प्रध्मापन

१. एवमयं लोकसंमितः पुरुषः। यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तो लोके इति, बुधास्त्वेवं दृष्टुमिच्छन्ति॥ (च० सं० शा० ४/१३)

२. मातृजादयोऽप्यस्य महाभूतविकारा एव। (च० सं० शा० ४/१२)

३. वायुः ..... कर्ता गर्भाकृतीनाम् .....। (च० सं० सू० १२/८)

Scanned with CamScanner

से प्रदीप्त करती है, जिससे शरीर परिवर्धित होता है। इसी ऊष्मा से संयुक्त हुई वायु जैसे जैसे ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशा में स्रोतसों का विदारण करती है (वैसे वैसे गर्भ की वृद्धि होती है)।

महर्षि काश्यप के मत से यह वायु ही काल के सहित शरीर का विभाजन एवं धारण करती है।

महर्षि काश्यप इस कथन की पुष्टि करते हुये अन्यत्र लिखते हैं कि संयोग, विभाग तथा चेष्टा को करने वाले वायु के परमाणु स्वभाव से ही आकुञ्चन, प्रसारण, अङ्ग, प्रत्यङ्ग, धातु, चेतना एवं स्रोतों का विभाजन करते हैं।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत-वर्णित ५८ एवं ५९ श्लोक को ही उद्धृत कर दिया है केवल प्रथम एवं अंतिम पंक्ति में एक एक अक्षर का अन्तर है।[1]

महर्षि हारीत ने वायु के साथ अग्नि की भी प्रधानता बतलाई है, परन्तु इन्होंने भी वायु का ही अधिकतम योगदान बताया है कि पंचभूतों की अग्नि बीज (एवं आर्तव) को लेकर परिपक्व करके कलल का रूप देती है, वह अंत:स्थित कलल बाह्य वात के संयोग से बुद्बुदाकार हो जाता है। पुनः वह कलल होकर पंचमहाभूतों की अग्नि से पिण्ड रूप हो जाता है। वह पिण्ड परिपाक हो घन का संघात बन जाता है तथा व्यान वायु पञ्चतत्व, हस्त, पाद, शिर तथा अवयवों का निर्माण करती है, तथा अंत:स्थित एक ही वायु अनेकों स्थानों में समाश्रित होकर उस पिण्ड को देहाकार कर देती है। गले एवं हृदय में स्थित उदान वायु शरीर के मुखद्वार को प्रकाशित करती है या निर्माण करती है। अधस्थ अपान वायु अपानद्वार का विशोधन करती है या निर्माण करती है। इसी प्रकार अन्त:स्थित सभी वायु पृथक् पृथक् मार्गों से छिद्र करके निकलती हैं जिससे वात के प्रभाव से मुख, घ्राण (दो), कर्ण (दो), नेत्र (दो) अपानपथ तथा मेहन या मूत्रद्वार आदि नवद्वार बनते हैं। वहाँ पर (गर्भपिण्ड में) अन्त:स्थित वायु विस्तृत होकर हाथ, पैर आदि अन्य अङ्गों को उत्पन्न कर देती है।[2]

महर्षि भेल ने अग्नि एवं वायु की प्रधानता का वर्णन करते हुए लिखा है, कि ये अग्नि एवं वायु ही प्रविष्ट होकर अङ्गों-प्रत्यङ्गों का निर्माण करते हैं, ये ही चेष्टा करवाते हैं, वृद्धि करवाते हैं। जब ये ही शरीर से निकल जाते हैं तो शरीर वायु एवं ऊष्मा से रहित प्रेत (मृत) हो जाता है। महर्षि भरद्वाज कहते हैं ऐसा नहीं है, क्योंकि मृत शरीर भी वायु से आध्मापित तथा अग्नि से शोषित होता है। भगवान आत्रेय ने कहा ऐसा नहीं है अन्तर्स्थित अग्नि एवं वायु जीवित अवस्था में रहते हैं उनके समाप्त हो जाने पर बाहर के अग्नि एवं वायु प्रविष्ट होते हैं तथा मृत शरीर का आध्मापन एवं शोषण करते हैं।[3]

---

१. गर्भस्य नाभि मध्ये तु ज्योतिःस्थानं .....। .....।
.....। ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांसि तु यथा तथा॥
यदा दारयति विस्तारयति तथा देहो वर्धत इति पूर्वेणान्वयः। (भा० प्र० पूर्व० ३/३२३, ३२४ - शेष सु० सं० सदृश)

२. अथ बोजलेहि (बीजमेव हि-शु० पा०) पञ्चभूताग्निना परिपक्वं कललं क्रियते। सोऽपि चान्तःस्थो वायुर्बुद्बुदाकारो बाह्यवातेन संपृतो भवति। स च कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयति॥ तच्च पिण्डं परिपाकं गतं घनसंघातञ्च जातं व्यानवातेन पञ्चतत्वानि हस्तपादादीच्छिरोऽवयवान्सञ्जनयति। अन्तःस्थो वायुरेकोऽपि नानास्थानं समाश्रित्य देहाकारं करोति। उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति। अपानवायुरधःस्थोऽपानद्वारं विशोधयति। एते चान्तःस्थाः पृथक्पृथक् मार्गे छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति। तान्येव नवद्वाराणि मुखघ्राणकर्णनेत्रापानमेहनानि चैतानि द्वाराणि वातेन प्रभवन्ति। तत्रान्तःस्थो वायुःप्रातनत्वेन हस्तपादाद्यानवयवान्सञ्जनयति। (हा० सं० षष्ठस्थान १/४१)

३. (अथ यदाऽग्निमास्तौ) विशतः वा(ता)वेतावङ्गप्रत्यङ्गानि विकुरुतः, तौ चेष्ट(य)तः, तौ वर्धयतः तामेव यद शरीराग्न(द)पक्रामतः तदा तद्भवति निर्वातो(तं), निरूष्मा(ष्म), प्रेतो मृत इति। नेत्याह भरद्वाजः, मृतोऽपि जन्तुर्वायुना ध्मायते अग्निना शोष्यते। नेत्याह भगवानात्रेयः, सह वा तस्या(ऽन्तर)ग्निमास्तौ जीवतः; तयोरप्रक्रान्तयोर्यौत्य(र्बाह्या)ग्नि-मारुतावाविशत इति॥ (भे० सं० शा० ६/३)

The development of the fetus mainly depends upon the inflation done by *vāyu* and nourishment supplied by *rasa* is the opinion of Suśruta and Bhāvamiśra. Behind the umbilicus there is definitely the location of *jyotisthāna* (the place of light or fire). The *vāyu* by its blowing action excites or stimulates this fire, which in turn performs development of body. The *vāyu* associated with this very fire splits the upward, downward and obliquely running channels, resulting into development of fetus. It also gives specific shape or features to the fetus is the opinion of Caraka.

Kāśyapa says that finest particles of *vāyu* responsible for union, division and activity perform flexion and extension etc. actions as well as division of major and minor body parts, *dhātu, cetanā* (consciousness) and channels due to their specific nature. All this splitting and *dhāraṇa* (retention) is done by *vāyu* in association with *kāla* (time factor).

Hārīta opines that *bīja* (sperms and ovum both together) attains the shape of *kalala* by the action of *agni* situated in all the five *bhūtas*. Further this internally situated *kalala* gets the shape of *budbuda* by the action of outside *vāyu*. This *budbuda* again becoming *kalala* gets solidified in the shape of *piṇḍa* (solid) by the action of *pañcabhūtāgni:* by further metabolism this mass becomes a heap of solid substance, then *vyāna vāyu* forms the *pañcatatwas*, arms, legs and head etc. body parts. The same internally situated one *vāyu* reaching different parts gives this solid mass a shape of body. *Udāna vāyu* situated in neck and heart forms oral cavity and its aperture. *Apāna vāyu* situated downwards clarifies the *apāna dwāra* (anal orifice), similarly internally situated *vāyu* comes out of the body making different orifices. Thus with the influence of *vāyu*, nine external meatuses i. e. oral, both nasal, both eyes, both ears, anal and urinary are formed.

Bhela lays equal emphasis on the role of *agni* and *vāyu*, both these entering the body form differnt major and minor body parts, as well as initiate activity and growth. When these come out of the body, the person (fetus) becomes dead due to absence of *agni* and *vāyu*. Bharadwāja contradicts this saying that it is not so, because dead body gets inflated and dried too. Ātreya corroborates the views of Bhela explaining that internal *agni* and *vāyu* exist only during life, after death the inflation and desiccation is done by external *vāyu* and *agni* which enter the dead body.

गर्भ की मातृजादि भावों के समुदाय से उत्पत्ति (Formation of garbha with the combination of maternal etc. all the components)

आयुर्वेद-दर्शन के आधार पर मानव शरीर पाञ्चभौतिक है। पूर्वपृष्ठों में उल्लिखित गर्भ में पञ्चमहाभूतों के विभिन्न स्रोतों का वर्णन करते समय आचार्यों ने माता, पिता, रस एवं आत्मा का उल्लेख किया है। सत्व आत्मा के ही साथ सम्बन्धित रहता है। माता एवं पिता का शोणित तथा शुक्र किसी सीमा तक उनके सात्म्य सेवन पर आधारित होता है, इसी विचारधारा से प्रेरित होकर गर्भ के निर्माण में षड्भावों (मातृज, पितृज, रसज, सात्म्यज, आत्मज एवं सत्वज) की कल्पना की गई है। महर्षि चरक ने इस विषय पर उपस्थित सम्भाषा का उल्लेख अपनी संहिता में किया है कि न तो माता, न पिता, न आत्मा, न सात्म्य, न भक्ष्य या लेह्यादि पानाशन का उपयोग गर्भ की उत्पत्ति करता है; और न सत्व ही परलोक से आकर

Scanned with CamScanner

गर्भ में प्रवेश करता है अर्थात् यह गर्भ माता, पिता, सात्म्य, आत्मा, रस या सत्व में से किसी एक से उत्पन्न नहीं होता[1] बल्कि उनके समुदायरूप में एकत्र होने पर ही उत्पन्न होता है।[2] गर्भ की समुदाय से उत्पत्ति का उदाहरण महर्षि चरक ने कूटागार एवं रथ के निर्माण से दिया है, अर्थात् जिस प्रकार नाना द्रव्य समुदाय से कूटागार का निर्माण होता है ; रथ के विभिन्न अङ्गों के समुदाय से रथ की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार माता-पिता आदि समुदाय से गर्भ की उत्पत्ति होती है।[3] महर्षि चरक ने अपने पक्ष का प्रतिपादन करने के लिए माता-पिता-रसादि में से एक एक के स्वतंत्र कारणत्व का खण्डन, उनका महत्व एवं उनसे उत्पन्न होने वाले अङ्गों का वर्णन किया है। महर्षि भेल ने भी चरक के सदृश समुदाय से ही गर्भ की उत्पत्ति मानी है।[4]

Āyurvedic philosophy believes that the human body is composed of five *mahābhūtas*, sources of these *mahābhūtas* are said to be mother, father, *rasa* and *ātmā*. *Ātmā* is always associated with *satwa*. The normalcy of *śonita* (ovum) and *śukra* (sperms) of mother and father respectively greatly depend upon the use of *sātmya* (wholesome, suitable or congenial diet). Considering this fact the formation of *garbha* (embryo) is said to be from *ṣadbhāwas* (six components i.e. *maitrja, pitrja, rasaja, ātmaja, satwaja* and *sātmyaja bhāwas*). Caraka has recapitulated the debate on this subject. He writes that neither mother, nor father, nor *ātmā* (soul / self) nor wholesome suitable diet, nor use of eatable, lickable or drinkable dietetics are capable of forming the fetus. Neither the *satwa* coming from other world enters the fetus, or in other words none of these factors singularly are capable of forming the embryo, it is formed only with combination of all these. Caraka has simulated the formation of embryo with building of upper room (apartment at the top the house) or a chariot. As by combining and arranging different building materials the upper room is constructed or with different parts a chariot is assembled, similarly with the combination of these six components the fetus is formed. He has further advanced logic to support his view by describing different body parts arising from these specific components and thus has contradicted the theory of formation of *garbha* by singular component. Bhela has also given almost similar description albeit in summarized form.

१. न हि माता न पिता नात्मा न सात्म्यं न पानाशनभक्ष्यलेह्योपयोगा गर्भं जनयन्ति, न च परलोकादेत्य गर्भं सत्त्वमवक्रामति॥ ३ (१)॥ अमातृजाश्चायंगर्भोऽपितृजश्चानात्मजश्चासात्म्यजश्चारसजश्च, न चास्ति सत्त्वमौपपादुकमिति॥ ४॥ (च० सं० शा० ३/३ (१), ४)

२. (अ) च० सं० शा० ३/३ (पृष्ठ १०६)

(आ) सर्वेभ्य एभ्यो भावेभ्यः समुदितेभ्यो गर्भोऽभिनिर्वर्तते। (च० सं० शा० ३/५)

(इ) न हि केवलं सात्म्यज एवायं गर्भ, समुदायोऽत्र कारणमुच्यते ॥ ११॥

न च केवलं सम्यगुपयोगादेव रसाना गर्भाभिनिर्वृत्तिर्भवति, समुदायोऽत्र कारणमुच्यते ॥ १२॥ (च० सं० शा० ३/११ एवं १२)

(ई) मातृतः पितृतः आत्मतः सात्म्यतो रसतः सत्वत इत्येभ्यो भावेभ्यः समुदितेभ्यो गर्भः सम्भवति ॥ (च० सं० शा० ४/४)

३. एवमयं नानाविधानामेषां गर्भकरणां भावानां समुदायादभिनिर्वर्तते गर्भः, यथा-कूटागारं नानाद्रव्यसमुदायात् यथा वा- रथो नानारथाङ्गसमुदायात्; तस्मादेतदवोचाम्-मातृजश्चायं गर्भः, पितृजश्च, आत्मजश्च, सात्म्यजश्च, रसजश्च, अस्ति च सत्त्वमौपपादुकमिति॥ (च० सं० शा० ३/१४)

४. इह खलु भो मातृजश्चायं गर्भः पितृजश्चात्मजश्च सात्म्यजश्च रसजश्च, अस्ति च सत्त्वमौपवाद(पादु)कमित्याचेयवचनम् ॥ नेति भरद्वाजः। (अमातृ)जश्चायं गर्भः, अपितृजश्चानात्मजश्चाना(सा)त्म(त्म्य)जश्च, अर(स)जश्च, नास्ति च सत्त्वमौपवा-(पा)धि(दु)कमिति ॥ (भे० सं० शा० ६/१,२)

(१) मातृजादि घटकों के स्वतंत्र कारणत्व का खण्डन (Contradiction of formation of embryo with maternal etc. singular component.)

(अ) गर्भोत्पत्ति में केवल माता एवं पिता के कारणत्व का खण्डन (Contradiction of only mother and father as factors for embryogenesis)

यदा हि मातापितरौ गर्भं जनयेतां, भूयस्यः स्त्रियः पुमांसश्च भूयांसः पुत्रकामाः, ते सर्वे पुत्रजन्यभिसन्धाय मैथुनधर्मामापद्यमानाः पुत्रानेव जनयेयुर्दुहितृर्वा दुहितृकामाः, न तु काश्चित् स्त्रियः केचिद्वा पुरुषा निरपत्याः स्युरपत्यकामा वा परिदेवेरन्। (च० सं० शा० ३/३ (२)

यदि केवल माता और पिता ही गर्भोत्पादक माने जाँय, तो पुत्राकांक्षी बहुत से युग्म पुत्र-प्राप्ति के लिए मैथुन में प्रवृत्त होकर केवल पुत्र ही उत्पन्न करेंगे, इसी प्रकार कन्यार्थी कन्याएँ। एवं कोई भी स्त्री एवं पुरुष सन्तानविहीन नहीं रहेंगे और सन्तान के लिए कोई दुखी भी न होंगे।

महर्षि भेल ने भी चरक के सदृश ही माता के कारणत्व का खण्डन किया है कि यदि केवल वह स्वयं ही पुत्रोत्पादक है तो मैथुन में प्रवृत्त होकर इच्छानुसार ही पुत्र या पुत्री उत्पन्न कर सकती है।[1]

If only mother and father are responsible or are capable of producing an embryo then various couples desirous of having only male children will indulge in copulation and produce only male children, similarly others may produce only girls. Neither of the couple will remain childless or be sorry for not having child of wanted sex (but it is not seen in practice or only mother and father are not capable of producing the embryo).

(आ) गर्भोत्पत्ति में केवल आत्मा के कारणत्व का खण्डन (Contradiction of only ātmā as a factor for embryogenesis)

न चात्माऽऽत्मानं जनयति। यदि ह्यात्माऽऽत्मानं जनयेज्जातो वा जनयेदात्मानमजातो वा, तच्चोभयथाऽप्ययुक्तम्। न हि जातो जनयति सत्त्वात्, न चाजातो जनयत्यसत्त्वात्, तस्मादुभयथाऽप्यनुपपत्तिः। तिष्ठतु तावदेतत्। यद्ययमात्माऽऽत्मानं शक्तो जनयितुं स्यात्, न त्वेनमिष्टास्वेव कथं योनिषु जनयेद्वशिनमप्रतिहतगतिं कामरूपिणं तेजोबलजववर्णसत्त्वसंहननसमुदितमजरमरुजममरम्; एवंविधं ह्यात्माऽऽत्मानमिच्छत्यतो वा भूयः॥

(च० सं० शा० ३/३ (३)

आत्मा कभी भी आत्मा को उत्पन्न नहीं करता, यदि आत्मा से ही गर्भोत्पत्ति मानी जाय, तो गर्भ जात (उत्पन्न) या अजात (अनुत्पन्न) किस आत्मा से उत्पन्न होता है (यह प्रश्न होगा) ? ये दोनों ही बातें अयुक्त (युक्तिसंगत नहीं) हैं, क्योंकि जात आत्मा वर्तमान होने के कारण गर्भ को उत्पन्न नहीं कर सकता, एवं अनुत्पन्न गर्भोत्पादक हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह तो है ही नहीं।[2] अतः यह दोनों प्रकार से आत्मा उत्पादन में असमर्थ है। यदि आत्मा को आत्मा का उत्पादक मान भी लिया जाय, तो वह आत्मा अपनी इष्ट योनियों में ही क्यों नहीं जन्म लेती, क्योंकि आत्मा वशी (स्वयं के ही केवल वश में), अप्रतिहत गति (बाधा रहित गति वाली), कामरूपी (स्वेच्छानुसार रूपधारी), तेज, बल, वेग, वर्ण, सत्व एवं संहनन से युक्त, अजर, रुजा-रहित एवं अमर आदि गुणों से युक्त है, एवं (उत्पन्न) गर्भ को भी अपने ही (इन उपर्युक्त)

१. यदा हि मात पुत्रं जनयेद्भूयिष्ठं हि स्त्री पुत्रकामा मैथुनवर्गमभिसन्धाय पुत्रं जनयेत् स्त्रीकामा च (स्त्रीर्वा)॥ (भे० सं० शा० ६/२)

२. सत्त्वादिति जन्यस्यात्मनो विद्यमानत्वात्, न च विद्यमानो जन्यत इत्यर्थः। असत्त्वादिति कारणभूतस्यात्मनोऽसत्त्वात्र कारणत्वमुपपन्नमित्यर्थः॥ (च० सं० शा० ३/३ (३) की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

गुणों से युक्त या इन (गुणों) से भी उत्तम (गुण वाला) देखना चाहती है (पर ऐसा प्रत्यक्ष में नहीं देखा जाता अर्थात् योनि में जन्म एवं गुणोत्पत्ति स्वेच्छाधीन नहीं होता, अतः केवल आत्मा ही गर्भोत्पादक है ऐसा नहीं मान सकते)।

Ātmā never produces another *ātmā*. If embryo is accepted to be formed only from *ātmā*, then the questions would come up that to which *ātmā*, born or unborn, both these do not stand the test of logic, because the born *ātmā* can not produce embryo, since it is already present, and unborn *ātmā* also can not be considered since it is nonexistent, thus *ātmā* of both these types is incapable of producing the embryo. Even if *ātmā* is accepted as creater of another *ātmā* then the question will come why it dose not take birth in the species of its choice ? *Ātma* is under its own control, has unrestricted movement, can acquire desired appearance, possesses *teja* (sharpness), *vega* (momentum), *bala* (power), *varṇa* (complexion or character), *saṃhanana* (compactness) and *satwa* (mind or strength of character), and is undecaying or ever young, free from diseases and is immortal. It would have preferred to transmit these very qualities or even better ones in embryo (but it is not seen, birth in specific species and possession of qualities does not depend on its own will, thus only *ātmā* is not capable of producing *garbha*).

***(इ) गर्भोत्पत्ति में केवल सात्म्य के कारणत्व का खण्डन** (Contradiction of only sātmya as a factor for embryogenesis)*

असात्म्यजश्चायं गर्भः। यदि हि सात्म्यजः स्यात्, तर्हि सात्म्यसेविनामेवैकान्तेन प्रजा स्यात् ; असात्म्यसेविनश्च निखिलेनानपत्याः स्युः, तच्चोभयमुभयत्रैव दृश्यते ॥ (च० सं० शा० ३/३ (४)

गर्भ केवल सात्म्य से ही उत्पन्न नहीं होता। यदि यह सात्म्यज होता तो केवल सात्म्यसेवी (दम्पति) को ही सन्तति उत्पन्न होती। सभी असात्म्यसेवी (दम्पति) अनपत्य ही होते, पर दोनों ही परिस्थितियों में ऐसा नहीं देखा जाता (अर्थात् सात्म्यसेवी भी अनपत्य एवं असात्म्यसेवी भी पुत्रवान् होते देखे गए हैं, अतः गर्भ केवल सात्म्यज ही नहीं है)।

Embryo is not derived only from congenial, wholesome or suitable diet. If it was so, then only those couples using above type of diet would have had progeny and the couples consuming non-congenial diet would have been barren, but it is not seen. In both the groups both the conditions exist (couples using congenial diet are found barren while using non-congenial as fertile, thus only congenial diet can not form the embryo).

***(ई) गर्भोत्पत्ति में केवल रस के कारणत्व का खण्डन** (Contradiction of only rasa as a factor for embryogenesis)*

अरसजश्चायं गर्भः। यदि हि रसजः स्यात्, न केचित् स्त्रीपुरुषेष्वनपत्याः स्युः, न हि कश्चिदस्त्येषां यो रसान्नोपयुङ्क्ते (उपभुङ्क्ते-शु० पा०) श्रेष्ठरसोपयोगिनां चेद्गर्भा जायन्त इत्यभिप्रेतमिति; एवं सत्याजौरभ्र-मार्गमायूरगोक्षीरदधिघृतमधुतैलसैन्धवेक्षुरसमुद्गशालिभृतानामेवैकान्तेन प्रजा स्यात्, श्यामाकवरकोद्दालककोरदूष-कन्दमूलभक्षाश्च निखिलेनानपत्याः स्युः, तच्चोभयमुभयत्र दृश्यते ॥ (च० सं० शा० ३/३ (५)

केवल रस से ही गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती। यदि केवल रस से ही गर्भोत्पत्ति होती तो कोई भी स्त्री-पुरुष सन्तान-रहित न होते, क्योंकि इनमें से (स्त्री-पुरुष में से) ऐसे कोई भी नहीं हैं जो रस का सेवन नहीं करते। एवं रस से ही गर्भोत्पत्ति होने पर केवल श्रेष्ठ रसोपयोगी ही संतानयुक्त होते जैसे बकरा, भेड़, मृग एवं मायूर के मांसरस, गोदुग्ध, दधि, घृत, मधु, तैल, सैन्धव, इक्षुरस, मुद्ग एवं शालि-चावल आदि सेवन करने वालों को ही सन्तान उत्पन्न होती। श्यामा (साँवाँ), कवरक, उद्दालक (बनकोदों), कोरदूष (कोदों) एवं कन्दमूल आदि खाने वाले सभी सन्तान रहित होते, पर दोनों ही स्थितियों में ऐसा नहीं होता (अर्थात् गोदुग्धादि सेवी संतान-विहीन एवं उद्दालकादि सेवी भी सन्तान वाले देखे जाते हैं, अतः गर्भ केवल रसज ही नहीं है)।

Only *rasa* is not capable of producing embryo. If only *rasa* was responsible then no couple would have remained barren, because there is none who does not use *rasas*. However, if *rasa* was exclusive factor, then only the couples using substances possessing high quality of *rasa* i. e. gravy of goat, sheep, dear and peacock etc., cow's milk, curd, *ghee*, honey, oil, rocksalt, cane-juice, *mudga* (green-gram) and *śāli* (specific rice) will bear the children. Others using *śyāmā, kavaraka, uddālaka, koradūṣa* (all different types of millets) and bulbous or tuberous roots will become infertile, which is not so. (The persons consuming both types of diets are found barren or fertile, or *rasa* exclusively can not produce *grabha*).

***(उ) गर्भोत्पत्ति में केवल सत्व के कारणत्व का खण्डन** (Contradiction of only satwa as a factor for embryogenesis)*

न खल्वपि परलोकादेत्य सत्त्वं गर्भमवक्रामति; यदि होनमवक्रामेत्, नास्य किञ्चित् पौर्वदेहिकं स्यादविदितमश्रुतमदृष्टं वा, स च तच्च न किञ्चिदपि स्मरति ॥ (च० सं० शा० ३/३ (६)

परलोक से आकर सत्व गर्भ में अवक्रमण नहीं करता, यदि यह सत्व परलोक से आकर अवक्रमण करता तो पूर्वजन्म की कोई भी बात (इस मन को) अज्ञात, अश्रुत या अदृष्ट न रहती (क्योंकि मन ही इन्द्रियों से संयोग होने पर ज्ञान कराता है अतः मन को पूर्व जन्म की सभी बातों का ज्ञान रहता), परन्तु ऐसा नहीं होता, पूर्वजन्म की किसी भी बात का (बालक को) स्मरण नहीं रहता (अतः केवल सत्व ही गर्भ का कारण नहीं हो सकता)।

The *satwa* does not descend from outer world, if it was so, then all the happenings of previous life would not have remained unknown, unheard or unseen (because it is *mana*, association of which with sensory organs is essential for acquiring the knowledge and it would have remembered those things even after separation from the body, thus would have carried to the next life), but it is not seen, one does not remember anything of the previous life (thus *satwa* can not be the exclusive factor for formation of *garbha*).

***(२) गर्भोत्पत्ति में मातृजादि भावों की कारणता एवं उनसे उत्पन्न अङ्ग** (The Importance of all mother etc. six factors in the formation of embryo and various body parts derived from these)*

***(अ१) गर्भोत्पत्ति में माता की कारणता** (Mother as a factor in embryogenesis)*

मातृजाश्चायं गर्भः। न हि मातुर्विना गर्भोत्पत्तिः स्यात्, न च जन्म जरायुजानाम् ॥ (च० सं० शा० ३/६)

यह गर्भ माता से उत्पन्न होता है। माता के बिना गर्भ की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जरायुज योनि के प्राणियों का जन्म माता के बिना नहीं हो सकता।

The embryo is born from the mother. Birth in the species having placentation (*jarāyuja*) is not possible without mother.

Scanned with CamScanner

(आ२) गर्भ के मातृज भाव या अङ्गावयव (Fetal parts derived from the mother)

यानि खल्वस्य गर्भस्य मातृजानि, यानि चास्य मातृतः सम्भवतः सम्भवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा त्वक् च लोहितं च मांसं च मेदश्च नाभिश्च हृदयं च क्लोम च यकृच्च प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषाधानं चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तरगुदं चाधरगुदं च क्षुद्रान्त्रं च स्थूलान्त्रं च वपा च वपावहनं चेति (मातृजानि)।

(च० सं० शा० ३/६)

मासंशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि॥ (सु० सं० शा० ३/३३)

तेषु मातृजानि मृदूनि त्वग्रक्तमांसमेदोमज्जनाभिहृदयामाशयगर्भाशययकृत्प्लीहक्लोमान्त्रगुदादीनि॥

(अ० सं० शा० ५/१४)

मृद्वन्त्र 'मातृजं' रक्तमांसमज्जगुदादिकम् ॥ (अ० हृ० शा० ३/४)

लोहितं च मांसं च नाभिश्च हृदयं च क्लोम च यकृच्च प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषधारणं चामाशयश्चोत्तरगुदश्च क्षुद्रान्त्रं च स्थूलान्त्रं चेति मातृजानि॥ (का० सं शा० ३/४)

महर्षि चरक कहते हैं कि गर्भ के जो मातृज अवयव हैं, या जो अङ्ग गर्भ के उत्पन्न होते समय माता से उत्पन्न होते हैं उनकी व्याख्या की जाती है जैसे-त्वचा, रक्त, मांस, मेद, नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक्क, बस्ति, पुरीषाधान (मलाशय), आमाशय, पक्वाशय, उत्तरगुद, अधोगुद, क्षुद्रान्त्र, स्थूलान्त्र, वपा तथा वपावहन मातृज अङ्गावयव हैं।

महर्षि सुश्रुत के अनुसार मांस, शोणित, मेद, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा, आन्त्र, गुदा प्रभृति मृदु अङ्ग मातृज हैं।

सभी मृदु अङ्ग जैसे त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, नाभि, हृदय, आमाशय, गर्भाशय, यकृत, प्लीहा, क्लोम, आंत्र एवं गुदा आदि अष्टांगसंग्रहोक्त मातृज अवयव हैं। अन्यत्र नेत्र के कृष्णमण्डल को भी रक्त से उत्पन्न होने के कारण मातृज अङ्ग माना है।[1]

अष्टांगहृदयकार ने संक्षेप में रक्त, मांस, मज्जा, गुदादि मृदु अङ्गों को मातृज गिनाया है। टीकाकार अरुणदत्त ने आदि शब्द से नाभि, यकृत, हृदय, प्लीहा, आमाशय आदि का ग्रहण किया है।[2]

महर्षि काश्यप ने उपर्युक्त वर्णन के सदृश ही रक्त, मांस, नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक्क, बस्ति, पुरीषधारण (मलाशय), आमाशय, उत्तरगुद, क्षुद्रान्त्र, स्थूलान्त्र आदि अङ्गों को मातृज वर्णित किया है।

आचार्य भावमिश्र ने भी महर्षि सुश्रुत के सदृश ही मांस, रक्तादि अङ्गों को मातृज माना है।[3]

All the soft structures are derived from the mother such as—

Body parts	*CS*	*SS*	*KS*	*AS*	*AH*	*BP*
Skin	+	—	—	+	—	—
Blood	+	+	+	+	+	+
Muscles	+	+	+	+	+	+
Fat	+	+	—	+	—	+

cont. ....

१. ····· असृजः कृष्णमण्डलं तन्मातृजं। (अ० सं० शा० ५/५१)

२. आदि शब्देन नाभिहृदययकृत्प्लीहामाशयादीनां ग्रहणम् ॥ (अ० हृ० शा० ३/४ की अरुण० टी०)

३. मांसासृङ्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहान्त्रनाभयः। हृदयं च गुदं चापि भवन्त्येतानि मातृतः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३१७)

Body parts	*CS*	*SS*	*KS*	*AS*	*AH*	*BP*
Umbilicus	+	+	+	+	+**	—
Heart	+	+	+	+	+**	+
Pancreas (*kloma*)	+	—	+	+	—	—
Liver	+	+	+	+	+**	+
Spleen	+	+	+	+	+**	+
Kidney	+	—	+	—	—	—
Urinary bladder	+	—	+	—	—	—
Rectum	+	—	+	—	—	—
Stomach	+	—	+	+	+**	—
Uppar part of rectum	+	+*	+	+*	+*	+*
Lower part of rectum	+	+*	—	+*	+*	+*
Small intestine	+	+*	+	+*	—	+*
Large intestine	+	+*	+	+*	—	+*
Bone marrow	—	+	—	+	+	+

*The arthors have described only *guda* (anus) and *āntra* (intestines).

**Mentioned by Aruṇadatta.

Besides these, Caraka has included *pakwāśaya* (duodenum), *vapā* (omentum) and *vapāvahana* (omentum sac) and Vāgbhaṭa I, the uterus in the list, he says further that *kṛṣṇamaṇḍala* (cornea) of eye having developed from blood is also an organ derived from mother.

(आ १.) गर्भोत्पत्ति में पिता की कारणता (Father as a factor in embryogenesis)

पितृजश्चायं गर्भः। न हि पितुरृते गर्भोत्पत्तिः स्यात्, न च जन्म जरायुजानाम् ॥

(च० सं० शा० ३/७)

यह गर्भ पितृज है, बिना पिता के गर्भोत्पत्ति नहीं हो सकती, जरायुज प्राणियों का जन्म पिता के बिना नहीं हो सकता।

The species having placentation (*jarāyuja*) can not get birth without father.

(आ २.) गर्भ के पितृज भाव या अङ्गावयव (Body parts derived from the father)

यानि खल्वस्य गर्भस्य पितृजानि, यानि चास्य पितृतः सम्भवतः सम्भवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा केशश्मश्रुनखलोमदन्तास्थिसिरास्नायुधमन्यः शुक्रं चेति (पितृजानि) ॥ (च० सं० शा० ३/७)

गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तशिरास्नायुधमनीरतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि ॥

(सु० सं० शा० ३/३३)

पितृजानि स्थिराणि केशनखास्थिशुक्रसिरास्नाव्यादीनि ॥ (अ० सं० शा० ५/१५)

'पैतृकं' तु स्थिरं शुक्रधमन्यस्थिकचादिकम् ॥ (अ० हृ० शा० ३/५)

केशाश्च रोमाणि च श्मश्रूणि च नखाश्च दन्ताश्चास्थीनि च सिराश्च स्नायवश्च धमन्यश्च शुक्रं चेति पितृजानि ॥

(का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक लिखते हैं, कि इस गर्भ के जो पितृज अंग हैं, या गर्भोत्पत्ति के समय जो पिता से उत्पन्न होते हैं,

Scanned with CamScanner

उनकी व्याख्या की जाती है, जैसे-केश, श्मश्रु, नख, लोम, दन्त, अस्थि, सिरा, स्नायु, धमनी एवं शुक्र आदि पितृज अंगावयव है।

महर्षि सुश्रुत ने अक्षरशः वही अंग गिनाए हैं जो चरक ने जैसे-केश, श्मश्रु, लोम, अस्थि, नख, दन्त, सिरा, स्नायु, धमनी, रेत (शुक्र) एवं अन्य स्थिर अंगावयव पितृज माने हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने केश, नख, अस्थि, शुक्र, सिरा, स्नायु आदि सभी स्थिर अंगावयव पितृज माने हैं अन्यत्र कफ-प्रसाद से उत्पन्न नेत्र के शुक्लमण्डल को भी पितृज अङ्ग माना है।[1]

स्थिर अंग एवं शुक्र, धमनी, अस्थि, केशादि अंग अष्टाङ्गहृदयोक्त पितृज भाव हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने आदि शब्द से सिरा, स्नायु, रोम आदि का ग्रहण किया है।[2]

महर्षि भावमिश्र ने भी अस्थि के अतिरिक्त अन्य उपर्युक्त अङ्गों का ही इस वर्ग में वर्णन किया है।[3]

All stable or hard structures are derived from the father.

Body parts	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*	*BP*
Hair (scalp)	+	+	+	+	+	+
Beard and moustache	+	+	—	—	+	+
Hair of body	+	+	—	+*	+	+
Teeth	+	+	—	—	+	+
Bones	+	+	+	+	∴	—
Veins	+	+	+	+*	+	+
Tendons	+	+	+	+*	+	+
Arteries	+	+	—	+	+	+
Semen	+	+	+	+	+	+
Nail	+	+	+	—	+	+

*Mentioned by Aruṇadatta

Besides above, Vāgbhata I has included *śuklamaṇḍala* (sclera) of eyes born from essence of *kapha* also under this category.

विमर्श (Comments)

गर्भ के निर्माता सभी घटकों में शरीर के विभिन्न रचनात्मक अङ्गों की निर्मिति मातृज एवं पितृज भावों से ही होती है। यद्यपि इन दोनों भावों से निर्मित अङ्गों का सुस्पष्ट सामञ्जस्य आधुनिक विज्ञान में वर्णित गर्भ के विभिन्न स्तरों (एक्टो, एन्डो तथा मेसोडॅ:म) द्वारा निर्मित अङ्गों से नहीं हो सकता फिर भी अधिकांश पितृज अंग एक्टोडॅ:म से निर्मित तथा मातृज अंग एन्डो एवं मेसोडॅ:म से निर्मित प्रतीत होते हैं।

१. तेष्वपि च नेत्रे श्लेष्मणः प्रसादाच्छुक्लमण्डलं तत्पितृजम्॥ (अ० सं० शा० ५/५१)

२. आदि शब्देन शिरास्नायुरोमादीनां ग्रहणम्। (अ० ह० शा० ३/५ की अरुण० टीका)

३. केशाः श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा। धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि॥ (भा प्र पूर्व० ३/३१६)

All the physical components of fetus are derived from mother and father. Though it is difficult to eqate any specific structure of embryo resembling with these maternal or paternal factors, however, most of the paternal organs seem to be ectodermal, while maternal endo or mesodermal.

(इ १) गर्भोत्पत्ति में कर्म की प्रधानता होते हुए भी आत्मा का महत्व (Importance of ātmā as a factor in embryogenesis)

न खलु गर्भस्य न च मातुर्न पितुर्न चात्मनः सर्वभावेषु यथेष्टकारित्वमस्ति; ते किञ्चित् स्ववशात् कुर्वन्ति, किञ्चित् कर्मवशात्, क्वचिच्चैषां करणशक्तिर्भवति, क्वचिन्न भवति। यत्र सत्त्वादिकरणसंपत्तत्र यथाबलमेव यथेष्टकारित्वम्, अतोऽन्यथा विपर्ययः। न च करणदोषादकरणमात्मा संभवति गर्भजनने, दृष्टं चेष्टा योनिरैश्वर्यं मोक्षश्चात्मविद्धिगात्मायत्तम्। न ह्यन्यः सुखदुःखयोः कर्ता। न चान्यतो गर्भो जायते जायमानः, नाङ्कुरोत्पत्तिरबीजात्।
(च० सं० शा० ३/९)

गर्भोत्पत्ति के सभी भावों में माता, पिता या आत्मा की स्वेच्छाचारिता नहीं होती। ये भाव कुछ कार्य अपने वश में होकर, कुछ कर्म के वशीभूत होकर करते हैं। कहीं-कहीं इनके करण (मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि) शक्ति (समर्थ) होते हैं और कहीं नहीं होते। जब सत्व आदि करण प्राकृत होंगे, वहाँ उनके बल के अनुसार कर्म-सामर्थ्य होगा अन्यथा विपरीत होगा। किन्तु करण में दोष होने पर आत्मा गर्भ की उत्पत्ति में अकारण नहीं होता अर्थात् गर्भ की उत्पत्ति के प्रति उसकी कारणता भङ्ग नहीं होती। क्योंकि आत्मा के जानने वाले व्यक्तियों ने यह देखा है कि अभीष्ट योनि, ऐश्वर्य एवं मोक्ष आत्मा के आधीन हैं। आत्मा के अतिरिक्त सुख-दुःख का कर्ता कोई अन्य नहीं है। उत्पन्न होता हुआ गर्भ आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि बिना बीज के अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती (अर्थात् आत्मा ही गर्भ का मूल या बीज कारण है, इसके बिना गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती)।

The mother, father and *atmā* etc. factors are not totally independent for all their functions. By these factors some of the functions are performed independently, some depending upon the deeds (of previous life) and some upon the *karaṇa* (means of actions or instruments i.e. *mana, buddhi* and *indriyas*). At some places these instruments are much potent and at others not so. When these *satwa* etc. instruments are normal, their functional capacity will depend upon their relative strength, otherwise not (if these are abnormal, their functional capacity will alter). However, in case of abnormality of these instruments the *ātmā* does not become non-causative in the process of formation of *garbha* or in other words its causativeness for formation of embryo does not break, because the persons knowing *ātmā* have observed that birth in desired species, supremacy *(aiśwarya)* and eternal emancipation depend upon *ātmā*. There is none other than *ātmā* responsible for giving feeling of pleasure and pain. As a sprout can not come up without seed, similarly birth can not take place without *ātmā* or in other words root cause of *garbha* is *ātmā* without this the formation of embryo is impossible.

(इ २) गर्भ के आत्मज भाव (Features developing from ātmā)

यानि तु खल्वस्य गर्भस्यात्मजानि, यानि चास्यात्मतः संभवतः संभवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः, तद्यथा–तासु तासु योनिषूत्पत्तिरायुरात्मज्ञानं मन इन्द्रियाणि प्राणापानौ प्रेरणं धारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ चेतना धृतिर्बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारः प्रयत्नश्चेति (आत्मजानि)। (च० सं० शा० ३/१०)

Scanned with CamScanner

इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकं च आत्मजानि ॥ (सु० सं० शा० ३/३३)

आत्मजानि तासु तासु योनिषूत्पत्तिर्मनश्चेतनेन्द्रियाणि प्राणापानौ धारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाः कामक्रोधलोभभयहर्षाः धर्माधर्मशीलतास्मृतिबुद्धीच्छाद्वेषप्रयत्नाहङ्कारसुखदुःखायुरात्मज्ञानानि च। (अ० सं० शा० ५/१६)

'चैतनं' चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च॥ (अ० हृ० शा० ३/५)

आयुश्चात्मज्ञानं च मनश्चेन्द्रियाणि च प्राणापानौ च धारणं च प्रेरणं च चाकृतिश्च स्वरवर्णोपचयविशेषाश्च सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ च स्मृतिश्चाहङ्कारश्च प्रयत्नश्चावस्थान्तरगमनं च सत्त्वं च नानायोनिषूपपत्तिश्चेत्यात्मजानि ॥ (का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक लिखते हैं कि अब गर्भ के जो आत्मज भाव हैं या गर्भोत्पत्ति के समय जो जो भाव आत्मा से उत्पन्न होते हैं उनकी व्याख्या की जाती है, जैसे–उस उस विशिष्ट योनि में उत्पत्ति, आयु (उत्तम, मध्यम या हीन आयु होना), आत्मज्ञान, मन, इन्द्रियाँ, प्राणापान, प्रेरण, धारण, आकृति, स्वर, विशिष्ट वर्ण, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, चेतना, धृति (धारणशक्ति), बुद्धि (ज्ञानशक्ति), स्मृति, अहंकार, प्रयत्न आदि आत्मज भाव हैं।

अन्यत्र महर्षि चरक ने लिखा है कि जो प्रयोक्ता है अर्थात् आत्मा है वही बुद्धि एवं मन के साथ प्रधान है।[1]

महर्षि सुश्रुत ने इन्द्रियों का ज्ञान एवं विज्ञान, आयु, सुख एवं दुःखादि को आत्मज भाव माना है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार लिखते हैं कि उन विशिष्ट योनियों में उत्पत्ति, मन, चेतना, इन्द्रियाँ, प्राणापान, धारण[2] (उत्साह), विशिष्ट आकृति, स्वर एवं वर्ण, काम, क्रोध, लोभ, भय, हर्ष, धर्माधर्मशीलता, स्मृति, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, अहंकार, सुख, दुःख, आयु एवं आत्मज्ञान आदि गर्भ के आत्मज भाव हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने चित्त, इन्द्रियाँ एवं नाना योनि में जन्म आदि आत्मज भाव माने हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने उपर्युक्त को उपलक्षण मात्र मानकर काम, क्रोध, लोभ, भय, हर्ष, धर्माधर्मशीलता, स्मृति, बुद्धि, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, अहंकार, सुख, दुःख, आयु एवं विशिष्ट स्वर आदि को भी चेतना-जन्य माना है।[3]

महर्षि काश्यप के मत से आयु, आत्मज्ञान, मन, इन्द्रियाँ, प्राण-अपान का धारण एवं प्रेरण, आकृति, विशिष्ट स्वर एवं वर्ण का उपचय, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, स्मृति, अहंकार, प्रयत्न, अवस्थानरगमन, सत्व एवं नाना योनियों में उत्पत्ति आदि आत्मज भाव हैं।

आचर्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त वर्णन सदृश ही ज्ञान, विज्ञान आदि को आत्मज माना है।[4]

The features derived from *atmā* are :

Features	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*
Birth in specific species	+	—	+	+	+
Knowledge about oneself	+	—	+	—	+
Mana	+	—	+	—	+

cont. ....

१. यत् प्रयोक्तृ तत् प्रधानं बुद्धिर्मनश्च ॥ (च० सं० शा० ७/१६)

२. धारणमवयवानां धारणमुत्साहेन देहावष्टम्भः॥ (अ० सं० शा० ५/१६ की इन्दु टीका)

३. उपलक्षणं चेदम्! कामक्रोधलोभभयहर्षधर्माधर्मशीलतास्मृतिबुद्धीच्छाद्वेषप्रयत्नाहङ्कारसुखदुःखायुःस्वरविशेषादयोऽपि हि चैतना एव ॥ (अ० हृ० शा० ३/५ की अरुण० टीका)

४. ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिकं तथा। इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥
(सुख) दुःखादिकमित्यादिशब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते ॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३१९)

Features	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*
Respiration and flatus	+	—	+	—	+
Impulse	+	—	—	—	+
Sustenance	+	—	+	—	+
Appearance	+	—	+	—	+
Voice	+	—	+	+*	+
Specific complexion	+	—	+	—	+
Happiness and sorrow	+	+	+	+*	+
Longing and hatred	+	—	+	+*	+
Consciousness	+	—	+	+	—
Dhrti (retention power)	+	—	+	—	—
Buddhi (knowledge)	+	—	+	+*	—
Smṛti (memory)	+	—	+	+*	+
Pride or egotism	+	—	+	+*	+
Endeavour	+	—	+	+*	+
Longevity	—	+	—	+*	+
Perception of *indriyas*	—	+	+	+	+

*Mentioned by Aruṇadatta.

Bhāvamiśra has followed Suśruta with the addition of birth in specific species. Besides above features Vāgbhaṭa I and Aruṇadatta have enumerated sexual desire, anger, greed, fear, excitement, virtuous disposition and unrighteouseness or unvirtuousness and Kāśyapa has mentioned transition in different stages and *satwa* (spiritual essence) in the list.

(ई १) गर्भ की उत्पत्ति में सात्म्य की कारणता (Sātmya as a factor in embryogenesis)

सात्म्यजश्चायं गर्भः। नह्यसात्म्यसेवित्वमन्तरेण स्त्रीपुरुषयोर्वन्ध्यत्वमस्ति, गर्भेषु वाऽप्यनिष्टो भावः। यावत् खल्वसात्म्यसेविनां स्त्रीपुरुषाणां त्रयो दोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तो न शुक्रशोणितगर्भाशयोपघातायोपपद्यन्ते, तावत् समर्था गर्भजननाय भवन्ति। सात्म्यसेविनां पुनः स्त्रीपुरुषाणामनुपहतशुक्रशोणितगर्भाशयानामृतुकाले सन्निपितानां जीवस्यानवक्रमणाद्गर्भा न प्रादुर्भवन्ति ॥ (च० सं० शा० ३/११)

यह गर्भ सात्म्यज है क्योंकि बिना असात्म्य सेवन के स्त्री-पुरुष वन्ध्य नहीं होते, और न ही गर्भ का कोई अनिष्ट (विकृति) ही होता है (अर्थात् गर्भ-विकृति एवं वन्ध्यत्व असात्म्य प्रयोग-जन्य होते हैं)। जब तक असात्म्य का सेवन करने वाले स्त्री-पुरुष के प्रकुपित हुए तीनों दोष शरीर में उपसर्पण करते हुए शोणित-शुक्र एवं गर्भाशय को दूषित नहीं करते, तब तक वे स्त्री-पुरुष गर्भोत्पादन में समर्थ होते हैं (अर्थात् असात्म्य सेवन से जब शुक्र-शोणित या गर्भाशय दुष्ट होगें तभी गर्भोत्पादन में असमर्थता होती है अन्यथा नहीं)। अविकृत शुक्र, शोणित एवं गर्भाशय वाले सात्म्यसेवी पुरुष-स्त्री द्वारा ऋतुकाल में संयोग करने पर भी जीव के अवक्रमण न करने से गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती, अर्थात् जीव के अवतरण होने पर ही गर्भाधान होता है।

The *sātmya* is important for conception. Without use of noncongenial articles neither the couple is sterile nor fetus has any abnormalities. Till the *doṣas* getting vitiated due to

Scanned with CamScanner

the use of noncongenial article and spreading through body do not vitiate sperms, ovum and uterus, the couple can acheive conception. The couple possessing healthy sperms, ovum and uterus, consuming only congenial articles and copulating during fertile period (*ṛtukālā*) will not achieve conception if the *jīva* (life or soul) does not descend. in other words the conception will result only after descent of *jīva*.

***(ई २) गर्भ के सात्म्यज भाव** (Features developing from sātmya)*

यानि खल्वस्य गर्भस्य मात्म्यजानि, यानि चास्य सात्म्यतः संभवतः संभवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा– आरोग्यमनालस्यमलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसादः स्वरवर्णबीजसम्पत् प्रहर्षभूयस्त्वं चेति (सात्म्यजानि)।

(च० सं० शा० ३/११)

वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ (सु० सं० शा० ३/३३)

मात्म्यजान्यायुरारोग्यमनालस्यमलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसादस्वरवर्णबीजौजःसम्पत्प्रशस्तताः प्रहर्षभूयस्त्वं मेधाबलं च॥ (अ० सं० शा० ५/१७)

'सात्म्यजं' त्वायुरारोग्यमनालस्यं प्रभा बलं ॥ (अ० हृ० शा ३/६)

आरोग्यं चोत्थानं च संतोषश्चेन्द्रियप्रसादश्च स्वरवर्णबीजसम्पच्च मेधा च प्रहर्षभूयिष्ठता चेति सात्म्यजानि॥

(का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक लिखते हैं कि जो गर्भ के सात्म्यज भाव हैं या जो भाव गर्भोत्पत्ति के समय सात्म्य से उत्पन्न होते हैं उनकी व्याख्या की जाती है, जैसे– आरोग्य, अनालस्य (उत्साह या कार्यशक्ति), अलोलुपत्व, इन्द्रियप्रसाद, स्वर, वर्ण एवं बीज का सम्पत् (शुद्ध) होना तथा सदा आनन्द की अधिकता होना आदि सात्म्यज भाव हैं।

वीर्य, आरोग्य, बल, वर्ण एवं मेधादि भाव महर्षि सुश्रुत के मत से सात्म्यज हैं।

अष्टाङ्गसंग्रह-मतानुसार आयु, आरोग्य, अनालस्य, अलोलुपता, इन्द्रियप्रसाद, स्वर, वर्ण, वीर्य एवं ओज का सम्पत् (शुद्ध) एवं प्रशस्त (श्रेष्ठ) होना, सदा आनन्दातिरेक, मेधा एवं बल आदि सात्म्यज भाव हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने आयु, आरोग्य (धातु-सात्म्य), अनालस्य (उत्साह), प्रभा (कांति) एवं बल (शक्ति) को सात्म्यज भाव माना है। टीकाकार अरुणदत्त ने तीन प्रकार के सात्म्य (व्याधि, देश एवं देह) में से यहाँ पर देश एवं देह सात्म्य को ही प्राधान्य माना है तथा उपर्युक्त गुणों को उपलक्षण मात्र मानकर अलोलुपत्व, इन्द्रिय-प्रसाद, स्वर, वर्ण, वीर्य एवं ओज की सम्पतता तथा प्रहर्ष आदि को भी सात्म्यज माना है।[1]

आरोग्य, उत्थान (उन्नति), संतोष, इन्द्रिय-प्रसाद, स्वर, वर्ण एवं बीज की सम्पतता (शुद्धि), मेधा एवं आनन्दातिरेक आदि भावों का सात्म्यज भावों के अन्तर्गत महर्षि काश्यप ने वर्णन किया है।

Features developing from *sātmya* as given by authors are given hereunder :

Features	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*
Freedom from diseases	+	+	+	+	+

cont. ....

१. सात्म्यं द्विविधम्, व्याधिसात्म्यं देहसात्म्यं देशसात्म्यं च। तत्रेह व्याधिसात्म्यं न गृह्यते। ·····। तस्मादेशसात्म्यं देहसात्म्यं च गृह्यते ·····। उपलक्षणं चेदम्। अलोलुपत्वेन्द्रियप्रसादस्वरवर्णबीजःसम्पत्प्रहर्षाद्यपि हि सात्म्यजमेव॥ (अ० हृ० शा० ३/६ की अरुण० टी०)

Features	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*
Absence of idleness	+	—	+	+	—
Absence of greed	+	—	+	+*	—
Normal voice	+	—	+	+*	+
Normal complexion	+	+	+	+*	+
Normal seed	+	—	+	+*	+
Constant happiness	+	—	+	+*	+
Brain	—	+	+	—	+
Perspicuity of *indriyas*	+	—	+	+*	+
High quality *oja*	—	—	+	+*	—
Longevity	—	—	+	+	—
Strength or energy	—	+	+	+	—

*Mentioned by Aruṇadatta.

Besides these, Suśruta has included vigour or valour, Vāgbhaṭa II radiance or splendour and Kāśyapa elevation or progress and satisfaction in the list.

***(उ १) गर्भोत्पत्ति में रस की कारणता** (Rasa as a factor in embryogenesis)*

रसजश्चायं गर्भः। न हि रसादृते मातुः प्राणयात्राऽपि स्यात्, किं पुनर्गर्भजन्म। न चैवासम्यगुपयुज्यमाना रसा गर्भमभिनिर्वर्तयन्ति ॥ (च० सं० शा० ३/१२)

यह गर्भ रसज है। रस के बिना माता ही जीवित नहीं रह सकती तो गर्भ का जन्म कैसे संभव है। असम्यक् रूप से प्रयुक्त रस गर्भ को उत्पन्न करने में असमर्थ होता है।

The conception is effected by *rasa*. Without *rasa* even mother can not survive, so the question of conception (without *rasa*) does not arise. Improper utilization of *rasa* can not cause conception.

***(उ २) गर्भ के रसज भाव** (Features arising due to rasa)*

यानि तु खल्वस्य गर्भस्य रसजानि; यानि चास्य रसतः संभवतः संभवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा– शरीरस्याभिनिर्वृत्तिरभिवृद्धिः प्राणानुबन्धस्तृप्तिः पुष्टिरुत्साहश्चेति (रसजानि) ॥ (च० सं० शा० ३/१२)

शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि ॥ (सु० सं० शा० ३/३३)
रसजानि कृत्स्नस्य देहस्य सम्भवो वृत्तिर्वृद्धिस्तृप्तिरलौल्यं पुष्टिरुत्साहश्च ॥

(अ० सं० शा० ५/१८)

'रसजं' वपुषो जन्म वृत्तिर्वृद्धिरलोलता ॥ (अ० हृ० शा० ३/६)
शरीराभिनिर्वृत्तिश्च शरीराभिवृद्धिश्च प्राणाश्च बन्धश्च वृत्तिश्च पुष्टिश्चोत्साहश्चेति रसजानि॥

(का० सं० शा० ३/४)

महर्षि चरक के मतानुसार गर्भ के जो रसज भाव हैं या गर्भोत्पत्ति के समय रस से जो जो भाव उत्पन्न होते

Scanned with CamScanner

हैं उनकी व्याख्या की जाती है जैसे–शरीर की उत्पत्ति या अंग प्रत्यंग-व्यक्तता[1] एवं वृद्धि, शरीर का प्राणों से अनुबन्ध[2] या संबन्ध या बलानुबन्ध, तृप्ति, पुष्टि (उपचय) एवं उत्साह (बल) आदि रसज भाव हैं। टीकाकार चक्रपाणि वर्ण को भी रसज मानते है।[1]

शरीर का उपचय या पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिति (स्वास्थ्य) हानि (अस्वास्थ्य) प्रभृति महर्षि सुश्रुतोक्त रसज भाव हैं।

अष्टाङ्गसंग्राहकार ने निम्न रसज भाव वर्णित किये हैं–गर्भ के सम्पूर्ण शरीर की उत्पत्ति, वृत्ति (गर्भ की गर्भाशय में जीविका), वृद्धि (गर्भ की वृद्धि), तृप्ति, अलोलुपता, पुष्टि एवं उत्साह आदि।

सम्पूर्ण शरीर का जन्म, वृत्ति (गर्भ की जीविका), वृद्धि (गर्भ की वृद्धि) एवं अलोलुपता आदि अष्टाङ्गहृदयकार के मतानुसार रसज भाव हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने उपर्युक्त गुणों को उदाहरण स्वरूप मानकर उत्साह, पुष्टि एवं तृप्ति को भी रसज माना है।[2]

महर्षि काश्यप ने चरकानुसार ही शरीर की उत्पत्ति एवं वृद्धि, प्राण, वृत्ति, पुष्टि एवं उत्साह को रसज माना है।

आचार्य भावमिश्र ने शरीर के उपचय, बल, वर्ण एवं देहस्थिति को रसज भाव माना है।[3]

Psychophysical features derived from *rasa* are :

Features	*CS*	*SS*	*AS*	*AH*	*KS*
Origin of body or manifestation of different body parts	+	—	+	+	—
Growth of body	+	+	+	+	+
Attachment of life or strength with body	+	—	—	—	+
Contentment	+	—	+	+*	+
Nourishment	+	—	+	+*	+
Enthusiasm or zeal	+	—	+	+*	—
Energy or strength	—	+	—	—	—
Health	—	+	—	—	—
Unhealthy state	—	+	—	—	—
Complexion	+**	+	—	—	—
Maintenance of body	—	—	+	+	+
Non-greediness	—	—	+	+	—

Mentioned by *Aruṇadatta or **Cakrapāṇi.

Bhāwaprakāśa book has followed Suśruta.

१. अभिनिर्वृत्तिः अङ्गप्रत्यङ्गव्यक्तता। प्राणानुबन्ध इति बलानुबन्धः। पुष्टिः उपचयः।''' ''' '''। उत्साहः बलम्। इति शब्दः प्रकारे; तेनैवं प्रकाराण्यन्यान्यपि वर्णादीनि रसजानीति दर्शयति॥ (च० सं० शा० ३/१२ की चक्र० टीका)

२. उदाहरणमात्रं चेदम्। उत्साहपुष्टितृप्तयोऽपि हि रसजा एव। (अ० हृ० शा० ३/६ की अरुण० टी०)

३. शरीरोपचयो वर्णो बलं देहस्थितिस्तथा। रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३१८)

विमर्श (Comments)

आत्मज, सात्म्यज एवं रसज भावों का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं-कहीं पुनरुक्ति दोष है, जैसे आयु को अष्टाङ्गसंग्रहकार ने आत्मज एवं सात्म्यज दोनों ही वर्गों में वर्णित किया है, इसी भाँति स्वर, वर्ण, अलोलुपता आदि भावों का भी दो-दो वर्गों में वर्णन है, इसका कारण संभवतः इन भावों की उत्पत्ति में दोनों ही कारणों की उपस्थिति है जैसे अलोलुपता रसज एवं सात्म्यज दोनों हैं इसी प्रकार स्वर एवं वर्ण की उत्पत्ति आत्मा एवं सात्म्य दोनों से ही होती है आदि।

There is duplication of certain components of body derived from various factors, such as *āyu*, voice and complexion etc. have been enumerated under *ātmā* and *sātmya* both, It is possible that in the development of these *āyu* etc. components both factors i.e., *ātmā* and *sātmya* participate.

(ऊ १) गर्भोत्पत्ति में सत्व (मन) की कारणता (Satwa or mana as a factor in embryogenesis)

अस्ति खलु सत्त्वमौपपादुकं; यज्जीवं स्पृक्शरीरेणाभिसंबध्नाति॥ (च० सं० शा० ३/१३)

सत्व निश्चित ही औपपादुक है (अर्थात् पूर्वजन्म के शरीर से संबन्ध करने वाला है), क्योंकि सत्व जीव का सदा स्पर्श करते हुए शरीर से संबन्ध स्थापित करता है (अर्थात् मन के आत्मा के साथ नित्य संबन्ध से ही संसार चलता है मन का संबन्ध विच्छेद होने पर आत्मा स्वतन्त्र हो मोक्ष को प्राप्त हो जाती है)।

Satwa is definitely self-produced or has relation with the body of previous life. The *satwa* being constantly associated with *jīva* establishes link with the present body (*ātmā* takes birth only due to association of *mana*, once dissociated, *ātmā* attains salvation).

(ऊ २) गर्भ में मन (सत्व) से उत्पन्न भाव या गर्भ के सत्वज भाव (Features developing from mana or satwa)

यानि खल्वस्य गर्भस्य सत्त्वजानि, यान्यस्य सत्त्वतः संभवतः संभवन्ति, तान्यनुव्याख्यास्यामः; तद्यथा–भक्तिः शीलं शौचं द्वेषः स्मृतिर्मोहस्त्यागो मात्सर्यं शौर्यं भयं क्रोधस्तन्द्रोत्साहस्तैक्ष्ण्यं मार्दवं गाम्भीर्यमनवस्थितत्वमित्येवमादयश्चान्ये, ते सत्त्वविकारा यानुत्तरकालं सत्त्वभेदमधिकृत्योपदेक्ष्यामः॥ (च० सं० शा० ३/१३)

शुद्ध सत्त्वजानि शौचमास्तिकत्वं कृतज्ञता दाक्षिण्यं व्यवसायः शौर्यं गाम्भीर्यं बुद्धिर्मेधा स्मृतिः शुक्लधर्मरुचिर्भक्तिरनभिष्वङ्गस्तमोगुणविपर्ययश्च॥ (अ० सं० शा० ५/१९)

'सात्त्विकं' शौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः॥ (अ० हृ० शा० ३/७)

महर्षि चरक ने सत्वज भावों का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भ के सत्वज भावों की और उत्पन्न होते हुए गर्भ में सत्व से उत्पन्न होने वाले भावों की व्याख्या की जाती है। जैसे-भक्ति, शील, पवित्रता, द्वेष, स्मृति, मोह, त्याग, मात्सर्य, शौर्य, भय, क्रोध, तन्द्रा, उत्साह, तीव्र, मृदु या गम्भीर स्वभाव का होना, मन की चञ्चलता आदि अन्य सभी भाव सत्वज कहे गए हैं। अग्रिम अध्याय (शा० ४) में सत्वभेद के (मानसिक प्रकृतियों के) आधार पर वर्णित भाव भी सत्वज विकार कहे जाते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि सत्वज भावों को आगे वर्णन करूँगा[1], जिसकी व्याख्या में टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि गर्भ व्याकरण अध्याय में वर्णित हैं। इस अध्याय में शुद्ध सात्विक, राजस एवं तामस प्रकृतियों का वर्णन है।[2]

१. सत्वजान्युत्तरत्र वक्ष्यामः (उत्तरत्र गर्भव्याकरणे - डल्ह०)। (सु० सं० शा० ३/३३)

२. सु० सं० शा० ४/८१-९८

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गसंग्रहकार के मतानुसार शुद्ध सत्वज भाव शौच या पवित्रता, आस्तिकता, कृतज्ञता, कुशलता या दक्षता, व्यवसाय या काम को तत्परता, शौर्य, गंभीरता, बुद्धि (ग्रहणशक्ति), मेधा (प्रज्ञा या धारणशक्ति), स्मृति, स्वच्छता, धर्म में रुचि, भक्ति, काम-क्रोधादि के त्याग की क्षमता एवं तमोगुण विपरीतता हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार के मत से पवित्रता, आस्तिकता, धर्म में रुचि एवं मति या बुद्धि सत्वज भाव हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने वाक्, काय एवं मन तीनों ही की पवित्रता के साथ उपर्युक्त गुणों को उपलक्षण मात्र मानकर कृतज्ञता, दाक्षिण्य, व्यवसाय, शौर्य, गांभीर्य, स्मृति, एवं मेधा आदि को भी सत्वज माना है।[1]

Caraka has enumerated devotion, disposition or habit, piousness, hatred, memory, infatuation, sacrifice or abnegation, jealousy, prowess, fear, anger, drowsiness, zeal, hot-subtle or good temper and unsteadiness of *mana* (psyche). He, writes further that the features described under psychic constitution are also features of *satva*.

Suśruta says that features described under psychic constitution should be taken here.

Vāgbhaṭa I has mentioned piousness, belief in existence of god, gratitude, dexterity, quickness for work, prowess, sobriety, *buddhi* (knowledge), *medhā* (brain or intelligence), memory, cleanliness, interest in religion, devotion, capability of giving up sexuality and anger and the qualities opposite to *tamas*.

Vāgbhaṭa II has mentioned piousness, belief in existence of god, cleanliness, interest in religion and *buddhi*, Aruṇadatta has added pioüsness of words, deeds and thoughts, gratitude, dexterity, business, sobriety, memory and intelligence to the list.

(ऊ ३) गर्भ के राजस भाव (Features developing from raja)

राजसानि दुरुपचारता अनार्यत्वं शौर्यं मात्सर्यमपितभाषित्वमहङ्कारो लोलुपत्वं दम्भी मानः क्रोधो हर्षः कामश्च॥ (अ० सं० शा० ५/२०)

'राजसं' बहुभाषित्वं मानक्रुद्दम्भमत्सरम्॥ (अ० ह० शा० ३/७)

दुरुपचारता अर्थात् दूसरों से दुर्व्यवहार करना, अनार्यत्व, शौर्य, मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या या द्वेष, बहुत बोलना, अहंकार, लोलुपता, दम्भ, मान, क्रोध, हर्ष एवं काम आदि राजस भाव हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने बहुभाषित्व, मान, क्रोध, दंभ एवं मात्सर्य की गणना राजस भावों में की है। टीकाकार अरुणदत्त ने इन सभी गुणों को उपलक्षण मात्र मानकर शौर्य, दुरुपचारता, लोलुपत्व, हर्ष एवं काम आदि को भी राजस माना है।[2]

Talkativeness, arrogance, anger, ego and jealousy are the features derived from *raja* according to Vāgbhaṭa I and II. Others such as prowess, misbehaviour with others, greed, happiness and sexuality have been added by Vāgbhaṭa I and Aruṇadatta, besides these Vāgbhaṭa I has included unworthiness or vileness and pride also in the list.

(ऊ ४) गर्भ के तामस भाव (Features derived from tama)

तामसान्यज्ञानं विषादः प्रमादो निद्राऽऽलस्यं क्षुत्तृष्णा शोको मात्सर्यं विप्रतिपत्तिः पराभिसन्धानं सत्त्वगुणवैपरीत्यं च॥ (अ० सं० शा० ५/२१)

१. शौचं-वाक्कायमनसां शुद्धि,·····उपलक्षणं चेदम्। कृतज्ञतादाक्षिण्यव्यवसायशौर्यगाम्भीर्यस्मृतिमेधादयोऽपि हि सात्त्विका एव। (अ० ह० शा० ३/७ की अरुण० टी०)

२. उपलक्षणं चेदम्। शौर्यदुरुपचारतालोलुपत्वहर्षकामादयोऽपि राजसा एव। (अ० ह० शा० ३/७ की अरुण० टी०)

'तामसं' भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता॥ (अ० ह० शा० ३/८)

अज्ञान, विषाद, निद्रा, आलस्य, क्षुधा, तृष्णा, शोक, मात्सर्य, दूसरों के साथ विरोध एवं दूसरों में फूट डालना तथा सत्व गुण के विपरीत आचरण तामस भाव हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार के अनुसार भय, अज्ञान, निद्रा, आलस्य एवं विषाद तामस भाव हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने इन सभी को उपलक्षण मात्र मानकर प्रमाद एवं शोक आदि को भी तामस माना है[1]।

Ignorance, dejection, sleep, laziness are the features described to be arising from *tama* by Vāgbhaṭa I and II. Vāgbhaṭa I has added carelessness, hunger, thirst, sorrow, jealousy, opposition with others, creation of discord among others and behaviour opposite to *satwa* in the list. Aruṇadatta has included carelessness and sorrow and Vāgbhaṭa II the fear.

विमर्श (Comments)

सत्व, रज एवं तम ये तीनों मानस प्रकृतियाँ कही गई हैं, रज एवं तम मन के दोष या विकार हैं। महर्षि चरक, सुश्रुत एवं काश्यप द्वारा गर्भ के घटकों में वर्णित सत्व शुद्ध मन का द्योतक है, अतः भावों की गणना करते समय महर्षि चरक ने शुद्ध सत्व के साथ ही रज एवं तम रूपी विकारों से उत्पन्न भावों का भी संक्षेप में उल्लेख कर दिया है। आगे शरीरस्थान के 'महती गर्भावक्रान्ति' नामक चौथे अध्याय में मन के तीनों सात्विक, राजस एवं तामस भेद बताकर इनके संयोग से उत्पन्न सोलह मानस प्रकृतियों का वर्णन है। महर्षि सुश्रुत ने "सत्वजान्युत्तरत्र वक्ष्यामः" (सु० सं० शा० ३/३३) लिखकर शारीरस्थान के चतुर्थ अध्याय में ८१ से ९८ वें श्लोक के अन्तर्गत विभिन्न मानस प्रकृतियों का वर्णन किया है। महर्षि वाग्भट ने सत्व (मन) से उत्पन्न होने वाले गर्भ के भावों को शुद्ध मन या सत्व तथा दोनों दोषों अर्थात् रज एवं तम के अन्तर्गत विभाजित कर वर्णन किया है, अतः वास्तव में इन आचार्यों के वर्णनों में कोई मतभेद नहीं है। अप्रासंगिक होने के कारण चरक एवं सुश्रुतोक्त विभिन्न मानस प्रकृतियों का वर्णन यहाँ नहीं किया गया है जब कि संक्षिप्त रूप में वर्णित वाग्भट का मत उद्धृत कर दिया गया है।

मेधा, स्मृति, बुद्धि, काम, क्रोध, आदि अनेक भावों का वर्णन आचार्य आत्मज भावों के अन्तर्गत भी कर चुके हैं, जिसका कारण इन भावों की उत्पत्ति में आत्मा एवं मन दोनों का ही योगदान होना है।

The *satwa*, *raja* and *tama* are the *mānasa prakṛtis* (psychic constitution); other authors have elaborated these under different contexts, since Vāgbhaṭas have mentioned these along with general embryology, hence the same have been given here. *Medhā, smṛti, buddhi,* anger etc. features have been included even under *ātmaja bhāwas*. It is possible that in the development of these features both the factors i. e. *ātmā* and *satwa* or *raja* participate.

(३) गर्भ के मन के सात्विक, राजस आदि होने का कारण (The cause of dominance of mana with satwa, raja etc)

सत्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां तेषां प्राणिनां मातापितृसत्त्वान्यन्तर्वत्न्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितं च कर्म सत्त्वविशेषाध्यासश्चेति॥ (च० सं० शा० ८/१६)

सत्त्वविशेषकराणि पुनर्मातापितृसत्त्वान्यन्तर्वत्न्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितं कर्म भवति पूर्वाभ्यासश्चेति॥ (अ० सं० शा० १/६६)

१. उपलक्षणं चेदम्। प्रमादशोकादीन्यपि तामसान्येव॥ (अ० ह० शा० ३/८ की अरुण० टी०)

Scanned with CamScanner

गर्भ के मन के सात्विक, राजस आदि होने के कारणों का स्पष्टीकरण करते हुए महर्षि चरक ने लिखा है कि गर्भ में मन उन उन प्राणियों के माता-पिता के मन, गर्भिणी के द्वारा सुने जाते हुए विषय, अपने पूर्वजन्म के कर्म एवं सत्व के अभ्यास के अनुरूप होता है।

महर्षि वाग्भट ने चरकोक्त वर्णन का ही अक्षरशः अनुसरण किया है।

The *mana* of fetus attains the characters of *satwa, raja* and *tama* etc. depending upon the psychological status of the mother and father, the topics being listened by the pregnant woman, the influence of deeds of the previous life and specific practice of *mana*.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन व्यक्ति की मानसिक प्रकृति के निर्माण का स्पष्टीकरण करने के तात्पर्य से आचार्यों ने दिया है, उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकृति-निर्माण के चार कारण निर्धारित किये हैं। (१) माता या पिता की मानसिक प्रकृति का प्रभाव (२) गर्भावस्था के समय सुनी हुई कथाओं आदि से हुए माता के मानसिक परिवर्तन का प्रभाव (३) पूर्वजन्म-कर्म (४) अभ्यास अर्थात् जन्मोपरांत व्यक्ति जिस प्रकार के आचरण करने का प्रयत्न करे उसका परिणाम।

The psychological personality of individual developes due to four factors as described above. The specific practice probably refers to the actions done by individual after birth which depend upon the environment and these influence the psychological build up.

मनुष्य से मनुष्य की ही उत्पत्ति का कारण (The cause of progeny being of similar species)

तत्र जरायुजानामण्डजानां च प्राणिनामेते गर्भकरा भावा यां यां योनिमापद्यन्ते, तस्यां योनौ तथातथारूपा भवन्ति; यथा–कनकरजतताम्रत्रपुसीसकाऽऽसिच्यमानानि तेषु तेषु मधूच्छिष्टविग्रहेषु, तानि यदा मनुष्यविग्रहमापद्यन्ते तदा मनुष्यविग्रहेण जायन्ते, तस्मात् समुदायप्रभवः सन् गर्भो मनुष्यविग्रहेण जायते; मनुष्यश्च मनुष्यप्रभव उच्यते, तद्योनित्वात्॥ (च० सं० शा० ३/१६)

कार्याणां च कारणानुविधायित्वात्तत्स्वभावतां प्रतिपद्यते॥ (अ० सं० शा० २/४)

कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वभावता। नानायोन्याकृतिः सत्त्वो धत्तेऽतो द्रुतलोहवत्॥
(अ० हृ० शा० १/४)

जातौ जातौ खलु स्वभाव एवाकृतिभेदनिर्वर्तयिता भवति। ·····। समत्यके धातुरिव निषिक्तः पुरुषः पुरुषमभिनिर्वर्तयति, गौर्गामश्वोऽश्वमेवमादि। नृणामपि तु मध्ये गर्भनिर्वृत्तिः। तत्र द्वयोर्दम्पत्योः स्वभावात् स्वकर्मपरिणामाद्वा प्रजाभिवृद्धिर्भवति॥ (का० सं० शा० ५/३)

गर्भकर भाव तो सभी प्राणियों के एक सदृश ही होते हैं, फिर मनुष्य से मनुष्य की ही उत्पत्ति क्यों होती है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं कि जरायुज और अण्डज प्राणियों के गर्भकर भाव जिस जिस योनि को प्राप्त करते हैं उस उस योनि में जाकर उसके स्वरूप को ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार स्वर्ण, रजत, ताम्र, त्रपु (रांगा), शीशा आदि को गलाकर मोम के साँचे में ढाल दिया जाय तो जिस प्रकार का साँचा रहेगा वैसा आकार ग्रहण करेंगे। उन (स्वर्णादि) को यदि मनुष्य के साँचे में ढाला जाय तो मनुष्य की आकृति के बन जायेंगे। अतः समुदायप्रभव (मातादि षड्भावों का गर्भ) जब मनुष्य में प्रवेश करता है तो मनुष्य की उत्पत्ति होती है अतः उस योनि का होने से मनुष्य प्रभव कहा जाता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि कारण के अनुसार ही कार्य होता है। टीकाकार इन्दु ने स्पष्ट किया है कि कार्य

कारण के ही स्वरूप का अनुगमन करता है, जिस प्रकार तिल से तिल ही उत्पन्न होता है माष नहीं, उसी प्रकार गर्भ के कारण स्वरूप माता, पिता, महाभूत, देश, काल, गर्भाशय एवं माता का आहार-विहारादि क्रम रूपी कारणों से उसी स्वरूप का गर्भ उत्पन्न होगा।[1]

अष्टाङ्गहृदयकार के मत से भी कारण के अनुसार स्वभाव से ही कार्य होता है जिस प्रकार पिघला हुआ लोहा विभिन्न साँचों में पड़कर उसकी आकृति को धारण कर लेता है उसी प्रकार स्वभाव से ही सत्व विभिन्न योनियों में जाकर उसका स्वरूप धारण करता है।[2]

महर्षि काश्यप ने उपर्युक्त दृष्टिकोण का ही समर्थन किया है, उन्होंने लिखा है कि उत्पन्न हुए प्रत्येक जीव में स्वभाव से ही आकृति भेद होता है। जिस प्रकार साँचे में ढला हुआ पुरुष पुरुष को, गौ गौ को, अश्व अश्व को उत्पन्न करता है उसी प्रकार मनुष्यों में भी गर्भ की निर्वृत्ति होती है।

Replying to the question that when all six basic factors responsible for conception are similar in all the species, then why from human couple a human child is born ? Caraka says that all the six factors of conception when enter in any species taking birth through placentation or egg, attain characters of the same species in the same way as liquified gold, silver, copper, zink or lead poured in a mould of bee wax acquire the shape of the same mould. If these are poured in man shaped mould then these gold etc. will acquire the shape of a man. Similarly when all these six factors collectively enter the human body, the birth of a human child occurs. Being of the same species, it is said that from man a man is born.

Both the Vāgbhaṭas have mentioned that action or result depends upon its means due to its specific nature. Indu has explained that as from *tila* seeds only *tila* plant will grow not the *māṣa* (a type of kidney been), similarly from collective efforts of mother, father, *bhūtas*, dwelling place, time, uterus and dietetics of the mother, the resultant conception would be of similar shape. Vāgbhaṭa II and Kāśyapa have also given similarity of mould etc. as explained by Caraka.

जरायु की उत्पत्ति (Formation of placenta)

गृहीतगर्भाणामार्तववहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण, तस्माद् गृहीतगर्भाणामार्तवं न दृश्यते। ततस्तदधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरंचोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते॥ (सु० सं० शा० ४/२४)

तस्याश्च रजोवाहिनां स्रोतसां वर्त्मान्युपरुध्यते गर्भेण। तस्मात्ततः परमार्तवं न दृश्यते। ततस्तदधः-प्रतिहतमपरमपरं चोपचीयमानमपरेत्याहुः जरायुरित्यन्ये॥ (अ० सं० शा० २/१०)

गर्भाधान हो जाने पर गर्भ के द्वारा आर्तववह स्रोतस् के मुख अवरुद्ध हो जाते हैं, इसीलिए गर्भाधान के बाद आर्तव (मासिक रजःस्राव) नहीं दिखाई देता। तत्पश्चात् अधोभाग से प्रतिहत हुआ आर्तव ऊपर के भाग में जाकर एकत्रित हो

१. कार्यं हि कारणस्य स्वरूपमनुगच्छति, तथा च तिलेभ्यस्तिला एव जायन्ते न माषाः, कारणं च यद्गर्भस्य मातृपितृमहाभूतदेशकालगर्भाशयमात्राहारादिकम्, तस्य कारणस्य स्वरूपानुगमनाद्गर्भस्य तदाकृत्यादिमतश्च संभवः तत एव कारणवशादाकृत्यादिवैलक्षण्यम्॥(अ० सं० शा० २/४ की इन्दु टी०)

२. द्रुतलोहवत्। यथा रूप्यादिवस्तुजातमग्निना द्रुतरूपतां गतमेकरूपमेव सिक्थादिकल्पितायां नानारूपायां मनुष्याद्याकृतौ तन्निषिक्तं तां तामाकृतिं यथाकल्पितां धत्ते, एवं स सत्त्वो नानायोनौ गच्छति, तां तां यथास्वमाकृतिं धारयति।
(अ० हृ० शा० १/४ की अरुण० टी०)

Scanned with CamScanner

जाता है एवं अपरा नाम से कहा जाता है। टीकाकार डल्हण ने अन्यत्र भोज-वाक्य उद्धृत करते हुए रक्त से जरायु की तथा रस से गर्भ की नाभिनाड़ी की उत्पत्ति मानी है क्योंकि उनके कथनानुसार गर्भ रस एवं रक्तवाहिनियों दोनों का ही अवरोध कर देता है।[1]

महर्षि वाग्भट ने महर्षि सुश्रुत के ही कथन का शब्दभेद से वर्णन करते हुए अपरा का अन्यों के द्वारा कहा जाने वाला जरायु नाम भी दिया है। टीकाकार इन्दु ने आहार-परिणाम का भी प्रभाव अपरा-निर्माण में माना है।[2]

आचार्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त आशय का ही वर्णन दिया है।[3]

After impregnation the openings of *ārtavavaha srotasas* are obstructed by conception, due to this very reason the *ārtava* (menstruation) is not seen after conception. Then this very *ārtava* being repelled from downward passage goes upward and gets accumulated, which is known as *aparā* or *jarāyu*. Dalhana quoting the passage of Bhoja says that from *rakta* (blood) placenta and from *rasa* the umbilical cord of fetus is formed. Indu opines that besides the accumulation of *ārtava*, the diet (used by mother) also plays a role in gradual formation of placenta.

विमर्श (Comments)

आधुनिक विज्ञान-दृष्ट्या रजःस्राव के रक्त का अपरा के निर्माण में कोई योगदान नहीं होता। संभवतः आचार्यों ने गर्भावस्था में विद्यमान अनार्तव एवं रक्त के एक स्कन्द-सदृश हो अपरा की आकृति देखकर दोनों का सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न कर उपर्युक्त वर्णन दिया है। दोनों ही अवस्थाओं का शारीरिक अङ्गरसों की दृष्टि से वर्णन पूर्वपृष्ठों में दिया जा चुका है।

यदि आर्तववह स्रोतस् अवरोध को एक उपलक्षण मानकर आर्तव अर्थात् क्षरित स्त्रीबीज के बाद निर्मित कार्पस लूटियम की परिक्षय प्रक्रिया का अवरोध माने तो स्पष्ट हो जाता है क्योंकि इस कार्पस लूटियम से स्रवित अङ्गरस अपरा निर्मिति के लिए अत्यावश्यक होते हैं।

Menstrual blood does not take any part in the formation of placenta. It is possible that presence of amenorrhoea and naked eye appearance of placenta like a big blood clot is the source of this description. Correlation of both on the basis of hormones has already been given in chapter 2.

If with obstruction of *ārtavavaha srotas*, the obstruction in the process of decline of corpus luteum, the source of *ārtava* (ovum) is taken, then the description becomes very clear as the progesteron secreted by corpus luteum is very important to placentation.

१. तथा च भोजः-गर्भो रुणद्धि स्रोतांसि रसरक्तवहानि वै।
रक्ताज्जरायुर्भवति नाड़ी चैव रसात्मिका॥ (सु० सं० शा० ३/३१ की डल्हण टी०)

२. तदेव चार्तवमधोगमने गर्भेण प्रतिहतमाहारपरिणामाच्च प्रतिदिनमुपचीयमानं ·····(अ० सं० शा० २/१० की इन्दु टी०)

३. गृहीतगर्भाणां स्त्रीणामार्त्तववहानां स्रोतसां गर्भेणावरोधादार्तवं न स्रवति। किन्तु तदेवाधःप्रतिहतमूर्ध्वमागतमुपचीयमानमपरा भवति। (भा० प्र० पूर्व० ३/२०६)

गर्भ का पोषण (Fetal nourishment)

मात्रादीनां खलु गर्भकराणां भावानां संपदस्तथा वृत्तस्य सौष्ठवान्मातृतश्चौपस्नेहोपस्वेदाभ्यां कालपरिणामात् स्वभावसंसिद्धेश्च कुक्षौ वृद्धिं प्राप्नोति॥ (च० सं० शा० ४/२७)

व्यपगतपिपासाबुभुक्षस्तु खलु गर्भः परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य वर्तयत्युपस्नेहोपस्वेदाभ्यां गर्भाशये सदसद्भूताङ्गावयवः, तदनन्तरं ह्यस्य कश्चिल्लोमकूपायनैरुपस्नेहः कश्चिन्नाभिनाड्ययनैः। नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता, नाड्यां चापरा, अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये, मातृहृदयं ह्यस्य तामपरामभिसंप्लवते सिराभिः स्यन्दमानाभिः; स तस्य रसो बलवर्णकरः संपद्यते, स च सर्वरसवानाहारः। स तेनाहारेणोपष्टब्धः (परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य) वर्तयत्यन्तर्गतः॥
(च० सं० शा० ६/२३)

निश्वासोच्छ्वाससङ्क्षोभस्वप्नान् गर्भोऽधिगच्छति। मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससङ्क्षोभस्वप्नसम्भवान्॥
(सु० सं० शा० २/५५)

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाड़ी प्रतिबद्धा, सास्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति। तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति। असङ्घाताङ्गप्रत्यङ्गप्रविभागमानिषेकात् प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणानां रसवहानां तिर्य्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति॥ (सु० सं० शा० ३/३१)

तत्र स्थितश्च गर्भो मातरि स्वपन्त्यां स्वपिति प्रबुद्धायां प्रबुध्यते। परतन्त्रवृत्तेश्च गर्भस्य। निषेकात्प्रभृति गर्भशयोपस्नेहोपस्वेदौ वर्तनम्॥

ततो व्यक्तीभवदङ्गप्रत्यङ्गस्याऽस्य नाभ्यां प्रतिबद्धा नाडी नाड्यमपरा तस्यां मातृहृदयम्। ततो मातृहृदयादाहाररसो धमनीभिः स्यन्दमानोऽपरामुपैति। ततः क्रमान्नाभिम्। ततश्च स पुनर्गर्भस्य पक्वाशये स्वकायाग्निना पच्यमानः प्रसादबाहुल्याद्धात्वादिपुष्टिकरः सम्पद्यते॥ तथा रोमकूपैरुपस्नेहो ·····। (अ० सं० शा० २/३२, ३३)

गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदिनाडी निबध्यते। यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया॥
(अ० हृ० शा० १/५६)

माता आदि (माता, पिता, रस, सात्म्य, सत्व, आत्मा) गर्भकर भावों के सामान्य होने से तथा माता के उपचार[1] (आहार-विहार) के समुचित होने से, माता के द्वारा आए हुए रस से उपस्नेह एवं उपस्वेद के द्वारा काल के परिणाम से स्वाभाविक रूप से अपने कर्म[2] के अनुसार गर्भ वृद्धि को प्राप्त करता है।

गर्भ भूख एवं प्यास से विरहित परतंत्रवृत्ति होता है। वह माता के आश्रित होकर सत् (सूक्ष्म रूप में उपस्थित), असत् (स्थूल रूप में अनुपस्थित) अंगावयव वाला, गर्भाशय में उपस्वेद के द्वारा जीवित रहता है। उसके पश्चात् (अंग प्रत्यंग व्यक्त होने पर) इसका कुछ पोषण लोमकूप-मार्ग द्वारा प्राप्त उपस्नेह से एवं कुछ नाभिनाड़ी-मार्ग से होता है। गर्भ की नाभि से नाड़ी, नाड़ी से अपरा एवं अपरा माता के हृदय से संबद्धित रहती है। माता का हृदय इस अपरा को स्यन्दमान (या परिसरणी) सिराओं के द्वारा आप्लावित करता है। (माता का) आहार सर्वरसवान होता है एवं (उस सर्वरसवान आहार से निर्मित एवं अपरा में स्यन्दित) रस (गर्भ के) बल तथा वर्ण की पुष्टि करता है। इस प्रकार गर्भ उस आहार के आश्रय से (परतंत्र वृत्ति होने के कारण माता के आश्रित हो) अन्तर्गत (गर्भाशय के अन्दर) जीवित रहता है (चि० ६ ब०)।

१. ··· वृत्तस्य मातुराचाररूपस्य ···। (च० सं० शा० ४/२७ की चक्र० टी०)

२. ·····स्वभावसंसिद्धेश्चेति। स्वभावेनैव कर्मजन्येन गर्भो भवति वर्धिष्णुरित्यर्थः॥
(च० सं० शा० ४/२७ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

महर्षि चरक ने माता के द्वारा ही गर्भ के पोषण के स्पष्टीकरणार्थ लिखा है कि गर्भिणी स्त्री द्वारा सेवित अन्नपान से तीन कार्यों के लिए रस का निर्माण होता है, स्वशरीर-पोषण के लिए, स्तन्य की उत्पत्ति के लिए तथा गर्भ के पोषण के लिए; क्योंकि वह गर्भ उसी आहार से पोषित होकर परतंत्रवृत्ति हो माता पर आश्रित रह अन्दर जीवित रहता है।[1]

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार माता के निश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ (क्रियाशीलता) एवं स्वप्न से गर्भ भी निश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ एवं स्वप्न को प्राप्त होता है अर्थात् जो माता निश्वास लेती है उसी से गर्भ को भी निश्वास मिलता है आदि।

माता की रसवहा नाड़ियों से गर्भ की नाभिनाड़ी प्रतिबद्ध रहती है। यह (नाभिनाड़ी) माता के आहार-रस के वीर्य का अभिवहन करती है। उसके उपस्नेह के द्वारा इस गर्भ की वृद्धि होती है। आनिषेक काल से अर्थात् शुक्र के योनि में आनिषेक काल से[2] या गर्भाधान के तत्काल बाद से असंजात अंग-प्रत्यंग-विभागयुक्त (जब तक शरीर के अंग, प्रत्यंग एवं विभाग स्पष्ट नहीं हुए होते) स्थिति तक गर्भ सर्वशरीरावयव को अनुसरण करने वाली तिर्यग्गत रसवाही धमनियों के उपस्नेह से जीवित रहता है (चित्र ६ अ)। इस गद्य के स्पष्टीकरण में टीकाकार डल्हण ने धमनी के उपस्नेह से गर्भ के जीवनधारण की तुलना भरे हुए सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की पोषण-विधि से की है एवं भोजवाक्य को उद्धृत करते हुए लिखा है कि माता के द्वारा प्रयुक्त चतुर्विध (भक्ष्यादि) आहार से उत्पन्न रस के तीन भाग होते हैं स्वशरीर-पोषण, स्तन्योत्पत्ति तथा तीसरे भाग से केदारी-कुल्या न्याय द्वारा गर्भ के पोषण के लिए[3]। टीकाकार डल्हण ने अन्यत्र भी रस से ही गर्भ का पोषण होना माना है।[4]

सुश्रुतोक्त तथा चरकोक्त वर्णन को ही कुछ भेद के साथ अष्टांगसंग्रहकार ने वर्णन किया है कि गर्भ की स्थिति के बाद वह गर्भ माता के सोने से सोता है एवं जगने से जगता है, उसकी परतंत्रवृत्ति होती है अर्थात् वह माता पर आश्रित रहता है। निषेक के काल से (गर्भाधान के काल से) लेकर (अंग-प्रत्यंग के व्यक्त होने तक) गर्भाशय के उपस्नेह एवं उपस्वेद से (गर्भ) जीवित रहता है। टीकाकार इन्दु ने आहारोत्पन्न स्निग्धता से उपस्नेह तथा उत्क्लेद से उपस्वेद शब्द का स्पष्टीकरण दिया है।[5] तत्पश्चात् अंग प्रत्यंग व्यक्त होने पर इसकी (गर्भ की) नाभि से नाड़ी प्रतिबद्ध रहती है, नाड़ी से अपरा तथा अपरा माता के हृदय से। माता के हृदय से आहार-रस धमनियों के द्वारा स्यंदित होकर अपरा को आता है, अपरा से क्रमशः (नाभिनाड़ी द्वारा) नाभि को, उसके बाद (वह रस) गर्भ के पक्वाशय में पहुँचकर उसकी (गर्भ की) कायाग्नि से पच्यमान होकर प्रसाद-बहुल (माता से रस रूप में आए हुए होने के कारण किट्ट का अभाव रहता है) होने के कारण (गर्भ की) धातु आदि का पुष्टिकर होता है (चि० ६ ब$_2$)। साथ ही गर्भ का उपस्नेह द्वारा भी पोषण होता है।

१. स्त्रिया ह्यापन्नगर्भायास्त्रिधा रसः प्रतिपद्यते-स्वशरीरपुष्टये, स्तन्याय, गर्भवृद्धये च। स तेनाहारेणोपष्टब्धः (परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य) वर्तयत्यन्तर्गतः॥ (च० सं० शा० ६/२३)

२. आनिषेकात् प्रभृति इति आ समन्ततो भावेन निषेचनमानिषेको योनौ शुक्रस्य निषेचनं, तत्प्रभृति गर्भाधानं मर्यादीकृत्येथः॥ (सु० सं० शा० ३/३१ की डल्हण टी०)

३. धमनीनामुपस्नेहो जीवयति यथा-पूर्णसरःसलिलोपस्नेहतीरजाततरुकदम्बकं जीवयति तद्वत् प्राणधारणं करोति ··· ···। यद्यदश्नाति माताऽस्य भोजनं हि चतुर्विधम्। तस्मादन्नाद्रसीभूतं वीर्यं त्रिधा प्रवर्तते। भागः शरीरं पुष्णाति स्तन्यं भागेन वर्द्धते। गर्भः पुष्यति भागेन वर्धते च यथाक्रम्। गर्भं कुल्येव केदारं नाड़ी प्रीणाति तर्पिता। इति॥ (सु० सं० शा० ३/३१ का डल्ह० टी०)

४. रसस्य क्रियां निर्दिशन्नाह ··· ··· ··· अन्ये गर्भं तर्पयतीति मन्यन्ते॥ (सु० सं० सू० १४/३ की डल्हण टीका)

५. उपस्नेहः स्निग्धत्वम् उपस्वेद उत्क्लेदः तौ चाहारायत्तौ। (अ० सं० शा० २/३२ की इन्दु टी०)

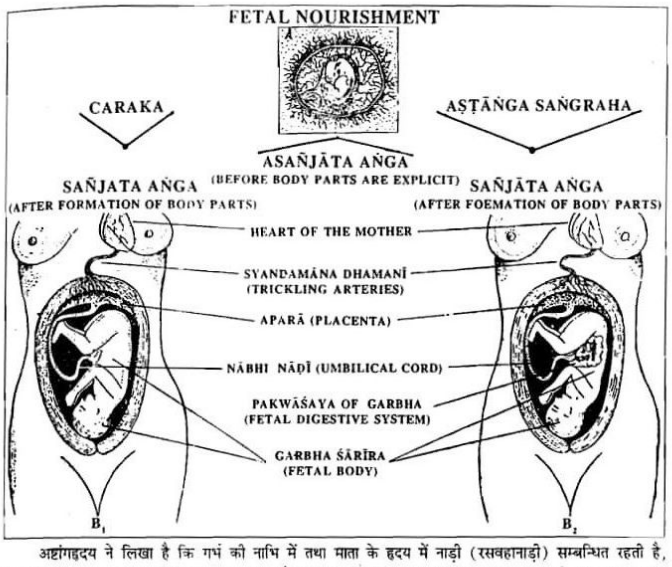

अष्टांगहृदय ने लिखा है कि गर्भ की नाभि में तथा माता के हृदय में नाड़ी (रसवहानाड़ी) सम्बन्धित रहती है, तथा केदारीकुल्या न्याय से गर्भ का पोषण होता है। विषय के स्पष्टीकरणार्थ टीकाकार अरुणदत्त ने अ० सं० वर्णित "व्यक्तीभवत्'····· रोमकूपैरुपस्नेह" आदि सम्पूर्ण वर्णन को ही उद्धृत कर दिया है[1]।

महर्षि काश्यप ने गर्भिणी स्त्री के द्वारा सेवित आहार से ही गर्भ के पोषण का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भिणी स्त्री जो भी अन्नपान सेवन करती है उसके तीन भाग हो जाते हैं, एक माता की पुष्टि के लिए, दूसरा गर्भपोषण के लिए तथा तीसरा स्तन अथवा स्तन्य की पुष्टि के लिए (चरक एवं भेल ने स्तन्य की पुष्टि माना है)। इस प्रकार स्त्री गर्भ का पोषण करती है[2]।

महर्षि भेल ने भी केदारीकुल्या न्याय से ही गर्भ-पोषण माना है[3], तथा चरक सदृश ही अन्नपान से बने रस के तीन

१. (अ० ह० शा० १/५६ की अरुण० टी०)

२. अ) यदन्नपानं प्रायेण गर्भिणी स्त्री निषेवते। रसो निर्वर्तते तादृक् त्रिधा चास्याः प्रवर्तते॥ मातृपुष्ट्यर्थमेकांशो द्वितीयो गर्भपुष्टये। तृतीयः स्तनपुष्ट्यर्थं, नार्या गर्भस्तु पुष्यति॥ (का० सं० सू० १८/६,७)
आ) गर्भमङ्गे भावयति किञ्चित स्तन्याय कल्पते॥ (का० सं० खि० ९/२०)

३. नाभ्यां ना(डी) प्रतिष्ठिता तस्यामपरा मातुर्हृदयमाश्रिता, तथा मातुरन्नरसोभिवर्ह(हृ)न् गर्भं प्रीणयत्यभिवर्धयति। तद्यथा कुल्याः केदारमभिसंश्रयतो(न्त्यो) भावयन्ति तद्वत्॥ (भे० सं० शा० ४/३३)

Scanned with CamScanner

भागों का वर्णन किया है यथा गर्भ के पोषण के लिए, स्तन्य के लिए तथा रस निर्माण के लिए[1]।

आचार्य भावमिश्र ने माता की रसवहा नाड़ी से गर्भ की नाड़ी सम्बद्ध होने से गर्भ की वृद्धि का वर्णन किया है तथा महर्षि सुश्रुत-सदृश ही माता के निश्वास आदि का होना माना है[2]।

Caraka says that with the normalcy of all six factors of conception and use of appropriate diet alongwith mode of life by pregnant woman, the fetus obtaining its nourishment from *rasa* (supplied by mother) by the process of *upasneha* (attracting moisture) and *upasweda* (osmosis) and influenced by time factor alongwith its own nature or desires grows normally.

The fetus does not feel hunger and thirst and is totally dependent upon the mother. In initial stage when its specific body parts though present are not explicit, it obtains its subsistance by attracting moisture and osmosis. Afterwards when body parts are conspicuous, a part of nourishment is obtained by *upasneha* (moisture) permeating through pores of skin situated in hair roots of the body and a part through the passage of umbilical cord. The fetal umbilicus is attached to the umbilical cord, umbilical cord to the placenta and placenta to the mother's heart (fig. $6b_1$). The mother's heart immerses the placenta (with blood) through running and oozing vessels. Mother's diet contains all the *rasas*, thus the *rasa* derived from this diet gives strength and complexion to the fetus, and the fetus deriving its sustenance from this *rasa* remains alive and develops in the uterus. Caraka further explains the point that what-so-ever diet the pregnant woman consumes, the *rasa* formed from this performs three functions (1) nourishment of the woman's body, (2) formation of milk (3) nourishment to the fetus.

Suśruta explains that inspiration, expiration, activity and sleep of fetus are dependent upon the mother i. e. inspiration of mother gives inspiration to the fetus etc. The fetal umbilical cord is attached to the maternal *rasavahānāḍī* carrying the essence of mother's diet, and the fetus grows (by obtaining nourishment) through *upasneha*. From the time of conception upto the period untile the body parts of fetus are not fully conspicuous, it gets its sustenance by *upasneha* through the vessels running obliquely into all body parts (fig. 6a). Dalhaṇa has given the simile that as a tree situated on the bank of a full pond derives its nourishment, similarly fetus also receives its nourishment. Further quoting Bhoja he says that fetal nourishment takes place by *kedārikulyā nyāya*.

Both the Vāgbhaṭas have also expressed almost identical views, however, Vāgbhaṭa I adds that from umbilical cord the *rasa* reaches *pakwāśaya* (digestive system) of the fetus (fig. $6b_2$), there with its own *kāyāgni* (digestive fire) gets metabolised and provides nourishment to it. Since *rasa* carries pure nutrients, hence, excretas are not formed. Indu has explained that unctuousness is *upasneha* and moistening is *upasweda*.

१. गर्भिण्य(ा)स्तु त्रिदा(धा) काये रसोऽभिनिर्वर्तते, गर्भात्मा(र्भत्वा) य स्तन्यत्वाय रसत्वाय चेति॥ (भे० सं० शा० ५/७)

२. गर्भस्य नाभिनाडया तु नाडी रसवहा स्त्रिया:। संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यश:॥ ३२१॥
निःश्वासोच्छ्वाससंसङ्क्षोभस्वप्नांशान्सोऽधिगच्छति। मातुर्निःश्वसितोच्छ्वाससंसङ्क्षोभस्वप्नसंभवान्॥ ३२३॥
संक्षोभः-सञ्चलनम्, माता निःश्वासादिकायाक्षेत्रः करोति तास्तागर्भोऽपि करोतीत्यर्थः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

Alike Caraka, Kāśyapa has also mentioned about the three divisions of maternal diet but has attributed one part of diet for the nourishment of breasts at one place and to the breast milk at other.

Views of Bhela and Bhāwamiśra are also similar to that mentioned above.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्यों ने गर्भ के सम्पूर्ण पोषण को दो विभिन्न अवस्थाओं में विभक्त किया है, एक व्यक्तावस्था के पूर्व अर्थात् तीसरे मास तक तथा दूसरा व्यक्तावस्था होने पर अर्थात् चौथे मास से प्रसव तक। व्यक्तावस्था के पूर्व गर्भ का पोषण गर्भाशय-स्थित पोषक तत्वों से होता है तत्पश्चात् मातृहृदय-धमनी-अपरा-नाभिनाड़ी मार्ग-द्वारा होता है। आधुनिक विज्ञान दृष्टया यदि विचार किया जाय तो यह वर्णन किसी सीमा तक उससे सामञ्जस्य पाता हुआ प्रतीत होता है। बुदबुद (ब्लैस्टोसिस्ट) बनने के पूर्व गर्भ गर्भाशयगुहा स्थित पोषक-तत्वों से पुष्ट होता है। अपरा बनने के पूर्व गर्भ का पोषण गर्भ के चारो ओर स्थित अंकुरों (कोरिऑनिक-विलॅय) द्वारा स्यन्दन की प्रक्रिया से होता है एवं अपरा-निर्माण के पश्चात् पोषण एक नियमित रक्त परिभ्रमण द्वारा होता है। गर्भ-शरीर-निर्मित रक्त अपरा से शुद्ध एवं पोषक-तत्व युक्त होकर नाभि द्वारा होता हुआ गर्भ के शरीर में संचरित होता है एवं पुनः त्याज्य द्रव्य छोड़ने तथा आवश्यक तत्व लेने अपरा को नाभिनाड़ी द्वारा ही जाता है (चि० ६)। अपरा में माता एवं गर्भ के रक्त का सीधा सम्बन्ध नहीं होता, आदान-प्रदान स्यन्दन-प्रक्रिया द्वारा ही होता है, जिसका स्पष्ट उल्लेख महर्षि चरक एवं वाग्भट ने किया है। आयुर्वेदिक संहिताओं में वर्णित अपरा का माता के हृदय से सम्बद्धित होना कुछ युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। ऐसा माना जा सकता है कि गर्भ की पूर्णावस्था में गर्भाशय उदर के ऊपरी भाग तक पहुँच जाता है, अपरा अधिकांशतः गर्भाशय के ऊपरी भाग (गर्भाशय-बुध्न) में ही लगी रहती है एवं यह भाग माता के हृदय के काफी निकट स्थित होता है।

यदि अपरा के हृदय से सम्बन्धित वर्णन का अर्थ हृदय के कार्य से सम्बन्धित करें तो निम्न स्पष्टीकरण दिया जा सकता है-(१) हृदय में रक्त एक ओर से शिराओं से आकर रक्तकोष्ठकों में परिभ्रमित हो दूसरी ओर से धमनियों के द्वारा बाहर जाता है, इसी भाँति अपरा के मातृ-शरीर स्थित भाग की ओर धमनियों से रक्त आता है, अपरा के अङ्कुरों के बीच के स्थान में परिभ्रमण करता है तथा दूसरी ओर स्थित शिराओं से वापस जाता है अर्थात् रक्त-परिभ्रमण में हृदय से सादृश्य होने के कारण अपरा का हृदय से सम्बन्ध बताया गया हो।

(२) हृदय के सदृश ही अपरा का कार्य अर्थात् शुद्ध रक्त को आवश्यक स्थान के लिए भेजना तथा अशुद्ध रक्त का शोधन यथा-स्थानं से करवाना आदि हृदय सदृश कार्य है इसीलिए हृदय से सम्बन्ध लिखा गया हो।

महर्षि सुश्रुत एवं उनके अनुयायी भावमिश्र ने नाभिनाड़ी का सम्बन्ध माता की रसवहा नाड़ी से बताया है, यदि रस को प्लाज्मा मान लिया जाय तो यह वर्णन युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि अपरा में दौड़ती हुई नाभिनाड़ी की रक्तवाहिनियाँ माता के रक्त स्थित प्लाज्मा से ही पोषण प्राप्त करती हैं।

गर्भ-पोषण के वर्णन में महर्षि चरक, अष्टाङ्गसंग्रहकार आदि ने उपस्नेह एवं उपस्वेद दो शब्दों का तथा महर्षि सुश्रुत ने केवल उपस्नेह शब्द का उल्लेख किया है। टीकाकार इन्दु द्वारा स्पष्टीकरण सम्भवतः इस दृष्टिकोण से किया गया होगा कि गर्भ कफ-प्रधान होता है, अतः उसे स्निग्ध तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है, जिसे वह माता के आहार रस से चयनात्मक पुरासरण द्वारा प्राप्त करता है। सामान्यतया उपस्नेह से गर्भ के द्वारा विशेषकर उसके लोमकूपों द्वारा आवश्यक आर्द्रता का ग्रहण तथा उपस्वेद से पुरासरण प्रक्रिया द्वारा पोषण का अर्थ ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु वैज्ञानिक दृष्ट्या इन्दु का स्पष्टीकरण अधिक युक्तिसंगत है अर्थात् गर्भ का सामान्य तथा चयनात्मक दोनों ही प्रकार की पुरासरण क्रियाओं द्वारा पोषण होता है।

Scanned with CamScanner

It is evident from preceding description that entire fetal nourishment is divided into two stages, before apparent evidence of organs or upto three months and after-wards. Before implantation zygote gets its nourishment from exudates of uterine cavity and after implantation but before complete placenta formation through chorionic villi present all over the embryonic surface, which has very clearly been mentioned by Suśruta that embryo gets nourishment from the channels running all around it. After three months nourishment is through umbilical vessels (fig. 6). It is difficult to explain the attachment of placenta with mother's heart, this might have been mentioned due to the fact that uterus in its full term reaches upto xiphisternum and mostly placenta is attached to the fundus of uterus, thus reaches to very close proximity of heart. However, probably with this very confusion Suśruta has mentioned that umbilical cord is attached to *rasavahā nāḍī* of mother. If *rasa* is accepted as plasma, the clarification can be given that the fine branches of umbilical vessels running in placenta derive the nutrients suspended in plasma of mother's blood.

If the relation of *aparā* with heart is considered as relation to its function, then it can be explained in the following way-(i) as in heart, the blood enters from veins, circulates within its chambers and goes out through arteries, similarly in maternal side of *aparā* (placenta) the blood reaches from maternal arteries, circulates within chorionic villies and goes out from marginal sinuses or veins, in other words the circulation of blood in heart and placenta is almost similar, (ii) to pump pure blood in the body and impure blood to the lungs for purification is main function of heart, similarly palcenta receives the impure blood from fetus, purifies it and sends it back to the fetus or due to similarity in function the *aparā* is said to be attached to the heart.

Two words *upasneha* and *upasweda* are given to define the process of fetal nourishment. In explaining these words Indu's version is more logical, because as fetus is dominated by *kapha*, naturally it would need more unctuous substances to replenish this *kapha*, or in other words simple osmosis can not serve the purpose, thus the word *upasneha* probably refers to the selective osmosis, while *upasweda* to simple osmosis. Literally *upasneha* refers to the absorption of moisture through pores of skin situated in hair roots of the body and *upasweda* to osmosis, but earlier explanation is more logical.

गर्भ की मासानुमासिक वृद्धि (Monthwise development of fetus)

(१) प्रथम मास में गर्भ का स्वरूप (Embryo in first month)

स सर्वगुणवान् गर्भत्वमापन्नः प्रथमे मासि संमूर्च्छितः सर्वधातुकलुषीकृतः खेटभूतो भवत्यव्यक्तविग्रहः सदसद्भूताङ्गावयवः ॥ (च० सं० शा० ४/९)

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ (सु० सं० शा० ३/१८)

तत्र प्रथमे मासे कललं जायते ॥ (अ० सं० शा० २/१३)

अव्यक्तः प्रथमे मासि समाहात्कललो भवेत्॥ (अ० ह० शा० १/३७)

वह सर्वगुणवान आत्मा गर्भत्व को प्राप्त होकर (गर्भ में अवतरित होकर) प्रथम मास में सभी धातुओं (पञ्चमहाभूतों)[1]

१. धातुशब्देन च भूतान्युच्यन्ते। (च० सं० शा० ४/९ को चक्र० टी०)

से कलुषित होकर या मिश्रित होकर खेटभूत या श्लेष्मा[1] सदृश होकर सत्-असत् अङ्गावयव (सूक्ष्मरूप में अंगावयव की उपस्थिति एवं स्थूलरूप में अनुपस्थिति) वाले अव्यक्त शरीर का होता है।

महर्षि सुश्रुत एवं अष्टांगसंग्रहकार के मत से प्रथम मास में कलल होता है।

अष्टांगहृदयकार के मत से गर्भ प्रथम मास में एक सप्ताह के बाद कलल-स्वरूप अव्यक्तावस्था में रहता है। टीकाकार अरुणदत्त ने एक सप्ताह के पूर्व के गर्भ को श्लेष्म-पिण्डीभूत माना है[2]।

महर्षि हारीत ने इस मास में होने वाली गर्भ-वृद्धि का बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है, इनके मत से रेत या शुक्र (एवं शोणित) के संयोग से पहिले दिन ही कलल (रूप गर्भ) बनता है, दस दिन में शोणित (रेत एवं शोणित मिश्रित गर्भ) बुद्बुदाकार हो जाता है, वही पन्द्रह दिन में घन, बीस दिन में मांसपिण्ड-रूप एवं पच्चीस दिन के प्राप्त होने पर पञ्चभूतात्मक हो जाता है तथा एक महीने में पाँचो तत्व उत्पन्न हो जाते हैं या स्पष्टतर हो जाते हैं[3]।

भावमिश्र ने लिखा है कि गर्भाशय में जिस रूप में शुक्र एवं आर्तव गिरते हैं, प्रथम मास में उसी रूप (अर्थात् द्रवरूप) में ही गर्भ रहता है[4]।

Caraka says that in the first month *ātmā* possessing all the qualities, getting mixed up or vitiated by all the *dhātus (bhūtas)* attains the shape resembling the *śleṣmā* (mucoid character) in which all the body parts though present are not conspicuous.

According to Suśruta and both Vāgbhaṭas, in the first month embryo is in the shape of *kalala*. Aruṇadatta says that before one week it is just like a solid mass of phlegm.

Hārīta elaborating the subject says that *śukra* (sperms) after its union (with *śoṇita*-ovum) attains the form of *kalala* during the first day itself. In ten days the *śoṇita* (ovum with sperms) becomes *budbuda*, in fifteen days a solid, in twenty days a mass of flesh and in twentyfive days becomes more conspicuous.

Bhāwamiśra opines that *śukra* and *ārtava* deposited in uterus remain in their original character (liquid state) during first month.

विमर्श (Comments)

गर्भाधान के पश्चात् गर्भ 'माँ्युलं' के रूप में होता है, जो एक सप्ताह के अन्दर 'ब्लैस्टोसिस्ट' का रूप धारण कर लेता है। टीकाकार अरुणदत्त ने सम्भवतः इसी सप्ताह-पूर्व की घन-स्थिति को 'श्लेष्मपिण्डीभूत घन' वर्णन से इंगित किया है। महर्षि हारीत ने संभवतः 'माँ्युलं' को कलल शब्द तथा 'ब्लैस्टोसिस्ट' को बुदबुद शब्द से संबोधित किया है।

सभी आचार्यों ने शुक्र एवं शोणित के संयोग के साथ ही पञ्चतत्वों का गर्भ में आधान माना है, क्योंकि शुक्र-शोणित स्वयं ही पंचतत्वात्मक हैं, अतः महर्षि हारीत-द्वारा उपर्युक्त वर्णित गर्भ की पच्चीसवें दिन पंचभूतात्मकता का स्पष्टीकरण

१. खेटः श्लेष्मा, तेन खेटभूत इति श्लेष्मसदृश इत्यर्थः। (च० सं० शा० ४/९ को चक्र० टी०)

२. सप्ताहादर्वाग्गर्भगोलकः श्लेष्मपिण्डीभूतो भवेत्॥ (अ० ह० शा० १/३७ को अरुण० टी०)

३. प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात्कललं च यत्। जायते बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि॥ १७॥
घनं पञ्चदशाहं स्याद्विंशाहे मांसपिण्डकम्॥ पञ्चविंशतमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः॥ १८॥
मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चत्वं प्रजायते॥ १९॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/१७, से १९)

४. गर्भाशये निपतितं यादृक्शुक्रं तथाऽऽर्तवम्। तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२८९)

Scanned with CamScanner

कठिन है। ऐसा संभव है कि इस पच्चीस दिन के काल में पाँचो महाभूतों के कार्य (अङ्ग-निर्माण) स्पष्टतर हो जाते हों अतः महर्षि हारीत ने इस काल में इन तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन दिया।

The embryo remains in morula sage for 4-5 days followed by blastocystic stage, probably Aruṇadatta has referred to this morula as a solid mass before one week and Hārīta has identified morula with *kalala* and blastocyst with *budbuda*. According to āyurvedika philosophy all the five *bhūtas* are present in sperms and ovum and reach there during conception itself, thus description of their association after twentyfive days by Hārīta is a bit confusing, however, it is just possible that since their functions in terms of formation of different body parts become more conspicuous by twentyfive days, hence he has given the description.

(२) द्वितीय मास में गर्भ का स्वरूप (Embryo in second month)

द्वितीये मासि घनः संपद्यते पिण्डः पेश्यर्बुदं वा। तत्र घनः पुरुषः, पेशी स्त्री, अर्बुदं नपुंसकम्॥
(च० सं० शा० ४/१०)

द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां सङ्घातो घनः सञ्जायते, यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति॥ (सु० सं० शा० ३/१८)

द्वितीये घनः पेश्यर्बुदं वा तेभ्यः क्रमात्पुंस्त्रीनपुंसकानि॥ (अ० सं० शा० २/१३)
द्वितीये मासि कललाद्घनः पेश्यथवाऽर्बुदम्॥ ४९॥
पुंस्त्रीक्लीबाः क्रमात्तेभ्यः .....॥ ५०॥ (अ० ह० शा० १)

द्वितीय मास में (गर्भ) पिण्ड, पेशी या अर्बुद के आकार का तथा घन (कठिन) हो जाता है; घन (पिण्डाकार) होने पर पुरुष, पेश्याकार होने पर स्त्री एवं अर्बुदाकार होने पर नपुंसक उत्पन्न होता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि द्वितीय मास में शीत (श्लेष्मा), ऊष्मा (पित्त) एवं वायु से पच्यमान महाभूतों का सङ्घात घन (कठिन) हो जाता है। यदि वह पिण्डाकार है तो पुरुष, पेश्याकार है तो स्त्री, एवं अर्बुदाकार है तो नपुंसक (उत्पन्न होगा)।

अष्टांङ्गसंग्रहकार ने द्वितीय मास में घन, पेशी, अर्बुद की स्थिति क्रमशः पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक की उत्पत्ति के लिए वर्णित की है।

अष्टांगहृदयकार ने भी कलल से क्रमशः पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक की उत्पत्ति के लिए घन, पेशी एवं अर्बुद की स्थिति वर्णित की है।

महर्षि हारीत ने पचास दिनों में गर्भ-अंकुरों (विभिन्न अङ्गों के द्योतक) की उत्पत्ति मानी है[1]।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत के सदृश तीनों दोषों से पच्यमान गर्भ की घनता एवं पुत्रादि के अनुसार आकार का वर्णन किया है[2]।

१. पञ्चाशद्दिने संप्राप्ते अङ्कुराणाञ्च सम्भवः॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/१९)

२. पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्या मासि द्वितीयके। गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु॥ ४५॥
कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके॥ ४८॥
नपुंसकं यदा गर्भे भवेद् गर्भोऽर्बुदाकृतिः॥ ४९॥
मरुत्पित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानो द्वितीयके। कललस्थमहाभूतसमुदायो घनीभवेत्॥ २९०॥
अत्रमरुत्कफयोरपि पाकहेतुत्वमेव तयोरप्यूष्मणोऽधिकरणत्वात्। यत उक्तं चरके 'भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसीः' इति॥ २९०॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/४५, ४८, ४९, २९०)

In second month the embryo becomes a solid mass. If this solid mass has oval *(pinda)* shape the born child would be a male. if elongated *(peśī)* the female and with rounded *(arbuda)* mass the hermaphrodite. Suśruta and his follower Bhāwamiśra corroborating the above views have elaborated that these accumulated *mahābhūtas* get processed by the combined action of *śleṣmā*, *pitta* and *vāyu* and become solid. Hārīta is of the view that in fifty days buds (of future body parts) in embryo come up.

(३) तृतीय मास में गर्भ का स्वरूप (Embryo in third month)

तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्वर्तन्ते॥ (च० सं० शा० ४/११)
तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डिका निवर्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति॥
(सु० सं० शा० ३/१८)

तृतीये पञ्चधा प्ररोहति; तद्यथा-सक्थिनी बाहू शिरश्च। सक्थ्यादिप्ररोहैककालमेव च सर्वाङ्गावयवेन्द्रियाणि युगपत्सम्भवन्ति॥ (अ० सं० शा० २/१३)

व्यक्ती भवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपञ्चकम्॥
मूर्धा द्वे सक्थिनीबाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च। सर्वमेव हि मूर्धाद्यैर्ज्ञानं च सुःखदुःखयोः॥
(अ० ह० शा० १/५४, ५५)

तृतीये मासि युगपन्निर्वर्तन्ते यथाक्रमम्। प्रस्पन्दते चेतयति वेदनाश्चाबबुद्धयते॥
सूक्ष्मप्रव्यक्तकरणस्तृतीये तु मनोऽधिकः॥ (का० सं० शा० २/४,५)

तृतीय मास में सभी इन्द्रियाँ एवं अंगावयव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। टीकाकार चक्रपाणि ने इस मास में ही सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों के साथ रोमोत्पत्ति का वर्णन किया है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि तीसरे मास में (दो) हाथ, (दो) पैर एवं सिर की पाँच पिण्डिकायें निकलती हैं, एवं अंग-प्रत्यंग का विभाग सूक्ष्म (स्पष्ट) होता है।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी तीसरे मास में सक्थियों, बाहु एवं शिर की पंच पिण्डिकाओं की उत्पत्ति का वर्णन किया है एवं लिखा है कि सक्थि आदि की उत्पत्ति के समय ही सभी अंगावयव एवं इन्द्रियाँ एक साथ ही उत्पन्न होते हैं।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि तृतीय मास में गात्रपंचक अर्थात् शिर, दोनों सक्थियाँ एवं दोनों बाहुओं की उत्पत्ति होती है। सभी सूक्ष्मांगों का जन्म होता है तथा इन शिर आदि की उत्पत्ति के साथ ही सुख-दुःख का भी ज्ञान (गर्भ को) होता है।

महर्षि काश्यप ने भी तृतीय मास में क्रमशः सभी अंगों की एक साथ ही उत्पत्ति मानी है एवं लिखा है कि यह (गर्भ इस मास में) प्रस्पन्दन करता है, चेतनायुक्त हो जाता है एवं उसे वेदना का भी ज्ञान होता है। इसी तृतीय मास में अंगों का सूक्ष्म अंग-प्रत्यंग-विभाग विशेषकर मन की अधिक अभिव्यक्ति होती है।

महर्षि हारीत ने तृतीय मास प्राप्त होने पर हस्त-पाद के प्रवर्धन का वर्णन किया है[2]।

आचार्य भावमिश्र ने भी तृतीय मास में सभी अंगों की उत्पत्ति मानी है[3]।

१. युगपदेव तृतीये मासेऽङ्गप्रत्यङ्गनिष्पत्तेः केशा अपि तदैव जाताः क्रमेण वर्धन्ते न सप्तमे मासि इति भावः।
(च० सं० शा० ८/३२ की चक्र० टी०)

२. मासत्रये तु संप्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्धते॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/२०)

३. तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा। पिण्डिकाः पञ्च सिध्यन्ति सूक्ष्माङ्गावयवास्तनोः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२९१)

Scanned with CamScanner

In third month all the *indriyas* and minor body parts become apparent, five buds one for head and four for upper and lower extremities develop. Vāgbhaṭa II opines that with the development of head the embryo is capable of feeling sorrow or happiness. Kāśyapa elaborates that in this month the embryo starts quivering, develops consciousness and can feel pain. Development of body hair is mentioned by Cakrapāṇi.

विमर्श (Comments)

पूर्व पृष्ठों में वर्णित तीन मास तक के गर्भ की वृद्धि का वर्णन आधुनिक भ्रूण-विज्ञान के ज्ञान से सामञ्जस्य नहीं रखता, क्योंकि यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल ६ सप्ताह के गर्भ में ही हाथ, पैर एवं शिर, यहाँ तक कि अंगुलियाँ भी बनने लग जाती हैं, बारह सप्ताह में तो गर्भ बहुत ही सुस्पष्ट रूप से बढ़ चुका होता है, उसके बहिर्जननांग भी बन जाते हैं। इस वर्णन-भेद का यद्यपि निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है, परन्तु ऐसा सम्भव है कि आचार्यों ने अधिकांशतः स्रवित गर्भों के ही आधार पर इस गर्भ-वृद्धि का वर्णन दिया हो। सामान्यतः तीन मास से पूर्व गर्भस्राव होने पर स्वस्थ गर्भ बाहर नहीं निकलता, अधिकांशतः तो गर्भाशयान्तर्गत रक्तस्राव वास्तविक गर्भस्राव के कुछ दिन पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है, एवं स्रवित गर्भ एक पिण्डाकार (मोल) रूप का होता है; यदि ऐसा नहीं भी हुआ तो भी स्कन्दित रक्त तो उपस्थित रहता ही है जिसके कारण ही सम्भवतः इस प्रकार का वर्णन आचार्यों ने दिया हो। तीन मास के बाद गर्भस्राव होने पर अधिकांशतः वह लघु प्रसव के रूप में होता है। गर्भोदक के स्राव के बाद हाथ, पैर एवं शिर से युक्त गर्भ बाहर निकलता है, अतः आचार्यों ने तीसरे मास में सभी अंगों की एक साथ ही उत्पत्ति की कल्पना की।

As all the extremities etc. are already well evident just at 6th week, hence it is difficult to explain the shape of embryo of 2nd month as described in *āyurvedika* classics. It is just possible that the authors have described embryology on the basis of expelled products of conception. Normally upto second month before complete formation of placenta the products of conception are expelled in pieces associated with big blood clots and the authors could not visualize fetal parts. The expelled carneous mole might have been the source of description of oval, round etc. shapes described earlier. Third month onwards due to formation of bag of membrane and complete placenta, usually abortion resembles miniature labour, wherein fetus with all its intact extremities may be expelled, thus the authors conceived the idea that these might have developed in this very month.

(४) चतुर्थ मास में गर्भ का स्वरूप (Fetus in fourth month)

चतुर्थे मासि स्थिरत्वमापद्यते गर्भः। (च० सं० शा० ४/२०)

चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति; कस्मात्? तत्स्थानत्वात्।। (सु० सं० शा० ३/१८)

चतुर्थेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो गर्भश्च स्थिरो भवति। (अ० सं० शा० २/२२)

चतुर्थे व्यक्ताऽङ्गानां ·····।। (अ० ह० शा० १/५७)

चतुर्थे स्थिरतां याति गर्भः कुक्षौ निरामयः।। (का० सं० शा० २/५)

चतुर्थ मास में गर्भ में स्थिरता आ जाती है।

महर्षि सुश्रुत के मत से चतुर्थ मास में सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग का विभाग स्पष्ट हो जाता है, गर्भ के हृदय के व्यक्त होने से चेतना धातु अभिव्यक्त होती है क्योंकि उसका (चेतना का) स्थान हृदय है। टीकाकार डल्हण ने इसी मास में तेज

के नेत्र में प्रविष्ट होने का अर्थात् दृगेन्द्रिय के सामान्य निर्माण का वर्णन किया है[1]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार के अनुसार चतुर्थ मास में अङ्ग प्रत्यङ्ग के विभाग में स्पष्टता एवं गर्भ में स्थिरता आती है।

अष्टांगहृदयकार ने चतुर्थ मास में केवल अंगों की व्यक्तता का वर्णन किया है।

महर्षि काश्यप लिखते हैं कि चतुर्थ मास में गर्भ निरुपद्रव रूप से कुक्षि में स्थिर रहता है।

महर्षि हारीत ने साढ़े तीन मास में शिर के सारवत होने एवं चतुर्थ मास में लोमों की उत्पत्ति का वर्णन दिया है[2]।

आचार्य भावमिश्र ने भी चतुर्थ मास में अङ्ग-प्रत्यङ्ग की उत्पत्ति एवं हृदय तथा चेतना की व्यक्तता का वर्णन दिया है[3]।

Various body parts become more conspicuous and stability to the fetus comes in this month. Manifestation of heart and consciousness associated with heart have been added by Suśruta and Bhāvamiśra. Hārīta opines that in 3 months head becomes stronger and in fourth month lanugo appear.

(५) पञ्चम मास में गर्भ का स्वरूप (Fetus in fifth month)

पञ्चमे मासि गर्भस्य मांसशोणितोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यः।। (च० सं० शा० ४/२१)

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति। (सु० सं० शा० ३/३०)

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति मांसशोणितोपचयश्च।। (अ० सं० शा० २/२३)

····· चेतनायाश्च पञ्चमे।। (अ० ह० शा० १/५७)

मांसशोणितवृद्धिस्तु पञ्चमे मासि जीवक।। (का० सं० शा० २/६)

पंचम मास में अन्य मासों की अपेक्षा मांस एवं शोणित का अधिक उपचय होता है।

महर्षि सुश्रुत के मत से पाँचवें मास में मन प्रतिबुद्धतर होता है अर्थात् जागृत होता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने पाँचवे मास में मन की प्रतिबुद्धता एवं मांस तथा शोणित के उपचय का वर्णन किया है।

अष्टांगहृदयकार ने पंचम मास में चेतना की उत्पत्ति मानी है।

महर्षि काश्यप ने पाँचवें मास में मांस एवं शोणित की वृद्धि का वर्णन किया है।

हारीत मतानुसार पाँचवें मास में गर्भ सुजीव हो जाता है[4]।

आचार्य भावमिश्र ने पाँचवें मास में मन[5] की प्रतिबुद्धता का ही वर्णन किया है।

In the opinion of Caraka and Kāśyapa during this month accumulation of flesh and blood is relatively more. Suśruta and Bhāvamiśra opine that the *mana* becomes more enlightened. Vāgbhaṭa I has included both the versions mentioned above, Vāgbhaṭa II says that consciousness develops in this month and Hārīta opines that fetus becomes more *sujīva* (capable to live independently).

१. सु० सं० शा० २/३५ की डल्हण टीका (नेत्र-वर्णोत्पत्ति के अन्तर्गत उद्धृत)।

२. सार्द्धमासत्रये प्राप्ते शिरश्च सारवद्भवेत्।। २०।।
चतुर्थके च लोमानां सम्भवश्चात्र दृश्यते।। २१।। (हा० सं० षष्ठस्थान १/२०, २१)

३. सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थे स्युः स्फुटानि हि। हृदयव्यक्तभावेन व्यन्यते चेतनाऽपि च।। (भा० प्र० पूर्व० ३/२९२)

४. पञ्चमे च सुजीवः स्यात् ·····।। (हा० सं० षष्ठस्थान १/२१)

५. पञ्चमे मानसं ·····अतिप्रबुद्धयते।। (भा० प्र० पूर्व० ३/३०५)

Scanned with CamScanner

विमर्श (Comments)

गर्भावस्था के पाँचवें मास या बीस सप्ताह में गर्भ की श्रवणेन्द्रिय एवं त्वचा की संज्ञावह नाड़ियाँ कुछ कार्यक्षम हो जाती हैं, आयुर्वेदमतानुसार ज्ञान, मन एवं इन्द्रियों के संयोग से ही होता है, अतः इस मास से गर्भ में ज्ञानोत्पत्ति की क्षमता के आधार पर ही संभवतः आचार्यों ने मन की उत्पत्ति की कल्पना की हो। इक्कीसवें सप्ताह से अट्ठाइसवें सप्ताह का गर्भ यद्यपि सामान्यतया गर्भाशय से बाहर के वातावरण में जीवन-क्षम नहीं होता, परन्तु विशिष्ट व्यवस्था से २१वें सप्ताह (४०० ग्राम) अर्थात् पंचम मास के अन्तिम चरण का भी गर्भ जीवित रह सकता है, अतः २१वें से २८वें सप्ताह के गर्भ को जीवनक्षम-पूर्वावस्था का (प्रिवाअँबॅल) गर्भ कहा जाता है; महर्षि हारीत द्वारा 'सुजीवता' का वर्णन सम्भवतः इसी तथ्य को इङ्गित करता है।

According to *āyurvedika* philosophy the knowledge or perception is the result of interaction between *mana* and *indriyas*. Since by 5th month auditory reflexes and peripheral sensory reflexes develop to certain extent, hence the authors have mentioned the enlightenment of *mana*. Normally the fetus of twentyone to twentyeight weeks of gestational age does not survive if delivered, however, under specialized care the fetus of even twentyone week (400 gms.) i. e. last few days of fifth month can survive, thus the fetuses of twentyone to twentyeight weeks are termed as previable. The description of '*sujīvatā*' by Hārīta probably refers to this fact.

(६) षष्ठ मास में गर्भ का स्वरूप (Fetus in sixth month)

षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यः॥ (च० सं० शा० ४/२२)
षष्ठे बुद्धिः॥ (सु० सं० शा० ३/३०)
षष्ठे केशरोमनखास्थिस्नाय्वादीन्यभिव्यक्तानि बलवर्णोपचयश्च ॥ (अ० सं० शा० २/२४)
षष्ठे स्नायुसिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ॥ (अ० हृ० शा० १/५७)
बलवर्णौजसां वृद्धिः षष्ठे ····· ॥ (का० सं० शा० २/७)

छठवें मास में गर्भ के बल एवं वर्ण का उपचय अन्य मासों की अपेक्षा अधिक होता है।

महर्षि सुश्रुत ने ६ठवें मास में बुद्धि का (की प्रतिबुद्धता का) वर्णन किया है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने छठवें मास में केश, रोम, नख, अस्थि एवं स्नायु आदि की अभिव्यक्ति एवं बल, वर्ण के उपचय का वर्णन दिया है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने छठवें मास में स्नायु, सिरा, रोम, बल, वर्ण, नख एवं त्वचा की उत्पत्ति मानी है।

महर्षि काश्यप ने षष्ठ मास में बल, वर्ण एवं ओज की वृद्धि का वर्णन किया है।

महर्षि हारीत ने षष्ठ मास में स्फुरण का वर्णन दिया है[1]।

आचार्य भावमिश्र ने भी ६ठवें मास में बुद्धि की प्रतिबुद्धता को माना है[2]।

The opinions of different authors are geven here under :

Caraka : Relatively more accumulation of energy and complexion.

Suśruta and Bhāvamiśra : More enlightenment of *buddhi*.

१. ····· **षष्ठे प्रस्फुरणं भवेत्॥** (हा० सं० षष्ठस्थान १/२१)
२. ····· **षष्ठे बुद्धिज्ञातिप्रबुद्धयते॥** (भा० प्र० पूर्व० ३/३०५)

Vāgbhaṭa I : Development of hair, body hair, nails, bones, tendons and accumulation of energy and complexion.

Vāgbhaṭa II : Tendons, vessels, body hair, nails, skin, energy and complexion.

Kāśyapa : More development of energy, complexion and *ojas*.

Hārīta : Quivering of fetus.

विमर्श (Comments)

छठवें मास या २४-२५ सप्ताह के गर्भ में कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकास काफी सीमा तक हो चुका होता है, त्वचा भी गुलाबी हो जाती है। जिसके कारण ही संभवतः आचार्यों ने बुद्धि की उत्पत्ति एवं वर्ण का उपचय लिखा हो। यद्यपि शरीर में सूक्ष्म केश (लेनुयुगो) तो पाँचवें मास से ही उत्पन्न हो जाते हैं पर सम्भवतः षष्ठ मास में स्पष्टतर अभिव्यक्ति के कारण रोमोत्पत्ति का वर्णन ६ठवें मास में किया गया। इसी मास में मृदु अस्थियों (काटिलिज) में चूने (कैल्सिअँम) का अधिकाधिक एकत्रीकरण हो वे वास्तविक अस्थि का स्वरूप लेती हैं अतः अस्थि की उत्पत्ति का वर्णन आचार्यों ने किया। महर्षि हारीत द्वारा चतुर्थमास में ही रोमोत्पत्ति तथा टीकाकार चक्रपाणि द्वारा तृतीय मास में ही केशोत्पत्ति का वर्णन समुचित प्रतीत नहीं होता[1]।

As by 24 to 25th weeks sensory and motor organs attain some maturity and skin becomes pink so the description of *buddhi* and complexion is given. Though lanugo appear in fifth month, however, these are more conspicuous in sixth month, deposition of calcium also starts in this very month, so the classics have described formation of hair and bone. Hārīta and Cakrapāni have described the development of body hair in 4th and 3rd month respectively which is not correct.

(७) सप्तम मास में गर्भ का स्वरूप (Fetus in seventh month)

सप्तमे मासि गर्भः सर्वैर्भावैराप्याय्यते। (च० सं० शा० ४/२३)
सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः॥ (सु० सं० शा० ३/३०)
सप्तमे सर्वाङ्गसम्पूर्णता। (अ० सं० शा० २/२५)
सर्वैः सर्वाङ्गसंपूर्णो भावैः पुष्यति सप्तमे॥ (अ० हृ० शा० १/५८)
सर्वथात्वङ्गसम्पूर्णो वातपित्तकफान्वितः। सप्तमे मासि ·····॥ (का० सं० शा० २/८)

सप्तम मास में गर्भ सभी प्रकार के भावों से पुष्ट होता है। टीकाकार चक्रपाणि ने सर्वभाव शब्द से मांससोणित अर्थ किया है एवं स्पष्टीकरण में लिखा है कि इस मास में सभी भाव एक साथ ही गर्भ को पूर्ण करते हैं या उसकी वृद्धि करते हैं जबकि अन्य महीनों में ऐसा नहीं होता[2]।

महर्षि सुश्रुत के मत से सप्तम मास में अंग प्रत्यंग का विभाग प्रव्यक्ततर होता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने सप्तम मास में सम्पूर्णता का वर्णन किया है।

अष्ट.ङ्गहृदयकार के मत से सप्तम मास में सर्वांग सम्पूर्णता एवं सभी भावों की पुष्टि होती है।

१. च० सं० शा० ८/३२ की चक्र० टी० (पृष्ठ १५१) तथा हा० सं० षष्ठस्थान १/२०, २१ (पृष्ठ १५३)
२. सर्वभावैरिति मांसशोणितादिभिः। युगपदेव सर्वैः सप्तमे गर्भ आप्याय्यते, पूर्वेषु तु मासेषु न सर्वैर्युगपदिति विशेषः। सर्वाकारैरिति सर्वमांससोणितादिजन्यरूपैः॥ (च० सं० शा० ४/२३ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि सप्तम मास में गर्भ सभी धातुओं एवं अंगों से सम्पूर्ण तथा वात, पित्त एवं कफ से युक्त हो जाता है।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत सदृश ही सभी अंगो एवं उपांगों की व्यक्तता का वर्णन किया है[1]।

In seventh month, all the features (muscle, blood, bone) etc, get proper nourishment. All the major and minor body parts are more conspicuous or are fully developed and whole body gets completely associated with *vāta, pitta* and *kapha.*

(८) अष्टम मास में ओज का अस्थिरत्व एवं उसका परिणाम (Status of ojas in eighth month and its effect)

अष्टमे मासि गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभिः संवाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजः परस्परत आददाते गर्भस्यासंपूर्णत्वात्। तस्मात्तदा गर्भिणी मुहुर्मुहुर्मुदा युक्ता भवति मुहुर्मुहुश्च म्लाना, तथा गर्भः; तस्मात्तदा गर्भस्य जन्म व्यापत्तिमद्भवत्योजसोऽनवस्थितत्वात्। तं चैवार्थमभिसमीक्ष्याष्टमं मासमगण्यमित्याचक्षते कुशलाः॥

(च० सं० शा० ४/२४)

अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः, तत्र जातश्चेत्र जीवेन्निरोजस्त्वात्रैर्ऋतभागत्वाच्च॥ (सु० सं० शा० ३/३०)

अष्टमे गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभिर्वाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजः परस्परमाददाते। तस्मात्तदा गर्भिणी मुहुर्मुदिता भवति मुहुर्म्लाना तथा गर्भः। एवं गर्भस्य जन्म व्यापत्तिमत्तदा भवति॥ २६॥

ओजसोऽनवस्थितत्वात्। तथा ह्यस्य निष्क्रमणोन्मुखस्य परिवर्तनादीन्यनुभवत एवौजसा वियोगः। यद्यपि च किञ्चित्कालमस्योच्छ्वसनं स्यात्तच्छिन्नस्येवाङ्गस्यौजःसंस्कारानुवृत्तिकृतम्। जनन्यास्तु स्थिरौजस्कतयैकदेशेन रसे संक्रान्ते ग्लानिरेवेति॥ २७॥

अन्ये पुनराहुः। नैर्ऋतभागत्वात्तत्र गर्भस्य मरणम्॥ २८॥ (अ० सं० शा० २/२६ से २८)

ओजोऽष्टमे सञ्चरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात्॥ ६२॥
तेन तौ म्लानमुदितौ तत्र जातो न जीवति। शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारी संशयिता भवेत्॥

(अ० हृ० शा० १/६२, ६३)

अष्टमे गर्भिणीगर्भावाददाते परस्परम्। ओजो रसवहायुक्तेः पूर्णत्वाच्छलयत्यपि॥
तस्मात्तत्र मुहुर्ग्लाना मुहुर्हृष्टा च गर्भिणी। अत्ययं चाप्नुते तस्मान्न मासो गण्यतेऽष्टमः॥

(का० सं० शा० २/९,१०)

अष्टम मास में गर्भ की असम्पूर्णता के कारण रसहारीवाहिनियों (रसवाही धमनियों) के द्वारा ओज बार बार माता से गर्भ एवं गर्भ से माता को आदान प्रदान होता रहता है, अतः गर्भिणी बार बार प्रसन्न एवं बार बार म्लान हो जाती है इसी भाँति गर्भ भी। अतः इस मास में यदि गर्भ का जन्म हो जाय तो ओज की अस्थिरता के कारण जीवन शंकामय होता है। अतः कुशल चिकित्सक अष्टम मास को प्रसव के लिए अगण्य (प्रसव के अयोग्य) समझते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि अष्टम मास में ओज अस्थिर होता है अतः इस समय उत्पन्न बालक ओज के अनुपस्थित होने एवं नैर्ऋत भाग होने के कारण जीवित नहीं रहता। टीकाकार डल्हण का मत है कि यह नैर्ऋत भाग राक्षस का अंश होता है जो रुद्र के द्वारा बालक में दिया जाता है, ऐसा कुमारतन्त्र में वर्णित है[2]।

१. सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३०५)

२. नैर्ऋभागत्वात् रक्षसामंशत्वात् "नैर्ऋताय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्त" इति कुमारतन्त्रे प्रतिपादितम्। ·····।
(सु० सं० शा ३/३० की डल्हण टी०)

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने विषय का काफी विस्तार से वर्णन किया है कि अष्टम मास में ओज रस ले जाने वाली वाहिनियों के द्वारा बार बार माता से गर्भ में एवं गर्भ से माता में आता जाता है। अतः गर्भिणी बार बार मुदित एवं बार बार म्लान हो जाती है तथा गर्भ का भी जन्म विपत्ति युक्त होता है क्योंकि ओज स्थिर नहीं होता। निष्क्रमणोन्मुख (प्रसव के लिए उद्यत) गर्भ के परिवर्तनों (प्रसव के समय होने वाले परिवर्तनों) के कारण ओज का वियोग हो जाता है। यद्यपि (जन्म के उपरान्त बालक को) किञ्चित् काल तक श्वासोच्छ्वास होता है परन्तु वह छिन्न अंग की भाँति ओज के संस्कार के ही कारण होता है, अर्थात् जिस प्रकार अंग को शरीर से पृथक् कर देने पर भी कुछ समय तक उसमें जीवन रहने से गति होती रहती है उसी प्रकार ओज के संस्कार मात्र होने से गर्भ भी कुछ काल श्वासोच्छ्वास करता है। माता के शरीर के ओज के स्थिर होने तथा उसके एक भाग का ही स्खलन होने के कारण उसे केवल ग्लानि ही होती है (मृत्यु नहीं)। कुछ विद्वानों का मत है कि गर्भ की मृत्यु नैर्ऋत भाग के कारण होती है।

अष्टाङ्गहृदयकार लिखते हैं कि अष्टम मास में ओज क्रमशः माता एवं पुत्र में संचरित होता है, अतः वे म्लान या मुदित होते हैं। इस मास में प्रसवित बालक ओज की अनुपस्थिति के कारण जीवित नहीं रहता एवं माता के जीवन में संशय होता है (अर्थात् वह मर भी सकती है[1])।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि अष्टम मास में माता एवं गर्भ रसवहा धमनियों के द्वारा परस्पर ओज का आदान प्रदान करते हैं। उस समय गर्भ के अपूर्ण रहने से उसके (ओज के) भ्रंश का भी भय रहता है[2]। इसलिए माता कभी म्लान एवं कभी प्रसन्न होती है एवं अन्य अपद्रव होते हैं, अतः इस अष्टम मास को प्रसव के लिए अगण्य (अनुपयुक्त) माना है।

महर्षि हारीत ने आठवें मास में गर्भ में अग्नि या पाचकाग्नि का संयोग माना है तथा नवें मास में चेष्टोत्पत्ति का वर्णन दिया है[3]।

आचार्य भावमिश्र जी ने भी ओज की अस्थिरता एवं उसका गर्भ या माता में प्रभाव माना है[4]।

Caraka, Vāgbhata I, II, Kāśyapa and Bhāvamiśra say that due to immaturity of fetus the *ojas* remains unstable, it moves from mother to fetus and from fetus to the mother through *rasa* carrying channels. Due to this transfer of *ojas* mother and fetus become happy or dull alternately (happiness when *ojas* is present and dull when *ojas* has gone to the other side). If delivery takes place the life becomes doubtful (at the time of delivery if *ojas* is in the mother, the fetus will die, if it is in the fetus, the life of mother may be in danger). Wise physicians do not consider this month fit for labour.

Suśruta corroborating the unstability of *ojas* has mentioned that child born in this

१. कदाचिज्जीवति कदाचिन्न जीवतीति संशयितार्थः। (अ० हृ० शा० १/६३ की अरुण० टी०)

२. गर्भ अष्टम मास में अपूर्ण रहता है ऐसा महर्षि चरक आदि ने भी वर्णित किया है एवं युक्तिसंगत भी है अतः यहाँ 'पूर्ण' शब्द उचित प्रतीत नहीं होता, अंतः 'ओजोरसवहायुक्तेरपूर्णत्वाच्छलयत्यपि' पाठान्तर अधिक युक्तिसंगत है एवं ऊपर इसी आधार पर ही अर्थ किया गया है।

३. अष्टमेमासि जाते च अग्नियोगः प्रवर्त्तते। मासे तु नवमे प्राप्ते जायते तस्य चेष्टितम्॥ २४॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/२२)

४. ओजोऽष्टमे सञ्चरति माता पुत्रौ मुहुः क्रमात्। तेन तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जीवति॥
न जीवत्यष्टमे जातस्तत्रौजो न स्थिरं यतः। तथा नैर्ऋत्यभागत्वात् ·····॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/३०६, ३०७)

Scanned with CamScanner

month dies due to absence of *ojas* and influence of *nairrta* portion. Commentator Dalhana has explained this *nairrta* part as part of *rākṣasas* bestowed upon the child by *Rudra*.

Vāgbhata I dilating the subject further says that at the time of expulsion due to various changes occurring in posture of fetus the *ojas* gets dissociated. Though child does respire for a few minutes, it is because of previous association of *ojas*, such as seen in any excised body part which remains alive and moves for a few minutes simply because of its previous association with live body. *Ojas* of mother is stable, only a part of it is expelled with the fetus, thus she becomes only dull but does not die. He further quotes the opinions of others (Suśruta) that the death of fetus is due to influence of *rākṣasa*.

Hārīta opines that in this month the *pācakāgni* (digestive enzymes) starts functioning and in ninth month activities are more apparent.

अष्टम मास में प्रसव-प्रतिषेधार्थ कर्त्तव्य *(Measures to prevent labour in eighth month)*

ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत्। (सु० सं० शा० ३/३०)

तस्मात् प्रसवप्रतिषेधार्थं स्त्री स्नाता शुचिर्ब्रह्मचारिणी दैवतारा धनपरमा स्यात्। मांसौदनबलिं चात्र निर्वपेत्॥ (अ० सं० शा० २/२९)

महर्षि सुश्रुत ने इस मास में (नैर्ऋत के लिए) मांस एवं ओदन की बलि का विधान दिया है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार लिखते हैं कि इस (अष्टम मास के) प्रसव के प्रतिषेधार्थ स्त्री स्नान की हुई, पवित्र, ब्रह्मचारिणी एवं देवता आदि की आराधना में तत्पर रहे। मांस एवं ओदन की बलि भी दी जानी चाहिए, क्योंकि मृत्यु नैर्ऋत भाग या भूतादि के कारण होती है न कि ओज की अस्थिरता से।[1]

आचार्य भावमिश्र जी ने भी बलि आदि का विधान एवं नैर्ऋत भाग बालक को रुद्र के द्वारा प्रदत्त बताया है[2]।

The pregnant woman should take daily bath, live a pious life, observe celibacy and should remain busy in worship of god. The oblation of meat and cooked rice should be offered to propitiate the *rākṣasa*, because the death of the child is due to *rākṣasas*, which are said to be inflicted upon the child by *rudra*.

गर्भ का सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला अङ्ग *(First born body part of the fetus)*

तमेवमुक्तवन्तमग्निवेशं भगवान् पुनर्वसुरात्रेय उवाच–पूर्वमुक्तमेतद्गर्भावक्रान्तौ यथाऽयमभिनिर्वर्तते कुक्षौ, यच्चास्य यदा संतिष्ठतेऽङ्गजातम्। विप्रतिपादाम्त्वत्र बहुविधाः सूत्रकृतामृषीणां सन्ति सर्वेषां; तानपि निबोधोच्यमानान्–शिरः पूर्वमभिनिर्वर्तते कुक्षाविति कुमारशिरा भरद्वाजः पश्यति, सर्वेन्द्रियाणां तदधिष्ठानमिति कृत्वा; हृदयमिति काङ्कायनो वाल्हीकभिषक् , चेतनाधिष्ठानत्वात्; नाभिरिति भद्रकाप्यः आहारागम इति कृत्वा; पक्वाशयगुदमिति भद्रशौनकः, मारुताधिष्ठानत्वात्; हस्तपादमिति बडिशः, तत्करणत्वात् पुरुषस्य; इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः, तान्यस्य बुद्ध्यधिष्ठानानीति कृत्वा; परोक्षत्वादचिन्त्यमिति मारीचिः कश्यपः; सर्वाङ्गभिनिर्वृत्तिर्युगपदिति धन्वन्तरिः, तदुपपन्नं, सर्वाङ्गानां तुल्यकालाभिनिर्वृत्तित्वाद्धृदयप्रभृतीनाम्। सर्वाङ्गानां ह्यस्य हृदयं मूलमधिष्ठानं च केषाञ्चिद्भावानाम्, न च तस्मात् पूर्वाभिनिर्वृत्तिरेषां; तस्माद्धृदयप्रभृतीनां सर्वाङ्गानां तुल्यकालाभिनिर्वृत्तिः सर्वे भावा ह्यन्योन्यप्रतिबद्धाः; तस्माद्यथाभूतदर्शनं साधु॥ (च० सं० शा० ६/२१)

गर्भस्य हि सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः, शिरोमूलत्वात् प्रधानानेन्द्रियाणां (देहेन्द्रियाणाम्-पाठभेद); हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात्; नाभिरिति पाराशर्यः, ततो हि वर्धते देहो देहिनः; पाणिपादमिति मार्कण्डेयः, तन्मूलत्वात् चेष्टाया गर्भस्य; मध्यशरीरमिति सुभूतिर्गौतमः, तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसम्भवस्य। तत् तु न सम्यक्। सर्वाङ्गप्रत्यङ्गानि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिः, गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते वंशाङ्कुरवच्चूतफलवच्च। तद्यथा–चूतफले परिपक्वे केशरमांसास्थिमजानः पृथक् पृथग्दृश्यन्ते कालप्रकर्षात् , तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते सूक्ष्मत्वात् , तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति, एतेनैव वंशाङ्कुरोऽपि व्याख्यातः। एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वङ्गप्रत्यङ्गेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः, तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवन्ति॥ (सु० सं० शा० ३/३२)

इस प्रकार प्रश्न करते हुए अग्निवेश से भगवान आत्रेय ने कहा, कि पूर्व वर्णित गर्भावक्रान्ति अध्याय में कुक्षि में गर्भ का अभिनिर्वर्तन, संतिष्ठन एवं उसके अंगों की उत्पत्ति का वर्णन किया जा चुका है। परन्तु प्रथम उत्पन्न अंग के बारे में सूत्रकार ऋषियों में मतभेद है। उसे मैं भी कहता हूँ, सुनो कुमारशिरा भरद्वाज के मत से गर्भ में सर्वप्रथम शिर की उत्पत्ति होती है क्योंकि शिर ही सभी इन्द्रियों का आश्रय है। वाल्हीक देश के वैद्य कांकायन का मत है कि चेतनाधिष्ठान होने के कारण सर्वप्रथम हृदय की उत्पत्ति होती है, भद्रकाप्य के मत से आहारागमन के कारण सर्वप्रथम नाभि की उत्पत्ति होती है। भद्रशौनक के मत से मारुताधिष्ठान होने के कारण सर्वप्रथम पक्वाशय और गुदा उत्पन्न होते हैं। बडिश के मतानुसार पुरुष के प्रधान करण होने के कारण सर्वप्रथम हस्त एवं पाद की उत्पत्ति होती है। वैदेह जनक का मत है कि बुद्धि का अधिष्ठान होने के कारण सर्वप्रथम इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। मारीच काश्यप का मत है कि चूँकि गर्भाङ्ग की उत्पत्ति परोक्ष में (उदरगुहान्तर्गत) होती है अतः यह विषय विचारणीय नहीं है। भगवान धन्वन्तरि का मत है कि सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों की उत्पत्ति एक साथ होती है। यही मत युक्तिसंगत है क्योंकि हृदय आदि सभी अंगों की उत्पत्ति एक साथ होती है। सर्वाङ्गों एवं किञ्चित् भावों (ओज, मन, आत्मा, बुद्धि आदि) का मूलाधिष्ठान होने से हृदय की उत्पत्ति सर्वप्रथम होती है ऐसा पूर्ववर्णित मत युक्तिसंगत नहीं है। हृदय प्रभृति सभी अंगों की उत्पत्ति एक साथ ही होती है क्योंकि सभी भाव एक के साथ एक सम्बन्धित हैं, अतः सभी अंग एक साथ उत्पन्न होते हैं यह मत युक्तिसंगत है। अन्यत्र भी महर्षि चरक ने सभी इन्द्रियों एवं अङ्ग-प्रत्यङ्गों की एक साथ उत्पत्ति का वर्णन दिया है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने विभिन्न वैज्ञानिकों के मत का इस प्रकार उल्लेख किया है कि शौनक ऋषि के मत से इन्द्रियों का मूल आधार शिर होने से सर्वप्रथम शिर की उत्पत्ति होती है। कृतवीर्य के मत से बुद्धि एवं मन का स्थान होने से हृदय की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है। पाराशर के मत से नाभि द्वारा ही शरीर की वृद्धि होने से सर्वप्रथम नाभि उत्पन्न होती है। मार्कण्डेय के मत से चेष्टाओं का मूल होने के कारण पाणि-पाद की उत्पत्ति सर्वप्रथम होती है। सम्पूर्ण गात्रों की उत्पत्ति मध्य शरीर में निबद्ध होने से सर्वप्रथम मध्य शरीर ही उत्पन्न होता है ऐसा सुभूति (महर्षि) गौतम का मत है। भगवान धन्वन्तरि कहते हैं कि ऐसा कहना उचित नहीं है, गर्भ के सभी अंग-प्रत्यंग एक साथ उत्पन्न होते हैं, वंशांकुर या आम्रफल के सदृश सूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर नहीं होते। जैसे आम्रफल में कालप्रकर्ष से परिपक्व होने पर केशर, मांस (गूदा), अस्थि (गुठली) एवं मज्जा (गुठली की गिरी) पृथक् पृथक् स्पष्ट दिखाई देते हैं, वे ही तरुण (कच्चे) फल में सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं देते, उन सूक्ष्म केशर आदि को समय ही प्रव्यक्त करता है, इसी प्रकार वंशाकुर का भी वर्णन समझना चाहिए। इसी प्रकार गर्भ की तरुणावस्था में सभी अंग प्रत्यंगों के सूक्ष्म होने से उनकी उपलब्धि (दृष्टिगोचरता) नहीं होती, समय पाकर वे ही व्यक्त हो जाते हैं।

१. तत्राष्टमे मासे नैर्ऋतभागत्वात् भूतावसरत्वात्तस्य कालस्य गर्भस्य मरणमाहुः। न त्वोजसोऽनवस्थानात्॥ (अ० सं० शा० २/२९ की इन्दु टी०)

२. .....दापयेत्तद्बलिं ततः।
नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः, यत उक्तं कुमारतन्त्रे 'अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसोदनं बलिं दापयेदिति'॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३०७)

१. एवमस्येन्द्रियाण्यङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्वर्तन्ते॥ (च० सं० शा० ४/१४)

Scanned with CamScanner

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत-सदृश ही वर्णन दिया है[1], एवं सर्वांगों की एक साथ उत्पत्ति के लिए महर्षि सुश्रुत-सदृश ही आम्रफल का उद्धरण भी दिया है।

महर्षि भेल ने अधिकांशतः महर्षि चरक का ही अनुगमन किया है इन्होंने काश्यप को उद्धृत करते हुए सर्वप्रथम चक्षु की भी उत्पत्ति मानी है[2]।

गर्भ के सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले अंग की सम्भाषा को उद्धृत करते हुए विभिन्न आचार्यों ने उस मत के मानने वाले ऋषियों का उल्लेख किया है जिस नामोल्लेख में चरक, सुश्रुत, भेलादि में कुछ वैभिन्य है जो निम्न तालिका में दिया जा रहा है।

तालिका–६

संहिता-वर्णित ऋषि-नाम

गर्भ का प्रथम उत्पन्न अङ्ग	चरक	सुश्रुत एवं भावमिश्र	भेल
अविचारणीय-विषय	मारीच कश्यप	–	–
शिर	कुमाशिराभरद्वाज	शौनक	भरद्वाज
हृदय	कांकायन	कृतवीर्य	पाराशर
नाभि	भद्रकाप्य	पाराशर	खण्डकाप्य
पक्वाशय एवं गुदा	भद्रशौनक	–	शौनक
पाणिपाद	बडिश	मार्कण्डेय	बडिश
इन्द्रियाँ	वैदेह जनक	–	–
मध्यशरीर	–	गौतम	–
चक्षु	–	–	काश्यप
सर्वाङ्ग-प्रत्यङ्ग	धन्वन्तरि एवं आत्रेय पुनर्वसु	धन्वन्तरि	आत्रेय पुनर्वसु

१. शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शौनकः। शिरस्येवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ॥ ३०९॥
हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः। बुद्धेश्च मनसश्चापि यतस्तत्स्थानमीरितम् ॥ ३१०॥
पाराशर्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः। प्राणो यत्र स्थितो देहं बर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ ३११॥
पाणिपादं भवेत्पूर्वं मार्कण्डेयमुनेर्मतम्। देहिनः सकलाश्रेष्ठः पाणिपादाश्रया यतः ॥ ३१२॥
प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वांगसम्भवः। एतत्तु कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ ३१३॥
सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत्सम्भवन्ति हि। सूक्ष्मत्वात्तोपलभ्यन्ते मतं धन्वन्तेरेरिदम् ॥ ३१४॥
आम्रस्याणुफले भवन्ति युगपन्मांसास्थिमज्जादयो। लक्ष्यन्ते न पृथक्पृथक्तुतया पुष्टास्त एव स्फुटाः ॥
एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्येकदा। लक्ष्याः सूक्ष्मतया न ते प्रकटतामायान्ति वृद्धिं गताः ॥ ३१५॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/३०९ से ३१५)

२. अत्राह किञ्जल्प(ज्ञात)स्य गर्भस्य प्रथमं संभवति ? हस्तं पादाविति बवि(डि)श:, तत्प्रतिष्ठित(त्वा)त्शरीरस्य। पश्चाद्गुद इति शौनकः, तदाश्रित्वाद्वायो :। नाभिरिति खण्डकाप्यः, तत्र नाडी प्रतिष्ठ(ष्ठित)त्वात्। हृदयमिति पाराशरः, विज्ञानमूलकानां तन्मूलत्वात्। शिर इति भारद्वाजः, शरीरस्य तन्मूलत्वात्। चक्षुरिति काश्यपः। नेत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः। तस्मादर्बुदमेवास्य प्रथमं सम्भवति। तत्र सर्वे शरीरप्रदेशास्संभवन्त्यर्बुदस्रोहोत्पन्नाः ॥ (भे० सं० शा० ४/३१)

इस वैभिन्य का कारण संभवतः संभाषा में एक से अधिक ऋषियों द्वारा एक मत का संपादन या एक नामधारी विभिन्न ऋषियों का मत वैभिन्य हो सकता है, अथवा यह उस काल की लेखनशैली का द्योतक हो, जिसमें महर्षि आत्रेय आदि ने सभी सम्भाव्य आशंकाओं को रखकर अन्त में अपना समन्वयात्मक मत व्यक्त किया। भ्रूण-विज्ञान-दृष्ट्या महर्षि आत्रेय पुनर्वसु एवं धन्वन्तरि का मत कि सभी अंग-प्रत्यंग एक साथ उत्पन्न होते हैं अधिक युक्तिसंगत है।

There existed a lot controversy about the body part developing first and a good debate ensued. Summing up the opinion god Dhanwantari and Ātreya Punarvasu explained that all the body parts develop simultaneously, the logic that being basic supporting structure or abode of various features *(oja, mana, ātmā, buddhi* etc.*)* the heart comes first is not correct. All the features are interrelated to each other and develop simultaneously (quoted by Caraka). He explains further (quoted by Suśruta) giving the example of sprout of bamboo or fruit of mango, that as in the ripe mango fruit all its parts i. e. fibres, pulp, nut and kernel are very conspicuous but are not so when it is unripe and small. It is only time factor which is responsible for this change. Similar happenings are seen in sprout of bamboo (when it grows, bamboo-wood, leaves etc. are apparent but not in earlier stage). Similarly in young embryo all the features inspite of their presence are not conspicuous but are apparent after its maturity.

Caraka, Suśruta etc. have quoted opinions of others. Different debaters with the body parts mentioned by them as to be first born are given hereunder.

First born body part	Classics mentioning the debaters		
	Caraka	Suśruta and Bhāvamiśra	Bhela
1 Not to be discussed	Mārīca Kaśyapa	—	—
2. Head	Kumāraśirā Bharadwāja	Śaunaka	Bharadwāja
3. Heart	Kāṅkāyana	Kṛtavīrya	Pārāśara
4 Umbilicus	Bhadrakāpya	Pārāśara	Khaṇḍakāpya
5 Duodinum and anus	Bhadraśaunaka	—	Śaunaka
6. Extremities	Baḍiśa	Mārkaṇḍeya	Baḍiśa
7. *Indriyas*	Vaideha Janaka	—	—
8. Trunk	—	Gautama	—
9. Eyes	—	—	Kāśyapa
10. All body parts together	Dhanwantari and Ātreya Puṇarvasu	Dhanwantari	Ātreya Punar-vasu

गर्भ के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की उत्पत्ति के घटक (Constituents of different body parts of the fetus)

गर्भस्य यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ। शोणितफेनप्रभवः फुप्फुसः। शोणितकिट्टप्रभवः उण्डुकः॥

Scanned with CamScanner

असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः। तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनुधावति ॥
ततोऽस्यान्त्राणि जायन्ते गुदं वस्तिश्च देहिनः। उदरे पच्यमानानामाध्मानाद् रुक्ष्मसारवत् ॥
कफशोणितमांसानां साराज्जिह्वा प्रजायते। यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥
अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा। मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् ॥
सिराणां तु मृदुः पाकः स्नायूनां च ततः खरः। आशयाभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम् ॥

रक्तमेदःप्रसादाद् वृक्कौ। मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद् वृषणौ। शोणितकफप्रसादजं हृदयं, यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः। तस्याधो वामतः प्लीहा फुप्फुसश्च, दक्षिणतो यकृत् क्लोम च ॥ (सु० सं० शा० ४/२६ से ३१)

तत्र समानेनाध्मायमानस्य देहोष्मणा पच्यमानस्य शोणितस्याच्छतो जायते यकृत्प्लीहा च। रक्तफेनात्फुप्फुसम्। रक्तकिट्टादुन्दुकः। रक्तमेदः प्रसादाद्वृक्कौ। रक्तमांसप्रसादादान्त्राणि। ··· रक्तस्यानिलयोगात्कालीयम् ॥ ४८॥

हृदयं पुनः श्लेष्मरक्तप्रसादात्सम्भवति। ··· तस्य वामपार्श्वे प्लीहा फुप्फुसश्च दक्षिणतो यकृत्क्लोम च॥ ४९॥

तथा कफरक्तवाहिनां स्रोतसां महाभूतानां च प्रसादादिन्द्रियाणि ॥ ५०॥

मांसासृक्कफप्रसादात्तु जिह्वा जायते ॥ ५७॥
मांसासृक्कफमेदः प्रसादाद्वृषणाविति ॥ ५८॥ (अ० सं० शा० ५/४८-५०, ५७, ५८)

प्राणस्तु बीजधातुं हि विभजत्यस्थिसंख्या(स्थ)या। प्रविष्टमात्रं बीजं हि रक्तेन परिवेष्ट्यते ॥
शुक्रादस्थ्यस्थितो मांसमुभाभ्यां स्नायवः स्मृताः। सर्वेन्द्रियाणि गर्भस्य सर्वाङ्गावयवास्तथा ॥
(का० सं० शा० २/२,३)

शोणिताद्धृदयं तस्य जायते हृदयाद्यकृत्। यकृतो जायते प्लीहा प्लीन्हः फुप्फुसमुच्यते ॥
परस्परनिबन्धानि सर्वाण्येतानि भार्गव !॥ (का० सं० शा० ३/५, ६)

महर्षि सुश्रुत ने गर्भ-शरीर के विभिन्न अंगों की उत्पत्ति का वर्णन करते समय लिखा है कि गर्भ के रक्त से यकृत एवं प्लीहा, रक्त के फेन से फुप्फुस और रक्त के मल से उण्डुक की उत्पत्ति होती है। श्लेष्मा एवं रक्त के प्रसाद या सारतम भाग के पित्त के द्वारा पचते समय उसमें वायु भी आ जाती है। इस (मिश्रण) से आन्त्र, गुदा एवं बस्ति की उत्पत्ति होती है। आध्मापन से उत्पन्न, सोने के सारभाग-सदृश उदर में (वायु एवं पित्त द्वारा) पकाए जाते हुए कफ, शोणित एवं मांस के सार भाग से जिह्वा की उत्पत्ति होती है। पित्त से युक्त वायु आवश्यकतानुसार स्रोतसों को विदीर्ण (या निर्माण) एवं मांस में प्रवेश करके उसे पेशियों में विभक्त करती है; मेद से स्नेह भाग लेकर उसे शिरा एवं स्नायु का रूप देती है, जिनमें शिराओं का मृदु तथा स्नायु का खर पाक होता है। वही (पित्त युक्त वायु मांस में प्रवेश करके) अवस्थित होकर बार बार अभ्यास करके आशयों की उत्पत्ति करती है। रक्त एवं मेद के प्रसाद (सार भाग) से वृक्क, मांस, रक्त, कफ एवं मेद के प्रसाद भाग से वृषण एवं शोणित तथा कफ के प्रसाद भाग से हृदय की उत्पत्ति होती है, जिसके आश्रय में प्राणवह धमनियाँ रहती हैं; उस हृदय के नीचे वाम पार्श्व में प्लीहा एवं फुप्फुस तथा दक्षिण पार्श्व में यकृत एवं क्लोम होता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि समान वायु के वेग के कारण शरीर की उष्णिमा द्वारा रक्त का पाचन होने से उत्पन्न अच्छ (प्रसाद) भाग से यकृत् और प्लीहा का निर्माण होता है। रक्त के फेन से फुप्फुस, रक्त के किट्ट से उण्डुक, रक्त एवं मेद के प्रसाद से वृक्क एवं रक्त तथा मांस के प्रसाद से आन्त्र का निर्माण होता है। श्लेष्म एवं रक्त के प्रसाद से हृदय उत्पन्न होता है। जिसके वाम पार्श्व में प्लीहा एवं फुप्फुस तथा दक्षिण पार्श्व में यकृत एवं क्लोम होते हैं। कफ एवं रक्तवह स्रोतसों एवं महाभूतों के प्रसाद से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। मांस, रक्त एवं कफ के प्रसाद से जिह्वा उत्पन्न होती है। मांस, रक्त, कफ एवं मेद के प्रसाद से वृषण की उत्पत्ति होती है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि प्राण (जीवात्मा) बीज धातु को अस्थि-संख्या या अस्थि-संस्थान के अनुसार विभक्त करता है। शरीर में प्रविष्ट हुआ बीज रक्त के द्वारा परिवेष्टित हो जाता है। शुक्र से गर्भ की अस्थियाँ, अस्थि से मांस एवं उन दोनों से (अस्थि एवं मांस से) स्नायु का एवं गर्भ के सभी अंगावयव तथा इन्द्रियों का निर्माण होता है। शोणित से हृदय, हृदय से यकृत, यकृत् से प्लीहा एवं प्लीहा से फुप्फुस की उत्पत्ति होती है, एवं ये अंग आपस में एक दूसरे से निबन्धित रहते हैं।

महर्षि हारीत ने विभिन्न अंगों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि वात एवं रक्त से त्वचा उत्पन्न होती है। मांस त्वचा के आश्रय में रहता है। शुक्र एवं श्लेष्मा से मेद एवं रक्त से रस तथा अस्थि की उत्पत्ति होती है। हृदय में पित्त आश्रित या स्थित है, यकृत वात-रक्त-मय है। रक्त, श्लेष्मा तथा रस का आश्रय उरु या जंघा है, प्लीहा कफ, रक्त एवं श्लेष्म-मय तथा पेशियाँ कफ एवं रक्तमय हैं[1]।

Suśruta says that fetal liver and spleen get their origin from *rakta*, lung from the foam and caecum from the waste product of *rakta*. The cream *(sāra)* of *śleṣmā* and *rakta* getting metabolised by *pitta* and followed by *vāyu* form intestines, anus and bladder. Just as pure gold is obtained by blowing (air into fire and heating the gold), similarly the tongue is formed from the best part of *kapha, rakta* and *māṃsa* getting metabolised in the abdomen. The *vāyu* associated with *ūṣmā (pitta)* canalizes the *srotasas* (channels), entering the *māṃsa* (flesh) divides it into *peśīs* (muscles), incorporating unctuous portion of *medas* forms *śirā* (vessels) and *snāyu* (tendons) by *mṛdu* (mild) and *khara* (strong) *pāka* (heating) respectively; this very *vāyu* by continuous practice or repeated actions forms the *āśayas* (visceras). The kidneys are derived from the cream portion of *rakta* and *medas*, the testicles (total scrotum) from cream of *māṃsa, rakta, kapha* and *medas* and heart from the cream of *rakta* and *kapha*. This heart supports all the *prāṇavahā dhamanīs* (life carrying channels). Below the heart on the left side is spleen and lungs and on the right liver and *kloma* (pancreas).

Vāgbhaṭa I says that the liver and spleen are derived from essence part of blood formed due to action of body heat influenced by force of *samāna vāyu*. From froth of blood the lungs; from waste product of blood and *medas* the *vṛkka* (kidneys) and from essence part of blood and flesh the intestines are formed. From essence part of *śleṣmā* and blood, the heart is formed, in left side of which the spleen and lungs and on right side the liver and *kloma* are situated. From essence part of *kaphavaha* and *raktavaha srotasas* as well as *mahābhūtas* the *indriyas* are derived. The tongue develops from essence part of flesh, blood and *kapha* and the testicles from essence part of flesh, blood, *kapha* and *medas*.

Kāśyapa opines that *prāṇa (jīva)* divides the *bījadhātu* (zygote) according to number or systems of *asthīs* (bones). The *bīja* after its entry into the body is enveloped by *rakta*. From *śukra* are derived bones, from bone the *māṃsa* and from these two i. e. bone and *māṃsa* develop *snāyu* (tendon) and all other major and minor body parts alongwith *indriyas*. From *rakta* heart is formed, from heart the liver, from liver the spleen and from spleen the lungs. All these structures are attached to each other.

१. वातरक्तेन त्वग्देहे मांसं त्वगाश्रितं मतम्॥ ४५॥
शुक्रश्लेष्मोद्भवो मेदो रसोऽस्थिरक्तसंभवः। पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं यकृत् ॥ ४६॥
रक्तश्लेष्मरसाश्रित उरुः कफरक्तश्लेष्ममयः प्लीहा कफरक्तमय्यः पेश्यश्च॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/४५, ४६, ४७)

Scanned with CamScanner

Hārīta says that skin is formed from *vāyu* and *rakta*. The *māṃsa* is supported (covered) by skin. *Medas* is formed from *śukra* and *śleṣmā* and from *rakta* the *rasa* and *asthīs* (bones) are formed. The abode of *pitta* is heart, the liver is flooded with *vāyu* and *rakta*. The *rakta*, *kapha* and *rasa* are situated in *uru* (thighs). The spleen is flooded with *kapha*, *rakta* and *śleṣmā* and the *pesīs* with *kapha* and *rakta*.

विमर्श (Comments)

यद्यपि उपर्युक्त विषय का आधुनिक ज्ञान की दृष्टि से स्पष्टीकरण कठिन है पर महर्षि काश्यप द्वारा "प्रविष्ट बीज का रक्त से परिवेष्टन" वर्णन उन ऋषियों की दिव्यदृष्टि का द्योतक है क्योंकि शुक्राणु स्त्रीबीज या रक्त में सम्पूर्ण रूप में प्रविष्ट हो जाता है। हारीत ने प्लीहा को कफ, रक्त एवं श्लेष्मामय माना है, कफ एवं श्लेष्म दोनों शब्दों के प्रयोग का स्पष्टीकरण कठिन है। यकृत तथा प्लीहा दोनों ही अङ्ग आधुनिक विज्ञान में भी रक्त-स्थान माने जाते हैं।

Any scientific explanation for above description is not possible. However, enveloping of *bīja* (sperm) by *rakta* (ovum) given by Kāśyapa is very scientific, because head of sperm enters the ovum and its tail is resorbed, thus main part of sperm is practically enveloped by ovum. Hārīta has mentioned that spleen is flooded with *kapha*, *rakta* and *śleṣmā*; *kapha* and *śleṣmā* being one entity are inexplicable.

गर्भ के स्त्रीकर, पुरुषकर एवं नपुंसककर भाव (Specific features depending upon sex of the fetus)

सन्ति खल्वस्मिन् गर्भे केचिन्नित्या भावाः, सन्ति चानित्याः केचित्। तस्य य एवाङ्गावयवाः सन्तिष्ठन्ते, त एव स्त्रीलिङ्गं पुरुषलिङ्गं नपुंसकलिङ्गं वा बिभ्रति। तत्र स्त्रीपुरुषयोर्ये वैशेषिका भावाः प्रधानसंश्रया गुणसंश्रयाश्च, तेषां यतो भूयस्त्वं ततोऽन्यतरभावः। तद्यथा–क्लैब्यं भीरुत्वमवैशारद्यं मोहोऽनवस्थानमधोगुरुत्वमसहनं शैथिल्यं मार्दवं गर्भाशयबीजभागस्तथायुक्तानि चापराणि स्त्रीकराणि, अतो विपरीतानि पुरुषकराणि, उभयभागावयवा नपुंसककराणि भवन्ति॥ (च० सं० शा० ४/१४)

यथास्वं च गर्भस्य पुंस्त्रीनपुंसकान्यतमलिङ्गानुरूपा एव भावा मनसि शरीरे च सन्तिष्ठन्ते। वैशेषिकलिङ्गसङ्करे तु यतो भूयस्त्वं ततोऽन्यतरा भावाः॥ १४॥

तद्यथा क्लैब्यं भीरुत्वमवैशारद्यं मोहोऽनवस्थानमधोगुरुत्वमसंहननं शैथिल्यं मार्दवं गर्भाशयबीजभावास्तथा युक्ताश्चापरे स्त्रीकरा भावाः। ततो विपरीताः पुंस्कराः। सङ्कीर्णा नपुंसककराः॥ १५॥

(अ० सं० शा० २/१४, १५)

गर्भ के कुछ नित्य (कर एवं चरणादि) एवं कुछ अनित्य (दन्त आदि) भाव होते हैं। गर्भ के नित्य भावों वाले अंगावयव ही स्त्रीलिंग, पुलिंग एवं नपुंसक लिंग के निर्धारक होते हैं, यथा उपस्थ रूप नित्यभाव स्त्रीलिंग बोधक, शेफ, पुल्लिंग बोधक तथा उपस्थ एवं शेफ के स्थान में केवल रन्ध्र की उपस्थिति नपुंसक लिंग बोधक है। यद्यपि स्त्री के स्तन एवं पुरुष के श्मश्रु आदि तथा नपुंसक के दोनों प्रकार के अवयव जन्मोपरान्त उत्पन्न होते हैं परन्तु इनके आश्रय स्थान उर एवं कपोल आदि नित्य हैं। स्तनारम्भक बीज युक्त उर से ही स्त्रियों में स्तनों की तथा श्मश्रु आदि के आरम्भक बीज से युक्त कपोलों से ही पुरुषों में श्मश्रु आदि काल वश या उचित काल होने पर उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार पृथ्वी में गिरा हुआ शालि आदि का बीज ऋतु आने पर ही अंकुरित होता है। इस प्रकार जो अंगावयव व्यक्त रूप में

विद्यमान रहते हैं वे ही स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक-लिंग के निर्माता होते हैं[1]। स्त्री-पुरुष-निर्णायक ये विशिष्ट भाव प्रधान संश्रय (या आत्मसंश्रय) तथा गुण संश्रय (या शुक्र-शोणित में स्थित पञ्चमहाभूतों के आधार) में आते हैं, अर्थात् स्त्री-पुरुष-निर्णायक विशिष्ट भाव गर्भ में आत्मा, शुक्र एवं शोणित स्थित पञ्चमहाभूतों द्वारा लाए जाते हैं; एवं जिसकी दैव वश प्रधानता होती है (स्त्री लिंगादि भावों में जिस लिंग के भावों की) उस लिंग (के गर्भ) का निर्माण होता है। जैसे क्लैब्य, भीरुत्व, अवैशारद्य, मोह, अनवस्थान, अधोगुरुत्व, असहन (सहन शक्ति का न होना), शैथिल्य, मार्दव एवं गर्भाशय तथा बीजभाग (स्त्री बीज) से युक्तता आदि अन्य भाव स्त्रीकर भाव होते हैं। इनमें से क्लैब्य से अनवस्थान तक के भाव प्रधानसंश्रय तथा अन्य गुणसंश्रय होते हैं[1]। इनसे विपरीत लक्षण पुरुषलिंग-कारक तथा दोनों प्रकार के भाव नपुंसकर होते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि गर्भ के पुरुष, स्त्री या नपुंसक में से किसी एक के अपने लक्षणों के अनुसार मन एवं शरीर में गुण स्थित होते हैं। इन विशिष्ट लक्षणों के मिश्रित होने पर अन्य भाव उत्पन्न होते हैं (अर्थात् भीरुत्व स्त्रीकर भाव एवं साहस पुरुषकर भाव के मिश्रित होने पर तीसरे अर्थात् समस्वभाव की उत्पत्ति होगी)। जैसे-क्लीबता, भीरुता, अनिपुणता, ममता, असंहनन (शरीर का सुदृढ़ न होना), अधोगुरुता (शरीर के निचले भाग का भारीपन), शैथिल्य (अंगों का शिथिल होना), मृदुता (शरीर का मृदु होना), गर्भाशय एवं बीज (स्त्रीबीज) एवं अन्य अवर्णित सभी (स्त्रीचेष्टादि) स्त्रीकर भाव हैं इनके विपरीत पुरुषकर तथा मिश्रित नपुंसककर भाव हैं।

Caraka and Cakrapāṇi say that there are certain permanent features in the body such as extremities etc. and certain temporary ones such as teeth etc. Permanent feature of fetus denote its specific female, male or hermaphrodite sex; for example permanent feature like vulva etc. denote female sex, penis etc. a male sex and absence of both but presence of just one aperture the hermaphrodite. Though breast (developed breast), moustache and beard etc. are conspicuous only after birth, yet, these are also permanent features because the chest and cheeks are permanent. The seed from which breast or hair of face would grow in chest of female and cheeks of male respectively are present from the very birth, without the presence of this initial seed these structures can not grow; these breast etc. develop at appropriate period (or age) in the same way as seed of *śālī* dropped in field will sprout only in its appropriate season. Only apparent permanent features denote specific sex. The features responsible for sex reside in *ātmā (pradhāna saṃśraya)* or *bhūtas* of *śukra* and *śoṇita (guṇa saṃśraya)* and the formation of specific sex depends upon relative predominace of either of them. The features of female are—*klaivya* (cowardice), *bhīrutwa* (timorousness), *avaiśāradya* (lack of skill or fallibility), *moha* (mental confusion), *anawasthāna* (fickling nature), *adhogurutwa* (heaviness of lower part), *asahana* (intolerance). *śaithilya* (laxity of

१. नित्या इति यावच्छरीरभाविनः करचरणादयः, अनित्याश्च न यावच्छरीरभाविनो दन्तादयः। ..... तत्रोपस्थरूपो नित्यो भावः स्त्रीलिङ्गं, शेफश्च पुल्लिङ्गम्, उपस्थलिङ्गाकारविरहितं च रन्ध्रमात्रं नपुंसकलिङ्गं भवति। किंवा, स्त्रिया यल्लिङ्गं स्तनादि, पुरुषस्य वा श्मश्रुप्रभृति, नपुंसकस्य वा स्त्रीपुंसमानाकाररूपं जातोत्तरकालभावि, तदपि य एव नित्या भावा उरःकपोलप्रभृतयस्त एव कालवशाद्विभ्रतीति वाक्यार्थः। उर एव हि स्तनारम्भकबीजयुक्तं स्त्रिया उत्तरकालं स्तनवद्भवति, एवं कपोल एव श्मश्रुबीजयुक्तः श्मश्रुवान भवति। .....यतो बीजमहिमाऽयं-यत् स्वकाल एव कार्यं करोति। यथा-अवनिपतितमपि शाल्यादिबीजमृतुप्राप्तेवाङ्कुरं जनयति .....। प्रधानसंश्रया इति आत्मसंश्रयाः; गुणसंश्रया इति शुक्रशोणितगतभूतसंश्रयाः; गुणशब्देनेहभूतान्युच्यन्ते। .....तेन यास्मिन् वैशेषिके भावे भूयस्त्वं दैववशाद्भवति .....। क्लैब्याद्यनवस्थानपर्यन्तं प्रधानसंश्रयं, शेषं गुणसंश्रयम्। .....॥ (च० सं० शा० ४/१४ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

joints or body parts), *mārdava* (softness of body parts) and presence of uterus and *bija* (ovum) etc. Characters from *klaivya* to *anawasthāna* depend upon *pradhāna* or *ātmā* and others on *guṇa* or *bhūtas* of sperms and ovum. Opposite to these are masculine characters and mixture of both belong to hermaphrodite.

Vāgbhaṭa I has also expressed almost similar view albeit in abbreviated form and has replaced intolerance with looseness.

गर्भ के जन्मोपरांत उत्पन्न होने वाले अङ्गावयव (The body parts developing after birth)

येऽस्य जातस्योत्तरकालं जायन्ते; तद्यथा–दन्ता व्यञ्जनानि व्यक्तीभावस्तथायुक्तानि चापराणि। एषा प्रकृतिः, विकृतिः पुनरतोऽन्यथा ॥ (च० सं० शा० ४/१४)

जन्मोत्तरकालजेभ्यो दन्तादिभ्यः क्रमेण तु स्पष्टीभवन्ति। एषा प्रकृतिः। विकृतिस्तोऽन्यथा ॥
(अ० सं० शा० २/१३)

जो इस गर्भ के जन्मोत्तर काल में उत्पन्न होते हैं वे इस प्रकार हैं–दन्त, व्यञ्जन (दाढ़ी, मूछ, स्तनादि[1]) का व्यक्तभाव तथा शुक्र एवं रज का प्रादुर्भाव[1] आदि बाद में होते हैं, यह प्रकृति है अन्यथा विकृति है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि दन्तादि की उत्पत्ति जन्मोत्तर काल में क्रमशः होती है यह प्रकृति है अन्यथा विकृति है। अर्थात् सदन्त-शिशु का जन्म एक विकृति है।

उपर्युक्त वर्णन में टीकाकार ने व्यञ्जनादि एवं व्यक्तीभाव दोनों शब्दों को पृथक् करके अर्थ किया है पर ऐसा आभास होता है कि व्यक्तीभाव शब्द पूर्व के सभी अंगों जैसे दन्त-व्यञ्जनादि की व्यक्तता या स्पष्टता के लिए प्रयुक्त है अर्थात् दन्त, व्यञ्जन (श्मश्रु, स्तन, गुह्याङ्ग के केशादि) सभी यद्यपि गूढ़रूप में विद्यमान तो रहते हैं परन्तु जन्मोत्तरकाल में समय आने पर व्यक्त या स्पष्ट होते है।

Caraka says that teeth, moustache, beard, *śukra* (seminal ejaculate) and *raja* (menstruation) become conspicuous after birth, this is *prakṛti* (normalcy) otherwise it is (their presence from birth) pathology.

Vāgbhaṭa I has mentioned only teeth in this category.

गर्भ की वर्णोत्पत्ति के कारण (Factors for formation of body-complexion)

न खलु केवलमेतदेव कर्म वर्णवैशेष्यकरं भवति। अपि तु तेजोधातुरप्युदकान्तरिक्षधातुप्रायोऽवदातवर्णकरो भवति, पृथिवीवायुधातुप्रायः कृष्णवर्णकरः; समसर्वधातुप्रायः श्यामवर्णकरः ॥ (च० सं० शा० ८/१५)

तत्र तेजोधातुःवर्णानां प्रभवः; स यदा गर्भोत्पत्तावब्यातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति, पृथिवीधातुप्रायः कृष्णं, पृथिव्याकाशधातुप्रायः कृष्णश्यामं, तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम्। यादृगवर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणि तादृग्वर्णप्रसवा भवति इत्येके भाषन्ते ॥ (सु० सं० शा० २/३५)

तत्र शुक्रे शुक्ले घृतमण्डाभे वा गर्भस्य गौरत्वं तैलाभे कृष्णत्वं मध्वाभे श्यामत्वं। तथा क्षीरादिमधुराणामुपयोगान्मातुरुदकविहाराच्च गौरता तिलान्नविदाहिना कृष्णता व्यामिश्राणां श्यामता। देशकुलानुवृत्तिश्च वर्णभेदः। तथा तेजोधातोरुदकाकाशधातुसम्पर्कादगौरता भूवायुसम्पर्कात् कृष्णता सर्वधातुसाम्ये श्यामता ॥
(अ० सं० शा० १/६५)

१. व्यञ्जनानि श्मश्रुस्तनादीनि। व्यक्तीभावः शुक्रजसोराविर्भावः ॥ (च० सं० शा० ४/१४ की चक्र० टी०)

गर्भ के शरीर के वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए महर्षि चरक ने लिखा है कि केवल कर्म (पूर्ववर्णित पुत्रेष्टि यज्ञ) ही विशिष्ट वर्ण की उत्पत्ति का कारण नहीं है; बल्कि तेज धातु जल एवं आकाशप्राय (जल एवं आकाश महाभूत की अधिकता से मिश्रित) होने पर गौर वर्ण कारक, पृथ्वी एवं वायु धातुप्राय होने पर कृष्ण वर्ण कारक एवं सभी धातुओं का साम्य होने पर श्याम वर्ण कारक होता है (अर्थात् प्रधान रूपेण तेज धातु ही वर्ण का निर्माणकर्ता है)।

महर्षि सुश्रुत ने भी तेज धातु को प्रधान बताते हुए लिखा है कि तेज धातु सर्व वर्णोत्पत्ति का हेतु है गर्भोत्पत्ति के समय जब वह जल धातु प्रधान होता है तो गौर वर्ण, पृथ्वी धातु प्राधान्य में कृष्ण वर्ण, पृथ्वी एवं आकाश धातु प्राधान्य में कृष्ण-श्याम वर्ण एवं जल तथा आकाश धातु प्राधान्य में गौरश्याम वर्ण के गर्भ की उत्पत्ति करता है। अन्य आचार्यों का कथन है कि गर्भिणी स्त्री जिस प्रकार के वर्ण के आहार का सेवन करती है उस प्रकार के गर्भ को उत्पन्न करती है।

महर्षि वाग्भट ने अष्टांगसंग्रह में गर्भ की वर्णोत्पत्ति के लिए चार कारणों का वर्णन किया है। शुक्र (पुरुष का शुक्र) के श्वेत, घृत या मण्डाभ होने पर गर्भ को गौरवर्णता, तैलाभ होने पर कृष्णवर्णता एवं मध्वाभ होने पर श्यामवर्णता प्राप्त होती है। (२) इसी प्रकार यात्रा (गर्भिणी) के दुग्ध आदि मधुर द्रव्यों के (अधिक) उपयोग एवं जल विहार आदि करने से गर्भ को गौरवर्णता, तिल, अन्न आदि विदाही पदार्थों के सेवन से कृष्णवर्णता एवं मिश्रित आहार-विहार से श्यामवर्णता प्राप्त होती है। (३) देश, काल एवं अनुवृत्ति से भी वर्णभेद होता है। (४) तेज धातु के उदक एवं आकाश से सम्पर्क होने पर गौरवर्णता, पृथ्वी एवं वायु के सम्पर्क से कृष्णवर्णता एवं सभी धातुओं के साम्य से श्यामवर्णता होती है। टीकाकार इन्दु ने सभी मिश्र भावों से वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन कर उपर्युक्त मतों का सामंजस्य स्थापित किया है[1]।

महर्षि हारीत ने शरीर वर्ण निर्माण में दोष-प्राधान्य का वर्णन दिया है इनके मत से वात से श्याम, पित्त से गौर, श्लेष्मा से भी श्याम, वात-रक्त से कृष्ण, पित्त-रक्त से पिंगल तथा कफ-रक्त से भी श्याम वर्ण का व्यक्ति होता है[2]।

The comlexion of body does not depend only upon the influence of *putreṣṭi yajñya* etc. rather it depends upon the *teja mahābhūta*. Different complexions arise on the basis of association of other *bhūtas* with *teja*. The opinions of authors are given here under.

Complexion	Responsible *bhūtas or doṣa*		
	Caraka and Vāgbhaṭa I	Suśruta	Hārīta
Gaura (fair)	*Teja*+ *Jala** + *Ākāśa**	*Teja*+ *Jala**	*Pitta*
Kṛṣṇa (black)	*Teja*+ *Pṛthvī** + *Vāyu**	*Teja*+ *Pṛthvī**	*Vāta*+ *Rakta*

cont. ....

१. तेषां चाहारविहारदेशकुलादिभूताधिक्यानां परस्परनानाविधभेदभिन्नानां मिश्रिभावेन वर्णानां मानम्।
(अ० सं० शा० १/६५ की इन्दु टी०)

२. वातेन श्यामः ·····,पित्तेन गौरो ·····। श्लेष्मणा जायते ·····श्यामश्च ·····।
वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन पिङ्गलः। ····· श्यामः कफासृजा ॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/३१, ३२, ३३)

Scanned with CamScanner

	Caraka and Vāgbhaṭa I	Suśruta	Hārīta
Śyāma (swarthy)	All *bhūtas* equal	—	Vāta and *kapha*** & *Rakta**+*Kapha*
Gauraśyāma	—	*Teja*+ *Jala**+ *Ākāśa**	—
Kṛṣṇaśyāma	—	*Teja*+ *Pṛthvī** + *Ākāśa**	—
Piṅgla (tawny)	—	—	*Pitta*+*Rakta*

*dominant *bhūta;* **both these independently

Besides this Suśruta quoting the views of others says that the colour of diet (used by the mother) also influences the complexion. Vāgbhaṭa I elaborates further that (1) if semen is white or has the colour of *ghee* or *maṇḍa* (the scum of boiled rice) the complexion would be fair; if semen resembles oil in colour then dark and if it is honey coloured then complexion would be swarthy, (2) similarly if pregnant woman has used milk etc. sweet substances and bathing or swimings then the complexion would be fair; if black *tila* etc. *vidāhī* (producing burning sensation or pungent or acrid) substances then dark and if mixture of diet then swarthy, (3) complexion also depends upon *deśa* (place of living), *kula* (race or family) and also mode of livelihood. Indu says that all the factors together play a role in the formation of complexion of the body.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन में सभी आचार्यों ने शरीर के वर्ण निर्माण में तेज धातु का ही प्राधान्य माना है। महर्षि सुश्रुत ने आहार के वर्ण का तथा वाग्भट ने अन्य देशादि के ही साथ शुक्र के वर्ण का भी प्रभाव गर्भ की वर्णोत्पत्ति में माना है। अन्यत्र वर्णित शुद्ध शुक्र के लक्षणों में सभी आचार्यों ने श्वेत वर्ण शुक्र को ही शुद्ध माना है अतः इन विभिन्न वर्णों की कल्पना का स्पष्टीकरण कठिन है क्योंकि ये वैकारिक वर्ण हैं। महर्षि सुश्रुत ने सम्भवतः निवास-स्थान के भेद के कारण गौर, कृष्ण एवं श्याम वर्ण के बीच के कृष्णश्याम एवं गौरश्याम वर्ण की भी कल्पना की है। महर्षि हारीत ने भी सुश्रुत सदृश ही अनेकों वर्णों की कल्पना की है।

Vāgbhaṭa I has described that complexion of body is also influenced by colour of semen, while he himself has described only white colour of healthy semen, naturally these colours become pathologic, and it is not possible to offer any explanation for this description. The concept of more than three complexions by Suśruta and Hārīta denotes probably their living areas, wherein these might be prevalent.

गर्भ की जात्यन्धता एवं नेत्र की वर्णोत्पत्ति का कारण (Cause of congenital blindness and formation of colour of eyes)

तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धं करोति, तदेव रक्तानुगतं रक्ताक्षं, पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं श्लेष्मानुगतं शुक्लाक्षं, वातानुगतं विकृताक्षमिति॥ (सु० सं० शा० २/३५)

अपि च–दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धत्वं तदेव वातानुगतं विकृतरुक्षारुणाक्षं पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं श्लेष्माऽनुगतं शुक्लाक्षं रक्तानुगतं रक्ताक्षमिति॥ (अ० सं० शा० २/५७)

यदि दृष्टि-भाग में तेज धातु न पहुँचे तो वह जात्यन्ध (बालक की उत्पत्ति) करता है, वही तेज रक्तानुगत होने पर रक्ताक्ष, पित्तानुगत होने पर पिंगलाक्ष, श्लेष्मानुगत होने पर शुक्लाक्ष एवं वातानुगत होने पर विकृताक्ष उत्पन्न करता है। टीकाकार डल्हण ने जात्यन्धता की उत्पत्ति में पूर्वजन्म के कर्म की प्रधानता मानते हुए दृष्टिभाग में तेज के पहुँचन का काल गर्भ का चतुर्थ मास बताया है[1]। अन्यत्र दौहद-अवमानन से भी विकृताक्ष या अनक्ष (अक्षि विरहित) शिशु की उत्पत्ति का वर्णन किया है[2]।

अष्टांगसंग्रहकार ने सुश्रुत सदृश ही वर्णन किया है कि यदि तेज धातु दृष्टिभाग में न पहुँचे तो जात्यन्ध, उसी (तेज) के वातानुगत होने पर विकृत, रुक्ष एवं अरुणाक्ष; पित्तानुगत होने पर पिंगाक्ष; श्लेष्मानुगत होने पर शुक्लाक्ष एवं रक्तानुगत होने पर रक्ताक्ष गर्भ की उत्पत्ति होती है।

उपर्युक्त दोनों ही आचार्यों ने नेत्रों के विभिन्न आकार एवं वर्ण की उत्पत्ति में तेज धातु का प्रधान्य माना है।

Suśruta and Vāgbhaṭa I have written that if *teja dhātu* does not reach eyes, the born child would be *jātyandha* (congenitally blind). If the *teja* is followed by *rakta* then the colour of eyes would be red, if by *pitta* then yellowish, if by *ślesmā* then white and if by *vāyu* then the eyes would be dry, pink and abnormal in shape and size *(vikṛta)*. Ḍalhaṇa explains that the deeds of previous life prevent the entry of *teja* in eyes, the period for which is 4th month of gestation. At another place Suśruta has said that non-fulfilment of *dauhṛda* results in either abnormal shape of eyes or their absence.

गर्भ के लिङ्ग-निर्माण के कारण (Factors for sex formation)

रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण·····॥ (च० सं० शा० २/१२)
तत्र शुक्रबाहुल्यात् पुमान्, आर्तवबाहुल्यात् स्त्री, साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति॥ (सु० सं० शा ३/५)
तत एव च शुक्रस्य बाहुल्यात्पुमान्, आर्तवस्य बाहुल्यात्स्त्री, तयोः साम्येन नपुंसकम्॥
(अ० सं० शा० २/५)
अत एव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्।
रक्तस्य स्त्री, तयोः साम्ये क्लीबः ·····॥ (अ० हृ० शा० १/५)

रक्त की अधिकता से कन्या एवं शुक्र की अधिकता से पुत्र की उत्पत्ति होती है। अन्यत्र महर्षि चरक ने स्त्री एवं पुरुष की उत्पत्ति में हेतु को प्रधानता वर्णित करते हुए स्पष्टीकरण दिया है[3] कि दोषरहित सुन्दर बीज खेत में बोने पर अपनी प्रकृति के अनुसार धान से धान, जौ से जौ के रूप में अंकुरित होता है, उसी भाँति स्त्री एवं पुरुष हेतु के अनुसार (शुक्र या रज की अधिकता के अनुसार[4]) विभक्त होते हैं।.

१. चतुर्थे मासि कस्यचित् पूर्वकर्मवशात् दृष्टिभागं चक्षुरिन्द्रियाधिष्ठानम् अप्रतिपन्नम् अप्राप्तं तेजो जात्यन्धं जन्मान्धं करोति॥ (सु० सं० शा० २/३५ की डल्ह० टी०)

२. सु० सं० शा० ३/१८ (दौहद अपूर्ति-परिणाम के अन्तर्गत उद्धृत)

३. एवमभिनिर्वर्तमानस्य गर्भस्य स्त्रीपुरुषत्वे हेतुः पूर्वमुक्तः। यथा हि बीजमनुपतप्तमुसं स्वां स्वां प्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्री पुरुषावपि यथोक्तं हेतुविभागमनुविधियते॥ (च० सं० शा० ८/१८)

४. हेतु विभागमनुविधियते इति "रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण" इत्यादि। (च० सं० शा० ८/१८ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

महर्षि सुश्रुत ने भी शुक्र के बाहुल्य से पुरुष एवं आर्तव के बाहुल्य से स्त्री एवं दोनों के समान होने से नपुंसक की उत्पत्ति मानी है। अष्टांगसंग्रह एवं अष्टांगहृदयकार के भी यही विचार हैं।

टीकाकार अरुणदत्त ने स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि संभोग के समय यदि पुरुष पहिले विसर्जित हो तो वीर्यवान पुत्र, यदि स्त्री पहिले विसर्जित हो तो रूपवती कन्या उत्पन्न होती है। इसी कारण से ही कुछ पुंगर्भ मातृ सदृश तथा स्त्रीगर्भ पितृ सदृश भी होते हैं अर्थात् यदि शुक्राधिक्य का पुंगर्भ है पर स्त्री पूर्व विसर्जित हुई तो मातृ सदृश पुंगर्भ, इसी प्रकार यदि रजोधिक्य होने पर भी पुरुष पहिले विसर्जित हो तो पितृसदृश कन्या गर्भ होगा।

टीकाकार डल्हण ने आर्तव एवं शुक्र के बाहुल्य का स्पष्टीकरण देने का प्रयत्न करते हुए लिखा है कि यों तो आर्तव चतुरञ्जलि प्रमाण एवं शुक्र एक प्रसृति मात्र होता है अतः आर्तव का तो बाहुल्य हर समय रहेगा, पर ऐसी बात नहीं है, यहाँ पर गर्भाशय स्थित मल-रहित गर्भजनक आर्तव की मात्रा का ग्रहण करना चाहिए; अथवा स्वमान (अपने अपने सामान्य मान) के आधार पर बाहुल्य का ग्रहण करना चाहिए। शुक्र कभी कभी हर्ष आदि के कारण मात्रा में अधिक आ जाता है एवं कभी कभी मानसिक ग्लानि से मात्रा कम हो जाती है। अन्य आचार्यों के मत को उद्धृत करते हुए शुक्र एवं आर्तव के प्रमाण को न लेकर उसमें स्थित वीर्य या कार्यशक्ति की अधिकता को कारण स्वरूप बताया है[2]।

आचार्य भावमिश्र ने अन्य आचार्यों सदृश ही शुक्र की अधिकता से पुत्र एवं आर्तव की अधिकता से कन्या की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए टीकाकार डल्हण द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण का भी उल्लेख किया है, जिसमें शुक्र के अत्यधिक मात्रा में क्षरण के लिए दुग्धादि शुक्रल द्रव्य-सेवन एवं शुक्र की ही भाँति आर्तव की भी मात्रा के प्रभावित होने का उल्लेख किया है तथा गर्भाशय-स्थित शुक्र या रज की ही अधिकता या न्यूनता को लिंग-निर्णायक माना है। साथ ही सुश्रुत के वाक्य को उद्धृत करते हुए स्पष्ट किया है कि शरीर के दोषादिकों की मात्रा स्थिर नहीं होती, क्योंकि शारीरिक विलक्षणता अर्थात् दीर्घ (लम्बे), ह्रस्व (छोटे) एवं कृश आदि भेदों के कारण शरीरों का सदृश्य न होने से एवं वय, अहोरात्रि, ऋतु एवं भुक्तावस्था आदि में दोषों की अस्थिरता होने से इनकी मात्रा में परिवर्तन होता है, अर्थात् शुक्र एवं आर्तव की एक प्रसृति या चतुरञ्जलि प्रमाण कोई निश्चित मात्रा नहीं है, यह अवस्था-विशेष से परिवर्तित होती है, जिसके कारण पुत्र या पुत्री का जन्म होता है[3]।

---

१. दारुवाहिना तुक्तम्-
स्त्री पुंसंयोस्तु संयोगे यद्यादौ विसृजेत्पुमान्। शुक्रं, ततः पुमान् वीरो जायते बलवान् दृढः।
अथ चेद्वनिता पूर्वं विसृजेद्रक्तसंयुतम्। ततो रूपान्विता कन्या जायते दृढसंहता॥ इति॥
अत एव च पुंगर्भाः केचित्स्त्रिन्मातृसदृशा दृश्यन्ते, स्त्रीगर्भाश्च केचित्स्त्रिप्तृसदृशा दृश्यन्ते॥
(अ० हृ० शा० १/५ की अरुण० टी०)

२. ननु शुक्रबाहुल्यात् पुमान् इति कस्मादुक्तम्? यत आर्तवस्यैव बाहुल्यम्; 'उक्तं हि-आर्तवं हि चतुरञ्जलिप्रमाणं, शुक्रन्तु प्रसृतिमात्रम् इति,' नैवं, यावन्मात्रमार्तवं गर्भाशयावस्थितं मलरहितं गर्भजननं तावदेव ग्राह्यम्; अथवा स्वप्रमाणापेक्षया शुक्रशोणितयोर्बाहुल्यमल्पत्वं चाभिप्रेतम्। शुक्रं तु कदाचिदत्यन्तहर्षवशात् बहु स्रवति, कदाचिद् वैमनस्यादल्पमिति। अन्ये त्वाचार्या एवं ब्रुवन्ति-शुक्रार्तवयोर्न्यूनाधिकसमत्वं वीर्येण भवति। (सु० सं० शा० ३/५ की डल्ह० टी०)

३. अधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्तवेऽधिके। नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा पारमेश्वरी॥
नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पतिः सदैवार्तवस्यैव बाहुल्यात्। यत् उक्तम्-'आर्तवं चतुरञ्जलिप्रमाणं शुक्रं प्रसृतिमात्रम्' इति।
नैवं यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्तवं च गर्भोत्पत्ति हेतुः, शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद् दुग्धादिशुक्रलद्रव्यसेवनात् शुक्रबाहुल्याद् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वैमनस्यादिना शुक्रात्पत्वात्त्वल्पमिति, एवमार्तवमपीति न दोषः॥ सुश्रुतः पुनराह-
'वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च। दोषधातु मलानां तु परिमाणं न विद्यते'॥
वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्वकृशादिभेदेन सादृश्याभावाद् अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्तुभुक्तेष्वेकमात्रानवस्थानात्॥
(भा० प्र० पूर्व० ३/४०)

महर्षि भेल ने भी शुक्राधिक्य से पुत्र एवं शोणिताधिक्य से कन्या की उत्पत्ति मानी है। अन्यत्र संभोग के समय पुरुष के सर्वार्थ नन्दित होने तथा स्त्री के जघन्य होने से पुरुष के अंग-प्रत्यंग सदृश तथा स्त्री के प्रथम अर्थ-साधन एवं पुरुष के जघन्य होने से स्त्री के अंग-प्रत्यंग सदृश सन्तान की उत्पत्ति मानी है[1]।

योगरत्नाकरकार ने दक्षिण नाड़ी से पुत्र एवं वामनाड़ी से कन्या की उत्पत्ति का वर्णन किया है, साथ ही रक्ताधिक्य से कन्या, शुक्राधिक्य से पुरुष एवं दोनों के मिश्रण अर्थात् साम्य से नपुंसक की उत्पत्ति मानी है[2]। (यहाँ पर वाम या दक्षिण नाड़ी डिम्बग्रन्थि का द्योतक मानना चाहिए क्योंकि सामान्यतया दक्षिण डिम्बग्रन्थि से आया हुआ बीज दक्षिण डिम्बप्रणाली या नाड़ी से एवं वाम डिम्बग्रन्थि से आया हुआ बीज वाम डिम्बप्रणाली से आएगा)।

महर्षि हारीत ने भी अन्य आचार्यों के सदृश शुक्र एवं रज की न्यूनता एवं अधिकता को ही लिंग-निर्माणकारक माना है, परन्तु इन्होंने स्त्री एवं पुरुष दोनों में ही रेतस् की उपस्थिति शुक्र एवं रज से भिन्न मानी है, तथा इन्द्रिय की कमी अर्थात् संभोग-शक्ति का भी लिंग-निर्माण में प्रभाव माना है। इन्होंने लिखा है कि यदि पुरुष का रेतस् अथवा शुक्र अधिक हो या (स्त्री का) रस (रज या पोषण[3]) या इन्द्रिय (संभोग-शक्ति) न्यून हो तो अधिकांशतः पुरुष (पुत्र) की उत्पत्ति होती है। स्त्री के रेतस् के अधिक होने से अथवा शुक्रेन्द्रिय (संभोग-शक्ति या शुक्र तथा इन्द्रिय या पुरुष की संभोग-शक्ति) हीन होने से या रज के अधिक होने से स्त्री (कन्या) की उत्पत्ति होती है जब वीर्य एवं रज समान हों तो पुरुष सम प्रकृति का अर्थात् न वह स्त्री न पुरुष होता है। जो न स्त्री हो न पुरुष उसे नपुंसक कहते हैं। दोष एवं बल (पति पत्नी के) तथा प्रकृति एवं विकृति समान हो तो शुक्र एवं रज से नपुंसक स्त्री उत्पन्न होती है[4]।

आचार्य शार्ङ्गधर ने परमेश्वर की इच्छा की प्रधानता बताते हुए रज की अधिकता से कन्या तथा शुक्र की अधिकता से पुत्रोत्पत्ति अन्य सभी आचार्यों सदृश ही मानी है[5]।

Sex of the child depends upon relative predominance of *śukra* or *ārtava* i.e. if *śukra* is more then the fetus would be a male and if *raja* then a female. Caraka has further explained that as a healthy seed after sowing sprouts and grows according to its own character, such as the paddy seed will grow as paddy a barley seed only as barley, similarly male or female are born according to dominance of *śukra* or *ārtava* respectively.

---

१. (अ) भवत्यध्यधिके शुक्ले पुरुषः, शोणितेऽङ्गना। नपुंसकं तु(त्र)योस्साम्ये तस्माच्छुक्लं विवर्धयेत्॥ (भे० सं० शा० ३/८)
(आ) तद्य(दि)ह सत्र(त्रि)पतितयोर्यत्र पुरुषस्सर्वमर्थं(र्थं) नंदयति जघन्यं स्त्री, तत्र पुमानि(ने)वाङ्गप्रत्यङ्गैस्सदृशो जायते। यत्र तु स्त्री प्रथममर्थं साधयति जघन्यं पुरुषः, तत्र स्त्री(रे)वाङ्गप्रत्यङ्गैस्सदृशो(शी) जायते। (भे० सं० शा० ५/१०)

२. वामनाड्या भवेत् कन्या पुत्रो दक्षिणया भवेत्। रक्तेऽधिके भवेत्कन्या पुत्रः शुक्रेऽधिके भवेत्॥
शुक्रशोणितमिश्रेण भवेद्यस्तौ नपुंसकः॥ (यो० र० योनिव्या०)

३. 'रस' शब्द के प्रयोग का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि यहाँ पर शारीरिक पोषण आदि विषय विचारणीय नहीं है अतः यहाँ पर रस के स्थान में 'रज' शब्द होना चाहिए।

४. नरेरेतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु। हीन रसेन्द्रियैर्वापि जायते पुरुषाधिकः॥ २६॥
स्त्री रेतसोधिकत्वेन हीनशुक्रेन्द्रियादपि। रजसोप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते॥ २७॥
समवीर्य्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत्। नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत्॥ ३७॥
समदोषबलेनापि प्रकृत्याविकृतेरपि। शुक्रासृक्त्व गवेच्छ्यामा नपुंसक समुद्भवा॥ ४०॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/२६, २७, ३७, ४०)

५. आधिक्ये रसजः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत्। नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी॥ १२॥ (शा० सं० पूर्व० ६/१२)

Scanned with CamScanner

Aruṇadatta has mentioned that if the man first ejaculates (after the peak of orgasm) the fetus would be male, if the female excretes first then the child would be a female. Due to this very cause some of the male children have maternal characters while the females paternal or in other words if there is predominance of *śukra* but female excretes first or her orgasm perishes earlier than male the born male child will have characters of mother and vice versa.

Ḍalhaṇa has advanced the explanation for predominance of *śukra* and *ārtava*. He says that *ārtava* is four *añjali* and *śukra* one *prasṛti* in quantity or *ārtava* will always be more in quantity than *śukra*, but it is not so, here the quantity of pure *ārtava* situated in uterus responsible for fertilization should be considered. However, occasionally due to over excitement etc. the quantity of ejaculated *śukra* (semen) may be more, or due to psychological depression it may be less which influences relative amount of *śukra* and *ārtava*. Citing the opinions of others he has mentioned that instead of amount the functional potency of *śukra* and *ārtava* influences the formation of sex.

Bhāvamiśra corroborating the above views adds that the quantity of *doṣas* etc. of the body is unstable. Age, day, night, season and stage of food consumption etc. influence their quantity or the quantity of *śukra* and *ārtava* may change due to above reasons.

Yogaratnākara besides giving the importance of predominance of *śukra* and *ārtava*, has mentioned that from *dakṣiṇa nāḍī* (right ovary) the male child is born and from left the female.

Hārīta says that if *retas* and/or *śukra* of male is more and *raja* and *indriyas* (sexual power) of female is less then male child would be born and if *retas* and/or *raja* of female is more and *śukrendriya* (seminal ejaculate and sexual power) of male is less then female child would be born. If *śukra* and *raja* are equal then hermaphrodite will be born. If *doṣas, bala* (strength), *prakṛti* and *vikṛti* (physiopathology) of both male and female are equal then from *śukra* and *raja* a female hermaphrodite would take birth.

Śārṅgadhara says that besides role of *śukra* and *ārtava*, the will of god is responsible for formation of sex.

गर्भ के कार्य (Functions of garbha)

गर्भो गर्भलक्षणम् ॥ (सु० सं० सू० १५/५)

गर्भ गर्भ के लक्षणों (स्तनों की श्यावमुखतादि[1]) का उत्पादक होता है।

Garbha produces its own signs such as blackening of areola etc.

बह्वपत्यता (Multiple pregnancy)

(१) बह्वपत्यता का कारण (Factors responsible for multiple pregnancy)

भिनत्ति यावद्बहुधा प्रपत्रः शुक्रार्तवं वायुरतिप्रवृद्धः ।

१.गर्भो गर्भलक्षणमिति स्तनयोः श्यावमुखता इत्यादिकम् , करोति इत्यध्याहारः (सु० सं० सू० १५/५ की डल्ह० टी०)

तावन्त्यपत्यानि यथाविभागं कर्मात्मकान्यस्ववशात् प्रसूते ॥ (च० सं० शा० २/१४)
बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ।
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ (सु० सं० शा० २/३७ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/३९)
शुक्रार्तवेऽनिलेन खण्डशो भिन्ने यथाविभागमपत्यानामुत्पत्तिः ॥ (अ० सं० शा० २/६)
..... शुक्रार्तवे पुनः ॥५॥
वायुना बहुशो भिन्ने यथास्वं बह्वपत्यता ॥६॥ (अ० ह० शा० १)
एकमेव हि तद् बीजं भिन्नं वायुबलादथ ॥ (का० सं० क० ६/५९)

(गर्भाशय में आए हुए) शुक्रार्तव को वहाँ की अत्यन्त बढ़ी हुई वायु जितने अधिक भागों में विभक्त करती है उतनी ही सन्तानें उत्पन्न होती हैं। यह कार्य पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार होता है, स्त्री का अपना कोई वश नहीं होता।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि अन्तर्गत वायु (गर्भाशयान्तर्गत अथवा शुक्रार्तवान्तर्गत) द्वारा बीज (शुक्रार्तव-संयुक्त) के भिन्न (दो में विभक्त) होने पर दो जीव कुक्षि में आते हैं, वे धर्मेतर-पुरःसर अर्थात् धर्माधर्मजन्य यमज कहलाते हैं। टीकाकार डल्हण ने गयी के वाक्य को उद्धृत करते हुए अधर्म से ही यमलोत्पत्ति मानी है तथा श्रुति, स्मृति के आधार पर प्रायश्चित करने का भी उल्लेख किया है[1]।

अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदयकार ने वायु की प्रधानता बताते हुए लिखा है कि वायु के द्वारा शुक्रार्तव का जितने खण्डों में विभाग होगा उतने ही अपत्यों की उत्पत्ति होगी, टीकाकार इन्दु ने भी इसका समर्थन किया है[2]।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि बीज एक ही होता है उसे वायु (दो में) भिन्न कर देती है।

महर्षि भेल ने वायु द्वारा कलल का विभाजन यमल-गर्भ की उत्पत्ति का कारण माना है एवं कुत्ते तथा वराह का उदाहरण देते हुए बह्वपत्यता का भी वायु ही कारण माना है[3]।

महर्षि हारीत ने सभी आचार्यों से भिन्न एक अन्य ही कारण यमल की उत्पत्ति का दिया है इनका कहना है कि दोष एवं धातु के विशिष्ट प्रकार के संयोग से अंग (गर्भ में अंग-प्रत्यंग) का निर्माण सम्भव होता है। जब (पति-पत्नी) भ्रांत-चित्त होकर सम्भोग करते हैं, तो दोनों से (दोष-धातु के प्रभाव एवं भ्रांत-चित्तता) से मन द्रवता है (अस्थिर होता है), तब यमल की उत्पत्ति देखी जाती है, जो (यमल) अन्यों के चित्त को प्रसन्न करने वाले हैं[4]।

Excessively increased *vāyu* situated in the uterus divides the *śukrārtava* (combination of sperms and ovum) in multiple pieces. Number of fetuses corresponds to the number of

१. धर्मेतरपुरःसरौ धर्माधर्मपुरगामिनौ । गयी तु धर्मेतरोऽधर्मः तत्पुरःसरौ अधर्मपुरोगामिनौ न तु धर्माधर्मपुरःसरौ । यतः श्रुतिस्मृतिष्वधर्मादेव यमोत्पत्तिरिष्टा; अतएव तदुत्पत्तौ प्रायश्चित्तमप्युपदिष्टमिति व्याख्यात्रि ॥
(सु० सं० शा० २/३७ की डल्ह० टी०)

२. मिश्रीभूतं च शुक्तार्तवं स्वविशिष्टहेतुकोऽनिलो यदा खण्डशः करोति तदा बहुनाप्यपत्यानां संभवः ॥
(अ० सं० शा० २/६ की इन्दु टी०)

३. यदा तु कललं वायुस्तं द्विधा कुरुते बली । यमौ तदौ(दा) संभवतः कृष्णाश्वेयवचो यथा ॥९॥
वायुस्त्वश्वबराहाणां (वायुस्तु श्वबराहाणां-शु० पा०) देहेषु बलवान पुनः ।
स तत्र कललं भित्त्वा करोति बहुपुत्रताम् ॥ ११॥ (भे० सं० शा० ३/९ व ११)
(अश्व को एकबार में एक ही बच्चा पैदा होता है जब कि कुत्ते को अनेक, अतः पाठ शोध किया गया है।

४. दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसंभवः । कृत भ्रान्ते च संभोगे द्वाभ्याङ्ग द्रवते मनः ॥
दृश्यते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियङ्करी ॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/३८, ३९)

Scanned with CamScanner

pieces. This act (of division by *vāyu*) is guided by deeds of previous life and is beyond the control of woman.

Suśruta says that when *vāyu* divides this *bīja* in two pieces, the two *jīwas* come there, this depends upon religious and non-religious virtues.

Division of *bija* by *vāyu* has been described by both Vägbhaṭas and Kāśyapa and of *kalala* by Bhela.

Hārīta opines that origin of all fetal parts depends upon specific combination of *doṣas* and *dhātus*. When husband and wife copulate with fickling mind, then because of unstability of mind (which influences the *doṣas*) the twins are born, which are a source of amusement to others.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सभी आचार्यों ने यमल गर्भ की उत्पत्ति में एक ही बीज का वायु द्वारा खण्डों में विभाजित होना माना है अर्थात् आधुनिक दृष्टि से इनको एक बीजात्मक यमल (युनिओव्यूलॅ ट्विन) कहा जा सकता है। महर्षि सुश्रुत ने यद्यपि दो जीवों का भी आगमन माना है, पर प्रारम्भ में एक ही बीज का विभाग वर्णन किया है। इसी श्लोक की व्याख्या करते हुए आचार्य घाणेकर जी ने 'भिन्ने बीजे' से दो अर्थ किए हैं (१) दो भिन्न-भिन्न बीज जिनसे द्विबीजात्मक यमल की उत्पत्ति (बाइनोव्युलॅ ट्विन) होती है (२) एक ही बीज के भिन्न होने से अर्थात् एक बीजात्मक यमल की उत्पत्ति (यूनिओव्युलॅ ट्विन) होती है[1]।

All the classics have described division of seed or have described only uniovular twins. Though Suśruta has mentioned arrival of two *jīwas*, yet has also accepted initial division of one *bīja*. Explaining this particular verse Dr. Ghāṇekara has said that this denotes (1) two separate seeds or binovular twins and (2) division into two of one seed or uniovular twins.

(२) युग्म गर्भ के सुख दुःख आदि समान होने का कारण (Why happiness and sorow etc. are identical in twins)

समानकर्मकत्वात् प्राङ्नाड्यैकत्वं च जन्म च ॥ ५९॥
तुल्यं निषेकाद् वृद्धेश्च जन्मनः स्तनसेवनात्। तस्मात्तुल्यं वयः प्रोक्तं सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ ६०॥
लक्षणाकृतिवर्णाङ्गबलप्रकृतितुल्यता ॥ न तु तृप्तिविसर्गाणां पृथग्भावात् समानता ॥ ६१॥
(का० सं० क० ६/५९ से ६१)

एक नाभिज होने पर भी यमल पुत्रों की समानता एवं असमानताओं का वर्णन करते हुए लिखा है[2] कि समान कर्म (वायु द्वारा विभाजन आदि), नाड़ी (गर्भ-वृद्धिकारक रस वहा-नाड़ी) एवं जन्म दोनों के एक से ही होते हैं। निषेक प्रभृति (गर्भाधान प्रभृति) से लेकर सम्पूर्ण गर्भ-वृद्धि एवं जन्म से ही स्तन-सेवन आदि तुल्य या एक सदृश होने से आयु, सुख, दुःख, भव (आरोग्य), अभव (रोग), लक्षण, आकृति, वर्ण, अंग, बल एवं प्रकृति आदि में समानता होती है; परन्तु दोनों के पृथक् होने से उनकी तृप्ति (पोषण) एवं विसर्ग (मल-मूत्रादि का विसर्जन) समान नहीं होता।

Explaining the similarities and dissimilarities of children born from one *nābhi* (placenta or uniovular twins) Kāśyapa says that due to similarity in *karma* (division by *vāyu*),

१. सु० शा० २/३७ डा० घाणेकर टीका
२. एकनाभिकयोः कस्मात्तुल्यं मरणजीवितम्। रोगारोग्यं सुखं दुःखं न तु तृप्तिः समानजा॥ (का० सं० क० ६/५८)

presence of only one *nāḍī (rasavahā-nāḍī* here placenta should be taken, because umbilical cords of twins are always separate), similarity in birth, similarity in nourishment during intrauterine life i. e. from the day of conception upto full term development and similarity and equality in lactation after their birth, their longevity, happiness, sorrow, health, ill-health, character, features, complexions, body parts, strength and nature are identical. However since they are two different individuals, thus, their nourishment and excretion (of feces, urine etc.) differs.

(३) युग्म (यमल) में दोनों ही पुत्र या पुत्री होने का कारण (Cause of specific sex in a twin pregnancy)

रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण तेन द्विविधीकृतेन।
बीजेन कन्यां च सुतं च सूते यथास्वबीजान्यतराधिकेन ॥
शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्याः सूतौ सा सहितौ प्रसूते।
रक्ताधिकं वा यदि भेदमेति द्विधा सुते सा सहिते प्रसूते ॥ (च० सं० शा० २/१२, १३)

रक्त की अधिकता से कन्या एवं शुक्र की अधिकता से पुत्र उत्पन्न होता है। जब (शुक्रार्त्तव मिश्रित) बीज को वायु दो भागों में विभक्त करती है तो कन्या एवं पुत्र का जन्म बीज में उस भाग की अधिकता से होता है, अर्थात् बीज के जिस भाग में शुक्र की अधिकता होगी उससे पुत्र एवं जिसमें आर्तव की अधिकता होगी उससे कन्या की उत्पत्ति होगी। जब वायु बीज का इस प्रकार विभाग करती है कि दोनों में शुक्र की ही अधिकता होती है तो दो पुत्र एक साथ उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार जब वायु बीज का ऐसा विभाग करती है कि दोनों में रक्त की ही अधिकता हो तो दोनों कन्यायें उत्पन्न होती हैं।

सु०सं० की पादटीका में उद्धृत अधिक श्लोकों में लिखा है कि मिश्रीभाव अर्थात् संभोग के समय यदि पुरुष का अधिक एवं निर्मल रेतस् होता है तब गर्भिणी स्त्री दो बालकों का प्रसव करती है एवं यदि स्त्री बहु-शुक्रा होती है तो दो कन्याओं का प्रसव होता है। इसमें कोई संशय नही है[1]।

आचार्य भेल ने भी शुक्राधिक भाग से पुत्र एवं रक्ताधिक भाग से कन्या की उत्पत्ति मानी है[2]।

टीकाकार अरुणदत्त ने महर्षि चरक के मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि शुक्राधिक्य के गर्भ का वायु द्वारा विभाजन करने पर पुमान पुत्र तथा रजसाधिक्य-गर्भ के वायु द्वारा विभाजन से कन्या की उत्पत्ति होती है[3]।

Caraka says that due to relative perdominance of *rakta* the female child is born and of *śukra* the male child. The birth of male or female child in a twin pregnancy depends upon the manner in which *vāyu* divides the *bīja* (zigote), if *vāyu* divides the *bīja* in such a way that one part has predominance of *śukra* and the other of *ārtava* then from former part a

१. अस्याग्रे ता० पुस्तके
मिश्रीभावे यदा पुंसां रेतस्तु बहु निर्मलम्। तदा प्रसूयते नारी गर्भिणी दारकद्वयम्॥
मिश्रीभावे स्त्रियाश्चैव बहुशुक्रं यदा भवेत्। कन्याद्वयं तदा नारी सूयते नात्र संशयः॥ इत्याधिकः पाठ उपलभ्यते॥
(डल्ह० टीका युक्त चौ० ओ० द्वारा प्रकाशित सु० सं० शा० २/३७ की पाद टीका)
२. तत्र शुक्लोत्तरे भागे पुमान्, रक्तोत्तरेऽङ्गना। अनेनैव च कल्पेन यमकेष्वपि विनिर्दिशेत्॥ (भे० सं० शा० ३/१०)
३. यथास्वमिति यदा शुक्रमाधिक्येन वर्तमानं वातेन बहुधा भिद्यते तदा पुंगर्भनिकत्वम्, यदा तु स्त्रीरज आधिक्येन वर्तमानं वायुना बहुधा भिद्यते तदा स्त्रीगर्भनिकत्वम्, इति बहुपत्यता भवति॥ (अ० ह० शा० १/६ की अरुण० टी०)

Scanned with CamScanner

male child will be born and from later the female; if the division is such that both the parts have predominance of *śukra* then both the children would be male, similarly if both the portions have relatively more *ārtava* then females will be born; similar views have been expressed by Bhela and Aruṇadatta.

In one of the edition of S.S. an additional verse for this subject is quoted, in which it is mentioned that during coitus, if male has excess and pure *retas*, then the pregnant woman will deliver two male children. however, if female has excess *śukra* then two females would be born. There is no doubt in it.

(४) युग्म में एक गर्भ के पुष्ट एवं एक के दुर्बल होने का कारण (Why one child in a twin is healthier than the other ?)

कर्मात्मकत्वाद्विषमांशभेदाच्छुक्रासृजौर्वृद्धिमुपैति कुक्षौ ।
एकोऽधिको न्यूनतरो द्वितीय एवं यमेऽप्यधिको विशेषः ॥ (च० सं० शा० २/१६)

कर्म के वशीभूत (वायु के) होने के कारण शुक्रार्तव के विषमांश में (एक अंश अधिक एवं दूसरा अंश छोटा) भेद होने से जब कुक्षि में गर्भ की वृद्धि होती है तो एक यमल विशेष रूप से पुष्ट एवं दूसरा न्यून या छोटा होता है अर्थात् वायु द्वारा विभाजित बड़े अंश से उत्पन्न गर्भ बड़ा एवं छोटे अंश से उत्पन्न गर्भ छोटा होता है।

The *vāyu* directed by *karma* (deeds) when divides the zygote in such a way that one part is bigger than the other, then the child born from the bigger portion will be healtheir and from the smaller portion comparatively weaker one.

गर्भाङ्ग विकृति (Teratologic abnormalities)

(अ) गर्भाङ्ग विकृति के सामान्य कारण (Causes of teratologic abnormalities)

बीजात्मकर्मांशयकालदोषैर्मातुस्तथाऽऽहारविहारदोषैः ।
कुर्वन्ति दोषा विविधानि दुष्टाः संस्थानवर्णेन्द्रियवैकृतानि ॥ २९॥
वर्षासु काष्ठाश्मघनाम्बुवेगास्तरोः सरित्स्रोतसि संस्थितस्य ॥
यथैव कुर्युर्विकृतिं तथैव गर्भस्य कुक्षौ नियतस्य दोषाः ॥ (च० सं० शा० २/२९, ३०)

यच्चोक्तं-यदि च मनुष्यो मनुष्यप्रभवः, कस्मान्न जडादिभ्यो जाताः पितृसदृशरूपाः भवन्तीति; तत्रोच्यते-यस्य यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तो भवति, तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरुपजायते, नोपजायते चानुपतापात्; तस्मादुभयोपपत्तिरप्यत्र। सर्वस्य चात्मजानीन्द्रियाणि, तेषां भावाभावहेतुर्दैवं तस्मात्रैकान्ततो जडादिभ्यो जाता पितृसदृशरूपा भवन्ति ॥ (च० सं० शा० ३/१७)

यदा स्त्रिया दोषप्रकोपणोक्तान्यासेवमानाया दोषाः प्रकुपिताः शरीरमुपसर्पन्तः शोणितगर्भाशयावुपपद्यन्ते, न च कात्स्न्येन शोणितगर्भाशयौ दूषयन्ति, तदेयं गर्भं लभते स्त्री; तदा तस्य गर्भस्य मातृजानामवयवानामन्यतमोऽवयवो विकृतिमापद्यत एकोऽथवाऽनेके, यस्य यस्य ह्यवयस्य बीजे बीजभागे वा दोषाः प्रकोपमापद्यन्ते, तं तमयवं विकृतिराविशति ॥ (च० सं० शा० ४/३०)

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये। गर्भास्त्वेते स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥
गर्भो वातप्रकोपेण दीह्यदे वाऽवमानिते। भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूको मिम्मिण एव च ॥
मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतैः। वातादीनां प्रकोपेण गर्भो वैकृतमाप्नुयात् ॥
(सु० सं० शा० २/५०-५२)

अङ्ग प्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते। अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्ति गुणागुणाः।
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः॥ (सु० सं० शा० ३/३६)
विकृते वियोन्याकृतीनाम् ॥ (अ० सं० शा० २/७)

यदा तु स्त्रियाः शोणितगर्भाशयौ दोषाः किञ्चित् प्रदूषयन्ति तदा यो गर्भो भवति तस्य गर्भस्य यस्य यस्य मातृजन्यावयवस्य बीजे बीजांशे वा दोषः प्रकोपमापद्यते तं तमवयवं विकृतिराविशति ॥ ४७॥

यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजांशे वा उत्पत्तिर्भवति तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरुपजायते नोपजायतेऽनुपतापात् ॥ ५३॥ (अ० सं० शा० २/४७ व ५३)

वियोनिविकृताकारा जायन्ते विकृतैर्मलैः ॥ (अ० ह० शा० १/६)

बीज (शुक्र, शोणित) के दोष, आत्मकर्म (पूर्वजन्म के अशुभ कर्म)-दोष, आशय (गर्भाशय)-दोष, काल-दोष एवं माता के आहार-विहार-दोष आदि कारणों से प्रकुपित हुए दोष (वातादि) गर्भ में विभिन्न प्रकार के संस्थान, वर्ण एवं इन्द्रियों के विकार उत्पन्न कर देते हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में नदी के प्रवाह में पड़ा हुआ वृक्ष काष्ठ, पाषाणखण्ड एवं अम्बु के वेग के कारण (इन चीजों से टकराने के कारण) विकृत हो जाता है, उसी प्रकार कुक्षि-स्थित विकृत-दोष गर्भ में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। शुक्र-दोष,[1] प्रकुपित वायु[2] एवं शुक्रस्थ प्रकुपित वायु[3] के द्वारा विकृत-सन्तान की उत्पत्ति का वर्णन अन्यत्र भी महर्षि चरक ने किया है।

अन्यत्र महर्षि चरक ने मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति के बाद भी जड़ादि पिता से उसी भाँति के पुत्र की अनुत्पत्ति के कारणत्व का स्पष्टीकरण करते हुए गर्भाग-विकारों के कारणों के बारे में लिखा है, कि बीज-स्थित जो जो बीजभाग दूषित होता है उस उस अंगावयव की विकृति होती है, बिना दोष के कोई विकृति नहीं होती, इस प्रकार दोनों ही बातें युक्तिसंपत हैं; अर्थात् यदि कुष्ठी पिता का त्वचोत्पादक बीजांश दुष्ट नहीं है, तो उत्पन्न बालक कुष्ठ-पीड़ित नहीं होगा, परन्तु यदि अतिवृद्ध कुष्ठ से उसका त्वचोत्पादक बीजांश दुष्ट है तो उत्पन्न बालक कुष्ठ से पीड़ित होगा[4]। सभी इन्द्रियाँ आत्मज हैं, इनका होना या न होना दैव के आधीन है, अतः जड़ या अन्धे आदि पिता से उत्पन्न बालक निश्चित रूप से पितृ-सदृश नहीं होता, अर्थात् यदि अन्धे व्यक्ति के बीज में दृष्टि-उपघातक अशुभभाव विद्यमान है तो काकतालीय न्याय से बालक अंधा होगा अन्यथा नहीं[5]।

पुनश्च मातृज अंगावयवों में गर्भिणी के आहार-विहार का प्रभाव वर्णित करते हुए लिखा है कि जब वातादि दोषों के प्रकोपक आहारों का सेवन करने से स्त्री के शरीर के वातादि दोष प्रकुपित होकर शरीर में फैलते हुए शोणित (स्त्री-

---

१. शुक्रस्य दोषात् ·····। रोगि का क्लीबमल्पायुर्विरूपं वा प्रजायते। (च० सं सू० २८/१८)

२. (वायु) ····· कुपितस्तु खलु शरीरे ····· विनिहन्ति गर्भान् विकृतिमापादयत्यतिकालं वा धारयति ·····। (च० सं० सू० १२/८)

३. क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा। विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः॥ (च० सं० चि० २८/३४)

४. बीज इति शुक्रशोणिते·····। मनुष्यबीजं हि प्रत्यङ्गबीजभागसमुदायात्मकं स्वसदृशप्रत्यङ्गसमुदायरूपपुरुषजनकम् ·····। तेन पिता यदि कुष्ठयापि भवति, बीजं चादुष्टं भवति कुष्ठाधारत्वगादि जनकं, ततो निष्कुष्ठान्येव त्वगादीन्यनुपतप्तत्वगादिबीजात् सदृशानि जायन्ते; यदा त्वतिवृद्धकुष्ठतया पित्रोर्बीजमपि कुष्ठजनकदोषेण दुष्टं भवति, तदा दुष्टत्वगादिबीजभागात् कुष्ठदुष्टैव त्वग् जायते॥ (च० सं० शा० ३/१७ की चक्र टी०)

५. ··· ··· आत्मजानीति आत्मप्रतिबद्धकर्मजानि। भावाभावहेतुर्दैवमिति इन्द्रियभावे इन्द्रियजनकं शुभम्, इन्द्रियाभावे चाशुभं दैवं हेतुरित्यर्थः। ··· ··· अन्धत्वादाविन्द्रियोपघातरूपे दुर्दैवमेव कारणं; ··· ··· तेन यदाऽन्धेऽपत्ये दृष्ट्युपघातकमशुभं भवति, तदा काकतालीयन्यायादन्धजातोऽप्यन्धो दृश्यते। (च० सं० शा० ३/१७ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

बीज) एवं गर्भाशय को प्राप्त करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण शोणित एवं गर्भाशय को दूषित नहीं करते (क्योंकि सम्पूर्ण रूप में दूषित होने से गर्भाधान ही नहीं होगा); तब स्त्री जो गर्भ धारण करती है, उस गर्भ के मातृज अवयवों या अन्य अवयवों में से एक या अनेक अवयवों में विकृति उत्पन्न हो जाती है, बीज-स्थित जिस जिस अवयव के बीज-भाग में प्रकुपित दोष पहुँचते हैं, या प्रकुपित दोष जिस जिस अंगावयव के बीजांश को दूषित करते हैं, उस उस अवयव में विकृति उत्पन्न होती है। टीकाकार चक्रपाणि ने अपने अपने हेतुओं से दूषित दोषों के साथ ही अनुबन्ध रूप में दूषित दोषों को भी कारण-स्वरूप माना है[1]।

महर्षि चरक ने गर्भिणी की मानसिक अवस्था का प्रभाव भी गर्भांग-विकृति का कारण माना है उनके अनुसार गर्भोत्पत्ति के समय स्त्री का मन जिस जन्तु या प्राणी की ओर चला जाता है स्त्री उसी प्रकार के पुत्र को जन्म देती है[2]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि जो सर्प, वृश्चिक एवं कूष्माण्ड आदि विकृत आकार वाले स्त्रियों के गर्भ होते हैं, उन्हें पाप कर्म के कारण जानना चाहिए। वात के प्रकोप से अथवा दौहद के अवमानन (पूरा न करने) से गर्भ कुबड़ा, कुणि (विकृति हाथ का[3]) पंगु, मूक अथवा मिनमिन होता है। माता-पिता की नास्तिकता से, पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों से और वायु आदि दोषों के प्रकोप से गर्भ विकृति को प्राप्त होता है पुनश्च दौहद-अवमानन-जन्य विकृतियों का वर्णन करते हुए खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष एवं अनक्ष (आँख-रहित) आदि का समावेश करते हुए स्पष्ट किया है कि दौहद-काल में जिन जिन इन्द्रियों के अर्थ (इच्छा) की अवमानना होगी, गर्भस्थ शिशु को उन उन इन्द्रियों में विकृति उत्पन्न होगी[4]।

पुनश्च धर्म की प्रधानता वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भ के सभी अंग-प्रत्यंगों की निवृत्ति स्वभाव से ही होती है; अंग-प्रत्यंग की उत्पत्ति में जो गुण (सामान्यताएँ) एवं अवगुण (विकार) होते हैं वे धर्म एवं अधर्म के कारण स्वरूप होते हैं अर्थात् सामान्यताएँ धर्म के एवं विकृतियाँ अधर्म के कारण होती हैं।

प्रसव के समय अकाल-प्रवाहण से भी बधिर, मूक, कुब्ज एवं विकट सन्तान की उत्पत्ति हो सकती है[5]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि वायु के विकृत होने पर विकृत योनि या आकृति वाली संतान होती है। टीकाकार इन्दु ने वायु के साथ ही अन्य दोषों को भी कारणस्वरूप माना है[6]। इसके पूर्व लेखक ने षोडश वर्ष से कम आयु की स्त्री में, या ऋतुकाल के प्रारम्भ के तीन दिनों में गर्भाधान होने पर अथवा शुक्रार्तव की विकृति से विकृत गर्भ की उत्पत्ति का वर्णन किया है[7]।

पुनश्च चरक सदृश ही लिखा है कि यदि स्त्री के शरीर-स्थित प्रकुपित दोष शोणित एवं गर्भाशय को किञ्चित दूषित करते हैं तो जो गर्भ उत्पन्न होता है उस गर्भ के जिस जिस मातृज अवयव के (बीज के) बीजांश में विकृति होती है,

१. दोषाणां स्वहेतुसेवया बलवन्तं प्रकोपं दर्शयितुं, परहेतुसेवयाऽपि हि स्तोकमात्रया अनुबन्धरूपदोषप्रकोपो भवति; यथा-अम्लेन पित्तं जन्यमानं श्लेष्मानुगतं जन्यते ॥ (च० सं० शा० ४/३० की चक्र० टी०)

२. च० सं० शा० २/२५ (पृष्ठ १०२)

३. कुणि: विकलपाणि: (विकृतपाणि:-पाठभेद)। (सु० शा० २/५१ की डल्ह० टी०)

४. सु० सं० शा० ३/१८-२१ (दौहद-पूर्ति-अपूर्ति परिणाम के अन्तर्गत उद्धृत)

५. सु० सं० शा० १०/९ (प्रसव के लिए प्रवाहण आदि के अन्तर्गत उद्धृत)

६. यदा त्वनिलो वान्यो वा दोष: शुक्लार्तवं केनचित् प्रकारेण विकरोति तदा विकृतयोनीनां च गर्भाणां संभव: विकृतयोनयो ये योषित: पुंसा संसृष्टाया: मृगमेषमार्जारादयो जायन्ते ते विकृताकृतय: काणपङ्ग्वादय:॥ (अ० सं० शा० २/७ की इन्दु टी०)

७. ऊनपञ्चविंशति ..... ऊनषोडशवर्षाया ..... विकलेन्द्रियो वा ऋतावाद्ये च रात्रित्रये तथा दुष्टे शुक्रार्तव इति ॥
अ० सं० शा० १/५ (पृष्ठ ७० एवं ८२)

गर्भ के उस उस अवयव में विकृति उत्पन्न होती है। जिस जिस अंगावयव उत्पादक बीज के बीजांश में विकृति होती है उस उस अंगावयव की विकृति होती है। बिना बीजांश के दोष के विकृति नहीं होती अर्थात् सामान्य बालक का जन्म होता है। सुश्रुत सदृश ही अकाल-प्रवाहण से कुब्जता होने का उल्लेख किया है।[1]

अष्टाङ्गहृदयकार ने संक्षेप में ही लिखा है कि विकृत योनि या आकार के गर्भ वातादि दोषों के विकार के कारण उत्पन्न होते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने दुष्ट दोषों का उन्मार्ग-गमन गर्भाङ्ग-विकृति का कारण माना है[2]।

वाग्भट-द्वय ने भी शुक्रस्थ वायु-जन्य-विकारों के अन्तर्गत गर्भाङ्ग-विकृति होने का उल्लेख किया है[3]।

महर्षि भेल ने बन्ध्यत्व एवं विकृत गर्भ के कारणों का एक साथ उल्लेख करते हुए माता-पिता के बीज दोष, पथ्य-रस का सेवन न करना, वेग-धारण एवं योनि-दोष आदि कारण माने है[4]; अत: सम्यक् रस वाले आहार का ऋतुकाल में सेवन का विधान बताया है। विशेषकर ऋतुकाल में सम्यग् रस के न सेवन से विकृत गर्भ की उत्पत्ति का उल्लेख किया है[5]। उदावर्त रोग से पीड़ित, अहित सेवी दम्पति से बलहीन एवं अन्धे आदि सन्तान की उत्पत्ति[6]; तथा हाथी एवं कुत्ते आदि के स्वरूप की सन्तानोत्पत्ति का कारण वायु तथा आकाश की विकृति एवं दैव-प्रकोप माना है[7]।

आचार्य भावमिश्र ने दुष्ट शुक्र की प्रजोत्पादन असमर्थता के सुश्रुत के वर्णन के स्पष्टीकरण में लिखा है, कि विकृत शुक्र जन्मान्ध आदि की उत्पत्ति का कारण होता है। अन्यत्र उन्होंने महर्षि सुश्रुत का ही अनुगमन किया है[8]।

योगरत्नाकर पुस्तक में पापकर्म को ही कारणभूत माना गया है[9]।

Due to the abnormalities of *bīja* (ovum and sperms), *ātma-karma* (deeds of previous life), *āśaya* (uterus), *kāla* (time factor or abnormality of *ṛtukāla*) and dietetics alongwith mode of life of mother, the vitiated *doṣas* produce abnormalities of fetus, affecting its appearance, complexion and *indriyas*. As a tree fallen in stream of water of a river gets disfigured due to effect of (being knocked by) woods, stones and current of flowing water, similarly the aggravated *doṣas* situated in *kukṣi* (uterus) disfigure the fetus.

१. अ० सं० शा० ३/३० (प्रसव के लिए प्रवाहण आदि में उद्धृत)

२. विकृतैर्मलै:। वातादिभिर्दुष्टैरुन्मार्गगामिभि:। (अ० ह० शा० १/६ की अरुण० टी०)

३. शुक्रस्य शोभ्रमुत्सर्गं सङ्गं विकृतिमेव वा ॥ तद्वद्धर्मस्य शुक्रस्य:-। (अ० सं० नि० १५/१५,१६ ; अ० ह० नि० १५/१३)

४. बीजदोषाद्यथा सस्यं न सम्यग्विप्ररोहणी(ति)। माता पित्रोस्तु दोषेण तथा गर्भ: प्रय(मि)च्छति ॥
तस्मात् सम्यग्रसाहारादृतुकालेऽथ दम्पती। रहस्संयोगमेयातां स्मरन्तौ मनसा विभुम्।
विकृता: स्युरगर्भा वै रसापथ्यनिषेवणै:। सन्धाराणाद्वा वेगानां योनिदोषेण वा पुन: ॥ (भे० सं० शा० ३/२, ३, ४)

५. इह खलु त्रिषु दशरात्रेषु पुमान् रसेन संयुज्यते। आसां तु खलु चतसृणां योनीनामृतुकाले यदा रसास्सम्यग् व्यापिं वा गच्छन्ति तदा गर्भस्तिष्ठे(ष्ठ)त्यविकृत: विपर्यये विपर्यय: ॥ (भे० सं० शा० ५/४)

६. भे० सं० सू० १२/१५ व १६ (पृष्ठ ८७)

७. इभश्वगर्भसारूप्यं प्रयोगाद्धि भवेच्छुचि ॥ १५॥
वाय्वाकाशर्तुयुक्तो हि दैवतेष्वितरेषु तु। अन्तर्जातो जातवेदा: प्रभवायोपकल्पते ॥ (भे० सं० शा० ३/१५, १६)

८. 'यतु - 'वातादि दुष्टेतस: प्रजोत्पादने न समर्था:'। इति सुश्रुत:। तत्र शुद्धप्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम्।
रोगादिनाऽशुद्धास्तु प्रजा वातादिदुष्टशुक्रा अपि जनयन्ति जन्मान्धबधिरपङ्ग्वादि सम्भवात् ॥ २७॥
सर्पवृश्चिककूष्माण्डाकृतयो विकृताश्च ये। गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेया: पापकृतो भृशम् ॥ ६०॥
गर्भो वातप्रकोपेण दोहदे चापमानिते। भवेत् कुब्ज: कुणि: पङ्गुर्मूको मिन्मिन एव च ॥ ६१॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

९. सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये। गर्भाश्चेति त्रयश्चैव ज्ञेया पापकृता भृशम् ॥ (यो० र० गर्भ० रो० नि०)

Scanned with CamScanner

Abnormalities of *śukra* and *vāyu*, as-well-as vitiated *vāyu* located in *śukra* are also said to produce congenital anomalies.

Caraka has explained further that teratologic abnormalities depend upon the condition of *bīja*, not on the physical status of couple, or in other words what-so-ever part of *bīja* is defective, the body part developing from that portion of *bīja* will be abnormal. Any organic abnormality can not occur without abnormality of corresponding portion of *bīja*. Thus if the portion of *bīja* of a *kuṣṭhī* (leprous) man responsible for formation of skin is defective then only the born child will have *kuṣṭha*, however, if that part is not abnormal then the child will be healthy. All the *indriyas* are derived from *ātmā*, thus their presence, absence or abnormalities depend upon the fate. An idiot or blind father does not always produce idiot or blind child, however, if the *bīja* of a blind man possesses the abnormal factor for damaging eye-sight, then the born child would be blind by *kākatālīya nyāya*, otherwise not. Similar hypothesis has also been expounded later, that due to abnormalities in dietetics etc. of woman, if her entire *bīja* becomes abnormal then she will not conceive, however, if a small portion is defective then the born child will have the abnormality of corresponding body part of maternal origin. Psychology of the woman also effects the fetus i. e. at the time of impregnation, to what-so-ever type of animal the woman thinks, the child will have similarity with that.

Suśruta says that the fetus having shape of snake, scorpion or field-pumpkin etc. are the results of sins or bad deeds. Due to vitiation of *vāyu* and insult or nonfulfilment of *dohṛda* (desires of pregnant mother) the fetus may become humpbacked, maim or croocked armed, lame, dumb and nasal voiced. Dilating the same he writes further that this nonfulfilment of *dauhṛda* results in birth of crooked-leged, idiot, dwarf, dishaped-eyed or absent-eyed child, objects/desires of what-so-ever *indriya* are neglected/ not provided, the fetus develops abnormality of the same. Thus in short atheism of parents, bad deeds of previous life (of the fetus) and aggravation of *vāyu* are three causes of teratologic abnormalities. Development of body parts is a natural phenomena, the qualities and normalcy in body parts are the results of righteousness and the abnormalities of unrighteousness. Bearing-down efforts made by the woman in absence of labour pains are also said to produce deaf, dumb, hump-backed child or the one with abnormally located body-parts.

Vāgbhaṭa I and II say that the cause of teratologic abnormalities is vitiation of *vāyu* and also due to *vāyu* located in *śukra*. Indu opines that other *doṣas* also cause fetal abnormalities, while Aruṇadatta says that upward movement of *doṣas* is a causative factor. Vāgbhaṭa I has enumerated the causes as impregnation of a woman of less than sixteen years of age, conception during first three days of menstrual flow, abnormality in *śukra* and *ārtava* and also delivery of hump-backed child due to bearing-down efforts made in absence of labour pains. He has also described the abnormality of a part of *bīja* etc. as described by Caraka.

Bhela has enumerated *bīja-doṣa* of mother and father, absence of use of beneficial *(pathya) rasas*, suppression of natural urges and *yoni-doṣa* (gynecological abnormalities) as causative factors for both infertility and teratologic abnormalities. The woman not using

proper *rasas* during *ṛtukāla* delivers abnormal child. The couple suffering from *udāvarta*, consuming injurious diet give birth to a weak and blind child. The vitiation of *vāyu* and *ākāśa* and also curses of god result in birth of a child having abnormal shape like an elephant or dog etc..

Bhāvamiśra emphasising the abnormality of *śukra* as a cause of congenital blindness etc. has corroborated the views of Suśruta.

Yogaratnākara has described only unrighteousness as a cause.

विमर्श (Comments)

पूर्ववर्णित विषय को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी आचार्यों ने वात-विकार एवं पूर्वजन्म-कर्म या पापकर्म का गर्भाङ्ग-विकृति के कारण-स्वरूप प्राधान्य माना है, परन्तु चरक एवं वाग्भट-वर्णित बीजांश-दोष की कल्पना सराहनीय है जो किसी सीमा तक आधुनिक ग्रन्थों में वर्णित क्रोमॅसोमल या जिनेटिक विकृतियों से सामञ्जस्य रखती है।

Preceding description clearly shows that vitiation of *vāyu*, deeds of previous life, unrighteousness are basic etiological factors described for teratologic abnormalities. The concept of vitiation of a portion of *bīja* reflects to chromosomal or genetic abnormalities.

(आ) गर्भोपघातकर भावों या दौहद काल में प्रयुक्त द्रव्य-जन्य विकार (Abnormalities developing due to garbhopaghātakara bhāvas or articles used during dauhṛda)

महर्षि चरक ने गर्भोपघातकर भावों के अन्तर्गत एवं महर्षि सुश्रुत ने दौहद-काल में विभिन्न द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न कतिपय जन्मजात विकारों का उल्लेख किया है जिनका यथास्थान अग्रिम अध्याय में वर्णन किया जायेगा।

Congenital abnormalities due to use of diet or mode of life described under *garbhopaghātakara bhāwas* or during *dohṛda* by Caraka and Suśruta respectively have been discussed in next chapter.

(इ) माता के विभिन्न दोष-प्रकोपक आहार का प्रभाव (Effect of different doṣa-vitiating diet of mother upon the fetus)

(१) वातल आहार-जन्य गर्भ-विकृतियाँ (Abnormalities due to vāta-vitiating diet)

यदा च लब्धगर्भाऽन्वक्षमेव वातलान्यासेवते तदाऽस्या वायुः प्रकुपितः शरीरमनुसर्पन् गर्भाशयेऽवतिष्ठमानो गर्भस्य जडबधिरमूकपिम्मिणगद्गदखंजकुब्जवामनहीनाङ्गाधिकाङ्गत्वान्यन्यं वा वातविकारं करोति॥

(अ० सं० शा० २/५४)

वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्धजडवामनः॥ (अ० हृ० शा० १/४८)

जब स्त्री गर्भवती हो जाने के बाद भी निरन्तर वातल आहार (या अन्य वस्तुओं) का सेवन करती है, तो उस स्त्री का प्रकुपित हुआ वायु शरीर में विचरण करता हुआ, गर्भाशय में स्थिर होकर, गर्भ को जड़, बधिर, मूक, मिन्मिन या गद्गद आवाज वाला, खंज (लंगड़ा), कुब्ज, वामन (छोटे शरीर वाला), हीन या अधिक अंग वाला या अन्य वात-विकारों से युक्त कर देता है।

अष्टाङ्गहृदय के मतानुसार वातल आहार के अत्यधिक सेवन से गर्भ कुब्ज, जड़ एवं ठिगना हो जाता है।

वाग्भट-द्वय ने अन्यत्र लिखा है कि गर्भावस्था में वायु की विकृति के कारण कान की शष्कुलि (बाह्यकर्ण) सङ्कुचित

Scanned with CamScanner

हो जाती है, इस विकार का नाम कूचिकर्णक है[1]।

भेल ने लिखा है कि स्त्री या पुरुष दोनों ही यदि ऋतुकाल में रुक्ष आदि वातल आहार का सेवन एवं वेग-विधारण करते हैं, तो प्रकुपित वात से गर्भ के शोणितादि दूषित होकर गद्गद, बाधिर्य, मिन्मिणादि अन्य वातज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं[2]।

When a pregnant woman consumes continuously the diet capable of aggravating *vāta*, then vitiated *vāyu* moving through whole body reaches uterus, settles there and makes the fetus (child) *jada* (idiot), deaf, dumb, having hoarse or nasal voice, lame, humpbacked, dwarf, possessing less or more number of body parts and other abnormalities arising due to *vāyu*. At another place Vāgbhaṭas have mentioned that due to abnormality of *vāyu* of fetus, the pinna of ear contracts, this is known as *kūcikarṇaka*.

Bhela says that if the couple consumes *rukṣa* (dry) etc. *vāta* vittating diet during *rtukāla* and suppresses natural urges, then aggravated *vāyu* vitiates *rakta* etc. *(dhātus)* of the fetus and produces hoarse or nasal voice, deafness and other disorders of *vāta*.

(२) पित्तल आहार-जन्य गर्भ-विकृतियाँ (Abnormalities due to pitta-vitiating diet)

तथा वायुवत्पित्तमपि खलितपलितश्मश्रुहीनतात्वङ्नखकेशपैङ्गल्यादीनि॥ (अ० सं० शा० २/५५)
पित्तलैः खलतिः पिङ्गः,····· ····· ॥ (अ० हृ० शा० १/४८)

वायु के सदृश पित्त भी (पित्तल आहारादि के सेवन से प्रकुपित होकर शरीर में परिभ्रमण करता हुआ गर्भाशय में स्थिर हो गर्भ में) खलित, पलित, श्मश्रुहीनता, त्वचा, नख एवं केशों में पिंगल वर्णता आदि अन्य पित्तज विकार[3] उत्पन्न कर देता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी खलित एवं पैंगल्य को पैत्तिक विकार माना है।

महर्षि भेल ने लिखा है कि माता-पिता के द्वारा ऋतुकाल में पित्त-प्रकोपक आहारादि के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर गर्भ को दूषित करता है[4]।

Alike *vāta* the vitiated *pitta* produces baldness, premature greying of hair, absence of hair on face, tawny colour of skin, nail and hair etc. and other abnormalities of *pitta*. Bhela says that aggravated *pitta* produces its specific abnormalities.

(३) श्लेष्मल आहार से उत्पन्न गर्भाङ्ग-विकृतियाँ (Abnormalities due to kapha-vitiating diet)

श्लेष्मा तु कुष्ठकिलाससदन्तत्वादीनि ॥ (अ० सं० शा० २/५६)

१. गर्भोऽनिलात् संकुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः॥ (अ० सं० उ० २१/१५ एवं अ० हृ० उ० १७/१६)
२. (अ) अर्थ स्त्रीपुरुषावृतुना(का)देे(ले) रूक्षाणि वातशा(ला)न्नपानानि सेवेते वेगांश्च धारयतः, तयोर्गर्भः शोणितादिषु वातसन्दूषितेषु विसुतो भवति; गद्गदबाधिर्यमिन्मिणत्वमन्येषां च वातपित्तविकाराणामन्यतमं प्राप्नोति। एवमेव पित्तश्लेष्मलानृतुकाले माता पित्रोस्सेवमानयोः पित्तश्लेष्मविदूषितो गर्भः संभवति॥ (भे० सं० शा० ५/११)
(आ) यद्यपि संहिता में 'वातपित्त' विकार वर्णित हैं परन्तु गद्गद आदि सभी उल्लिखित व्याधियाँ वातज हो हैं एवं प्रारम्भ में केवल वात के दूषित होने तथा पित्त-विकारों का पृथक् निर्देश होने से 'वातपित्तविकाराणां' के स्थान में 'वातजन्यविकाराणां' पाठ अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है।
३. आदि ग्रहणेन पित्तविकाराणां ग्रहणं ॥ (अ० सं० शा० २/५५ की इन्दु टी०)
४. वातान्तर्गत उल्लिखित।

····· **श्वित्री पाण्डुः कफात्मभिः ॥ (अ० हृ० शा० १/४८)**

श्लेष्मा से (वायु, पित्त सदृश आहारादि से कुपित होने पर) कुष्ठ, किलास एवं सदन्त-जन्म आदि अन्य श्लेष्मा के विकार[1] होते हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने श्वित्र एवं पाण्डु को कफज विकार माना है।

महर्षि भेल ने लिखा है कि माता-पिता के द्वारा ऋतुकाल में श्लेष्म-प्रकोपक आहारादि के सेवन से कफ प्रकुपित होकर गर्भ को दूषित करता है[2]।

Vitiated *kapha* produces *kuṣṭha* (leprosy), *kilāsa* (a type of skin disorder) and congenital presence of teeth. Vāgbhaṭa II has mentioned that *świtra* (leucoderma) and *pāṇḍu* (anemia) arise due to consumption of diet capable of vitiating *kapha*. Bhela says that aggravated *kapha* produces its specific abnormalities.

(४) त्रिदोषज आहार से उत्पन्न गर्भाङ्ग-विकृतियाँ (Abnormalities due to diet vitiating all the doṣas)

त्रिवर्णो मिश्रान् विकारान्। (अ० सं० शा० २/५६)

त्रिदोषज आहारादि के सेवन से मिश्र विकार होते हैं।

Due to consumption of diet capable of vitiating all the three *doṣas* the aggravated *tridoṣas* produce abnormalities described under all the three *doṣas*.

(ई) अन्य (Others)

महर्षि हारीत ने यद्यपि माता के द्वारा विशिष्ट आहार-विहार के सेवन का वर्णन तो नहीं किया, परन्तु वात से वात प्रकृति, पित्त से पित्तज प्रकृति तथा श्लेष्मा से स्निग्ध, श्याम, लोमश शरीर से युक्त, शिर के बड़े या घने बालों वाले, स्थूल एवं दीर्घप्रकृति सन्तान, पुनश्च पित्त से रुक्ष तथा कफरक्त से स्निग्ध सन्तान होने का वर्णन दिया है[3]। यद्यपि प्रकृति का निर्माण शुक्रार्तव-स्थित दोषों से होता है पर आहार-रस-स्थित दोष भी सहायक हो सकते हैं।

वाग्भट-द्वय ने विशिष्ट कारण न बताते हुए लिखा है कि गर्भ में ही एक अथवा अनेक पिप्पली के समान वेदना-रहित मांसाङ्कुर हो जाते हैं जिनको पिप्पली कहते हैं[4]।

Hārīta has mentioned that from *vāta* develops *vāta prakṛti*, from *pitta* the *pitta prakṛti* and *rukṣatā* (dryness), from *kapha* an unctuous and hairy body, long hair of scalp, heavy or fat constiution and *dīrgha prakṛti* and from *kapha* with *rakta* the child gets unctuousness. Various body complexions derived from these *doṣas* are already described earlier.

Vāgbhaṭas, without giving any etiology write that in the fetus elongated, painless,

१. आदि ग्रहणेन श्लेष्मविकाराणां ग्रहणम्॥ (अ० सं० शा० २/५६ की इन्दु टी०)
२. भे० सं० शा० ५/११ (पृष्ठ १८२)।
३. वातेन श्यामः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः। पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान्भवेत्॥ ३१॥
श्लेष्मणा जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा। दीर्घशिरोरुहः स्थूलो दीर्घप्रकृतिसंयुतः॥ ३२॥
वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन पिङ्गलः। पित्तवांश्च नरो रूक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजा॥ ३३॥
(हा० सं० षष्ठस्थान १/३१, ३२, ३३)
४. एको नीलूगनेकोवा गर्भे मांसाङ्कुरः स्थिरः। पिप्पली पिप्पलीमानः ·····॥
(अ० सं० उ० २१/१६ एवं अ० हृ० उ० १७/१६, १७)

Scanned with CamScanner

muscular sprouts develop which are termed *pippali*.

विमर्श (Comments)

आचार्यों ने वात विकारों के अन्तर्गत अधिकांश वे ही विकार परिगणित किए हैं जो कि जन्मजात हो सकते हैं, जब कि पित्त के अन्तर्गत शरीर में बाद में होने वाले विकारों यथा खलित, पलित, श्मश्रुहीनता आदि का उल्लेख तथा कफज विकारों में कुष्ठ, किलास, श्वित्र आदि का उल्लेख किया है, जिसका कि स्पष्ट अर्थ है कि इन विकारों की उत्पत्ति में गर्भावस्थाजन्य दोषिक स्थिति प्रभाव डालती है या अन्य शब्दों में इन व्याधियों को जिनेटिक माना जा सकता है। पित्तज-विकारों के अन्तर्गत वर्णित पिङ्गल-वर्णता नवजात-शिशु कामला की द्योतक हो सकती है।

Under the heading of *vāta* only congenital disorders have been described, however under *pitta* and *kapha* all the entities described are evident only in later life, which indicates that environment during gestational period produces certain such conditions which act as a predisposing factor for the diseases or these diseases have genetic predisposition. Tawny colour of skin described under *pitta* could be the reference of jaundice neonatorum.

अस्थि-विरहित गर्भ की उत्पत्ति के कारण (Causes of birth of a boneless fetus)

यदा नार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन। मुञ्चतः शुक्रमन्योऽन्यमनस्थिस्तत्र जायते॥
ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत्। आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि॥
मासि मासि विवर्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम्। कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः॥
(सु० सं० शा० २/४७ से ४९)

जब दो वृषस्यन्ती (वृषभ की इच्छा करने वाली गौ अर्थात् पुरुष या काम की इच्छुक स्त्रियाँ या अत्यन्त कामातुर) स्त्रियाँ समागम करती हैं एवं किसी प्रकार एक दूसरे में शुक्र का उत्सर्ग करती हैं तो अस्थि विरहित या अल्प कोमलस्थि युक्त[1] गर्भ की उत्पत्ति होती है।

यदि ऋतुस्नाता स्त्री स्वप्न में मैथुन करती है या अनुभव करती है, तो (विकृत) वायु आर्तव को कुक्षि (गर्भाशय) में ले जाकर गर्भ की उत्पत्ति कर देती है। उस गर्भिणी में गर्भ के लक्षण प्रतिमास (या मासानुमासिक क्रम से) बढ़ते जाते हैं तथा उसे पितृगुण (केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी, रेत प्रभृति) से विरहित कलल की उत्पत्ति होती है। इन दोनो श्लोकों का जेज्झटाचार्य ने पाठ नहीं किया[2]।

भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर पुस्तकों में भी यही विचार व्यक्त किए गये हैं[3]।

When two hypersexual women indulge in sexual act then they ejaculate *śukra* in each other. Thus conceived fetus is either boneless or has very soft bones.

When a woman having taken bath after her menstrual period (4th or 5th day of menstruation) dreams of coitus, the *vāyu* taking *ārtava* to the uterus makes the conception,

१. अनस्थिरिति ईषदर्थे नञ्, तेनाल्पकोमलास्थिः॥ (सु० सं० शा० २/४७ की डल्ह० टी०)

२. आर्तवं ऋतुकालजं शुद्ध शोणितम्। ·····। पैतृकैर्गुणैरिति केशश्मश्रुलोमनखदन्तशिरास्नायुधमनीरतःप्रभृतिभिः। इमौ द्वावपि श्लोकौ जेज्झटाचार्येण न पांठतौ। (सु० सं० शा० २/४९ की डल्ह० टी०)

३. (अ) यदानार्यां ····· ····· ·····॥ ५७॥
ऋतुस्नाता ····· स्वप्ने मैथुनमाचरेत्। ·····॥ ५८॥
मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः। ·····॥ ५९॥ (भा० प्र० पूर्व० ३; सुश्रुत सदृश ही)
(आ) ऋतुस्नाता ····· पैतृकैर्गुणैः। (यो० र० स्त्रीगर्भरो० नि०; सु० सदृश ही)

which increases every month and the pregnant woman has all the signs and symptoms of pregnancy. This *kalala* when delivered, is without the paternal body-parts (bones, hair, nail, etc.).

विमर्श (Comments)

आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के अनुसार गर्भ शुक्र, आर्तव एवं जीव के ही संयोग से बनता है। स्त्री-शुक्र को पुरुष-शुक्र के समकक्ष नहीं माना जा सकता क्योंकि वह पुरुष के शुक्र के समान गर्भजनक नहीं है (स्त्री शुक्रान्तर्गत पृष्ठ ४९ से ५२ में वर्णित), अतः दो स्त्रियों के परस्पर संयोग से या ऋतुकाल में स्वप्न-मैथुन से किसी प्रकार की गर्भोत्पत्ति मानना शास्त्रसंगत, युक्तिसंगत एवं प्रत्यक्ष-प्रमाण-युक्त नहीं है, सम्भवतः इसी कारण टीकाकार जैज्झटाचार्य इन श्लोकों का पाठ ही नहीं करते (पूर्व वर्णित डल्हण टीका)। यद्यपि इस प्रकार की गर्भोत्पत्ति का निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है फिर भी वर्णन के निम्न सम्भाव्य कारण हो सकते हैं।

(१) श्लोक प्रक्षिप्त हैं, अतः आप्त नहीं।

(२) उपर्युक्त वर्णन अति कामातुर या मानसिक रूप से विकृत स्त्रियों का वर्णन है। प्रजनन-क्रिया सम्बन्धी मानसिक विकृति अनार्तव का एक कारण है, अतः इन स्त्रियों में प्रारम्भ के अनार्तव एवं बाद के कुछ अधिक ग्रन्थित रक्तस्राव को देखकर उपर्युक्त वर्णन की कल्पना की गई।

(३) अनैतिक सम्बन्धों के कारण प्राप्त गर्भ का प्रारम्भिक दिनों में गर्भस्राव करवाने पर नवीन, अस्थिविरहित गर्भ निकलता है। सामाजिक भय के कारण स्त्रियों ने उपर्युक्त मानसिक विकृति का इतिवृत्त दिया एवं आचार्यों ने उसे सही मान लिया।

(४) विकृत गर्भोत्पत्ति का भय दिखाकर स्त्री को अप्राकृतिक संभोग की प्रक्रिया से दूर रहने का निर्देश।

In *āyurvedika* classics it is clearly mentioned that conception is the result of union of *śukra*, *ārtava* and *jīva*. The *śukra* excreted by female is useless for conception, thus the occurance of pregnancy without active participation of male partner is neither mentioned in classics, nor seen in practice, nor stands the test of logics. Probably due to this confusion Jejjhaṭācārya has not quoted these verses. However, probable explanations can be given in following way:—

1) The verses are not authentic and have been added by some later worker.
2) The description is of women having perverted psychology or hypersexuality. In various psychological conditions specially related to reproductive system amenorrhoea is one of the common manifestation, probably amenorrhoea followed by menstruation having excessive clotted blood is the source of this description.
3) The women having got themselves criminally aborted for illegal pregnancy, specially during early stage of gestation and expelling the products of conception in pieces gave this misleading history, which was accepted by the authors.
4) The author's main aim was to deter the women from these abnormal sexual behaviours by infusing fear of abnormal fetus.

गर्भस्थ शिशु के अरुदन का कारण (Reasons for absence of fetal cry)

जरायुणा मुखेच्छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते। वयोमार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति॥
(सु० शा० २/५४; अ० सं० शा० २/६५ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/३२९)

Scanned with CamScanner

जरायु से मुख के आच्छादित होने, कण्ठ के कफ से आवेष्टित या अवरुद्ध होने तथा वायु के मार्ग का निरोध होने के कारण गर्भस्थ शिशु नहीं रोता। टीकाकार डल्हण ने स्पष्टीकरण में लिखा है कि घोष-जनक वायु के मार्ग का अवरोध होता है, क्योंकि निःश्वासादि रूप वायु का वर्णन किया जा चुका है इसका मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर गर्भ जीवित ही नहीं रहेगा[1]।

As the aperture of fetal mouth *(mukha)* is enveloped with *jarāyu* (amniotic membrane), the throat is covered with *kapha* (mucus) and the passage of *vāyu* is obstructed, hence the fetus does not cry. Ḍalhaṇa has explained that the passage of *ghoṣa-janaka vāyu (vāyu* capable of producing sound) is obstructed, but not of normal one, as its functions of respiration etc. have already been described earlier and obstruction to its passage would lead to fetal death.

गर्भ में मल इत्यादि के अभाव का कारण (Reasons for absence of fetal excretas)

मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च । वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि॥
(सु० सं० शा० २/५३)

अजातस्य साक्षादन्नपाननप्रवेशादमलत्वाच्च रसस्य गर्भस्य स्थूलमलासम्भवः।
(अ० सं० शा० २/३४)

मल के अत्यल्प होने एवं पक्वाशय में वायु के अयोग या ईषत् योग[2] होने के कारण गर्भस्थ शिशु वात (अपान वायु), मूत्र एवं पुरीष का त्याग नहीं करता।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि अनुत्पन्न या गर्भस्थ शिशु में अन्नपान आदि के साक्षात रूप में प्रविष्ट न होने के कारण एवं आहार-रस के मल-रहित या प्रसाद रूप[3] होने के कारण गर्भ में स्थूल मल का अभाव होता है।

महर्षि भेल ने भी उदरस्थ शिशु के आहार न लेने के कारण पुरीष की अनुपस्थिति का वर्णन किया है[4]।

आचार्य भावमिश्र ने वायु की अल्पता एवं उसका पक्वाशय में अयोग होना ही वात, मूत्र एवं पुरीष के न होने का कारण माना है[5]।

Suśruta says that since the excretas are very less in quantiy and the *vāyu* is not in functioning state or has negligible functions in *pakwāśaya* (large bowel), thus the fetus does not pass flatus, feces or urine.

Vāgbhaṭa I opines that since in fetus, food and liquid do not enter directly (into their digestive system) and the *āhāra-rasa* is free from waste products or is essence of digestive food, thus there is no gross amount of feces in the fetus.

Bhela and Bhāvamśra have also expressed almost similar opinion.

१. वायोर्मार्गनिरोधादिति घोषजनकस्य वायोर्मार्गनिरोधादित्यर्थः। निश्वासादिरूपस्य तु वायोर्नि:सरणमग्रे वक्ष्यति, यतस्तदभावे जीविताभाव एव भवति गर्भस्य॥ (सु० सं० शा० २/५४ की डल्ह० टी०)

२. वायोरयोगात् इति नञ् ईषदर्थे, तेनेषद्योगात्। (सु० सं० शा० २/५४ की डल्ह० टी०)

३. रसः सोऽमलः प्रसाद रूपत्वादित्यर्थः॥ (अ० सं० शा० २/३४ की इन्दु टी०)

४. अत्राह किन्तु(न्नु)गर्वो(र्भो)मातु(रुद)रस्थोऽश्नाति न चेति। अत्रोच्यते, नाश्नाति। ये(य)दि ह्याश्रीयात् स्यादस्या(स्य) पुरु(री)षमतीतकालम्। न चेद(म)स्ति॥ (भे० सं० शा० ४/३२)

५. वातात्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च। वातमूत्रपुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३२८)

विमर्श (Comments)

यद्यपि सामान्य परिस्थितियों में गर्भस्थ शिशु मल एवं अपान वायु का त्याग नहीं करता, परन्तु मूत्र का त्याग करता है अतः सुश्रुतोक्त मूत्र का अभाव युक्तिसंगत नहीं है। वाग्भट-वर्णित स्थूल मल से यदि ब्रहदान्त्र स्थित मल का ग्रहण किया जाय, तो उसकी भी अनुपस्थिति नहीं होती, यद्यपि सामान्यतया गर्भाशयान्तर स्थिति में इसका विसर्जन नहीं होता परन्तु अवसाद की स्थिति होने पर गर्भ गर्भाशयान्तर स्थिति में ही इसका त्याग कर देता है।

गर्भ अपनी गर्भाशयान्तर स्थिति में कभी नहीं रोता, परन्तु विरले गर्भ का आभ्यन्तर वर्तन करने अथवा सामान्य या अप्रगल्भ शिशु के प्रसव के समय उल्वकला का विदार होने के बाद वातावरण की गर्भाशयान्तर प्रविष्ट वायु के गर्भ के द्वारा बारम्बार निश्वास से अन्दर तथा उच्छ्वास से बाहर निकालने पर एक विशिष्ट रोने सदृश आवाज आती है जिसे गर्भ-क्रन्दन (वॉजिटस यूटेरिनस) कहते हैं। इसका गर्भ पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता।[1]

Though normally fetus does not pass flatus or feces, however, it does secrete urine, hence Suśruta's version of absence of micturition does not seem to be proper. If gross amount of feces described by Vāgbhaṭ I is considered as feces of large bowel, then it is also not absent, though normally fetus does not pass it, yet in hypoxic state the fetus does pass it.

Fetus never cries, however rarely, during internal version or after rupture of amniotic membrane during normal or premature delivery, the atmospheric air entered in uterus is inhaled then exhaled by the fetus repeatedly producing typical sound called vagitus uterinus which does not have any untoward effect upon the fetus.

गर्भिणी की व्याधियों का गर्भ पर प्रभाव (Effect of mother's diseases upon the fetus)

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते। स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते॥
(सु० सं० शा० ३/१७ एवं भा० प्र० पूर्व० ३/३३४)

दोषों से (दोषों की विकृति से) अथवा अभिघातादि से गर्भिणी स्त्री का जो जो भाग या अंग पीड़ित होता है, गर्भस्थ शिशु का भी वही वही अंग पीड़ित होता है।

What-so-ever part of the female's body is afflicted either by vitiation of *doṣas* or trauma, identical part of the fetal body also suffers from the same trouble.

विमर्श (Comments)

गर्भस्थ शिशु के माता के ऊपर पराश्रित होने का ही यह भी एक वर्णन है, क्योंकि क्रियात्मक क्षेत्र में ऐसा देखा जाता है कि माता के पीड़ित होने पर भी शिशु स्वस्थ रह सकता है।

All the disorders of mother do not influence fetus in indentical manner. The description might have been given to emphasize the dependence of fetus over the mother.

गर्भ के शुभ एवं अशुभ भाव (Auspicious or śubha and inauspicious of aśubha features of fetus)

निमित्तमात्मा प्रकृतिर्वृद्धिः कुक्षौ क्रमेण च। वृद्धिहेतुश्च गर्भस्य पञ्चार्थाः शुभसंज्ञिताः॥ ४२॥

१. मुनरॉकर की "ऑपरेटिव ऑब्स्टेट्रिक्स" पृष्ठ ९४२

Scanned with CamScanner

अजन्मनि न यो हेतुर्विनाशे विकृतावपि। इमां स्त्रीनशुभान् भावानाहुर्गर्भविघातकान् ॥ ४३॥
शुभाशुभसमाख्यातानष्टौ भावानिमान् भिषक्। सर्वथा वेद यः सर्वान् स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ४४॥
अवाप्त्युपायान् गर्भस्य स एवं ज्ञातुमर्हति।
ये च गर्भविघातोक्ता भावास्तांश्चाप्युदारधीः॥ ४५॥ (च० सं० शा० ४/४२ से ४५)

गर्भ के कारण, गर्भ की आत्मा, गर्भ की प्रकृति, गर्भ की कुक्षि में क्रमिक वृद्धि एवं गर्भ की वृद्धि के हेतु ये पाँच गर्भ के शुभ (अर्थात् पुत्र प्राप्ति के लिए अनुष्ठेय) भाव हैं; एवं गर्भ के उत्पन्न न होने के कारण, गर्भ विनाश के कारण एवं गर्भ-विकृति के कारण ये तीन गर्भ के अशुभ या गर्भ के घातक भाव कहे जाते हैं। इन आठ शुभ एवं अशुभ कहे जाने वाले भावों को जो वैद्य भलीभाँति जानता है वह राजा की चिकित्सा करने की क्षमता रखता है। उदार बुद्धि वाला वैद्य गर्भ-प्राप्ति के उपायों को एवं गर्भनाशक सभी भावों को जानने में समर्थ होता है।

Nimitta (efficient cause) for conception, its *ātmā* (self), *prakṛti*, gradual development in uterus and factors responsible for growth are five auspicious features of conception. The factors responsible for non-achievement of conception (infertility), destruction of fetus and teratologic abnormalities are three inauspicious features or *garbhavighātaka* (destructor of fetus) features. The physician who knows these eight auspicious or inauspicious features of conception is capable of treating the king. The physician possessing bounteous intellect is capable of understanding the methods of achievement of conception and causes of its destruction.

गर्भ के पूर्ण-काल में परिपूर्ण देह होकर सुख से उत्पन्न होने के कारण (Factors responsible for normal delivery of normally developed full term fetus)

शुक्रासृगात्माशयकालसंपद् यस्योपचारश्च हितैस्तथाऽन्नैः।
गर्भश्च काले च सुखी सुखं च सञ्जायते संपरिपूर्णदेहः॥ (च० सं० शा० २/६)

शुक्र, आर्तव, आत्मा, आशय एवं काल आदि सभी सम्पत् या शुद्ध हों, गर्भिणी का हित अन्न आदि सेवन एवं अन्य उपचार (पथ्यापथ्य व्यवस्था) सम्पत् हो तो गर्भ संपरिपूर्ण देह का होकर सुखी या स्वस्थ रूप में, सुख से या बिना कष्ट के, परिपूर्ण काल में उत्पन्न होता है। टीकाकार चक्रपाणि ने शुक्रार्तव आदि का दुष्ट न होना, आत्मा का शुभ जीव-कर्म से युक्त होना एवं काल का अतितीक्ष्ण न होना ही इन सभी का सम्पत् होना माना है[1]।

If *śukra* (sperms), *ārtava* (ovum and ovarian hormones), *ātmā* (self), *āśaya* (uterus) and *kāla* (time factor) etc. all are perfect, dietetics and mode of life advocated for pregnant woman is followed properly, then the healthy, well grown fetus, possessing all his body parts will deliver with ease, at proper period. The perfection indicates the absence of any abnormality in *śukra* or *ārtava*, association of *ātmā* with *jīva* having good deeds to its credit and absence of very sharpness in *kāla* (time).

गर्भाशयान्तर गर्भ-स्थिति (Intrauterine situation of fetus)

गर्भस्तु खलु मातुः पृष्ठाभिमुख ऊर्ध्वशिराः सङ्कुच्याङ्गान्यास्तेऽन्तःकुक्षौ॥ (च० सं० शा० ६/२२)
आभुग्नोऽभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः। (सु० सं० शा० ५/४५)

१. शुक्रासृगात्रयानामदुष्टत्वं संपद्, आत्मनस्तु शुक्रशोणितसंयोगाधिष्ठातुः शुभजीवकर्मयुक्तत्वं संपत्, कालस्य त्वनतितीक्ष्णत्वादि संपत्। उपचारो गर्भिण्युपचारः॥ (च० सं० शा० २/६ की चक्र० टी०)

गर्भस्तु मातुः पृष्ठाभिमुखो ललाटे कृताञ्जलिः सङ्कुचिताङ्गो गर्भकोष्ठे दक्षिणपार्श्वमाश्रित्यावतिष्ठते पुमान् वामं स्त्री मध्यं नपुंसकम्॥ (अ० सं० शा० २/३१)

गर्भ कुक्षि (गर्भाशय) के अन्दर माता के पीठ की ओर मुख, ऊपर की ओर शिर तथा सभी अङ्गों को संकुचित करके स्थित होता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है स्त्रियों का गर्भ गर्भाशय में आभुग्न (अच्छी प्रकार झुका या संकुचित) एवं अभिमुख (माता के मुख के सामने मुख करके या पृष्ठाभिमुख) होकर शयन करता है (रहता है)।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि गर्भ माता की पीठ की ओर मुख करके, ललाट में (मस्तक के पास) अंजलि बनाकर (दोनों हाथों को जोड़कर), अंगों को संकुचित करके गर्भाशय में रहता है। यदि पुरुष (पुत्र) है तो दक्षिण पार्श्व को आश्रय लेकर, यदि स्त्री (कन्या) है तो वाम पार्श्व तथा नपुंसक है तो मध्य में स्थित रहता है। (इस आशय का वर्णन अन्य आचार्यों ने गर्भिणी-चिह्नों के अन्तर्गत किया है[2])।

महर्षि भेल ने "गर्भ माता के पेट में किस प्रकार ठहरता है ?" इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि शौनक के मतानुसार ऊर्ध्व शिर एवं भरद्वाज के मतानुसार अवाक्शिर (नीचे को शिर करके) रहता है। भगवान पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं कि ऐसा नहीं है यदि ऊर्ध्व (शिर) स्थित होगा तो माता को मारक होगा यदि अवाक्शिर होगा तो स्वयं को मारक (प्राणघातक) होगा। तो किस प्रकार ? सभी अंगों-प्रत्यङ्गों को संकुचित करके तिर्यक (स्थिति में) शयन करता है[3]।

The fetus stays in uterus with all its body parts fully flexed and facing towards the back of the mother. Caraka has mentioned the position of head as upwards. Vāgbhata I has added that the fetus keeps its both palms joined together over its forehead and if it is male its situation is more on right lateral side of abdomen, if female then on left lateral side and if hermaphrodite then it remains centrally situated.

Bhela explaining the position of fetal head has said that Śaunaka and Bhardwāja have mentioned the situation of head as upwards and downwards respectively. However Punarvasu Ātreya has clarified that it is not so, if the head remains upwards it can kill the mother and if downwards then will kill ownself, thus the position of head is neither upwards nor downwards, rather it is oblique.

विमर्श (Comments)

महर्षि चरक द्वारा वर्णित ऊर्ध्व-शिर का स्पष्टीकरण कठिन है क्योंकि सामान्य प्रसूत होने वाली स्त्रियों के गर्भ का शिर नीचे की ओर रहता है। गर्भ गर्भवस्था के ६ या ७ माह तक अस्थिर स्थिति में रहता है एवं अधिकांशतः शिर ऊपर की ही ओर होता है। गर्भावस्था के अंतिम त्रैमास में गर्भ अपनी निश्चित स्थिति ले लेता है। फिर भी नगण्य स्त्रियों में प्रसव के कुछ दिन पूर्व भी गर्भ की स्थिति में परिवर्तन देखा गया है। महर्षि चरक के वर्णन का आधार गर्भावस्था के ६-७ माह की परीक्षा या इन नगण्य स्त्रियों का वर्णन ही प्रतीत होता है। यदि शिर से शिवरंध्र के ऊपर के भाग का (वॅटेक्स) ग्रहण करें तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि गर्भावस्था के अंतिम दिनों में भी शिर अत्यधिक संकुचित नहीं होता जिसके कारण यह वॅटेक्स ऊपर अर्थात् ऊँचा प्रतीत होता है प्रसव के काल में शिर के अत्यधिक संकुचित

१. अध्याय ५ में देखें।

२. तत्राह कथं गर्भो मातुरुदरे तिष्ठतीति ? ऊर्ध्वमिति शौनकः, अवाक्शिरा इति भरद्वाजः। नेत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः। यदूर्ध्वं तिष्ठेत्तर्हि मातुमार्ति(रः) स्यात्। यदवाक्शिराः, तदा स्वमार्ति(रः) स्यात्। कथं तर्हि ? तिर्यक् सर्वैरंयमग(ङ्ग)प्रत्यङ्गै प्रतिभुग्नः शेवे(ते)॥ (भे० सं० शा० ४/३४)

Scanned with CamScanner

हो जाने पर यह अंग सबसे नीचे पहुँच जाता है।

Fetus remains in head down position in about 95.0% cases, which position is attained in last trimester of pregnancy, however, in exceptional cases the fetus may rotate to this position few days before delivery. Up to second trimester the fetus remains floating. thus head may remain even in flanks or upwards, probably Caraka and Bhela etc. have referred to this very situation. However, if with word '*śiras*' instead of head 'vertex' is considered then description becomes clearer, because before labour the vertex remains higher than the sinciput, while it descends down at the time of delivery due to flexion of head.

पुंसवनकर्म (Puṃsawankarma)

इच्छित पुमान् सन्तान-प्राप्ति के लिए किए जाने वाले विभिन्न कर्म पुसंवन कर्म कहलाते हैं[1]। इस कर्म के करने के समुचित काल एवं विधियों का आचार्यों ने विस्तृति वर्णन दिया है।

The procedure to be adopted for achieving progeny of desired sex is known as *puṃsavana karma*. The classics have described its appropriate period alongwith the methods.

पुंसवनकर्म-उपयुक्त काल (Appropriate period for puṃsawana karma)

तयोः कर्मणा वेदोक्तेन विवर्तनमुपदिश्यते प्राग्व्यक्तीभावात् प्रयुक्तेन सम्यक्। कर्मणां हि देशकालसंपदुपेतानां नियतमिष्टफलत्वं, तथेतरेषामितरत्वम्। तस्मादापन्नगर्भां स्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग्व्यक्तीभावाद्गर्भस्य पुंसवनमस्यै दद्यात्॥ (च० सं० शा० ८/१९)

लब्धगर्भायाश्चैतेषु ····· ·····। (सु० सं० शा० २/३२)

लब्धगर्भां चैनां विदित्वा प्राग्व्यक्तीभावाद्गर्भस्य पुष्ये पुंसवनादि प्रयुञ्जीत। द्वादशरात्रमित्यन्ये। तत्रापि युग्मदिनेष्विति केचित्। प्रत्यहमित्यपरे॥ ६०॥

अविरुद्धे ध्रुवं दैवे काले युक्तस्य कर्मणः। सिद्धिः पुंसवनाद्यस्मात्पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत्॥ ६९॥
(अ० सं० शा० १/६० एवं ६९)

गर्भः पुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत्। बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते॥
(अ० हृ० शा० १/३७ एवं ३८)

उन दोनों में (कन्या या पुत्र में) वेद (आयुर्वेद) में वर्णित विधियों का सम्यक् प्रकार से, व्यक्तीभाव (गर्भ के लिङ्ग निर्णायक व्यक्तता के चिन्ह) उत्पन्न होने के पूर्व प्रयोग करने से परिवर्तन करना सम्भव है। देश, काल आदि की अनुकूलता के आधार पर किया गया कर्म (पुंसवन कर्म) निश्चित ही फल देता है, विपरीत होने पर विपरीत (अर्थात् अनुचित देश या अनुचित काल में किया गया कर्म वांछित फल नहीं देता)। अतः स्त्री को आपन्नगर्भा (गर्भवती) समझकर व्यक्तीभाव होने के पूर्व पुंसवन कर्म करवावें। टीकाकार चक्रपाणि ने व्यक्त-भाव के पूर्व का काल द्वितीय मास तक का माना है एवं इस काल तक पुंसवन कर्म करने का विधान बताया है[2]।

१. पुंसवनमिति पुंस्त्वकारकं कर्म॥ (च० सं० शा० ८/१९ की चक्र० टी०)

२. व्यक्तिस्तु द्वितीये मासे भवति; यदुक्तं-"द्वितीये मासे घनः संपद्यते" इत्यादि; किंवा तृतीये मासे अङ्गप्रत्यङ्गाभिव्यक्तेर्व्यक्तीभावो ज्ञेयः; द्वितीये तु मासे ग्रन्थ्यादिरूपे गर्भे प्रत्यङ्गव्यक्तीभावो न व्यक्तः, तेन वक्ष्यमाणं कर्म मासद्वयं यावत् कर्त्तव्यम्॥ (च० सं० ८/१९ की चक्र० टी०)

महर्षि सुश्रुत ने केवल लब्धगर्भा कह कर ही विषय को छोड़ दिया है पर टीकाकार डल्हण ने स्पष्टीकरण देते हुए नस्य आदि कर्मों को तीन विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोगी बताया है (१) गर्भ की उपलब्धि से पूर्व गर्भ-ग्रहण के लिए इन नस्य आदि का प्रयोग कर तब ग्राम्यधर्म-सेवन (गर्भ की प्राप्ति हेतु) (२) लब्धगर्भा होने पर गर्भ के स्थापन के लिए एवं (३) तीन मास का गर्भ होने के पूर्व पुत्रोत्पत्ति के लिए[1]। अन्यत्र शुक्रार्तववाहुल्य से ही पुत्र-पुत्री उत्पत्ति के वर्णनान्तर्गत लिखा है कि पुत्रीयविधि निरर्थक नहीं हैं, क्योंकि बिना श्रेष्टकर्म के रूपादि से युक्त पुत्र की प्राप्ति नहीं होती[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि स्त्री को लब्धगर्भा जानकर व्यक्तीभाव होने के पूर्व पुष्य नक्षत्र में पुंसवनकर्म का प्रयोग करना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि यह पुंसवन का प्रयोग बारह दिन तक करना चाहिए। इन बारह दिनों में भी युग्म दिनों में प्रयोग करें ऐसा भी किन्हीं-किन्हीं आचार्यों का मत है। अन्यों का कथन है कि प्रतिदिन इस पुंसवन का प्रयोग करना चाहिए। टीकाकार इन्दु ने केवल प्रथम दिन, युग्म दिनों में, प्रत्येक दिन एवं बारह दिनों के युग्म दिन आदि चार विकल्प पुंसवनकर्म-प्रयोग के लिए दिए है[3]। दैव (भाग्य या पूर्वजन्म-कर्म) के अनुकूल होने पर, उचित समय में प्रयुक्त कर्म (पुंसवन) निश्चित सफलतादायक होता है अतः फल-सिद्धि के लिए गर्भ की व्यक्तावस्था के पूर्व युक्तिपूर्वक पुंसवनकर्म का प्रयोग करे (भाग्य के विरुद्ध होने पर युक्तिपूर्वक किया गया भी पुंसवनकर्म निष्फल हो जाता है)।

अष्टाङ्गहृदयकार का कहना है कि गर्भ के लक्षण व्यक्त होने के पूर्व (स्त्री या पुरुष के लिङ्ग-लक्षण व्यक्त होने के पूर्व) पुंसवनकर्म का प्रयोग करना चाहिए। बलवान पुंसवनकर्म दैव (भाग्य) को भी परिवर्तित कर देता है। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि जिस प्रकार बलवान पुंसवनकर्म दैव को परिवर्तित कर देता है, उसी प्रकार बलवान दैव पुंसवनकर्म को निष्फल कर देता है; अतः सम्यक् प्रयोजित पुंसवनकर्म की सफलता प्राकृत-कर्म के हीनबलत्व या प्रबलत्व के ऊपर आधारित होती है[4]।

If the methods prescribed in *vedas* for achieving male or female progeny are used before the conspicuousness *(vyaktībhāva)* of organs the change of sex is possible. If the *puṃsawana karma* is done keeping in mind the living place *(deśa)* and specific period *(kāla)* the result is definite, otherwise it is just reverse (if due consideration to *deśa* and *kāla* is not given then sex may not change). *puṃsawana karma* should be done after conception but before conspicuousness of organs or upto two months.

Sušruta has advocated that it should be done just after achievement of conception *(labdhagarbhā)*. Ḍalhaṇa has explained that this process is done with three objectives (1)

१. चकारादलब्धगर्भायाः पूर्वमेव लक्ष्मणादीनां नस्यदानं सहस्राभिहुतं गर्भग्रहणाय पश्चाद् ग्राम्यधर्मसेवनमिति।·····। लब्धगर्भायाश्च लक्ष्मणादिनस्यदानं गर्भस्थापनार्थं, स्थितगर्भायाश्च मासत्रयाल्पान्तरे पुत्रापत्यजननार्थं नस्यदानमिति॥
(सु० सं० शा० २/३२ की डल्ह० टी०)

२. यद्येवं तर्हि प्रागुक्तं पुत्रीयकरणं निरर्थकं ? नैतदस्ति, किन्तु श्रेयसा कर्मणा विना नैव रूपादिसङ्गमिनो भवन्ति पुत्राः॥
(सु० सं० शा० ३/५ की डल्ह० टी०)

३. प्रथमेऽह्नि केचित् पुंसवनमिच्छन्ति, तत्राप्ययुग्मादिनं विभागयुग्मेषु दिनेष्विति केचित् प्रवदन्ति, केचित्त्वाकारः प्रत्यहं पुंसवनमिच्छन्ति, ·····, केचित्तु द्वादशरात्रस्यैव युग्मदिनेष्विति विशेषनिक्षिपन्ति॥ (अ० सं० शा० १/६० की इन्दु टी०)

४. पुरुषकारो बलवान् दुर्बलं दैवमतिवर्तते ·····। अपिशब्दात् पुरुषकारमपि दुर्बलं दिष्टं बलीयोऽतिक्रम्य वर्तत इति प्रतिपादयति। अतएव प्राकृतेन कर्मणा बलीयसाऽऽक्षिप्तस्य स्त्रीगर्भस्य पुंसवनादिदानेन पौरुषेण कर्मणा शतशोऽपि प्रयोजितेन न कथञ्चित्पुंगर्भता कर्तुं पार्यत इति। उक्तं च "दैवं पुरुषकारेण दुर्बलं ह्यपहन्यते। दैवेन चेतरत्कर्म प्रकृष्टेनोपहन्यते।" इति। अत्र पुंसवनादि सम्यक् प्रयोजितं सिद्धशसिद्धयनुमीयमानं प्राकृतस्य कर्मणो हीनबलत्वप्रबलत्वमवगमयति॥
(अ० हृ० शा० १/३७, ३८ की अरुण० टी०)

Scanned with CamScanner

before conception use of inhalation of drugs etc. followed by coitus is for achievement of conception, (2) immediately following conception is for its proper implantation and (3) before three months for change of sex or for having male progeny.

Vāgbhaṭa I corroborating the period given by Caraka says further that it should be done only during *puṣya nakṣatra*. Citing the opinions of others, he says that some advise the duration of *puṃsawanakarma* for twelve days, others during even days of these twelve days, while some advise its daily use. Indu has given four options: (1) only on first day (2) on even days, (3) daily (4) every even day of twelve days period. Further he says that success depends upon the favour of luck.

Vāgbhaṭa II agreeing with the period i. e. before conspicuousness of body parts says that potent *puṃsawanakarma* can alter the luck. Arunadatta has explained that as a potent *puṃsawanakarma* can alter the luck, similarly potent luck can make the *karma* unsuccessful, thus the success of *puṃsawanakarma* depends upon relative strength of luck.

विमर्श (Comments)

गर्भाधान करने वाले शुक्राणु का लिङ्ग गुणसूत्र निश्चित होता है, अतः गर्भाधान के पश्चात प्रयुक्त किसी भी विधि से गर्भ के लिङ्ग परिवर्तन की सम्भावना नहीं रहती। अष्टाङ्गसंग्रह वर्णित बारह दिन की समय सीमा सम्भवतः ऋतुकाल को इंगित करती है। टीकाकार डल्हण ने औषधि प्रयोग का काल ग्राम्यधर्म सेवन से पूर्व स्पष्टतर लिखा है[१]। 'प्राक्व्यक्तीभाव' से भी गर्भ व्यक्तीभाव अर्थात् गर्भाधान (शुक्र शोणित संयोग के पूर्व) के पूर्व अर्थ कर सकते हैं। यह सम्भव है कि ऋतुकाल अर्थात् गर्भाधान के पूर्व किया गया पुंसवन कर्म स्त्री-शरीर विशेषकर स्त्रीबीज में इस प्रकार के परिवर्तन कर दे कि वह वांछित शुक्राणुओं को ही आकर्षित कर प्रविष्ट होने दे।

An ovum is fertilized by the sperm of specific sex chromosome, naturally after fertilization the chances of reversal of sex by any procedure does not seem to be possible. The time limit of twelve days given by Vāgbhaṭa I probably refers to *ṛtukāla*. Dalhaṇa has mentioned the period of use of drugs before coitus in unequivocal words. The description before conspicuousness of body-parts can be considered as before conspicuousness of *garbha* i.e. before fertilization of ovum by sperms. It is hypothetically possible that specific procedure done before fertilization may produce some such changes in female body specially in ovum, that it attracts or permits its penetration by specific sex chromosome bearing sperms only.

पुंसवन विधि (Methods of puṃsawanakarma)

गोष्ठे जातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तराभ्यां शाखाभ्यां शुङ्गे अनुपहते आदाय द्वाभ्यां धान्यमाषाभ्यां संपदुपेताभ्यां गौरसर्षपाभ्यां वा सह दधि प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत्, तथैवापराञ्जीवकर्षभकापामार्गसहचरकल्कांश्च युगपदेकैकशो यथेष्टं वाऽप्युपसंस्कृत्य पयसा, कुड्यकीटकं मत्स्यं वोदकाञ्जलौ प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत्, तथा कनकमयान्, राजतानायसांश्च पुरुषकानग्निवर्णानणुप्रमाणान् दधि पयस्युदकाञ्जलौ वा प्रक्षिप्य पिबेदनवशेषतः पुष्येण, पुष्येणैव च शालिपिष्टस्य पच्यमानस्योष्माणमुपाघ्राय तस्यैव च पिष्टस्योदकसंसृष्टस्य रसं देहल्यामुपनिधाय दक्षिणे नासापुटे स्वयमासिञ्चेत्

१. सु० सं० शा० २/३२ की डल्हण टीका (पुंसवन विधि के अन्तर्गत उद्धृत)

पिचुना। यच्चान्यदपि ब्राह्मणा ब्रूयुरामा वा स्त्रियः पुंसवनमिष्टं तच्चानुष्ठेयम्। इति पुंसवनानि॥

(च० सं० शा० ८/१९)

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुङ्गसहदेवाविश्वदेवानामन्यतमां क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दद्याद् दक्षिणे नासापुटे पुत्राकामायै, (वामे दुहितृकामायै-पा० टी०) न च तान् निष्ठीवेत्॥

(सु० सं० शा० २/३२)

तद्यथा–लक्ष्मणावटशुङ्गसहदेवाविश्वदेवानामन्यतमां क्षीरेऽभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दक्षिणे नासापुटे स्वयमासिञ्चेत्पिचुना वामे वा दुहितृकामा। न चैतान्निष्ठीवेत्। तथा पुष्योद्धतायाः श्वेतबृहत्या मूलकल्काद्रसं नावयेत्। तद्वच्चोत्पलपत्रं कुमुदपत्रं लक्ष्मणामूलं वटशुङ्गानि चाष्टौ च नावयेत्। शुक्लमाल्याम्बरधरा च नारी पुष्योद्धताया लक्ष्मणाया मूलकल्कमुदुम्बरमात्रं पयसा पिबेत्पुत्रस्योत्पादाय स्थितये च। तद्वद्गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्षभकौ शङ्खपुष्पीं मध्यदण्डां सहचरं नग्रजीवमग्निजिह्वामष्टौ वा वा वटशुङ्गानि। पिष्टस्य च पच्यमानस्योष्माणमाघ्राय तद्रसं देहल्यां स्थितां पूर्ववन्नावयेत्। यच्चान्यदपि ब्राह्मणा वृद्धस्त्रियो वा ब्रूयुस्तच्च कुर्यात्॥ (अ० सं० शा० १/६१)

पुष्ये पुरुषकं हैमं राजतं वाऽथवाऽऽयसम्॥ ३८॥
कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्याञ्जलिं पिबेत्। गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्षभसैर्यकान्॥ ३९॥
पिबेत्पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः। क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम्॥ ४०॥
पुत्रार्थं दक्षिणे सिञ्चेद्वामे दुहितृवाञ्छया। पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम्॥ ४१॥
नासायाऽऽस्येन वा पीतं वटशुङ्गाष्टकं तथा। औषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यान्तरुपयोजयेत्॥ ४२॥

(अ० ह० शा० १)

गोष्ठ या गौओं के विश्राम स्थान पर उत्पन्न वट वृक्ष की पूर्व एवं उत्तर की ओर की दो शाखाओं से दो अनुपहत (अविकृत या अक्षुण्ण) शुङ्ग लेकर, सम्पत् (सामान्य रस, शुभ वीर्य आदि युक्त) दो व्रीहि माष या सुवर्ण माष[१] अथवा पीले सर्षप (के दाने) लेकर दही के साथ मिलाकर पुष्य नक्षत्र में पीये। इसी भाँति (गोष्ठोत्पन्न) जीवक, ऋषभक, अपामार्ग, सहचर सभी के कल्क को, वांछित कुछ द्रव्यों अथवा अलग-अलग एक-एक द्रव्य के कल्क को दुग्ध के साथ संस्कृत करके इच्छानुसार (पुष्य नक्षत्र में) पीये। कुड्यकीट या मत्स्य को एक अंजली जल में डालकर पुष्य नक्षत्र में पीये। स्वर्ण, रजत अथवा लोहे की अणु-प्रमाण (अत्यन्त सूक्ष्म), अग्निवर्ण की (आग में तपाने से लाल हो गई हुई) पुरुषाकृति को एक अंजलि दधि अथवा उदक में प्रक्षिप्त करके बिना बचाए हुए सम्पूर्ण ही पुष्य नक्षत्र मे पिए; पुष्य नक्षत्र में ही पकाई जाती हुई शालिपिष्टि (जल के साथ पीसा हुआ शालि चावल) की ऊष्मा (वाष्प) को सूँघकर, उसी पिष्टी के ही जल-संसृष्ट होने से उत्पन्न रस को पिचु द्वारा देहली (गृहद्वार का अधःकाष्ठ) में सिर रखकर अपने हाथ से ही दक्षिण नासापुट में डाले। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी ब्राह्मण, आप्तजन या स्त्रियाँ पुंसवन-उपयोगी-कर्म कहें वह करे। यह पुंसवन विधि समाप्त हुई।

महर्षि सुश्रुत ने बहुत ही संक्षेप में पुंसवन-विधि का वर्णन किया है कि इन दिनों में गर्भ को प्राप्त हुई अर्थात् गर्भिणी-स्त्री लक्ष्मणा, वटशुङ्ग, सहदेवा (पीतबला या कंघी), विश्वदेवा (श्वेतबला या गांगेरुकी) आदि अन्य औषधियों को क्षीर (गौ दुग्ध) के साथ पीस कर पुत्र की इच्छा होने पर तीन या चार बूँद दक्षिण नासापुट में डाले, उसे थूके नहीं। पाद-टीका में कन्या की इच्छा से वाम नासापुट में डालने का उल्लेख है। टीकाकार डल्हण ने पुष्य-फल-युक्त लक्ष्मणा को शरद् ऋतु में शनिवार की सन्ध्याकाल के पुष्य योग में मन्त्र पूर्वक उद्धृत करके, उसके (लक्ष्मणा के) चतुर्भाग (चौथाई भाग) खदिर के कीलकों (मूलों) को दूसरे किसी भी दिन हस्त मूल या पुष्य नक्षत्र में सूर्यास्त के बाद मन्त्र-पूर्वक खोदकर समान वर्ण के बछड़े वाली गौ के क्षीर के साथ नस्य-प्रयोग का विधान बताया है। गर्भ-प्राप्ति के लिए ग्राम्यधर्म-सेवन

१. धान्यमाषशब्देन व्रीहिमाषं, ग्राहयन्ति, सुवर्णमाषं चव्यावर्तयन्ति। (च० सं० शा० ८/१९ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

के पूर्व इसके प्रयोग का वर्णन करते हुए लिखा है कि औषधि के नासापुट में सेवन के पश्चात् क्षीर एवं ओदन के भोजन का क्रम पाँच दिन तक कर पश्चात् ग्राम्यधर्म का सेवन करे[1]। सम्भवतः इस विधि से गर्भ की प्राप्ति होकर पुत्र ही उत्पन्न होता हो।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने चरक एवं सुश्रुत-वर्णित औषधियों का ही वर्णन किया है यथा-लक्ष्मणा, वटशुङ्ग, सहदेवा एवं विश्वदेवा आदि अन्य औषधियों को क्षीर (गोदुग्ध) के साथ पीसकर (प्राप्त रस को) स्वयं ही पुत्र की इच्छा से दक्षिण नासापुट में एवं पुत्री की इच्छा से बायें नासापुट में तीन चार बूँद डाले, इसे थूके नहीं। पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी गई श्वेतबृहती-मूल-कल्क-स्वरस का नस्य ले। इसी प्रकार उत्पल पत्र, कुमुद पत्र, लक्ष्मणा मूल या आठ वटशुङ्गों का नस्य ले। श्वेत माला एवं वस्त्र धारण की हुई स्त्री (गर्भिणी स्त्री) पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी गई लक्ष्मणा के मूल-कल्क को उदुम्बर-फल की मात्रा में लेकर पुत्र की उत्पत्ति एवं व्यक्तावस्था में पुत्र-गर्भ की स्थिति एवं रक्षा के लिए[2] दुग्ध (गोदुग्ध) के साथ पीये। इसी प्रकार गौरदण्ड अपामार्ग, जीवक, ऋषभक, शङ्खपुष्पी, मध्यदण्डा (अध्यण्डा या कपिकच्छू[3]) सहचर, नग्नजीव, अग्निजिह्व अथवा आठ वटशुङ्गों का प्रयोग करे। पिष्टी (शालि पिष्टी के पिण्ड) के पकाए जाते समय निकलने वाले धूम्र तथा उसके रस को देहली में स्थित होकर (बैठकर) पूर्व की ही भाँति प्रयोग करे तथा अन्य जो भी ब्राह्मण या वृद्ध स्त्रियाँ बताएँ वह करे।

अष्टाङ्गहृदयकार ने महर्षि चरक सदृश ही अधिकांश वर्णन दिया है। स्वर्ण, रजत या लौह की बनी पुरुषाकृति को अग्नि वर्ण करके (अग्नि में तापकर लाल करके) क्षीर में बुझाकर उस क्षीर की अंजली मात्रा का पान करे। गौरदण्ड अपामार्ग, जीवक, ऋषभक, सैयंक में से एक, दो, तीन या सभी को लेकर पुष्य नक्षत्र में जल से पीवे। श्वेत कण्टकारी-मूल को दुग्ध में पीसकर पुत्र की इच्छा से दक्षिण नासा पुट में या पुत्री की इच्छा से वाम नासापुट में स्वयं ही आसिञ्चन करे (तीन या चार बूँद डाले)। क्षीर के साथ लक्ष्मणा-मूल को पीसकर नासा या मुख से पीने[4] से पुत्र की उत्पत्ति होती है एवं गर्भ भी स्थिर होता है। इसी भाँति आठ वटशुङ्ग का प्रयोग भी किया जाता है। यह आठ की संख्या प्रभाव की अचिन्त्यता के कारण दी गई है[5]। जीवनीयगण की औषधियों का बाह्य (स्नानोद्वर्तनादि) तथा आभ्यन्तर (आहार-पानादि) उपयोग करना चाहिए।

भावमिश्र ने निम्न योगों का वर्णन दिया है[6]।

१. ····लक्ष्मणा····; तां च शरत्काले पुष्यफलोपेतां दृष्ट्वा शनिदिने सन्ध्यायां तस्याश्चतुर्भागेषु खदिरकीलकात्रिखायापरेषु-र्हस्तमूलपृथ्वीर्योगं गते दिवाकरे मन्त्रवद् गृहीत्वा समानवर्णवत्साया गोः क्षीरेण यथाविधि नस्यं दद्यात्।·····॥ चकारात् लब्धगर्भायाः पूर्वमेव लक्ष्मणादीनां नस्यदानं सहस्राभिहुतं गर्भग्रहणाय पश्चाद् ग्राम्यधर्मसेवनमिति। तदुक्तं तत्रान्तरे-"पूर्वमौषधं सहस्राभिहुतं कृत्वा माङ्गल्यदेशे गोः क्षीरेण पेषयित्वा तस्मात् त्रीन बिन्दून् दक्षिणे नासापुटे दद्यात्, न निष्ठिवेत् तान् कण्ठप्राप्तान्, मा पञ्चदिनानि पयसोदनमश्नीयात् तदूर्ध्वं ग्राम्यधर्मसेवनम्॥ (सु० सं० शा० २/३२ की डल्ह० टी०)

२. तत्कालमपि पीतो व्यक्तस्यापि पुत्रस्य परिस्थापनं रक्षामिधानां स्थितिं करोति। (अ० सं० शा० १/६१ की इन्दु टी०)

३. पाठभेद में अध्यण्डा (इन्दु टीका पुस्तक) का प्रयोग है। यह द्रव्य अध्यण्डा या कपिकच्छू होता है।
····· शङ्खपुष्पीमध्यण्डां सहचरन्नग्नजितमग्निजिह्वामष्टौ वा वटशृङ्गानि। शालिपिष्टस्य ·····॥
(अ० सं० शा० १/६१ का पाठभेद इन्दु टीका की पुस्तक में।)

४. ····· नासयाऽऽस्येन वा-कदाचित्रासिकया कदाचिदास्येन। ····· प्रभावस्याचिन्त्यत्वादेतत्संख्यावच्छिन्नत्वम्॥
(अ० ह० शा० १/४२ की अरुण० टी०)

५. पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी। पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥
शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम्। पीत्वाऽथो भवलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री॥
पुत्रकमञ्जरिमूलं विष्णुक्रान्तेशलिङ्गिनी सहिता। एतद्भेऽष्टदिनं पीत्वा कन्यां न सर्वथा सूते॥
(भा० प्र० चि० ७०/३० से ३२)

(१) गर्भिणी एक पलाश पत्र को दुग्ध के साथ पीसकर पान करे।

(२) शूकरशिम्बी मूल या दधिफल (कपित्थ) के गूदे को अथवा भवलिङ्गी (ईश्वरलिङ्गी) के बीजों को दुग्ध के साथ पीसकर पान करने से स्त्री (कभी भी) कन्या उत्पन्न नहीं करती अर्थात् पुत्र ही उत्पन्न करती है।

(३) पुत्रमंजरी (पतंजिया) की मूल एवं विष्णुकान्ता की मूल को ईश्वरलिङ्गी (शिवलिङ्गी के बीजों) के साथ गर्भावस्था में आठ दिन पीने से कन्या कभी भी नहीं उत्पन्न हो सकती अर्थात् पुत्र ही उत्पन्न होता है।

योगरत्नाकरकार ने योनिव्यापच्चिकित्सा अध्याय के अन्त में कतिपय योगों का उल्लेख किया है जिनमें अधिकांशतः तो गर्भस्थापक अर्थात् बन्ध्यत्व की चिकित्सा के लिए वर्णित प्रतीत होते हैं। जिनका प्रभाव स्पष्ट रूप से पुत्रोत्पादक ही लिखा हुआ है वे निम्न हैं[1]।

(१) भाव प्रकाश वर्णित प्रथम दो योग।

(२) श्वेतबृहतीमूल को क्षीर के साथ पीसकर पुत्रेच्छा से दक्षिण नासापुट से एवं कन्या की इच्छा से वाम नासापुट से पान।

1) Two intact, healthy leaf-buds *(śuṅga)* plucked from two eastern or northern branches of a banyan tree grown in a cowshed, alongwith two perfect (possessing good *rasa, vīrya* etc.) seeds of *dhānya māṣa* (a kind of kindney bean) and *gaura sarṣapa* (yellow mustard) should be taken with curd during *puṣya nakṣatra.*

2) Similarly the paste of *jīvaka, ṛṣabhaka, apāmārga* and *sahacara* etc. (plants grown in a cowshed) collectively, individually or few of them should be taken (during *puṣya nakṣatra*) after treating (cooking or mixing) these with milk.

3) *Kudyakīṭa* (an insect making abode with wet soil to seal other small insects and laying its eggs) and fish mixed with one *añjali* (handful) of water should be taken during *puṣya nakṣatra.*

4) An *aṇupramāṇa* (very small) red hot man shaped structure made with gold, silver or iron, should be dipped in handful of curd, milk or water and total quantity should be taken during *puṣya nakṣatra.*

5) The woman should inhale the steam of *sālī piṣṭī* (dough of rice or pestled rice) being cooked during *puṣya nakṣatra.* The same dough should be squeezed and the juice collected in swab. The pregnant woman keeping the head on a doorsill should instill herself few drops from this swab in her right nostril.

6) Other measures suggested by *brāhmaṇas,* senior persons and ladies should be followed.

7) The drug *lakṣmaṇā, vaṭaśuṅga* (leafbuds), *sahadevā, viśwadevā* etc. should be pestled with cow's milk, and 3-4 drops of expressed juice should be instilled in right nostril by the woman desirous of a son; she should not spit it.

8) Observing flowers and fruits on the *lakṣamaṇā* plant during *śarada ṛtu* (early winter

१. पत्रमेकं ····· पीत्वाऽथोभयलिङ्गीबीजं ·····॥ (भा० प्र० सदृश ही)
क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिबेत्। पुत्रार्थं दक्षिणा नासा बामया कन्यकार्थिनी॥ (यो० र० योनिव्यापच्चिकित्सा।)

Scanned with CamScanner

season), it should be uprooted during *puṣyayoga* of saturday's evening with enchantation of *mantras*. On some other day, after sunset during *hastamūla* or *puṣya nakṣatra* the *khadirakīlaka* (roots of *khadira*) should be dug enchanting *mantra* in 1/4 quantity of *lakṣmaṇā*. Both these should be pestled with milk of cow having calf of similar colour, and a few drops of it should be instilled in right nostril.

9) The woman desirous of a son or daughter should instil herself in right or left nostril respectively, the juice expressed from pestled root of *śwetabṛhatī* uprooted during *puṣya nakṣatra*. Similarly leaves of *utpala* and *kumuda*, root of *lakṣmaṇā* and eight *vaṭaśuṅga* should be used.

10) The woman wearing white garland and garments should take pestled root of *lakṣmaṇā* uprooted during *puṣya nakṣatra*, in the quantity indentical to fruit of *udumbara*, with cow's milk for getting a male child. Similarly *gauradaṇḍa apāmārga, jīwaka, ṛṣabhaka, śaṅkhapuṣpī, adhyaṇḍā* or *kapikacchū, sahacara, nagnajīwa, agnijihwā* and eight leaf-buds of *vaṭa* should be used individually or two or three together.

11) The root of *lakṣmaṇā* pestled with cow's milk should be taken orally or through nostril for achievement of son, similarly leaf-buds of *vaṭa* should also be used.

12) The drugs of *jīwanīya* group should be used externally or orally.

13) One leaf of *palāśa* should be taken orally with milk.

14) The woman using root of *śūkaraśimbī* or pulp of *dadhiphala (kapittha fruit)* or seeds of *īśwaraliṅgī* pestled with milk never delivers a girl but always a boy.

15) Oral use of root of *putramañjarī* and *viṣṇukrāntā* and seeds of *īśwaraliṅgī* for eight days during pregnancy never results in birth of a girl or always a son is born.

Note: preparation No. 8 is also prescribed for achievment of conception. After instilling it into nostril the woman should take rice and milk for five days, then have marital relations. Preparation No. 10 and 11 taken after conspicuousness of all body parts of embryo help in maintenance of pregnancy. Number of leaf-buds of *vaṭa* as eight is given as this number has inconceivable activity.

❑

अध्याय ५

CHAPTER V

गर्भिणी-चिह्न एवं गर्भिणी-परिचर्या

(SIGNS / SYMPTOMS OF PREGNANCY AND ANTENATAL CARE)

गर्भिणी-लक्षण (Signs / symptoms of pregnancy)

(अ) सद्योगृहीत गर्भा के लक्षण (Signs / symptoms of sadyograhīta garbgā or immediately conceived woman)

निष्ठीविका गौरवमङ्गसादस्तन्द्राप्रहर्षौ हृदये व्यथा च।
तृप्तिश्च बीजग्रहणं च योन्यां गर्भस्य सद्योनुगतस्य लिङ्गम् ॥ (च० सं० शा० २/२३)

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिङ्गानि–श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः। (सु० सं० शा० ३/१३)

अथ नार्याः सद्योगृहीतगर्भायाश्च लिङ्गं योन्या बीजग्रहणं तृप्तिर्गरिमा स्फुरणं शुक्रार्तवयोरननुबन्धश्च। तथा प्रहर्षो हल्लासस्तन्द्राऽङ्गसादः प्रसेको हृदयव्यथा ग्लानिः पिपासा च ॥ (अ० सं० शा० २/८)

लिङ्गं तु सद्योगर्भाया योन्या बीजस्य सङ्ग्रहः ॥ ३७॥
तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रास्त्राऽननुबन्धनम् ॥
हृदयस्पन्दनं तन्द्रा तृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम् ॥ ३८॥ (अ० ह० शा० १/३७, ३८)

निष्ठीवन (बार बार थूकना), गौरव (शरीर का भारीपन) अंगों में शैथिल्य, तन्द्रा, प्रहर्ष, हृदय-प्रदेश में वेदना, तृप्ति, योनि द्वारा बीज-ग्रहण ये सभी सद्योनुगत गर्भ या सद्योगृहीत गर्भा के लक्षण हैं।

महर्षि सुश्रुत ने सद्योगृहीत गर्भा के ये लक्षण लिखे हैं यथा–श्रम या थकान की अनुभूति, ग्लानि, तृष्णा, सक्थियों में शैथिल्य, शुक्र एवं शोणित का अवबन्ध तथा योनि-स्फुरण।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने महर्षि चरक एवं सुश्रुत दोनों ही आचार्यों के वर्णनों का सामंजस्य कर दिया है इनके मतानुसार योनि में बीज-ग्रहण, तृप्ति, गरिमा या भारोपन एवं स्फुरण (अंगों में), शुक्रार्तव का अननुबंध या रुकावट, प्रहर्ष, हल्लास या जी मिचलना, तन्द्रा, अंग-शैथिल्य, प्रसेक या मुख से थूक आना, हृदय-प्रदेश में व्यथा, ग्लानि तथा पिपासा सद्योग्रहीत गर्भा के लक्षण हैं। टीकाकार इन्दु ने अननुबन्ध से शुक्र एवं आर्तव का परस्पर अननुबन्ध अर्थात् गर्भ का विदारणादि से प्रतिबन्ध होना माना है[१]।

अष्टाङ्गहृदयकार के मतानुसार सद्योगृहीतगर्भा के लक्षण योनि में बीज-संग्रह, तृप्ति, गुरुत्व, स्फुरण, शुक्रार्तव का अननुबन्ध या अप्रवर्तन, हृदय-स्पन्दन, तन्द्रा, प्यास, ग्लानि एवं लोमहर्ष आदि हैं।

१. गुरुत्वमङ्गस्य तस्यैव स्फुरणं चालनम् , शुक्रस्यार्तवस्य वा परस्परमन्योनानुबन्धनम्। अननुबन्धनं गर्भविदारणादिना प्रतिबन्धः॥ (अ० सं० शा० २/८ की इन्दु टी०)

Scanned with CamScanner

आचार्य भावमिश्र ने भी महर्षि सुश्रुत सदृश ही वर्णन दिया है[1]।

Caraka has mentioned spitting (repeated), heaviness, malaise *(aṅgasāda)*, sleepiness, horripilation, pain in cardiac region, contentment, seizure of seed in *yoni* etc. sings / symptoms of recently conceived woman.

Suśruta has mentioned fatigue, langnor, thirst (excessive), lassitude of thighs, retention of *śukra* and *śoṇita* (in *yoni* or absence of menstrual and coital discharges) and quivering in vagina etc.

Both Vāgbhatas and Bhāvamiśra have also given almost above signs / symptoms, besides Vāgbhaṭa I has included nausea and excessive salivation in the list. Indu has explained that association of *śukra* and *śoṇita* with each other prevents destruction of embryo.

(आ) व्यक्तगर्भा के लक्षण (Sign / symptoms of vyakta garbhā or after conspicuousness of body parts of embryo)

सद्योगृहीत गर्भा के लक्षणों के वर्णन के उपरांत महर्षि चरक एवं सुश्रुत ने गर्भिणी के लक्षणों का वर्णन किया है, जिसका स्पष्ट अर्थ सद्योगृहीत गर्भा की स्थिति के बाद के लक्षणों का द्योतक हो जाता है। महर्षि चरक ने इन लक्षणों का वर्णन दौहद-ज्ञान के लिए एवं उपचार आदि की सुविधा के लिए ही किया है[2]। टीकाकार चक्रपाणि ने इस काल का प्रारम्भ तृतीय मास से माना है[3]। टीकाकार डल्हण ने उत्तरकालीन गर्भा के लक्षण लिखकर सम्भवतः व्यक्तगर्भा की स्थिति का ही निर्देश किया[4] है। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने व्यक्तगर्भा के लक्षण लिखकर ही वर्णन किया है। टीकाकार इन्दु ने व्यक्तगर्भा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि जो गर्भ स्फुटित हो, परन्तु अति सम्पूर्ण न हो, ऐसी गर्भवती के लक्षण व्यक्तगर्भा के लक्षण हैं[5]।

आचार्यों द्वारा वर्णन निम्न है :-

तद्यथा – **आर्तवादर्शनमास्यसंस्रवणमन्नाभिलाषच्छर्दिररोचकोऽम्लकामता च विशेषेण श्रद्धाप्रणयनमुच्चावचेषु भावेषु गुरुगात्रत्वं चक्षुषोग्लानिः स्तनयोः स्तन्यमोष्ठ्योः स्तनमण्डलयोश्च काष्ण्यमत्यर्थं श्वयथुः पादयोरीषल्लेमराज्युद्गमो योन्याश्चाटालत्वमिति गर्भे पर्यागते रूपाणि भवन्ति ॥** (च० सं० शा० ४/१६)

स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा। अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः ॥
अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात्। प्रेसकः सदनं चापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥
(सु० सं० शा० ३/१४-१५)

क्रमेण तु व्यक्तगर्भायाः कुक्षिमात्रगौरवं क्षामनेत्रस्वरताऽक्षिरोमसंलुलनं निद्रा जृम्भणं मूर्च्छा छर्दिररुचिः पादशोफोऽम्लेऽभिलाषस्तेषु तेषु चोच्चावचेषु भावेष्विति ॥ ९॥

१. शुक्रशोणितयोर्योनिरस्रावोऽथ श्रमोद्भवः। सक्थिसादः पिपासा च ग्लानिः स्मृतिर्भंगे भवेत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/४२)

२. तस्या गर्भोपपत्तेर्द्वैहृदव्यस्य च विज्ञानार्थं लिङ्गानि समासेनोपदेक्ष्यामः। उपचारसाधनं ह्यस्य ज्ञाने, ज्ञानं च लिङ्गतः, तस्मादिष्टो लिङ्गोपदेशः। (च० सं० शा० ४/१६)

३. तृतीयमासयुक्तानि तु द्वैहृदव्यस्य च लिङ्गानि भवन्ति॥ (च० सं० शा० ४/१६ की चक्र० टी०)

४. उत्तरकालीनं गृहीतगर्भाया लक्षणमाह। (सु० सं० शा० ३/१४-१५ की डल्हण० टी०)

५. व्यक्तगर्भाया लिङ्गम्, व्यक्तः स्फुटो नातिसम्पूर्णो गर्भो यस्याः। (अ० सं० शा० २/९ की इन्दु टी०)

..... **पीनकपोलपयोधरता कृष्णौष्ठ चूचुकत्वं च ॥ ११॥**
यथा यथा च गर्भो वृद्धिमाप्नोति तथा तथा भाराहाररसापचाराच्च स्त्रिया बलक्षयः ॥ ५९॥
(अ० सं० शा० २/९, ११ एवं ५९)

..... **तत्र व्यक्तस्य लक्षणम्॥**
क्षामता गरिमा कुक्षेर्मूर्च्छाच्छर्दिररोचकः। जृम्भा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम्॥
अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ। पादशोफो विदाहोऽन्ये श्रद्धाश्च विविधात्मिकाः॥
(अ० ह० शा० १/५० से ५२)

आर्तवादर्शन, आस्य-संस्रवण या मुख से बार बार स्राव होना, अन्न की अनिच्छा, छर्दि, अरोचक, अम्लकामता या अम्ल पदार्थ खाने की इच्छा, उच्च एवं नीच भावों की बार बार आकांक्षा (आहार, विहार में कभी उच्च या उत्तम वस्तुओं में कभी नीच या निम्न गुण वाली वस्तुओं में आसक्ति), शरीर का भारीपन, आँखों में ग्लानि या भारीपन, स्तनों में स्तन्य की उत्पत्ति, ओष्ठों एवं स्तनमण्डलों में अत्यधिक कालापन, पैरों में ईषत् शोथ, रोमराजी की उत्पत्ति तथा योनि का चाटालत्व (विवृतत्व)[1] आदि सभी लक्षण गर्भ की प्राप्ति के बाद हो जाते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने गर्भिणी के लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि स्तनों के मुख में कालापन तथा रोमराजी की उत्पत्ति हो जाती है, स्त्री विशेषकर आँखों की पलकें बार बार बन्द करती है। वह बिना कारण ही वमन करती है, शुभ गन्धों से भी उद्विग्न होती है तथा प्रसेक (मुख से थूक आना) एवं थकावट ये गर्भिणी स्त्री के लक्षण हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार के मतानुसार व्यक्तगर्भा में क्रमशः कुक्षि का भारीपन, नेत्र एवं स्वर की क्षीणता (नेत्र का भीतर धँस जाना), अक्षिरोमों का संलुलन अर्थात् अस्तव्यस्तता, निद्रा, जृम्भा, मूर्च्छा, छर्दि, अरुचि, पादशोफ, अम्लाकांक्षा तथा उच्च एवं नीच भावों की (उनम या हीन आहार विहारादि की) आकांक्षा आदि लक्षण होते हैं। पाठभेद में अक्षिरोम के स्थान में योनिरोम शब्द का प्रयोग मिलता है[2]। टीकाकार इन्दु ने कुक्षि के साथ ही गात्र के भी क्रमशः गौरव का वर्णन किया है एवं संलुलन का अर्थ व्यालोलता किया है,[3] जिससे अस्तव्यस्तता के स्थान में स्फुरण अर्थ हो जाता है।

उसके कपोल एवं स्तन पीन (मांसल) तथा ओष्ठ एवं चूचुक कृष्ण हो जाते हैं।

जैसे जैसे गर्भ वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे वैसे गर्भ के भार को वहन करने एवं गर्भ के द्वारा आहार रस के ले लिए जाने से स्त्री का बल क्षीण होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी अष्टांगसंग्रह के सदृश ही गर्भ की व्यक्तावस्था के निम्न लक्षण लिखे है:-शरीर की कृशता, कुक्षि का भारीपन, मूर्च्छा, छर्दि, अरोचक, जृम्भा, प्रसेक, थकावट, रोमराजी की उत्पत्ति, अम्लाकांक्षा; स्तनों की पुष्टता तथा स्तन्योत्पत्ति, चूचुक का कृष्ण होना, पैरों में शोफ, अन्न का विदाह तथा अनेकों प्रकार की इच्छायें होना आदि। अन्य लोग अन्न का विदाह न लेकर शरीर का विदाह वर्णन करते हैं।[4]

आचार्य भावमिश्र जी ने भी शब्दभेद से महर्षि सुश्रुत के सदृश ही वर्णन दिया है[5]।

१. चाटालत्व विवृतत्वम्। (च० सं० शा० ४/१६ की चक्र० टी०)

२. क्षामनेत्रस्वरता योनिरोमसंलुलनम् .....। (अ० सं० शा० २/९ का इन्दुटीका पुस्तक में पाठभेद।)

३. क्रमेणैव कुक्षिगात्रादि गौरवादि लक्षणम्, क्रमेणेति यथा यथा प्रवर्द्धते तथा तथा कुक्षि गौरवादयो भवन्ति ··· ··· ···योनिरोम्णां वा संलुलनम् व्यालोलता॥ (अ० सं० शा० २/९ की इन्दु टी०)

४. विदाहोऽन्ये इति। अन्ये आचार्या विदाहो देहे भवतीत्याहुः॥ (अ० ह० शा० १/५२ की अरुण० टी०)

५. स्तनयोर्मुखकाष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा। अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः॥
छर्दयेत्पथ्यभुक्त्वापि गन्धादुद्विजते शुभात्। प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/४३,४४)

Scanned with CamScanner

After describing the features of *sadyograhīta garbhā* Caraka and Suśruta have mentioned the word "*garbhiṇī liṅga*" or the signs/symptoms of a pregnant woman. Caraka has clarified that the description is being given for recognition and management of *dohṛda*. Cakrapāṇi has included third month onwards period under this category. Vāgbhaṭa I has used the term *vyakta-garbhā* to which Indu has explained that these are the signs / symptoms of a pregnant woman who possesses the embryo of conspicuous but under developed body parts.

The signs / symptoms are as follows : amenorrhoea, excessive salivation, dislike for food, vomiting, anorexia, craving for sour substances, alternate desires of high or low articles (the eatables of high or low qualities), heaviness of body, languor of eyes, milk secretion in breasts, blackening of lips and areola, slight edema of feet, development of *romarājī* (linea nigra) and dilatation of vagina are the features mentioned by Caraka.

Suśruta and Bhāvamiśra besides mentioning blackening of areola and development of linea nigra have included repeated blinking of eye lids, vomiting without apparent cause, aversion from good smells, salivation and tiredness etc.

Vāgbhaṭa I has written heaviness of abdomen, depression of voice and eyes, disordered eye-lashes or quivering of eye lashes or pubic hair (Indu), sleepiness, yawning, swooning, vomiting, anorexia, edema of feet, desire for sour or high or low articles etc. Her cheeks and breasts become corpulent and lips and nipples become black. Increase in weight of embryo causes diversion of her nutrients thus energy also decreases.

Vāgbhaṭa II has given the signs/symptoms described by Caraka and Vāgbhaṭa I with omission of a few and addition of emaciation, indigestion, burning sensation of whole body and expression of various desires in the list.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि सभी आचार्यों ने सामान्यतः दूसरे मास से चौथे या पाँचवें मास में ही उपस्थित होने वाले लक्षणों का वर्णन किया है। महर्षि चरक द्वारा वर्णित अनार्तव को अन्य आचार्यों ने सद्योगृहीत-गर्भा के लक्षणों के अन्तर्गत आर्तव-अननुबन्ध शब्द से लिखा है जो अधिक युक्तिसंगत है। वाग्भट द्वारा शरीर की कृशता का वर्णन सम्भवतः दूसरे मास की स्थिति का है क्योंकि इस मास में स्त्री का भार कुछ घटता है। प्रसेक, छर्दि आदि लक्षण सामान्यतः तीसरे मास तक समाप्त हो जाते हैं। सभी आचार्यों ने रोमराजी की उत्पत्ति का वर्णन दिया है, वाग्भट ने इसकी उत्पत्ति का कारण रक्त की स्थिति एवं टीकाकार इन्दु ने इसका स्थान नाभि के नीचे बताया है[1]। वास्तव में गर्भावस्था में किसी भी प्रकार के रोमों की उत्पत्ति नहीं होती, परन्तु चौथे से छठवें महीने में या उसके बाद गर्भवती स्त्रियों की नाभि के नीचे रंजक द्रव्यों के अधिक एकत्र हो जाने के कारण एक रेखा लीनिआँ निग्रा[2] (श्यामराजी) बनती है, सम्भवतः आचार्यों ने इसे ही रोमराजी वर्णित किया[3]। पैरों में शोफ एवं मूर्च्छा ये दोनों लक्षण सामान्यतया देखने को नहीं मिलते।

१. (अ) स्थिते तु रक्ते रोमराजी प्रादुर्भवति। (अ० सं० शा० २/१०)
(आ) तस्मिन्नेव रक्ते स्थिते कोष्ठ एवावरुद्धे स्त्रिया नाभेरधो रोमराजिः प्रादुर्भवति॥ (अ० सं० शा० २/१० की इन्दु टी०)

२. मैन्युअल ऑव् ऑब्सटेट्रिक्स (हालैण्ड एण्ड ब्रिउज) (पृष्ठ २२)

३. यह सम्भव है कि कालचक्र के कारण किसी प्रकार "श्यामराजी" शब्द के स्थान में "रोमराजी" शब्द आ गया हो एवं बाद में मुद्रित पुस्तकों में वह यूं ही चलता रहा। स्थिति के आधार पर "श्यामराजी" शब्द अधिक युक्तिसंगत है।

ऐसा हो सकता है कि आचार्यों ने गर्भावस्था के अन्तिम मासों में भार के कारण उत्पन्न ईषत् पादशोफ का ही वर्णन किया हो। गर्भावस्था में कभी कभी विशेषकर दीर्घकालीन उत्तान-शयन में रक्तचाप अचानक ही घट जाता है एवं स्त्री को घबड़ाहट, स्वेदानुभूति आदि लक्षण होने लगते हैं, जिसमें यद्यपि स्त्री पूर्णरूपेण मूर्छित तो नहीं होती परन्तु मूर्च्छा सी आने लगती है[1] जो अपने आप ही स्थिति-परिवर्तन से ठीक हो जाती है, सम्भवतः इसी स्थिति को आचार्यों ने मूर्च्छा शब्द से वर्णित किया हो।

Above description seems to be signs/symptoms of pregnancy from second to fifth month. Amenorrhoea described by Caraka has been incorporated by others under *sadyograhīta garbhā* which is more logical. Slight decrease in weight during second month of pregnancy has probably been indicated by Vāgbhaṭa as emaciation. Nausea, vomiting etc. disappear by third month. The development of *romarājī* (line of hair) below umbilicus due to accumulation of *rakta* is difficult to explain, since no extra hair grow during pregnancy. Probably linea nigra developing between 4th to 6th month has been referred as *romarājī*. Edema and syncope are not physiological, however, slight edema during late pregnancy and syncopal attacks due to transitory hypotension in prolonged supine or erect position might have been referred as normal signs.

(इ) गर्भिणी के मासानुमासिक लक्षण (Signs/symptoms during different gestational periods)

महर्षि चरक एवं काश्यप ने मासानुमासिक गर्भ-वृद्धि के साथ होने वाले चतुर्थ से सप्तम मास में गर्भिणी के परिवर्तनों का भी उल्लेख किया है जो निम्न है।

Caraka and Kāśyapa have described following signs/symptoms of woman alongwith the fetal development from fourth to seventh month of gestational period.

(१) चतुर्थ मास में गर्भिणी का स्वरूप (Signs/symptoms in fourth month)

तस्मात्तदा गर्भिणी गुरुगात्रत्वमधिकमापद्यते विशेषेण॥ (च० सं० शा० ४/२०)
गुरुगात्रत्वमधिकं गर्भिण्यास्तत्र जायते॥ (का० सं० शा० २/६)

इसलिए (गर्भ में स्थिरता आने के कारण) इस मास में गर्भिणी के शरीर में विशेष गुरुता आ जाती है।

महर्षि काश्यप ने भी (स्थिरता के कारण) गर्भिणी में अत्यधिक गुरुगात्रता का वर्णन दिया है।

Due to stability in fetus the woman feels more heaviness in the body.

(२) पञ्चम मास में गर्भिणी का स्वरूप (Signs/symptoms in fifth month)

तस्मात्तदा गर्भिणी काश्यमापद्यते विशेषेण। (च० सं० शा० ४/२१)
गर्भिणी पञ्चमेमासि तस्मात् काश्यैन युज्यते॥ (का० सं० शा० २/७)

अतः (गर्भ में मांसशोणितोपचय के कारण) गर्भिणी इस मास में विशेष कृश हो जाती है। इसका स्पष्टीकारण टीकाकार चक्रपाणि ने दिया है कि गर्भ के मांस आदि के पोषण के कारण क्षीण आहार-रस माता की धातुओं का सम्यक् पोषण नहीं करता[2]।

१. प्रिंसपल ऑव् गाइनिकॉलॅजि (जैफकॉट) (पृष्ठ ११२)

२. यतो गर्भ मांसादिपोषणेनैव क्षीण आहाररसो न मातुर्मांसादि सम्यक् पोषयति॥ (च० सं० शा० ४/२१ की चक्र० टी०)

Scanned with CamScanner

महर्षि काश्यप ने भी लिखा है कि इस मास में गर्भिणी कृश हो जाती है।

The woman becomes emaciated due to lack of nourishment of maternal *dhātus* as the *rasa* is driven to nourish more and more the flesh and blood of fetus.

(३) षष्ठ मास में गर्भिणी का स्वरूप (Signs / symptoms in sixth month)

तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिमापद्यते विशेषेण। (च० शा० ४/२२)
.....षष्ठे मातुः श्रमोऽधिकः॥ (का० सं० शा० २/७)

इसलिए (गर्भ में बल-वर्णोपचय के कारण) इस मास में गर्भिणी को बल और वर्ण की विशेष हानि होती है।

महर्षि काश्यप ने इस मास में गर्भिणी को अधिक श्रम होने का वर्णन दिया है।

As during this month the fetus derives relatively more strength and complexion, hence the pregnant woman suffers loss of strength and complexion, she feels more tiredness.

(४) सप्तम मास में गर्भिणी का स्वरूप (Signs / symptoms in seventh month)

तस्मात्तदा गर्भिणी सर्वाकारैः क्लान्ततमा भवति। (च० शा० ४/२३)
सप्तमेमासि तस्माच्च नित्यक्लान्ताऽत्र गर्भिणी ॥ (का० सं० शा० २/८)

अतः (गर्भ की सर्वाङ्गीण पुष्टि होने के कारण पूर्व मासों की अपेक्षा) गर्भिणी इस मास में सभी प्रकार से अर्थात् मांस, शोणित आदि सभी में क्लान्ततम या हीनतम होती है[१]।

महर्षि काश्यप ने भी इस मास में गर्भिणी के क्लान्ततम होने का वर्णन दिया है।

As the fetus attains over all maturity in this months, the woman feels excessively exhausted or has relatively more loss of flesh and blood.

विमर्श (Comments)

यदि गर्भिणी स्त्री का आहार-विहार सामान्य हो, वह व्याधि रहित रहे, तो चतुर्थ मास के उपरान्त सप्तम मास तक उसके शारीरिक भार में काफी वृद्धि होती है अतः गर्भिणी में कृशता का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सम्भव है कि त्वचा में रंजक द्रव्यों के एकत्रीकरण के कारण उत्पन्न धब्बे विशेषकर मुख के धब्बे ऐसा आभास प्रदान करें कि गर्भिणी के वर्ण का ह्रास हुआ है परन्तु वास्तव में ऐसा प्रत्येक गर्भिणी में नहीं देखा जाता। वर्धित होते हुए गर्भ के कारण उत्पन्न उदरगुहान्तर-भार-वृद्धि से स्त्री की कार्य-शक्ति का ह्रास होता है जिसे ही बल-ह्रास शब्द से एवं जलीय-अंश की वृद्धि के कारण उत्पन्न रक्त की द्रवता को रक्त के ह्रास शब्द से सम्भवतः आचार्यों ने वर्णित किया है।

उपर्युक्त वर्णन का निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है।

If the diet and health of the pregnant woman is normal, she gains considerable weight from fourth to seventh month, hence the question of emaciation does not arise. Face-mask or deposition of pigments in other parts of the body might have been referred as loss of complexion. The decrease in the working capacity due to increased intra-abdominal pressure and reduction in hemoglobin concentration due to hydremia might have been referred as loss of strength and blood respectively.

१. सर्वाकारैरिति सर्वमांसशोणितादिजन्यरूपैः। क्लान्ततमेति हीनतमा॥ (च० सं० शा० ४/२३ की चक्र० टी०)

(ई) गर्भ के लिङ्ग-द्योतक गर्भिणी-लक्षण (The signs / symptoms of the mother denoting fetal sex)

सव्याङ्गचेष्टा पुरुषार्थिनी स्त्री स्त्रीस्वप्नपानाशनशीलचेष्टा।
सव्यात्तगर्भा न च वृत्तगर्भा सव्यप्रदुग्धा स्त्रियमेव सूते॥
पुत्रं त्वतो लिङ्गविपर्ययेण व्यामिश्रलिङ्गा प्रकृतिं तृतीयाम्॥ (च० सं० शा० २/२४, २५)

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति, दक्षिणकुक्षिमहत्वं च, पूर्वं च दक्षिणं सक्थ्युत्कर्षति, बाहुल्याच्च पुंनामधेयेषु द्रव्येषु दौर्हृदमभिध्यायति, स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुंनामान्येव, प्रसन्नमुखवर्णा च भवति, तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यतीति; तद्विपर्यये कन्याम्; यस्याः पार्श्वद्वयमवनतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहितलक्षणं च तस्या नपुंसकमिति विद्यात्॥ (सु० सं० शा० ३/३४)

तत्र या दक्षिणं पादं पूर्वमभिहरति दक्षिणश्च यस्या बाहुर्बलवांस्तेन च चेष्टते तत्स्तने च प्राक् पयो दृश्यतेऽत्युन्नततत्कुक्षिपरिमण्डलगर्भा पुन्नामदर्शनस्पर्शनप्रश्नदौर्हृदाभिरता पुन्नामधेयांश्च स्वप्नान् पश्यति प्रसन्नमुखवर्णा तीक्ष्णक्षुदूर्ध्व रोमराजिः पुरुषानभिलाषिणी च सा पुत्रं प्रसूते तद्विपर्यये कन्यां सङ्करे च नपुंसकम्। प्रश्नकाले नारी यल्लिङ्गमङ्ग बाह्यद्रव्यं वा परामृशति तल्लिङ्गमस्या गर्भमादिशेत्॥ (अ० सं० शा० २/३६)

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं तत्पार्श्वचेष्टिनी॥६९॥
पुन्नामदौर्हृदप्रश्नरता पुंस्वप्नदर्शिनी। उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले॥७०॥
पुत्रं सूतेऽन्यथा कन्यां या चेच्छति नृसङ्गतिम्। नृत्यवादित्रगान्धर्वगन्धमाल्यप्रिया च या॥७१॥
क्लीबं तत्सङ्करे, तत्र मध्यं कुक्षेः समुन्नतम्॥ ७२॥ (अ० हृ० शा० १)

जो स्त्री सभी चेष्टायें वाम भाग से करती है, पुरुष की आकांक्षा (मैथुन के लिए) रखती है, जो स्वप्न में स्त्रीलिंग पदार्थों को ही देखती है, स्त्रीलिंग (नामधारी) खाद्य तथा पेय पदार्थों की इच्छा रखती है, शील एवं चेष्टा (हाव-भाव तथा आचार आदि) स्त्रियों की तरह करती है, जिसका गर्भ वाम भाग में स्थित हो (कुक्षि के वाम भाग में), जो गोलाकृति न हो (गर्भाशय की आकृति कुछ लम्बाकार हो) तथा जिसके वाम स्तन में प्रथम स्तन्य की उत्पत्ति हो तो वह कन्या का ही प्रसव करती है। इसके विपरीत लक्षण होने पर पुत्र तथा मिश्रित लक्षण होने पर नपुंसक होता है।

महर्षि सुश्रुत ने भी वर्णन किया है कि जिस (गर्भिणी) के दक्षिण स्तन में दुग्ध पहिले दिखाई दे, जिसकी दाहिनी ओर की कुक्षि भारी हो, जो दोहिने पैर को पहिले उठाकर चलती हो, जिसका दौहद अधिकतर पुल्लिंग नाम वाले द्रव्यों में हो; स्वप्न में पद्म, उत्पल, कुमुद, आम्रातक आदि पदार्थों को देखती हो, जिसका मुख-वर्ण प्रसन्न अर्थात् सुन्दर हो तो उसे कहना चाहिए कि वह पुत्र ही उत्पन्न करेगी। इसके विपरीत जिसमें लक्षण हों वह कन्या उत्पन्न करेगी। जिस स्त्री के (उदर के) दोनों पार्श्व अवनत हों, उदर आगे की ओर निकला हुआ हो और पूर्वोक्त (दोनों प्रकार के) लक्षण हों उसका गर्भ नपुंसक समझना चाहिए। टीकाकार डल्हण ने रोमराजी का ऊर्ध्व होना भी पुत्रोत्पत्ति सूचक लक्षण माना है[१]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि जो स्त्री दक्षिण पैर को प्रथम उठाकर चलती है, जिसकी दक्षिण बाहु बलवान है एवं उसी से कार्य करती है, दक्षिण स्तन में ही प्रथम स्तन्य की उत्पत्ति होती है, दक्षिण ओर की ही कुक्षि अति उन्नत हो एवं गर्भ (गर्भाशय) गोलाकर हो, लम्बाकृति न हो, दौहद के समय पुल्लिंग वाले पदार्थों के ही दर्शन, स्पर्शन एवं प्रश्न में आकांक्षा हो, मुख का वर्ण प्रसन्न हो, बुभुक्षा हो, रोमराजी ऊर्ध्व की ओर हो, पुरुष की अभिलाषा (मैथुन) न करने वाली हो, वह पुत्र की ही उत्पत्ति करती है। इसके विपरीत लक्षण होने पर कन्या एवं मिश्रित लक्षण होने पर नपुंसक की उत्पत्ति होती है। प्रश्न करने पर स्त्री जिस लिंग-नामधारक अंग को या बाह्य-द्रव्य को स्पर्श करती है वह उस लिंग के ही गर्भ वाली होती है।

१. प्रसन्नमुखवर्णा चेत्यत्र चकारादूर्ध्वरोमजित्वादीनि ग्राह्याणि॥ (सु० सं० ३/३४ की डल्ह० टी०)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी यही लिखा है कि जिसके दक्षिण स्तन में पहिले दुग्धोत्पत्ति हो, दक्षिण अंगों से चेष्टा में प्रथमता हो, दौहद के बारे में प्रश्न करने पर पुंनाम पदार्थ आकांक्षिणी हो, स्वप्न में पुंलिंग ही पदार्थ देखे, कुक्षि का दाहिना भाग उन्नत हो एवं गर्भ गोलाकृति हो तो वह पुत्र को जन्म देती है अन्यथा विपरीत लक्षण होने पर कन्या का प्रसव होता है। साथ ही जो नरकांक्षिणी हो; नृत्य, वादन, गायन, गन्ध एवं मालाओं आदि में रुचि हो वह भी कन्या ही प्रसवित करती है। दोनों प्रकार के मिश्र लक्षण होने पर तथा कुक्षि का मध्यभाग उन्नत होने पर नपुंसक का प्रसव होता है।

महर्षि काश्यप ने लक्षणाध्याय में योनि की आकृति वर्णित करते हुए लिखा है कि मध्य में निबिड़ योनि कन्या-जन्म के लिए तथा उन्नत, रमणीय एवं मांसल योनि पुत्र-जन्म के लिए होती है (ये लक्षण सामान्य स्त्री की योनि के हैं न कि गर्भिणी स्त्री के)। कुक्षि के दक्षिण भाग के उन्नत होने से पुत्र एवं वाम भाग के उन्नत होने से पुत्री के जन्म का भी उल्लेख है[1]।

महर्षि भेल[2] एवं भावमिश्र[3] ने भी उपर्युक्त वर्णन-सदृश ही केवल शब्दमात्र के अन्तर से वर्णन दिया है।

Caraka opines that the woman whose left body parts are more active, has more sexual desire, dreams or wants to eat, use or have association of articles bearing feminine names, possesses faminine habits and behaviour, whose fetus (uterus) occupies more left situation in the abdomen and is not round in shape and in whom the milk secretion appears first in left breast will deliver a female child. The lady having opposite characters will have a male while mixture a hermaphrodite.

Suśruta has mentioned that the pregnant woman in whom milk secretion appears first in right breast, whose right lateral portion of abdomen is heavy, who walks lifting her right leg first, who desires (to see, touch, eat, live with) the articles having masculine names, who dreams of substances possessing masculine names like *padma, utpala, kumuda* and *āmrātaka* etc., whose face is bright and *romarājī* has upward direction will deliver a male child. Opposite to this will have a female. Whose abdomen is depressed on both sides and projects forward and has above mentioned mixed characters will deliver a hermaphrodite.

Vāgbhaṭa I corroborating the ideas of Suśruta except dreams etc. adds that whose right lateral abdomen is more protuberant and fetus (uterus) is rounded in shape, has better

१. योनिः ·····, मध्यनिबिडा कन्याप्रजननाय, उन्नता रमणीया मांसला पुत्रजन्मने। ····· कुक्षौ ····· दक्षिणोन्नतौ पुत्रजन्मने, वामोन्नतौ विपरीतौ ॥ (का० सं० सू० २८/६)

२. इह खलु (ग)भो(र्भाव)स्थिताद(दु)स्था(त्थापि)तभायतमुदरं भवति। मध्ये नार्यामन्तर्गतायां (वामं) स्थूलमलसंस्थित-सं(समम) वृत्तमच्छिद्रं, पुरुषेऽन्तर्गते (दक्षिणं) वृत्तमुन्नतं, क्लीबेऽन्तर्गते मध्यमुन्नतमुभयोरन्तर्गतयोर्द्वोणि(णी)चो(वो)दरं भवति (मध्य निम्नं)। मातुरुदर(रे)स्त्री(वामे), दक्षिणे पुमान्मध्ये नपुंसकम्। वामपार्श्व ह्रसति नार्यामन्तर्गतार्या, (पुरुषे)दक्षिणमुभे नपुंसके। सव्यं पादं पूर्वं प्रक्रामति सव्येन चाक्ष्णा ध्रुवा च पूर्वं प्रतिकुरुते चेष्टते न(च), सर्वे(व्ये)(न) पार्श्वेन प्रायः शंसते, स्त्रीसंज्ञानेषु च प्रायशो दौहदं कुरुते नार्यामन्तर्गतायाम्, विपर्यये तदतः पुरुषं विभर्तीति विद्यात्॥ (भे० सं० शा० ५/७)

३. दक्षिणाक्षिमहत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने। दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात्प्रसन्नमुखवर्णता ॥ ४६॥
पुंनामध्येयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः। आम्रादिफलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ४७॥
कन्या ·····। पुत्रगर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥ ४८॥
नपुंसकं ·····। उन्नते भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥ ४९॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

appetite and lack of sexual desire will have a male, opposite to this a female and in mixture the hermaphrodite. On being questioned to the articles of what-so-ever gender she names or touches, will have a child of the same sex.

Vāgbhaṭ II has given similar description except that he says the woman having more sexual desire and interest in dance, instruments, songs, scents and garlands etc. will have a female child. Whose abdomen is more protuberant in center and has mixed signs will have a hermaphrodite.

Kāśyapa agreeing with the situation of fetus according to sex says that if *yoni* (vulva) of the woman (non-pregnant) is thick in centre, she will give birth to a female, however if *yoni* is beautiful, protuberant and fatty then she will give birth to male.

Bhela and Bhāvamiśra etc. have given similar description.

विमर्श (Comments)

गर्भ के लिङ्ग के आधार पर पुरुष (मैथुन) एवं भोजनादि अन्य विशिष्ट आकांक्षाओं का स्पष्टीकरण कठिन है। दक्षिण या वाम-कुक्षि-स्थिति प्रत्यक्ष-प्रमाण-सिद्ध है[1]।

It is difficult to give probable explanation for sexual desire or longings etc. depending upon fetal sex, however, abdominal situation of uterus specially in late pregnancy does indicate the sex of the fetus.

(ङ) युग्म गर्भ में गर्भिणी के शारीरिक लक्षण (Signs in twin pregnancy)

यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूयत इति। (सु० सं० शा० ३/३४)
यमौ पार्श्वद्वयोन्नामा कुक्षौ द्रोण्यामिव स्थिते ॥ (अ० ह० शा० १/७२)

जिस स्त्री का उदर मध्य में द्रोणी के सदृश निम्न होता है वह युग्म बच्चों को जन्म देती है। टीकाकार डल्हण ने रोमराजी का निम्न होना भी युग्म गर्भ का एक लक्षण माना है[2]।

अष्टांगहृदयकार ने भी लिखा है कि यमल-गर्भ की स्थिति में कुक्षि दोनों पार्श्व से उन्नत, द्रोणीसदृश मध्य में निम्न होती है।

Whose abdomen is elevated on both the sides and depressed in centre just like a trough will deliver twins is the opinion of Suśruta and Vāgbhaṭa II.

Ḍalhaṇa says that in twin pregnancy *romarājī* has downward direction.

गर्भिणी में होने वाले स्तन-परिवर्तनों का कारण (Cause of breast changes during pregnancy)

शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरावभिप्रतिपद्यते, तस्माद् गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्ति ॥
(सु० सं० शा० ४/२४)

जरायुशेषं चोर्ध्वमसृक् प्रतिपद्यते। तस्मात्पीनकपोलपयोधरता कृष्णौष्ण्यचूचुकत्वं च ॥
(अ० सं० शा० २/११)

१. गर्भिणी-परीक्षा-काल में प्राप्त व्यक्तिगत अनुभव।

२. रोमराजी भवेत्त्रिघ्ना यस्याः सा सूयते यमौ ॥ (सु० सं० शा० ३/३४ की डल्ह० टी०)

Scanned with CamScanner

शेष रक्त (अपरा निर्माण के बाद बचा हुआ आर्तव रूपी रक्त) और ऊपर आकर स्तनों को प्राप्त होता है, जिसके कारण गर्भिणी के स्तन स्थूल या पुष्ट एवं उन्नत हो जाते हैं। टीकाकार डल्हण ने स्तनों की पीनोन्नतता के साथ ही कपोलों की स्वस्थता एवं ओष्ठ तथा चूचुक की कृष्णता का भी यही कारण माना है[१]।

महर्षि वाग्भट ने भी यही लिखा है कि जत्रवु (बनने) से बचा हुआ रक्त ऊपर की ओर पहुँच जाता है, जिसके कारण (गर्भिणी के) स्तन एवं कपोलों में स्थूलता तथा ओष्ठ एवं चूचुक में कृष्णता आ जाती है।

आचार्य भावमिश्र का भी यही मत है[२]।

Leftover *rakta* (the *ārtava* left over after placenta formation) goes upwards, reaches breasts and makes them heavy and erect. This very *rakta* is responsible for heaviness of cheeks and blackening of areola and lips.

विमर्श (Comments)

बचे हुए आर्तव के द्वारा स्तन-वृद्धि आदि का स्पष्टीकरण पूर्व-वर्णित (पृष्ठ ४७) है।

Development of breasts etc. by leftover *ārtava* has been discussed earlier (page 49).

दौहद (Dauhṛda)

गर्भ एवं स्वयं का हृदय इस प्रकार दो हृदय वाली होने के कारण स्त्री दौहृदिनी कहलाती है। इस काल की इच्छाओं आदि का विस्तृत वर्णन संहिताओं में मिलता है।

महर्षि भेल ने सात्म्य के द्वारा गर्भज दोहद की परीक्षा करने का निर्देश दिया है[३]।

The woman possessing two hearts (one of her own and other of the fetus) is called *dauhṛdinī*. The period of *dohṛda* and specific longings during this period have been described elaborately in *āyurvedika* classics. Bhela has advised to examine *dauhṛda* of fetus by congenial diet.

(अ) दौहृद-काल (Period of dauhṛda)

महर्षि सुश्रुत ने दौहृद की उत्पत्ति का काल चतुर्थ मास वर्णन किया है[४]।

महर्षि चरक, अष्टांगसंग्रहकार एवं अष्टांगहृदयकार किसी ने भी दौहृद का निश्चित काल स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा। विभिन्न संहिताओं में मासानुमासिक गर्भवृद्धि के वर्णन के अन्तर्गत ही दौहृद का उल्लेख आता है अतः जिस मास के गर्भ की वृद्धि के वर्णन से सम्बन्धित दौहृद का वर्णन है उस मास को ही दौहृद की उत्पत्ति का काल मानना चाहिए। इस आधार पर महर्षि चरक एवं अष्टांगसंग्रहकार ने तीसरे मास तथा अष्टांगहृदयकार ने दूसरे मास में दौहृद की उत्पत्ति मानी है। अष्टांगसंग्रहकार ने अन्य विद्वानों का मत उद्धृत किया है कि तीन पक्ष (गर्भाधारण होने के तीन पक्ष) से चार मास की समाप्ति या पाँचवें मास के प्रारम्भ होने तक दौहृद काल होता है[५]।

१. तस्मात् पीनपयोधरकपोलता कृष्णचूचुकत्वञ्च ॥ (सु० सं० शा० ४/२४ की डल्ह० टी०; सी० के० सेन कलकत्ता प्रकाशन)

२. शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरौ याति, तस्माद्गर्भिण्यः पीवरपयोधरा भवन्ति ॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/२०६)

३. ····· सात्म्यं गर्भेण(भंज) दौहृदम् ॥ (भे० सं० वि० ४/४)

४. तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यमिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति। (सु० सं० शा० ३/१८)

५. अन्ये तु पक्षत्रयात्प्रभृत्यापञ्चमान्मासाद्दौर्हृदकालमाहुः। (अ० सं शा० २/१८)

महर्षि हारीत[१] ने तृतीय एवं आचार्य भावमिश्र ने स्पष्टतः चतुर्थ[२] मास में दौहृद की उत्पत्ति मानी है।

आधुनिक विज्ञान के अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है कि गर्भावस्था के चौथे सप्ताह में ही मानव भ्रूण का एक कोष्ठीय हृदय अपना स्पन्दन प्रारम्भ कर देता है अतः अष्टांगसंग्रहकार द्वारा तीन पक्ष या ६ सप्ताह में द्विहृदया गर्भिणी का वर्णन सराहनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री द्वारा गर्भस्पन्दनानुभूति के काल में भेद होने के कारण आचार्यों ने भिन्न भिन्न दौहृद उत्पत्ति-काल वर्णित किया है।

Suśruta and Bhāvamiśra have mentioned its period as fourth and Hārīta as third month of pregnancy. Others have not mentioned this period separately but have referred it in the description of fetal development, accordingly third month has been mentioned by Caraka and Vāgbhaṭa I and second month by Vāgbhaṭa II. However, citing the opinions of others VāgbhaṭaI has referred this period from three fortnights (six weeks) of conception upto the completion of fourth or beginning of fifth month.

One chambered embryonic heart starts its first beat at the end of four weeks, thus the description of six weeks period by Vāgbhaṭa I is praiseworthy. The difference in the period by various authors is probably due to relative sensitivity of the woman for feeling of quickening.

(आ) दौहृद की उत्पत्ति का कारण (Cause of dauhṛda)

तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि संतिष्ठन्ते, तत्कालमेव चेतसि वेदना निर्बन्धं प्राप्नोति; तस्मात्तदा प्रभृति गर्भः स्पन्दते, प्रार्थयते च जन्मान्तरानुभूतं यत् किञ्चित् ; तद् द्विहृदय्यमाचक्षते वृद्धाः। मातृजं चास्य हृदयं मातृहृदयेनाभिसंबद्धं भवति रसवाहिनीभिः संवाहिनीभिः; तस्मात्तयोस्ताभिर्भक्तिः संस्पन्दते ॥ (च० सं० शा० ४/१५)

·····,गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति; कस्मात् ? तत्स्थानत्वात्। तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति। द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाक्षते ॥ (सु० सं० शा० ३/१८)

कर्म्मणा चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत्। यथा तथा दैवयोगाद् दौर्हृदं जनयेद् हृदि ॥

(सु० सं० शा० ३/१५; सी० के० सेन कलकत्ता प्रकाशन)

तदा चास्य चेतना प्रव्यक्ता भवति। ततश्च तत्प्रभृति स्पन्दतेऽभिलाषं पञ्चेन्द्रियार्थेषु करोति ॥ १६॥

मातृजं ह्यस्य हृदयं तद्रसहारिणीभिर्धमनीभिर्मातृहृदयेनाभिसम्बद्धं भवति। तस्मात्तयोस्ताभिः श्रद्धा सम्पद्यते। तथा च द्विहृदयां नारीं दौर्हृदिनीत्याचक्षते ॥ (अ० सं० शा० २/१६, १७)

मातृजं ह्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन तत्॥ सम्बद्धं ·····॥ (अ० हृ० शा० १/५२, ५३)

गर्भ में जिस काल में इन्द्रियाँ स्थित होती हैं या अभिव्यक्त होती हैं उसी समय में गर्भ के मन में वेदना (सुख दुःखानुभूति) का सम्बन्ध होता है अर्थात् मन सुख दुःख आदि का अनुभव करने लगता है, इसीलिए उसी समय से गर्भ में स्पन्दन होता है और वह गर्भ पूर्वजन्मों में अनुभूत किए हुए विषयों की आकांक्षा करता है (जो माता के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं); इसलिए यह काल वृद्ध लोगों द्वारा दौहृद कहा जाता है। गर्भ का मातृज (भावों से उत्पन्न) अंग हृदय माता के हृदय से रस को वहन करने वाली नलिकाओं द्वारा (नाभिनाड़ी द्वारा) सम्बद्धित रहता है अतः (वह गर्भ) उन रसवाहिनियों के द्वारा अपनी इच्छा प्रकट करता है अर्थात् माता द्वारा प्रकट की जाने वाली विशिष्ट इच्छायें वास्तव में गर्भ

१. ·····दोहदं तथा। मासे तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः॥ (हा० सं० तृतीयस्थान ४९/४)

२. तस्माच्चतुर्थ ···। ···दौहृदिनी मता। (भा० प्र० पूर्व० ३/२९३)

Scanned with CamScanner

की इच्छायें होती हैं। टीकाकार चक्रपाणि ने लिखा है कि गर्भ दुःख निवारणार्थ एवं सुख प्राप्ति के लिए स्पन्दन करता है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि गर्भ का हृदय प्रव्यक्त होने से चेतना धातु भी अभिव्यक्त हो जाती है। क्यों ? उसका स्थान होने से (अर्थात् चेतना का स्थान हृदय होने से), अतः गर्भ चतुर्थ मास में इन्द्रियों के विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) में अपनी इच्छा प्रकट करता है। दो हृदय युक्त होने से स्त्री को दौहृदिनी कहते हैं। जिस प्रकार कर्म (पूर्वजन्म के कर्म) से प्रेरित प्राणी का भवितव्य पुनर्जन्म होता है, उसी प्रकार पूर्वकर्म के अनुसार दैव के योग से स्त्री को दौहृद उत्पन्न होता है।

अष्टांगसंग्रहकार के मतानुसार इस काल में (तृतीय मास में) इसकी (गर्भिणी की) चेतना स्पष्ट होने लगती है, इसके बाद से लेकर गर्भ स्पन्दन करता है तथा पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा करता है। गर्भ का मातृज भावोत्पन्न हृदय रसवाही धमनियों के द्वारा माता के हृदय से सम्बद्धित रहता है अतः उस गर्भ की आकांक्षायें माता को तथा माता की आकांक्षायें गर्भ को व्याप्त होती हैं[2]। स्त्री दो हृदय वाली होने के कारण द्विहृदया कहलाती है।

अष्टांगहृदयकार ने दौहृद की उत्पत्ति का कारण गर्भ के मातृज अंग हृदय का माता के हृदय से सम्बद्धित होना माना है। टीकाकार अरुणदत्त ने स्पष्टीकरण दिया है कि इसी परस्पर सम्बद्धता के कारण गर्भिणी के हृदय के सन्तप्त होने से गर्भ भी सन्तप्त होता है तथा वह दौहृदनी कही जाती है क्योंकि वह दो हृदय वाली होती है। गर्भ अपनी इच्छायें गर्भिणी के द्वारा व्यक्त करता है यही कारण है कि गर्भिणी अपनी इच्छाओं के विपरीत भी इच्छायें व्यक्त करती है[3]।

महर्षि हारीत ने आकांक्षित वस्तु देने का निर्देश किया है[4]।

आचार्य भावमिश्र ने भी चतुर्थ मास में चेतना की अभिव्यक्ति के कारण दौहृद की उत्पत्ति का वर्णन[5] किया है।

Caraka opines that when *indriyas* of the fetus become conspicuous, the *mana* gets association of *vedanā* or feelings of happiness and sorrow during same period, due to this the fetus starts quivering and expresses the desires based on the experiences of previous life, that is why elder persons have called it *dauhṛda*. The fetal heart formed with the maternal components is attached to the mother's heart via *rasavāhī* channels and by these channels it expresses its longings through the mother, or in other words the desires expressed belong to the fetus not to the mother. Cakrapāṇi says that the fetus quivers to get rid of the sorrows and obtain happiness.

Suśruta has said that during this period due to conspicuousness of heart *cetanā* (consciousness) also becomes apparent as heart is its seat, thus in fourth month the fetus

१. तस्मादिति सुखदुःखसंबन्धात् सुखोत्पादनार्थं दुःखपरिहारार्थं च स्पन्दते चलति। (च० सं० शा० ४/१५ की चक्र० टी)

२. तेन गर्भस्येच्छया माता व्याप्यते मातुश्च गर्भ इति॥ (अ० सं० शा० २/१७ की इन्दु टी०)

३. ततश्च गर्भिणीहृदयेन सन्तप्तेन गर्भहृदयमपि सन्तप्यते। परस्परं हृदयस्य सम्बद्धत्वात्। अत एव च गर्भिणी द्विहृदया दौहृदनीत्युच्यते। अत एव च परायत्तहृदयत्वात्तत्काले स्वस्वभावोचितमभिलाषं विहाय नानाभिलाषो जायते॥ (अ० ह० शा० १/५२, ५३ की अरुण० टी०)

४. यद्यत् कामयते सा च तत्तद्द्याद्विभग्नवरः॥ (हा० सं० तृतीयस्थान ४९/५)

५. हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनाऽपि च॥ २९२॥
तस्माच्चतुर्थं गर्भस्तु नाना वस्तूनि वाञ्छति। ततो द्विहृदया यत्स्यान्नारी दौहृदिनी मता॥ २९३॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

desires the objects (sound, touch, vision, taste and smell) of *indriyas*. The woman due to possession of two hearts is called *dauhṛdinī*. As the future of present life depends upon the deeds of previous life, similarly longings during *dauhṛda* are also on the basis of deeds of previous life and effect of fate.

Vāgbhaṭa I giving the cause of *dauhṛda* as conspicuousness of *cetanā* has given the description identical to Caraka. Vāgbhaṭ II and Aruṇadatta have corroborated Caraka while Bhāvamiśra to Suśruta. Hārīta indicates that the woman should be provided with the desired substances.

(इ) दौहृद की पूर्ति या अपूर्ति का परिणाम (The Effect of fulfilment and non-fulfilment of dauhṛda)

तच्चैव कारणमवेक्षमाणा न द्वैहृदव्यस्य विमानितं गर्भमिच्छन्ति कर्तुम्। विमानने ह्यस्य दृश्यते विनाशो विकृतिर्वा। समानयोगक्षेमा हि तदा भवति गर्भेण केषुचिदर्थेषु माता। तस्मात् प्रियहिताभ्यां गर्भिणीं विज्ञेयेणोपचरन्ति कुशलाः॥ १५॥

सा यद्यदिच्छेत्तत्तदस्यै दद्यादन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्यो भावेभ्यः॥ १७॥

तीव्रायां तु खलु प्रार्थनायां काममहितमप्यस्यै हितेनोपहितं दद्यात् प्रार्थनाविनयनार्थम्। प्रार्थनासंधारणाद्धि वायुः प्रकुपितोऽन्तःशरीरमनुचरन् गर्भस्यापद्यमानस्य विनाशं वैरूप्यं वा कुर्यात्॥ १९॥

(च० सं० शा० ४/१५, १७ व १९)

दौहृदविमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जड़ं वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति। तस्मात् सा यद् यदिच्छेत्तत्तस्यै दापयेत्। लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति॥

इन्द्रियार्थास्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी।
गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत्॥
सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम्।
अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम्॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे वै विमानना।
प्राजयेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये॥ (सु० सं० शा० ३/१८ से २१)

प्रार्थनायां च तीव्रायां काममहितमप्यस्यै हितोपसंहितं दद्यात्॥ १९॥

दौहृदविमाननाद्धि वायुः प्रकुपितोऽन्तःशरीरमनुचरन् गर्भस्य विनाशं वैरूप्यं वा कुर्यात्॥ २०॥
लब्धदौहृदा तु वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं प्रसूते॥ २१॥ (अ० सं० शा० २/१९, २०, २१)
····· तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धाविमाननम्।
देयमप्यहितं तस्यै हितोपहितमल्पकम्॥ ५३॥
श्रद्धाविघातादृगर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा॥ ५४॥ (अ० ह० शा० १)

इसी कारण (माता के हृदय से गर्भ के सम्बद्धित होने के कारण) को ध्यान में रखते हुए दौहृद का अपमान (अपूर्ति) नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भ-विकृति या गर्भ-विनाश हो जाता है। माता किन्हीं-किन्हीं अर्थों में गर्भ के समान योगक्षेम वाली होती है अतः कुशल लोग विशेषकर गर्भिणी की प्रिय एवं हित पदार्थों से परिचर्या करते हैं। द्विहृदया स्त्री जिन जिन इच्छाओं को व्यक्त करती है गर्भ-विनाशक भावों को छोड़कर अन्य इच्छायें पूर्ण करनी चाहिए।

Scanned with CamScanner

यदि गर्भिणी गर्भ-विनाशक-भावों की ही अतितीव्र इच्छा करती है तो उन द्रव्यों को हित वस्तुओं के साथ मिलाकर इच्छा-पूर्ति के लिए देना चाहिए, क्योंकि इच्छा को रोकने या पूर्ण न करने से वायु प्रकुपित होकर अन्तःशरीर में विचरण करती हुई गर्भ को व्याधियों, विनाश या वैरूप्य कर देती है।

टीकाकार चक्रपाणि ने स्पष्टीकरण दिया है कि यदि महती आकांक्षा का विघात हुआ तो गर्भनाश एवं यदि छोटी आकांक्षा का विघात हुआ तो गर्भविकृति होती है। यदि माता के द्वारा व्यक्त गर्भ की इच्छा का हनन हुआ तो गर्भ का इच्छा से सीधा सम्बन्ध होने के कारण उस अत्यधिक सुकुमार गर्भ की वायु विकृत होकर उसका विनाश कर देती है। यदि माता की स्वयं की इच्छा का हनन हो तो माता की विकृत वायु माता एवं गर्भ के समानयोग (सुख-हेतु-योग), क्षेम (प्रत्यवाय परिहार) होने के कारण गर्भ में मानसिक विकार उत्पन्न कर अन्य विकृति उत्पन्न करती है, परन्तु कभी कभी अयोगक्षेम होने से माता के क्षुधादि विकार हर समय गर्भ में विकार नहीं उत्पन्न करते। 'गर्भिणी में विशेष' शब्द से ऋतुकाल में भी प्रिय एवं हित परिचर्या निर्दिष्ट है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि दौहृद का विमानन या उपेक्षा करने से स्त्री कुब्ज, कुणि (विकृत हस्त), खंज (विकृत पाद), जड़ (मन्द बुद्धि), वामन एवं विकृत आँख वाले अथवा आँख रहित पुत्र को उत्पन्न करती है, अतः वह जो जो इच्छा करे उसे देना चाहिए। दौहृद के पूर्ण होने से वीर्यवान एवं चिरायु पुत्र को जन्म देती है।

गर्भिणी स्त्री इन्द्रियों के जिन जिन विषयों के उपभोग की इच्छा करे, चिकित्सक गर्भ की बाधा के भय से उस उस पदार्थ को दिलवावे। स्त्री दौहृद प्राप्त होने पर गुणवान पुत्र को जन्म देती है एवं दौहृद की पूर्ति न होने पर स्वयं एवं गर्भ के लिए भय (किसी विकृति का) होता है। दौहृद में होने वाले जिन जिन इन्द्रियों के विषयों की उपेक्षा होती है उन उन इन्द्रियों के विकार से युक्त पुत्र का स्त्री जन्म देती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि (गर्भिणी को) अहितकारी वस्तुओं की भी अतितीव्र कामना होने पर उन्हें हितकारी वस्तुओं के साथ मिलाकर देना चाहिए। दौहृद की उपेक्षा होने से वायु प्रकुपित होकर अन्तःशरीर में गति करती हुई गर्भ का विनाश या विरूपता कर देती है। दौहृद की पूर्ति हो जाने पर स्त्री वीर्यवान एवं चिरायु पुत्र का जन्म देती है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि गर्भिणी स्त्री की इच्छाओं का विमानन करना यथेष्ट नहीं है। विमानन शब्द से टीकाकार अरुणदत्त ने अप्रतिपूरण अर्थ किया है[2]। (गर्भिणी को) अहित की भी आकांक्षा होने पर उसे हित के साथ मिलाकर अल्प मात्रा में दे देना चाहिए (एवं हित पदार्थ तो देने ही चाहिए), क्योंकि आकांक्षा के विघात से गर्भ की विकृति या च्युति हो सकती है। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि दौहृद की पूर्ति से वीर्यवान एवं चिरायु पुत्र को गर्भिणी जन्म देती है[3]।

महर्षि हारीत ने दौहृद की पूर्ति से रूपवान, शूर, पण्डित या विद्वान एवं शीलवान पुत्र की उत्पत्ति का वर्णन दिया है[4]।

१. गर्भस्य विनाशो विकृतिर्वेति महति इच्छाविघातेन विनाशः, स्वल्पेन तु विकृतिः; किंवा गर्भेच्छापूर्विका मातुरिच्छा, तद्विघातेन विनाशो गर्भस्य, सा हीच्छा विहता साक्षाद्गर्भसंबन्धितया सुकुमारतरं गर्भं वातप्रकोपाद्विनाशयति; या तु मातुरिच्छा विहता, सा मातरि वातक्षोभं जनयती समानयोगक्षेमे गर्भेऽपि मनाग्विकृतिजननाद्विकृतिं जनयति। एतदेव दर्शयति-समानयोगक्षेमा हीत्यादि।-योगः सुखहेतुयोगः, क्षेमः प्रत्यवायपरिहारः, एतौ, योगक्षेमौ मातुर्गर्भेण समानौ भवतः। केषुचिदर्थेष्वितिवचनादतुल्ययोगक्षेमता च क्वचिद्भवतीति दर्शयति। तेन, नावश्यं मातुर्विकाराः क्षुदादयो गर्भे विकृतिमावहन्ति, गर्भस्य वा मातरीति दर्शयति। गर्भिणीविशेषेणेति चवनादगर्भिण्यपि स्त्री ऋतुकाले प्रियहितोपचारणीया॥ (च० सं० शा० ४/१५ की चक्र० टी०)

२. यतश्चैवं ····· श्रद्धाविमाननं अभिलाषाप्रतिपूरणं, नेष्टम् ·····। (अ० ह० शा० १/५३ की अरुण० टी०)

३. लब्धदौहृदा तु वीर्यवन्तं चिरायुषं च सुतं सूते॥ (अ० ह० शा० १/५४ की अरुण० टी०)

४. दोहदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पण्डितः शीलवान्पुत्रो जायते॥ (हा० सं० तृतीयस्थान ४९/१०)

आचार्य भावमिश्र ने शब्दभेद से महर्षि सुश्रुत का अनुगमन किया है[1] केवल 'खंज' के स्थान पर 'षण्ड' लिखा है।

Caraka says that as desires of the fetus are expressed through the mother hence *dauhṛda* should always be fulfilled, because the negligence or non-fulfilment can cause abnormalities or even death of the fetus. Mostly welfare of the mother is identical to that of the fetus, thus wise persons always treat pregnant woman affectionately and with beneficial substances. What-so-ever the *dwihṛdayā* woman desires, it should be fulfilled except the things likely to injure or fell-upon the fetus. However, if her desire to use the articles likely to harm the fetus is very acute, the articles should be provided with addition of beneficial substances capable of counteracting the harmful effects. Suppression of desires vitiates *vāyu*, which moving in the body of the fetus produces various diseases, abnormalities or even death. Cakrapāni has clarified that suppression of acute desires causes death of the fetus while that of mild ones the abnormalities. If desires of fetus expressed by the mother are suppressed then due to direct association of these desires with very delicate fetus, its *vāyu* gets vitiated and injures it. However, if mother's own desires are suppressed then vitiated *vāyu* of mother reaches the fetus, because welfare (the condition providing pleasure or satisfaction and the opposite or harmful things to be given up) of both is same, and this aggravated *vāyu* influencing *mana* (psyche) of the fetus produces various abnormalities. At certain times due to slight difference in welfare of both, the abnormalities of mother like hunger etc. do not affect the fetus. This congenial and affectionate treatment should be extended even to non pregnant woman during *ṛtukāla*.

Suśruta has mentioned that non-fulfilment of desires produces the fetus which is hump-backed, crooked armed and leged, idiot, dwarf, dis-shaped eyed or has absence of eyes. What-so-ever she desires should be fulfilled due to fear of fetal abnormalities. Non-fulfilment can harm both mother and fetus, specially suppression of desires related to specific *indriya* produces abnormality of corresponding *indriya* of the fetus. Fulfilment of desires results in birth of child possessing high qualities and longevity.

Both Vāgbhaṭas have followed Caraka describing the subject in short, similarly Bhāvamiśra has followed Suśruta substituting crooked leg with impotence.

Hārīta has mentioned that fulfilment of *dauhṛda* gives birth to a very handsome, valiant, intelligent and well behaved child.

(ई) शिशु-चरित्र-प्रदर्शनकारी दौहृद (Specific dauhṛda denoting character of the child)

राजसन्दर्शने यस्या दौर्हृदं जायते स्त्रियाः। अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते॥
दुकूलपट्टकौषेयभूषणादिषु दौहृदात्। अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते॥
आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते। दैवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम्॥

१. दौहृदावज्ञया कुब्जं कुणि षण्डं च वामनम्। विकृताक्षमनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते॥ २९४॥
यतः स्त्री दौहृदं प्राप्य वीर्यवन्तं चिरायुषम्। पुत्रं प्रसूयते तस्मात्तस्यै वांछितमर्पयेत्॥ २९५॥
इन्द्रियार्थास्तु ·····॥ ·····जनयेत्तु ·····॥ ····· साऽवमानिता। प्रसूयते सुतं सार्तिं तस्मिंस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये॥ २९६ से २९८॥ (सुश्रुत सदृश हो)। (भा० प्र० पूर्व० ३/२९४ से २९८)

Scanned with CamScanner

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते। गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम्[१] ॥
गवां मांसे तु बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा। माहिषे दौर्हदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् ॥
वराहमांसात् स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत् सुतम्। मार्गाद् विक्रान्तजङ्घालं सदा वनचरं सुतम्।
सृमराद् विग्रमनसं नित्यभीतं च तैत्तिरात् ॥
अतोऽनुक्तेषु या नारी समभिध्यायति दौर्हदम्। शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥
(सु० सं० शा० ३/२२ से २८)

(पूर्व वर्णित है कि महर्षि सुश्रुत ने स्पष्ट किया है कि गर्भ के पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर इस जन्म में होने वाले भविष्य के अनुसार ही स्त्री का दौहद होता है उसी का विस्तृत वर्णन यहाँ पर किया गया है)।

जिस स्त्री को राजा के दर्शन का दौहद हो तो वह धनी, बहुत ही भाग्यशाली पुत्र को जन्म देती है। दुकूलपट्ट (महीन कपड़े), कौशेय (रेशमी वस्त्र) एवं आभूषणों आदि का दौहद होने पर वह स्त्री अलङ्कार प्रिय एवं सुन्दर; आश्रम में (आश्रमवास के लिए दौहद होने पर) जितेन्द्रिय तथा धर्मशील; देवता की प्रतिमा के दर्शन में (इच्छा होने पर) पार्षदोपम (अत्यन्त सभ्य); व्याल जाति (हिंस्र पशु) के दर्शन से क्रूर पुत्र को जन्म देती है। गोधा-मांस खाने (का दौहद होने) में निद्रालु तथा धारणात्मक (हृदय की वस्तु को न निकालने वाला) या अधिक दौड़ने वाला; गोमांस में (के दौहद में) बलवान तथा सर्वक्लेशसह; महिष (भैंस) मांस का दौहद होने पर शूर, रक्ताक्ष एवं रोमयुक्त; वराह के मांस में (इच्छा से) स्वप्नालु, वीर; मार्ग (मृगमांस) से विक्रान्त (उद्योगी), जङ्घाल (वेगवान या द्रुतगतिवान्)[२] तथा हमेशा जंगल में विचरण करने वाले; सृमर-मांस[३] से उद्विग्न मन वाले तथा तित्तिर (के मांस की इच्छा) से डरपोक पुत्र को जन्म देती है। इनके अतिरिक्त अब तक न बतलाए हुए जिन विषयों में स्त्री दौहद करती है उन्हीं के अनुसार शरीर, आचार एवं शील वाले पुत्र को जन्म देती है।

आचार्य भावमिश्र जी ने भी महर्षि सुश्रुत-सदृश ही वर्णन दिया है[४], केवल गोधा, गो, स्मर एवं तित्तिर के मांस का वर्णन नहीं दिया। लगभग इसी प्रकार का वर्णन महर्षि चरक एवं वाग्भट ने गर्भोपघातकर भावों के अन्तर्गत किया है। जिसका वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

Suśruta and Bhāvamiśra have given a long list of desires expressed by the mother indicative of probable characters of the child.

Dauhṛda or desires	Characters of the child
1. To look at king	Rich, very lucky.
2. To wear very fine silk garments and ornaments	Fond of ornaments and handsome.

cont. ...

१. 'धावनात्मकं' (पादटीका)
२. मार्गात् मृगमांसात्। विक्रान्तं उद्योगिनं, जङ्घालं वेगवन्तम्। (सु० सं० शा० ३/२७ की डल्ह० टी०)
३. सृमर = महाशूकर (डल्हण) या बहुत भागने वाला मृगविशेष (अमरकोष)
४. राजसन्दर्शने यस्या .....। ..... हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ २९९ से ३०२/१ (सुश्रुत सं० सदृश ही)
रक्ताक्षं लोमशं शूरं माहिषामिषदौर्हदात् ॥ ३०२॥
वाराहमांसे स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत्सुतम्।
मृगमांसे तु जङ्घालं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ ३०३॥
अतोऽनुक्तेषु .....दौहदं विदधाति हि। ..... जनयिष्यति ॥ ३०४॥ (सुश्रुत सं० ही) (भा० प्र० पूर्व० ३)

Dauhṛda or desires	Characters of the child
3. To live in *āśrama* (pious place)	Capable of controlling *indriyas* and religious.
4. To look at an idol of a diety	Extremely courteous like *pārṣada*.
5. To look at snake etc. wild creatures	Ferocious or ruthless.
6. To eat* meat of iguana	Sleepiness and that whose nature consists in bearing itself or does not express his desires or runner.
7. To eat* cow's meat	Mighty and with good endurance.
8. To eat buffallow's meat	Brave, red eyes and excessive body hair.
9. To eat hog's meat	Sleepy, brave or bold.
10. To eat deer's meat	Industrious, swift runner and always moves in forests.
11. To eat* meat of *sṛmara***	Terrified or anxious.
12. To eat* meat of partridge	Paltroon.

* Not mentioned by Bhāvamiśra.

** Big bear by Ḍalhaṇa and fast running specific deer by Amarakoṣa.

Besides these what-so-ever untold things are desired by the woman, the born child reflects the features, conduct and behaviour accordingly.

विमर्श (Comments)

पूर्वपृष्ठों में वर्णित दौहद के विषय के बारे में आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में स्पष्टीकरण कठिन है यद्यपि इतना तो सिद्ध हो चुका है कि गर्भिणी के शारीरिक स्वास्थ्य या मानसिक स्थिति का गर्भ के शरीर या मन पर प्रभाव होता है। क्रियात्मक क्षेत्र में ऐसा देखा गया है कि कभी कभी गर्भिणी स्त्री कुछ ऐसी चीजों की आकांक्षा करती है, जो उसने न तो पूर्व-जीवन में कभी खाई हुई होती हैं और न ही प्रसव के बाद खाने की इच्छा करती है, सम्भवतः इसी प्रकार के लक्षणों को देखकर आचार्यों ने दौहद की कल्पना की हो। यह हो सकता है कि इच्छा पूर्ण न होने पर स्त्री के मानसिक आघात का कुछ प्रभाव गर्भ के मानसिक विकास पर पड़े परन्तु इन्द्रियों में विकार तथा विशिष्ट दौहद से विशिष्ट प्रकार के पुत्र की उत्पत्ति आदि वर्णनों का स्पष्टीकरण कठिन है।

Abnormal longings of pregnant woman are probably source of this description. The suppression of desires may influence psychology of mother and fetus as well, however, exact scientific explanation of this entire topic is not possible.

गर्भिणी-परिचर्या (Antenatal care)

गर्भिणी का सामान्य आहार-विहार (Normal dietetics and mode of life of pregnant woman)

तस्मादहितानाहारविहारान् प्रजासंपदमिच्छन्ती स्त्री विशेषेण वर्णयेत् (वर्जयेत् शु० पा०)। साध्वाचारा चात्मानमुपचरेद्धिताभ्यामाहारविहाराभ्यामिति ॥ (च० सं० शा० ८/२१)

Scanned with CamScanner

गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलङ्कृता शुक्लवसना शान्तिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपरा च भवेत्। ·····। शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसम्बाधं च विदध्यात्, हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतं च भोजनं भोजयेत्, सामान्यमेतदाप्रसवात्॥ (सु० सं० शा० १०/३)

गर्भसमानयोगक्षेमा हि गर्भिणी भवति। तस्माद्विशेषतस्तां प्रियहिताभ्यां गर्भोपघातकरेभ्यो रक्षेत्॥
(अ० सं० शा० २/५८)

औषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यान्तरुपयोजयेत्॥ ४२॥
उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक्। नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत्॥ ४३॥
(अ० ह० शा० १)

मेवितान्यन्नपानानि गर्भिण्या यान्यभ·····। तानि सात्म्यानि बालस्य तस्मात्तान्युपचारयेत्॥
देशकालग्रिमात्राणां न च कुर्याद्व्यतिक्रमम्॥ (का० सं० मृ० १८/२४,२५)
यानि द्रव्याणि पुण्यानि मङ्गल्यानि शुचीनि च। नवान्यभग्नखण्डानि पुत्रामानि प्रियाणि च॥
गर्भिण्यै तान्युपहरेद्वासांस्याभरणानि च। न स्त्री नपुंसकाख्यानि धारयेद्वा लभेत वा॥
धूपितार्चितसंमृष्टं मशकाद्यपवर्जितम्। ब्रह्मघोषैः सवादित्रैर्वादितं वेश्म शस्यते॥
(प्रातरुत्थाय) शौचान्ते गुरुदेवार्चने रता। अर्चेदादित्यमुद्यन्तं गन्धधूपार्घ्यवार्जपैः॥
(का० सं० शा० ५/१२-१५)

नित्यं स्नाता च हृष्टा च शुक्लवस्त्रधरा शुचिः। देवविप्ररा सौम्या गर्भिणी पुत्रभागिनी॥
(का० सं० चि० २/१४)

नित्यस्नाता च गृष्टा च शुक्लवस्त्रधरा शुचिः॥ १७६॥
देवविप्ररा सौम्या गर्भिणी तु सदा भवेत्॥ (का० सं० खिल० १०)

उत्तम गुण-युक्त संतान की इच्छा रखने वाली स्त्री को अहित करने वाले आहार विहारों को विशेष रूप से त्याग देना चाहिए। वह साधु या सुन्दर आचरण वाली रहकर, हितकर आहार-विहार द्वारा स्वयं (आत्म) की रक्षा करे।

महर्षि सुश्रुत ने गर्भिणी के सामान्य आहार-विहार का निर्देश करते हुए लिखा है कि गर्भिणी प्रथम दिन से ही (गर्भावस्था के प्रथम दिन से ही) नित्यप्रति प्रसन्नचित्त, पवित्र, अलंकारों से विभूषित, श्वेत या स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाली, शान्ति-कर्म (हवन आदि), मंगल-कर्म, देवता-ब्राह्मण-गुरु की पूजा करने वाली होनी चाहिए। इसके शयन एवं बैठने का स्थान मृदु वस्त्रों से युक्त, न बहुत ऊँचा, अपाश्रय (सहारे के लिए बनाए हुए स्थान) से युक्त एवं बाधा-विरहित होना चाहिए। वह हृद्य (मन को अच्छे लगने वाले), द्रव, विशेषकर मधुर, स्निग्ध पदार्थों का दीपनीय द्रव्यों से संस्कार कर भोजन करे। इस प्रकार प्रसवकाल तक सामान्य परिचर्या करे।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने संक्षेप में कहा है कि गर्भिणी का योग (सुखादि) तथा क्षेम (अहित परिवर्जन आदि) गर्भ के ही समान होता है, अतः इस गर्भिणी की प्रिय एवं हितकर आहार-विहार द्वारा गर्भ को नष्ट करने वाले भावों से रक्षा करनी चाहिए। वृंहणार्ह व्यक्तियों के अन्तर्गत गर्भिणी का उल्लेख है[2]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि गर्भिणी स्त्री को जीवनीय गण की औषधियों का बाह्य (स्नानार्थ जल निर्माण में या अन्य प्रदेहादि के लिए) तथा अंतः (चूर्ण, फाण्ट, हिम आदि के स्वरूप में) प्रयोग करना चाहिए, पति एवं भृत्य द्वारा प्रिय एवं हित व्यवहार गर्भधारण में सहायक होता है। इसे सदा नवनीत, घृत तथा क्षीर का प्रयोग करना चाहिए।

१. तान्युपचरेत् - शु० पा०
२. अ० सं० सू० २४/११

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि गर्भावस्था में जो अन्नपान गर्भिणी स्त्री सेवन करती है, बच्चे को वही सात्म्य होते हैं, अतः देश, काल तथा अग्नि की मात्रा (पाचन शक्ति) का ध्यान रखकर भोजन करना चाहिए, उनका व्यतिक्रम नहीं करना चाहिए।

पुनश्च गर्भिणी के वस्त्र, निवास-स्थान तथा आचार आदि का विशद वर्णन दिया है कि गर्भिणी स्त्री को पुण्यकारक, मंगलकारक, पवित्र, नवीन, अभग्न, अखण्डित, पुल्लिंग या पुत्राम वाले प्रिय वस्त्र एवं आभरण आदि देवे। स्त्री या नपुंसक लिंग के नाम वाले द्रव्यों को गर्भिणी न धारण करे, न ही प्राप्त करे। गर्भिणी का निवास-स्थान धूप एवं पूजा किया जाने वाला, मशक आदि (कोटाणुओं) से विरहित, ब्राह्मण-वाक्य या वेदवाक्य से आघोषित तथा गायन-वादन से युक्त उचित माना जाता है। गर्भिणी को प्रातः उठकर शौचादि कर्म के अन्त में या इन नित्य कर्मों से निवृत्त होकर गुरु एवं देवता की आराधना में लगा रहना चाहिए तथा उदित होते हुए सूर्य को गंध, अर्घ्य एवं जल से पूजा करनी चाहिए।

पुत्राकांक्षी गर्भिणी स्त्री नित्य स्नान करने वाली, प्रसन्नचित्त, श्वेत या स्वच्छ वस्त्रधारी, पवित्र, देवता तथा ब्राह्मण को सम्मान करने वाली तथा सौम्य आचरण वाली होनी चाहिए।

अन्यत्र महर्षि काश्यप ने उपर्युक्त श्लोक की पुनरावृत्ति की है केवल हृष्टा (प्रसन्न चित्त) के स्थान में मृष्टा (शरीर पोछने वाली) शब्द तथा पुत्राकांक्षी न कह सामान्य गर्भिणी को निर्दिष्ट किया है। विभिन्न आहार-द्रव्यों की उपयोगिता के अन्तर्गत गर्भिणी को उष्ण जल-प्रयोग[1] दुग्ध एवं मांसरस-प्रयोग निर्दिष्ट किया है। दुग्ध के प्रयोग से गर्भ पुष्टि एवं दृढ़त्व प्राप्त करता है[2]। मांस गर्भाधान-कारक, गर्भ-पुष्टिकर, गर्भिणी की वायु का शामक; रस-युक्त मांस परमौषध; दुग्ध के साथ सिद्ध किया हुआ, मधुर अथवा लवण मांस-रस गर्भ-काल में प्रशस्त है[3]।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि वैद्य गर्भिणी स्त्री को सूरण तथा गौल्य पदार्थ (अति विबन्ध-कारक पदार्थ) रस सहित तथा सभी पथ्य एवं हितकारी वस्तुयें देवे। वर्णित विधान के अनुसार रहते हुए एवं आचरण करते हुए पाँचवें एवं आठवें महीने में मंगल-कर्म करके ब्राह्मण तथा गोत्र के लोगों को भोजन करवाना चाहिए[4]।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत सदृश ही गर्भिणी को प्रसन्न-चित्त, अलंकृत, पवित्र, शुक्ल-वस्त्रधारी, गुरु आदि की अर्चना करने तथा दीपनीय द्रव्यों से संस्कृत हृद्य, स्निग्ध, मधुरप्राय, द्रव एवं लघु भोजन करने का निर्देश दिया है[5]।

योगरत्नाकर-कार ने आहार-विहारों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि शालि तथा षष्टिक धान्य; मुद्ग, गोधूम, लाजा का सत्तू, नवनीत, घृत, क्षीर, रसाला (शर्करा एवं मसाला-युक्त दही) मधु, शर्करा, पनस (कटहल), कदली (केला), धात्री

१. ····· गुर्विणी कोष्णकं पिबेत्॥ (का० सं० खि० २३/२५)
२. क्षीरं·····। पुष्टिर्दृढत्वं लभते च गर्भो ·····॥ (का० सं० क० ७/८७)
३. गर्भाधानकरं मांसमन्ते पुष्टिकरं तथा। गर्भिणीनां च नारीणां वातप्रशमनं परम्॥ ६॥
·····। गर्भकाले च ····· सरसं परमौषधम्॥ ७॥
क्षीण(र) सिद्धो मांसरसो मधुरो लवणोऽपि वा॥ ११॥
·····गर्भकाले च शस्यते॥ १२॥ (का० सं० खि० २४/६, ७, ११, १२)
४. सूरणानि प्रदेयानि गौल्यनि सरसानि च। पथ्ये हितानि चैतानि गुर्विणीनां सदा भिषक्॥ ८॥
अथोपपत्रं विहितमपि स्वकीयाचारेण पञ्चमासिकमष्टमासिकं वा। ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम्॥ १०॥
(हा० सं० तृ० स्था० ४९)
५. गर्भिणी प्रथमादहः प्रहृष्टा भूषिता शुचिः। भवेच्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्चने रता॥
भोज्यं तु मधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यं द्रवं लघु। संस्कृतं दीपनीयं तु नित्यमेवोपयोजयेत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३३०, ३३१)

Scanned with CamScanner

(आंवला), द्राक्षा, अम्ल तथा मधुर रस (के पदार्थ), शीतल द्रव्य, कस्तूरी, चन्दन, माला, कर्पूर का अनुलेपन (शरीर में), चाँदनी का स्नान अर्थात् चाँदनी सेवन, अभ्यंग, मृदु शय्या तथा शीतल वायु (का सेवन), संतर्पण (जन्य पदार्थ सेवन), प्रिय का आलिंगन तथा मन को प्रसन्न करने वाले अन्य विहार, प्रिय अन्न तथा पान गर्भिणी के लिए सदा हितकारी होते हैं[1]।

लाक्षादि तैल के बारम्बार अभ्यङ्ग से गर्भिणी स्त्री का गर्भ पुष्ट होता है[2]। गर्भिणी, विशेषकर मृत-प्रसवा या बार-बार सन्तान मर जाने वाली स्त्रियों के लिए फलघृत का पान लाभदायक है[3]।

Caraka says that the pregnant woman desirous of producing a thorough (healthy and good looking) child should give up non-congenial diet and mode of life and protect herself by doing good conduct and using congenial diets and mode of life.

Suśruta has advised that the woman from the very first day of pregnancy should remain in high spirit, pious, decorated with ornaments, wear clean white garments and perform religious rites, do auspicious deeds and worship deity, *brāhmaṇas* and priest. Her sleeping and sitting place should be covered with soft cushion or mattress, not be very high, possess elevated upper portion for head-rest and should be perfect and very comfortable. She should use palatable, liquid, sweet and unctuous substances treated with appetizing things. This mode of life should be continued till delivery.

Vāgbhaṭa I has said that since welfare and contraindications of mother and fetus are identical, hence the pregnant woman should use desired congenial diet and proper mode of life, avoiding factors likely to harm the fetus. The pregnant woman is fit for the use of *vṛṃhaṇa* (anabolic) therapy.

Vāgbhaṭa II has advised external (for preparing water for bathing or irrigation etc). and internal (powder, cold percolation, decoction etc.) use of *jīvanīya* group of drugs. Affectionate and good behaviour of husband and servants helps in maintenance of pregnancy. She should always use butter, *ghṛta* and milk etc.

Kāśyapa says that what-so-ever eatables or drinkable are consumed by the pregnant woman, same become congenial to the fetus, thus diet should be taken considering place of living, time or season and digestive capacity, it should never be neglected. She should use meritorious, auspicious, pious, new and intact or unbroken garments and ornaments possessing masculine names. No article bearing feminine or common gender name should ever be used. Her appropriate abode is that which is being fumigated (with fragrant drugs), where worships are being performed, is free from insects like mosquito etc., *vedic* hymns are being

१. शालयः षष्टिकाः मुद्गाः गोधूमाः लाजसक्तवः। नवीनतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाम्लं स्वादु शीतलम्। कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः। संतर्पणं प्रियाश्लेषो विहाराश्च मनोरमा ॥
प्रियकरं चात्रपानं गर्भिणीनां हितं सदा ॥ (यो० र० क्षीरदोषचिकित्सा)

२. शा० सं० मध्य० ९/९३ से ९८।

३. अ० सं० उ० ३९/८१; अ० हृ० उ० ३४/६३ से ६९; भा० प्र० चि० ७०/५४ से ६१ एवं यो० र० स्त्री रो० चि०।

recited by *brāhmaṇas* and songs and instruments are being played. The woman after leaving her bed in the morning and performing daily routine should get busy in adoring the priests and deity and worshiping the rising sun with perfumes, incense, libation and water. She should take bath daily and remain well behaved. She should use hot water, milk and meat. Milk provides nourishment and stability to the fetus; meat helps in achievement of pregnancy, provides nourishment to the fetus, suppresses *vāta* of pregnant woman, meat soup is superb medicine for her, meat treated with milk or mixed with sour articles or salt is also beneficial.

Hārīta has advised use of *sūraṇa* (an edible tuber) and constipating articles alongwith their juice and all other congenial and beneficial diets and behaviour. In fifth and eighth months after performing auspicious rites, she should offer food to *brāhmaṇas* and family members.

Bhāvaprakāśa has followed Suśruta. Yogaratnākara has enlisted following articles beneficial for pregnant woman i. e. *śālī* and *ṣaṣṭika* rice, *mudga* (green gram), wheat, flour of parched rice, butter, *ghṛta*, milk, *rasālā* (curd mixed with sugar and condiments), honey, sugar, jack-fruit, banana, fruit of *āmalakī, drākṣā*, sour and sweet substances; anointment with cooling agents, musk, sandal and camphor; wearing of garlands; moonlight bath, massage, soft bed, cool air, anabolic or gratifying edibles, embracing beloved and other pleasing mode of life alongwith desired food.

गर्भिणी के स्नानार्थ विशिष्ट जल (Specific water for pregnant woman's bath)

बिल्वकार्पासीफम्फणापाटलीपिचुमन्दाग्निमन्थमांसीवर्धमानकपत्रभङ्गक्वाथेन शीतेन सर्वगन्धोदकेन वा गर्भिण्याः प्रत्यहं स्नानमुपदिशेत् ॥ (अ० सं० शा० ३/१४)

वाघ्नपत्रभङ्गाम्भः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥ (अ० हृ० शा० १/६८)

बिल्व (बेलगिरी), कार्पास, फम्फणा (सरवाल), पाटली (गुलाब के पुष्पदल या पटाला) पिचुमन्द, अग्निमन्थ, जटामांसी और वर्धमानक (एरण्ड) के पत्रों को कूटकर बनाए गए क्वाथ को शीतल करके या सर्वगन्धोदक से गर्भिणी को प्रतिदिन स्नान करना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि कटे हुए वातघ्न पत्रों के क्वाथ को शीतल करके प्रतिदिन स्नान करना हितकर है।

The cold decoction of pulp of *bilva, kārpāsa, phamphaṇā,* (petals of rose), *picumanda, agnimantha, jaṭāmāṃsī* and pounded leaves of *eraṇḍa* or the water prepared with *sarvagandha* (all fragrant) drugs should be used for bathing by the pregnant woman, is the opinion of Vāgbhaṭa I., Vāgbhaṭa II has advised use of cold decoction of pounded leaves of drugs capable of suppressing *vāta.*

गर्भिणी द्वारा मणि-धारण (Amulet for pregnant woman)

त्रैवृतं तु मणिं कृत्वा तं श्रोण्यां गर्भिणी सदा ॥ १८१॥ (का० सं० खि० १०)

त्रिवृत् की मणि बनाकर गर्भिणी स्त्री को हर समय श्रोणि में धारण करना चाहिए।

The pregnant woman should wear the amulet made of *trivṛt* in her waist.

Scanned with CamScanner

गर्भिणी का मासानुमासिक पथ्य एवं पथ्य-प्रयोग से लाभ (Monthwise dietary regimen for pregnant woman and its effect)

(अ) मासानुमासिक पथ्य (Month-wise regimen)

(१) प्रथम मास का पथ्य (Regimen for the first month of pregnancy)

प्रथमे मासे शङ्किता चेद्गर्भमापन्ना क्षीरमनुपस्कृतं मात्रावच्छीतं काले काले पिबेत् ; सात्म्यमेव च भोजनं सायं प्रातश्च भुञ्जीत। (च० सं० शा० ८/३२)

विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत। (सु० सं० शा० १०/४)

प्रथमे मासि गर्भिणी क्षीरमुपसंस्कृतं मात्रावच्छीतं काले पिबेत्। तस्मिन्नपि चाद्यं द्वादशरात्रं क्षीरोद्धवं सर्पिः शालिषर्णीपलाशाभ्यां श्रृतं कनकरजतक्वथितशीतोदकानुपानं पिबेत्। स्वादुशीतं द्रवप्रायं सात्म्यं च सायं प्रातराहारयेत्। न चाभ्यङ्गोद्वर्तनानि सेवेत (अ० सं० शा० ३/३)

गर्भ-प्राप्ति की आशंका होते ही प्रथम मास में गर्भिणी अनुपसंस्कृत (बिना किसी औषधि आदि से संस्कार किया हुआ) दुग्ध समय समय पर मात्रा के अनुसार (अपनी अग्नि एवं शरीर-बल के अनुसार) पीये। सायं एवं प्रातः सात्म्य ही भोजन करे।

महर्षि सुश्रुत ने प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मास में मधुर, शीतल एवं द्रवप्राय आहार के सेवन का विधान बताया है।

महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि प्रथम मास में गर्भिणी उपसंस्कृत (औषधि आदि के साथ पकाया हुआ) दुग्ध समय से मात्रानुसार (अजीर्ण आदि न हो यह ध्यान रखकर, समय से अर्थात् प्रातः सायं दोनों समय)[1] पीये। उसमें भी पहिले बारह दिन दुग्ध से उत्पन्न घृत (दुग्ध से निकाले नवनीत से बनाए घृत) को शालिषर्णी एवं पलाश से श्रृत करके (स्नेहपाक विधि से संस्कृत करके) स्वर्ण या चाँदी के साथ क्वथित शीतल जल के अनुपान से (गर्भिणी स्त्री) पीये। मधुर, शीतल एवं द्रवप्राय तथा सात्म्य आहार प्रातः एवं सायं करे। अभ्यंग, उद्वर्तन आदि का सेवन न करे। पाठभेद में अनुपसंस्कृत क्षीरपान का विधान है[2]।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि प्रथम मास में मधुयष्टी, परूषक तथा मधूकपुष्प आदि में से उपलब्ध द्रव्यों को नवनीत एवं मधु तथा मधुर द्रव्य (शर्करा) मिले हुए दुग्ध के साथ पीने को दे[3]।

Dietetics advised by various authors in this month are as follows:

Caraka S. : Having doubt of conception from the first month itself she should take non-medicated milk repeatedly in desired quantity (considering her digestive power and strength). Congenial diet should be taken in morning and evening.

Suśruta S. : Sweet, cold and liquid diet should be taken from first to third month.

Vāgbhaṭa I : During first month the pregnant woman should take medicated milk (non-medicated in different edition), timely in specific quantity (the quantity which does not produce indigestion and the time or twice i. e. morning and evening). Even in these days

१. मात्रावद्यत्नेनाधिक्यरक्षया काले कालेऽभ्रस्य द्वयोरपि कालयोः, अतएवाजीर्णादिपरिहाराय मात्रावदिति।
(अ० सं० शा० ३/३ की इन्दु टी०)

२. ..... क्षीरमनुपसंस्कृतं .....। (अ० सं० शा० ३/३ पाठभेद इन्दुव्या० पु०)

३. प्रथमे मासि यष्टीमधुपरूषकं मधुपुष्पाणि यथालाभं। नवनीतेन पयो मधुमधुरं पाययेच्च ॥ (हा० सं० तृ० स्था० ४९/१)

for first twelve days she should take *ghṛta* extracted from milk (clarified butter extracted from milk) and medicated with *śāliparṇī* and *palāśa*, water already boiled with gold or silver and cooled be taken as a after drink. Sweet, cold, liquid and congenial diet should be taken twice i.e. morning and evening. Massage of oil and rubbing of unguent should be avoided.

Hārīta S. : During first month out of *madhuyaṣṭī, parūṣaka* and *madhūkapuṣpa* available drugs should be taken with butter and honey followed by use of sweetened milk.

(२) द्वितीय मास में पथ्य (Regimen for second month)

द्वितीये मासे क्षीरमेव च मधुरौषधसिद्धम्। (च० सं० शा० ८/३२)

.....द्वितीय.....मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत॥ (सु० सं० शा० १०/४)

विशेषेण द्वितीये मधुरौषधसिद्धं पयः पिबेत्। (अ० सं० शा० ३/४)

द्वितीय मास में मधुरवर्ग की औषधियों से साधित दुग्ध का ही सेवन करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने प्रथम मास की ही भाँति इस मास में भी मधुर तथा शीत एवं द्रवप्राय आहार-सेवन वर्णित किया है।

महर्षि वाग्भट ने भी द्वितीय मास में विशेषकर मधुर औषधियों से साधित क्षीर-पान का विधान बताया है।

महर्षि हारीत ने दूसरे-मास में काकोली से सिद्ध दुग्ध मधुर या मीठा करके पिलाने का निर्देश दिया है[1]।

Caraka S. and Vāgbhaṭa I: Milk medicated with *madhura* drugs.

Suśruta S. : Sweet, cold and liquid diet.

Hārīta S. : Sweetened milk treated with *kākolī*.

(३) तृतीय मास में पथ्य (Regimen for third month)

तृतीये मासे क्षीरं मधुसर्पिर्भ्यामुपसंसृज्य। (च० सं० शा० ८/३२)

.....तृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत; विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकौदनं पयसा भोजयेत्॥
(सु० सं० शा० १०/४)

तृतीये तदेव सर्पिर्मधुभ्याम्। (अ० सं० शा० ३/५)

तृतीय मास में मधु एवं घृत से संस्कृत किए हुए दुग्ध का प्रयोग करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि तृतीय मास में प्रथम एवं द्वितीय सदृश ही मधुर, शीतल तथा द्रवप्राय आहार का सेवन करे, विशेषकर इस मास में पकाया हुआ षष्टि चावल दुग्ध के साथ भोजन करे।

महर्षि वाग्भट ने भी इस मास में मधु एवं सर्पि के साथ दुग्ध प्रयोग वर्णित किया है।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि तृतीय मास में कृशरा का प्रयोग श्रेष्ठ है।[2]

Caraka S. and Vāgbhaṭa I : Milk with honey and *ghṛta*.

Suśruta S. : Sweet, cold and liquid diet, specially cooked *ṣaṣṭī* rice with milk,

१. द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥ (हा० सं तृ० स्था० ४९/२)

२. तृतीये कृशरा श्रेष्ठा .....। (हा० सं० तृ० स्था० ४९/२)

Scanned with CamScanner

Hārīta S. : Kṛśarā (olio prepared with rice and pulse).

(४) चतुर्थ मास में पथ्य (Regimen for fourth month)

चुतर्थे मासे क्षीरनवनीतमक्षमात्रमश्नीयात् ॥ (च० सं शा० ८/३२)

.... षष्टिकौदनं ..... चतुर्थे दध्ना .....। चतुर्थे पयोनवनीतससृष्टमाहारयेज्जाङ्गलमांसमहितं हृद्यमन्नं भोजयेत् ॥ (सु० सं० शा १०/४)

चतुर्थेऽक्षमात्रनवनीतयुक्तम् । (अ० सं० शा० ३/६)

चतुर्थ मास में दुग्ध तथा नवनीत या दुग्ध से निकाले नवनीत को अक्ष (२ तोले) की मात्रा में सेवन करे।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि इस मास में षष्टि चावल के ओदन को दधि के साथ देना चाहिए तथा दुग्ध एवं नवनीत से संस्कृत तथा जांगल प्राणियों के मांस के साथ हृद्य (रुचिकर) अन्न भोजन के लिए देना चाहिए।

महर्षि वाग्भट ने भी चतुर्थ मास में अक्षमात्र (२ तोले) नवनीत से युक्त दुग्ध सेवन का विधान बताया है। महर्षि भेल ने चतुर्थ मास के प्राप्त हो जाने पर दुग्ध में नवनीत मिलाकर[1] तथा महर्षि हारीत ने संस्कृत ओदन के प्रयोग का वर्णन किया है[2]।

Caraka S. : Butter extracted from milk in the quantity of one *akṣa* or milk with butter.

Suśruta S. : Cooked *ṣaṣṭī* rice with curd, dainty and pleasant food mixed with milk and butter and meat of wild animals.

Vāgbhaṭa I : Milk with one *akṣa* of butter.

Bhela S. : Milk with butter.

Hārīta S. : Medicated cooked rice.

(५) पञ्चम मास में पथ्य (Regimen for fifth month)

पञ्चमे मासे क्षीरसर्पिः॥ (च० सं० शा० ८/३२)
..... षष्टिकौदनं ..... पञ्चमे पयसा; ..... जाङ्गलमांससहितं हृद्यमन्नं ..... पञ्चमे क्षीरसर्पिः संसृष्टम् ॥ (सु० सं० शा० १०/४)
पञ्चमे क्षीरसर्पिः । (अ० सं० शा० ३/७)

पाँचवें मास में क्षीर एवं घृत या क्षीरोद्धृत घृत का प्रयोग करे।

महर्षि सुश्रुत ने पंचम मास में षष्टिक ओदन का दुग्ध के साथ तथा जांगल मांस युक्त हृद्य अन्न का क्षीर एवं सर्पि के साथ भोजन करने का निर्देश किया है।

महर्षि वाग्भट ने दुग्ध से निकाले घृत (दुग्ध से निकाले मक्खन से बनाए घृत) के प्रयोग का वर्णन किया है[3]।

महर्षि भेल ने पंचम मास में क्षीर और यवागू[4] तथा हारीत ने पायस[5] के प्रयोग का निर्देश किया है।

१. चतुर्थे खलु मासे प्रतिविहिते क्षीरे नवनीतं प्राश्नीयात् ॥ (भे० सं० शा० ८/६)
२. .....चतुर्थे च कृतौदनं । (हा० सं० तृ० स्था० ४९/२)
३. पञ्चमे क्षीरोद्धृतं सर्पिः .....। (अ० सं० शा० ३/७ की इन्दु टी०)
४. पञ्चमे क्षीरयवागूः। (भे० सं० शा० ८/६)
५. पञ्चमे पायसं दद्यात् .....॥ (हा० सं० तृ० स्था० ४९/३)

Caraka S. and Vāgbhaṭa I : Ghṛta prepared with butter extracted from milk.

Suśruta S. : Cooked *ṣaṣṭī* rice with milk, meat of wild animals alongwith dainty food mixed with milk and *ghṛta*.

Bhela S. : Yawāgū (rice gruel).

Hārīta S. : Pāyasa (rice cooked with milk and sweetened).

(६) षष्ठ मास में पथ्य (Regimen for sixth month)

षष्ठे मासे क्षीरसर्पिर्मधुरौषधसिद्धम् ॥ (च० सं० शा० ८/३२)
षष्ठे श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद् यवागूं वा । (सु० सं० शा० १०/४)
षष्ठे तदेव मधुरौषधसिद्धम् ॥ (अ० सं० शा० ३/८)

छठवें मास में मधुरवर्ग की औषधियों से सिद्ध क्षीरसर्पि का प्रयोग करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत के मत से षष्ठ मास में गोक्षुरु से सिद्ध घृत या (गोक्षुरु से सिद्ध) यवागू का मात्रानुसार पान करना चाहिए।

महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि षष्ठ मास में उसे ही अर्थात् क्षीरसर्पि को मधुरौषध से सिद्ध करके देना चाहिए।

महर्षि भेल ने क्षीरसर्पि[1] तथा हारीत ने मीठे दही[2] के प्रयोग का विधान बताया है।

Caraka S. and Vāgbhaṭa I : Ghṛta (prepared from milk) medicated with the durgs of *madhura* gorup.

Suśruta S. : Ghṛta or rice gruel medicated with *gokṣuru.*

Bhela S. : Ghṛta prepared with butter extracted from milk.

Hārīta S. : Sweetened curd.

(७) सप्तम मास में पथ्य (Regimen for seventh month)

तदेव सप्तमे मासे । (च० सं० शा० ८/३२)
सप्तमे सर्पिः पृथक्पर्ण्यादिसिद्धम् । एवमाप्यायते गर्भः ॥ (सु० सं० शा० १०/४)
सप्तमे च .....। (अ० सं० शा० ३/९)

सप्तम मास में भी उसी का अर्थात् मधुरौषध साधित क्षीरसर्पि का प्रयोग करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार सप्तम मास में पृथक्पर्णी आदि से सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिए इस प्रकार गर्भ की वृद्धि होती है। टीकाकार डल्हण ने पृथक्पर्ण्यादि से विदारिगन्धादि वर्ग की औषधियों को लेने का निर्देश दिया है[3]।

महर्षि वाग्भट ने सप्तम मास में भी वही अर्थात् षष्ठ मास सदृश मधुरौषध साधित क्षीरसर्पि प्रयोग का निर्देश किया है।

हारीतसंहिताकार ने घृतखण्ड[4] के प्रयोग का विधान बताया है।

१. षष्ठे क्षीरसर्पिः ॥ (भे० सं० शा० ८/६)
२. ..... षष्ठे च मधुरं दधि । (हा० सं० तृ० स्था० ४९/३)
३. पृथक्पर्ण्यादिः विदारिगन्धादिः .....। (सु० सं० शा० १०/४ की डल्ह० टी०)
४. सप्तमे घृतखण्डेन .....। (हा० सं० तृ० स्था० ४९/३)

Scanned with CamScanner

Caraka S. and Vāgbhata I : Same as in sixth month.

Suśruta S. : *Ghṛta* medicated with *pṛthakparṇyādi (vidārigandhādi)* group of drugs. This helps in proper growth and development of fetus.

Hārīta S. : *Ghṛtakhaṇḍa* (a sweet dish).

(८) अष्टम मास में पथ्य (Regimen for eighth month)

अष्टमे तु मासे क्षीरयवागूं सर्पिष्मतीं काले काले पिबेत्; तत्रेति भद्रकाप्यः, पैङ्गल्याबाधो ह्यस्या गर्भमागच्छेदिति; अस्त्वत्र पैङ्गल्यबाध इत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः, न त्वेवैतन्न कार्यम्; एवं कुर्वती ह्यारोगाऽऽरोग्यबलवर्णस्वरसंहननसम्पदुपेतं ज्ञातीनामपि श्रेष्ठमपत्यं जनयति ॥ (च० सं० शा० ८/३२)

अष्टमे बदरोदकेन बलातिबलाशतपुष्पापललपयोदधिमस्तुतैललवणमदनफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत् पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थं च वायोः; ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्, अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरूपद्रवा च भवति, अत ऊर्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जाङ्गलरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकालात्; एवमुपक्रान्ता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते । (सु० सं० शा० १०/४)

अष्टमे क्षीरयवागूं सर्पिष्मतीं पिबेत् । नेति खण्डकाप्यो गर्भस्य पैङ्गल्याबाधभयात् । अस्ति पैङ्गल्याबाधस्तथाप्येवं कुर्वीत । नीरुजं बलवर्णसत्त्वसंहननसम्पदुपेतं ज्ञातीनामग्रगण्यमपत्यं जनयतीति भगवानात्रेयः । बदरोदकेन पललपयोदधिमस्तुतैललवणफलघृतमधुयुक्तेनास्थापयेत् । पुराणविड्विवशुद्ध्यर्थम् मधुकादिमधुरौषधसिद्धेन च तैलेनानुवासयेदनुलोमनाय वायोः । अनुलोमे हि मारुते सुखमनुपद्रवा प्रसूते । गर्भिणीं तु स्नुब्जामास्थापयेदनुवासयेद्वा । तथाऽस्या विवृतमार्गतया सम्यग्औषधमनुप्रविशति । अत ऊर्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जाङ्गलरसैश्चोपाचरेदाप्रसवकालादिति भगवान्धन्वन्तरिः ॥ (अ० सं० शा० ३/११)

क्षीरपेया च पेयाऽत्र सघृताऽम्वामतं घृतम् । मधुरैः साधितं शुद्धयै पुराणशकृतस्तथा॥
शुष्कमूलककोलाऽम्लकषायेण प्रशस्यते। शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैन्धवः॥
(अ० हृ० शा० १/६४, ६५)

आठवें मास में दुग्ध से बनी हुई एवं घृत मिश्रित यवागू समय पर पीये। महर्षि भद्रकाप्य का कथन है कि यह नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसके देने से गर्भ में पैंगल्य (पिंगलता या पीलापन) आ जाता है। भगवान पुनर्वसु आत्रेय का कथन है कि ठीक है कि पैंगल्य बाधा होती है, परन्तु (इस बाधा के कारण) यह (क्षीरयवागू प्रयोग) अकार्य नहीं है; ऐसा करने से अर्थात् क्षीरयवागू देने से गर्भिणी निरोग रहकर आरोग्य, बल, वर्ण, स्वर तथा संहनन की उत्तमता से युक्त, जाति-बन्धु-बान्धवों में उत्तम सन्तान उत्पन्न करती है। टीकाकार चक्रपाणि ने पैंगल्य से पिंगल-नेत्रता मानकर क्षीरयवागू के प्रयोग का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि क्षीरयवागू का प्रयोग अल्पदोषकारक होता है, परन्तु बाद में बहुत ही गुणप्रद एवं लाभ देने वाला होता है अतः इसका प्रयोग करना चाहिए[1]।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार अष्टम मास में पुराने मल के शोधन तथा वायु के अनुलोमन करने के लिए बला, अतिबला, शतपुष्पा, पलल (पीसा हुआ तिल), दूध, दही का पानी या दही तथा मस्तु, तैल, लवण, मदनफल, मधु और घृत से मिश्रित बेर के क्वाथ से आस्थापन बस्ति दे। इसके पश्चात् दुग्ध एवं मधुर वर्ग की औषधियों के क्वाथ से साधित तैल की अनुवासन बस्ति दे। वायु का अनुलोमन हो जाने से (स्त्री बालक को) सुख पूर्वक प्रसवित करती है तथा उपद्रव रहित (प्रसवा एवं सूतिकावस्था में) रहती है। इसके पश्चात् प्रसवकाल तक स्निग्ध यवागुओं तथा जांगल मांसरस द्वारा उपक्रम या चिकित्सा

१. पैङ्गल्यं पिङ्गलनेत्रता। ..... पैङ्गल्यस्यात्पदोषत्वादुत्तरकालं सुकरप्रतिक्रियत्वाच्च क्षीरयवाग्ववचारणे बहुगुणलाभात् कर्तव्यम्.....। (च० सं० शा० ८/३२ की चक्र० टी०)

करे। इस प्रकार चिकित्सित स्त्री स्निग्ध शरीर वाली एवं बलवान होकर सुख के साथ उपद्रव रहित होकर प्रसवित होती है।

अष्टांगसंग्रहकार ने महर्षि चरक एवं सुश्रुत दोनों के ही वर्णनों का सामञ्जस्य करते हुए लिखा है कि आठवें मास में दुग्ध से बनी एवं घृत मिश्रित यवागू पीने को देनी चाहिए। आचार्य खण्डकाप्य ने कहा है कि ऐसा नहीं करना चाहिए, इसके प्रयोग से गर्भ को पैंगल्य बाधा होती है, परन्तु भगवान आत्रेय का कथन है कि नहीं, पैंगल्य बाधा होने पर भी इसे (क्षीरयवागू को) देना चाहिए, क्योंकि इसके प्रयोग से स्त्री निरोग, बल, वर्ण, सत्व एवं संहनन से युक्त, अपने बन्धु-बान्धवों में अग्रगण्य सन्तान को उत्पन्न करती है। बदरी के क्वाथ में पलल (तिलकल्क), दुग्ध, दही, मस्तु, तैल, लवण, मदनफल, घृत तथा मधु मिलाकर आस्थापन बस्ति दे तथा पुराण मल-शोधन एवं वायु के अनुलोमनार्थ मधुयष्टी आदि मधुरौषधवर्ग से साधित तेल की अनुवासन बस्ति दे। वायु के अनुलोम हो जाने से स्त्री सुख से उपद्रव रहित होकर प्रसवित होती है। गर्भिणी को न्युब्ज स्थिति में ही आस्थापन या अनुवासन बस्ति देनी चाहिए, क्योंकि इस स्थिति में मार्ग के विवृत होने से (गर्भ एवं गर्भाशय के ऊपर खिसक जाने के कारण) औषधि सम्यक् प्रकार से प्रविष्ट हो जाती है। इसके पश्चात् प्रसवकाल तक स्निग्ध यवागुओं तथा जांगल मांसरस द्वारा उपचार करे ऐसा भगवान धन्वन्तरि का कथन है।

अष्टाङ्गहृदयकार का कथन है कि आठवें मास में घृत से युक्त क्षीरपेया (दुग्ध से बनी यवागू या खीर आदि) पीने को देनी चाहिए, तथा पुराण मल की शुद्धि के लिए मधुरवर्ग की औषधियों से सिद्ध घृत से अनुवासन बस्ति देनी चाहिए; तथा शुष्क मूली, बेर एवं अम्ल पदार्थ के क्वाथ में शतपुष्पा का कल्क, घृत, तैल तथा सैन्धव लवण मिलाकर बस्ति (निरूह) देनी चाहिए।

महर्षि हारीत ने इस मास में घृतपूरक या घेवर का प्रयोग बताया है[1]।

Caraka says that in this month rice gruel prepared with milk and mixed with *ghṛta* should be given. Bhadrakāpya opines that it should not be given, because by use of this the child may become tawny in complexion. Punarvasu Ātreya agrees that it does produce tawny complexion, however, it is not useless, because by use of this the pregnant woman remains free from diseases, and delivers the child possessing best health, energy, complexion, voice, compactness of the body and much superior to other family members. Cakrapāni explains that since the side-effects are negligible and benefits much more hence it should be used.

Suśruta has indicated that in this month for clearing the retained feces and *anulomana* (regulation or putting in right direction) of *vāyu*. the *āsthāpana basti* (evacuative enema) should be given with decoction of *badarī* mixed with *balā, atibalā, śatapuṣpā, palala* (pestled sesamum seeds), milk, curd, *mastu* (sour butter), oil, salt, *madanaphala*, honey and *ghṛta*. This should be followed by use of *anuvāsana basti* (uncting enema) of oil medicated with milk and decoction of drugs of *madhura* group. Due to movement of *vāyu* in its right direction the lady delivers without difficulty and remains free from complications. After this she should be given unctuous gruels and meat-soup of wild animals. The body of woman thus treated becomes unctuous, she gains strength and delivers normally without complications.

Vāgbhaṭa I has incorporated the description of both Caraka and Suśruta with only replacement of name of Bhadrakāpya to Khaṇḍakāpya and achievement of *satwa* (vitality)

१. ..... चाष्टमे घृतपूरकम्। (हा० सं० तृ० स्था० ४९/३)

Scanned with CamScanner

also in the description of Caraka and deletion of three drugs i. e. *śatapuṣpā, balā* and *atibalā* from the list of drugs for *āsthāpana basti* advised by Suśruta. He has advised that the enema should be given to the woman in bent or humpbacked position becacuse in this position the passage becomes dilated and the medicine enters properly.

Vāgbhaṭa II has advised use of liquid diet prepared with *ghṛta* and milk and *anuvāsana* enema prepared with *ghṛta* and drugs of *madhura* group for cleaning the collected feces. After this, the *nirūha basti* (enema) should be given with the decoction of *śuṣkamūlī, badarī* and sour substances mixed with pestled *śatapuṣpā, ghṛta*, oil and rock salt.

Hārīta has advised use of *ghṛtapūraka* (a kind of sweet preparation).

(९) नवम मास में पथ्य (Regimen for ninth month)

नवमे तु खल्वेनां मासे मधुरौषधसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्। अतश्चैवास्यास्तैलात् पिचुं योनौ प्रणयेद्गर्भ-स्थानमार्गस्नेहनार्थम् (च० सं० शा० ८/३२)

नवमे तु तत एवानुवासनतैलात्पिचुं योनौ प्रणयेत् गर्भमार्गाशययोः स्नेहनार्थमिति ॥ (अ० सं० शा० ३/१२)

शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मांसरसौदनः। बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम् ॥ ६७॥
तत एव पिचुं चास्या योनौ नित्यं निधापयेत्। वातघ्नपत्रभङ्गाम्भः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥ ६८॥
निःस्नेहाङ्गी न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत् ॥ ६९॥ (अ० हृ० शा० १)

नवम मास में इस (गर्भिणी) स्त्री को मधुरवर्ग की औषधियों से साधित तैल की अनुवासन बस्ति देनी चाहिए तथा गर्भस्थान एवं गर्भमार्ग के स्नेहनार्थ इसी तैल की पिचु योनि में धारण करनी चाहिए।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि उसी तैल से (अष्टम मास में वर्णित मधुरौषध साधित तैल से) गर्भमार्ग एवं गर्भाशय के स्नेहनार्थ योनि में पिचु धारण करनी चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार का निर्देश है कि नवें मास में स्नेह से युक्त मांसरस तथा ओदन अथवा स्नेह-युक्त यवागू का प्रयोग तथा पूर्ववर्णित (अष्टम मास में) अनुवासन का प्रयोग श्रेष्ठ है। उसी तैल की पिचु योनि में नित्य धारण करनी चाहिए। कटे हुए वातघ्न पत्रों के शीतल क्वाथ से नित्य स्नान हितकर है। सम्पूर्ण नवें मास में स्नेह-विरहित अंगों वाली स्त्री को अनुवासन नहीं देना चाहिए अर्थात् स्नेह-प्रयोग के बाद ही स्निग्ध अनुवासन बस्ति देनी चाहिए।

महर्षि हारीत ने नवें तथा दशम मास में विविध प्रकार के अन्न का प्रयोग बताया है[1]।

महर्षि भेल ने इस नवें मास में कदम्बमाषतैल की अनुवासन बस्ति का विधान बताया है इससे जीर्णपुरीष अधोमार्ग में चला जाता है एवं सामान्य प्रसव होता है। बाद में यवागू-पान कराना चाहिए[2]।

Caraka and Vāgbhaṭa I have advised use of *anuvāsana basti* with oil prepared with the drugs of *madhura* group or the same as used in eighth month (A.S.). Vaginal tampon of this very oil should be given for lubrication of *garbhasthāna* (uterus but here cervix) and *garbhamārga* (vaginal canal and perineum).

Vāgbhaṭa II has prescribed meat-soup with cooked rice and fat (preferably *ghṛta*) or

१. नवमे विविधान्नानि दशमे ·····। (हा० सं० तृ० स्था० ४९/३)

२. नवमे तु खलु मासे प्रतिविहिते कदम्बमाषतैलेनानु(वासयेत्)। एवं ह्यस्याः प्रतिसंवर्तमासा(ना)याञ्च(श्च) त(स)म्मतं भवति, जीर्णपुरीषं चाधः स्रवन्सुखं च जायते। अथैनां प्रजनिष्यतीति यवागूं पाययेत्॥ (भे० सं० शा० ८/७)

rice gruel mixed with good quantity of fat. *Anuvāsana basti* as advised in eighth month and vaginal tampon of the same oil should be given. Daily bath with cold decoction of pounded leaves of drugs capable of suppressing *vāta* should be given. To the woman having absence of unctuousness in the body *anuvāsana basti* should not be given for whole ninth month or in other words unctuous *anuvāsana basti* should be given only after use of fat.

Hārīta opines that in ninth and tenth month different varieties of cereals should be used.

Bhela says that *anuvāsana basti* with *kadambamāṣa* oil should be given, by use of this the accumulated feces goes in the lower passage. thus delivery of child becomes normal. After this (use of *basti*) rice gruel should be given.

विमर्श (Comments)

महर्षि सुश्रुत ने नवम मास के पथ्य का वर्णन नहीं दिया। अष्टम मास में बस्ति-विधान-वर्णन के बाद प्रसवकाल तक स्निग्ध यवागू एवं जाङ्गल-मांसरस के द्वारा उपचार करने का निर्देश दिया है जिसका स्पष्ट तात्पर्य है कि नवम मास में स्निग्ध यवागू एवं जाङ्गल-मांसरस का प्रयोग निर्दिष्ट है।

Though Suśruta has not prescribed any specific dietetic regimen specifically for ninth month, however, in the regimen of eighth month after use of enema continuous use of unctuous gruels and meat-soup of wild animals upto the period of delivery is advised. This indicates that Suśruta has advised use of unctuous gruel and meat-soup of wild animals in ninth month also.

(आ) मासानुमासिक पथ्य से लाभ (Benefits of monthly regimen)

परमतो निर्विकारमाप्याय्यमानस्य गर्भस्य मासे मासे कर्मोपदेक्ष्यामः।·····। एवं कुर्वती ह्यरोगाऽऽरोग्यबलवर्णस्वरसंहननसंपदुपेतं ज्ञातीनामपि श्रेष्ठमपत्यं जनयति।·····। यदिदं कर्म प्रथमं मासं समुपादायोपदिष्टमानवमान्मासात्तेन गर्भिण्या गर्भसमये गर्भधारिणीकुक्षिकटीपार्श्वपृष्ठं मृदूभवति, वातश्चानुलोमः संपद्यते, मूत्रपुरीषे च प्रकृतिभूते सुखेन मार्गमनुपद्येते, चर्मनखानि च मार्दवमुपयान्ति, बलवर्णौ चोपचीयेते, पुत्रं चेष्टं संपदुपेतं सुखिनं सुखेनैव काले प्रजायत इति। (च० सं० शा० ८/३२)

·····एवमाप्याय्यते गर्भः ·····। ·····अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति ·····। एवमुपक्रान्ता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते। (सु० सं० शा० १०/४)

अनेन प्रथममासादारभ्य क्रमेण गर्भिण्याः प्रसवकाले गर्भधारिणीकुक्षिकटीपार्श्वपृष्ठं मृदु भवति। वायुश्चानुलोमः सम्पद्यते। मूत्रपुरीषं च प्रकृतिभूतं जरायुश्च मार्गं प्रतिपद्यते। पुत्रं चेष्टं कल्यमायुष्मन्तं सुखिनं सुखेन काले बलवती प्रसूते ॥ (अ० सं० शा० ३/१३)

महर्षि चरक ने कहा है कि विकार रहित बढ़ते हुए गर्भ के लिए प्रत्येक मास में किए जाने वाले कर्म का निर्देश करूँगा अर्थात् मासानुमासिक पथ्य गर्भ के विकार रहित हो सामान्य वृद्धि के लिए हितकर है। इसके करने से स्त्री स्वस्थ रहकर आरोग्य, बल, वर्ण, स्वर तथा संहनन से युक्त सम्पूर्ण जाति में श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करती है। प्रथम से नवम मास तक के लिए वर्णित उपक्रम से गर्भिणी के गर्भ समय में (गर्भाधान से प्रसवोपरान्त) गर्भधारिणी[1], कुक्षि, कटि, पार्श्व एवं

१. गर्भधारिणी को टीकाकार चक्रपाणि ने अपरा माना है (गर्भधारणी अपरा ····· च० सं० शा० ८/३२ की चक्र० टीका)। इन्दु ने गर्भधारणी की कोई व्याख्या नहीं की। चरक के पाठभेद में 'गर्भधारणे' लिखा है, जिसका अर्थ 'गर्भ के धारण में'

क्रमशः पृष्ठ २२६ में.....

Scanned with CamScanner

पृष्ठ मृदु होते हैं, वात का अनुलोमन होता है, मूत्र एवं पुरीष स्वाभाविक रूप में सुखपूर्वक अपने मार्ग से निकलते है। चर्म एवं नख आदि में मृदुता आ जाती है। (गर्भिणी में) बल-वर्ण का उपचय होता है, वह आकांक्षित, सर्वगुण-सम्पन्न, सुखी एवं स्वस्थ पुत्र को सुखपूर्वक उचित काल में जन्म देती है।

यद्यपि महर्षि सुश्रुत ने मासानुमासिक पथ्य के लाभों का पृथक् उल्लेख नहीं किया, परन्तु सामान्य पथ्य के वर्णन में ही यत्र-तत्र लाभों का भी उल्लेख है जैसे इस प्रकार से गर्भ वृद्धि को प्राप्त होता है। वायु के अनुलोम होने से सुखपूर्वक प्रसव करती है तथा उपद्रव रहित रहती है। इस प्रकार का उपक्रम करने से (गर्भिणी) स्त्री स्निग्ध तथा बलवान् होती है तथा सुखपूर्वक उपद्रव-रहित हो प्रसव करती है।

महर्षि वाग्भट ने चरक सदृश ही लिखा है कि इस प्रकार प्रथम मास से प्रारम्भ कर क्रमशः यह कर्म करने से प्रसवकाल में गर्भिणी के गर्भधारिणी, कुक्षि, कटि, पार्श्व एवं पृष्ठ मृदु होते हैं। वायु का अनुलोम होता है, मूत्र, मल एवं जरायु स्वाभाविक होकर अपने मार्ग में आ जाते हैं। स्त्री बलवान होकर इच्छित, श्रेष्ठ, दीर्घायु एवं सुखी पुत्र को सुखपूर्वक प्रसवित करती है।

गर्भिणी के आहार-विहार की उपादेयता का वर्णन करते हुए महर्षि चरक, काश्यप, भेल एवं टीकाकार डल्हण ने स्पष्ट किया है कि गर्भिणी स्त्री द्वारा लिए हुए आहार-विहार से ही गर्भिणी स्त्री के शरीर के साथ गर्भाशयान्तर्स्थित गर्भ का पोषण होता है, साथ ही स्तन या स्तन्य (चरक, काश्यप भेल एवं डल्हण मतानुसार) का भी गर्भिणी स्त्री के आहार से उत्पन्न रस से ही पोषण होता है[1]।

Describing the benefits of this dietetic regimen prescribed for the woman having normal development of fetus, Caraka says that by this the woman remains healthy and delivers the child possessing good health, energy or strength, voice, compactness and much superior to other family members. Further he and Vāgbhaṭ I say that by the use of this regimen from first to ninth month her *garbhadhāriṇī* (fetal membranes or vaginal canal), *kukṣi* (abdomen), sacral region, flanks and back become soft, *vāyu* moves into its right path or direction; feces, urine and placenta (AS.) are excreted or expelled easily by their respective passages; skin and nail become soft (C.), woman gains strength and complexion and she delivers easily at proper time a desired, excellent, healthy child possessing all the qualities and long life.

Suśruta has not described benefits separately, however, some of them mentioned here and there inbetween the monthwise regimen are— that by this the fetus attains good growth, *vāyu* moves in its right direction, woman becomes unctuous, strong and delivers the child easily without complications.

पृष्ठ २२५ से क्रमशः .....

होता है अर्थात् गर्भ-प्राप्ति के समय एवं गर्भधारण-काल में उपर्युक्त अङ्ग मृदु होते हैं, परन्तु इससे भी कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता, क्योंकि मासानुमासिक पथ्य गर्भधारण के बाद की प्रक्रिया है। यदि चरकोल्लिखित गर्भ-समय से गर्भ का प्रसवकाल अर्थ करें जो अष्टाङ्गसंग्रह में स्पष्टतर शब्दों में लिखा है एवं गर्भधारणी से अपरा के स्थान में गर्भधारिणी कला (गर्भ को धारण करने वाली कला या एमनिऑटिक तथा कोरिऑनिक कला) अर्थ करें तो विषय कुछ स्पष्ट हो जाता है। गर्भधारिणी शब्द स्त्रीलिङ्ग होने से गर्भाशय का द्योतक नहीं हो सकता, परन्तु योनि के लिए ले सकते हैं, अर्थात् गर्भधारिणी योनि जिसकी मृदुता प्रसव के लिए आवश्यक है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इस वाक्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार कर सकते हैं कि मासानुमासिक पथ्य से प्रसवकाल में गर्भधारिणीकला (एमनिऑटिक एवं कोरिऑनिक कला) या योनि एवं कुक्षि आदि मृदु हो जाते हैं।

१. च० सं० शा० ६/२३; का० सं० सू० १८/६,७; भे० सं० शा० ५/७ (गर्भपोषण पृष्ठ १४३ से १४६)

Emphasizing the importance of woman's diet authors have mentioned that the *rasa* derived from the diet taken by the pregnant woman serves three purposes (1) nourishment of her own body, (2) nourishment of the fetus and (3) nourishment of breast or formation of milk which has already been discussed under fetal nourishment.

विमर्श (Comments)

गर्भावस्था के प्रथम त्रैमास में अधिकांशतः स्त्रियों को छर्दि एवं हृल्लास की अनुभूति होती है, अतः वे सामान्य आहार ले सकने में असमर्थ होती हैं। मधुर, शीतल, द्रव-प्राय आहार का सेवन वमन-जन्य शारीरिक जलीयांश की क्षति को पूर्ति एवं सामान्य पोषण करेगा तथा मधुरवर्ग की औषधियाँ वृंहण होने के कारण गर्भ एवं गर्भिणी के स्वास्थ्य की रक्षा करेंगी। चतुर्थ मास से गर्भ की मांस धातु का विशेष रूप से निर्माण होने के कारण गर्भिणी को प्रोभूजिन की अधिक आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति जाङ्गल-मांसरस सेवन-द्वारा समुचित रूप से हो सकती है। द्वितीय त्रैमासोपरांत अधिकांश स्त्रियाँ अत्यधिक पादशोफ या अन्य जल-सञ्चय-जन्य उपद्रवों का अनुभव करती है; षष्ठ मास में प्रयुक्त गोक्षुर मूत्रल होने के कारण शरीर में जल का सञ्चय न होने देकर इन उपद्रवों का प्रतिषेध करेगी। पृथक्पर्ण्यादि या विदारिगन्धादि वर्ग की औषधियाँ मूत्रल, वृंहण, शोष-नाशक तथा पित्त एवं कफ-नाशक हैं, अतः इनका सप्तम मास में नियोजित प्रयोग गर्भ एवं गर्भिणी के स्वास्थ्य का संरक्षण करेगा। उदरगुहान्तर भार-वृद्धि, आन्त्र-पीड़न तथा प्रोजेस्टरॉन के प्रभाव के कारण अधिकांश स्त्रियों को विबन्ध हो जाता है, जो गर्भावस्था के अन्तिम मासों में अधिक कष्टदायक होता है, अतः अष्टम मास में बस्ति के प्रयोग से इस विबन्ध का निराकरण होगा। यह भी संभव है कि अष्टम या नवम मास में प्रयुक्त बस्ति गर्भाशय-मांसपेशी के कार्य का नियामन करने वाले नाड़ीतन्तुओं को भी प्रभावित करती हो तथा उनके कार्य का नियामन कर प्रसवकाल में उपस्थित होने वाले गर्भाशय मांसपेशी-कार्यजन्य-उपद्रवों का प्रतिषेध करे। सम्भवतः तैल के पिचुधारण से योनिनलिका-स्थित औपसर्गिक कीटाणुओं का नाश होता हो जिससे सूतिकाकाल में उपसर्ग होने की सम्भावना कम हो जाती हो, योनिपथ की मृदुता हो वह प्रसव में सहायक होती हो तथा किसी प्रकार गर्भाशय-पेशी-नियामक नाड़ीतन्तुओं पर प्रभाव डालकर प्रसव के समय गर्भाशय-पेशी के कार्य में सहायक होती हो। यह मूलाधार को मृदु कर प्रसव के समय उसके शिथिलीकरण में भी सहायक हो सकती है।

मधुरवर्ग की औषधियों तथा दुग्ध का प्रयोग सम्पूर्ण गर्भावस्था में निर्दिष्ट है। दुग्ध स्वयं में एक पूर्ण भोजन है। मधुरवर्ग की औषधियाँ वृंहण हैं, अतः इन दोनों के प्रयोग से गर्भ एवं गर्भिणी का स्वास्थ्य सामान्य रहेगा।

During first trimester of pregnancy most women experience nausea and vomiting, thus can not take proper diet. Use of cold and sweet liquid diet and milk will prevent dehydration and supply required nourishment, besides the drugs of *madhura* group being anabolic will help in maintenance of proper health of mother and fetus. Fourth month onwards muscular tissue of fetus grows sufficiently requiring more protein which is supplied by use of meat-soup. By the end of second trimester most women suffer from edema of feet and other complications of water accumulation. Use of *gokṣuru* a good diuretic in sixth month will prevent retention of water as well as its complications. The drugs of *vidārigandhādi* group are diuretic, anabolic, relieve emaciation and suppress *pitta* and *kapha*, their regular use in seventh month might help in maintaining health of mother and fetus. Most women experience constipation in late pregnancy due to pressure of gravid uterus over the bowels and effect of progesterone. Use of enema in eighth month will relieve this constipation, besides this may also affect the autonomous nervous system governing myometrium and help in regulating their function during labour. Tampon of oil may destroy pathogenic bacteria of

Scanned with CamScanner

vaginal canal and prevent puerperal sepsis, besides this tampon may also soften vaginal passage thus help in normal labour. It is just possible that the regular use of tampon might influence autonomic fibres governing myometrium and help in regulating their functions. Besides, this might soften the perineum and help in its relaxation during labour.

Milk and drugs of *madhura* group have been advised for entire pregnancy period. Milk is a whole diet. The drugs of *madhura* group are anabolic, thus use of these will help in maintenance of proper health of mother and growth and development of fetus.

गर्भिणी के लिए सामान्य वर्ज्य अहार-विहार या गर्भोपघातकर भाव (Dietetics and mode of life contraindicated for pregnant woman or garbhopaghātakara bhāvas i. e. factors likely to harm the fetus)

गर्भिणी तीक्ष्णौषधव्यवायव्यायामवर्जनीयानां। (च० सं० सू० २५/४०)

गर्भोपघातकरास्त्विमे भावा भवन्ति, तद्यथा–सर्वमतिगुरूष्णतीक्ष्णं दारुणाश्च चेष्टाः, इमांश्चान्यानुपदिशन्ति वृद्धाः-देवतारक्षोऽनुचरपरिरक्षणार्थं न रक्तानि वासांसि बिभृयान्न मदकराणि मद्यान्यभ्यवहरेन्न यानमधिरोहेन्न मांसमश्नीयात् सर्वेन्द्रियप्रतिकूलांश्च भावान् दूरतः परिवर्जयेत् , यच्चान्यदपि किञ्चित् स्त्रियो विद्युः ॥

(च० सं० शा० ४/१८)

तदा प्रभृति व्यवायं व्यायाममतितर्पणमतिकर्शनं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कुटुकासनं चैकान्ततः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं च काले वेगविधारणं च न सेवेत॥ (सु० सं० शा० ३/१६)

गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति ····· मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेत्, दुर्गन्धदुर्दर्शनानि परिहरेत्, उद्वेजनीयाश्च कथाः शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुञ्जीत, वहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधमयशस्करांश्च भावानुच्चैर्भाष्यादिकं च परिहरेद् यानि च गर्भं व्यापादयन्ति, न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यङ्गोत्सादनादीनि निषेवेत, न चायासयेच्छरीरं, पूर्वोक्तानि च परिहरेत्॥ (सु० सं० शा० १०/३)

गर्भिणी तीक्ष्णौषधव्यवायव्यायामवर्जनीयानाम् ·····। (अ० सं० सू० १३/३)

तत्रेमे गर्भोपघातकराः। तद्यथा–व्यवायव्यायामकर्शनाभिघातातिमात्रसङ्क्षोभियानयानरात्रिजागरणदिवास्वप्न-वेगविधारणाजीर्णातपाग्निक्रोधशोकभयोत्त्रासोपवासोत्कटकविषमकठिनासनश्वभ्रकूपप्रपातप्रियावलोकनश्रवणादयः। समासतः सर्वमतिगुरूष्णतीक्ष्णरुक्षमन्नपानं दारुणाश्च चेष्टाः॥

तथा–देवतारक्षोऽनुपचयपरिरक्षणार्थं न रक्तानि वासांसि धारयेन्न यानमधिरोहेन्न मद्यमांसमश्नीयात्। यच्चान्य-दपि वृद्धस्त्रियो ब्रूयुः।

तस्मात्प्रजासंपदमिच्छन्तौ साध्वात्मानमुपाचरेतां। विशेषेण नारी॥ (अ० सं० शा० २/६० से ६२)

·····न चाभ्यङ्गोद्वर्तनानि सेवेत। यथोक्तानि च दोषकराणि परिहरेदापञ्चमान्मासात्॥

(अ० सं० शा० ३/३)

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु। अकालजागरस्वप्न कठिनोत्कटकासनम्॥ ४४॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम्। उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भिभोजनम्॥ ४५॥
रक्तं निवसनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम्। उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत्॥ ४६॥
तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात्। (अ० हृ० शा० १/४४ से ४७)

क्षीयमाणं च शशिनमस्तं यान्तं च भास्करं। न पश्येद्गर्भिणीनित्यं नाप्युभौ राहुदर्शने॥

सोमार्कौ संग्रहौ श्रुत्वा गर्भिणी गर्भवेश्मनि। शान्तिहोमपराऽऽसीत मुक्तयोगं तु याचयेत्॥
न द्विध्यादतिथिं भिक्षां दद्यान्न प्रतिवारयेत्। स्वयं प्रज्वलिते चाग्नौ शान्त्यर्थं जुहुयाद्घृतम्॥
पूर्णकुम्भं घृतं माल्यं पूर्णपात्रं घृतं दधि। न किञ्चित् प्रतिरुध्नीयान्न च बध्नीत गर्भिणी॥
सूत्रेण तनुना रज्ज्वा स्तम्भनं बन्धनानि च। वर्जयेद्गर्भिणी नित्यं कामं बन्धानि मोक्षयेत्॥

(का० सं० शा० ५/१६-२०)

नैवोन्नता न प्रणता न गुरुं धारयेच्चिरम्। उद्वेजनं तथा हास्यं सङ्घातं चापि वर्जयेत्॥

(का० सं० चि० २/१५)

गर्भिणी के लिए तीक्ष्णौषध प्रयोग, व्यायाम तथा व्यवाय वर्ज्य हैं। आगे वर्णित भाव या कार्य गर्भ को उपघात या नष्ट करने वाले होते हैं जैसे सभी अत्यधिक गुरु, उष्ण एवं तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन, दारुण चेष्टायें (स्वशक्ति से अधिक की चेष्टा)। ये सभी तथा अन्य जो वृद्ध लोग उपदेश करते हैं यथा-(गर्भिणी स्त्री) देवता, राक्षस एवं उनके अनुचरों से रक्षा के हेतु रक्त वस्त्र धारण, मदकारक द्रव्यों एवं मद्य का सेवन न करे, सवारी (ऊँची नीची या असमान रास्ते पर जाने वाली) पर न चढ़े, मांस न खाए तथा अन्य सभी इन्द्रियों के प्रतिकूल या हानिकारक भावों (कार्यों या पदार्थों) का दूर से ही परित्याग करे तथा और भी जो स्त्रियाँ बताए वह न करे।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि उसके बाद से (गर्भाधान के बाद से गर्भिणी स्त्री) मैथुन, व्यायाम, अतितर्पण, अतिकर्शन, दिन में सोना, रात्रि-जागरण, शोक, यान-रोहण, भय, उकड़ू बैठना आदि को बिल्कुल हो तथा स्नेहादि क्रिया एवं रक्तमोक्षण का अकाल में सेवन तथा वेग-विधारण न करे। अन्यत्र स्पष्टीकरण दिया है कि मैथुन करने से गर्भ को पीड़ा होती है[1]।

गर्भिणी-स्त्री प्रथम दिवस से ही मलिन, विकृत या हीन अङ्गों वाले (व्यक्ति) को स्पर्श न करे, दुर्गन्धित एवं दुर्दर्शन (देखने में बुरे लगने वाले) पदार्थों का तथा उद्वेग उत्पन्न करने वाली कथाओं का परित्याग करे। शुष्क, बासी, सड़ा हुआ तथा क्लिन्न अन्न न खाए। बाहर निकलने, शून्य-गृह, चैत्य (देवालय का वृक्ष), श्मशान एवं वृक्षाश्रय में जाने, क्रोध तथा अयशकारी भाव, ऊँची आवाज में बोलने आदि का तथा अन्य गर्भ को बाधा पहुँचाने वाले भावों का परित्याग करे। अत्यधिक तैलाभ्यङ्ग एवं उत्सादन (उबटन) आदि का सेवन न करें। शरीर को (बहुत) न थकावे एवं पहिले बताई हुई (ऊपर लिखी हुई बातों) का परित्याग करे।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने वर्णन किया है कि गर्भिणी को तीक्ष्णौषध-प्रयोग, व्यवाय एवं व्यायाम वर्ज्य हैं। गर्भोपघातक ये भाव हैं–जैसे (अत्यधिक) मैथुन, व्यायाम, कर्शन, अभिघात, अत्यधिक संक्षोभ उत्पन्न करने वाले यान एवं वाहन[2], रात्रि-जागरण, दिन में सोना, वेगधारण, अजीर्ण होना, आतप एवं अग्नि (का सेवन), क्रोध, शोक, भय, उत्त्रास (चकित होना), उपवास, उत्कट, विषम एवं कठिन आसन; गढ़े या कुयें में गिरना, अप्रिय को देखना या अप्रिय शब्द सुनना आदि; संक्षेप में सभी प्रकार के अतिगुरु, उष्ण, तीक्ष्ण एवं रुक्ष अन्नपान का सेवन एवं दारुण चेष्टायें। देवता एवं राक्षसों के अनुपचय या अनुपघात[3] के लिए (अनुचरों से रक्षार्थ) रक्त वर्ण वस्त्र न पहने, सवारी में न चढ़े, मद्य एवं मांस आदि का सेवन न करे तथा अन्य जो भी वृद्ध स्त्रियाँ कहें वह न करे।

इसलिए श्रेष्ठ संतान की कामना करने वाले माता-पिता विशेषकर स्त्री अपने को भी श्रेष्ठ बनावे। (प्रथम मास में)

१. सु० सं० चि० २४/१२३ (पृष्ठ ८३)

२. यान शब्देन वाहनानिषेधेन.....। (अ० सं० शा० २/६० की इन्दुटीका)

३. 'अनुपचय या एकत्रीकरण न होना' शब्द का प्रयोग यद्यपि पूर्णरूपेण अनुचित तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उतना युक्तिसंगत भी नहीं है क्योंकि किसी भी प्रकार के विकार को उत्पन्न करने के लिए देवता या राक्षसों का कहीं भी उपचय नहीं होता। टीकाकार इन्दु ने 'अनुपघात' शब्द का प्रयोग किया है। स्त्री के रक्त वस्त्र आदि के धारण से देवता या राक्षस के अनुपघात का भी प्रश्न नहीं उठता। उपर्युक्त सन्दर्भ में महर्षि चरक ने 'अनुपचय' के स्थान में 'अनुचर' शब्द का प्रयोग किया है जो अधिक युक्तिसङ्गत हैं अतः कोष्ठक के अन्दर 'अनुचर' शब्द लिखा गया है।

Scanned with CamScanner

अभ्यङ्ग एवं उबटन का सेवन न करे तथा पाचवाँ माह प्राप्त होने तक (या चार माह पूरे होने तक) दोषकर पदार्थों का परित्याग करे।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि गर्भिणी स्त्री को अति मैथुन, अत्यधिक परिश्रम, भारवहन, भारी कपड़ा ओढ़ना, अकाल या अनुचित समय में सोना या जागना, कठिन एवं उत्कट आसन, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, वेग एवं इच्छा का धारण, उपवास, अत्यधिक चलना, तीक्ष्ण, उष्ण, गुरु एवं विष्टम्भी भोजन, रक्त वस्त्र का धारण, गड्ढ़ा या कुयें में झाँकना, मद्य, मांस, उत्तान-शयन एवं अन्य जो भी स्त्रियाँ निषिद्ध करें उन सभी का तथा रक्तमोक्षण, शोधन एवं आठवें मास तक बस्ति आदि का परित्याग करना चाहिए।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि गर्भिणी स्त्री क्षीण होते हुए चन्द्रमा (कृष्णपक्ष के चन्द्रमा), अस्त होते हुए सूर्य तथा दोनों ग्रहणों (राहु एवं केतु) को न देखे। सूर्य या चन्द्र का ग्रहण सुनकर गर्भगृह घर के भीतर) में जाकर शान्ति एवं होम तथा ग्रह से विमोचन की प्रार्थना करे। वह अतिथि से द्वेष न करे, उसे भिक्षा दे उसे वापस न भेजे (बिना भिक्षा दिए या आतिथ्य किए)। स्वयं शान्ति के लिए प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुति दे। वह भरे हुए घड़े, घृत, माला तथा दही या घृत से भरे पात्र आदि का प्रतिरोध न करे। सूत्र से या पतली रस्सी आदि से स्तम्भन तथा बन्धन न करे तथा अपने सभी बन्धन खोल दे या ढीले कर दे अर्थात् कोई भी वस्त्र आदि बहुत कस कर अपने शरीर में न बाँधे।

गर्भिणी स्त्री को ऊँचे उठना, बहुत झुकना, देर तक भारी चीज को उठाए रखना, काँपना, अधिक हँसना तथा सङ्घात या चोट आदि का परित्याग करना चाहिए। इसको शीतल जल[1] एवं लशुन[2] का प्रयोग निषिद्ध है।

महर्षि हारीत ने गर्भिणी के द्वारा परित्याज्य पदार्थों का परिगणन करते हुए लिखा है कि गर्भिणी को द्विदल अन्न (दालें आदि), विदाही, गुरु एवं अम्ल पदार्थ तथा उष्ण दुग्ध का परित्याग कर देना चाहिए। उसे मृत्तिका, सूरणकन्द, रसोन तथा पालण्डु नहीं खाना चाहिए या सूरण एवं गौल्य (अति विबंधकारक) पदार्थ रस सहित ही देने चाहिए एवं व्यायाम, मैथुन, क्रोध, शोक, घूमना या टहलना आदि त्याग देना चाहिए इससे सुख की उत्पत्ति होती है।[3]

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत के वर्णन का शब्दभेद से पूर्णरूपेण परन्तु स्पष्टतर रूप में अनुगमन किया है केवल अन्त में अतिमृदु एवं अतिउच्च स्थान में शयन या बैठने का भी निषेध किया है[4]। मैथुन के निषेध का कारण गर्भ को पीड़ा

१. .....गुर्विणीषु च वर्जयेत्। (का० सं० खि० २३/१८)

२. .....सूतिका गर्भिणी शिशुः॥ ३१॥
.....लशुनं न प्रयोजयेत्॥ ३४॥ (का० सं० क० २)

३. वर्जयेद्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणि च। अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणानां विवर्जयेत्॥ ६॥
मृत्तिका भक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः। रसोनश्च पलाण्डुश्च सन्त्याज्यो गुर्विणीस्त्रिया॥ ७॥
सूरणानि प्रदेयानि गौल्यानि सरसानि च॥ ८॥
व्यायामं मैथुनं रोषं शोषं चंक्रमणं तथा। वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः॥ ९॥ (हा० सं० तृतीय ४९)
पाठ में शोष शब्द आया है जिसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता सम्भवतः यहाँ पर "शोक" शब्द होना चाहिए। ऊपर शोक ही अर्थ लिया गया है।

४. गर्भिणी न तु कुर्वीत व्यायाममपतर्पणम्। व्यवायं च न सेवेत न कुर्यादतितर्पणम्॥ ३३२॥
रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा। रक्तमोक्षं वेगरोधं न कुर्यादुत्कटासनम्॥ ३३३॥
मलिनां विकृताकारां हीनाङ्गीं न स्पृशेत्स्त्रियम्। न जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नग्नप्रियम्॥ ३३५॥
वचांसि नापि शृणुयात्कर्णयोरप्रियाणि च। नात्रं पुर्यषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च॥ ३३६॥
चैत्यश्मशानवृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान्। बहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारं च वर्जयेत्॥ ३३७॥
नौच्चैर्ब्रूयान्न तत्कुर्याद्येन गर्भो विनश्यति। तैलाभ्यङ्गोद्वर्तनं च नात्यर्थं कारयेदपि॥ ३३८॥
नामूद्वास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम्। एतांस्तु नियमान्सर्वान्यत्नात्कुर्वीत गर्भिणी॥ ३३९॥ (भा० प्र० पूर्व० ३)

होना बताया है एवं स्पष्टीकरण दिया है कि गर्भ की स्थिति होने के दिन से दूसरे मास में अथवा गर्भ की स्थिति का अनिश्चय होने पर या यथोक्त नक्षत्र आदि के न मिल सकने के कारण तीसरे मास में पुंसवन-संस्कार हो चुकने के बाद गर्भिणी स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिए। पुंसवन संस्कार के बाद के लिए व्यास का मत है वह गर्भिणी स्त्री नदी के तीर पर जाना, आकाश (वर्षा या प्राकृतिक जलाशयों) का जल पीना, पति की शैय्या पर सोना, मरी हुई सन्तान वाली स्त्रियों का साथ, देवालय तथा बगीचे में जाना तथा मांस-भोजन का त्याग कर दे[1]।

योगरत्नाकरकार ने गर्भिणी स्त्री को स्वेदन, वमन, क्षार का प्रयोग एवं दूषित तथा विषम अन्न के सेवन आदि का निषेध किया है[2]।

सभी आचार्यों ने गर्भिणी स्त्री को विभिन्न शोधन कर्मों का निषेध किया है। जिनका गर्भिणी-ज्वर-चिकित्सान्तर्गत उल्लेख है।

Caraka says that the pregnant woman should avoid use of pungent things, (excessive) exercise and coitus. Following factors are harmful for the fetus such as—use of excessive heavy, hot and pungent substances; harsh or voilent activities (activities much beyond one's own capacity) and others as instructed by elder persons, she should not wear red garments for protection from the effect of gods, demons and their followers; should not use intoxicating substances and wine, ride over vehicle (running on uneven path), use meat (excessive) and give up the things contrary to *indriyas* and other harmful articles; the things should also be given up as instructed by old ladies.

Suśruta has mentioned that from the day of conception the woman should totally give up coitus, excercise, excessive satiation (*saṃtarpaṇa* or anabolics), excessive emaciation (*apatarpaṇa* or catabolism), sleeping in day and awakening in night, grief, riding on vehicle, fear, squatting or the posture of sitting on the hams with the soles of feet touching the ground (*utkaṭukāsana*), and avoid untimely use of *snehana* (oleation), blood letting and suppression of natural urges. The coitus troubles the fetus. She should not touch dirty or disfigured persons possessing less body parts; should give up foul smelling, awful looking substances and exciting stories; should not eat dried up, stale, putrified or wet (moistened) food. She should avoid outing, visit of lonely place, *chaitya* (haunted tree), cremation ground or shade of a tree, acts likely to promote anger and disgrace, talking in high pitch etc. all the things likely to harm the fetus. Repeated excessive massage of oil and unguents should not be done, and she should not fatigue herself.

Vāgbhata I has corroborated the views of Caraka, however, alike Suśruta he has also given the list of contraindications as—coitus, exercise, emaciation, trauma, conveyance i.e. carriage or animals causing excessive jerks, night awakening, day sleeping, suppression of

१. ..... गर्भिणीं .....॥ ३०१॥ गर्भिण्यां गर्भपीडा .....॥ ३०५॥
गर्भिणीं गर्भवासदिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थितेरनिश्चये यथोक्तनक्षत्रादिलाभाभावे वा तृतीये मासि पुंसवने कृते नाभिगच्छेत्। यतो पुंसवनान्तरमाह व्यासः–
ततस्त्यजेत्रदीतीरं देवखातोदकं तथा। भर्तुः शय्यां मृतापत्यां तथैवामिषभोजनम्॥
आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत्। देवारामनदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य च॥ (भा० प्र० पूर्व० ५/३०१, ३०५, ३०६)

२. स्वेदनं वमनं क्षारं कदन्नं विषमाशनम्। अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गुर्विणीनां महर्षिभिः॥ (यो० र० क्षीरदोषचि०)

Scanned with CamScanner

natural urges, indigestion, prolonged stay in hot sun or near fire, anger, grief, fear, terror, fasting, squatting or other abnormal hard postures, falling in pits or wells, looking or hearing disliked things etc. The parents specially woman desirous of having offspring of high quality should make themselves superior. In first month massage of oil and unguents and upto fifth month use of articles likely to aggravate *doṣas* should be avoided.

Vāgbhaṭa II has also contraindicated besides excessive coitus and exercise others as carrying of heavy weight, covering herself with heavy sheet etc, untimely sleep, squatting or abuormal sitting, grief, anger, fear, excitement, suppression of desires and urges, fasting, excessive walking, use of pungent, hot, heavy and *viṣṭambhī* (hard to digest) food, use of red garments, peeping in a pit or well, use of wine or meat, sleeping in supine position etc. Blood letting, purifying measures (*Śodhana* during whole pregnancy period) and enemas upto eighth month should not be used.

Kāśyapa has given entirely different type of contraindications i. e. she should not look at declining moon, setting sun and both the *rāhus* (*rāhu* and *ketu*). Knowing solar or lunar eclipse, she should go in the middle of house and perform religious rites and offer oblation to free the planets from the clutches of *grahas*. She should not have spite with guests, offer alms to beggers instead of turning them out, perform oblation of *ghṛta* in burning fire for pacification, should not oppose full ewer, *ghṛta*, garland and pot filled with *ghṛta* or curd, should not tie anything from thread or thin rope and loosen her all the bonds or wear very loose garments. She should not remain for long in acutely erect or flexed posture and carry heavy weight for long, avoid tremering, excessive laughing and trauma etc, Use of cold water and garlic is also contraindicated.

Hārīta has contraindicated use of pulses, edibles producing burning sensation (in abdomen), heavy or sour substances, hot milk, clay, *sūraṇa*, garlic and onion. *Sūraṇa* and other constipating edibles should be taken with their juices. She should avoid coitus, exercise, anger, grief and walking etc. Avoidance of all these measures gives happiness to the woman.

Bhāvamiśra has followed Suśruta with addition of sitting or sleeping in very soft and high place, going to river bank, temple or garden, drinking of rain water, use of meat, association of woman whose child has died etc. in the list of contraindications.

Yogaratnākara has contraindicated use of sudation, emesis, *kṣāra* (alkalies) alongwith polluted and incompatible food.

Cleansing measures are contraindicated for pregnant woman.

विमर्श (Comments)

पूर्वपृष्ठों में लिखित विषय को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्यों ने गर्भिणी के लिए मुख्यतः निम्न प्रकार के निषेध बताए हैं (१) वे निषेध जो स्त्री में शारीरिक या मानसिक थकान या उत्तेजना उत्पन्न करें जैसे व्यवाय, व्यायाम, शोक, क्रोध आदि। यद्यपि सामान्य व्यवाय एवं व्यायाम गर्भिणी के लिए हानिकारक न हो लाभदायक होते हैं परन्तु यहाँ अत्यधिक व्यवाय, व्यायाम आदि का निषेध है जो शारीरिक या मानसिक क्षोभ या क्लान्तता उत्पन्न कर गर्भिणी के स्वास्थ्य

को प्रभावित कर संभवतः गर्भ को भी प्रभावित करें। (२) अन्य निषेध जैसे शून्यागार, चैत्य वृक्ष, श्मशान आदि में जाना, कुयें में झाँकना आदि सभी क्रियायें सम्भवतः स्त्री को भय आदि के कारण तीव्र एवं आकस्मिक मानसिक आघात पहुँचाकर गर्भस्रावादि उपद्रव उत्पन्न कर सकते हैं। (३) विषम यान-वाहन-सेवन या अत्यधिक भार-वहन से औदरीय भार-वृद्धि हो गर्भाशय पर दबाव पड़कर गर्भस्राव या वेदना आदि उत्पन्न हो सकती है। विषम या उत्कट आसन गर्भाशय में दबाव डालकर अपरा के रक्तसंवहन तथा देर तक उत्तान-शयन गर्भाशय के रक्त सञ्चार को प्रभावित कर गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु या अन्य उपद्रव कर सकते हैं। (४) कुछ निषेध भोजन आदि से सम्बन्धित हैं स्वाभाविक है कि विषम आदि अन्न का सेवन गर्भिणी स्त्री एवं परिणाम स्वरूप गर्भ के पोषण एवं वृद्धि को भी प्रभावित कर सकते हैं। यहाँ पर मांस का निषेध है जब कि चतुर्थ मास आदि में महर्षि सुश्रुत ने जाङ्गल मांस का विधान वर्णन किया है अतः यहाँ पर आनूप आदि प्राणियों के अत्यधिक मांस सेवन का निषेध मानना चाहिए। अल्प मात्रा में प्रयुक्त मद्य भी हानिकारक नहीं होगी परन्तु अत्यधिक मद्य का प्रयोग गर्भ के लिए हानिकारक होता है। हारीतसंहिता-वर्णित द्विदल, लहसुन एवं प्याज के निषेध का निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है। इन पदार्थों का अत्यधिक प्रयोग अग्नि में विषमता उत्पन्न कर पाचन शक्ति को प्रभावित कर विबन्ध आदि का कारण हो सकता है सम्भवतः इसी कारण से इनका निषेध किया गया हो। (५) गर्भिणी स्त्री में अतितर्पण का भी निषेध है क्योंकि गर्भिणी का अतितर्पण गर्भ को भी प्रभावित कर उसे अतिस्थूल बना देगा जिससे प्रसव में कठिनाई हो सकती है, शर्करा (कार्बोहाइड्रेट) तथा प्रभूजिन (प्रोटीन) से युक्त पदार्थों का अतिसेवन गर्भजन्य विषमयता का सम्भाव्य कारण माना जाता है। (६) काश्यप संहिता-वर्णित सूर्य-चन्द्रादि दर्शन के विशिष्ट नियमों का निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है पर सम्भव है कि इन ग्रहों से विशिष्ट-काल में निकलने वाली किरणों में कुछ गर्भ-विकृतिकारक प्रभाव होता हो। (७) सभी शोधन कर्म स्त्री-शरीर का क्षोभन करके गर्भस्रावादि उपद्रव-कारक होने की सम्भावना के ही कारण सम्भवतः निषिद्ध हैं।

All these contraindications can be grouped under following headings:

1) Those which produce psychological or physical strain such as grief, exercise etc.: Though normal coitus and exercise are beneficial, however, their excessive use or psychological trauma may precipitate abortion specially in ladies prone for the same.

2) Avoidance of visit to cremation ground etc: Sudden shock may produce abnormality specially abortion.

3) Over weight carrying or vehicle riding may precipitate abortion due to sudden increase in intraabdominal pressure; prolonged squatting in abnormal postures and supine position may influence placental and uterine blood flow (due to pressure of gravid uterus on iliac vessels) thus cause abortion, intrauterine death of the fetus or other abnormalities.

4) Dietetic regulations: Diet of pregnant mother is very important for maintenance of her own health, proper nourishment and growth of the fetus. Texts have contraindicated use of meat, while it is already advised by Suśruta in fourth and fifth month, thus here excessive use of meat of aquatic animals should be taken. Wine in little quantity is not harmful, its excessive use harms the fetus. It is difficult to explain contraindications for use of pulses, garlic and onion etc., it is just possible that their excess use may produce digestive abnormalities.

5) Use of over satiation may excessively increase the body weight of mother and fetus, over eating is one of the cause of pregnancy toxaemia. Over weight of fetus may cause difficulty in labour.

Scanned with CamScanner

6) Specific rays emitted during eclipse may produce abnormalities of fetus.

7) Emesis etc. purifying measures can also precipitate abortion due to reflex stimulation of the myometrium.

गर्भिणी के द्वारा विशिष्ट वर्ज्य आहार-विहार के सेवन का परिणाम (Effect of use of contraindicated things by pregnant woman)

गर्भोपघातकरास्त्विमे भावा भवन्ति; तद्यथा–उत्कटविषमकठिनासनसेविन्या वातमूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्या दारुणानुचितव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेविन्याः प्रमिताशनसेविन्या गर्भो म्रियतेऽन्तः कुक्षेः, अकाले वा स्रंसते,शोषी वा भवति; तथाऽभिघातप्रपीडनैः श्वभ्रकूपप्रपातदेशावलोकनैर्वाऽभीक्ष्णं मातुः प्रपत्यकाले गर्भः; तथाऽतिमात्रसङ्क्षोभिभिर्यानैर्यानेन, अप्रियातिमात्रश्रवणैर्वा। प्रततोत्तानशायिन्याः पुनर्गर्भस्य नाभ्याश्रया नाडी कण्ठमनुवेष्टयति, विवृतशायिनी नक्तञ्चारिणी चोन्मत्तं जनयति, अपस्मारिणं पुनः कलिकलहशीला, व्यवायशीला दुर्वपुषमह्रीकं स्त्रैणं वा, शोकनित्या भीतमपचितमल्पायुषं वा, अभिध्यात्री परोपतापिनमीर्ष्युं स्त्रैणं वा, स्तेना त्वायासबहुलमतिद्रोहिणमकर्मशीलं वा, अमर्षिणी चण्डमौपधिकमसूयकं वा स्वप्ननित्या तन्द्रालुमबुधमल्पाग्निं वा, मद्यनित्या पिपासालुमल्पस्मृतिमनवस्थितचित्तं वा, गोधामांसप्राया शार्कारिणमश्मरिणं शनैर्मेहिणं वा, वराहमांसप्राया रक्ताक्षं क्रथनमतिपरुषरोमाणं वा, मत्स्यमांसनित्या चिरनिमेषं स्तब्धाक्षं वा, मधुरनित्या प्रमेहिणं मूकमतिस्थूलं वा, अम्लनित्या रक्तपित्तिनं त्वगक्षिरोगिणं वा, लवणनित्या शीघ्रवलीपलितं खालित्यरोगिणं वा, कटुकनित्या दुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यं वा, तिक्तनित्या शोषिणमबलमनुपचितं वा, कषायनित्या श्यावमानाहिनमुदावर्तिनं वा, यद्यच्च यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं तत्तदासेवमानाऽन्तर्वत्नी तन्निमित्तविकारबहुलमपत्यं जनयति ॥ (च० सं० शा० ८/२१)

प्रततोत्तानशायिन्याः पुनर्गर्भस्य नाभ्याश्रया नाडी कण्ठमनुवेष्ट्य व्यापत्तिं करोति। विवृतशया नक्तञ्चारिणी चोन्मत्तं जनयति। कलहशीलाऽपस्मारिणम्। व्यवायशीला दुर्वपुषमह्रीकं स्त्रैणं वा। शोकनित्या भीरुमपचितमल्पायुषं वा। अभिध्यायिनी परोपतापिनमीर्ष्यालुं स्त्रैणं वा। स्तेना त्वायासबहुलमभिद्रोहिणमकर्मशीलं वा। अमर्षणा चण्डमौपधिकं वा। स्वप्नशीला निद्रालुमबुधमल्पाग्निं वा। मद्यनित्या तृष्णालुमल्पस्मृतिमनवस्थितं वा। गोधामांसनित्याऽश्मरिणं शनैर्मेहिनं वा। वराहमांसनित्या रक्ताक्षं क्रथनमतिपरुषरोमाणं वा। मत्स्यमांसनित्या चिरनिमेषं स्तब्धाक्षं वा। मधुरनित्या प्रमेहिणं मूकमतिस्थूलं वा। अम्लनित्या रक्तपित्तिनं त्वगक्षिरोगिणं वा। लवणनित्या शीघ्रवलीपलितं खलतिकं वा। तिक्तनित्या शोषिणमबलमपचितं वा। कटुकनित्या दुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यं वा। कषायनित्या श्यामामानाहिनमुदावर्तिनं वा। यच्च यच्च यस्य व्याधेर्निदानं तत्तदासेवमानाऽन्तर्वत्नी स्त्री तत्तद्विकारबहुलमपत्यं जनयति। (अ० सं० शा० २/६१)

एभिर्गर्भः स्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा। (अ० ह० शा० १/४७)

गर्भ का नाश करने वाले ये भाव होते हैं जैसे-उत्कट, कठिन एवं विषम आसन सेवन करने वाली; वात, मूत्र एवं पुरीष के वेग को रोकने वाली, दारुण एवं अनुचित व्यायम सेवन करने वाली, तीक्ष्ण एवं उष्ण पदार्थों को अतिमात्रा में सेवन अथवा अल्प भोजन करने वाली स्त्री का गर्भ कुक्षि के अन्तर्गत ही मर जाता है या अकाल में ही गिर जाता है (गर्भस्राव या पात हो जाता है) या सूख जाता है। माता को (गर्भिणी के गर्भाशय या अधोदर में) अभिघात या प्रपीडन होने, उसके गहरे गड्ढे, कुयें या प्रपात के स्थान को अत्यधिक देखने से गर्भ अकाल में ही गिर जाता है; इसी प्रकार अत्यधिक संक्षोभन उत्पन्न करने वाली सवारियों में यात्रा करने से या अप्रिय बात को अत्यधिक सुनने से भी (गर्भ का अकाल-पात) होता है। हाथ-पैर फैलाकर उत्तान शयन करने वाली स्त्री के गर्भ की नाभि-आश्रित नाड़ी कण्ठ में चारो ओर लिपट कर कष्ट देती है। विवृत या अनावृत होकर या अनावृत देश (स्थान) में शयन करने वाली या रात में घूमने

वाली स्त्री उन्मत्त या उन्माद युक्त (राक्षसों आदि के प्रभाव के कारण) संतान को उत्पन्न करती है[1]। कलि (वचन से झगड़ा) या कलह (शरीर से झगड़ा[1]) करने वाली स्त्री अपस्मार से पीड़ित सन्तान को; अत्यधिक मैथुन करने वाली स्त्री विकृत शरीर वाली, निर्लज्ज एवं स्त्रैण (स्त्री के वशीभूत रहने वाली) सन्तान को; निरन्तर शोक युक्त रहने वाली डरपोक, कृश, अल्पायु सन्तान को; अभिध्यात्री (मानसिक द्रोह करने वाली[1]) स्त्री दूसरे को दुख देने वाली, ईर्ष्यालु तथा स्त्रैण संतान को; चोरी करने वाली (गर्भावस्था में) स्त्री परिश्रमी, अतिद्रोही, अकर्मशील या काम न करने वाली संतान को; असहनशील (किसी की बात को न सहने वाली गर्भिणी स्त्री) चण्ड, कपटी एवं परनिन्दक संतान को; अत्यधिक सोने वाली स्त्री तन्द्रालु, अज्ञानी या मूर्ख तथा अल्पाग्नि संतान को; नित्य मद्य का सेवन करने वाली स्त्री पिपासालु, अल्पस्मृति एवं अस्थिरचित्त संतान को; अक्सर गोधा का मांस खाने वाली शर्करा, अश्मरी या शनैर्मेह से पीड़ित सन्तान को; अक्सर सूकर का मांस खाने वाली रक्ताक्ष, क्रथन (अचानक श्वासावरोध सदृश से युक्त[1]) तथा अत्यधिक खुरदरे रोम वाली सन्तान को; नित्य मत्स्य का मांस खाने वाली चिरनिमेषी (देर के बाद पलक झपकाने वाली) या स्तब्धाक्ष सन्तान को; नित्य मधुर (दुग्ध को छोड़कर अन्य मधुर रस के द्रव्य[1] अत्यधिक मात्रा में) खाने वाली प्रमेह युक्त, अतिस्थूल या मूक सन्तान को; नित्य (अत्यधिक) अम्ल सेवन करने वाली रक्तपित्त पीड़ित, त्वक् या अक्षिरोग पीड़ित सन्तान को; नित्य (अत्यधिक) लवण (रस) सेवन करने वाली शीघ्र वली (त्वचा की झुर्रियाँ), पलित (बाल पक जाना) या खलित (बाल झड़ना) रोग से पीड़ित सन्तान को; नित्य (अत्यधिक) कटु (रस) सेवन करने वाली दुर्बल, अल्प शुक्र वाली एवं अनपत्य (बन्ध्य) सन्तान को; नित्य तिक्त (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली शोषरोग से पीड़ित, बलहीन एवं दुर्बल शरीर वाली सन्तान को; नित्य कषाय (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली श्याव वर्ण, आनाह एवं उदावर्त पीड़ित संतान को जन्म देती है। व्याधियों के विशेष कारणभूत पदार्थों का सेवन करने से उस व्याधि सम्बन्धी विकारयुक्त सन्तान को उत्पन्न करती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने अक्षरशः महर्षि चरक का अनुगमन किया है इन्होंने भी लिखा है कि प्रततोत्तान-शायिनी-स्त्री के गर्भ की नाभि आश्रित नाड़ी कण्ठ का अनुवेष्टन कर कष्ट उत्पन्न करती है। अनावृत-मुख शयन करने वाली या रात में घूमनेवाली उन्मत्त सन्तान को जन्म देती है। कलहशील स्त्री अपस्मार पीड़ित सन्तान को; व्यवायशील स्त्री अत्यधिक आलस्य करने वाले[2], निर्लज्ज एवं स्त्रैण सन्तान को; नित्य दुखी रहने वाली डरपोक, अपचित (स्वल्प भोग के योग्य शरीर वाले[2]) एवं अल्पायु सन्तान को ; नाना चिन्ता करने वाली परोपतापी, ईर्ष्यालु एवं स्त्रैण सन्तान को; चोरी करने वाली कठिन परिश्रमी, अतिद्रोही एवं अकर्मशील सन्तान को; असहनशील स्त्री चण्ड एवं कपटी सन्तान को; अत्यधिक सोने वाली स्त्री निद्रालु, मूर्ख एवं अल्पाग्नि सन्तान को; नित्य मद्य-सेवी स्त्री तृष्णालु, अल्पस्मृति युक्त एवं अस्थिर-चित्त सन्तान को; नित्य गोधा मांस सेवी स्त्री अश्मरी एवं शनैर्मेह पीड़ित सन्तान को; नित्य सूकर मांस सेवी स्त्री लाल आँखों वाली, सोते समय नासिका से शब्द करने[2] वाली, अति रुक्ष रोमों के शरीर वाली सन्तान को; नित्य मत्स्य मांस सेवी चिरनिमेषी एवं स्तब्धाक्ष सन्तान को; नित्य मधुर (रस के पदार्थ) सेवी स्त्री प्रमेह रोग से पीड़ित, अतिस्थूल एवं गूंगी सन्तान को; नित्य अम्ल (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली स्त्री रक्तपित्त रोग से या त्वचा या आँख के रोग से पीड़ित सन्तान को; नित्य लवण (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली स्त्री वली, पलित एवं खलित से शीघ्र ही पीड़ित होने वाली सन्तान को; नित्य तिक्त (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली स्त्री शोफी, निर्बल एवं अपचित सन्तान को; नित्य कटु (रस के पदार्थ) सेवन करने वाली

---

१. विवृते अनावृते देशे शयनशीला विवृतशायिनी, विवृतशायिनी तथा नक्तञ्चारिणी च रक्षःप्रभृतिभूताभिगमनीया भवति; ततश्च भूतैरभिभूतो गर्भ उन्मत्तो भवतीति युक्तम्। कलिः वाचिकः, कलहस्तु शारीरिकः। अभिध्यात्री मनसा द्रोहणशीला। औपधिकं ज्ञातव्यप्रचारिणम्। क्रथनम् अकस्मादुच्छ्वासावरोधः। ·····। मधुरनित्येह गर्भिणीविहितं क्षीरं विहायान्यमधुरानुसेविनी वोद्धव्या; क्षीरस्य तु विहतत्वेन प्राशस्त्यम्॥ (च० सं० शा० ८/२१ की चक्र० टी०)

२. विवृतशया विवृतानना या शेते ····· दुर्वपुषमलसप्रायम्,·····अपचितं स्वल्पभोगशरीरम्, , अभिध्यायिनी नानाचिन्ताशीला····· क्रथनो यः सुप्तो नासया शब्दं करोति ·····॥ (अ० सं० शा० २/६१ की इन्दु टी०)

Scanned with CamScanner

स्त्री दुर्बल, अल्प-शुक्र एवं अनपत्य सन्तान को; नित्य कषाय (रस रे० द्रव्य) सेवी स्त्री श्याम वर्ण, अनाह या उदावर्त पीड़ित सन्तान को जन्म देती है। गर्भिणी स्त्री जिस-जिस व्याधि के उत्पादक कारणभूत पदार्थों का सेवन करती है अधिकांश उन्हीं विकारों से युक्त सन्तान उत्पन्न होती है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने संक्षेप में वर्णन करते हुए लिखा है कि इनके द्वारा (गर्भोपघातकर भावों से) या तो आम गर्भ का स्राव हो जाता है या कुक्षि में ही गर्भ शुष्क हो जाता है या मर जाता है।

The effect of various dietetics etc. has been elaborately described by Caraka and Vāgbhaṭa I which is given here under:

	Dietetics or mode of life	Effect on the fetus or child
1*	Squatting or stting in abnormal position: suppression of urge of defecation, urination or flatus; improper and excessive exercise, use of pungent, hot edibles or less quantity of food.	Intrauterine death of fetus or premature delivery or abortion or fetus becomes dry (*upaśuṣka*-missed abortion).
2*	Trauma and compression (in lower abdomen), peeping or falling in deep pit or well, riding in jerking vehicle, listening to unpleasant words.	Premature delivery or abortion.
3	Sleeping in supine position with stretched extremities.	Umbilical cord encircles the neck of the fetus and troubles it.
4.	Sleeping uncovered in open place or night walking.	Insane or extravagant *(unmatta)*.
5.	Oral and physical strife or pugnacious.	Epileptic *(apasmāra)*.
6.	Over indulgence in sex.	Deformed, impudent or lazy and henpecked
7.	Always distressed or grieved.	Poltroon, slender, short lived or less digestive etc. power.
8.	Psychologically malevolent or constantly worried.	Nature of troubling others, jealous and henpecked.
9.	Thief or robber.	Industrious, spiteful, idle.

cont. ....

	Dietetics or mode of life	Effect on the fetus or child
10.	Intolerant.	Furious, deceitful, insidious, calumnious.
11.	Over sleepy.	Sleepy, ignorant and possess less digestive power
12.	Using wine daily.	Over thirsty, short memory and fickling mind.
13.	Often use of meat of iguana.	Suffers from bladder stone, gravel or slow stream of urine *(śanairmeha)*.
14.	Often using hog's meat (pork).	Red eyes, rough body hair and obstructed breathing or snoring.
15.	Using daily fish.	Fixed eyes or delayed blinking of eye lids.
16.	Daily (excessive) use of sweet articles except milk.	Suffers from *prameha* (urinary disorders including diabetes mellitus). obese and dumb.
17.	Using (excessively) daily sour articles.	Suffers from *raktapitta* (bleeding diathesis), skin and eye disorders.
18.	Daily (excessive) use of salty articles.	Early wrinkling, greying of hair and baldness.
19.	Daily excessive use of bitter *(kaṭu)* articles.	Weak, possess less quantity of *śukra* and infertile.
20.	Daily excessive use of pungent *(tikta)* articles.	Suffers from emaciation *(śoṣa)* or edema *(śopha)*, weak, scraggy and less digestive etc. powers.
21.	Daily excessive use of astringent *(kaṣāya)* articles.	Swarthy, suffers from *ānāha* (flatulence) and *udāvarta* (eructation).
22.	Use of articles likely to produce diseases.	Diseases according to cause.

*Not mentioned by Vāgbhaṭa I.

Vāgbhaṭa II has just mentioned that use of articles likely to harm the fetus results either in abortion or intrauterine dryness or death (missed abortion or intrauterine death) of the fetus.

विमर्श (Comments)

महर्षि सुश्रुत ने गर्भोपघातकर भावों के अन्तर्गत इनका वर्णन नहीं किया, अपितु अधिकांश रूप में सामञ्जस्य रखता हुआ वर्णन दौहृद के अन्तर्गत आया है। वास्तविक रूप में दोनों ही वर्णनों में कोई विशिष्ट मतभेद नहीं हैं क्योंकि गर्भिणी

Scanned with CamScanner

स्त्री अपनी इच्छा होने पर ही उन पदार्थों का अत्यधिक सेवन करेगी जो कि दौहद के अन्तर्गत आता है, चूँकि ये विशिष्ट प्रयुक्त पदार्थ गर्भ में विकारोत्पादक हैं अतः महर्षि चरक आदि ने गर्भोपघातकर भावों के अन्तर्गत वर्णन किया है। परन्तु प्रभाव की दृष्टि से चरक एवं सुश्रुत दोनों ही आचार्यों में मत वैभिन्य है, चूँकि महर्षि सुश्रुत ने दौहद के परिणामों का वर्णन मांस प्रयोग तक ही सीमित किया है अतः केवल उन प्रयोगों का जिन्हें दोनों ही आचार्यों ने लिखा है तुलनात्मक विवरण विषय के स्पष्टीकरण हेतु नीचे दिया जा रहा है।

	प्रभाव (सन्तान में)	
खाद्य पदार्थ	सुश्रुत सं०	चरक सं०
गोधामांस	निद्रालु, धारणात्मक	शर्करा, अश्मरी, शनैर्मेह पीड़ित
वराह मांस	स्वप्नालु, शूर	रक्ताक्ष, क्रथन युक्त

Suśruta has described almost similar things under the heading of *dauhṛda* mentioned earlier. Actually there is no difference between these descriptions, because the pregnant woman will eat only when she has longing for these things, or has *dauhṛda* and since these are likely to produce certain abnormalities in fetus, hence can be grouped under harmful category. Both these authors differ about the effect of meat of iguana and hog as given hereunder:

	Effect on the child	
Edible	Suśruta S.	Caraka S.
Meat of iguana	Sleepy and the nature of bearing itself.	Suffers from gravel, bladder stone or slow stream of urine.
Meat of hog	drowsy, valient.	Red eyed, rough haired and obstructed breathing.

गर्भस्थापक औषधियाँ (Garbhasthāpaka drugs i.e. the drugs beneficial for maintenance of pregnancy)

महर्षि चरक एवं काश्यप ने कतिपय औषधियों के प्रयोग का विधान बताया है। इन औषधियों के प्रयोगकाल का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। टीकाकार चक्रपाणि ने व्याख्या करते हुए लिखा है कि गर्भोपघातकर क्रियाओं द्वारा उत्पन्न गर्भोपघातक भाव का खण्डन कर जो पुनः गर्भस्थापन करें वे गर्भस्थापक औषधियाँ हैं[1]। यह अर्थ लेने पर ये औषधियाँ गर्भस्राव की चिकित्सा के अन्तर्गत भी आ जाती हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने पुंसवन वर्णन के पश्चात् ही किसी विशिष्ट औषधि का नाम न लिखकर प्रजास्थापन महौषधि के प्रयोग का विधान दिया है। सूत्रस्थान में गर्भस्थापक औषधियों का वर्णन है, सम्भवतः यहाँ वे ही अभिप्रेत हैं। टीकाकार इन्दु ने औषधियों का नामोल्लेख न कर इन्हें प्रतिरक्षात्मक औषधि के रूप में वर्णन किया है अर्थात् इनके प्रयोग से गर्भस्राव नहीं होता[2]। महर्षि काश्यप ने इनके सामान्य प्रयोग का निर्देश किया है। सम्भवतः इन औषधियों का गर्भिणी द्वारा सामान्यतया

१. संप्रति स्थितस्य गर्भस्य गर्भोपघातकभावप्रभावखण्डकत्वेन यत् पुनः स्थितिकारकं तद्गर्भस्थापनमुच्यते॥ (च० सं० शा० ८/२० की चक्र० टी०)

२. गर्भस्थापनानि यैर्गर्भो न स्रवति॥ (अ० सं० शा० १/६२ की इन्दु टी०)

प्रयोग गर्भ को सुस्थिर एवं सुपोषित करे, इस विचार के आधार पर ही इनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवीर्याऽमोघाऽव्यथाशिवाऽरिष्टावाट्यपुष्पीविष्वक्सेनकान्ता इति दशेमानि प्रजास्थापनानि भवन्ति॥ (च० सं० सू० ४/१८ (४९))

अत ऊर्ध्वं गर्भस्थापनानि व्याख्यास्यामः—ऐन्द्री ब्राह्मी शतवीर्या सहस्रवीर्याऽमोघाऽव्यथाशिवाऽरिष्टा वाट्यपुष्पी विष्वक्सेनकान्ता चेत्यासामोषधीनां शिरसा दक्षिणेन वा पाणिना धारणम्, एताभिश्चैव सिद्धस्य पयसः सर्पिषो वा पानम्, एताभिश्चैव पुष्ये पुष्ये स्नानं, सदा च ताः समालभेत। तथा सर्वासां जीवनीयोक्तानामोषधीनां सदोपयोग-स्तैस्तैरुपयोगविधिभिः। इति गर्भस्थापनानि व्याख्यातानि भवन्ति॥ (च० सं० शा० ८/२०)

ऐन्द्री दुर्वाऽमोघा विष्वक्सेनाऽव्यथा शिवाऽरिष्टा।
ब्राह्मी सवाट्यपुष्पी शतवीर्या स्थापयेद्गर्भम्॥ (अ० सं० सू० १५/४८)

ततः प्रजास्थापनाख्या महौषधीः शिरसा दक्षिणेन च पाणिना धारयेत्। एताभिश्च सिद्धं पयो घृतं वा पिबेत्। एताभिरेव पुष्ये पुष्ये स्नायात्सदा चेत्यमालभेत्। तथा सर्वासां जीवनीयानामोषधीनां सदोपयोगस्तैस्तैर्विधिभिः। इति गर्भस्थापनानि। (अ० सं० शा० १/६२)

वहुपुत्रामनन्तां च ईश्वरीं मुदितां तथा॥१७७॥
ब्राह्मीं च सहदेवां च तथा चैवेन्द्रवारुणीम्। जीवकर्षभकौ भार्गीं समङ्गां च तथैव च॥१७८॥
रोहपादान् वटशुङ्गानात्मगुप्तां तथैव च। अरिष्टं पूतनां केशीं शतवीर्यां च पार्थिव !॥१७९॥
सहस्रवीर्यां चैतानि प्रजापत्येन संहरेत्। संदधेदथ पुष्येण धारयेदुत्तरेषु च॥१८०॥
त्रैवृतं तु मणिं कृत्वा तं श्रोण्यां गर्भिणी सदा॥१८१॥ (का० सं० खि० १०)

ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या (दूर्वा), सहस्रवीर्या (दूर्वाभेद), अमोघा (पाटला, आमलकी या लक्ष्मणा[1]), अव्यथा (कदली, गुडूची, हरीतकी[1]), शिवा, अरिष्टा (कटुरोहिणी), वाट्यपुष्पी तथा विष्वक्सेनकान्ता (प्रियंगु) ये दश औषधियाँ प्रजास्थापन हैं।

महर्षि चरक ने पुनः इन्हीं औषधियों की पुनरावृत्ति करते हुए लिखा है कि अब इसके बाद गर्भस्थापक औषधियों की व्याख्या कर रहे हैं—ऐन्द्री (गोरक्षकर्कटी), ब्राह्मी, शतवीर्या, सहस्रवीर्या (दुर्वाद्वय), अमोघा (पाटला), अव्यथा (गुडूची), शिवा, अरिष्टा (कटुरोहिणी), वाट्यपुष्पी (पीतबला), विष्वक्सेनकांता इन सभी औषधियों को शिर में या दक्षिण हाथ में धारण करे। इन्हीं औषधियों से साधित दुग्ध या घृत का पान करे। इन्ही औषधियों (के क्वाथ से बने जल) से प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में स्नान करे। हर समय इन्हें पास रखे। इसी प्रकार इन्हीं उपर्युक्त विधियों से जीवनीय वर्ग की औषधियों का प्रयोग करे। यह गर्भस्थापन औषधियों की व्याख्या हो गई।

महर्षि वाग्भट ने महर्षि चरक का ही अनुगमन किया है उन्होंने भी लिखा है कि ऐन्द्री, दूर्वा, अमोघा, विष्वक्सेना, अव्यथा, शिवा, अरिष्टा, ब्राह्मी, वाट्यपुष्पी, शतवीर्या आदि द्रव्य गर्भस्थापन करते हैं।

इसके पश्चात् (पुंसवन कर्म के पश्चात्) प्रजास्थापन में वर्णित (उपर्युक्त) महौषधियों को शिर में एवं दाहिने हाथ में धारण करे। इन्हीं औषधियों से सिद्ध दुग्ध या घृत का पान करे। इन्हीं द्रव्यों से प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में स्नान करे तथा इन्हें हर समय पास में रखे तथा सभी जीवनीय गण की भी औषधियों को इन्हीं विधानों से प्रयोग करे। ये गर्भस्थापन हैं।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि हे पार्थिव ! (गर्भिणी स्त्री) बहुपुत्रा (कण्टकारी), अनन्ता, ईश्वरी, मुदिता (शिवलिङ्गी), ब्राह्मी, सहदेवा, इन्द्रवारुणी, जीवक, ऋषभक, भार्गी, समङ्गा, रोहपाद, वटशुङ्ग, आत्मगुप्ता, अरिष्टा, पूतना,

१. कोष्ठक वर्णित औषधियाँ टीकाकार चक्रपाणि ने शारीरस्थान में लिखी हैं।

Scanned with CamScanner

केशी (जटामाँसी), शतवीर्या, सहस्रवीर्या आदि औषधियों को प्रजापत्य विधि से उखाड़कर बाद में पुष्य नक्षत्र में धारण करे। त्रिवृत की मणि बनाकर गर्भिणी स्त्री कमर में हर समय बाँधे।

Caraka and Kāśyapa have prescribed certain drugs during pregnancy without specifying their indications, period or method of use. Cakrapāṇi has clarified that *garbhasthāpana* drugs are those which after counteracting the effect of harmful factors *(garbhopaghātakara bhāvas)* for fetus help in its proper maintenance, thus these can be considered even as a treatment for abortion.

Vāgbhaṭa I has indicated use of *prajāsthāpana* drugs described in *sūtrasthāna* after *puṁsawana karma*. Indu says that these drugs prevent abortion.

Kāśyapa has advised these to be used as a routine by pregnant woman. Routine use of these drugs might be beneficial for maintenance of proper health, growth and development of mother and fetus respectively. With this idea the drugs are being enumerated here.

Caraka and Vāgbhaṭa have enumerated *aindrī, brāhmī, śatavīryā, sahasravīryā* or *dūrvā,amoghā, avyathā, śivā, ariṣṭā, vāṭyapuṣpī, viśwaksenakātā* or *viśwaksenā* in the list and have advised the oral use of milk or *ghṛta* prepared with these drugs. The bath with these drugs (cold decoction of these drugs) during *puṣya nakṣatra* should also be taken. These drugs should also be kept in close contact of mother and amulets of these be tied in head or right arm (only Caraka). Similarly the drugs of *jīvanīya* group should also be used.

Kāśyapa has advocated that *bahuputrā, anantā, īśwarī, muditā, brāhmī, sahadevā, indravāruṇī, jīvaka, ṛṣabhaka, bhārṅgī, samaṅgā, rohapāda, vaṭa śuṅga* (leaf bud), *ātmaguptā, ariṣṭā, pūtanā, keśī, śatavīryā* and *sahasravīryā* drugs should be uprooted with enchantation of *mantras* and tied as amulet during *puṣya nakṣatra. Amulet of trivṛta* should also be tied in the waist of pregnant woman.

❑

अध्याय ६

CHAPTER VI

गर्भिणी-व्याधियाँ एवं उनकी चिकित्सा

(DISORDERS DURING PREGNANCY AND THEIR MANAGEMENT)

गर्भिणी स्त्री के शरीर में भी दोष वैषम्य के कारण वे सभी व्याधियाँ हो सकती हैं जो किसी भी व्यक्ति के शरीर या मन को पीड़ित करती हैं।

महर्षि काश्यप ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ज्वर आदि विकारों के जो जो लक्षण अन्नाद बालक (पूर्ण वृद्धि युक्त बालक) के होते हैं, वे ही गर्भिणी स्त्री के भी समझने चाहिए[1]। परन्तु गर्भावस्था एक विशिष्ट अवस्था होने तथा तीक्ष्ण औषधियों आदि के प्रयोग से गर्भ को हानि पहुँचने की सम्भावना के कारण किसी भी व्याधि का चिकित्सा-सूत्र एक सीमा तक सामान्य अवस्था से भिन्न रहता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए आचार्यों ने गर्भिणी की व्याधियों का सामान्य चिकित्सा-सूत्र दिया है एवं कुछ उन विशिष्ट व्याधियों का जो स्त्री को गर्भावस्था में ही आक्रान्त करती हैं उल्लेख भी किया है। महर्षि काश्यप ने गर्भिणी की चिकित्सा की उपादेयता का वर्णन करते हुए लिखा है कि इससे गर्भ तथा नारी दोनों को वृद्धि एवं रक्षा होती है[2]।

महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट आदि ने सामान्य चिकित्सा-सूत्र-वर्णन के साथ कुछ विशिष्ट व्याधियों का भी उल्लेख किया है। महर्षि काश्यप ने इस विषय पर सम्पूर्ण दो अध्याय (चि० स्थान का गर्भिणीचिकित्सा एवं खिलस्थान का अन्तर्वत्नी-चिकित्साध्याय) लिखे हैं। योगरत्नाकरकार एवं आचार्य भावमिश्र जी ने भी कुछ व्याधियों में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट औषधियों का नामोल्लेख किया है।

महर्षि हारीत ने शोथ, हृल्लास, छर्दि, शोफ, ज्वर, अरुचि, अतिसार एवं विवर्णता आदि आठ गर्भोपद्रवों का उल्लेख किया है[3], जिन सभी की चिकित्सा का वर्णन अग्रिम पृष्ठों पर किया जायगा।

महर्षि सुश्रुत ने वातव्याधियों के अन्तर्गत गर्भिणी को आर्दित व्याधि (फ़ेशॅल पैरैलिसिस) होने का उल्लेख किया है[4]।

अर्श[5] एवं शोफ[6] के कारणों में गर्भ के द्वारा उत्पीडन का उल्लेख महर्षि चरक एवं वाग्भट ने किया है। यह देखा जाता है कि गर्भ से वृद्ध गर्भाशय के द्वारा उत्पन्न अधोदर की सिराओं में दबाव से गर्भवती स्त्रियों को अर्श हो जाता है विशेषकर अर्श पीड़ित स्त्रियों के लक्षण अत्यधिक बढ़ जाते हैं। पैरों की शिराओं में गर्भाशय का दबाव, पाण्डु या गर्भजन्य विषमयता में शोफ पाया जाता है।

१. ज्वरादीनां विकाराणां यत्र यत्रेह लक्षणम्॥ १८२॥
अन्नादानां प्रवक्ष्यामि तज्ज्ञेयं गर्भिणीष्वपि। १८३। (का० सं० खि० १०)

२. सूक्ष्मां चिकित्सां वक्ष्यामि गर्भिणीनां विभागशः। तथा गर्भश्च नारी च वर्धते रक्ष्यतेऽपि च॥ (का० सं० खि० १०/३)

३. शोथो हृल्लासच्छर्दिश्च शोफो ज्वरस्तथारुचिः। अतीसारो विवर्णत्वमष्टौ गर्भस्योपद्रवाः॥ (हा० सं० तृतीयस्थान ५१/१)

४. गर्भिणीसूतिका ·····। अर्दयित्वाऽनिलो ·····। (सु० सं० नि० १/६८,६१)

५. च० सं० चि० १४/९; अ० सं० नि० ७/१० एवं अ० हृ० नि० ७/१४

६. च० सं० सू० १८/६; अ० सं० नि० १३/१८,३० एवं अ० हृ० नि० १३/२६,२८

Scanned with CamScanner

There is no difference in the physical or psychological disorders of a pregnant woman from any other individual, because *doṣas* and *dūṣyas* of the body are same, she also exhibits similar symptomatology of fever etc. disorders as noticed in any other grown up person. However, principles of treatment differ, because use of any pungent etc. drug is likely to harm the fetus. Considering this very fact the authors have advocated principles of treatment for a pregnant woman and have also given description of a few disorders afflicting the woman exclusively during pregnancy. Realizing the importance of the subject Kāśyapa has given two full chapters on this and has emphasized that proper management of disorders during pregnancy is helpful for protection and development of both mother and fetus. Hārīta has enlisted *śoṣa* (emaciation), *hṛllāsa* (nausea), *chardi* (vomiting), *śofa* (edema), *jwara* (fever), *aruci* (anorexia), *atisāra* (diarrhoea) and *vivarnatā* (discolouration) etc. eight disorders which afflict the pregnant woman. Suśruta has included the pregnant woman also in the list of persons likely to suffer from *ardita* (facial paralysis). In the causes of piles and edema Caraka and Vāgbhata have included pressure caused by growing fetus also.

गर्भिणी की व्याधियों का सामान्य चिकित्सा सूत्र (General principles of treatment for pregnant woman)

व्याधीश्चास्या मृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोपचारैरुपचरेत्, न चास्या वमनविरेचनशिरोविरेचनानि प्रयोजयेत्, न रक्तमवसेचयेत्, सर्वकालं च नास्थापनमनुवासनं वा कुर्यादन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेः। अष्टमं मासमुपादाय वमनादिसाध्येषु पुनर्विकारेष्वात्ययिकेषु मृदुभिर्वमनादिभिस्तदर्थकारिभिर्वोपचारः स्यात्। पूर्णमिव तैलपात्रमसंक्षोभयताऽन्तर्वत्नी भवत्युपचर्या॥ (च० सं० शा० ८/२२)

अथ गर्भिणीं व्याध्युत्पत्नावत्यये छर्दयेत्, मधुराम्लेनान्नेनोपहितेनानुलोमयेच्च, संशमनीयं च मृदु विदध्यादन्नपानयोः, अश्नीयाच्च मृदुवीर्यं मधुरप्रायं गर्भाविरुद्धं च, गर्भाविरुद्धाश्च क्रिया यथायोगं विदधीत मृदुप्रायाः॥ (सु० सं० शा० १०/६७)

व्याधीश्चास्या मृदुमधुरशिशिरसुखैरौषधाहारविहारैरुपाचरेत्॥ न चास्या वमनादीनि प्रयोजयेत्। न रक्तावसेचनं केवलं त्वष्टमं मासमुपादायास्थापनमनुवासनं वा। वमनादिसाध्येषु पुनर्विकारेषु मृदुभिस्तदर्थकारिभिर्वोपक्रमेत्। पूर्णमिव तैलपात्रसंक्षोभयद्गर्भिणीमुपाचरेदिति॥ ६२॥

इत्यनात्ययिके व्याधौ विधिरत्ययिके पुनः। तीक्ष्णैरपि क्रियायोगैः स्त्रियं यत्नेन पालयेत्॥ ६३॥ (अ० सं० शा० २/६२ व ६३)

व्याधीश्चास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत्॥ (अ० ह० शा० १/४९)

इसकी (गर्भिणी स्त्री की) व्याधियों की (उन उन व्याधियों में प्रयुक्त) मृदु, मधुर, शीतवीर्य, सुखकारक एवं सुकुमार प्राय औषधियों तथा आहार एवं उपचार (व्यवहार विशेषतः सुकुमार एवं सुखकारक उपचार) आदि से चिकित्सा करे। इसे वमन, विरेचन एवं शिरोविरेचन आदि का प्रयोग न करवावे, रक्त का अवसेचन न करे। सर्वदा आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग न करे, यदि आत्ययिक व्याधि है (अर्थात् तीव्र व्याधि है जिसमें आस्थापन या अनुवासन अत्यावश्यक हैं) तो इनका (आस्थापन एवं अनुवासन का मृदु) प्रयोग कर सकते हैं। अष्टम मास प्राप्त हो जाने पर वमन आदि से साध्य विकारों में आत्ययिक अवस्था में मृदु वमन आदि से या तदर्थकारी उपचारों से चिकित्सा करें। तैल से पूर्ण पात्र के असंक्षोभन सदृश ही गर्भिणी की चिकित्सा की जाती है अर्थात् जिस प्रकार भरे हुए तैल पात्र का थोड़ा सा भी संक्षोभन

होने से तैल के गिर जाने का भय रहता है उसी प्रकार गर्भिणी स्त्री की असावधानी से चिकित्सा करने पर गर्भस्राव एवं गर्भपातादि का भय रहता है। टीकाकार चक्रपाणि ने वमनादि के तदर्थकारी शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, कि वमन के स्थान पर उसी भाँति का परिणाम देने के कारण निष्ठीवन एवं विरेचन के स्थान में फलवर्ति का प्रयोग करना चाहिए[1]। अन्यत्र गर्भिणी के लिए तीक्ष्णौषध, व्यायाम एवं व्यवाय को त्याज्य कहा है[2]।

महर्षि सुश्रुत ने भी लगभग महर्षि चरक के ही मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि गर्भिणी को व्याधि उत्पन्न होने पर आत्ययिक अवस्था में अर्थात् व्याधि का विनाशकारी स्वरूप होने पर[3] उसे वमन करवावे, तथा मधुर एवं अम्ल अन्न के साथ (मिली हुई औषधि से) अनुलोमन भी करावे[4]। सभी संशमनीय द्रव्य मृदु वीर्य के तथा अन्नपान के साथ मिलाकर दे। वह मृदुवीर्य मधुरप्राय एवं गर्भ को हानि न करने वाला भोजन करे। गर्भ के अविरुद्ध या गर्भ को हानि न करने वाली यथायोग मृदुप्राय क्रिया करवावे। टीकाकार डल्हण ने गर्भ के अविरुद्ध या हानि न करने वाले विहार के प्रयोग का भी विधान बताया है, तथा यथायोग क्रिया से वमनादि के हीन, अति या मिथ्यायोग से विरहित अर्थात् सम्यक् प्रयोग का निर्देश किया है[5]।

अष्टांगसंग्रहकार ने महर्षि चरक का अक्षरशः पालन करते हुए लिखा है कि गर्भिणी स्त्री की व्याधियों को मृदु, मधुर, शिशिर एवं सुखकारी औषधियों तथा आहार एवं विहार से चिकित्सा करनी चाहिए। वमनादि का प्रयोग तथा रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिए। अष्टम मास से (आठवें मास का एक भी दिन लग जाने पर प्रसवकाल तक आवश्यकता होने पर दोषानुसार) आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिए। वमनादि से ही साध्य विकारों की मृदु वमनादि से तथा उस व्याधि के लिए लाभदायक विशिष्ट औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए। तैल से पूर्ण पात्र के असंक्षोभन सदृश ही गर्भिणी स्त्री की सावधानी से चिकित्सा करे। टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि वमनादि साध्य व्याधियों में भी वमन का प्रयोग नहीं करना चाहिए[6]। अन्यत्र भी महर्षि चरक सदृश ही तीक्ष्णौषध प्रयोग, व्यायाम एवं व्यवाय को गर्भिणी के लिए वर्ज्य माना है[7]। उपर्युक्त चिकित्सा सिद्धान्त सामान्य अनात्ययिक व्याधि के लिए है, आत्ययिक अवस्था में तीक्ष्ण आदि क्रियाओं के प्रयोग के द्वारा भी स्त्री की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए (अर्थात् स्त्री के जीवन रक्षार्थ गर्भ की उपेक्षा करके भी तीक्ष्ण आदि क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिए)।

अष्टांगहृदयकार ने संक्षिप्त रूप में लिखा है कि इसकी (गर्भिणी की) व्याधियों की मृदु, सुखकर एवं अतीक्ष्ण औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए।

---

१. तदर्थकारिभिर्वेति यथा वमनार्थकारि निष्ठीवनं, विरेचनार्थकारिणी फलवर्तिः, इत्यादिभिरुपचारः कर्तव्यः। (च० सं० शा० ८/२२ की चक्र० टी०)

२. ·····गर्भिणी तीक्ष्णौषधव्यवायव्यायामवर्जनीयानाम्॥ (च० सं० सू० २५/४०)

३. ·····अत्यये विनाशहेतौ ·····॥ (सु० सं० शा० १०/६७ की डल्ह० टी०)

४. 'छर्दयेत्' को पृथक् न कर यदि मधुर के साथ अर्थात् 'छर्दयेन्मधुर' आदि का ग्रहण किया जाय तो वमनौषधियों को भी मधुर एवं अम्ल अन्न के साथ ही मिलाकर प्रयोग करने का निर्देश मिलता है।

५. विहारमप्यस्य नियमयन्नाह-गर्भाविरुद्धा इत्यादि। यथायोगमहीनातिमिथ्यायोगेनेत्यर्थः॥ (सु० सं० शा० १०/६७ की डल्ह० टी०)

६. ····· वमनादीनि कर्माण्यस्या व्याधिवशात् प्रसक्तान्यपि न प्रयोजयेत्। केवलमष्टममासप्रथमदिवसादारभ्याप्रसवाद्दोषाद्यपेक्षया आस्थापनमनुवासनं वा प्रयोजयेत् ····· व्याध्युपशममर्थं यत् करोति ततदर्थकारि ··· ···। (अ० सं० शा० २/६२ की इन्दु टी०)

७. अ० सं० सू० १३/३

Scanned with CamScanner

महर्षि हारीत ने सामान्य चिकित्सा वर्णन करते हुए लिखा है कि वत्सक, पिप्पली, शुण्ठी, आमलकी-फल तथा कोमल बिल्व अर्थात् कच्चे बेल की गिरी को दधि के साथ पीसकर शर्करा मिलाकर पिलाना सदैव हितकर है, तथा विद्वान वैद्य को गर्भिणी स्त्री को कभी भी तीव्र विरेचन नहीं देना चाहिए[1]।

Caraka opines that the diseases of pregnant woman should be treated with the use of soft, sweet, cold, pleasing and gentle drugs, dietetics and behaviour. She should not be given emetics, purgatives or suberrhines (sternutatory drugs), bloodletting should not be done. *Āsthāpana* and *anuwāsana basties* (cleansing and nutritive enemas) should not be used frequently, however, if the disorder is acute, moderate use of these can be done. After eighth month the diseases curable by emetics etc. should be treated with gentle emesis etc. or such other procedures which give similar benefits, such as instead of emetics or purgatives the drugs causing spitting or suppositories respectively should be used. Use of pungent drugs, exercise and coitus should be avoided. The pregnant woman should be treated just like a pot filled with oil, as slightest oscillation of such pot causes spilling of oil, similarly slightest excitement to the pregnant woman can initiate abortion etc.

Suśruta has advised that if the disease is acute and/or serious, emetics should be given followed by use of sweet and sour edibles mixed with *anulomaka* (carminative) drugs. All the pacifying drugs should be soft and be given alongwith food or drinks. Diet should consist of the article which are soft, sweet and harmless to the fetus. Appropriate use (neither too less, nor excessive nor abnormal) of such gentle emetics etc. purifying measures should be done which are congenial to the fetus.

Vāgbhaṭa corroborating the views of Caraka adds that if the disease is very serious, the life of woman should be saved by use of drastic measures and pungent drugs (even if those are harmful to the fetus).

Hārīta has advised use of *vatsaka, pippali, śunṭhī* and fruit of *āmalakī*. Unripe fruit of *bilva* mixed with curd and sugar is always beneficial. The pregnant woman should never be given drastic purgatives.

गर्भिणी की विशिष्ट व्याधियाँ एवं चिकित्सा (Specific diseases of pregnant woman and their treatment)

(अ) गर्भावस्था के विभिन्न मासों में उत्पन्न विशिष्ट व्याधियों के चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of the diseases developing in different gestational months)

(१) चतुर्थ मास में वात-रोग चिकित्सा (Treatment of disorders of vāta during fourth month of pregnancy)

चतुर्थे मासि ..... ॥ १४७॥

१. वत्सकं मगधा शुण्ठी तथा चामलकीफलम्। युक्तं कोमलबिल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत्॥ ४॥
शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा॥ ५॥
न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान्॥ १३/२॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५१)

एरण्डपत्रं (तैलं-शु० पा०) क्षीरेण वातरोगान्विता पिबेत्। वातमूत्रविरोधे तु शूले वाऽपि समुत्थिते॥ १५१॥
(का० सं० खि० १०)

चतुर्थ मास में यदि गर्भिणी को कोई वातिक रोग, वातिक मूत्रग्रह या शूल हो तो एरण्डपत्र (तैल) को क्षीर के साथ (पत्र-चूर्ण या तैल एवं क्षीर अथवा पत्र-चूर्ण-साधित क्षीर) पीने को दें।

(एरण्ड के तैल का प्रयोग वात के रोगों में वर्णित है न कि पत्र का, अतः यहाँ पर पत्र के स्थान पर तैल का पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है)।

If in fourth month of pregnancy the woman suffers from any disorder of *vāta*, retention of urine due to *vāta* and other pain etc. then *eraṇḍa taila* (castor oil) with milk should be given.

(२) पञ्चम मास में चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment in fifth month)

पञ्चमे मासि गर्भिण्या व्यक्ताम्ललवणं ततः। आस्थापनं हितं नार्या मधुरं चानुवासनम्॥ १५२॥
(का० सं० खि० १०)

पाँचवें मास में (व्याधि होने पर आवश्यकतानुसार) गर्भिणी को अम्ल एवं लवण द्रव्यों से युक्त आस्थापन तथा मधुर द्रव्यों से युक्त अनुवासन बस्ति हितकर होती है।

In fifth month she should be given *āsthāpana basti* (evacuative enema) containing sour and saltish drugs and *anuwāsana basti* (nutritive enema) containing sweet substances.

(३) षष्ठ मास में कतिपय व्याधियों की चिकित्सा (Principles of treatment of some diseases in sixth month)

ग्रन्थीनां पिडिकानां च शोथे चैव विशाम्पते !। रोहिण्यां विद्रधौ वाऽपि षष्ठमासे विशेषतः॥
यथास्वं भेषजं कुर्याद्दारुणं शास्त्रपारगः॥ १५३॥ (का० सं० खि० १०)

हे राजन्! शास्त्र-कुशल चिकित्सक को ६ठें मास में विशेषतः ग्रन्थि, पिडिका, शोथ, रोहिणी एवं विद्रधि होने पर रोग के अनुसार दारुण चिकित्सा (क्षाराग्नि या शस्त्र कर्म) करनी चाहिए।

During sixth month specially in cases of *granthi* (lymphadenitis), *piḍikā* (furunculosis), *śotha* (inflammation), *rohiṇī* (pseudomembrane of throat) and *vidradhi* (abscess), *dāruṇa-cikitsā* (harsh or rough treatment i.e. use of *kṣāra*, cauterization and surgery) should be done by wise physician.

(४) सप्तम मास में कतिपय व्याधियों का चिकित्सा-सूत्र (Priciples of treatment of few disorders during seventh month)

पीनमांसोपशमनं क्षारकर्माग्निकर्मच। भग्नास्थिश्लेषणं चैव शस्त्रकर्म तथैव च॥ १५४॥
सप्तमेमासि नारीणां सर्वमेतत् प्रयोजयेत्॥ १५५॥ (का० सं० खि० १०)

सप्तम मास में गर्भिणी स्त्री में उन्नत मांस का शमन (तीक्ष्ण द्रव्यों या शस्त्रकर्म द्वारा), क्षार एवं अग्नि कर्म, भग्न अस्थि का संधान तथा शस्त्रकर्म आदि सभी प्रकार के कर्म प्रयुक्त करने चाहिए।

In seventh month suppression of protuberant flesh (treatment of mole, cysts etc. by drugs or surgical measures), use of *kṣāra* and cauterization, reduction of fractured bone and other surgical treatment should be done.

Scanned with CamScanner

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह अर्थ निकालना कि सातवें मास के पूर्व अस्थिसंधान या शस्त्रकर्म करना ही नहीं चाहिए, युक्तिसंगत नहीं होगा; क्योंकि अस्थिभग्न होने पर तात्कालिक संधान आवश्यक है। सातवें मास के पूर्व संधानादि कर्मों के करने के साथ गर्भस्थापक द्रव्यों का प्रयोग भी अभिप्रेत है, क्योंकि वेदना से मानसिक प्रभाव होकर गर्भस्राव या पात का भय रहता है, परन्तु सातवें मास के बाद इस प्रकार का प्रतिषेधात्मक औषध-प्रयोग आवश्यक नहीं है।

It appears from above description that reduction of fractures or other surgery should not be done before seventh month which is not logical, because the reduction of fracture has to be done immediately. However, along with reduction certain drugs/sedatives to prevent abortion should always be given, because pain and psychological stress due to trauma can initiate abortion. This preventive treatment is not needed after seventh month.

(आ) गर्भिणी को ही होने वाली व्याधियाँ (Pregnancy-aïsorders)

(१) गर्भज वमन (Vomiting during pregnancy)

व्यक्तगर्भा के अन्तर्गत छर्दि का वर्णन लक्षण-स्वरूप सभी आयुर्वेदिक संहिताओं में मिलता है। सद्योगृहीतगर्भा के लक्षणों में मुखप्रसेक, हृल्लास आदि का भी उल्लेख है। महर्षि सुश्रुत ने छर्दि के अनेक कारणों के अन्तर्गत आपन्नसत्वा होना या गर्भिणी होना भी एक कारण माना है[1]। पुनश्च छर्दि के पञ्चम भेद में बीभत्स कृमि आदि के ही साथ दौहृद का भी उल्लेख किया है। जिसके स्पष्टीकरण में टीकाकार डल्हण ने दौहृद के अवमानन से या गर्भनिमित्त से उत्पन्न छर्दि को दौहृदजा माना है[2]। इसी भाँति वाग्भट ने भी मलिन, दुर्गन्धित आदि पदार्थों के देखने या सुनने से, चित्त दुःखी या हृदय के पीड़ित होने से उत्पन्न द्विष्टार्थजा छर्दि का उल्लेख कर दौहृद को भी एक कारण माना है[3]। माधवनिदान के मधुकोष व्याख्याकार ने लिखा है कि गर्भ से उत्पीड़न होने के कारण विकृत वायु ही दौहृद जन्य वमन का कारण है[4]। भावमिश्र, योगरत्नाकरकार आदि ने आगन्तुज छर्दि के कारणों में दौहृद का भी उल्लेख किया है। सभी आचार्यों ने इस छर्दि में भी दोषानुसार विवेचन करने का निर्देश किया है[5], अर्थात् यह स्पष्ट हो जाता है कि यह छर्दि-वर्णन सामान्य लक्षण स्वरूप उत्पन्न छर्दि (मॉर्निंग सिकनेस) का न होकर वैकारिक छर्दि (हाइपर इमेसिस ग्रेविडेरम) का वर्णन है; अतः इसकी सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा-सिद्धान्त सामान्य छर्दि के ही सदृश होंगे।

१ नार्याश्चापन्नसत्त्वायाः ·····॥ ४॥
बीभत्सजा दौहृदजाऽऽमजा च ·····।
सा पञ्चमी तां च विभावयेत् तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२॥ (सु० सं० उ० ४९/४, १२)

२. दौहृदजा दौहृदविमाननाज्जाता, अन्ये दौहृदजां गर्भनिमित्तामाहुः (सु० सं० उ० ४९/१२ की डल्ह० टी०)

३. पूत्यमेध्यांशुचिद्विष्टदर्शनश्रवणादिभिः।
तेषे चित्ते हृदि क्लिष्टे छर्दिर्द्विष्टार्थयोगजा।
वातादीनेव विमृशेत्कृमितृष्णाऽऽमदौहृदे ॥ (अ० सं० नि० ५/३८ व ३९, अ० हृ० नि० ५/३६ व ३७)

४. नार्याश्चापन्नासत्त्वाया इति गर्भिण्याः, तस्या गर्भोत्पीडनेन वातवैगुण्याच्छर्दिः। (मा० नि० १५/३ की मधु० व्या०)

५. (अ) ··· दौहृदजा च या हि।
सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ। (भा० प्र० चि० १७/११)
(आ) नार्याश्चापन्नसत्त्वाया ·····। (मा० नि० १५/३)
बीभत्सजा दौहृदजाऽऽमजा च ·····।
(इ) सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ। (मा० नि० १५/१२; यो० र० छर्दि० नि०)

उपर्युक्त वर्णित विषय का अवलोकन करने पर गर्भज वमन के निम्न तीन कारण स्पष्ट होते हैं।

All the classics have mentioned excessive salivation and nausea etc. as symptoms of normal pregnancy. In the description of disease *chardi* Suśruta has enlisted pregnancy also as a causative factor. Under its fifth type i. e. *āgantuja* or *dwiṣṭārthajā chardi* the *dauhṛda* is also enumerated in etiology. Dalhaṇa has explained that non fulfilment of *dauhṛda* and presence of fetus cause vomiting. In Madhukoṣa commentary it is mentioned that *vāyu* being pushed upward by fetus gets provoked and causes vomiting. For its management assessment of relative predominance of various *doṣas* should be made. This statement clearly indicates that this description is aimed at mentioning disease hyperemesis gravidarum having etiopathogenesis identical to general *chardi*. Above mentioned etiopathogenesis clarifies three specific causes for this hyperemesis gravidarum:

(१) वात-वैगुण्य (Vāta-vaiguṇya)

वायुदोष नाड़ीवह संस्थान का द्योतक है, अतः इसकी विगुणता से स्त्री की संज्ञावह नाड़ियों के कार्य में विगुणता आकर विपरीत प्रत्यावर्तन (रीफ़लेक्स फ़ैक्टॅ) हो वमन हो सकता है, अथवा स्त्री की मानसिक स्थिति (इमोशॅनॅल या साइकॉजेनिक फ़ैक्टॅ) में विकार हो वमन हो सकता है।

Vāta denotes nervous system including psychology of individual. Abnormality of this may initiate vomiting by exaggerated or abnormal reflex action or in other words this heading indicates reflex and psychogenic factors as causation of hyperemesis.

(२) दौहृद अवमानन (Dauhṛda avamānana or non fulfilment of dauhṛda)

स्त्री को अधिकांशतया दौहृद उन चीजों का होता है जिनकी शरीर में कमी होती है। दौहृद की अपूर्ति से उस कमी के कारण का अन्तर्भाव कर सकते हैं।

Normally the woman desires the substances for whom she is deficient. Nonfulfilment of these may produce certain deficiency and this may initiate vomiting.

(३) गर्भ निमित्त (Garbha nimitta or due to fetus)

जहाँ गर्भावस्था के अतिरिक्त अन्य कोई भी कारण ज्ञात न हो अर्थात् ट्रॉफ़ॉब्लास्ट द्वारा निर्मित अंगरसों के प्रति स्त्री द्वारा प्रतिक्रिया जन्य अथवा अज्ञात कारणजन्य।

Where in except existance of pregnancy there is no other demonstrable cause, thus vomiting occurs either due to immune response of woman for trophoblastic hormones or idiopathic.

महर्षि काश्यप ने अन्तर्वत्नीचिकित्साध्याय में विभिन्न दोषोत्पन्न छर्दि की चिकित्सा का वर्णन किया है, परन्तु दौहृदजन्य या गर्भजन्य छर्दि की विशिष्ट चिकित्सा का उल्लेख नहीं किया। जिससे स्पष्ट होता है कि यह वर्णन गर्भिणी की विशिष्ट छर्दि (हाइपॅरइमेसिस ग्रेविडेरम) का न होकर गर्भावस्था में होने वाली अन्य कारणोत्पन्न छर्दि (ॲसोशिएटेड वॉमिटिंग) का है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर गर्भिणी छर्दि का निम्न वर्गीकरण कर सकते हैं:-

(अ) लक्षणान्तर्गत वर्णित हृल्लास या मुखप्रसेक — इमेसिस ग्रेविडेरम या मॉर्निंग सिकनेस

Scanned with CamScanner

(आ) दौहृदजन्य छर्दि	हाइपँइमेसिसि ग्रेविडेरम
(इ) दोषज छर्दि (काश्यप वर्णित)	ॲसोशिएटेड वॉमिटिंग

Kāśyapa has described management of *doṣaja chardi* in *antarvatnīcikitsādhyāya* but has not referred to *dauhṛdajanya* or *garbhajanya chardi*. Thus this seems to be description of associated vomiting. On the basis of above description vomiting during pregnancy can be termed in following way:

a) *Mukhapraseka* or *hṛllāsa* or *chardi* described as a symptom of pregnancy.	Emesis gravidarum or morning sickness.
b) *Dauhṛdajanya chardi*	Hyperemesis gravidarum.
c) *Doṣaja chardi* described by Kāśyapa	Associated vomiting during pregnancy.

गर्भज वमन चिकित्सा (Treatment of vomiting during pregnancy)

गर्भज वमन के चिकित्सा-सिद्धान्त सामान्य छर्दि के सदृश ही होंगे, परन्तु गर्भावस्था के कारण वमन आदि शोधन कर्मों का निषेध होगा। औषधियों में भी पूर्वपृष्ठों में वर्णित सिद्धान्तों के अनुसार मृदु, मधुर औषधियों का प्रयोग ही अपेक्ष्य है।

The principles of treatment are indentical to general vomiting, however, purifying measures such as emetics etc. had to be avoided and drugs of sweet and soft nature are to be given.

(अ) चिकित्सा-सिद्धान्त (Principles of treatment)

दौहृद जन्य वमन की चिकित्सा अनुकूल उपचार एवं आकांक्षित वस्तु देकर करनी चाहिए अर्थात् गर्भिणी जिस फल, पेय, भक्ष्य या लेह्य की आकांक्षा करे वही उसे दें तो वमन नहीं होगा[1], या वातादि दोषों का विचार कर उस प्रकार की चिकित्सा करें[2]।

Pregnancy vomiting should be treated by providing agreeable attendance and desired articles, in other words if the woman is given desired fruits, edibles, drinkables and lickables etc. she will not eject them, besides other management should be done considering relative dominance of different *doṣas*.

(आ) औषधियाँ (Recipes)

(१) भूनिम्ब (चिरायता) के कल्क में समान मात्रा में शर्करा मिलाकर पीने से गर्भिणी की छर्दि का विनाश होता है[3]।

१. (अ)····· दौहृदीं कांक्षितैः फलैः। (सु० उ० ४९/२५)
(आ) अनुकूलोपचारेण याति द्विष्टार्थजा शमम्॥ (अ० सं० चि० ८/१३ एवं अ० हृ० चि० ६/२१)
(इ) ··· ··· इष्टैर्दौहृदजां फलैः। (भा० प्र० चि० १७/२८)
(ई) दौर्हृदस्थां वमिं हृद्यैः कांक्षितैर्वस्तुभिर्जयेत्॥ (यो० र० छर्दि० चि०)

२. दौहृदजास्ता यथास्वं वाताद्यौषधेन च शमं यान्ति। (अ० सं० चि० ८/१३ की इन्दु टी०)

३. पीतोभूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः॥ छर्दिं हरेत् ··· ···॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५१/६)

(२) शुण्ठी एवं बिल्व के क्वाथ में यव का सत्तू मिलाकर पिलाने से गर्भिणी के छर्दि एवं अतिसार का नाश होता है[1]।

(३) कुस्तुम्बरी (धान्यक) के कल्क में तण्डुलोदक एवं शर्करा मिलाकर पीने से गर्भिणी की छर्दि का निवारण होता है[2]।

(४) बिल्वमज्जा एवं लाजाम्बु पीने से गर्भिणी छर्दि का शमन होता है।[3]

(i) Use of pestled *bhūnimba* with equal quantity of sugar supresses vomiting.

(ii) Flour of parched barley mixed with decotion of *śuṇṭhī* and *bilva* cures diarrhoea and vomiting of pregnant woman.

(iii) Paste of *dhānyaka* mixed with rice water and sugar cures pregnancy vomiting.

(iv) Pulp of *bilva* fruit mixed with liquid prepared from parched paddy relieves pregnancy vomiting.

(ई) दोष प्राधान्य के आधार पर गर्भिणी वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting during pregnancy according to dominance of doṣas)

(१) वातज वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting due to vāta)

मातुलुङ्ग का रस, लाजा (धान का लावा), कोलमज्जा, अञ्जन (शुद्ध रसाञ्जन), दाडिमसार (अनारदाना) एवं शर्करा तथा मधु के साथ बनाया हुआ लेह विशेषकर वातिक छर्दि का शमन करता है[1]।

हे राजन्! अम्ल दाड़िम के साथ पकाए हुए लवण विरहित मांसरस (अजा मांस) या माहिष मांसरस का रुचिकर पदार्थों के साथ मिलाकर प्रयोग वातज छर्दि का नाशक होता है[2]।

An electurary prepared with juice of *mātuluṅga* (lemon), parched paddy, kernel of *kola* (jujube), *añjana, dāḍimasāra* (seeds of pomegranate), sugar and honey cures vomiting due to *vāta.*

The salt free soup prepared by cooking meat of goat or buffalo with sour pomegranate and mixed with appetizing articles cures vomiting due to *vāta.*

(२) पित्तज वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting due to pitta)

शर्करा एवं मधु से मिश्रित लाजा चूर्ण से युक्त तथा चतुर्जातक के कल्क से हृद्य बनाया हुआ, पुष्पों से सुवासित

१. शुण्ठीबिल्वकषायं तु यवसक्तुसमन्वितम्॥ ९॥
गर्भिणीं पाययेद्यश्छर्दीतीसारनाशनम्।
कुस्तुम्बरीणां कल्कं तु तण्डुलोदकसंयुतम्।
पिबेत्सशर्करं हृद्यं गर्भिणीच्छर्दिनिवारणम्॥ ११॥
बिल्वमज्जा च लाजाम्बु पिबेच्छर्दिषु गर्भिणी॥ १२॥ (यो० र० स्त्री० रो० चि०)

२. अथ छर्दिचिकित्सां तु प्रोच्यमानां निबोधत। मातुलुङ्गरसो लाजाः कोलमज्जा तथाऽञ्जनम्॥ ११८॥
तथा दाडिमसारश्च शर्करा, क्षौद्रमेव च। एष वातात्मिकां छर्दिं हन्ति लेहो विशेषतः॥ ११९॥
दाड़िमाम्लो रसः पक्वो हृद्यो लवणवर्जितः। वातच्छर्दिहरो राजन्! माहिषो वा सुसंस्कृतः॥ १२०॥ का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

तण्डुलोदक पित्तज छर्दि का प्रशमन करता है[1]।

सिता एवं मधु से युक्त लाजा की पेया हितकारी होती है[1]।

शर्करा द्वारा मधुर किया हुआ जांगल पशु या पक्षियों का मांसरस पथ्य होता है[1]।

Rice water mixed with sugar, honey, flour of parched paddy, made palatable or appetizing by mixture of pestled *caturjātaka* and incensed with flowers cures vomiting due to *pitta*.

A drink prepared from parched paddy mixed with honey and sugar is beneficial.

Meat soup of wild animals or birds sweetened with sugar is congenial to the patients.

(३) श्लैष्मिक वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting due to śleṣmā)

आम्र एवं जामुन के कोमल पत्तों के शीतल क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से श्लैष्मिक छर्दि का शमन होता है[2]।

अनारदाने से साधित, लवण एवं स्नेह से युक्त मुद्गयूष भोजन में देना चाहिए यह हृद्य एवं छर्दि-विनाशक है[2]।

The cooled decoction of tender leaves of mango and blackberry mixed with honey relieves vomiting due to *kapha*.

Soup of *mudga* (a kind of bean i. e. green gram) medicated with seeds of pomegranate and mixed with salt and heated butter is appetizer and relieves vomiting.

(४) सन्निपातज वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting due to all the three doṣas)

सन्निपातज छर्दि में संसृष्ट अर्थात् तीनों दोषों की मिली जुली चिकित्सा करनी चाहिए[3]।

In this disease combined treatment prescribed for all the three *doṣas* should be done.

(५) कृमिज वमन-चिकित्सा (Treatment of vomiting due to parasites)

कृमिज वमन में पूर्ववर्णित (दोष प्राधान्य के आधार पर दोषानुसार) चिकित्सा करनी चाहिए[4]।

पुनर्नवामूल तथा भद्रदारु (देवदारु) के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाना चाहिए[4]।

In this condition the treatment should be prescribed according to the predominance of specific *doṣa*. The decoction of root of *punarnavā* and *bhadradāru* mixed with honey should be given.

---

१. शर्करामधुसंयुक्तं लाजचूर्णसमायुतम्। चातुर्जातककल्केन हृद्यं पुष्पैः सुवासितम्॥ १२१॥
पित्तच्छर्दिप्रशमनं हितं तण्डुलधावने। हिता लाजमयी पेया सिताक्षौद्रेण संयुता॥ १२२॥
जाङ्गलो वा रसः पथ्यः शर्करा मधुरीकृतः। (का० सं० खि० १०)

२. आम्रजम्बूप्रवालानि सितानि सुभृतानि तु॥ १२३॥
क्षौद्रयुक्तानि पेयानि श्लेष्मच्छर्द्यां विशेषतः। भोजनार्थे हितं यूषं मुद्गैर्दाडिमसारि(धि)तम्॥ १२४॥
व्यपेतस्नेहलवणं हृद्यं छर्दिविनाशनम्॥ १२५॥ (का० सं० खि० १०)

३. सन्निपात समुत्थायां संसृष्टान्यवचारयेत्॥ १२५॥ (का० सं० खि० १०)

४. क्रिमिजायां तु कर्त्तव्यं यत् पुरस्तात् प्रवक्ष्यते। वर्षाभूमूलनिष्क्वाथं योजयेद्भद्रदारुणा॥ १२६॥ (का० सं० खि० १०)

(६) हृल्लास चिकित्सा (Treatment of nausea)

भूनिम्ब कल्क का मधु के साथ प्रयोग हृल्लेद (जी मिचलाना) का शमन करता है[1]।

Nausea is relieved by use of pestled *bhūnimba* with honey.

(२) किक्कस (Kikkisa or striae gravidarum)

निदान एवं लक्षण (Etiopathogenesis, signs and symptoms)

तत्र गर्भस्य केशा जायमाना मातुर्विदाहं जनयन्तीति स्त्रियो भाषन्ते; तन्नेति भगवानात्रेयः, किन्तु गर्भोत्पीडनाद्वातपित्तश्लेष्माण उरः प्राप्य विदाहं जनयन्ति, ततः कण्डूरुपजायते कण्डूमूला च किक्किसावाप्तिर्भवति॥
(च० सं० शा० ८/३२)

तस्मिंश्च गर्भस्य केशोत्पत्त्या मातुर्विदाहो भवतीति स्त्रियो भाषन्ते। नेति भगवानात्रेयः। गर्भोत्पीडनात्तु दोषा हृदयं प्राप्य विदहन्ति ततः कण्डूर्जायते कण्ड्वा किक्किसम्॥ (अ० सं० शा० ३/९)

गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाश्रिताः।
कण्डूं विदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्या किक्किसानि च॥ (अ० हृ० शा० १/५८)

(इस सातवें मास में) गर्भ के केश उत्पन्न होने से माता को विदाह उत्पन्न होता है ऐसा स्त्रियाँ कहती हैं। भगवान आत्रेय कहते हैं ऐसा नहीं है। गर्भ के कारण उत्पीड़ित (गर्भ वृद्धि के कारण पीड़ित) वात, पित्त एवं कफ उरस् को प्राप्त होकर विदाह उत्पन्न करते हैं, जिससे कण्डू उत्पन्न होती है, कण्डू के ही कारण किक्किस की उत्पत्ति होती है। टीकाकार चक्रपाणि ने केशों की उत्पत्ति तृतीय मास से ही मानकर उन्हें कारणभूत नहीं माना तथा गर्भोत्पीडन को ही कारणभूत होने का समर्थन किया है[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने महर्षि चरक सदृश वर्णन करते हुए केवल उरस् के स्थान में हृदय शब्द का प्रयोग किया है। टीकाकार इन्दु ने रेखा स्वरूप त्वक्-संकोच को किक्किस कहा है[3]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है, कि गर्भ से उत्पीड़ित दोष हृदय में आश्रित होकर गर्भिणी में कण्डु, विदाह एवं किक्किस की उत्पत्ति कर देते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने विदाह से हाथ पैर का दाह तथा किक्किस से रेखासदृश आकृति के अतिरिक्त शूक के सदृश पूर्णता भी अर्थ किया है[4]।

महर्षि भेल ने भी उपर्युक्त मत का ही प्रतिपादन किया है[5]।

The women say that due to growth of scalp hair of the fetus in seventh month the mother gets *vidāha* (burning sensation) resulting into development of *kikkisa*, however, Ātreya says no, it is not so; the growing fetus displaces the *doṣas* upwards, thus these *vāta, pitta* and *kapha* reaching *uras* (chest-Caraka) or *hṛdaya* (heart-Vāgbhaṭa) produce burning

---

१. पीतो भूनिम्बकल्कश्च·····। ·····हरेच्च हृल्लेदं मधुना वा समन्वितः॥ (हा० सं० तृ० ५१/६)

२. च० सं० शा० ८/३२ की चक्र० टी० (पृष्ठ १५१)

३. रेखास्वरूपस्त्वक्संकोचः किक्किसम्॥ (अ० सं० शा० ३/९ की इन्दु टी०)

४. उरस्तनोदरे वलिविशेषा रेखाकारास्तत्काले प्रायो ये जायन्ते ते किक्किससंज्ञाः। कैश्चित्शूकैरिव पूर्णता किक्किसानि इति व्याख्यायि। पाणिपादांसमूलेषु विविधः संतापः विदाह उच्यते (अ० हृ० शा० १/५८ की अरुण० टी०)

५. सप्तमे तु खलु मासे गर्भप्रपीडिता वातपित्तश्लेष्माणो(ण) उरः प्राप्य विदह्यमाना कण्डूं जनयन्ति। तेन किक्किसानि जायन्ते।
(भे० सं० शा० ८/६)

Scanned with CamScanner

sensation, which causes itching. The disease *kikkisa* is the result of this itching. Cakrapāni opines that growth of hair can not be the cause as these start developing from third month itself. Indu says that linear contractions of skin are *kikkisa*. Aruṇadatta has included burning sensation of palm and sole also as a symptom.

विमर्श (Comments)–

सप्तम मास के बाद गर्भ की वृद्धि के कारण उदर की त्वचा पर तनाव पड़ता है, एवं अन्य स्थानों जैसे स्तन, जंघा आदि में भी पुष्टि जन्य वृद्धि के कारण त्वचा में इसी प्रकार के तनाव से रेखाएँ बन जाती हैं, किक्किस (स्ट्राइअँ ग्रेविडेरम) नाम से उन्हीं का वर्णन प्रतीत होता है।

Seventh month onwards the uterus enlarged due to growing fetus and produces stretching of abdominal skin, similarly development of various components of breasts cause stretching of skin. Due to this stretching linear lines appear over the skin of abdomen, breasts and thighs known as striae-gravidarum. *Kikkisa* is description of this very condition.

किक्किस-चिकित्सा (Treatment)–

(१) मधुरगण की औषधियों से साधित नवनीत को पाणितल मात्रा (२ तोले की मात्रा) में समय-समय पर गर्भिणी स्त्री को पीने को दे[१,२]। बदरी (की त्वक्) के क्वाथ एवं मधुरौषध से सिद्ध नवनीत हितकारी है[३]।

(२) निम्नाङ्कित में से किसी एक से स्तन एवं उदर का मर्दन करें–
- (अ) चन्दन एवं मृणाल[१,२] अथवा चन्दन एवं उशीर का कल्क[३]।
- (आ) शिरीष (त्वक्), धातकी (पुष्प), सर्षप एवं मधुयष्टी का चूर्ण[१,२]।
- (इ) कुटज (त्वक्), अर्जक (बनतुलसी)-बीज, मुस्ता एवं हरिद्रा का कल्क[१,२]।
- (ई) निम्ब, बदरी, सुरसा (सभी के पत्र) एवं मंजिष्ठा का कल्क[१,२,३]।
- (उ) पृषत् (छोटे धब्बेदार मृग) या एण हरिण एवं शशक के रक्त से मिश्रित त्रिफला के कल्क[१,२,३] से अथवा केवल शशक के रक्त में त्रिफला पीसकर[४]।
- (ऊ) शशक, हरिण (के रक्त), पुनर्नवा, मालती (पुष्प) एवं मधुयष्टी से सिद्ध जल[३]।
- (ए) करवीर[१,३] एवं करञ्ज[३] के पत्तों के कल्क से साधित तैल से अभ्यंग करें।

(३) निम्नाङ्कित में किसी एक से स्तन एवं उदर का सिञ्चन करें–
- (अ) पटोल, निम्ब, मंजिष्ठा एवं सुरसा का क्वाथ[३]।
- (आ) मालती (चमेली के पत्र एवं पुष्प) तथा मधुक से सिद्ध जल (क्वाथ)[१,२]।
- (इ) दारुहरिद्रा एवं मधुक के क्वाथ से बार-बार मार्जन या प्रक्षालन करे[३]।

(४) कण्डू होने पर भी त्वक्-भेद एवं वैरूप्य से बचाने के लिए कण्डुयन न करें[१,२]। असह्य खुजली होने पर उपर्युक्त वर्णित चूर्णों आदि से मर्दन या घर्षण कर कण्डु का निवारण करे[१] अथवा स्नान एवं उद्वर्तन में चन्दन के प्रयोग से शीतलता लायें, ताकि कण्डु न हो[२]।

i) Butter treated with the drugs of *madhura* group should be given to pregnant woman frequently in the dose of *pāṇitala mātra* (about 20 gms) or else the butter medicated with decoction of stem bark of *badarī* (jujube) and drugs of *madhura* group should be given.

नोट– संदर्भ पृष्ठ २५३ में देखें।

ii) Any one of the following should be rubbed over the abdomen and breasts :
- a) The paste of *candana* and *mṛnāla* or *candana* and *uśīra*.
- b) Powdered stem bark of *śirīṣa*, flowers of *dhātakī*, *sarṣapa* and *madhuyaṣṭī*.
- c) Pestled bark of *kuṭaja*, seeds of *arjaka*, *mustā* and *haridrā*.
- d) Pestled leaves of *nimba*, *badarī* and *surasā* with *mañjiṣṭhā*.
- e) *Triphalā* pestled with the blood of *pṛṣata* or *ena* deer and rabbit or only *pṛṣata* deer or else *triphalā* pestled with the blood of rabbit.
- f) Water medicated with *punarnavā*, flowers of *mālatī* and *madhuka* and mixed with blood of deer and rabbit.
- g) Oil prepared with pestled leaves of *karavīra* alone or with *karañja*.

iii) Irrigation of abdomen and breasts should be done with decoction of either *paṭola*, *nimba*, *mañjiṣthā* and *surasā* or leaves and flowers of *mālatī* and *madhuka* or else repeated cleansing with decoction of *dāruharidrā* and *madhuka* should be done.

iv) One should not scratch (inspite of urge for itching) to avoid disfigurement or skin stretching. If the itching becomes irresistible then above mentioned powders should be rubbed or anointment or bath should be taken with *candan* which will supress itching sensation due to its coolness.

पथ्य (Beneficial diet)

मधुर, वातहर[१], थोड़ा-थोड़ा[२] (एवं बार-बार) अल्प स्नेह एवं लवण युक्त लघु आहार का सेवन करे, तथा अनुपान में थोड़े ही जल का प्रयोग करे (पथ्य में)[१,२,३]।

The diet should be sweet, capable of suppressing *vāta*, either fat and salt free or with little quantity of fat and salt, light and be taken repeatedly in small amounts followed by use of little quantity of water.

१. तत्र कोलोदकेन नवनीतस्य मधुरौषधसिद्धस्य पाणितलमात्रं काले कालेऽस्यै पानार्थं दद्यात्, चन्दनमृणालकल्कैश्चास्याः स्तनोदरं विमृदीयात्, शिरीषधातकीसर्षपमधुकचूर्णैर्वा, कुटजार्जकबीजमुस्तहरिद्राकल्कैर्वा, निम्बकोलसुरसमञ्जिष्ठाकल्कैर्वा, पृषतहरिण-शशरुधिरयुतया त्रिफलया वा; करवीरपत्रसिद्धेन तैलेनाभ्यङ्गः; परिषेकः पुनर्मालतीमधुकसिद्धेनाम्भसा; जातकण्डूश्च कण्डूयनं वर्जयेत्त्वग्भेदवैरूप्यपरिहारार्थम्, असह्यायां तु कण्डवामुन्मर्दनोद्वर्षणाभ्यां परिहारः स्यात्; मधुरमाहरजातं (मधुरमाहारजातं शु० पा०) वातहरमल्पमस्नेहलवणमल्पोदकानुपानं च भुञ्जीत। (च० सं० शा० ८/३२)

२. तत्र कोलोदकेन नवनीतस्य मधुरौषधसिद्धस्य पाणितलमात्रमस्यै दद्यात्। चन्दनमृणालकल्कैश्च स्तनोदरं मृद्नीयात्। शिरीषधातकीसर्षपमधुकचूर्णैर्वा। कुटजार्जकबीजमुस्ताहरिद्राकल्कैर्वा। निम्बकोलसुरसमञ्जिष्ठाकल्कैर्वा। शशहरिणपृषतरुधिरयुक्तया त्रिफलया वा करवीरकरञ्जपत्रकल्कसिद्धेन च तैलेनाभ्यङ्गः। परिषेकः पुनर्मालतीमधुकसिद्धेनाम्भसा। कण्डूयनं वर्जयेत्। त्वग्भेदे वैरूप्यपरिहारार्थं स्नानोद्वर्तनं चन्दनं च शीलयेत्। मधुरं चाहारमल्पमल्पस्नेहलवणमल्पोदकानुपानं भुञ्जीत॥ (अ० सं० शा० ३/१०)

३. नवनीतं हितं तत्र कोलाम्बुमधुरौषधैः। सिद्धमल्पपटुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम्॥ ५९॥
चन्दनोशीरकल्केन लिम्पेदुस्तनोदरम् श्रेष्ठया चैणहरिणशशशोणितयुक्तया॥ ६०॥
अश्वत्थपत्रसिद्धेन तैलेनाऽभ्यञ्य मर्दयेत्। पटोलनिम्बमञ्जिष्ठासुरसैः सेचयेत्पुनः॥ ६१॥
दार्वीमधुकतोयेन मृज्यां च परिशीलयेत्॥ (अ० हृ० शा० १)

४. स्त्रीणां (तुर्ण) त्रिफलाचूर्णं शशरुधिरेण पिष्टा तेनास्याः तान्यालेपयेत्॥ (भे० सं० शा० ८/६)

Scanned with CamScanner

(इ) अन्य व्याधियाँ (Other disorders during pregnancy)

(१) गर्भिणी-ज्वर (Fever of pregnant woman)

गर्भिणी-ज्वर चिकित्सा का महत्व (Importance of treatment of fever of a pregnant woman)

गर्भिणीनां ज्वरः कष्टः सर्वव्याधिषु पार्थिव ! ।
ज्वरोष्मणाऽभितप्तस्तु गर्भो यात्येव विक्रियाम् ॥ ४॥
तस्माज्ज्वरचिकित्सां तु पूर्वमेव निबोध मे ॥ ५॥ (का० सं० खि० १०)

हे पार्थिव ! गर्भिणी की व्याधियों में ज्वर सब व्याधियों से अधिक कष्टदायक होता है । ज्वर की ऊष्मा से अभितप्त होने से गर्भ में भी विकृति आ जाती है अतः सर्वप्रथम मुझसे ज्वर की चिकित्सा जानो ।

The fever to a pregnant woman is most troublesome disease. The fetus also suffers due to transfer of heat of fever from mother to the fetus. Considering this, first of all fever is being described.

गर्भिणी-ज्वर-निदान (Etiology of fever of a pregnant woman)

क्षुच्छ्रमाभ्यञ्जनाद्रौक्ष्यादौष्ण्यापक्वविधारणात् ॥ ५॥
स्नेहस्वेदौषधानां च विभ्रमात्तेजसोऽपि च । सन्तापान्मनसश्चापि पर्वतानां तथैव च ॥ ६॥
गन्धाच्च तृणपुष्पाणां गर्भिण्या जायते ज्वरः॥ ७॥ (का० सं० खि० १०)

क्षुधा, श्रम, अभ्यंजन, रूक्षता, उष्णता, पक्व (मल) के धारण[1], स्नेहन एवं स्वेदन औषधियों तथा तेज (अग्नि) के विभ्रम (मिथ्यायोग), मानसिक सन्ताप, पर्वतारोहण तथा तृण एवं पुष्पों की गन्ध से गर्भिणी स्त्री को ज्वर हो जाता है ।

Excessive hunger, exertion and massage, dryness, heat, retention of normal feces, improper use of oleatives, sudorifics and fire (heat), psychological strain, climbing on mountains and smell of grass and flowers (pollen) are the causative factors.

गर्भावस्था के चतुर्थमास से पूर्व ज्वर होने पर चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of fever before 4th month of pregnancy)

गर्भिणीं ज्वरितां नारीमेकाहमुपवासयेत् ॥ ७॥
ततो दद्यादलवणां पेयां स्नेहविवर्जिताम् । तीक्ष्णानि त्वन्नपानानि स्वेदमायासमेव च ॥ ८॥
वर्जयेज्ज्वरिता नारी यवागूं केवलां पिबेत्। यवाग्वा हृसिते दोषे यूषैरन्नानि दापयेत् ॥ ९॥
यूषैस्तु हृसिते दोषे रसं वा क्षीरमेव वा। दापयेन्मतिमान् प्राज्ञो न त्वौषधविधिर्हितः ॥ १०॥
(का० सं० खि० १०)

(अग्रिम पृष्ठों में चतुर्थमासोपरांत दोषानुसार औषधि-प्रयोग का विधान वर्णित है अतः यह चिकित्सा-सूत्र चतुर्थ मास के पूर्व की गर्भ-स्थिति के समय का समझना चाहिए) ।

गर्भिणी को ज्वर होने पर एक दिन उपवास कराके लवण एवं स्नेह रहित पेया देनी चाहिए । ज्वर-पीड़ित गर्भिणी स्त्री को तीक्ष्ण अन्न-पान, स्वेदन एवं परिश्रम का परित्याग करना चाहिए तथा केवल यवागू का पान करना चाहिए । बुद्धिमान

१. क्षुधा आदि सभी में पञ्चमी विभक्ति होने के कारण उष्णता में पञ्चमी होना चाहिए अतः निम्न पाठान्तर अधिक उपयुक्त प्रतित होता है, "रौक्ष्यादौष्ण्यात्पक्वविधारणात्" यह पाठ करने पर अपक्व न होकर पक्व शब्द हो जायगा एवं मलधारण एक कारण होगा।

वैद्य को चाहिए कि यवागू-पान से दोषों के घट जाने पर यूषों के साथ अन्न को दे । यूष-प्रयोग से दोषों के (और) घट जाने पर रस (मांसरस) एवं क्षीर का प्रयोग कराना चाहिए । औषधि का प्रयोग नहीं कराना चाहिए ।

Before fourth month of pregnancy if woman suffers from fever, she should be advised to fast for one day, followed by use of drinkables free from fat and salt. Use of pungent dietetics and drinkables, sudorifics and exercise should be avoided. She should take only rice gruel. After subsedence of aggravated *doṣas* by the use of rice gruel, the wise physician should prescribe her cereals with soups. With further subsidence of *doṣas* by this procedure she should be advised meat soups and milk. No medicine should be given.

चतुर्थमासोपरांत ज्वर का चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment after 4th month)

अनुबन्धे तु दोषस्य गर्भकालमपेक्ष्य च । मासाच्चतुर्थात् प्रभृति भिषग्भेषजमाचरेत् ॥ ११॥
शारीरं तु ज्वरं ज्ञात्वा वातपित्तकफात्मकम् । मध्यां क्रियां प्रयुञ्जीत सञ्जिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ १२॥
उपद्रवबलं ज्ञात्वा सत्त्वं चापि समीक्ष्य तु । गर्भावस्थां तु विज्ञाय लेखनानि प्रदापयेत् ॥ १३॥
(का० सं० खि० १०)

चतुर्थमास एवं तत्पश्चात गर्भावस्था के काल को देखकर दोषों के अनुबन्ध के अनुसार चिकित्सक को औषधियों का प्रयोग करना चाहिए । शरीर के वात, पित्त या कफात्मक ज्वर का ज्ञान करके, गुरुता एवं लघुता का (व्याधि की) विचार करके मध्यम क्रिया (अर्थात् न अधिक तीक्ष्ण, न मन्द, न उष्ण, न शीत, न अतिशोधनादि चिकित्सा) करनी चाहिए । उपद्रव, बल (रोग एवं रोगी का बल), सत्व (गर्भिणी का सत्व) एवं गर्भावस्था को देखकर लेखन आदि का प्रयोग करना चाहिए ।

During fourth month of pregnancy and later on the physician should prescribe the drugs after giving due consideration to the duration of pregnancy, amount of vitiation/ association of *doṣas*. One should use moderate treatment after understanding the type of fever i. e. *vātaja, pittaja* or *kaphaja jwara* and also severity or mildness of disease. Use of *lekhana karma* (the measures which make the body light) etc. should be done after considering properly the complications of disease, stemina and tolerance of the woman and her duration of pregnancy.

गर्भिणी को ज्वरावस्था में विभिन्न शोधन-कर्म-निषेध या शोधन का परिणाम (Effect of cleansing measures upon the pregnant woman during fever)

सभी आचार्यों ने सामान्य चिकित्सा-सूत्र वर्णन करते समय गर्भिणी को शोधन-कर्म का निषेध किया है, जो पूर्व पृष्ठों में वर्णित है । इसके अतिरिक्त विभिन्न शोधन-कर्मों के अन्तर्गत भी गर्भिणी में इनके निषेध वर्णित हैं जैसे- स्नेहन-निषेध[1], स्वदेन-निषेध[2], वमन-निषेध[3], विरेचन-निषेध[4], सातवें-मास तक बस्ति-निषेध[5], नस्य-निषेध[6], धूमपान-

१. च० सं० सू० १३/५४ एवं का० सं० सू० २२/३०
२. च० सं० सू० १४/१६; सु० सं० चि० ३२/२५; अ० सं० सू० २६/३२; अ० ह० सू० १७/२४; का० सं० सू० २३/१९; भे० सं० सू० २३/१२ एवं शा० सं० उ० २/१३
३. च० सं० सि० २/८; सु० सं० चि० ३३/१५; अ० सं० सू० २७/७; अ० ह० सू० १८/३; का० सं० सि० ७/५; शा० सं० उ० ३/७; भे० सं० सू० २४/११ एवं भा० प्र० पूर्व० द्वितीय भाग ५/७
४. च० सं० सि० २/११; सु० सं चि० ३३/२९; अ० सं० सू० २७/८; शा० सं० उ० ४/७; भे० सं० सू० २४/११ एवं भा० प्र० पूर्व० द्वितीय भाग ५/३९
५. सु० सं० चि० ३५/२१; अ० सं० सू० २८/११; अ० ह० सू० १९/६ एवं शा० सं० उ० ६/५
६. च० सं० सि० २/२०; सु० सं० चि० ४०/४७; अ० सं० सू० २९/११; का० सं० सि० ४/६ एवं शा० सं० उ० ८/४

Scanned with CamScanner

निषेध[1], अग्निकर्म-निषेध[2], (महर्षि सुश्रुत ने अस्वेद्य को अग्निकर्म का भी निषेध किया है एवं गर्भिणी स्त्री अस्वेद्य है), क्षारकर्म-निषेध[3], तथा शिराबेध-निषेध[4], अर्थात् गर्भिणी स्त्री को सामान्य रूप से सभी शोधन कर्मों का निषेध किया गया है[5]। महर्षि चरक आदि ने गर्भिणी को शिरोविरेचन, वमन तथा विरेचन से होने वाली विशिष्ट व्याधियों का भी वर्णन किया है, जिनका यथा स्थान अग्रिम पृष्ठों पर उल्लेख किया जायगा। अन्य आचार्यों ने भी विभिन्न निषिद्ध व्यक्तियों में शोधन कर्मों से सामान्य व्याधियों के भी असाध्य हो जाने या मृत्यु होने का वर्णन किया है, पर इन निषिद्ध कर्मों का ज्वर से कोई विशिष्ट सम्बन्ध नहीं है। ये सभी सामान्य रूप से गर्भिणी में करने के लिए निषिद्ध हैं, न कि किसी विशिष्ट अवस्था में। महर्षि काश्यप ने ज्वरावस्था में प्रयुक्त शोधन कर्मों से उत्पन्न उपद्रवों का वर्णन किया है। वर्णन की सुगमता एवं सम्पूर्ण विषय के एक स्थान में संकलन की दृष्टि से महर्षि चरक, वाग्भट एवं काश्यप आदि सभी के द्वारा वर्णित विषय एक साथ ही दिया जा रहा है। ज्वरार्त होने पर गर्भिणी स्त्री को अग्निकर्म[6], विष[7]-प्रयोग तथा लंघन[8] निषिद्ध है।

All the authors have enlisted the state of pregnancy as one of the condition in which use of cleansing measures such as oleation, sudation, emesis, purgation, enemas before seventh month, inhalations *(nasya)*, smoking, cauterization, application of corrosive agents and venesection etc. are contraindicated. Caraka has described certain complications likely to occur in pregnant woman by use of sternutatory drugs, emetics and purgatives (described in subsequent pages). Other authors have also warned that use of these cleansing measures in the unfit persons can make their disease incurable or even cause death. All these contraindications are for pregnant woman in general, not specific to the febrile state, however, Kāśyapa has described certain complications of these various measures if applied during febrile state of pregnancy. Description of all these authors is given together in subsequent pages. Use of cauterization, *viṣa* (poisonous articles) and fasting is contraindicated to a febrile pregnant woman.

(अ) तरुण ज्वर में अभ्यङ्ग का परिणाम (Effect of massage in acute fever)

तरुणे तु ज्वरे नार्या अभ्यङ्गो न प्रशस्यते। गर्भे तु तरुणे दत्तो गर्भघाताय कल्पते॥
(का० सं० खि० १०/१८)

तरुण (नवीन) ज्वर में अभ्यंग नहीं देना चाहिए। गर्भावस्था के तरुण ज्वर में दिया हुआ अभ्यंग गर्भ का घात कर देता है।

In fever of recent origin during pregnancy *(taruṇa jwara)* massage with oil should not be given, because it can kill the fetus.

१. सु० सं० चि० ४०/११
२. च० सं० चि० २५/१०५; सु० सं० सू० १२/१४
३. सु० सं० सू० ११/२८, अ० सं० सू० ३९/५, अ० ह० सू० ३०/६
४. सु० सं० सू १४/२४, अ० सं० सू० ३६/८, अ० ह० सू० २७/७
५. अ० सं० सू० २७/८
६. च० सं० चि० २५/१०६
७. अ० सं० उ० ४८/१९
८. भा० प्र० चि० १/४३

(आ१) नस्य-निषेध एवं परिणाम (Effect of use of nasal drops or nasal pourings)

गर्भिण्या हीनाङ्गस्य ····· पघातारोचकौ ॥ ६॥ (का० सं० सि० ४)
गर्भिणीनां तु नारीणां नस्ततो नानुसेचयेत्। नस्यदानेन गर्भिण्याः प्राणस्तु परिहीयते॥
(का० सं० सि० १०/१९)

गर्भिणी स्त्री को नासिका से अनुसेचन नहीं करना चाहिए अर्थात् नस्य नहीं देना चाहिए। नस्य देने से गर्भिणी स्त्री का गर्भ हीनाङ्ग वाला हो जाता है, गर्भिणी स्त्री अरोचक से पीड़ित होती है तथा उसकी प्राणशक्ति क्षीण होती है।

Nasal drops should not be prescribed to a pregnant woman or nothing should be poured into her nostrils because use of this produces less body-parts in the fetus, anorexia and reduces her vital capacity *(prāṇaśakti)*.

(आ२) नस्य से उत्पन्न उपद्रवों की चिकित्सा (Treatment of complications of nasal therapy)

·····गर्भिण्याश्च पुष्याध्यायू (याध्याय) ·····येभ्योऽध्यायेभ्यो भेषजं विदद्धयात्॥ क्षीरं वा जीवनीयोपसिद्धमिति परिषत्॥ (का० सं० सि० ४/६,७)

गर्भिणी को पुष्याध्याय या यूषाध्याय आदि में वर्णित औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए विशेषकर जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध दुग्ध का प्रयोग करना चाहिए।

The drugs mentioned in *puṣpādhyāya* and *yūṣādhyāya* etc. should be prescribed, and milk treated with *Jīvanīya* group of drugs should be given.

(इ) धूम्रपान-परिणाम (Effect of smoking)

कुणिर्वा यदि वाऽन्धश्च जायते दुर्बलेन्द्रियः। धूमपानेन गर्भिण्या धूमतेजोहतो भृशम्॥ २०॥
विवर्णो जायते गर्भः पतेद्वाऽपि विशाम्पते !॥ २१॥ (का० सं० खि० १०)

हे राजन्! गर्भिणी के धूम्रपान से, धूम के तेज से अत्यन्त आक्रान्त होने के कारण गर्भ (शिशु) कुणि (हाथ से पंगु), अन्ध, दुर्बलेन्द्रिय या विवर्ण उत्पन्न होता है, या गर्भपात भी हो जाता है।

If the pregnant woman smokes, fetus effected severely by sharpness of smoke becomes crooked armed and blind, possesses weak cognitive and conative organs and abnormal complexion.

(ई१) शिरोविरेचन-परिणाम (Effect of use of errhines or sternutatory drugs)

गर्भिण्या गर्भ स्तम्भयेत् स काणः कुणिः पक्षहतः पीठसर्पी वा जायते॥ (च० सं० सि० २/२१)
·····गर्भे ·····। वातो रूक्षेण नस्येन क्रुद्धः स्वाञ्जनयेद्गदान्॥ (च० सं० सि० ९/११३)
गर्भिण्या भक्तद्वेषञ्चरमूर्च्छाऽर्धांवभेदकाः स्युरुपत्यं च व्यङ्गं विकलेन्द्रियमुन्मादापस्मारयुक्तं वा॥
(अ० सं० सू० २९/११)

शिरोविरेके गर्भिण्याः संक्षोभात्तु भयेन वा ॥ २१॥
मारुतः कुपितो देहे गर्भघाताय कल्पते। अथवा वातरोगी तु गर्भो भवति पार्थिव !॥ २२॥
(का० सं० खि० १०)

महर्षि चरक ने (सामान्य गर्भिणी को शिरोविरेचन देने से होने वाले परिणामों का वर्णन करते हुए) लिखा है कि

Scanned with CamScanner

गर्भिणी को शिरोविरेचन देने से गर्भ का स्तम्भन हो जाता है, वह काना, कुणि[1], पक्षाघात से पीड़ित तथा पंगु[1] उत्पन्न होता है। रुक्ष नस्य से वायु प्रकुपित होकर अपने अनेक रोगों को उत्पन्न करती है।

महर्षि वाग्भट का कथन है कि गर्भिणी को नस्य देने से उसे भक्तद्वेष (भोजन से अरुचि), ज्वर, मूर्च्छा एवं अर्धावभेदक (आधे सर में दर्द), आदि व्याधियाँ हो जाती हैं एवं अपत्य व्यङ्ग, विकलेन्द्रिय, उन्माद एवं अपस्मार से पीड़ित हो जाता है।

महर्षि काश्यप ने (ज्वरित गर्भिणी को शिरोविरेचन देने के परिणामों का वर्णन करते हुए) लिखा है कि हे पार्थिव ! गर्भिणी स्त्री को शिरोविरेचन देने से भय एवं संक्षोभ के कारण प्रकुपित हुई वायु के द्वारा गर्भ का नाश हो जाता है अथवा गर्भ वातरोगी हो जाता है।

Caraka opines that use of sternutatory drugs by a pregnant woman (not necessarily during fever only) influences her fetus by making it stiff or immobile, besides the fetus becomes single eyed, crooked armed, hemiplegic, lame and suffers from various disorders of *vāta*. Vāgbhaṭa has enumerated anorexia, fever, unconsciousness and hemicrania to the woman and *vyaṅga* (hyper pigmentation), abnormalities of *indriyas*, *apasmāra* (epilepsy) and *unmāda* (insanity) to the child.

Kāśyapa says that by use of sternutatory drugs during fever the *vāyu* gets aggravated due to irritation and fear, this *vāyu* either kills the fetus or produces various disorders.

(ई२) शिरोविरेचन से उत्पन्न उपद्रवों की चिकित्सा (Treatment for complications of sternutatory drugs)

तत्र वातहरः सर्वो विधिः स्नेहनबृंहणः।
स्वेदादिः, स्याद् घृतं क्षीरं गर्भिण्यास्तु विशेषतः ॥ (च० सं० सि० ९/११४)

सभी वातहर विधि यथा स्नेहन, बृंहण एवं स्वेदन आदि करना चाहिए। गर्भिणी में विशेषकर घृत एवं क्षीर का प्रयोग करना चाहिए।

All the measures capable of suppressing the *vāta* such as oleation, *vṛṃhaṇa* (anabolic) and sudation should be applied. She should be given milk and *ghṛta*.

(उ) स्वेदन-परिणाम (Effect of sudation)

स्वदेन तरुणे गर्भे पित्तं प्रकुपितं भृशम्। च्यावयेदाशु गर्भं तु तस्मात् स्वेदं विवर्जयेत् ॥ २३॥
स्वेदः स्थिरे तु विहितो गर्भवैवर्ण्यकारकः ॥ २४॥ (का० सं० खि० १०)

तरुण गर्भ में स्वेद देने से पित्त अत्यधिक प्रकुपित होकर गर्भ को शीघ्र गिरा देता है, अतः स्वेदन नहीं देना चाहिए। गर्भ के स्थिर होने पर स्वेदन गर्भ में विवर्णता कारक होता है।

If sudation is used in febrile condition during early pregnancy, the *pitta* gets severely vitiated and causes abortion, however after stability of fetus (4th month onwards) it produces abnormalities of complexion of the fetus.

(ऊ) वमन-परिणाम (Effect of emesis)

गर्भिण्या गर्भव्यापदामगर्भभ्रंशाच्च दारुण रोगप्राप्तिः ॥ (च० सं० सि० २/९)

१. कुणिः कुब्जितकरः, पीठसर्पी पङ्गुः ॥ (च० सं० सि० २/२१ की चक्र० टी०)

तत्र गर्भिण्या गर्भव्यापदामगर्भभ्रंशाच्च दारुणरोगप्राप्तिः स्यात् ॥ (अ० सं० सू० २७/७)
वमनं तरुणे गर्भे स्वैर्गुणैर्गर्भघातकम् ॥ २४॥ (का० सं० खि० १०)

महर्षि चरक एवं वाग्भट मतानुसार (सामान्य गर्भिणी को) वमन कराने से गर्भव्यापद् एवं आम गर्भस्राव तथा अन्य भयंकर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है।

महर्षि काश्यप-मतानुसार (ज्वर-पीड़ित गर्भिणी को) गर्भ की तरुणावस्था में वमन देने से वह (वमन) अपने गुणों के द्वारा गर्भ को नष्ट कर देता है।

Emesis given during pregnancy produces fetal abnormalities, abortion and other serious disorders is the opinion of Caraka and Vāgbhaṭa.

Kāśyapa writes that emesis to a febrile woman during early pregnancy destructs the fetus.

(ए) विरेचन-परिणाम (Effect of purgation)

गर्भिण्यन्तानां छर्दनोक्तो दोषाः स्यात्। (च० सं० सि० २/१२)
गर्भिण्यादीनां पूर्वोक्तदोषः स्यात् ॥ (अ० सं० सू० २७/१०)
नाभिप्रपीडनोत्काराद् संक्षोभाच्च विशेषतः। गर्भिण्यास्तरुणे गर्भे स्रंसनं न प्रशस्यते ॥ २५॥
गुरुत्वादुष्णतीक्ष्णत्वाद्वाहनाच्चास्य घातकम्॥ २६॥ (का० सं० खि० १०)

महर्षि चरक एवं वाग्भट के मत से (सामान्य) गर्भिणी को विरेचन देने से वमनान्तर्गत वर्णित दोष ही होते हैं।

महर्षि काश्यप के मतानुसार (ज्वर से पीड़ित) गर्भिणी को गर्भ की तरुणावस्था में स्रंसन (विरेचन) (गर्भ की) नाभि के प्रपीडन करने विशेषतः संक्षोभन करने के कारण प्रशस्त नहीं माना गया है। यह गुरु, उष्ण, तीक्ष्ण तथा वाहन गुण के कारण गर्भ का घातक होता है।

Caraka and Vāgbhaṭa say that the abnormalities produced by purgation to a pregnant woman are similar to that of emesis.

Kāśyapa opines that as purgation produces compression of umbilicus and also irritation, hence it is not advised to a febrile woman of recent pregnancy. The purgation due to its heavy, hot and pungent qualities and the character of excessive mobility is harmful to the fetus.

(ऐ) आस्थापन एवं अनुवासन का परिणाम (Effect of evacuative and nutritive enemas)

गर्भिण्या पूर्वोक्तो दोषः ॥(अ० सं० सू० २८/११)
आस्थापनं तु तरुणे गर्भे नार्या न शस्यते ॥ २६॥
अनुवासनं च मतिमानिति शास्त्रविनिश्चयः। आस्थापनं सानुवासं करोति स्वेन तेजसा ॥ २७॥
हीनाङ्गं स्रावि‍णं वाऽपि गर्भमित्येष निश्चयः। तस्मादेतानि मतिमान् गर्भिण्या न प्रदापयेत् ॥ २८॥
(का० सं० खि० १०)

गर्भिणी में पूर्वोक्त अर्थात् वमनान्तर्गत वर्णित आमगर्भ-भ्रंश[1] आदि उपद्रव होते हैं।

शास्त्र निश्चय के अनुसार तरुण गर्भ में गर्भिणी (ज्वर-पीड़ित) को आस्थापन एवं अनुवासन दोनों ही प्रशस्त नहीं माने गए हैं। आस्थापन या अनुवासन देने से उसके तेज के कारण निश्चय ही गर्भ या तो हीनांग वाला हो जाता है या

१. गर्भिण्या आस्थापनेन पूर्वोक्तो वमनोक्तो आमगर्भभ्रंशादिः॥ (अ० सं० सू० २८/११ की इन्दु टी०)

Scanned with CamScanner

उसका स्राव हो जाता है। अतः बुद्धिमान् वैद्य गर्भिणी स्त्री को ये (नस्य, शिरोविरेचन तथा आस्थापनानुवासन आदि) नहीं देवे।

Both the types i. e. evacuative and nutritive enemas are not advisable to a pregnant woman, because these will produce the complications enlisted under emesis is the opinion of Vāgbhaṭa. Kāśyapa says that to a febrile woman of recent pregnancy if both these enemas are given, then fetus influenced by sharpness of these enemas either will possess less body parts or will get aborted.

गर्भिणी-ज्वर की सामान्य चिकित्सा (General treatment of fever during pregnancy)

(१) मधूक, चन्दन, उशीर, सारिवा, मधुयष्टी तथा पद्मक का शर्करा एवं मधु युक्त क्वाथ गर्भिणी ज्वर शांति के लिए प्रयोग करना चाहिए[1]।

(२) चन्दन, सारिवा, लोध्र तथा मृद्वीका के क्वाथ को शर्करा मिलाकर गर्भिणी ज्वर शांति के लिए देना चाहिए[2,3]।

(३) पयस्या, सारिवा, पाठा, तोय, तोयद तथा नागर के साथ सिद्ध किया हुआ शीतल जल गर्भिणी-ज्वर-निवारण के लिए पीना चाहिए[2]।

(४) मधुयष्टी, चन्दन, उशीर, सारिवा एवं पद्मपत्रक के क्वाथ में शर्करा एवं मधु मिलाकर पीने से गर्भिणी-ज्वर की शांति होती है[3]।

(५) अतिसारान्तर्गत वर्णित हीबेरादि क्वाथ ज्वर में भी लाभदायक होता है।

i) Decoction of *madhūka, candana, uśira, sārivā, madhuyaṣṭī* and *padmaka* mixed with honey and sugar is beneficial.

ii) Decoction of *candana, sārivā, lodhra* and *mṛdvīkā* mixed with sugar should be prescribed.

iii) Water medicated with *payasyā, sārivā, pāṭhā, toya, toyada* and *nāgara* and cooled should be given for drinking.

iv) Use of decoction prepared with *madhuyaṣṭī, candana, uśira, sārivā* and *padmapatraka* mixed with sugar and honey relieves fever of pregnant woman.

v) *Hrīberādi* decoction prescribed for diarrhoea is also beneficial.

दोषानुसार-ज्वर की चिकित्सा (Treatment of fever according to predominance of doṣas)

(१) वातज्वर चिकित्सा (Treatment of fever caused by vāta)—

निम्नाङ्कित औषधियाँ रोग की विशिष्ट अवस्था का विचार कर देनी चाहिये।

Giving due consideration to condition of disease following drugs should by used.

१. मधूकचन्दनोशीरसारिवायष्टिपद्मकैः। शर्करामधुसंयुक्तः कषायो गर्भिणी ज्वरे॥ (यो० र० स्त्री० रो० चि०)

२. चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम्। क्वाथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये॥
पयस्यासारिवापाठातोयतोयदनागरैः। मृतं शीतं पिबेद्वारि गर्भिणीज्वरवारणम्॥ (यो० र० स्त्री० रो० चि०)

३. मधुकं चन्दनोशीरसारिवा पद्मपत्रकैः। शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणी ज्वरे॥
चन्दनं सारिवा ····· शर्कराऽन्वितम्। ····· शान्तये। (भा० प्र० चि० ७०/६५ व ६६, यो० र० सदृश ही)

(अ) क्वाथ (Decoction)

(१) विदारिगंधा, कलशी, गन्धर्वहस्तक, मधुयष्टी तथा भद्रदारु का क्वाथ शर्करा के साथ मिलाकर तथा मातुलुङ्ग रस डालकर पान[1]।

(२) विदारिगन्धादि वर्ग की औषधियों का भद्रदारु मिला हुआ ईषत् उष्ण क्वाथ पान[2]।

(३) एरण्ड, वरुण, दोनों बृहती तथा मधुक का क्वाथ रास्ना कल्क के साथ मिलाकर प्रयोग[3]।

(४) दोनों पञ्चमूल (दशमूल) का शीतल या ईषत् उष्ण क्वाथ रास्ना कल्क के साथ मिलाकर प्रयोग[3]।

i) The decoction of *vidārigandhā, kalaśī, gandharvahastaka, madhuyaṣṭī* and *bhadradāru* mixed with sugar and juice of *mātuluṅga* (a variety of lemon).

ii) Luke warm decoction of drugs of *vidārigandhādi* group along with *bhadradāru*

iii) The decoction of *eraṇḍa, varuṇa,* both *bṛhatī* and *madhuka* mixed with paste of *rāsnā.*

iv) Either cool or lukewarm decoction of both *pañcamūla (daśamūla)* mixed with paste of *rāsnā.*

(आ) अभ्यङ्गार्थ तैल (Oil for massage)

कुष्ठ, मधुयष्टी, रास्ना, गिरिकदम्ब, शताह्वा, पद्मक, सारिवा, उशीर, उत्पल, मुस्ता, श्रृगालविन्ना, करविन्दी, वचा, पयस्या (क्षीरविदारी), हंसपादी तथा पुन्नाग सभी एक-एक कर्ष लेकर दधिमण्ड (दही के पानी) के साथ पीसे। फिर इन सभी का क्वाथ बना ले। दशमूल २ पल, बला एवं अतिबला आधा-आधा पल, कोरण्ड, मधुशिग्रु, मदयन्ती ये तीनों तथा यव, कोल एवं कुलत्थ एक-एक प्रस्थ लेकर इन सभी को एक द्रोण जल में क्वथित करके एक आढ़क शेष बचावे। अब इसमें उपर्युक्त (कुष्ठादि का) क्वाथ डाल दे। इसमें दुग्ध, गोमूत्र, वारुणी तथा उत्तम दधि प्रत्येक एक-एक कुड़व तथा तिल तैल डालकर वैद्य पकाए। सिद्ध हो जाने पर अग्नि से उतार ले। इस उष्ण तैल के द्वारा सम्पूर्ण शरीर की मालिश करने से तीन दिन में ही वातज्वर नष्ट हो जाता है। गर्भ के स्थिर हो जाने पर (चतुर्थ मास लग जाने के बाद) इसका यथावत् प्रयोग प्रशस्त माना गया है[3]।

१. इमानि दद्यात् सञ्चिन्त्य रोगावस्थाविशेषवित्। विदारिगन्धां कलशीं तथा गन्धर्वहस्तकम्॥ २९॥
मधुकं भद्रदारुं च क्वाथः शर्करया युतः। वातज्वरहरो देयो मातुलुङ्गरसाप्लुतः॥ ३०॥ (का० सं० खि० १०)

२. वर्गो विदारिगन्धादिः क्वथितो नातिशीतलः। भद्रदारुसमायुक्तो वातज्वरहरो मतः॥ ३१॥
एरण्डो वरुणश्चैव बृहत्यौ मधुकं तथा। वातज्वरहरः क्वाथो रास्नाकल्कसमायुतः॥ ३२॥
द्विपञ्चमूलनिष्क्वाथः कोष्णो वा यदि वा हिमः॥ रास्नाकल्कसमायुक्तो वातज्वरहितो मतः॥ ३३॥ (का० सं० खि० १०)

३. कुष्ठं सयष्टीमधुकं रास्ना गिरिकदम्बकः॥ ३४॥
शताह्वा पद्मकं चैव सारिवोशीरमुत्पलम्। मुस्ता श्रृगालविन्ना च करविन्दी तथा वचा॥ ३५॥
पयस्या हंसपादी च तथा पुन्नागमेव च। कर्षप्रमाणान्येतानि दधिमण्डेन पेषयेत्॥ ३६॥
तत(सम?)स्तमेषामङ्गानां निष्क्वाथं क्वाथयेद्भिषक्। भागाश्च दशमूलस्य कार्या द्विपलसम्मिताः॥ ३७॥
बलातिबलयोश्चैव कुर्यादर्धपलं भिषक्। कोरण्डमधुशिग्रूणि मदयन्ती च ते त्रयः॥ ३८॥
यवकोलकुलत्थानां भागाः स्युः प्रस्थसम्मिताः। निष्क्वाथ्यैतानपां द्रोणे शेषमाढकसम्मितम्॥ ३९॥
तत्र दद्यात् प्रतीवापं यत् पूर्वमुपकल्पितम्। क्षीरं तथैव गोमूत्रं वारुणीं दधि चोत्तमम्॥ ४०॥
भिषक्कुडवामाज्ञाणि तिलतैलेन योजयेत्। अवहत्याग्निना सिद्धमीषत्क्षोदायितं यदि॥ ४१॥
उष्णेनैतेन तैलेन सर्वगात्राणि भ्रक्षयेत्। वातज्वरं निहन्त्येतन्म्रक्षणैस्त्रिभिरेव तु॥ ४२॥
एषोऽभ्यङ्गः स्थिरे गर्भे यथावत् संप्रशस्यते॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

One *karṣa* each of *kuṣṭha, madhuyaṣṭī, rāsnā, girikadamba, śatāhwā, padmaka, sārivā, uśīra, utpala, musta, śṛgālavinnā, karavindī, vacā, payasyā, haṃsapādī* and *punnāga* should be triturated with curd-water and decocted. *Daśamūla* two *pala, balā* and *atibalā* each ½ *pala, koraṇḍa, madhuśigru, madayantī, yava, kola* and *kulattha* each one *prastha* should be boiled with one *droṇa* of water till only one *āḍhaka* remains. Now in this decoction the earlier prepared decoction should be mixed, besides, milk, cow's urine, fine wine and good quality curd each one *kuḍava* and oil of *tila* should also be mixed and cooked. The massage with thus prepared hot oil relieves *vātaja* fever. This massage is advised only after fourth month of pregnancy.

(इ) पथ्य (Beneficial diet)

ज्वर के जीर्ण हो जाने पर भोजन के लिए पतली, लवण रहित पेया देनी चाहिए या वातनाशक औषधियों से सिद्ध किया हुआ दूध, क्षीरयवागू अथवा जांगल मांसरस देना चाहिए[१]।

Once the fever becomes chronic, she should be given either salt-free liquid *peyā* (drinkable substance) or else milk, milk-gruel or meat-soup of wild animals medicated with drugs capable of suppressing the *vāta*.

(२) पित्तज्वर चिकित्सा (Treatment of fever caused by pitta)

(अ) आभ्यन्तर प्रयोग (Recipes for internal use)

(१) पित्त ज्वर में सारिवादि (वर्ग की औषधियों) के क्वाथ में शर्करा एवं मधु मिलाकर प्रातःकाल पिलाना चाहिए[२]।

(२) पयस्या, क्षीरकाकोली, मृद्वीका तथा मधुक या शर्करा तथा मधु मिला हुआ पानक पैत्तिक ज्वर में देना चाहिए[२]।

(३) नीलोत्पल, पयस्या, सारिवा, मधुयष्टी, मधु, पिप्पली, मरिच, उशीर, लोध्र, लाजा तथा शर्करा को दूध में मिलाकर मथनी से अच्छी तरह मथ कर पैत्तिक ज्वर से पीड़ित गर्भिणी को देने से ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है[२]।

(४) मृद्वीका, पद्मक, उशीर, श्रीपर्णी, चन्दन (रक्त), मधुयष्टी, पयस्या (क्षीरकाकोली), सारिवा तथा आमलक का क्वाथ गर्भिणी स्त्री के पित्तज्वर के लिए प्रशस्त[३] है।

i) The docoction of *sārivādi* group of drugs mixed with honey and sugar should be given in morning hours.

१. जीर्णे तु भोजने पेया तन्वी लवणवर्जिता ॥ ३४॥
क्षीरं क्षीरयवागूर्वा रसो वा जाङ्गलो हितः ॥ ४३॥
जीर्णज्वरे सदा नार्या वातघ्नैरौषधैः श्रृतः ॥ ४४॥ (का० सं० खि० १०)

२. अथ पित्तकृते चापि क्वथितं सारिवादिकम् ॥ ४४॥
शर्करामधुसंयुक्तं पाययेत् कल्यमुत्थितम्। पयस्या क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकानि च ॥ ४५॥
शर्करामधुसंयुक्तं पानकं पैत्तिके ज्वरे। नीलोत्पलं पयस्या च सारिवा मधुकं मधु ॥ ४६॥
पिप्पल्यो मरिचोशीरं लोध्रं लाजा सशर्करा। एतत् क्षीरसमायुक्तं खञ्जने मथितं पिबेत् ॥ ४७॥
गर्भिणी ज्वरिता क्षिप्रं पित्तात्तेन प्रशाम्यति ॥ (का० सं० खि० १०)

३. मृद्वीकापद्मकोशीरश्रीपर्णीचन्दनं तथा। मधुकं च पयस्या (पयस्या-शु० पा०) च सारिवामलकं तथा॥
पित्तज्वरहरः क्वाथो गर्भिणीनां प्रशस्यते ॥ (यो० र० स्त्री० रोग चि०)

ii) A beverage prepared with *payasyā, kṣīrakākolī, mṛdwīkā*, and *madhuka*, mixed with sugar and honey is beneficial.

iii) *Nīlotpala, payasyā, sārivā, madhuyaṣṭī, pippalī, marica, uśīra, lodhra, lājā* (parched paddy), honey and sugar should be pestled, mixed with milk and churned well. Use of this relieves immediately the fever caused by *pitta*.

iv) The decoction of *mṛdwīkā, padmaka, uśīra, śṛiparṇī, candana, madhuyaṣṭī, payasyā, sārivā* and *āmalakī* is beneficial.

(आ) बाह्य प्रयोग (External application)

(१) प्रदेहः– नल, वञ्जुल तथा गुन्द्रा के मूल, सहा, सहदेवा, मार्कव, पाटलि, क्षीरिवृक्षों तथा आम्र एवं जामुन के नवीन पल्लव, उत्पल, सारिवा, उशीर, चन्दन तथा पद्मपत्रक को बारीक पीस कर एवं घृत मिलाकर बनाया हुआ प्रदेह शीतल होता है। यह गर्भिणी स्त्रियों के पित्तज्वर का हरण करता है, तथा तर्पण होता है[१]।

i) A poultice prepared with fine paste of roots of *nala, vañjula* and *gundrā, sahā, sahadevā, mārkava, pāṭali*, tender leaves of *kṣīrī* plants (latex yielding plants) mango and blackberry, *utpala, sārivā, uśīra, candana* and *padmapatraka* mixed with *ghṛta* is cooling. Unction of this cures *pittaja jwara* and is satisfying.

(इ) अभ्यङ्गार्थ तैल (Oil for massage)

पिसा हुआ यव एक कुडव, मञ्जिष्ठा आधा पल, अम्ल (कांजी) १०० प्रस्थ, तिलतैल १ प्रस्थ लेकर तैल-पाक-विधि से तैल सिद्ध करे, यह तैल दाह एवं ज्वर हर है, तथा ज्वर नाश के लिए प्रशस्त माना गया है[२]।

With powdered barley one *kuḍava, mañjiṣṭhā* half *pala* and *kāñjī* (fermented beverage) hundred *prastha*, the oil of *tila* one *prastha* should be cooked. Massage of this oil is beneficial in burning sensation and fever.

(ई) पथ्य (beneficial diet)

पैत्तिक ज्वर में क्षीर तथा शीतल पेया पथ्य होती है। पित्त ज्वर के जीर्ण हो जाने पर पित्तनाशक औषधियों से पकाया हुआ चणक का यूष पथ्य होता है[३]।

In *pittaja jwara* cold drinkables and milk is beneficial. Once the fever becomes chronic, the soup of gram prepared with drugs capable of suppressing the *pitta* should be given.

१. नलवञ्जुलमूलानि गुन्द्रामूलानि चाहरेत् ॥ ४८॥
सहां च सहदेवां च मार्कवं पाटलिं तथा। क्षीरिणां च प्रवालानि तथा जम्ब्वाम्रयोरपि ॥ ४९॥
उत्पलं सारिवोशीरं चन्दनं पद्मपत्रकम्। श्लक्ष्णान्येतानि पिष्टानि प्रदेहः शीतलो भवेत् ॥ ५०॥
पित्तज्वरहरो नार्यास्तर्पणो घृतसंयुतः ॥ (का० सं० खि० १०)

२. यवपिष्टस्य कुडवो मञ्जिष्ठार्धपलं तथा ॥ ५१॥
अम्लप्रस्थशते तैलं तैलप्रस्थं विपाचयेत्। दाहज्वरहरं तैलं प्रशस्तं ज्वरनाशनम् ॥ ५२॥ (का० सं० खि० १०)

३. पित्तज्वरे हिमा पेया पथ्या क्षीरमथापि च॥ ५८॥
जीर्णे पित्तहरैः पक्वो यूषस्तु चणकैस्तथा ॥ ५९॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

(३) श्लेष्मज्वर-चिकित्सा (Treatment of fever caused by śleṣmā)

(अ) आभ्यन्तर प्रयोग (Recipes for oral use)

(१) श्लेष्म ज्वर में स्त्री को रास्ना का क्वाथ शीतल कर मधु मिलाकर पीना चाहिए[1]।

(२) रास्ना एवं मधु मिश्रित भद्रदारु का क्वाथ अथवा पिप्पली एवं मधु युक्त चन्दन का क्वाथ अथवा रास्ना, वासा एवं अमृता का क्वाथ पीना श्लेष्म ज्वर हर है[1]।

i) Cooled decoction of *rāsnā* mixed with honey should be given.

ii) Decoction of either *bhadradāru* mixed with *rāsnā* and honey or *candana* mixed with *pippalī* and honey or *rāsnā, vāsā* and *amṛtā* should be prescribed.

(आ) पथ्य (Beneficial)

श्लेष्म ज्वर में (गर्भिणी) स्त्री को सुखोष्ण पेया, मुद्गयूष तथा मूलिका का रस प्रशस्त है। इस व्याधि में विशेषकर ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए जो शरीर के लिए सात्म्य हों[2]।

Lukewarm drinkables, soup of *mudga* (a kind of kidney bean i. e. green gram) and juice of *mūlikā* (radish) is beneficial, specially congenial eadibles should be used.

(४) संसृष्ट ज्वर-चिकित्सा (Treatment of mixed fevers)

(अ) चिकित्सा सिद्धान्त (Principles of treatment)

संसृष्ट ज्वर में विद्वान वैद्य दोषों के बलाबल के अनुसार औषधि-प्रयोग तथा सान्निपातिक ज्वर में त्रिदोषशामक चिकित्सा करे[3]।

The wise physician should treat mixed fevers considering the relative predominance of specific *doṣa*. In *sānnipātika jwara* (fever caused by vitiation of all the three *doṣas*) the treatment to suppress all the three *doṣas* should be given.

(आ) श्लेष्मपैत्तिक ज्वर चिकित्सा (Treatment of fever due to śleṣmā with pitta)

कफपैत्तिक ज्वर में श्रीपर्णिका, अमृता तथा मधुयष्टी के क्वाथ में मधु मिलाकर देना चाहिए[4]।

The decoction of *śrīparṇikā, amṛtā* and *madhuyaṣṭī* mixed with honey should be given.

(इ) श्लेष्मवातिक ज्वर चिकित्सा (Treatment of fever caused by śleṣmā with vāta)

कफवातिक ज्वर में बृहत्पञ्चमूल के क्वाथ में रास्ना-कल्क मिलाकर प्रातःकाल पीने को देना चाहिए[5]।

१. अथ श्लेष्मज्वरे नारीं रास्नाक्वाथं सुशीतलम्। क्षौद्रेण सह संयुक्तं पाययेदिति कश्यपः॥ ५३॥
भद्रदारुकनिष्क्वाथो रास्नाक्षौद्रसमायुतः। अथवा चन्दनक्वाथः पिप्पलीक्षौद्रसंयुतः॥ ५४॥
श्लेष्मज्वरहरः पेयो रास्नावासाऽमृताशृतः॥ (का० सं० खि० १०)

२. श्लेष्मज्वरे सुखोष्णा तु पेया नार्याः प्रशस्यते॥ ५९॥
तथैव मुद्गयूषोऽथ मौलिको रस एव च॥ सुसात्म्यश्चेति कर्त्तव्यो व्याधावस्मिन् विशेषतः॥ ६०॥ (का० सं० खि० १०)

३. संसृष्टे तु भिषक् प्राज्ञो योजयेत यथाबलम्। सन्निपातसमुत्थाने त्रिदोषशमनं हितम्॥ ६१॥ (का० सं० खि० १०)

४. श्रीपर्णिकामृतानां तु निष्क्वाथो मधुयोजितः॥ ५५॥
पेयः सयष्टीमधुको ज्वरे श्लैष्मिकपैत्तिके॥ ५६॥ (का० सं० खि० १०)

५. महतः पञ्चमूलस्य क्वाथः श्लैष्मिकवातिके॥ ५६॥
रास्नाकल्कसमायुक्तः पेयः कल्यमिति स्थितिः॥ ५७॥ (का० सं० खि० १०)

Paste of *rāsnā* mixed with decoction of *bṛihatpañcamūla* should be given in the morning.

(ई) वातपैत्तिक ज्वर चिकित्सा (Treatment of fever caused by vāta with pitta)

वातपित्तज ज्वर में विदारिगन्धादि गण की औषधियों के क्वाथ में शर्करा तथा मधु मिलाकर पीने को देना चाहिए, ऐसा महर्षि काश्यप का मत है[1]।

Decoction of *vidārigandhādi* group of drugs mixed with sugar and honey should be given.

(५) मद्यपा स्त्री की ज्वर चिकित्सा (Treatment of fever of a wine addict woman)

मद्य सेवन करने वाली स्त्री के वातिक, पैत्तिक अथवा श्लैष्मिक ज्वर की चिकित्सा के लिए मद्य में आधा पानी मिलाकर देना चाहिए, एवं विभिन्न कल्पों (औषधि संयोग) को सुरा द्वारा सुगन्धित करके देना चाहिए।

उस स्त्री को हरेणु, मुद्ग, चुच्चू (विशिष्ट शाक), ककॅटिका के स्वरस (यूष) तथा किञ्चित अम्ल (मांस) रस के साथ लवण एवं स्नेह से रहित मृदु, सुरभि एवं लघु अन्न का भोजन करायें। इस आहार के द्वारा व्याधि नष्ट हो जाने पर तथ मद्य की शांति हो जाने पर यथोक्त (वातजादि के लिए वर्णित) पथ्य का प्रयोग करें, ऐसा कश्यप का मत है[2]।

To the woman addict to wine and suffering from *vātika, paittika* or *ślaiṣmika* fevers, wine mixed with equal quantity of water should be given, besides all the medicinal preparations should also the given after being incensed with wine.

She should be given soft and sweet smelling diet of light cereals mixed with salt and fat free soup of *hareṇu, mudga* (green gram), *cuccū* and *karkaṭikā* (cucumber) alongwith slightly sour meat soup. Once the disease is cured by this diet and the effect of wine has passed off, she should be given beneficial diet on the basis of specific *doṣa*.

(६) विषम ज्वर चिकित्सा (Treatment of viṣama i.e. intermittent fever)

शुण्ठी को अजा क्षीर में पीस कर पीने से विषम ज्वर नष्ट होता है[3]।

Use of *śunṭhī* triturated with goat milk relieves *viṣama fever*.

(७) ज्वर के उपद्रवों की चिकित्सा (Tratment of complications of fever)

(अ) शिरोरोग चिकित्सा (Treatment of disorders of head)

गर्भिणी के ज्वर में शिरोरोग हो जाने पर यथावत् चिकित्सा करनी चाहिए। ज्वर का वेग पूर्णरूपेण शांत हो जाने पर भी गुरु भोजन नहीं देना चाहिए[4]।

१. क्वाथो विदारिगन्धादेः शर्करामधुयोजितः॥ ५७॥
वातपित्तज्वरे पेय इति ह स्माह कश्यपः॥ ५८॥ (का० सं खि० १०)

२. अथ या मद्यपा नारी शृणु तस्याश्चिकित्सतम्। वातिके पैत्तिके वाऽपि श्लैष्मिके च विशांपते !॥ ६२॥
ज्वरे दद्यात् सुरां नार्या जेलनार्थेन योजिताम्। सुरया वासयित्वैनां ततः कल्पं प्रदापयेत्॥ ६३॥
हरेणुमुद्गचुच्चूनां कर्कट्याश्च रसेन तु। रसेन किञ्चिदम्लेन लघून्यन्नानि भोजयेत्॥ ६४॥
लवणस्नेहहीनानि मृदूनि सुरभीणि च। आहारेण गदे भग्ने मद्यस्योपरमे कृते॥ ६५॥
यथोक्ता तु क्रिया पथ्या यथास्वमिति कश्यपः॥ ६६॥ (का० सं० खि० १०)

३. पीतं विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम्॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि० एवं भा० प्र० चि० ७०/६६)

४. शिरोरोगे तु कर्त्तव्यो यथावद्भेषजक्रमः। भग्नवेगे ज्वरे कृत्स्ने गुरु नैव प्रशस्यते॥ १७॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

If a febrile pregnant woman suffers from disorders of head, then appropriate treatment for these should be prescribed. Heavy diet is contraindicated even after normalization of fever.

(आ) तृष्णा चिकित्सा (Treatmet of thirst)

ज्वर में तृष्णा लगने पर सुखोष्ण जल पीना चाहिए। वात एवं श्लेष्म ज्वर में शीतल जल विष तुल्य होता है। पैत्तिक ज्वर में भी शृतशीत (गरम करके ठंढा किया हुआ) जल ही प्रशस्त है। ताम्र आदि धातु या पत्थर के बर्तन में पका कर शीतल किया हुआ जल प्यास को बुझाता है। उपर्युक्त विधि विशेषकर तरुण ज्वर के लिए है। ज्वर का वेग समाप्त हो जाने पर प्रत्येक ज्वर में (दोष प्राधान्य के अनुसार) तृष्णा शामक औषधियों से पकाया हुआ शीतल अथवा अन्य (उष्ण या सुखोष्ण) जल देना चाहिए[1]।

To quench the thirst, she should take luke warm water. In *vātaja* and *śleṣmika* fever cold water is very harmful like a poison, even in *pittaja* fever boiled and cooled water should be given. The water boiled in pot made of copper etc. metal or stone and cooled relieves the thirst. Above method is beneficial in fevers of recent origine. In all types of fever after their remission, the water boiled with drugs capable of suppressing thirst then cooled or luke warm should be given.

गर्भिणी के उदावर्त की चिकित्सा (Treatment of udāvarta during pregnancy)

यदि गर्भिणी को आठवें मास में उदावर्त के कारण विबन्ध हो जाये एवं अनुवासन बस्ति देने पर ठीक न हो तो उसे अनुवासन से असाध्य समझ कर विकार का शमन करने वाली औषधियों (निम्नाङ्कित) से कल्पना करके निरुह बस्ति का प्रयोग करें।

वीरण, शालि, षष्टिक, कुश, काश, इक्षुवालिका, वेतस एवं परिव्याध के मूल; भूतीक, अनन्ता, काश्मरी, परूषक, मधुक, मृद्वीका (के कल्क) को क्वाथ विधि से आधा जल एवं आधा दूध डालकर पकावें, जब अष्टमांश शेष बचे तो उसी रस (क्वाथ) में प्रियाल, विभीतकमज्जा, तिलकल्क एवं थोड़ा सा लवण मिलाकर ईषत् उष्ण द्रव्य से निरुह बस्ति दें[2]।

महर्षि वाग्भट ने उदावर्त-विबन्ध में वातहर एवं स्निग्ध अन्नपान[1] से उपचार तथा मधुक से सिद्ध तैल से अनुवासन का विधान बताया है एवं उससे ठीक न होने पर निरुह बस्ति[3] के प्रयोग का निर्देश किया है। बस्ति-विधान के द्रव्यों में चरकोक्त वर्णन का ही अनुसरण किया है, क्वाथ के द्रव्यों में षष्टिक का उल्लेख नहीं किया[4]।

१. उत्पन्नायं तु तृष्णायां नात्युष्णं प्रपिबेज्जलम्। वातश्लेष्मसमुत्थे तु ज्वरे नीरं विषायते ॥ १४॥
अथ पित्तकृते चापि शृतशीतं प्रशस्यते। कुम्भपाषाणनिष्पक्वं शीतं तृष्णानिबर्हणम् ॥ १५॥
ज्वरे तु तरुणे दृष्टो विधिरेष विशेषतः। भग्नवेगे तु कर्त्तव्यं तृष्णाप्रशमनैः शृतम् ॥ १६॥
ज्वरं ज्वरं समासाद्य शीतं वा यदि वेतरम्(त्) ॥ १७॥ (का० सं० शि० १०)

२. यस्याः पुनरुदावर्तविबन्धः स्यादष्टमे मासे न चानुवासनसाध्यं मन्येत ततस्तस्यास्तद्विकारप्रशमनमुपकल्पयेन्निरूहम्।
तत्र वीरणशालिषष्टिककुशकाशेक्षुवालिकावेतसपरिव्याधमूलानां भूतीकानन्ताकाश्मर्यपरूषकमधुकमृद्वीकानां च पयसाऽर्धोदके-नोद्रमथ्य रसं प्रियालबिभीतकमज्जतिलकल्कसंप्रयुक्तमीषल्लवणमनत्युष्णं च निरूहं दद्यात् ॥ (च० सं० शा० ८/२९)

३. उदावर्तं तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरं जयेत् ॥ २१॥ योग्यैश्च बस्तिभिः ·····॥ (अ० हृ० शा० २)

४. यस्याः पुनरुदावर्तविबन्धः स्यात्तां वातहरस्निग्धान्नपानैरुपाचरेत्। अष्टमे तु मासे मधुकसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्।
तदासिद्धौ वीरणशालिकुशकाशेक्षुबालिकावेतसपरिव्याधमूलानां भूतिकानन्तकाश्मर्यपरूषकमधुकमृद्वीकानां च
पयसाऽर्धोदकेनोद्गृह्य रसं तेन पियालबिभीतकमज्जतिलकल्कयुक्तेनेषल्लवणोष्णेन निरूहयेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/२५)

If constipation occuring due to *udāvarta* during eighth month of pregnancy is not relieved either by use of *anuvāsana basti* (uncting enema) or else with unctuous edibles mixed with substances capable of suppressing *vāta* alongwith uncting enema with the oil prepared with *madhuka*, then it should be considered as incurable by this procedure and *nirūha basti* (evacuative enema) prepared with following drugs should be used.

Roots of *vīraṇa, śāli, saṣṭika, kuśa, kāśa, ikṣuwālikā, vetasa* and *parivyādha; bhūtīka, anantā, kāśmarī, parūṣaka, madhuka* and *mṛdwīkā* all should be cooked with standard procedure of decoction keeping half quantity of water and half milk, when quantity of water and milk together is reduced to oneeighth, it should be filtered. Now in this filtrate paste of *priyāla*, kernel of *bibhītaka* and *tila* along with little quantity of salt should be mixed and *nirūha basti* of this very substance keeping it luke warm should be given. Vāgbhaṭa has omitted *saṣṭika*.

निरुह बस्ति के पश्चात्कर्म (Management after use of evacuative enema)

व्यपगत विबन्धां चैनां सुखसलिलपरिषिक्ताङ्गी स्थैर्यकरमविदाहिनमाहारं भुक्तवतीं सायं मधुरकसिद्धेन तैलेनानुवासयेत् ॥ (च० सं० शा० ८/२९)

विगतविबन्धां च स्नातांशितां सायं तेनैव तैलेनानुवासयेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/२५)

विबन्ध के दूर हो जाने पर, सुखोष्ण जल से स्नान की हुई, स्थिरताकारक (गर्भ को स्थिरताकारक) एवं अविदाही आहार का भोजन की हुई स्त्री को सायं मधुरक (मधुर वर्ग की औषधियों) से सिद्ध तैल से अनुवासन बस्ति दें।

महर्षि वाग्भट ने संक्षेप में लिखा है, कि विबन्ध ठीक हो जाने पर स्नान एवं भोजन देकर सायं उसी तैल (मधुक सिद्ध तैल) से अनुवासन बस्ति दें।

Once the constipation is relieved by use of above enema, she should be given bath with luke warm water and such dietetics which do not produce burning sensation and are beneficial to the fetus. In the evening uncting enema with oil medicated with the drugs of *madhura* group or *madhuka* should be given.

बस्ति दान काल में गर्भिणी की स्थिति (Posture of woman during enema)

न्युब्जां त्वेनामास्थापनानुवासनाभ्यामुपचरेत् ॥ (च० सं० शा० ८/२९)

गर्भिणी को आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति न्युब्ज स्थिति में देना चाहिए।

To a pregnant woman cleansing and uncting enema should be given keeping her in humpbacked or flexed posture.

विमर्श (Comments)

न्युब्ज स्थिति में सम्भवतः गर्भ का शिर या नीचे स्थित अंग ऊपर की ओर चले जाने से बस्ति प्रवेश में सुविधा होगी। गर्भिणीपरिचर्यान्तर्गत वर्णित अष्टम मास की परिचर्या में महर्षि वाग्भट ने इसी स्थिति में बस्ति देने का विधान बताया है।

Probably in this posture presenting part of fetus might be getting pushed upwards thus

Scanned with CamScanner

facilitates entry of enema material. In normal antenatal care also similar posture for enema during eighth month of pregnancy is advised.

***उदावर्त की उपेक्षा का परिणाम** (Effect of neglect in the treatment of udāvarta)*

उदावर्तो ह्युपेक्षितः सहसा सगर्भां गर्भिणीं गर्भमथवाऽतिपातयेत् ॥ (च० सं० शा० ८/२९)
उदावर्तो हि समुपेक्षितः सहसा सगर्भां गर्भिणीमतिपातयेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/२६)
..... हन्यात्सगर्भां स हि गर्भिणीम् ॥ (अ० हृ० शा० २/२२)

उदावर्त की चिकित्सा में उपेक्षा करने पर वह सहसा गर्भ के साथ ही गर्भिणी को नष्ट कर देता है, अथवा केवल गर्भ का ही पात करा देता है।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि समुपेक्षित उदावर्त गर्भ युक्त गर्भिणी को मार डालता है।

Udāvarta if neglected or not treated properly, kills both i.e. mother and fetus or else initiates expulsion of fetus.

***गर्भिणी अतिसार** (Garbhiṇī-atisāra or diarrhoea during pregnancy)*

अतिसारे तु गर्भिण्याः समुत्पन्ने भिषग्जितम् ॥ ६६॥
वातिके पैत्तिके चैव श्लैष्मिके च प्रवक्ष्यते ॥ ६७॥ (का० सं० खि १०)

गर्भिणी स्त्री को अतिसार उत्पन्न हो जाने पर वातिक, पैत्तिक एवं श्लैष्मिक (प्राधान्य) के आधार पर चिकित्सा कहेंगे।

Now the treatment of diarrhoea of a pregnant woman would be described on the basis of dominance of *doṣa i.e. vātika, paittika* and *ślaiṣmika* etc.

***निदान** (Etiology)*

विरुद्धाध्यशनाजीर्णेस्तथैवात्यशनादपि ॥ ६७॥
भयोद्वेगविघाताद्वा (भयाद्वेगविघाताद्वा-शु० पा०) सङ्घातात् पूरणात् क्षयात्।
कन्दमूलफलैरामैर्दुष्टतोयनिषेवणात् ॥ ६८॥
रौक्ष्यादबुभुक्षया छो(शो)कादगुर्वभिष्यन्दिभोजनात्।
अव्यातोश्च स(मु)द्रेकादतीसारः प्रवर्तते ॥ ६९॥ (का० सं० खि १०)

विरुद्ध भोजन, अध्यशन, अजीर्ण तथा अत्यधिक भोजन, भय, वेगों के विघात, संघात (ठोस या कठिन आहार द्रव्यों का सेवन), पूरण (अतिसंतर्पण), क्षय, कच्चे कन्द, मूल, फल तथा दूषित जल के प्रयोग, रुक्षता, बुभुक्षा, शोक तथा गुरु एवं अभिष्यन्दि भोजन करने से उत्पन्न अव्यातु (शरीर स्थित जलीय धातु) के उद्रेक (आवेग से निष्कासन) के कारण अतिसार होता है।

Due to use of incompatible edibles, eating before previous meal is digested, indigestion, over-eating, fear, suppression of natural urges, consumption of hard or solid substances, satiation, emaciation, use of uncooked roots, rhizomes or fruits and polluted water, dryness, hunger, grief, eating of heavy or *abhiṣyandī* (likely to cause obstruction to *srotasas*) articles, the water content of body is excreted with force, which results in diarrhoea.

***विमर्श** (Comments)*

उपर्युक्त सभी कारणों को सामान्य रूप से पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है (१) भोजन वैषम्यः- जिसके कारण पाचन संस्थान में पाचन सम्बन्धी विकृति हो अतिसारोत्पत्ति (इण्डिजेस्चॅन-डाइऑरिअॅ) (२) कच्चे फल या दूषित जल सेवन-जन्यः-अर्थात् जीवाणु प्रवेश के कारण या जीवाणु जन्य (इन्फेक्टिव डाइऑरिअॅ) (३) शोक भयादि जन्य या मानसिक आकस्मिक आघात के कारण (नॅःर्वस डाइऑरिअॅ) (४) शारीरिक धातुओं के वैषम्य यथा क्षय, पूरण आदि से (न्यूट्रिशॅनॅल डाइऑरिअॅ) (५) दोषजन्य या शारीरिक विकृतियों को निकालने के लिए (टॉक्सिक डाइऑरिअॅ)। ये सभी कारण किसी भी अवस्था में अतिसारजनक हो सकते हैं, परन्तु गर्भिणी में अल्प विकार भी अतिसारोत्पादक हो सकते हैं।

All the above mentioned etiological factors can be grouped under five categories : (1) Dietetic abnormalities producing digestive disturbances resulting into diarrhoea or indigestion diarrhoea. (2) Use of uncooked fruits and polluted water resulting into entry of infective organisms or infective diarrhoea. (3) Fear, grief etc. psychological trauma or nervous diarrhoea. (4) Satiation or emaciation etc. or nutritional diarrhoea. (5) Due to *doṣas* or other diseases of body or toxic diarrhoea. All these conditions can cause diarrhoea to any body, however, during pregnancy presence of least abnormalities may produce diarrhoea.

***गर्भिणी अतिसार चिकित्सा** (Treatment of diarrhoea during pregnancy)*

***(अ) चिकित्सा सिद्धान्त** (Principles of treatment)*

आमातिसारे सञ्जाते पाचनानि प्रदापयेत् ॥ ७०॥
पक्वसंग्रहणे पथ्यः (पक्वे संग्रहणं पथ्यं-शु० पा०) सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ७५॥
(का० सं० खि० १०)

आमातिसार उत्पन्न हो जाने पर पाचन औषधियों (आम के पाचनार्थ) का प्रयोग करना चाहिए। सभी प्रकार के पक्वातिसार में स्तम्भक (संग्राही) चिकित्सा लाभकारी है ऐसा आचार्यों का मत है।

In *āmātisāra* (diarrhoea having sufficient quantity of mucus in feces) *pācana* (digestive) drugs and in *pakwātisāra* (feces not containing mucus) *stambhaka* (constipating) drugs should be prescribed.

***(आ) अतिसार की सामान्य चिकित्सा** (General treatment)*

***(१) कल्याणकावलेह** (Kalyāṇakāwaleha)*

पिप्पली, धातकी (पुष्प), लोध्र, समंगा (लज्जालु), पद्मकेशर, पद्मा, मोचरस, दीर्घवृन्त वृक्ष की त्वक् एवं केशर (नागकेशर) का अतिसूक्ष्म चूर्ण कर लें। इसमें घृत, मत्स्यण्डिका तथा मधु मिलाकर अवलेह बनायें। इसे कल्याणक अवलेह कहते हैं। यह सभी प्रकार के अतिसारों का नाश करता है[1]।

Finely powdered *pippalī*, flowers of *dhātakī, lodhra, samaṅgā, padmakeśara, padmā, mocarasa*, stem bark of *dīrghavṛnta* and *nāgakeśara* should be mixed with *ghṛta*, treacle and honey. This electuary is known as *kalyāṇakāwaleha* and is beneficial in all types of diarrhoea.

१. पिप्पल्यो धातकी लोध्रं समङ्गा पद्मकेशरम्। पद्मा मोचरसश्चैव दीर्घवृन्ततरोस्त्वचः ॥ ८८॥
केसरं चेति चूर्णानि श्लक्ष्णान्येतानि चूर्णयेत्। घृतं मत्स्यण्डिका क्षौद्रं लेहीभूतानि लेहयेत् ॥ ८९॥
लेहः कल्याणकस्त्वेष सर्वातीसारनाशनः ॥ ९०॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

(२) ह्रीबेरादि क्वाथ (Hrīberādi decoction)

ह्रीबेर (उशीर भेद), अरलु, रक्तचन्दन, बला, धान्यक, वत्सादनी, मुस्ता, उशीर, यवास, पर्पट तथा विषा को समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर गर्भिणी स्त्री द्वारा पान अनेक वर्णों तथा पीड़ाओं से युक्त अतिसार, रक्तस्राव, ज्वर तथा सूतिकाव्यापद् में लाभदायक है। मुनियों ने इस योग को उत्तम कहा है[१]।

Use of decoction made with equal quantity of *hrībera. aralu, raktacandana, balā, dhānyaka, vatsādanī, mustā uśīra, yawāsa. parpaṭa* and *viṣā* relieves diarrhoea associated with various types of pains, bleeding and fever.

(३) अन्य योग (Other recipes)

शुण्ठी एवं बिल्व के कषाय में यव का सत्तू मिलाकर गर्भिणी स्त्री पान करे तो वमन एवं अतिसार दोनों का ही नाश होता है[२]।

Flour of parched barley mixed with decoction of *śuṇṭhī* and *bilva* is beneficial in vomiting and diarrhoea both.

वत्सक (कुटजत्वक्), दाड़िम, पाठा, बालबिल्व (कच्चा बेल), बला तथा जामुन एवं आम के पल्लव इनमें से जितनी भी औषधियाँ मिल सकें उन्हें शर्करा एवं दधि के साथ स्त्री को अतिसार में सेवन कराना चाहिए[३]।

Available drugs out of *vatsaka, dādima, pāṭhā*, unripe young fruit of *bilva, balā* and tender leaves of mango and blackberry should be mixed with sugar and curd. Use of this relieves diarrhoea.

(ङ) ज्वरातिसार चिकित्सा (Treatment of diarrhoea with fever)

समङ्गा (मंजीठ), मधुक, लोध्र (चूर्ण) और फाणित का शर्करा के साथ सेवन गर्भिणी स्त्री के ज्वरातिसार, आमातिसार एवं रक्तातिसार में लाभदायक है[४]।

Powder of *samaṅgā (mañjiṣṭhā), madhuka,* and *lodhra* mixed with *phāṇita* (inspissated juice of sugar cane or molasses) and sugar is beneficial in diarrhoea associated with fever, mucus or blood.

(ई) आमातिसार चिकित्सा (Treatment of āmātisāra or diarrhoea having excessive mucus in feces)

ज्वरातिसारान्तर्गत वर्णित योग लाभदायक है।

The prescription given for diarrhoea with fever is beneficial.

१. (अ) ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी। मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद् गुर्विणी ॥
नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे। योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेषूत्तमः ॥ (यो० र० स्त्री रो० चि०)
(आ) ह्रीबेरारलु ..... पिबेत् गर्भिणी। नानाव्याधिरुजाऽतिसारगदके ..... सूत्यामयेऽप्युत्तमः ॥
(भा० प्र० चि० ७०/६८, यो० र० सदृश ही)

२. यो० र० स्त्रीरो० चि० वमनचिकित्सान्तर्गत वर्णित।

३. वत्सकं दाडिमं पाठा बिलबिल्वबलास्तथा (बालबिल्व-शु० पा०) ॥ ८॥
जम्ब्वाम्रपल्लवाश्चैव यथा लाभेन सत्तम !। शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चैवातिसारके ॥ ९॥ (हा० सं० तृती० ५१/८,९)

४. ज्वरातिसारे गर्भिण्याः शस्तं सामे सशोणिते। समङ्गा मधुकं लोध्रं फाणितं शर्करान्वितम् ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

(१) श्लेष्मान्वित आमातिसार चिकित्सा (Treatment of āmātisāra having association of śleṣmā)

कुटज के बीज, मुस्ता, पाठा, अजमोदा, सरल, अतिविषा तथा शुभा को पीसकर सुखोष्ण जल के साथ श्लेष्मान्वित आमातिसार में सेवन करना चाहिए[१]।

Powder of seeds of *kuṭaja, mustā, pāṭhā, ajamodā, sarala, ativiṣā* and *śubhā* with luke warm water is beneficial.

(२) पित्तान्वित आमातिसार चिकित्सा (Treatment of āmātisāra having association of pitta)

पाठा, चन्दन, कुटजफल, अतिविषा तथा मुख्या को पीसकर स्वच्छ जल के साथ सेवन पित्तान्वित आमातिसार में करना चाहिए ऐसा भगवान काश्यप का मत है[२]।

Powder of *pathā, candana,* seeds of *kuṭaja, ativiṣā* and *mukhyā* with water is beneficial.

(३) वातान्वित आमातिसार चिकित्सा (Treatment of āmātisāra associated with vāta)

हिंगु, सैन्धव, नागकेशर, दोनों बृहती, कुटजफल, पिप्पलीमूल, मुख्या तथा अतिविषा को पीसकर सुखोष्ण जल से वातोत्थित आमातिसार में सेवन करना चाहिए[३]।

Powder of *hiṅgu, saindhava, nāgakeśara,* both *bṛhatīes,* seeds *of kuṭaja, pippalīmūla, mukhyā and ativiṣā* should be given with lukewarm water.

(४) सन्निपातोत्थ आमातिसार चिकित्सा (Treatment of āmātisāra having association of all three doṣas)

सन्निपातोत्थ आमातिसार में बृहत्यादि गण की औषधियों का क्वाथ पीना चाहिए[४]।

Decoction of *bṛhatyādi* group of drugs is beneficial.

(ए) श्लेष्मातिसार चिकित्सा (Treatment of diarrhoea having dominance of kapha)

(१) श्लैष्मिक अतिसार में अम्बष्ठादि गण की औषधियों के क्वाथ में तण्डुलोदक एवं मधु मिलाकर पीने से भिन्नवर्चस् का विबन्ध होता है अर्थात अतिसार नष्ट होता है[५]।

(२) कौटज फल, धातकी, मरिच, लोध्र, कट्वंग तथा देवदारु को पीसकर तण्डुलोदक एवं मधु के साथ प्रयोग श्लेष्मातिसार का नाश करता है[५]।

(३) नलिन के केशर को तण्डुलोदक में पीसकर मधु मिलाकर पीने से स्त्री का श्लेष्मातिसार नष्ट होता है[५]।

१. कुटजस्य च बीजानि मुस्ता पाठा तथैव च ॥ ७०॥
अजमोदाऽथ सरलं तथा चातिविषा शुभा। आमे श्लेष्मान्विते पेयमेतत् पिष्टं सुखाम्बुना ॥ ७१॥ (का० सं० खि० १०)

२. पाठाचन्दनभागश्च कुटजस्य फलानि च। तथा चातिविषा मुख्या पिष्टमेतद्धिताम्बुना ॥ ७२॥
आमे पित्तान्विते पेयमिति ह स्माह कश्यपः ॥ ७३॥ (का० सं० खि० १०)

३. हिंगुसैंधवनागाश्च बृहत्यौ कौटजं फलम् ॥ ७३॥
तथा पिप्पलिमूलं च मुख्या चातिविषा नृप !। आमे वातोत्थिते पेयमेतत् पिष्टं सुखाम्बुना ॥ ७४॥ (का० सं० खि १०)

४. बृहत्यादिस्तु पातव्यः सन्निपात समुत्थिते ॥ ७५॥ (का० सं० खि० १०)

५. श्लैष्मिके मधुसंयुक्तस्तण्डुलोदकसंयुतः। अम्बष्ठादिगणः पेयो भिन्नवर्चोविबन्धनः ॥ ७६॥
अथवा कौटजं पिष्ट्वा फलं क्षौद्रेण संयुतम्। धातकी मरिचं लोध्रं कट्वङ्गं देवदारु च ॥ ७७॥
तण्डुलोदकसंयुक्तं श्लेष्मातीसारनाशनम्। तण्डुलोदकपिष्टं वा केसरं नलिनस्य तु ॥ ७८॥
मधुयुक्तं पिबेन्नारी श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ ७९॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

(i) Decoction of *ambaṣṭhādi* group of drugs mixed with ricewater and honey is beneficial.

(ii) The paste of fruits of *kuṭaja, dhātakī, marica, lodhra, katwaṅgā* and *devadāru* mixed with rice water and honey cures *śleṣmātisāra.*

(iii) Use of potion prepared with *nalina keśara* (saffron of lotus) triturated with ricewater and mixed with honey cures *śleṣmātisāra.*

(ऐ) पित्तातिसार चिकित्सा (Treatment of diarrhoea having dominance of pitta)

(१) कुशल चिकित्सकों का कथन है कि न्यग्रोधादि गण के क्वाथ को मधु के द्वारा मीठा करके पीने से पित्तातिसार नष्ट होता है[1]।

(२) कणा, धातकी पुष्प, मधुक तथा (कच्चे) बिल्व के गूदे के क्वाथ को शर्करा एवं मधु मिलाकर प्रयोग पित्तवृद्धि नाशक (पित्तातिसार नाशक) होता है[1]।

(३) पद्म, समङ्गा (लज्जालु), आम्र की गुठली, मधुक, पद्मकेशर, लोध्र, मोचरस तथा शर्करा एवं मधु से मिश्रित योग का प्रयोग पित्तातिसार नाशक होता है[1]।

(i) Decoction of *nyagrodhādi* group of drugs sweetened with honey cures *pittātisāra,* is the opinion of wise physicians.

(ii) Use of decoction of *kaṇā,* flowers of *dhātakī, madhuka,* pulp of (unripe) fruit of *bilva,* mixed with sugar and honey is beneficial.

(iii) *Padma, samaṅgā (lajjālu),* kernel of mango fruit, *madhuka, padmakeśara, lodhra, mocarasa* (powder or paste of all these drugs), sugar and honey mixed together and taken cure *pittātisāra.*

(ओ) वातातिसार चिकित्सा[2] (Treatment of diarrhoea having dominance of vāta)

(१) एरण्ड को छोड़कर बाकी खुद्दाक पञ्चमूल की औषधियों (मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पुनर्नवा एवं बला[3]) का क्वाथ काला तथा कट्वंग मिलाकर प्रयोग वातातिसार नाशक होता है।

१. न्यग्रोधादिस्तु निर्यूहः क्षौद्रेण मधुरीकृतः ॥ ७९॥
पित्तातिसारशमनः कुशलैः परिकीर्तितः। कणा धातकिपुष्पं च मधुकं बिल्वपेशिका ॥ ८०॥
शर्करामधुसंयुक्तं पित्तवृद्धिविनाशनम्। पद्मं समङ्गमाम्रास्थि मधुकं पद्मकेशरम् ॥ ८१॥
लोध्रं मोचरसश्चैव शर्कराक्षौद्रसंयुतः। पित्तातिसारशमनो योग एष विधीयते ॥ ८२॥ (का० सं० खि० १०)

२. एरण्डवर्जं खुद्दाकं पञ्चमूलं शृतं हितम्। कालाकट्वङ्गसंयुक्तं वातातीसारनाशनम् ॥ ८३॥
पद्मं समङ्गमाम्रास्थि बृहती बिल्वपेशिका। श्लक्ष्णपिष्टं पिबेद्दध्ना वातातीसारनाशनम् ॥ ८४॥
मुस्ताबिल्वशलाटूनि अनन्ता मधुकं तथा ॥ ८६॥
श्लक्ष्णपिष्टं पिबेद्दध्ना सर्पिर्गुडसमायुतम्। वातातीसारशान्त्यर्थं यथावदिति कश्यपः ॥ ८७॥ (का० सं० खि १०)

३. चरक एवं सुश्रुत ने पञ्च पञ्चमूल तथा अष्टाङ्गसंग्रह ने सप्त पञ्चमूल का वर्णन दिया है, परन्तु किसी ने भी खुद्दाक पञ्चमूल शब्द से कोई वर्णन नहीं दिया। महर्षि चरक द्वारा वर्णित मध्यम पञ्चमूल के अतिरिक्त अन्य किसी भी पञ्चमूल में एरण्ड का उल्लेख नहीं है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि खुद्दाक पञ्चमूल से यहाँ चरक चि० स्थान १/४३ वर्णित मध्यम पञ्चमूल अपेक्षित है न कि सामान्य लघु पञ्चमूल।

(२) पद्म, समङ्गा (लज्जालु), आम्र की गुठली, बृहती तथा (कच्चे) बिल्व के गूदे को चिकना पीसकर दही के साथ सेवन करने से वातातिसार नष्ट होता है।

(३) मुस्ता, बिल्व-शलाटु, अनन्ता तथा मधुक को चिकना पीसकर, घी तथा गुड़ मिलाकर दही के साथ वातातिसार शान्त्यर्थ प्रयोग करना चाहिए ऐसा महर्षि काश्यप का मत है।

(i) Use of decoction of *khuḍḍāka pañcamūla* except eraṇḍa (*mudgaparṇī, māṣaparṇī, punarnavā* and *balā*) mixed with *kālā* and *kāṭvaṅgā* cures *vātātisāra.*

(ii) Use of *padma, samaṅgā (lajjālu),* kernel of mango fruit, *bṛhatī* and pulp of fruit of *bilva* pestled nicely with curd, cures it.

(iii) Finely pestled *mustā,* unripe young fruit of *bilva, anantā* and *madhuka* mixed with curd, *ghṛta* and jaggery should be used for the relief of *vātātisāra.*

(औ) शूल युक्त वातातिसार चिकित्सा (Treatment of vātātisāra associated with pain)

पिप्पली, धातकी (पुष्प), पद्म, समङ्गा (लज्जालु), मोचरस, मत्स्यण्डिका तथा इन्द्रयव इन सभी को पीसकर तण्डुलोदक मिलाकर सेवन शूल युक्त वातातिसार में हितकारी होता है[1]।

Use of (powdered) *pippalī, dhātakī* (flowers), *padma, samaṅgā, mocarasa, matsyaṇḍikā* (treacle) and *indrayava* with rice water relieves painful *vātātisāra.*

(अं) रक्तातिसार चिकित्सा (Treatment of raktātisāra or diarrhoea associated with blood in stool)

(१) बाणमूल क्वाथ में त्रपुषी के बीज मिलाकर शर्करा एवं मधु मिश्रित प्रयोग रक्तातिसार नाशक है[2]।

(२) पद्म, समङ्गा (लज्जालु), मधुक, चन्दन तथा पद्मकेशर को (चूर्ण को) मधु मिलाकर दुग्ध से पान रक्तातिसार नाशक है[2]।

(३) कृष्ण तिल, समङ्गा (लज्जालु), मधुयष्टी तथा उत्पल (नीलकमल) को कच्चे दूध से पीने से रक्तातिसार का नाश होता है[2]।

(४) मोचरस, तिल, लोध्र, उत्पल (नीलकमल) तथा कमल को क्षीर के साथ सेवन करने से रक्तातिसार का नाश होता है[2]।

(५) पयस्या (क्षीरकाकोली), चन्दन, लोध्र तथा पद्मकेशर को मधुमिश्रित कर दुग्ध के साथ पीने से रक्तातिसार नष्ट होता है[2]।

(i) Use of decoction of root of *bāṇa* mixed with seeds of *trapuṣī* (cucumber), sugar and honey cures *raktātisāra.*

१. पिप्पल्यो धातकी पद्मं समङ्गा मोचजो रसः। मत्स्यण्डिकेन्द्रधान्यं च पिष्टमेतन्नृपोत्तम ! ॥ ८५॥
तण्डुलोदकसंयुक्तं सशूले वातिके हितम् ॥ ८६॥ (का० सं० खि० १०)

२. बाणमूलस्य निष्क्वाथस्त्रपुषीबीजसंयुतः। शर्करामधुसंयुक्तो रक्तातीसारनाशनः ॥ ९६॥
पद्मं समङ्गा मधुकं चन्दनं पद्मकेशरम्। पयसा मधुसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ९७॥
तिलान् कृष्णान् समङ्गा च यष्टीमधुकमुत्पलम्। पिबेदामेन पयसा रक्तातीसारनाशनम् ॥ ९८॥
मौचो रसस्तिला लोध्रमुत्पलं कमलं तथा। पिबेत् क्षीरेण संयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ९९॥
पयस्या चन्दनं लोध्रं पद्मकेशरमेव च। पयसा मधुसंयुक्तं पिबेद्रक्तातिसारिणी ॥ १००॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

(ii) Powder of *padma, samaṅgā, madhuka, candana*, and *padmakeśara* mixed with honey and taken with milk cures *raktātisāra*.

(iii) Use of powder of black *tila, samaṅgā, madhuyaṣṭī* and *utpala* with unboiled milk is beneficial.

(iv) Use of *mocarasa, tila, lodhra, utpala (nīlakamala)* and *kamala* with milk cures *raktātisāra*.

(v) Powder of *payasyā, candana, lodhra* and *padmakeśara* mixed with honey and taken with milk cures *raktātisāra*.

प्रवाहिका चिकित्सा (Treatment of pravāhikā or dysentery)

(१) काश्मरी के मूलत्वक् (वृक्षत्वक्) तथा श्यामा के मूल की दधिमण्ड के साथ बनाई हुई यवागू को थोड़े से घृत के साथ सिद्ध करके पीने से प्रवाहिका पीड़ित (गर्भिणी स्त्री) सदा सुख प्राप्त करती है[१,२]।

(२) किराततिक्त, लोध्र, मधुयष्टी, फाणित तथा तिलकल्क का शर्करा एवं मधु मिलाकर तण्डुलोदक के साथ प्रयोग प्रवाहिका का नाश करता है[१]।

(३) कपित्थ, बिल्व, माष, मोचरस, पिप्पली तथा शृङ्गवेर (आर्द्रक) प्रत्येक का पृथक्-पृथक् एक-एक कर्ष कल्क तथा दही आधा प्रस्थ इसमें गुड़ द्वारा बनाई हुई मद्य डालकर खड़ (एक विशिष्ट आहार कल्प) तैयार कर, घृत और मधु सहित (मिलाकर) भोजन के जीर्ण हो जाने के बाद पान करने से जीर्ण प्रवाहिका नष्ट होती है, तथा प्राणों एवं बल का वर्धन होता है[१]।

(४) फाणित, तिलकल्क, शर्करा तथा मधुक का तण्डुलोदक के साथ मिलाकर प्रयोग प्रवाहिका को शीघ्र ही नष्ट कर देता है[२]।

(५) किराततिक्त, लोध्र तथा मधुयष्टी का शहद के साथ पान प्रवाहिका को शीघ्र नष्ट करता है[२]।

(६) गर्भिणी की आम एवं रक्तमिश्रित प्रवाहिका में आम्र एवं जामुन की त्वचा के क्वाथ में लाजा का सत्तू मिलाकर चाटने से लाभ होता है, यह प्रयोग ग्रहणी को भी नष्ट करता है[३]।

(i) Rice gruel prepared with stem or root bark of *kāśmarī* and root of *trivṛta* and *dadhi-maṇḍa* (whey) mixed with little quantity of *ghṛta* if used by pregnant woman suffering from *pravāhikā* gives relief.

(ii) Paste of *kirātatikta, lodhra, madhuyaṣṭī, phāṇita* (molasses) and *tila* mixed with sugar and honey taken with rice water cures *pravāhikā*.

(iii) A *khaḍa* (specific preparation) should be prepared with one *karṣa* paste of *kapittha, bilva, māṣa, mocarasa, pippali* and *śṛṅgavera* (ginger) each churning it with $^1/_2$ *prastha* curd and wine made of jaggery. Use of this with *ghṛta* and honey after digestion of meals cures chronic *pravāhikā* and increases *prāṇa* (longevity) and *bala* (energy).

(vi) Use of *phāṇita*, paste of *tila*, sugar and *madhuka* with rice water cures *pravāhikā*.

(v) Use of *kirātatikta, lodhra* and *madhuyaṣṭī* with honey immediately cures *pravāhikā*.

(vi) Flour of parched paddy mixed with decoction of stem-bark of mango and black-berry taken by pregnant woman cures *pravāhikā* associated with *āma* (mucus) and blood. It also cures *grahaṇī* (sprue syndrome).

१. काश्मर्यमूलत्वक्कल्कः श्यामामूलं तथैव च ॥ ९०॥
यवागूं दधिमण्डेन सिद्धामल्पघृतां पिबेत्। प्रवाहिकार्ता सततं तथा सम्पद्यते सुखी ॥ ९१॥
किराततिक्तकं लोध्रं यष्टीमधुकमेव च। फाणितं तिलकल्कश्च शर्करामधुसंयुतम् ॥ ९२॥
तण्डुलोदकमित्येतत् प्रतिहन्ति प्रवाहिकाम्। कपित्थबिल्वमाषाणां कल्कानक्षसमान् पृथक् ॥ ९३॥
तथा कोपलमोचाऽपि पिप्पली शृङ्गवेरयोः। अर्धप्रस्थं भवेद्दध्नो (मथेद्दध्नो-शु० पा०) गौडमद्यकृतः खटः(ङः) ॥ ९४॥
घृतक्षौद्रेण सहितः पीतो हन्ति चिरोत्थिताम्। वाहिकां जीर्णभक्षायाः प्राणस्य बलवर्धनः ॥ ९५॥ (का० सं० खि० १०)

२. फाणितं तिलकल्कं च शर्करा मधुकं तथा। तण्डुलोदकसंयुक्तं सद्यो हन्ति प्रवाहिकाम् ॥
काश्मर्यवृक्षत्वकल्कं ..... पिबेत् ॥ (उपर्युक्त सदृश ही)
किराततिक्तकं लोध्रं यष्टीमधुकमेव च। पातव्यं मधुसंयुक्तं सद्यो हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ (का० सं० चि० २/२-४)

३. प्रवाहिकायां गर्भिण्याः शस्तं साम्ये सशोणिते। आम्रजम्बूत्वचः क्वाथैर्लेहयेल्लाजसक्तुकम् ॥
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

ग्रहणी चिकित्सा (Treatment of grahaṇī)

आम्र एवं जामुन की छाल के क्वाथ में लाजा का सत्तू मिलाकर चाटने से गर्भिणी का ग्रहणी रोग नष्ट होता है[१]।

Flour of parched paddy mixed with decoction of stem bark of mango and black-berry cures *grahaṇī* (sprue syndrome).

अरुचि चिकित्सा (Treatment of aruci or anorexia)

शृङ्गवेर (आर्द्रक), कटुक तथा मातुलुङ्ग के केशर का दंत (मसूढ़े) एवं जिह्वा में मर्दन तथा उष्ण जल के साथ गण्डूष-धारण गर्भिणी की सभी प्रकार की अरुचि का निवारण करता है[२]।

Massage of powdered *śṛṅgabera, kaṭuka* and *keśara* (saffron) of *mātuluṅga* over teeth, (gums) and tongue followed by retention of mouthful hot water relieves all types of *aruci*.

विबन्ध चिकित्सा (Treatment of constipation)

त्रिफला-क्वाथ में हरीतकी, नागर तथा गुड़ मिलाकर शीतल करके पीने से गर्भिणी-स्त्री के विबन्ध तथा विद्रधि का नाश होता है[३]।

Cooled decoction of *triphalā* mixed with *harītakī, nāgara* and jaggery cures constipation and abscess.

१. आम्रजम्बूत्वचः क्वाथैर्लेहयेल्लाजशक्तुकम्।
अनेनालीढमात्रेण गर्भिणीं ग्रहणीं जयेत्॥ (भा० प्र० चि० ७०/६७, यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम्। मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥ ७॥
गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ ८॥ (हा० सं० तृती० ५१/७,८)

३. हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषायः॥ शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धविद्रधीञ्च ॥ (हा० सं० तृती० ५१/१०)

Scanned with CamScanner

गर्भिणी के लिए दीपनीय औषधियाँ (Dipanīya or appetizer drugs for pregnant woman)

(१) पिप्पली, पिप्पलीमूल, मुस्ता तथा नागर (के चूर्ण) का शर्करा युक्त दुग्ध से पान[1] अथवा मधु मिलाकर क्षीर के साथ सेवन दीपनीय होता है[2]।

(२) अजमोदा, नागर, पिप्पली तथा जीरक का सम भाग चूर्ण गुड़ एवं मधु के साथ खाने से गर्भिणी स्त्री की अग्नि दीप्त होती है[3]।

(i) Use of powders of *pippalī, pippalīmūla, mustā* and *nāgara*, with milk sweetened with sugar or honey is appetizer.

(ii) Use of equal quantity of powder of *ajamodā, nāgara, pippalī* and *jīraka* (cumin seed) with jaggery and honey increases appetite of pregnant woman.

गुल्म चिकित्सा (Treatment of gulma)

जो वातगुल्म तथा योनिगुल्म की चिकित्सा पूर्व में (सामान्य गुल्म एवं रक्तगुल्म चिकित्साध्याय में) संक्षेप में कह दी गई है (उसी विधि से उसे यहाँ भी प्रयुक्त करना चाहिए)। चतुर्थ मास में वातिक, पैत्तिक अथवा श्लैष्मिक गुल्म की निम्न चिकित्सा करनी चाहिए[4]।

महर्षि काश्यप का मत है कि मदनफल से युक्त घृत, अन्नपान, दूध अथवा इक्षुरस से यथावत् वमन करावें[4]।

स्वास्थ्य की इच्छा रखने वाला बुद्धिमान (वैद्य) चतुरंगुल से सिद्ध मांसरस या दुग्ध से विरेचन करावें[4]।

पूतीक के (घी में) भुने हुए पत्तों या वाट्यालिका के पुष्प से बनी अम्ल (अनारदाने मिश्रित) यवागू पीना चाहिए, जिससे (विरेचन के) अतिवेग न हों[4]।

Treatment of *vāta* and *yonigulma* described earlier (in *gulma* and *raktagulma cikitsādhyāya*) should be used here also. However, medicines to be used during fourth month of pregnancy for the treatment of *vātaja, pittaja* and *śleṣmaja gulmas* are as follows:

Emesis should be induced by giving *madanaphala* mixed with either *ghṛta*, edibles, drinkables or milk juice of sugarcane.

The wise physician should prescribe milk or meat soup medicated with *caturaṅgula* for purgation.

---

१. पिप्पली पिप्पलीमूलं मुस्ता नागरमेव च। दीपनीयं पिबेदेतं पयसा शर्कराऽन्वितम्॥ (का० सं० चि० २/१३)

२. (पिप्पली) पिप्पलीमूलं मुस्ता तगरमेव च (नागरमेव च-शु० पा०)। दीपनीयं भवेदेतत् क्षीरिण तु समाक्षिकम्॥ १४३॥ (का० सं० खि० १०)

(पाठ शोध का कारण यह है कि औषधियाँ रसादि एवं प्रभावदृष्ट्या सामञ्जस्य रखती हैं तथा चि० स्थान में शुण्ठी ही वर्णित है)

३. अजमोदा नागरं च पिप्पली जीरकं समम्॥ १३॥ तच्चूर्णं सगुडक्षौद्रं गर्भिण्या वह्निदीपनम्॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

४. वातगुल्मस्य भैषज्यं योनिगुल्मस्य चाप्यथ। यथावत् पूर्वमुद्दिष्टं समासेन चिकित्सितम्॥ १४६॥
वातिके पैत्तिके चैव श्लैष्मिके च विशेषतः। चतुर्थे मासि नारीणामिदं कुर्याच्चिकित्सितम्॥ १४७॥
सर्पिर्भिरन्नपानैर्वा क्षीरेणेक्षुरसेन वा। वामयेत् फलयुक्तेन यथावदिति कश्यपः॥ १४८॥
चतुरङ्गुलसिद्धेन रसेन पयसाऽपि वा। विरेचयेत्तु मतिमान् य इच्छेत् सुखमात्मनः॥ १४९॥
पूतीकपैर्भृष्टैर्वा पुष्पैर्वाट्यालकस्य वा। अम्लां यवागूं प्रपिबेन्नातिवेगा यथा भवेत्॥ १५०॥ (का० सं खि० १०)

Sour (due to mixture of seeds of pomegranate) rice gruel medicated with fried (in *ghṛta)* leaves of *pūtīka* or flowers of *vāṭyālikā* should be given, so that she does not get excessive purgation.

गुदवेदना चिकित्सा (Treatment of pain in anal region)

गुदा से कष्ट पूर्वक रक्त आने पर एवं गुदा में वेदना होने पर कुप्पी (ताम्रादि निर्मित पात्र) अथवा पाषाण (के पात्र) में तप्त दुग्ध का मधुक के साथ सेवन करना चाहिए तथा बाद में घृतमण्ड के द्वारा अनुवासन देना चाहिए[1]।

For painful bleeding per rectum or pain in anal region the milk heated in *kuppī* (metal pot) or pot made of stone and mixed with *madhuka* should be prescribed followed by uncting enema of *ghṛta-maṇḍa* (The scum of melted butter).

परिकर्तिका चिकित्सा (Treatment of parikartikā or anal fissure)

(अ) सामान्य चिकित्सा (General treatment)

मधुरसा से युक्त (या साधित) मधु मिश्रित शीतल दुग्ध; शर्करा, मधु (मधुयष्टी) एवं तैल अथवा मधुयष्टी एवं फाणित (या सभी तीनों योग) लेहन करने से परिकर्तिका का नाश होता है अर्थात् व्याधि ठीक होती है[2]। (औषध या द्रव्य नपुंसक लिंग के शब्द हैं, अतः अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त बहुवचन पुल्लिंग शब्द सम्भवतः योगों के लिए आया है)।

Parikartikā is cured by use of either cold milk medicated with *madhurasā* and mixed with honey or mixture of sugar, *madhuyaṣṭī* and oil or *madhuyaṣṭī* and *phāṇita* (molasses).

(आ) वातिक परिकर्तिका चिकित्सा (Treatment of vātika parikartikā)--

जिस गर्भिणी स्त्री को वातिक परिकर्तिका हो जाए तो उसे बृहती, बिल्व तथा अनन्ता का यूष बनाकर खाने को देना चाहिए[3]।

Soup prepared with *bṛhatī, bilva* and *anantā* should be prescribed.

(इ) पैत्तिक परिकर्तिका चिकित्सा (Treatment of paittika parikartikā)

यदि गर्भिणी स्त्री को पैत्तिक परिकर्तिका हो जाय तो मधुक, हंसपादी तथा वितुन्नक को अच्छी प्रकार पीसकर मधु मिलाकर तण्डुलोदक के साथ पीना हितकर होता है[4]।

Finely powdered *madhuka, haṃsapādī* and *vitunnaka* with honey followed by use of rice-water should be prescribed.

---

१. रक्तं निर्वा(र्व)हते यावत् कृच्छ्रात् सगुदवेदनम्। कुप्यपाषाणतप्तेन पयसा भोजितां ततः॥ १०१॥
मधुकं घृतमण्डेन त्वथैनामनुवासयेत्॥ १०२॥ (का० सं० खि० १०)

२. संयोज्य मधुना शीतं क्षीरं मधुरसाधिक(त)म् (मधुरसान्वितम्-शु० पा०)।
शर्करा मधु तैलं च यष्टीमधुकफाणितम्। एते हि लेहिता घ्नन्ति तथैव परिकर्तिकाम्॥ (का० सं० चि० २/१)

३. गर्भिण्या वातिकी यस्या जायते परिकी(क)र्तिका॥ १०२॥
बृहतीबिल्वमानन्तैर्यूषं कृत्वा तु भोजयेत्॥ १०३॥ (का० सं० खि० १०)

४. परिकी(क)र्तिकायां गर्भिण्याः पैत्तिकायामिदं हितम्॥ १०३॥
मधुकं हंसपादी च वितुन्नकमथापि च। पाययेन्मधुसंयुक्तं सुपिष्टं तण्डुलाम्बुना॥ १०४॥ (का० सं० खि १०)

Scanned with CamScanner

(ई) श्लैष्मिक परिकर्तिका चिकित्सा (Treatment of ślaiṣmika parikartikā)

श्लैष्मिक परिकर्तिका में कण्टकारी, श्वदंष्ट्रा तथा अश्वत्थ (त्वक्) को समान मात्रा में लेकर नमक मिलाकर भोजन या पान के रूप में प्रयोग करना चाहिए[1]।

Kaṇṭakārī, śwadaṃṣṭrā and *aśwattha* (stem bark) in equal quantity mixed with salt should be used either in solid or liquid form.

मुखपाक चिकित्सा (Treatment of stomatitis)

यदि गर्भिणी स्त्री को मुखपाक हो जाय तो हरिद्रा एवं दारुहरिद्रा के क्वाथ का कवल धारण करना चाहिए। इसके पश्चात् स्नेह, बाद में शर्करा मिश्रित जल तत्पश्चात् लोध्र के क्वाथ का कवल धारण करे। तदुपरान्त लोध्र के चूर्ण से ही प्रतिसारण करे। अन्त में अनन्ता, समङ्गा (मंजिष्ठ), धृषी तथा मोचरस के चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करने से वह रुग्णा सुखी (स्वस्थ) हो जाती है[2]।

If a pregnant woman suffers from stomatitis, she should hold mouthful of following substances in succession i.e. decoction of *haridrā* and *dāruharidrā*, fat *(ghṛta)*, water mixed with sugar and then decoction of *lodhra*. After this, she should rub the powder of *lodhra* and then take powders of *anantā, mañjiṣṭhā, dhṛṣī* and *mocarasa* mixed with honey.

पार्श्वग्रह चिकित्सा (Treatment of pārśwagraha or rigidity in flanks)

यदि गर्भिणी स्त्री को पार्श्वग्रह हो जाय तो शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, काश्मरी तथा पाटला का भलीभाँति यूष बनाकर भोजन तथा पान में प्रयोग करना चाहिए[3]।

Soup of *śāliparṇī, pṛśniparṇī, bṛhatī, kaṇṭakārī, bilva, agnimantha, śyonāka, kāśmarī* and *pāṭalā* should be used with food and drinks.

गर्भिणी के आक्षेपक एवं अपतानक की चिकित्सा (Treatment of ākṣepaka and apatānaka or convulsive disorders of pregnant woman)

(अ) असंसृष्ट दोष (केवल वातजन्य) होने पर चिकित्सा (Treatment of convulsions not associated with any other doṣa or caused by vāta only)

आक्षेपक या अपतानक रोग के उत्पन्न हो जाने पर विड्लवण तथा सैंधव लवण मिलाकर मातुलुङ्ग के रस अथवा अग्निमन्थ या वरुण के क्वाथ का पान करना चाहिए; अथवा लावा (बटेर) या तित्तिर का स्नेह युक्त मांसरस प्रशस्त है।

१. श्लेष्मिकायां तु कर्तव्यं यथावत्तन्निबोधत। कण्टकारी श्वदंष्ट्रा च अश्वत्थं चेति तत् समम् ॥ १०५॥
सम्पत्रलवणं कृत्वा भोजयेत् पाययेदपि ॥ १०६॥ (का० सं० खि० १०)

२. अथ चेदगर्भिण्या मुखपाको भवेदिह ॥ १०८॥
हरिद्रादारुनिष्क्वाथं ग्राहयेत् कवलं ततः। ततः स्नेहेन कृत्वा तु ततः स्याच्छर्करोदकम् ॥ १०९॥
लोध्रोदकेन कृत्वा तु कुर्यात्तत्प्रतिसारणम्। अनन्तां च समङ्गां च धृषीं मोचरसं तथा ॥ ११०॥
मधुना सह(म)मश्नीयात्ततः सम्पद्यते सुखी ॥ १११॥ (का० सं० खि १०)

३. अथ चेदत्र गर्भिण्याः पार्श्वस्योपग्रहो भवेत् ॥ १०६॥
शालपर्णीं पृश्निपर्णीं बृहतीं कण्टकारिकाम्। बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं काश्मर्यमथ पाटलिम् ॥ १०७॥
यूषं कृत्वा तु सम्पन्नं भोजयेत् पाययेदपि ॥ १०८॥ (का० सं० खि० १०)

पीने के लिए वात-शामक औषधियों अथवा वादुल (चर्मचटी) का रस देना चाहिए। यह विधि (अपतंत्रक या अपतानक के) असंसृष्ट (वातदोषज) होने पर करनी चाहिए[1]।

The pregnant woman suffering from above disorders should be given any one of the following:

(i) Juice of *mātuluṅga* (lemon) mixed with *vid* and rock salt.

(ii) Decoction of *agnimantha* or *varuṇa*.

(iii) Soup of meat of quail or partridge mixed with fat.

(iv) Juice/decoction of *vādūla (carmacaṭī)* or the drugs capable of suppressing the *vāta*.

(आ) पित्तोपसृष्ट आक्षेपक या अपतानक चिकित्सा (Treatment of convulsions having association of pitta)

यदि आक्षेपक एवं अपतानक में पित्त का संयोग हो तो जांगल मांसरस मधुर करके अथवा मधुर वर्ग की औषधियों के क्वाथ को दाडिम (अनारदाना) से अम्ल करके देना चाहिए[2]।

Sweetened meat soup of wild animals or decoction of drugs of *madhura* group mixed with *dāḍima* (seeds of pomegranate) to make it sour, should be prescribed.

(इ) वात तथा श्लेष्मोपसृष्ट आक्षेपक एवं अपतानक चिकित्सा (Treatment of convulsions having association of vāta with śleṣmā)

जब इनमें (आक्षेपक या अपतानक में) वायु तथा श्लेष्मा का संयोग हो तब अम्ल एवं कटु रस का प्रयोग करना चाहिए। यवक्षार युक्त जांगल मांसरस का प्रयोग सदा हितकारी होता है। पित्तज के अतिरिक्त (वात एवं श्लेष्म संसर्ग में) पाणिताप से (हाथ को गर्म करके) मृदु ताप पहुँचाना लाभदायक होता है। जीर्ण गर्भ (गर्भावस्था की स्थिति बढ़ी हुई होने पर) में विशेषकर घृत से सेक करना चाहिए। व्याधि के अनुसार यह सेक उष्ण या शीत प्रयोग करना चाहिए[3]।

In above condition drugs of *amla* (sour) or *kaṭu* (hot) *rasa* should be prescribed. Use of meat soup of wild animals with *yawakṣāra* is beneficial. Mild fomentation with warmed palm is useful. Fomentation with *ghṛta* specially in late pregnancy is beneficial. Considering the status of disease hot or cold fomentation should be done.

१. आक्षेपके समुत्पन्ने तथैवाप्यपतानके ॥ १११॥
मातुलुङ्गरसः पेयो विडसैन्धवसंयुतः। अग्निमन्थस्य निर्यूहः क्वथितो वरुणस्य वा ॥ ११२॥
लावो वा तैत्तिरो वाऽपि रसः स्निग्धः प्रशस्यते। पानार्थं वातशमनो वादूलो रस एव च ॥ ११३॥
असंसृष्टे तु कर्तव्यो विधिरेष सुखावहः ॥ ११४॥ (का० सं० खि १०)

२. पित्तोपसृष्टे तु हितो जाङ्गलो मधुरो रसः ॥ ११४॥ मृतो मधुरकैः सर्वैर्दाडिमाम्लसमायुतः ॥ ११५॥ (का० सं० खि० १०)

३. वातश्लेष्मसमुत्थे तु व्याप्तस्तु कटुको रसः ॥ ११५॥
यवक्षारेण संयुक्तो जाङ्गलः सततं हितः। मृदवः पाणितापाश्च पित्तवर्ज्ये हितास्तथा ॥ ११६॥
घृतसेकोऽथवा कार्यो जीर्णे गर्भे विशेषतः। उष्णो वा यदि वा शीतो व्याधिमासाद्य तत्त्वतः ॥ ११७॥ (का० सं० खि १०)

Scanned with CamScanner

गर्भिणी कामला चिकित्सा (Treatment of jaundice during pregnancy)

पिप्पली, अङ्कोठमूल, घोड़े की लीद का रस एवं भैंस (के दूध) का दही मिलाकर सेवन करना कामला रोग की चिकित्सा है[1,2]।

पृश्निपर्णी, बला तथा वासा का क्वाथ गर्भिणी के कामला रोग में लाभदायक है[3]।

Use of *pippalī* and root of *aṅkotha* mixed with juice of horse-dung and cura of buffalo's milk is beneficial.

Decoction of *pṛśniparṇī, balā* and *vāsā* should be prescribed.

गर्भिणी हृच्छूल चिकित्सा (Treatment of cardialgia of pregnant woman)

(अ) वातिक हृच्छूल चिकित्सा (Treatment of cardialgia caused by vāta)

वातिक हृच्छूल में मातुलुंग के रस में भली भाँति सैन्धव लवण मिलाकर पिलाना निश्चय रूप से प्रधान चिकित्सा है[4]।

A potion of juice of *mātuluṅga* (lemon) mixed properly with rock salt is beneficial.

(आ) पैत्तिक हृच्छूल चिकित्सा (Treatment of cardialgia due to pitta)

पैत्तिक हृदयशूल में प्रियंगु, पिप्पली, भद्रमुस्ता, हरेणु, मधु तथा बदरी के चूर्ण का प्रयोग हितकारी होता है[5]।

Powdered *priyaṅgu, pippalī, bhadramustā, hareṇu, badarī* (jujube fruit) and honey is beneficial.

(इ) श्लैष्मिक हृच्छूल चिकित्सा (Treatment of cardialgia due to śleṣmā)

श्लैष्मिक हृदयशूल में पिप्पलीचूर्ण एवं पत्र, चोच तथा प्रियंगु के कल्क को मातुलुङ्ग के रस के साथ चाटने को देना चाहिये[6]।

Powdered *pippalī* with paste of *patra, coca*, and *priyaṅgu* mixed with juice of *mātuluṅga* (lemon) should be given.

नोट (Note)

उपर्युक्त सभी योगों का अन्यत्र महर्षि काश्यप ने गर्भिणी के सामान्य हृदय रोगों की चिकित्सा के लिए शब्दभेद से

१. पिप्पल्यङ्कोठमूलानि वाजिलिण्डरसस्तथा ॥ १२७॥
दधि माहिषमित्येतत् कामलायाश्चिकित्सितम् ॥ १२८॥ (का० सं० खि १०)

२. पिप्पल्यङ्कोठमूलानि वाजिलेण्डरसं तथा। माहिषेण पिबेद्दध्ना कामलायां चिकित्सितम् ॥ (का० सं० चि० २/६)

३. पृश्निपर्णीबलावासानिर्यूहो रक्तपित्तजित्। गर्भिण्याः कामलाशोफश्वासकासज्वरापहः ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

४. मातुलुङ्गरसः पेयः सैन्धवेन सुयोजितः ॥ १२८॥
वातिके हृदिशूले तुः प्रधान इति निश्चयः ॥ १२९॥ (का० सं० खि० १०)

५. प्रियङ्गवोऽथ पिप्पल्यो भद्रमुस्ता हरेणवः ॥ १२९॥
क्षौद्रं बदरचूर्णं च पिबेत् पित्तार्दिते हृदि ॥ (का० सं० खि० १०)

६. पिप्पलीचूर्णकल्कस्तु पत्रं चोचं प्रियङ्गवः ॥ १३०॥
मातुलुङ्गरसश्चैव लेहः श्लेष्मार्दिते हृदि ॥ (का० सं० खि० १०)

वर्णन किया है केवल श्लैष्मिक शूलान्तर्गत वर्णित पिप्पली चूर्ण के स्थान पर पिप्पलीमूल (जो अधिक युक्तिसंगत है) तथा चोच एवं प्रियंगु के स्थान पर गन्धप्रियंगु शब्द का प्रयोग किया है[1]।

Above medicines have been prescribed for general *hydroga* (cardiac disorders) by Kāśyapa at different place. However, there *pippalī cūrṇa* and *coca, priyaṅgu* (described under *śleṣmaja śūla*) have been substituted with *pippalīmūla* and *gandhapriyaṅgu*.

कास चिकित्सा (Treatment of cough)

(अ) वातज कास चिकित्सा (Treatment of cough due to vāta)

कुलीरशृङ्गी, शरट (शु० पा०-मरिच), भार्गी तथा पिप्पली (चूर्ण) का मातुलुङ्ग के रस के साथ बनाया हुआ लेह वातज कास को नष्ट करता है[2]।

An electuary made with *kulīraśiṅgī, marica, bhārṅgī* and *pippalī* mixed with lemon juice cures *vātaja kāsa.*

(आ) पित्तज कास चिकित्सा (Treatment of cough due to pitta)

मधूलिका, तुगाक्षीरी, पिप्पली, शर्करा तथा द्राक्षा का मधु के साथ मिश्रित लेह पित्तज कासहर है[3]।

Licking of powdered *madhūlikā, tugākṣīrī, pippalī, drākṣā* and sugar mixed with honey relieves *pattaja kāsa.*

(इ) श्लेष्मज कास चिकित्सा (Treatment of cough due to śleṣmā)

पिप्पली, त्रिफला, रास्ना तथा भद्रदारु के चूर्ण का मधु के साथ बनाया हुआ लेह कुशल चिकित्सकों द्वारा श्लेष्म कासहर कहा गया है[3]।

An electuary made with powdered *pippalī, triphalā, rāsnā, bhadradāru* mixed with honey cures *śleṣmaja kāsa.*

(ई) क्षतज कास चिकित्सा (Treatment of cough due to kṣata i.e. trauma)

मधुक, शङ्खपुष्पी, पीपल की लाख (शु० पा० जीवा या जीवन्ती एवं लाक्षा), मधु एवं शर्करा मिलाकर बनाया हुआ लेह क्षतज कास नाशक है[5]।

१. मातुलुङ्गरसः पेयः सैन्धवेन सुयोजितः। हृदि शूलस्य भेषज्यं श्रेष्ठमित्याह कश्यपः ॥
पिप्पलीमूलकल्कस्तु पत्रं गन्धप्रियङ्गवः। मातुलुङ्गरसश्चैव हृदिशूलस्य भेषजम् ॥
प्रियङ्गवोऽथ पिप्पल्यो भद्रमुस्तं हरेणवः। क्षौद्रं बदरचूर्णं च षडङ्गं हृदयौषधम् ॥ (का० सं चि० २/७-९)

२. कुलीरशृङ्गी शरटं (शु० पाठ मरिचं) भार्गी पिप्पल्य एव च ॥ १३१॥
वातकासहरो लेहो मातुलुङ्गरसप्लुतः ॥ (का० सं० खि० १०)

३. मधूलिका तु गोक्षीरी (शु० पा०-तुगाक्षीरी) पिप्पली शर्करा तथा ॥ १३२॥
द्राक्षाक्षौद्रसमायुक्तो लेहो वै पित्तकासहा। (का० सं० खि० १०)

४. पिप्पल्यत्रिफला रास्ना भद्रदारु समाक्षिकम् ॥ १३३॥
श्लेष्मकासहरोलेहः कुशलैः परिकीर्तितः ॥ (का० सं० खि० १०)

५. मधुकशंखचूर्णं च जीवलाक्षाऽथ (शु० पा० जीवालाक्षाऽथ) माक्षिकम् ॥ १३४॥
लेहः शर्करया युक्तः क्षतकासविनाशनः ॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

Use of an electuary made with *madhuka, śaṅkhapuṣpī, jīvā, lākṣā*, sugar and honey cures *kṣataja kāsa* (cough due to injury).

श्वास कास चिकित्सा *(Treatment of dyspnoea associated with cough)*

मयूर, श्वावित् एवं शल्यक (छोटी एवं बड़ी साही) के रोम (मयूर के पंख या चँदोए तथा साही के काँटे), पिप्पलीतण्डुल (पिप्पली के टुकड़े) तथा कोलमूल (बेर की जड़) समान भाग लेकर चूर्ण करके मधु एवं सर्पि से लेहन करने से श्वास-कास का नाश होता है[1]।

गुड़, रास्ना, पिप्पली, द्राक्षा, मरिच, हरिद्रा तथा समंगा (मंजिष्ठा) के चूर्ण को तैल के साथ चाटना श्वास, कास तथा तमकश्वास में श्रेयस्कर है[1]।

अभया, आमलक, शल्यक त्वचा, गृहधूम तथा उष्ट्र की अस्थि (की भस्म) का दधि तथा तैल के साथ लेहन; अथवा पिप्पली, आमलकी, मुस्ता, फाणित, शर्करा तथा हरीतकी चूर्ण का मधु के साथ लेहन सभी प्रकार के कास एवं श्वास के प्रशमनार्थ प्रशस्त है[1]।

हिक्कान्तर्गत वर्णित पिप्पल्यादि लेह श्वास में भी लाभदायक है[2]।

भार्गी, शुण्ठी तथा कणा के चूर्ण का गुड़ के साथ सेवन श्वासकासहर है[3]।

पृश्निपर्णी, बला तथा वासा का क्वाथ गर्भिणी के श्वासकास का नाश करता है[3]।

Licking of equal quantity of powder of cresent spot of feather-tail of peacock, quill of both small and large variety of porcupine, *pippalī* and *kolamūla* (root of jujube) with honey and *ghṛta* relieves dyspnoea and cough.

Use of jaggery along with powders of *rāsnā, pippalī, drākṣā, marica, haridrā* and *samaṅgā* with oil is beneficial in dyspnoea, cough and *tamakaśwāsa*.

Licking of powdered *abhayā, āmalaka*, skin of porcupine (ash of skin), domestic soot and bone of camel (ash of bone) with curd and oil or powders of *pippalī, āmalakī, mustā, phāṇita*, sugar and *harītakī* with honey is beneficial for relief of all types of dyspnoea and cough.

Pippalyādi leha described under *hikkā* (hiccup) is useful.

Use of powdered *bhārṅgī, śunṭhī* and *kaṇā* with jaggery cures dyspnoea and cough.

Decoction of *pṛśniparṇī, balā* and *vāsā* cures dyspnoea and cough of pregnant woman.

१. मयूरस्य तु रोमाणि श्वाविच्छल्यकयोरपि ॥ १३५॥
पिप्पलीतण्डुलाश्चैव कोलमूलं च तत्समम्। चूर्णितं मधुसर्पिर्भ्यां लिहेच्छ्वासकफापहम् ॥ १३६॥
गुडो रास्नाथ पिप्पल्यो द्राक्षा समरिचा तथा। हरिद्रा च समङ्गानि चूर्णान्येतानि लेहयेत् ॥ १३७॥
तैलेन श्वासकासेषु तमके चैव पूजितः। अभयाऽऽमलकं वाऽपि शल्यकस्य त्वचायुतम् ॥ १३८॥
अन्तर्गृहं सहोष्ट्रास्थि दधितैलेन लेहयेत्। पिप्पल्यामलकी मुस्ता तथा फाणितशर्करा ॥ १३९॥
हरीतकीति चूर्णानि मधुतैलेन लेहयेत्। शमनं सर्वकासानां श्वासानां च प्रशस्यते ॥ १४०॥ (का० सं० खि० १०)

२. का० सं० चि० २ (देखें हिक्कान्तर्गत)

३. भार्गीशुण्ठीकणाचूर्णं गुडेन श्वासकासनुत्।
पृश्निपर्णीबलावासानिर्यूहो ..... ॥ गर्भिण्याः ..... श्वासकास ..... पहः ॥ (यो० र० स्त्रीरो चि०; पृष्ठ २८०)

ऊर्ध्ववात चिकित्सा *(Treatment of short breath)*

भद्रदारु, हरीतकी, सैंधव, कुष्ठ, घृत तथा फाणित को मिलाकर लेहन ऊर्ध्ववात का नाश करता है[1]।

Licking of *bhadradāru, harītakī*, rock salt, *kuṣṭha, ghṛta* and *phāṇita* (molasses) cures short breath.

हिक्का चिकित्सा *(Treatment of hiccup)*

पिप्पली, गैरिक, भार्गी, हिंगु, कर्कटकी के समान भाग के कल्क का मधु मिश्रित अथवा अमिश्रित लेहन करने से स्त्री की हिक्का की शान्ति होती है। यह योग श्वास में भी लाभदायक है[2]।

Use of electuary prepared with equal quantity of powders of *pippalī, gairika* (red ochre) *bhārṅgī, hingu, karkaṭakī* with or without honey cures hiccup and is also beneficial in dyspnoea.

गर्भिणी मुखशोष चिकित्सा *(Treatment of dryness of mouth)*

वटप्ररोह, मगधा, उशीर तथा घन की शर्करा मिलाकर बनाई हुई बटिका मुख में धारण करने से मुखशोष दूर होता है[3]।

A pill prepared with *vaṭapraroha* (aerial roots of banyan tree), *magadhā, uśīra, ghana* and sugar held in mouth cures dryness of mouth.

मूत्रग्रह चिकित्सा *(Treatment of retention of urine)*

शतावरी, दर्भमूल, मधुक, क्षीरमोरट, पाषाणभेद, उशीर तथा कतकफल (निर्मली के बीज) के क्वाथ या कल्क या इनसे साधित क्षीर का सेवन करने से सभी प्रकार के मूत्रग्रह में लाभ होता है, ऐसा महर्षि कश्यप का मत है[4]।

त्रपुष तथा एर्वारु के बीज, मागधी, शिलाभेद तथा सिता को मिलाकर तण्डुलोदक के साथ पीना चाहिए। इससे गर्भिणी स्त्री का मूत्ररोध निश्चित ही शीघ्रता से निवारण हो जाता है[5]।

Use of decoction or paste of *śatāvarī*, root of *darbha, madhuka, kṣīramoraṭa, pāṣāṇabheda, uśīra* and seeds of *kataka* relieves retention of urine; milk medicated with these drugs is also beneficial.

Powdered seeds of *ervāru* (snake-cucumber) and *trapuṣa* (cucumber), *māgadhī, śilābheda* and sugar if taken with rice water cure urinary retention.

१. भद्रदारुहरीतक्यौ सैन्धवं कुष्ठमेव च। घृतं च फाणितं चैव लेह ऊर्ध्वानिलापहः ॥ १४१॥ (का० सं० खि० १०)
भद्रदारु .....। सफाणितं घृतं चैव .....। (का० सं० चि० २/११-उपर्युक्त सदृश ही)

२. पिप्पली गैरिकं भार्गी हिंगु कर्कटकी तथा। समानि च भवेल्लेहो हिक्काप्रशमनः स्त्रियाः ॥ १४२॥ (का० सं० खि० १०)
पिप्पल्यो .....। समाक्षिको भवेल्लेहो हिक्काश्वासनिबर्हणः ॥ (का० सं० चि० २/१२, उपर्युक्त सदृश)

३. वटप्ररोहं मगधामुशीरं घनमेव च। युता खण्डगुटिकास्ये विहिता शोषवारिणी ॥ (हा० सं० तृती० ५१/२,३)

४. शतावरी दर्भमूलं मधुकं क्षीरमोरटः। पाषणभेदकोशीरं कतकस्य फलानि च ॥ १४४॥
एषा क्वाथरसं कल्कं क्षीरं वा पाययेद्भिषक्। मूत्रग्रहेषु सर्वेषु सिद्धमित्याह कश्यपः ॥ १४५॥ (का० सं० खि० १०)

५. मूत्रविबन्धनस्य त्रपुषैर्वारि (त्रपुषैर्वारु-शु० पा०) बीजानि मागधी च ॥
शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा। मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ (हा० सं० तृती० ५१/११)

Scanned with CamScanner

शोफ चिकित्सा *(Treatment of edema/inflammation)*

(अ) आभ्यन्तर प्रयोग (Oral use)

वर्षाभूमूल के क्वाथ में देवदारु तथा मूर्वा अथवा केवल भद्रदारु मिलाकर मधु युक्त करके शोफ युक्त स्त्री को पान करना चाहिए[1]।

पृश्निपर्णी, बला तथा वासा का क्वाथ गर्भिणी के शोफ का नाशक है[2]।

Decoction of roots of *varṣābhū* mixed with paste of *devadāru* and *mūrvā* or only *bhadradāru* alongwith honey cures *śopha*.

Decoction of *pṛśniparṇī*, *balā* and *vāsā* relieves *śopha*.

(आ) बाह्य प्रयोग (External application)

गर्भ के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न शोफ में उष्ण जल से स्वेदन करे[3]।

चन्दन, मधुक, उशीर, नागकेशर, तिल, अजशृंगी, मंजिष्ठा, रविमूल तथा पुनर्नवा से निर्मित लेप शोफ नाशक होता है, विशेषकर गर्भिणी स्त्री को लाभदायक है[4]।

Sudation with hot water should be used in cases of *śopha* developing as a complication of pregnancy.

An ointment made of *candana, madhuka, uśīra, nāgapuspa, tila, ajaśṛṅgī, mañjiṣṭhā,* root of *ravi* and *punarnavā* is beneficial.

(इ) शोफ में निषेध (Contraindication in śopha)

बुद्धिमान वैद्य को शोफ में दारुण विरेचन नहीं देना चाहिए[3]।

Wise physician should never prescribe strong purgatives in *śopha*.

त्वचागत वातरोग चिकित्सा *(Treatment of skin disorders due to vātā)*

त्वचागत वातरोग में सैन्धव लवण मिश्रित स्निग्ध मांसरस अथवा षष्टिक चावल महिषी के खट्टे दही के साथ मिलाकर पथ्य है[5]।

Unctuous meat-soup mixed with rock salt or *saṣṭika* rice with sour curd made of buffalo's milk is congenial.

१. वर्षाभूमूलनिष्क्वाथं योजयेद्देवदारुणा। तत् पिबेन्मधुसंयुक्तं शूना स्त्री मूर्वया सह॥ (का० सं० चि० २/५)
वर्षाभूमूलनिष्क्वाथं योजयेद्भद्रदारुणा॥ १२६॥
तत् पिबेन्मधुसंयुक्तं शोफं स्त्री पूर्वया सह॥ (का० सं० खि० १०)

२. पृश्निपर्णी ..... पहः॥ (यो० र० स्त्री० रो० चि०; पृष्ठ २८०)

३. गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा। न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान्॥ (हा० सं० तृती० ५१/१३)

४. चन्दनं मधुकोशीरं नागपुष्पं तिलास्तथा॥
अजशृङ्गी च मञ्जिष्ठा रविमूलं पुनर्नवा। श्रेष्ठः शोफहरो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

५. स्निग्धो मांसरसः पथ्यः सैन्धवेनावचूर्णितः। माहिषे षष्टिका वाऽपि स्यादम्ले त्वचि मारुते॥ (का० सं० चि० २/१०)

अन्य वातरोग चिकित्सा *(Treatment of other vāta disorders)*

बिल्व, अग्निमन्थ अथवा पाटला एवं नागर से सिद्ध एवं शीतल किया हुआ जल (क्वाथ) गर्भिणी स्त्री के वातविकारों का नाशक होता है[1]।

एरण्डपत्रों को दुग्ध के साथ (पत्रचूर्ण को दुग्ध के साथ या दुग्ध में एरण्डपत्र पका कर) वातरोग-पीड़ित स्त्री को देना चाहिए[2]।

Cooled decoction of *bilva* and *agnimantha* or *pāṭalā* and *nāgara* cures *vāta* disorders.

Powdered leaves of *eraṇḍa* with milk or milk medicated with leaves of *eraṇḍa* is beneficial.

रक्तपित्त चिकित्सा *(Treatment of bleeding diathesis)*

पृश्निपर्णी, बला तथा वासा का क्वाथ गर्भिणी के रक्तपित्त को नष्ट करता है[3]।

Decoction of *pṛśniparṇī, balā* and *vāsā* cures *raktapitta* (bleeding diathesis).

विद्रधि चिकित्सा *(Treatment of abscess)*

हरीतकी, नागरक तथा त्रिफला के शीतल क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से विद्रधि का नाश होता है[4]।

Cooled decoction of *harītakī, nāgaraka* and *triphalā* mixed with jaggery cures abscess.

विष या सर्पदंष्ट चिकित्सा *(Treatment of poisons or snake bite)*

(अ) वमन (Use of emetics)

हे नृप। जिस स्त्री को सर्प ने काट लिया हो, या उसने कोई विष पी लिया हो तो उसकी विषनाशक औषधियों द्वारा वमन कराकर तत्पश्चात संसर्जन क्रम द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए[5]।

If the pregnant woman has taken some poison or has been bitten by snake, the emesis should be induced by drugs possessing qualities against *viṣas* (poisons). This should follow specific regulated dietetic regimen.

(आ) आभ्यन्तर प्रयोगार्थ औषधियाँ (Oral medicines)

पाठा, अमृता, सोमवल्क (श्वेत खदिर), दोनों सहा (क्षुद्रसहा, महासहा) तथा कुटज के साथ क्वथित क्षीर का पान स्त्री के विष को नष्ट करता है[6]।

शिरीष, पाटलीमूल, तण्डुलीयक, सिन्दुवारित (निर्गुण्डी) एवं सहचर की मूल के क्वाथ से साधित पतली पेया विष का नाश करती है[6]।

१. बिल्वाग्निमन्थपक्वं वा पाटल्या नागरेण वा॥ सिद्धमम्बु पिबेच्छीतं गर्भिणी वातरोगनुत्॥ (यो० र० स्त्री रो० चि०)

२. एरण्ड (पत्रं) क्षीरेण वातरोगान्विता पिबेत्॥ १५१॥ (का० सं० खि० १०)

३. पृश्निपर्णी ..... पहः॥ (यो० र० स्त्री रो० चि०; पृष्ठ २८०)

४. हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषायः। शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धं विद्रधीञ्च॥ (हा० सं० तृती० ५१/१०)

५. दष्टा सर्पेण पीता वा या विषं गर्भिणी नृप !॥ १५५॥
वमनादिर्विषघ्नैस्तु संसृष्टः स्यादुपक्रमः॥ १५६॥ (का० सं० खि० १०)

६. पाठाऽमृता सोमवल्कं द्वे सहे कुटजं तथा॥ १५६॥
क्षीरक्वथितमेतत्तु पेयं नार्या विषापहम्। शिरीषं पाटलीमूलं तण्डुलीयकमेव च॥ १५७॥
सिन्दुवारितमूलं च मूलं सहचरस्य च। निष्क्वाथ्य साधयेत् पेयां प्रक्षुद्रां विषनाशनीम्॥ १५८॥ (का० सं० खि० १०)

Scanned with CamScanner

Use of milk, boiled with paste of *pāṭhā, amṛtā, somavalka, kṣudrasahā, mahāsahā* and *kuṭaja* destroys poisons.

A drinkable prepared with decoction of *śirīṣa, pāṭalīmūla, taṇḍulīyaka,* root of *sinduvārita* and *sahacara* destroys poisons.

(इ) सिरावेधका निषेध (Contraindication for venesection)

महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट का मत है कि गर्भिणी को सर्पदंष्ट होने पर उसका सिरावेधन नहीं करना चाहिए, अन्य वर्णित मृदु चिकित्सा करनी चाहिए[1]।

In event of snake bite to a pregnant woman, venesection should not be done, only *mrdu* (gentle) drugs or measures prescribed for snake bite should be used.

(ई) पथ्य (Dietetic regimen)

खडयूष आदि तथा युक्तिपूर्वक सेवन किया गया अन्न हितकारी है, तथा अन्यत्र (विष चिकित्सा में) भी जो वर्णित है उसका प्रयोग करना चाहिए[2]।

Use of *khaḍa* (a sweet dish), soup and properly prepared cereals are beneficial; the treatment for poisons prescribed at other places should also be used.

गर्भदाह (Pregnancy heart-burn)

गर्भदाह होने पर उष्णोदकानुपान अपथ्य होता है[3]।

Hot water should not be given in case of pregnancy heart-burn.

गर्भिणी को स्वयं या उसके गर्भ को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण (Bad prognostic signs/ symptoms likely to injure mother or fetus)

गर्भिणी स्त्री की व्याधियों की विशिष्ट चिकित्सा वर्णन के उपरान्त महर्षि काश्यप ने गर्भिणी स्त्री के कुछ अरिष्ट लक्षणों का वर्णन किया है। गर्भिणी को कोई भी व्याधि होने पर उसका प्रभाव सर्वप्रथम गर्भ पर पड़ता है, इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखते हुए ही सम्भवतः महर्षि कश्यप ने तीन मुख्य वर्गों के अरिष्ट लक्षणों का वर्णन किया है (१) गर्भ को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण अर्थात् इन लक्षणों से युक्त गर्भिणी के गर्भ का पात हो जाता है अर्थात् गर्भ नष्ट हो जाता है। (२) उत्पन्न हुए पुत्र को नष्ट करने वाले अरिष्ट-लक्षण अर्थात् इन लक्षणों से युक्त स्त्री का उत्पन्न हुआ पुत्र मर जाता है, सम्भवतः ये अरिष्ट लक्षण अधिकांशतः गर्भावस्था के अंतिम सप्ताहों में होने वाली व्याधियों में होते हों, अथवा इन लक्षणों का तत्काल गर्भ में कोई नाशक प्रभाव न हो कुछ ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हों कि वह उत्पन्न होने के बाद बाह्य वातावरण में जीवित न रह सकता हो अतः पुत्र की मृत्यु हो जाती हो। (३) गर्भिणी के स्वयं को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण, उपर्युक्त दोनों वर्गों के अरिष्ट लक्षणों में गर्भिणी पर कोई भी विनाशक प्रभाव नहीं होता, परन्तु तीसरे वर्ग के अरिष्ट लक्षण स्वयं गर्भिणी के ही नाश के द्योतक होते हैं।

१. (अ) गर्भिणी बालवृद्धानां सिराव्यधनवर्जितम् ॥ ३०॥
विषार्तानां यथोद्दिष्टं विधानं शस्यते मृदु ॥ (सु० सं० क० ५/३०, ३१)
(आ) गर्भिणी बालवृद्धेषु मृदु विध्येत् सिराङ्ग न ॥ (अ० सं० उ० ४२/५६)

२. खडयूषादिकं चापि युक्त्याऽन्नमशितं हितम्। द्वितीये वक्ष्यते यच्च स्थाने तच्चापि कारयेत् ॥ १५९॥ (का० सं० खि० १०)

३. ..... नोष्णोदकं भवेत् पथ्यम्। पित्ते रक्तस्रावे गर्भच्यवने च गर्भदाहे च ॥ (का० सं० सू० २२/१४)

यद्यपि इसी संदर्भ में कतिपय अन्य अरिष्ट लक्षणों का भी वर्णन है, परन्तु उनका मूढ़गर्भ से सम्बन्ध होने के कारण यथास्थान वर्णन किया जायगा।

After describing the treatment of various disorders afflicting a pregnant woman Kāśyapa has mentioned certain signs/symptoms, presence of which indicates bad prognosis. These can be classified under three categories:

i) Signs/symptoms likely to injure the fetus or in other words if pregnant woman exibits these, the fetus will either die or get aborted.

ii) Signs/symptoms in presence of which born child dies. It is just possible that these signs/symptoms might be appearing in third trimester of pregnancy but do not cause immediate danger to the fetus, however, produce some such abnormality that neonate is unable to survive in new environment.

iii) In first two categories though clinical features appear in mother, yet do not harm her, but clinical features of third category show bad prgnosis for the pregnant woman herself.

(१) गर्भ को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण (Clinical features indicating possible intrauterine death of the fetus or abortion)

गर्भिणी दुर्बलाकारा या भवत्यासिता सती (शु० पा० भवत्यधिकाशना)।
ज्वरश्चाभिद्रवत्येनां तस्या गर्भो विपद्यते ॥ १६०॥
बहु भुङ्क्ते तु याऽत्यर्थं बहुशो बहुमूर्च्छिता। भवेत्तस्याः पतेद्गर्भो गर्भिण्यास्तु न संशयः ॥ १६१॥
नेत्रे मुस्तोत्थिताकारे कर्णौ पादौ च शीतलौ। केशाश्च जटिला यस्यास्तस्या गर्भो विपद्यते ॥ १६२॥
उपरिष्टास्तु यो नाभ्या उभे पार्श्वे निषेवते। मध्ये वा तिष्ठते नार्याः सोऽपि गर्भो विपद्यते॥ १६३॥
रुक् सन्धिमोक्षे यस्याः स्यान्मृष्टान्ने चारुचिस्तथा। निश्चेष्टस्वप्नकामायास्तस्या गर्भो विपद्यते ॥ १६४॥
(का० सं० खि० १०)

जो दुर्बल आकार की गर्भिणी स्त्री एकदम श्वेत वर्ण की (अत्यधिक पाण्डु के कारण श्वेत) तथा ज्वर से पीड़ित होती है, उसके गर्भ का नाश हो जाता है। शुद्ध पाठ में स्त्री दुर्बलाकार, अत्यधिक खाने वाली अर्थ हो जायेगा।

जो स्त्री बार-बार बहुत ज्यादा खाती है तथा बार-बार मूर्छित हो जाती है, उस गर्भिणी के गर्भ का पात हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

जिस स्त्री के नेत्र मोथे के समान उठे हुए (अत्यधिक नेत्र-शोफ), कर्ण एवं पैर शीतल तथा केश जटिल या आपस में चिपके हुए हों उसका गर्भ नष्ट हो जाता है।

जो गर्भ स्त्री की नाभि के दोनों पार्श्वों में अथवा मध्य में स्थित होता है, वह भी नष्ट हो जाता है।

जिस स्त्री के सन्धि-बन्धनों में पीड़ा हो, भोजन में अरुचि हो, निश्चेष्ट (सदृश) हो अथवा अत्यधिक सोने की इच्छा करती हो उसका गर्भ नष्ट हो जाता है।

A scraggy pregnant woman, who is white in complexion or eats too much and suffers from fever, her fetus dies in uterus.

Scanned with CamScanner

A pregnant woman who eats frequently in large quantity and becomes repeatedly unconscious definitely gets abortion.

The woman whose eyes are swollen, ear and feet cold and hair matted, her fetus gets destroyed (dies in uterus).

The fetus who is situated either on both lateral sides of umbilicus (of mother) or in centre of abdomen also dies (in uterus).

The pregnant woman who suffers from pain of joints, anorexia, drowsiness and always wants to sleep, her fetus dies in uterus.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णित पाँचों श्लोकों का पृथक् पृथक् विश्लेषण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम अत्यधिक पाण्डुता, दूसरा प्रमेह (क्योंकि अत्यधिक भोजन एवं मूर्छा लक्षण है), तीसरा वृक्कशोथ (क्योंकि आँखों में शोफ लक्षण है) का द्योतक है। इन तीनों ही स्थितियों के गम्भीर होने पर अधिकांशतः गर्भस्राव हो ही जाता है। चौथे श्लोक में संभवतः आचार्य ने गर्भाशय के जन्मजात विकारों की ओर इंगित किया है। पाँचवाँ श्लोक सम्भवतः संधिशोथ का वर्णन है। यद्यपि संधिशोथ के उपद्रवों में गर्भपात का आधुनिक काल में वर्णन नहीं मिलता, परन्तु हो सकता है कि अति आततायिक अवस्था में गर्भपात हो जाए।

Out of five verses mentioned above probably first hints towards excessive anaemia, second to diabetes mellitus (as excessive eating and unconsciousness are the clinical features) and third to nephritis or toxaemia of pregnancy (edema around the eyes is a sign). In all the above three conditions, if these turn serious, abortion is inevitable. Fourth verse probably indicates some congenital abnormality of uterus and the fifth to arthritis. Though normally arthritis does not cause abortion or intrauterine death of fetus, however, in acute conditions these complications may happen.

(२) उत्पन्न हुए पुत्र को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण (Clinical features indicating possible death of the child)

संधिशोथोऽङ्गपाकश्च विक्रमश्च गुरुर्भवेत्। यस्यास्तस्याः सुतो जातो म्रियते नात्र संशयः॥ १६५॥
शोचन्त्याः परिदेविन्याः प्रध्यायिन्यास्तथैव च। अङ्गुलीस्फोटशीलाया जातः पुत्रो न जीवति॥ १६६॥
दुर्गन्धि च पयो यस्या जटिलाश्च शिरोरुहाः। मलिनाश्च ततस्तस्या जातः पुत्रो न जीवति॥ १६७॥
(का० सं० खि० १०)

जिस स्त्री की सन्धियों में शोथ, अङ्गों का पाक तथा पादन्यास गुरु (चलने में भारीपन) हो जाए, उसका उत्पन्न हुआ पुत्र मर जाता है, इसमें संशय नहीं है।

जो स्त्री (गर्भावस्था में) शोक, विलाप तथा चिन्तन करती हो, तथा नित्य अंगुली-स्फोटन (उँगली चटकाना) करती रहती हो, उसका उत्पन्न हुआ पुत्र जीवित नहीं रहता।

जिसका स्तन्य दुर्गन्धि युक्त एवं सर के बाल जटिल (जटा स्वरूप आपस में चिपके हुए) तथा (शरीर) मलिन हो, उसका उत्पन्न हुआ पुत्र जीवित नहीं रहता।

The pregnant woman who suffers from arthritis, suppuration of body parts (multiple abscess or generalised pyemia) alongwith heaviness of gait, her born child dies wihtout any doubt.

The pregnant woman who is sad, bewailing, subtly speculating and always cracking her fingers, her born child can not survive.

The woman who has foul smelling milk secretion, matted hair and is very dirty, her born child can not survive.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त तीनों श्लोकों में उत्पन्न हुए पुत्र की मृत्यु का कारण क्रमशः शारीरिक, मानसिक एवं स्तन्य जन्य व्याधियों को बताया है।

Above mentioned three verses denote physical, psychological and breast milk abnormalities respectively.

(३) गर्भिणी को ही नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षण (Clinical features denoting possible death of pregnant woman)

पार्श्वशूलं च तृष्णा च संज्ञानाशस्तथैव च। श्वासश्च वर्त्मरोधश्च यस्याः साऽपि न जीवति॥ १७०॥
कटिग्रहो योनिशूलं पूतिगन्धि मुखं तथा। संज्ञानाशः प्रलापो वा गर्भिण्याः सा न जीवति॥ १७१॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना। स्मयते सा शयाना वा श्मशानं याऽधिरोहति॥ १७४॥
मूढगर्भा सगर्भा वा गर्भिणी सा विनश्यति। खरं वराहं महिषं श्वानमुष्ट्रं तथैव च॥ १७५॥
स्वप्नेऽधिरोहते या तु सगर्भा सा विनश्यति॥ (का० सं० खि० १०)

जिस स्त्री को पार्श्वशूल, तृष्णा, संज्ञानाश, श्वास तथा स्रोतस् (प्राणवह) का अवरोध हो जाय, वह स्त्री जीवित नहीं रहती।

जिस गर्भिणी स्त्री को कटिग्रह, योनिशूल, मुख से पूतिगन्धि, संज्ञानाश तथा प्रलाप हो जाय, वह जीवित नहीं रहती।

जो मूढ़गर्भ वाली या (सामान्य) गर्भ युक्त गर्भिणी रक्तवर्ण के वस्त्र पहनती हो, रक्त वर्ण की मालायें तथा अनुलेपन धारण करती हो, सोते हुए मुस्कराती हो तथा श्मशान की ओर जाती हो, वह नष्ट हो जाती है अर्थात् मर जाती है।

जो गर्भवती स्त्री स्वप्न में खर, वराह, महिष, श्वान एवं ऊँट की सवारी करती है, वह नष्ट हो जाती है।

The pregnant woman suffering from pain in flanks, thirst, unconsciousness, dyspnoea and obstruction of *srotasas* (*prāṇavaha srotasas* i.e. respiration) does not survive.

The pregnant woman having stiffness of sacral region, pain in vagina, putrid smell from mouth, unconsciousness and delirium does not survive.

The pregnant woman either normally pregnant or having *mūḍha garbha* (obstructed labour), who wears red garments and garlands, uses red anointments, smiles during sleep and goes towards cremation ground does not survive.

The pregnant woman who dreams of riding over donkey, hog, buffalo, dog or camel does not survive.

Scanned with CamScanner

गर्भजन्य विषमयता (Toxaemia of pregnancy)

गर्भिणी की व्याधियों में गर्भजन्य विषमयता एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्याधि है, विशेषकर साध्यासाध्यता की दृष्टि से, क्योंकि गर्भिणी एवं गर्भ की मृत्यु का यह एक मुख्य कारण है। आधुनिक विज्ञान की पुस्तकों में वर्णित विस्तृत विवेचना को न देते हुए आयुर्वेदिक संहिताओं में उपलब्ध यत्रतत्र वर्णित विषय को शृंखलाबद्ध कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

गर्भजन्य विषमयता में मुख्य तीन लक्षण होते हैं (१) भार वृद्धि या शोफ (२) मूत्र में एल्ब्युमिन का आना (३) रक्तचाप-वृद्धि। इन लक्षणों के अतिरिक्त कतिपय गौण लक्षण जैसे अति वमन, कभी-कभी अतिसार, शिरःशूल एवं भ्रम आदि भी होते हैं। यदि उपर्युक्त लक्षणों की स्थिति में व्याधि की उचित व्यवस्था न की गई तो अंत में आक्षेप या मूर्छा की स्थिति हो जाती है, एवं व्याधि अति कष्टसाध्य हो जाती है।

स्त्री के प्रधान एवं गौण उपर्युक्त लक्षणों में मूत्र में एल्ब्युमिन तथा रक्तचाप वृद्धि की उपस्थिति का निर्णय चिकित्सक करता है। आयुर्वेदिक संहिताओं में व्याधियों का वर्णन मुख्यतः रोगी के द्वारा वर्णित लक्षणों या दर्शन परीक्षा द्वारा ज्ञातव्य लक्षणों के ही आधार पर किया गया है, अतः गर्भिणी शोफ एवं आक्षेप तथा मूर्छा का वर्णन ही मुख्यतः द्रष्टव्य है। साथ ही अन्य आनुषंगिक लक्षणों के वर्णन पर भी एक दृष्टिपात करना होगा।

Though toxaemia of pregnancy as a disease entity has not been described in *āyurvedika* classics, a few scattered references when put together give the idea about this entity

This entity is characterized with: (i) increase in weight or edema, (ii) presence of albumin in urine, (iii) hypertension. Besides these cardinal features other associated symptoms such as excessive vomiting, headache, giddiness, sometimes diarrhoea are also present. Out of all these, presence of albumin in urine and rise in blood pressure probably were not known, however other features have been described.

आनुषङ्गिक लक्षणों का वर्णन (Description of associated symptoms)

(१) वमन (Vomiting)

गर्भिणी छर्दि का विस्तृत वर्णन पूर्व पृष्ठों में दिया जा चुका है।

It has already been described earlier.

(२) अतिसारादि अन्य लक्षण (Diarrhoea, hiccup etc.)

अतिसार, हिक्का एवं श्वास आदि की लाक्षणिक चिकित्सा महर्षि काश्यप ने विस्तृत रूप से वर्णन की है जो पूर्व वर्णित है।

Management of diarrhoea, hiccup, dispnoea etc. has been given in preceding pages.

(३) मूत्राल्पता (Oliguria)

मूत्राल्पता वास्तव में शोफ के कारण होती है, क्योंकि शारीरिक जल त्वचा एवं मांसान्तर्गत एकत्र होने लगता है तथा मूत्र द्वारा नहीं निकलता, अतः यह शोफ का उपलक्षण है, न कि स्वयं में कोई व्याधि। महर्षि काश्यप एवं हारीत ने मूत्रग्रह की चिकित्सा का भी वर्णन किया है।

Due to edema the fluid is retained in the body resulting into oliguria, thus it is actually a sequela, not an independent sign. The treatment of oliguria (caused due to retention of fluid in the body resulting in edema) has also been given.

मुख्य लक्षणों का वर्णन (Description of cardinal features)

लक्षणों में तीन ही मुख्य हैं शोफ, आक्षेप एवं भ्रम या मूर्छा।

Śopha (edema), *ākṣepa* (convulsions) and *mūrchā* (unconsciousness) have been mentioned.

(अ) शोफ (Edema)

(१) महर्षि हारीत ने गर्भ के आठ उपद्रवों में शोफ एक उपद्रव माना है[1]।

(२) यद्यपि महर्षि वाग्भट ने व्यक्तगर्भा के लक्षणों में पादशोफ एक लक्षण वर्णित किया है परन्तु इसे गर्भजन्य विषमयता के अन्तर्गत लेना उचित नहीं होगा। शोफ व्याधि में निज शोफ के निदानों का वर्णन करते समय महर्षि चरक एवं वाग्भट ने गर्भोत्पीडन से शोफ की उत्पत्ति का एवं विषम प्रसूति जन्य शोफ का (सभी आचार्यों ने) वर्णन किया है[2]। यद्यपि गर्भपात या विषम प्रसूति के बाद उत्पन्न शोफ गर्भजन्य विषमयता का लक्षण नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रसव के बाद आक्षेप आदि लक्षण उन्हीं स्त्रियों को होते हैं, जिन्हें शोफादि गर्भावस्था से ही उपस्थित हों पर गर्भजन्य शोफ को विषमयता का लक्षण मान सकते हैं।

(३) गर्भिणी की व्याधियों की विशिष्ट चिकित्सा का वर्णन करते समय शोफ चिकित्सा का वर्णन[3] तथा अरिष्ट लक्षणों में भी शोफ का नामोल्लेख महर्षि काश्यप ने किया है[4]।

i) Hārīta has included *śopha* in the list of complications during pregnancy.

ii) Vāgbhaṭa has included mild edema of fee: as a sign of pregnancy, and edema is said to devolop after abortion or abnormal labour also, but these do not denote toxaemia, however, in the etiology of the disease *śopha* Caraka and Vāgbhaṭa have included *garbha* (pregnancy) also as a cause of endogenous edema or in other words pregnancy can cause pathological edema.

iii) Specific treatment of *śopha* has been given by Kāśyapa. *Śopha* is also included in the list of features denoting bad prognosis.

---

१. हा० सं० तृतीय ५१/१ (पृष्ठ २४१)

२. (अ) निजाः पुनः ····· लवणातिभक्षणाद्गर्भसंपीडनादामगर्भप्रपतनात् प्रजातानां च मिथ्योपचाराद्दुर्दोषदोषत्वाच्च शोफाः प्रादुर्भवन्ति ····· ॥ (च० सं० सू० १८/६)
(आ) शुद्धयामयाभक्त ···· विषमा प्रसूति। ···· निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः।
(च० सं० चि० १२/५ व ६ एवं मा० नि० ३६/४ व ५)
(इ) व्याधिकर्मौपवासादि ····· अर्शो जठरप्रदरज्वराः। ····· गर्भवीसर्पपाण्डवः॥ (अ० सं० नि० १३/२७ से ३०)
(ई) श्वासकासातिसारार्शो जठरप्रदरज्वराः। ····· गर्भवीसर्पपाण्डुताः॥ (अ० ह० नि० १३/२७,२८)

३. का० सं० चि० २/५; खि० १०/१२६; हा० सं० तृती० ५१/१३ एवं यो० र० स्त्री० रो० चि० (पृष्ठ २८४)

४. का० सं० खि० १०/१६२ (पृष्ठ २८७)

Scanned with CamScanner

(आ) आक्षेप (Convulsions)

(१) महर्षि काश्यप ने गर्भिणी के आक्षेपक एवं अपतानक की विशिष्ट चिकित्सा का निर्देश किया है[१], यद्यपि यहाँ पर स्पष्ट रूप से नहीं लिखा कि ये आक्षेप गर्भ के ही कारण होते हैं फिर भी गर्भिणी में वर्णित होने के कारण इस वर्णन को गर्भजन्य विषमयता का अप्रत्यक्ष उदाहरण मान सकते हैं।

(२) महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने असाध्य मूढ़गर्भा के अनेकों लक्षणों में आक्षेप को भी एक लक्षण माना है[२]। यद्यपि यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि ये आक्षेप गर्भजन्य विषमयता के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से भी हो सकते हैं, फिर भी असाध्यता का लक्षण होने के कारण इसे भी गर्भजन्य विषमयता के अन्तर्गत ले सकते हैं, क्योंकि यह तो प्रमाणित तथ्य है कि प्रसव के समय प्रारम्भ होने वाले आक्षेप प्रसव के अवरोधकारक एवं मातृ तथा शिशु के लिए अधिकांशतः घातक होते हैं।

i) Kāśyapa has prescribed treatment for convulsive disorders.

ii) Suśruta and Vāgbhaṭa have included *ākṣepa* (convulsion) as a sign of bad prognosis in cases of obstructed labour.

(इ) भ्रम एवं मूर्छा (Giddiness and unconsciousness)

मूर्छा लक्षण का गर्भावस्था में स्पष्ट उल्लेख केवल महर्षि वाग्भट ने व्यक्तगर्भा के लक्षणों में किया है, जो सम्भवतः गर्भावस्था में नाड़ीवह संस्थान के उत्तेजित होने से कभी-कभी उत्पन्न क्षणिक मूर्छा का वर्णन हैं, न कि गर्भजन्य विषमयता का। विपरीत इन्द्रियार्थ संयोग तथा भ्रम आदि लक्षणों को भी महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने मूढ़गर्भ की असाध्यता के लक्षणों के अन्तर्गत वर्णित किया है[३]। गर्भजन्य विषमयता में आक्षेप आने के पहिले कभी-कभी स्त्री को द्विदृष्टि तथा आँखों के समक्ष चिनगारियों की सी अनुभूति होती है जो विपरीतेन्द्रियार्थ संयोग से होता है, अतः इस विपरीतेन्द्रियार्थ संयोग को भी गर्भजन्य विषमयता में समाभूत कर सकते हैं।

महर्षि काश्यप ने गर्भिणी को नष्ट करने वाले अरिष्ट लक्षणों में संज्ञानाश होना अरिष्ट लक्षण माना है; जिसे गर्भजन्य विषमयता से उत्पन्न संज्ञानाश या मूर्छा भी ले सकते है[४]। जातहारिणी के वर्णन में मोहिनी जातहारिणी के लक्षणों में भी गर्भस्राव या पातादि के साथ मूर्छा होना तथा क्रोशना में उदरस्थ गर्भ के कारण उपद्रवों का वर्णन है, जिसे भी गर्भजन्य विषमयता का अप्रत्यक्ष संदर्भ मान सकते है[५]।

Mūrchā (unconsciousness) has been included under general signs of pregnancy, which is probably description of syncopal state occurring due to transitory hypotension, not related to toxaemia of pregnancy. In the list of complications of obstructed labour, giddiness and abnormal perception of sense organs have been included, probably this refers to diplopia, scintillating scotomata etc. felt by woman suffering from toxaemia of pregnancy.

Kāśyapa has referred unconsciousness as a sign of bad prognosis and *mūrchā* as a symptom of *mohinī jātahāriṇī*.

१. का० सं० खि० १०/१११ से ११७ (पृष्ठ २७८, २७९)।
२. सु० सं० नि० ८/६; अ० सं० शा० ४/३१ (देखें मूढ़गर्भान्तर्गत)
३. सु० सं० नि० ८/६; अ० सं० शा० ४/३१ (देखें मूढ़गर्भान्तर्गत)
४. का० सं० खि० १०/१७०, १७१ (पृ० २८९)
५. का० सं० ६ (अग्रिम पृष्ठों में वर्णित)

गर्भजन्य विषमयता में गर्भपात का निर्देश (Indication for abortion in toxaemia of pregnancy)

महर्षि सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि यदि विकार असह्य या असाध्य हो जाय तो गर्भपात कराना श्रेयस्कर है। (कहीं) गर्भिणी की स्थिति और न बिगड़ जाय या मृत्यु न हो जाय, अतः प्राप्तकाल (चिकित्सा करने के लिए उपलब्ध थोड़े समय का) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए[१]। टीकाकार डल्हण ने शस्त्र, मन्त्र आदि चिकित्सा के असिद्ध होने पर गर्भिणी की रक्षा के लिए गर्भ के च्यावन का निर्देश देते हुए गर्भपात से गर्भिणी के जीवन की रक्षा का वर्णन दिया है[२]।

शस्त्र एवं मन्त्र के बाद का 'आदि' शब्द औषधि-प्रयोग का द्योतक है। यद्यपि यह श्लोक मूढ़गर्भ की गर्भाङ्ग छेदन चिकित्सा के बाद ही आया है, फिर भी इसका मूढ़गर्भ से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता, क्योंकि महर्षि सुश्रुत ने गर्भपात शब्द का प्रयोग पाँचवे या छठे मास में पतित होने वाले गर्भ के लिए किया है। मूढ़गर्भता की स्थिति सातवें मास या उसके बाद होती है। टीकाकार डल्हण का शस्त्र-मन्त्र आदि स्पष्टीकरण भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि किसी भी स्थिति के गर्भ को निकालने की यही तीन विधियाँ हैं इन तीनों के असफल होने पर अन्य कोई विधि शेष ही नहीं रहती "प्राप्तकाल" शब्द के प्रयोग से ऐसा आभास होता है, कि यह आततायिक व्याधि का, जिसमें चिकित्सा में तनिक भी विलम्ब से गर्भिणी-मृत्यु का भय हो, वर्णन है। व्याधि की गम्भीरता एवं निवारणार्थ गर्भपात का आदेश होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह गर्भजन्य तीव्र विषमयता का वर्णन है।

Suśruta says that if the trouble is intolerable or incurable, abortion should be induced, lest the condition of woman deteriorates further or even she dies, the available short time should not be wasted.

Dalhaṇa has explained this verse that in event of failure of treatment with *śastra* (instruments) and *mantra* etc. the abortion should be induced to protect the life of pregnant woman. The word *'ādi'* i.e. etc. used after *mantra*, refers to use of drugs. This verse follows indications of destructive surgery for *mūḍha garbha* (obstructed labour), but does not appear to be related to it, because Suśruta has used term *garbhapāta* for expulsion of fetus in fifth or sixth month, while obstruction in the process of labour occures after this period i.e. seventh month onwards. Explanation of Ḍalhaṇa i.e. failure with the treatment with instrument, *mantra* etc. (drugs) does not appear to be proper, because these are the only methods to terminate pregnancy of any duration. The emphasis on available short time indicates acuteness of disorder. Considering acuteness and seriousness of disorder and indication of abortion it may be considered as a description of toxaemia of pregnancy.

गर्भिणी को आक्रांत करने वाली रेवती या जातहारिणी (Revatī or jātahāriṇīes afflicting a pregnant woman)

महर्षि काश्यप ने अपनी संहिता के कल्पस्थान में एक रेवतीकल्प अध्याय का वर्णन किया है। यह रेवती स्त्री को विभिन्न अवस्थाओं (रजःस्वला एवं गर्भावस्थादि) में आक्रान्त कर विकार उत्पन्न करती है। रेवती की उत्पत्ति का एक

१. अविषह्ये विकारे तु श्रेयो गर्भस्य पातनम्। न गर्भिण्या विपर्यासस्तस्मात् प्राप्तं न हापयेत्॥
(·····विपर्य्यास प्राप्तकालं····· - पा० भे० सी० के सेन कलकत्ता प्रकाशन) (सु० सं० चि० १५/११)

२. शस्त्रमन्त्रादितोपायेनासिद्धौ गर्भच्यावनं गर्भिणी रक्षार्थं कार्यमित्याह - अविषह्य इति। सोढुमशक्ये विकारे व्याधौ सति किं कर्तव्यमित्याह-श्रेयोगर्भस्येति श्रेयो भवतीत्यर्थः। गर्भपातनफलमाह - न गर्भिण्या विपर्यास इति; विपर्यास मृत्युरित्यर्थः। तस्मात् प्राप्तकालं न हापयेन्नोल्लङ्घयेदित्यर्थः॥ (सु० सं० चि० १५/११ की डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

बहुत ही रोचक आख्यान मिलता है। प्रजापति ने सर्वप्रथम काल को उत्पन्न किया। फिर देव, असुर, पिता, मनुष्य, सात ग्रामीण एवं वन्य पशु तथा औषधियों एवं वनस्पतियों की रचना की तथा बाद में स्वेच्छा से क्षुधा की उत्पत्ति की, जो क्षुधा प्रजापति में ही प्रविष्ट हो गई। क्षुधा से प्रतिकार के लिए प्रजापति ने औषधि-सार का सेवन किया एवं क्षुधा से मुक्त हो गया। तृप्त होकर प्रजापति ने क्षुधा का काल में आधान कर दिया। क्षुधित काल ने देवताओं एवं असुरों का भक्षण प्रारम्भ किया। देवासुरों की प्रार्थना पर प्रजापति ने अमृत का उपदेश किया एवं देवताओं ने उसका सेवन कर काल एवं क्षुधा दोनों को पराजित किया। पराजित होकर काल ने प्रजापति से इन भूतों को छीन लिया एवं असुरों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। दीर्घजिह्वी नामक असुर कन्या ने देवताओं का संहार प्रारम्भ कर दिया। देवताओं की प्रार्थना पर कार्तिकेय ने रेवती को भेजा जिसने शालावृकी[1] (स्यारनी) का रूप धारण कर असुरों की सेना का संहार प्रारम्भ किया एवं सर्वप्रथम दीर्घजिह्वी का ही भक्षण कर लिया तथा शकुनि का रूप धारण कर उल्का, विद्युत, पत्थरों एवं आयुधों की वर्षा करने वाली आदि अनेकों रूपों वाली बनकर असुरों को पराजित किया। संहार किए जाने हुए असुर मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के गर्भों में स्थित हो गए। रेवती ने उन्हें गर्भों में देख लिया एवं जातहारिणी बनकर उनका संहार किया। यह अनेक रूपों वाली जातहारिणी रेवती, पिलिपिच्छिका, रौद्री तथा वारुणी आदि नामों से कही जाती है। यह स्कन्द की आज्ञा से सम्पूर्ण जातियों में उत्पन्न हुए अधार्मिक व्यक्तियों को मूढ़ कर देती है, दुष्टों का नाश करती हैं। संपर्क होने पर दिव्य चक्षुओं से ही दिखाई देती हैं तथा धर्म ही उसकी निवृत्ति का उपाय है[2]।

Revatī produces various abnormalities by afflicting the woman during her various stages i.e. menstruation, pregnancy etc. Kāśyapa has narrated a very interesting story regarding birth of *revatī*. *Prajāpati* initially created *kāla* followed by *deva, asura,* father, human being, seven domestic and wild animals alongwith medicinal herbs and plants. After all this he created *kṣudhā* (hunger) which entered in his own body. To get rid of this hunger he consumed essence of herbs and plants. After getting satiated, he transferred this hunger to the *kāla*. The hungry *kāla* started eating *devas* and *asuras*. Pleased with the prayers of *devas* and *asuras*, *prajāpati* preached them about *amṛta* (nectar). *Devas*, after using this nectar defeated both *kṣudhā* and *kāla*. Defeated *kāla* snatched all above things from *prajāpati* and then *asuras* attacked *devas*. One *asura* daughter named *dīrghajihvī* started killing *devas*. On the prayers of the *devas*, *kārtikeya* sent *revatī*, Who impersonating a she jackal first of all killed *dīrghajihvī* and further started killing the army of *asuras*. Lateron assuming the shape of vulture started showering meteor, thunder-bolt, stones and weapons. Getting defeated, these *asuras* entered the embryos of human and other animals. *Revatī* assuming the name of *jātahāriṇī* killed these *rākṣasas* there also. This *jātahāriṇī* is known by names of *revatī*, *pilipicchikā*, *raudrī* and *vāruṇī*. By the permission of *skanda*, she afflicts the impious or immoral persons of all the castes and kills villainous or unrighteous persons. She is seen by divine vision and religious virtues are the only remedies.

जातहारिणी के द्वारा आक्रमण (नाश) योग्य-स्थिति एवं काल (Appropriate condition and period for seizure by jātahāriṇī)

तस्माज्जातहारिणी पुष्पं हन्ति, वपुश्च हन्ति, गर्भांश्च हन्ति, जातांश्च हन्ति, जायमानांश्च जनिष्यमाणांश्च हन्ति। यद्धवत्यासुरमधार्मिकाणामपत्यमधर्मोपहतं विशेषेण ॥ ७॥ (का० सं० क० ६)

१. शालावृक-बन्दर, स्यार या कुत्ता (अमरकोष); भेड़िया, बिल्ला, कुत्ता, स्यार (मो० वि०); हिरण एवं बन्दर भी (आप्टे)

२. का० सं० कल्पस्थान ६ / १ से ७॥ (क० सं० के पृष्ठ ३५१ से ३५३)

रजस्वलां गर्भिणीं वा प्रसूतां वा कुटीगताम्।
स्वियमाविशते क्रुद्धा त्रिषु कालेषु रेवती ॥ ६५॥ (का० सं० क० ६)

वह जातहारिणी पुष्प (आर्तव) का नाश करती है, वपु (शरीर या यहाँ शरीरपिण्ड), गर्भ, उत्पन्न हो गए, उत्पन्न होते हुए तथा उत्पन्न किए जाने वाले प्राणी को नष्ट करती है। विशेष रूप से असुरों एवं अधार्मिक व्यक्ति के पुत्रों तथा अधर्म युक्त प्राणियों को नष्ट करती है।

क्रुद्ध हुई रेवती तीनों कालों में (आयु के तीनों काल यथा बाला, मध्यमा एवं वृद्धावस्था तथा दिन एवं रात के तीनों काल यथा प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त), रजस्वला, गर्भिणी, प्रसूता तथा कुटी में स्थित (कुटीप्रावेशिक रसायन प्रयोग करने वाली या अन्तर्गृह में बैठी हुई) स्त्रियों में प्रवेश करती है।

Jātahāriṇī causes disapperance of *puṣpa* (menstruation), destructs body, fetus, born/getting birth/to be born creatures specially *asuras*, non religious persons or their children.

Angry *revatī* afflicts a menstruating, pregnant, puerperal or *kuṭīgata* (staying inside a hut) woman during all the three periods (childhood, middle age and old age and also in beginning, mid and end of the day and night).

जातहारिणी के भेद (Classification)

जातहारिणी के साध्यासाध्यता एवं संक्रमण की दृष्टि से भेद किए गए हैं।

(१) साध्यासाध्यता की दृष्टि से भेदः-

शास्त्रतस्त्रिविधामाहुर्मुनयो जातहारिणीम् ॥ ३०॥
साध्यां याप्यामसाध्यां च ..... । (का० सं० क० ६)

शास्त्रों के अनुसार मुनियों ने तीन प्रकार की जातहारिणी कही हैं साध्य, याप्य एवं असाध्य।

(२) संक्रमण की दृष्टि से भेदः–

अथ खलु वृद्धजीवक ! त्रिविधैव जातहारिणी प्रोच्यते लोकभेदतः-दैवी, मानुषी, तिरश्चीनेति ॥ ६२॥
(मानुषी भेद) .....। अथ खलु वृद्धजीवक। इमाः स्त्रियश्चतुर्विधा जातहारिण्याविश्य स्त्रियमत्र प्रविशति।
वर्णां; वर्णान्तरां लिङ्गिनीं कारुकीमिति। ..... ॥ ६८॥

अत ऊर्ध्वं वृद्धजीवक ! तिरश्चीं जातहारिणीमनुव्याख्यास्यामः-पञ्चविधा होषा प्रोच्यते। तद्यथा-शकुनी, चतुष्पदी, सर्पा, मत्सी, वनस्पतीरिति ॥ ६९॥ (का० सं० क० ६)

हे वृद्धजीवक ! लोकभेद के अनुसार तीन प्रकार की जातहारिणी कही जाती हैं, दैवी, मानुषी एवं तिरश्चीन।

मानुषी में वर्णा, वर्णान्तरा, लिंगिनी तथा कारुकी नामक चार प्रकार की जातहारिणि प्रवेश करके अन्य स्त्रियों में प्रविष्ट होती हैं।

तिरश्चीन जातहारिणियाँ पाँच प्रकार की कही गई है:-शकुनी, चतुष्पदी, सर्पा, मत्सी एवं वनस्पती।

It is classified in two ways :

A) On the basis of prognosis : (i) *Sādhya* (curable), (ii) *Yāpya* (easily relapsable), (iii) *Asādhya* (incurable).

Scanned with CamScanner

B) On the basis of mode of transmission :

i) *Daivī* (devine).

ii) *Mānuṣī* (human) : It is subclassified into four i. e. *Varṇa, Varṇāntarā, Liṅginī* and *Kārukī.*

iii) *Tiraścīna* (animals) : It is subclassified into five i.e. *Śakunī* (birds), *Catuṣpadī* (four leged animals), *Sarpā* (reptiles), *Matsī* (fishes) and *Vanaspatī* (plants).

जातहारिणी प्रवेश के सामान्य कारण (Causes of affliction by jātahāriṇī)

(१) स्त्री के अपचार से (Due to misdeeds of woman)

अथ खलु या स्त्री त्यक्तधर्ममङ्गलाचारशौचदेवक्रिया देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसद्द्वेषिणी, दुराचाराऽहंकृताऽनवस्थिता वैरकलिमांसहिंसानिद्रामैथुनप्रियाचण्डाऽरुन्तुदा दन्दशूका वावदूका विगतसाध्वसाऽथोऽकस्मात्प्रहसनाऽथोऽकस्मात्प्ररोदनाऽथोऽकस्माच्छोचनाऽनृतवादिनी घस्मराऽथो आहुः सर्वाशिनी स्वमतकारिणी पथ्यवचनभोजनत्यागिनी भृशमश्रद्दधाना परविजातोपहिंसिका स्वार्थपरा परार्थविलम्बिनी प्रतीपा भर्तरि, पुत्रेषु च निःस्नेहा, तैश्च नित्यशपथा, स्वश्वसुरननन्दादेवरानृत्विजमन्यान् वा तत्स्थानीयान्महतो वाऽवमन्यते तथैनामन्युना निर्दहन्त्यभिशपन्ति वा, सपत्नी वा दुःशीला पापचक्षुरभिध्यायति, मन्त्रासदौषधकर्मभिर्वैनामभिचरति, मूर्ध्नि चाभिहन्ति बालं, न चैषां सुखदुःखज्ञा भवति, मित्रद्रोहिणी ह्यमङ्गलवादिनी शान्तिहोमजपदानबलिकर्मस्वस्त्ययनावष्टीवनपरिष्वजनपरिवर्जिता स्थानेष्वपि भवति, तस्या एभिः कर्मभिरन्यैश्चाशुभैः पूर्वकैश्चेह कृतैरतिपानभोजनस्वप्नव्यायामसेवनैश्च छिद्रेष्वेतेष्वधर्मद्वारेषु जातहारिणी सज्जते। अथो पतिरस्या एवंशीलो भवति। तयोरसाध्यां जातहारिणीं विद्यात्। अथो दम्पत्योरेकतरोऽधार्मिको भवति कृच्छ्रा भवति। उभयोस्तु धार्मिकयोरार्जवयोरनभिमानिकयोररोगयोश्च प्रजा वर्धते। यदा वा स्त्री प्रथमगर्भिणी म्रियमाणापत्याभिरालिभिर्वाऽन्याभिरचौक्षाभिरशुभाभिरसतीभिरमानुषपरिगृहीताभिर्जातहारिणीसक्ताभिर्वा संयोगमुपैति, सह भुङ्क्ते, सह स्नाति, वस्त्रालङ्कारं वा ददाति, तासां स्नानमूत्रबलिभूमीराक्रामति, विशेषादार्तवोपहतानि चैतानि केशलोमनखोद्वर्तनकजीर्णवस्त्रावकर्तनान्याक्रामति, भोजनशेषं पानशेषमौषधशेषं गन्धशेषं पुष्पशेषं जीर्णोपानहौ वा दधाति, तदा जातहारिणी सज्जते॥ यदा चैनां प्रथमगर्भिणीं वा दर्शनीयां वपुष्मतीमरोगां पीनश्रोणिपयोधरोरुबाहुवदनामभिजायमानसौभाग्यां सुकेशीं विशालरक्तान्तलोचनामभिवर्धमानलोमराजिं स्निग्धकरचरणनखदृष्टित्वचमतिसुकुमारीमक्लेशसहामनायासपरमां कालयोगादभिवर्धमानगर्भामुपचीयमानवपुषमाप्यायमानपयसं स्त्रियं गर्भिणीं दृष्ट्वा दुरात्मनोऽन्वीक्षन्ते न चास्याः शान्तिकर्म क्रियते तदाऽस्या जातहारिणी सज्जते। एतस्मात् कारणात् पुत्रीया काम्येष्टिरहन्यहन्युक्ता, सा ह्यस्याः पापं शमयति तस्माज्जनन्याऽपि सह भोक्तुं नार्हति गर्भिणी॥ ८॥

विशेषात् प्रथमे गर्भे प्रमादं चात्र वर्जयेत्॥ (का० सं० क० ६/८ व ९)

जो स्त्री धर्म, मंगलाचार, शौच (पवित्रता) एवं देवक्रिया (देवपूजा) रहित या न करने वाली, देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध एवं सज्जनों से द्वेष करने वाली, दुराचारिणी, अहंकार युक्त, अस्थिर चित्तवाली; बैर, कलि (लड़ाई, झगड़ा) मांस, हिंसा, निद्रा एवं मैथुन को चाहने वाली, चण्डा (प्रचण्डा), अरुन्तुदा (वेदनोत्पादक आघात करने वाली), दन्दशूका (सर्प की तरह डसने वली), वावदूका (बातूनी), विगत साध्वसा (भय रहित); अकस्मात् हसने, रोने, शोक करने या झूठ बोलने वाली; घस्मरा (अधिक खाने वाली), सर्वभक्षी, स्वेच्छाचारिणी, पथ्य वचन एवं भोजन त्याग करने वाली, अत्यधिक अश्रद्धा करने वाली, दूसरे से उत्पन्न (दूसरे के) पुत्र की हिंसा करने वाली, स्वार्थी, परार्थ में विलम्ब करने वाली, पति प्रतिकूला, पुत्र से स्नेह न करने वाली तथा नित्य उनको (पति एवं पुत्र की) शपथ लेने वाली; श्वसुर, ननद, देवर, ऋत्विज या अन्य उन्हीं के सदृश म..{ व्यक्तियों का अपमान करने वाली, इन्हें क्रोधपूर्वक मारने या शाप देने वाली, सपत्नी से दुर्व्यवहार

एवं उसके लिए पापयुक्त विचार करने वाली, उसका मंत्र तथा दूषित औषधियों एवं दूषित कर्मों से उपचार करने वाली होती है, बालक को सर पर मारती है, उसके (बालक के) सुख-दुःख का ज्ञान नहीं रखती; मित्र द्रोहिणी, अमंगल वादिनी होती है, यथोचित स्थानोपलब्धि पर भी शान्ति, होम, जप, दान, बलि, स्वस्त्ययन, ग्रीवन, चुम्बन तथा आलिंगन से रहित होती है उस स्त्री को इन सभी कर्मों अथवा पूर्वजन्म या इस जन्म के अशुभ कर्मों, अतिपान, अतिभोजन, अतिस्वप्न एवं अतिव्यायाम सेवन से उत्पन्न छिद्रों के द्वारा (दोषों के प्रकोपणादि कारणों से) जातहारिणी प्रवेश करती है।

यदि पति भी इन्हीं आचरणों वाला हुआ, तो जातहारिणी असाध्य होती है। यदि दोनों में से एक अधार्मिक होता है तो कृच्छ्रसाध्य होती है। यदि दोनों ही (पति-पत्नी) धार्मिक, ईमानदार, अभिमान रहित एवं रोग रहित हों तो प्रजा (सन्तान) की वृद्धि होती है।

यदि प्रथम गर्भावस्था में वह स्त्री म्रियमाण अपत्य (जिसकी सन्तान मर जाती है) वाली सखी अथवा अन्य अचौक्ष (अपवित्र या मलिन) अशुभ, असती (चरित्रहीन), पति परित्यक्ता या जातहारिणी आक्रांत स्त्री के साथ संयोग करती है, साथ खाती है, साथ स्नान करती है, वस्त्राभूषण देती है, उसके स्नान, मूत्र या बलिभूमि को आक्रांत करती तथा विशेषरूप से उनके आर्तव से उपहत (प्रयुक्त कपड़े), केश, लोम, नख, उद्वर्तनक; जीर्ण वस्त्र तथा अवकर्तन (कटे हुए नाखून एवं बाल आदि) आदि पर आक्रमण करती है, उनके भोजन, पान, औषध, गन्ध एवं पुष्प के शेष का सेवन करती है, पुराने जूतों का धारण करती है तो उसे जातहारणी आक्रांत करती है।

जब प्रथम गर्भावस्था में गर्भिणी दर्शनीय शरीर वाली, रोग, रहित या स्वस्थ, मांसल या उन्नत श्रोणि, स्तन, उरु एवं बाहु वाली, सुन्दर मुख वाली, सौभाग्य वाली, सुन्दर केशों वाली, विशाल एवं रक्तान्त (अन्तःभाग रक्तवर्ण का) नेत्र वाली; विवर्धमान रोमराजि वाली; स्निग्ध कर, चरण, नख, दृष्टि एवं त्वचा वाली; सुकुमार, क्लेश सहने में असमर्थ, अत्यधिक परिश्रम न कर सकने वाली होती है एवं कालयोग (समय के प्रभाव से) से जिसका गर्भ बढ़ रहा है, शरीर का उपचय (वृद्धि) हो रहा है, एवं स्तन्य की उत्पत्ति हो रही है, ऐसी गर्भिणी को देखकर दुष्ट लोग ईर्ष्या करते हैं (नजर लगा देते हैं)। यदि उसका शान्ति कर्म न किया जाय तो (उस गर्भिणी को) जातहारिणी आक्रान्त कर देती है।

इसलिए पुत्रीय कामेष्टि यज्ञ प्रतिदिन करने का विधान दिया गया है इससे पापों का नाश हो जाता है। गर्भिणी स्त्री को अपनी माता के साथ भी भोजन नहीं करना चाहिए, विशेषकर प्रथम गर्भ में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

Vulnerable woman is that, who does not perform religious rites, auspicious ceremonies, piousness or worship to the god; is jealous of deities, cow, *brāhmaṇa,* preceptor, old and respectable persons; is dissolute, egoistic, fickle; always prefers enimity, strife, meat eating, murders or destruction, sleeping and sex pleasure; is ferocious; inflicts painful wounds; is mordacious, garrulous and fearless; all of sudden laughs, weeps, becomes sad or speaks lies; is voracious, omnivorous, way-ward; who gives up beneficial diet and preachings; does too much distrust; kills the child born of others; is selfish, delays the works of others; opposes her husband, does not love her son, daily takes their oath; insults father-inlaw, sister-inlaw, brother-inlaw or preceptor; angrily hits and curses them; keeps sinful ideas for co-wife and treats her with *mantras* (hymns), vitiated medicines and other bad deeds; hits a child on the head and does not care about his pleasure or pain; keeps malice for friends; always speaks inauspicious words; who does not perform pacification, oblations in sacred fire, muttering of prayers, donations or charities, sacrifices, benediction, spitting, kissings or embracings inspite of availability of proper place. *Jātahāriṇī* enters inside the body of woman through pores created due to above mentioned deeds, effects of deeds of previous life, misdeeds, or over eating, drinking, sleeping and exercise.

Scanned with CamScanner

If husband also practices similar acts, the *jātahāriṇī* becomes incurable. If only one partners is unrighteous, the *jātahāriṇī* is difficult to be cured, however, if both the partners are righteous, honest and free from pride and diseases, the progeny progresses.

If a woman during her first pregnancy maintains close contact with her friend who has lost her progeny or other woman who is impure or dirty, inauspicious, unchaste, divorcee or afflicted with *jātahāriṇī;* eats, bathes and exchanges garments and ornaments with them; attacks their bathing, urination or sacrificial places; specifically attacks their scalp and body hair, nails, unguents, old cloths and cuttings (cut nails, hair etc.), (cloth) soaked with menstrual blood; uses their left-over food, medicines, perfumes and flowers and wears their old shoes, then *jātahāriṇī* afflicts her.

When a woman during her first pregnancy has beautiful body, is healthy, has corpulent hips, breasts, thighs along with arms and good looking face; possesses good luck, beautiful hair, big eyes with redness in inner corners and increasing *romarāji* (linea nigra); has unctuous or glistening palm, foot, nails, vision and skin; is delicate, can not withstand troubles or pain, can not work hard; whose fetus is progressing well with time, body is developing properly, the milk secretion is being formed, then the wicked persons have spite or see her with evil eye. If pacificative measures are not adopted then the *jātahāriṇī* afflicts the pregnant woman.

Due to this very reason daily performance of *putrīyakāmeṣṭi yajña* has been advised, this wipes the effect of sins. The pregnant woman should not eat even with her own mother, specially negligence should not be done during the first pregnancy.

(२) पुरुष के या अन्य अपचार से (Due to misdeeds of husband and other causes)

बहुयाज्यस्य विप्रस्य संप्रसक्तस्य याजने ॥ ९॥
विदुषोऽपि स्वदोषेण सज्जते जातहारणी। आक्षेप्ता यश्च वादेषु दाम्भिकोऽहङ्कृतश्च यः ॥ १०॥
सर्वे ते जातहारिण्या भक्ष्यभूताः सयाजकाः। रात्रौ यदा गतो मार्गात् पतिः पांसुलपादकः ॥ ११॥
स्पृशेदृतौ वा गर्भे वा तदाऽऽविशति रेवति। गृहीतां जातहारिण्या सेवित्वा यः स्त्रियं पतिः ॥ १२॥
भार्यामुपैति तत्कालं सज्जते जातहारिणी। गृहीतं जातहारिण्या गृहं नित्यं च वर्जयेत् ॥ १३॥
आददानं ततः किंचिद्गृह्णीते जातहारिणी। वधभेदाङ्गकरणैर्गवां बन्धनदोहनैः ॥ १४॥
गोपालस्य प्रजा हन्ति गोमाता जातहारिणी। महिष्युष्ट्रअजपालानामेवमेव प्रजाक्षयम् ॥ १५॥
करोत्यधर्मसंजाता प्रसक्ता जातहारिणी। ब्रह्मस्वहारिणां लोके विषमाणां दुरात्मनाम् ॥ १६॥
तस्कराणां शठानां च प्रजा हन्युग्ररेवती। रसनाः पापकार्याणां दुष्कुला भिन्नसेतवः ॥ १७॥
ये भवन्त्यनयप्राया निर्दयाः सर्वजातिषु। अरक्षिणस्तीक्ष्णदण्डा वृद्धानां शासनातिगाः ॥ १८॥
अनपेक्षितवृत्तान्ता अधर्मस्य प्रवर्तकाः। राज्ञो यस्य च दौर्बल्यात् क्षयं यान्तीह च प्रजाः ॥ १९॥
गोब्राह्मणं विशेषेण हन्ति तं जातहारिणी। एवमेव दुरात्मानो राजमात्रा नृपाज्ञया ॥ २०॥
प्रजा यदा प्रबाध्यन्ते हन्ति ताञ्जातहारिणी। वणिक् पण्योपघाती यो यश्चाप्यस्य प्रतीक्षकः ॥ २१॥
अतिवार्धुषिकश्चैव हन्यन्ते बहुरूपया। कन्याया यश्च भूमेश्च हिरण्यस्याश्ववाससाम् ॥ २२॥
कुर्वन्ति येऽनृतान्येषां (घातिनी) जातहारिणी। सन्ध्ययोरप्सु रजसि शून्यदेवालयेषु च ॥ २३॥
मैथुनं यान्ति ये मोहाद्धन्ति ताञ्जातहारिणी। ··· ··· ··· ··· ··· ···॥ २४॥

न चाधर्मंमृते नारीं विशते जातहारिणी। मातुः पितुः सुतानां च साऽधर्मेण प्रवर्तते ॥ ६६॥
····· ·····मातृणां च प्रजाक्षयम्। आयुः क्षयं च बालानां करोत्येषा स्वकर्मजम् ॥ ६७॥
(क० सं० क० ६)

बहुत यज्ञ किए हुए एवं बहुत यज्ञ कराने में व्यस्त विद्वान व्यक्ति को भी जातहारिणी स्वदोष से ही आक्रान्त करती है। विवाद में बहुत आक्षेप करने वाला, दम्भी, अहंकारी तथा याजक सभी जातहारिणी द्वारा भक्ष्य होते हैं।

रात्रि में मार्ग से चलकर आया हुआ पति पैरों में धूल लगे हुए ही अथवा ऋतुकाल या गर्भावस्था में यदि स्त्री को स्पर्श करता है तो स्त्री को जातहारिणी प्रवेश कर जाती है।

जातहारिणी से आक्रान्त (अन्य) स्त्री का सेवन करके पति जब तत्काल ही पत्नी के पास जाता है तो उसे जातहारिणी आक्रान्त कर देती है।

जातहारिणी से आक्रान्त घर का सदा त्याग कर देना चाहिए, उस घर में से कुछ भी लेने वाले व्यक्ति को जातहारिणी आक्रान्त कर देती है।

गौओं के वध, अंगभेद, बन्धन तथा दोहन इत्यादि कारणों से गोमाता जातहारिणी ग्वाले (गौओं को पालन करने वाले) की सन्तान का हनन कर देती है। इसी प्रकार अधर्म से उत्पन्न जातहारिणी महिषी, उष्ट्री एवं अजा का पालन करने वाले व्यक्तियों की भी सन्तान को नष्ट कर देती है।

उग्र रेवती (अति उग्र स्वरूप वाली रेवती) लोक में ब्रह्मस्व (ज्ञान) का हरण करने वाले, विषम, दुरात्मा, तस्कर तथा शठ लोगों की सन्तान को नष्ट कर देती है।

पाप कार्यों में रत, नीच कुल वाले, मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, अन्याय करने वाले, सभी जातियों के प्रति निर्दयी, अरक्ष या रक्षा से विरहित, तीक्ष्ण दण्ड धारण करने वाले, वृद्धों के शासन को न मानने वाले व्यक्तियों को अथवा अनपेक्षित वृत्तान्त कहने वाले, अधर्म के प्रवर्तक व्यक्ति तथा उस राजा को जिसकी दुर्बलता के कारण प्रजा विशेष कर गौ एवं ब्राह्मण का क्षय हो, जातहारिणी नष्ट कर देती है।

इसी प्रकार जब दुरात्मा व्यक्ति, उसी प्रकार (दुरात्मा) के राजा की आज्ञा से प्रजा को कष्ट पहुँचाते हैं, तो उन्हें जातहारिणी नष्ट कर देती है।

जो वणिक बाजार का व्यतिक्रम करता है अथवा इसी का अनुगामी है, तथा जो धन की वृद्धि का इच्छुक है, वह अनेक रूपों वाली जातहारणी द्वारा विनष्ट हो जाता है।

कन्या, भूमि, स्वर्ण, अश्व तथा वस्त्रों के विषय में जो (व्यक्ति) अनृत (असत्य) व्यवहार करते हैं, उन्हें जातहारिणी नष्ट कर देती है।

जो व्यक्ति अज्ञानवश दोनों सन्ध्याओं में, जल में (जल स्थान अर्थात् नदी या तालाब में), धूल में एवं शून्य देवालयों में मैथुन करते हैं उन्हें जातहारिणी नष्ट कर देती है।

यह जातहारिणी माता, पिता अथवा पुत्र के अधर्म के बिना नहीं प्रवेश करती। अपने कर्मों के कारण माताओं की प्रजा का तथा बालकों की आयु का क्षय करती है।

An erudite who had performed several *yajñas* and is still busy in *yajñas* is attacked by *jātahāriṇī* due to his own mistakes. All the persons who either interrupt too much in discussions or are hypocrite, egoistic and sacrificer are vulnerable for attack by *jātahāriṇī*.

If a husband having walked on a path and having his feet covered with dust touches his wife or else touches (has sexual relation) her during menstruation or pregnancy, the

Scanned with CamScanner

jātahāriṇī attacks the woman.

When a man goes to his wife immediately after having copulation with a woman seized with *jātahāriṇī*, the *jātahārini* attacks her (his wife).

A house afflicted with *jātahārini* should always be abandoned. *Jātahāriṇī* attacks the persons taking any thing from that house.

Due to killing, injuring the body parts, tethering and milking done by cow-herd the *gomātā jātahariṇi* kills his progeny. Similarly *jātahāriṇī* born due to unrighteousness kills the progeny of keepers of she buffalow, camel and goat.

Virulent *revatī* destroys the progeny of those who carry the knowledge (of god) from society, are abnormal, evil natured, thief and rogue.

Jātahāriṇī kills those who are busy in sinful acts, born in low caste, cross the limitations of normal laws, do injustice, are cruel to every caste, are unprotected, carry sharp edged sticks, do not obey elders, narrate unwanted events, propogate unrighteousness and also kills that king whose weakness causes decadence to public specially decline of cows and *brāhmaṇas*.

Similarly when evil natured person, obeying the orders of similar type of king trouble the public, the *jātahāriṇī* destroys them.

When a merchant transgresses the market or follows the same path and is desirous of accumulating wealth, then he is destroyed by *jātahāriṇī* of various shapes.

The person who does fraud or false behaviour about maiden, land, gold, horses and cloths is killed by *jātahāriṇī*.

The persons doing coitus due to ignorance during both twilights, in water (ponds, lakes or rivers etc.), dust and lonely temples are killed by *jātahāriṇī*.

The *jātahāriṇī* does not enter without unrighteousness of mother, father or son. Due to one's own deeds it finishes the progeny of mothers and longevity of children.

दैवी आदि विशिष्ट जातहारिणी वर्णन (Description of daivy etc. specific jātahāriṇī)

(१) दैवी जातहारिणी (Daivy i.e. divine jātahāriṇī)

तस्मात्त्रयो लोका भगवत्या रेवत्या बहुरूपया व्याप्ताः। इत्यतश्च सर्वलोकभयङ्करी रेवती पठ्यते। तां देवा अ(म)न्यन्त, तत एषां प्रजाः प्रावृध्यन्त; न एषां प्रजा विच्छेदमगमत्। नास्य प्रजा विच्छिद्यते य एवं वेद। तामथ रेवतीं सर्वलोकगुरुमभिव्यापिकां सर्वर्षीणां कश्यप एवाग्रे तपसोग्रेणाऽविन्दत। तस्मै प्रजां बहुलामाशीरायुष्मतीमविच्छिन्नां प्रादात्। ततः सर्वेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत्। रेवतीमेकशोऽभिज्ञश्च रेवतीकल्पं शिष्येभ्यः प्रादाज्जगद्धितार्थम् ॥ ६२॥

अतो वृद्धजीवक ! निरुक्ता दैवी रेवती ॥ ६३॥ (का० सं० क० ६)

इस प्रकार तीनों लोक भगवती रेवती के अनेकों रूपों से व्याप्त हैं। इसीलिए सर्वलोकों में रेवती भयंकर कही जाती है। इस रेवती का देवता सम्मान करते हैं जिससे उनकी सन्तानों की वृद्धि होती है, उनकी सन्तानों का विच्छेद (नाश) नहीं होता, ऐसा विदित है। सभी लोकों की गुरु तथा सर्वत्र व्यापक इस रेवती को सभी ऋषियों से पूर्व महर्षि कश्यप ने उग्र तपस्या के द्वारा ज्ञात किया था। जिसके आशीर्वाद ने (कश्यप को) बहुत सी आयुष्मान, अविच्छिन्न (नाश रहित)

सन्तान प्रदान की। इससे उनके सब से अधिक सन्तानें हो गई। रेवती को एकान्तरूप (पूर्णरूप) से जानकर महर्षि कश्यप ने लोक-कल्याण के लिए शिष्यों को रेवतीकल्प का ज्ञान प्रदान किया। हे वृद्धजीवक ! दैवी रेवती का वर्णन कर दिया।

This *revatī* is present in all the three places (heaven, hell and earth) in various shapes, that is why it is called very ferocious. Because the deities respect the *revatī*, so their progeny increases, their children do not die. Kaśyapa acquired knowledge of this universal preceptor and omnipresent *revatī* by his intense penance, and obtained good number of healthy children having longevity due to her blessings, he got maximum children. Kaśyapa after acquiring complete knowledge about *revatī* preached it to his disciples for the benefit of the universe. VriddhaJīvaka ! this is the description of *daivy* (divine) *jātahāriṇī*.

(२) वर्णा, वर्णान्तरा, लिङ्गिनी एवं कारुकी आदि मानुषी जातहारिणियों की प्रवेश विधि एवं निराकरण उपाय (Methods of entry and remedy of varṇā, varṇāntarā, liṅginī and kārukī etc. mānuṣī i.e. human jātahāriṇī)

मानुषीमत्र व्याख्यास्यामः—तत्र यथोक्तैरधर्मद्वारैर्यां यां स्त्रियमत्र प्रविशति, तां तां स्त्रियमनुवर्तयिष्यामः ॥ ६३॥

ताः खल्वतो व्याख्यास्यामः। अथो वृद्धजीवक ! ब्राह्मणीं समाविष्टां गृहानागतां स्त्रीं प्रत्युपतिष्ठतेऽभिवादयते संव्यवहरते संवदति संस्पृशति संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशत्युपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्या ब्राह्मणी जातहारिणी भवित। अथो आहुः—सैवैनां ब्राह्मणी ऋतुमतीमवसिञ्चेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्या ब्राह्मणी जातहारिणी भवति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक। क्षत्रियां जातहारिणीं समाविष्टां गृहानागतां स्त्रियं प्रत्युपतिष्ठतेऽभिवादयते संव्यवहरते संवदति संस्पृशति संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशत्युपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्याः क्षत्रिया जातहारिणी भवति। अथो आहुःसैवैनां क्षत्रिया ऋतुमतीमवसिञ्चेत्, सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्याः क्षत्रिया जातहारिणी भवति, या एवं वेद॥

अथो वृद्धजीवक ! वैश्यां जातहारिण्याऽऽविष्टामथो महाशूद्रीं स्त्रीं प्रत्युपतिष्ठतेऽभिवादयते संव्यवहरते संवदति संस्पृशति संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशत्युपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्या वैश्या जातहारिणी भवति, अथो शूद्रा, अथो महाशूद्री वा। अथो आहुः-सैवैनां वैश्याऽथो शूद्राऽथो महाशूद्री स्त्रियमृतुमतीमवसिञ्चेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्या वैश्या वा शूद्रा वा महाशूद्रा वा जातहारिणी भवति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक ! सूतमागधवेनपुक्कसाम्बष्ठप्राच्यकचण्डालमुष्टिकमेत(द)डौम्बडवाकद्रमिडसिंहलोड्रखशशकयवनपल्हवतुखा(षा)रकाम्बोजावन्त्यनेमकाभीरकहूणपारशवकुलिन्दकिरातशवरशम्बरजा जातहारिण्यो भवन्ति। अथो आहुः-तामेवैनां(ना)स्तिकनिषादप्रभृतीनां वर्णसङ्कराणां वा या स्त्रियो जातहारिण्याऽऽविष्टा गृहाणीयुस्ताः स्त्रीः प्रत्युपतिष्ठते, अभिवादयते, अभिनन्दयते, संव्यवहरति, संवदति, संस्पृशति, संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशति, उपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्याः एता वर्णसङ्करजा जातहारिण्यो भवन्ति। अथो आहुः-तामेवैनां स्त्रियमृतुमतीमवसिञ्चेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्या वर्णसङ्करा जातहारिणी स्त्री जातहारिणी भवति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक ! लिङ्गनी परिव्राजिका श्रमणका कण्डनी निर्ग्रन्थी चीरवल्कलधारणी तापसी चरिका जटिनी मातृमण्डलिकी देवपरिवारिका वेक्षणिका वा जातहारिण्यो वा जातहारिण्याऽऽविष्टा वा गृहानुपेयात् तां प्रत्युपतिष्ठतेऽभिवादयते वा संव्यवहरते वा संस्पृशति संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशत्युपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्या लिङ्गिनी जातहारिणी भवति। अथो आहुः—सैवैनां लिङ्गिनी स्त्रियमृतुमतीमवसिञ्चेत्। सैव तत्र

Scanned with CamScanner

प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्या लिङ्गिनी जातहारिणी भवति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक! अयस्करी जातहारिण्याऽऽविष्टा काण्डायसेनार्हणेनाभ्यैत्यथो तक्ष्णी दारवेणाथो कुलाली मार्तिकेनाथो पदकरी चार्मणेनाथो मालाकरी मुक्तकुसुमेनाथो कुविन्दी तानुकेनाथो सौचिकी स्यूतेनाथो रजकी सुरक्तेनाथो नेजिका निर्णिक्तेनाथो गोपी तक्रेणाथो कारुकुणी(की)स्वेनार्हणेन जातहारिण्याविष्टा गृहानुपेयात् तां स्त्री प्रत्युपतिष्ठतेऽभिवादयते संव्यवहरते संवदति संस्पृशति संभुङ्क्तेऽभिहन्त्याक्रोशत्युपशेते पदमृतुनिर्माल्यवासोलङ्कारमाक्रामति वा तस्याः कारुकुणी(की)जातहारिणी भवति। अथो आहुः-सैवैनां कारुकी स्त्रियमृतुमतीमवसिञ्चेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति। नास्याः कारुकी जातहारिणी भवति, या एवं वेद॥ ६८॥
(का० सं० क० ६)

यथोक्त अधर्म रूपी द्वारों अर्थात् अधर्म के कारण जिन जिन स्त्रियों में वह जातहारिणी प्रवेश करती है, उन उन को व्याख्या करूँगा।

हे वृद्धजीवक! जो स्त्री (अपने) घर में आई हुई ब्राह्मणी जातहारिणी से समाविष्ट स्त्री के पास बैठती है, उसे अभिवादन करती है, (उसके साथ) व्यवहार करती है, बातचीत करती है, (उसे) स्पर्श करती है, (उसके साथ) खाती है, (उसे) मारती है, गाली देती है, (उसके साथ) सोती है, या उसके पैर, ऋतु (रजःस्राव के समय प्रयुक्त वस्त्र), माला, वस्त्र तथा अलंकारों पर आक्रमण करती है, उसे ब्राह्मणी जातहारिणी हो जाती है (प्रविष्ट हो जाती है)। कहा गया है कि वही (ब्राह्मणी जातहारिणी से पहिले से ही आक्रान्त) ब्राह्मणी इस ऋतुमती (बाद में आक्रान्त स्त्री को ऋतुकाल के समय) स्त्री का अवसिंचन करे, यही इसका प्रायश्चित है। वह अपने भागधेय (अंश) से उसे संतानयुक्त करती है। जो इस तत्व को जानती है उसे ब्राह्मणी जातहारिणी आक्रान्त नहीं करती।

हे वृद्धजीवक! क्षत्रिया जातहारिणी से अक्रान्त घर में आई हुई स्त्री के पास (जो स्त्री) बैठती है, (उसका) अभिवादन करती है, (उसके साथ) व्यवहार करती है, बातचीत करती है, (उसे) स्पर्श करती है, (उसके साथ) भोजन करती है, (उसे) मारती है, गाली देती है, उसके साथ सोती है, उसके पैर, ऋतु, माला, वस्त्र तथा अलंकारों पर आक्रमण करती है, उस (इन सभी कर्मों को करने वाली स्त्री) को क्षत्रिया जातहारिणी हो जाती है। कहा गया है कि वह क्षत्रिया (जातहारणी आक्रान्त स्त्री) इस ऋतुमती का अवसिंचन करे, यही इसका प्रायश्चित है। वह (क्षत्रियाविष्ट स्त्री) अपने ही भागधेय से इसे (बाद की आक्रान्त स्त्री को) संतान युक्त करती है। जो इस तत्त्व को जानती है, उसे क्षत्रिया जातहारिणी आक्रान्त नहीं करती।

हे वृद्धजीवक! जो (स्त्री) वैश्या अथवा महाशूद्री जातहारिणी से आविष्ट स्त्री के पास बैठती है, उसका अभिवादन करती है, उसके साथ व्यवहार करती है, उससे बातचीत करती है, उसे स्पर्श करती है, उसके साथ भोजन करती है, उसे मारती है, गाली देती है, उसके साथ सोती है, उसके पैर, ऋतु, माला, वस्त्र तथा अलंकारों को आक्रमण करती है, उसे यह वैश्या, शूद्री या महाशूद्री जातहारणी हो जाती है, कहा गया है कि वह वैश्या, शूद्री अथवा महाशूद्री स्त्री ऋतुमती का अविसिंचन करे। यही इसका प्रायश्चित्त है। वह अपने ही भागधेय से इसे प्रजावती करती है। जो यह जानती है, उसे वैश्या, शूद्रा अथवा महाशूद्रा जातहारिणी नहीं होती।

हे वृद्धजीवक! (इनके अतिरिक्त) सूत, मागध, वेन, पुक्कस, अम्बष्ठ, प्राच्यक, चण्डाल, मुष्टिक, मेत(द)डौम्ब, डावक, द्रुमिड, सिंहल, उड्र, खश, शक, यवन, पल्लव, तुखा(ष)र, कम्बोज, अवन्ती, अनेमक, आभीरक, हूण, पारश, वकुलिन्द, किरात, शबर तथा शम्बर आदि देशों में उत्पन्न होने वाली जातहारिणियाँ होती हैं। जो स्त्रियाँ इन नास्तिक, निषाद आदि वर्णशंकर जातहारिणियों से आविष्ट स्त्रियों के पास बैठती हैं, (उनका) अभिवादन एवं अभिनन्दन करती है, (उनसे) व्यवहार करती हैं, (उनसे) बातचीत करती हैं, (उन्हें) स्पर्श करती हैं, उनके साथ भोजन करती हैं, उन्हें मारती एवं गाली देती हैं, उनके साथ सोती हैं, उनके पैर, ऋतु, माला, वस्त्र तथा अलंकारों को आक्रमण करती हैं, उन्हें वे वर्णशंकर जातहारिणियाँ

आक्रान्त कर देती हैं, कहा गया है कि वे (जातहारिणी आविष्ट स्त्रियाँ) ऋतुमती का अवसिञ्चन करें, यही इसका प्रायश्चित्त है। (वे) अपने ही भागधेय से इसे प्रजायुक्त करती हैं, जो इस तत्व को जानती है, उसे वर्णशंकर जातहारिणियाँ आक्रान्त नहीं करती।

हे वृद्धजीवक! लिंगिनी, परिव्राजिका, श्रमणका, कण्डनी, निर्ग्रन्थी, चीरवल्कलधारणी, तापसी, चरिका, जटनी, मातृमण्डलिका, देवपरिवारिका एवं वेक्षणिका आदि जातहारिणियाँ या उनसे आविष्ट स्त्री जब घर में आती है, तब जो स्त्री इनके पास बैठती है, इनका अभिवादन एवं इनसे व्यवहार करती है, इन्हें स्पर्श करती है, साथ में भोजन करती है, इन्हें मारती एवं गाली देती है, साथ में सोती है, पैर, ऋतु, माला, वस्त्र तथा आभूषणों पर आक्रमण करती है, उसे लिंगिनी जातहारिणी हो जाती है। कहा गया है कि यह लिंगिनी (आविष्ट)-स्त्री ऋतुमती का अवसिंचन करे, यही इसका प्रायश्चित्त है। वे अपने ही भागधेय से इसे संतानयुक्त करती हैं। जो इस तत्व को जानती है उसे लिंगिनी जातहारिणी आक्रांत नहीं करती।

हे वृद्धजीवक! जब अयस्करी जातहारिणी से आविष्ट स्त्री कृष्ण लौह के बने; तक्ष्णी (बढ़ई) दारव (लकड़ी के बने शस्त्र) के, कुलाली (कुम्हारिन) मिट्टी के, पदकरी (चमारिन) चमड़े के, मालाकरी (मालिन) मुक्त कुसुम (खिले हुए फुलों) के, कुविन्दी तानुक के, सौचिकी (दर्जी) स्यूत के, रंजकी (रंगने वाली) भलीभाँति रंजित वस्त्रों के, नेजिका (धोबिन) निर्णिक्त के तथा गोपी (ग्वालिन) तक्र के, आदि अपनी-अपनी वस्तुओं से निर्मित उपहारों के सहित कारुकुणी(की) जातहारिणी से आविष्ट (हुई स्त्रियाँ) घर में प्रवेश करती हैं, तो जो स्त्री इनके पास बैठती है, इनका अभिवादन करती है, इनसे व्यवहार करती है, बातचीत करती है, स्पर्श करती है, साथ में भोजन करती है, उन्हें मारती है, गाली देती है, उनके साथ सोती है, उनके पैर, ऋतु, माला, वस्त्र तथा अलंकारों को आक्रमण करती है। उसे कारुकुणी(की) जातहारिणी हो जाती है। कहा जाता है ये कारुकी (जातहारिणी आविष्ट स्त्री) ऋतुमती का अवसिंचन करे, यही इसका प्रायश्चित्त है। वे अपने ही भागधेय से इसे सन्तानयुक्त करती है। जो यह तत्व जानती है उसे कारुकी जातहारिणी नहीं होती।

A woman gets afflicted with *brāhmaṇī jātahāriṇī* who closely sits with other woman entered into her house and afflicted with *brāhmaṇī jātahāriṇī*, salutes her, does dealings and talks with her; touches, hits and abuses her, eats and sleeps with her; attacks her feet, pads used during menstruation, garland, garments and ornaments. It is said that the same *brāhmaṇī* (woman already afflicted with *jātahāriṇī*) should bedew this *ṛtumatī* (subsequently afficted woman during menstruation), this is the only expiation. She (the former) provides her (the later) progeny with her own share or destiny. Who knows this secret never gets attacked by *brāhmaṇī jātahāriṇī*.

The description of other *varṇā jātahāriṇīes* i.e. *kṣatriyā, vaiśyā, śūdrī* or *mahāśūdrī; varṇāntarā jātahāriṇīes* or other than above castes such as born in *sūta, māgadha, vena, pukkasa, ambaṣṭha, prācyaka, caṇḍāla, muṣṭika, medaḍaumba, ḍawāka, drumiḍa, siṅhala, uḍra, khaśa, yawana, pallava, tuṣāra, kamboja, avantī, anemaka, ābhūraka, hūṇa, pāraśa, vakulinda, kirāta, śabara* or *śambara* etc. castes or countries and other atheist *niṣāda* etc. crossbreeds; and *liṅginī jātahāriṇīes* i.e. *liṅginī, parivrājikā, śramaṇakā, kaṇḍanī, nirgranthī, cīravalkaladhāriṇī, tāpasī, carikā, jaṭanī, mātṛmaṇḍalikī, devaparivārikā* and *vekṣaṇikā* etc. is identical to the description of *brāhmaṇī jātahāriṇī* except the substitution of word *brāhmaṇī* with specific castes.

The description of *kārukī jītahāriṇī* is also the same, however the woman belonging

Scanned with CamScanner

to specific profession already afflicted with *jātahāriṇī* enters the house of other woman with presents prepared according to their profession as follows:—

Woman of profession	presents made of
Ayaskarī (blacksmith)	Black iron
Takṣṇī (carpenter)	Weapons of wood
Kulālī (potter)	Clay
Padakarī (shoemaker)	Leather
Mālākarī (gardener)	Blossomed flowers
Kuvindī (weaver)	Specific yarn
Saucikī (tailor)	Cotton thread
Rañjakī (dyer)	Coloured garments
Nejikā (washer-woman)	Cleansed cloths
Gopī (milk-woman)	Buttermilk

(३) शकुनी, चतुष्पदी, सर्पा, मत्सी एवं वनस्पति आदि तिरश्चीन जातहारिणियों की प्रवेश-विधि, लक्षण एवं निराकरण उपाय *(Process of entry and remedy of śakunī, catuṣpadī, sarpā, matsī and vanaspati etc. tiraścina jātahāriṇīs.)*

अत ऊर्ध्वं वृद्धजीवक ! तिरश्चीं जातहारिणीमनुव्याख्यास्यामः ·····। ता एता प्रायेण सतामेव प्रसज्जन्ते।

वृद्धजीवक। ये शकुनीं वर्द्धनीं घ्नन्ति घातयन्ति वा तेषां शकुनिरूपा जातहारिणी प्रसज्जते महाग्रहः। सा काकी भासी कुक्कुटी मयूरी चाषी सारिका तैलपायिका, उलूकी, भोलन्तिका, गृध्री, श्येनी, भारद्वाजी ततोऽन्यमतमा वा भूत्वा स्वप्नेऽपूर्वान् दर्शयति, गर्भिणीं सूतिकां बिभीषियति, बालं चोत्रासयति, महावेगा महाप्राणा घोररूपः रौद्राऽनायतपक्षा वज्रतुण्डनखदशनदंष्ट्रा वैदूर्यज्वलनसदृशलोचना बहुविचित्रमहापत्रा कण्ठे कनकमणिविचित्रगुणधारिणी विविधकुसुमगन्धवसनमुसलोज्जवलधारिणी वरमुकुटा नपुरकविकम्बूकदाङ्ग(टका)दकुण्डलवामघण्टापताकाऽऽतपत्रोल्काविद्युन्मेघमालाऽलङ्कृता, भगवतः कुमारवरस्य ग्रानी (?)च स्वसा च स्वप्ने धर्षयित्वा रोगागममनन्तरमस्य करोति। ततो मध्याह्नेऽर्धरात्रे वा संध्ययोर्वा सुप्ते वा बालगृहे निलीयते यथोक्तानामेकतमाः, ततो बाल उच्चैः क्रोशति, रोदति त्रसते वेपते विभेति ज्वर्यते विद्धलति निस्तनति मुह्यति विस्खलति सूच्यते शून्यते विस्रंस्यते रोगैरन्यैश्चोपद्रूयते। या त्वभीक्ष्णं शकुनीं स्त्री स्वप्ने पश्यति ततः साऽस्याः शकुनी जातहारिणी सज्जते। तस्या एव शकुन्या निभीतस्या (निलीनाया ?) एव पुरीषेण पक्षोदकेन वैनां वृद्धस्त्री शकुनिना(नीं)स्त्रीं तत्रावसिञ्चेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं स्त्रियं करोति। नास्याः शकुनी जातहारिणी भवति या शुकनीं न हिनस्ति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक। ये गां घ्नन्ति घातयन्ति वा, गौमांसं चोपयुञ्जन्ते तेषां गोमता जातहारिणी प्रसज्जते। एषा एनां स्वप्नेऽभिद्रवति गोपालो वा वत्सकपालो वा; असाध्य तस्या गोमाता ज्ञातहारिणी प्रसज्जति। अथो आहुर्गोमध्य एनां गोमूत्रपुरीषाभ्यामुपोषितां स्नपयेत्, सैव तत्र प्रायाश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन गौः प्रजावतीं करोति। नास्या गोमाता जातहारिणी भवति, या गां न हिनस्ति, या एवं वेद। एवमेव महिषीणामजानामविकानां गर्दभीनां श्वाश्वतरीणाम्युष्ट्रीणां सूकरीणां शुनीनां गलगोलिकानां गोपानां (गोधानां[1]) विश्वम्भराणां मृगादीनां चैवमेष विधिरुक्तः॥

१. गोप या गोपा का शाब्दिक अर्थ गोपालक या गोरक्षक होता है, चूँकि यह वर्णन चतुष्पदी जातहारिणियों का है अतः गोरक्षक शब्द युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। गोधा एक चतुष्पाद जीव है एवं यह सम्भव है कि मुद्रण या टंकड़ त्रुटि से गोधा शब्द के स्थान में 'गोपा' शब्द आ गया हो।

अथो वृद्धजीवक ! सर्पी गृहचारिणीमगृहचारणीं वा स्त्री हन्ति घातयन्ति वा, तस्याः सर्पी जातहारिणी प्रसज्जतेऽथो विषमृत्युमस्याः प्रजाया आहुः। एनां वल्मीके नागकुले वा सिञ्चेदथो आहुर्वल्मीकशतमध्य इति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। स्वेनैवैनां भागधेयेन प्रजावतीं करोति, नास्याः सर्पी जातहारिणी भवति। या सर्पान् न हिनस्ति, नास्याः प्रजाया विषमृत्युर्भवति या एवं वेद॥

अथो वृद्धजीवक ! या मत्स्यमकरतिमिङ्गिलनक्रशङ्खशम्बूकसुखनकादीनि भूतान्युदकचराणि हन्ति, तस्याम्ते-नाधर्मेण रेवती क्रुद्धा प्रजा हिनस्ति; मत्सी वा मकरी शुक्तिः शङ्खी भूत्वा स्वप्ने पूर्वं हर्षयति, ततो हिनस्ति भृशम्; तस्या अप्सु प्रजा विनश्यति, जलत्रासेन एकैकरोगैर्वा। अथो आहुः—रोहिणीस्नानेनैवैनां प्रत्युदियात्, सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। या मत्स्यान् न हिनस्ति नास्या मत्सी जातहारिणी भवति, या एवं वेद।

अथो वृद्धजीवक ! ये वनस्पतीन् हिंसन्ति परिगृहीतानपरिगृहीतान् वा, तेषां वनस्पतिदेवता अभिक्रुद्धयन्ति। अग्निर्वैश्वानरो नाम, सोमः पितृमान्नाम, स्वधितिः शिवो नाम, आपो वरुणो नाम, भूमिर्निर्ऋतिर्नाम, गौर्वियन्नाम, गौः श्लोको नाम, देव पव(मा)नो नाम, आदित्यः पूषा नाम, दिशः काष्ठा नाम, इन्द्रो वरुणो नाम, वायु प्राणो नामः ता वै द्वादश वनस्पतीनां देवताः। एता एव वनस्पतीम् घ्नन्तं घ्नन्ति। अथो आहुर्वनस्पतिमध्ये विवृक्षेषु ता एव देवताः स्थालीपाकैर्यजेत। अग्निमाज्येन, सोमं श्यामाकेन, शिवं पायसेन, आपो दध्ना, भूमिं सप्तान्नकेन, ग्रामधूपैः गां वाऽग्निं पवमानं पिशितेन, पूषाणमन्नाद्यैः, दिशो मद्यैः इन्द्रं हविष्यभोजनेनेति! अथो अस्या वनस्पतिदेवताः प्रजामेव प्रयच्छन्ति, या वनस्पतीन् न हिनस्ति। नास्या वनस्पतिदेवता जातहारिण्यो भवन्ति, या एवं वेदेति॥ ६९॥

(का० सं० क० ६)

इसके बाद अब हम तिरश्चीन जातहारिणियों की व्याख्या करेंगे। ये प्रायः सज्जन व्यक्तियों को ही आक्रान्त करती हैं।

हे वृद्धजीवक ! जो (स्त्री) वृद्धि को प्राप्त होते हुए शकुनी (पक्षी) को काटती है, मारती अथवा मरवाती है, उसे महाग्रह वाली शकुनि जातहारिणी आक्रान्त करती है। वह (शकुनि जातहारिणी) काकी, भासी, कुक्कुटी, मयूरी, चाषी (नीलकण्ठी), सारिका (मैना), तैलपायिका[1], उलूकी, भोलन्तिका, गृध्री, श्येनी एवं भारद्वाजी आदि अनेक रूपों को होकर स्वप्न में अपूर्व (पहिले कभी नहीं देखी गई आकृतियों वाली) दिखाई देती है। गर्भिणी एवं सूतिका को भय दिखाती है, बालक को संत्रस्त करती है तथा महावेग, महाप्राण, घोररूप (भयंकर रूप), रौद्र (अति क्रोधित आकृति वाली), अनायतपक्षा (संकुचित पंखों वाली), वज्र-सदृश (कठिन या सुदृढ़) चोंच, नख, दन्त तथा दंष्ट्रा वाली, वैदूर्य मणि की ज्वाला (अत्यधिक रक्तवर्ण) सदृश नेत्रों वाली, अत्यन्त विचित्र बड़े-बड़े पंखों वाली, कण्ठ में स्वर्ण तथा मणि की विचित्र गुण वाली माला को धारण करने वाली, विभिन्न प्रकार के पुष्प, गन्ध, वस्त्र, मुसल एवं उज्वल वस्तुओं को धारण करने वाली; श्रेष्ठ मुकुट धारण करने वाली; नूपुरक, विकम्बूकत्, अंगद, कुण्डल, वामघण्टा, पताका, आतपत्र(छाता),उल्का, विद्युत् एवं मेघमाला से अलंकृत यह भगवान कुमार (कार्तिकेय) की ग्रानी(?) तथा बहन (के स्थान वाली जातहारिणी) स्वप्न में (स्त्री या बच्चे को) डराकर इसके बाद रोग को उत्पन्न कर देती है। उसके पश्चात् दोपहर, अर्धरात्रि या दोनों संध्यायों में या (सबके) सो जाने के बाद बालगृह में उपर्युक्त अनेकों प्रकार की होकर छिप जाती है। जिससे बालक उच्च स्वर से चिल्लाता है, रोता है, डरता है, काँपता है, त्रसित होता है, ज्वर से पीड़ित होता है, बेचैन हो जाता है, नहीं बोलता, मूर्च्छित हो जाता है, लड़खड़ा कर गिर जाता है, उसे सूची सदृश वेदना होती है, शून्यता हो जाती है, अत्यधिक क्षय होता है या अन्य अनेक उपद्रव स्वरूप रोग हो जाते हैं। जो स्त्री स्वप्न में अत्यधिक शकुनी पक्षी को देखती है, उसे यह शकुनी जातहारिणी आक्रान्त करती है। उस (जातहारिणी आक्रान्त) स्त्री को अन्य वृद्ध स्त्री शकुनी के घोसले में स्थित पुरीष से तथा पक्षोदक से अवसिञ्चन करें, यही इसका प्रायश्चित है। वह (शकुनी) अपने भागधेय से स्त्री को संतान युक्त करती है। जो इस तत्व को जानती है वह शकुनी की हत्या नहीं करती, एवं उसे शकुनी जातहारिणी आक्रान्त नहीं करती।

१. तिलचटा (अमरकोष) या एक प्रकार की चिड़िया (मो० वि०)

Scanned with CamScanner

हे वृद्धजीवक ! जो स्त्रियाँ गौ का हनन करती हैं, या हनन करवाती हैं एवं गोमांस का उपयोग करती हैं, उन्हें गोमाता जातहारिणी आक्रान्त कर देती है। जिससे गोमाता जातहारिणी से आक्रान्त होने से) वह (आविष्ट स्त्री) स्वप्न में गोपाल (गौओं के पालक) या बछड़े के पालक को दौड़ाती है (या उस पर आक्रमण करती है), उसे असाध्य गोमाता जातहारिणी आक्रान्त करती है। कहा गया है कि इस (आविष्ट) उपवास की हुई स्त्री को गायों के मध्य में (बैठाकर) गोमूत्र एवं गोपुरीष लगाकर स्नान कराये वही इसका प्रायश्चित है। गौ अपने ही भागधेय से इसे (स्त्री को) पुत्रवती करती है। जो गाय की हत्या नहीं करती एवं इस तत्व को जानती है, उसे गोमाता जातहारिणी आक्रान्त नहीं करती। इसी प्रकार महिषी, अजा, अवि (भेड़), गर्दभी, अश्वा (घोड़ी), अश्वतरी (खच्चरी), उष्ट्री, सूकरी, मूषिका, शुनी (कुतिया), गलगोलिका (विशिष्ट प्रकार का सर्प[1]), गोधा, विश्वम्भरा (विशिष्ट प्रकार की बिच्छू) एवं मृगी आदि की भी यही विधि है (अर्थात् इन इन जातहारिणियों से आविष्ट होने एवं निवृत्त होने की उपर्युक्त गोमाता सदृश ही विधि है)।

हे वृद्धजीवक ! जो स्त्री घर में अथवा घर के बाहर विचरण करने वाली सर्पिणी की हत्या करती है अथवा उसका हनन करवाती है, उसे सर्पिणी जातहारिणी आक्रान्त करती है, जिससे उसकी (जातहारिणी आक्रान्त स्त्री की) संतान की विष से मृत्यु हो जाती है। कहा गया है कि नागकुल में अथवा सौ वल्मीक के मध्य स्थित वल्मीक में सिञ्चन करे यही इसका प्रायश्चित है। वह (सर्पी) अपने ही भागधेय से इसे पुत्रवती करती है, एवं उसे सर्पी जातहारिणी नहीं होती। जो इस तत्व को जानती है, वह सर्प की हत्या नहीं करती एवं उसकी सन्तान की विष से मृत्यु नहीं होती।

जो स्त्री मत्स्य, मकर[2], तिमिङ्गल (एक प्रकार की बहुत बड़ी मछली), नक्र (मगर), शंख, शम्बूक तथा सुखनक (शुक्ति) आदि जलचर प्राणियों की हत्या करती है, इस अधर्म के कारण रेवती क्रुद्ध होकर उसकी प्रजा (संतान) का हनन करती है, (वह क्रुद्ध रेवती) पहिले मत्सी, मकरी, शुक्ती या शङ्खी होकर स्वप्न में हर्षित करती है (रोमांचित करती है), तत्पश्चात् उसे हनन करती है (आघात पहुँचाती है), उसकी सन्तान जलत्रास या अन्य विभिन्न रोगों द्वारा जल में नष्ट हो जाती है। कहा गया है कि रोहिणी स्नान के द्वारा ही इसका प्रतिवाद होता है, यही इसका प्रायश्चित है। जो यह जानती है, वह मत्स्य का हनन नहीं करती, उसे मत्सी जातहारणी नहीं आक्रांत करती।

हे वृद्धजीवक ! जो स्त्री ग्रहण की हुई (पकड़ी हुई) अथवा न ग्रहण की हुई वनस्पति की हिंसा करती है, उससे वनस्पति देवता क्रुद्ध हो जाते हैं। वैश्वानर नाम वाला अग्नि, पितृ नाम वाला सोम, शिव नाम वाला स्वधा, वरुण नाम वाला अप्, निर्ऋति नाम की भूमि, वियत् एवं श्लोक नाम की गौ, पवमान नाम वाला देव, पूषा नाम वाला आदित्य, काष्ठा नाम वाली दिशायें, वरुण नाम वाला इन्द्र, प्राण नाम वाला वायु आदि बारह वनस्पतियों के देवता हैं। यही (उपर्युक्त बारह देवता) वनस्पतियों का हनन करने वाले का हनन करते हैं (हनन करने वाले को आक्रान्त करते हैं)। कहते हैं कि वनस्पतियों के मध्य में प्रविष्ट इन देवताओं की स्थालीपाक द्वारा पूजा करें। अग्नि की घृत के द्वारा, सोम की श्यामाक (विशिष्ट धान्य) के द्वारा, शिव की पायस (खीर) के द्वारा, अप्(जल) की दधि के द्वारा, भूमि की समात्र के द्वारा, गौ अथवा अग्नि की ग्रामधूप के द्वारा, पवमान (वायु) की पिशित (मांस) के द्वारा, पूषा को अन्न आदि के द्वारा, दिशाओं की मद्य के द्वारा तथा इन्द्र की हविष्य भोजन के द्वारा (अभ्यर्चना या पूजा करे)। जो स्त्री वनस्पतियों की हिंसा नहीं करती, उसे वनस्पति देवता संतान से युक्त करते हैं। जो (स्त्री) यह तत्व जानती है, उसे वनस्पति जातहारिणी नहीं होती।

These *tiraścīna jātahāriṇīes* usually attack gentle persons.

The woman who cuts, kills personally or makes others to kill a growing *śakunī* (bird)

१. सम्भवतः गलगोलिका उस काल में पाया जाने वाला चतुष्पाद सर्पाकृति कोई जीव हो, क्योंकि यहाँ चतुष्पाद जातहारिणियों का वर्णन है सर्पिणी आदि का नहीं।

२. मकर-एक प्रकार का समुद्री विकृताकारजीव, कभी कभी क्रॉकोडाइल, शाक या डॉल्फिन का संदेह उत्पादक। नक्र-क्रॉकोडायल(मो० वि०)

is attacked by feroceous *śakunī* (bird) *jātahāriṇī*. This *śakunī* assuming the shape of she-crow, *bhāsī* (kind of prey, kite ?), hen, peahen, she blue jay, black-bird, *tailapāyikā* (a bird), she owl, *bholantikā* (a bird), she vulture, she hawk, she skylark and other unseen shapes comes to her dreams. It frightens pregnant and puerperal woman, terrifies the child. This *grāṇī* and sister of Kārtikeya moving agitatedly or swiftly, breathing harshly, having dreadful angry looks and unseparated wings, possessing beak, nails, teeth and jaw strong or hard like *vajra* and eyes red like flame of *vaidūrya maṇi* (specific red gem) alongwith freak and big wings, wearing in neck garland of typical qualities made with gold and gems; holding various flowers, perfumes, garments, pestle and other white articles, wearing excellent crown, *nūpuraka, vikambūkat, aṅgada, kuṇdala* (all specific ornaments), holding big bell, banner or flag, umbrella, adorned with meteor, thunderbolt and coluds, frightens the woman or children in their dreams and then produces diseases. Attaining all above various shapes this *revatī* hides herself in child's room *(bālagṛha)* during midday, midnight, twilight or when every body is sleeping, then the child crys loudly, weeps, gets frightened, has tremors, is terrified and febrile, becomes restless, does not speak, becomes unconscious, falls due to trembling, feels pain like pricking of needles or gets anaesthesia (local), has excessive emaciation and other disorders due to various complications. The woman who dreams too much about *śakunī* gets attacked by it. To this *jātahāriṇī* afflicted woman other old lady should bedew with feces obtained from nest or water obtained from a pot filled with feathers of this *śakunī*, this is its expiation. By this the *śakunī* provides her progeny with its own share or destiny. The one who knows this secret never kills the *śakunī* (birds) thus does not get attacked with *śakunī jātahāriṇī*.

The woman who kills personally or makes others to kill the cow and uses meat of cow is attacked by *gomātā jātahāriṇī*, due to this (influence of affliction) the woman dreams of attacking or over-running cow-herd or calf-boy or making them run. She suffers from incurable *gomātā jātahāriṇī*. It is said that the afflicted woman after keeping fast should be made to sit amongst the cows and bathed after applying cow urine and cow dung, this is its expiation. The cow provides her progeny with its own share or destiny. The one who knows this secret does not kill the cow, thus is not attacked by *gomātā jātahāriṇī*. Similar is the process of attack and remedy of *mahiṣī* (she buffalo), *ajā* (she goat), *avi* (sheep), *gardhabhī* (she donkey), *aśwā* (mare), *aśwatarī* (she mule), *uṣṭrī* (she camel), *sūkarī* (she hog), *mūṣikā* (she mouse), *śūnī* (bitch), *galagolikā* (a four leged snake like creature), *godhā* (iguana), *viśwambharā* (a variety of scorpion) and *mṛgī* (she dear) etc. *catuṣpadī jātahāriṇīes.*

The woman who kills herself or makes others to kill a snake creeping inside or outside the house, is attacked by *sarpiṇī jātahāriṇī*, her progeny dies due to snake venum. It is said that she should bedew either to snakes family or an aunt-hill situated amidst hundred aunt-hills, this is its expiation. The she snake provides her progeny with its own share or destiny. The one who knows this secret never kills the snake and her progeny does not die due to snake venum.

The woman when kills fish, *makara* (a sea monster sometimes confounded with croco-

Scanned with CamScanner

dile, shark or dolphin), *timiṅgala* (a variety of big fish), crocodile, (insect of) conch shell or slug and oyster etc. aquatic animals, then due to this unrighteous act, angered *revatī* kills her progeny. Initially this *revatī* assuming the shape of fish, crocodile, oyster or conch shell etc. titilates in dreams and then kills her, her progeny dies due to hydrophobia and other disorders within the water. It is said that bathing during *rohiṇī nakṣatra* planet is its refutation and expiation. The one who knows this never kills fish etc. and is never attacked by *matsī jātahāriṇī*.

The woman when destroys the vegetation held in hand or free, then *vanaspati* dieties get annoyed. There are twelve *vanaspati* gods i.e. *agni* named *vaiśwānara, soma* named *pitṛ, swadhā* named *śiva, ap* named *varuṇa, bhūmi* named *nirṛti, gau* named *viyat* and *śloka, deva* named *pavamāna, āditya* named *pūṣā, diśas* named *kāṣṭhā, indra* named *varuṇa* and *vāyu* named *prāṇa*. All these twelve dieties of *vanaspati* (flora) kill those who destruct the vegetation. It is said that those dieties situated amidst the vegetation should the worshiped with *sthālīpāka* (a dish of barley or rice boiled in milk used as an oblation). The *agni* should be worshiped with *ghṛta*, the *soma* with *śyāmāka* (barnyard millet), the *śiva* with *pāyasa* (rice boiled with milk and sweetened), the *ap* with curd, the *bhūmi* with *saptānna* (seven types of grains), *gau* or *agni* with *grāmadhūpa* (fumigation material used in villages), the *vāyu* with meat, the *pūṣā* with cereals, the *diśas* with wine and *indra* with food for oblation. Woman who does not destroy vegetation, *vanaspati* diety gives her progeny. The one who knows this secret is not attacked by *vanaspati jātahāriṇī*.

उपर्युक्त जातहारिणियों (दैवी, मानुषी एवं तिरश्चीन) के प्रवेश का परिणाम (Result of affliction by these jātahārinīs)

अधर्मस्यातिसंवृद्धया रेवती लभेतऽन्तरम् । लब्ध्वाऽन्तरमतिक्रुद्धा नानारूपैर्यथोदितैः ॥ ७०॥
अन्यैश्च दारुणतरैस्ततो हन्ति प्रजा इमाः । यौगपद्येन भार्या वा म्रियन्ते वा पृथक् पृथक् ॥ ७१॥
(का० सं० क० ६)

अधर्म की अतिवृद्धि के कारण (ही) रेवती अवसर प्राप्त करती है (अर्थात् शरीर में प्रविष्ट होती है)। अवसर पाकर (अन्दर प्रविष्ट होकर) अत्यधिक क्रोधित होकर उपर्युक्त (दैवी, मानुषी तिरश्चीनादि) अथवा अवर्णित अनेक प्रकार के दारुणतर रूपों को धारण करके स्त्री की सन्तानों का हनन करती है, साथ ही स्त्री को भी मार देती है अथवा दोनों (स्त्री एवं सन्तान) को पृथक् पृथक् मार देती है।

It is only extreme unrighteousness which provides an opportunity to *revatī*, which getting extremely angered and assuming earlier described or other very terrific shapes, kills the progeny of woman along with herself or else kills both these separately.

जातहारिणी लक्षण (Clinical features of jātahārinīs)

जातहारिणी आविष्ट होने पर सामान्य लक्षण (General clinical features)

अधर्मद्वारमासाद्य यदा विशति रेवती ॥ २४॥
नारीं तदा भवन्त्यस्या रूपाणीमानि जीवक ! । प्रम्लायतस्तनोत्तस्या रूपाणीमानि हीयते ॥ २५॥
दृष्टिर्व्याकुलतां याति यथाकालं न पुष्यति । भ्रष्टसत्त्वा निरुत्साहा कुक्षिशूलनिपीडिता ॥ २६॥

भवत्यप्रियरूपा च तैस्तै रोगैरुपद्रुता । विपरीतसमारम्भा विपरीतनिषेविणी ॥ २७॥
उच्छिष्टा विकृता धृष्टा सर्वार्थेषु प्रवर्तते । अर्थसिद्धिर्न भवति संपच्चास्याः प्रलुप्यते ॥ २८॥
गोजाविमहिषीष्वस्या न जीवन्ति च वत्सकाः । अयशः प्राप्नुते घोरं वैधव्यं वा निगच्छति ॥ २९॥
कुलक्षयं वा कुरुते प्रसक्ता जातहारिणी ॥ ३०॥ (का० सं० क० ६)

हे जीवक ! अधर्म द्वार से जब रेवती स्त्री के शरीर में प्रविष्ट होती है तो उसमें ये निम्न लक्षण होते हैं।

उसके द्वारा (जातहारिणी के द्वारा) शरीर के प्रम्लान हो जाने पर (मुरझा जाने पर) ये लक्षण होते हैं:-दृष्टि में व्याकुलता हो जाती है, यथाकाल (उचित समय पर) पोषण नहीं होता, सत्व (मन) भ्रष्ट हो जाता है, (स्त्री) उत्साह रहित एवं कुक्षि के शूल से पीड़ित होती है। वह अप्रिय रूप की (विकृत आकृति की) हो जाती है, अनेक प्रकार के रोगों से उपद्रुत हो जाती है (आक्रान्त हो जाती है)। वह सभी कार्य विपरीत रूप से प्रारम्भ करती है एवं विपरीत (वस्तुओं का) सेवन करती है। सभी प्रकार के कार्यों में उच्छृङ्खल, विकृत एवं धृष्ट रूप से प्रवर्तित होती है। उसे अर्थ (धन) की सिद्धि (प्राप्ति) नहीं होती, उसकी सम्पत्ति (धन एवं यश) लुप्त (नष्ट) हो जाती है। उसकी गौ, बकरी, भेड़ एवं महिषी के बच्चे जीवित नहीं रहते। उसे घोर अपयश प्राप्त होता है, वह विधवा हो जाती है तथा प्रसक्त हुई जातहारिणी उसके कुल का क्षय कर देती है।

The *jātahāriṇī* after entering inside the body through the pores created by unrighteous acts produces following clinical features.

Due to affliction by *jātahāriṇī* the woman gets withered and has these clinical features :— bewildered looks, absence of nourishment in appropriate time, unsteadiness of psychology *(satwa)* or decline in endurance, absence of enthusiasm, pain in abdomen, disagreable looks and suffers from various disorders. She starts every work in opposite way and consumes opposite or non congenial edibles. She commences every work in unbridled way with impudence and abnormality. She does not get money, her property is lost. The calves of her cow, goat, sheep and buffalo do not survive. She gets badly defamed, becomes widow and *jātahāriṇī* after seizing destructs her family.

(२) साध्यासाध्यता की दृष्टि से वर्णित जातहारिणियों के लक्षण (Clinical features according to classification based on prognosis)

(अ) साध्य जातहारिणी (Curable jātahāriṇī)

दशैता जातहारिण्यो जीवमानासु मातृषु ॥ ४१॥
असाध्याः पुष्पघातिन्यः साध्या गर्भोपघातिका ॥ (का० सं० क० ६)

जीवित माताओं में (अर्थात् जिनमें माता की मृत्यु नहीं होती) ये दस जातहारिणियाँ पुष्प (रजःस्राव) को घात (नष्ट) करने वाली असाध्य तथा गर्भोपघातक साध्य होती हैं।

In alive mothers these are ten *jātahāriṇies*. Amongst these, those which cause destruction of *puṣpa* (menstruation) are incurable and others destructing *garbha* are curable.

विमर्श *(Comments)*

यद्यपि यह साध्य जातहारिणियों का ही वर्णन है, फिर भी पुष्पघातिनी (शुष्का एवं कटम्भरा) को असाध्य लिखा गया है। संख्या उल्लेख में दस ही लिखा है पर विस्तृत वर्णन में ग्यारह जातहारिणियों का उल्लेख है।

Scanned with CamScanner

Though the number has been given only as ten, yet eleven disease entities have been described under this category. Inspite of description being of curble *jātahāriṇīes*, those destructing the *puṣpa* (menstruation i.e. *śuṣkā* and *kaṭambharā*) are said to be incurable.

(१) शुष्क रेवती (Śuṣka revatī)

आषोडशवर्षप्राप्ता या स्त्री पुष्पं न पश्यति ॥ ३१॥
प्रम्लानबाहुरुकुचा तामाहुः शुष्करेवतीम् ॥ (का० सं० क० ६)

षोडश वर्ष की अवस्था प्राप्त हो जाने पर भी जिसे रजोदर्शन न हो, जिसके बाहु तथा नितम्ब प्रम्लान (पतले या क्षीण) हों, उसे शुष्क रेवती कहते हैं।

In this, the girl does not get her menarche inspite of attaining the age of sixteen years, her arms and hips are withered or emaciated.

(२) कटम्भरा (Kaṭambharā)

विना पुष्पं तु या नारी यथाकालं प्रणश्यति ॥ ३२॥
कृशा हीनबला क्रुद्धा साऽपि चोक्ता कटम्भरा ॥ (का० सं० क० ६)

बिना पुष्प (रजोदर्शन) के ही जो स्त्री यथाकाल (पूर्णायु) में नष्ट होती है (मरती है) एवं कृश, हीन बल वाली तथा क्रुद्ध (हर समय क्रोधित होने वाली) होती है, उसे कटम्भरा कहते हैं।

The woman who dies in her mature age without having menstruation, is emaciated, weak and irritable is called as suffering from *kaṭambharā*.

(३) पुष्पघ्नी (Puṣpaghnī)

वृथा पुष्पं तु या नारी यथाकालं प्रपश्यति ॥ ३३॥
स्थूललोमशगण्डा वा पुष्पघ्नी साऽपि रेवति ॥ (का० सं० क० ६)

जो स्त्री यथासमय में व्यर्थ पुष्प का दर्शन करती है (अर्थात् अपने समय पर ही रजोदर्शन होता है परन्तु वह बेकार या बिना फल या गर्भ वाला होता है) तथा जिसका गण्डप्रदेश स्थूल एवं लोमयुक्त होता है उस रेवती को पुष्पघ्नी कहते हैं।

In this condition though the woman gets her menstruation however that is useless (or she does not conceive), her cheeks are corpulent and covered with hair.

(४) विकुटा (Vikuṭā)

कालवर्णप्रमाणैर्या विषमं पुष्पमृच्छति ॥ ३४॥
अनिमित्तबलग्लानिर्विकुटा नाम सा स्मृता ॥ (का० सं० क० ६)

जो स्त्री काल, वर्ण एवं प्रमाण में विषम पुष्प (रजोस्राव) वाली होती है (ऋतुस्राव काल में विषम अर्थात् शीघ्र या विलम्ब से, प्रमाण में विषम अर्थात् अति अल्प या अत्यधिक एवं वर्ण में विषम अर्थात् अत्यधिक रक्त वर्ण या कृष्णवर्ण), एवं जिसे बिना किसी कारण के बल की ग्लानि (हानि) होती है वह विकुटा नाम से जानी जाती है।

The woman suffering from this gets menstruation having irregularity in duration, colour and amount and feels exhausted without any cause.

(५) परिस्रुता (Parisrutā)

अभीक्ष्णं स्रवते यस्या नार्या योनिः कृशात्मनः ॥ ३५॥
परिस्रुतेति सा ज्ञेया नारीणां जातहारिणी ॥ (का० सं० क० ६)

जिस कृश (दुर्बल) स्त्री की योनि अभीक्ष्ण (लगातार एवं अत्यधिक) स्राव करती है, वह स्त्री को आक्रान्त करने वाली जातहारिणी परिस्रुता (नाम) से जानी जाती है।

Emaciated woman having constant and excessive discharges per vaginum is known as suffering from *parisrutā*.

(६) अण्डघ्नी (Aṇḍaghnī)

यस्यास्त्वालक्ष्यमालग्नमण्डं प्रपतति स्त्रियाः ॥ ३६॥
अण्डघ्नीमिति ह्याहुस्तां दारुणां जातहारिणीम् ॥ (का० सं० क० ६)

जिस स्त्री का आलक्ष्य (दिखाई देने वाला) एवं आलग्न (चिपका हुआ) अण्ड (गर्भित स्त्रीबीज) गिर जाता है, उस दारुण जातहारिणी को अण्डघ्नी कहते हैं।

This dreadful *jātahāriṇī* is that, in which scarcely visible adhered *aṇḍa* (zygote) is expelled (repeatedly).

(७) दुर्धरा (Durdharā)

नितिनिर्वृत्तदेहाङ्गो यस्या गर्भो विनश्यति ॥ ३७॥
दुर्धरा नाम सा ज्ञेया सुघोरा जातहारिणी ॥ (का० सं० क० ६)

जिस स्त्री का अत्यधिक प्रकट न हुए देहाङ्ग वाला गर्भ (अर्थात् जिस गर्भ के देहाङ्ग बन गए हैं पर स्पष्टतर नहीं हैं) नष्ट हो जाता है, वह घोर जातहारिणी दुर्धरा नाम से जानी जाती है।

In this condition the embryo of woman whose body parts are not conspicuous is destroyed (repeatedly).

(८) कालरात्रि (Kālarātri)

सम्पूर्णाङ्गं यदा गर्भं हरते जातहारिणी ॥ ३८॥
कालरात्रीति सा प्रोक्ता दुःखात् स्त्री तत्र जीवति ॥ (का० सं० क० ६)

जब जातहारिणी सम्पूर्णाङ्ग गर्भ (सभी अंगों के विकसित होने के बाद का गर्भ) का हरण कर लेती है, उसे कालरात्रि कहते हैं। इसमें स्त्री बहुत ही दुःख से (कठिनाई से) जीवित रहती है।

When *jātahāriṇī* destroys the fetus possessing complete body parts, then it is known as *kālarātri*. In this the woman survives with great difficulty.

(९) मोहिनी (Mohinī)

यथा विषज्जते गर्भः प्रतीतो वाऽथ मुच्यते ॥ ३९॥
स्त्रीविनाशाय सा प्रोक्ता मोहिनी जातहारिणी ॥ (का० सं० क० ६)

जिसमें गर्भ संसक्त नहीं होता या संसक्त होकर गिर जाता है तथा साथ साथ स्त्री को मूर्च्छा आदि से आक्रान्त कर नष्ट कर देती है वह मोहिनी जातहारिणी है।

Scanned with CamScanner

This is characterized with either non attachment of *embryo* or its expulsion after attachment alongwith death of woman due to unconsciousness.

(१०) स्तम्भनी (Stambhanī)

यस्या न स्पन्दते गर्भः स्तम्भनी नाम सा स्मृता ॥ ४०॥ (का० सं० क० ६)

जिस स्त्री का गर्भ स्पन्दन नहीं करता, उसे स्तम्भनी कहते हैं।

In this the fetus does not quiver.

(११) क्रोशना (Krośanā)

उदरस्थो यथा क्रोशेत् क्रोशना नाम सा स्मृता ॥ ४१॥ (का० सं० क० ६)

उदर-स्थित (गर्भ) जिसमें (जिस जातहारिणी में) क्रोश (उपद्रव) करता है, वह क्रोशना नाम से जानी जाती है।

When the *fetus* situated in *kukṣi* (uterus) creates various complication then she is known as suffering from *krośanā.*

(आ) याप्य जातहारिणी (Yāpya i.e. having tendency of relapse Jātahāriṇīes)

एताः षोडश निर्दिष्टा नामभिः कर्मभिः पृथक्। दारुणा जातहारिण्यो याप्या धर्मक्रियावताम् ॥ ४८॥
(का० सं० क० ६)

ये नाम एवं कर्म के अनुसार पृथक् पृथक् सोलह जातहारिणी वर्णित हैं, ये दारुण जातहारिणीयाँ धर्म-कर्म-युक्त स्त्रियों में याप्य होती है।

These are sixteen having different names and actions. In woman doing righteous acts these are *yāpya* or relapsable.

(१) नाकिनी (Nākinī)

जायते तु मृतं नित्यं यस्या नार्याः सवे सवे ॥ ४२॥
नाकिनीमिति तां विद्याद्दारुणां जातहारिणीम्॥ (का० सं० क० ६)

जिस स्त्री को नित्य मृत ही सन्तान उत्पन्न होती है, उस दारुण जातहारिणी को नाकिनी कहते हैं।

The dreadful *jātahāriṇī* in which woman always delivers a dead child is known as *nākinī.*

(२) पिशाची (Piśācī)

जातं जातमपत्यं तु यस्याः सद्यो विनश्यति ॥ ४३॥
पिशाची नाम सा घोरा मांसादी जातहारिणी ॥ (का० सं० क० ६)

जिस स्त्री का उत्पन्न हुआ अपत्य तत्काल ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मर जाता है, वह मांस भक्षण करने वाली घोर पिशाची नाम की जातहारिणी है।

In this carnivorous *jātahāriṇī* named *piśācī,* the neonate of woman dies immediately after delivery.

अन्य १४ याप्य जातहारिणी (Other 14 relapsable jātahārinīs)

द्वितीये दिवसे यक्षी, तृतीयेऽहनि चासुरी ॥ ४४॥
कलिर्नाम चतुर्थेऽह्नि, पञ्चमेऽह्नि च वारुणी। षष्ठेऽहनि स्मृता षष्ठी, सप्तमेऽहनि भीरुका ॥ ४५॥
अष्टमे दिवसे याम्या, मातंगी नवमेऽहनि। दशमे भद्रकालीति, रौद्री त्वेकादशेऽहनि ॥
द्वादशे वर्धिका प्रोक्ता, त्रयोदशे च चण्डिका ॥ ४६॥
कपालमालिनी नाम चतुर्दशे च रेवती। ततः पक्षात् परे काले विज्ञेया पिलिपिच्छिका ॥ ४७॥
(का० सं० क० ६)

यद्यपि श्लोक में कहीं भी सन्तान की मृत्यु का स्पष्ट निर्देश नहीं है, फिर भी संदर्भ के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि सन्तान के जन्म के पश्चात् दूसरे दिन से लेकर पन्द्रह दिन की आयु का होने तक बारम्बार मृत्यु का कारण होने के ही आधार पर निम्न नाम दिए गए हैं।

These *jātahārinīs* kill the children repeatedly after birth on specific days.

(३) यक्षी (Yakṣī)

(जन्म के) दूसरे दिन (घातक) यक्षी।

Fatal on second day is *yakṣī.*

(४) आसुरी (Āsurī)

(जन्म के) तीसरे दिन (घातक) आसुरी।

Fatal on third day is *āsurī.*

(५) कलि (Kali)

(जन्म के) चतुर्थ दिन (घातक) कलि नाम की।

Fatal on fourth day named *kali.*

(६) वारुणी (Vāruṇī)

(जन्म के) पंचम दिन (घातक) वारुणी।

Fatal on fifth day is *vāruṇī.*

(७) षष्ठी (Ṣaṣṭhī)–

(जन्म के) छठवें दिन (घातक) षष्ठी जानी गयी है।

Fatal on sixth day is known as *ṣaṣṭhī.*

(८) भीरुका (Bhīrukā)–

(जन्म के) सप्तम दिन (घातक) भीरुका।

Fatal on seventh day is *bhīrukā.*

(९) याम्या (Yāmyā)

(जन्म के) आठवें दिन (घातक) याम्या।

Scanned with CamScanner

Fatal on eighth day is *yāmyā*.

(१०) मातङ्गी (Mātaṅgī)

(जन्म के) नवें दिन (घातक) मातङ्गी ।

Fatal on ninth day is *mātaṅgī*.

(११) भद्रकाली (Bhadrakālī)

(जन्म के) दसवें दिन (घातक) भद्रकाली ।

Fatal on tenth day is *bhadrakālī*.

(१२) रौद्री (Raudrī)

(जन्म के) ग्यारहवें दिन (घातक) रौद्री ।

Fatal on eleventh day is *raudrī*.

(१३) वर्धिका (Vardhikā)

(जन्म के) द्वादश दिन में (घातक) वर्धिका कही गई है ।

Fatal on twelfth day is said to be *vardhikā*.

(१४) चण्डिका (Caṇḍikā)

(जन्म के) तेरहवें दिन (घातक) चण्डिका ।

Fatal on thirteenth day is *caṇḍikā*.

(१५) कपालमालिनी (Kapālamālinī)

(जन्म के) चौदहवें दिन (घातक) कपालमालिनी नाम की रेवती है ।

Revatī fatal on fourteenth day is named *kapālamālinī*.

(१६) पिलिपिच्छिका (Pilipicchikā)

तत्पश्चात् एक पक्ष (पन्द्रह दिन) के काल में (घातक) पिलिपिच्छिका जानी जाती है ।

Lateron fatal after one fortnight is known as *pilipicchikā*.

(इ) असाध्य जातहारिणी (Asādhya or incurable Jātahāriṇīes)

(१) वश्या (Vaśyā)

यस्यास्तु गर्भरूपाणि पञ्च षट् सप्त वा मुने ! । म्रियन्तेऽनन्तरं वश्या असाध्या जातहारिणी ॥ ४९॥

(का० सं० क० ६)

हे मुनि ! जिस स्त्री के गर्भ रूप पंचम, षष्ठ या सप्तम मास में लगातार अन्दर ही मर जाते हैं (गर्भाशयान्तर्गत गर्भ की मृत्यु हो जाती है), वह असाध्य जातहारिणी वश्या है ।

In this condition there is repeated intra-uterine death of fetuses in fifth, sixth or seventh month.

(२) कुलक्षयकरी (Kulakṣayakarī)

म्रियन्ते दारका यस्याः कन्या जीवन्त्ययत्नतः । कुलक्षयकरी नाम साऽसाध्या जातहारिणी॥ ५०॥

(का० सं० क० ६)

जिस स्त्री के पुत्र मर जाते हैं एवं कन्याएं बिना यत्न किये ही जीवित रहती हैं, वह असाध्य कुलक्षयकरी नाम की जातहारिणी है ।

The woman whose sons die and daughters survive even without proper care is known to be suffering from *kulakṣayakarī jātahāriṇī*.

(३) पुण्यजनी (Puṇyajanī)

जातं जातमपत्यं तु यस्याश्च म्रियते स्त्रियाः । घोरा पुण्यजनी नाम साऽसाध्या जातहारिणी ॥ ५१॥

(का० सं० क० ६)

जिस स्त्री के अपत्य पैदा होते ही मर जाते हैं, वह भयंकर पुण्यजनी नाम की असाध्य जातहारिणी है ।

In dreadful *puṇyajanī jātahāriṇī* children of the afflicted woman die immediately after birth.

(४) पौरुषादिनी (Pauruṣādinī)

निष्पन्नं म्रियतेऽपत्यं यस्याः प्राक् षोडशाब्दतः । पौरुषादिनी सा प्रोक्ता असाध्या जातहारिणी ॥ ५२॥

(का० सं० क० ६)

जिस स्त्री की सन्तान सोलह वर्ष (की अवस्था) को प्राप्त करने के पूर्व ही मर जाती है, उस असाध्य जातहारिणी को पौरुषादिनी कहते हैं ।

The progeny of the woman afflicted with *pauruṣādinī jātahāriṇī* die before attaining the age of sixteen years.

(५) संदंशी (Saṃdaṃśī)

बिभर्त्यन्यं यदा गर्भं तदा पूर्वः प्रमीयते । सदंशीति वदन्त्येनामसाध्यां जातहारिणीम् ॥ ५३॥

(का० सं० क० ६)

दूसरे गर्भ के धारण करते ही पहिला (इस गर्भ से पहले ही उत्पन्न बच्चा) मर जाता है, इस असाध्य जातहारिणी को संदंशी कहते हैं ।

In this incurable *saṃdaṃśī jātahāriṇī*, immediately after conception the child born just before this conception dies.

(६) कर्कोटकी (Karkoṭakī)

गर्भैणैकं ग्रहेणैकं मृत्युनैकेन[1] युज्यते । एषा कर्कोटकीत्युक्ता दारुणा जातहारिणी ॥ ५४॥

(का० सं० क० ६)

स्त्री के गर्भवती होने पर (यमजों में से) एक सन्तान मर जाय और दूसरा बालग्रह से पीड़ित हो जाय, उसे कर्कोटकी नामक दारुण जातहारिणी कहते हैं ।

१. गर्भेणैका तथा मृत्युनैकेतु (शु० पा०)

Scanned with CamScanner

The woman afflicted from this *jātahāriṇī* named *karkoṭakī* when conceives her one child (of twins) dies and other suffers from *bālagraha*.

(७) इन्द्रवडवा *(Indravaḍavā)*

यमजं म्रियते यस्या एकं वोभयमेव वा । तामाहुरिन्द्रवडवामसाध्यां जातहारिणीं ॥ ५५॥
(का० सं० क० ६)

जिसके एक या दोनों यमज मर जाते हैं, उस असाध्य जातहारिणी को इन्द्रवडवा कहते हैं।

The woman whose one or both the children of twin delivery die is known as suffering from *indravaḍavā*.

(८) बडवामुखी *(Baḍavāmukhī)*

एकनाभिप्रभवयोरेकैश्चेन्म्रियते पुरा । म्रियते तद्वदप्येकस्तामाहुर्बडवामुखीम् ॥ ५६॥
(का० सं० क० ६)

एक नाभि से उत्पन्न (यमजों में) एक (बालक) पहिले मर जाता है तत्पश्चात् दूसरा भी मर जाता है, उसे बडवामुखी कहते हैं।

When one child of one *nābhija* (uniovular) twin dies first and subsequently second also dies, then it is known as *baḍavāmukhī*.

विमर्श (Comments)

ये जातहारिणियाँ क्या है ? इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। इनकी प्रवेशविधि का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि जहाँ मानुषी जातहारिणी घनिष्ट सम्पर्क से आविष्ट होती है, तिरश्चीन जातहारिणियाँ (शकुनी, मत्सी, वनस्पति, चतुष्पदा, सर्पी) उन-उन जीवों या वनस्पति को आघात करने या नष्ट करने के कारण होती हैं। पति या पत्नी के द्वारा आहार-विहार एवं आचार की विषमतायें, सामाजिक नियमों का उल्लंघन एवं पाप कर्म आदि भी इस जातहारिणी के प्रवेश के कारण हैं।

विभिन्न साध्यासाध्य जातहारिणियों के लक्षणों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ साध्य जातहारिणियाँ अधिकांशत: स्त्री के जन्मजात विकारों के कारण उत्पन्न ऋतुचक्र-वैषम्य एवं प्रारम्भिक अवस्था के गर्भस्राव एवं गर्भविकारों का वर्णन हैं, याप्य के अन्तर्गत अधिकांशत: नवजात शिशुओं की बारम्बार मृत्यु का उल्लेख है। असाध्य जातहारिणियों के अन्तर्गत विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों की मृत्यु के कारणों को अंतर्भूत किया गया है। जातहारिणी से आविष्ट स्त्री में न केवल शारीरिक या मानसिक विकार ही होते हैं, बल्कि उसे आर्थिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में भी हानि होती है।

उपर्युक्त सभी लक्षणों या व्याधियों को निदान की दृष्टि से एक शृंखला में बाँधना सम्भव नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन व्याधियों का कोई स्पष्ट कारण आचार्य को दृष्टिगोचर नहीं हो सका या जहाँ आयुर्वेद के सद्धान्तों के आधार पर दोष-दूष्य सम्मूर्छना का स्पष्ट उल्लेख संम्भव नहीं हो सका वहाँ एक दैवी शक्ति को व्याधि का कारण मान लिया गया। स्त्री विशेषकर ऋतुमती या गर्भिणी किसी अन्य स्त्री के अत्यधिक घनिष्ट शारीरिक सम्पर्क में न आये ताकि कहीं उसे कोई औपसर्गिक व्याधि न हो जाये तथा वह मानसिक एवं सामाजिक रूप से संतुलित व्यवहार करे, जीव या वनस्पतियों का घात न करे, क्योंकि इसमें उसे स्वयं भी आघात लगने का भय रहता है, आदि बातों के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने के लिए ही सम्भवत: उपर्युक्त वर्णन किया गया है। पति भी इस रेवती के भय से सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से संतुलित जीवन व्यतीत करेगा।

विभिन्न जातहारिणियों का लक्षणों के आधार पर सामंजस्य करने का प्रयत्न निम्नांकित तालिका ७ में किया गया है।

तालिका–७

रेवती नाम	सम्भाव्य व्याधि
१ शुष्क रेवती	विलम्बित रजोदर्शन प्रारम्भ (शारीरिक दौर्बल्यजन्य)
२ कटम्भरा	आजीवन अनार्तव (शारीरिक दौर्बल्यजन्य)
३ पुष्पघ्नी	स्त्रीबीज विरहित ऋतुचक्र एवं हॅरम्यूटिज्म (अंत:स्रावी विशेषकर डिम्बग्रन्थि के स्राव की कमी)।
४ विकुटा	ऋतुचक्र-वैषम्य
५ परिस्रुता	श्वेतप्रदर
६ अण्डघ्नी	अत्यधिक प्रारम्भिक अवस्था (ब्लैस्टोसिस्ट) का गर्भस्राव।
७ दुर्धरा	प्रथम त्रिमाह में गर्भस्राव।
८ कालरात्रि	गर्भावस्था के तीसरे त्रिमाह में प्रसव एवं शिशु-मृत्यु।
९ मोहिनी	स्त्री की विशिष्ट व्याधियों यथा गर्भजन्य विषमयता के कारण गर्भस्राव।
१० स्तम्भनी	गर्भास्पन्दन अभाव।
११ क्रोशना	गर्भजन्य-उपद्रव।
१२ नाकिनी	बारम्बार मृत-पुत्रोत्पत्ति।
१३ पिशाची[1]	नवजात शिशु की तत्काल मृत्यु।
१४ से २७ अर्थात यक्षी से पिलिपिच्छिका तक	जन्म के दूसरे दिन से १५ दिन तक नवजात शिशुओं की बारम्बार मृत्यु।
२८ वश्या	गर्भावस्था के मध्यकाल में गर्भ की गर्भाशयान्तर मृत्यु।
२९ कुलक्षयकरी	केवल पुत्रों की ही मृत्यु।
३० पुण्यजनी[1]	नवजात शिशु की जन्म के बाद तत्काल मृत्यु।
३१ पौरुषादिनी	कुमार की मृत्यु।
३२ संदंशी	गर्भाधान होते ही पहिली सन्तान की मृत्यु।
३३ कर्कोटकी	गर्भाधान होते एक सन्तान की मृत्यु एवं अन्य को ग्रहबाधा (यमज सन्तानों में)।
३४ इन्द्रवडवा	द्विबीजोत्पन्न यमलों की मृत्यु।
३५ बडवामुखी	एकबीजोत्पन्न यमलों की मृत्यु।

Looking into the etiology it appears that while all the *mānuṣī jātahāriṇīes* are transmitted through close physical contact, others i.e *tiraścīna* and *vanaspati* attack when woman destructs them. Use of non congenial diet, abnormal mode of living, non observance of social laws and unrighteousness are also enlisted in etiology.

All the *sādhya jātahāriṇīs* (curable ones) appear to be the description of menstrual

१. दोनों के एक ही लक्षण हैं, साध्यासाध्यता के अतिरिक्त अन्य कारण का स्पष्टीकरण कठिन है।

Scanned with CamScanner

abnormalities, vaginal discharges and abortions or other pregnancy disorders, *yāpya* (relapsable) group includes stillbirths and neonatal deaths, while the last i.e. *asādhya* (incurable) group is the description of death of twins and other children at various ages.

Considering above etiology and symtomatology, it is not possible to establish congruity with any single entity known today. It is just possible, that whenever the scientists of that era failed in establishing role of *doṣas* in causation of diseases, they considered some divine power responsible for diseases and described all those conditions under this heading. The psychological fear of the *jātahāriṇī* may deter the pregnant woman from comming in close physical contact of others lest she becomes victim of infective disorders, besides she will also use balanced diet and mode of life, will not harm the animals or plants lest she injures herself. Husband will also lead normal or balanced life due to fear of this *jātahāriṇī*.

On the basis of specific symptoms the *jātahāriṇīes* may be correlated in following way :

Name of *jātahāriṇī*	Probable diseases
1. *Śuṣka revatī*	Delayed menarche due to nutritional disorders.
2. *Kaṭambharā*	Primary amenorrhoea due to nutritional deficiency without influencing longevity.
3. *Puṣpaghnī*	Anovular menstruations associated with hirsutism.
4. *Vikuṭā*	Irregularly irregular menstrual cycle.
5. *Parisrutā*	Excessive vaginal discharges (leucorrhoea).
6. *Aṇḍaghnī*	Abortion of very short gestational age (blastocystic stage).
7. *Durdharā*	Abortions during first trimester.
8. *Kālarātri*	Premature deliveries associated with death of neonate.
9. *Mohinī*	Abortions due to diseases of the mother (toxaemia ?).
10. *Stambhanī*	Absence of quickening or stillness of fetus.
11. *Krośanā*	Pregnancy disorders (toxaemias ?).
12. *Nākinī*	Repeated stillbirths.
13. *Piśācī**	Neonatal death immediately after birth.
14. to 27. *Yakṣī* to *Pilipicchikā*	Repeated neonatal deaths from 2nd day of birth to fifteenth day.
28. *Vaśyā*	Intrauterine death of fetus in second trimester.
29. *Kulakṣayakarī*	Death of only male children.
30. *Puṇyajanī**	Death of child immediaterly after birth.

* both have similar description.

31. *Pauruṣādinī*	Death of child before sixteen years of age.
32. *Saṃdaṃśī*	Death of child after next conception.
33. *Karkoṭakī*	Death of one and affliction by *grahas* to the other child (out of twins) consequent upon achievement of conception.
34. *Indravaḍavā*	Death of binovular twins.
35. *Baḍavāmukhī*	Death of uniovular twins.

❐

Scanned with CamScanner

अध्याय ७

CHAPTER VII

गर्भ-व्यापद्

(DISORDERS OF FETUS)

महर्षि भेल ने पुरुष का स्त्रीस्वरत्व, स्त्री का पुरुषस्वरा होना तथा आमगर्भ की च्युति होना आदि विकारों को गर्भ-व्यापत्ति के कारण माना है[1]।

शार्ङ्गधर ने गर्भ-व्यापत् के अन्तर्गत उपविष्टक, नागोदर, मक्कल्ल, मूढ़गर्भ, विष्कम्भ, गूढ़गर्भ, जरायु-दोष तथा गर्भ-पात आदि आठ गर्भ रोगों का नामोल्लेख तो किया है[2] परन्तु इनके विशिष्ट लक्षणों आदि का वर्णन नहीं दिया। अन्य संहिताओं में यद्यपि गर्भ-व्यापद् की कोई विशिष्ट परिभाषा नहीं दी गई परन्तु गर्भ को आक्रान्त करने वाले विभिन्न विकारों का वर्णन दिया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत गर्भ को आक्रांत करने वाले उन्हीं विकारों का वर्णन किया जा रहा है।

Feminine voice of male, masculine voice of female and expulsion of *āma garbha* are due to disorders of fetus is the opinion of Bhela. Śārṅgadhara has enumerated eight disorders i.e. *upaviṣṭaka, nāgodara, makkalla, mūḍhagarbha, viṣkambha, gūḍhagarbha, jarāyudoṣa* and *garbhapāta* etc. under the heading of *garbhavyāpat* without elaborating these any further. Though in other texts of *āyurveda* one does not come across specific disorder under this heading, however, for the sake of description all the conditions (excepting teratologic abnormalities) affecting fetus are describd in this chapter.

गर्भस्राव एवं गर्भपात (Garbhasrāva and garbhapāta or abortion of first or second trimester)

गर्भ-स्राव एवं पात की परिभाषा (Definition of garbha srāva and pāta)

आचतुर्थात् ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भविच्युतिः। ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः॥
(सु० सं० नि० ८/१०; मा० नि० ६४/२; भा० प्र० चि० ७०/७२ एवं० यो० र० स्त्री गर्भ रो० नि०; बाद के तीनों में गर्भविच्युति के स्थान में गर्भविद्रवः)

चतुर्थ मास तक गर्भ-विच्युति (स्वस्थान से अलग होकर गिरना) होने पर स्राव होता है (द्रव रूप होने के कारण) तथा पाँचवें एवं छठे महीने में शरीर हो जाने पर उसका पात होता है, अर्थात् चतुर्थ मास तक की गर्भ-च्युति को गर्भ-स्राव तथा पाँचवें एवं छठे महीने की गर्भ-विच्युति को गर्भ-पात कहते हैं।

मधुकोष व्याख्याकार ने भोज का वचन उद्धृत करते हुए गर्भस्राव की मर्यादा तीन माह तक तत्पश्चात् संघातभूत होने

१. नरस्य स्त्रीस्वरत्वं वा स्त्रिया वा पुरुषस्वरा(रम्)। आमं गर्भच्युतिं वापि गर्भव्यापत्तिजान्विदुः॥ (भे० सं० सू० ११/१५)

२. ... ...तथाष्टौ गर्भजा गदाः। उपविष्टकगर्भः स्यात्तथा नागोदरः स्मृतः॥
मक्कलो मूढगर्भश्च विषकम्भो गूढगर्भकः। जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः॥ (शा० सं० पूर्व० ७/१८०, १८१)

के कारण गर्भपात की संज्ञा दी है[1]।

The expulsion of fetus upto fourth month of pregnancy is termed as *garbha-srāva* because the products of conception are liquid. there after in fifth and sixth months it is termed as *garbha-pāta*, because by this period the fetal parts have attained some stability or have become solid. Bhoja opines (quoted in Madhukoṣa commentary of Mādhava Niḍāna) that the period of *garbha srāva* is upto three months.

विमर्श (Comments)

गर्भस्राव प्रक्रिया को देखते हुए भोज का वचन अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है, क्योंकि तीसरे मास तक अपरा तथा गर्भोदक के पूर्ण निर्माण न होने से स्राव में अधिकांशतः अपूर्णता रहती है एवं गर्भ का थोड़ा-थोड़ा अंश बाहर आता है, तत्पश्चात् गर्भोदक, अपरा तथा जरायु (एमनिऑटिक कला) की सामान्य निर्मिति के कारण गर्भ स्राव अधिकांशतः लघु-प्रसव सदृश ही सम्पादित होता है।

Explanation of Bhoja appears more logical because upto third month i.e. before complete formation of placenta, amniotic membrane and its fluid, the expulsion of products of conception usually occurs in pieces while after this period due to complete formation of amniotic bag the mechanism of abortion resembles miniature labour, which is probably the source of above description.

गर्भस्राव या पात का निदान (Causes of abortion)

ये ह्यस्य कुक्षौ वृद्धिहेतुसमाख्याता भावास्तेषां विपर्ययादुदरे विनाशमापद्यते, अथवाऽप्यचिरजातः स्यात्॥
(च० सं० शा० ४/२९)

सा चेच्चतुर्थ्यभृतिषु मासेषु क्रोधशोकासूयेर्ष्याभयत्रासव्यवायव्यायामसंक्षोभसंधारणविषमाशन (विषमासन-शु० पा०)शयनस्थानक्षुत्पिपासातियोगात् कदाहाराद्वा पुष्यं पश्येत्॥ (च० सं० शा० ८/२४)

ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीडनधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरुक्षकटुतिक्त-भोजनशोकातिक्षारसेवनातिसास्वमनविरेचनप्रद्वोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभिर्विशेषैर्बन्धनान्मुच्यते गर्भः, फलमिव वृन्तबन्धनादभिघातविशेषैः॥ (सु० सं० नि० ८/३)

कृमिवाताभिघातैस्तु तदेवोपद्रुतं फलम्।
पतत्यकालेऽपि यथा तथा स्याद् गर्भविच्युतिः॥ (सु० सं० नि० ८/९)
तत्र पूर्वोक्तैः कारणैः पतिष्यति गर्भे ..... ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

स्त्री चेदापन्नगर्भा परिहार्याण्यासेवेत। तत्र यस्या वस्तिपार्श्वश्रोणियोनिमुखेषु शूलं पुष्पदर्शनं वा स्यात्॥ ३॥

यस्याः पुनरतिमात्रदोषोपचयाद्यथोक्तैर्वा व्यवायादिभिरन्यैर्वा व्याधिभिः पूर्वोपचितेन वा जनन्यपत्ययोः कर्मणा बन्धान्मुच्यते गर्भः फलमिव वृन्तात्॥ (अ० सं० शा० ४/३ व २७)

गर्भिण्याः परिहार्याणां सेवया रोगतोऽथ वा। (अ० हृ० शा० २/१)

गर्भ-वृद्धि के जो हेतु बताए गए हैं यदि उनमें विकार या विपरीतता आ जाय तो गर्भ का उदर में ही विनाश हो

१. गर्भविद्रव इति अनतिघनावयत्वेन विशेषेण द्रवरूपतया गर्भविद्रवो भण्यते; स्रावो नातिघनत्वात्, पातस्तु घनत्वात्। यतु भोजेऽभिहितम्- "आतृतीयात्ततो मासाद्गर्भः स्रवति शोणितम्। ऊर्ध्वं संघातभूतस्तु गर्भः पतति योषिताम्।"
(मा० नि० ६४/२ की मधु० व्याख्या)

Scanned with CamScanner

जाता है अथवा वह अचिर अर्थात् शीघ्र ही (समय से पूर्व गर्भ-स्राव या पात रूप में) उत्पन्न हो जाता है।

चतुर्थ मास से लेकर (आगे आठवें मास तक) क्रोध, शोक, दूसरे की निन्दा या असंतोष, इर्ष्या, भय, त्रास, व्यवाय, व्यायाम (अत्यधिक) संक्षोभ, संधारण (वेग-विधारण), विषम रूप से या विषम स्थान में बैठने, सोने या खड़े होने, भूख एवं प्यास का अतियोग (अत्यधिक निरोध करना) तथा कदाहार (कुत्सित या सड़े गले आहार[1]) के सेवन से स्त्री को पुष्प-दर्शन (रक्तस्राव) होने लगता है। अन्यत्र भी महर्षि चरक ने शुक्र के दोषों से गर्भस्राव या पात[2] होने तथा वायु की विकृति से गर्भ के नाश होने का[3] वर्णन किया है।

पूर्व वर्णन में गर्भ के सम्पूर्ण देह, समय से एवं सुख पूर्वक उत्पन्न होने के लिए शुक्र, असृक्, आत्मा, गर्भाशय एवं ऋतुकाल का सम्पत् होना (अर्थात् शुद्ध एवं सामान्य होना) तथा अन्य हित आहार-विहार एवं उपचार का होना कारणभूत बताया है।[4] उपर्युक्त सभी भावों में विकार होने से गर्भ अपने समय में न होकर उसके पहिले भी उत्पन्न हो सकता है अर्थात् शुक्र, आर्तव, आत्मा, गर्भाशय, ऋतुकाल तथा माता के आहार-विहार के विकार भी गर्भ-स्राव या पात के कारण हैं।

महर्षि सुश्रुत ने गर्भस्राव तथा मूढ़गर्भ[1] के निदानों का एक साथ वर्णन करते हुए लिखा है कि (अत्यधिक) मैथुन, यान (रथादि की सवारी), वाहन (अश्वादि की सवारी[2]), अध्वगमन (पैदल चलना[3]), प्रस्खलन (लड़खड़ाना या ठोकर लगना), प्रपतन (प्रासाद आदि ऊँचे स्थान से तीव्रता से गिर जाना[4]), प्रपीड़न, धावन, अभिघात (शस्त्र, लोष्ट या कोड़े आदि से प्रहार[5]), विषम स्थान में शयन एवं बैठना, उपवास, वेगाभिघात, अतिरुक्ष, कटु एवं तिक्त भोजन, शोक, क्षार का अतिसेवन, अतिसार, वमन एवं विरेचन (का अतिप्रयोग), प्रेङ्खोलन (झूले में झूलना), अजीर्ण, एवं गर्भपातक औषधियों के प्रयोग से गर्भ अपने बन्धनों से उसी प्रकार मुक्त हो जाता है जिस प्रकार कि अभिघात आदि से फल अपने वृन्त के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

पुनश्च संक्षेप में कहा है कि जिस प्रकार कृमि, वात एवं आघात से उपद्रुत होकर फल अकाल में गिर जाता है उसी प्रकार (कृमि, वात तथा आघात के कारण) गर्भ की भी विच्युति हो जाती है।

अन्यत्र लिखा है कि माता के मानसिक और आगन्तुक दुखों के कारण तथा व्याधियों से (गर्भ अपनी स्वयं की व्याधियों से) पीड़ित होने के कारण कुक्षि में गर्भ को व्यापत्ति होती है।[7] यद्यपि यह वर्णन गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु के कारणों का है फिर भी "कुक्षि में गर्भ को व्यापत्ति या कष्ट" इस वाक्य से इसे गर्भस्राव के कारणों के अन्तर्गत भी निहित कर सकते हैं।

पूर्व पृष्ठों में रजःस्राव के तीसरे दिन संभोग से गर्भाधान होने पर गर्भस्राव[8] तथा पचीस वर्ष से कम आयु के पुरुष

१. कदाहारः कुत्सिताहारः। (च० सं० शा० ८/२४ की चक्र० टीका)

२. ··· ···· शुक्रस्य दोषात्। न चास्य जायते गर्भः पतति प्रस्रवत्यपि ॥ (च० सं० सू० २८/१८)

३. च० सं० सू० १२/८ (पृष्ठ १७७)

४. शुक्रासृगात्माशयकालसंपद् यस्योपचारश्च हितैस्तथाऽऽत्रैः। गर्भश्च काले च सुखी सुखं च सञ्जायते संपरिपूर्णदेहः ॥ (च० सं० शा० २/६)

५. पूर्वोक्तैरिति मूढगर्भनिदानोक्तैर्ग्राम्यधर्मयानवाहनादिभिः ॥ (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टी०)

६. ··· ··· यानं रथादि, वाहनमश्वादि, अध्वगमनं पद्भ्यां मार्गगमनं, ··· ··· प्रपतनं प्रासादादेः सकाशादतिशयेन पतनम् ··· ···। अभिघातः शस्त्रलोष्टकशादिभिः प्रहारः ··· ··· ··· (सु० सं० नि० ८/३ की डल्ह० टी०)

७. मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीड़ितः। गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्चि प्रपीडितः ॥ (सु० सं० नि० ८/१३, मा० नि० ६४/९)

८. सु० सं० शा० २/३१ (पृष्ठ ७०)

द्वारा सोलह वर्ष से कम आयु की स्त्री में गर्भाधान कराने से गर्भ को कुक्षि में ही व्यापत्ति[1] होने अर्थात् स्रवित भी हो सकने का उल्लेख किया है।

गर्भिणी स्त्री के साथ मैथुन करने से गर्भ को पीड़ा होती है,[2] परिणाम स्वरूप गर्भ का स्राव अथवा पात भी हो सकता है।

अष्टांगसंग्रह में लिखा है कि यदि आपन्न-गर्भा स्त्री (गर्भवती स्त्री) परिहार्य (वर्ज्य आहार-विहार) का परित्याग नहीं करती तो उसे श्रोणि एवं योनिमुख में शूल तथा पुष्प-दर्शन (रक्तस्राव) आदि हो जाते हैं अर्थात् गर्भस्राव होने लगता है। इन्होंने भी महर्षि सुश्रुत के सदृश ही मूढ़गर्भ एवं गर्भस्राव के निदानों का एक साथ वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भवती स्त्री में दोषों के अतिमात्र संचय हो जाने से, पूर्वोक्त मैथुन आदि (गर्भिणी द्वारा परित्याज्य आहार विहार) या अन्य व्याधियों के कारण अथवा माता या गर्भ के पूर्व जन्म के कर्मों के कारण गर्भ अपने बन्धनों से उसी प्रकार मुक्त हो जाता है जिस प्रकार कि फल अपने वृन्त से मुक्त हो जाता है। टीकाकार इन्दु ने स्पष्ट किया है कि गर्भ के पोषण के लिए स्थित माता के बन्धनों से मुक्त होकर वह गर्भ आम के साथ शोणित युक्त होकर प्रस्रुत हो जाता है अर्थात् आम-गर्भ का स्राव हो जाता है।[3]

अष्टांगहृदयकार ने बहुत ही संक्षेप में लिखा है कि परिहार्य (त्याज्य आहार विहार) के सेवन से तथा अन्य रोगों से गर्भस्राव हो जाता है। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि स्वभाव, अपथ्य, सर्षप शाक एवं मन्दक दधि आदि का अत्यधिक सेवन, देश, काल आदि किसी भी कारण से रोग हो सकते हैं जो गर्भ स्राव का कारण बन सकते हैं।[4] पूर्व वर्णन में आचार्य ने अतिव्यवाय आदि लगभग सुश्रुतादि उल्लिखित सभी निदानों का गर्भिणी के लिए वर्ज्य आहार-विहार के अन्तर्गत वर्णन किया है एवं वहीं यह सपष्ट भी कर दिया है कि इनका परित्याग न करने से आम-गर्भ का स्राव हो सकता है।[5]

महर्षि भेल ने गर्भ-व्यापत्तियों का कारण संक्षेप में विंशति योनिदोषों को ही बताया है।[6]

महर्षि हारीत ने लिखा है कि वातादि दोषों के प्रभाव के कारण वात से प्रेरित गर्भ दशवें मास के पूर्व में भी उत्पन्न हो जाता है[7] अर्थात् वातादि दोषों के विकार से गर्भ का स्राव या पात हो जाता है।

आचार्य भावमिश्र ने गर्भ-स्राव या पात के कारणों का विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है कि (अत्यधिक) मैथुन, अध्वगमन (पैदल चलना), यान (रथादि की सवारी), आयास (परिश्रम), या प्रपीडन (दबाना), ज्वर, उपवास, उत्पतन (ऊँचे से गिर जाना), प्रहार (चोट), अजीर्ण, धावन (तेज दौड़ना), वमन या विरेचन के प्रयोग, कुंथन, गर्भपातन द्रव्यों के प्रयोग, तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, कटु, तिक्त तथा रुक्ष द्रव्यों के सेवन, वेगाभिघात, विषम स्थान में शयन या आसन (बैठने)

१. सु० सं० शा० १०/५४, अ० सं० शा० १/५ (पृष्ठ ८२)

२. सु० सं० चि० २४/१२३ (पृष्ठ ८३)

३. गर्भस्य बन्धनं यत्र तत्र मातुरनुबन्धो भवति परिपोषार्थं ·····, स व्यापन्नो गर्भ आमः सन् शोणितभावेनापि प्रसूयते। (अ सं० शा० ४/२७ की इन्दु टी०)

४. अथवा रोगतः पुष्पे दृष्टे, रोगस्य च स्वभावापथ्यसर्षपशाकमन्दकदध्यादेराहारान्मात्रादेशकालादिवशाद्वा सम्भवः। (अ० ह० शा० २/१ की अरुण० टी०)

५. अ० ह० शा० १/४४ से ४७ (पृष्ठ २२८, २२९)

६. ये च ते विंशतिः प्रोक्ता योनिदोषा(:) चिकित्सिते। एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गर्भो व्यापद्यते स्त्रियाः ॥ (भे० सं० शा० ३/४)

७. अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते। वातसंप्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ॥ २४॥
प्रसूयते वाप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृश्यते ॥ (हा० सं० षष्ठस्था० १/२४ व २५)

Scanned with CamScanner

एवं भय के कारण गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है[1]। अभिघात, विषमाशन एवं पीडन आदि से पेड़ से पके फल के अकाल पात के सदृश ही गर्भ तत्क्षण तथा अकाल में ही गिर जाता है[2]। वात के अस्सी विकारों में गर्भनाश का उल्लेख है[3] अर्थात् वायु-प्रकोप गर्भनाश (गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु या गर्भस्राव) का कारण है।

माधवनिदान एवं योगरत्नाकरकार ने लिखा है कि भय एवं अभिघात से तथा तीक्ष्ण एवं उष्ण अन्नपान के सेवन से गर्भ-पात हो जाता है। अभिघात, विषमाशन एवं पीडन आदि से पेड़ से पके फल (के अकाल-पात) सदृश गर्भ (अकाल में) क्षण-मात्र में ही गिर जाता है[4,5] मधुकोषव्याख्याकार ने भयाभिघातादि को उपलक्षण मात्र मानकर सुश्रुतोक्त ग्राम्यधर्म, यानादि कारणों के भी समावेश का निर्देश दिया है।[6]

प्रकुपित वायु के शुक्रस्थ होने पर भी गर्भ के स्राव या पात होने की सम्भावना होती है[7]।

Caraka says that abnormalities in the factors responsible for proper growth and development of fetus mentioned earlier can cause either intrauterine death of the fetus or its expulsion before viability.

After fourth month of pregnancy anger, grief, calumnation or discontent, jealousy, fear, terror, excessive coitus and exercise, irritation, suppression of natural urges, sitting-standing and sleeping on uneven place or in abnormal postures, excessive suppression of thirst and hunger, and use of stale food cause bleeding per vaginum or abortion. Abnormalities of *śukra* and *vāyu* are also causative factors, normal status of *śukra* (sperms), *asṛk* (ovum and ovarian hormones), *ātmā, āśaya* (uterus), *ṛtukāla* and use of congenial dietetics are responsible for delivery of fetus in its proper mature period or in other words abnormalities in these factors can cause abortion.

Suśruta mentioning etiology of obstructed labour and abortion together says that due to coitus, travelling in carriage, riding on horse etc., journey on foot, staggering or stumbling, falling from height as palace etc., compression, running (very fast), trauma by weapon, stone or whips etc., sleeping or sitting in uneven place, fasting, suppression of natural urges, consumption of excessive dry, hot or pungent diet, grief, diarrhoea, excessive use of *kṣāra* (alkalies), emetics and purgatives, swinging, indigestion and use of abortifacient

१. ग्राम्यधर्माध्वगमनयानायासप्रपीडनैः। ज्वरोपवासोत्पतनप्रहाराजीर्णधावनैः॥ ६९॥
वमनाद्य विरेकाच्च कुन्थनात् गर्भपातनात्। तीक्ष्णक्षारोष्णकटुकतिक्तरुक्षनिषेवणात्॥ ७०॥
वेगाभिघाताद्विषमादासनाच्छयनाद्भयात्। गर्भे पतिते ·····॥ ७१॥
(गर्भपातनाद्-गर्भपातननियमेन गर्भपातनशीलं द्रव्यम्-टीका)॥ (भा० प्र० चि० ७०)

२. गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः। पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन॥ ७३॥
(यथा वृन्तलग्नं पक्वं फलमभिघातेनाकाले एव पतति, तथा गर्भोऽप्यभिघातादिनाऽकाले पतति-टीका)॥ (भा० प्र० चि० ७०)

३. भा० प्र० चि० २४/१५

४. भयाभिघातात् तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात्। गर्भो पतति ··· ··· ···। गर्भोऽभिघात ··· ··· पतति क्षणेन॥
(भा० प्र० सदृश ही; मा० नि० मूढगर्भ० ६४/१ व ३; यो० र० स्त्री-गर्भ रो०)

५. यथा वृन्तलग्नं पक्वफलमभिघातेनाकाल एव पतति, तथोक्तहेतुभिरकाले गर्भपातः॥ (मा० नि० ६४/३ की मधु० व्याख्या)

६. भयाभिघातादित्यादि। एतच्चोपलक्षणं, तेनान्येऽपि सुश्रुतोक्ता ग्राम्यधर्मयानवाहनपतनस्खलनादयो बोद्धव्याः॥
(मा० नि० ६४/१ की मधु० व्याख्या)

७. च० सं० चि २८/३४; अ० सं० नि० १५/१५-१६; अ० हृ० नि० १५/१३ (पृष्ठ १७७-१७९)

drugs, the fetus gets detached from its bonds in the same way as a fruit gets detached from its stalk due to trauma. As a fruit falls down untimely due to effect of *kṛmi* (insects / parasites), *vāta* (wind) and *āghāta* (jerk or trauma), similarly fetus also gets detached due to influence of all these factors. Physical and psychological disorders of mother and disorders of fetus are also said to be responsible for producing fetal complications including abortion. The conception occurring on third day of menstrual cycle, or by a man of below twentyfive or in a woman of below sixteen years of age is also expelled. He writes further that coitus with a pregnant woman troubles the fetus, thus it may get aborted.

Both the Vāgbhaṭas say that if the woman does not give up contraindicated things the abortion occurs. Vāgbhaṭa I further writes that due to excessive accumulation of *doṣas*, non-avoidance of contraindictated articles, due to diseases or influence of deeds of previous life of either the mother or the fetus, the fetus gets detached from its bonds in the same way as a fruit gets separated from its stalk. Indu opines that the fetus gets detached from the bonds existing for its nourishment. Arunadatta has included nature, use of non-congenial diet, mustard (leaf) etc. vegetables and slowly formed curd, place of living and time factor as causes of diseases which may initiate abortion.

Bhela says that all the twenty *yonivyāpat* can cause abortion while Hārīta holds vitiated *doṣas* specially *vāta* responsible.

Views of Bhāvaprakāśa, Yogaratnākara and Mādhava Nidāna are almost indentical to Suśruta. In Bhāwaprakāśa *garbhanāśa* is enumerated as one of the eighty disorders of *vāta* or *vāta* is responsible for abortions.

Aggravated *vāyu*, located in *śūkra* causes abortion.

विमर्श (Comments)

गर्भ-व्यापद् के अन्तर्गत गर्भ के जन्मजात विकारों के अतिरिक्त उन सभी व्याधियों का वर्णन किया गया है जो गर्भ को आक्रांत करती हैं। गर्भस्राव एवं गर्भपात के अतिरिक्त उपशुष्कादि आठ व्यापदों का वर्णन अग्रिम पृष्ठों में किया जायगा। इनके अतिरिक्त जातहारिणी प्रकरण में वर्णित अण्डघ्नी, दुर्धरा, कालरात्रि तथा वश्या जातहारिणियों में अत्यधिक प्रारम्भिक अवस्था के गर्भ से लेकर दूसरे त्रैमास तक के गर्भस्राव का ही वर्णन है तथा स्तम्भनी, मोहिनी, क्रोशना जातहारिणयाँ भी विभिन्न गर्भ-विकारों की ही ओर इंगित करती हैं,[1] इनके अतिरिक्त निम्न योनिव्यापद् भी विभिन्न अवस्थाओं के गर्भस्राव या पात का ही मुख्य लक्षण प्रदर्शित करते हैं जैसे-

(१) **पुत्रघ्नी**- महर्षि चरक व सुश्रुत ने इस योनिव्यापद् का स्वरूप उत्पन्न हुए या स्थित हुए हुए गर्भ का विनाश कहा है।[2]

(२) **वामिनी**- यद्यपि अन्य आचार्यों ने इस रोग में केवल शुक्र के ही योनि द्वारा वमन का वर्णन किया है परन्तु

१. का० सं० कल्प० ६३६ से ४१, ४९॥ (पृष्ठ ३११, ३१२, ३१४)

२. (अ) रौक्ष्याद्वायुर्यदा गर्भं जातं जातं विनाशयेत्। दुष्टशोणितजं नार्याः पुत्रघ्नी नाम सा मता॥
(अत्र च यद्यपि सामान्येनैव गर्भविनाश उक्तः, तथापि पुत्रस्यैव प्राधान्यात् 'पुत्रघ्नी' इति व्यपदेशो ज्ञेयः-चक्र०)
(च० सं० चि० ३०/२८)
(आ) स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात् (स्थितं स्थितं गर्भं हन्ति नोत्पन्नमात्रम्-डल्ह० टी०)।
(सु० सं० उ० ३८/१३)

Scanned with CamScanner

महर्षि सुश्रुत ने 'रज से युक्त शुक्र' के वमन का वर्णन दिया है जिसे बहुत ही प्रारम्भावस्था का गर्भस्राव भी मान सकते हैं।[1]

(३) असृजा या अप्रजा– महर्षि चरक ने असृजा योनि के लक्षणों में लिखा है कि गर्भ प्राप्त होने के बाद भी रक्तस्राव होता रहता है, टीकाकार चक्रपाणि ने पाठभेद 'अप्रजा' का उल्लेख करते हुए गर्भ के न ठहरने अर्थात् गिर जाने के लक्षण का भी समावेश किया है।[2]

चूँकि उपर्युक्त वर्णित तीन योनिव्यापद् भी गर्भस्राव के ही प्रतीक प्रतीत होते हैं, अतः गर्भ-स्राव या पात के निदान के विषय में विचार करते समय योनिव्यापद् के निदानों का भी समावेश करना पड़ेगा। सभी आचार्यों ने योनिव्यापद् के मुख्य चार कारण माने हैं (१) मिथ्याचार, (२) आर्तवदोष (३) बीजदोष (४) दैव प्रकोप।[3] जातहारिणी का कारण भी एक अदृश्य शक्ति का शरीर में प्रवेश है, अतः गर्भस्रावान्तर्गत वर्णित निदान, योनिव्यापद्-निदान तथा जातहारिणी-निदान सभी को एक साथ विचार कर गर्भस्राव-कारक कारणों का विश्लेषण किया जाय तो संक्षेप में निम्नलिखित कारणों को गर्भस्राव या पातोत्पादक कहा जा सकता है:-

१. अज्ञात कारण–दैवी प्रकोप, जातहारिणी-प्रवेश, आत्मदोषादि।

२. गर्भ से सम्बन्धित कारण–

अ. जिनेटिक या क्रोमसोम के विकार या बीजदोष।
आ. औपसर्गिक व्याधियाँ या कृमि-जन्य विकार।
इ. अन्य व्याधियों से पीड़ित गर्भ।

३. माता से सम्बन्धित कारण–

अ. स्त्री-जननाङ्गों के रचनात्मक घटकों के विकार यथा गर्भाशय एवं योनि के दोष।
आ. गर्भाशय-मांसपेशियों की अत्यधिक उत्तेजना या क्रियाशीलता–
१. अतिसारादि एवं वेग-विधारण से उत्पन्न प्रत्यावर्तन क्रिया-जन्य गर्भाशय-मांसपेशी उत्तेजना।
२. यान, वाहन, शारीरिक आघात, धावन, प्रपतनादि तथा अतिसारादि में अत्यधिक कुंथन एवं विषम स्थान-शयनादि के कारण आकस्मिक उदरगुहा-भार-वृद्धि हो गर्भाशय-पेशी उत्तेजना।
३. वात-विकार या नाड़ी-कार्य विकार।
इ. स्त्री के अङ्गरसों के विकार-
१. काल दोष अर्थात् ऋतुव्यतीत काल में गर्भाधान होने पर सम्भवतः गर्भाशयान्तःकला में अङ्गरसों का प्रभाव कम हो जाने से गर्भ के आधान की क्रिया में विषमता हो गर्भस्राव।
२. आर्तव दोष अर्थात् स्त्री के अङ्गरसों के विकार।
ई. आकस्मिक शारीरिक आघात यथा यान-वाहनादि का प्रयोग, प्रस्खलन आदि।
उ. जननाङ्गों में स्थानिक आघात यथा अतिव्यवाय।
ऊ. स्त्री के मानसिक विकार या साइकॉजेनिक यथा क्रोध, शोक, भय, वेग-विधारण एवं अन्य मानसिक उपताप। अतिव्यवाय मानसिक विकृति द्वारा भी गर्भस्राव-कारक हो सकता है।

१. सवातमुद्गिरेद् बीजं वामिनी रजसायुतम्। (बीजम् शुक्रम्, उद्गिरेत् वमेत्। रजसा युतम् आर्तवमिश्रम्-डल्ह० टी०)
(सु० सं० उ० ३८/१३)

२. रक्तपित्तकरैर्नार्या रक्तं पित्तेन दूषितम्। अतिप्रवर्तते योन्यां लब्धे गर्भेऽपि सासृजा॥१६॥
(गर्भे लब्धेऽपि रक्तमतिप्रवर्तते तेनास्या गर्भो न तिष्ठति, ··· ··· ये तु साऽप्रजा इति पठन्ति-चक्र०॥)
(च० सं० चि० ३०/१६)

३. च० सं० चि० ३०/८; सु० सं० उ० ३८/५, ६।

ए. स्त्री का पोषण-वैषम्य-
१. अतिसार, वमन, विरेचनादि से पोषक तत्वों का वहिःनिस्सरण।
२. कदाहार, अतिरूक्ष, तिक्त, कटु भोजनादि अर्थात् असम्यक् पोषक तत्वों वाला भोजन।
३. क्षुधा-निरोध एवं उपवास।
ऐ. स्त्री की सार्वदैहिक व्याधियाँ यथा औपसर्गिक या कृमि-जन्य व्याधियाँ, अन्य आतप आदि तथा वातादि दोष के विकार।
ओ. स्त्री की अवस्था जन्य यथा काल-वैषम्य अर्थात् अति बाल या वृद्धा में गर्भाधान होने पर भी गर्भस्राव होने की संभावना रहती है।
औ. गर्भनाशक या गर्भपातक औषधियों का प्रयोग यथा कटु, उष्ण, तीक्ष्ण द्रव्यों, क्षार तथा गर्भशातक औषधियों का प्रयोग।

उपर्युक्त गर्भस्रावादि के कारणों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक पुस्तकों में वर्णित लगभग सभी कारणों का उल्लेख आचार्यों ने कर दिया है।

Expulsion of fetus from very early or blastocystic stage to second trimester is the main clinical feature of *aṇḍaghnī, durdharā, kālarātri* and *vaśyā* etc. *jātahāriṇīes,* similarly *putraghnī* (repeated abortion of *sthita garbha* or after fourth month), *vāminī* (expulsion of *raja* alongwith *śukra* or very young zygote) and *asṛajā* or *aprajā* (abortion due to bleeding after conception) etc. *yonivyāpad* also denote repeated abortion. Thus while considering the etiology of abortion causes of *yonivyāpad* have also to be considered. *Mithyācāra, ārtavadoṣa, bijadoṣa* and *daiva-prakopa* are main causes of *yonivyāpad.* Taking into account the causes of abortions, *yonivyāpat* and also *jātahāriṇī* following factors may be held responsible for abortion.

1) **Unknown or idiopathic**—Curses of god, infliction by *jātahāriṇī* and effect of deeds of previous life.

2) **Fetal factors—**

a) Genetic or chromosomal defects or *bījadoṣa.*
b) Fetal infections or *kṛmi.*
c) Other diseases of fetus.

3) **Maternal factors—**

a) Abnormalities of anatomic components of reproductive systems i.e. *garbhāśaya* or *yonidoṣa.*
b) Hyperactivity or stimulation of myometrium—
1) Reflex stimulation of myometrium in diarrhoea etc. or during suppression of natural urges.
2) Sudden increase in intraabdominal pressure due to trauma, racing, walking, falling, sleeping in abnormal posture etc. described earlier as well as due to straining in diarrhoea etc. causing myometrial hyper-stimulation.
3) Hyper excitability of nerves or abnormalities of *vāta.*

Scanned with CamScanner

c) Abnormalities of female hormones—
1. Impregnation in late secretory phase (*ṛtuvyatīta kāla*) or *kāla doṣa*. In this condition due to slight withdrawl of hormones endometrium may not allow proper implantation of zygote.
2. Abnormality of hormones or *ārtava doṣa*.
d) Physical trauma—Riding in animals or carriages, trauma, falling etc. described earlier.
e) Local trauma—during excessive coitus.
f) Psychogenic factors such as anger, grief, fear, suppression of natural urges, other psychological abnormalities etc.; excessive coitus may also cause some psychological upset leading to abortion.
g) Nutritional factors:—
1) Excessive loss due to diarrhoea, vomiting etc.
2) Mal-intake as use of putrified diet, excessive *rukṣa, kaṭu, tikta* etc. diet.
3) Inadequate intake as suppression of hunger and fasting etc.
h) Other general diseases of women such as infective or *kṛmijanya*, fever or *ātapa* and disorders of *vāta* etc. *doṣas*.
i) Age factor or *kāla doṣa*—Too young or too old women are more prone for abortion.
j) Use of abortifacients and other drugs capable of destructing the fetus such as use of *kaṭu, tīkṣṇa, uṣṇa* articles, *kṣāras* and abortifacient drugs.

सम्प्राप्ति (Pathogenesis)

यद्यपि गर्भ-स्राव एवं पात की सम्प्राप्ति का वर्णन आचार्यों ने पृथक् रूप से कहीं नहीं किया, परन्तु मूढ़गर्भ एवं गर्भ-पात का वर्णन एक साथ ही होने के कारण यह सम्प्राप्ति दोनों की ही मानना चाहिए। महर्षि वाग्भट ने निदान एवं सम्प्राप्ति के पश्चात् 'जो पूर्व वर्णित है' इस वाक्य से इस निदान एवं सम्प्राप्ति को स्पष्ट रूप से गर्भस्राव के लिए भी वर्णित किया है परन्तु सुश्रुत में ऐसा स्पष्ट वर्णन नहीं है। शरीर स्थान उल्लिखित 'पूर्वोक्त कारण' शब्द कृमिवाताभिघातादि निदान के लिए भी हो सकता है। टीकाकार डल्हण ने व्याख्या में[1] इस वर्णन को गर्भस्राव के साथ सम्बद्ध किया है। वर्णित सम्प्राप्ति निम्नांङ्कित है–

बन्धनों से विमुक्त होकर गर्भ गर्भाशय का अतिक्रमण करके यकृत, प्लीहा एवं आन्त्र के विवर से नीचे आता हुआ कोष्ठ का संक्षोभन करता है। कोष्ठ के संक्षोभ से विगुणित हुआ अपान वायु पार्श्व, कुक्षि, बस्तिशीर्ष, उदर एवं योनि में शूल, आनाह तथा मूत्रसङ्ग आदि अनेकों व्यापत्तियों को उत्पन्न कर तरुण गर्भ को शोणित-स्राव के साथ पीड़ित करता है[2]।

The pathogenesis of obstructed labour and abortion is described together.

The fetus getting detached from its bonds, exceeding normal limits within the uterus, descending downwards from the hallow space between liver, spleen and bowels produces irritation in the abdominal cavity. The *apāna vāyu* getting aggravated due to this irritation causes pain in flanks, *kukṣi* (lower abdomen or uterus), *bastiśīrṣa* (neck of bladder), abdomen and vagina, along with flatulence or distention of abdomen, retention of urine etc. several other symptoms and troubles the young fetus with bleeding.

१. सु० सं० नि० ८/९ एवं शा० १०/५७ तथा डल्ह० व्याख्या (देखें मूढ़गर्भान्तर्गत)
२. सु० सं० नि० ८/३; अ० सं० शा० ४/२७ (विस्तृत वर्णन मूढ़गर्भान्तर्गत देखें)

लक्षण (Clinical features)

सम्प्राप्ति के अन्तर्गत वर्णित शूल, आनाह, मूत्रसङ्ग तथा शोणित-स्रावादि गर्भ-स्राव या पात के लक्षण भी हैं। महर्षि चरक ने केवल 'पुष्पं पश्येत्' (च० सं० शा० ८/२४) लिखकर ही छोड़ दिया है। अन्य आचार्यों ने निम्न लक्षणों का वर्णन किया है।

Caraka has mentioned only bleeding per-vaginum, however, in other books certain specific clinical features besides above mentioned pain etc. have also been described.

(अ) सामान्य लक्षण (General symptoms)—

तत्र पूर्वोक्तैः कारणैः पतिष्यति गर्भे गर्भाशयकटीवङ्क्षणवस्तिशूलानि रक्तदर्शनं च।
(सु० सं० शा० १०/५७)

तत्र यस्या वस्तिपार्श्वश्रोणियोनिमुखेषु शूलं पुष्पदर्शनं वा स्यात्॥ (अ० सं० शा० ४/३)
पुष्पे दृष्टेऽथवा शूले ..... । (अ० हृ० शा० २/१)

जब उपर्युक्त कारणों से गर्भपात होता है तो गर्भाशय, कटि, वंक्षण एवं बस्तिप्रदेश में शूल तथा रक्त का दर्शन होता है। टीकाकार डल्हण ने शूलोत्पत्ति गर्भपात-जन्य प्रकुपित वायु के कारण तथा रक्तस्राव आमगर्भ के पात अथवा आर्तव-वह स्रोतस् के मुख के खुल जाने से उत्पन्न आर्तव-स्राव के कारण बताया है[1]।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि इसको (गर्भपात में स्त्री को) बस्ति, पार्श्व, श्रोणि एवं योनिमुख में शूल तथा पुष्प-दर्शन (रक्तस्राव) होता है।

अष्टांगहृदयकार ने भी पुष्प-दर्शन अथवा शूल ही लक्षण लिखे हैं।

इसी भाँति आचार्य भावमिश्र, माधव तथा योगरत्नाकरकार ने भी शूलयुक्त रक्तदर्शन ही लक्षण वर्णन किया है[2]।

When due to earlier mentioned causes abortion starts, there is pain in uterus, sacral and groin region and over the urinary bladder alongwith bleeding. The pain is due to vitiation of *vāyu* and bleeding is due to expulsion of *āma-garbha* and opening of orifices of *ārtava-vaha-srotasas*.

(आ) प्रस्रंसमान गर्भ के लक्षण (Symptoms of prasraṃsamāna garbha or slight descent for expulsion)

प्रस्रंसमाने सदाहपार्श्वपृष्ठशूलासृग्दरानाहमूत्रसङ्गाः। (सु० सं० शा० १०/५७)

गर्भ के प्रस्रंसमान अर्थात् पतन के लिए कुछ चलने की अवस्था में[3] पार्श्व एवं पृष्ठ में दाह-युक्त शूल, असृग्दर (अत्यधिक रक्तस्राव), आनाह तथा मूत्रसङ्ग हो जाते हैं।

आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने उपर्युक्त वर्णन ही शब्द भेद से किया है[4]।

When the fetus starts its slight descent for expulsion, there is pain alongwith burning

१. गर्भाशयादिशूलानि गर्भपातनिमित्तानिलजनितानि; रक्तदर्शनं चामगर्भान्वयं कृच्छ्रसाध्यम्। गयी तु गर्भस्रंसनेनार्तववहस्रोतोमुखविवृतेरार्तवक्षरणाद् रक्तदर्शनमित्याह॥ (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)
२. गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत्॥ (भा० प्र० चि० ७०/७१; मा० नि० ६४/१ एवं यो० र० स्त्री गर्भरो०)।
३. प्रस्रंसमाने पतनाय किञ्चिच्चलति ···। (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)
४. प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहशूलञ्च पार्श्वयोः। पृष्ठेरुग्प्रदरानाहौ मूत्रसङ्गश्च जायते॥
(भा० प्र० चि० ७०/७७ एवं यो० र० स्त्री गर्भरोग नि०)

Scanned with CamScanner

sensation in flanks and back, excessive bleeding, distention of abdomen and retention of urine.

***(इ) गर्भ के स्थानान्तर गमन के लक्षण** (Symptoms of sthānāntara gamana or displacement from its original place)*

स्थानात् स्थानं च प्रक्रामति (चोपक्रामति-पा० भे०) गर्भे कोष्ठे संरम्भः॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

गर्भ के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने से कोष्ठ (आमपक्वाशयादि[1]) में क्षोभ उत्पन्न होता है। टीकाकार डल्हण ने शूलादि लक्षणों का भी समावेश किया है[1]।

उपर्युक्त वर्णन को ही शब्दभेद से आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने भी लिखा है[2]।

When the fetus moves from one place to the other there is irritation of the abdominal cavity (stomach and large bowel etc.) and pain.

विमर्श (Comments)

गर्भस्राव के सामान्य लक्षणों एवं बाद में वर्णित गर्भरोधक चिकित्सा को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सामान्य लक्षण परिहार्य या संभावित गर्भस्राव के हैं। प्रस्रंसमान एवं स्थानान्तर-गमन युक्त गर्भ अपरिहार्यता (असंभाव्यता) के लक्षणों की ओर इंगित करता है। विशेषकर टीकाकार डल्हण का "पतन की ओर किञ्चित चलता हुआ गर्भ या प्रस्रंसमान गर्भ" आदि स्पष्टीकरण।

चरक एवं सुश्रुत संहिता में वर्णित पुत्रघ्नी, चरकसंहिता-वर्णित अप्रजा या असृजा एवं काश्यपसंहिता वर्णित जातहारिणियाँ विभिन्न प्रायिक गर्भस्राव (हैबिट्युअॅल अॅबर्शन) का वर्णन प्रतीत होती हैं।

अपूर्ण गर्भस्राव का स्पष्ट वर्णन आम गर्भ की चिकित्सा के अन्तर्गत किया गया है कि शेष रह जाने पर बारम्बार कष्ट देता है[3]।

प्राचीन संहिताओं में अवांछित गर्भों के गिराने की विधि या प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट द्वारा 'गर्भपातन औषधियों का प्रयोग' आदि का गर्भपात के कारणों के अन्तर्गत वर्णन इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि उस काल में भी गर्भस्राव करवाने के लिये औषधियों का प्रयोग होता था। महर्षि सुश्रुत ने मूढ़गर्भ की चिकित्सा में गर्भपात कराने का निर्देश दिया है[4]। बाद की संहिता योगरत्नाकर[5] ने कतिपय योगों या विधियों का गर्भपात करवाने के लिए स्पष्ट निर्देश दिया है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर विभिन्न प्रकार के गर्भस्रावों का संहिताओं में वर्णित शब्दों के आधार पर निम्न नामकरण कर सकते हैं।

१. कोष्ठे संरम्भ आमपच्यमानपक्वाशयादौ क्षोभः। स्थानं चेति चकारेण पूर्वोक्ताः शूलादयोऽपि॥
(सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)

२. स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्नयात्यपि च जायते। आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः॥
(पूर्वेऽप्युपद्रवा-पार्श्वशूलादयः-भा० प्र० टीका) (भा० प्र० चि० ७०/७८ एवं योग० र० स्त्री गर्भ रो०)

३. अ० सं० शा० ४/१०

४. सु० सं० चि० १५/११, (पृष्ठ २९३)

५. यो० र० स्त्रीरोगचि०

संहिता-उल्लिखित शब्द	प्रचलित हिन्दी नामावली
(१) व्यवस्थित या स्थिति योग्य गर्भ	सम्भावित या परिहार्य गर्भपात
(२) प्रस्रंसमान गर्भ	असम्भावित या अपरिहार्य गर्भपात
(३) गर्भशेष	अपूर्ण गर्भपात
(४) अप्रजा या पुत्रघ्नी योनि या जातहारिणी	प्रायिक गर्भपात
(५) अनवशेष गर्भ	पूर्ण गर्भपात
(६) गर्भपातन	कृत्रिम गर्भपात

Considering the clinical features of various conditions mentioned above, the treatment described latter, various *yonivyāpat* or *jātahāriṇīs*, indication for complete evacuation of *āma-garbha* and use of abortifacient drugs as a cause of abortion, different types of abortions can be summarized in following way.

Words used in classics	Parallel clinical entity
1. *Vyavasthita* or *sthiti yogya garbha*	Threatend abortion.
2. *Prasraṃsamāna garbha*	Inevitable abortion.
3. *Garbhaśeṣa*	Incomplete abortion.
4. *Aprajā* and *putraghnī yoni* or *jātahāriṇī*.	Habitual abortion.
5. *Anavaśeṣagarbha*	Complete abortion.
6. *Garbhapātana.*	Induced abortion.

***गर्भस्राव अथवा गर्भपात के उपद्रव** (Complications of abortion)*

गर्भस्राव अथवा गर्भपात के वर्णन के अंतर्गत आचार्यों ने गर्भस्राव अथवा पात से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट विकारों की चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य उल्लेख नहीं किया, परन्तु कुछ व्याधियों के वर्णन के अन्तर्गत गर्भस्राव अथवा पात को भी कारणभूत माना है यथा–

Specific complications of abortion have not been mentioned in the classics, albeit the treatment of some complications has been prescribed. However, during the course of description of certain disorders abortion has been enlisted as a causative factor such as:-

***(अ) शोथ** (Śotha or oedema/inflammation)*

महर्षि चरक, काश्यप एवं मधुकोष व्याख्याकार ने शोथ के कारणों में गर्भपात को भी एक कारण माना है[1]। शोथ एकाङ्ग अथवा सर्वाङ्ग दोनों ही प्रकार का होता है। गर्भपातादि के बाद उपसर्ग होकर पैर की शिरा का शोथ हो कर एकाङ्ग शोथ अथवा अत्यधिक रक्तस्राव के कारण उत्पन्न पाण्डुजन्य सर्वाङ्ग शोथ हो सकता है।

Due to infection after abortion the phlebitis specially of lower extremities may deve-

१. (अ) निजाः पुनः .... आमगर्भप्रपतनात्। (च० सं० सू० १८/६)
(आ) ..... विषमा प्रसूतिः .....। (च० सं० चि० १२/६; मा० नि० ३६/५; भा० प्र० चि० ४२/२.एवं यो० र० शोथा०)
(इ) विषमा प्रसूतिः अकालगर्भपतनादिका। (च० सं० चि० १२/६ की चक्र० टीका)
(ई) ..... निःस्रुतायां च .....। (का० सं० खि० १७/६)
(उ) विषमा प्रसूतिरामगर्भपतनादिका। (मा० नि० ३६/५ की मधुकोष व्याख्या एवं भा० प्र० चि० ४२/२ की टीका)

Scanned with CamScanner

lop and cause local edema. Generalised edema can develop due to anaemia caused by excessive blood loss during abortion.

(आ) अपतानक (Apatānaka or tetanus)

गर्भपात के कारण उत्पन्न अपतानक को आचार्यों ने असाध्य या दुश्चिकित्स्य माना है[1]। टीकाकार डल्हण का मत है कि गर्भपातोत्पन्न अपतानक से पीड़ित रुग्णा दैव-योग से ही कभी स्वस्थ होती है, यदि स्वस्थ हो भी गई तो वैकल्य अवश्य हो जाता है[2]।

गर्भपात विशेषकर कृत्रिम गर्भपात के बाद अपतानक (टेटॅनॅस) होने की सम्भावना होती है जो आज भी यदि असाध्य नहीं तो अत्यधिक दुश्चिकित्स्य अवश्य है।

Apatānaka or convulsions developing after abortion is said to be incurable, however, even if this is cured, it leaves a permanent disability/abnormality.

During abortion specially in induced abortion tetanus is one of the complications which is often fatal.

(इ) अर्श (Piles)

महर्षि चरक एवं वाग्भट ने आमगर्भ के भ्रंश होने के कारण अर्श की उत्पत्ति का वर्णन दिया है[3]।

Piles are also said to develop due to abortion.

(ई) अन्य (Others)

गर्भ-स्फुरण, वेदना, अदृष्टशोणित वेदना, रक्तातिप्रवृत्ति, मूत्रसङ्ग, आनाह एवं दाह आदि उपद्रवों की विशिष्ट चिकित्सा का निर्देश है जिसका वर्णन चिकित्सा के अन्तर्गत किया जाएगा।

While describing the management of abortion, treatment of certain complications such as *garbha-sphuraṇa* (excessive quickening or movements), pain with and without bleeding, excessive bleeding, retention of urine, tympanites and burning sensation etc. has been prescribed.

गर्भावस्था के तीन मास तक पुष्प-दर्शन होने पर गर्भस्थापन में कठिनता होने का कारण (The causes of incurability of abortion upto third month)

सा चेदपचाराद् द्वयोस्त्रिषु वा मासेषु पुष्पं पश्येन्नास्या गर्भः स्थास्यतीति विद्यात्; अजातसारो हि तस्मिन् काले भवति गर्भः ॥ (च० सं० शा० ८/२३)
अपूर्णत्रिमासायास्तु पुष्पदर्शने गर्भः प्रायो न तिष्ठत्यसञ्जातसारत्वात् ॥ (अ० सं० शा० ४/७)
असम्पूर्णत्रिमासायाः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ॥ (अ० ह० शा० २/६)

१. (अ) गर्भपातनिमित्तश्च ····· न सिद्धत्यपतानकः। (सु० सं० नि० १/५९; मा० नि० २२/३८)
(आ) गर्भपातसमुत्पन्नः ····· दुश्चिकित्स्यतमो हि सः॥ (अ० सं० नि० १५/२३; अ० ह० नि० १५/२१)
(इ) गर्भपातनिमित्तश्च ····· न सिद्धत्यपतानकः॥ (भा० प्र० चि० २४/१९९)

२. गर्भपातादिनिमित्तास्रयोऽप्यागन्तवोऽसाध्याः। यदि कथञ्चिद्दैवयोगात् सिद्ध्यन्ति तदा वैकल्यं जनयन्ति॥ (सु० सं० नि० १/५९ की डल्ह० टीका)

३. (अ) स्त्रीणां चामगर्भभ्रंशात् ··· (च० सं० चि० १४/९; अ० सं० नि० ७/१०)
(आ) ····· योषितां पुनः। आमगर्भप्रपतनात् ·····। (अ० ह० नि० ७/१४)

उस गर्भिणी स्त्री को अपचार (मिथ्या आहार, विहार) के कारण यदि दूसरे या तीसरे मास में पुष्प-दर्शन (रक्त-स्राव) हो तो वह गर्भ स्थित नहीं होता क्योंकि उस काल में गर्भ अजातसार होता है।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी यही लिखा है कि तीन मास पूर्ण होने के पूर्व पुष्प-दर्शन होने पर असंजातसार होने के कारण प्रायः गर्भ नहीं ठहरता। टीकाकार इन्दु का मत है कि यदि सम्यक् चिकित्सा भी की जाय तो भी गर्भ नहीं ठहरता। तीन मास के बाद चौथे मास आदि में भी अकाठिन्य (अदृढ़ता) होने पर गर्भ नहीं ठहरता[1]।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि तीन मास के पूर्व (गर्भस्राव होने पर) प्रत्याख्यान (निषेध) करके ही चिकित्सा करनी चाहिए। टीकाकार अरुणदत्त ने भी लिखा है कि तीन मास से पूर्व गर्भ आमान्वय एवं असंजातसार होने के कारण बहुत ही कठिनता से रुकता है। आमान्वय होने पर सम्पूर्ण तीसरे एवं चौथे मास या इसके बाद संजातसार होने पर भी विरुद्धोपक्रम होने के कारण कठिनता से ही रुकता है[2]।

महर्षि भेल ने भी शब्द-भेद से यही लिखा है[3]।

If due to use of non-congenial diet and mode of life bleeding occurs in second or third month, the fetus is not retained because upto this period it is *asañjātasāra* (does not have proper development). and is in *āmāwasthā*.

गर्भ में आमान्वय होने पर चिकित्सा में कठिनता का कारण (The cause of difficulty in the treatment of abortion during association of āma)

यस्याः पुनरामान्वयात् पुष्पदर्शनं स्यात्, प्रायस्तस्यास्तद्गर्भोपघातकरं भवति, विरुद्धोपक्रमत्वात्तयोः ॥ (च० सं० शा० ८/२५)
आमान्वये चोर्ध्वमपि विरुद्धोपक्रमत्वात्। (अ० सं० शा० ४/८)
प्रत्याख्याय प्रसाधयेत्। आमान्वये च ॥ (अ० ह० शा० २/७)

पुनश्च यदि उस स्त्री को (तीसरे मास के उपरान्त भी) आमान्वय (आमजनक कारणों का सम्पर्क) के कारण पुष्पदर्शन होता है तो वह विरुद्ध उपक्रम के कारण उस गर्भ का घातक होता है। टीकाकार चक्रपाणि ने विरुद्धोपक्रम का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि गर्भस्राव में स्तम्भन के लिए शीत, मृदु, मधुर चिकित्सा करनी होती है जो आम के अविरुद्ध एवं आमजनक है अर्थात् आम की वृद्धि करेगी, अन्य आचार्य इसको आर्तव के लक्षणों (उष्ण आदि आग्नेय लक्षणों) के विपरीत होने से भी विरुद्धोपक्रम मानते हैं[4]।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी लिखा है कि इसके बाद भी (तीसरे मास के बाद भी) यदि आमान्वय है तो विरुद्धोपक्रम

१. प्रथमान्मासाद्दारभ्य मासत्रयं पुष्पदर्शने सम्यक् चिकित्सितोऽपि गर्भः कोष्ठे न तिष्ठत्यसञ्जातसारत्वात्, स्रवत्येवेत्यर्थः ·····। मासत्रयादूर्ध्वमपि चतुर्थादिष्वपि मासेष्वकाठिन्यात्॥ (अ० सं० शा० ४/७ की इन्दु टीका)

२. असम्पूर्णास्त्रयोमासा ···गर्भः प्रायो न तिष्ठति, असञ्जातसारत्वात्। तस्मात् ··· प्रत्याख्यानं कृत्वा·····प्रकर्षेण यत्नेन साधयेत् ····· आमान्वये च। आमानुगते रक्तदर्शने सम्पूर्णत्रिचतुरादिमासाया अपि सञ्जातसारेऽपि गर्भे सति विरुद्धोपक्रमत्वात् प्रत्याख्याय साधनं कारयेत्॥ (अ० ह० शा० २/६ की अरुण० टीका)

३. यावद् द्वितीये मासि पुष्पं पश्येत्र व(त)स्या गर्भस्तिष्ठतीति विद्यात्। जातना(सा)रा हि तदा गर्भवत्यो भवन्ति॥ (भे० सं० शा० ८/५)

४. आमान्वयादिति आमजनकहेतोः सकाशादित्यर्थः। विरुद्धोपक्रमत्वादिति गर्भस्रावे हि स्तम्भनं कर्त्तव्यं तच्च शीतं मृदुमधुरं च तच्चामविरुद्धम्, आमजनकत्वात् इति विरुद्धोपक्रमता। अन्यो वेति आर्तवलक्षणव्यतिरिक्तः। (च० सं० शा० ८/२५ की चक्र० टीका)

Scanned with CamScanner

होने से गर्भ नहीं ठहरता अन्यथा पुष्प-दर्शन होने पर भी गर्भ आसानी से ठहर जाता है[१]।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी लिखा है कि आमान्वय होने पर प्रत्याख्याय कहकर ही चिकित्सा करें।

टीकाकार डल्हण ने रक्तगुल्म के निदान की व्याख्या करते हुए गर्भ में आमता की मर्यादा छठे मास तक मानी है[२]।

Upto third month or even afterwards when the fetus has association of *āma* and bleeding starts, then usually it kills the fetus due to opposite character of treatment i.e. for stopping the bleeding and retaining the fetus *śīta* (cold), *mṛdu* (soft) and *madhura* (sweet) drugs had to be prescribed which will increase *āma* due to similarity in properties, besides these drugs are also opposite to qualities of *ārtava* which is hot and *āgneya* in character.

गर्भस्राव चिकित्सा (Treatment of abortion)

(१) आम गर्भस्राव चिकित्सा (Treatment of abortion of āma-garbha)

(अ) पात होने के पूर्व चिकित्सा (Treatment before its expulsion)

(१) रूक्ष एवं शीत द्रव्यों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है[३]।

(२) उपवास करने के पश्चात् दुरालभा, अमृता, उशीर, पर्पटक, घन, चन्दन, अतिविषा, बला, कट्वङ्ग तथा धान्यक का क्वाथ बनाकर पीने को दें।[३,४]

(३) तृण-धान्य[३], शालि या षष्टिक को पेया या[४] भोजन[३,४] के रूप में दें।[३,४]

(४) मुद्गादि से बने यूष को पीने से आम के विजित हो जाने पर या शांत हो जाने पर स्निग्ध, शीत या स्निग्ध क्रिया पूर्ववत् करें।[३,४]

i) Use of dry and cold substances is beneficial.

ii) After observing fast, the decoction made with *durālabhā, amṛtā, uśīra, parpaṭaka, ghana, candana, ativiṣā, balā, kaṭwaṅga* and *dhānyaka* should be prescribed.

iii) *Tṛṇa dhānya* and *śāli* or *ṣaṣṭika* rice should be used in the form of gruel or solid diet.

iv) Soup prepared with *mudga* etc. should be prescribed in diet for digestion of *āma*. Once the state of *āma* is corrected, unctuous alongwith cold or only unctuous measures should be used.

---

१. यत्र चतुर्थादिष्वपि मासेष्वामान्वयो नास्ति तत्र पुष्पदर्शनेऽपि गर्भो विधारयितुं सुशक्यते ॥
(अ० सं० शा० ४/८ की इन्दु टीका)

२. आमगर्भ; षण्मासं यावत् ·····॥ (सु० सं० उ० ४२/१३ की डल्ह० टीका)

३. तत्र रूक्षशीतानि प्रयुञ्जीत ॥ ८॥
तद्यथा-प्रागुपवासं तथा दुरालभाऽमृतोशीरपर्पटघनचन्दनातिविषाबलाकट्वङ्गधान्यकक्वाथपानं तृणधान्यशालिषष्टिकपेयामशनं च मुद्गादियूषैर्जिते त्वामे स्निग्धशीतानि पूर्ववत् ॥ ९॥ (अ० सं० शा० ४/८,९)

४. आमान्वयेचैतत्रेष्टं शीतं रूक्षोपसंहितम् । उपवासो घनोशीरगुडूच्यरलुधान्यकाः ॥ ७॥
दुरालभापर्पटकचन्दनाऽतिविषाबलाः । क्वथिताः सलिले पानं तृणधान्यानि भोजनम् ॥ ८॥
मुद्गादियूषैरामे तु जिते स्निग्धादि पूर्ववत् ॥ ९॥ (अ० ह० शा० २)

(आ) पात हो जाने के बाद चिकित्सा (Treatment after it's expulsion)

पेयादि प्रयोग (Oral use of potion etc)

(१) गर्भ के पतित हो जाने के बाद गर्भकोष्ठ की शुद्धि तथा वेदना के विस्मरण के लिए सामर्थ्यानुसार मद्य का पान कारयें[१,२]।

(२) मद्यपान के पश्चात् लघुपञ्चमूल से सिद्ध रूक्ष (स्नेह विरहित) पेया पीने को दें[३]।

(३) अमद्यपा अर्थात् मद्यपान न करने वाली स्त्री को तिल एवं उद्दालक से बनाई, पाचन द्रव्यों से युक्त, लवण तथा स्नेह से विरहित यवागू[१,३] अथवा तिल, उद्दालक (वनकोद्रव) या तण्डुल से, बिल्वपंचक (बृहत् पंचमूल) के क्वाथ में बनी हुई, पंचकोल के कल्क से साधित पेया[२] आदि का क्रम से उतने दिन तक प्रयोग करें जितने मास का गर्भपात हुआ हो[१,३] अर्थात् यदि दो मास का गर्भपात है तो दो दिन यह पेयादि क्रम दें।

महर्षि सुश्रुत ने मद्य का विधान नहीं दिया एवं लिखा है कि गर्भ के अतीत (पतित) होने पर पाचनीय द्रव्यों से संस्कृत, लवण एवं स्नेह से विरहित उद्दालक आदि की यवागू जितने मास का गर्भ है उतने दिन तक पीने को दें। टीकाकार डल्हण ने वाग्भटानुसार लंघन-पूर्वक इस यवागू के प्रयोग का विधान बताया है तथा आम-गर्भ-चिकित्सार्थ अष्टाङ्गहृदय द्वारा उल्लिखित (पृष्ठ ३३४) औषधियों के प्रयोग का भी वर्णन किया है।[३]

महर्षि सुश्रुत ने उपर्युक्त चिकित्सा गर्भपात होने के बाद की लिखी है इनमें आम शब्द का प्रयोग नहीं किया परन्तु टीकाकार डल्हण ने 'आमान्वये' शब्द लिखा है। चिकित्सा-सूत्र का सामंजस्य होने के कारण इसका यहाँ वर्णन किया गया है।[४]

(४) लघु, स्नेह एवं लवण विरहित दीपनीय द्रव्य युक्त पेया हितकारी होती है[३]।

(५) न्यून दिन का या कम दिन का गर्भपात होने पर वेणुग्रन्थि, कुलत्थ एवं हरिद्रा का क्वाथ पीने को देना चाहिए।[४]

(६) महर्षि शार्ङ्गधर ने अकालप्रसूता को प्रसव (गर्भस्राव या गर्भपात) हो जाने के पश्चात स्वेदन देने का निर्देश दिया है।[५]

i) After expulsion of products of conception, for cleansing or complete evacuation of uterus and relief of pain, wine should be given considering her strength.

ii) After use of this wine she should be given a fat-free potion medicated with drugs of *laghupañcamūla*.

---

१. आमगर्भे तु पतिते मद्यानामन्यतमं सामर्थ्यतः पाययेद्गर्भकोष्ठविशुद्धयर्थमर्तिविस्मरणार्थं च । अमद्यपां पाचनीयद्रव्योपहिताभिः स्नेहलवणवर्जाभिः सतिलाभिरुद्दालकादियवागूभिरुपाचरेद्यावन्तो मासास्तावन्त्यहनीति ॥ (अ० सं० शा० ४/१०)

२. गर्भे निपतिते तीक्ष्णं मद्यं सामर्थ्यतः पिबेत् ॥ ९॥
गर्भकोष्ठविशुद्धयर्थमर्तिविस्मरणाय च । लघुना पञ्चमूलेन रूक्षां पेयां ततः पिबेत् ॥ १०॥
पेयाममद्यपा कल्के साधितां पञ्चकौलिके । बिल्वादिपञ्चकक्वाथे तिलोद्दालकतण्डुलैः ॥ ११॥
मासतुल्यदिनान्येवं पेयादिः पतिते क्रमः । लघुरस्नेहलवणो दीपनीययुतो हितः ॥ १२॥ (अ० ह० शा० २)

३. अतीते लवणस्नेहवर्ज्याभिर्यवागूभिरुद्दालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृताभिरुपक्रमेत यावन्तो मासा गर्भस्य तावन्त्यहानि ॥ ५७॥
(अतीते पतिते इत्यर्थः) ·····। आमान्वये च तत्रेष्टं शीतं ····· तृणधान्यादिभोजनम् : (अ० ह० शा० २/७, ८ सदृश ही पृष्ठ ३३४) (सु० शा० सं० १०/५७ एवं डल्ह० टीका)

४. वेणुग्रन्थिकुलत्थानां हरिद्राजनितं नृतम् । देयं न्यूनदिने पाते गर्भिणीनां भिषग्वरैः ॥ (यो० र० स्त्रीगर्भरोग चि०)

५. पश्चात्स्वेद्या ····· प्रजाताऽकाले वा ···। (शा० सं० उ० २/८)

Scanned with CamScanner

iii) The woman not inclined to use wine should be prescribed either fat and salt free gruel made with *tila* and *uddālaka*, mixed with digestive drugs, or a beverage made of *tila*, *uddālaka* or rice prepared with decoction of *bṛhatpañcamūla* and medicated with paste of *pañcakola*. The duration of use of these dietetics should correspond to the duration of pregnancy or in other words if the pregnancy was of two month this dietetic regimen should be given only for two days.

iv) A fat and salt free *laghu* (light) potion prepared with appetizing drugs is beneficial.

v) In cases of abortions of very short duration the decoction of *venugranthi*, *kulattha* and *haridrā* should be prescribed.

vi) Use of sudation is beneficial.

***पेयादि प्रयोग की उपादेयता एवं प्रयोग-सीमा** (Benefits and duration of use of these potions)*

(अ) उपादेयता (Benefits)

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थे विधिरित्ययम् ॥ (अ० हृ० शा० २/१३)

दोष एवं धातुओं के परिक्लेद (आमोत्पन्न क्लेद) के शोषण के लिए यह विधि वर्णित है।

Above mentioned liquids are prescribed for desiccation of moisture produced by *āma*.

(आ) प्रयोग-सीमा (Duration of use)

ततः प्रीणनैर्बलानुरक्षिभिरस्नेहैराहारैरादोषधातुक्लेदशुद्धेः ॥ (अ० सं० शा० ४/१०)

जब तक दोषों (विकृत दोषों) तथा धातुओं के क्लेद (आम जनित क्लेद) की शुद्धि न हो जाय तब तक प्रीणन (संतुष्टि या तृप्तिदायक या शामक) द्रव्यों द्वारा संस्कृत, बल की रक्षा करने वाला, स्नेह विरहित आहार देना चाहिए।

Till the moisture of *doṣas* and *dhātus* produced by *āma* is not cleared, fat-free diet mixed with gratifying substances capable of protecting her strength should be given.

***आम गर्भ के शेष रह जाने पर उपद्रव एवं चिकित्सा** (Complications of incomplete expulsion of āma garbha and its treatment)*

आमगर्भशेषेण हि पुनः पुनः शूलमनुधन्येत। तस्मात्तीक्ष्णैरनवशेषयन्नुपाचरेत् ॥
(अ० सं० शा० ४/१०)

आमगर्भ शेष रह जाने पर पुनः पुनः शूल (कष्ट) उत्पन्न करता है अतः तीक्ष्णादि द्रव्यों द्वारा अनवशेष (अर्थात् सम्पूर्ण बाहर निकल जाने की) स्थिति तक उपचार करें।

Incompletely expelled *āma garbha* troubles the woman repeatedly, hence it should be treated by pungent drugs till its complete expulsion.

***गर्भपात के बाद बस्ति एवं उदरशूल की चिकित्सा** (Treatment of pain in abdomen and bladder region persisting after abortion)*

महर्षि सुश्रुत ने अतीत (पतित) गर्भ की चिकित्सा के पश्चात् बस्ति एवं उदरशूल की चिकित्सा का वर्णन किया है, जिसका तात्पर्य सम्भवतः गर्भपात के पश्चात् भी बस्ति या उदरशूल होते रहने की चिकित्सा का वर्णन है।

बस्ति एवं उदरशूल में दीपनीय द्रव्यों से युक्त पुराने गुड़ का प्रयोग अथवा अरिष्ट (अभयारिष्टादि) का पान कराए[1]।

For pain in abdomen and bladder region old jaggery mixed with appetizing drugs or *abhayāriṣṭa* etc. *ariṣṭas* should be prescribed.

***आमगर्भ के पूर्णरूपेण निकल जाने पर चिकित्सा** (Treatment after complete expulsion of āmagarbha)*

आमगर्भ के पूर्णरूपेण निकल जाने के पश्चात् स्नेहपान, बस्ति एवं दीपनीय, पाचनीय, जीवनीय, बृंहणीय, मधुर तथा वातहर आहार द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए[2]।

महर्षि चरक ने अन्तर्मृत गर्भा के वर्णन के पश्चात् गर्भ-शल्योद्धरण की चिकित्सा वर्णन की है तथा पश्चात् कर्म में व्यपगत गर्भशल्या एवं आमगर्भा शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् वह चिकित्सा यहाँ भी करनी चाहिए[3]।

After complete expulsion of *āma garbha* the woman should be prescribed *snehapāna* (oral use of oil or *ghṛta*), enemas and diet consisting of appetizing, digestive, *jīvanīya* (life prolonging), anabolic, sweet and *vāta* suppressing articles.

Treatment prescribed after extraction of intra-uterine dead fetus can also be used.

***अपप्रसूता या अकाल प्रसूता को स्नेहन निषेध एवं स्नेह देने का परिणाम** (Contraindications for use of oleation and complication of its use by woman having abortion)*

आचार्यों ने अपप्रसूता (स्रुतगर्भा-अरुणदत्त) या अकाल प्रसूता (अकाल अर्थात् समय से पूर्व प्रसूता अर्थात् गर्भस्राव वाली स्त्री अर्थ लिया जा सकता है) को स्नेह पान कराने का निषेध किया[4] है। महर्षि सुश्रुत ने स्नेहपान के परिणामों का वर्णन करते हुए लिखा है कि अकाल प्रसूता को स्नेहपान कराने से गर्भाशय के अन्दर रक्त, क्लेद एवं मल आदि दोष अवशेष रह जाते हैं। टीकाकार डल्हण का मत है कि ये रक्तादि अवशिष्ट दोष स्नेह से प्रकुपित होकर असाध्य रोग उत्पन्न कर देते हैं। अतः अकाल प्रसूता को स्नेहपान न कराकर पाचन एवं रूक्ष औषधियों का प्रयोग दस दिन तक कराना चाहिए[5]।

Snehana (oleation) should not be given to a woman who had aborted. If oleation is used then blood, *kleda* (moisture) and *mala* (impurities) are retained in the uterus and produce various incurable disorders, hence the woman should be given *pācana* (digestive) and *rukṣa* (dry) drugs/substances for ten days, later on methodical use of oleation can be done.

---

१. बस्त्युदरशूलेषु पुराणगुडं दीपनीयसंयुक्तं पाययेदरिष्टं वा (अरिष्टमधयारिष्टादिकम् - डल्हण) (सु० सं० शा० १०/५७)

२. (अ) ततःपरं स्नेहपानैर्बस्तिभिराहारैश्च दीपनीयपाचनीयजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरैरिति ॥ (अ० सं० शा० ४/१०)
(आ) स्नेहान्नबस्तयश्चोर्ध्वं बल्यदीपनजीवनाः ॥ (अ० हृ० शा० २/१३)

३. च० सं० शा० ८/३१ (अध्याय ८ में वर्णित)

४. (अ) अकाले च प्रसूता स्त्री स्नेहपानं विवर्जयेत ॥ (सु० सं० चि० ३१/४८)
(आ) स्नेह्या न ····· अपप्रसूता ···। (अ० सं० सू० २५/१०, ११; अ० हृ० सू० १६/६, ८; अपप्रसूता स्रुतगर्भा-अरुणदत्त टीका)
(इ) ····· अकाल प्रसवानारी ·····। (शा० सं० उ० १/२६ एवं भा० प्र० पूर्व० २-४/२८)

५. गर्भाशयेऽवशेषाः स्यू रक्तक्लेदमलास्ततः। स्नेहं जह्यान्निषेवेत पाचनं रुक्षमेव च ॥
दशरात्रात् ततः स्नेहं यथावदवचारयेत् ॥
(अकाले प्रसूताया गर्भाशये अवशेषा रक्तक्लेदमलाः स्नेहकोपिता असाध्यं रोगं कुर्युः-डल्हण) (सु० सं० चि० ३१/५०, ५१)

Scanned with CamScanner

(२) व्यवस्थित होने योग्य या परिहार्य गर्भस्राव की चिकित्सा (Treatment of threatened abortion)

यद्यपि आचार्यों ने चिकित्सोल्लेख में कहीं भी ऐसा कोई स्पष्ट शब्द प्रयुक्त नहीं किया जिसके आधार पर निम्नलिखित वर्णन को व्यवस्थित होने योग्य या परिहार्य गर्भस्राव की चिकित्सा के अन्तर्गत रखा जा सके, फिर भी योगों में मधुर, शीत एवं मृदु आदि द्रव्यों के प्राधान्य के आधार पर तथा महर्षि चरक के 'गर्भस्थापन विधिमुपदेक्ष्यामः' तथा "तथाऽस्यागर्भस्तिष्ठति-च० शा० ८/३७" वाक्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निम्नांकित वर्णन गर्भ को व्यवस्थित (रोकने) करने की चिकित्सा का है। यह सभी चिकित्सा पुष्प-दर्शन के बाद शीघ्र ही प्रारम्भ कर देनी चाहिए[1]।

Caraka says that the method for stability of fetus is being told, by this her abortion is prevented.

The treatment should be started immediately after evidence of bleeding per vaginum.

चिकित्सा के समय स्त्री की शय्या एवं उसकी स्थिति (Position of woman during treatment)

उसे (पुष्प-दर्शन होने वाली गर्भवती स्त्री को तत्काल ही) मृदु, सुखकारी एवं शीतल बिस्तर पर सिर को थोड़ा सा नीचे की ओर करके शयन करने का आदेश दें[2]।

The woman should be made to sleep on a soft, comfortable and cool bed having head end lower than the foot end.

सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त (Principles of treatment)

शीतल परिषेक, अवगाह, प्रदेह एवं जीवनीय औषधियों से शृत क्षीर-पान आदि के द्वारा चिकित्सा करें[3]। महर्षि भेल ने दोषानुसार चिकित्सा करने[4] का एवं वाग्भट ने शोधन-विरहित रक्तपित्त की क्रिया करने का निर्देश दिया है[5]। इसमें दुग्ध-पान पथ्य[6] एवं उष्णोदकानुपान निषिद्ध है[7]।

She should be treated with cold bath, pourings, irrigations, tub-bath, immersions, unctions, and drinking of milk boiled with *jīvanīya* group of drugs. The treatment should also be prescribed according to dominance of *doṣa*, treatment prescribed for *raktapitta* (bleeding diathesis) except purifying measures can also be used. Milk is beneficial and hot water is contraindicated.

प्रस्रंसमान एवं स्थानान्तर गमित गर्भ की चिकित्सा (Treatment of prasraṃsamāna garbha or sthānāntara gamita garbha)

तत्र स्निग्धशीताः क्रियाः ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

१. तस्या गर्भस्थापनविधिमुपदेक्ष्यामः । पुष्पदर्शनादेवैनां ब्रूयात् ·····। (च० सं० शा० ८/२४)
२. शयनं तावन्मृदुसुखशिशिरास्तरणसंस्तीर्णमीषदवनतशिरस्कं प्रतिपद्यस्वेति ॥ (च० सं० शा० ८/२४)
(आ) तां मृदुसुखशिशिरास्तरणशयनस्थामीषदवनतशिरसं ·····उपाचरेत । (अ० सं० शा० ४/३)
३. (अ) तत्रशीतैः परिषेकावगाहप्रदेहादिभिरुपचरेज्जीवनीयशृतक्षीरपानैश्च ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)
(आ) शीतप्रदेह परिषेकादिभिरुपाचरेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/३)
(इ) पुष्पे दृष्टेऽथवा शूले बाह्यान्तः स्निग्धशीतलम् ॥ (अ० हृ० शा० २/१)..
४. तस्मादेतांश्चिकित्सेत्तु दोषान् पुत्रचिकीर्षया ॥ (भे० सं० शा० ३/१५)
५. (अ) रक्तपित्तक्रियाश्च शोधनवर्ज्याः प्रयुञ्जीत ॥ (अ० सं० शा० ४/५)
(आ) ···· शुद्धिवर्जं चाऽऽस्रोक्तमाचरेत् ॥ (अ० हृ० शा० २/६)
६. तत्र सर्वमेव क्षीरं ····· योनिरोगगर्भस्राव ···· हरं ···· ॥ (सु० सं० सू० ४५/४९)
७. का० सं० सू० २२/१४ (पृष्ठ २८६)

इसमें स्निग्ध एवं शीत क्रिया करनी चाहिए।

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकरकार ने लिखा है कि प्रचलित गर्भ एवं कुक्षि-रुजा में भी हीबेर, अतिविषा, मुस्ता, मोच तथा शक्र का क्वाथ बनाकर देना चाहिए[1]।

Unctuous and cold things should be prescribed. In this condition and also in pain in uterus the decoction of *hrībera, ativiṣā, mustā, mocarasa* and *śakra* should be given.

स्थित होने योग्य या परिहार्य गर्भस्राव में अन्य औषधि-प्रयोग (Other medicines for threatend abortion)

(अ) बाह्य-प्रयोग (Medicines for external use)

(१) मधुयष्टी एवं सर्पि से आप्लावित अति शीतल जल में रखे हुए पिचु को उपस्थ के समीप (योनि में) धारण करायें[2]।

(२) शतधौत[2,4] या सहस्रधौत[2,3] घृत को नाभि के नीचे के (उदर) भाग में चारो ओर प्रदेह (लेप) करें[2,3]।

(३) अच्छी प्रकार शीतल किए हुए गाय के दुग्ध या मधुयष्टी के क्वाथ या न्यग्रोधादिगण के कषाय से नाभि के नीचे परिषेचन[2,3] करें।

(४) अच्छी प्रकार से शीतल जल से अवगाहन करायें[2,4]।

(५) कषाय एवं क्षीरिवृक्षों के (त्वक् या पत्र के क्वाथ या) स्वरस में कपड़ा (पिचु) भिगो कर (योनि में) ग्रहण करायें[2]।

(६) न्यग्रोधादि (गण के वृक्षों के) शुंग से साधित क्षीरसर्पि (क्षीरोद्धृत घृत) अथवा क्षीर या सर्पि का पिचु धारण करायें[2,3]।

(७) मधुयष्टी से सिद्ध अच्छी प्रकार से शीतल घृत में पिचु भिगाकर योनि के समीप स्थापन करें[3]।

(८) न्यग्रोधादिगण से सिद्ध तैल का पिचु योनि में धारण करें[3]।

(९) सेव्य, अम्भोज, हिम, क्षीरिवृक्ष के वल्कल के कल्क से लेपित करके अत्यधिक आर्द्र या गीले पिचु एवं नक्तक (चैलखण्ड या कपड़े के टुकड़ों) को योनि या बस्ति में (योनि के अन्दर एवं बस्तिप्रदेश के ऊपर) धारण करें[4]।

(१०) कुमारी लड़की के द्वारा कते हुए गर्भिणी के शरीर के बराबर लम्बे सूत्र में कंकती की जड़ को बाँधकर कमर में धारण करने से गर्भपात का निवारण होता है[5]।

१. ह्रीवेरातिविषामुस्तमोचशक्रैश्शृतं जलम्। दद्याद् गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥९॥
(भा० प्र० चि० ७०/६४; यो० र० स्त्री गर्भ रो० चि०)
२. ततो यष्टीमधुकसर्पिर्भ्यां परमशिशिरवारिणि संस्थिताभ्यां पिचुमाप्लाव्योपस्थसमीपे स्थापयेत्तस्याः, तथा शतधौतसहस्रधौताभ्यां सर्पिर्भ्यामधोनाभेः सर्वतः प्रदिह्यात्, सर्वतश्च गव्येन चैनां पयसा सुशीतेन मधुकाम्बुना वा न्यग्रोधादिकषायेण वा परिषेचयेदधोनाभेः उदकं वा सुशीतमवगाहयेत्, क्षीरिणां कषायद्रुमाणां च स्वरसपरिपीतानि चेलानि ग्राहयेत्। न्यग्रोधादिशृङ्गसिद्धियोर्वा क्षीरसर्पिषोः पिचुं ग्राहयेत् ॥ (च० सं० शा० ८/२४)
३. तद्यथा-सहस्रधौतेन सर्पिषाऽधोनाभेः सर्वतः प्रदिह्यात्। मधुकसिद्धसर्पिषा सुशीतेन पिचुमाप्लाव्य योनिसमीपे स्थापयेत्। गव्येन पयसा मधुकाम्बुना न्यग्रोधादिकषायेण वा परिषेचयेत् ! परिपीततत्स्वरसानि च तैलानि योनौ निधापयेत् ॥ तच्छृङ्गसिद्धस्य वा क्षीरसर्पिषः पिचुम् ॥ (क्षीरमेव प्रमथ्य सम्पादितं सर्पिः क्षीरघृतम्-इन्दु टीका) (अ० सं० शा० ४/४)
४. सेव्याऽम्भोजहिमक्षीरिवल्ककल्काऽज्यलेपितान्। धारयेद्योनिबस्तिभ्यामार्द्रार्द्रान् पिचुनक्तकान् ॥ २॥
शतधौतघृताक्तां स्त्री तदभ्यस्यवगाहयेत् ॥ (अ० हृ० शा० २/२ व ३)
५. कट्फलीमूलमाबद्धं कुमारीसूत्रकैः समैः। कटिदेशे नितम्बिन्या गर्भपातं निवारयेत् ॥ (यो० र० स्त्रीगर्भरो० चिकित्सा)

Scanned with CamScanner

(११) न्यग्रोधादि गण की औषधियों के स्वरस में भिगोया हुआ वस्त्र योनि में धारण[1] करें।

(१२) लक्षादि तैल का गर्भिणी को बारम्बार अभ्यङ्ग करने से गर्भ पुष्ट होता है[2]। लक्षादि तैल निर्माणविधि निम्नांङ्कित है[2]:-

एक आढक लाक्षा लेकर चार आढक जल के साथ क्वाथ बनावें। चतुर्थांश शेष रहने पर इसे छान लें, अब इसमें एक प्रस्थ तैल, गोदधि का एक आढक मस्तु तथा शतपुष्पा, अश्वगंधा, हरिद्रा, देवदारु, कुटकी, रेणुका, मूर्वा, कुष्ठ, मधुयष्टी, चन्दन, मुस्तक एवं रास्ना का एक-एक कर्ष चूर्ण डाल कर मृदु अग्नि में भलीभाँति पकावे। इस तैल के अभ्यङ्ग से सभी विषम ज्वर शान्त होते हैं। गर्भिणी को बारम्बार अभ्यङ्ग करने से उसका गर्भ पुष्ट होता है।

i) A tampon soaked with paste of *madhuyaṣṭī* and *ghṛta* then kept in extremely cold water should be placed in vagina.

ii) Hundred or thousand times washed *ghṛta* should be anointed over infraumbilical region.

iii) Properly cooled cow's milk or decoction of *madhuyaṣṭī* or decoction of the drugs of *nyagrodhādi* group should be poured over infraumbilical region.

iv) Tub-bath with sufficiently cooled water should be given.

v) A piece of cloth soaked with the juice or decoction of leaves or stem bark of latex yielding trees or plants having *kaṣāya* (astringent) property should be placed in vagina.

vi) A tampon soaked with *ghṛta* extracted from milk or *ghṛta* or milk medicated with leaf-buds of *nyagrodhādi* group of drugs should be used.

vii) A tampon soaked with nicely cooled *ghṛta* medicated with *madhuyaṣṭī* should be placed in vagina.

viii) A tampon soaked with oil prepared with *nyagrodhādi* group of drugs should be placed in vagina.

ix) Over moistened tampon or piece of cloth anointed with paste of *sevya, ambhoja, hima* and stem bark of latex yielding plants should be placed in vagina or over the urinary bladder region.

x) The root of *kaṅkatī* knotted with a thread, spined by an young virgin, having length identical to the height of the pregnant woman should be tied in her waist. This prevents abortion.

xi) A cloth soaked with the juice of *nyagrodhādi* group of drugs should be placed in vagina.

१. न्यग्रोधादिस्वरसपरिपोतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत्॥ (सु० सं० शा० १०/५७)
(महर्षि सुश्रुत ने यह चिकित्सा अत्यधिक रक्तस्राव होने पर बताई है)।

२. लाक्षाढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः। चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थं विनिक्षिपेत्॥ ९३॥
मस्त्वाढकं च गोदध्नस्तत्रैव विनियोजयेत्। शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च॥ ९४॥
कुटकीं रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम्। चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः॥ ९५॥
चूर्णयित्वात्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना। अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वराः॥ ९६॥
..... पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यङ्गतो भृशम्॥ ९८॥ (शा० सं० मध्य ख० ९)

xii) Repeated massage of *lākṣādi* oil to the pregnant woman is a good nourishing agent to her fetus. The method of preparation of *lākṣādi* oil is as follows.

One *ādhaka lākṣā* should be boiled with four *ādhaka* water, when onefourth remains it should be strained. Now in this one *prastha* oil, one *ādhaka mastu* (water of curd) made with cow's milk, powdered *śatapuṣpā, aśwagandhā, haridrā, devadāru, kuṭakī, reṇukā, mūrvā, kuṣṭha, madhuyaṣṭī, candana, mustaka* and *rāsnā* each one *karṣa* should be mixed and oil prepared over low fire. Massage of this oil cures all types of *viṣamajwara*, (intermittent fevers). Repeated massage of this to a pregnant woman makes her fetus well nourished and strong.

(आ) आभ्यन्तर प्रयोग (Medicines for oral use)

(१) टीकाकार चक्रपाणि एवं इन्दु ने सभी गर्भस्थापन औषधियों का प्रयोग गर्भस्राव एवं पात की चिकित्सा में करने का निर्देश किया है[1]।

(२) पुंसवन कर्मान्तर्गत वर्णित लक्ष्मणा के मुख या नासा से प्रयोग को टीकाकार डल्हण, इन्दु एवं अरुण दत्त ने गर्भस्थापक भी बताया है[2]।

(३) न्यग्रोधादि शुङ्ग से साधित क्षीरसर्पि को एक अक्ष की मात्रा में खाने को दें[3,5]।

(४) केवल क्षीरसर्पि खाने को दें[3]।

(५) पद्म, उत्पल, कुमुद के केशरों का कल्क मधु एवं शर्करा के साथ[3,5] या सिता, मधु एवं क्षीरघृत के साथ[6] चाटने को दें।

(६) शृंगाटक, कसेरु[6] एवं पुष्करबीज खाने को दें[3]।

(७) गन्धप्रियंगु, असितोत्पल (नीलकमल), शालूक (कमल की जड़), उदुम्बर-शलाटु (उदुम्बर का कच्चा फल) एवं न्यग्रोध-शुङ्ग को अजा-क्षीर के साथ पीने को दें[3,5]।

(८) मृदु (खूब मुलायम), सुरभि द्रव्यों से सुगन्धित, शीतल रक्त शाली के भात को बला, अतिबला, शालि, षष्टिक एवं इक्षु सभी की मूल एवं काकोली से साधित दुग्ध में शर्करा एवं मधु[3] मिश्रित कर अथवा शीत वीर्य जांगल पशु-पक्षियों के मांसरस के साथ खाने को दें[4,5]।

(९) लाव, कपिंजल (गौरैया), कुरंग (मृग), शाम्बर (बारहसिंघा), शशक, हरिण, कालपुच्छक (काली पुँछ वाला हिरण) के (मांस) रस को घृत से सुसंस्कृत करके गर्भिणी को सुखकारी, शीतल, वायु-युक्त स्थान में बैठाकर (रक्तशाली के ओदन के साथ) खाने को दें[3]।

(१०) धातकी, गैरिक, सर्जरस एवं रसांजन के चूर्ण को मधु के साथ चाटने को दें[5]।

(११) न्यग्रोधादि गण के वृक्षों की त्वचा या कोमल पत्तों के कल्क को अकेला ही[5] या दुग्ध के साथ पीने को दें[4]।

(१२) जीवनीय गण की औषधियों से सिद्ध क्षीर[4] अथवा क्षीर में शालि-पिष्टी मिलाकर दें[5]।

(१३) अत्यधिक रक्तस्राव होने पर कोष्ठागारिका के घर की मिट्टी, समंगा (लज्जालु), धातकी-पुष्प, नवमालिका (वनमल्लिका के पुष्प या नवमृत्तिका), गैरिक, सर्जरस, रसांजन में से यथा उपलब्ध द्रव्यों के चूर्ण को मधु के साथ चाटे[4,9,6]।

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ३४२-३४३ में देखें

Scanned with CamScanner

(१४) उत्पलादि गण या कशेरु, शृंगाटक एवं शालूक[1] या उत्पल का कल्क[2] घृत (उबाले हुए) दुग्ध के साथ पीने को दें[3]।

(१५) शालि-पिष्टी (पीसे हुए शाली धान्य की पिष्टी) को शर्करा एवं मधु मिलाकर मधुर किए हुए उदुम्बर फल या उदक कन्द (जल में उत्पन्न होने वाले कन्द यथा कमल, कुमुदिनी आदि के कन्द) के क्वाथ के साथ पीने को दें[4]।

(१६) शश, एण (विशिष्ट मृग) एवं हरिण के रक्त को मधु मिश्रित कर पीने को दें[5]।

(१७) वृद्धि, विदारी एवं जीवन्ती (चूर्ण) दुग्ध के साथ पीने को[6] दें।

(१८) नीलोत्पल, सिता (दूर्वा), पक्वलोष्ट (कुम्हार के यहाँ की पकी मिट्टी) एवं चन्दनादि गण की औषधियों को (चूर्ण को) तण्डुलाम्बु या वासा के स्वरस के साथ रसांजन मिलाकर प्रयोग करावें[7]।

(१९) कसेरु, मृणाल, शृंगाटक, काश्मरी (गम्भारी), परूषक, द्राक्षा, सारिवा, प्रपौण्डरीक (पुण्डरीक या सन्दिग्ध द्रव्य), अनन्ता (दूर्वा), उत्पल, कदम्ब बीज के क्वाथ को शर्करा एवं मधु के साथ पीने को दें[8]।

(२०) कान्ता (प्रियंगु), अब्ज, शालूक एवं उदुम्बर के कच्चे फल (के कल्क) से युक्त क्षीर पान करें[9]।

(२१) लज्जालु, धातकीपुष्प, उत्पल एवं लोध्र को (चूर्ण को) मधु के साथ जलस्थ (जल में बैठाली गई हुई) स्त्री को पिलाने से गर्भपात का निवारण होता है[10]।

(२२) कुलालकरमृत्तिका (कुम्हार के हाथ में लगी हुई मिट्टी को घोलकर पिलाने से) गिरते हुए गर्भ को रोक देती है[11]।

(२३) श्वेत अपराजिता (के चूर्ण) को मधु मिलाकर अजा-दुग्ध के साथ पीने से गर्भपात रुक जाता है[12]।

(२४) पारावत-मल को ताम्बूल-स्वरस के साथ तीन दिन पान करने से गर्भ निरूपद्रव होकर रुक जाता है[13]।

(२५) शर्करा, बिस एवं तिल (के चूर्ण) को शहद के साथ खाने से गर्भपात का भय तीर्थ-सेवन से पाप-भय के नाश के सदृश ही नष्ट हो जाता है[14]।

(२६) न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, काला (त्रिवृत), पलाश एवं कमल के पत्तों से निर्मित, घृत एवं दाडिम से संस्कृत पल्लव-यूष गर्भपात में हितकारी है[15]।

(२७) बला, वृषत्पर्णी, शालपर्णी, दाडिम एवं बिल्व-शलाटु से युक्त पेया गर्भस्राव का शमन करती है[16]।

(२८) गर्भस्राव में दुग्ध पान हितकारी है[17]।

---

१. (अ) च० सं० शा० ८/२० की चक्रपाणि टीका, अ० सं० शा० १/६२ की इन्दु टीका
(आ) गर्भस्थापन औषधियाँ (च० सं० सू० ४/१८-(४९), च० सं० शा० ८/२०, अ० सं० सू० १५/४८, अ० सं० शा० १/६२, का० सं० खि० १०/१७७ से १८१) (पृ० २३८ से २४१)

२. (अ) लब्धगर्भायाश्च लक्ष्मणादिनस्यदानं गर्भस्थापनार्थं, स्थितगर्भायाश्च मासत्रयात्परतो पुत्रापत्यजननार्थं नस्यदानमिति ॥
(सु० सं० शा० २/३२ की डल्हण टीका)
(आ) शुक्लमाल्यादिका नारी पुष्पोद्धृतायां लक्ष्मणयामूलकल्कम्····· ·····पुत्रस्योत्पादनाय स्थितये च ····· तत्कालमपि पीतो व्यक्तस्यापि पुत्रस्य परिस्थापनं रक्षाधिधानां स्थितिं करोति। (अ० सं० शा० १/६१ की इन्दु टीका)
(इ) लक्ष्मणामूलम्····· यस्या पुत्रोनोत्पद्यते तथोत्पन्नो वा स्थितिं न लभते, चिरं न जीवति तदैवं पातव्यमित्यर्थः ॥
(अ० ह० शा० १/४१ व ४२ की अरुण० टीका)
(पृष्ठ ३४३ में क्रमशः ···)

(२९) काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवन्ती, मधुक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी आदि जीवनीय

---

३. न्यग्रोधादिशुङ्गसिद्धयोर्वा क्षीरसर्पिषोः ····· अतश्चैवाक्षमात्रं प्राशयेत्, प्राशयेद्वा केवलं क्षीरसर्पिः, पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्कांश्चास्यै समधुशर्करान् लेहार्थं दद्यात्, शृङ्गाटकपुष्करबीजकशेरुकान् भक्षणार्थं, गन्धप्रियङ्ग्वसितोत्पलशालूकोदुम्बरशलाटुन्यग्रोधशुङ्गानि वा पाययेदेनामाजेन पयसा, पयसा चैनां क्वातिबलाशालिषष्टिकेक्षुमूलकाकोलीभृतेन समधुशर्करं रक्तशालीनामोदनं मृदुसुरभिशीतलं भोजयेत्, लावकपिञ्जलकुरङ्गशम्बरशशहरिणकालपुच्छकरसेन वा घृतसुसंस्कृतेन सुखशिशिरोपवातदेशस्थां भोजयेत्, क्रोधशोकायासव्यवायव्यायामेभ्यश्चाभिरक्षेत्, सौम्याभिश्चैनां कथाभिर्मनोनुकूलाभिरुपासीत, तथाऽस्या गर्भस्तिष्ठति ॥ (च० सं० शा० ८/२४)

४. ····· उपचोद्ज्जीवनीयभृतक्षीरपानैश्च ·····। अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकागारमृत्पिण्डसमङ्गाधातकीबुसुमनवमालिकागैरिकसर्जरसरसाञ्जनचूर्णं मधुनावलिह्याद्, यथालाभं न्यग्रोधादित्वक् प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेत् उत्पलादिकल्कं वा कशेरुशृङ्गाटकशालूककल्कं वा भृतेन पायसा, उदुम्बरफलौदकेकन्दक्वाथेन वा शर्करामधुमधुरेण शालिपिष्टम् ॥
(सु० सं० शा० १०/५७)

५. अतिस्रवित तु रक्ते तत एवाक्षमात्रं प्राशयेत् ! केवलादेव वा क्षीरसर्पिषः। पद्मोत्पलकुमुदकिञ्जल्कं च समधुशर्करं लेहयेत्। धातकीगैरिकसर्जरससाञ्जनचूर्णं वा समधु। न्यग्रोधादित्वक्प्रवालकल्कं वा। शशैणहरिणरुधिरं वा सक्षौद्रं पाययेत्। वृद्धिविदारीजीवन्तीर्वा पयसा। नीलोत्पलसितापक्वलोष्टचन्दनादि वा तन्दुलाम्बु वा शारसान्यतरेण। गन्धप्रियङ्ग्वसितोत्पलशालूकोदुम्बरशलाटुन्यग्रोधशुङ्गानि वाऽऽजेन पयसा। कसेरुकमृणालशृङ्गाटककाश्मर्यपरूषकद्राक्षासारिवाप्रपौण्डरीकानन्तोत्पलकदम्बबीजक्वाथेन वा शर्करामधुमधुरेण। शालिपिष्टं जीवनीयभृतं वा क्षीरम्। बलाऽतिबलाशालिषष्टिकेक्षुमूलकाकोलीभृतेन च पयसा समधुशर्करेण रक्तशाल्योदनं सुशीतं भोजयेच्छीतवीर्यजाङ्गलरसेन वा।····· सौम्याश्च मनोनुकूलाः कथाः ॥ (अ० सं० शा० ४/५)

६. सिताक्षौद्रकुमुदकमलोत्पलकेशरम् ॥ ३॥
लिह्यात् क्षीरधृतं खादेच्छृङ्गाटककसेरुकम्। पिबेत्कान्ताब्जशालूकबालोदुम्बरवत्पयः ॥ ४॥
भृतेन शालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः। पयसा रक्तशाल्यन्नमद्यात्समधुशर्करम् ॥ ५॥
रसैर्वा जाङ्गलैः ·····॥ ६॥ (अ० ह० शा० २/३ से ६)

७. मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा नवमल्लिका। समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम् ॥ ८१॥
तथा सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णयेत्। तच्चूर्णं मधुना लिह्याद् गर्भपातप्रशान्तये ॥ ८२॥
कशेरूत्पलशृङ्गाटककल्कं वा पयसा पिबेत् ॥ ८३॥ (भा० प्र० चि० ७०)

८. लज्जालुर्धातकीपुष्पमुत्पलं मधुलोध्रकम्। जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ३॥
पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका। मधुच्छागीपयः पीता किं वा श्वेताऽपराजिता ॥ ४ ॥
पारावतमलः पीतस्त्र्यहं ताम्बूलवारिणा। गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तम्भयेन्निरुपद्रवम् ॥
शर्कराबिसतिलं समांशकं, माक्षिकेण सह भक्ष्यते यदा। नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥
मृत्कोष्ठागारिका गेहसम्भवा नवमृत्तिका। समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम्।
तथा सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णचेत् ॥
तच्चूर्णं मधुना लिह्यानारी प्रदरशान्तये। कसेरूत्पलशृङ्गाटकल्कं वा पयसा पिबेत् ॥ (यो० र० स्त्रीरोग चिकित्सा)

९. न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षकालापलासजैः ॥ ५॥
पल्लवैः कमलानां च घृतदाडिमसंस्कृतः। ····· गर्भच्यवनदाहयोः ॥ ५२॥
मुख्यः पल्लवयूषोऽयं हितः ··· ॥ ५३॥
बलावृषत्पर्ण्यर्थ शालपर्णी स्याद्दाडिमं बिल्वशलाटुयुक्तम् ॥ ८०॥
···शमयत्युदीर्णम् असृग्दरं गर्भपरिस्रवं च ॥ ८१॥ (का० सं० खि० ४)
···गर्भस्रावे च दारुणे। (का० सं० खि० २२/१४)

Scanned with CamScanner

गण है। यह गण स्वादु तथा गर्भ-सन्धानकृत[1] अर्थात् गर्भ को गिरने से रोकने वाला है। महर्षि चरक एवं वाग्भट ने भी जीवनीय गण को गर्भस्थापक माना है[2]।

नोट– महर्षि सुश्रुत एवं अष्टांगसंग्रहकार ने अधिकांश योगों को "रक्त की अतिप्रवृत्ति" की चिकित्सा लिखकर वर्णित किया है। अन्य आचार्यों ने उसी भाँति की चिकित्सा को सामान्य चिकित्सा के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया है। वस्तुस्थिति में दोनों ही वर्णनों में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि अत्यल्प रक्तस्राव कभी-कभी बिना चिकित्सा के ही ठीक हो जाता है, परन्तु रक्तस्राव की मात्रा बढ़ने में गर्भ के स्रवित हो जाने का भय बढ़ जाने के कारण चिकित्सा अत्यन्त आवश्यक हो जाती है।

i) Use of the drugs described as *garbhasthāpana* is beneficial.

ii) Oral use or nasal instillation of juice of *lakṣamaṇā* should be done.

iii) One *akṣa ghṛta* extracted from milk, medicated with leafbuds of *nyagrodhādi* group of drugs should be given.

iv) Only *ghṛta* extracted from milk is beneficial.

v) Pestled saffron of *padma, utpala* and *kumuda* should be given with either only honey and sugar or adding *ghṛta* extracted from milk.

vi) *Śṛṅgāṭaka, kaśeru* and *puṣkarabīja* should be prescribed for eating.

vii) *Gandhapriyaṅgu, asitotpala, śālūka* (lotus root), young unripe fruit of *udumbara* and leafbuds of *nyagrodha* should be given with goat's milk.

viii) Very soft, cool, cooked red *śāli* rice incensed with fragrant articles, mixed with milk which is already boiled with roots of *balā, atibalā, śāli, saṣṭika, ikṣu* and *kākolī* should be given with honey, sugar or else the same rice should be given with meat soup of wild animals or birds having *śīta vīrya.*

ix) Meat soup of *lāvā* (a kind of quail), sparrow, antelope, rein-deer, rabbit, deer and black-tailed deer mixed with *ghṛta* alongwith cooked red *śāli* rice should be served to the pregnant woman sitting in cool and airy place.

x) Powdered *dhātakī, gairika, sarjarasa* and *rasāñjana* should be given with honey.

xi) Paste of tender leaves or stem bark of *nyagrodhādi* group of drugs with or without milk should be given.

xii) Milk either medicated with *jīvanīya* group of drugs or mixed with paste of *śāli* rice should be prescribed.

xiii) In case of excessive bleeding powders of available things out of clay of the house of an insect named *koṣṭhāgārikā, samaṅgā,* flowers of *dhātaki* and *vanamallikā, gairika, sarjarasa* and *rasāñjana* should be prescribed with honey.

१. काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा। मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम्। जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसन्धानकृद् गुरुः॥ (शा० सं० मध्य ख० ६। १७, १८)

२. च० सं० शा० ८/२० एवं अ० सं० शा० १/६२ (पृष्ठ २३८ से २४०)

xiv) Paste of either *utpalādi* group of drugs or *kaseru, śṛṅgāṭaka* and *śālūka* (rhizome of lotus) or only *utpala* should be given with boiled milk.

xv) Pestled *śāli* rice alongwith sugar and honey should be prescribed with sweetened decoction of either fruits of *udumbara* or *udaka kanda* (rhizomes of aquatic plants such as lotus etc).

xvi) The blood of rabbit, *eṇa* (a species of deer or antelope) and deer with honey should be prescribed.

xvii) Powder of *vṛddhi, vidārī* and *jīvantī* with milk should be given.

xviii) Powder of *nīlotpala, sitā (dūrvā),* reddened clay of potter's kiln and *candanādi* group of drugs should be given with rice water or juice of *vāsā.*

xix) Decoction of *kaśeru, mṛṇāla, śṛṅgāṭaka, kāśmarī, parūṣaka, drākṣā, sārivā, prapaunḍarika, anantā, utpala* and *kadambabīja* with honey and sugar should be prescribed.

xx) Paste of *kāntā, abja, śālūka* and unripe fruit of *udumbara* should be given with milk.

xxi) Powders of *lajjālu,* flowers of *dhātakī, utpala* and *lodhra* with honey if given to the woman seated in water prevent abortion.

xxii) Use of clay of potter's hands dissolved in water prevents abortion.

xxiii) Powder of white *aparājitā* with honey taken with goat's milk prevents abortion.

xxiv) Feces of pigeon with juice of betel leaves used for three days prevents abortion without any complication.

xxv) Use of sugar, powder of *bisa* and black *tīla* with honey prevents abortion.

xxvi) Soup prepared with the tender leaves of *nyagrodha, udumbara, aśwattha, plakṣa, trivṛt, palāśa* and lotus then mixed with *dāḍima* and *ghṛta* is beneficial.

xxvii) Use of liquid prepared with *balā, vṛṣatparṇī, śālaparṇī, dāḍima* and unripe young fruit of *bilva* prevents abortion.

xxviii) Use of milk during abortion is beneficial.

xxix) Use of *jīvanīya* group of drugs i.e. *kākolī, kṣīrakākolī, jīvaka, ṛṣabhaka, medā, mahāmedā, jīvantī, madhuka, mudgaparṇī* and *māṣaparṇī* is beneficial.

मुहुःमुहुः रक्तस्राव की चिकित्सा (Treatment of recurrent bleeding)

गर्भिणी स्त्री के गर्भ से यदि बार-बार रक्तस्राव हो तो उसे रोकने के लिए उत्पलादिगण की औषधियों से सिद्ध दुग्ध का पान कराए[1]।

In case of recurrent bleeding she should be given milk medicated with the drugs of *utpalādi* group.

१. गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः। तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत्॥ (भा० प्र० चि० ७०/७४)

Scanned with CamScanner

***गर्भस्राव से पीड़ित स्त्री के लिए उपयुक्त आचार या विहार** (Beneficial mode of life for a woman having abortion)*

(१) क्रोध, शोक, आयास (थकावट), व्यावाय एवं व्यायाम आदि से रक्षा करनी चाहिए[1]।

(२) सौम्य तथा मनोनुकूल कथाओं आदि से मन को प्रसन्न करें[1,2]।

(i) She should avoid anger, grief, tiredness, coitus and exercise.

(ii) She should be made cheerful by pleasing and desired stories.

***गर्भ के व्यवस्थित हो जाने पर चिकित्सा** (Treatment after stability of garbha)*

गर्भ के व्यवस्थित हो जाने पर उदुम्बर-शलाटु (गूलर के कच्चे फल) से सिद्ध गोक्षीर का सेवन कराना चाहिए[3]।

Once the *garbha* is stabilized or abortion is prevented, cow's milk medicated with unripe young fruits of *udumbara* should be prescribed.

***(३) गर्भस्राव के उपद्रवों की चिकित्सा** (Treatment of complications of abortion)*

***(अ) गर्भस्फुरण की चिकित्सा** (Treatment of excessive quivering of fetus)*

गर्भ में बार-बार स्फुरण होने पर उसके संधारण के लिए उत्पलादि गण की औषधियों से सिद्ध क्षीर पीने को देना चाहिए[4]।

In case of frequent and/or excessive quivering of fetus milk medicated with *utpalādi* group of drugs should be prescribed.

***(आ) गर्भस्राव में वेदना (अत्यधिक) की चिकित्सा** (Treatment of excessive pain)*

(१) महासहा, क्षुद्रसहा, मधुक, श्वदंष्ट्रा तथा कण्टकारी से सिद्ध शर्करा एवं मधु-युक्त दुग्ध देने से गर्भिणी की वेदना का नाश होता है[5]।

(२) कुश, काश, उरुबूक तथा गोक्षुरु की मूल से साधित एवं शर्करा से युक्त अथवा श्वदंष्ट्रा, मधुक, क्षुद्रा, एवं अम्लान से सिद्ध शर्करा एवं मधु-युक्त दुग्ध गर्भिणी के शूल में लाभकारी है[6,7]।

(३) प्रस्रंसमान गर्भ की चिकित्सा के अन्तर्गत वर्णित भा० प्र० एवं यो० र० की चिकित्सा (पृष्ठ ३३८)।

(४) दुग्ध के साथ अन्न का भोजन करने वाली, शूल युक्त गर्भस्राव से पीड़ित स्त्री को कसेरु, शृंगाटक, पद्मक, उत्पल, मुद्गपर्णी एवं मधुक (का क्वाथ या चूर्ण) दुग्ध में मिलाकर शर्करा डालकर पीना चाहिए[7]।

---

१. क्रोधशोकायासव्यवायव्यायामेभ्यश्चाभिरक्षेत्, सौम्याभिश्चैनां कथाभिर्मनोनुकूलाभिरुपासीत ॥ (च० सं० शा० ८/२४)

२. सौम्याश्च मनोनुकूलाः कथाः ॥ (अ० सं० शा० ४/५)

३. व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुम्बरशलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेत् ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

४. गर्भस्फुरणे मुहुर्मुहुस्तत्सन्धारणार्थं क्षीरमुत्पलादिसिद्धं पाययेत् ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

५. वेदनायां महासहाक्षुद्रसहामधुकश्वदंष्ट्राकण्टकारिकासिद्धं पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत् ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

६. कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ ७९॥
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम्। श्वदंष्ट्रामधुकक्षुद्राऽम्लानः सिद्धं पयः पिबेत् ॥
शर्करा मधुसंयुक्तं गर्भिणी वेदनापहम् ॥ ८०॥ (भा० प्र० चि० ६०)

७. कुशकाशोरु...वेदनापहम् (भा० प्र० सदृश ही केवल 'मधुकद्राक्षाम्लानैः' पाठान्तर से)
कसेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्। सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽबला पयो विमिश्रं पयसाऽन्नभुक्पिबेत् ॥
(यो० र० स्त्री गर्भरो० चि०)

i) Milk medicated with *mahāsahā, kṣudrasahā, madhuka, śwadaṃṣṭrā* and *kaṇṭakāri* then mixed with honey and sugar should be prescribed.

ii) Milk treated with roots of *kuśa, kāsa, urubūka* and *gokṣuru* and mixed with sugar or else treated with *śwadaṃṣṭrā, madhuka, kṣudrā* and *amlāna* and mixed with sugar and honey is beneficial.

iii) The treatment prescribed for *prasraṃsamāna garhba* is also beneficial.

vi) She should be given milk mixed with sugar and decoction or powder of *kaseru, śṛṅgāṭaka, padmaka, utpala, mudgaparṇī* and *madhuka* and the cereals with milk in diet.

***(इ) मूत्रसङ्ग-चिकित्सा** (Treatment of retention of urine)*

मूत्रसङ्ग में दर्भादि (कुश, काश नल, दर्भ, काण्डेक्षुक) से सिद्ध शर्करा या मधु मिश्रित क्षीर[1], या तृणपंचमूल (शाली, इक्षु, कुश काश, शर) के कल्क से साधित[2] क्षीर पान कराना चाहिए।

To treat retention of urine the milk treated with *darbhādi* group (*kuśa, kāśa, nala, darbha* and *kāṇḍekṣuka*) of drugs and mixed with honey or sugar or else treated with paste of *tṛṇapañcamūla* (*kuśa, kāśa, śāli, ikṣu, śara*) should be prescribed.

***(ई) आनाह-चिकित्सा** (Treatment of flatulence)*

आनाह में हिंगु, सौवर्चल (लवण), लशुन एवं वचा से सिद्ध क्षीर में मधु तथा शर्करा मिलाकर या अकेले ही पीने को दें[3]।

Milk medicated with *hiṅgu, sauvarcala salt, laśuna* and *vacā* with or without sugar and honey should be prescribed.

***(उ) अदृष्ट शोणित-वेदना-चिकित्सा** (Treatment of pain without bleeding)*

जब दृष्ट रक्तस्राव के बिना ही वेदना ही तो निम्न चिकित्सा करें। इस चिकित्सा से वेदना शीघ्र ही नष्ट होकर गर्भ भी वृद्धि को प्राप्त होता है[4]।

---

१. मूत्रसङ्गे दर्भादि सिद्धम् (पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत्) । (सु० सं० शा० १०/५७)
(कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञकः) ॥ (सु० सं० सू० ३८/७५)

२. तृणपंचकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः। तत्पयो गर्भिणी पीत्वा मूत्रसङ्गाद्विमुच्यते ॥
शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम् ॥ (भा० प्र० चि० ७०/८४ व ८५; यो० र० स्त्री० गर्भ० रोग चि०)

३. (अ) आनाहे हिङ्गुसौवर्चललशुनवचासिद्धम् (पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत्) । (सु० सं० शा० १०/५७)
(आ) पक्वं वचारसोनाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम्। आनाहे तु पिबेद् दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥
(भा० प्र० चि० ७०/८३ एवं यो० र० स्त्री० रो०)

४. एवमुपक्रान्ताया उपावर्तन्ते रुजो गर्भश्चाप्यायते ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

Scanned with CamScanner

(१) मधुक, देवदारु, पयस्या[२] अथवा इन्हीं के साथ मञ्जिष्ठा[१] से सिद्ध दुग्ध पीने को दें[१,२]।

(२) अश्मन्तक, शतावरी एवं पयस्या से सिद्ध दुग्ध[१] अथवा इन्हीं के साथ ताम्रवल्ली से सिद्ध दुग्ध पीने[१] को दें।

(३) अथवा विदारिगन्धादि गण की औषधियों से सिद्ध दूध दें[१,२]।

(४) अथवा बृहतीद्वय (बड़ी एवं छोटी कटेरी), उत्पल, शतावरी, सारिवा, पयस्या एवं मधुक से सिद्ध दुग्ध पीने को दें[१]।

(५) श्वदंष्ट्रा के स्वरस से सिद्ध दुग्ध या घृत दें[३]।

(६) पलाण्डु के स्वरस से सिद्ध घृत मधु के साथ दें[३]।

In case of pain without bleeding following preparations should be given, with this pain subsides and fetus also grows.

i) Milk medicated with *madhuka, devadāru, payasyā* with or without *mañjiṣṭhā.*

ii) Milk medicated with *aśmantaka, śatāvarī, payasyā* with or without *tāmravallī.*

iii) Milk medicated with *vidārigandhādi* group of drugs.

iv) Milk medicated with *bṛhatīdwaya, utpala, śatāvarī, sārivā, payasyā* and *madhuka.*

v) Milk or *ghṛta* medicated with juice of *śwadaṃṣṭrā.*

vi) *Ghṛta* treated with juice of onion and mixed with honey.

(ऊ) दाहादि-चिकित्सा (Treatment of burning sensation etc.)

(१) दाहादि उपद्रवों में स्निग्ध एवं शीत क्रिया करनी चाहिए[३]।

(२) शाली, इक्षु, कुश, काश एवं शर, यह तृणपञ्चक है इस तृणपंचमूल (के कल्क से सिद्ध क्षीर) का पान तृषा, दाहादि तथा मूत्रसंग-नाशक है[४]।

i) Unctuous and cold drugs and methods should be used.

ii) Milk medicated with *tṛṇapañcāmūla* consisting of *śalī, ikṣu, kuśa, kāśa* and *śara* relieves thirst, burning sensation and urinary retention.

(ए) ज्वर-चिकित्सा (गर्भस्रावोपद्रव-जन्य) (Treatment of fever due to complication of abortion)

अपप्रजाता अर्थात् पतितगर्भा (गर्भपात के बाद) स्त्री को अथवा स्तन्यावतरण होने पर उत्पन्न ज्वर में प्रकुपित दोष

१. अथादृष्टशोणितवेदनायां मधुकदेवदारुमञ्जिष्ठापयस्यासिद्धं पयः पाययेत्, तदेवाश्मन्तकशतावरीपयस्यासिद्धं विदारिगन्धादिसिद्धं वा, बृहतीद्वयोत्पलशतावरीसारिवापयस्यामधुकसिद्धं वा ·····। (सु० सं० शा० १०/५७)

२. अदृष्टशोणितां तु मधुकपयस्यासुरदारुभिः सिद्धं पयः पाययेत्। ताम्रवल्ल्यश्मन्तकशतावरीपयस्याभिर्वा। विदार्यादिगणेन वा। श्वदंष्ट्रास्वरसक्षीरसिद्धं वा सर्पिः॥ पलाण्डुरससिद्धं वा सक्षौद्रम्। (अ० सं० शा० ४/६)

३. स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत्॥
(भा० प्र० चि० ७०/७९ तथा यो० र० स्त्री गर्भरो० चि० शीत के स्थान में शीतः पाठ)

४. शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम्। एषां मूलं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसङ्गहृत्॥ (भा० प्र० चि० ७०/८५)

के लिए वर्णित विशिष्ट विधान द्वारा संशमन अर्थात् दोष का संशमन एवं पाचन करना चाहिए[१]. अर्थात् विशिष्ट लक्षणों के आधार पर दोष-प्रकोप का ज्ञान कर उस दोष की संशमन चिकित्सा करे।

In a case of fever either to a woman who had abortion or milk fever, the aggravated *doṣa* should be normalised with the treatment specifically prescribed for that *doṣa*. The aggravation of *doṣa* should be diagnosed on the basis of specific clinical features.

गर्भस्राव की मासानुमासिक चिकित्सा (Monthwise treatment of abortions)

गर्भस्राव या पात की मासानुमासिक चिकित्सा का वर्णन सम्भवतः उन रुग्णाओं के लिए है जिनमें कि बारम्बार गर्भपात हो जाता है, उनमें यह प्रथम मास से ही प्रारम्भ की गई चिकित्सा शायद गर्भस्राव प्रतिषेधात्मक रूप से कार्य करती हो। इसी आशय का स्पष्टीकरण टीकाकार डल्हण ने गयदास के वाक्य का उद्धरण देते हुए किया है कि इन औषधियों के पूर्व प्रयोग से गर्भ उचित प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है[२]।

इन मासानुमासान्तर्गत वर्णित औषधियों को (चूर्ण या कल्क को) दुग्ध के साथ प्रयोग करना चाहिए[१,२,३,४,५]

The recipes prescribed under this heading are preventive medicines aimed at treating the cases of habitual or repeated abortions. By use of these drugs on specific months i.e. drugs prescribed for first month etc. the fetus grows properly upto full term.

Powder or paste of the drugs is to be used with milk. The drugs to be given during specific months are given hereunder:

(१) प्रथम मास में चिकित्सा (Treatment during first month of pregnancy)

मधुक, शाकबीज, पयस्या (क्षीरकाकोली?) तथा सुरदारु[१,२,३,४,५]।

Madhuka, śākabīja, payasyā and *suradāru.*

(२) दूसरे मास में (During second month)

अश्मन्तक, कृष्ण तिल, ताम्रवल्ली (मञ्जिष्ठा) एवं शतावरी[१,२,३,४,५]।

Aśmantaka, black *tila, tāmravallī* and *śatāwarī.*

(३) तीसरे मास में (During third month)

वृक्षादनी, पयस्या, प्रियङ्गु या लता, उत्पल एवं सारिवा[१,२,३,४,५]।

Vṛkṣādanī, payasyā, priyaṅgu or *latā, utpala* and *sārivā.*

(४) चौथे मास में (During fourth month)

अनन्ता (दूर्वा), सारिवा, रास्ना, पद्मा (भार्गी) एवं मधुक[१,२,३,४,५]।

१. स्त्रीणामपप्रजातानां स्तन्यावतरणे च यः। तत्र संशमनं कुर्याद्यथादोषं विधानवित्॥
(अपप्रजाताः पतितगर्भाः स्त्रियः, तासां यो ज्वरः, तथा स्तन्यावतरणे च स्त्रीणां यो ज्वरः तत्र संशमनं कुर्यादिति पिण्डार्थः। यथादोषमिति यस्य दोषस्य तत्र प्रकोपो भवेत्तस्य प्रत्यनीकं संशमनं कुर्यादित्यर्थः। संशमनशब्देन पाचनमपि गृहीतम्-डल्हण)। (सु० सं० उ० ३९/१६७)

२. गयदासेन चैते गर्भस्रावचिकित्सितयोगाः प्रागेव गर्भरक्षार्थायत इत्यनन्तरं पठिताः॥
(सु० सं० शा० १०/६३ से ६५ की डल्ह० टी०)

नोट- मासानुमासिक चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ३५०, ३५१ में देखें

Scanned with CamScanner

Anantā, sārivā, rāsnā. padmā and *madhuka.*

(५) पाँचवें मास में (During fifth month)

बृहतीद्वय, काश्मरी (श्रीपर्णी या गम्भारी), क्षीरिशुङ्ग एवं त्वचा (क्षीरिवृक्षों के कोमल पत्ते तथा छाल) एवं घृत[१,२,३,४,५]।

Bṛhatīdwaya, kāśmarī, stem-bark and leafbuds of latex yielding trees and *ghṛta.*

(६) छठे मास में (During sixth month)

पृश्निपर्णी, बला (भा० प्र०-वचा), शिग्रु, श्वदंष्ट्रा तथा मधुपर्णिका[१,२,३,४,५]।

Pṛśniparnī, balā or vacā, śigru, śwadaṃṣṭrā and *madhuparṇikā.*

(७) सातवें मास में (During seventh month)

शृंगाटक, बिस, द्राक्षा, कशेरू, मधुक तथा शक्कर[१,३,४,५] या बला[२]।

Śṛṅgāṭaka, bisa, drākṣā, kaśeru, madhuka and sugar or *balā.*

(८) आठवें मास में (During eighth month)

कपित्थ, बिल्व, बृहती, पटोल, इक्षु एवं निदिग्धिका के मूलों से सिद्ध दुग्ध अष्टम मास में पीने को दें[१,२,३,४,५]।

Milk, treated with roots of *kapittha, bilva, bṛhatī, paṭola, ikṣu* and *nidigdhikā.*

(९) नवम मास में (During ninth month)

अनन्त, सारिवा, पयस्या एवं मधुयष्टी से सिद्ध क्षीर पान करने को दें[१,२,३,४,५]।

१. अत ऊर्ध्वं मासानुमासिकं वक्ष्यामः ॥ ५८॥
मधुकं शाकबीजञ्च पयस्या सुरदारु च। अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ५९॥
वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा। अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ ६०॥
बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम्। पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ६१॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ।
वत्सैते सप्तयोगाः स्युरर्धश्लोकसमापनाः। यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥ ६२॥
कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः। मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद् भिषगष्टमे ॥ ६३॥
नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत्। क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ॥ ६४॥
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च। एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ६५॥
(सु० सं० शा० १०/५८ से ६५)

२. मधुकं शाकबीजं.....। अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ५३॥
वृक्षादनी ..... सोत्पलसारिवा। ..... च मधुयष्टिका ॥ ५४॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गत्वचो घृतम्। पृश्निपर्णी.....शिग्रुः .....॥ ५५॥
.....कसेरू..... बला। सप्तैतान् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनान् ॥ ५६॥
क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत्। (रिक्त स्थान सुश्रुत सं० सदृश)।
कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकात् ॥ ५७॥
मूलैः शृतं प्रयुञ्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे। नवमे सारिवाऽनन्तापयस्यामधुयष्टिभिः ॥ ५८॥
योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया। अथवा यष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ॥ ५९॥ (अ० सं० शा० ४/५३ से ५९ तक)

(क्रमशः पृष्ठ ३५१ में)

Milk treated with *anantā, sārivā, payasyā* and *madhuyaṣṭī.*

(१०) दशम मास में (During tenth month)

शुण्ठी एवं पयस्या से सिद्ध[१,४] क्षीर अथवा शुण्ठी, मधुयष्टी एवं सुरदारु से सिद्ध क्षीर[१,२,३,४,५] अथवा केवल पयस्या से सिद्ध क्षीर[२,३] का प्रयोग करें इस प्रयोग से गर्भ की तीव्र पीड़ा भी शान्त हो जाती है[१]।

Milk treated with either *śunṭhī* and *payasyā* or *śunṭhī, madhuyaṣṭī* and *suradāru* or only *payasyā.* Use of this prescription relieves even very severe pain.

(११) ग्यारहवें मास में (During eleventh month)

क्षीरिका, उत्पल, समङ्गा-मूल, तथा शिवा के कल्क को दुग्ध के साथ एकादश मास में शूल की शान्ति के लिए गर्भिणी स्त्री को पीना चाहिए[४,५]।

For relief of pain during eleventh month of pregnancy, the woman should be prescribed paste of *kṣīrikā, utpala, samaṅgā* root and *śivā* alongwith milk.

(१२) बारहवें मास में (During twelfth month)

सिता, विदारी, काकोली, क्षीरी (वंशलोचन या क्षीरकाकोली) तथा मृणालिका को (दुग्ध के साथ) बारहवें मास में शूल के नाश के लिए गर्भिणी पान करे, इसके प्रयोग से गर्भ की तीव्र पीड़ा का शमन होता है तथा गर्भ की वृद्धि होती है[४,५]।

(पृष्ठ ३५० से क्रमशः)

३. मधुकं ..... शतावरी ॥ ५४॥
वृहतीद्वय ..... गर्भे स्रवति योजयेत् ॥
कपित्थबिल्व ..... निदिग्धिजैः ॥ ५८-५९॥
.....नागरामरदारुभिः ॥ ६०॥ (अ० ह० शा० २/५४ से ६०; अ० सं० सदृश ही)

४. मधुकं ..... शतावरी ॥ ८६॥
वृक्षादनी पयस्या च प्रियङ्गूत्पल सारिवा। ..... मधुकमेव च ॥ ८७॥
बृहत्यौ .....। पृश्निपर्णी वचा ..... मधुपर्णिका ॥ ८८॥
शृङ्गाटकं .....। ..... समापनाः ॥ ८९॥
यथा संख्यं ....। एवं गर्भो न पतति गर्भशूलञ्च शाम्यति ॥ ९०॥
कपित्थ .....। ... दापयेद्भिषगष्टमे ॥ ९१॥
नवमे ..... सारिवा .....॥ ९२॥
क्षीरं .....। सक्षीरं .....॥ ९३॥ (सुश्रुत सं० सदृश ही)
क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम्। पिबेदेकादशे मासि गर्भिणीशूलशान्तये ॥ ९४॥
सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव मृणालिका। गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ ९५॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ९६॥ (भा० प्र० चि० ७०/८६ से ९६)

५. मधुकं .....। ... शतावरी। (अ० सं० सदृश)
वृक्षादनी....। .... मधुकमेव च। (सु० सं० सदृश)
वृहतीद्वय ..... योजयेत्।
कपित्थ.....। निदिग्धिजैः। .....। ऽष्टमे। (अ० सं० के ५५ से ५८ सदृश)
नवमें ..... सुरदारु च। (सु० सदृश) (यो० र० स्त्री गर्भरो० चि०)
क्षीरिकामुत्पलं ..... काकोलीक्षीरिकाक्ष ..... रुक्चोपशाम्यति। (भा० प्र० चि० ७०/९४ के ९६ सदृश; यो० र० स्त्री गर्भरो० चि०)

Scanned with CamScanner

Use of *sitā, vidārī, kākolī, kṣīrī* and *mṛṇālikā* with milk relieves pain during twelfth month and is beneficial for proper development of the fetus.

गर्भ-चलन की चिकित्सा (Treatment of garbha-calana)

महर्षि हारीत एवं योगरत्नाकरकार ने गर्भ-चलन को भी मासानुमासिक चिकित्सा का वर्णन किया है। गर्भ का चलायमान होना उसकी अपरिहार्यता का द्योतक है अतः इसकी चिकित्सा करने से साधारणतया गर्भ के स्थित होने अर्थात् गर्भपात न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा संभव है कि यहाँ पर आचार्यों का चलायमान से तात्पर्य गर्भस्राव-प्रक्रिया की प्रारम्भ की अवस्था अर्थात् जब तक कि गर्भ परिहार्य है अर्थात् रोका जा सकता है से हो अथवा गर्भचलन का तात्पर्य गर्भ की अत्यधिक गतिशीलता (स्पन्दन) से हो।

The word *calana* or movement indicates the movement from its own normal place, thus the question of prevention of expulsion of fetus in case of *garbha-calana* should not have arisen. However, in the classics, month-wise treatment of this condition has also been prescribed, which shows that probably this is also a condition of threatened abortion or exessive quivering.

(अ) गर्भ-चलन होने पर सामान्य चिकित्सा (General treatment of garbha-calana)

मधुक, बिस, मृणाल, पद्मकिंजल्क का कल्क अथवा घन, अतिविषा, ऐन्द्रबीज, उशीर तथा नीर को समान मात्रा में ले कल्क बनाकर सिता मिलाकर स्त्री के गर्भ-चलन होने पर पीने को देना श्रेयस्कर है[1]।

Either paste of *madhuka, bisa, mṛṇāla* and saffron of *padma* or *ghana, ativiṣā, aindrabīja, uśīra* and *nīra* taken in equal quantity and pestled should be mixed with sugar and given to the woman suffering from *garbha-calana.*

(आ) गर्भ-चलन की मासानुमासिक चिकित्सा (Monthwise treatment of garbha-calana)

(१) प्रथम मास में (During first month)

यदि प्रथम मास में गर्भ में चलन हो तो मधुक या ज्येष्ठिका, मृद्वीका, चन्दन तथा रक्तचन्दन को (कल्क को) दुग्ध (गोदुग्ध) में मिलाकर पीने से निश्चित रूप से गर्भ स्थिर हो जाता है[1,2]; अथवा नीलोत्पल, बाला (सुगन्धबाला), शृंगाटक तथा कसेरु को शीतल जल से पीसकर दूध से साथ मिलाकर पीना चाहिए; इससे गर्भ का पात नहीं होता तथा शूल की भी शान्ति होती है[3]।

In *garbhacalana* during first month use of pestled *madhuka* or *jyeṣṭhikā, mṛdwīkā, candand* and *red candana* with milk definitely stabilizes fetus or else use of *nīlotpala, bālā, śṛṅgāṭaka* and *kaśeru* pestled with cold water and mixed with milk prevents expulsion of fetus and also relieves pain.

(२) द्वितीय मास में (During second month)

द्वितीय मास में गर्भ-चलन होने पर मृणाल तथा नागकेशर को दूध में घोलकर पीना चाहिए[1,2]; अथवा इनके ही साथ तगर, कमल, बिल्व तथा कर्पूर को अजा-क्षीर के साथ पीसकर तथा अजा-क्षीर में ही मिलाकर पीने को देना चाहिए[3]।

In case of *garbhacalana* during second month *mṛṇāla and nāgakeśara* mixed with milk or else above drugs with *tagara, kamala, bilva* and *karpūra* pestled with goat's milk and mixed with the same should be given for drinking.

(३) तृतीय मास में (During third month)

यदि तृतीय मास में गर्भ-चलन हो तो मूषक-किट्ट एवं शर्करा को दूध में घोलकर[1] अथवा शर्करा एवं नागकेशर को दूध में घोलकर[2] देना चाहिए अथवा पद्मक, चन्दन, बालक और पद्मनाल को शीतल जल के साथ पीसकर दूध में घोलकर पिलाना चाहिए[3]; इन प्रयोगों से गर्भ का पात नहीं होता तथा शूल का भी शमन होता है[3]।

Either pellets of rats or *nāgakeśara* and sugar with milk or *padmaka, candana, bālaka* and *padmanāla* pestled with cold water and mixed with milk should be given for drinking in *garbhacalana* of third month. These things prevent expulsion of fetus and also relieve pain.

(४) चतुर्थ मास में (During fourth month)

चतुर्थ मास में गर्भ-चलन साथ ही तृष्णा, दाह, शूल एवं ज्वर[1,2] होने पर उशीर, चन्दन, नागकेशर तथा धातकी-पुष्प (के कल्क या चूर्ण) के साथ घृत, मधु एवं दधि मिलाकर पिलाना चाहिए[1], अथवा कदलीमूल, उत्पल तथा बालक (के कल्क) को दूध में घोलकर पीने को देना चाहिए[3]।

If *garbha-calana* occurs in fourth month and is associated with thirst, burning sensation, pain and fever, then powdered or pestled *uśīra, candana, nāgakeśara,* flowers of *dhātakī* and sugar mixed with *ghṛta,* honey and curd or pestled root of *kadalī* (benana), *utpala* and *bālaka* mixed with milk should be given.

(५) पंचम मास में (During fifth month)

पंचम मास में यदि गर्भ में कहीं भी चलन हो तो दाड़िम-पत्र एवं चन्दन (के कल्क या चूर्ण) को दधि तथा मधु मिला कर पिलाना चाहिए[1,2]; अथवा नीलोत्पल, मृणाल, कौन्ती (हरेणु या निर्गुण्डी-भेद), क्षीरी, केशर तथा पद्मक को (कल्क को) जल के साथ घोलकर पीने को देना चाहिए[3]; इसके प्रयोग से गर्भपात नहीं होता तथा शूल का भी शमन होता है।[2]

In case of *garbhacalana* in any part during fifth month, powdered or pestled leaves of *dāḍima* (pomegranate) and *candana* mixed with curd and honey or else pestled *nīlotpala, mṛṇāla, kauntī, kṣīrī, kesara* and *padmaka* mixed with water should be given. Use of these prevents expulsion of fetus and also relieves pain.

(६) षष्ठ मास में (During sixth month)

षष्ठ मास में यदि गर्भ-चलन हो तो गैरिक, काली मिट्टी तथा गोमय-भस्म (गोबर की राख) से साधित जल को शीतल होने पर चन्दन एवं शर्करा मिलाकर पीने को देना चाहिए[1,2]।

The water treated (boiled) with *gairika* (red ochre), black clay and ash of cow-dung,

---

१. मधुकबिसमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं, घनमतिविषमैन्द्रं बीजमौशीरनीरम् ॥
समकृतमथकल्कं देयमाशुप्रपाने। हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ १२॥ (हा० सं० तृतीयस्थान ५१/१२)

नोट–गर्भचलन की मासानुमासिक चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ३५४ में देखें।)

नोट–गर्भचलन की मासानुमासिक चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ३५४ में देखें।)

Scanned with CamScanner

then cooled and mixed with *candana* and sugar should be prescribed for *garbha calana* in sixth month.

(७) सप्तम मास में (During seventh month)

यदि सातवें मास में गर्भ-चलन हो तो उशीर, गोक्षरु, घन समंगा (लज्जालु), नागकेशर तथा पद्मक को मधु के साथ मिलाकर या मधुर करके पीने को देना चाहिए[१,२]।

If *garbha calana* develops in seventh month then powdered or pestled *uśīra, gokṣuru, ghana, samaṅgā, nāgakeśara* and *padmaka* mixed with water and honey or sweetened otherwise should be given.

(८) अष्टम मास में (During eighth month)

आठवें मास में यदि गर्भ-चलन हो तो लोध्र तथा मागधिका के चूर्ण को मधु एवं दुग्ध के साथ पीने को देना चाहिए[१,२]; इससे स्त्री को सुख प्राप्त होता है[१]।

१. प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि। तदा मधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनं ॥ १॥
पयसालोडितं पीतं तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ॥ २॥
द्वितीये मासि चलिते मृणाले नागकेशरम्। तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा ॥ ३॥
तदा मूषकविष्टं तु शर्करा पयसा पिबेत्। चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च ॥ ४॥
ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलते। तदोशीरचन्दननागकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधि पाययेत्।
पंचमे मासे चलिते गर्भे दाडिमोपत्राणि चन्दनं दधिमधुं च पाययेत्।
षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उदकं परिस्रुतं शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत्।
सप्तमे मासि गोक्षुरसमङ्गापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत्।
अष्टमे मासि रोध्रं मधुमागधिकाञ्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते ॥ ५॥
(हा० सं० तृतीय० ५०/१ से ५)

२. चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते। औषधं च तदा देयम् विचक्षणभिषग्वरैः ॥
मृद्वीका ज्योष्टिका चैव चन्दनं रक्तचन्दनम्। गवां च पयसा पेयं स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥
नीलोत्पलं सबालं च शृङ्गाटं च कशेरुकम्। शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति। द्वितीये मासि गर्भस्य चलनं च भवेद्यदि ॥
पयसा च तदा पेयं मृणालं नागकेशरम्। तगरं कमलं बिल्वं कपूरिण समन्वितम् ॥
अजाक्षीरेण तत्पिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोड्य पूर्ववत्। तृतीये मासि चलनं जायते गर्भजं यदि ॥
पयसाऽऽलोडितं पेयं शर्करानागकेशरं। पद्मकं चन्दनं चैव बालकं पद्मनालकम् ॥
पिष्ट्वा शीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत्। एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥
यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते। तृष्णाशूलविदाहैश्च ज्वरेण च निपीडनम् ॥
क्षीरं च कदलीमूलमुत्पलं बालकं तथा। आलोड्य समभागेन पिबेद्रोगोपशान्तये ॥
पञ्चमे मासि गर्भस्य चलनं कुत्रचिद्भवेत्। दध्ना च मधुना पेयं दाडिमीपत्रचन्दनम् ॥
नीलोत्पलं मृणालं च कौन्तीक्षीरीं तथैव च। केशरं पद्मकं चैव तोयेनाऽऽलोड्य तत्पिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति। षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलता जायते यदा ॥
गैरिका गोमयं भस्म कृष्णा मृत्स्ना तथैव च। एतेषां साधितं प्राज्ञभिषजा चामृतं तदा ॥
पेयं शीतं परं साकं सितया चन्दनेन च। सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं जायते यदा ॥
उशीरं गोक्षुरघनौ समङ्गा नागकेशरम्। सपद्मकं समधुना पाययेच्च विचक्षणः ॥
अष्टमे मासि चलनं गर्भजं यदि जायते। लोध्रमागधिकाचूर्णं मधुना पयसा पिबेत् ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Powdered *lodhra* and *māgadhikā* mixed with honey and milk should be prescribed for *garbhacalana* during eighth month.

गर्भपात प्रतिषेधार्थ वरणबन्ध (Varaṇabandha for preventing abortion)

महर्षि काश्यप ने कल्पस्थान के रेवती कल्पाध्याय के अंत में गर्भिणी स्त्री को वरणबन्ध बाँधने का विधान बताया है। यह वरणबन्ध मंत्र-चिकित्सा का ही एक रूप है, इसकी उपादेयता के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है, लोक में भी यह अधिक प्रचलित नहीं है।

Kāśyapa has prescribed a type of *mantra* treatment for preventing abortion. It is difficult to explain its utility as it is not in practice.

वरणबन्ध का काल (Period of varaṇabandha)

बन्धो हि गर्भिण्याः क्षयति प्रागष्टमान्मासात्, अत ऊर्ध्वं प्रतिषेधस्तस्यान्यत्र ॥ (का० सं० कल्प० ६/८०)

यह बन्ध गर्भिणी को आठवें मास के पूर्व ही बाँधना चाहिए। आठवें मास के पश्चात् इसको प्रयोग करने का निषेध है।

It should be applied before eighth month. After this month it is contraindicated.

विमर्श (Comments)

चूँकि वरणबन्ध का मुख्य उद्देश्य गर्भपात का निवारण है एवं नवम मास का एक भी दिन हो जाने पर प्रसवकाल माना जाता है, अतः आठवें मास के बाद वरणबन्ध का निषेध यथोचित ही है।

Since the purpose of this treatment is prevention of abortion or premature delivery, hence its contraindication after eighth month is justified.

वरणबन्ध की उपादेयता (Benefits of varaṇabandha)

महर्षि काश्यप ने वरणबन्ध का वर्णन करते समय बन्धन विधि में मातंगी विद्या के प्रयोग का विधान बताया है। जिस विद्या की उपादेयता का वर्णन करते हुए इसे स्वस्ति एवं शान्तिकर, सन्तान को उत्पन्न करने वाली, गर्भ का बन्धन करने वाली, विमल, अमोघ, कल्याण करने वाली बताया है तथा लिखा है कि ऋतुमती स्त्री को सुनाये जाने पर वह गर्भवती हो जाती है, गर्भवती स्त्री को सुनाए जाने पर वह पुत्र वाली हो जाती है, प्रसव-कष्ट से पीड़ित को सुनाये जाने पर उसे शीघ्र प्रसव हो जाता है तथा जिसके पुत्र मर जाते हैं उसे सुनाये जाने पर उसके पुत्र जीवित रहते हैं[१]। इन लाभों के अतिरिक्त इस विद्या को भय एवं शत्रु का नाशक आदि भी बताया है, जो अप्रासङ्गिक होने के कारण यहाँ पर वर्णन नहीं किए जा रहे।

सम्पूर्ण वरणबन्ध की उपादेयता के बारे में लिखा है कि इससे स्त्री को सन्तान की प्राप्ति होती है, उसे सर्वभूतों का भय नहीं रहता। वह जीवितपुत्रा, भाग्यवती तथा विधवा न होने वाली होती है, इसके बन्धन से सन्तान न हो ऐसा हो ही नहीं सकता ऐसा महर्षि काश्यप का कथन है[२]।

१. मातंगी नाम विद्या ····· स्वस्तिकरणी शान्तिकरी प्रजाकरी बन्धनी विमला अमोघकल्याणी;·····; य इमां स्त्रियमृतुस्नातां श्रावयते गर्भिणी भवति। य इमां गर्भिणीं श्रावयते पुत्रवती भवति। य इमां कृच्छ्रप्रसवां श्रावयत्याशु मुच्यते। य इमां म्रियमाणपुत्रां श्रावयति जीवत्पुत्रा भवति।·····। (का० सं० क० ६/८०)

२. बद्धे चैनां·····सा ह्यस्याः प्रजाः प्रयच्छति।·····। बद्धे प्रतिसरे प्रजावरणं बद्धं भवति। नास्याः सर्वभूतेभ्यो भयं भवति, आशा समृद्ध्यते, जीवत्पुत्रा सुभगा चाविधवा च भवति।·····। नास्याः प्रजा न भवतित्याह भगवन् कश्यपः।
(का० सं० क० ६/८०)

Scanned with CamScanner

While applying *varaṇabandha* the *mātaṅgī vidyā* (a type of incantation) is recited, which is said to be providing prosperity, peace and progeny, retains fetus, provides purity and efficacious fortune. If it is narrated to a woman during *ṛtukāla* she conceives; if during pregnancy, she delivers a male child; if during difficult labour, she delivers immediately and if to the woman whose children die, her children survive. Besides these long list of other benefits such as destruction of fear and enemy etc. are enumerated.

Varaṇabandha provides progeny to the woman, she becomes free from the affliction of all the *bhūtas*. She becomes mother of alive children, fortunate and does not become widow.

प्रजावरण बन्धन की विधि (Method of applying prajāvaraṇa bandhana)

वृद्धजीवक। श्रद्दधानानां धर्मक्रियावतां त्रिरात्रोपोषितानां भिषक् छुचिरुपोषितः प्रजावरणं बध्नीयात्; बद्धे चैनां दक्षिणाभिरिष्टाभिरर्चेत्, सा ह्यस्याः प्रजाः प्रयच्छति। तत्र संभारा रोहिणीस्नान स्नाता। स्नपनमप्येके रात्रौ चेत् कुर्याद् गृहेषु, दिवा चेदरण्येऽनुगुप्तमुभयं दिग्बन्धं कृत्वाऽऽत्मरक्षामत्र विधायारभेत् तत्कर्म। अथ शुचौ देशे गोचर्ममात्रं गोमयेनाद्भिश्च स्थण्डिलमुपलिप्य भिषगहतवासाः स्नातोऽलङ्कृतः प्राङ्मुख उपस्पृश्योद्धृतहस्तस्तूष्णीमुपस्पृशेदशब्दवतीभिरफेनाभिरनुष्णाभिरद्भिर्ब्राह्मेण तीर्थेन त्रिः प्राशनीयात्, द्विरोष्ठौ परिमृजेत्, तत्त्रिरित्येके। अक्षिणी कर्णौ नासिकेऽप्यपानं चोपस्पृशेत्। दृष्य (दृश्ये) महति सूर्ये स्थण्डिलमभ्युक्ष्य, हिरण्यपाणिर्दर्भपिञ्जूलीनां गर्भवतीं गृहीत्वा, तया लक्षणमुल्लिख्य दर्भपिञ्जूलीमभ्युक्ष्य बहिर्निरस्यति, तत्राग्निं प्रणयति। यथापूर्वोक्तं परिसमूह्य, परिसंमृक्ष्य, प्रदक्षिणं बर्हिषा परिस्तीर्याग्नेः पुरस्तात् काञ्चनीं राजतीमुशीरमयीं दर्भमयीं वा प्रतिकृतिं प्रतिष्ठाप्य कुमारं षष्ठीं विशाखं च, दक्षिणतो ब्राह्मणमुत्तरत उदपात्रं, द्वाभ्यां दर्भाभ्यामच्छिन्नाग्राभ्यां समाभ्यां विष्टरबद्धाभ्यामाज्यमुत्पूय, आज्यमसि देवभोजनमसि तेजोऽसि चक्षुरसि श्रोत्रमसीन्द्रियमस्यायुरसि सत्यमसि हविरसीति। अथ जुहोति दर्भश्रुवेण आधारौ हुत्वा गर्भिणीं स्त्रियं स्नातामुषितां शुक्लवसनोपसंवीतमलङ्कृतां दक्षिणत उदङ्मुखीं सुखे पीठेऽथोपवेश्य द्वौ दर्भौ हस्ते दत्त्वा, सा तूष्णीमासीत। अथ भिषगनुज्ञातो नित्यं होमं हुत्वाऽऽज्यभागौ हुत्वा मातङ्गया विद्यया जुहुयात्। ··· इत्येतया मातङ्गविद्यया शमीमयीनां समिधानमष्टशतं पलाशीनामश्वत्थमयीनामष्टशतं श्वेतानां पुष्पाणामष्टशतं सर्षपाणामग्निवर्णानामष्टशतं घृतं तैलं वसामित्युपकल्प्य, समध्वाज्यमैकध्यमालोड्य, युगपत्तिस्रः समिधो हुत्वा मन्त्रान्ते चाज्यं जुहोति; एवमष्टशतं हुत्वा प्रतिसरं लक्ष्मणापुत्रञ्जीवफलसमुद्रफेनप्रतिग्रथिता(तां) लम्बा(म्बं) ग्रहघ्नीवासुशुक्तिजीवोर्णानां रुद्रमातङ्ग्या विद्ययाऽभिमन्त्र्य कण्ठे विसर्जयेत्। ···। इत्येतया रुद्रमातङ्ग्या प्रतिसरं बध्नीयात्। बद्धे प्रतिसरे प्रजावरणं बद्धं भवति।···। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा, यथा पूर्वोक्तं शान्ति जपित्वा, महाव्याहृतिभिर्हुत्वा, देवतामभ्यर्च्य, विसर्ज्य, बलिं कृत्वाऽग्निमभ्युक्ष्य, तूष्णीं ब्राह्मणान् साधून् पुत्रवत आयुष्मतश्चान्नवासोदक्षिणाभिरभ्यर्च्य, तत उपवसेत्। तत्सर्वमाहवनमुपसंगृह्य चतुष्पथे वोदके वा क्षीरिवृक्षे वा निदधाति। एवमेतेन विधिना प्रजावरणं बद्धं भवति, नास्याः प्रजा न भवतीत्याह भगवान् कश्यपः॥ अत ऊर्ध्वं समरात्रं प्राजापत्यं चरुं पयसि श्रृतं प्रजापतये जुहुयात्, पूर्वोक्तं गोघृतमित्येके। प्रजाकामपशुकामाऽऽयुष्कामानामिति वा। (का० सं० कल्प० ६/८०)

हे वृद्धजीवक ! पवित्र एवं उपवास किया हुआ वैद्य श्रद्धा करने वाली, धर्म-युक्त आचरण करने वाली तथा तीन दिन तक उपवास की हुई स्त्री में 'प्रजावरण' बन्धन बाँधे। बन्धन बँध जाने पर इष्ट दक्षिणाओं के द्वारा उसकी (देवी की) अर्चना करे। इससे वह (देवी) सन्तान की प्राप्ति कराती है। इसमें संभारा तथा रोहिणी नक्षत्र में स्नान करना चाहिए। कुछ लोगों के मत से रात्रि में घर के अन्दर तथा दिन में जंगल में गुप्त रूप से स्नान करना चाहिए। स्नान के समय दिशाओं के बन्धन के द्वारा (अर्थात् चारों ओर से घेरा सा डालकर) आत्मरक्षा करके कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। तत्पश्चात् वैद्य

पवित्र स्थान में गोचर्ममात्र[1] स्थान की वेदी को गोबर तथा पानी से लीपकर, स्नान करके नवीन वस्त्र एवं अलंकारों से युक्त होकर, पूर्वाभिमुख बैठकर शांति पूर्वक हाथ को बाहर निकाल कर, शब्द एवं फेन से रहित किञ्चित उष्ण जल से ब्राह्मण विधि द्वारा तीन बार आचमन करे तथा दो बार ओष्ठों का परिमार्जन करे। अन्य लोगों का कहना है कि तीन बार (ओष्ठों का परिमार्जन) करे। पुनश्च (जल से) दोनों अक्षि, कर्ण, नासिका तथा गुदा का स्पर्श करे। फिर महान सूर्य के दिखाई देने पर वेदी पर जल के छींटें देकर, हिरण्यपाणि (स्वर्णमय वस्तु को हाथ में लेकर) होकर, दर्भपिंजलि-युक्त गर्भवती (कुश का गुच्छा हाथ में लिए हुए गर्भिणी) को लेकर तथा उसके द्वारा बताये हुए लक्षणों को उसी में लिखकर दर्भपिंजलि को जल के छींटें देकर बाहर निकल जाये एवं अग्नि को प्रणाम करे। फिर पूर्वोक्तानुसार सब सामान एकत्रित एवं पवित्र करके, बर्हि (कुश) के द्वारा चारों ओर प्रदक्षिणा करके, अग्नि के सामने स्वर्ण, रजत, उशीर या दर्भ मयी (इन पदार्थों की बनी हुई) कुमार, षष्ठी अथवा विशाख की प्रतिकृति (मूर्ति) को स्थापित करके तथा दक्षिण दिशा की ओर यज्ञ के ब्रह्मा तथा उत्तर की ओर जल पात्र को रखकर, अग्रभाग कटे हुए न हों ऐसे सम एवं परस्पर बँधे हुए दो दर्भों के द्वारा घृत को पवित्र करके "आज्यमसि देवभोजनमसि, तेजोऽसि, चक्षुरसि, श्रोत्रमसि, इन्द्रियमसि, आयुरसि, सत्यमसि, हविरसि," (अर्थात् यह आज्य, देवभोज्य, तेज, चक्षु, श्रोत्र, इन्द्रिय, आयु सत्य एवं हवि है) इत्यादि बोले; तथा दर्भस्तुवों (दर्भ की बनी स्रुवाओं) के द्वारा आधारों (अग्नि में एक स्थान से दूसरे स्थान तक मंत्रपूर्वक घृत डालना) में आहुति डालकर, स्नान एवं उपवास की हुई, शुक्ल वस्त्रों से आच्छादित एवं अलंकृत गर्भिणी स्त्री को दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर मुख कर के सुखकारक पीढ (लकड़ी के आसन) पर बिठाकर हाथ में दो दर्भ देकर बैठा दे। वह गर्भवती स्त्री शान्त बैठी रहे। इसके बाद वैद्य आज्ञा (अन्य यज्ञ के आचार्यों को) लेकर नित्य होम करके उसमें आज्य भाग डालकर मातङ्गी विद्या[2] के द्वारा आहुति डाले। उस मातङ्ग विद्या के द्वारा आठ सौ शमी, पलाश तथा अश्वत्थ की समिधायें, आठ सौ श्वेत पुष्प, आठ सौ अग्निवर्ण (नारंगी रंग के) सर्षप, घृत, तैल तथा वसा को एकत्रित करके सभी का मधु एवं घृत के साथ आलोडन करके युगपत् तीन समिधायें (शमी, पलाश एवं अश्वत्थ की) अग्नि में डालकर मंत्र के अंत में घृत की आहुति देवें। इस प्रकार आठ सौ बार आहुति देकर लक्ष्मणा, पुत्रंजीवफल, समुद्रफेन से ग्रथित, लम्बा (कटु तुम्बी), ग्रहघ्नी (सर्षप), वासु (अर्क), शुक्ति (सीप), जीवों की ऊर्णा (ऊन) की बनी हुई माला को रुद्रमातङ्गी[3] विद्या के द्वारा अभिमंत्रित करके गले में डाल दे। इस रुद्रमातङ्गी विद्या के द्वारा प्रतिसर (माला) को बाँधे। प्रतिसर (माले) के बंध जाने पर 'प्रजावरण बन्ध' बँध जाता है। इसके बाद स्विष्टकृत (अपने इष्ट देवताओं के नाम से) आहुति देकर तथा पूर्वोक्त शांति जाप करके महाव्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः इत्यादि) के द्वारा आहुति देकर; देवताओं की अभ्यर्चना करके, उनका विसर्जन करके; बलि देकर एवं अग्नि में जल के छींटें देकर उसे शान्त करके; ब्राह्मणों, साधुओं, पुत्रवान् तथा आयुष्मान् व्यक्तियों को वस्त्र एवं दक्षिणा द्वारा अभ्यर्चना करके बैठ जाये। तत्पश्चात् सभी हवन की सामग्री (उपकरण तथा राख आदि) को लेकर चतुष्पथ, जल (नदी या तालाब) या क्षीरिवृक्ष (के नीचे) पर रख दें। इस प्रकार इस विधि से प्रजावरण बन्ध बँध जाता है, इससे प्रजा (सन्तान) न हो ऐसा हो ही नहीं सकता ऐसा भगवान कश्यप का कथन है। इसके पश्चात् सात रात्रि तक प्रजापत्य चरु (हव्यान्न) को दूध में श्रृत करके (पका कर) प्रजापति के लिए आहुति देवे। अन्य लोगों का कहना है कि

१. सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥
७ x ३० x १० = २१०० वर्ग हाथ स्थान। (का० सं० क० ६/८० की टीका)
१५ x १५ हाथ - आप्टे

२. इस मातङ्ग विद्या को कश्यप के कनिष्ठ पुत्र महर्षि मतङ्ग ने उग्र तपस्या के द्वारा सीधा पितामह ब्रह्मा से प्राप्त किया था। इसके प्रयोग से उपरिवर्णित लाभों के अतिरिक्त अन्य भी अनेकों लाभ वर्णित हैं। जो अप्रासंगिक होने से यहाँ नहीं दिए जा रहे। इस मातङ्ग विद्या का निम्न मन्त्र है "सत्यव हिलि मिलि महामिलि कुरुट्टा अट्टे मघटे तुम्बिपसे करटे गन्धारि केयूरि पुंजङ्गमि ओजहारि सर्वपच्छेदनि अलगणिलगणि पंसुमसि कंकिकाकण्डि हिलि हिलि बिडि बिडि अट्टे मट्टे अंजिहट्टे कुक्कुकुक्कुमति स्वाहा" (का० सं० क० ६/८०)

३. निम्न रुद्रमातङ्गी विद्या है, इसमें तर्क न करके इसे श्रद्धा-पूर्वक मान लें। "नमो भगवतो रुद्रस्य मातङ्गि कपिले जटिले रुद्रशमे रक्ष रक्षेमं रिरक्षुमाज्ञापयेति स्वाहा।" (का० सं० क० ६/८०)

Scanned with CamScanner

पूर्वोक्त गोघृत की आहुति दे। प्रजा (सन्तान) की इच्छा रखने वाले, पशु की इच्छा रखने वाले तथा आयु की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को उपर्युक्त आहुतियाँ देनी चाहिए।

Pious and fasting physician should apply *varaṇabandha* to the woman who has reverence, observes righteous virtues and has been fasting for three days. After this *bandha* she should worship the goddess by desired sacrificial offerings, thus the goddess provides her with progeny. For this the woman should take bath during *sambhāra* or *rohiṇī nakṣatra*. It should be taken inside the house during night, while during day time secretly amidst the forest is the opinion of persons. The process of bath should be started after protecting her by covering the place from all the sides. Now the physician should besmear with cow-dung and water the altar made in pious place and measuring in size to *gocarmc*[1]. The physician after taking bath and wearing new garments and ornaments should sit facing to the east, and quietly stretching his arm should sip the noiseless, frothless, lukewarm water thrice for sacrificial rituals without spitting by the method advocated in *brāhmaṇas*, then wash his lips twice or thrice (according to some other persons). After this he should touch his both the eyes, ears, nose and anus with (fingers dipped in) water. When the bright sun is visible he should bedew the altar and write the symptoms narrated by the pregnant woman on the bunch of *darbha* which is held alongwith the gold by the pregnant woman; after writing the symptoms he should bedew the bunch of *darbha*, go out and do obeisance to the fire. Afterwards, collecting all the things needed for *yajña* should sanctify these; then holding *kuśas* he should go round the altar from left to right direction, thus, keeping the fire always on the right side. He should now place the idols of *kumāra, ṣaṣṭhī* and *viśākha* made with any one out of gold, silver, *uśīra* or *darbha* in front of fire, the *brahmā* of *yajña* in the south and pot of water in the north side. After sanctifying the *ghṛta* with two *darbha* of similar length with intact tips and tied together, he should recite the *mantra* that this is *ājya, devabhojya, teja, cakṣu, śrotra, indriya, āyu, satya* and *havi* and pour the *ghṛta* with the help of sacrificial ladle made of *darbhas* for oblation. Now the pregnant woman who has already taken bath, is fasting and wearing white garments and ornaments should be made to sit quietly over a wooden comfortable seat facing northwards, holding two *darbhas*. The pregnant woman should sit calm and quiet. The physician after obtaining the permission of others should offer oblation in the fire daily and after pouring *ghṛta* in the fire offer, oblation reciting *mātaṅgī vidyā*. Reciting this *mātaṅgī vidyā* he should collect eight hundred sticks of each *śamī, palāśa* and *aśwattha*, eight hundred white flowers, eight hundred yellow *sarṣapa, ghṛta*, oil and *vasā* (fat), after stirring all these with honey and *ghṛta* he should put three sticks (one each of *śamī, palāśa* and *āśwattha)* together in the fire and at the end of *mantra* should give oblation of *ghṛta*. After repeating this process for eight hundred times, reciting *rudramātaṅgī vidyā* he should put the garland in the neck of the woman made with *lakṣmaṇā*, fruit of *putrañjīva, samudraphena, kaṭutumbī, sarṣapa, arka* and *śukti* tied together with the wool of animals. By this *rudramātaṅgī vidyā* he should treat the garland, once the garland is treated it is understood that now *prajāvaraṇa bandha* is applied. Now

1. 7 x 30 x 10 = 2100 Sq. hasta or about 315 Sq. feet. (comm. of KS.)
15 x 15 hasta or arm length. (Apte)

after offering a right sacrifice for oblation he should recite the *śānti mantra* and reperform the oblation and worship the gods; after sending forth these gods, he should pacify the fire by offering sacrifices and bedewing it, worship the *brāhmaṇas*. saints and persons having sons and longevity by offering donations and garments and then sit quietly. Afterwards he should keep all the articles of oblation either on a four-way crossing or in water (pond or river) or under a *kṣīrī vṛkṣa* (latex yielding tree). Once by this entire process the *prajāvaraṇa bandha* is applied she definitely gets a progeny, is the opinion of Kaśyapa. After this he should cook *caru* (an oblation prepared with rice, barley and pulse) with milk and give its oblation (in the fire) to god *prajāpati* for seven consecutive days, others opine that instead of *caru* earlier mentioned cow's *ghṛta* should be used. The persons desirous of progeny, animals and longevity should perform these oblations.

गर्भ के कुछ अन्य विकार (Certain other fetal disorders)

(१) गर्भशोष या वाताभिपन्न गर्भ (Garbhaśoṣa or vātābhipanna garbha)

कारण एवं लक्षण (Etiology and clinical features)

आहारमाप्नोति यदा न गर्भः, शोषं समाप्नोति परिस्रुतिं वा।
तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं, पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात्॥ (च० सं० शा० २/१५)

वाताभिपन्न एव शुष्यति गर्भः। स मातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पन्दते च॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

यदा तून्मार्गगो वातो गर्भस्य रसवाहीनि स्रोतांसि शोषयति तदा वातरोगी हीनो जायते। बहूनि वा वर्षाण्युदरे तिष्ठति॥ (अ० सं० शा० २/३७)

जब गर्भ को (उचित) आहार नहीं प्राप्त होता या (गर्भाधान होने के बाद भी) स्राव (योनि से रक्तस्राव) होते रहने के कारण गर्भ का शोष हो जाता है, उस वर्षों के बाद भी पुष्ट हुए गर्भ को स्त्री चिरकाल के बाद प्रसवित करती है। अन्यत्र वायु के कारण गर्भ में शुष्कता होने का उल्लेख है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि वात से आक्रांत होने पर गर्भ सूख जाता है, तब वह माता की कुक्षि का पूरण नहीं करता तथा मन्द मन्द स्पन्दन करता है। टीकाकार डल्हण ने मन्द मन्द स्पन्दन का कारण गर्भ के वात से आक्रान्त होने के कारण ओज का विरहित होना माना है एवं वृद्ध काश्यप द्वारा वर्णित शुष्क गर्भ के लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भ की नाड़ी में रस के वहन न होने या अल्प वहन होने के कारण गर्भ को समय पर भोजन न मिलने से गर्भ बहुत देर में बढ़ता है एवं कुक्षि का अपूरण तथा मन्द स्पन्दन आदि लक्षण होते है[2]।

अष्टांगसंग्रहकार ने भी लगभग महर्षि सुश्रुत सदृश ही लिखा है कि जब उन्मार्गगामी (वेगावरोधादि कारणों से प्रकुपित) वायु गर्भ के रसवाही स्रोतों को सुखा देता है तो वह गर्भ वातरोगी एवं हीन हो जाता है तथा बहुत वर्षों तक उदर में ठहरता है। अष्टाङ्गहृदयकार ने भी वायु के कारण गर्भशोष होने का वर्णन दिया है[3]।

महर्षि भेल न लिखा है कि जब वायु योनि-गत शुक्र को ग्रहण कर लेती है एवं (उसी वायु आक्रांत शुक्र से)

१. च० सं० चि० २८/९५,९६ (चिकित्सान्तर्गत उद्धृत)।
२. वातशोषणेनैव विहतौजस्त्वाद् गर्भो मन्दमेव चलति। ..... वृद्धकाश्यपेन शुष्ककक्षणमभिहितं यथा–
"गर्भनाड्यास्त्ववहनादल्पत्वाद् वा रसस्य च। चिरेणाप्यायते गर्भस्तथैवाकालभोजनात्। अकुक्षिपूरणं गर्भस्पन्दनं मन्दमेव च" इति॥ (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)
३. अ० ह० चि० २१/२१ (पृष्ठ ३६०)

Scanned with CamScanner

स्त्री को शुद्ध आर्तव (एवं शुक्र) के समन्वय से गर्भ धारणा हो जाती है तब यदि स्राव (रक्त का) होता है तो गर्भ का नाश हो जाता है उसे वातोदर कहते हैं[1]।

आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने बहुत ही संक्षेप में कहा है कि वात से गर्भ शुष्क होने के कारण उदर का पूरण नहीं करता[2]।

Due to non-availability of proper diet (nourishment) to the fetus or vaginal discharges (bleeding) after conception the fetus suffers from *śoṣa* (emaciation or dryness). This fetus attains its proper growth or maturity after years and the woman delivers it after years or prolong delay. *Vāyu* is also said to be a cause for dryness of fetus.

Suśruta opines that due to affliction by *vāyu* the fetus gets dried up, does not fill properly the mother's abdomen and quivers very slowly. Ḍalhaṇa elaborating the etiology says that due to effect of *vāyu* the fetus has absence of *ojas*. Further quoting Vṛddha Kāśyapa writes that the *rasa* either flows slowly or does not flow in the *rasavahānāḍī* of fetus thus it developes very slowly.

The upwards moving *vāyu* dries *rasavāhī* channels of the fetus, thus it suffers from *vāta* disorders, becomes emaciated and remains in uterus for years together is the opinion of Vāgbhaṭa I. Vāgbhaṭa II opines that *vāyu* dries the fetus.

Bhela says that when *vāyu* situated in *yoni* gets mixed up with *śukra* and conception takes place with the union of healthy *ārtava* and this vitiated *śukra*, then if bleeding occurs, the fetus gets destroyed and this condition is termed as *vātodara*.

Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have followed Suśruta.

चिकित्सा (Treatment)

(१) रुक्ष पदार्थों का त्याग[3]।

(२) बृंहणीय औषधि, दुग्ध एवं मांसरस का प्रयोग करें[4,5]।

(३) लीन गर्भ वर्णित चिकित्सा भी करें[6]।

(४) गर्भशोष होने पर मधुयष्टी, काश्मरी-फल, शारिवा एवं शर्करा से श्रृत दुग्ध देना चाहिए[7]।

(५) मांसाहारी प्राणियों के मांसरस में बृंहणीय औषधियों एवं स्नेह मिलाकर देना चाहिए[7]।

(६) जिन स्त्रियों का गर्भ नहीं बढ़ रहा है उन्हें क्षीर का प्रयोग करना चाहिए, इससे गर्भ को पुष्टि प्राप्त होती

१. गृह्णाति वायुर्यस्यां च योनौ शुक्रमुपागतः(म्)। बिभर्ति गर्भि(र्भिं)णी गर्भं शुद्धार्तवसमन्विता ॥ ६॥
च्यवते च यदा चाऽसौ तदा गर्भः प्रणश्यति ॥
वातोदरं स्त्रियास्तद्वै ..... ॥ ७॥ (भै० सं० शा० ३/६ व ७)

२. गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि। (भा० प्र० चि० ७०/९७ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

३. तस्माद्रूपा(क्षा)णि वर्जयेत्। (भै० सं० शा० ३/७)

४. सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत्॥ (भा० प्र० चि० ७०/९७ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

५. तं बृंहणीयैः पयोभिर्मांसरसैश्चोपचरेत्॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

६. मांसरसैश्चेति चकारात्क्षीरप्रतिकारसमुच्चयः॥ (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)

७. शुष्यति तु गर्भे बालेषु च यष्टीमधुककाश्मर्यफलशारिवाशर्कराश्रृतं पयो दद्यात्। मांसाद्मांसरसांश्च बृंहणीयस्नेहयुक्तान्॥
(अ० सं० चि० २३/१२)

है एवं उसमें दृढ़त्व आता है[1]।

(७) महर्षि चरक ने लिखा है कि यदि वायु के कारण गर्भ में शुष्कता हो जाय या बालक सूखने लगे तो उसके उत्थापन अर्थात् पुष्टि के लिए सिता, काश्मरी एवं मधुक से श्रृत दुग्ध देना चाहिए।[2]

i) Use of dry articles should be avoided.

ii) *Bṛṃhaṇīya* (anabolic) drugs, milk and meat soup should be used.

iii) Treatment prescribed for *līna-garbha* can be used.

iv) Milk treated with *madhuyaṣṭī*, fruit of *kāśmarī*, with *śārivā* and mixed with sugar should be prescribed.

v) Meat-soup of carnivorous animals mixed with *bṛṃhaṇīya* drugs and fat should be given.

vi) Milk should be prescribed as it provides nourishment and stability to the fetus.

vii) Caraka has mentioned that if due to vitiation of *vāyu*, the fetus gets dried or child gets emaciated then for growth and development of this, the milk medicated with *sitā*, *kāśmarī* and *madhuka* should be prescribed.

विमर्श (Comments)

गर्भशोष गर्भाशयान्तर स्थित गर्भ की अल्पवृद्धि का द्योतक है।

Garbhaśoṣa refers to intrauterine growth retardation of fetus.

(२) उपविष्टक गर्भ (Upaviṣṭaka garbha)

निदान, सम्प्राप्ति एवं सामान्य लक्षण (Etiopathogenesis and clinical features)

यस्याः पुनरुष्णातीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्या महति संजातसारे गर्भे पुष्पदर्शनं स्यादन्यो वा योनिस्रावस्तया गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति निःस्रुतत्वात्, स कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रं, तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित्।
(च० सं० शा० ८/२६)

यस्याः पुनर्महति जातसारे गर्भे वर्ज्यानामवर्जनात्पुष्पदर्शनं स्यादन्यद्वा योनिस्रवणम्। ततो नाड्यां दोषैः कुल्यायामिव तृणपत्रादिभिः प्रतिच्छन्नायां रसस्यासम्यग्वहनाद्गर्भो वृद्धिमनाप्नुवन्नुपविशत्युपशुष्यति वा॥

तत्र यस्याः कदाचित्कार्तव (कदाचिदार्तव-शु० पा०) परिस्रावाबल्पौ च दृश्येते सततं च गर्भः प्रामात्परिमाणादपरिहीयमान एव स्फुरति न च कुक्षिर्विवर्धते तमुपविष्टकमित्याचक्षते॥ (अ० सं० शा० ४/११,१२)

सञ्जातसारे महति गर्भे योनिपरिस्रवात्। वृद्धिमप्राप्नुवन् गर्भः कोष्ठे तिष्ठति सस्फुरः॥ १४॥
उपविष्टकमाहुस्तं, वर्धते तेन नोदरम्॥ (अ० ह० शा० २/१४ व १५)

जब बड़ा एवं संजातसार गर्भ हो जाने के बाद गर्भिणी द्वारा उष्ण, तीक्ष्ण आदि द्रव्यों के प्रयोग के कारण पुष्प-

१. गर्भश्च यस्या न विवर्धते च॥ ८४॥
पुष्टिर्दृढत्वं लभते च गर्भो॥ ८७॥ (का० सं० कल्प० ७)

२. (अ) गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम्॥ ९५॥
सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः॥ ९६॥ (उत्थापने पुष्टिजनने-चक्र०) (च० सं० चि० २८)
(आ) गर्भे ..... च विशुष्यताम्। ..... मधुकैः सिद्ध ..... ॥ (च० सं० सदृश) (अ० ह० चि० २१/२१, २२)

Scanned with CamScanner

दर्शन (रजःस्राव) या अन्य किसी भी प्रकार का स्राव होने लगता है तो निःसृति के कारण गर्भ की वृद्धि नहीं होती, वह गर्भ गर्भाशय में अतिकाल तक बना रहता है उसे उपविष्टक कहते हैं।

अष्टांगसंग्रहकार ने सर्वप्रथम उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ दोनों के ही सामान्य कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस स्त्री को गर्भ के जातसार (चौथे महीने के उपरान्त) हो जाने के बाद भी परित्याज्य (आहार, विहार) न छोड़ने के कारण योनि से पुष्प-दर्शन (रक्तस्राव) या अन्य प्रकार का स्राव होता है, उसका इस कारण (योनि से रक्तस्राव के कारण) प्रकुपित हुआ वायु पित्त एवं श्लेष्मा को लेकर गर्भ की रसवहा नाड़ी का प्रतिपीड़न करता है। उस (दोषों के द्वारा प्रतिपीड़न या दबाव या अवरोध) नाड़ी के दोष के कारण गर्भ में तृण-पत्र से प्रतिच्छन्न (रुकावट उत्पन्न की हुई) कुल्या के सदृश गर्भ की रसवहा नाड़ी में रस के असम्यक् वहन के कारण गर्भ वृद्धि को प्राप्त न होता हुआ उपविष्टक या उपशुष्क हो जाता है (अर्थात् जिस प्रकार तृण-पत्रादि से आच्छादित कुल्या में असम्यक् रूप से बहते जल से खेत में खड़े धान्य जलाभाव के कारण उचित रूप से वृद्धि नहीं प्राप्त कर पाते, उसी प्रकार विकृत दोषों से गर्भ की रसवहा नाड़ी के अवरुद्ध हो जाने से गर्भ का सम्यक् पोषण नहीं हो पाता एवं उपविष्टक या उपशुष्क हो जाता है)।

पुनश्च उपविष्टक के विशिष्ट कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब गर्भवती स्त्री को थोड़ा थोड़ा सा परन्तु निरन्तर रक्तस्राव होता है तब वह गर्भ अपने प्राप्त परिमाण से न घटता हुआ अर्थात् उतना बड़ा ही बना रहता हुआ स्फुरण करता है, कुक्षि का वर्धन नहीं होता उसे उपविष्टक गर्भ कहते हैं।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि संजातसार एवं गर्भ के बढ़ते हुए होने के बाद यदि योनि से स्राव (रक्तस्राव) होता है तब वृद्धि को प्राप्त न होता हुआ, (परन्तु) स्फुरण करता हुआ गर्भ कोष्ठ में स्थित रहता है, उसे उपविष्टक कहते हैं, इसमें उदर की भी वृद्धि नहीं होती। टीकाकार अरुणदत्त ने संजातसार अथवा बलवान् गर्भ की वृद्धि होने के बाद (अर्थात् पाँचवें या छठे मास के बाद) इस अवस्था के होने का निर्देश किया है तथा लिखा है कि योनि से अधिकतर तो रक्त ही निकलता है परन्तु कभी-कभी अन्य प्रकार के भी स्राव होते हैं। परिस्राव के कारण वृद्धि को न प्राप्त होता हुआ गर्भ कोष्ठ या गर्भाधार या गर्भाशय में ठहरता है। योनि से स्राव के कारण प्रकुपित वायु पित्त एवं श्लेष्मा को लेकर गर्भ की रसवहा नाड़ी को आच्छादित कर गर्भ का पोषण नहीं होने देते[1]।

After some development and attainment of *sāra* (after fourth month) by the fetus if bleeding per vaginum or other types of vaginal discharges occur due to use of pungent and hot articles by the pregnant woman, then the fetus does not grow properly due to these discharges, and stays in the uterus for a very long time. This condition is termed as *upaviṣṭaka*.

Vāgbhaṭa I mentioning the causes of *upaviṣṭaka* and *upaśuṣka* both together writes that after attainment of *sāra* by the fetus if woman uses contraindicated articles, bleeding per vaginum or other vaginal discharges start. *Vāta* aggravated due to this bleeding withholding *pitta* and *śleṣmā* compresses the ***rasavahā nāḍī*** of the fetus. Because of this obstruction to *rasavahā nāḍi* causing improper flow of *rasa*, the fetus does not develop properly and becomes *upaviṣṭaka* or *upaśuṣka*, in the same way as the paddy does not grow properly if the water does not reach the field due to obstruction with leaves and grass etc. to its flow

१. ·····सञ्जातसारो-बलवान् गर्भः, तस्मिन्। तथा, महति प्रवृद्धे सति।·····। परिस्रव इति च सामान्येन निर्देशात् कदाचिद्रूक्षरूपः कदाचिदन्यादृशोऽपि गर्भास्रवति। परिस्रवाच्च कारणात् वृद्धिमप्राप्नुवन् ····· कोष्ठ एव-गर्भाधार एव तिष्ठति गर्भः। यतो योनिपरिस्रवात्कारणात् वायुः कुपितः पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्य गर्भस्य रसवहां नाडीं प्रतिपीडयावतिष्ठते। ततो नाड्यां दोषैः कुल्यायामिवतृणपत्रादिभिः प्रतिच्छन्नायां रसस्यासम्यग्वहनान्नाड़ीरोधादवृद्धयभावो गर्भस्य॥
(अ० हृ० शा० २/१४ व १५ की अरुण० टीका)

in the supply-channels. Further giving specific etiology of *upaviṣṭaka* he writes that when the woman gets scanty but continuous bleeding per vaginum, then the fetus without decreasing in its size continues the quivering. *Kukṣi* (uterus) does not increase in size. Identical is the opinion of Vāgbhaṭa II. Aruṇadatta specifying the period of disease says that it occures when the fetus has become *balawāna* (strong i. e. 5th or 6th month).

(३) नागोदर या उपशुष्क गर्भ (Nāgodara or upaśuṣka garbha)

कारण, सम्प्राप्ति एवं लक्षण (Etiopathogenesis and clinical features)

उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदाहारायाः स्नेहद्वेषिण्या वातप्रकोपणोक्तान्यासेवमानाया गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति परिशुष्कत्वात्; स चापि कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रम्, अस्पन्दनश्च भवति, तं तु नागोदरमित्याचक्षते॥
(च० सं० शा० ८/२६)

शुक्रशोणितं वायुनाभिप्रपन्नमवक्रान्तजीवमाष्मापयत्युदरम्। तं कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेषापहृतमिति भाषन्ते। तमेव कदाचित् प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुः॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

यस्यापुनर्महति ····· वृद्धिमनाप्नुवन्नुपविशत्युपशुष्यति वा॥ (उपविष्टकान्तर्गत वर्णित)

यदा तु प्रतिमासमार्तवं प्रत्यहं वा परिस्रवणं नात्यल्पं च तथा परिहीयमाणो गर्भश्चिरात्किञ्चित्स्पन्दते। कुक्षिश्च वृद्धोऽपि परिहीयते तदुपशुष्ककं नागोदरं च॥ (अ० सं० शा० ४/११ एवं १३)

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवा योन्यतिस्रवात्॥ १५॥
वाते क्रुद्धे कृशः कृष्येद्गर्भो 'नागोदरं' तु तम्॥
उदरं वृद्धमप्यत्र हीयते स्फुरणं चिरात्॥ १६॥ (अ० हृ० शा० २/१५ व १६)

उपवास एवं व्रत परायण, कुत्सित भोजन करने वाली, स्नेहद्वेषिणी (भोजन एवं पान में स्नेह द्रव्यों का प्रयोग न करने वाली) तथा अन्य वात प्रकोपक (आहार विहार) का सेवन करने वाली स्त्री का गर्भ शुष्क हो जाने के कारण वृद्धि को नहीं प्राप्त होता, वह (उदर में) अतिकाल तक अर्थात् बहुत देर तक ठहरता है तथा स्पन्दन नहीं होता इसे नागोदर कहते हैं।

यद्यपि महर्षि चरक ने नागोदर से पीड़ित होने वाले गर्भावस्था के काल का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिया परन्तु उपविष्टक के बाद वर्णन होने के कारण ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि यह भी गर्भ के संजातसार होने के बाद की ही व्याधि है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि वायु से पीड़ित शुक्र एवं शोणित जीवात्मा की अवक्रान्ति होने के बाद उदर का आध्मान कर देते हैं। वह कदाचित् अपने आप शान्त हो जाने पर नैगमेषापहृत कहलाता है तथा कभी प्रलीयमान होने पर 'नागोदर' कहलाता है। टीकाकार डल्हण ने इसे असंजात अंग की अवस्था अर्थात् तीसरे मास से पूर्व की अवस्था का विकार माना है तथा लिखा है कि यह उदर में अकुथित अर्थात् बिना सड़ी हुई अवस्था में रहता है तथा वात के प्रकोप के कारण बार-बार स्रोतों में प्रविलीयमान होता है अर्थात् अल्प या छोटा होता जाता है[1]।

अष्टांगसंग्रहकार ने उपशुष्क के विशिष्ट निदान में लिखा है कि जब (गर्भवती स्त्री में) आर्तव (रक्त) प्रतिमास या प्रतिदिन अनल्प (अधिक) मात्रा में स्रवित होता रहता है, तब परिहीयमाण (प्रमाण में घटता हुआ) गर्भ बहुत देर से एवं

१. शुक्रशोणितमिति वचनादसञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गमेव, वायुनाऽभिप्रपन्नं वायुनोपरुद्धं, अवक्रान्तजीवं जीवनोपगतम्, अतएवाकुथितमवतिष्ठते'।·····। तमेव वाताभिपन्नमेव, पुनः पुनरनयावृत्त्या प्रविलीयमानमल्पीभवन्तं नागोदरमिति ब्रूवते॥
(सु० सं० शा० १०/५७ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

थोड़ा-थोड़ा स्पन्दन करता है। कुक्षि (उदर) की वृद्धि भी घटती जाती है तब उसे उपशुष्क या नागोदर कहते हैं।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि शोक, उपवास, रूक्ष (अन्नपानादि) आदि के प्रयोग अथवा योनि से (रक्त के) अतिस्राव होने से क्रुद्ध वायु गर्भ को कृश करके उसे नष्ट कर देता है या सुखा देता है[1] उसे नागोदर कहते हैं। इसमें उदर की वृद्धि भी घटती है तथा देर से स्फुरण होता है।

महर्षि भेल ने संक्षेप में लिखा है कि शिराओं के मुखों (स्रोतस्) की दुष्टि के कारण जब गर्भ को रस सामान्य रूप से नहीं मिलता तो वह (रस के न मिलने के कारण पूर्ण रूपेण न बढ़ा हुआ गर्भ) असम्पूर्ण होने के कारण नाग (हाथी के गर्भ) की तरह वर्षों तक (गर्भाशय) में रहता है[2]। पुनश्च लिखा है कि जातसार (गर्भ के चौथे महीने के बाद) होने के बाद यदि योनि से पुष्प (रक्त) का स्राव होता है तब उस स्त्री में रक्त के गिरने के कारण न बढ़ा हुआ गर्भ परिशुष्क मात्र होकर ठहरता है अर्थात् सूखा हुआ गर्भ रुका रहता है[3]।

आचार्य भावमिश्र ने लिखा है कि शुक्रार्तव से बना हुआ अजाताङ्ग (अंग-प्रत्यंग न बना हुआ), वायु से पीड़ित होने के कारण सूखा हुआ, जीवात्मा के द्वारा परित्यक्त गर्भ कठिन होकर उदर में ठहरता है। शुक्र एवं रक्त को नष्ट करने या सुखाने वाला वह वायु कभी-कभी पेट में आध्मान कर देता है, कुछ काल बाद आध्मान अपने आप शान्त हो जाता है तब लोक में नैगमेय ने गर्भ को हरण कर लिया इस प्रकार कहा जाता है। वह कभी अल्प प्रवृत्ति (योनिमार्ग से रक्त की अल्प प्रवृत्ति) के कारण लघु अर्थात् अपने सामान्य आकार से छोटा होकर उदर में ठहरता है, इस गर्भ को लोक में 'नागोदर' कहते हैं।[4]

योगरत्नाकरकार ने आचार्य भावमिश्र के समान ही वर्णन करते हुए लिखा है कि शुक्रार्तव से बना हुआ अजात अंग-प्रत्यंग (अर्थात् दो या तीन माह का गर्भ) वाला, वायु से पीड़ित गर्भ जीवात्मा के द्वारा परित्यक्त होकर क्वाथित होकर, अर्थात् सड़कर (गर्भाशय में) ठहरता है। शुक्र एवं आर्तव को आर्द्र करता हुआ वायु उदर में आध्मान कारक होता है, कभी-कभी वह आध्मान स्वयं ही शान्त हो जाता है, तब लोक में नैगमेय ने गर्भ हर लिया ऐसा कहते हैं। वही लोक में नागोदर गर्भ भी कहा जाता है[5]।

The woman who often observes fasts, eats stale food, does not take fat and uses other *vāta* vitiating articles, her fetus gets desiccated and does not grow. This fetus remains in the uterus for a very long time and does not quiver. This entity is termed as *nāgodara.*

Suśruta writes that *śukra* and *śoṇita* afflicted by *vāyu* after descend of *jīvātmā* produce distension of abdomen. When this distension disappears it is said that the fetus has

१. पाठ भेद में "कृष्येत्" के स्थान पर "शुष्येत्" पाठ है जो अधिक युक्तिसंगत है। अथवा "कृष्येत्" के स्थान पर "कृश्येत" कर देने से भी कृशता या शुष्कता का अर्थ निकल आता है।

२. नाप्नोति च यदा गर्भो रसं दुष्टैः सिरामुखैः। असंपूर्णो वसं(त्) नागस्तदा वर्षाणि तिष्ठति॥ (भे० सं० शा० ३/१२)

३. त(य)स्यास्तु खलु योनि(:) जातसारे पुष्पमाश्रय(स्रव)ति तस्याः पतति नवापोत्य(प्याति)कालं वावतिष्ठते गर्भः परिशुष्कमात्रं इति॥ (भे० सं० शा० ८/५)

४. शुक्रार्तवमजाताङ्गं संशुष्कं मरुताऽऽर्दितम् त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्काठिनं चावतिष्ठते॥ ९८॥
शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद् भवेत्। कदाचिच्चेत्तदाऽऽध्मानं स्वयमेव प्रशाम्यति॥ ९९॥
नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा। स एवाल्पप्रवृत्त्या चेल्लघुर्भूत्वाऽवतिष्ठते॥ १००॥
तदा स गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः॥ १०१॥ (भा० प्र० चि० ७०)

५. शुक्रार्तवमजाताङ्गं प्रत्यङ्गं मारुतार्दितम्। त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्क्वथितं चावतिष्ठते॥
शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत्। कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेवाऽऽपतेत्तराम्॥
नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा। स चापि गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

been taken away by *naigameṣa:* however, sometimes if it is re-absorbed then is called *nāgodara,* Ḍalhaṇa says that the disease occurs before three months of pregnancy and embryo remains there without decomposition; because of its dessoloution in the *srotasas* its size decreases.

Vāgbhaṭa I giving specific etiology (general discribed under *upaviṣṭaka)* of *upaśuṣka* says that when the pregnant woman gets excessive bleeding either daily or monthly, then the fetus decreases in size and quivers very slightly, size of abdomen also decreases. This entity is called *upaśuṣka* or *nāgodara.*

Vāgbhaṭa II says that either due to grief, fasting and use of dry articles or due to excessive bleeding the vitiated *vāyu* producing emaciation of fetus destroys it or desiccates it. This is called *nāgodara.* In this condition size of abdomen also decreases and quivering of fetus is delayed.

Bhela says that fetus does not get proper *rasa* due to vitiation of orifices of *sirās.* This under-developed fetus remains in the uterus for years just like the fetus of elephant. Because of the bleeding per vaginum occurring after the fetus has become *jātasāra* (after 4th month of pregnancy) it does not develop properly. gets desiccated and remains in the uterus.

Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have given similar description as written by Suśruta.

उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ में वाताधिक्य होने पर लक्षण (Clinical features of upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha having predominance of vāyu)

तत्र वातेनोपविष्टकोपशुष्कयोर्वायुः प्रतिहन्यते सशब्दं फेनिलं विच्छिन्नं शकृदुपवेश्यते मूत्रमुपरुध्यते कटीपृष्ठहृदयेषु वेदना जृम्भा निद्रानाशोऽभीक्ष्णं प्रतिश्यायः शुष्ककासः सादः क्ष्वेलेते इव कर्णौ तुद्येते इव शङ्खौ पिपीलिकाभिरिव संसृप्यते शरीरं परिकृन्तन्निव वायुर्भ्रमति कुक्षौ तम इव प्रवेश्यते दुःखेनान्नस्य जरणमहरहः परिहानिः स्फुटितविवर्णपरुषत्वक्त्वं च भवति॥ (अ० सं० शा० ४/१५)

उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ में (उपविष्टक या उपशुष्कावस्था के बाद भी वात प्रकोपक या अन्य अपथ्य के सेवन से) वायु की अधिकता होने पर वह वायु उस स्त्री को आक्रान्त करती है, इससे उस स्त्री को शब्द के साथ, फेनदार, फटा हुआ सा (छिछड़ेदार) मल-त्याग, मूत्रावरोध, कटि, पृष्ठ एवं हृदय प्रदेश में वेदना, जृम्भा, निद्रानाश, अभीक्ष्ण या अत्यधिक प्रतिश्याय, शुष्क कास, अंगसाद आदि हो जाते हैं, कर्ण में कण्डु सदृश अनुभूति, शंखप्रदेश में सुई चुभने सदृश वेदना एवं शरीर में पिपीलिका के चलने सदृश अनुभूति होती है। (उदर को) काटती हुई (सी वेदना करती हुई) वायु कुक्षि में घूमती है। तम-प्रवेश सदृश प्रतीति होती है अर्थात् आँखों के सामने अँधेरा आ जाता है। अन्न का जरण या पाचन कष्ट के साथ होता है। धीरे धीरे (शरीर का) क्षय होता है। त्वचा स्फुटित, विवर्ण एवं पुरुष या कठोर सी हो जाती है।

When *upaviṣṭaka* and *upaśuṣka garbha* have predominance of *vāyu* then this aggravated *vāyu* attacks the pregnant woman, and she passes liquid, fragmented, frothy stool with sound, and suffers from retention of urine, backache and pain in sacral and cardiac regions, yawning, -insomnia, severe coryza, dry cough and lassitude of body; feels itching like sensation in ears, pricking (by needles) like pain in temporal region, creeping of ants like sensation all over the body, *vāyu* moves in abdomen producing cutting pain. She feels as if entering in dark place. her food is digested with difficulty, body is gradually emaciated and skin becomes cracked, discoloured and rough.

Scanned with CamScanner

उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ में पित्त का प्रकोप होने पर लक्षण *(Clinical features of upaśuṣka and upaviṣṭaka garbha dominated by pitta)*

पित्तेन ताम्रहरितमुपवेश्यते धूमकोऽम्लकश्छर्दिर्मूर्च्छा कुक्षिहृदयदाहः पीतरक्तगोमूत्राभनेत्रमूत्रनखत्वं काली दुर्बला नित्यशूला च नारी भवति ॥ (अ० सं० शा० ४/१६)

उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ में पित्त का प्रकोप होने पर उसे (गर्भिणी स्त्री को) ताम्र एवं हरित वर्ण का मल-त्याग, धूम सदृश (गले एवं मुख में धुआँ भरा हुआ सा) प्रतीति, अम्ल-छर्दि, मूर्च्छा, कुक्षि तथा हृदय प्रदेश में दाह, नेत्र, मूत्र एवं नख के वर्ण का पीले या रक्तवर्ण या गोमूत्र के सदृश होना, त्वचा का कालापन, दुर्बलता तथा नित्यप्रति शूल आदि लक्षण हो जाते हैं।

In vitiation of *pitta* during both these conditions woman passes coppery or green stool, feels as if smoke is filling her mouth and throat, suffers from vomiting of acidic taste, unconsciousness, burning sensation over abdomen and cardiac region, her eyes, nails and urine become yellow, red or like cow's urine in colour, blackening of skin, weakness and continuous pain also develop.

उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ में श्लेष्मा का प्रकोप होने पर लक्षण *(Clinical features of upaśuṣka and upaviṣṭaka garbha dominated by śleṣmā)*

श्लेष्मणामधुरास्यत्वमुत्क्लेशः श्लेष्मोद्वमनं भक्तद्वेषः श्वेतहस्तपादनेत्रता कासः श्वासश्च ॥
(अ० सं० शा० ४/१७)

उपशुष्क एवं उपविष्टक में श्लेष्माधिक्य होने पर मुख में मधुरता, उत्क्लेश या जी मिचलाना, श्लेष्मा का वमन, खाने से द्वेष या भोजन में अरुचि, हाथ पैर एवं नेत्रों की श्वेतता, कास तथा श्वास आदि लक्षण होते हैं।

When both these conditions have vitiation of *śleṣmā*, then the woman suffers from sweet taste of mouth, nausea, vomiting containing mucus, dislike for food, whiteness of extremities and eyes, cough and dyspnoea etc.

उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ का प्रसव काल *(Time of delivery of upaśuṣka and upaviṣṭaka garbha)*

तौ तु मातुराहारतेजसाऽल्पेनाप्यायमानौ यदा पुष्टो स्यातां केशदशनादियुक्तौ तदा वर्षगणैरपि प्रमदा प्रसूयत एव ॥
(अ० सं० शा० ४/१४)

वे दोनों (उपविष्टक एवं उपशुष्क) माता के आहार के तेज (अग्नि) से धीरे धीरे बढ़ते हुए जब पुष्ट होते हैं तो केश, दशनादि युक्त उन्हें स्त्री वर्षों के बाद भी प्रसवित करती है। टीकाकार इन्दु का मत है कि अधिक दिन तक गर्भाशय में रहने के कारण गर्भ के केश, दशन आदि निकल आते हैं[1]।

महर्षि चरक ने इन दोनों के ही प्रसव-काल की कोई निश्चित मर्यादा नहीं बताई, पर उपविष्टक के लिए "कालातीति स्थायिनि" अर्थात् "सामान्य प्रसव-काल के बीत जाने पर भी गर्भाशय में ही स्थित रहना" आदि वर्णन कर विलम्बित प्रसव-तिथि की ओर ही इंगित किया है।

महर्षि भेल का कथन है कि माता के आहार-रस से पोषित होकर वह गर्भ जब भी सम्पूर्ण गात्र का हो जाता है, तभी स्त्री की कुक्षि से उसकी विच्युति होकर उसका प्रसव-काल हो जाता है[2], अर्थात् सम्पूर्णाङ्गता को प्राप्त होकर गर्भ

१. तौ चोपविष्टकोपशुष्ककौ ..... तदाकेशदशनादियुक्तौ बहुभिरपि वर्षैः प्रमदा प्रसूयेत ॥ (अ० सं० शा० ४/१४ की इन्दु टीका)
२. सम्पूर्णगात्रो भवति यदा स रसभावतः। तदा प्रसौत्यथाकाशं(लं) गर्भः स्त्रीकुक्षिविच्युतिः ॥ (भे० सं० सा० ३/१३)

प्रसवित होता है।

Both these develop very slowly by the fire of maternal diet. When these attain proper development or maturity then are delivered, may be even after years. Because of prolong intra-uterine stay hair and teeth also grow before birth.

Caraka without specifying any period says that these have prolong intrauterine stay.

Bhela opines that delivery depends upon maturity of fetus, delivery takes place only when fetus is fully mature.

उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ-चिकित्सा *(Treatment of upaśuṣka and upaviṣṭaka garbha)*

उपशुष्क या नागोदर की विशिष्ट चिकित्सा *(Specific treatment of upaśuṣka or nāgodara)*

(१) महर्षि सुश्रुत ने लीन गर्भ सदृश चिकित्सा का विधान बताया है[1]। जिसका वर्णन लीन गर्भान्तर्गत किया जायगा।

(२) आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने धान्य कुट्टन ही इसकी मुख्य चिकित्सा बताई है[2]।

i) Suśruta says that treatment prescribed for *līna garbha* should be used in this condition also.

ii) Bhāvamiśra and Yogaratnākara opine that to pestle the paddy is its main treatment.

उपविष्टक तथा उपशुष्क गर्भ की सामान्य चिकित्सा *(General treatment of upaśuṣka and upaviṣṭaka garbha both together)*

(१) इन दोनों में (उपविष्टक या उपशुष्क में) भूताधिकार में वर्णित घृत[1] यथा वचाघृत, गुग्गुल्वादिघृत, महापैशाचिक घृत तथा जीवनीय-वृंहणीय एवं मधुर तथा वातहर औषधियों से सिद्ध घृत[1,2,3], क्षीर[1,2] मांसरस[2] तथा आमगर्भ[1,2,3] (भ्रूण या अण्डे) का अथवा उपर्युक्त (जीवनीय, वृंहणीय, मधुर एवं वातहर) औषधियों से सिद्ध क्षीर या मांसरस का प्रयोग करवाना चाहिए[1]। ये सभी प्रयोग गर्भ की वृद्धि करने वाले होते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि जो द्रव्य वातघ्न, वंहण एवं मधुर एक साथ हों यथा द्राक्षा एवं शर्करा आदि उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए। वातघ्न एवं वृंहण एवं मधुर इस प्रकार अर्थ नहीं करना चाहिए[4]।

(२) भोजन के साथ भी उपर्युक्त घृत आदि का प्रयोग करना चाहिए[1,2]।

(३) भोजन आदि से तृप्त होकर बार-बार यान, वाहन आदि का प्रयोग तथा क्षोभण[1,2,3] एवं मार्जन, जृम्भण आदि का प्रयोग करना चाहिए[1,2]।

चरकसंहिता के पाठभेद में एवं टीकाकार चक्रपाणि ने अर्थ करने पर "सुभिक्षायाः" के स्थान में "सुबुक्षायाः" लिखा है उस समय इस शब्द को न० २ के वर्णन के साथ मिलाकर 'भूख लगने पर घृत आदि का प्रयोग' यह समझना होगा[1]।

टीकाकार इन्दु ने 'सुभिक्षा' का 'तृप्त' अर्थ करते हुए अपवर्जन अर्थात् दानादि देने के विधान का वर्णन दिया है[2]।

१. तत्रापि लीनवत् प्रतीकारः ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)
२. धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयोरपि ॥ (भा० प्र० चि० ७०/१०१ एवं यो० र० स्त्रीरोगचिकित्सा)

नोट- उपविष्टक तथा उपशुष्क गर्भ की सामान्य चिकित्सा के संदर्भ पृष्ठ सं० ३६८ पर देखें।

Scanned with CamScanner

(४) टीकाकार अरुणदत्त ने उपविष्टक एवं नागोदर में भी स्त्री को बार बार प्रसन्न करने को लिखा है इससे गर्भ की वृद्धि होती है[५]।

i) In both these conditions *ghṛtas* prescribed to treat affliction of *bhūtas* i.e. *vacā-ghṛta, guggulvādi ghṛta, mahāpaiśācika ghṛta* or the *ghṛta* treated with the *jīvanīya* (capable of increasing longevity), *vṛṃhaṇīya* (anabolic), *madhura* (sweet) and *vātahara* (capable of suppressing the *vāta)* drugs; milk and meat soup with or without treating with above *jīvanīya* etc, drugs and egg or embryo should be prescribed. All these things enhance the fetal growth and development. Aruṇadatta opines that the drugs possessing *vātahara, vṛṃhaṇa* and *madhura* all the qualities together like *drākṣā* and sugar should only be prescribed.

ii) Above *ghṛtas* should also be used with diet.

iii) After having taken satiating food, she should travel repeatedly by vehicles, should do frequent riding, agitating activities, yawning and use cleansing articles. Indu says that she should also offer donation.

iv) Aruṇadatta opines that she should be made cheerful repeatedly which helps in development of fetus.

उपविष्टक या उपशुष्क गर्भ में विभिन्न दोषों का प्रकोप होने पर चिकित्सा *(Treatment of upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha having predominance of specific doṣas)*

(१) वाताधिक्य में चिकित्सा *(Treatment in dominance of vāyu)*

वाताधिक्य में विशेष रूप से सैंधव मिले दुग्ध की बस्ति देकर, शीतल जल से स्नान की हुई स्त्री को शालिधान्य का भात खाने को दें। तत्पश्चात् विदार्यादिगण से सिद्ध घृत की अनुवासन बस्ति देवें। निवात का सेवन अर्थात् वायु रहित

१. नार्योस्तयोरुभयोरपि चिकित्सितविशेषमुपदेक्ष्याम:-भौतिकजीवनीयवृंहणीयमधुरवातहरसिद्धानां सर्पिषां पयसामगर्भाणां चोपयोगो गर्भवृद्धिकरः; तथा संभोजनमेतैरेव सिद्धैश्च घृतादिभिः सुभिक्षायाः, अभीक्ष्णं यानवाहनाप्मार्जनावजृम्भणैरुपपादनमिति ॥ (भौतिकं भूतोपघातहितं वचागुग्गुल्वादि; किंवा महापैशाचिकं घृतं वक्ष्यमाणं द्रष्टव्यम्। सुभिक्षाया इति सुबुभुक्षायाः-चक्र०) (च० सं० शा० ८/२७)

२. (अ) तयोर्जीवनीयवृंहणीयमधुरौषधसिद्धानां सर्पिषामुपयोगः। तथा पयसां रसानामगर्भाणां च गर्भवृद्धिकरः। तथा सम्भोजनमेतैरेव च घृतादिभिः। सुभिक्षाया अभीक्ष्णं यानवाहनादिभिः क्षोभणमार्जनजृम्भणैरुपपादनम् ॥ (सुभिक्षायास्तृप्तायाः गर्भिण्या यानवाहनादिभिरुपपादनमुपस्कारः अपवर्जनम् दानम् इति-इन्दु) (अ० सं० शा० ४/१८)
(आ)·····आमगर्भेण गर्भः ·····। (अ० सं० सू० १९/१४)

३. तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः। घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भाश्च खादयेत् ॥ १७॥
तैरेव च सुभिक्षायाः क्षोभणं यानवाहनैः ॥ १८॥ (अ० ह० शा० २)

४. ·····बृंहणानि च तानि वातघ्नानि च मधुराणि च एवं भूतानि यानि द्रव्याणि द्राक्षाशर्करादीनि, न तु व्यस्तानि बृंहणानि वातघ्नानि मधुराणि च ॥ (अ० ह० शा० २/१७ की अरुणदत्त टीका)

५. एनां गर्भिणीमुपविष्टकनागोदरलीनाख्यगर्भोदरस्थां हर्षयेत् ····॥ (अ० ह० शा० २/२० की अरुण० टीका)

(हवा के झोंके आने से रहित) स्थान में रहें[१]।

The woman after being given enema of milk mixed with rock salt followed by bath with cold water, should be given cooked *śāli* rice for eating. After this food an *anuvāsana* (nutritive) enema prepared with drugs of *vidāryādi* group mixed with *ghṛta* should be given. The woman should live in a place sheltered from the wind.

(आ) पित्ताधिक्य में चिकित्सा (Treatment in dominance of pitta)

(१) मधुक, विदारी के निर्यूह (स्वरस या क्वाथ) से सिद्ध दुग्ध पान करें।[२]

(२) उपविष्टक के विवर्धन तथा उपशुष्क के वृंहण के लिए तीन मोटी मुर्गी (का मांस) तथा एक आढक छिलके रहित माष लेकर दुग्ध एवं जल के साथ उदूखल में कूट कर उसके (कूट कर निचोड़कर निकाले गये) रस तथा सर्पि के साथ तीतर, कपिंजल या अन्य इसी भाँति के (पक्षी के) मांसरस को सिद्ध करके पीने को दें।[३]

(३) अजा-सर्पि, अजा-क्षीर एवं जीवनीय गण के द्रव्यों से साधित यवागू का प्रयोग करायें।[२]

(४) पयस्या, दोनों काकोली तथा सुनिषण्णक के कल्क से दूध के साथ घृत पाक करें। इसे प्रातःकाल क्षीर के अनुपान के साथ अथवा आमगर्भ (भ्रूण स्थित गर्भ अथवा अण्डा) के रस के साथ सेवन करें; अथवा उन्हीं को (आम-गर्भ को) इसी घृत में भूनकर खायें, इसी प्रकार (इसी घृत के साथ) जलचर प्राणियों के मांस को खायें[३]। टीकाकार इन्दु ने पयस्यादि चारों औषधियों से चतुर्गुण घृत तथा उतना ही क्षीर लेने का विधान बताया है तथा आमगर्भ से अचिरकालजात अर्थात् सद्योजात प्राणी का निर्देश किया है[३]।

i) She should take milk treated with decoction or juice of *madhuka* and *vidārī*.

ii) For increasing the size of *upaviṣṭaka* and growth and development of *upaśuṣka* the woman should be advised to take three fat hens (meat of hens) and one *āḍhaka* of husk less *māṣa,* pestle both these with milk and water in a mortar, express the juice, with this juice and *ghṛta* cook the meat of partridge, sparrow or any similar bird and take it.

iii) Rice gruel cooked with *ghṛta* extracted from goat's milk, goat's milk and the drugs of *jīvanīya* group should be prescribed.

iv) The *ghṛta* should be prepared by cooking it with milk and paste of *payasyā,* both *kākolīs* and *suniṣaṇṇaka.* This *ghṛta* should be taken with milk in the morning and evening or with soup of egg or embryo or else egg, embryo or meat of aquatic animals should be fried in this *ghṛta* and taken. Indu explains that while preparing

१. अथ विशेषेण वाते पूर्वमेव सैन्धवोपहितं क्षीरबस्तिं दत्वा शीतोदकस्नातां मृदुशाल्योदनं भोजयेत्। ततो विदार्यादिगणसाधितेन सर्पिषाऽनुवासयेत्। निवातं च सेवेत ॥ (अ० सं० शा० ४/१९)

२. पित्तेमधुकविदारीनिर्यूहसिद्धं पयः पिबेत्। तित्तिरः स्थूलकुक्कुटौर्निस्तुषमाषाढकं च क्षीरोदकेनोदूखले संक्षुद्य तद्रसेन सर्पिषा च तित्तिरिकपिञ्जलान्यतररसं साधयित्वा पाययेदुपविष्टकविवर्धनार्थमुपशुष्ककवृंहणार्थं च। अजासर्पिषा क्षीरिण जीवनीयैश्च संस्कृतां यवागूं पिबेत्। पयस्याकाकोलीद्वयसुनिषण्णककल्केन पयसा च सर्पिर्विपचेत्। तत्कालं क्षीरानुपानमुपयुञ्जीत। आमगर्भरसेन वाऽश्नीयात्। तानेव च तत्र भृष्टान् भक्षयेज्जलचरमांसानि च ॥ (अ० सं० शा० ४/२०)

३. पयस्यादीनां चतुर्णां कल्केन तच्चतुर्गुणं सर्पिः पयसा स्नेहसमेन विपचेत्, पयस्या क्षीरविदारी, काल्यं प्रातः ·····आमगर्भाणां त्वचिरकालजातानां प्राणिनां·····। (अ० सं० शा० ४/२० की इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

the *ghṛta* its amount should be four times to the collective weight of all the drugs and equal to milk; besides egg etc. the meat of newly born animals can also be used.

(इ) कफाधिक्य में चिकित्सा (Treatment in dominance of kapha)

(१) कफाधिक्य (युक्त उपविष्टक एवं उपशुष्क) में लीन, पाँच या सात रात्रि (दिन) तक आनूप तथा औदक (जलचर) प्राणियों के मांस को उपदंश (भोजन के साथ भूख, प्यास या स्वाद बढ़ाने के लिए मिलाए गए पदार्थ) के साथ खाकर अच्छसुरा (मदिरा के ऊपर का भाग) का पान करें।[1]

(२) तिल, मुद्गर, माष, लवण तथा बिल्वपत्र[2] (के चूर्ण) को पंचपात्र मात्रा में (एक पात्र-६४ पल या २५६ तोला[3] अर्थात् कुल १२८० तोला) घृत के एक पात्र (१२८ पल[3]) के साथ मिलाकर गुप्त या सुरक्षित स्थान में रख दें।[1] तत्पश्चात् प्रातःकाल उस पिण्ड को (उपर्युक्त औषधि एवं घृत मिले हुए पदार्थ को) बिल्व-मात्र (बिल्वफल के बराबर अर्थात् २ तोला) लेकर गरम करके ठण्डे किए हुए छाग-दुग्ध के अनुपान से प्रयोग करें।[1] उपर्युक्त औषधियों में ही एक पात्र (६४ पल) बदरी चूर्ण भी मिलाकर प्रयोग करें।[1]

i) In this condition for three, five or seven consecutive days the meat of aquatic animals or others frequenting marshy or watery places, mixed with condiments to make it dainty and appetizing should be given followed by use of supernatant wine (very fine wine).

ii) Powdered *tila, mudga, māṣa,* salt and leaves of *bilva* in the quantity of *pañcapātra* (approx. 12. 80 Kg) mixed with one *pātra* (approx. 5. 12 Kg) of *ghṛta* should be kept in secret or protected place. In the morning this preparation should be taken in the dose of *bilva-mātra* (approx. 20 gms) with boiled and then cooied goat's milk. Alongwith above drugs powdered fruit of jujube in the dose of one *pātra* (approx. 2. 56 Kg) can also be mixed.

उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ की वृद्धि न होने पर पातन चिकित्सा (Abortifacient treatment of upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha)

एवमवृद्धौ तीक्ष्णैर्विरेचयेदपरापातनीयैश्च पातयेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/२२)

इस प्रकार (उपर्युक्त सभी प्रकार की चिकित्सा करने पर भी) न बढ़ते हुये उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ का तीक्ष्ण, विरेचनीय एवं अपरा-पातनीय द्रव्यों के प्रयोग द्वारा पातन करा दें।

If the fetus in both these conditions does not develop with above treatment, then its abortion should be induced by the use of pungent and purgative drugs or with the drugs prescribed for expulsion of placenta.

१. कफे त्वानूपोदकपिशितोपदंशमच्छसुरां विरात्रं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वा पिबेत्। तिलमुद्गमाषलवणबिल्वपत्रैः पञ्चभिर्घृतपात्रं संयोज्य स्वनुगुप्तं निधापयेत्। ततः प्रातः पिण्डं बिल्वमात्रं मृतशीतच्छागदुग्धानुपानं प्राश्नीयात्। अत्रैव वा बदरचूर्णपात्रमपि निदध्यात् ॥ (अ० सं० शा० ४/२१)

२. पाठ भेद में 'बिल्वपत्रैः' के स्थान में 'बिल्वपात्रैः' शब्द का प्रयोग हुआ है। बिल्व के साथ अंग विशेष का निर्देश न होने पर फल का ही प्रयोग होता है। पाठभेद में पात्र शब्द का प्रयोग औषधि-मात्रा का द्योतक है जो यहाँ युक्ति संगत नहीं है। (अ० सं० शा० ४/२१ की इन्दु टीका पुस्तक का पाठ)

३. पात्रं शुष्कद्रव्यस्य चतुष्षष्टिपलानि, घृतस्याष्टाविंशत्यधिकं पलशतम्॥ (अ० सं० शा० ४/२१ की इन्दु टीका)

विमर्श (Comments)

सामान्य चिकित्सान्तर्गत वर्णित यान-वाहनादि प्रयोग[1] भी गर्भ का पातन ही कराएगें। प्रारम्भ में गर्भ वृद्धिकारक चिकित्सा करने पर भी यदि उपशुष्क या उपविष्टक गर्भ की वृद्धि न हो तो यान-वाहनादि का प्रयोग कर उसे निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

Agitating activities, frequent riding etc. may also initiate abortion. After initially treating both these conditions with the measures or drugs for proper growth of the fetus, if it does not grow, riding etc. should be advised for its expulsion.

(४) लीन गर्भ (Līna garbha)

निदान एवं लक्षण (Etiology and clinical features)

यस्याः पुनर्गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते ····॥ ····· (च० सं० शा० ८/२८)
वातोपद्रवगृहीतत्वात् स्रोतसां लीयते गर्भः, सोऽतिकालमवतिष्ठमानो व्यापद्यते ॥
(सु० सं० शा० १०/५७)
यस्याः पुनर्वातोपसृष्टस्रोतसि संलीनो गर्भः प्रसुप्तो न स्पन्दते तं लीनमित्याहुः ॥
(अ० सं० शा० ४/२३)
लीनाख्ये निःस्फुरे ···। (अ० ह० शा० २/१८)

यद्यपि महर्षि चरक ने वर्णन में कहीं भी लीन शब्द का प्रयोग नहीं किया परन्तु लक्षणों एवं चिकित्सा में सामंजस्य होने के कारण यह वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

जिस स्त्री का गर्भ सुप्त हो जाने के कारण (अत्यधिक शिथिल या क्रिया-रहित होने के कारण) स्पन्दन नहीं करता (उसे लीन गर्भ कहते हैं)।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि स्रोतों के वात के उपद्रवों से पीड़ित होने के कारण गर्भ लीन हो जाता है। वह अधिक काल तक रहता हुआ (गर्भाशय में रहता हुआ) व्यापद्यित होता है अर्थात् कष्ट को प्राप्त करता है या मर जाता है। टीकाकार डल्हण ने गर्भ की चिरकाल-स्थिति वर्णन करते हुए स्पष्टीकरण दिया है कि गर्भ के निर्गम मार्ग के स्रोतस् वात के उपद्रवों से गृहीत होकर संकुचित हो जाते हैं एवं अतिकाल-स्थिति के कारण गर्भ का विनाश हो जाता है, वह गर्भ लीन अर्थात् श्लिष हो जाता है या स्रोतों में चिपक जाता है[2]।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि पुनः वायु से स्रोतों के उपसृष्ट होने या आक्रांत होने से उनमें (स्रोतों में) गर्भ संलीन (भली भाँति लीन) हो जाने के कारण प्रसुप्त हो जाता है अर्थात् सो जाता है या क्रिया-विहीन हो जाता है एवं स्पन्दन नहीं करता उसे लीन कहते हैं।

अष्टांगहृदयकार ने बहुत ही संक्षेप में लिखा है कि लीन गर्भ में गर्भ निःस्फुर या निःस्पन्दन होता है।

Though Caraka has not given any name to this entity, yet, due to similarity in clinical features and treatment it has been included here. He says that her fetus being sleepy or idle does not quiver.

१, च० सं० शा० ८/२७; अ० सं० शा० ४/१८ एवं अ० ह० शा० २/१८ (पृष्ठ ३६७, ३६८)

२. ·····अपरां चिरकालस्थायिनीं गर्भविकृतिं दर्शयन्नाह-वातेत्यादि। लीयते श्लिष्यति, कुत इत्याह-स्रोतसां गर्भनिर्गममार्गाणां वातोपद्रवेण सङ्कोचादिना गृहीतत्वात्। व्यापद्यते विनश्यतीत्यर्थः॥ (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

Suśruta opines that due to abnormalities of *srotasas* caused by complications of *vāyu*, the fetus becomes *līna* (clung or adhered), this fetus remains in uterus for a very long duration and gets various complications. Dalhaṇa explains that *srotasas* of exit passage of fetus are constricted due to aggravated *vāyu* resulting into prolong intrauterine stay of the fetus and later-on its death. This dead fetus gets adhered to *srotasas*.

Vāgbhaṭa I corroborating etiology given by Suśruta writes further that the fetus becomes idle or inactive and does not quiver. Only absence of quivering has been mentioned by Vāgbhaṭa II.

लीन गर्भ का प्रसवकाल (The period of delivery of līna garbha)

पुष्टोऽन्यथा वर्षगणैः कृच्छ्राज्जायेत, नैव ॥ (अ० ह० शा० २/२१)

(या तो) पुष्ट होकर (सामान्य समय पर) अन्यथा वर्षों के उपरान्त अत्यधिक कष्ट से उत्पन्न होता है या नहीं भी उत्पन्न होता, अर्थात् या तो योनिमार्ग से अति कष्ट के साथ प्रसवित होता है अथवा गर्भिणी के जीवन पर्यन्त कुक्षि में ही ठहरता है[१]।

If properly developed, it delivers in time, or else it comes out with great difficulty through vaginal passage after years, however, sometimes it remains in the uterus for entire woman's life.

लीन गर्भ चिकित्सा (Treatment of līna garbha)

आभ्यन्तर प्रयोगार्थ द्रव्य या पथ्य (Oral medication or beneficial diet)

(१) उसका मृदु (अतीक्ष्ण) स्नेहादि क्रम से उपचार करें[१] अर्थात् मृदु स्वेदन, वमन, विरेचन आदि में भी स्नेह द्रव्यों का प्राधान्य रखे, क्योंकि तीक्ष्ण वमन-विरेचनादि गर्भोपघातक होते हैं; कुछ लोग मृदु शब्द से अच्छपान वर्जित अवचारणा स्नेह के प्रयोग का विधान बताते हैं।[२]

(२) श्येन (बाज), मत्स्य, गवय (नील गाय), शिखि (मयूर), ताम्रचूड़ (मुर्गा), तित्तिर या अन्य (पक्षियों) का मांस रस, एवं घृत अथवा माष-यूष अथवा अधिक मात्रा में घृत एवं मूली के यूष के साथ रक्तशाली के मृदु (भली भाँति पके हुए), मधुर (शक्कर आदि मिले हुए) तथा शीतल भात का भोजन दें[१]।

अथवा श्येन (बाज), उत्क्रोश (समुद्री गृद्ध या कुररी), गौ, मत्स्य, मयूर, गोधा, मुर्गा, तित्तिर या अन्य (पक्षी) के मांसरस या अत्यधिक घृत या माषयूष या मूलिकायूष के साथ घृत से मिश्रित रक्त शाली का भात खाने को दें[२]।

अथवा केवल उत्क्रोश (कुररीभेद) के मांस-रस से साधित अनल्प (अधिक) स्नेह युक्त यवागू पीने को दें[२]।

अथवा श्येन, गो, मत्स्य, उत्क्रोश तथा बर्हि (मयूर) के मांसरस अथवा माष या मूलक के रस को अधिक मात्रा में घृत मिलाकर दें[४]।

(३) मेद्य (मेदुर यानी मोटे चर्बी वाले जानवरों) का मांसरस अकेला[४] या उपदंश[३] (भोजन में रुचि के लिए साथ

१. कृच्छ्राज्जायते-कष्टेन योनितो निष्क्रामेत्। नैव वेति। अथवा यावज्जीवं गर्भिण्याः कुक्षावेवावसीदेत् न ततो निष्क्रामेत् कुक्षावेवातिष्ठेत ॥ (अ० ह० शा० २/२१ की अरुण० टीका)

नोट- लीन गर्भ चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ३७३-३७४ में देखें।

में मिलाई गई वस्तु, मसाला आदि) के साथ तथा मधु[४] या मृद्वीका से बनी[३] (शराब आदि) वस्तुओं का सेवन करना चाहिए[३,४]।

(४) माष, तिल, बिल्व-शलाटु से साधित कुल्माष (उबाला हुआ चना) खाने को दें, तत्पश्चात् माध्वीक-मधु (महुए की शराब) सात रात्रि तक पीने को दें[२]।

अथवा तिल, माष एवं बिल्व-शलाटु से युक्त सतू दुग्ध के साथ पीने को दें।[३,४]

(५) उपविष्टक एवं उपशुष्कान्तर्गत वर्णित चिकित्सा भी करें।[३]

(६) स्त्री को बार-बार प्रसन्न करें[३,४]।

i) She should be treated with mild and predominantly unctuous sudation, emesis and purgatives, because strong emetics etc. are likely to harm the fetus. Others opine that use of only *ghṛta* should be avoided, instead, it should be given with some vehicle as mixed with oleo etc.

ii) Soft nicely cooked, sweetened and cooled or simply cooked red *śāli* rice mixed with either meat-soup of (any one available amongst) hawk, fish, *gavaya* (a species of ox), peacock, cock, partridge, sea-eagle or osprey, cow, iguana or any bird with *ghṛta* or only plenty of *ghṛta* or else with soup of *māṣa* or soup of radish along with *ghṛta* should be prescribed in diet.

Rice gruel prepared with meat soup of sea-eagle or osprey mixed with good quantity of fat can also be given.

Either meat-soup of hawk, cow, fish, sea-eagle or osprey and pea-cock or soup of *māṣa* or juice of radish mixed with good quantity of *ghṛta* should be given.

iii) Meat soup of fatty animals with or without condiments or other things likely to make it appetizing and dainty, honey and wine made of *drākṣā* should be given.

iv) Boiled gram cooked with *māṣa*, *tila*, unripe fruit of *bilva* should be given for eating followed by use of wine made from *mādhvīka* for seven days.

Flour of parched barley mixed with *tila*, *māṣa* and unripe fruit of *bilva* can also be given with milk.

v) Treatment prescribed for *upaviṣṭaka* and *upaśuṣka garbha* can also be used.

vi) The woman should repeatedly be made happy.

१. .....तां श्येनमत्स्यगवयशिखिताम्रचूडतित्तिरीणामन्यतमस्य सर्पिष्मता रसेन माषयूषेण वा प्रभूतसर्पिषा मूलकयूषेण वा रक्तशालीनामोदनं मृदुमधुरशीतलं भोजयेत्। तैलाभ्यङ्गेन चास्या अभीक्ष्णमुदावर्तिवंक्षणोरुकटीपार्श्वपृष्ठप्रदेशानीषदुष्णोपचरेत् ॥ (च० सं० शा० ८/२८)

२. .....तां मृदुना स्नेहादिक्रमेणोपचरेत्, उत्क्रोशरससंसिद्धामनल्पस्नेहां यवागूं पाययेत्, माषतिलबिल्वशलाटुसिद्धान् वा कुल्माषान् भक्षयेन्मधुमाध्वीकं चानुपिबेत् सप्तरात्रम्। कालातीतस्थायिनि गर्भे विशेषतः सघान्यमुदूखलं मुसलेनाभिहन्याद् विषमे वा यानासने सेवेत। (सु० सं० शा० १०/५७)

(क्रमशः पृष्ठ ३७४ में देखें.....)

Scanned with CamScanner

लीन गर्भ पातन (Treatment for expulsion of lina garbha)

उपर्युक्त अधिकांश चिकित्सा स्रोतोवरोधकारक वायु के शमन की विधि है। वात का शमन हो जाने पर स्रोतों के विकाश के लिए निम्न चिकित्सा करें[५]:-

ईषत् उष्ण तेल के द्वारा उदर, बस्ति[१] वंक्षण, उरु, कटि, पार्श्व एवं पृष्ठ प्रदेश[१,३] में अथवा केवल कटि प्रदेश में बार-बार अभ्यंग करें[४]। विशेषकर कालातीतस्थायी (प्रसव का समय निकल जाने पर भी स्थित) गर्भ में धान्य-युक्त उदूखल को मूसल से कूटे या विषम यान एवं आसन का सेवन करें[२]।

Most of the preparations enlisted above suppress the *vāta* responsible for constriction of *srotasas*. Once *vāta* is suppressed, following procedures should be adopted for producing dilatation of *srotasas*.

Repeated massage over abdomen, urinary bladder-region, groins, thighs, sacral region, flanks and back should be done with luke-warm oil. Specially in case of prolonged intra-uterine stay of fetus the woman should pestle paddy in a mortar, use vehicle moving on uneven path or sit over uneven place.

(५) गर्भक्षय (Garbhakṣaya)

लक्षण (Clinical features)

गर्भक्षये गर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिता च ॥ (सु० सं० सू० १५/१२)

गर्भक्षय में गर्भ का स्पन्दन न होना तथा कुक्षि का अनुन्नत (नीचा या पिचक जाना) होना आदि लक्षण होते हैं।

आचार्य भावमिश्र ने उपर्युक्त वर्णन के ही साथ लिखा है कि गर्भक्षय पीड़ित स्त्री मृग, अजा, आवि तथा वराह के सुसंस्कृत गर्भों के मांस, वसा या भुने हुए मांस के अनेक प्रकार (कबाब) आदि खाने की इच्छा करती है[६]।

In *garbhakṣaya* absence of quickening and decrease in hight of uterus are the clinical features.

Bhāvamiśra corroborating above view says further that in this condition woman de-

(पृष्ठ ३७३ से आगे.....)

३. तत्र श्येनोत्क्रोशगोमत्स्यगोधाशिखिकुक्कुटतित्तिरीणामन्यतमस्य रसेन भूरिसर्पिष्केण माषयूषेण मूलकयूषेण वा घृताढ्येन रक्तशाल्योदनं भोजयेत्। सकृन्वा तिलमाषबिल्वशलाटुयुक्तान् पयसा पाययेत्। मेद्यमांसोपदंशं वा मार्द्वीकम्। तैलेन चाभीक्ष्णमुदरवंक्षणोरुकटीपार्श्वपृष्ठान्यभ्यञ्जयात्॥ मुहुर्मुहुश्चैनां हर्षयेत्। पूर्वोक्तं चेक्षेत्॥ (अ० सं० शा० ४/२४)

४. .....श्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः॥ १८॥
रसा बहुघृता देया माषमूलकजा अपि। बालबिल्वं तिलान्माषान्सकृंश्च पयसा पिबेत्॥ १९॥
समेद्यमांसं भर्षुं वा कट्यभ्यङ्गं च शीलयेत्। हर्षयेत्सततं चैनामेवं गर्भः प्रवर्धते॥ २०॥
पुष्टोऽन्यथा .....॥ (अ० ह० शा० २)

५. मृदुना अतीक्ष्णेन, तीक्ष्णस्य गर्भोपघातकत्वात्। स्नेहादिनेत्यत्रादिशब्दो न व्यवस्थावाची, तीक्ष्णस्वेदस्य वमनविरेचनयोश्च गर्भोपघातकत्वात्, अत आदि शब्दः प्रधानवाची, तेन स्नेहप्रधानानुक्रमेणेत्यर्थः। अन्ये पुनर्मृदुनेति अच्छपानवतावचारणा-स्नेहेनेति मन्यन्ते। — एवं स्रोतसामवरोधहेतोर्वातस्योपशमविधिमुक्त्वा वातोपशममृदुभूतानां स्रोतसां विकासार्थं विधिं दर्शयन्नाह-कालातीति इत्यादि। —। (सु० सं० शा० १०/५७ की डल्हण टीका)

६. अनुन्नतो भवेत्कुक्षिर्गर्भस्यास्पन्दनं तथा। इति गर्भक्षये प्राज्ञैर्लक्षणं समुदाहृतम्॥ ९३॥
मृगाजाविवराहाणां गर्भान्वाच्छति संस्कृतान्। वसाशूल्यप्रकारादीन्भोक्तुं गर्भपरिक्षये॥ ११३॥ (भा० प्र० पूर्व० ७)

sires to eat well prepared meat of fetuses of deer, goat, sheep and hog alongwith fat and other roasted meat preparations.

चिकित्सा (Treatment)

(१) बस्ति-काल प्राप्त होने पर अर्थात् आठवाँ महीना हो जाने पर क्षीर-वस्ति तथा मेद्य अन्न का प्रयोग करना चाहिए। टीकाकार डल्हण ने मेद्य अन्न शब्द से स्निग्ध अन्न के प्रयोग तथा 'मेध्याण्डोपयोग' आदि पाठभेद का वर्णन करते हुए मेध्य से वृष्य यथा वस्त, मत्स्य आदि के अण्ड (वस्त का वृषण एवं मत्स्य का अण्डा) के प्रयोग का विधान लिखा है[१]।

(२) दोष, धातु, मल या बल क्षीण मनुष्य उन उन क्षीण हुए पदार्थों के वृद्धिकारक द्रव्यों के ही खाने की इच्छा करता है, अतः क्षीणता (किसी दोष, धातु या मल की) से पीड़ित व्यक्ति जो जो खाने की इच्छा करे वह वह देना लाभप्रद है अर्थात् उपर्युक्त मृगादि का मांस सेवन गर्भ-वृद्धि-कारक है[२]।

i) Once the woman has reached her eighth month of pregnancy she should be given enema of milk followed by use of unctuous cereals. Dalhaṇa explains that cereals mixed with fat or meat of testicles of goat and eggs of fish should be given.

ii) In all the conditions of *kṣaya* (decline or loss) of *doṣa, dhātu, mala* or *bala,* the individual desires to take the substances likely to increase the same, thus the person suffering from loss of any one of above should be given desired things, since those are beneficial because they compensate the loss.

(६) गर्भवृद्धि (Garbhavṛddhi)

लक्षण (Clinical features)

गर्भो जठराभिवृद्धिं स्वेदं च ॥ (सु० सं० सू० १५/१६)

गर्भवृद्धि (अति वृद्धि) में उदर की अति वृद्धि तथा स्वेद (अधिक) लक्षण होते हैं।

आचार्य भावमिश्र ने उदरादि की अति वृद्धि, गर्भिणी को स्वेद तथा प्रसव में महान कष्ट आदि लक्षणों का वर्णन किया है[३]।

In *garbhavṛddhi* there is excessive increase in size of abdomen and perspiration Bhāvamiśra adds further that labour is much difficult.

चिकित्सा (Treatment)

सामान्य रूप में वृद्धि में यथायोग्य, सात्म्य, संशोधन तथा संशमन आहार-विहार द्वारा चिकित्सा, जो क्षय के अविरुद्ध

१. तत्र प्राग्वस्तिकालायाः क्षीरवस्तिप्रयोगो मेद्याद्योपयोगश्चेति॥ १२॥
(प्राग्वस्तिकालाया इति प्राप्ताष्टममासाया इत्यर्थः। मेद्याद्योपयोग इति स्निग्धाद्योपयोगः। मेध्याण्डोपयोग इत्यन्ये पठन्ति। मेध्याण्डानि वृष्याण्डानि, वस्तमत्स्याण्डादीनिति व्याख्यानयन्ति-डल्ह०) (सु० सं० सू० १५/१२ एवं डल्हण टीका)

२. दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः। तत्तत्संवर्द्धनं यत्तदन्नपानं प्रकाङ्क्षति॥ ९५॥
यद्यदाहारजातन्तु क्षीणः प्रार्थयते नरः। तस्य तस्य स लाभेन तत्तत्स्वयमपोहति॥ ९६॥ (भा० प्र० पूर्व० ७)

३. उदरादिप्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते। स्वेदश्च गर्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत्॥ ७३॥ (भा० प्र० पूर्व० ७)

Scanned with CamScanner

अर्थात् उस उस वृद्ध दोष या धातु का क्षय न करते हुए केवल बढ़ी हुई मात्रा के ह्रासकारक आहार, विहार एवं चिकित्सा का प्रयोग करें[१]।

Generally beneficial, congenial purifying and suppressive dietetics and mode of life, not causing loss of that *doṣa* or *dhāu* but capable of decreasing the increased substances should be used.

(७) वातोदर (Vātodara)

कदाचिद्वा गर्भ इव वातोदरं भवति तद्वातोपशमनैरुपशाम्यति ॥ (अ सं० शा० १/१५)

कभी कभी गर्भ के ही समान (उदर को बढ़ाने वाला) वातोदर हो जाता है जो वातशामक चिकित्सा करने पर शान्त हो जाता है।

Some times abdomen is increased just like pregnancy due to *vāta*, which subsides with the treatment capable of suppressing the *vāta*.

(८) भूतहृत या नैगमेषहृत गर्भ (Bhūta or naigameṣahṛta garbha)

महर्षि चरक एवं वाग्भट ने भूतहृत गर्भ का पृथक् उल्लेख किया है। महर्षि सुश्रुत तथा उनके अनुयायी आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने नागोदर के ही साथ नैगमेय या नैगमेषहृत गर्भ का वर्णन किया है। महर्षि काश्यप ने रक्तगुल्म में भेदन के बाद गर्भ के अदृश्यमान होने की स्थिति को 'दिव्य गर्भ या परिप्लुत गर्भ' माना है। वर्णन निम्नांकित है।

असृङ्निरुद्धं पवनेन नार्या गर्भं व्यवस्यन्त्यबुधः कदाचित्।
गर्भस्य रूपं हि करोति तस्यास्तदासृग्(स्रम)स्रावि विवर्धमानम् ॥

तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगैरुच्चान्नपानैरथवा प्रवृत्तम्।
दृष्ट्वाऽसृगेकं न च गर्भसंज्ञं केचिन्नरा भूतहृतं वदन्ति ॥ (च० सं० शा० २/८,९)

शुक्रशोणितं वायुनाऽभिप्रपन्नमबक्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरम्। तत् कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेषापहृतमिति भाषन्ते ॥ (सु० सं० शा० १०/५७)

तदेव कदाचिदार्तवं सौम्यैर्बृंहणात्मभिराहारविहारैः स्तम्भितमनुपद्रवमेवोदरं गर्भाधिष्ठितमिव वर्धयति। येन तामगर्भा गर्भिणीमाहुर्मूढाः ॥ १६॥

ततो विपरीतैर्यदृच्छया वा प्रवृत्ते रक्ते गर्भशरीरमपश्यन्तो भूतहृतमित्यज्ञा ब्रुवते ॥ १७॥
(अ० सं० शा० १/१६ व १७)

अवस्थितं लोहितमङ्गनाया, वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः, स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ॥ ६१॥
गर्भं जडा भूतहृतं वदन्ति, मूर्त्तेन दृष्टं हरणं यतस्तैः ॥(अ० हृ० शा० २/६१, ६२)

१. (अ) तेषां यथास्वं संशोधनं क्षपणंच क्षयादविरुद्धैः क्रियाविशेषैः प्रतिकुर्वीत ॥ १७॥
(यथास्वं यद्यदस्यात्मीयम्। क्षपणमत्र संशमनम्। क्षयादविरुद्धैः क्रिया विशेषैरिति तन्त्रान्तरोक्तैः।
"तेषां क्षपणमविरुद्धैः क्रियाविशेषैः कुर्वीत।" क्रियाविशेषैरिति क्रियाः संशोधनसंशमनाहाराचाराख्याः-डल्ह०)
(सु० सं० सू० १५/१७ एवं डल्ह० टी०)
(आ) तत्तद्ध्रासकराहारविहारपरिषेवणात्। दोषधातुमलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम् ॥७४॥ (मा० प्र० पूर्व० ७)

केनचित्त्वथ कालेन निर्भेदं यदि गच्छति ॥ ३६॥
ततो गुल्मप्रमुक्ता सा ज्ञातिमध्ये प्रभाषते। गर्भिण्यहं चिरं भूत्वा प्रच्युते गर्भशोणिते ॥ ३७॥
गर्भरूपं न पश्यामि तत्र मे संशयो महान्। तामिदं प्रतिभाषन्ते सर्वग्रामकुतूहलाम् ॥ ३८॥
दिव्यो गर्भो व्यतिक्रान्तो नैगमेषेण ते हृतः। इत्येनामबुधाः प्राहुर्हृतं सर्वमशोभनम् ॥ ३९॥
परिप्लुत इति प्राहुः कुशला ये मनीषिणः॥ ४०॥ (का० सं० खिल० ९)

वायु के द्वारा रुके हुए या बँधे हुए[१] आर्तव को देखकर कभी कभी अज्ञानी लोग उसे गर्भ (हो गया है इस प्रकार का) निश्चय कर लेते हैं। वह न निकला हुआ अर्थात् रुका हुआ आर्तव गर्भाशयान्तर्गत[२] बढ़कर गर्भ के लक्षणों (अनार्तव, स्तन परिवर्तन कुक्षिबर्धन आदि) को कर देता है। वह (रुका हुआ आर्तव) अग्नि (अग्निताप), सूर्य (सूर्यताप), श्रम, शोक, रोग (अथवा रोष या क्रोध[३]) अथवा उष्ण अन्नपान के प्रयोग से प्रवृत्त हो जाता है (अर्थात् योनिमार्ग से बाहर आने लगता है)। केवल रक्त को ही देखकर एवं गर्भ को न देखकर कुछ लोग उसे भूतहृत कहने लगते हैं (अर्थात् रक्तस्राव के समय गर्भ की अनुपस्थिति के कारण भूतों ने गर्भ का हरण कर लिया ऐसा मानने लगते हैं)।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि वायु से पीड़ित शुक्र-शोणित जीवात्मा की अवक्रान्ति होने के बाद उदर का आध्मान कर देते हैं, वह कदाचित् स्वयमेव शांत हो जाने पर नैगमेषापहृत कहलाता है।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि वही आर्तव कभी-कभी सौम्य, वृंहण एवं आत्मानुकूल आहार-विहार के प्रयोग के कारण स्तम्भित होकर उदर (गर्भाशय) को गर्भाधान की तरह ही बढ़ाता है। इस प्रकार की (आर्तवारोध तथा उदर-वृद्धि प्राप्त) अगर्भा (गर्भ रहित) स्त्री को अज्ञानी लोग गर्भिणी कहते हैं। वही (रुका हुआ आर्तव) विपरीत (सौम्य एवं वृंहण के विपरीत) द्रव्यों के प्रयोग या इच्छा अर्थात् बिना किसी कारण के ही प्रवृत्त होता है तो गर्भ के शरीर को न देखने के कारण भूत ने हरण कर लिया ऐसा कहते हैं। टीकाकार इन्दु ने सौम्यादि के विपरीत औषधियों के प्रयोग से काकतालीय न्याय के द्वारा अथवा विज्ञ-चिकित्सक के द्वारा औषधि प्रयोग को आर्तव प्रवृत्ति का कारण माना है[४]।

अष्टांगहृदयकार ने लिखा है कि स्त्री में रक्त के वायु के द्वारा रुक जाने को अनभिज्ञ लोग गर्भाकृति (गर्भ-सदृश गर्भाशय में स्थिति, उन्नति अर्थात् उदरवृद्धि, हल्लास, दौहृद तथा स्तन्य-दर्शन, आदि रक्तगुल्मान्तर्गत वर्णित लक्षण[५]) होने के कारण गर्भ कहने लगते हैं, अर्थात् स्त्री गर्भिणी है ऐसा कहने लगते हैं। फिर कटु, उष्ण एवं तीक्ष्ण द्रव्यों के प्रयोग से रक्तस्राव होने पर केवल रक्त को ही देखकर गर्भ को भूत ने हरण कर लिया, इस प्रकार जड़ या मूर्ख लोग कहते हैं, यद्यपि उन्होंने कभी भी भूतों के द्वारा मूर्त्त (दृष्टिगोचर योग्य गर्भशरीर या अन्य शरीर) को हरण होते देखा नहीं है।

महर्षि काश्यप ने रक्तगुल्म के भेदन के बाद की अवस्था को ही भूतहृत गर्भ मानते हुए लिखा है कि किसी भी कारण या काल के द्वारा यदि (रक्तगुल्म) भेदन को प्राप्त होता है, तब वह गुल्म से मुक्त होने पर अपने परिवार वालों से कहती है कि चिरकाल तक गर्भिणी होने पर भी गर्भ का रक्त निकल जाने पर गर्भ के रूप को न देखकर मुझे अत्यधिक

१. "असृङ्निरुद्धं" का "असृग् विवृद्धं" पाठभेद है।

२. .....। गर्भाशये हि विवर्धमानम् रुधिरं प्रभावाद्गर्भलिङ्गानि कानिचिद्दर्शयतीत्यर्थः ॥
(च० सं० शा० २/८ की चक्र० टीका)

३. "शोकरोगैः" का "शोकरोषैः" पाठभेद अधिक युक्तिसंगत है, क्योंकि शोक एवं क्रोध दोनों ही मानसिक आघात उत्पन्न करते हैं।

४. ततोऽनन्तरं सौम्यादिहेतुविपरीतैः काकतालीयेन साधु भिषजा वा प्रयुक्तैः स्वयमेवौषधनिरपेक्षया वा प्रवृत्ते रक्ते .....।
(अ० सं० शा० १/१७ की इन्दु टीका)

५. गर्भाकृतित्वादिति। गर्भस्याकृतिः संस्थानमुन्नत्यादिकम् तथा हल्लासदौहृद इत्यादि रक्तगुल्मनिदानोक्तं लक्षणं।
(अ० हृ० शा० २/६१ की अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

संशय हो रहा है (कि ऐसा क्यों हुआ ?)। गाँव की कौतूहलपूर्ण स्त्रियाँ उसे कहती हैं कि तुम्हारा दिव्य गर्भ जो उत्पन्न हुआ था वह नैगमेष के द्वारा हरण कर लिया गया। इस प्रकार अज्ञानी लोग इसे 'हृत' (हरण कर लिया गया) कहते हैं। जब कि कुशल एवं ज्ञानी लोग इसे परिप्लुत कहते हैं।

आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने महर्षि सुश्रुत सदृश ही शुक्रार्तव द्वारा निर्मित अजाताङ्ग गर्भ के जीव विरहित होने के बाद वायु द्वारा आध्मापित हो पुनः शांत होने की स्थिति को नैगमेषापहृत गर्भ माना है[1]।

Caraka and Vāgbhaṭa have described this condition as a separate entity while Suśruta etc. have included it under *nāgodara* as described earlier. Kāśyapa opines that after expulsion (*bhedana*) of *raktagulma*, when fetal parts are not seen the condition is known as *divya garbha* or *paripluta garbha*.

Caraka says that observing the obstruction or absence of *ārtava* (menstruation) due to *vāyu*, the unwise persons consider it as pregnancy. This obstructed *ārtava* getting accumulated inside the uterus presents the features of pregnancy, later-on starts its flow due to effect of fire, sun (heat of fire or sun), exertion or fatigue, grief, diseases or anger and use of hot articles in the diet. Observing only blood and no fetus, some of the persons say that the fetus has been taken away by *bhūtas*.

Suśruta says that *śukra* and *śoṇita* afflicted by *vāyu* after descent of *jīvātmā* produce abdominal distension which sometimes subsides without any cause then it is said that *naigameṣa* has taken away the fetus.

Both the Vāgbhaṭas have given almost similar description as given by Caraka, however, Vāgbhaṭa I has described use of *saumya* (mild), *vṛṃhaṇa* (anabolic) and favourable (to once own nature) diet and mode of life as the causative factors for cessation of *ārtava* and use of contrary to these or treatment by wise physician responsible for its excretion. Vāgbhaṭa II has enlisted use of bitter, hot and pungent things responsible for excretion of *ārtava*.

Kāśyapa accepting this entity as a latter stage of *raktagulma* says that when due to any cause or time factor the *raktagulma* gets detached and is expelled, then the woman getting relieved from *raktagulma* says to her family members that after carrying the pregnancy for a considerable period and having seen only discharge of blood without expulsion of fetus I am getting very apprehensive. The curious village women say that *divya* (divine) fetus which you were carrying has been taken away by *naigameṣa;* thus ignorant persons call it as a taken away fetus and wise persons as *paripluta garbha*.

Opinion of Bhāvamiśra and Yogaratnākara is identical to Suśruta.

चिकित्सा (Treatment)

महर्षि सुश्रुत ने लीनगर्भवत् तथा आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने धान्य-कुट्टन ही मुख्य चिकित्सा बताई है[2]।

Suśruta says that treatment prescribed for *līna garbha* should be used in this condition

१. भा० प्र० चि० ७०/९८, ९९ एवं १०० तथा यो० र० स्त्रीरो० चि० (पृष्ठ ३६४)

२. सु० सं० शा० १०/५७, भा० प्र० चि० ७०/१०१ तथा यो० र० स्त्री० चि० (पृष्ठ ३६७)

also. Bhāvamiśra and Yogaratnākara write that pestling of paddy is its principle treatment.

गर्भ का भूतों के द्वारा हरण किये जाने की मान्यता का खण्डन (Contradiction of hypothesis about fetus being carried away by bhūtas)

ओजोऽशनानां रजनीचरणामाहारहेतोर्न शरीरमिष्टम्।
गर्भं हरेयुर्यदि ते न मातुर्लब्धावकाशा न हरेयुरोजः॥ (च० सं० शा० २/१०)

यस्मात्सम्भवत्योजसोऽपहरणं रक्षोभिर्न तु कायस्यानिष्टत्वादशक्तेर्वा। इच्छाशक्त्योर्हि प्रवृत्तेरुपलब्धिर्न च दृश्यते कस्यचिदमानुषैर्देहापहारः॥ १८॥

यदि च दृष्टमपि समुच्छ्रिद्य केचिदतिशयशक्तियुक्ता गर्भस्य शरीराक्षेपे प्रवर्तन्ते तदा कथमिव प्रामावसरास्तज्जननीरुपेक्षेरन्॥ (अ० सं० शा० १/१८, १९)

ओजोऽशनत्वादथवाऽव्यवस्थैर्भूतैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता॥ (अ० हृ० शा० २/६२)

ओज का भक्षण करने वाले रजनीचर या राक्षसों को शरीर का भक्षण इष्ट नहीं होता, क्योंकि यदि वे (राक्षस) गर्भ (शरीर) का हरण करते हैं तो अवसर मिलने पर (गर्भिणी के शरीर में प्रवेश का अवसर पाकर[1]) माता का ओज न हरण कर लेते (अर्थात् वे राक्षस गर्भ के शरीर को न हरण कर माता का ओज ही हरण करते जिससे माता की मृत्यु हो जाती पर ऐसा नहीं होता अतः भूत गर्भ का हरण नहीं करते)।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि राक्षसों के द्वारा ओज का अपहरण तो सम्भव है, परन्तु अनिष्ट (इच्छारहितता) तथा अशक्ति (शक्ति-विहीनता) होने के कारण शरीर का हरण सम्भव नहीं है। इच्छा एवं शक्ति की उपलब्धि दिखाई नहीं देती, क्योंकि कभी भी किसी मनुष्य के देह का अपहरण (भूतों द्वारा) देखा नहीं गया। यदि इस दृश्य बात का उल्लंघन करके अतिशय शक्ति-युक्त (कोई राक्षस) गर्भ के शरीर के नाश में प्रवृत्त हो जाय तो वह अवसर मिलने पर माता के शरीर की उपेक्षा क्यों करता है (अर्थात् वह माता का भी अपहरण कर लेगा)। टीकाकार इन्दु ने स्पष्टीकरण में लिखा है कि कभी कभी भूतों की इच्छा होती है पर शक्ति नहीं एवं कभी शक्ति होती है पर इच्छा नहीं, अतः 'इच्छाशक्ति' के अभाव में वे शरीर का अपहरण नहीं कर सकते। अतिशय शक्ति-युक्त राक्षस माता के स्थूल शरीर का भी अपहरण कर सकते हैं आदि भूतों की अनिष्टशक्तिता का वर्णन अनुमानगम्य है एवं आचार्यों ने सम्भावना मात्र का ही वर्णन किया है, क्योंकि जिस प्रकार शरीर के लिए कहा जाता है कि हरण करना देखा नहीं गया, उसी प्रकार राक्षसों द्वारा ओज का भी अपहरण देखा नहीं गया यह सब अनुमान के ही आधार पर वर्णन है[2]।

अष्टांगहृदयकार ने संक्षेप में लिखा है कि भूत ओज का भक्षण करने वाले होते हैं। यदि गर्भ का ही भक्षण करते तो माता की उपेक्षा नहीं कर सकते अर्थात् माता के शरीर एवं ओजस् का भी भक्षण कर लेते।

The *rākṣasas* eat *ojas,* do not desire to devour body, if these carry away the body of fetus, then getting the opportunity to enter inside the body could have eaten away the *ojas* of mother, or in other words once they have entered the body of woman then instead of taking away the body, these would have carried away the maternal *ojas* which is not seen in practice, thus it can be said that *bhūtas* do not carry away the fetus.

१. लब्धावकाशा इति प्राप्तगर्भिण्यभिगमनकारणाः॥ (च० सं० शा० २/१० की चक्र० टीका)

२. .....ननु कथं न सम्भाव्यत इत्याह अनिष्टत्वात्, अथवाशक्तितः शक्तोऽपि कदाचिदनिष्टे न प्रवर्तते इति। .....। अतोऽनुमानात् ज्ञायते शरीरापहरणं भूतानामनिष्टमशक्तता वा तत्रेति। एतच्चाचार्यस्यासंभवमात्रप्रदर्शनमिति कृत्वा गृह्यते। अन्यथा शरीरबदोजसि पर्यनुयुक्तः किमुत्तरं दास्यति॥

(अ० सं० शा० १/१८, १९ की इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

Both Vāgbhaṭas have also given almost similar description. Vāgbhaṭa I explains further that these *bhūtas* neither have desire nor the power to carry away the body, because the presence of both these i. e. desire and power is not observed as the carrying away of body by *bhūtas* is not seen. Even if it is believed. that over powerful *rākṣasas* can indulge in destruction of fetal body, then why should they spare the mother ? or they will take the maternal body also. Indu elaborating power and desire says that these *bhūtas* sometimes possess desire but no power and sometimes power but not desire, thus due to absence of both these together can not carry away the body. The description of taking away the body by over powerful *bhūta* etc. is all based on conjenctures, similarly taking away of *ojas* has also been given by guess or in other words the theory of carrying away of fetus by *bhūta* is not correct.

विमर्श (Comments)

गर्भस्राव एवं पात के वर्णन का विमर्श पूर्व वर्णित है (पृष्ठ ३३०-३३१)। इन दोनों वर्णनों के अतिरिक्त विभिन्न आचार्यों द्वारा वर्णित आठ अन्य विकारों का स्पष्टीकरण यद्यपि निश्चित रूप से करना कठिन है क्योंकि आचार्यों में वर्णन-दृष्टया कुछ मतभेद प्रतीत होता है, विशेषकर गर्भशोष, उपविष्टक, उपशुष्क या नागोदर तथा लीन गर्भ के वर्णन में। विषय में आगे बढ़ने के पूर्व उपर्युक्त व्याधियों का विभिन्न आचार्यों के मत से संक्षिप्त विवरण निम्न तालिका में दिया जा रहा है-

तालिका ८

संहिता	निदान	लक्षण	प्रसव-काल	चिकित्सा-सिद्धान्त
		गर्भशोष		
चरक	रक्तस्राव अथवा पोषणाभाव	गर्भ का शोष	वर्ष-गण	जीवनीय, वृंहणीय, स्निग्ध द्रव्य
सुश्रुत	वात-प्रकोप	गर्भ का शोष, कुक्षि का अपूरण, मन्द स्पन्दन (ओज विरहितता-डल्हण)	-	मृदु स्नेहादि प्रयोग, मांसरस प्रयोग, अंत में धान्य-कुट्टन
अष्टांगसंग्रह	प्रकुपित वायु द्वारा रसवाही स्रोतों का शोष	वातरोगी, हीनगर्भ	वर्ष-गण	जीवनीय वृंहणीय, स्निग्ध-द्रव्य
अष्टाङ्गहृदय	-	-	-	-
		उपविष्टक		
चरक	संजातसार गर्भ में उष्ण तीक्ष्ण द्रव्यों का प्रयोग, योनि से रक्त या अन्य स्राव	गर्भ की अवृद्धि, कालातीत स्थिति	अतिकाल के पश्चात्	जीवनीय, वृंहणीय, घृत एवं आम गर्भ का प्रयोग तथा यान-वाहनादि द्वारा क्षोभन
सुश्रुत	-	-	-	-

संहिता	निदान	लक्षण	प्रसव-काल	चिकित्सा-सिद्धान्त
अ० सं०	संजातसार गर्भ में वर्ज्य आहार-विहार सेवन से सतत परन्तु अल्प रक्तस्राव से वात-वैगुण्य तथा अन्य दोषों का अुगमन एवं गर्भ की रसवहा नाड़ी का अवरोध	कुक्षि की अवृद्धि, गर्भ के अपरिहीयमान होते हुए स्फुरण, अन्य दोषों के लक्षण	वर्ष-गण	चरक-सदृश: अन्त में गर्भपात कराना
अ० हृ०	संजातसार एवं वृद्ध गर्भ में रक्तस्राव	अ० सं० सदृश	-	च० सदृश
		उपशुष्क या नागोदर		
चरक	आहार वैषम्य या स्नेह की कमी के कारण वात-प्रकोप	गर्भ की अवृद्धि एवं अस्पन्दन	कालातीत-स्थिति	उपविष्टकवत्
सुश्रुत	गर्भ की अत्यधिक प्रारम्भावस्था में वायु-प्रकोप	गर्भ का प्रलीयमान या छोटा हो जाना अथवा नैगमेष द्वारा हरण कर लिया जाना	-	मृदु-स्नेहादि उपक्रम एवं धान्य-कुट्टन तथा विषम-यानादि सेवन
अ० सं०	उपविष्टक सदृश, परन्तु योनि से रक्त तथा अन्य प्रकार के अत्यधिक स्राव	गर्भ एवं कुक्षि की वृद्धि का ह्रास, किंचित स्फुरण, विभिन्न दोषिक लक्षण	वर्ष-गण	उपविष्टकवत्
अ० हृ०	चरकसदृश	गर्भ का कृश एवं शुष्क होना, उदर की वृद्धि का ह्रास, चिरकाल में स्पन्दन	-	उपविष्टकवत्
		लीन-गर्भ		
चरक	-	गर्भ की प्रसुप्तता एवं अस्पन्दन	-	श्येनादि मांसरस एवं घृत प्रयोग, उदर, कटि आदि का उष्ण तैल से अभ्यंग
सुश्रुत	प्रकुपित वायु से गर्भ-निर्गम-मार्ग के स्रोतों का अवरोध	गर्भाशय स्थित गर्भ को कष्ट या मृत्यु एवं स्रोतों में उसका लीन हो जाना	अतिकाल तक स्थिति	मृदु-स्नेहादि उपक्रम, धान्य-कुट्टन, विषम यानादि सेवन
अं० सं०	स्रोतों का वात से उपसृष्ट होना	गर्भ की प्रसुप्तता, अस्पन्दन एवं लीनता	-	चरकवत् एवं स्त्री को बारबार प्रसन्न करना
अ० हृ०	-	गर्भ का अस्पन्दन	वर्षगण अथवा अप्रसव	अ० सं० सदृश

Scanned with CamScanner

उपर्युक्त तालिका-८ से स्पष्ट हो जाता है कि गर्भशोष गर्भ के सामान्य पोषण न मिलने के कारण गर्भ के अति-दौर्बल्य की एक स्थिति है।

उपविष्टक गर्भ का वर्णन महर्षि सुश्रुत ने नहीं किया, अन्य आचार्यों ने इसे संजातसार एवं वृद्ध गर्भ अर्थात् गर्भावस्था के चतुर्थ मास के उपरांत की व्याधि माना है तथा मुख्य लक्षणों में योनि से रक्त या अन्य प्रकार के स्राव एवं कुक्षि का न बढ़ना तथा गर्भ में स्पन्दन होना लिखा है।

उपशुष्क या नागोदर के वर्णन में आचार्यों में अत्यधिक मतभेद है। महर्षि चरक एवं अष्टांगहृदयकार ने जहाँ इस व्याधि से पीड़ित होने की गर्भ की किसी आयु या अवस्था का वर्णन ही नहीं दिया, वहीं महर्षि सुश्रुत ने इसे स्पष्ट रूप से गर्भावस्था के अति प्रारम्भिक दिनों की व्याधि माना है। अष्टांगसंग्रहकार ने इसे भी संजातसार अर्थात् गर्भावस्था के चतुर्थमासोपरांत की ही व्याधि माना है। महर्षि सुश्रुत ने नागोदर की ही एक स्थिति को नैगमेष के द्वारा हरण कर लिया हुआ गर्भ कह कर वर्णित किया है। इस वर्णन का कारण महर्षि सुश्रुत द्वारा नागोदर व्याधि का गर्भावस्था के प्रारम्भिक दिनों में होना माना जा सकता है, क्योंकि इस काल में गर्भ के शरीर का विकास बहुत ही अल्प होता है, ऐसा सम्भव हो सकता है कि कभी कभी स्त्री को गर्भस्राव होते समय गर्भाङ्ग न दिखाई दें एवं वह उसे नैगमेषापहृत मान ले एवं जब गर्भ गर्भाशयान्तर ही पड़ा रह जाय एवं वृद्धि को न प्राप्त हो तो उसे नागोदर माना गया हो। अन्य किसी आचार्य ने इस व्याधि के कारण-स्वरूप योनि से रक्तस्राव का वर्णन नहीं दिया परन्तु अष्टांगसंग्रहकार ने योनि से रक्त या अन्य प्रकार के स्रावों का वर्णन दिया है।

लीन गर्भ को सभी आचार्यों ने गर्भ की प्रसुप्तता अथवा अस्पन्दन की अवस्था माना है। कारण के वर्णन में महर्षि सुश्रुत तथा अष्टांगसंग्रहकार ने स्रोतों का अवरोध लिखा है जिसे टीकाकार डल्हण ने स्पष्टतया गर्भ के निर्गम-मार्ग के स्रोतों का अवरोध माना है।

महर्षि सुश्रुत ने किसी भी प्रकार के गर्भ का वर्षों के बाद प्रसव वर्णित नहीं किया। केवल लीन गर्भ को अतिकाल तक स्थित रहने वाला बताया है। जब कि महर्षि चरक ने गर्भशोष पीड़ित गर्भ का तथा अष्टांगहृदयकार ने लीन गर्भ का वर्ष-गण में प्रसव माना है, अष्टांगसंग्रहकार ने गर्भशोष, उपविष्टक तथा उपशुष्क सभी का वर्षों के बाद भी प्रसव वर्णित किया है।

किसी भी प्रकार के गर्भ का अपने पूर्ण प्रसवकाल की मर्यादा का एक सीमा से परे उल्लंघन हो वर्षों के बाद शिशु का प्रसव होना सम्भव प्रतीत नहीं होता, आचार्यों द्वारा इस तथ्य के वर्णन के निम्न कारण हो सकते हैं।

(१) किसी अन्य कारण से हुए अनार्तव काल में गर्भाधान हो जाने से निश्चित गर्भाधान-तिथि के ज्ञान के अभाव में आचार्यों ने गर्भाधान की सीमा का वर्षों की संख्या में वर्णन दिया हो।

(२) पति के परदेश-गमन के पश्चात् अनैतिक सम्बन्धों से हुए गर्भाधान के काल को स्त्री ने पति-संयोग के काल के समकक्ष रखकर चिकित्सकों को भ्रमित किया एवं वह वर्णन संहिताओं में आ गया।

(३) पौराणिक कथाओं के आधार पर यथा 'शुकदेव मुनि का सोलह वर्ष की अवस्था में जन्म' आदि को वैज्ञानिक आधार देने का आचार्यों ने प्रयत्न किया।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर उपविष्टकादि के बारे में आधुनिक विज्ञान दृष्ट्या विश्लेषण करने पर प्रसवकाल के वर्णन का विचार नहीं करना चाहिए।

चिकित्सा के वर्णन को देखने से स्पष्ट होता है कि महर्षि सुश्रुत ने सभी विकारों में जीवनीय, वृंहणीय चिकित्सा के पश्चात् धान्य-कुट्टनादि का विधान बताया है जो गर्भपात कारक है। अन्य आचार्यों ने उपविष्टक या उपशुष्क गर्भ में जीवनीय, वृंहणीय आदि गर्भवृद्धि-कारक चिकित्सा के पश्चात् यान-वाहनादि का सेवन बताया है जो गर्भपात कारक है। अष्टांगसंग्रहकार ने स्पष्टतया गर्भ के पात कराने का निर्देश भी दे दिया है।

उपर्युक्त वर्णन को आधार मानते हुए इन सभी व्याधियों का क्रियात्मक क्षेत्र में उपलब्ध व्याधियों से निम्न प्रकार सामंजस्य कर सकते हैं।

योनि से स्रावादि तथा गर्भ एवं कुक्षि की वृद्धि रुक जाने के लक्षणों के आधार पर उपविष्टक गर्भ को दूसरे त्रैमास का गर्भाशयान्तर-मृत गर्भ मान सकते हैं। इसमें स्फुरण की प्रतीति स्त्री की मानसिक स्थिति के कारण हो सकती है। गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु के पश्चात् उसके गर्भोदक तथा अन्य जलीयांश का शोषण हो जाता है तथा गर्भ एवं स्त्री की कुक्षि का ह्रास होता है अर्थात् उपशुष्क या नागोदर उपविष्टक की ही बाद की अवस्था है, एवं दीर्घकाल तक योनि से रक्तस्रावादि के कारण स्त्री की मानसिक स्थिति परिवर्तित हो जाती है तथा वह वस्तुस्थिति से अवगत हो जाने के कारण गर्भ-स्फुरण आदि लक्षणों का अभाव स्पष्ट प्रतीत करने लगती है। लीनगर्भ परिपूर्ण गर्भ या प्रसवकालेतर-स्थित गर्भ की गर्भाशयान्तर मृत्यु का वर्णन है क्योंकि गर्भ के निर्गम मार्ग के स्रोतों का अवरोध प्रसव-काल में ही विकृति करेगा उसके पूर्व नहीं। हो सकता है यह अवरोध समय पर प्रसव न होने दे तथा गर्भ लीन हो जाय।

अन्य गर्भव्यापदों में सुश्रुत संहिता वर्णित गर्भक्षय गर्भस्थ शिशु के भार की कमी तथा गर्भ वृद्धि गर्भस्थ शिशु के भार की अतिवृद्धि का वर्णन है। अष्टांगसंग्रह वर्णित वातोदर उदराध्मान का वर्णन है तथा भूतहृत गर्भ मिथ्या गर्भ या गर्भभ्रम (स्यूडोसाइसिस) को निर्देश करता है।

इन सभी गर्भव्यापदों का आधुनिक विज्ञान वर्णित निम्न स्थितियों से सामंजस्य कर सकते हैं।

गर्भक्षय एवं गर्भशोष	भार-दृष्ट्या अप्रगल्भ गर्भ
उपविष्टक	गर्भावस्था के दूसरे त्रैमास में गर्भाशयान्तर गर्भ मृत्यु
उपशुष्क या नागोदर	सुश्रुत मतानुसार गर्भभ्रम एवं गर्भावस्था के प्रथम त्रैमास में गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु, अन्य आचार्यों के मत से अधिक काल तक स्थित गर्भाशयान्तर मृत-गर्भ
लीन गर्भ	प्रगल्भित या चिरकाल-स्थायी गर्भ का स्पन्दनाभाव या मृत्यु
गर्भवृद्धि	गर्भ के भार की अधिकता
वातोदर	आध्मान
भूतहृत गर्भ	गर्भभ्रम या मिथ्यागर्भ

It is very difficulty to give exact explanation for all these *upaśuṣka* etc. eight disorders. There exists some difference of opinion amongst different authors which is summarized hereunder;

Author	Etiology	Clinical features	Period of delivery	Principles of treatment
		Garbha Śoṣa		
Caraka	Bleeding and absence of nourishment.	Desiccation of fetus.	Years.	*Jīvanīya, vṛṃhaṇīya* and unctuous articles.
Suśruta	Vitiation of *vāyu.*	Desiccation of fetus and absence of filling of uterus, less quickening.	—	Soft, unctuous articles, meat-soup, at the end pestling of paddy.

Scanned with CamScanner

Author	Etiology	Clinical features	Period of delivery	Principles of treatment
Vāgbhaṭa I	Desiccation of *rasavāhī-srotasas* by vitiated *vāyu.*	Small fetus suffering from *vāta* disorders.	Years	Just like Caraka.
Vāgbhaṭa II	—	—	—	—
		Upaviṣṭaka		
Caraka	Use of hot, pungent articles, bleeding or other vaginal discharges during *sañjātasāra garbha*	Absence of fetal growth, prolonged intra-uterine stay.	After considerable delay	*Jīvanīya, vṛṃhaṇīya* drugs, egg, riding etc.
Suśruta	—	—	—	—
Vāgbhaṭa I	Due to use of contraindicated articles in *sañjātasāragarbha,* continuous but less bleeding per vaginum causing aggravation of *vāta* and obstruction to *rasavahā-nāḍī.*	Absence of abdominal growth, quickening of fetus without decrease in its size, clinical features of other *doṣas.*	After years.	Just like Caraka lateron induction of abortion
Vāgbhaṭa II	Bleeding in developed fetus.	Just like Vāgbhaṭa I	—	Just like Caraka
		Upaśuṣka or Nāgodara		
Caraka	Due to dry or other abnormal diet, aggravation of *vāyu.*	Absence of fetal growth and quickening	After considerable delay.	Just like *upaviṣṭaka*
Suśruta	Aggravation of *vāyu* in very early pregnancy	Either decrease in fetal size or being carried away by *naigameṣa*	—	Soft, unctuous diet, pestling of paddy, riding etc.

Author	Etiology	Clinical features	Period of delivery	Principles of treatment
Vāgbhaṭa I	Just like *upaviṣṭaka* but excessive bleeding or vaginal discharges	Decreased fetal and abdominal size, very less quickening, clinical features of other *doṣas.*	Years together	Just like *upaviṣṭaka.*
Vāgbhaṭa II	Just like Caraka	Desiccation or emaciation of fetus, decreased abdominal size, delayed quickening.	—	Just like *upaviṣṭaka*
		Līna-garbha		
Caraka	—	Absence of quickening	—	Meat soup and massage.
Suśruta	Obstruction to the (exit) passage of fetus due to aggravated *vāyu.*	Trouble to fetus or its intra-uterine death, its attachment to *srotasas.*	Very delayed.	Soft, unctuous measures, pestling of paddy, and riding
Vāgbhaṭa I	Affliction of *srotasas* by *vāyu.*	Absence of quickening or its over attachment to *srotasas.*	—	Just like Caraka and to make the woman happy.
Vāgbhaṭa II	—	Absence of quickening	Years together or no delivery.	Just like Vāgbhaṭa I

Preceding descriptions clearly show that *garbhaśoṣa* or *kṣaya* is a condition of underdevelopment of fetus due to inadequate nutrition or intrauterine growth retardation of fetus.

Upaviṣṭaka (not described by Suśruta) is a condition developing fourth month onwards in pregnancy having bleeding per vaginum, absence of further development of uterus but presence of quickening of fetus.

Caraka and Vāgbhaṭa II have not specified any gestational age of fetus for *upaśuṣka* or *nāgodara.* Suśruta considers it a diseases of very early gestational age while Vāgbhaṭa I has mentioned that this entity also develops fourth month onwards. Suśruta has incorporated two conditions under this i. e. carrying away of fetus by *naigameṣa* and *nāgodara.* It is just possible that in very early pregnancy due to absence of proper development, the fetal parts could not be detected by the woman during its expulsion, thus she thought that it has been taken away by *bhūtas,* however, when fetus remained in uterus without

Scanned with CamScanner

proper development, it was termed *nāgodara.*

In *līna garbha* sleepiness or idleness and absence of quickening as clinical features and obstruction to the *srotasas* or (exit) passage of fetus has been described by Suśruta, Vāgbhaṭa I and Dalhaṇa.

Suśruta has not described any condition in which fetus delivers after years together, however he has mentioned delayed intrauterine stay of *līna garbha.* Delivery of fetus after years in certain conditions mentioned earlier has been given by others (of *garbhaśoṣa, upaviṣṭaka* and *upaśuṣka* by Vāgbhaṭa I).

Intrauterine stay of any fetus beyond a limit after normal delivery period is not seen in practice. The description might have come up due to following reasons:

i) If the woman conceives during lactational or other amenorrhoea period and her period of pregnancy is counted from the day of amenorrhoea then the pregnancy period would appear much prolonged.

ii) If the woman conceiving by her extra-marital relations after departure of her husband to some other place, misleads the physician by giving her date of pregnancy from the date of her last contact with her husband, then the pregnancy period would seem much prolonged.

iii) An attempt has been made to rationalise mythological stories as the Śukadeva Muni was born after sixteen years of intrauterine stay.

Considering above facts the period of delivery mentioned in classics should not be given specific cognizance.

In treatment Suśruta has advocated pestling a procedure likely to induce abortion after initial anabolic or general growth promoting treatment in all the conditions. Others have described riding etc. instead of pestling which can also induce abortion after initial general anabolic treatment. Vāgbhaṭa I has specifically indicated the induction of abortion if general measures fail to promote the fetal growth.

Taking into consideration all the aspects these eight fetal disorders can be equated with today's known disorders in following way—

Due to presence of vaginal discharges and arrest of development of uterus the *upaviṣṭaka* may be considered as intrauterine fetal death in second trimester of pregnancy. Feeling or quickening may be due to psychology of woman, as she knows that she is pregnant. After intra-uterine fetal death its fluid portion is absorbed and size of uterus decreases which is *nāgodara* or *upaśuṣka* or in other words *nāgodara* or *upaśuṣka* is a latter condition of *upaviṣṭaka,* by this time the lady understands the reality thus feeling of quickening also diminishes.

Līna garbha is description of intrauterine death of mature or postmature fetus, because the obstruction into the passage (exit) of fetus will produce any abnormality only during period of delivery not before that.

Congruence of these eight diseases with the disorders described in books of obstetrics is given here-under—

Garbhakṣaya or Garbhaśoṣa	: Under-weight fetus or intrauterine growth retardation.
Upaviṣṭaka	: Intrauterine fetal death during second trimester of pregnancy.
Upaśuṣka or *Nāgodara*	: According to Suśruta pseudocyesis or intrauterine fetal death during first trimester and according to others missed abortion of second trimester.
Līna Garbha	: Absence of quickening or death of mature or postmature fetus.
Garbhavṛddhi	: Over-weight fetus or macrosomia.
Vātodara	: Flatulence.
Bhūtahṛta or *Divya garbha*	: Pseudocyesis

(९) जरायुदोष *(Jarāyudoṣa)*

विकृत जरायु के द्वारा गर्भ का आच्छादन जरायु-दोष कहा जाता है। गर्भ के आवेष्टन रूप विशिष्ट चर्म को जरायु कहते हैं। गर्भाशय में स्थित गर्भ को आवेष्टित करने वाले जरायु में अल्प विकार होने पर उसे जरायुदोष कहते हैं[1]।

Covering of fetus by abnormal *jarāyu* is termed as *jarāyu-doṣa, jarāyu* is the membrane which covers the fetus during its intra-uterine stay.

विमर्श *(Comments)*

जरायु-दोष के अन्तर्गत जरायु (ऐमनिअँन) के सभी विकारों यथा अत्यधिक दौर्बल्य, शोथ, ग्रन्थि (सिस्ट), पिडिका (नॉडॉसम) एवं बन्ध आदि के साथ गर्भोदक-आधिक्य एवं गर्भोदक-न्यूनता का भी समावेश कर सकते हैं।

Under this heading all the abnormalities of amnion i. e. unusual friability, amnionitis, cysts, amnion-nodosum, amniotic adhesion alongwith polyhydramnios and oligo-hydramnios can be included.

रक्तगुल्म *(Raktagulma)*

पूर्व वर्णित नौ गर्भव्यापदों के अतिरिक्त रक्तगुल्म भी एक ऐसी व्याधि है जो गर्भ से सामंजस्य रखती है, अतः इसका भी वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। सभी आचार्यों ने इसका वर्णन गुल्म के अन्तर्गत किया है[2]।

Raktagulma a disease described alongwith other *gulmas* simulates disorders of fetus, hence is being described here.

१. जरायुदोष इति। विकृतजरायुणा छादनं जरायुदोषः। जरायुर्गर्भस्यावेष्टनरूपश्चर्मविशेषः। 'जरायुणा मुखे च्छन्ने' इत्यादि दर्शनात्। अर्थाद्गर्भशय्यायां स्थितो यो बालस्तस्योपरि वेष्टितोल्पविकारत्वाज्जरायुदोष इत्यभिप्रायः॥
(शा० सं० पूर्व० ७/१८२ की आढ० टीका)

२. (अ) इह खलु पञ्च गुल्मा भवन्ति·····शोणित गुल्म इति। (च० सं० नि० ३/३)
(आ) स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः॥ (सु० सं० उ० ४२/८)
(इ) आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः॥ (अ० हृ० नि० ११/३२)

Scanned with CamScanner

रक्तगुल्म के स्त्रियों में ही होने का कारण (Cause of its presence only in women)

शोणितगुल्मस्तु खलु स्त्रिया एव भवति न पुरुषस्य, गर्भकोष्ठार्तवागमनवैशेष्यात् ॥
(च० सं० नि० ३/१३)

…तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ (सु० सं० उ० ४२/८)

रक्तगुल्मस्तु गर्भकोष्ठार्तवोपगमनवैशेष्यात्पारतन्त्र्यादवैशारद्यादपचारानुरोधाच्च स्त्रिया एव भवति ॥
(अ० सं० नि० ११/४४)

…रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते ॥ (अ० हृ० नि० ११/४८)

रक्तगुल्मः स्त्रिया योनौ जायते न नृणां क्वचित् ॥ १४॥ (का० सं० चि० ८)

…स्त्रीणां रक्तगुल्मो हि जायते। तदाशयस्य चाभावात् पुरुषाणां न जायते ॥ १८॥
(का० सं० खि० ९)

शोणितगुल्म या रक्तगुल्म गर्भकोष्ठ अर्थात् गर्भाशय तथा आर्तव के आगमन की विशेषता के कारण स्त्रियों में ही होता है। टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने लिखा है कि आर्तव-प्रतिबन्ध-जन्य रक्तगुल्म पुरुषों में नहीं होता, परन्तु सामान्य शोणित-दुष्टि-जन्य गुल्म पुरुषों में भी होता है,[1] तथा इसे कुमारी एवं वृद्धा में निषिद्ध बताया है अर्थात् यह केवल युवा स्त्रियों में ही होता है कुमारी या वृद्धा में नहीं।[2]

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि अन्य (वात, पित्त, कफ तथा सन्निपात के अतिरिक्त) गुल्म रक्त के कारण स्त्रियों में होता है। टीकाकार डल्हण ने भी चक्रपाणि की ही भाँति स्पष्टीकरण दिया है कि धातु-रूप रक्त का गुल्म पुरुषों में भी होता है, इस धातु-रूप गुल्म के लक्षण पित्तज गुल्म सदृश होने के कारण इसका पृथक् वर्णन नहीं दिया गया[3]।

अष्टांगसंग्रहकार ने महर्षि चरक के समान ही लिखा है कि स्त्रियों में गर्भकोष्ठ या गर्भाशय तथा आर्तव आने की विशेषता, उनके परतन्त्र, अज्ञानी एवं परसेवारत (अत्यधिक) होने के कारण रक्तगुल्म स्त्रियों में ही होता है। टीकाकार इन्दु ने चरक के व्याख्याकार जर्जट (जेज्जट) के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि जो स्त्री गर्भ-ग्रहण-समर्थ (आयु वाली) होती है रक्तगुल्म उसी को होता है। कन्याओं, तनु-आर्तवा (पतले आर्तव-स्राव वाली स्त्री) तथा पूर्ण वयस्का (प्रौढ़ा या वृद्धा) स्त्रियों को नहीं होता[4]।

अष्टांगहृदयकार ने भी लिखा है कि रक्तगुल्म स्त्रियों में ही होता है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि रक्तगुल्म स्त्रियों की ही योनि में होता है कभी भी पुरुषों को नहीं होता, क्योंकि पुरुषों में उस आशय का अभाव रहता है। स्त्रियों में भी यह कन्याओं को नहीं होता[5]।

१. आर्तवप्रतिबन्धजन्यः शोणितगुल्मः पुरुषस्य न भवति। सामान्यशोणितदुष्टिजन्यस्तु पुरुषस्यापि भवति ॥
(च० सं० नि० ३/१३ की चक्र० टीका)

२. स्त्रियमित्यनेन कुमारीमतिवृद्धां च निषेधयति ॥ (च० सं० चि० ५/१८ की चक्र० टीका)

३. रक्तेन आर्त्तवरक्तेन; चकारात् धातुरक्तेनापि गुल्मो जायते, स च पुंसां स्त्रीणां च भवति; तस्य च पृथगुपादानं न कृतं, पैत्तिकगुल्मसमानलक्षणतया तदैवावरोधात् ॥ (सु० सं० उ० ४२/८ की डल्ह० टीका)

४. या स्त्री गर्भग्रहणसमर्था सैव गृह्यते। न कन्यका प्रतनुकार्तवा परिणतवयस्का चेति चरकव्याख्याने जर्जटः ॥
(अ० सं० नि० ११/४४ की इन्दु टीका)

५. ……कन्यानां च न जायते ॥ १५॥ (का० सं० खि० ९)

महर्षि भेल, भावमिश्र, योगरत्नाकरकार तथा माधवनिदानकार के भी यही विचार हैं[1]। मधुकोषव्याख्याकार ने कुमारी में अनुद्भूत रज के कारण तथा वृद्धा में रज की क्षीणता के कारण इस व्याधि की अनुपस्थिति वर्णित की है[2]। महर्षि शार्ङ्गधर ने रोगों के भेदों की गणना में आठवाँ रक्तगुल्म माना है[3]।

Raktagulma develops only to the females not to males, because the women possess *garbhāśaya* (uterus) and have regular appearance of *ārtava* (menstrual blood or ovum) which is accumulated. It does not develop in young girls or aged women.

Their absence of freedom, ignorance and engagement in service of others is also responsible for development of *raktagulma* (due to above causes she may have to suppress her natural urges which may aggravate *doṣas*). Cakrapāni and Indu opine that this disease develops in active reproductive age, neither to the young girls due to absence of menarche, nor to aged women due to menopause, or even to the women having watery menstruation. However *gulma* of *rakta dhātu* can develop even to men.

निदान एवं सम्प्राप्ति (Etiopathogenesis)

महर्षि चरक ने चिकित्सास्थान तथा अष्टांगसंग्रहकार[4] ने निदानस्थान में सामान्य गुल्मों के निदान एवं सम्प्राप्ति का पृथक् उल्लेख किया है। यद्यपि सभी गुल्मों की सामान्य सम्प्राप्ति होने के कारण वह रक्तगुल्म की भी सम्प्राप्ति मानी जा सकती है परन्तु वर्णन को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वर्णन रक्तगुल्म के अतिरिक्त अन्य सभी गुल्मों का है। टीकाकार चक्रपाणि ने यह स्पष्टतया लिखा है कि सामान्य सम्प्राप्ति का वर्णन रक्तगुल्म को छोड़कर अन्य सभी गुल्मों का है[5]। रक्तगुल्म के विशिष्ट निदान एवं सम्प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार है-

पारतन्त्र्यादवैशारद्यात् सततमुपचारानुरोधाद्वा वेगानुदीर्णानुपरुन्ध्यात्या आमगर्भे वाऽप्यऽचिरपतितेऽथवाऽप्य-चिरप्रजाताया ऋतौ वा वातप्रकोपणान्यसेवमानायाः क्षिप्रं वातः प्रकोपमापद्यते ॥

स प्रकुपितो योनिमुखमनुप्रविश्यार्तवमुपरुणद्धि, मासि मासि तदार्तवमुपरुध्यमानं कुक्षिमभिवर्धयति ॥
(च० सं० नि० ३/१३,१४)

ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च।
संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति ॥ (च० सं० चि० ५/१८)

१. (अ) अथ लोहितगुल्मस्तु स्त्रीणामेव प्रजायते ॥ २१॥
नातो(सौ)भवति नृणां तु……॥ (भे० सं० नि० ३)
(आ) आर्तवादपि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजायते। अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥
(भा० प्र० चि० ३२/३)
(इ) स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते। अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते ॥ (यो० र० गुल्मनि०)
(ई) स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ (मा० नि० २८/३)

२. स्त्रीभवत्वे लब्धे स्त्रीग्रहणेन कुमारीमतिवृद्धां च निषेधयति, अनुद्भूतक्षीणरजस्कत्वात्तयोः ॥
(मा० नि० २८/१५ की मधुकोष व्याख्या)

३. रक्तादष्टमकः ख्यातः……। (शा० सं० पूर्व० ७/५३)

४. च० सं० चि० ५/६,७ एवं अ० सं० नि० ११/३५

५. ……इयं च शोणितजगुल्मव्यतिरिक्तानां चतुर्णां सम्प्राप्तिः ॥ (च० सं० चि० ५/६ की चक्र० टीका)

Scanned with CamScanner

…क्षतजं प्रवक्ष्ये ।
नवप्रसूताऽहितभोजनाया या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं…… ॥ (सु० सं० उ० ४२/१३, १४)

तद्धि वर्धमानमन्तर्वर्तमानं (पाठभेद-पुणे प्र०) सशुक्रमशुक्रं वा जीवरहितं वातलान्यासेवमानाया योषितो गर्भलिङ्गानि दर्शयद्गुल्मी भवति तत्र गुल्मचिकित्सितमीक्षेत ॥ (अ० सं० शा १/१४)

तत्र यदा सा ऋतुमती नवप्रसूता योनिरोगिणी वा वातलान्यासेवते तदाऽस्या वायुः कुपितो योन्या मुखमनुप्रविश्यार्तवमुपरुणद्धि । तदुपरुध्यमानं मासे-मासे कुक्षिमभिनिर्वर्तयति ॥ (अ० सं० नि० ११/४५)

ऋतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी। सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः ॥ ४९॥
निरुणद्ध्यार्तवं योन्यां प्रतिमासमवस्थितं । कुक्षिं करोति……॥ ५०॥ (अ० हृ० नि० ११)
दुष्प्रजाता(ऽऽम)गर्भा च गर्भस्रूर्बहुमैथुना । अन्यक्षगर्भकामा च बहुशीतार्तवा च या ॥ १५॥
उदावर्तनशीला च वातलान्ननिषेविणी । या स्त्री तस्याः प्रकुपितो वातो योनिं प्रपद्यते ॥ १६॥
निरुणद्ध्यार्तवं तत्र मासिकं सञ्जिनोति च। रक्ते च संस्थिते नारी गर्भिण्यस्मीति मन्यते ॥ १७॥
(का० सं० चि० ८)

विपर्ययात्तदेवेह तत्रैव तु निचीयते ॥ १७/२॥
अनेन हेतुना स्त्रीणां रक्तगुल्मो हि जायते ॥ १८/१॥
यदा रक्तवहा रक्तं प्रदोषान्नानुपद्यते । विमार्गाद्योनिमन्वेति(विकृति)स्तेन जायते ॥ २३॥
तथैव रक्तगुल्मोऽपि हेतुनाऽनेन जायते । यदा ऋतुमती नारी प्राप्तान् वेगान् विधारयेत् ॥ २४॥
ह्रिया त्रासाद्व्यवायाद्वा वर्तमानानधोगतान् । एवमादिभिरण्यन्यैरुदावृत्तैः प्रकोपितः ॥ २५॥
वायुः शोणितमादाय प्रतिस्रोतः प्रपद्यते । गर्भाशयमुदावृत्तस्तस्या वहति शोणितम् ॥ २६॥
मारुतश्च्युतगर्भाया यदा मिथ्योपचर्यते । तस्याः स वायुरुद्वृत्तः प्रतिघातात् सशोणितः॥ २७॥
गत्वा गर्भाशयं रुद्धः स्थिरत्वमुपपद्यते । संवृत्तं शोणितं तत्र मारुतो विषमं गतः ॥ २८॥
रजोवहाः समावृत्तः संस्तम्भयति गर्भवत्॥ (का० सं० खि० ९)

परतंत्र होने, अज्ञान (वेगावरोधजन्य व्याधियों का अज्ञान) होने, हमेशा कार्य या सेवा में लगी रहने के कारण उत्पन्न हुए वेगों को रोकने से अथवा आमगर्भावस्था (अल्पकालीन गर्भाधानावस्था) में गर्भपात होने या प्रसव के तुरंत बाद या ऋतुकाल में वात-प्रकोपक आहार आदि का सेवन करने वाली स्त्री की वायु शीघ्र ही प्रकुपित हो जाती है। वह प्रकुपित वायु योनिमुख (गर्भाशयद्वार[1]) में प्रविष्ट होकर आर्तव का अवरोध कर देती है। वह मास मास में रुका हुआ आर्तव कुक्षि का वर्धन करता है।

पुनश्च महर्षि चरक ने लिखा है कि ऋतुकाल में भोजन न करने, भय, रूक्ष आहार-विहार के सेवन, वेगों के अवरोध, स्तम्भन (योनिगत रक्तस्राव में स्तम्भक औषधियों के प्रयोग) एवं लेखन (योनिरोगों में गर्भाशय लेखन) औषधियों के प्रयोग तथा योनिदोष या अन्य योनिव्यापदों के कारण स्त्रियों में रक्तगुल्म हो जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने संक्षेप में वर्णन करते हुए लिखा है कि अब क्षतज अर्थात् आर्तवरक्तज[3] गुल्म का वर्णन करूँगा। नवप्रसूता, आमगर्भ का पात होने के बाद (षट्मास तक के गर्भपात के बाद[2]) अथवा ऋतुकाल में जो स्त्री अहित भोजन का प्रयोग करती है ; (प्रकुपित) वायु उसके रक्त को ग्रहण कर या रोक कर गुल्म उत्पन्न कर देती है।

१. योनिमुखमिति गर्भाशयद्वारम्……। (च० सं० नि० ३/१३ की चक्र० टी०)
२. क्षतजशब्देनार्तवरक्तमुच्यते, कारणे कार्योपचारात्। आमगर्भः, षण्मासं यावत् ॥
(सु० सं० उ० ४२/१३, १४ की डल्ह० टीका)

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि वह अन्तर्स्थित (निषिक्त आर्तव रूपी रक्त) शुक्र के साथ मिलकर जीवरहित अथवा विना शुक्र के भी (अर्थात् अकेले ही) बढ़ता हुआ, वात-वर्धक आहार सेवन करने वाली स्त्री में गर्भ के लक्षण प्रकट करने लगता है, वह गुल्म होता है, इसमें गुल्म की चिकित्सा करें (उपर्युक्त वर्णन वात-कफ से मार्ग के आवृत हो अनार्तव हो जाने पर उसकी पित्तल औषधियों से उपचार के बाद दिया गया है)। पाठभेद में "तद्धि वर्द्धमानमन्तर्वर्तमान"[1] वर्णन अधिक मिलता है जिसकी टीका करते हुए टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि वह (पित्तज-उपचार आदि से) रक्त बाहर न निकलकर महास्रोतस् के अन्दर जाकर निषिक्त (योनि में) शुक्र के साथ मिलकर अथवा अकेला ही वर्धन करता है[2]।

पुनश्च लिखा है कि यदि ऋतुमती, नवप्रसूता या योनिरोग से पीड़ित स्त्री वात-प्रकोपक आहार-विहार का सेवन करती है तो उसकी प्रकुपित वायु योनिमुख में प्रविष्ट होकर आर्तव का अवरोध कर देती है। वह रुका हुआ आर्तव प्रतिमास कुक्षि का वर्धन करता है।

अष्टांगहृदयकार ने भी लिखा है कि जब नवप्रसूता, ऋतुमती अथवा योनिरोग से पीड़ित स्त्री वातल आहार-विहार का सेवन करती है तो वायु प्रकुपित होकर योनि में आर्तव का अवरोध कर देती है, वह प्रतिमास में स्थित या रुका हुआ आर्तव कुक्षि का वर्धन करता है।

महर्षि काश्यप ने इस व्याधि का अत्यधिक विस्तार से वर्णन करते हुए लिखा है कि जो स्त्री दुष्प्रजाता (विकृत प्रसव वाली), आमगर्भा (आमगर्भा या एक से तीन माह तक के गर्भाधान वाली), गर्भस्रू (गर्भस्राव-युक्त), बहुत मैथुन करने वाली, गर्भ की बहुत ज्यादा इच्छा करने वाली, अत्यधिक शीतल आर्तव वाली, उदावर्त से युक्त तथा वात-प्रकोपक आहार-विहार का सेवन करने वाली है, उसकी वायु प्रकुपित हो योनि को प्राप्त होकर आर्तव का अवरोध कर देती है एवं वह (आर्तव) प्रतिमास संचित होता जाता है। रक्त के स्थित होने के कारण स्त्री अपने आपको गर्भिणी मानने लगती है। पुनश्च महर्षि काश्यप लिखते हैं कि विपर्यय होने (अर्थात् पुष्पभूत हो प्रतिमास प्रवर्तित न हो सकने) के कारण वह आर्तव वहीं अर्थात् गर्भाशय में ही एकत्र हो जाता है एवं इस कारण से स्त्री को रक्तगुल्म होता है। जिस प्रकार दोषों से दुष्ट होने पर रक्त (आर्तव) रक्तवहा-सिराओं में न जाकर विपरीत मार्ग से योनि में पहुँच कर विकार उत्पन्न करता है उसी प्रकार उपर्युक्त कारण से अर्थात् रक्त के दोषों से दूषित होने से रक्तगुल्म भी हो जाता है। जब ऋतुमती स्त्री लज्जावश, भयवश अथवा व्यवाय या मैथुन में संलग्न होने के कारण अधोभाग के प्राप्त (मल, मूत्र, अपान वायु) हुए वेगों का धारण करती है, तब अथवा उदावर्त आदि अन्य कारणों से वायु प्रकुपित हो जाती है। वह प्रकुपित वायु रक्त को लेकर स्रोतस् या गर्भाशय में पहुँचती है। वह उद्वृत्त वायु गर्भाशय में शोणित को रोक देती है या स्थिर कर देती है। जिस स्त्री का गर्भपात वायु की विकृति के कारण हुआ है उस स्त्री की मिथ्योपचार के कारण प्रकुपित वायु शोणित को लेकर उद्वृत हो कर गर्भाशय में (ऊपर की ओर) जाकर स्थिरता को प्राप्त हो जाती है (वायु के विकार के कारण शोणित गर्भाशय में रुक जाता है)। वह विषम वायु के कारण रुका हुआ शोणित गोलाकार होकर रजोवहा धमनियों का आवरण करके गर्भ के सदृश स्थिर हो जाता है।

महर्षि भेल ने भी लिखा है कि हाल ही में गर्भस्राव अथवा प्रसव होने या अतिप्रजनन या अप्रजनन होने या भारवहन के कारण रक्त का (वायु के द्वारा) आध्मापन हो जाता है, रक्त के स्थित हो जाने के कारण स्त्री अपने को गर्भिणी मानती है[3]।

१. इन्दुटीका की पुस्तक में वर्णित पाठभेद।
२. यतस्तद्रक्तं बहिरप्रवर्तमानमन्तर्महास्रोतसि निषिक्तशुक्लसहितं केवलमेव वा वर्धते ॥ (अ० सं० शा० १/१४ की इन्दु टीका)
३. ……तस्य वक्ष्यामि लक्षणं। अचिरप्रच्युते गर्भे सूतिकायास्तथा(ऽ)चिरात् ॥ २२॥
अतिप्रजननाद्वापि तथा(ऽ)प्रजननेन वा। सन्धारणाद्वा पा(धा)रस्य रक्तमाध्मापयेत्ततः ॥ २३॥
सशोणिते स्थिते नारी गर्भिणी स्वीति मन्यते ॥ २४॥ (भे० सं० नि० ३/२२ से २४)।

Scanned with CamScanner

आचार्य भावमिश्र, माधव तथा योगरत्नाकरकार ने महर्षि सुश्रुत के वर्णन का अक्षरशः पालन किया है[1]। आचार्य भावमिश्र एवं मधुकोषव्याख्याकार ने आमगर्भ से नवम मास के पूर्व का प्रसव माना है तथा रक्तगुल्म के आकार को गुटिकाकार वर्णन करते हुए आहार के साथ विहार को विकार मानकर चरक वर्णित "ऋतावनाहारतया"···आदि श्लोक भी उद्धृत किया है[2]।

General etiopathogenesis described for all types of *gulmas* is not to be considered here. Cakrapāṇi has very clearly mentioned that this general etiopathogenesis does not apply for *raktagulma*. Specific etiopathogenesis is given here-under.

The woman who suppresses her natural urges due to absence of freedom, ignorance and engagement in service of others and uses *vāta* aggravating diet or mode of life during *āmagarbha* (pregnancy of very short duration), immediately following abortion, delivery or during *ṛtukāla* (menstrual period), her *vāyu* gets aggravated very quickly. This aggravated *vāyu* entering *garbhāśayadwāra* (cervix uteri) obstructs the *ārtava* (menstruation). Every month accumulated this *ārtava* causes development of *kukṣi* (uterus). Fasting during *ṛtukāla*, fear, use of dry dietetics and mode of life, suppression of natural urges, use of *stambhaka* (causing cessation of bleeding per vaginum) and *lekhana* (causing medicinal curettage of uterus) drugs and *yonidoṣa* (gynecological disorders) also are causative factors for *raktagulma*.

Suśruta has held responsible only use of improper diet during *ṛtukāla*, after abortion or delivery as a causative factor.

Vāgbhaṭa I says that the woman who uses *vāta* aggravating diet, her *ārtava* getting admixed with excreted *śukra* but with absence of *jīvātamā* or sometimes even without *śukra* gets accumulated, increases and gives clinical features of pregnancy, this entity is *gulma*. Further both the Vāgbhaṭas have mentioned use of *vāta*-vitiating diet following delivery, during *yonirogas* and *ṛtukāla* as etiology of *raktagulma*.

Kāśyapa giving detailed account of etiology says that the woman who has had abnormal labour, is carrying *āmagarbha* (pregnancy of early first trimester), has had abortion, indulges in excessive coitus, is over anxious to become pregnant, has excessively cold *ārtava* (menstruation), suffers from *udāvarta*, if uses diet or mode of life capable of vitiating *vāta*, then her *vāyu* gets aggravated. When the woman due to shyness, fear or being engaged in coitus suppresses her urge of defecation, urination or passing of flatus then also her *vāyu* gets aggravated. If the woman who has had abortion due to abnormality of *vāyu* and further uses improper mode of life and diet then also her *vāyu* gets vitiated. This aggravated *vāyu* withholding *rakta*, moving upwards, entering *yoni*, reaches the *srotasa* or *garbhāśaya* (uterus). There it settles down with *rakta* or *ārtava* inside the uterus, thus the

१. नवप्रसूता·····करोति गुल्मं ···। (सु० सदृश) (भा० प्र० चि० ३२/१७; मा० नि० २८/१५ एवं यो० र० गुल्म०-चाऽऽमगर्भ-पाठ है)

२. (अ) आमगर्भं विसृजेदिति। नवममासादर्वाक् प्रसूतेः ·····। अहित भोजनेति सम्बंधः। एतच्चोपलक्षणार्थं, तेनाहाराचारादिकं ज्ञेयम्। यदाह चरकः ऋतावना···। (च० सं० सदृश)। (मा० नि० २८/१५ की मधुकोष टीका)।
(आ) या चामगर्भं विसृजेत्-नवममासादर्वाक् प्रसूयते·····। भोजनपदं विहारस्याप्युपलक्षणं। यतश्चाह चरकः ···। ऋतावनाहारतया·····। (च० सं० सदृश) (भा० प्र० चि० ३२/१७ की व्याख्या)

ārtava which would have otherwise been excreted every month is not discharged. This obstructed *śoṇita* assuming a rounded shape enveloping *rajovahā dhamanīs* stays in uterus just like a fetus.

In Bhelasaṃhitā, Bhāwaprakāśa, Mādhavanidāna and Yogaratnākara also almost similar ideas have been expounded.

पूर्वरूप (Prodromal symptoms)

आचार्यों ने रक्तगुल्म के विशिष्ट पूर्वरूपों का वर्णन नहीं किया, परन्तु सामान्य गुल्म में होने वाले पूर्वरूप इस गुल्म के भी पूर्वरूप होगें। सभी आचार्यों ने सामान्यतया पाचन-संस्थान सम्बन्धी लक्षण पूर्वरूप में वर्णित किए है जैसे अन्न की अभिलाषा न होना, अरुचि, अविपाक, अग्निवैषम्य, खाने के बाद जलन, भोजन की पाकावस्था में छर्दि, उद्गार, वात, मूत्र एवं पुरीष आदि वेगों का उत्पन्न न होना, उत्पन्न होने पर इनका न निकलना, वातजन्य शूल, आटोप, आन्त्रकूजन, रोमांच, उदावर्त, अवुभुक्षा, दौर्बल्य तथा तृप्तियुक्त भोजन का सहन न होना आदि सभी गुल्मों के सामान्य पूर्वरूप हैं[1]।

Since specific prodromal symptoms of this condition have not been described separately, hence general prodromal symptoms described for all the types of *gulmas* should be considered here also. These are—absence of desire and taste of food, indigestion, abnormal appetite and digestion, burning sensation after ingestion of food, vomiting during digestion of food, eructation, absence of urge for passing the flatus, urine and stool or if urge is felt these are not excreted, pain due to effect of *vāyu*, distension of abdomen, sound and pain in bowels, horripilation, upward movement of gases, anorexia, weakness and intolerance for satiating food etc.

लक्षण (Clinical Features)

···मासि मासि तदार्तवमुपरुध्यमानं कुक्षिमभिवर्धयति।

तस्याः शूलकासातीसारच्छर्द्यरोचकाविपाकाङ्गमर्दनिद्रालस्यस्तैमित्यकफप्रसेकाः समुपजायन्ते, स्तनयोश्च स्तन्यम् ओष्ठयोः स्तनमण्डलयोश्च काष्ण्यंम्, अत्यर्थं ग्लानिश्चक्षुषोः, मूर्च्छा, ह्लासः, दोहदः, श्वयथुश्च पादयोः, ईषच्चोद्गमो रोमराज्याः, योन्याश्चाटालत्वम्, अपि च योन्या दौर्गन्ध्यमास्रावश्चोपजायते, केवलश्चास्या गुल्मः पिण्डित एव स्पन्दते, तामगर्भां गर्भिणीमित्याहुर्मूढाः। (च० सं० नि० ३/१४)

यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात् सशूलः समगर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्री भव एव गुल्मो ·····॥ (च० सं० चि० ५/११)
·····सरुजं सदाहं।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध।
न स्पन्दते नोदरमेति वृद्धिं भवन्ति लिङ्गानि च गर्भिणीनाम् ॥ (सु० सं० उ० ४२/१४, १५)

···तदुपरुध्यमानं मासे मासे कुक्षिमभिनिर्वर्तयति गर्भलिङ्गानि च ह्लासतन्द्राऽङ्गसाददौर्हृदस्तन्यदर्शनादीनि। वायुसंसर्गात्पुनः पित्तैकप्रकोपतया च वातपित्तगुल्मरूपाणि क्रमाच्छूलस्तम्भदाहातीसारादीनि गर्भाशये च सुतरां शूलं तथा योन्या दौर्गन्ध्यमास्रावं च करोति। गुल्मश्च न गर्भ इवाङ्गैः पिण्डित एव तु चिरेण सशूलं स्पन्दते। गुल्म एव च वर्धते न कुक्षिः। (अ० सं० नि० ११/४५)

१. च० सं० नि० ३/१५; सु० सं० उ० ४२/८, ९; अ० सं० नि० ११/३८।

Scanned with CamScanner

..... प्रतिमासमवस्थितम्। कुक्षिं करोति तद्गर्भलिङ्गमाविष्करोति च ॥५०॥
हृल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनं क्षामतादिकम्। क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्ततयोनितया च तत् ॥५१॥
शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजान्। स्रवस्तम्भदाहार्तीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ॥५२॥
गर्भाशये च सुतरां शूलं दुष्टासृगाश्रये। योन्याश्च स्रावदौर्गन्ध्यतोदस्यन्दनवेदनाः ॥५३॥
न चाङ्गैर्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान्। पिण्डीभूतः स एवास्याः कदाचित्स्पन्दते चिरात् ॥५४॥
न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते ॥५५॥ (अ० ह० नि० ११/५० से ५५)

स्तनमण्डलकृष्णत्वं रोमराजिः सदोहदा। गर्भिणीरूपमव्यक्तं भजते सर्वमेव तु ॥१८॥
वि(अ)पाकपाण्डुकाश्यानि भवन्त्यभ्यधिकानि तु। इत्येवं लक्षणं स्त्रीणां रक्तगुल्मं प्रचक्षते ॥१९॥
(का० सं० चि० ८)

स गुल्मः स्पन्दतेऽभीक्ष्णं मारुतेन समीरितः॥ २९॥
दर्शयन् यानि रूपाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः। कासते शूल्यते चैव ज्वर्यतेऽथातिसार्यते ॥३०॥
मन्यते सर्वगात्राणि मूर्च्छितानि गुरूणि च। तमोऽस्या जायतेऽभीक्ष्णं काश्र्यं चैव निगच्छति ॥३१॥
वमत्यभीक्ष्णशो भुक्तमन्नं चास्यै न रोचते। जायन्ते चोदरे गण्डा नीलं चाम्याः प्रदृश्यते ॥३२॥
स्तनान्तरं च नाभिश्च लोमराजी च मूर्च्छिता। ओष्ठौ च कृष्णौ भवतस्तथैव स्तनचूचुकौ ॥३३॥
पयोधरौ प्रसिच्येते दोहदं च निगच्छति। नानारसान् प्रार्थयते निष्ठीवति मुहुर्मुहुः ॥३४॥
शुभादुद्विजते गन्धाद्वर्णश्चास्याः प्रसीदति। गर्भिण्या यानि रूपाणि तानि संदृश्य तत्त्वतः ॥३५॥
वर्षाणि हरति व्याधिं गर्भोऽयमिति दुःखिता॥ ३६॥ (का० सं० खि० ९)

प्रत्येक मास में रुका हुआ वह आर्तव कुक्षि (उदर) का वर्धन करता है। उस स्त्री को शूल, कास, अतिसार, छर्दि, अरोचक, अविपाक, अंगमर्द, निद्रा, आलस्य, स्तैमित्य (जड़ता सी) तथा कफप्रसेक (मुख में पानी या कफ सदृश आना) आदि लक्षण हो जाते हैं। स्तनों में स्तन्य की उत्पत्ति, ओष्ठ एवं स्तनमण्डल की कृष्णता, नेत्रों में अत्यधिक ग्लानि (थकावट), मूर्च्छा, हृल्लास (जी मिचलाना), दौहद, पैरों में शोथ, रोमराजी का ईषत् उद्गम, योनि-विस्तार तथा योनि से दुर्गन्धित स्राव आदि उत्पन्न हो जाते हैं। पिण्ड के समान केवल गुल्म ही स्पन्दन करता है, उस अगर्भा या गर्भ-रहित स्त्री को अज्ञानी लोग गर्भिणी कहते हैं। टीकाकार चक्रपाणि ने स्तन्य की उत्पत्ति का कारण आर्तवरोध से उत्पन्न इस व्याधि का स्वभाव माना है तथा गुल्म में चेतना के अभाव में दौहद की उत्पत्ति का कारण अनार्तव-जन्य गर्भ-भ्रान्ति माना है एवं लिखा है कि जिस प्रकार विष-पान की शंका होने पर ही व्यक्ति को विष के लक्षण हो जाते हैं उसी प्रकार अनार्तव के कारण स्त्री को दौहद की प्रतीति होती है। पिण्डाकार स्पन्दन के स्पष्टीकरण में लिखा है कि गुल्म में केवल स्पन्दन होता है एक देश या एकांग से नहीं जब कि गर्भ एक देश या एकांग से भी स्पन्दन करता है[1]।

महर्षि चरक ने पुनः लिखा है कि जो पिण्ड रूप में न कि अङ्गों से, शूल के साथ तथा चिरकाल में स्पन्दन करता है; गर्भ के लक्षणों वाला वह स्त्री को ही होने वाला रक्तगुल्म है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि इस गुल्म में पीड़ा तथा दाह होता है एवं सामान्य रूप से इसमें पैत्तिक गुल्म के सदृश अर्थात् स्वेद, ज्वर, आहार का पाक न होना, दाह, तृष्णा, अङ्गवेदना, मुख में कटुआपन आदि अन्य पित्त के लक्षण होते

१. .....। स्तनयोः स्तन्यमिति रोगप्रभावादेव बोद्धव्यम्। आर्तवरोधलक्षणस्य व्याधेरयं प्रभावो यत् स्तन्यं करोति ...। शोणितगुल्मे च चेतना नास्ति, तेन नैवरूपमिह द्वैद्यं दोहदम्। तेन गर्भभ्रान्त्या यत्किंचिदभ्यवहारेच्छादिलक्षणं दोहदं तस्या भवति, असत्यपि विषसम्बन्धे यथा शङ्काविषादिषलिङ्गानि भवन्ति.....। केवलः स्पन्दत इति नैकदेशेन, गर्भो ह्येकदेशेनापि स्पन्दते। (च० सं० नि० ३/१४ की चक्र० टीका)

२. स्वेदज्वराहारविदाहदाहास्तृष्णाऽङ्गरागः कटुवक्त्रता च। पित्तस्य लिङ्गान्यखिलानि यानि पित्तात्मके तानि भवन्ति गुल्मे ॥
(सु० सं० उ० ४२/११)

है विशेष कर इसमें स्पन्दन नहीं होता और न ही उदर की वृद्धि ही होती है, एवं गर्भिणी के सदृश (गर्भावस्था जन्य गर्भिणी-लक्षण) लक्षण होते हैं। टीकाकार डल्हण ने 'न स्पन्दते' का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि वह गुल्म अंगों से अर्थात् गर्भ की भाँति अलग-अलग अंगों से स्पन्दन न करके पिण्डवत् स्पन्दन करता है; अन्य लोगों के मत का उद्धरण देते हुए लिखा है कि 'न' या निषेध का दोनों ओर अर्थात् स्पन्दन एवं उदर वृद्धि के साथ सम्बन्ध होने के कारण स्पन्दन होता है ऐसा समझना चाहिए, अन्य गर्भ सदृश श्रम आदि लक्षणों की उत्पत्ति इस व्याधि के स्वभाव के कारण मानी है[1]।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि वह प्रत्येक मास में रुका हुआ आर्तव कुक्षि को धीरे-धीरे बढ़ाता है एवं हृल्लास, तन्द्रा, अंगसाद, दौहृद तथा स्तन्य-दर्शन आदि गर्भ के लक्षणों को करता है। वायु के संसर्ग के पश्चात् पित्त का प्रकोप होने पर वातपित्त गुल्म के रूप क्रमशः शूल, स्तम्भ, दाह, अतिसार, गर्भाशय में अत्यधिक शूल तथा योनिमार्ग से दुर्गन्धित स्रावों का निकलना आदि लक्षण होते हैं। गुल्म, गर्भ के सदृश अङ्गों से स्पन्दन न करके पिण्ड रूप में, चिरकाल से तथा शूल के साथ स्पन्दन करता है। गुल्म ही वृद्धि को प्राप्त करता है कुक्षि नहीं।

अष्टांगहृदयकार ने शब्दभेद से उपर्युक्त सदृश ही वर्णन किया है कि प्रतिमास कुक्षि में रुका हुआ आर्तव हृल्लास, दोहृद, स्तन्यदर्शन तथा क्षामता (कृशता) आदि गर्भ के लक्षणों को करता है। क्रमशः वात के साथ पित्त का संसर्ग होने पर उस रक्तगुल्म में वातपित्तज गुल्म के लक्षण यथा वेदना, स्तम्भ (रुकावट सी या जड़ता), दाह, अतिसार, तृष्णा एवं ज्वर आदि उपद्रव होते हैं। दूषित आर्तव का आश्रय होने के कारण गर्भाशय में अत्यधिक शूल, योनि से स्राव, दुर्गन्धि, तोद (सुई चुभने सी वेदना), स्यन्दन (थोड़ा थोड़ा लगातार स्राव) तथा वेदना होती है। गुल्म, गर्भ के सदृश अंगों से स्फुरण नहीं करता, वह शूल के साथ पिण्डाकार में ही, चिरकाल के पश्चात्, कभी कभी स्पन्दन करता है इसमें कुक्षि का वर्धन नहीं होता गुल्म ही बढ़ता है।

महर्षि काश्यप ने विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए लिखा है कि स्तनमण्डल में कृष्णता होना, रोमराजि की उत्पत्ति, दौहृद तथा अव्यक्त (अस्पष्ट) रूप से गर्भिणी में होने वाले सभी लक्षण होते हैं, विशेष कर अपचन, पाण्डु, कार्श्य अधिक होते हैं ये लक्षण स्त्री के रक्तगुल्म के हैं। वायु के कारण वह गुल्म अत्यधिक स्पन्दन करता है एवं उसके जो अन्य रूप दिखाई देते हैं उन सभी को मैं विस्तार से कहूँगा। स्त्री को कास आती है, शूल होता है, ज्वर तथा अतिसार होता है। वह अपने सभी शरीर के अंगों को मूर्च्छित (संज्ञा विहीन सा) एवं गुरु प्रतीत करती है। उसे अत्यधिक अंधकार प्रतीत होता है, कृश हो जाती है, अत्यधिक वमन होता है, खाया हुआ अन्न रुचिकर नहीं लगता, उदर में ग्रन्थियाँ हो जाती हैं; स्तनान्तर तथा नाभि प्रदेश (में नीले धब्बे) एवं रोमराजि नीले से दिखाई देते हैं, वह मूर्च्छित हो जाती है। ओष्ठ एवं स्तनचूचुक कृष्ण हो जाते हैं, स्तनों से दुग्ध निकलता है, उसे दौहृद होता है, वह अनेकों प्रकार के रसों (रस या स्वाद वाले खाद्य पदार्थों) की इच्छा करती है। बारम्बार निष्ठीवन करती है, शुभ या अच्छी गन्ध से उद्विग्न या परेशान हो जाती है। उसका वर्ण प्रसन्न हो जाता है (अर्थात् निखर आता है) एवं अन्य सभी गर्भिणी के लक्षणों को ध्यान में रखकर गर्भ है ऐसा समझते हुए कष्ट पूर्वक इस रोग को वर्षों तक ढोती है। कदाचित काल के परिणाम से यदि गुल्म का भेदन हो जाता है तब उस रक्तस्राव में गर्भ की अनुपस्थिति से स्त्रियाँ उसे दिव्य गर्भ या भूतहृत-गर्भ आदि कहने लगती हैं[2]।

महर्षि भेल ने लिखा है कि इस व्याधि में कुक्षि में शूल होता है। कोष्ठ में गुल्म होने के कारण स्त्री उदर में गर्भ मानकर अपने आपको गर्भिणी मानती है। गर्भ मानकर वह स्त्री इस व्याधि को एक या अनेकों वर्षों तक धारण किए रहती है, कभी कभी यह गुल्म भाग्यवश भेदन को प्राप्त हो जाता है। कुछ समय के पश्चात् (अपने आपको गर्भिणी मानने के कुछ काल पश्चात्) उसके स्तन क्षीर-युक्त हो जाते हैं, वह कृश हो जाती है, उसे पाण्डुता तथा दोहद की वस्तुओं की

१. न स्पन्दते न चलति, अङ्गैः इति शेषः। अन्ये तु परतो निषेधस्योभयत्र सम्बन्धात् स्पन्दते इत्येव वर्णयन्ति। .....गर्भिणीनां लिङ्गानि श्रमादीनि सदनान्तान्यत्र व्याधिस्वभावाद् भवन्ति। (सु० सं० उ० ४२/१५ की डल्हण टीका)

२. का० सं० खि० ९/३६ से ४० (पृष्ठ ३७६, ३७७)

Scanned with CamScanner

आकांक्षा होती है। छर्दि, निष्ठीवन, तन्द्रा तथा पैरों में शोथ आदि रक्तगुल्म में विकार हो जाते हैं[1]।

आचार्य भावमिश्र, योगरत्नाकरकार तथा माधव ने इसे पित्तगुल्म के सदृश लक्षणों वाला, गर्भ के समान अङ्गों अङ्गों से स्पन्दन न करके पिण्ड रूप में, चिरकाल के बाद शूल के साथ स्पन्दन करने वाला वर्णित किया है[2]।

मधुकोष व्याख्या एवं भावप्रकाश की टीका में स्पष्ट किया है कि गर्भ के समान लक्षण लिखने का तात्पर्य गर्भ के सभी लक्षणों यथा आर्तव का दर्शन न होना, मुख का पीलापन एवं मुखस्राव, स्तनमुख की कृष्णता एवं दोहद से है। ये सभी लक्षण रक्तगुल्म अर्थात् आर्तव रूपी रक्त के गुल्म में व्याधि के स्वभाव के कारण उसी प्रकार होते हैं जिस प्रकार क्षय व्याधि में स्त्री-प्रसङ्ग की इच्छा तथा अर्श में त्वचा एवं नखादि की कृष्णवर्णता[3]।

The *ārtava* accumulated every month produces development of *kukṣi* (uterus). The woman suffers from colic, cough, diarrhoea, vomiting, anorexia, indigestion, bodyache, sleepiness, indolence, feeling of stillness and excessive salivation. Milk appears in her breasts; lips and areola become black; she feels heaviness in eyes or drooping of eyelids, suffers from unconsciousness and nausea; gets feeling of *dohṛda,* edema of feet, presence of faded *romarājī* (lineanigra), dilatation of *yoni* (vaginal canal) and foul smelling vaginal discharges. *Gulma* quivers just like a sòlid mass not from different body parts and quivering starts comparatively late.

Suśruta says that generally in this *gulma* there is pain, burning sensation and other clinical features of *paittika gulma* such as perspiration, fever, indigestion, burning sensation, thirst, bodyache, bitter taste of mouth etc. Neither there is quivering nor development of abdomen, however, the woman has all the symptoms of pregnancy. Ḍalhaṇa explains that *gulma* quivers slowly like a solid mass.

Both the Vāgbhaṭas describing the presence of clinical features of pregnancy such as nausea, drowsiness, bodyache, emaciation, *dohṛda* and milk secretion, besides the development of *kukṣi* due to accumulation of *ārtava,* have elaborated further that after initial association of *vāyu* followed by aggravation of *pitta* the features of *vātapittaja gulma* appear. These are—colic, stiffness of body, burning sensation, diarrhoea, thirst and fever. Due to retention of abnormal or vitiated *ārtava* the woman suffers from severe pain in uterus, continuous but scanty vaginal discharges specially foul smelling and severe pain specially of pricking type in vagina, quivering is of solid mass, delayed, occasional and with pain. Actually there is development of only *gulma* not of *kukṣi.*

Kāśyapa opines that due to association of *vāyu* there is excessive quivering in *gulma.* The woman suffers from indigestion, anaemia, emaciation, cough, colic, fever and diarrhoea. She feels as if all the body parts are numb and heavy and she is entering in dark. She suffers from excessive vomiting, does not feel taste of food, glands appear over the abdomen, breasts and umbilical region and *romarājī* appears blue. She becomes unconscious. Her lips and areola become black, milk appears in breasts, gets *dohṛda.* She desires articles of various tastes, spits repeatedly and gets agitated with good smells. Her complexion becomes better and she gets all the clinical features of pregnancy. Considering her self pregnant carries the disease for years together with great agony. Some times due to time factor if *gulma* is expelled, then due to absence of fetal parts women call it *divya garbha* (divine fetus) or say that fetus is taken away by *bhūtas.*

Bhela has followed Kāśyapa and Mādhavanidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have followed Caraka, however, these authors have given very short description.

In the commentary of Madhukoṣa and Bhāwaprakāśa it is explained that all the clinical features i.e. amenorrhoea, yellowishness of face, watering of mouth, blackening of areola and *dauhṛda* etc. are present in the *raktagulma* or the *gulma* developing due to a type of *rakta* i.e. *ārtava.* The presence of these clinical features is due to specific nature of disease in the same way as sexual desire in tuberculosis and dark colouration of skin and nails etc. in piles are seen.

रक्तगुल्म में गर्भवत् चेष्टा का कारण (Cause of resemblance of raktagulma with fetus?)

गर्भवच्चेष्टते नायं किन्तु सादृश्यदर्शनात्॥ ४१॥
गर्भोऽयमिति मन्वाना मनसा तद्विभाविनी। नारी विचेष्टते तास्ता गर्भचेष्टाः पृथग्विधाः॥ ४२॥
(का० सं० खि० ९)

यद्यपि यह (रक्तगुल्म) गर्भ के सदृश (अङ्गों अङ्गों से) चेष्टा नहीं करता परन्तु गर्भ से समानता दिखाई देने के कारण एवं गर्भ ही है इस प्रकार की मन में भावना होने के कारण स्त्री गर्भिणी के सदृश नाना प्रकार की चेष्टायें करती रहती है।

टीकाकार डल्हण ने गर्भवत् चेष्टा या गर्भिणी के लक्षणों की उत्पत्ति का कारण इस व्याधि का स्वभाव माना है (पृष्ठ ३९५)।

Though *raktagulma* does not behave (does not quiver from different body parts) like fetus, however, due to resemblance with fetus and psychological feeling of being pregnant, the woman behaves as if pregnant. Ḍalhaṇa says that presence of clinical features simulating pregnancy is specific character of the disease.

---

१. स(आ)मया(द)थ शूलानि तस्याः कुक्षौ भवन्त्यथ॥ २४॥
कोष्ठे गुल्मोदरं तच्च गर्भोऽयमिति मन्यते। गर्भोऽयमिति च व्याधिर्वर्धमेकं बहून्यपि॥ २५॥
धारयत्यथ निर्भेदं कथंचित्संनियच्छति। अथास्याः कालपर्यायात् सक्षीतौ भवतः स्तनौ॥ २६॥
कृशा भवति ना(चा)पाण्डुर्दोष(ह)दं चाभिनन्दति। छर्दिर्निष्ठीविका चैव तन्द्रा चैवं प्रबाधते॥ २७॥
पादयोः श्वयथुश्च स्याद्रक्तगुल्मे प्रदुष्यति॥ २८॥ (भे० सं० नि० ३/२४ से २८)

२. ·····सरुजम् सदाहम्। पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध।
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलं समगर्भलिङ्गः॥ स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो ·····।
(भा० प्र० चि० ३२/१७,१८; मा० नि० २८/१५ व १६)
···सरुजं सदाहम्॥ पित्तस्य गुल्मेन ···।···सशूलं···॥··· गुल्मो···॥ (यो० र० गु० नि०-भा० प्र० सदृश)

३. (अ) समगर्भलिङ्ग इति। आर्तवादर्शनमुखस्रवणस्तनमुखकृष्णत्वदोहदादि गर्भलक्षणयुक्तः, एतच्च व्याधिप्रभावात्; यथा क्षयार्शसोः स्त्रीरिरंसाकृष्णत्वङ्नखादयः॥ (मा० नि० २८/१६ की मधु० टी०)
(आ) समगर्भ लिङ्गः अत्र समशब्दः सर्वशब्दार्थः, तेन समानि-सर्वाणि, गर्भलिङ्गानि=आर्त्तवाप्रवृत्तिकाले 'आर्त्तवादर्शनमुख-पीतता-स्तनमुखकृष्णता-दोहदादीनि' यत्र सः। एते च व्याधिप्रभावाद् यथा यक्ष्मणो रिरंसा। सरौधिरः=आर्त्तवरूप-रक्तजाः॥ (भा० प्र० चि० ३२/१८ की टीका)

Scanned with CamScanner

रक्तगुल्म में दौहद का कारण *(Cause of appearance of dohṛda in raktagulma)*

दोहदं यत् करोतीति शृणु तत्रापि कारणम्। य एव हि रसाः प्रायो धातूनां वृद्धिहेतवः ॥ ४३॥
तेषामेवाभिलाषः स्याद्योनिसाधर्म्यतत्त्वतः। वातपित्तान्वितं रक्तं चीयमानं विकारवत् ॥ ४४॥
कट्वम्ललवणादीनां रसानां गृद्धिमावहेत्॥ ४५॥ (का० सं० खि० ९)

स्त्री (रक्तगुल्म-पीड़ित) जिस कारण से दौहद करती है उसका भी कारण सुनो। जो रस प्रायः करके धातुओं की वृद्धि का कारण होते हैं, उत्पत्ति-धर्म (रसोत्पत्ति) की समानता के कारण उन्हीं रसों की स्त्री इच्छा करती है। चूँकि यह विकार (रक्तगुल्म) वातपित्तान्वित रक्त के एकत्र होने के कारण होता है अतः स्त्री कटु, अम्ल एवं लवण आदि रसों की तीव्र आकांक्षा करती है।

टीकाकार चक्रपाणि ने दौहद का कारण मानसिक भ्रान्ति माना है (पृष्ठ ३९४)।

The specific *rasa* responsible for development of a particular *dhātu (doṣa* and *dhātus)* are desired in case of their requirement in the body. Since *raktagulma* is characterized with accumulation of *rakta* in association of *vāta* and *pitta,* hence the woman craves for articles of *kaṭu* (hot), *amla* (sour) and *lavaṇa* (salty) *rasas.* Cakrapāṇi opines that as a person being suspicious of having taken poison exibits the symptoms of intoxication even in the absence of poison, similarly due to presence of amenorrhoea the woman feels herself pregnant and has *dohṛda.*

रक्तगुल्म में स्तन्योत्पत्ति का कारण *(Cause of appearance of milk in breast in raktagulma)*

गर्भिण्यस्मीति तत्प्रीतिप्रेमसंकल्पसंभृतः ॥ ४५॥
प्रस्तुतो जायते नार्यास्तेन स्तन्यं प्रवर्तते ॥ ४६॥ (का० सं० खि० ९)

स्त्री अपने आपको गर्भिणी समझती हैं एवं (उस उदरस्थ गर्भ के प्रति) प्रीति तथा प्रेम के संकल्प के कारण उसे स्रावों की उत्पत्ति होती है, जिस कारण स्तन्य का प्रवर्तन होता है।

टीकाकार चक्रपाणि ने स्तन्योत्पत्ति का कारण आर्तवरोध से उत्पन्न इस व्याधि का स्वभाव माना है (पृष्ठ ३९४)।

The woman considers herself pregnant and has affection and determinations for her fetus. Due to this affection milk is formed and excreted through breasts. Cakrapāṇi holds amenorrhoea and nature of disease responsible for milk secretion.

रक्तगुल्म में पाण्डुता का कारण *(Cause of appearance of anaemia in raktagulma ?)*

सर्वा रसवहा नाड्यः समन्नाभिमाश्रिताः ॥ ४६॥
गर्भो विवर्धमानश्च संपीडयति ताः स्त्रियाः। तद्वच्च रक्तगुल्मोऽपि पीडयन्नुपचीयते ॥ ४७॥
ताभिश्च पीड्यमानाभिर्न सम्यग्वर्तते रसः। आपाण्डुगण्डतादीनि लक्षणानि भवन्त्यतः ॥ ४८॥
(का० सं० खि० ९)

सभी रसवहा नाड़ियाँ नाभि के चारों ओर आश्रित होती हैं। वृद्धि को प्राप्त होता हुआ गर्भ स्त्री में उनका (रसवहा-नाड़ियों का) पीड़न करता है, उसी प्रकार रक्तगुल्म भी पीड़न करता हुआ (रसवहा नाड़ियों का) उपचित होता है। उनके पीड़ित होने के कारण रस का (शरीर में) सम्यक् प्रकार से संवहन नहीं होता, जिसके कारण गण्ड (कपोल) प्रदेश में पाण्डुता आदि लक्षण होते हैं।

All the *rasavahā nāḍīs* are situated around the umbilicus, which are compressed by growing fetus. Accumulating and developing *raktagulma* also compresses theses *rasavahā-nāḍīs.* Due to this compression *rasa* does not flow freely in the body resulting into *pāṇḍutā* (whitish yellow colouration) of cheeks etc.

रक्तगुल्म में वृद्धि होने का कारण *(Why raktagulma increases in size ?)*

कथं प्रकर्षते कालमिति तत्रापि मे शृणु। विवृद्धेरिह सारूप्यादृगर्भोऽयमिति निश्चिता ॥ ४९॥
संरक्षतेऽभिघातेभ्यः कुक्कुट्यण्डमिवाङ्गना। तदपायकरान् हेतून्न कथञ्चन सेवते ॥ ५०॥
श्रमोपवासतीक्ष्णोष्णक्षारादीनि च सर्वशः। स एवं याप्यमानस्तु यथाकालं प्रकर्षते ॥ ५१॥
व्यापत्तिहेतुमासाद्य कालेनाल्पेन वा पुनः। भेदं गच्छत्यधस्ताद्धि जलकुम्भ इव क्षतः ॥ ५२॥
(का० सं० खि० ९)

काल के साथ वह (रक्तगुल्म) किस प्रकार बढ़ता है यह भी मुझसे सुनो। वृद्धि (रक्तगुल्म की रक्त के उपचय से उत्पन्न वृद्धि) में समानता के कारण गर्भ (उदरस्थ गर्भ) निश्चित कर वह स्त्री उसे अभिघात आदि से उसी प्रकार रक्षा करती है जिस प्रकार कि मुर्गी अपने अण्डे की एवं उसे हानि पहुँचाने वाले कारणों यथा श्रम, उपवास एवं तीक्ष्ण, उष्ण (द्रव्यों) तथा क्षारादि का कभी भी प्रयोग नहीं करती। इस प्रकार रक्षा किया जाता हुआ वह (रक्तगुल्म) यथाकाल अर्थात् समय के अनुसार धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है। व्यापत्ति के हेतुओं अर्थात् उपघातकर या हानि पहुँचाने वाले कारणों के द्वारा कुछ ही काल के पश्चात् नीचे से फूटे हुए जलकुम्भ के समान इसका भेदन हो जाता है (अर्थात् जिस प्रकार नीचे से फूटे हुए जलकुम्भ का जल अतिशीघ्र ही सम्पूर्ण रूप में निकल जाता है उसी प्रकार रक्तगुल्म भी नीचे अर्थात् योनि-मार्ग से भेदित होकर रक्तस्राव के साथ सम्पूर्ण रूप में निकल जाता है)।

Due to similarity in process of growth (of fetus and *gulma* both) the woman considers herself pregnant and protects her just as a hen protects the egg. She never uses harmful things and avoids totally exercise, fasting, use of pungent or hot articles and *kṣāras.* Thus protected *raktagulma* grows gradually with lapse of time. After some time due to use of contrary or harmful things this *raktagulma* gets loosened, separated and is expelled completely along with blood through vaginal passage in the same way as water drains completely from the pot broken at the bottom.

रक्तगुल्म एवं गर्भ में पार्थक्य करने की आवश्यकता *(The necessity of differentiating raktagulma from pregnancy)*

चिकित्सा करने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से सभी आचार्यों ने गुल्म एवं गर्भ में भेद करने की आवश्यकता का वर्णन किया है परन्तु महर्षि कश्यप ने विस्तृत वर्णन किया है।

संभूय सह संमन्त्र्य भिषग्भिः शास्त्रकोविदैः। काले चिकित्सां कुर्वीत यथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ६२॥
अल्पान्तरावुभावेतौ गर्भो गुल्मश्च रक्तजः। तद्यथावद्विदित्वाऽऽदौ क्रियां कुर्याद्भिषग्वरः ॥ ६३॥
यो हि गुल्मे गर्भ इति गर्भे वा गुल्म इत्यपि। क्रियां कुर्यादयशसा एनसा चैव युज्यते ॥ ६४॥
(का० सं० खि० ९)

शास्त्र-पारंगत वैद्यों के साथ एकत्र होकर मन्त्रणा या सलाह करके उचित काल में (रक्तगुल्म की) चिकित्सा करें सा कि मैं आगे वर्णन करूँगा (आगे वर्णित चिकित्सा का दसवें मास में प्रयोग करें), क्योंकि गर्भ एवं रक्तगुल्म में बहुत कम भेद होता है अतः भलीभाँति निश्चित कर चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि जो गर्भ में गुल्म की एवं गुल्म में गर्भ चिकित्सा करता है वह अयश तथा पाप का भागी होता है।

Scanned with CamScanner

As there is very little difference between pregnancy and *raktagulma*, thus the physician should attempt the treatment at the appropriate time only after consulting other erudite and learned physicians, because by prescribing treatment of *raktagulma* in pregnancy and of pregnancy in *raktagulma* he would be committing a sin and get defamed.

रक्तगुल्म एवं गर्भ में पार्थक्य प्रदर्शित करने वाले लक्षण (The features differentiating raktagulma from pregnancy)

सभी आचार्यों द्वारा वर्णित गुल्म एवं गर्भ के विभेद-कारक लक्षणों का अन्तर्भाव सामान्य लक्षणों के वर्णन के अन्तर्गत कर दिया गया है[1]। महर्षि काश्यप ने गुल्म एवं गर्भ के भेदकारक लक्षणों का विस्तृत वर्णन किया है जो निम्न है।

विशेषं रक्तगुल्मस्य गर्भस्य च निबोध मे। अङ्गप्रत्यङ्गवान् गर्भस्तैरेव च विचेष्टते ॥ ५६॥
रक्तगुल्मस्तु वृत्तः स्याच्लोष्टवच्च विचेष्टते। स्थानात् स्थानं व्रजन् गर्भो व्याविद्धं परिवर्तते ॥ ५७॥
नाभेरधस्तादगुल्मोऽयमव्याविद्धं विवर्तते । आनुपूर्व्येण गर्भश्च अहन्यहनि वर्धते ॥ ५८॥
विपरीतं हि गुल्मस्तु मन्दं मन्दं विवर्धते ।तां तामवस्थां गर्भस्तु मासि मासि प्रपद्यते ॥ ५९॥
गर्भिणी नानिमित्तं च ज्वर्यते दह्यतेऽपिवा। गुल्मिनी ह्यनिमित्तं तु ज्वर्यते दह्यतेऽपि वा ॥ ६०॥
अस्मिन् विशेषेऽपि सति संदेहो जायते महान्। नानागर्भविकाराणां सङ्कराद्भिषजे मतः ॥ ६१॥

(का० सं० खि० ९)

अब तु मुझसे गर्भ एवं रक्तगुल्म का भेद सुन। अङ्गों प्रत्यङ्गों से युक्त गर्भ उन्हीं (अङ्गों प्रत्यङ्गों) से चेष्टा करता है जब कि रक्तगुल्म गोलाकार लोष्ट या पत्थर सदृश चेष्टा करता है या स्पन्दन करता है। गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान में बन्धन रहित होकर गति करता है, रक्तगुल्म नाभि के नीचे बन्धन युक्त सदृश किंचित लुढ़कता रहता है। गर्भ प्रतिदिन क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है इसके विपरीत गुल्म धीरे धीरे बढ़ता है। गर्भ प्रत्येक मास में उस उस अवस्था को (प्रथम में कलल, द्वितीय में घन, तृतीय में अङ्गोत्पत्ति) प्राप्त होता है (जो गुल्म में नहीं होता)। गर्भिणी बिना किसी कारण के (ज्वरादि के निदान के) ज्वर या दाह से पीड़ित नहीं होती परन्तु रक्तगुल्म पीड़ित स्त्री बिना किसी कारण के ही ज्वर एवं दाह से पीड़ित होती है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के होते हुए भी गर्भ सम्बन्धी नाना विकारों के मिल जाने से निदान में महान संशय हो जाता है।

लक्षणान्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर रक्तगुल्म एवं गर्भ के विभेदक लक्षण तालिका ९ में दिए जा रहे हैं।

तालिका ९

रक्तगुल्म	गर्भ
१. केवल पिण्डरूप में, लोष्ट सदृश एवं नाभि के नीचे बंधन-युक्त सदृश किञ्चित् स्पन्दन करता है, या कभी स्पन्दन नहीं भी करता।	अङ्गों प्रत्यङ्गों से, स्वतंत्र रूप से एवं अपेक्षाकृत तीव्र स्पन्दन करता है।
२. चिरकाल में शूल के साथ स्पन्दन करता है।	अपने सामान्य काल में, बिना शूल के ही स्पन्दन करता है।
३. गुल्म की ही वृद्धि होती है। कुक्षि की नहीं।	गर्भ के साथ साथ कुक्षि की भी वृद्धि होती है।
४. उदर में ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं एवं स्तनान्तर तथा नाभि-प्रदेश में नीले धब्बे दिखाई देते हैं।	ऐसा कुछ नहीं होता।

क्रमशः .....

१. चि० सं० नि० ३/१४ व चक्रपाणि टीका व चि० ५/१९; सु० सं० उ० ४२/१४, १५ व डल्हण टीका; अ० सं० नि० ११/४५; अ० ह० नि० ११/५४ व ५५; भा० प्र० चि० ३२/१८; मा० नि० २८/१६; यो० र० गु० चि० (पृष्ठ ३९३ से ३९६)

५. गुल्म धीरे धीरे बढ़ता है एवं वृद्धि का निश्चित क्रम नहीं होता।	गर्भ प्रतिदिन क्रमशः बढ़कर मासानुमासिक वृद्धि को प्राप्त होता है।
६. गुल्म में बिना किसी कारण के ही स्त्री को कास, अतिसार, निद्रा, ज्वर एवं दाहादि अनेकों लक्षण होते हैं अर्थात् ये रक्तगुल्म के लक्षण हैं।	गर्भिणी को विशिष्ट कारण होने पर ही कास, अतिसार, ज्वर या दाहादि होते हैं अर्थात् ये गर्भ के लक्षण नहीं हैं।
७. गर्भाशय में शूल तथा योनि से दुर्गन्धित स्राव होते हैं।	इस प्रकार के कोई लक्षण नहीं होते।
८. गुल्म का भेदन होने पर केवल रक्त का स्राव होता है, गर्भ या गर्भाङ्ग दृष्टिगोचर नहीं होते।	गर्भपात या प्रसव होने पर रक्त के साथ गर्भ भी बाहर निकलता है।

The points differentiating *raktagulma* from pregnancy have been given with clinical features by the authors, however Kaśyapa has described these separately ie. fetus quivers with body-parts in free manner, while *raktagulma* quivers like a solid mass in restricted manner; fetus develops in specific month wise order while *raktagulma* develops slowly, the pregnant woman does not suffer from fever etc. without specific cause, while fever etc. are the features of *raktagulma*.

Raktagulma considerably simulates pregnancy. Following are differentiating points.

Raktagulma	Pregnancy
1. *Gulma* quivers just like a solid mass or muller, below the umbilicus in restricted way; sometimes it does not quiver.	Quickening in pregnancy is in free manner, relatively more and fetus quivers with different body parts.
2. Quivering is delayed and is associated with pain.	Quivering starts earlier, and is without pain.
3. Only *gulma* increases in size not the *kukṣi* (uterus).	Corresponding to the development of fetus *kukṣi* also develops.
4. Glands appear over the abdomen and blue spots inbetween breasts and around umbilicus.	No such sign in pregnancy.
5. Growth of *gulma* is very slow and does not follow a definite sequence.	Fetus grows comparatively earlier and follows a definite pattern of development according to gestational months.
6. Cough, diarrhoea, sleepiness, fever and burning sensation etc. are the clinical features of *gulma* itself,	Cough, diarrhoea, fever and burning sensation etc. appear during pregnancy due to their specific etiology. These are not the clinical features of pregnancy.
7. *Gulma* is associated with pain in uterus and foul smelling vaginal discharges.	Such features are not found in pregnancy.
8. During expulsion along with blood only *gulma* is expelled, fetal parts are absent.	During expulsion (abortion or delivery) fetus is delivered along with blood.

Scanned with CamScanner

रक्तगुल्म के उपद्रव (Complications of raktagulma)

ज्वारुचिश्वासकासशोषकार्श्यारतिव्यथाः। शोफश्चोपद्रवा गुल्मे तांश्चिकित्सेत् स्वभेषजैः ॥ ७४॥
(का० सं० खि० ९)

ज्वर, अरुचि, श्वास, कास, शोष, कार्श्य, अरति (ग्लानि), व्यथा (शूल या कष्ट) तथा शोफ आदि गुल्म के उपद्रव होते हैं जिनकी चिकित्सकों को उन उपद्रवों के लिए प्रयुक्त औषधियों से चिकित्सा करनी चाहिए।

अन्य आचार्यों ने रक्तगुल्म के किन्हीं विशिष्ट उपद्रवों का (भेदन के समय अत्यधिक रक्तस्राव को छोड़कर) वर्णन नहीं किया।

Fever, anorexia, dyspnoea, cough, consumption, emaciation, uneasiness, pain and edema are the complications which should be treated by the physician. Besides excessive bleeding may occur during the process of its expulsion.

रक्तगुल्म की असाध्यता के लक्षण (Clinical features denoting bad prognosis)

यद्यपि आचार्यों ने विशेष रूप से रक्तगुल्म के किन्हीं असाध्यता के लक्षणों का वर्णन नहीं किया परन्तु सभी प्रकार के गुल्मों के लिए वर्णित असाध्यता के लक्षणों को असाध्य रक्तगुल्म के भी लक्षण समझने चाहिए।

महर्षि चरक ने लिखा है कि क्रमशः संचित हुआ गुल्म जो अत्यधिक स्थान में व्याप्त हो गया हो, जिसकी मूल दृढ़ हो गई हो, शिराओं से आनद्ध (सिराजाल-व्याप्त) एवं कछुए के समान उन्नत हो तथा दौर्बल्य, अरुचि, हृल्लास, कास, वमन, अरति, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा तथा प्रतिश्याय से युक्त हो वह गुल्म असाध्य होता है। जिस ज्वर, श्वास, वमन तथा अतिसार युक्त गुल्म रोगी के हृदय, नाभि, हस्त एवं पाद में शोफ हो जाय, उसको वह शोफ मार डालता है अर्थात् इन लक्षणों से आक्रान्त होने पर वह रोगी मर जाता है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि श्वास, शूल, पिपासा, अन्नद्वेष, ग्रन्थिमूढ़ता (गुल्म का न दिखाई देना) तथा दुर्बलता आदि जिस गुल्म के रोगी को हो जाँय वह निश्चित मृत्यु को प्राप्त होता है[2]।

वाग्भट-द्वय ने भी गुल्म की असाध्यता के लक्षणों में लिखा है कि विस्तृत परिधि वाला, घना (ठोस), कूर्म के समान उभार वाला अर्थात् मध्य में अधिक उन्नत तथा किनारे की ओर क्रमशः कम उन्नत, सिराओं से अच्छादित तथा ज्वर, छर्दि, हिध्मा, आध्मान, रुजा (स्थानिक एवं सार्वदैहिक), कास, पीनस, हृल्लास, श्वास, अतिसार तथा शोफ से युक्त गुल्म असाध्य होता है[3]।

आचार्य भावमिश्र, माधव तथा योगरत्नाकरकार ने महर्षि चरक एवं सुश्रुत दोनों के ही वर्णनों का उल्लेख किया है[4]।

१. सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः। कृतमूलः सिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः॥ १६९॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः। तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति॥ १७०॥
गृहीत्वा सज्वरश्वासं वम्यतीसारपीडितम्। हन्याभिहस्तपादेषु शोफः कर्पति गुल्मिनाम्॥ १७१॥ (च० सं० चि० ५)

२. श्वासशूलपिपासान्नविद्वेषग्रन्थिमूढताः। भवन्ति दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः॥ (सु० सं० सू० ३३/२१)

३. गुल्मः पृथुपरिणाहो घनः कूर्म इवोन्नतः। सिरानद्धो ज्वरच्छर्दिहिध्माऽऽध्मानरुजान्वितः॥
कासपीनसहृल्लासश्वासातीसार शोफवान्॥ (अ० सं० शा० ११/२०, २१ एवं अ० हृ० शा० ५/८८, ८९)

४. सञ्चितः ·····इवोन्नतः। दौर्बल्या···छर्द्यरतिज्वरैः।···सिध्यति। गृहीत्वा···छर्दितीसार···।···शोथः···। (चरक संहिता सदृश ही) श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता। जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै।
(भा० प्र० चि० ३२/१९ से २२; मा० नि० २८/१७ से २०-इवोन्नतः के स्थान पर इवोत्थितः; यो० र० गुल्म नि०, भा० प्र० सदृश परन्तु कृतमूलः के स्थान में कृतशूलः)

Though bad prognostic sign/symptoms specially for *raktagulma* have not been described, however, features of incurability mentioned for *gulma* in general can be considered for *raktagulma* also. These are—

Gradually accumulating *gulma* involving larger area, solid, having deep seated roots, covered with net of vessels, having protuberance like tortoise, and associated with weakness, anorexia, nausea, cough, vomiting, uneasiness, fever, thirst, drowsiness, hiccough, flatulence, pain, coryza, dyspnoea, diarrhoea and edema is incurable. The patient of *gulma* already having fever, dyspnoea, vomiting and diarrhoea if develops edema over cardiac and umbilical region and also on extremities, then the patient dies.

रक्तगुल्म-चिकित्सा (Treatment of raktagulma)

रक्तगुल्म का चिकित्सोपयोगी काल (Appropriate period for the treatment of raktagulma)

महर्षि चरक एवं काश्यप ने दश मास व्यतीत हो जाने पर तथा सुश्रुत एवं वाग्भट ने प्रसव-काल व्यतीत हो जाने पर ही चिकित्सा का विधान बताया है[1]।

टीकाकार चक्रपाणि ने दश मास के पश्चात् चिकित्सा को सुख चिकित्सा अर्थात् आसानी से की जाने वाली चिकित्सा बताया है एवं लिखा है कि इसके पूर्व चिकित्सा करने पर रक्त की अतिस्रुति एवं गर्भाशय को आघात आदि उपद्रव हो सकते है। यह कहा गया है कि दश मास के पश्चात् गर्भ के सदृश गुल्म का भी अवधारण अर्थात् स्वयमेव पात हो जाता है, अतः चिकित्सा नहीं करनी चाहिए, ऐसा नहीं है, क्योंकि कभी कभी गर्भ वर्ष-गण तक भी स्थिर रहता है एवं गुल्म का पात दश मास के पूर्व भी हो जाता है[2] (अर्थात् दश मास के पश्चात् चिकित्सा सुख-साध्यता की दृष्टि से ही वर्णित है)।

टीकाकार डल्हण ने प्रसवकाल के पश्चात् चिकित्सा करने का कारण पिण्डीभूत रक्तगुल्म की सुखसाध्यता मानते हुए उद्धरण दिया है कि ज्वर में तुल्य-दोषता, प्रमेह में तुल्य-दूष्यता एवं रक्तगुल्म में पुराणता सुखसाध्यता के लक्षण हैं, एवं स्पष्ट किया है कि 'दश मास के पश्चात् चिकित्सा' एवं 'प्रसव-काल के पश्चात् चिकित्सा' इस वर्णन में कोई मत-वैभिन्य नहीं है। यदि रक्तगुल्म भली भाँति उपचित (एक स्थान में एकत्रित) हो जाय तो प्रसव-काल के पूर्व भी चिकित्सा कर सकते हैं[3]।

१. (अ) ·····मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥ (च० सं० चि० ५/१९)
(आ) तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशन्ति तज्ज्ञाः॥ (सु० सं० उ० ४२/१५)
(इ) रक्तेगुल्मे पुनरतीतप्रसवकालाया···। (अ० सं० चि० १६/४७)
(ई) गत प्रसवकालायै नार्यै गुल्मेऽस्रसम्भवे॥ (अ० हृ० चि० १४/११९)
(उ) केचिदिच्छन्ति गुल्मस्य मासादादशमात् परम्॥५३॥ (का० सं० खि० ९)

२. मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य इति प्रभावाद्दशममासातिक्रमे एवास्य सुखा चिकित्सा भवति, अर्वाक् चिकित्सायां तु शोणितातिस्रुतिगर्भाशयोपघातादि स्यात्। यदुच्यते-गर्भसमानलिङ्गत्वेनास्य दशममासादूर्ध्वं रुधिरगुल्मावधारणं भवति, तेनार्वाक्चिकित्साऽत्र नोक्तेति; तत्र, दशममासातिक्रमेऽपि गर्भावस्थानदर्शनात्। उक्तं हि "पुष्टौ यदा वर्षगणैरपि स्यात्" ···। तथा सम्पिण्डितत्वं गर्भलक्षणाद्विरुढलक्षणमुक्तं; तेन दशममासादर्वागपि शोणितगुल्मावधारणं भवत्येव; ···। (च० सं० चि० ५/१९ की चक्र० टीका)

३. गर्भकालातिगमे प्रसूतिकालेऽतिक्रान्ते, प्रसूतिकालादनन्तरं पिण्डीभूते रक्तगुल्मे स्नेहादिनोपस्कृतदेहायाः सुखसाध्यत्वम्। उक्तं च "ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता। रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्" इति। केचिदेवं व्याख्यानयन्ति-'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः' इति वक्तव्ये 'तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यम्' इति। यत् कृतं तद्रक्तगुल्मे सम्यगुपचिते प्रसूतिकालादर्वागपि चिकित्सा करणीयेति बोधयति॥ (सु० सं० उ० ४२/१५ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

टीकाकार इन्दु ने दश मास या प्रसवकाल के पश्चात् चिकित्सा-वर्णन केवल गर्भ की भ्रान्ति दूर करने के ही कारण माना है[1]।

महर्षि काश्यप ने स्पष्ट किया है कि कुछ लोग कहते हैं कि फल के सदृश ही अपने काल के परिणाम से दशम मास के पश्चात् गुल्म का भी परिपाक हो जाता है (अर्थात् जिस प्रकार अपना समय आने पर फल पक जाता है उसी भाँति रक्तगुल्म भी दशम मास में परिपक्व हो जाता है)। इस समय (परिपक्वता-काल में) व्याधि अत्यधिक दुरुपक्रम (कठिनता से चिकित्सा-योग्य) नहीं रहती, अतः विद्वान लोग इस समय चिकित्सा करने की इच्छा करते हैं। गर्भ के सदृश ही गुल्म भी अप्राप्त काल में याप्य होता है, पक्व हो जाने पर यह व्याधि आसानी से भेदित हो जाती है[2] (अर्थात् गर्भ को यदि पूर्ण-काल के पूर्व प्रसवित कराने का प्रयत्न किया जाय तो कठिनाई होगी पर प्रसव-काल प्राप्त हो जाने पर तनिक प्रयत्न से ही प्रसव प्रारम्भ हो जाता है, उसी प्रकार रक्तगुल्म भी परिपक्व हो जाने पर तनिक से प्रयत्न से ही भेदित हो जाता है)।

आचार्य भावमिश्र, माधव एवं योगरत्नाकरकार ने भी दशम मास के पश्चात् ही चिकित्सा का विधान बताया है[3] टीका में स्पष्टीकरण चक्रपाणि की ही भाँति दिया है कि दश मास के पश्चात् चिकित्सा गर्भ-शंका के कारण न होकर सुखसाध्यता की दृष्टि से वर्णित है, क्योंकि दश मास के पूर्व रक्तगुल्म की लीनता के कारण गर्भाशय-आघात आदि होने की सम्भावना अधिक होती है[4]।

Treatment of *raktagulma* should be done after tenth month of its onset or after the period of normal labour has elapsed. Cakrapāṇi has clarified that tenth month period has been said as it is easily curable after this period. If treatment is attempted before tenth month, excessive bleeding and injury to the uterus etc. complications are likely to occur. The idea that after tenth month *gulma* will also automatically get expelled just like fetus is not correct, because sometimes fetus stays in uterus for years together and *gulma* is expelled before tenth month. Ḍalhaṇa opines that presence of identical *doṣas* and *dūṣyas* in fever and *prameha* respectively and chronicity in *raktagulma* are the features for easy curability, however, if proper localization of *raktagulma* occurs it can be treated even before tenth month. Indu says that tenth month period is advised for differentiating it from the fetus.

Kāśyapa has written that as the fruit gets ripened in its appropriate time, similarly *gulma* attains maturity in ten months and then it is easily curable and gets expelled easily, however before this period the treatment is a bit difficult.

१. ·····। तदा हि निर्भ्रान्तित्वं गुल्मे भवति॥ (अ० सं० चि० १६/४७ की इन्दु टीका)

२. केचिदिच्छन्ति गुल्मस्य मासादादशमात् परम्। परिपाकं फलस्येव स्वकालपरिणामतः॥५३॥
तस्मिश्च काले स व्याधिः स्याच्चातिदुरुपक्रमः। तत्रोपक्रममिच्छन्ति तस्य कर्तुमतो बुधाः॥५४॥
अप्राप्तकालो याप्यः स्याद्गर्भवद्युक्तिकोविदैः। नापक्वो भिद्यते व्याधिरिति मत्वा यथाभवम्॥५५॥ (का० सं० खि० ९)

३. मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः। ··· (भा० प्र० चि० ३२/१८; मा० नि० २८/१६ एवं यो० र० गु०)

४. (अ) इति न संशय व्यवच्छेदार्थं किन्तु तदा सुखेन चिकित्साऽर्थं ···। (भा० प्र० चि० ३२/१८, की टी०)
(आ) व्यतीतेऽतिक्रान्ते। गर्भसमानलिङ्गत्वेन संशयः गर्भो वा, रक्तगुल्मो वा इति ···। तत्र ···। तस्मात्रेदं दशममासव्यतिक्रमे चिकित्साविधानस्य प्रयोजनं, किंतु व्याधिमहिम्ना तावतैव कालेन तस्य चिकित्सया सुखोच्छेदनमिति·····। यद्यर्वाग्रक्तभेदनं क्रियते तथा गर्भशय्या क्षिणोति, ताक्ष्णीत्वाद्रक्तस्य; ·····।
(मा० नि० २८/१६ की मधु०,व्याख्या)

Identical views have been expressed in the books i. e. Bhāvaprakāśa, Mādhavanidāna and Yogaratnākara.

गर्भ से भ्रम होने पर रक्तगुल्म की चिकित्सा (Principle of treatment in doubtful case)

अतस्तु संशये जाते कुर्यात् साधारणीः क्रियाः। नोपक्रमेदविदितं रोगं कञ्चिच्चिकित्सकः॥६५॥
(का० सं० खि० ९)

(गर्भ है या रक्तगुल्म इस) संशय के उत्पन्न होने पर साधारण क्रिया करनी चाहिये (गर्भ एवं रक्तगुल्म दोनों में ही लाभदायक, पर भेदन चिकित्सा नहीं) क्योंकि बिना रोग का ज्ञान किये चिकित्सक को कभी भी उपाय (चिकित्सा) नहीं करना चाहिए।

If the physician is unable to differentiate between pregnancy and *raktagulma* he should prescribe general treatment beneficial in both the conditions (general tonics etc. not abortifacient). Specific treatment should not be attempted without correct diagnosis.

प्रसव-काल या उसके पूर्व रक्तस्राव होने पर चिकित्सा (Treatment of bleeding before or during the time of labour)

अथ काले त्वसंपूर्णे संदिग्धे चापि दर्शने। हेतुना केनचिद्रक्तं स्रवेत्तं चाशु वारयेत्॥६६॥
पूर्णे प्रसवकाले तु न रक्तं प्रतिवारयेत्। तत्रानुवासनं दद्याद् द्रवं स्निग्धं च भोजनम्॥६७॥
विधिनाऽनेन गर्भश्चेत् सुखेन प्रसविष्यति। अथवा रक्तगुल्मः स्यात् सोऽप्यकृत्तेन भेत्स्यते॥६८॥
एतस्मात् कारणाद्रक्तं प्रवृत्तं न निवार्यते॥ (का० सं० खि० ९)

अपूर्ण-काल (प्रसव-काल के पूर्व) में यदि किसी कारण से रक्तस्राव होने लगे एवं संदिग्धता (गर्भ एवं रक्तगुल्म की स्थिति में) हो तो उस (रक्तस्राव) को शीघ्र ही दूर करना चाहिए (अर्थात् रक्त स्तम्भन कर देना चाहिए) एवं प्रसव-काल पूर्ण हो जाने पर (यदि रक्तस्राव हो तो) रक्तस्राव का निवारण (स्तम्भन) नहीं करना चाहिए, उस काल में अनुवासनबस्ति तथा द्रव एवं स्निग्ध भोजन देना चाहिए। इस विधि से यदि गर्भ है तो वह सुखपूर्वक प्रसवित हो जायगा एवं यदि रक्तगुल्म है तो उसका भी पूर्ण रूप से भेदन हो जायगा, इसी कारण से प्रवृत्त हुए रक्त को नहीं रोकना चाहिए।

If bleeding (per vaginum) occurs before the time of labour i. e. tenth month, and diagnosis of pregnancy or *raktagulma* is doubtful, then measures to control bleeding should be employed. However, if bleeding occurs after attainment of normal labour period, it should not be controlled and *anuvāsanabasti* (nutritive enema) along with liquid and unctuous diet should be prescribed. By this procedure the woman if pregnant will deliver easily, if having *raktagulma* it will also be expelled completely, so bleeding at this stage should not be controlled.

यथाकाल में चिकित्सा-सिद्धान्त (Treatment in its appropriate period)

(अ) सामान्य गुल्म की चिकित्सा के सिद्धान्त (Principles of treatment of gulma in general)

आचार्यों ने लिखा है कि वायु की विकृति के बिना कोई भी गुल्म नहीं होता,[1] अतः सर्वप्रथम वायु की ही शान्ति

१. (अ) सर्वेष्वपि खल्वेतेषु गुल्मेषु न कञ्चिद्वातादृते सम्भवति गुल्मः। (च० सं० नि० ३/१६)
(आ) गुल्मो हि वातादृते न सम्भवति। (अ० सं० चि० १६/२)

Scanned with CamScanner

के उपाय विधिवत् करने चाहिए। वायु के शान्त हो जाने पर दूसरे बढ़े हुए दोष अल्प प्रयत्न से भी शान्त हो जाते हैं[१]।

सामान्य रूप से गुल्म के लिए निम्नलिखित चिकित्सा-विधि का प्रयोग करना चाहिए।

(१) एक दोषज गुल्म में दोषानुसार चिकित्सा एवं जो अविरुद्ध चिकित्सा समझे उसे उपद्रवों की गुरुता तथा लघुता का विचार कर प्रयुक्त करे। गुरु उपद्रवों को चिकित्सा शीघ्र ही करे तथा लघु की चिकित्सा बाद में करें, चिकित्सा शीघ्रता से करते हुए यदि गुल्म के विशिष्ट भेदों का ज्ञान (वातपित्तादि भेदों का) न हो सके तो उसमें वायुनाशक चिकित्सा करनी चाहिए[२]।

(२) वायु शमन के लिए सर्वप्रथम स्नेहन एवं स्वेदन करना चाहिए[२,३]। स्वेदन कुम्भी, पिण्ड या इष्टिका (ईंट या पत्थर से) के द्वारा करना चाहिए (कुम्भी में वातनाशक द्रव्यों का क्वाथ भर कर, पिण्ड स्वेद के लिए वात-नाशक द्रव्यों का पिण्ड बनाकर तथा प्रस्तर स्वेद के पश्चात् वातनाशक द्रव्यों के क्वाथ से अवसिंचन) एवं शाल्वण (वेशवार) आदि का सुखोष्ण उपनाह, स्वेदन एवं अनुलोमन कुशल वैद्य को करना चाहिए[४]।

(३) स्नेह (स्निग्ध पदार्थ यथा घृतादि) से युक्त मृदु विरेचन दें[२,३]।

(४) स्नेह से युक्त बस्ति दें[२,३]।

(५) स्नेह से युक्त अम्ल, लवण एवं मधुर रसों का प्रयोग युक्तिपूर्वक करें[२,३]।

(६) लंघन, दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वातानुलोमक तथा बृंहण अन्न के सेवन से सभी गुल्मों में लाभ होता है[४]।

(७) जांगल जीवों का सुखोष्ण मांसरस स्नेह एवं सैन्धव मिलाकर त्रिकटु से युक्त कर पीने को देना चाहिए[४]।

(८) गुल्म-स्थान या बाहु की मध्य की शिरा से रक्तमोक्षण करना चाहिए[४]।

(९) इसमें निरूह बस्ति देनी चाहिए क्योंकि यह निरूह के योग्य व्याधि है[५]।

Any type of *gulma* can not develop without vitiation of *vāta*, hence initially measures to suppress *vāta* should be adopted. Once *vāta* is controlled other *doṣas* subside easily.

Following is the general method of treatment for any type of *gulma*.

i) In the *gulma* developing due to vitiation of one *doṣa*, the treatment to suppress that particular *doṣa* should be given, besides other beneficial treatment considering

१. (अ) मारुते ह्युपशान्ते स्वल्पेनापि प्रयत्नेन शक्योऽन्योऽपि दोषो नियन्तुं गुल्मेष्विति ॥
गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या। मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ (च० सं० नि० ३/१६, १७)

(आ) मारुते हि विजितेऽल्पेनापि यत्नेन शक्योऽन्योऽपि दोषो गुल्मेषु नियन्तुम्। (अ० सं० चि० १६/२)

(इ) गुल्मिनामनिल·····। मारुते तु विजिते ·····निहन्यात्। (यो० र० गुल्म० चि०, चरक सदृश)

२. एकदोषजे तु यथास्वमारम्भं प्रणयेत् ·····। यच्चान्यदप्यविरुद्धं मन्यते तदप्यवचारयेद्विभज्य गुरुलाघवमुपद्रवाणां, गुरूनुपद्र-वांस्त्वरमाणश्चिकित्सेल्लघून्यमितरान्। त्वरमाणस्तु विशेषमनुपलभमानो गुल्मेष्वात्यधिके कर्मणि वातचिकित्सितं प्रणयेत्, स्नेहस्वेदौ वातहरौ स्नेहोपसंहितं च मृदुविरेचनं वस्तींश्च, अम्ललवणमधुरांश्च रसान् युक्त्याऽवचारयेत् ॥ (च० सं० नि० ३/१६)

३. तस्मात्तेषु सर्वेष्वपि प्रथमं स्नेहस्वेदौ वातहरौ। स्नेहोपसंहितं मृदुविरेचनं तद्विधांश्च बहुशो वस्तीनम्ललवणमधुरांश्च रसान् युक्त्यावचारयेत् ॥ (अ० सं० चि० १६/२)

४. लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्। बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥
सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः। कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पानेषु गुल्मिनाम् ॥
कुम्भिपिण्डेष्टिकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक्। उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥
गुल्मस्थाने रक्तमोक्षो बाहुमध्ये शिराव्यधः। स्वेदानुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्व गुल्मिनाम् ॥ (यो० र० गुल्म चि०)

५. का० सं० सि० ७/१४।

severity and mildness of complications should be done. Serious complications should be treated first and mild complications afterwards. If differential diagnosis regarding specific types i. e. *vātaja, pittaja* etc. is not possible then treatment to suppress the *vāta* should be given.

ii) To suppress *vāta*, oleation, sudation and carminatives should be used. Sudation should be done with *kumbhī* (filling the ewer with decoction made of drugs capable of suppressing *vāta), piṇḍa* (a solid made of *vāta* suppressing drugs), *iṣṭikā* or *prastara* (heated brick or stone followed by irrigation with decoction of *vāta* suppressing drugs). Poultice of luke warm *śālvaṇa (veśawāra*-a paste made of meat or cooked oleo with other drugs) should also be applied.

iii) Mild laxatives mixed with fat *(ghṛta)* should be given.

iv) Enema with fat (oil) should be given.

v) Sour, salty and sweet substances mixed with fat should be given.

vi) Fasting, use of *dīpana* (appetizing), *snigdha* (unctuous), *uṣṇa* (hot) and *vātānulomaka* (carminative) things and also *vṛṃhaṇa* diet is beneficial.

vii) Luke warm meat-soup of wild animals mixed with fat, salt and *trikaṭu* should be given.

viii) Venesection of the vein either situated near the *gulma* or in the middle of arm (cubital vein) should be done.

x) *Nirūha basti* (evacuative enema) should be prescribed.

(आ) रक्तगुल्म के विशिष्ट चिकित्सा सिद्धान्त (Principles of treatment specific for raktagulma)

(१) रक्तगुल्म में प्रसवकाल व्यतीत हो जाने के बाद स्नेहन एवं स्वेदन करा कर स्निग्ध विरेचन देना चाहिए[१,३,४,६,७]।

(२) रक्तगुल्म में पित्तगुल्म[२,७] सदृश (काकोल्यादि घृत से स्नेहन देकर विरेचन एवं मधुर द्रव्यों से निर्मित निरूह वस्ति[३]) चिकित्सा एवं रक्त का भेदन करना चाहिए[२]।

(३) स्नेहन देकर पाक के निवारणार्थ बाहु की शिरा का बेधन तथा शेष दोष-निर्हरणार्थ संशमन चिकित्सा करनी चाहिए[५]।

(४) यह व्यधन[८] एवं विरेचन[९] योग्य व्याधि है अर्थात् इसमें वेधन एवं विरेचन का प्रयोग करना चाहिए।

१. रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे। स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात् स्नेहविरेचनम् ॥ (च० सं० चि० ५/१७२)

२. पित्तगुल्मार्दितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन तु। विरिक्तं मधुरैर्योगैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥
पित्तवद्रक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्यः क्रियाविधिः। विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम् ॥ (सु० सं० उ० ४२/१९, २०)

३. रक्तगुल्मे पुनरतीतप्रसवकालाया योषितः स्नेहस्वेदपूर्वकं स्नेहविरेचनं वितरेत् ॥ (अ० सं० चि० १६/४७)

४. गतप्रसवकालायै नार्ये गुल्मेऽस्रसम्भवे। स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ (अ० हृ० चि० १४/११९)

५. रक्तगुल्मे प्रथमतो युक्त्या स्नेहोपपादनम् ॥ ६९॥
शस्तं बाहुसिरायाश्च वेधनं पाकवारणम्। तथा संशमनीयं च दोषशेषावकर्षणम् ॥७०॥ (का० सं० खि० ९)

६. स्निग्धस्विन्न शरीरस्य योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ (भा० प्र० चि० ३२/४६)

७. पित्तवद्रुक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्यो यथाविधि। प्रस्निग्धस्विन्नकोष्ठाया योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ (यो० र० गु० चि०)

८. दकोदराणि संपक्वा गुल्मा ये ये च रक्तजाः। व्यध्याः——। (च० सं० चि० २५/५७)

९. भे० सं० सि० १

Scanned with CamScanner

i) After the time of labour has elapsed, oleation, sudation followed by unctuous laxatives should be prescribed.

ii) It should be treated just like *pittajagulma* (oleation with *kākolyādi ghṛta* followed by laxation and *nirūha basti* made with *madhura* drugs) and measures to expell the *rakta* (abortifacients) should be adopted.

iii) To avoid suppuration, oleation followed by venesection of cubital vein should be done. To remove left over *doṣas saṃśamana* (suppressive) treatment should be given.

iv) The disease is fit for purgation and puncturing or perforation or else purgatives should be used and it should be punctured.

(इ) रक्तगुल्म चिकित्सार्थ आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियाँ (Oral medicines for raktagulma)

(१) पलाशक्षार एक पात्र (दो आढक क्षारोदक) में दो दो पात्र (चार चार आढक) तैल (तिल का) एवं[१,३,४] घृत (गोघृत) या केवल घृत पकाकर[२,७,८] (जब स्नेह शेष रह जाय तब) मात्रानुसार (रुग्णा के बलाबलानुसार) देना गुल्म को शिथिल करता है।

(२) रक्तपित्त नाशक क्षार (नीलोत्पलक्षार-चक्रपाणि) को मधु एवं घृत के साथ चटाना चाहिए[१,४]।

(३) रक्तगुल्म पीड़ित स्त्री को लशुन, तीक्ष्ण मदिरा और मत्स्य का प्रयोग कराना चाहिए[१,४]।

(४) गुल्म के भेदन के लिए तीक्ष्ण एवं उष्ण औषधियों का प्रयोग कराना चाहिए[२,३,८]।

(५) स्त्रियों के रक्तगुल्म में अनार्तव हो जाने पर तिल के क्वाथ में घृत, गुड़, व्योष तथा भार्ङ्गी का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए[३,७,८]।

(६) भार्ङ्गी, कृष्णा, करंज-त्वक्, ग्रन्थिका तथा अमरदारु का चूर्ण तिल के क्वाथ में मिलाकर पीने से गुल्म की वेदना शान्त होती है[४,८]।

(७) चिकित्सा-कर्म-विशेषज्ञ को वेदना से युक्त रक्तगुल्म पीड़ित स्त्री को कल्याणक, पंचगव्य, षट्पल एवं तिक्तक घृत का प्रयोग दोषानुसार कराना चाहिए[५]।

(८) रक्तगुल्म को शिथिल करने के लिए बिल्व एवं श्योनाक से साधित जांगल पशु-पक्षियों का मांसरस देना चाहिए[५]।

---

१. पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः। गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥ १७३॥
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा। लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रदापयेत॥ १७७॥
(क्षारपात्रे इति क्षारोदकस्याढकद्वयम्-चक्रपाणि) (च० सं० चि० ५ एवं चक्र० टीका)

२. पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत्।·····उष्णैर्वा भेदयेत् ·····॥ (सु० सं० उ० ४२/२०,२१)

३. पलाशक्षारोदकसिद्धं च यमकम्। गुल्मभेदनाय तीक्ष्णोष्णं च विधिम्। (यमकम् घृततैलं-इन्दु)
(अ० सं० चि० १६/४७ एवं इन्दु टीका)

४. तिलक्वाथो घृतगुडव्योषभार्ङ्गीरजोन्वितः। पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः॥ १२०॥
भार्ङ्गीकृष्णाकरञ्जत्वग्ग्रन्थिकाऽमरदारुजम्। चूर्णं तिलानां क्वाथेन पीतं गुल्मरुजापहम्॥ १२१॥
पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः। गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥ १२२॥
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा॥ १२५॥
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रयोजयेत्॥ १२६॥ (अ० ह० चि० १४)

क्रमशः ....

(९) गुल्म में गति उत्पन्न करने के लिए एवं विरेचनार्थ कुलत्थ के यूष अथवा लावा (के मांसरस) से संस्कृत त्रिवृत अथवा त्रिफला पीने को देना चाहिए[५]।

(१०) उपक्रम के पश्चात् (गुल्म के शिथिलीकरण के पश्चात्) गुल्म के शोधन एवं पातन कराने के लिए हरीतकी, वचा, हिंगु, सैंधव, अम्लवेतस, यवानी तथा यवशूक (यवक्षार) के चूर्ण को उष्ण जल के साथ पीने को दें[५]।

(११) हरीतकी, यवक्षार तथा सौवर्चल (लवण) इन तीनों का घृत के साथ युक्तिपूर्वक पान रक्तगुल्म का भेदन करता है[५]।

(१२) पत्र, एला, पिप्पली एवं शुण्ठी के चूर्ण को विड्लवण मिलाकर अथवा केवल नागर एवं शुक्ति के चूर्ण को गोमूत्र के साथ मिलाकर पीने को देना चाहिए[५]।

(१३) सूक्ष्मैला, कुंचिका, चव्य, पिप्पली तथा चित्रक के कल्क को बल्वज के यूष अथवा मण्डोदक के साथ पीने को देना चाहिए[५]।

(१४) अपरा-पातन के लिए प्रयुक्त औषधियों का प्रयोग करना चाहिए[५]।

(१५) पद्म आदि (उत्पल एवं अन्य पद्म जाति के द्रव्य यथा उत्पलादिगण के द्रव्य) को मूल सहित लेकर जलाकर उसकी भस्म बनाकर तथा उसके क्वाथ को गाढ़ा करके, उसको शुण्ठी, पिप्पली, कुष्ठ, चव्य, चित्रक एवं दारु के चूर्ण के साथ पकाए। जब वह दार्वी (कलछी) में प्रलेपित होने लायक गाढ़ा हो जाय तो उसका प्रयोग करने से शोधन (गुल्म का) होता है[५]।

(१६) शिलाजीत तथा अभयारिष्ट कल्प के सेवन से भी रक्तगुल्म में लाभ होता है[५]।

(१७) लोध्र, अर्जुन, खदिर, मागधिका तथा समंगा के क्वाथ में अम्लवेतस तथा मधु एवं शर्करा मिलाकर पीने से रक्तगुल्म, हृत्क्लेद तथा रक्त के दोषों का शीघ्र ही नाश होता है[६]।

(१८) रक्तगुल्म तथा यकृत एवं क्षतज (विकारों या गुल्म) के विनाश के लिए घृत तथा सौवर्चल (लवण) युक्त क्षीर पीने को देना चाहिए[६]।

(१९) शताह्वा, चिरबिल्व-त्वक्, दारु, भार्गी तथा कणा के कल्क को तिल-क्वाथ के साथ रक्तगुल्म को नाश करने के लिए पीने को देना चाहिए[७,८]।

(२०) धात्री के स्वरस का मरिच (के चूर्ण) के साथ पान करना रक्तगुल्म विनाशक है[७]।

क्रमशः .....

५. कल्याणकं पञ्चगव्यं षट्पलं तिक्तमेव वा। सरुजां पाययेन्नारीं दोषवित् कर्मकोविदः॥ ७१॥
बिल्वश्योनाकनिर्यूहे साधितैर्जाङ्गलै रसैः। शैथिल्यकरणार्थं च रक्तगुल्मस्य भोजयेत्॥ ७५॥
यूषेण वा कुलत्थानां लावसंस्कारिकेण वा। चालनार्थं विरेकं च त्रिवृत्तिफलया पिबेत्॥ ७६॥
उपक्रमेतततश्चूर्णैरेतैः शोधनपातनैः। हरीतकी वचा हिङ्गु सैन्धवं साम्लवेतसम्॥ ८०॥
यवानी यावशूकं च चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत्। हरीतकीयवक्षारसौवर्चलमितिं त्रयम्॥ ८१॥
घृतयुक्तं पिबेद्युक्त्या रक्तगुल्मस्य भेदनम्। पत्रैलापिप्पलीशुण्ठीचूर्णं वा विडसंयुतम्॥ ८२॥
नागरं शुक्तिचूर्णं वा पिबेद्गोमूत्रसंप्लुतम्। सूक्ष्मैलाकुञ्चिकाचव्यपिप्पलीचित्रकस्य वा॥ ८३॥
कल्कं बल्वजयूषाद्यैः पिबेन्मण्डोदकेन वा। अपरापातनोद्दिष्टैरौषधैश्चापि भेदयेत्॥ ८४॥
पद्मादीनि समूलानि दग्ध्वा तद्भस्म संहरेत्। गाढयित्वा च तत्क्वाथं चूर्णैरेतैर्विपाचयेत्॥ ८७॥
शुण्ठीपिप्पलिकुद्दैश्च चव्यचित्रकदारुभिः। दार्विप्रलेपितं सिद्धमभ्यसेत्तेन शुद्धयति॥ ८८॥
शिलाजत्वभयारिष्टं कल्पेनाभ्यस्य मुच्यते॥ ८९॥ (का० सं० खि० ९)

६. रोध्रार्जुनखदिरमागधिकासमङ्गक्वाथोऽम्लवेतसमधुघृतसंप्रयुक्तः।
गुल्मं सरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु, हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च क्षुद्धरक्तम्॥ ७२॥
क्षीरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम्। रक्तगुल्मविनाशाय यकृद्विक्षतजेऽपि वा॥ ७३॥ (हा० सं० तृ० स्था० २६)

क्रमशः ....

Scanned with CamScanner

(२१) गुण्डा (गुन्द्रा[७]) अथवा मुण्डी[८] एवं रोचनिका के चूर्ण को शर्करा तथा मधु मिलाकर रक्तगुल्म पीड़ित स्त्री के दोषों को दूर करने (मल रेचन) के लिए देना चाहिए[७,८]।

(२२) क्षार (यवक्षार) को त्र्यूषण तथा घृत मिलाकर रक्तगुल्म पीड़ित स्त्री को पीने को देना चाहिए[७]।

(२३) तिल-मूल, शिग्रु, ब्रह्मदण्डी-मूल, मधुयष्टी तथा त्रिकटु के चूर्ण का सेवन रजोरोध तथा वातगुल्म में स्त्रियों को शीघ्र ही लाभ करता है[८]।

(२४) दन्ती (मूल), हिंगु, यवक्षार, अलाबु के बीज, कणा तथा गुड़ को लेकर (समान भाग लेकर) स्नुहीक्षीर के साथ (मर्दन करके) गुटिका बनाकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन रक्तगुल्म का नाशक एवं रुधिर-स्राव-कारक होता है[८]।

(२५) अर्क-पुष्प को तैल में पकाकर सेवन करने से रुधिर का स्राव होता है[८]।

i) *Palāśa-kṣārodaka* (the liquid from which the *kṣāra* is prepared) in the dose of one *pātra* (2 *āḍhaka*) mixed with two *pātra* (4 *āḍhaka*) each of *tila* oil and cow *ghṛta* or only *ghṛta* should be cooked with standard procedure. Use of this in appropriate dosage loosens *gulma*.

ii) The *kṣāra* beneficial for *raktapitta* such as *kṣāra* prepared from *nilotpala* mixed with honey and *ghṛta* should be given.

iii) Garlic, strong wine and fish should be prescribed to the woman suffering form *raktagulma*.

iv) Pungent and hot medicines should be prescribed for separating the *gulma*.

v) Decoction of *tila* mixed with *ghṛta*, jaggery, powders of *vyoṣa* and *bhārṅgī* should be prescribed for amenorrhoea developing in *raktagulma*.

vi) Use of decoction of *tila* mixed with powders of *bhārṅgī*, *kṛṣṇā*, stem-bark of *karañja*, *granthikā* and *amaradāru* relieves pain associated with *gulma*.

क्रमशः .....

७. शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः ॥ ४६॥
कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम्। तिलक्वाथो गुडव्योषघृतभार्गीयुतो भवेत् ॥ ४७॥
योनिरक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेषु योषिताम्। पीतो धात्रीरसोयुक्तो मरिचैश्चास्रगुल्मनुत् ॥ ४८॥
गुण्डारोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम्। विदधीताशु गुल्मिन्या मलसङ्घक्रमाय च ॥ ४९॥
विशेषमवरञ्जाशु नृणु रक्तप्रभेदनम्। पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ५०॥
सक्षारं त्र्यूषणं सर्पिः प्रपिबेदस्रगुल्मनी ॥ ५१॥ (भा० प्र० चि० ३२)

८. शताह्वा·····तिलक्वाथेन रक्तजम् (भा० प्र० सदृश) ॥
तिलक्वाथो गुडघृतव्योषभार्ङ्गीरजोन्वितः। पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः ॥
तिलमूलं च शिग्रुं च ब्रह्मदण्डीयमूलकम्। मधुयष्टीत्रिकटुकैर्युतं चूर्णमुपासयेत् ॥
पुष्परोधे वातगुल्मे स्त्रीणां सद्यः सुखावहम् ॥
भार्ङ्गीकृष्णाकरञ्जत्वग्ग्रन्थिकामरदारुजम्। चूर्णं तिलानां क्वाथेन रक्तगुल्मरुजावहम् ॥
दन्ती हिङ्गुयवक्षारालाबुबीजकणागुडाः।
स्नुहीक्षीरेण गुटिका सर्वेषां कर्षमात्रिका। भक्षिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्रावकारिणी ॥
पक्वं तैलेऽर्कजं पुष्पं रुधिरस्रावकारि च। पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्वधूः ॥
मुण्डीरोचनिका चूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम्। विदधीतास्रगुल्मिन्या मलसंरचनाय च ॥ उष्णैर्वा भेदयेत् ···॥ (यो० र० गु० चि०)

vii) To relieve the pain *kalyāṇaka*, *pañcagavya*, *ṣaṭpala* or *tiktaka ghṛta* should be prescribed on the basis of specific *doṣa*.

viii) Meat soup of wild animals or birds medicated with decoction of *bilva* and *śyonāka* should be given for loosening the *raktagulma*.

ix) To mobilize the *gulma* and for purgation *trivṛt* or *triphalā* mixed with soup of *kulattha* or meat of quail should be given.

x) Once the *gulma* is mobilized, then for cleansing and expelling it, powders of *harītakī*, *vacā*, *hiṅgu*, rock salt, *amlavetasa*, *yawānī* and *yawakṣāra* should be prescribed with hot water.

xi) Methodical use of *harītakī*, *yawakṣāra*, and *sauvarcala* salt with *ghṛta* expells the *gulma*.

xii) Either powdered *patra*, *elā*, *pippalī* and *śuṇṭhī* mixed with *vid* salt or powders of *nāgara* with *bhasma* of *śukti* should be prescribed with cow's urine.

xiii) Pestled small variety of *elā*, *kuñcikā*, *cavya*, *pippalī* and *citraka* either mixed with juice of *balvaja* or water prepared with scum of boiled rice should be given.

xiv) Medicines prescribed for expelling the placenta can be used.

xv) *Padma* etc. plants along with their roots should be burnt, and decoction of this ash should be prepared. When the decoction gets thickened, powders of *śuṇṭhī*, *pippalī*, *kuṣṭha*, *cavya*, *citraka* and *dāru* should be mixed in it and boiled till the substance is so thick that it gets adhered in the ladle. Use of this electuary expells the *gulma*.

xvi) Use of *śilājīta* and *abhayāriṣṭa* as a *kalpa* is also beneficial in *raktagulma*.

xvii) Decoction of *lodhra*, *arjuna*, *khadira*, *māgadhikā*, *samaṅgā* mixed with *amlavetasa*, honey and sugar cures immediately *raktagulma*, *hṛtkleda* (nausea) and *rakta-doṣas* (blood disorders).

xviii) Milk mixed with *ghṛta* and *sauvarcala* salt should be prescribed in *raktagulma*, *yakṛta* (liver) and *kṣataja* (traumatic) disorders.

xix) Pestled *śatāhwā*, stem bark of *cirabilva*, *dāru*, *bhārṅgī* and *kaṇā* mixed with decoction of *tila* should be prescribed.

xx) Use of juice of *dhātrī* mixed with powder of *marica* cures *raktagulma*.

xxi) To eradicate *doṣas* of the woman suffering from *raktagulma* powders of *gundrā* or *muṇḍī* and *rocanikā* mixed with honey and sugar should be prescribed.

xxii) *Yawakṣāra* mixed with powder of *tryūṣaṇa* and *ghṛta* should be prescribed.

xxiii) Use of powders of root of *tila*, stem bark of *śigru*, root of *brahmadaṇḍī*, *madhuyaṣṭī* and *trikaṭu* is beneficial to the woman suffering from amenorrhoea and *vātagulma*.

xxiv) Powdered root of *dantī*, *hiṅgu*, *yawakṣāra*, seeds of *alābu* and *pippalī* mixed with jaggery should be triturated with latex of *snuhī* and tablets should be made. Use of these tablets in the dose of one *karṣa* cures *rāktagulma* and initiates bleeding per vaginum.

Scanned with CamScanner

xxv) Use of flowers of *arka* fried with oil initiates bleeding.

(ई) रक्तगुल्म-चिकित्सार्थ योनि-विशोधक वर्ति या पिचु (Vaginal tampons or pessaries for the treatment of raktagulma)

यदि आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियों से गुल्म का भेदन न हो तो योनि-विशोधक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए[१,२,३]।

(१) क्षार (यवक्षार) अथवा सुधाक्षीर (सेहुण्ड के दुग्ध) के साथ पलल (मांस या तिल का कल्क) को योनि में धारण करने को देना चाहिए[१,२,३]।

(२) (यवक्षार तथा सेहुण्ड-दुग्ध) दोनों से भावित कटुक मत्स्य (शेफरी शुष्क मत्स्य) को योनि में धारण करना चाहिए[१,२,३]।

(३) वराह तथा मत्स्य के पित्त से भावित वस्त्र को योनि में धारण करने को दें[१,२,३]।

(४) अधोभागहर (विरेचक) तथा ऊर्ध्वभाग हर (वामक) द्रव्यों (के क्वाथ) से भावित वस्त्र[२] अथवा इन्हीं के क्वाथ एवं मधु मिश्रित[१] वस्त्र (वस्त्र को क्वाथ एवं मधु में भिगाकर तथा पिचु बनाकर) योनि में धारण करे।

(५) किण्व, गुड़ एवं क्षार (यवक्षार) को मिलाकर (वर्ति बनाकर) योनि-विशोधन के लिए देना चाहिए[१,२,३]।

If *gulma* does not get loosened and separated with oral medicines, then local medicines should be used. Following drugs, tampons or pessaries should be prescribed to be placed in vagina / cervix :—

i) *Palala* (pestled meat or *tila)* mixed with either *yawakṣāra* or latex of *snuhī*.

ii) *Kaṭuka matsya* (special kind of fish) treated (dipped repeatedly and dried) with *yawakṣāra* and latex of *snuhī*.

iii) Cloth soaked with bile of hog and/or fish.

iv) Cloth soaked with decoction of purgative and emetic drugs with or without honey.

v) A pessary made with *kiṇva* (seeds or drugs used for fermentation), jaggery and *yawakṣāra*.

(उ) रक्तगुल्म-चिकित्सार्थ बस्ति (Use of basti for the treatment of raktagulma)

(१) दुग्ध, गोमूत्र एवं क्षार (यवक्षार) को मिलाकर दशमूल क्वाथ की बस्ति (उत्तरबस्ति) देना चाहिए[१,२,४]।

१. प्रभिद्येत न यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम्। क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा पुनः॥ १७४॥
आभ्यां वा भावितान् दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान्। वराहमत्स्यपित्ताभ्यां लक्तकान् वा सुभावितान्॥ १७५॥
अधोहरैरूर्ध्वहरैर्भावितान् वा समाक्षिकैः। किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनिविशोधनम्॥ १७६॥ (च० सं० चि० ५)

२. एवमभिद्यमाने योनौ योनिविरेचनार्थं क्षारेण युक्तं पललम्। ताभ्यां वा भावितान् कटुकमत्स्यांस्तत्पित्तभावितान् वा
वराहपित्तभावितान् वा नक्तकानूर्ध्वाधोभागिकद्रव्यभावितान् वा। सगुडक्षारं किण्वं वा (अ० सं० चि० १६/४८)

३. न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम्। क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा ततः॥ १२३॥
ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान्। वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्तकान्वा सुभावितान्॥ १२४॥
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये॥ १२५॥ (अ० ह० चि० १४)

नोट–रक्तगुल्म-चिकित्सार्थ बस्ति के सन्दर्भ पृष्ठ ४१३ में देखें।

(२) पिण्पल्यादि घृत की उत्तरबस्ति देनी चाहिए[३]।

(३) तीक्ष्ण द्रव्यों के द्वारा आस्थापन तत्पश्चात् युक्तिपूर्वक अनुवासन बस्ति दें[५]।

(४) वायु की शान्ति के लिए फलतैल के द्वारा अनुवासन बस्ति देकर शूल तथा आटोप निवारणार्थ एक या दो बार आस्थापन बस्ति देवें[५]।

(५) मधु तथा तैल समान भाग लेकर इन दोनों के समान उष्ण जल लें, उसमें दो कर्ष शतपुष्पा तथा आधा कर्ष सैंधव डालकर इससे अथवा दशमूल क्वाथ से आस्थापन बस्ति दें[५]।

i) *Uttarabasti* (vaginal / uterine irrigation) with decoction of *daśamūla* mixed with milk, cow's urine and *yawakṣāra* should be given.

ii) *Uttarabasti* with *pippalyādi ghṛta* should be given.

iii) *Āsthāpana basti* (cleansing enema) prepared with pungent drugs should be given, followed by methodical use of *anuvāsanabasti* (nutritive enema).

iv) *Anuvāsana basti* with *phalataila* should be given to suppress *vāyu*, this should follow use of *āsthāpana basti* once or twice for relief of pain and tympanites.

v) Honey and oil in equal quantity should be mixed with similar amount of hot water. Now two *karṣa śatapuṣpā* and $\frac{1}{2}$ *karṣa* salt should also be mixed. Either with this preparation or with decoction of *daśamūla* the *āsthāpana basti* should be given.

आस्थापन बस्ति के पश्चात् पथ्य (Dietetic regimen after basti treatment)

आस्थापन या अनुवासन बस्ति के पश्चात् क्षीर, यूष, रस (मांसरस) आदि को संस्कृत करके बलानुसार पथ्य में दें[६]।

After giving *āsthāpana* or *anuvāsana basti* properly medicated milk, soup of pulses, vegetables and meat should be prescribed according to her strength.

(ऊ) रक्तगुल्म का भेदन (Bhedana or separation of raktagulma)

यद्यपि सामान्य चिकित्सा वर्णन करते समय सभी आचार्यों ने गुल्म के भेदन करने के लिए विभिन्न औषधियों का आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयोग वर्णित किया है जो पूर्व पृष्ठों में है। परन्तु महर्षि चरक एवं अष्टांगहृदयकार ने सभी चिकित्सा

१. वर्तिं च क्षीरमूत्रं सक्षारं दशमूलिकम्। (च० सं० चि० ५/१७८)

२. दद्यादुत्तरवर्तिं च पिण्पल्यादिघृतेन तु॥ (सु० सं० उ० ४२/२१)

३. वर्तिं च सक्षारक्षीरमूत्रं दशमूलिकमुत्तरवर्तिं च योजयेत्॥ (अ० सं० चि० १६/४८)

४. (अ० ह० चि० १४/१२६–अक्षरशः चरक सदृश)

५. तीक्ष्णैरास्थापयेदेनां युक्तिज्ञानुवासयेत्॥ ७२॥
वायोरुपशमार्थं च फलतैलानुवासिताम्। आस्थापयेत् सकृद् द्विर्वा शूलाटोपनिवृत्तये॥ ७७॥
तुल्यं मधु च तैलं च ताभ्यामुष्णोदकं समम्। द्वौ कर्षौ शतपुष्पायाः कर्षार्धं सैन्धवस्य च॥ ७८॥
एतेनास्थापयेन्नारीं दशमूलादिकेन वा॥ ७९॥ (का० सं० खि० ९)

६. पथ्यानि भोजयेच्चैव क्षीरयूषरसादिभिः॥ ७२॥
बलं चाप्याययेत्तस्या रसैः क्षीरैश्च संस्कृतैः॥ ७९॥ (का० सं० खि ९))

Scanned with CamScanner

का वर्णन करने के उपरान्त लिखा है कि यदि रुधिर अदृश्यमान रहे अर्थात् चिकित्सा से रक्त-प्रवृत्ति न प्रारम्भ हो तो गुल्म का प्रभेदन हितकारी होता है[१]। यह सम्भव है कि यहाँ गुल्म-भेदन से आचार्यों का तात्पर्य शल्य-क्रिया अर्थात् शस्त्र-कर्म द्वारा गुल्म-भेदन हो।

If *gulma* does not get loosened or separated and bleeding per vaginum does not start with earlier described treatment then its *bhedana* (loosening or separation) is advisable.

In preceding pages recipes for oral administration or vaginal insertion to induce bleeding and expel the *gulma* have already been mentioned. It appears that probably here the authors have indicated some surgical interference to remove the *gulma.*

(ए) गुल्म-चिकित्सा से रक्त की प्रवृत्ति होने पर विधान (Treatment of bleeding during expulsion of rakta-gulma)

रुधिर की प्रवृत्ति होने पर उसकी उपेक्षा करे अर्थात् उसे रोकने का प्रयत्न न करे[२,४] तथा मांसरस एवं ओदन भोजन के लिए दें[३], एवं शरीर का अभ्यंग घृत अथवा तैल द्वारा करे तथा पीने के लिए तरुणी सुरा दें[२,४]।

When the bleeding starts, it should not be taken care off, in other words no attempt should be made to check the bleeding. Rice with meat soup should be given in diet, body should be massaged with oil or *ghṛta* and fresh wine should be given for drinking.

(ऐ) गुल्म-भेदन के पश्चात् रक्त की अति प्रवृत्ति होने पर चिकित्सा (Treatment of excessive bleeding per vaginum after expulsion of gulma)

(१) रक्तपित्त-नाशक[५,६,७,८] या असृग्दरवत्[६] चिकित्सा करें अर्थात् रक्त का अवरोध करना चाहिए[६]।

(२) तित्तिर एवं मुर्गे का मांसरस, सुरा एवं मण्ड का प्रयोग तथा अम्लसर्पि (अम्ल द्रव्यों से साधित घृत) का पान करना चाहिए[६]।

(३) घृत एवं तैल से अवसेचन करना चाहिए[६]।

(४) भोजन के पश्चात् जीवनीय गण से साधित घृत का पान अथवा इसी घृत से बस्ति (उत्तर) देनी चाहिए[६]।

(५) तिक्त द्रव्यों से साधित घृत से अनुवासन देना चाहिए[६]।

उपर्युक्त चिकित्सा के ही साथ महर्षि चरक ने वातरुगार्त अर्थात् वातरोग से पीड़ित होने पर (सम्भवतः रक्तनिस्रुति होने के कारण वात-प्रकुपित हो जाती हो) वात-नाशक क्रिया का विधान दिया है[५]। अष्टांगहृदयकार ने इस वात-नाशक क्रिया के वर्णन के बाद आनाह आदि उपद्रवों में उदावर्तनाशक तथा कफनाशक चिकित्सा करने का निर्देश दिया है[८]। यह सम्भवतः उपद्रवों की चिकित्सा है।

---

१. (अ) अदृश्यमाने रुधिरे दद्याद्गुल्मप्रभेदनम्। (च० सं० चि० ५/१७८)
(आ) अवर्तमाने रुधिरे हितंगुल्मप्रभेदनम्। (अ० ह्० चि० १४/१२७)

२. प्रवर्तमाने रुधिरे दद्यान्मांसरसौदनम्। घृततैलेन चाभ्यङ्गं पानार्थं तरुणीं सुराम्॥ (च० सं० चि० ५/१७९)

३. प्रवृत्तं तु रक्तं रसौदनाशित्वा उपेक्षेत॥ (अ० सं० चि० १६/४९)

४. यमकोभ्यक्तदेहायाः प्रवृत्ते समुपेक्षणम्॥ १२७॥
रसौदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरुणी सुरा॥ १२८॥ (अ० ह्० चि० १४)

क्रमशः .....

i) Bleeding should be controlled with the drugs prescribed for *raktapitta* or *asṛgdara.*

ii) Soup of meat of partridge or cock, wine, scum of boiled rice and *ghṛta* medicated with sour drugs should be given.

iii) Irrigation with *ghṛta* or oil should be done.

iv) *Ghṛta* medicated with *jīvanīya* group of drugs should be given after meals, or *uttarabasti* with this very *ghṛta* should be given.

v) *Anuvāsana basti* with *ghṛta* treated with bitter drugs should be given.

If the woman suffers from *vātaja* disorders (due to excessive blood loss the *vāta* gets aggravated) measures to suppress *vāta* should be applied. For treatment of *ānāha* (flatulence) etc. treatment prescribed for *udāvarta* and *kapha*-suppressing measures should be used.

(ओ) गुल्म के अवशेष रह जाने पर रक्तातिप्रवृत्ति की चिकित्सा (Treatment of excessive bleeding per vaginum after incomplete expulsion of gulma)

गुल्म-दोष के निकल जाने पर या उसके अवशेष रह जाने पर (गुल्म का कुछ भाग गर्भाशय में ही रह जाय तो) यदि अतिप्रवृत्त होता हुआ रक्त ग्लानि (कष्ट) उत्पन्न करे तो आस्थापनोक्त विधि से पुनः उसकी चिकित्सा करें तथा अनुबन्ध (अन्य दोषों के अनुबन्ध होने के) के भय से शनैः शनैः शोधन करना चाहिए[९]।

Excessive bleeding after complete or incomplete expulsion of *gulma* if gives trouble to the woman then *āsthāpana* etc. treatment prescribed earlier should be restarted. Very gradual *śodhana* (evacuation) of *gulma* should be done, lest other *doṣas* get provoked and involved.

क्रमशः .....

५. रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरीः क्रियाः। कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहरीः पुनः॥ १८०॥
घृततैलावसेकांश्च तित्तिरौक्षरणायुधान्। सुरां समण्डां पूर्वं च पानमम्लस्य सर्पिषः॥ १८१॥
प्रयोजयेदुत्तरं वा जीवनीयेन सर्पिषा। अतिप्रवृत्ते रुधिरे सतिक्तेनानुवासनम्॥ १८२॥
(अम्लस्यसर्पिषः अम्लद्रव्यसाधितस्य घृतस्य। उत्तरं भोजनोत्तरकालं पानं, किंवोत्तरबस्तिः-चक्रपाणि)
(च० सं० चि० ५ एवं चक्र० टीका)

६. .....भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः...। (विधिरासृग्दर इति रक्तपित्तोक्तो विधिः कुत एतत् ? असृग्दरे रक्तपित्तविध्यतिदेशात्.....अधोगतरक्तपित्तचिकित्सितमत्र कार्यमिति-डल्हण) (सु० सं० उ० ४२/२१ एवं डल्हण टीका)

७. अतिप्रवृत्तं तु रक्तं रक्तपित्तोपक्रमेण साधयेत्॥ (अ० सं० चि० १६/४९)

८. रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः॥ १२८॥
कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः। आनाहादावुदावर्तबलासघ्न्यौ यथायथम्॥ १२९॥ (अ० ह्० चि० १४)

९. .....भिन्ने विधिर्वाऽसृग्दरो हितः। अतिप्रवृत्तमल्पं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत्॥ (यो० र० गुल्म० चि०)

१. अतिप्रवृत्तं रुधिरं ग्लानिं जनयते यदि। विनिर्हृते गुल्मदोषे सावशेषेऽपि वा भिषक्॥ ८५॥
पुनरास्थापनोक्तेन तत्र कुर्याद्विधिर्जिम्। अनुबन्धभयाच्चैव शनैस्तदनुशोधयेत्॥ ८६॥ (का० सं० खि० ९)

Scanned with CamScanner

(औ) रक्तगुल्म में अपथ्य (Apathya or non-congenial things in raktagulma)

आचार्यों ने रक्तगुल्म-चिकित्सा के साथ किसी विशेष पथ्य का विधान वर्णित नहीं किया, अतः गुल्म की सामान्य चिकित्सा एवं सामान्य पथ्य यहाँ भी निर्दिष्ट समझना चाहिए। महर्षि काश्यप एवं हारीत ने कुछ विशिष्ट अपथ्यों का निर्देश किया है जो निम्नांकित है।

रुक्ष, विदाही एवं गुरु अन्न-पान का सेवन, व्यायाम, मैथुन तथा चिन्ता का गुल्मरोग से पीड़ित स्त्री को परित्याग करना चाहिए[1]।

रक्तगुल्म में पाचन, हिंगुपान, कटिचालन (कमर हिलाना), स्वेदन, मर्दन, चंक्रमण, उत्प्लवन (उछलना) हितकारी नहीं है एवं उष्ण, विदाही तथा हिङ्गु-युक्त पथ्य एवं जांगल मांसरस रक्तगुल्म एवं क्षतज गुल्म में हितकर नहीं है[2]।

Use of *rukṣa* (dry or free from fat), *vidāhī* (producing burning sensation) and *guru* (heavy) diet, exercise, coitus and worry are contraindicated. Use of *pācana* (digestive) drugs and *hiṅgu*, movements of hips (excessive), sudation, massage, walking and jumping etc. are harmful. Hot and *vidāhī* things or edibles containing *hiṅgu* and meat soup of wild animals are also not beneficial in the cases of *raktagulma* and *kṣataja gulma*.

विमर्श (Comments)

गुल्म का शाब्दिक अर्थ झाड़ी होता है। सभी आचार्यों ने इसकी उत्पत्ति में वायु को ही कारण माना है एवं यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रकुपित वायु स्वयं ही या अन्य दोषों को उनके अपने अपने या अन्य स्थानों पर एकत्र करके गुल्म की उत्पत्ति करती है। सामान्य गुल्म का वर्णन करते समय महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि हृदय एवं बस्ति के मध्य में, ग्रन्थि के आकार की, संचारी अथवा अचल, चय तथा अपचयवान, वृत्ताकार आकृति गुल्म कहलाती है। वायु की प्रधानता के कारण, व्याधि का मूल अव्यक्त या गूढ़ तथा गुल्मवत् या विशाल होने के कारण इसे गुल्म कहते हैं[3]। टीकाकार डल्हण ने 'चयापचयवान्' की व्याख्या करते हुए इसे वायु की विचित्र क्रिया के कारण कभी अपचित एवं कभी पचित होने वाला माना है एवं पाठान्तर का वर्णन करते हुए 'स्थिरोपचयवान' अर्थात् स्थिर होकर वृद्धि करने वाला लिखा है। गुल्म शब्द का शाब्दिक अर्थ एकत्रीकरण एवं विशालता दिया है[4]। माधवनिदान की मधुकोषव्याख्याकार ने 'चयोपचयवान' से कभी उपचित एवं कभी अपचित होना तथा पाठभेद का उद्धरण 'चयनोपचयवान' देते हुए चयन अर्थात् एकत्र होकर उपचयवान अर्थात् बढ़ने वाला लिखा है[5]।

१. अन्नपानानि रूक्षाणि विदाहीनि गुरूणि च। व्यायामं मैथुनं चिन्तां गुल्मिनो तु विवर्जयेत् ॥७३॥ (का० सं० खि० ९)

२. सरक्तगुल्मे न तु पाचनं तु न हिङ्गुपानं कटिचालनं च।
न चैव संस्वेद न मर्दनञ्च नाक्रमेण (शु० पा० न चंक्रमं) नोत्प्लवनं हितं च ॥७१॥
न च हिङ्गयुतं पथ्यं न चोष्णं न विदाहि च। रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च ॥७४॥
(हा० सं० तृ० स्था० २६)

३. हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः। चयापचयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः ॥
गुप्तानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि। गुल्मवत् वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ॥ (सु० सं० उ० ४२/४, ६)

४. ·····। चयापचयवान् कदाचिदपचितः कदाचिद्पचित इति, विचित्रक्रियात्वाद् वायोः। ·····।'चयापचयवान्'इत्यत्र 'स्थिरोपचयवान्' इति केचित् पठन्ति, स्थिर उपचयो वृद्धिर्यस्य स ·····। गुल्मवत् मनुष्यादिसंहतिवत्। विशालत्वाद् विस्तीर्णत्वात् ·····॥ (सु० सं० उ० ४२/४ तथा ६ की डल्ह० टीका)

५. चयापचयवानिति कदाचिदुपचीयते कदाचिदपचीयते; ·····'चयोपचयवान्' इति पाठान्तरे दोषस्य चयनोपचयवानिति वृद्धिमानित्यर्थः ·····॥ (मा० नि० २८/२ की मधु० व्याख्या)

गुल्म-व्याधि की सामान्य सम्प्राप्ति का वर्णन करते समय महर्षि चरक ने स्पष्ट कर दिया है कि यह सम्प्राप्ति रक्तगुल्म की नहीं है[1]।

गुल्म एवं विद्रधि में भेद का वर्णन करते हुए महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि गुल्म स्वदोष में ही आश्रित रहते हैं इसलिए देर में पकते हैं अथवा नहीं भी पकते[2]।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर रक्तगुल्म गर्भाशय में ही (क्योंकि रक्त का स्थान गर्भाशय है[3] एवं महर्षि चरक, वाग्भट, काश्यप एवं चक्रपाणि ने गर्भाशय का स्पष्ट उल्लेख किया है[4]) केवल रक्त के एकत्र होने से उत्पन्न, वृत्ताकार या गुल्माकार, विस्तृत, चय अर्थात् वृद्धि को प्राप्त होकर अपचयवान अर्थात् घटने वाली, मध्यम आयु की सामान्य ऋतुचक्र वाली स्त्रियों को ही होने वाली व्याधि है। इसके निदान एवं सम्प्राप्ति स्वतन्त्र हैं, सामान्य गुल्मों से सम्बन्धित नहीं है।

लक्षणों के वर्णन में महर्षि सुश्रुत को छोड़कर सभी आचार्यों ने स्पन्दन एवं गुल्मवृद्धि का वर्णन किया है। सुश्रुत-टीकाकार डल्हण ने स्पन्दन की उपस्थिति को स्वीकार किया है। यदि 'नस्पन्दते नोदरमेति वृद्धिं' के नञ् प्रत्यय का नकारात्मक अर्थ न करके 'ईषत्' किया जाय तो ईषत् स्पन्दन एवं उदर वृद्धि अर्थ हो जायेगा एवं अन्य आचार्यों से मत-वैभिन्य नहीं रह जायगा।

रक्तगुल्म व्याधि क्या है ? इसका निर्णय करने के लिए सभी संहिताओं में वर्णित विषय के समष्टि स्वरूप का अवलोकन आवश्यक है।

यह व्याधि रक्त के गर्भाशयान्तर एकत्र होने से, प्रजनन-शक्ति युक्त, सामान्य आर्तव-स्राव वाली स्त्रियों में ही होती है। प्रकुपित वायु शुक्र-युक्त या शुक्र-रहित आर्तव को प्रतिमास गर्भाशयान्तर एकत्र करता है। कारण स्वरूप नवप्रसूता, ऋतुमती या योनिरोगिणी द्वारा वात-प्रकोपक आहारों के सेवन से वायु का प्रकोप, योनि-स्तम्भन एवं योनि-लेखन औषधियों का प्रयोग तथा अन्य योनिरोगों की उपस्थिति वर्णित है।

लक्षणों को मुख्यतया निम्न भागों में बाँट सकते हैं:-

१. सामान्य :- ज्वर, कास, वेदना, अंगमर्द, निद्रा, आलस्य, स्तैमित्य, पादशोफ, मूर्छा, नेत्रग्लानि, पाण्डु, कृशता, उदर में ग्रन्थियाँ आदि।

२. पाचन संस्थान सम्बन्धी :- शूल, अरोचक, अविपाक, वमन, हृल्लास, अतिसारादि।

३. गर्भ सम्बन्धी :- स्तनपरिवर्तन, कुक्षि-वृद्धि, पिण्डवत्-चिरकाल में शूल के साथ स्पन्दन, दौहृद, रोमराजी।

४. प्रजनन संस्थान सम्बन्धी :- अनार्तव, गर्भाशय-शूल, तोद, भेद, योनि-विस्फार एवं योनि से दुर्गन्धित स्राव, स्यन्दन, रक्त का एकत्रीकरण, स्वयमेव भेदित हो जाने की प्रवृत्ति एवं भेदन होने पर रक्तस्राव ही मुख्य लक्षण।

उपर्युक्त सभी लक्षणों में अनार्तव तथा गर्भ-सदृश लक्षण का अत्यधिक महत्व है।

१. च० सं० चि० ५/६ की चक्रपाणि टीका (पृष्ठ ३८९)

२. (अ) स्वदोषाधिष्ठानश्च सर्वो भवति गुल्मः। तस्माच्चिरेण नैव पाकमेति। (अ० सं० नि० ११/४६)
(आ) स्वदोषसंश्रयो गुल्मः सर्वो भवति तेन सः ॥५५॥ पाकं चिरेण भजते नैव वा विद्रधिः पुनः ॥५६॥
(अ० हृ० नि० ११)

३. रक्तजस्य तु गर्भाशयः स्थानम् ·····॥ (मा० नि० २८/२ की मधु० व्याख्या)

४. च० सं० नि० ३/१३; अ० सं० नि० ११/४४, का० सं० खि० ९/१८ (पृ० ३८८); खि० ९/२६,२८ (पृष्ठ ३९०) एवं च० सं० चि० ५/१९ की चक्र० टीका (पृष्ठ ४०३)

Scanned with CamScanner

चिकित्सा के मुख्य तीन उद्देश्य प्रतीत होते हैं:-

१. अनार्तव को दूर करना अर्थात् रजःस्राव कराना।

२. गुल्म को शिथिल करना।

३. गुल्म का भेदन।

चिकित्सा में औषधियों से गुल्म-भेदन न हो पाना, भेदनोपरान्त रक्तातिस्रुति तथा अकाल-भेदन के प्रयत्न में गर्भाशय आघात आदि उपद्रव होते हैं।

आर्तव शब्द से स्त्रीबीज का ग्रहण किया जा सकता है, स्त्रीबीज की अनुपस्थिति में रक्त के गर्भाशयान्तर एकत्रीकरण, कुक्षि-वृद्धि आदि गर्भ के लक्षणों का प्रश्न ही नहीं उठता, जबकि बीज की अनुपस्थिति में भी स्त्री को सामान्य ऋतुस्राव हो सकता है। गर्भाशयान्तर रक्त-सञ्चय एवं गर्भ-भ्रान्ति के लिए अनार्तव होना आवश्यक है अतः यहाँ आर्तव शब्द से रजःस्राव एवं अनार्तव से रजःस्राव न होना मानना ही समीचीन प्रतीत होता है।

विभिन्न विद्वानों ने रक्तगुल्म को गर्भाशयान्तर रक्त-संचय (हीमैटोमेट्रा), डिम्बग्रन्थि-अर्बुद, गर्भाशय के सौत्रिकार्बुद आदि से सामंजस्य करने का प्रयत्न किया है।

गर्भाशयान्तर रक्त-संचय गर्भाशय-ग्रीवा या योनि-नलिका के पूर्ण अवरोध की स्थिति में होता है एवं इस स्थिति में ऋतुमती या नवप्रसूतादि होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

डिम्बग्रन्थि के अर्बुदों में सामान्यतया अनार्तव (रक्तगुल्म का एक मुख्य लक्षण) नहीं होता, यदि दोनों ही डिम्बग्रन्थियाँ विकृत हो अनार्तव उत्पन्न भी करें तो यह लक्षण अर्बुदों की काफी वृद्धि के पश्चात् होगा एवं इसे किसी भी प्रकार योनिमार्ग से भेदन के द्वारा नहीं निकाला जा सकता। सभी आचार्यों ने स्पष्ट रूप से इस व्याधि का स्थान गर्भाशय ही वर्णित किया है जब कि डिम्बग्रन्थि के अर्बुद गर्भाशयेतर स्थित होते हैं। डिम्बग्रन्थि के अर्बुदों की उत्पत्ति रक्त (आर्तव रूपी रक्त) के सञ्चय या विकृति से नहीं होती, जब कि रक्तगुल्म में ऋतुस्राव के काल में रक्त स्रवित न होकर एकत्र हो गुल्म का स्वरूप ले लेता है।

गर्भाशय के सौत्रिकार्बुद या अन्य अर्बुद मांस-धातु एवं सौत्रिक तन्तुओं से निर्मित होते हैं न कि रक्त से एवं इनके उत्पन्न होने पर रक्तातिप्रवृत्ति होती है न कि अनार्तव, एवं इन्हें भी औषधि से भेदन करके निकालना सम्भव नहीं है।

किन्हीं भी प्रकार के अर्बुदों में अकारण या स्वयमेव भेदित होने की प्रवृत्ति एवं भेदित होने पर योनि-पथ से रक्त-स्राव रूपी लक्षण नहीं मिलते।

उपर्युक्त तीनों व्याधियाँ शल्य-चिकित्सा-साध्य हैं, औषधि-चिकित्सा साध्य नहीं, जब कि रक्तगुल्म औषधि चिकित्सा-साध्य व्याधि है; अतः उपर्युक्त तीनों व्याधियों को रक्तगुल्म के समकक्ष रखना उचित प्रतीत नहीं होता।

सामान्य रूप से रक्तगुल्म के अन्दर उन सभी व्याधियों को जिनमें अनार्तव एवं उसके साथ ही ज्वरातिसार, शूल, कास, श्वासादि लक्षण हों एवं जिनका प्रादुर्भाव ऋतुस्राव, प्रसव, योनिरोग, योनि-लेखनादि के बाद होने की अधिक सम्भावना हो, रखा जा सकता है। गर्भाशय या प्रजनन-संस्थान के तीव्र शोथ उत्पन्न करने वाली व्याधियाँ इस वर्ग में रखी जा सकती हैं क्योंकि गर्भाशय के आततायिक शोथ के कारण गर्भाशयान्तःकला विकृत हो अनार्तव तथा आन्त्र-विक्षेप हो अतिसारादि पाचन-संस्थान के लक्षण एवं उपसर्ग के कारण ज्वर, श्वास, कासादि हो सकते हैं तथा योनि से दुर्गन्धित स्राव भी उपस्थित रहते हैं। किसी भी आततायिक या तीव्र व्याधि की उपस्थिति में सामयिक अनार्तव हो जाने से स्त्री को गर्भ-भ्रान्ति की आशंका कम रहती है एवं इस परिस्थिति में चिकित्सा प्रधान व्याधि की हो की जायगी न कि गुल्म-भेदक।

जीर्णकालिक क्षयरोग में ज्वरातिसारादि सामान्य लक्षण एवं दौर्बल्य तथा कार्श्य के कारण अनार्तव मिल सकता है; जीर्ण व्याधि होने के कारण अनार्तव होने पर गर्भ-भ्रान्ति हो, स्त्री को दौहृदादि सभी गर्भ के लक्षणों की प्रतीति हो सकती है एवं ऋतुस्राव कराने के लिए अनार्तव की चिकित्सा भी की जाती है, अतः किसी सीमा तक यह स्थिति रक्तगुल्म से

सामंजस्य रखती है। परन्तु इस व्याधि में रक्त का कहीं भी संचय नहीं होता, वह गर्भाशय में बनता ही नहीं, जब कि महर्षि काश्यप ने स्पष्ट लिखा है कि 'गुल्म या चय' 'रक्त या रुधिर' अर्थात् रुधिर के एकत्र होने के ही कारण इस व्याधि का नाम रक्तगुल्म है[१]। चिकित्सक को गर्भाशय-परीक्षण से उसमें किसी भी वस्तु का एकत्रीकरण नहीं मिलेगा तथा उसे गर्भ से भ्रान्ति का प्रश्न ही नहीं उठेगा, अतः क्षयज-अनार्तव को भी रक्तगुल्म मानना उचित नहीं है।

अनार्तव, गर्भ-भ्रान्ति, चिकित्सा-काल एवं भेदन-चिकित्सा के आधार पर इस रक्तगुल्म को गर्भ-मोल के समकक्ष रख सकते हैं। कॉर्नियस एवं हाइडॅटिडिफॉर्म दोनों ही प्रकार के मोल में प्रारम्भ में अनार्तव एवं गर्भ के सभी लक्षण हो, पश्चात् योनि से यदा-कदा रक्तस्रावादि लक्षण होते हैं। यदि कुछ उपसर्ग हो जाय तो ज्वर, कास तथा योनि से दुर्गन्धित स्राव एवं अतिसारादि लक्षण देखने को मिल सकते हैं। मोल में गर्भ की आकृति विकृत हो एक गुल्म का रूप धारण कर लेती है एवं गर्भाङ्ग अधिकांशतः देखने को नहीं मिलते, पर कभी कभी गर्भाङ्ग उपस्थित भी रहते हैं, सम्भवतः इसी द्वैविध्य के कारण अष्टांगसंग्रहकार ने शुक्र-सहित या शुक्र-रहित आर्तव के अवरोध का वर्णन किया है (पृष्ठ ३९०, ३९१)। सशुक्र या अशुक्र लिखने में मूल कारण गर्भाङ्गों की उपस्थिति या अनुपस्थिति ही रहा होगा। इस मोल व्याधि की भेदन चिकित्सा ही मुख्य चिकित्सा है। कॉर्नियस मोल में अधिकांशतः प्रथम गर्भाशय बढ़कर फिर घटता है जिसका स्पष्ट निर्देश महर्षि सुश्रुत ने 'चयापचयवान्' शब्द से किया है।

रक्तगुल्म के निदान, लक्षण चिकित्सादि का समष्टि रूप से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक विज्ञान में वर्णित वे सभी व्याधियाँ जिनमें स्थानिक या सार्वदैहिक कारणों से अनार्तव हो, रक्तगुल्म में अन्तर्निहित हो जाती हैं। विशिष्ट रूप से यह गर्भ-मोल का वर्णन प्रतीत होता है। 'चयापचयवान' वर्णन कॉर्नियस मोल की ओर इंगित करता है, पर यदि गुप्ति या गूढ़-मूलता, अत्यधिक विस्तार, ह्रासादि, वमनादि लक्षण तथा असाध्यता के लक्षणों का विचार करें तो यह हाइडॅटिडिफॉर्म मोल के समकक्ष प्रतीत होता है, क्योंकि हाइडॅटिडिफॉर्म मोल में गुप्ति या गूढ़मूलता के कारण कभी कभी पूर्ण निष्कासन सम्भव नहीं होता; वह पुनः पुनः बढ़ता रहता है, वमनादि लक्षण सामान्य गर्भ से भी अधिक होते हैं तथा घातकार्बुद में परिवर्तित होने की क्षमता होती है, अर्थात् रक्तगुल्म दोनों ही प्रकार के गर्भ-मोल को अन्तर्निहित करता है।

Literally word *gulma* means clump or cluster or bush. It arises due to aggravation of *vāyu*, which either alone or in association with other *doṣas* gets accumulated in respective locations of *doṣas* or at some other place. Location of *gulma* is in between *hṛdaya* (heart) and *basti* (urinary bladder). It has shape of a *granthi* (gland), is mobile or immobile, increases or decreases in size and is circular in appearance.

Just like bush its root or base is hidden and the size is big. Ḍalhaṇa opines that sometimes *gulma* increases and then decreases in size and sometimes initially gets stabilized and then increases in size. *Gulma* either does not get suppurated or very rarely suppurates because the *doṣas* get accumulated in their own normal or physiological places.

Considering *raktagulma* in the perspective of above mentioned description of general *gulma*, it appears that *raktagulma* occurs in the uterus (as the place of *rakta* as well as specific location is uterus) due to accumulation of *rakta*. It is circular or just like bush in shape, is spreaded or involves larger area, decreases in size after initial increase and occurs only in the woman of middle age having normal menstrual cycle. Etiopathogenesis of *raktagulma* is different from other *gulmas*.

१. गुल्मश्चय इति प्रोक्तो रक्तं रुधिरमुच्यते ॥ ४० ॥
रक्तस्य सञ्चयस्तेन रक्तगुल्म इति स्मृतः ॥ ४१ ॥ (का० सं० खि० ९)

Scanned with CamScanner

Before attempting any congruence it would be better to revise in short the description of *raktagulma* available in different books.

Raktagulma is a disease having accumulation of only blood within the uterus, in the women of active reproductive age, having normal menstruation. Aggravated *vāyu* withholding *ārtava* with or without *śukra* accumulates it every month. Vitiation of *vāyu* due to use of dietetics capable of aggravating *vāyu* during puerperium, menstruation *(ṛtukāla)* or when suffering from gynecological disorders *(yonirogas)*; use of *yoni-stambhan* (astringent) or *yoni-lekhana* (capable to induce curettage) drugs and presence of *yonirogas* are the causative factors of *raktagulma*. Entire clinical features can be grouped under four headings in following way:—

i) General :— Fever, cough, pain, bodyache, sleepiness, lethargy, stillness, edema of feet, unconsciousness, drooping of eyelids, anemia, emaciation, glands over the abdomen etc.

ii) Pertaining to digestive system :— Colic, nausea, vomiting, diarrhoea, anorexia, and indigestion etc.

iii) Relating to pregnancy :— Breast changes, increase in size of uterus, delayed quivering with pain and movement like a solid mass, *dohṛda*, appearance of lineanigra etc.

iv) Pertaining to reproductive system :— Amenorrhoea, pain in uterus, foul smelling vaginal discharges and accumulation of *rakta* in the uterus, sometimes spontaneous expulsion without any apparent cause, in expulsion bleeding per-vaginum.

Out of all these amenorrhoea and other features resembling pregnancy are most important.

Treatment is aimed to :—

i) Cure amenorrhoea or induce menstruation.
ii) Loosen the *gulma*.
iii) Expel the *gulma*.

The complications are sometimes non-expulsion of *gulma* with medicine thus requiring surgical interference, excessive bleeding per vaginum during or after its expulsion and injury to the uterus if treated in inappropriate time.

With the word *ārtava* ovum can be considered. In the absence of ovulation, the question of accumulation of blood in the uterus, increase in size of abdomen and uterus and other features of pregnancy does not arise, however the woman may continue to have normal menstrual cycle. For accumulation of blood in the uterus and suspicion of pregnancy amenorrhoea is essential symptom, thus in this reference, considering *ārtava* as menstruation, its absence or amenorrhoea should be taken.

Previous workers have tried to interpret this *raktagulma* as haematometra, ovarian tumours and uterine tumours (fibromyomas) etc. Before giving own opinion it is better to examine the opinions of others.

Haematometra arises due to imperforated hymen, complete stenosis of vaginal canal or cervix uteri. In these conditions question of woman being *ṛtumatī* (menstruating) or having recently undergone a labour does not arise. Haematometra requires surgical treatment not the medical.

Ovarian tumours are usually not associated with amenorrhoea, however, bilateral tumours involving entire ovarian tissue can cause amenorrhoea. The ovarian tumours are not situated within the uterus, can not be treated medicinally and can not be got expelled vaginally, moreover ovarian tumours are not caused due to abnormality or collection of menstrual blood while *raktagulma* develops due to accumulation of unexcreted *rakta* i.e. menstrual blood.

Fibromyomas or other uterine tumours are usually associated with menorrhagia rather than amenorrhoea, moreover, these are made up of muscle-fibres with fibrous tissues not of blood, and can not be treated medicinally.

Tendency of spontaneous vaginal expulsion is not seen in tumours.

All the three diseases mentioned above require surgical treatment, medicinal treatment has no place, while *raktagulma* is mainly treated with oral or local medicines.

Considering all the points none of the above mentioned three disorders can be simulated with *raktagulma* and some other congruence has to be attempted.

Normally all those conditions arising after menstruation, labour, uterine curettage or other *yonirogas* (gynec disorders), having cardinal symptom as amenorrhoea in association with fever, diarrhoea, colic, cough, and dyspnoea etc. can be considered under *raktagulma*. Most important condition of this category is acute infective or inflammatory disorders of uterus (pyometra) and its adnexa. Due to acute inflammation of endometrium there may be amenorrhoea (as seen in pyometra), the pelvic congestion may produce diarrhoea due to hyper-stimulation of bowels. The existing infection can produce fever, cough, dyspnoea and parenteral diarrhoea along with foul smelling vaginal discharges. Amenorrhoea associated with any acute disorder is transitory and will not give the symptoms of pregnancy. The treatment has to be given for actual disease and not to expell the *gulma* or in other words the condition does not simulate *raktagulma*.

Chronic tuberculosis is associated with fever, diarrhoea etc. and due to weakness and emaciation there may be amenorrhoea. Due to chronic nature of disease this amenorrhoea can produce the symptoms of pregnancy or pseudocyesis and treatment may also had to be given to induce menstruation. Thus this condition resembles to certain extent with *raktagulma*, however, in this condition the blood is not accumulated in uterus, rather it is not formed at all. The accumulation of blood is basic criteria for diagnosis of *raktagulma*. As nothing is accumulated in the uterus, so the physician will not find enlargement of uterus and will not consider it as *raktagulma*.

Due to presence of amenorrhoea, suspicion of pregnancy, period of treatment and medicines prescribed for its expulsion; molar pregnancy seems to resemble *raktagulma*. In

Scanned with CamScanner

molar pregnancy there is initial amenorrhoea and presence of all the clinical features of pregnancy followed by recurrent bleeding per vaginum. Due to association of infection, the fever, cough and foul smelling vaginal discharges can be seen. The product of conception assumes shape of rounded mass or bunch of grapes in carneous or hydatiform mole respectively. The trace of exact fetus is rarely found.

Probably due to findings of both types of mole i.e. with evident fetus or fetal parts and without evident fetus or fetal parts Vāgbhaṭa expounded the theory of *ārtava* accumulating with *śukra* (with fetus) or without *śukra* (without fetus). Principle of treatment of molar pregnancy is to get it expelled. In carneous mole uterus decreases in size after initial increase which is described by Suśruta as *caya* (accumulation) followed by *apacaya* (decrease).

Taking into account etiopathogenesis and clinical features of *raktagulma*, all the local (relating to reproductive system) and general conditions described in modern medicines giving rise to amenorrhoea can be considered under *raktagulma*. However, *raktagulma* seem to be specifically analogous to molar pregnancy. Initial increase followed by decrease hint towards carneous mole; while hidden root, excessive enlargement and association of severe nausea and vomiting etc. towards hydatiform mole. Due to its hidden root some times complete expulsion does not take place and recurrence of bleeding or reappearance of vesicles is noted. It may get changed into malignancy and give symptoms described for incurable *gulma*.

❐

अध्याय ८

CHAPTER VIII

प्रसव-विज्ञानीय (सामान्य एवं विकृत प्रसव)

(EUTOCIA AND DYSTOCIA OR NORMAL AND ABNORMAL LABOUR)

सामान्य प्रसव-काल (Gestational period for normal labour)

(अष्टमे मासि—)। तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपि नवमं मासमुपादाय प्रसवकालमित्याहुरादशमान्मासात्। एतावान् प्रसवकालः वैकारिकमतः परं कुक्षाववस्थानं गर्भस्य।(च० सं० शा० ४/२५)

नवमदशमेकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते। अतोऽन्यथा विकारी भवति। (सु० सं० शा० ३/३०)

(अष्टमे—)। तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपि प्रसवकालमाहुरासंवत्सरात्। अतः परं विकारी भवति।
(अ० सं० शा० २/३०)

(अष्टमे—)।

तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम्। वर्षाद्विकारकारी स्यात कुक्षौ वातेन धारितः॥
(अ० हृ० शा० १/६६)

दशमासं गर्भवासः। (का० सं० शा १/२)।

नवमादिषु मासेषु जन्म —॥ (का० सं० शा० २/११)

अष्टम मास के पश्चात् एक दिन भी व्यतीत हो जाने पर नवें मास से लेकर दशम मास तक प्रसव-काल कहा जाता है। यह सामान्य प्रसव-काल है। इसके पश्चात् गर्भ का कुक्षि में रहना वैकारिक माना जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि नौवें, दशवें, ग्यारहवें तथा बारहवें किसी भी मास में प्रसव होता है। इसके अनन्तर (बारहवें मास के बाद प्रसव होना) विकारी होता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि (आठवें मास के पश्चात्) एक दिन निकल जाने पर वर्ष पर्यन्त या बारहवें मास तक प्रसव-काल कहा जाता है। इसके पश्चात् वह विकारी होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने उपर्युक्त मतों का ही प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि (आठवें मास के पश्चात्) एक दिन व्यतीत होने पर भी (नवम मास के प्रथम दिन से लेकर) वर्ष (१२ माह) तक प्रसव-काल होता है। उसके पश्चात् वायु द्वारा रोका हुआ गर्भ विकारकारी होता है।

महर्षि काश्यप का कथन है कि कलियुग में मनुष्य के गर्भवास का काल दस मास है। इन्होंने अन्य युगों के मनुष्यों के गर्भवास-काल का वर्णन दिया है जो अप्रासङ्गिक होने से अनुद्धृत है; पुनश्च नवम आदि मासों को जन्म-काल माना है।

Scanned with CamScanner

महर्षि हारीत ने दशम एवं एकादश मास में,[1] आचार्य भावमिश्र[2] तथा योगरत्नाकारकार ने[3] भी नवम से बारहवें मास तक का प्रसव-काल माना है।

महर्षि चरक ने नवें एवं दशवें दो मास, हारीत ने दशवें-ग्यारहवें दो मास तथा अन्य सभी ने नौवें से बारहवें चार मास को प्रसव-काल माना है। टीकाकार चक्रपाणि ने स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि नवम एवं दशम मास तो अत्यधिक उत्तम प्रसव-काल है, परन्तु एकादश एवं द्वादश में भी अत्यल्प दोष होने के कारण उन्हें भी सामान्य प्रसव-काल के सदृश ही समझना चाहिए[4]।

From the first day of ninth month upto tenth month is normal period of labour; intra-uterine stay of fetus beyond this limit is abnormality, this is the view of Caraka and Kāśyapa. Suśruta, both Vāgbhaṭas and others are of the opinion that from first day of ninth month upto twelfth month is the period of normal labour, stay of fetus beyond this limit is an abnormality caused by vitiated *vāyu*. Cakrapāni has clarified that best period for labour is ninth and tenth month, however, since in the eleventh and twelfth month the amount of abnormality is very less, thus these can also be considered within normal limits.

विमर्श (Comments)

सामान्य प्रसव-काल दशम मास का प्रथम पक्ष माना जाता है, परन्तु इस प्रक्रिया में अत्यधिक व्यक्तिगत वैभिन्य मिलता है। आधुनिक विज्ञान-वर्णन-दृष्ट्या संहिताओं में वर्णित न्यूनतम एवं अधिकतम दोनों ही सीमायें अमान्य हैं। नवें मास का प्रसव अप्रगल्भ शिशु-जन्म तथा दशवें के अंतिम चरण से लेकर बारहवें मास तक का अतिप्रगल्भ शिशु-जन्म माना जाता है। इस सामान्य प्रसव-काल के अपवाद आधुनिक काल में भी उल्लिखित हैं यथा सम्भोग की तिथि के ३३१ (ग्यारहवाँ मास), ३४९ (बारहवाँ मास) एवं ३६० दिन (पूरे बारह मास) के बाद भी सामान्य या स्वस्थ शिशु का प्रसव एवं एननसेफैलि व्याधि से पीड़ित गर्भ का ३८९ (एक वर्ष २४ दिन) दिनों तक भी जीवित अवस्था में ही गर्भाशयान्तर वास[1]।

इस वर्णन के निम्नांकित सम्भाव्य कारण हो सकते हैं:-

१. स्तन-पान काल में उपस्थित अनार्तव या अन्य किसी कारण जन्य अनार्तव-काल में गर्भधारण हो जाने से वास्तविक गर्भाधान के काल के ज्ञान का अभाव।

२. ऋतुचक्र का सामान्य से अधिक अवधि का होना:-कभी कभी बिना किसी विशिष्ट विकृति के ही स्त्रियों का ऋतुचक्र सामान्य से अधिक (४५ से ६० या ९०) दिवसों का होता है। ऋतुचक्र में स्त्रीबीजोत्सर्ग रजःस्राव प्रारम्भ होने के १४-१५ दिन पूर्व ही होता है, अतः दीर्घकालिक ऋतुचक्र वाली स्त्रियों में अनार्तव-काल से गणना करने पर गर्भाधानकाल सामान्य से अधिक काल का प्रतीत होगा।

३. अनार्तव-काल की गणना में त्रुटि:-कुछ स्त्रियाँ गर्भाधान के प्रथम मास को भी गिन लेती हैं, उदाहरणार्थ अंतिम रजःस्राव फरवरी में होने पर गर्भाधान का प्रथम मास मार्च से गिना जायगा परन्तु वे फरवरी को प्रथम मास मानकर मार्च को द्वितीय मास गिन लेती हैं, जिसके कारण एक मास का अन्तर पड़ जाता है।

१. दशमें च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपिवा॥ (हा० सं० षष्ठस्थान १/२३)
२. नवमें दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते। एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः॥ ३०८॥
……नारी गर्भं प्रसूयते ……। (भा० प्र० पूर्व० ३/३०८ एवं ३४० तथा चि० ७०/१०२)
३. नवमें……नारी गर्भं……।……॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०, भा० प्र० सदृश ही)।
४. ……। आदशमादिति वचनं प्रशस्ततरप्रसवकालाभिप्रायेण। सुश्रुते द्वादशमासपर्यन्तं सम्यक्प्रसवकालाभिधानं स्तोकदोषयोरेकादशद्वादशमासयोरल्पदोषत्वेनादोषपक्ष एव निक्षेपाद् बोद्धव्यम्॥ (च० सं० शा० ४/२५ की चक्र० टीका)
५. मुनरोकर की ऑपरेटिव ऑब्सटेट्रिक्स। (पृष्ठ ६२०, ६२१)

४. हमारे देश में अधिकांश मास ३० दिन के न होकर कम दिनों के होते हैं, जिसके कारण सामान्य प्रसवकाल के २८० से २८७ दिन लगभग दश मास या इससे कुछ अधिक दिनों में ही पूर्ण होते हैं न कि ९ मास ७ दिन में।

५. यदि उपर्युक्त वर्णित एक से अधिक कारण एक साथ उपस्थित हो जाँय तो सामान्य गर्भ होते हुए भी स्त्री अथवा चिकित्सक उसे एकादश या द्वादश मास का भी मान सकते हैं।

६. प्रसव-काल में अत्यधिक व्यक्तिगत वैभिन्यता की उपस्थिति।

७. अपवाद की स्थितियों का भी सामान्य स्थिति में समावेश।

८. एननसेफैलि पीड़ित गर्भ के दीर्घकालीन गर्भाशयान्तर वास की स्थिति का भी सामान्य प्रसव-काल गणना में ही समावेश।

Minimum and maximum duration of gestation considered as normal for labour in *āyurvedika* classics is not acceptable to-day, because the delivery in the beginning of ninth month is termed as premature and after second week of tenth month as postmature. However, in exceptional cases intrauterine stay of normal fetus (after probable date of cohabitation) for 331, 349, and 360 days and of alive but anencephalic fetus for no less than 389 days has been mentioned in operative obstetrics.[1] This difference might have appeared due to following reasons:—

i. Pregnancy occurring during lactational amenorrhoea or other secondary amenorrhoeas resulting in ignorance about exact month of impregnation.

ii. Prolongation of normal menstrual cycle:— Some times without any specific abnormality menstrual cycle is prolonged for 45-60 or 90 days etc. Ovulation occures mostly 14-15 days prior to the onset of menstruation. If conception occures in such cycle the gestational period may appear to be prolonged beyond a normal limit.

iii. Miscalculation of amenorrhoea period:— Few women count month of last menstrual period as first month of pregnancy, for example a woman having her last menstruation in February will count Feb. as first month of pregnancy and March as second. This results in difference of one month in duration of gestation.

iv. Lunar months are not of thirty days rather usually of twentyeight days, thus 280-287 days described for normal labour cover the period of ten months or more, not of only nine calender months + 7 days.

v. More than one factor described above operating together may give false impression of normal labour occurring in eleventh or twelfth month.

vi. There are great individual variations in duration of normal gestation.

vii. Consideration of exceptions under general rule.

viii. Consideration of prolong intrauterine stay of anencephalic fetus under normal duration of labour.

1. Operative Obstetrics by Munro Kerr, Page 620, 621.

Scanned with CamScanner

प्रसव प्रारम्भ होने के कारण (Causes of onset of labour)

कालस्य परिणामेन मुक्तं वृन्ताद्यथा फलम्। प्रपद्यते स्वभावेन नान्यथा पतितुं ध्रुवम्॥
एवं कालप्रकर्षेण मुक्तो नाड़ीनिबन्धनात्। गर्भाशयस्थो यो गर्भो जननाय प्रपद्यते॥
(सु० सं० नि० ८/७, ८)

काल के प्रभाव के कारण वृन्त से मुक्त हुआ फल जिस प्रकार स्वभाव से ही पतित होता है अन्यथा नहीं, उसी प्रकार काल के प्रकर्ष से नाड़ी-निबन्धों से मुक्त हुआ गर्भाशयस्थ गर्भ प्रसव के लिए उद्यत होता है।

महर्षि हारीत[1] ने गर्भ का गर्भाशय-वास से वैराग्य होना तथा भेल ने रस के द्वारा पोषण होकर सम्पूर्ण गात्र का हो जाना ही प्रसव का कारण माना है।[2]

Suśruta says that as a fruit getting detached from its stalk due to time factor comes down naturally, similarly *garbha* in its appropriate time, getting detached from its *nāḍī-nibandha* proceeds for labour due to its specific nature. Development of indifference by fetus from its intrauterine stay and attainment of full maturity of different body-parts by fetus are the causes mentioned by Hārīta and Bhela respectively.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सभी कारणों का समष्टि रूप से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि आचार्यों ने नाड़ी-विबन्ध-मुक्ति, स्वभाव, गर्भ-वास-वैराग्य, सम्पूर्णता तथा काल-प्रकर्ष आदि पाँच कारणों का उल्लेख किया है। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है।

१. **नाड़ी निबन्ध-मुक्ति**—नाड़ी शब्द दो अर्थों का द्योतक है (१) संज्ञावह नाड़ी-तन्तु (२) गर्भ की रसवहा नाड़ी, एवं इनके निबन्ध की मुक्ति अर्थात् इनके कार्य में बाधा की मुक्ति अथवा इनके मातृ-शरीर या गर्भाशय स्थित बन्धनों की मुक्ति।

गर्भावस्था के काल में गर्भाशय में मांसपेशी तन्तुओं को उत्तेजित करने वाले अङ्गरस पिटॉसिन के कार्य को निष्क्रिय करने के लिए पाइटॉकाइनेज नामक एन्जाइम उपस्थित रहता है अर्थात् गर्भाशयोत्तेजक नाड़ी के कार्य में निबन्ध या अवरोध रहता है। प्रसव के कुछ काल पूर्व ही यह पाइटॉकाइनेज समाप्त होता है एवं पिटॉसिन के प्रभाव के कारण गर्भाशय उत्तेजित हो संकोच प्रारम्भ कर गर्भ का प्रसव कराता है, अर्थात् नाड़ी-निबन्ध समाप्त होने के कारण प्रसव होता है।

गर्भ की रसवहा नाड़ी अपरा से सम्बन्धित रहती है। गर्भावस्था के अंतिम चरण में अपरा में स्थान-स्थान पर इन्फॉक्ट बनने के कारण उसके कार्य में बाधा होती है जिससे गर्भ को आवश्यक ऑक्सिजन नहीं मिल पाती, जो प्रसव का एक कारण है अर्थात् गर्भ की पोषक रसवहा नाड़ी से सम्बन्धित अपरा एवं मातृ-शरीर के बीच स्थित निबन्धों या कार्यप्रणाली में क्षीणता आती है एवं प्रसव होता है।

२. **स्वभाव**—प्राकृतिक कार्य या अज्ञात-कारण।

३. **गर्भ-वास-वैराग्य** – गर्भ के अन्दर स्वयं के परिवर्तन यथा गर्भ की आक्सीजन-न्यूनता अथवा गर्भ-शरीर-उपस्थित अङ्गरसों का प्रभाव जो प्रसव का कारण माना जाता है।

४. **गर्भ-सम्पूर्णता** – सामान्यतया गर्भ के पूर्ण होने पर उपर्युक्त सभी कारण एक साथ कार्य करते हैं एवं प्रसव का प्रारम्भ हो जाता है।

१. जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासास्य कारणात्। (हा० सं० षष्ठस्थान १/२३)
२. सम्पूर्ण गात्रो भवति यदा स रसभावितः। तदा प्रसौत्यथाकाशं(लं) गर्भः स्त्रीकुक्षिविच्युतिः॥ (भे० सं० शा० ३/१३)

५. **काल-प्रकर्ष**–गर्भावस्था के एक निश्चित काल के पश्चात् ही शरीर में प्रसवोपयोगी परिवर्तन होते हैं यथा विवन्धित इस्ट्रोजन स्वतंत्र हो गर्भाशय की मांसपेशियों को पिटॉसिन की क्रिया के लिए सुग्राही बनाकर गर्भाशयोत्तेजना में सहायक होता है। गर्भाशय-मांसपेशी में ऑक्टोमायॉसिन अपनी अधिकतम सीमा में एकत्रित हो मांसपेशी-तन्तुओं का संकोच उत्पन्न करता है। गर्भाशय अधिकतम सीमा तक विस्तृत हो संकुचित होना प्रारम्भ कर देता है आदि। यह सभी परिवर्तन काल पर ही आधारित होते हैं।

Detachment of *nāḍī-nibandha*, *swabhāva* (nature), indifference of fetus from intra-uterine stay, full maturity of fetal parts and time factor are the five causes enlisted as responsible for labour. All these can be explained in the following way:—

i. **Detachment of nāḍī-nibandha**—*Nāḍī* word denotes sensory or motor nerve fibres and umbilical cord. Release or detachment of *nibandha* means release of obstruction in their normal functions or detachment of attachments situated between *nāḍī* and maternal body or uterus.

Pitocinase enzyme inhibits the action of pitocin during pregnancy or this enzyme inhibits the myometrial stimulation, a normal function of motor fibres of nerves. Few days preceding labour this pitocinase disappears allowing the pitocin to act, thus motor fibres of nerves stimulate myometrium, or in other words obstruction in function of nerves (*nāḍī*) is released.

The umbilical cord derives its nourishment from placenta, to which it is attached. As the term approaches infarcts appear at maternal side of placenta which hamper free flow of oxygen causing anoxia to the fetus, a cause of labour. In other words attachments situated inbetween umbilical cord (*rasavahānāḍī*) or placenta and maternal body or uterus are detached which initiate labour.

ii. **Swabhāva (Nature)**—Unknown cause.

iii. **Garbha-vāsa vairāgya (Indifference of the fetus from its intra-uterine stay)**—Changes in the fetus caused due to anoxia, and its hormones initiate labour.

iv. **Garbha sampūrṇatā (Full maturity of fetal parts)** :—Generally above mentioned factors operate together only when the fetus is mature and then delivery of full term fetus occurs.

v. **Kāla prakarṣa (Time factor)**—After a specific period of gestation, changes necessary for labour occur in the body, such as estrogen inactivated due to conjugation becomes free and sensitizes myometrium for the action of pitocin, thus helps in myometrial stimulation. Actomyocine also gets optimum deposition and starts contraction of myometrial fibres. Uterus attaining its maximum distension starts contraction. All these changes occur after a specified period.

सूतिकागार (Sutikāgāra or accouchement ward)

सभी संहिताओं में प्रसव के समय स्त्री को एक पृथक् गृह का निर्माण कर उसमें रखने का निर्देश दिया गया है। सम्भवतः ये गृह प्रत्येक प्रसूता के लिए नवनिर्मित करके पुनः समाप्त कर दिये जाते होंगे।

In every classic one finds the description of accouchement ward, probably these were

Scanned with CamScanner

constructed for every parturient woman and dismantled afterwards.

सूतिकागार की आकृति एवं निर्माण-विधि (Shape, size and method of construction of accouchement ward)

प्राक् चैवास्या नवमान्मासात् सूतिकागारं कारयेदपहतास्थिशर्कराकपाले देशे प्रशस्तरूपरसगन्धायां भूमौ प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा बैल्वानां काष्ठानां तैन्दुकैङ्गुदकानां भाल्लातकानां वार(रु)णानां खादिराणां वा; यानि चान्यान्यपि ब्राह्मणाः शंसेयुरथर्ववेदविदस्तेषां, वसनालेपनाच्छादनापिधानसंपदुपेतं वास्तुविद्याहृदययोगाग्निसलिलोदूखलवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं च ॥ (च० सं० शा० ८/३३)

तत्रारिष्टं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधतिन्दुकभल्लातकनिर्मितसर्वागारं यथासङ्ख्यं तन्मयपर्य्यङ्कम् समुपलिप्तभितिं सुविभक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामङ्गलसंपन्नं विधेयम्। (सु० सं० शा० १०/५)

प्राक्चैवास्या नवमान्मासादपहतास्थिशर्करकापाले प्रशस्ते देशे वास्तुविद्याप्रशस्तं सर्वर्तुसुखपुपहृतसर्वोपकरणं सन्निहितज्वलनं प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा सूतिकागारं कारयेत्॥ (अ० सं० शा० ३/१५)

प्राक्चैव नवमान्मासात् सा सूतिग्रहमाश्रयेत्। देशे प्रशस्ते सम्भारैः सम्पन्नं साधकेऽहनि॥
(अ० हृ० शा० १/७३)



Fig. (7) : *Sūtikāgāra* (accouchement ward) constructed with the wood, having separate latrine (L), bath room (B) and kitchen (K), containing two beds, two stones, pestle with mortars, burning fire, medicines, instruments and female attendants. A donkey and a bull is tethered outside. The pregnant woman is entering advancing her right leg and following *brāhmaṇa* and cow.

नवम मास से पूर्व ही इसके (गर्भिणी के) लिए अस्थि, शर्करा (कंकड़, बालू आदि) एवं कपाल (मिट्टी के बर्तनों के टूटे टुकड़े) आदि से अपहृत (इन वस्तुओं से रहित या उपस्थित होने पर इनके निकाल देने के बाद), प्रशस्त रूप, रस एवं गन्ध (सुन्दर दर्शनीय, सुगन्धित वृक्षों आदि से युक्त, क्योंकि उचित रस वाली पृथ्वी में वृक्षादि की उत्पत्ति अच्छी होगी) वाली भूमि में, पूर्व अथवा उत्तर की ओर द्वार वाला; बिल्व, तिन्दुक, इंगुद, भल्लातक, वरण या वरुण अथवा खदिर के काष्ठ से सूतिकाकार का निर्माण करें या अन्य किसी (भी काष्ठ) से जिससे ब्राह्मण या अथर्ववेदज्ञाता कहें (सूतिकागार) बनावे। (सूतिकागार) वस्त्र, आलेपन (दिवालों आदि का गोबर या चूने से आलेपन), आच्छादन (अच्छी प्रकार आच्छादित या समुचित प्रकार की छत) तथा अपिधान (ढाकने के लिए वस्त्र या छत तथा दरवाजों एवं खिड़कियों को ढकने के लिए वस्त्र, परदे या दरवाजे) से युक्त रहे। वास्तु-विद्या जानने वाले विद्वान की राय से अलग-अलग[1] बने अग्नि, जल, उदूखल रखने के स्थान, वर्चःस्थान (शौचघर), स्नानघर एवं रसोईघर आदि से युक्त सभी ऋतुओं में सुखकारक (सूतिकागार) बनावें (चि० ७)

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि इस शुभ सूतिकागृह का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत, एवं कृष्ण भूमि प्रदेश में, बिल्व, न्यग्रोध, तिन्दुक एवं भल्लातक के काष्ठ से निर्माण करें। यह सूतिकागार इन्हीं (बिल्वादि) की लकड़ी से निर्मित पलंग से युक्त, अच्छी प्रकार लिपी हुई दिवालों वाला, भली भाँति कपड़े आदि (पर्दे आदि) से आवृत तथा यथास्थान व्यवस्थित रूप से रखी वस्तुओं वाला, पूर्व या दक्षिण की ओर द्वार वाला, आठ हाथ लम्बा एवं चार हाथ चौड़ा, रक्षा तथा मंगल द्रव्यों से युक्त होना चाहिए।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि नवम मास से पूर्व ही अस्थि, शर्करा एवं कपाल (अस्थि एवं रोड़े, कंकड़ तथा खपड़े आदि) निकाल दिए हुए, वास्तुविद्या (भवन-निर्माण-कला) में प्रशंसित स्थान में, सभी ऋतुओं में सुखकारी, सभी उपकरणों से युक्त, बराबर प्रज्वलित अग्नि-युक्त, पूर्व या उत्तर की ओर द्वार वाला सूतिकागार निर्माण करें। टीकाकार इन्दु ने नवम मास से लेकर अर्थात् नवम मास के प्रारम्भ के बाद सूतिकागृह निर्माण की व्यवस्था बताई है[2]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी नवम मास के पूर्व ही प्रशस्त देश में सभी उपकरणों से युक्त शुभ नक्षत्र में सूतिकागृह निर्माण करने का निर्देश दिया है।

महर्षि भेल ने भी लिखा है कि अष्टम मास व्यतीत हो जाने पर तिन्दुक, पलाश या अश्वत्थ की लकड़ी से पूर्व या उत्तर की ओर द्वार वाला सूतिकागार निर्माण करें[3]।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत सदृश ही आयाम का वर्णन दिया है कि आठ हाथ लम्बा एवं चार हाथ चौड़ा, पूर्व या उत्तर की ओर द्वार वाला सूतिकागार बनायें[4]।

An abode for expectant woman should be constructed before ninth month of pregnancy on a land free from stone, sand or gravel and pieces of broken earthen pots (either already absent or removed before construction), and having excellent appearance, *rasa* (taste i. e. land should not be salty etc.) and smell (not having foul smell etc.). The house should face east or north and be constructed with the wood of any tree out of *bilva, tinduka, īnguda, bhallātaka, varuṇa* or *khadira* or with any other wood advised by *brāhmaṇas* or the persons having knowledge of *atharvaveda*. The house should be well clothed, smeared with cow dung or lime, covered or roofed (with roof of wooden frame) and curtained or having well

१. अपिधानं कपाटम्। ·····वास्तुविन्मतेन विधक्ताग्न्यादिस्थानम् ···॥ (च० सं० शा० ८/३३ की चक्र० की टीका)

२. ·····नवममासात् प्रभृति ·····॥ (अ० सं० शा० ३/१५ की इन्दु टीका)

३. अष्टमे तु खलु मासे प्रतिविहिते सति सूतिकागारं सम्यक् प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा कारयेत् तिन्दुकपलाशाश्वत्थैः। (भे० सं० शा० ८/६)

४. अष्टहस्तायतं चारुचतुर्हस्तविशालकम्। प्राचीद्वारमुदग्द्वारं विदध्यात्सूतिकागृहम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३४१)

Scanned with CamScanner

fitted doors. With the advice of architect specific places to keep fire, water, mortar with pestle alongwith separate latrine, bathroom and kitchen should be constructed in such a way that the place becomes comfortable in all the seasons (fig.7).

Suśruta says that the accouchement ward for *brāhmaṇa, kṣatriya, vaiśya* and *śūdra* should be constructed on the land having white, red, yellow or black colour, with the wood of *bilva, nyagrodha, tinduka* or *bhallātaka* respectively, i.e. for *brāhmaṇa* on white land with the wood of *bilva* etc. This ward should be furnished with the beds made of these very woods, Its walls should be well smeared and protected with cloth (curtained). All the things should be placed systematically in their proper places. It should be twelve feet long and six feets wide and face to the east or south. *Rakṣā dravyas* (articles having protective or antiseptic properties) and auspicious articles should be stored in it.

Vāgbhaṭa I giving description like Caraka albeit very short says that flaming fire should be continuously kept in the house. Indu opines that construction of house should be started after beginning of ninth month.

Vāgbhaṭa II agreeing with above views says that construction should be started in auspicious period. In the opinion of Bhela wood of *tinduka, palāśa* or *aśwattha* should be used. Bhāvamiśra has followed Suśruta.

विमर्श (Comments)

सभी आचार्यों ने नवम मास के पूर्व ही सूतिकागार के निर्माण की व्यवस्था दी है जिससे यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः प्रत्येक प्रसव के लिए नवीन सूतिकागार का निर्माण होता था। काष्ठ से सूतिकागार-निर्माण के तीन कारण हो सकते हैं (१) आसानी से उपलब्धि (२) उल्कापात से सुरक्षा; क्योंकि काष्ठ में उल्का का प्रभाव नहीं होता (३) कार्य हो जाने पर हटाने में सुविधा। महर्षि सुश्रुत के अतिरिक्त सभी ने इसका द्वार पूर्व या उत्तर की ओर रखने का निर्देश दिया है जो सम्भवतः प्रातःकाल में सूर्य-रश्मि के प्रवेश एवं मध्यान्ह के उपताप सूर्य की किरणों के प्रवेश-निषेध की दृष्टि से वर्णित है। सम्भवतः महर्षि सुश्रुत ने मध्यान्ह की सूर्य-रश्मि के प्रवेश को उचित समझकर एवं वायु आदि के समुचित प्रवेश की दृष्टि से दक्षिण की ओर द्वार रखने का निर्देश किया है। महर्षि सुश्रुत एवं भावमिश्र वर्णित आयाम अत्यधिक न्यून प्रतीत होता है, सम्भवतः वह आयाम केवल प्रसव कराने के लिए निर्मित कक्ष का हो न कि सूतिका के रहने के लिए। महर्षि सुश्रुत-वर्णित जाति-भेद से काष्ठ-भिन्नता का समुचित स्पष्टीकरण कठिन है सम्भवतः यह शरीर के वर्ण की दृष्टि से अथवा सूतिकागार-निर्माण में प्रयुक्त काष्ठ के वर्ण को देखकर प्रसूता स्त्री की जाति के ज्ञानार्थ उल्लिखित हो।

As construction of house has been advised before or during ninth month of pregnancy, thus it appears that a new accouchement room/ward was constructed for every parturient woman. Construction with wood might have been advised due to three reasons i.e. easy availability, protection from thunder-bolt because the wood is bad conductor of electricity and easy to dismantle after completion of its purpose. The house facing to the east will have easy access to wind and rays of rising sun, while facing to the north will prevent entry of rays of mid-day hot sun, probably Suśruta might have preferred the entry of rays of mid-day sun and also good air, thus he advised the door of the house to be on south instead of north. The dimensions described by Suśruta seem to be too small for a ward, however, these might be referring to the labour room not to the ward.

(आ) सूतिकागार में संग्रहणीय पदार्थ (The articles to be stored in accouchement ward/room)

तत्र सर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चलकालबिड्लवणविडङ्गकुष्ठकिलिमनागरपिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीमण्डूकपर्ण्येलालाङ्गलीवचाचव्यचित्रकचिरबिल्वहिङ्गुसर्षपलशुनकतककणकणिकानीपातसीबल्वजभूर्जकुलत्थमैरेयसुरासवाः सन्निहिताः स्युः; तथाऽश्मानौ द्वौ, द्वे कु(च)ण्डमुसले, द्वे उदूखले, खरवृषभश्च, द्वौ च तीक्ष्णौसूचिपिप्पलकौ सौवर्णराजती, शस्त्राणि च तीक्ष्णायसानि, द्वौ च बिल्वमयौ पर्यङ्कौ, तैन्दुकेङ्गुदानि च काष्ठान्यग्निसन्धुक्षणानि, स्त्रियश्च बह्व्यो बहुशः प्रजाताः सौहार्द्रयुक्ताः सततमनुरक्ता प्रदक्षिणाचाराः प्रतिपत्तिकुशलाः प्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविषादाः क्लेशसहिष्णोऽभिमताः, ब्राह्मणाश्चाथर्ववेदविदः, यच्चान्यदपि तत्र समर्थं मन्येत, यच्चान्यच्च ब्राह्मणा ब्रूयुः स्त्रियश्च वृद्धास्तत्कार्यम् ॥ (च० सं० शा० ८/३४)

—सर्वोपकरणं सन्निहितज्वलनं —॥ (अ० सं० शा० ३/१५)

.....सम्भारैः सम्पन्नं .....। (अ० हृ० शा० १/७३)

सूतिकागार सर्पि, तैल, मधु, सैंधव, सौवचंल, काला एवं विड् लवण, विडङ्ग, कुष्ठ, किलिम (देवदारु[1]), नागर, पिप्पली, पिप्पलीमूल, हस्तिपिप्पली, मण्डूकपर्णी, एला, लाङ्गली, वचा, चव्य, चित्रक, चिरबिल्व, हिङ्गु, सर्षप, लशुन, कतक, कणकणिका (विशिष्ट औषधि[1]), नीप, अतसी, बल्वज, भूर्ज (पत्र), कुलत्थ, मैरेय, सुरा एवं आसव से युक्त होना चाहिए, दो पत्थर (के टकड़े), दो छोटे या बड़े मूसल,[2] दो उदूखल, खर, वृषभ, दो स्वर्ण या रजत निर्मित तीक्ष्ण सूचीपिप्पलक (सूची सदृश शस्त्र), लोहे के बने तीक्ष्ण शस्त्र (प्रसवोपयोगी), बिल्व-निर्मित दो पलङ्ग, अग्नि प्रज्वलित करने के लिए तिन्दुक तथा इंगुदी की लकड़ी एवं बहुप्रसूता, सौहार्द्र युक्त, सतत सेवानुरत, सुन्दर आचरण वाली, प्रसव-कार्य में कुशल, प्रकृतितः प्रेम करने वाली, विषाद से रहित, क्लेश को सहन करने वाली, (प्रसविनी के) मन को प्रसन्न करने वाली स्त्रियों से युक्त हो तथा अथर्ववेद के ज्ञाता ब्राह्मण भी वहाँ उपस्थित रहें। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी वस्तु ब्राह्मण या वृद्ध स्त्रियाँ कहें वह वहाँ रखनी चाहिए।

महर्षि वाग्भट (दोनों) ने संक्षेप में लिखा है कि सूतिकागार सभी आवश्यक उपकरणों से युक्त होना चाहिए। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने प्रज्वलित अग्नि को भी रखने के लिए कहा है। अन्यत्र प्रसव कराने में कुशल बहुप्रजाता आदि स्त्रियों की उपस्थिति महर्षि चरक सदृश ही वर्णित की है[2]।

महर्षि भेल ने लिखा है कि सूतिकागार में दो बिल्वमय पलङ्ग, दो सूप, उदूखल एवं मूसल दो दो, गन्ध-द्रव्य, यवागू, सर्पि, तैल एवं सर्षप पहिले ही एकत्रित कर लें[3]।

Ghṛta, oil, honey; rock, *sauvarcala*, black and *viḍ* salt; *viḍaṅga, kuṣṭha, devadāru, nāgara, pippalī, pippalīmūla, hastipippalī, maṇḍūkaparṇī, elā, lāṅgalī, vacā, cavya, citraka, cirabilva, hiṅgu, sarṣapa, laśuna,* fruit of *kataka, kaṇakaṇikā, nīpa, atasī, balvaja, bhūrjapatra* and *kulattha*, etc. drugs; *maireya, surā* and *āsava* etc. bevarages; two pieces of stone, two pestles, two mortars, a donkey, a bull, two needles made of gold or silver, sharp instruments (to be used during labour) made of iron, two beds made with the wood of *bilva*, and woods of *tinduka* and *iṅgudī* for litting the fire should be stored in labour ward. Multiparous women who are good-hearted, continuously busy in service, possessing strong

१. किलिमं देवदारुः। कणः 'कुण्डक' इति ख्यातः, कणिका तु कुण्डकात् स्थूलास्तण्डुलावयवा उच्यन्ते.....कुण्डमुसले इति ह्रस्वमुसले किंवा चण्डमुसले इति पाठः, तदा गुरुतरमुसले इत्यर्थः ॥ (च० सं० शा० ८/३४ की चक्र० टीका)

२. अ० सं० शा० ३/१६ (सूतिकागार-निवास विधि में वर्णित)

३. अथात्र पूर्वसङ्कल्पिताः स्युः द्वौ खलु(बिल्व)मयौ पर्यङ्कौ, शूर्पौ च द्वौ, उलूखलमुसलौ, गण्डो(न्यो)प(पा)वा(दा)नं, य(वा)गूः सर्पिश्च तैलं च सर्षपाश्चेति ॥ (भे० सं० शा० ८/७)

Scanned with CamScanner

character, experienced in conducting the labour, with basically affectionate in nature, free from grief, having good indurance, and capable of making parturient woman happy alongwith *brāhmaṇas* possessing knowledge of *atharvaveda* should remain present there. Besides all these other things advised by *brāhmaṇas* or old ladies should also be stored.

Vāgbhaṭas say that all essential items should be stored. Bhela has enlisted two beds made with the wood of *bilva*, two winnowing baskets, two pestles with mortars, fragrant drugs, rice- gruel, *ghṛta*, oil and *sarṣapa* in the list.

(इ) सूतिकागार में प्रवेश एवं निवास-विधि (Entry and stay in accouchement ward)

तत्रः प्रवृत्ते नवमे मासे पुण्येऽहनि प्रशस्तनक्षत्रयोगमुपगते प्रशस्ते भगवति शशिनि कल्याणे कल्याणे च करणे मैत्रे मुहूर्त्ते शान्तिं हुत्वा गोब्राह्मणमग्निमुदकं चादौ प्रवेश्य गोभ्यस्तृणोदकं मधुलाजांश्च प्रदाय ब्राह्मणेभ्योऽक्षतान् सुमनसो नान्दीमुखानि च फलानीष्टानि दत्त्वोदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्य पुनराचम्य स्वस्ति वाचयेत्। ततः पुण्याहशब्देन गोब्राह्मणं समनुवर्तमाना प्रदक्षिणं प्रविशेत् सूतिकागारम्। तत्रस्था च प्रसवकालं प्रतीक्षेत ॥
(च० सं० शा० ८/३५)

नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ ॥ (सु० सं० शा० १०/५)

तत्रानुकूलेषु नक्षत्रादिषु पुण्याहशब्देन गोब्राह्मणवृद्धान्नत्वाऽऽवर्तमाना प्रदक्षिणं प्रविश्य बहुशः प्रसूताभिरनुरक्ताभिरविषादाभिः क्लेशक्षमाभिः परिवृता स्वस्त्ययनपराऽनुलोमनैराहारविहारैरनुलोमितवातमूत्रपुरीषा प्रसवकालमुदीक्षेत। स्वल्पेऽपि च विण्मूत्रविबन्धे फलवर्तीः प्रणिदद्यात् ॥ (अ० सं० शा० ३/१६)

——साधकेऽहनि ॥ ७३॥

तत्रोदीक्षेत सा सूतिं सूतिकापरिवारिता ॥ ७४॥ (अ० ह० शा० १)

(गर्भिणी) नवम मास के प्रारम्भ हो जाने पर पुण्य दिन में, भगवान चन्द्रमा का योग शुभ नक्षत्रों, उच्चस्थान तथा कल्याणकारी-करण होने के काल में तथा मैत्र मुहूर्त में शान्ति-होम कराकर, गो, ब्राह्मण, अग्नि तथा जल को प्रथम प्रवेश कराकर, गायों को (खाने के लिए) तृण, जल, मधु एवं लाजा देकर, आसन पर स्थित ब्राह्मणों को पहिले जल देकर (जल से हाथ पैर गर्भिणी द्वारा धुलवाकर) अक्षत, पुष्प, नान्दीमुख फल (नान्दीमुख श्राद्ध में हित फल या उसके मुखाकृति के खर्जूरादि फल) देकर अभिवादन करके स्वयं आचमन करे एवं स्वस्तिवाचन करावे। तत्पश्चात पुण्य शब्दों का उच्चारण करते हुए गौ एवं ब्राह्मण का अनुसरण करती हुई दक्षिण पैर से सूतिकागार में प्रवेश करे (चि० ७) एवं वहीं रहकर प्रसवकाल की प्रतीक्षा करे।

महर्षि सुश्रुत ने नवम मास की प्रशस्त तिथि में सूतिकागार में प्रवेश करने का निर्देश दिया है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि अनुकूल नक्षत्रों में माङ्गलिक शब्दों के साथ गौ, ब्राह्मण तथा वृद्ध जनों को नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करके (सूतिकागार में गर्भिणी) प्रवेश करे तथा प्रसूता से स्नेह रखने वाली, आलस्य न करने वाली, क्लेश सहिष्णु अनेकों स्त्रियों के साथ मंगलकर्मों में लगी हुई, अनुलोम करने वाले आहार विहार के प्रयोग से वात, मूत्र एवं पुरीष का अनुलोमन करती हुई प्रसव-काल की प्रतीक्षा करे। मल-मूत्र के तनिक भी विबन्ध होने पर फलवर्ति का प्रयोग करे।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि पुण्य दिन में (गर्भिणी सूतिकागार में) प्रवेश करके बहुप्रसूता स्त्रियों के साथ रहती हुई प्रसव की प्रतीक्षा करे। टीकाकार अरुणदत्त ने 'सूतिकापरिवारिता' शब्द की व्याख्या अनेकों बार की प्रसवानुभूत तथा तत्कालोचित व्यवहार में कुशल स्त्री किया है[1]।

१. सूतिकापरिवारिता-अनेकबारप्रसवानुभूततत्कालोचितव्यवहारकुशलाभिः स्त्रीभिः परिवारिता ॥
(अ० ह० शा० १/७४ की अरुणदत्त टीका)

After beginning of ninth month, on some auspicious day, when moon situated in highest place has association of other benefical planets, then during *maitra* period pacifying oblation should be offered. Now the cows, *brāhmaṇas* along with fire and water should be made to enter the ward. The pregnant woman should offer grass, water, honey and parched paddy to the cows, should wash hands and feet of seated *brāhmaṇas*, offer them washed rice, flowers and *nāndīmukha* fruit (the fruits used in *nāndīmukha* rites or *kharjūra* etc. fruits) and reverential salutation, then she should sip the water and take blessings for welfare. Now the pregnant woman should enter the labour ward by keeping her right foot first and following cows and *brāhmaṇas* reciting holy words (fig. 7). She should stay there and wait for onset of labour.

Vāgbhaṭa ı says that the pregnant woman should enter labour ward during favourable *nakṣatras*, having enchantation of auspicious words, after reverential salutation to cow, *brāhmaṇas* and elders, be in constant association of women having qualities described earlier. She should remain busy in auspicious virtues and use such dietetics which facilitate proper excretion of flatus, urine and feces. In cases of constipation or retention of urine *phalavarti* should be used.

Suśruta and Vāgbhaṭa II have given similar but very short description.

विमर्श (Comments)

महर्षि वाग्भट ने सूतिकागार में प्रवेश का कोई निश्चित काल नहीं बताया उन्होंने नवम मास के पूर्व ही सूतिकागार निर्माण की व्यवस्था बताई है जिससे स्पष्ट होता है कि नवम मास के आने पर उसमें स्त्री का प्रवेश कराया जाय। महर्षि चरक ने स्त्री के प्रवेश के पूर्व गौ एवं ब्राह्मण के प्रवेश का विधान दिया है जो संभवतः उस काल में प्रचलित सामाजिक संस्कारों के कारण हो। यह भी संभव है कि पूर्व ही निर्मित सूतिकागार में उसके सामान्य जनपद से दूर होने के कारण कोई अवांछित वायु या जीव प्रविष्ट कर गया हो अतः गर्भिणी का प्रथम प्रवेश निषिद्ध किया गया तथा ब्राह्मण एवं गौ को आगे प्रवेश कराके अनुगमन कराना ही सुरक्षित समझा गया हो।

सूतिकागार में निवास के दो लाभ हो सकते हैं (१) स्त्री का सामान्य जन-सम्पर्क से दूर रहने के कारण किसी भी औपसर्गिक व्याधि के उपसर्ग से सुरक्षित रहना।

(२) मानसिक रूप से प्रसव-वेदना सहन करने के लिए तैयार होना, क्योंकि यह प्रमाणित तथ्य है कि स्त्री की मानसिक अवस्था का प्रसव-वेदनाओं में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

Though Vāgbhaṭa has not mentioned specific period for entry in labour ward, however, he has also accepted its construction before ninth month, others have clearly mentioned stay in labour ward from ninth month of pregnancy. Entry of cow and *brāhmaṇas* described by Caraka might have been given due to social customs prevailing at that time. The labour ward was constructed at a distant place from normal village / city where-in likelyhood of entry of some harmful or unwanted animals or gases can not be ruled out, these can injure the pregnant woman. Initial entry of cow and *brāhmaṇas* will avoid this risk.

Stay in labour ward may prevent the contact of infections since the pregnant woman will be seggregated, besides it may also prepare woman psychologically to withstand the labour pains.

Scanned with CamScanner

प्रसव के समय गर्भाशयान्तर गर्भ की स्थिति (Intrauterine situation of the fetus during labour)

स चपोस्थितकाले जन्मनि प्रसूतिमारुतयोगात् परिवृत्त्यावाक्शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन, एषा प्रकृतिः, विकृतिः पुनरतोऽन्यथा। परं त्वतः स्वतन्त्रवृत्तिर्भवति॥ (च० सं० शा० ६/२४)

स योनिं शिरसा याति स्वभावात् प्रसवं प्रति। (सु० सं० शा० ५/४५)

एवं जठरस्थो गर्भो जन्मकाले तु प्रसूतिमारुतयोगात्परिवृत्त्याऽवाक्शिरा निष्क्रामत्यनुचापरा च्युता मातृहृदयात्। एषा प्रकृतिः। विकृतिरतोऽन्यथा॥ (अ० सं० शा० २/३५)

वह (गर्भ) जन्मकाल उपस्थित होने पर प्रसूति-मारुत के योग से घूमकर नीचे की ओर या आगे की ओर[1] शिर वाला होकर अपत्य पथ से निकलता है यह प्रकृति इससे भिन्न विकृति है। प्रसव के पश्चात् वह गर्भ स्वतंत्र-वृत्ति हो जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि वह (गर्भ) प्रसव के प्रति (समय में) स्वभाव से ही शिर के द्वारा योनि (प्रजनन-पथ) की ओर चलता है। टीकाकार डल्हण ने इस स्वभाव के लिए पूर्वकर्मों को कारण माना है[2]।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि उदरस्थ गर्भ जन्मकाल में प्रसूति-मारुत के योग से घूमकर नीचे की ओर शिर वाला होकर निकलता है। तत्पश्चात् मातृ-हृदय के च्युत होकर अपरा बाहर निकलती है। यह प्रकृति एवं अन्य विकृति है। टीकाकार इन्दु ने उदर में पृष्ठाभिमुख स्थित गर्भ का घूमकर नाभि की ओर अभिमुख होकर नीचे की ओर शिर करके निकलना लिखा है[3]।

महर्षि भेल ने लिखा है कि जो अंग आगे होता है वह पहिले उत्पन्न होता है, पुनर्वसु आत्रेय का मत है कि गुरुतर होने से शिर पहिले उत्पन्न होता है[4]।

At the onset of labour the head of the fetus gets turned and comes forward due to action of *prasūti-māruta* and then is expelled through vaginal passage; this is normalcy, other situations are abnormal. For this natural phenomena deeds of previous life are held responsible by Dalhaṇa. After delivery of fetus placenta getting detached from maternal heart comes out. After delivery the fetus becomes independent for its nourishment. Indu says that fetus situated facing back of the mother gets turned and then facing umbilicus and keeping head at the lowest is delivered. Bhela says that fetal part positioned in the front (at the pelvic brim) delivers first. Punarvasu Ātreya opines that head being heaviest comes first.

विमर्श (Comments)

महर्षि चरक ने गर्भाशयस्थ गर्भ की ऊर्ध्व शिर-स्थिति का स्पष्टतया वर्णन किया है सुश्रुत एवं वाग्भट ने पृष्ठाभिमुख तथा संकुचिताङ्ग कह कर शिर की स्थिति का वर्णन नहीं दिया[5] परन्तु सभी आचार्यों ने प्रसव के समय शिर का ही सामान्य

१. परिवृत्यावाक्शिरा-पाठभेद।

२. ……स्वभावात् पूर्वकर्मापेक्षात् ……॥ (सु० सं० शा० ५/४५ की डल्ह० टीका)

३. ……जठरस्थो गर्भः प्रसूतिवशात् पृष्ठाभिमुखत्वात् परिवृत्य नाभ्याभिमुखो भूत्वाऽवाक्शिरा निष्क्रामति, अवाक्शिरा अधोमुखः॥ (अ० सं० शा० २/३५ की इन्दु टीका)

४. तस्य त(य)दुत्तरं तत् प्रथमं प्रतिपद्यते। तस्मात्तस्य शिरः प्रथमं, पुनर्वसुरात्रेयः प्रतिपद्यते, तदस्य गुरुतरं भवतीति॥ (भे० सं० शा० ४/३५)

५. च० सं० शा० ६/२२; सु० सं० शा० ५/४५; अ० सं० शा० २/३१ (पृष्ठ १८८-१८९)

रूप से पहिले निकलना लिखा है। शिर नीचे की ओर प्रसव-काल में परिवर्तित न हो अधिकांशतः गर्भावस्था के अंतिम त्रैमास में ही परिवर्तित हो जाता है। यद्यपि प्रसव के कुछ ही काल पूर्व भी कतिपय स्त्रियों में गर्भ स्थिति का परिवर्तन होता है पर यह सामान्य नियम नहीं माना जा सकता। चूंकि अधिकांश स्त्रियों में गर्भावस्था के सप्तम-मास तक गर्भ की स्थिति निश्चित नहीं होती परन्तु प्रसव के समय लगभग ९०- प्रतिशत स्त्रियों में शीर्षोदय ही होता है सम्भवतः इसी कारण से आचार्यों ने प्रसव-काल के परिवर्तन का वर्णन दिया हो।

परिवृत्य शब्द से प्रसवावस्था के समय होने वाले शिर के अन्तरावर्तन (इन्टॅरनॅल रोटेशॅन) का ग्रहण कर सकते हैं यहाँ पर शिर शब्द से शरीर के उपाङ्ग शिर का सर्वोच्च भाग (उपशीर्ष या वॅरटेक्स) ग्रहण करना होगा क्योंकि मूढ़गर्भ में मुखोदय आदि का वर्णन पृथक् दिया गया है अर्थात् प्रसव के समय गर्भ के ऊर्ध्व भाग शिर का अन्तरावर्तन होकर उसका सर्वोच्च भाग शिर (उपशीर्ष या वॅरटेक्स) सामने की ओर आकर सामान्य प्रसव होता है। यह तथ्य गर्भ के परिवर्तित होने के बाद उत्पन्न लक्षणों के देखने से पुष्ट हो जाता है।

सामान्यतया गर्भ माता की पीठ की ओर मुख (पृष्ठाभिमुख) करके प्रसवित होता है अतः टीकाकार इन्दु की 'नाभ्याभिमुख' व्याख्या उचित प्रतीत नहीं होती; क्योंकि गर्भ का मुख माता की नाभि की ओर हो जाने पर स्वभावतः गर्भ का पृष्ठ माता के मेरुदण्ड पर आ जाएगा एवं इस स्थिति में प्रसव नगण्य (समस्त शीर्षोदय का ८ प्र० श०) ही होता है। यदि यहाँ पर 'नाभ्याभिमुख' का अर्थ 'गर्भ की स्वयं की नाभि की ओर' करें तो आधुनिक ज्ञान पर आधारित वर्णन से सामंजस्य हो सकता है क्योंकि गर्भ का शिर अत्यधिक झुक जाने के कारण उसका मुख स्वयं की नाभि की ओर हो जाता है।

वायु के भेदों के वर्णन में कहीं भी प्रसूति-मारुत शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। अधोभाग के बहिर्मुख स्रोतसों द्वारा मल, मूत्र, आर्तव एवं गर्भ आदि का निष्काशन कार्य अपान वायु का है[1]। प्रसव सम्बन्धी विशिष्ट कार्य करने वाली अपान वायु को ही प्रसूति-मारुत शब्द से आचार्यों ने सम्बन्धित किया है।

मूढ़गर्भान्तर्गत आचार्यों ने गर्भ का शिर, अंस एवं जघन तीन प्रकार से योनि पथ में सङ्ग माना है[2], अर्थात् गर्भ श्रोणि-गुहा में इन्हीं तीन स्थितियों से अवरित होता है। इन तीनों स्थितियों को क्रमशः शिर, तिर्यक् या अनुप्रस्थ एवं स्फिग् स्थिति का द्योतक मान सकते हैं।

In normal intrauterine situation of fetus Caraka has described upward position of head, while others not specifying position of head have accepted universely flexed attitude. However, all of them agree that head position / delivery is normal. Head usually attains downward situation in the last trimester of pregnancy, however, in exceptional cases it does rotate just prior to labour. Since more than 95% deliveries occur in head position, thus all the classics have mentioned this normal situation.

With the word "*parivṛtya*" or rotation actually internal rotation occuring during labour should be considered. In this context head refers to vertex, because face, brow etc. have been mentioned under obstructed labour, thus the description should be considered as forward position of vertex obtained by internal rotation; which is corroborated by the clinical feature after *parivartana* of *garbh*.

१. अ) ……। अपान ……। सृजत्यावर्तवगर्भौ च…। (च० सं० चि० २८/१०, ११)
आ) ……अपानः काले कर्षति चाप्यधः ……। समीरणः शंकृन्मूत्रं शुक्रगर्भार्तवानि च॥ (सु० सं० नि० १/१९)
इ) अपानो……विण्मूत्रशुक्रार्तवगर्भनिष्क्रमणादिक्रियः॥ (अ० सं० सू० २०/४)
ई) अपानो ……। शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः। (अ० हृ० सू० १२/९)

२. सु० सं० चि० १५/४ एवं अ० सं० शा० ४/३४ (मूढ़गर्भ के विशिष्ट लक्षणों में वर्णित)

Scanned with CamScanner

In normal situation fetus faces back of the mother. Fetus facing umbilicus of the mother would mean occipito posterior position which is only 8.0% of all vertex presentations, not a normal phenomenon. Thus here the description of Indu should be considered as fetus facing its own umbilicus due to exaggerated flexion.

In the classifications of *vāyu* word "*prasūti-māruta*" has not appeared. All the movements of lower abdominal visceras are controlled by *apāna vāyu*. Probably *apāna vāyu* controlling specifically the process of expulsion of fetus has been referred as "*prasūti-māruta*"

Under obstructed labour fixation of fetus in maternal passage in said to occur in three ways i. e. head, shoulder and thighs or hips, this indicates that fetal ovoid descends in maternal passage in these three ways i. e. both the types of longitudinal lie (vertex and breech) and transverse or oblique lie. In other words this may be considerd as reference for lie of the fetus.

प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के लक्षण (Clinical features of different stages of labour)

अ) प्रजायिनी के लक्षण (Clinical features of Prajāyinī)

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने। सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी॥
(सु० सं० शा० १०/६)

कुक्षि में शिथिलता, हृदय-बंधन-मुक्ति तथा जघन (प्रदेश) में वेदना होने पर (स्त्री को) प्रजायिनी समझना चाहिए।

आचार्य भावमिश्र ने उपर्युक्त लक्षण ही प्रसवोत्सुका स्त्री के वर्णित किये[1] हैं।

Woman having laxity of *kukṣi* (abdomen/flanks), release of bond of *hṛdaya* and pain in thighs should be known as *prajāyinī*. Bhāvaprakāśa has termed this stage as '*prasavotsukā*' (eager to deliver).

आ) आसन्न प्रसवा या उपस्थित प्रसवा के लक्षण (Clinical features of āsanna prasawā or upasthita prasawā)

तस्यास्तु खल्विमानि लिङ्गानि प्रजननकालमभितो भवन्ति; तद्यथा-क्लमो गात्राणां, ग्लानिराननस्य, अक्ष्णोः शैथिल्यं, विमुक्तबन्धनत्वमिवक्षसः, कुक्षेरवस्रंसनम्, अधोगुरुत्वं, वंक्षणवस्तिकटीकुक्षिपार्श्वपृष्ठनिस्तोदः, योनेः प्रस्रवणम्, अनन्नाभिलाषश्चेति, ततोऽनन्तरमावीनां प्रादुर्भावः, प्रसेकश्च गर्भोदकस्य। (च० सं० शा० ८/३६)

तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च॥ (सु० सं० शा० १०/७)

तत्रासन्नप्रसवायाः क्लमो ग्लानिर्मुक्तबन्धने इवाक्षिणी निष्ठीविकामूत्रपुरीषबाहुल्यं शिथिलकुक्षिताऽधोगुरुत्वमन्नानभिलाषो वेदनोदरहृदयकटीबस्तिवङ्क्षणेषु तोदभेदशूलस्फुरणस्रवणानि च योन्या भवन्ति। तदनन्तरमावीनां प्रादुर्भावो गर्भोदकप्रवाहश्च॥ (अ० सं० शा० ३/१७)

अद्यः श्वः प्रसवे ग्लानिः कुक्ष्यक्षिश्लथताक्लमः॥७४॥
अधोगुरुत्वमरुचिः प्रसेको बहुमूत्रता। वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृदबस्तिवङ्क्षणे॥७५॥

१. जाते हि ·····। ····· नारी विज्ञेया प्रसवोत्सुका॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३४२; सु० सं० सदृश)

योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानि च। आवीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुतिः॥७६॥
(अ० हृ० शा० १/७४ से ७६)

अथ हीमानि रूपाणि गर्भिण्या उपलक्षयेत्। यानि दृष्ट्वा विजानीयाद्बालजन्मा(न्म)न्युपक्रमेत(मम्)॥
मुखग्लानिः क्लमोऽङ्गानामक्षिबन्धनमुक्तता। कुक्षेश्च स्यादवस्रंसस्त्वधोभागस्य गौरवम्॥
पृष्ठपार्श्वकटीबस्तिवंक्षणं चातितुद्यति।
योनिप्रस्रवणादार्यं (शु० पा० प्रसवणीदार्यं) भक्तद्वेषारतिक्लमाः॥ (का० सं० शा० ५/२१ से २३)

प्रजनन काल के समीप आ जाने पर उसमें निम्न लक्षण होते हैं जैसे-गात्रों में क्लम (शरीर में थकावट), मुख की ग्लानि (मुख की कान्ति का कम हो जाना या उदासी), आँखों का शैथिल्य, वक्ष के बंधनों से विमुक्तता की प्रतीति, कुक्षि का अवस्रंसन, अधोभाग की गुरुता; वंक्षण, बस्ति, कटि, कुक्षि, पार्श्व एवं पृष्ठ में वेदना, योनि से स्राव तथा अन्न की आकांक्षा न होना। तत्पश्चात् आवी (प्रसव वेदनाओं) का प्रादुर्भाव तथा गर्भोदक का प्रसेक होता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि उपस्थित प्रसवा (स्त्री) के कटि एवं पृष्ठ में तथा उसके चारो ओर बार बार पीड़ा होती है, मल की प्रवृत्ति, मूत्र का स्राव एवं योनिमुख से श्लेष्मा का स्राव होता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि आसन्न प्रसवा को क्लम, ग्लानि, आँखों के बन्धनों से मुक्ति हो जाने सदृश प्रतीति (आँखें बाहर को निकली सी आना), निष्ठीवन (बार बार थूकना), मूत्र एवं पुरीष का बाहुल्य (बार बार प्रवृत्ति), कुक्षि की शिथिलता, अधोभाग में गुरुता, अन्न की अभिलाषा न होना; उदर, हृदय (उदर का ऊर्ध्व भाग), बस्ति, कटि एवं वंक्षण में वेदना, योनि में तोद (चुभने की वेदना), भेद(फटने सदृश वेदना), शूल, स्फुरण तथा योनि से स्राव होता है; तत्पश्चात् आवी का प्रारम्भ एवं गर्भोदक का प्रवाह होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि आजकल में प्रसव होने की स्थिति में ग्लानि, कुक्षि एवं अक्षि (आँखों) की शिथिलता, क्लम, अधोभाग में गुरुता, अरुचि, प्रसेक (मुख प्रसेक), बहुमूत्रता; उरु, उदर, कटि, पृष्ठ, हृदय, बस्ति तथा वंक्षण में वेदना, योनि में तोद, भेद, शूल, स्फुरण तथा योनिस्राव होते हैं; तत्पश्चात् आवियों का प्रादुर्भाव एवं गर्भोदक का स्राव होता है। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि गर्भ के अभिमुख हो जाने, आवि-प्रादुर्भाव तथा गर्भोदक-स्रुति हो जाने से स्त्री उपस्थित प्रसवा है, यह समझना चाहिए[1]।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि गर्भिणी के निम्न लक्षणों को देखकर यह समझ ले कि अब बालक के जन्म का उपक्रम है (अर्थात् प्रसव होने वाला है)। मुख की ग्लानि, अङ्गों में क्लम, आँखों के बंधन की मुक्तता, कुक्षि का अवस्रंसन, अधोभाग की गुरुता; पृष्ठ, पार्श्व, कटि, बस्ति तथा वंक्षण प्रदेश में अत्यधिक तोद, योनि से स्राव एवं उसका विस्फार, भोजन से अरुचि, अरति तथा थकावट आदि लक्षण होते हैं।

आचार्य भावमिश्र ने लिखा है कि आसन्न-प्रसवा को कटि एवं पृष्ठ में व्यथा, बार-बार मल एवं मूत्र की प्रवृत्ति होती है[2]।

When the woman is likely to deliver shortly, she feels exhausted or fatigued, her face becomes languid, eyes (eyes lids) become lax (droopy). She feels as if bonds of chest are released, *kukṣi* (uterus) comes down, lower abdomen becomes heavy. She feels pain in groins, urinary bladder and sacral region, flanks and back. Discharges per vaginum and anorexia appear. This is followed by appearance of *āvī* (labour pains) and excretion of *garbhodaka* (liquour amni).

१. उपस्थित गर्भा अभिमुखीभूतगर्भाभाविजन्मोदकस्रावादिना ज्ञात्वा। (अ० हृ० शा० १/७६ की अरुण० टीका)
२. आसन्नप्रसवायास्तु कटीपृष्ठं तु सव्यथम्। भवेन्मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३४३)

Scanned with CamScanner

Suśruta and Bhāvaprakāśa say that during this period there appears recurrent severe pain around back and sacrum. Excretion of feces and urine with increased frequency and mucoid discharges per vaginum appear.

Vāgbhaṭas corroborating Caraka add that she has tendency to spit repeatedly, frequency of micturition and defecation increases. Pricking or tearing type of pain, and quivering in vagina along with discharges occur.

Kāśyapa has added dilatation of *yoni* (cervix and vagina) as a sign.

(इ) गर्भ के परिवर्तित या अवाक् अर्थात् नीचे की ओर प्रवृत्त होने पर लक्षण (Clinical features after parivartana of garbha or after its descent)

स यदा जानीयाद्विमुच्य हृदयमुदरमभ्यास्त्वाविशति, बस्तिशिरोऽवगृह्णाति, त्वरयन्त्येनामाचार्याः, परिवर्ततेऽधो गर्भ इति; .....। (च० सं० शा० ८/३९)

एवमवाक् परिवर्तते गर्भः। तस्य लक्षणम्। विमुच्य हृदयमुदरमाविशति बस्तिशिरोऽवहगृह्णाति। त्वरयन्त्येनामाचार्याः। (अ० सं० शा० ३/२०, २१)

गर्भः प्रयात्यवागेवं, तस्मिन्नूर्ध्वं हृद्विमोक्षतः ॥७९॥
आविश्य जठरं गर्भो बस्तेरुपरि तिष्ठति। आव्योऽभित्वरयन्त्येनां .....॥८०॥ (अ० हृ० शा० १)
यदा गर्भोदकं योनौ सशूलं संप्रवर्तते। कालेन चोदितो गर्भो विमुच्य हृदयोदरम्॥
बस्तिशीर्षमधोभागमवगृह्णाति जन्मनि। ग्लानिश्च जायतेऽत्यर्थं योन्युत्पीडनभेदनम्॥
इत्येते कारणैर्विद्याद्गर्भस्य परिवर्तनम्॥ (का० सं० शा० ५/४४ से ४६)

वह (चिकित्सक) जब यह जान ले कि वह (गर्भ) हृदय को छोड़कर उदर में प्रवेश कर रहा है, बस्तिशिर को पकड़ता है; आवी बहुत शीघ्र आने लगी है एवं वह गर्भ नीचे की ओर परिवर्तित हो गया है (तब कुछ ही देर में प्रसवित होने वाला है)।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि गर्भ के अवाक् परिवर्तित होने या नीचे आने पर ये लक्षण होते हैं–(वह गर्भ) हृदय को छोड़कर उदर में प्रविष्ट होता है, बस्तिशिर को पकड़ता है एवं आवी जल्दी जल्दी आने लगती हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि गर्भ के अवाक् हो जाने पर निम्न लक्षण होते हैं–हृदय के बंधनों की मुक्ति हो, (वह गर्भ) उदर में प्रविष्ट हो बस्ति के ऊपर स्थित होता है। आवी इसमें बहुत ही शीघ्र आने लगती है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि जब शूल के साथ गर्भोदक योनि से प्रवर्तित होने लगता है एवं काल से प्रेरित हुआ गर्भ जन्म के लिए (उत्पन्न होने के लिए) हृदय को छोड़कर उदर, बस्तिशीर्ष तथा अधोभाग का अवग्रहण करता है तब ग्लानि, योनि में अत्यधिक उत्पीडन (दबाव का अनुभव) तथा भेदन (फटने सदृश वेदना) होता है, इन कारणों (लक्षणों) से जाने कि गर्भ का परिवर्तन हो गया है।

महर्षि भेल ने प्रसवावस्था का कोई विशिष्ट नाम न देकर केवल इतना ही लिखा है कि वह स्त्री जब जान जाये कि मेरी कुक्षि अवभृष्ट है या नीचे खिसक गई है, हृदय विमुक्त हो गया है तथा योनि से स्राव होने लगा है तो प्रसव होने वाला है यह समझना चाहिए[1]।

When the fetus descends further or is going to be expelled *(parivartita)* it leaves the *hṛdaya* (cardiac region), enters or descends in lower abdomen, catches or stays at the region

१. भे० सं० शा० ८/८ (पृष्ठ ४४३)

of neck of bladder and the frequency and duration of labour pains increases. Kāśyapa had added languor, feeling of severe compression and tearing pain in vagina. Bhela has included discharges per vaginum in clinical features.

विमर्श (Comments)

लक्षणों में सभी आचार्यों ने वक्ष या हृदय के बन्धनों की विमुक्ति शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य गर्भ के नीचे श्रोणिगुहा में प्रविष्ट हो जाने के कारण वक्ष के भाग में दबाव की कमी या आराम की अनुभति है। अन्य सभी लक्षण क्रमशः गर्भ के नीचे योनिपथ में आने के कारण मूत्राशय एवं मलाशय में उत्पन्न भार-जन्य तथा प्रसव-वेदनाओं के कारण उत्पन्न थकावट के हैं। महर्षि चरक एवं वाग्भट ने 'गर्भ के परिवर्तित' होने का वर्णन दिया है जिसका स्पष्टीकरण पृष्ठ ४३४ से ४३६ में दिया जा चुका है।

महर्षि चरक एवं वाग्भट ने प्रसव के लक्षणों को दो अवस्थाओं से विभक्त किया है। प्रजननकालाभिमत स्त्री या "आसन्न प्रसवा" के लक्षण एवं "गर्भ के परिवर्तित हो जाने पर लक्षण" तथा महर्षि सुश्रुत ने 'प्रजायिनी' एवं 'उपस्थितप्रसवा' के लक्षणों का उल्लेख किया है। लक्षणों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि सुश्रुत-वर्णित प्रजायिनी या भावमिश्र उल्लिखित प्रसवोत्सुका प्रसव की प्रथम अवस्था के प्रारम्भ के लक्षणों या प्रसव के एक या दो दिन पूर्व के लक्षणों का एवं उपस्थित प्रसवा के लक्षण प्रसव की प्रथमावस्था के अंतिम अथवा द्वितीयावस्था के प्रारम्भ के लक्षणों का वर्णन है। महर्षि सुश्रुत सदृश लब्ध-प्रतिष्ठ शल्यविद् ने यहाँ पर गर्भोदक का वर्णन क्यों नहीं दिया कहना कठिन है। महर्षि चरक एवं वाग्भट वर्णित 'प्रजननकालाभिमत' या "आसन्नप्रसवा" के लक्षण प्रसव की प्रथमावस्था के लक्षणों का वर्णन है। गर्भ के परिवर्तित या अवाक् होने के लक्षण द्वितीयावस्था में शिशुजन्म के कुछ क्षण पूर्व के लक्षण हैं। यद्यपि वर्णन में आगे गर्भ के प्रसव तथा अपरा-पतन का स्पष्ट निर्देश मिलता है परन्तु उनका प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में वर्णन नहीं दिया गया। गर्भ के निर्गमन के पश्चात् कुछ क्षणों में ही अपरा का निर्गमन स्वाभाविक है ऐसा महर्षि वाग्भट ने स्पष्ट लिखा है[1]। महर्षि काश्यप ने अपरा-निर्गमन के पूर्व तक की स्थिति को प्रसूता के अन्तर्गत नहीं रखा अर्थात् प्रसव अपरा-निर्गमन के पश्चात् ही पूर्ण होता है[2]।

गर्भ निष्क्रमणार्थ होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं के संदर्भ निम्नाङ्कित है :-

१. अवस्रंसन-हृदय बन्धन-विमुक्ति, कुक्षि का अवस्रंसन, अधोभ्रंश, बस्ति-शिर-अवग्रहण आदि (पृष्ठ ४३६ से ४३८)
२. सङ्कोच-संकुचिताङ्गावस्था (पृष्ठ १८८, १८९), गर्भ का स्वयं की नाभि की ओर उन्मुख होना (पृष्ठ ४३४) एवं गर्भ शिर का अवाक् होना।
३. अन्तरावर्तन–गर्भ शिर का अवाक् होकर परिवर्तित होना (पृष्ठ ४३४, ४३५ एवं ४३८)।

Release of bonds of *hṛdaya* or *vakṣa* has been mentioned by all the writers. Actually there are no structural attachments between chest/heart and uterus/fetus. It appears that feeling of relief from compression of chest due to descend of fetus in the pelvic cavity has been mentioned as release of bonds. Increase in frequency of defecation and micturition and pain alongwith compression etc. are the clinical features of further descend of fetus. Caraka, Vāgbhaṭa and Kāśyapa have described '*parivartana*' of fetus which has already been dis-

१. अ० सं० शा० २/३५ (पृष्ठ ४३४)

२. सूतायाश्चापि तत्र स्यादपरा चेत्र निर्गता। प्रसूताऽपि न सूता स्त्री भवत्येवं गते सति॥ (का० सं० खि० ११/६)

Scanned with CamScanner

cussed earlier, here in this context it refers to internal rotation occurring in pelvis after descend and exaggerated flexion. Internal rotation *(antarāvartana)* of vertex fits better in the word '*parivartana*'.

Caraka and Vāgbhaṭa have described clinical features under two headings i.e. *prajananakālābhimata* or *āsannaprasawā* woman and after '*parivartana* of *garbha*'. Suśruta has mentioned '*prajāyinī*' and '*upasthitaprasavā*' as two stages. Bhāvaprakāśa has used word '*prasavotsukā*' instead of *prajāyinī*. The omission of reference about liquour amni by Suśruta is difficult to explain.

On the basis of clinical features these different stages of labour can be explained in following way :—

So. No.	Name given in classics	Author	Probable stage of labour
1A	*Prajāyinī* or *prasavotsukā*	Suśruta Bhāvaprakāśa	One or two days before the labour or just beginning of first stage.
1B	*Prajananakālā-bhimata* or *āsannaprasavā* or no specific term	Caraka Vāgbhaṭa Kāśyapa	First stage of labour.
2A	*Upasthitaprasawā*	Suśruta and Bhāvaprakāśa	End of first stage or beginning of second stage.
2B	*Parivartita garbha*	Caraka, Vāg-bhaṭa and Kāśyapa	Second stage of labour.
3	Expulsion of Placenta.	All	Third stage of labour.

Different movements of mechanism of labour have been described in following way.

i. Descend— Release of bonds of heart, descend of *kukṣi*, catching up of bladder-neck etc.

ii. Flexion— Universally flexed attitude; facing its own umbilicus (exaggarated flexion), downwards displacement of vertex etc.

iii. Internal rotation—*Parivartana of śira.*

Though expulsion of placenta has not been given any specific name, however, its expulsion following labour has been described by all the authors. Vāgbhaṭa has clearly mentioned that expulsion of placenta after the fetus is a normalcy. Kāśyapa says that a woman without expulsion of placenta is not a *sūtikā* (puerperal).

आवी का प्रसव में प्रभाव (Effect of āvīs or accouchement force on labour)

आव्यावृते स्त्रिया गर्भे विवृते चापरामुखे। ग्राहीषु वर्तमानासु सा विविवर्तेत (सावि वर्तेत शु०पा०) गर्भिणी॥
न तीक्ष्णं ग्राहिशूलेषु क्षिप्रं नारी प्रजायते। विलम्बिताभिरावीभिर्गर्भः क्लेशयते स्त्रियम्॥
(का० सं० शा० ५/३०,३१)

ग्राही शब्द का प्रयोग किसी अन्य संहिता में प्रसव वेदनाओं के लिए नहीं हुआ। दुबारा प्रयोग में महर्षि काश्यप ने स्वंय ही ग्राहीशूल शब्द का प्रयोग किया है। 'ग्राहि' का शाब्दिक अर्थ है 'पकड़ना' अतः यहाँ पर 'ग्राहिशूल' अर्थात् 'पकड़ने या भिचने सदृश शूल' यह अर्थ उचित होगा। 'सा विवर्तेत' के स्थान में 'सावि वर्तेत' पाठ व्याकरण-दृष्ट्या अधिक युक्तिसंगत है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर श्लोकों का निम्न अर्थ करना होगा।

स्त्री के गर्भ के स्वस्थान में सामान्य रूप से स्थित होने, अपरामुख (गर्भाशयमुख) के विस्तृत होने तथा आवी के साथ ही ग्राहिशूल (आवी अर्थात् गर्भाशय-पेशी के संकोच-जन्य प्रसव वेदनायें एवं ग्राहिशूल अर्थात् उदरादि की मांसपेशी-संकोच-जन्य शूल) उपस्थित होने पर वह गर्भिणी (प्रसव के लिए) उद्यत होती है।

ग्राहिशूल तीक्ष्ण होने पर भी स्त्री को शीघ्र प्रसव नहीं होता अर्थात् जब तक आवी (गर्भाशय संकोच-जन्य शूल) नहीं होगी कितना भी तीव्र ग्राहिशूल (उदरपेशी संकोच-जन्य शूल) हो प्रसव नहीं होगा (इसी भाँति) आवी के देर देर से आने पर भी स्त्री के गर्भ को क्लेश होता है (विलम्बित आवी के कारण विलम्बित प्रसव होने पर गर्भ को गर्भाशयान्तर श्वासावरोध होने से कष्ट हो सकता है)।

The woman having normally situated fetus, dilatation of *aparāmukha* (cervix uteri) and presence of *āvī* (normal uterine contractions during labour i.e. contraction, relaxation and retraction) alongwith *grāhiśūla* (seizing like pain arising due to contraction of abdominal wall etc. i.e. secondary force of labour) is very much ready to deliver the fetus.

Inspite of existence of very severe *grāhiśūla* the woman does not get early delivery (strongest *grāhiśūla* can not effect labour, presence of *āvīs* is must.) If the *āvīs* are delayed the fetus is troubled (weak uterine contraction can delay the labour resulting in asphyxia to the fetus).

पुत्र या पुत्री के अनुसार प्रसव-पूर्व स्त्राव (Colour of 'show' according to sex of the fetus)

तन्त्रीवर्णोऽल्पशः स्त्रावः पिच्छिलः पुत्रजन्मनि। किंशुकोदकसंकाशः पुत्रिकाजन्म शंसति॥
(का० सं० शा० ५/२८)

पुत्र के जन्म में स्त्री को गिलोय (के स्वरस) के वर्ण का, अल्प एवं पिच्छिल स्राव होता है तथा पुत्री के जन्म में किंशुकोदक (पलाश के पुष्प को धोने से निकला जल या गहरा लाल रंग) के समान स्राव होता है।

(गर्भ-लिङ्ग के आधार पर प्रसव-पूर्व-स्राव-वर्णन अनुसंधान का विषय है निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है)।

If the woman is going to deliver a male child, she will have scanty, unctuous show resembling the colour of *guḍūci* (very light yellowish pink), however, if she is to deliver a female child, her show would resemble the colour of water obtained by washing the flowers of *palāśa* (dark red).

Scanned with CamScanner

प्रसव के समय परिचर्या (Management of labour)

अ) आसन्नप्रसवा-परिचर्या (Management of āsannaprasavā or during first stage of labour)

आवीप्रादुर्भावे तु भूमौ शयनं विदध्यान्मृद्वास्तरणोपपन्नम्। तदध्यासीत सा। तां ततः समन्ततः परिवार्य यथोक्तगुणाः स्त्रियः पर्युपासीरन्नाश्वासयन्त्यो वाग्भिर्ग्राहणीयाभिः सान्त्वनीयाभिश्च ॥ (च० सं० शा० ८/३७)

प्रजनयिष्यमाणां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुत्रामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां सम्भृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत्। ततः कृतोपधाने मृदूनि विस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्नसक्थीमुत्तानामश्वङ्गनी-याश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्तितनखाः परिचरेयुरिति ॥ ८॥ (सु० सं० शा० १०/८)

अथैनामुपस्थितगर्भा कृतकौतुकमङ्गलां पुत्रामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तां सघृतां यवागूं पाययेत् ॥ १८॥

तथा सुरक्तार्षभचर्मप्रच्छदे (शु० पा०-रक्तर्षभः=रक्त+ऋषभ)-मृदुनि भूमिशयने शयानामुत्तानामाभुग्नस-क्थिपृष्ठामहतवाससोऽश्वङ्गनीयाः प्रियदर्शनाः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः प्रगल्भाः कृत्तनखाः स्त्रियः सूतिकां सूनृताभिर्वाणीभिराश्वासयन्त्यः पर्युपासीरन् ॥ १९॥

अथास्यै दद्यात् कुष्ठैलालाङ्गलीवचाचव्यचित्रकचिरबिल्वचूर्णमुपाघ्रातुं मुहुर्मुहुः। तथा भूर्जपत्रशिंशिपास-र्जरसान्यतमधूममन्तरान्तरा च। पार्श्वपृष्ठकटीसक्थिदेशान्कोष्णेन तैलेनाभ्यञ्यानुसुखमस्या मृद्गीयात्। एवमवाक् परिवर्तते गर्भः ॥ २०॥ (अ० सं० शा० ३/१८ से २०)

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकौतुकमङ्गलाम्। हस्तस्थपुन्नामफलं स्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् ॥ ७७॥
पाययेत्सघृतां पेयां ततो भूशयने स्थिताम्। आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गीं पुनः पुनः ॥ ७८॥
अधो नाभेर्विमृद्नीयात्कारयेज्जृम्भचङ्क्रमम्॥ (अ० हृ० शा० १/७७ से ७९)
एतानि दृष्ट्वा रूपाणि कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। प्रविशेयुः स्त्रियो वृद्धाः कुशलाः शस्तधाविताः॥
गर्भिणीं सान्त्वयेयुस्ता हर्षयेयुः प्रियंवदाः। आश्वासयेयुर्धर्मार्थौ चोदयन्तं प्रजापतिम्॥
लोकान् पुत्रवतीनां च सुखानि विविधानि च। कीर्तयेयुरपुत्राणां दुःखानि निरयादिषु॥
अदितिं कश्यपं देवमिन्द्राणीमिन्द्रमश्विनौ। आयुष्मतां पुत्रवतां मङ्गल्यानां च कीर्तनम्॥
उपविष्टाऽसकृत्तस्मादनिर्विण्णा(ऽ)त्रपान्विता। वृद्धस्त्रीद्रव्यसंपन्ना प्रजायेत् प्रजार्थिनी॥
(का० सं० शा० ५/२४ से २७, ३९)

स्त्रीणां प्रसवकाले तु मांस·····मेव च। (का० सं० खि० २४/७)

आवी (प्रसव वेदनाओं के) के प्रादुर्भाव हो जाने पर भूमि में मृदु आस्तरण (बिस्तर) बिछा दे, उस पर वह स्त्री बैठ जाय तत्पश्चात् उसको (उस प्रजायिनी स्त्री को) पूर्ववर्णित (सूतिकागार में संग्रहणीय पदार्थों के अन्तर्गत-पृष्ठ ४३१) गुणों वाली प्रजनन-कुशल स्त्रियाँ चारों ओर से घेर कर हृदय को प्रिय लगने तथा सान्त्वना देने वाले वचनों से आश्वासन देती हुई सेवा करें।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि मंगल एवं स्वस्तिवाचन की हुई, कुमारों से घिरी हुई, हाथ में पुन्नाम फल (पुल्लिंग नाम वाले फल) को ग्रहण की हुई, (तैल से) अभ्यंग तथा उष्णोदक से स्नान की हुई प्रजनयिष्यमाण (प्रसूत होने वाली) स्त्री को बलकारक यवागू आकण्ठ (कण्ठ तक या पूरा पेट भर कर) पान कराए। तत्पश्चात् उपधान (तकिया) रखे हुए, बिछे हुए, मृदु बिस्तरे पर सक्थियों को मोड़ कर उत्तान लेटी हुई (प्रसविनी) स्त्री की शंका न करने योग्य, पूर्ण वयस्क, प्रसव-कार्य में कुशल एवं कर्तित नख वाली चार स्त्रियाँ परिचर्या करें।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि कौतुकमंगल-कर्म (कौतुक नामक मंगल-कार्य) की हुई, पुन्नाम फल हाथ में ली हुई, (तैल से) अभ्यंग एवं उष्णोदक से स्नान की हुई, उपस्थितगर्भा स्त्री (प्रसव के लिए गर्भ के नीचे आ गई हुई स्त्री या प्रसवोन्मुखी स्त्री) को घृत-युक्त यवागू पिलाए। तत्पश्चात् भूमि में बिछे हुए रक्त वृषभ के चर्म से आच्छादित मृदु बिस्तर पर सक्थि एवं पृष्ठ (कटि का नीचे का भाग) मोड़कर, उत्तान शयन की हुई उस सूतिका को अच्छे या बिना फटे कपड़े पहनी हुई, अशंकनीय (जिनकी कार्य कुशलता में शंका न हो), प्रियदर्शन (सुन्दर), पूर्णवयस्क, प्रजननकर्म कुशल, प्रगल्भ, कर्तित नख वाली स्त्रियाँ प्रिय वचनों के द्वारा आश्वासन देती हुई सेवा करें एवं इसे कुष्ठ, एला, लाङ्गली, वचा, चव्य, चित्रक एवं चिरबिल्व (एक एक या सभी एकत्रित) के चूर्ण को बार बार सूँघने को दें तथा बीच बीच में भूर्जपत्र, शिंशिपा (शीशम के पत्र), सर्जरस आदि के धूम को (सूँघने को) दें। टीकाकार इन्दु ने इस भूर्जपत्रादि को आवी-प्रादुर्भाव आदि के बीच में (अर्थात् दो आवियों के मध्यकाल में) सूँघने का विधान दिया है[1]। पार्श्व, पृष्ठ, कटि तथा सक्थि प्रदेश का कोष्ण तैल से सुख पूर्वक (धीरे धीरे) अभ्यङ्ग करे। इस प्रकार करने से गर्भ नीचे की ओर परिवर्तित होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि कौतुकमंगल कर्म की हुई, हाथ में पुन्नाम फल धारण की हुई, अभ्यङ्ग एवं उष्ण जल के स्नान की हुई उपस्थितगर्भा स्त्री को घृत-युक्त पेया पिलाकर भूमि में स्थित मृदु बिस्तर पर सक्थि मोड़कर उत्तान शयन कराकर बार-बार अभ्यङ्ग एवं नाभि के नीचे के भाग में मर्दन करे तथा (स्त्री को) बार बार जृम्भण एवं चंक्रमण करवाए। टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि गर्भावस्था के विशिष्ट काल में बाहु आदि में बाँधे गए रक्षाबन्ध को 'कौतुक' कहा जाता है; पुनः पुनः अभ्यङ्ग वायु-प्रकोप के भय के कारण किया जाता है; इन सभी कर्मों से गर्भ अवाक् हो जाता है अर्थात् ऊपर से खिसक कर नीचे आ जाता है; अष्टाङ्गसंग्रहोक्त औषधियों का तथा अग्रिम-पृष्ठों में वर्णित गर्भ के अवाक् लाने के उपायों के अन्तर्गत वर्णित मुसलादि से व्यायाम के निर्देश एवं उसके करने से प्राण-हानि आदि का भी वर्णन दिया है तथा विमर्दनादि क्रिया को गर्भ-निष्क्रमण पर्यन्त करने का निर्देश दिया है[2]।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि इन रूपों को (प्रसव होने वाला है ऐसे लक्षणों को) देखकर वृद्ध, कुशल एवं स्नान से शुद्ध हुई स्त्रियाँ ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर प्रवेश (सूतिकागार में) करें। ये प्रिय बोलने वाली स्त्रियाँ धर्म और अर्थ के लिए प्रजापति को प्रेरित करती हुई गर्भिणी को सान्तवना दें, हर्षित करें, आश्वासन दें तथा संसार में पुत्रवती स्त्री के विविध सुखों तथा निःपुत्री के दुःखों का वर्णन एवं अदिति, कश्यप, देव, इन्द्राणी, इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा अन्य आयुष्मान एवं पुत्रवान मंगलकारी देवताओं का कीर्तन करें। प्रसव की इच्छा वाली स्त्री को चाहिए कि वह प्रसन्न मन वाली, लज्जा से रहित, वृद्ध स्त्रियों तथा धन से युक्त बैठी हुई बार-बार प्रसव (के प्रयत्न) को करे। अन्यत्र प्रसव-काल में मांसरस प्रयोग हितकारी बताया है।

महर्षि भेल ने लिखा है कि जिस स्त्री को भविष्य में प्रसव वेदनायें आयेंगीं अर्थात् अभी नहीं आई उसे अवहनन न करे अर्थात् आघात न पहुँचायें। जब कुक्षि अवघृष्ट हो जाए, हृदय से गर्भ विमुक्त हो जाय, योनि से स्राव होने लगे तो उपकार करने वाली चार सहेलियाँ प्रतिदिन उसके पास रहें[3]।

आचार्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त वर्णन सदृश ही अभ्यङ्ग एवं स्नान की हुई स्त्री को यवागू पिला कर मृदु तकिया

---

१. तथैव भूर्जाधन्यतमधूममुपघ्रातुं दद्यादिति सम्बन्धः, अन्तरान्तरा चेत्यावीप्रादुर्भावमनुधूमादि प्रसङ्गे ·····॥ (अ० सं० शा० ३/२० इन्दु टीका)

२. ·····विशिष्ट काल एव यो रक्षाबन्धो बध्यते स कौतुक वाच्यः। कौतुकाख्यं मङ्गलं कौतुकमङ्गलम्।·····तथा पुनः पुनरभ्यक्ताङ्गी वातकोपभयात्।·····एवं अनेयेतिकर्त्तव्यतयाऽनुष्ठितया, गर्भोऽवाक्प्रयाति-ऊर्ध्वादधो गच्छति····· विमर्दनादि क्रियां च गर्भिण्यास्तावत्कारयेत् यावद्गर्भनिष्क्रमणं न भवति॥ (अ० हृ० शा० १/७७ से ७९ की अरुण० टीका)

३. अनागत गर्भवेदां चैनां अवहननं च (न) कारयेत्। सा यदि जानीयादवघृष्टो मे कुक्षिः प्रविमुको मे हृदर्भः प्रस्रुता मे योनिरिति। अथैनामुपकारिकल्पितसखाश्चतस्रो(स्रउ)पजाविकाः प्रतिदिनमुपतिष्ठेयुः। (भे० सं० शा० ८/८)

Scanned with CamScanner

से युक्त बिस्तर पर आभुग्न सक्थि (दोनों उरुओं को असंकोचित भाव अर्थात् एक दूसरे से अलग अलग रख कर) एवं उत्तान शयन करके, प्रजनन कुशल स्त्रियों द्वारा अपत्यमार्ग का तैल से चारो ओर अभ्यङ्ग आदि परिचर्या का विधान बताया है[१]।

After onset of labour pains, the woman should be made to sit on a soft cushion spreaded over the ground. The women having qualities described earlier and experienced in conducting the labour should encircle and encourage her by consoling and pleasant words.

Suśruta says that the woman for whom auspicious hymns for her welfare and prosperity have already been recited and is ready to deliver, should be encircled by *kumāras* (male children) and hold the fruit bearing masculine name. She should be given massage (with oil), bath with lukewarm water and made to drink good, strength producing rice gruel, filling her stomach to its fullest capacity. Now the woman should sleep in supine position with flexed thighs on a soft bed having pillow and be attended by undaunted, mature and expert four women having their nails trimmed.

Vāgbhaṭa giving the description like Suśruta has not advised presence of *kumāras*. Besides he has specified the hymn as *"kautuka-maṅgala"* and the bed that a soft cushion should be spreaded over the ground and be covered with skin of red bull. The women attending her should wear intact clothes. The delivering woman should be given repeatedly inhalation of powdered *kuṣṭha, elā, lāṅgalī, vacā, cavya, citraka* and *cirabilva* (any one or all together) or intermittent inhalation of smoke of *bhūrjapatra*, leaves of *śiṃśipā* and *sarjarasa*. Indu opines that inhalation should be given during inter-contraction period. Gentle massage with lukewarm oil over flanks, back, sacrum and thighs should be done. This procedure brings the fetus down.

Vāgbhaṭa II has advised the massage over infraumbilical region of the delivering woman and repeated yawning and slow walking by her. Aruṇadatta has explained that oil is massaged to avoid aggravation of *vāta* and has advised its continuation till expulsion of fetus.

Kāśyapa has written that after observing the clinical features of onset of labour, senior experienced women after taking bath, and having recitation of words for welfare by *brāhmaṇas* should enter the labour ward. These sweet speaking women, urging *prajāpati* for economic and religious achievements, should console, encourage and delight the pregnant woman, narrate to her the pleasures of children and sorrows of childless couple. They should pray *aditi, kaśyapa, deva, indrāṇī, indra, aświnīkumāras* and auspicious gods who have number of children and long life. The woman anxious to deliver should remain happy, free from shyness and sitting encircled with old women and money should attempt for delivery. He has also advised use of meat soup during this period.

१. तैलेनाभ्यक्तगात्रान्तां संस्नातामुष्णवारिणा। यवागूं पाययेत्कोष्णां मात्रया घृतसंयुताम्।
कृतोपधाने मृदुनि विस्तीर्णे शयने शनैः। आभुग्नसक्थी चोत्तानां नारी तिष्ठेद्व्यथाऽन्विता॥
चतस्रोऽशंकनीयाश्च स्रावणे कुशला हिताः। वृद्धाः परिचरेयुस्ताः सम्यक्छिन्ननखाः स्त्रियः॥
अपात्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३४४ से ३४७)

Bhela has advised association of four women friends. Bhāvamiśra has added that oil should be massaged all around the vaginal canal.

***आ) अनागतप्रसव या गर्भ के अवाक् न होने पर कर्त्तव्य** (Management in case of failure in descend of fetus)*

सा चेदावीभिः संक्लिश्यमाना न प्रजायेताथैनां ब्रूयात्-उत्तिष्ठ, मुसलमन्यतरं गृह्णीष्व, अनेनैतदुलूखलं धान्यपूर्णं मुहुर्मुहुरभिजहि मुहुर्मुहुरवजृम्भस्व चङ्क्रमस्व चान्तराऽन्तरेति; एवमुपदिशन्त्येके। तन्नेत्याह भगवानात्रेयः। दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः सततमुपदिश्यते, विशेषतश्च प्रजननकाले प्रचलितसर्वधातुदोषायाः सुकुमार्या नार्या मुसलव्यायामसमीरितो वायुरन्तरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्यात्, दुष्प्रतीकारतमा हि तस्मिन् काले विशेषेण भवति गर्भिणी; तस्मान्मुसलग्रहणं परिहार्यमृषयो मन्यन्ते। जृम्भणं चङ्क्रमणं च पुनरनुष्ठेयमिति। अथास्यै दद्यात् कुष्ठैलालाङ्गलिकीवचाचित्रकचिरबिल्वचव्यचूर्णमुपघ्रातुं, सा तन्मुहुर्मुहुरुपजिघ्रेत्, तथा भूर्जपत्रधूमं शिंशिपासारधूमं वा। तस्याश्चान्तरा कटीपार्श्वपृष्ठसक्थिदेशानीषदुष्णेन तैलेनाभ्यन्यानुसुखमवमृद्गीयात्। अनेन कर्मणा गर्भोऽवाक् प्रतिपद्यते॥ (च० सं० शा० ८/३८)

तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत्, प्राञ्जलमाकर्षेत्॥ (सु० सं० शा० १०/१०)
न चेदेवं परिवर्तते ततो महुर्मुहुर्जृम्भणं चङ्क्रमणं च कारयितव्याऽनन्तरोक्तं विधिम्॥ २२॥

अन्ये तु मुशलेनोलूखलं धान्यपूर्णमाहननीयमित्याहुः। तत्तु न सम्यक्। दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः सततमुपदिश्यते। विशेषतश्च प्रसवकाले प्रचलितसर्वधातुदोषायाः सौकुमार्यत्वान्नार्या मुशलव्यायामेनेरितो वायुरन्तरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्यादिति॥ २३॥ (अ० सं० शा० ३/२२ व २३)

केचिदस्यामवस्थायां व्यायामं मुसलादिकम्। जृम्भाचङ्क्रमणाद्यं च भिषजो ब्रुवते हितम्॥
वर्जनीयं तु तत्सर्वं भगवानाह कश्यपः। नार्याः प्रसवकाले हि शरीरमुपमृद्यते॥
त्रयो दोषाः प्रकुप्यन्ति विचाल्यन्ते च धातवः। गर्भिणी तदवस्था हि यत्नधार्या विशेषतः॥
अधिकं सौकुमार्यं हि गर्भिण्याः क्लेद्यमेव च। स्रावकाले विशेषेण विषादभयसंश्रयः॥
एकपादो यमकुले पाद एक इह स्थितः। दृष्ट्वा दुःखं स्त्रियास्तस्या इत्येवं ब्रुवते मिथः॥
तस्यास्त्वस्यामवस्थायां व्यायामो न प्रशस्यते। व्यायामः सेव्यमानो हि गर्भिणीमाशु नाशयेत्॥
अतिचङ्क्रमणेनापि हन्याद्गर्भमुपस्थितम्। अत्ययं प्राप्नुयाद्धीरं देहान्तकरणं महत्॥
वचा लाङ्गलिकी कुष्ठं चिरबिल्वैलचित्रकाः। चूर्णितं मुख(हु)राजिघ्रेत्तथा शीघ्रं प्रजायते॥
आजिघ्रेद्भूर्जधूपं वा नमेरोर्गुग्गुलोस्तथा। अथ(थः)प्रपद्यते गर्भस्तथा क्षिप्रं विमुच्यते॥
पार्श्वसन्धिकटीपृष्ठं तैलेनोष्णेन प्रक्षितम्। मृद्गीयुरवकर्षेयुः शनैः प्राज्ञाः स्त्रियः सुखाः(खम्)॥
दुर्बलां पाययेन्मद्यमित्येके, नेति कश्यपः। पूर्वक्लिष्टा तथैवास्या(ऽसौ) यवागूं तृषिता पिबेत्॥
(का० सं० शा० ५/३२ से ३८, ४० से ४३)

यदि आवी से क्लेश पाती हुई स्त्री को प्रसव न हो तो उससे कहे कि उठो, मूसल या अन्य कोई चीज लो, धान्य से भरे हुए ऊखल में बार बार चोट मारो (कूटो), बार बार जम्हाई लो, बीच-बीच में घूमो इस प्रकार का उपदेश कुछ आचार्य देते हैं। भगवान् आत्रेय कहते हैं कि ऐसा नहीं है, गर्भिणी स्त्री को कठिन व्यायाम हर समय वर्ज्य करने का उपदेश दिया गया है, विशेषकर प्रजननकाल में सभी दोष एवं धातुओं के प्रचलित होने के कारण सुकुमारी नारी में मूसल के व्यायाम से प्रकुपित वायु अवकाशों में जाकर प्राणों की हिंसा कर देती है। गर्भिणी विशेषकर इस काल में दुष्प्रतीकारतम होती है इसलिए मूसल-ग्रहण आदि व्यायाम वर्ज्य हैं ऐसा ऋषियों का मत है। जम्भाई लेना तथा घूमना श्रेयस्कर है तथा इसे कुष्ठ, एला, लाङ्गली, वचा, चित्रक, चिरबिल्व एवं चव्य का चूर्ण सूँघने को दे, वह स्त्री इन्हें बार-बार सूँघें, इसी प्रकार

Scanned with CamScanner

भूर्जपत्र अथवा शिंशिपा-सार (शीसम के सत्व या निर्यास) का धूम सूँघें इसके अन्तर (धूम आदि सूँघने के बीच में) कटि, पार्श्व, पृष्ठ एवं सक्थिप्रदेश में ईषदुष्ण तैल से अभ्यङ्ग करके धीरे-धीरे दबावे। इस क्रम से गर्भ अवाक् (नीचे की ओर) हो जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने संक्षेप में लिखा है कि प्रतिलोम को अनुलोम करना चाहिए एवं प्राञ्जल या सीधे को (नीचे की ओर) आकृष्ट करना चाहिए। टीकाकार डल्हण ने इसे अनेक प्रकार की मूढ़गर्भ की गतियों एवं उनकी चिकित्सा का निर्देश-मात्र माना है एवं लिखा है कि अप्रतिलोम या अनुलोम को प्रांजल (सीधा) ही खींचना चाहिए[1]।

अष्टांगसंग्रहकार ने लिखा है कि यदि गर्भ परिवर्तित नहीं होता (नीचे की ओर नहीं आता) तब (गर्भिणी को) बार-बार जम्हाई लेना एवं घूमना चाहिए तथा अन्यत्र वर्णित (कुष्ठैलादि उपघ्राण तथा ईषदुष्ण तैल से कटि आदि का मर्दन) उपाय करना चाहिए। अन्य आचार्य धान्य-पूर्ण ऊखल को मूसल से चोट करने को कहते हैं, यह उचित नहीं है, गर्भिणी को हमेशा कठिन व्यायाम वर्जित बताया गया है, विशेषकर प्रसव-काल में सभी धातु एवं दोषों के प्रचलित होने एवं स्त्री के सुकुमार होने के कारण मूसल आदि के व्यायाम से प्रकुपित वायु अवकाशों में जाकर प्राणों का नाश कर देती है।

काश्यप संहिता में लिखा है कि कुछ चिकित्सक इस अवस्था में मुसलादि का व्यायाम, जम्हाई तथा चंक्रमण आदि को हितकारी कहते हैं परन्तु भगवान कश्यप का कहना है कि ये सब वर्जनीय हैं क्योंकि प्रसवकाल में स्त्री का शरीर मृदु होता है, तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं तथा सभी धातुयें विचलित हो जाती हैं अतः इस अवस्था में गर्भिणी बहुत ही यत्नपूर्वक धारण करने योग्य होता है। गर्भिणी अति सुकुमार होती है, उसमें क्लेद की अधिकता होती है विशेष कर स्राव-काल में (प्रसव-काल में) विषाद तथा भय होता है (स्त्री को दुःख तथा उपद्रवों का भय होता है)। अन्य स्त्रियाँ उसके कष्ट को देखकर कहती है कि इसका एक पैर यम के घर में या यमलोक में तथा एक पैर इधर अर्थात् इस लोक में हैं; अतः इस अवस्था में उसे व्यायाम हितकारी नहीं है। सेवन किया गया व्यायाम गर्भिणी का शीघ्र ही विनाश कर देता है। अत्यधिक घूमना भी उपस्थित गर्भ (प्रसव के लिए उद्यत गर्भ) का हनन तथा अन्य घोर देहान्तकारी रोग उत्पन्न कर देता है (अतः अति चङ्क्रमण नहीं करना चाहिए परन्तु सुख चङ्क्रमण किया जा सकता है)। वचा, लाङ्गली, कुष्ठ, चिरबिल्व, एला एवं चित्रक के चूर्ण को बार-बार सूँघने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है तथा भूर्जपत्र, नमेरु (सुरपुन्नाग) एवं गुग्गुलु के धुएँ को सूँघने से गर्भ नीचे आ जाता है तथा शीघ्र ही अपने स्थान से छूट जाता है (अर्थात् स्वस्थान या गर्भाशय से निकल कर बाहर आ जाता है)। कुशल स्त्रियाँ उष्ण तैल से पार्श्व, सन्धि, पृष्ठ एवं कटि का सुखपूर्वक अभ्यङ्ग करती हुई गर्भ को धीरे-धीरे नीचे की ओर खींचें या लाने का प्रयत्न करें। कुछ आचार्यों का कहना है कि दुर्बल स्त्रियों को मद्यपान करायें पर महर्षि काश्यप कहते हैं कि यह नहीं करना चाहिए। पहिले से ही कष्ट से पीड़ित इस स्त्री को प्यास लगने पर यवागू का पान करावे। अन्यत्र भी महर्षि काश्यप ने गर्भधारण से लेकर प्रसव के सम्पूर्ण हो जाने तक की चिकित्सक की आतुरता का वर्णन किया है कि कब भली भाँति प्रसव पूर्ण हो जाय, क्योंकि इस प्रसव-काल में स्त्री का एक पैर इस ओर (संसार की ओर) तथा दूसरा यमलोक में रहता है[2] अर्थात् तनिक भी देरी या लापरवाही से स्त्री की मृत्यु तक हो सकती है।

महर्षि भेल ने लिखा है कि इस स्त्री को एक अक्ष रक्त-शाली को अम्ल (काँजी) एवं मूत्र के साथ पिलाये। इसी कल्प के साथ दन्ती, द्रवन्ती, वृश्चिकाली, पुनर्नवा तथा बनशीर्षक (बनपटोल) को पिलायें। इस काल में पुराना शाली या

१. प्रतिलोमता चानेकप्रकारा मूढगर्भनिदानोक्तया दिशा ज्ञातव्या। अनुलोमयेदिति मूढगर्भचिकित्सितोक्तप्रकारेणेत्यर्थः॥ अप्रतिलोमन्तु प्राञ्जलमाकर्षेत्॥ (सु० सं० शा० १०/१० की डल्हण टीका)

२. गर्भात् प्रभृति सूतायां भिषग्भवति कार्यवान्। कथं नु काले सम्पूर्णे सुयेदित्यपरापरम्॥४॥ प्राप्ते प्रसवकाले च भयमुत्पद्यते यतः। अस्मिन्नेकः स्थितः पादो भेवदन्यो यमक्षये॥५॥ (का० सं० खि० ११/४,५)

अन्य वस्तुयें पीने को दें। यदि इस विधि से प्रवर्तन न हो तो तीक्ष्ण तैल से अनुवासन दे[1]।

If the woman, inspite of having labour pains does not deliver, then she should be asked to get up and holding a pestle or any other heavy thing should strike the paddy filled in mortar, should yawn repeatedly and walk inbetween, is the opinion of few. Ātreya contradicting this says that heavy exercise is always contraindicated to a pregnant woman, specially during delivery, because at this time all the *doṣas* and *dhātus* of body are moving or are excited, thus the *vāyu* of delicate woman getting excited due to exercise with pestle etc. enters the hallow spaces of the body and kills her. The treatment of woman at this stage is very difficult, considering this the use of pestle etc. is contraindicated, however, yawning and walking is beneficial. Inhalation of powderd *kuṣṭha, elā, lāṅgalī, vacā, citraka, cirabilva* and *cavya* or smoke of *bhūrjapatra* or resin of *śiṃśipā* should be given; in-between massage with lukewarm oil over waist, flanks, back and thighs, then gentle kneading should be done. By this process the fetus descends downwards.

Suśruta says that fetus having gone to opposite or wrong direction should be brought to right direction and the one which is straight should be pulled or extracted. Ḍalhaṇa has explained that this is just a hint for the management of obstructed labour.

Vāgbhaṭa I has expressed almost identical opinion as given by Caraka.

Kāśyapa expressing opinion about different exercises just like Caraka explains that besides displaced *doṣas* and *dhātus*, the woman has predominance of *kleda* (humidity) also, thus is more vulnerable for diseases and sorrows. Other women observing her agony remark that her one foot is in the house of *yama* (the god of death) and other on this side (i.e. she can die at any moment). Any exercise can kill the pregnant woman immediately, even excessive walking can kill the delivering fetus and produce several fatal disorders. He has also advised inhalations, (instead of *śiṃśipā* he has written *nameru* and *guggulu*) and oil massage etc. Few authors advise use of wine for weak women, however, Kāśyapa has contradicted this and advised use of rice gruel to quench the thirst.

Bhela says that one *akṣa* boiled red *śāli* rice mixed with sour drinks and (cow) urine should be given or else this rice should be given with decoction of *dantī, dravantī, vṛścikālī, punarnavā* and *banatiktaka.* Gruel made with old *śāli* rice is also prescribed. If fetus does not descend with this, then *anuvāsana basti* with pungent oil should be given.

इ) प्रसव के लिए स्त्री को प्रवाहण करने का निर्देश, प्रवाहण के समय परिचारिका का कर्त्तव्य एवं अकाल-प्रवाहण का परिणाम (Instructions to make bearing down efforts, duties of accoucheuse and effect of undue bearing down)

ताश्चैनां यथोक्तगुणाः स्त्रियोऽनुशिष्युः—अनागतावीर्मां प्रवाहिष्ठाः, या ह्यनागतावीः प्रवाहते व्यर्थमेवास्यास्तत्

१. त(अ)थैनां रक्तशालीनामक्षमात्रं कल्पमम्लेन मूत्रेण पाययेत्। एतेनैव कल्पेन दन्ती द्रवन्ती वृश्चिकाली पुनर्नवा बनशीर्षाकं कारयेत्। तफ(दि)म(मां)काले सर्वपुराणमाला(शाली)नामन्यतमेन पाययेत्। सा चेदनेन विधिना न प्रवर्तते, अथैनां तीक्ष्न-तैवे(ले)नानु(वासयेत्)॥ (बनशीर्षाकं कारयेत् का शुद्धपाठ-बनतिक्तकानि पाययेत्)॥ (भे० सं० शा० ८/८)

Scanned with CamScanner

कर्म भवति, प्रजा चास्या विकृता विकृतिमापन्ना च, श्वासकासशोषप्लीहप्रसक्ता वा भवति। यथा हि क्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान् प्रयतमानोऽप्यप्राप्तकालान्न लभते कृच्छ्रेण वाऽप्यवाप्नोति, तथाऽनागतकालं गर्भमपि प्रवाहमाणाः; यथा चैषामेव क्षवथ्वादीनां सन्धारणमुपघातायोपपद्यते, तथा प्राप्तकालस्य गर्भस्याप्रवाहणमिति। सा यथानिर्देशं कुरुष्वेति वक्तव्या स्यात्। तथा च कुर्वती शनैः पूर्वं प्रवाहेत ततोऽनन्तरं बलवत्तरम्। तस्यां च प्रवाहमाणायां स्त्रियः शब्दं कुर्युः–'प्रजाता प्रजाता धन्यं धन्यं पुत्रम्' इति। तथाऽस्या हर्षेणाप्याय्यन्ते प्राणाः॥

(च० सं० शा० ८/४०)

.....अनुब्रूयाच्चैतामेका–सुभगे प्रवाहस्वेति नचाप्राप्तावी प्रवाहस्व, ततो विमुक्ते गर्भनाड़ीप्रबन्धे सशूलेषु श्रोणिवङ्क्षणवस्तिशिरःसु च प्रवाहेथाः शनैः शनैः, ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढ़म्, ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढ़तरमाविशल्यभावात्। अकालप्रवाहणाद् बधिरं मूकं व्यस्तहनुमूर्धाभिघातिनं कासश्वासशोषोपद्रुतं विकटं वा जनयति॥८॥ (सु० सं० शा० १०/९)

तथा पराऽनुशिष्यात्। अनागतायां वेदनायां मा प्रवाहिष्ठाः। अकालप्रवाहणं हि विण्मूत्रादिवेगानामिवोदीरणमनर्थकरमहितं च गर्भस्य श्वासकासशोषकुब्जतादिकारित्वात्। तथा तेषामेव विधारणमिव वेदनायामप्रवाहणमुपघाताय॥३०॥

ततो यथोक्तं कुरुष्व शनैः शनैश्च पूर्वं प्रवाहिष्ठाः। निर्गमे बाढ़ं गर्भस्य योनिमुखप्रतिपत्तौ बाढतरमाप्रसवादिति॥३१॥

तस्यास्तु प्रवाहमानायाः स्त्रियाः शब्दं कुर्युः प्रजाता धन्यं धन्यं पुत्रमिति। तथाऽस्या हर्षेण प्राणा आप्यायन्ते॥३२॥ (अ० सं० शा० ३/३० से ३२)

मृदुपूर्वं प्रवाहेत बाढमाप्रसवाच्च सा॥८१॥

हर्षयेत्तां महुः पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः। प्रत्यायान्ति तथा प्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः॥८२॥

(अ० हृ० शा० १/८१,८२)

उस स्त्री (प्रसविनी स्त्री) को यथोक्त गुण (पूर्ववर्णित प्रजनन कुशल, परिणत वयस्क आदि) वाली स्त्रियाँ शिक्षा दें:–

अनागत आवी (प्रसव वेदना की अनुपस्थिति) में प्रवाहण मत करो। जो अनागत आवी में प्रवाहण करती हैं उनका वह कर्म (प्रवाहण कर्म) व्यर्थ जाता है (गर्भ की प्रसव-मार्ग में गति नहीं बढ़ती) तथा उसकी सन्तान विकृत अथवा विकृतियों से आक्रांत होती है, वह श्वांस, कास, शोष या प्लीहा रोग से पीड़ित होती है। जिस प्रकार क्षवथु, उद्गार, वात, मूत्र एवं पुरीष के वेग प्रयतमान होते हुए भी (निकलने के लिए प्रयत्न किये जाते हुए भी) उचित काल (वेग की परिपूर्णता का काल) न होने पर बाहर नहीं निकलते अथवा बहुत कष्ट से निकलते हैं उसी प्रकार अनागत काल (आवी की अनुपस्थिति) में प्रवाहण करने से गर्भ भी बाहर नहीं निकलता, एवं जिस प्रकार क्षवथु इत्यादि वेगों के आने पर उनका सन्धारण उपघातकारक होता है उसी प्रकार प्राप्तकाल (आवी के आने पर) होने पर गर्भ का प्रवाहण न करना भी हानिकारक होता है। अतः वह (पारिचारिका) स्त्री (प्रसविनी स्त्री) को कहे कि निर्देशानुसार प्रवाहण करो। प्रवाहण प्रारम्भ में (द्वितीयावस्था के प्रारम्भ में) धीरे-धीरे तत्पश्चात् बलपूर्वक करना चाहिए। उसके प्रवाहण करते समय स्त्रियाँ ये शब्द कहें कि "उत्पन्न हो गया, उत्पन्न हो गया, धन्य हो, धन्य हो, पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे हर्ष के कारण प्राणों को बल मिलता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि उनमें से एक (परिचर्या करती हुई चार स्त्रियों में से केवल एक अथवा चारों में एक

उँची आवाज में एवं अन्य धीरे धीरे)[1] कहें कि हे सुभगे! प्रवाहण करो, आवी (प्रसव-वेदना[1]) न होने पर प्रवाहण मत करो, तत्पश्चात् गर्भनाड़ी के प्रबंध (गर्भ की नाड़ी के कठिन बन्धन[1]) खुल जाने पर एवं श्रोणि, वंक्षण तथा वस्तिशिर में शूल होने पर पहिले धीरे धीरे प्रवाहण करो, गर्भ के निर्गम के समय (स्वस्थान से गर्भ के निकलने के लिए नीचे आने के समय[1]) जोर से प्रवाहण करो, गर्भ के योनिमुख में आ जाने पर विशल्यीभाव होने तक (गर्भ रूपी शल्य के पूर्ण रूप से बाहर निकल जाने तक) अतितीव्र प्रवाहण करो। टीकाकार डल्हण ने गर्भ के साथ ही अपरा निकलने तक तीव्र प्रवाहण का निर्देश दिया है[1]। अकाल में प्रवाहण करने से (स्त्री) बधिर, मूक, व्यस्तहनु (हनुसंधि का टूट जाना), ऊर्ध्वाभिघाती (ऊर्ध्व जत्रु-गत रोगों से पीड़ित[1]), कास, श्वास एवं शोष आदि से उपद्रुत या पीड़ित तथा विकट (अयथास्थान अङ्गों वाली[1]) सन्तान का जन्म देती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि अन्य स्त्री (वहाँ उपस्थित परिचारिकाओं में से एक) शिक्षा दे कि वेदना न होने पर प्रवाहण मत करो, क्योंकि असमय में प्रवाहण अनुपस्थित मल-मूत्रादि के वेगों के प्रवृत्त करने के प्रयत्न के सदृश ही अनर्थकारी एवं अहितकारक है, तथा गर्भ को श्वास, कास, शोष तथा कुब्जता आदि उत्पन्न करने वाला होता है, एवं इनके (मल-मूत्रादि के वेगों के) धारण सदृश ही वेदना की उपस्थिति में प्रवाहण न करना हानिकारक होता है। तत्पश्चात् यथोक्त विधि से पहिले धीरे-धीरे प्रवाहण करना चाहिए, गर्भ के बाहर निकलने पर (श्रोणिगुहा में नीचे आने पर) कुछ तीव्र प्रवाहण करना चाहिए एवं (गर्भ के) योनिमुख को प्राप्त हो जाने पर प्रसव पूर्ण होने तक अति-तीव्र प्रवाहण करना चाहिए। उस प्रवाहण करती हुई स्त्री के पास अन्य स्त्रियाँ ये शब्द कहें कि "प्रसव हो गया, प्रसव हो गया, धन्य हो, धन्य हो, पुत्र उत्पन्न हुआ"। इससे हर्ष के कारण प्राणों को बल पहुँचता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने संक्षेप में लिखा है कि प्रारम्भ में धीरे धीरे तत्पश्चात् प्रसव पूर्ण होने तक जोर से प्रवाहण करे। उसको पुत्र-जन्म के शब्द तथा जल एवं वायु से (जल के छींटे देकर तथा हवा करके) बार बार प्रसन्न करे इससे प्रसव के क्लेद से थके हुए प्राण लौट आते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने स्पष्टीकरण में अष्टाङ्गसंग्रहोक्त वर्णन को ही 'शनैः शनैः से.....प्रसवादिति' तक तथा अकाल प्रवाहण से होने वाले गर्भोपद्रव एवं अग्रिम पृष्ठों में वर्णित 'क्षितिर्जलं' आदि मंत्र उद्धृत कर दिया है[2]।

महर्षि भेल ने भी लिखा है कि पहिले धीरे-धीरे बाद में जोर से प्रवाहण करे, वेदना न होने पर प्रवाहण न करे, बिना वेदना के प्रवाहण करने से स्वयं एवं पुत्र दोनों को विकार हो जाते हैं[3]।

आचार्य भावमिश्र ने भी महर्षि सुश्रुत सदृश ही प्रवाहण-निर्देश दिया है कि पहिले धीरे-धीरे बाद में जोर से एवं गर्भ के योनिद्वार में आ जाने पर अत्यधिक जोर से अपरा के निकलने तक प्रवाहण करे। अकाल में स्त्री प्रवाहण न करे क्योंकि अकाल में प्रवाहण से मूक, बधिर, कुब्ज, श्वास-कास से पीड़ित एवं स्रस्त-हनु बालक का जन्म होता है[4]।

१. एका उत्कृष्टा, अन्ये 'त्वेका चतसृणां स्त्रीणां मध्ये' इति व्याख्यानयन्ति।..... आवी प्रसववेदना.....। ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबन्ध इति गर्भनाडीनां प्रकृष्टो बन्धस्तस्मिन्। स्वस्थानाद् गर्भस्य निःसरणाय गमनं गर्भनिर्गमस्तस्मिन् गर्भनिर्गमे। आविशल्यभावादिति शल्यग्रहणमपरासहितगर्भप्राप्त्यर्थं।.....। व्यस्तहनुं विघटितमुखसन्धिम्। ऊर्ध्वाभिघातिनम् ऊर्ध्वजत्रुगतरोगिणम्। ..... विकटम् अयथास्थाननिवेशितावयवम्.....॥ (सु० सं० शा० १०/९ की डल्ह० टीका)

२. अ० हृ० शा० १/८१, ८२ की अरुण० टीका

३. शनैः पूर्वं प्रवाहा(हेत)पश्चाद्बलवत्तरमिति, न चाप्यनागतवेगा बाल्हित(लिश)तया, ह्यनागतवेददुःख या आत्मानं प्रयच्छति स(ह)पुत्रेण(दुष्प्रयासे), तस्याश्चेत्प्रजाताय(तोऽपि) अप(विका)रान् प्रपद्यते। (भे० सं० शा० ८/८)

४. एका तु तासु सुभगे प्रवाहस्वेति तां वेदत्॥३४७॥
अव्यथा मा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेथ व्यथा यदि। प्रवाहेथाः शनैः पूर्वं प्रगाढं च ततः परम्॥३४८॥
ततो गाढतमं गर्भे योनिद्वारमुपागते। अपरासहितो गर्भो यावत्पतति भूतले॥३४९॥
मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वासकासक्षयान्वितम्।
सूते स्रस्ततनुं(हनुं-शु० पा०) बालमकाले तु प्रवाहणात्॥३५०॥ (भा० प्र० पूर्व० ३/३४७ से ३५०)

Scanned with CamScanner

The accoucheuse or female attendants should educate the woman "do not bear down in the absence of labour pains, because it would be useless (in terms of progress of labour). One who does it, her child becomes abnormal, deformed or afflicted with dyspnoea, cough, emaciation and diseases of spleen. In the absence of natural urge inspite of best efforts as one either does not get or gets with difficulty sneezing, eructation, flatus, urine and feces, similarly bearing down efforts made in the absence of labour pains do not bring the fetus down. As suppression of sneezing etc. natural urges is harmful, similarly absence of efforts to bear down during labour pains is also harmful". Considering this the woman should bear down as instructed by accoucheuse. Initially (early second stage) the bearing down efforts should be mild, but should be forceful at the end. At the moment of this bearing down the attendants should pronounce "delivered, delivered, you are fortunate, fortunate, you have delivered a male child." Hearing these words the woman gets strength due to happiness.

Suśruta also has advised not to bear down in the absence of labour pains. When the fetus (presenting part) has slightly descended and the pain is felt in the region of pelvis, groin and neck of urinary bladder, the bearing down efforts should be gentle, when the fetus descends further then stronger and when the fetus (vertex) has appeared at the vaginal orifice, then bearing down efforts should be strongest till the fetus has delivered. Dalhana opines that the efforts should be continued upto the expulsion of placenta. Deafness, dumbness, dislocation of mandible, diseases of head and neck, cough, dyspnoea and emaciation etc. diseases and abnormal location of body-parts of the child are likely to occur due to bearing down efforts made in the absence of labour pains.

Vāgbhaṭa I has followed Caraka, but has added humpback in the disorders of fetus ,occurring due to improper bearing down efforts. Method of bearing down is described just like Suśruta. Vāgbhaṭa II, Bhela and Bhāvamiśra have also expressed almost similar views.

ई) गर्भ के अवाक् हो जाने पर कर्त्तव्य (Management after descend of fetus)

अस्यामवस्थायां पंयङ्कमेनामारोप्य प्रवाहयितुमुपक्रमेत। कर्णे चास्या मन्त्रमिममनुकूला स्त्री जपेत्–
'क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः। सगर्भां त्वां सदा पान्तु वैशल्यं च दिशन्तु ते॥
प्रसूष्व त्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने !। कार्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितां॥' इति।
(च० सं० शा० ८/३९)

अथास्या विशिखान्तरमनुलोममनुसुखमभ्यञ्य ·····॥ (सु० सं० शा० १०/९)

अथ परिवृत्तगर्भां पर्यङ्कमेनामारोप्य कुशला स्त्री पादतोऽस्या निषण्णाया योनिमनुलोममनुसुखमभ्यञ्य स्फिजौ पादाभ्यां पीडयेत्। योनिं च पुनः पुनः प्रसारयेत्। ब्रूयाच्च सुभगे शनैः शनैः प्रवाहयस्व सुप्रसन्नस्ते मुखवर्णः पुत्रं जनयिष्यतीति॥ २४॥

अन्या तु वामकर्णेऽस्या मन्त्रमिमं जपेत्॥ २५॥
क्षितिर्जलं पातु वैशल्यं वा दधात्वपि॥ २६॥
प्रसूष्व अभिरक्षितम्'॥ २७॥ इति। (चरक सं० सदृश ही)
तथा–
इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि। उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते॥ २८॥

इदममृतमपां समुद्धृतं वै, तव लघु गर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्रि।
तदनलपवनार्कवासवास्ते, सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम्'॥ २९॥ इति। (अ० सं० शा० ३/२४ से २९)
·····खट्वामारोपयेत्ततः।
अथ सम्पीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसारयेत्। (अ० ह० शा० १/८०, ८१)
अथास्याः प्रसवश्चेति ततः पर्यङ्कमारुहेत्। प्रवारमुपधानं वा ·····॥ (का० सं० शा० ५/४६,४७)

इस अवस्था में (गर्भ के अवाक् हो जाने पर) (उस स्त्री को) पलङ्ग पर लिटाकर प्रवाहण करने के लिए कहे तथा उसके कान में अनुकूल स्त्री इस मंत्र को जपे "पृथ्वी, जल, आकाश, तेज, वायु, विष्णु एवं प्रजापति तुझ गर्भ-युक्त की रक्षा करें तथा तुझे शल्य से विरहित कर दें। हे शुभानने ! तू क्लेश से विरहित होते हुए (बिना किसी कष्ट के), अविक्लिष्ट (क्लेश या थकानादि से रहित), कार्तिकेय से अभिरक्षित कार्तिकेय के सदृश ही पुत्र को उत्पन्न करे"।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि (यद्यपि सुश्रुत में निम्नाङ्कित क्रिया करने के लिए विशिष्ट समय निर्दिष्ट नहीं है परन्तु यह गर्भ अवाक् हो जाने पर ही करने योग्य होने से यहाँ वर्णित है) अब इस स्त्री के अपत्यमार्ग में लोमों के अनुकूल (रोमों के प्रतिकूल अभ्यङ्ग करने से उनके टूटने या वेदना का भय रहता है) सुखपूर्वक अभ्यङ्ग करे।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि परिवृत्त-गर्भा स्त्री को पलङ्ग पर लिटाकर कुशल (प्रजनन कर्म कुशल) स्त्री पैरों की ओर बैठकर योनि का अनुलोम एवं सुख-पूर्वक अभ्यङ्ग करके स्फिगों को पैरों से दबावे। बार-बार योनि का प्रसारण करे एवं कहे 'हे सुभगे ! धीरे-धीरे प्रवाहण करो। तुम्हारे मुख का वर्ण सुप्रसन्न है (सुन्दर है), पुत्र का जन्म करोगी'। अन्य स्त्री वामकर्ण में इस मंत्र को जपे 'पृथ्वी, जल, आकाश, तेज, वायु, विष्णु और प्रजापति गर्भ-युक्त तेरी रक्षा करें तुझे शल्य से रहित करें। हे शुभानने ! तू बिना क्लेश के, कष्ट से रहित, कार्तिकेय से अभिरक्षित, कार्तिकेय के ही सदृश पुत्र उत्पन्न करे' तथा-'इसी प्रकार अमृत, सोम, चित्रभानु, भामिनी तथा उच्चैःश्रवा नामक अश्व तेरे मन्दिर में निवास करें (या तेरे घर में रहकर तेरी रक्षा करें)। हे स्त्री ! जल से उद्धृत (समुद्र-मन्थन से) यह अमृत तेरे लघु गर्भ को मुञ्चित करा दे एवं अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र तथा समुद्र तुझे शान्ति दें।'

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि (गर्भ अवाक् हो जाने पर) इसे पलङ्ग में लिटाकर गर्भ के सम्पीडन होने पर (गर्भ का वायु के द्वारा चारों ओर से सम्पीडन हो नीचे आ जाने के कारण योनि-मार्ग में दबाव पड़ने पर[2]) इसकी योनि का प्रसारण करे (अभ्यङ्गादि के द्वारा विकास करे[2])।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि अब इसे प्रसव होगा ऐसा जानकर प्रवार (चद्दर) तथा उपधान (तकिया) युक्त पलङ्ग पर लिटा दे,·····॥

When the fetus has descended down-wards, the woman should be made to lie down on the bed and be advised to bear down. Another agreeable woman should recite repeatedly in low voice the *mantra "pṛthvī, jala, ākāśa, teja, vāyu, viṣṇu* and *prajāpati* should protect you the woman ! carrying fetus and make you free from this *śalya* (fetus acting as foreign body). O beautiful woman ! you deliver without any difficulty the child free from troubles and tiredness and who is protected by Kāritkeya and resembles him."

Suśruta has advised pleasing massage of genitalias in the direction of hair (in opposite direction the hair may get uprooted causing pain).

Vāgbhaṭa I following Caraka adds that the accoucheuse should sit towards the foot end

१. विशिखान्तरम् अपत्यमार्गम्। अनुलोमं लोमानुकूलं ·····॥ (सु० सं० शा० १०/९ का डल्हण टीका)

२. गर्भे सम्पीडिते-समन्तात्पीडिते, वायुना योनिमुखाक्रान्ततया, अस्या गर्भिण्या योनिं प्रसारयेत्-अभ्यङ्गादिदानेन विकासयेत्॥
(अ० ह० शा० १/८१ की अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

of delivering woman and gently massage the genitalias in the down-ward direction, should compress the hips with her foot, repeatedly dilate the vaginal canal and say 'O beautiful lady ! bear down slowly, your facial expression is charming, you will deliver a male child'. Besides recitation of *mantras* advised by Caraka, he has added two more i. e. "Similarly *amṛtam, soma, citrabhānu, bhāminī* (a beautiful young woman) and horse named *uccaiḥśravā* should live in your house (and protect you). O Woman ! this nectar obtained by churning the sea should expell your small fetus; *agni, vāyu, sūrya, indra* and *samudra* should give you solace".

Vāgbhaṭa II and Kāśyapa have expressed similar views but in summarized way.

(ङ) गर्भसङ्ग-चिकित्सा या प्रसव में विलम्ब होने पर प्रयुक्त औषधियाँ (Treatment of garbhasaṅga or delayed labour)

महर्षि सुश्रुत तथा वाग्भट ने गर्भसङ्ग की चिकित्सा का तो वर्णन किया है परन्तु गर्भसङ्ग के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन नहीं किया। गर्भसङ्ग का अर्थ है गर्भ का चिपक जाना अर्थात् उसकी प्रसव के लिए होनेवाली गति में रुकावट हो एक ही स्थान में स्थित हो जाना। योगरत्नाकरकार तथा आचार्य भावमिश्र ने गर्भसङ्ग शब्द ने देकर 'प्रसव में विलम्ब होने पर' की विशिष्ट चिकित्सा का निर्देश दिया है, जिस चिकित्सा का उद्देश्य भी प्रसव को शीघ्रता से पूर्ण कराना ही है, चूँकि दोनों ही स्थितियों में कोई विशिष्ट भेद नहीं है अतः एक साथ ही वर्णन दिया जा रहा है। अन्यत्र शुक्रस्थ वायु के कारण भी गर्भ के सङ्ग होने का उल्लेख है[१]।

Suśruta and Vāgbhaṭa have prescribed certain drugs for the treatment of *garbhasaṅga* without elaborating its clinical features. The word *garbhasaṅga* denotes attachment of fetus or cessation in the progress of labour. Books Yogaratnākara and Bhāvaprakāśa have not used the term *garbhasaṅga*, but have prescribed certain drugs for the treatment of "delay in labour". Since both the conditions are actually the same, hence all the prescriptions are recaptulated at on place.

Vitiated vāyu located in *śukra* is also said to cause *saṅga* or delay in labour.

(१) बाह्य प्रयुक्त औषधियाँ (Drugs to be used externally)

अ) योनि में धूपन अथवा लेपन (Fumigation or anointment of vaginal canal)

(१) गर्भसङ्ग में योनि का कृष्ण सर्प केचुल अथवा पिण्डीतक से धूपन करना चाहिए[१,२,३,४,५]।

(२) पोतकीमूल कल्क को तिल के साथ मिलाकर योनि के अन्दर लेप करने से स्त्री सखपूर्वक प्रसव करती है[५]।

i) Fumigation with slough of black snake or *piṇḍītaka* should be done.

ii) Anointment of pestled root of *potakī* with oil of *tila* inside the vaginal canal brings easy delivery.

आ) औषधि धारण अथवा अन्य अङ्गों में लेप (Amulet of drugs or anointment over other parts of body)

१) हिरण्यपुष्पी (स्वर्णक्षीरी-हिरणी*) के मूल को हाथ पैर में बाँधे या सुवर्चला अथवा विशल्या का धारण[१,२,३,४,५]

१. अ० सं० नि० १५/१५, १६; अ० हृ० नि० १५/१३ (पृष्ठ १७९)

* Euphorbia thomsoniana.

नोट- औषधियों के सन्दर्भ पृष्ठ ४५४-४५५ में देखें।

करे। इससे शीघ्र ही प्रसव होता[४,५] है।

२) इक्षु या ताल वृक्ष की उत्तर की दिशा की ओर के मूल को स्वशरीर प्रमाण के सूत्र में बाँधकर कमर में बाँधने से शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है[४,५]।

३) प्रत्यक्पुष्पा, पारिभद्र अथवा काकजंघा के मूल को कटि में बाँधने से स्त्री को शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है[४]।

४) कृष्णा तथा वचा को जल से पीस एरण्ड-तैल के साथ मिला नाभि में लेप करने से अनेकों कष्टों से पीड़ित स्त्री भी सुखपूर्वक प्रसव करती है[४,५]।

Following methods bring easy delivery—

i) Root of *hiranyapuṣpī* should be tied over arms or legs or else *suvarcalā* or *viśalyā* should be used.

ii) Roots of *ikṣu* or *tāla* grown on northern side knotted in a thread measuring to the length of the woman should be tied in waist.

iii) Root of *pratyakpuṣpā, pāribhadra* or *kākajaṅghā* should be tied in waist.

vi) Anointment of *kṛṣṇā* and *vacā* pestled with water and mixed with castor oil over umbilicus.

इ) सूतिकागृह में स्थापन (Placement over labour ward)

१) करङ्कीभूत (अस्थि-भाग शेष) गोमूर्द्धा (गाय के सिर) को सूतिकागृह के ऊपर स्थापित करने से स्त्री सुख-पूर्वक प्रसव करती है[५]।

Skeleton of cow's head should be placed over labour ward.

२) मन्त्र-चिकित्सा (Treatment with mantras)

१) गर्भ के अवाक् हो जाने के पश्चात् कर्तव्यान्तर्गत अष्टाङ्गसंग्रह वर्णित अमृत, सोम एवं जल से उद्धृत अमृत आदि दो मन्त्र (पृष्ठ ४५०, ४५१)[४]।

२) सभी प्रकार के पाश (बंधन) विपाश (विशिष्ट बंधन) छूट गए हैं सूर्य के द्वारा रश्मियाँ छोड़ दी गई हैं, गर्भ सभी भयों से मुक्त हो गया है अब (गर्भ तू) देर न कर, देर न कर, स्वाहा[४]।

३) जल को सात बार च्यवन-मंत्र पढ़कर अभिमंत्रित करके उसे स्त्री को पिलाकर उभयत्रिंशक यंत्र (अर्थात् जिस यन्त्र में दोनों ओर या ऊपर नीचे या सामने जोड़ने से तीस की संख्या आए), दिखाने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। कला (१६), रस (६) एवं आठ; पक्ष (२), दिक् (१०) एवं १८; तथा अर्क (१२), भुवन (१४) एवं वेद (४) लिखने से उभयत्रिंशक यंत्र बन जाता है[४] यथा-

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ४५४-४५५ में देखें।

Scanned with CamScanner

४) "हिमालय के दक्षिण भाग में रहने वाली सुरसा नाम यक्षिणी के नूपुर के शब्द सुनकर हे गर्भवती ! तू शल्य से विरहित हो जा" इस मंत्र को पढ़कर गर्भिणी के ऊपर पाँच अक्षत तुरन्त ही फेंके तो स्त्री तत्काल ही गर्भ से मुक्ति हो जाती है।[४]

i) Two extra *mantras* mentioned under the management after descend of fetus by Vāgbhaṭa should be used.

ii) An oblation reciting the *mantras* "all the ties and special bonds are released, the rays have been emitted by sun, the fetus is now free from all the fears, now do not delay do not delay", should be performed.

iii) Water treated for seven consecutive times with recitation of *"cyavanamantra"* should be given to the woman for drinking, after this she should be shown *ubhayatriṃśaka-yantra* (the numbers written in 9 colums and total comes to thirty in calculating from any side) i. e. :—

16	6	8
2	10	18
12	14	4

iv) Unhusked five grains of rice washed with water and treated with *mantra* "an *yakṣiṇī* named *Surasā* lives in south of *himālaya*, hearing the noise of her *nūpura* (an anklet) O pregnant woman ! you should be free from *śalya"* should be strewen over the woman, with this she delivers the fetus immediately.

(३) औषधियों का आभ्यन्तर-प्रयोग (Oral medication)

१) मातुलुङ्ग मूल तथा मधुक (चूर्ण या कल्क) घृत के साथ पीने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।[४,५]

Use of powdered roots of *mātuluṅga* and *madhuyaṣṭi* (in equal quantity) mixed with *ghṛta* completes the delivery very comfortably.

विमर्श (Comments)

आयुर्वेदिक संहिताओं में स्त्री को प्रसव उत्तान शयन की स्थिति में ही वर्णित है, महर्षि चरक ने प्रारम्भिक अवस्था में भूमि में बैठने एवं बाद में पलङ्ग में लेटकर, महर्षि सुश्रुत ने प्रारम्भ से ही भूमि पर उत्तान एवं संकुचित सक्थि की

१. गर्भसङ्गे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डीतकेन वा, बध्नीयाद् हिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोः, धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा। (सु० सं० शा० १०/११)

२. गर्भसङ्गे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डीतकेन वा। बध्नीयाच्च हिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादे। धारयेच्च सुवर्चलां विशल्यां वा। (अ० सं० शा० ३/३)

३. धूपयेद्गर्भसङ्गे तु योनिं कृष्णाहिकञ्चुकैः। हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत् ॥८३॥
सुवर्चलां विशल्यां वा ·····। (अ० हृ० शा० १/८३, ८४)

क्रमशः .....

स्थिति में लेटकर तथा वाग्भट ने प्रारम्भ में भूमि में तत्पश्चात् पलङ्ग में सुश्रुतोक्त स्थिति में ही प्रसव होने का विधान दिया है। आधुनिक काल में भी प्रसव की प्रारम्भावस्था में बैठने या घूमने का निषेध नहीं है अतः वास्तव में सभी आचार्यों के वर्णन में कोई विशिष्ट मतभेद नहीं है। महर्षि काश्यप ने स्त्री को बैठकर प्रसव करने का निर्देश दिया है जिसका स्पष्टीकरण कठिन है क्योंकि काश्यप के काल में उत्तान-स्थिति में प्रसव-व्यवस्था प्रचलित थी।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने चर्मच्छद बिछाने को लिखा है जो आजकल प्रयुक्त मैकिन्टॉश का प्रारम्भिक स्वरूप है एवं गर्भोदकादि से आस्तरण की सुरक्षा के लिए ही सम्भवतः वर्णित है।

सभी आचार्यों द्वारा पुत्राप्ति फल के धारण का निर्देश, महर्षि सुश्रुत द्वारा कुमारों से घिरी हुई स्त्री का सूतिकागार-प्रवेशादि उस काल की सामाजिक व्यवस्था जिसमें पुमान् पुत्र ही अधिक वांछित थे, के द्योतक हैं। प्रजनन कुशल स्त्रियों के द्वारा पुत्र-जन्म की घोषणा तथा प्रसवार्थ प्रवाहण के लिए प्रोत्साहन प्रजायिनी को मानसिक रूप से उत्साहित करने के लिए किए जाते होंगें क्योंकि यह प्रमाणित तथ्य है कि स्त्री की मानसिक अवस्था का प्रसव वेदनाओं में प्रभाव पड़ता है।

आवी की उत्पत्ति के बाद भी प्रसव न होने पर गर्भ को अवाक् लाने के लिए महर्षि चरक द्वारा वर्णित औषधियाँ सम्भवतः गर्भाशय की संकोचन-शक्ति को बढ़ाकर गर्भ को प्रसवित कराने में सहायता करती हों। महर्षि वाग्भट द्वारा इन्हीं औषधियों का सामान्य प्रसव में प्रयोग उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अनावश्यक औषधि-प्रयोग से गर्भाशय-मांसपेशी अत्यधिक उत्तेजित हो प्रसव में बाधक भी हो सकती है। जैसा पूर्ववर्णित है गर्भ का अवाक् होना प्रसव की द्वितीयावस्था

..... क्रमशः

४. प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्। कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥
तन्तुना लाङ्गलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः। सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूतये ॥
कृष्णा वचा वापि जलेन पिष्टा, सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् ॥
सुखप्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानाम्, निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥
मातुलुङ्गस्य मूलं तु मधुकैः संयुतं तथा। घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥
इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्ध्वा। कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽखिलम्बितेनापि ॥
तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना। बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥
प्रत्यक्पुष्प्याः पारिभद्रस्य यद्वामूलं यद्वा काकजंघासमुत्थम्।
कट्यां बद्धं योषितां सम्प्रसूतिं योगे युक्त्या संहृतं साधु कुर्यात् ॥
इहामृतं·····। ·····निवसन्तु ये। इदममृतमपां····विमुञ्चतु ·····। ····शान्तिम् ॥ (अ० सं० सदृश पृ० ४५०, ४५१)
मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि मा चिरं मा चिरम् स्वाहा ॥
जलं च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम्। पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥
कलारसाष्टभिः पक्षदिगष्टादशभिः क्रमात्। अकैश्च भुवनैर्वेदैरुभयत्रिंशकं भवेत् ॥
हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी। तस्या नुपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणी ॥
इमं श्लोकं पठित्वा तु क्षिपेदक्षतपञ्चकम्। गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुञ्चति गर्भिणी ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

५. प्रसवस्य ·····। ·····धारयेदाशु सूतये ॥ १०५-१०६॥ (यो० र० सदृश)
करङ्कीभूत गोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि। स्थापितस्तत्क्षणात्रार्याः सुखं प्रसवकारकः ॥ १०७॥
(करङ्कीभूतः-अस्थिमात्रेण स्थितः·····)।
पतोकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन च। योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ १०८॥
कृष्णवचा·····प्रमादैः ॥ १०९॥ मातुलुङ्गस्य मधुकेन युतं ·····। ····· प्रसूयते ॥ ११०॥
इक्षोरुत्तर·····सूतेऽखिलम्बेन ॥ १११॥ तालस्य·····कट्यान्तु····· ॥ ११२॥ (यो० र० सदृश ही)
(भा० प्र० चि० ७०/१०५ से ११२)

Scanned with CamScanner

का द्योतक है अतः यह मान सकते हैं कि गर्भ को अवाक् लाने के लिए वर्णित विधियाँ द्वितीयावस्था के प्रारम्भ में उत्पन्न प्रसव-अवरोध के निराकरण के लिए हैं। महर्षि सुश्रुत तथा परवर्ती भावमिश्र एवं योगरत्नाकर ने केवल गर्भसङ्ग (यूटेरिन इनःश्यं) की चिकित्सा का उल्लेख किया है जो विधि प्रसव की द्वितीयावस्था में गर्भाशय-संकोच बढ़ाने के लिए वर्णित है परन्तु चूँकि महर्षि वाग्भट ने गर्भ के अवाक् हो जाने के पश्चात् गर्भसङ्ग-चिकित्सा का वर्णन किया है अतः यह मान सकते हैं कि यह चिकित्सा प्रसव की द्वितीयावस्था के अन्तिम चरण की है। महर्षि चरकादि वर्णित प्रसव मन्त्रों का महर्षि सुश्रुत ने मूढ़गर्भ की चिकित्सा में उल्लेख किया है जिसका कारण सम्भवतः महर्षि सुश्रुत द्वारा गर्भ के प्रसव न होने की स्थिति को मूढ़गर्भ माना जाना है।

आधुनिक काल में प्रचलित योनि-प्रसारण की विधि का स्पष्ट उल्लेख महर्षि वाग्भट ने किया है।

प्रवाहण विधि के लिए शिक्षा बहुत ही वैज्ञानिक है क्योंकि अकाल में व्यर्थ ही प्रवाहण करने से स्त्री की शक्ति-ह्रास होने से सम्भव है कि उचित काल में वह प्रवाहण न कर सके अथवा अत्यधिक थक जाने के कारण उसे गर्भाशय-संकोच हीनता (यूटेरिन इनःश्यं) हो जाय। अकाल प्रवाहणोत्पन्न शिशु-विकार का स्पष्टीकरण कठिन है। यह सम्भव है कि तीव्र प्रवाहण से या तो गर्भ अतिशीघ्र प्रसवित हो जाय या गर्भाशय-संकोच-हीनता हो जाय, दोनों ही स्थितियों में गर्भ पर प्रभाव पड़ कर उसे विभिन्न व्याधियाँ हो जाती हों।

मन्त्र-चिकित्सा एक वैज्ञानिक अन्वेषण का विषय है। प्रसव के अवरोध में मंत्र-प्रयोग सम्भवतः स्त्री को मानसिक रूप से प्रभावित कर हाइपॉथलामस द्वारा पश्चिम पीयूषग्रन्थि के स्राव को उत्तेजित कर प्रसव में सहायक होते हों।

The position of parturient woman i.e. supine with flexed thighs described in *āyurvedika* classics resembles with Sim's position used today. Though Caraka has advised initial squatting position, however, before delivery the woman was made to lie down. During first stage sitting or walking is beneficial in bringing down the fetus and also in distracting her attention from the labour pains. Caraka's and Vāgbhaṭa's description of conduction of labour on the bed is a better procedure than Suśruta's description of conduction of labour on floor. Why Kāśyapa has advised squatting position is difficult to explain, because by that time lying position was prevalent. Use of skin over the bed by Vāgbhaṭa is probably first description of mackintosh.

Holding fruits bearing masculine names by the woman at the beginning of labour pains, initial encirclement by male adolescents etc. hint towards the social condition prevailing at that time, where-in male children were more wanted. Pronouncement of delivery of a male child and other encouragements to bear down were probably used to boost the morale of parturient woman, because it is established fact that psychology of woman plays very important role during labour.

Drugs prescribed by Caraka to bring down the fetus (which has failed to come down inspite of presence of labour pains) probably stimulate the uterine musculature and improve the expulsive efforts, however, their routine use described by Vāgbhaṭa is not justified, because over-stimulation to normally functioning uterine muscles can cause certain complications. As explained earlier that descend of fetus is indicative of second stage of labour, the treatment prescribed by Caraka before the descend of fetus is to stimulate the uterus in the beginning of second stage. *Garbhasaṅga* (uterine inertia) described by Suśruta etc. is an abnormality of second stage of labour, however, since Vāgbhaṭa has described *garbhasaṅga*

after descend of fetus, thus it may be considered as the treatment during latter period of second stage. Suśruta has described *mantras* in the treatment of obstructed labour *(mūḍhagarbha)*.

Dilatation of vaginal canal or ironing described by Vāgbhaṭa is practised even today.

The education regarding bearing down efforts is very important, because undue straining by woman may exhaust her and lead to uterine inertia. It is difficult to explain specific diseases to the child developing due to undue straining, it is possible that delayed or precipitate both labours may injure the child and produce certain abnormalities.

Use of *mantras* is a subject of scientific investigations, however, it is possible that these might influence posterior pituitary via hypothalamus thus increase amount of posterior pituitary extract which in turn effects uterine contractions.

अपरा पतन (Placental expulsion)

(अ) स्वाभाविक अपरा-पतन (Normal expulsion of placenta)

गर्भ-प्रसव के पश्चात् अपरा-पतन का वर्णन सभी आचार्यों ने किया है परन्तु स्पष्टतर उल्लेख महर्षि चरक, वाग्भट एवं काश्यप ने दिया है। महर्षि चरक ने लिखा है कि जब प्रसव हो जाय तो कोई स्त्री (परिचारिकाओं में से एक) ध्यान से देखे कि अपरा बाहर आ गई या नहीं[1]। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने प्राकृतिक प्रसव की परिभाषा में अवाक्-शिर गर्भ-प्रसव के पश्चात् मातृ-हृदय से च्युत अपरा-निर्गमन हो प्रकृति एवं अन्य विकृति माना है।[2] महर्षि काश्यप ने भी अपरा-निर्गमन के पश्चात् ही उसे सूतिका वर्णित किया है।[3]

Though expulsion of placenta has been mentioned in all the classics, however, distinct description has been given only by Caraka, Vāgbhaṭa and Kāśyapa. Caraka says that after delivery of fetus one of the attendants must inspect carefully that whether placenta is expelled or not. Vāgbhaṭa I defining normal labour syas that delivery of fetus in vertex presentation followed by expulsion of placenta (detached from *mātri-hṛdaya)* is normalcy, all other conditions are abnormal. Kāśyapa says that without expulsion of placenta, the woman can not be termed as puerperal woman.

आ) अपरा पतन न होने पर उपद्रव (Complications of retention of placenta)

अपरां हि वातमूत्रपुरीषाण्यन्यानि चान्तर्बहिर्मार्गाणि सज्जन्ति ॥ (च० सं० शा० ८/४१)
अथापराऽपतन्त्यानाहाध्मानौ कुरुते । (सु० सं० शा० १०/२१)

अपरा (न निकली हुई अपरा) वात, मूत्र, पुरीषादि सभी बहिर्मार्ग से निकलने वाले (मलों) को अन्दर रोक देती है। टीकाकार चक्रपाणि ने लिखा है कि बहिर्गमनशील पुरीषादि आभ्यन्तर प्रदेश (कोष्ठान्तर्गत) में संसक्त हो जाते हैं[4]।

---

१. यदा च प्रजाता स्यात्तदैवैनामवेक्षेत-काचिदस्या अपरा प्रपन्ना न वेति ॥ (च० सं० शा० ८/४१)

२. अ० सं० शा० २/३५ (पृष्ठ ४३४)

३. का० सं० खि० ११/६ (पृष्ठ ४३९)

४. अन्तर्बहिर्मार्गाणि सज्जन्तीति बहिर्गमनशीलानि पुरीषादीनि, अन्तः अभ्यन्तरदेशे संसक्तानि भवन्ति ॥
(च० सं० शा० ८/४१ चक्रपाणि टीका)

Scanned with CamScanner

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि न गिरी हुई अपरा आनाह एवं आध्मान उत्पन्न करती है।

भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने लिखा है कि यदि प्रसूता स्त्री के जठर से अपरा नहीं पतित होती तो वह शूल, आध्मान तथा अग्निमान्द्य कर देती है[१]।

Retained placenta obstructs the passage of flatus, feces and urine etc. excreted through external orifices.

Suśruta has enlisted *ānāha* (tympanites) and *ādhmāna* (flatulence) and Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara pain (colic), flatulence and anorexia as complications of retained placenta.

अपरा की पातन-विधि (Treatment of retention of placenta)

महर्षि सुश्रुत ने अपरा-पातन विधि का दो स्थानों में वर्णन दिया है (१) शरीर स्थान (२) चिकित्सा स्थान (मूढ़गर्भ-चिकित्सा)। चूँकि दोनों ही स्थानों में वर्णित विधि में कोई विशिष्ट सैद्धान्तिक अन्तर नहीं है अतः एक ही स्थान पर (यहीं) उल्लेख किया जा रहा है।

Suśruta has described this subject at two places, both references are recapitulated here.

चिकित्सा सिद्धान्त (Principles of Treatment)

तत्सङ्गे ह्यनिलोहेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात्। (अ० हृ० शा० १/९०)

अपरासङ्ग का कारण वायु ही होती है अतः उसे विजय कर लेने या शान्त कर लेने से अपरा तुरंत ही निकल जाती है।

Vitiation of *vāyu* is main etiological factor for retention of placenta, with its suppression placenta comes out immediately.

बाह्य उपचार (External manipulations for placental expulsion)

१) दक्षिण हस्त से (प्रसूता की) नाभि के ऊपर बलपूर्वक दबाकर बायें हाथ से पीठ को पकड़कर (तीव्र रूप से) हिलावें[१,३] उसकी बाहुओं को ऊपर उठाकर उसे खूब कपायें या हिलायें[४]।

२) पार्ष्णि से श्रोणि (प्रसूता की) को कूटें अर्थात् बार-बार दबाव डालें[१,३,४]।

३) दोनों स्फिगों को पकड़कर भली भाँति या कस कर दबावें[१,३,४]।

४) बालों की वेणी[१,३,४] अथवा बाल लिपटी हुई उंगली[२,३,५,६] से कण्ठ एवं तालु का स्पर्श करें।

५) स्त्री की योनि को तैलाक्त कर पश्चात् उसके पार्श्वों को पीड़न कर एवं उसे बार-बार हिलाकर अथवा अंसपिण्डिका की तरह पीड़न करके अपरा का पातन करायें[२]।

i) Compressing forcefully the abdomen of delivered woman over umbilicus and holding her by back, she should be waggled violently or else holding her by both the arms violent jerks should be given.

ii) The attendant should strike or compress repeatedly the pelvis of delivered woman by her heels.

iii) Holding her by both the hips, violent compression should be done.

१. प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि। तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम्॥
(भा० प्र० चि० ७०/१३१ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

नोट- सम्पूर्ण चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ४६३-४६४ में देखें।

iv) Throat (inside) and palate should be touched with braid of hair or a finger wrapped with hair.

v) After oleating the vagina properly and compressing her flanks she should be given violent jerks or else it (uterus) should be compressed just like shoulder and placenta delivered.

बाह्य औषधि-प्रयोग (External use of drugs to expell the placenta)

अ) योनि में धूपन (Fumigation in vagina)

निम्नाङ्कित औषधियों से योनि का धूपन करें।

१) भोजपत्र, काचमणि एवं सर्प-निर्मोक[१,३,४]।

२) भोजपत्र एवं गुग्गुलु[३]।

३) शालिमूल-साधित घृत से योनि का अभ्यङ्ग कर के कटुकालाबु, जालिनी, निम्ब एवं सर्प-निर्मोक[३]।

४) कटुकालाबु, कृतवेधन, सर्षप एवं सर्प-निर्मोक अथवा केवल सर्प-निर्मोक को कड़ुवे तैल में मिलाकर[२,५]।

५) भूर्ज, लाङ्गलिकी, तुम्बी, सर्पत्वक्, कुष्ठ एवं सर्षप सभी से पृथक् पृथक्, दो-दो अथवा सभी को मिलाकर[४]।

Vaginal fumigation with following drugs should be done.

i) *bhūrjapatra, kācamaṇi* and slough of snake.

ii) *bhūrjapatra* and *guggulu.*

iii) After massaging the vagina with *śālmalī ghṛta* fumigation with *kaṭukālābu, jālinī* (bottle and ridge-gourd), *nimba* and slough of snake.

iv) *Kaṭukālābu, kṛtavedhana, sarṣapa* and slough of snake or only slough of snake mixed with mustard oil.

v) *Bhūrjapatra, lāṅgalikī, tumbī*, slough of snake, *kuṣṭha* and *sarṣapa* either all together or two of them or individually.

(आ) योनि में लेपन या पूरण (Anointment or filling in vagina)

निम्नाङ्कित औषधियों का योनि में लेपन या पूरण करें।

१) कटुकालाबु, जालिनी, निम्ब एवं सर्प-निर्मोक के कल्क को कड़ुवे तैल में मिलाकर (योनि को) तैलाक्त करके लेप करें[३]।

२) गुड़ एवं शुण्ठी के कल्क का लेप करें[३]।

३) उमा तथा शाल्मली-निर्यास को घी के साथ मिलाकर योनि में पूरण कर (स्त्री को) हिलावे (झिझकोरे)।[३]

४) योनि धूपनान्तर्गत न० ५ की वर्णित औषधियों से लेपन करें[४]।

Paste of following drugs should be applied in vaginal canal :

i) Paste of *kaṭukālābu* (bitter bottle-gourd) and *jālinī* (ridged-gourd), *nimba* and slough of snake mixed with mustard oil after initial application of oil in vagina.

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ४६३-४६४ में देखें।

Scanned with CamScanner

ii) Paste of jaggery and *śuṇṭhī*.

iii) *Umā* and gum of *śālmalī* mixed with *ghṛta* should be filled in vagina and violent jerks be given.

iv) Paste of drugs prescribed under column V of vaginal fumigation.

***(इ) अन्य अङ्गों में लेपन या अनुसेचन** (Anointment or irrigation over other body-parts)*

१) लाङ्गलीमूल-कल्क को हाथों एवं उदर[३] अथवा हाथ-पैर में लेप[२,५,६] करें।

२) महावृक्ष (सेहुण्ड) के क्षीर को मूर्धा (शिर) में अवसेचन[२,३,४] करें।

३) हिरण्यपुष्पीमूल, सुवर्चला तथा विशल्या का हाथ या पैर में धारण करे[४]।

४) निर्मोक, कटकालाबु, कृतवेधन एवं सर्षप (कल्क) का हाथ या पैर में लेपन करे।[५]

i) Paste of *lāṅgalī* should be applied over palms and abdomen or palms and soles.

ii) Irrigation with latex of *mahāvṛkṣa* over head.

iii) Amulet of root of *hiraṇyapuṣpī*, *suvarcalā* and *viśalyā* in arm or leg.

iv) Pestled slough of snake, *kaṭukālābu*, *kṛtavedhana* and *sarṣapa* should be applied over palms and soles.

***ई) योनि में पिचु-धारण** (Vaginal tampons)*

१) शतपुष्पा, कुष्ठ, मदनफल तथा हिंगु से साधित तैल की पिचु धारण करायें[१,३]।

i) Tampon soake with oil prepared with *śatapuṣpā kuṣṭha, madanphala* and *hiṅgu* should be given.

***ए) बस्ति-प्रयोग** (Use basti to expell the placenta)*

***१) अनुवासन बस्ति** (Anuvāsana-basti i.e. unctuous enema)*

१) पिचु के अन्तर्गत वर्णित तैल से अनुवासन बस्ति दें[१,३]।

२) शिग्रु, सुमुख, मरिच, अजाजि एवं चित्रक के कल्क तथा क्षीर (गोदुग्ध) एवं गोमूत्र से साधित कटु तैल की अनुवासन बस्ति दें[३]।

३) उत्तरबस्ति के अन्तर्गत वर्णित न:३ के तैल से गुदा में अनुवासन बस्ति भी देनी चाहिए[४]।

Following preparations should be used in the form of *anuvāsana basti* i.e. unctuous or retention enema:—

i) *Śatapuṣpādi* oil prescribed for tampon.

ii) Mustard oil prepared with pasted *śigru, sumukha, marica, ajāji* and *citraka* alongwith cow's milk and urine.

iii) Oil prescribed in column (iii) of *uttarabasti*.

***२) आस्थापन बस्ति** (Āsthāpana basti i.e. cleansing enema)*

१. इन्हीं आप्लावन द्रव्यों (बल्वज क्वाथ या मैरेय एवं सुरामण्ड या कुलत्थ क्वाथ या मण्डूकपर्णी एवं पिप्पली

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ४६३-४६४ में देखें।

क्वाथ में) फल, जीमूतक (देवदाली या मुस्त ?), इक्ष्वाकु, धामार्गव, कुटज, कृतवेधन एवं हस्तिपिप्पली मिलाकर आस्थापन बस्ति दें[१]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने इन सभी औषधियों के साथ बिल्व एवं अर्क का तथा हस्तिपिप्पली के स्थान में हस्तिपर्णी का वर्णन दिया है[३]।

२) सिद्धार्थक, कुष्ठ, लाङ्गली (मूल) तथा महावृक्ष के क्षीर से मिश्रित सुरामण्ड से आस्थापन बस्ति दें[२,३]।

३) शाल्मली-वृन्त को अच्छी प्रकार स्विन्न करके (उबालकर) पञ्चमूल कषाय में मर्दन करके, छानकर फलादि (न० १ में वर्णित) द्रव्य एवं स्नेह को भलीभाँति मिलाकर (आस्थापन दें)[३]।

४) शतपुष्पा, वचा, कुष्ठ, कणा एवं सर्षप के कल्क में स्नेह एवं लवण मिलाकर निरूह बस्ति देने से अपरा शीघ्र ही निकल जाती है[१]।

Following preparations should be used in the form of *āsthāpana basti* i.e. cleansing enema for placental expulsion :—

i) Decoction of *phala, jīmūtaka, ekṣwāku, dhāmārgava, kuṭaja, kṛtavedhana* and *hastipippalī* or *hastiparṇi* and *arka* mixed with either decoction of *balwaja* or *bilva* and *balwaja* or *maireya* (a kind of intoxicating drink) and *surāmaṇḍa* (the froth or scum of spirituous liquour or beer) or decoction of *kulattha* or *maṇḍūkaparṇī* and *pippalī*.

ii) Pestled or powdered *siddhārthaka, kuṣṭha, lāṅgalī* and latex of *mahāvṛkṣa* mixed with *surāmaṇḍa*.

iii) Properly steamed twigs of *śālmalī* should be pestled with decoction of *pañcamūla* and strained, this filtrate mixed with *phala* etc. drugs mentioned above in no. 1 and fat (oil).

iv) Paste of *śatapuṣpā, vacā, kuṣṭha, kaṇā* and *sarṣapa* mixed with fat (oil) and salt.

***आस्थापन बस्ति की कार्य-विधि** (Mode of action of āsthāpana basti)*

इस अस्थापन बस्ति से वायु के अप्रतिलोम (**अनुलोम**) हो जाने से वात, मूत्र एवं पुरीष के साथ चिपकी हुई अपरा निकल जाती है[१]।

Due to *anulomana* (downwards movement) of *vāyu (apāna vāyu)* by use of this *āsthāpana basti*, along with flatus, feces and urine adhered placenta also comes out.

***३) उत्तरबस्ति** (Uttarabasti i.e. vaginal / uterine injection)*

१) सिद्धार्थकादि (सिद्धार्थक, कुष्ठ, लाङ्गली, महावृक्ष-क्षीर आदि आस्थापनान्तर्गत वर्णित) से साधित तैल की उत्तरबस्ति दें[३]।

२) फल, जीमूतकादि आस्थापनान्तर्गत न० १ में वर्णित द्रव्यों से साधित कटुतैल की उत्तरबस्ति दें[३]।

३) शताह्वा, सर्षप, अजाजी, शिग्रु, तीक्ष्णक, चित्रक, हिङ्गु, कुष्ठ, मदनफल तथा मूत्र एवं क्षीर (गोमूत्र तथा गोक्षीर) से सिद्ध सरसों के तैल से योनि में बस्ति देनी चाहिए[४]।

Uttarabasti (irrigation/instillation of drugs in vaginal canal or uterine cavity) of following preparations should be given in cases of retention of placenta.

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ४६३-४६४ में देखें।

Scanned with CamScanner

i) Oil prepared with *siddhārthaka, kuṣṭha, lāṅgalī* and latex of *mahāvṛkṣa.*

ii) Mustard oil treated with *phala* etc. drugs described under column one of *āsthāpana basti.*

iii) Vaginal douching with mustard oil prepared with pestled *śatāhwā, sarṣapa, ajājī, śigru, tīkṣṇaka, citraka, hiṅgu, kuṣṭha,* and *madanaphala* alongwith cow's urine and milk.

आभ्यन्तर औषधि-प्रयोग (Oral medication for expulsion of placenta)

१) गुड़ एवं शुण्ठी का कल्क खाने को दें[3]।

२) कुष्ठ एवं तालीस (पत्र) के कल्क को बल्वज के यूष अथवा मैरेय[1] एवं तीक्ष्ण सुरामण्ड अथवा कुलत्थ-यूष[4] अथवा मण्डूकपर्णी एवं पिप्पली के क्वाथ के साथ मिलाकर पीने को दें[1,4]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने कुष्ठ एवं तालीस के कल्क को चरक-वर्णित औषधियों के साथ ही बिल्व-क्वाथ अथवा आसव अथवा व्योष के द्वारा तीक्ष्ण करके अथवा अम्ल (काँजी) के साथ भी देने एवं मण्डूकपर्णी के स्थान में मधुयष्टी का वर्णन दिया है। टीकाकार इन्दु ने मधूक अर्थात् महुआ लिखा है तथा कुष्ठ एवं तालीस के कल्क का विभिन्न द्रव्यों के साथ प्रयोग दोषादि के आधार पर तथा मद्यादि का प्रयोग देह-प्रकृति के आधार पर करने का निर्देश दिया है।[3]

३) सूक्ष्मैला, किलिम, कुष्ठ, नागर, विडङ्ग, पिप्पली, कालागुरु, चव्य, चित्रक एवं उपकुञ्चिका के कल्क[1] अथवा जीवित खरवृषभ[1] (चण्डबलीबर्द या साँड) अथवा खर (गधा) एवं वृषभ[3] के दक्षिण कर्ण को काटकर पत्थर में जर्जर करके बल्वज क्वाथ[1] अथवा बिल्व-बल्वज क्वाथ[3] आदि (अपर्युक्त न० दो के अन्तर्गत वर्णित अन्य औषधियों) में से किसी एक में घोलकर एक मुहूर्त रखकर (ऊपर के द्रवभाग को) निकालकर उस द्रव को पीने को दें[1,3]।

४) कुष्ठ एवं लाङ्गली-मूल के कल्क को मद्य या मूत्र के साथ पीने को दें[2,3]।

५) शालमूल अथवा पिप्पल्यादिगण के कल्क को मद्य के साथ पीने को दें[2]।

६) पिप्पली, एला, कोल, विड् (विड् नमक), चव्य, चित्रक एवं उपकुञ्चिका के कल्क को दें[3]।

७) कुष्ठ एवं एला के कल्क को सुरा के साथ दें[2]।

८) अर्क (रक्त-मदार) एवं अलर्क (श्वेत-मदार) के कषाय को सुरा मिश्रित करके पीने को दें[3]।

९) वत्सकादि चूर्ण को मद्य के साथ दें[3]।

i) Paste of jaggery and *śunṭhī* should be given for eating.

ii) Paste of *kuṣṭha* and *tālīsapatra* mixed with either decoction of *balwaja* or *maireya* and strong *surāmaṇḍa* or decoction of either *kulattha* or *maṇḍūkaparṇī* and *pippalī* or *bilva* or *maḍhuyaṣṭī* and *pippalī* or *madhūka* and *pippalī* or *āsawa* or powdered *vyoṣa* or *kāñjī* (sour fermented drink) should be given. Indu has explained that various decoctions etc. should be prescribed with paste of *kuṣṭha* and *tālīsa* considering the vatiation of *doṣas,* while wine preparations should be given on the basis of *daihika prakṛti* (physical constitution) of the woman.

iii) Either paste of small *elā, kilima, kuṣṭha, nāgara, viḍaṅga, pippalī, kālāguru,*

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ४६३-४६४ में देखें।

cavya, citraka, and *upakuñcikā* or right ear of alive strong bull or donkey and bull both crushed properly with stone should be mixed with any one out of decoctions of *balwaja* or *bilva* etc. described above in no. ii. After keeping this for one *muhūrta* (fortyeight minutes) supernatant fluid should be given to drink.

iv) Paste of *kuṣṭha* and root of *lāṅgalī* should be given with either urine (cow's) or wine.

v) Paste of root of *śāla* or *pippalyādi* group of drugs should be given with wine.

vi) Paste of *pippalī, elā, kola, viḍ* salt, *cavya, citraka* and *upakuñcikā* should be given.

vii) Paste of *kuṣṭha* and *elā* should be given with wine.

viii) Decoction of *arka* and *alarka* (red and white varieties of *arka)* mixed with wine should be given.

ix) Powder of *vatsakādi* group of drugs mixed with wine should be given.

अपरा का हस्त-निष्काशन (Manual removal of placenta)

(उपर्युक्त सभी विधियाँ असफल हो जाने पर ही यह विधि अपनानी चाहिए)।

कटे हुए नाखून वाले स्निग्ध[3,4,A] हाथ से नाल का अनुसरण करते हुए[3] (हाथ को अन्दर प्रविष्ट करके) अपहरण करें।

If all above drugs/methods fail, then this method should be used. Lubricated hand having nails already trimmed should be inserted following umbilical cord and placenta delivered.

१. तस्याश्चेदपरा न प्रपद्मा स्यादथैनामन्यतमा स्त्री दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद्वलवन्निपीड्य सव्येन पाणिना पृष्ठत उपसंगृह्य तां सुनिर्धूतं निर्धुनुयात्। अथास्याः पार्ष्ण्या श्रोणिमाकोटयेत्। अस्याः स्फिचावुपसंगृह्य सुपीडितं पीडयेत्। अथास्या बालवेष्यां कण्ठतालु परिमृशेत्। भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकैश्चास्या योनिं धूपयेत्। कुष्ठतालीसकल्कं बल्वजयूषे मैरेयसुरामण्डे तीक्ष्णे कौलत्थे वा यूषे मण्डूकपर्णीपिप्पलीसंपाके वा संप्लाव्य पाययेदेनाम्। तथा सूक्ष्मैलाकिलिमकुष्ठनागरविडङ्गपिप्पलीकालागुरु-चव्यचित्रकोपकुञ्चिकाकल्कं खरवृषभस्य वा जीवितो दक्षिणं कर्णमुत्कृत्य दृषदि जर्जरीकृत्य बल्वजक्वाथादीनामाप्लावना-नामन्यतमे प्रक्षिप्याप्लाव्य मुहूर्तस्थितमुद्धृत्य तदाप्लावनं पाययेदेनाम्। शतपुष्पाकुष्ठमदनहिङ्गुसिद्धस्य चैनां तैलस्य पिचुं ग्राहयेत्। अतश्चैवानुवासयेत्। एतैरेव चाप्लावनैः फलजीमूतेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनहस्तिपिप्पल्युपहितैरुस्थापयेत्। तदास्थापनमस्याः सह वातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यपरामासक्तां वायोरेवाप्रतिलोमगत्वात्। (खरवृषभक्ष्णड्वलीवर्दः चक्र०)

(च० सं० शा० ८/४१)

२. अ)·····, तस्मात् कण्ठमस्याः केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या प्रमृजेत्, कटुकालाबुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैलविमिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत्, लाङ्गलीमूलकल्केन वाऽस्याः पाणिपादतलमालिम्पेत्, मूर्ध्नि वाऽस्याः महावृक्षक्षीरमनुषेचयेत्, कुष्ठलाङ्गलीमूलकल्कं वा मद्यमूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्, शालमूलकल्कं वा पिप्पल्यादिं वा मद्येन, सिद्धार्थककुष्ठलाङ्गलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामण्डेन वाऽऽस्थापयेत्, एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरवस्तिं दद्यात्, स्निग्धेन वा कृत्तनखेन हस्तेनापहरेत्॥

(सु० सं० शा० १०/२१)

आ) अथापतन्तीमपरां पातयेत् पूर्ववद् भिषक्। हस्तेनापहरेद् वाऽपि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा॥

धुनुयाच्च मुहुर्नारीं पीड़येद्वांऽसपिण्डिकाम्। तैलाक्तयोनेरेवं तां पातयेन्मतिमान्भिषक्॥ (सु० सं० चि० १५/१७, १८)

३. अथ प्रसूताया न चेदपरा पतति ततो दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद्वलवदुपपीड्य पृष्ठत उपसंगृह्य विधुनुयात् (१)।

क्रमशः .....

Scanned with CamScanner

विमर्श (Comments)

अपरा के पातन के लिए उपर्युक्त वर्णित विधियों को क्रियाकलाप की दृष्टि से चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। जिनमें पहिली को छोड़कर अन्य सभी विधियाँ ही सिद्धान्ततः आज भी प्रयुक्त होती हैं।

On the basis of mode of action all above drugs/methods can be classified under four groups. Except no. 1 other methods are practised in principle even to-day.

..... क्रमशः

पार्ष्ण्यां वा श्रोणिमाकुट्टयेत्। स्फिजौ वोपसंगृह्य सुपीडितं पीडयेत्। वेण्याऽङ्गुल्या वा केशवेष्टितया च कण्ठतालु परामृशेत् (२)।

भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकैश्च योनिं धूपयेत्, भूर्जगुग्गुलुभ्यां वा। शालिमूलसिद्धेन वा सर्पिषा योनिमभ्यज्य कटुकालाबुजालिनीनिम्बसर्पनिर्मोकैर्धूपयेत्। अनभ्यक्तां वा कटुतैलमिश्रैः कल्कीकृतैर्वा तैलार्क्तैरालिम्पेत्। गुडनागरकल्केन वा। तदेव वा भक्षयेत्। लाङ्गलीमूलकल्केन वा पाणिमुदरं चालिम्पेत्। महावृक्षक्षीरं वा मूर्धन्यनुषेचयेत् (३)।

कुष्ठतालीसकल्कं बिल्वबल्वजयूथमैरेयासवसुरामण्डान्यतमेन व्योषतीक्ष्णोष्णेन वाऽम्लेन कुलत्थरसेन मधुकपिप्पलीसंपाकेन वा पाययेत्। पिप्पल्येलाकोलविडघव्यचित्रकोपकुञ्चिका कल्कं वा। खरस्य वृषभस्य वा जीवतो दक्षिणं कर्णमुद्धृत्य बिल्वकुलत्थबल्वजयूषादीनामाप्लवनानामन्यतमे प्रक्षिप्य मुहूर्तस्थितमुद्धृत्य तदाप्लवनं पाययेत् (४)।

कुष्ठैलाकल्कं वा सुरया। अर्कालर्ककषायं वा सुरोन्मिश्रम्। कुष्ठलाङ्गलकीमूलककल्कं वा मद्यमूत्राभ्यतरेण। वत्सकादिचूर्णं वा मद्येन। शतपुष्पाकुष्ठमदनहिङ्गुसिद्धस्य च तैलस्य पिचुं ग्राहयेत्। ततश्चैनामनुवासनकालेऽनुवासयेत् (५)।

बिल्ववल्वजयूथाद्याप्लावनैश्च। फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजार्ककृतवेधनहस्तिपर्ण्युपहितैरास्थापयेत्। सिद्धार्थककुष्ठलाङ्गलकीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण वा सुरामण्डेन शाल्मलीवृन्तानि वा स्विन्नान्यापोथ्य पञ्चमूलकषाये विमर्दयेत् (६)।

तेन च पूतेन स्नेहवता फलादियुक्तेन यथोक्तास्थापनद्रव्यसिद्धेन कटुतैलेनोत्तरबस्तिं दद्यात्। शिग्रुमुखमरिचाजाजिचित्रककल्कक्षीरगोमूत्रसिद्धेन वा कटुतैलेनाऽनुवासयेत्। उमाशाल्मलीपिच्छया वा सघृतया योनिं पूरयित्वा विधुनुयात्। स्निग्धेन वा कृत्तनखेन पाणिना नालानुसारतोऽपहरेत् (७)।

(दोषाद्यपेक्षया कुष्ठतालीसयोः कल्कं पाययेत्.....मधुकपिप्पलि संपाकेन..... प्रकृतिदेहाद्यपेक्षमात्रया सुरायोन्मिश्रं पाययेत्.....। -इन्दु टीका) (अ० सं० शा० ३/३४-१ से ७)

४. .....गर्भसङ्क्रान्तर्गत वर्णित चिकित्सा एवं–

.....जतरुपतनेऽपि च। कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्य बाह्वोरेनां विकम्पयेत् ॥ ८४॥

कटीमाकोटयेत्पार्ष्ण्यां स्फिजौ गाढं निपीडयेत्। तालुकण्ठं स्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि दद्यात्सुहीपयः ॥ ८५॥

भूर्जलाङ्गलिकोतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः। पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ॥ ८६॥

कुष्ठतालीसकल्कं वा सुरामण्डेन पाययेत्। यूषेण वा कुलत्थानां बिल्वजेनासवेन वा ॥ ८७॥

शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः। सहिङ्गुकुष्ठमदनैर्मूत्रे क्षीरे च सार्षपम् ॥ ८८॥

तैलं सिद्धं हितं पायौ योन्यां वाऽप्यनुवासनम्। शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्कितः ॥ ८९॥

निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम्। ततसङ्गे ह्यनिलो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात् ॥ ९०॥

कुशला पाणिनाऽऽकेन हरेत्क्लृप्तनखेन वा ॥ ९१॥ (अ० हृ० शा० १)

५. केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत्।

निर्मोककटुकाऽलाबूकृतबन्धनसर्षपः। चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम् ॥ १३२॥

लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि ॥ १३३॥

प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै। हस्तं छिन्नखं स्निग्धं सूतायोनौ शनैः क्षिपेत् ॥ १३४॥

अपरां तेन हस्तेन जनयित्रि विनिर्हरेत् ॥ १३५॥ (भा० प्र० चि० ७०)

६. केशवेष्टित ..... सर्षपैः ॥

लाङ्गलीमूल ..... विनिर्हरेत् ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०; भा० प्र० सदृश ही)

१) उदरगुहान्तर्गत भार-वृद्धि करा कर (By increasing intra abdominal pressure)

वेणी से कण्ठ-स्पर्श (द्वारा उत्पन्न कास), स्फिग् दबाना आदि बाह्य उपचार इस वर्ग के अन्दर आते हैं।

Touching of palate or throat with braid of hair or finger wrapped with hair may produce instantaneous cough thus may suddenly increase intraabdominal pressure. Similarly compression of hips and/or violent jerks may also increase intraabdominal pressure and help in expulsion of placenta.

२) गर्भाशय को संपीडन करके (By compressing the uterus)

सुश्रुतोक्त अंसपिण्डिका का सम्पीडन यदि अंसपिण्डिकावत् सम्पीडन माना जाय तो यह आधनिक पुस्तकों में वर्णित क्रेड्ज विधि ही प्रतीत होता है क्योंकि अंसपिण्डिका को पकड़ने में हाथ की चारों अँगुलियाँ एक ओर तथा अँगूठा दूसरी ओर रहेगा। क्रेड्ज विधि में इसी प्रकार गर्भाशय को पकड़कर दबाया जाता है। नाभि के ऊपर दबाव भी गर्भाशय को संपीडित कर अपरा-पातन में सहायक होगा।

Compression of uterus after holding it just like shoulder resembles to certain extent the Crede's method because while holding the shoulder one has to keep four fingers on one side and thumb on the other and then compression is given; similarly pressure over umbilicus will also compress the uterus.

३) गर्भाशय मांसपेशी-संकोच बढ़ाकर (By increasing myometrial contractions)

योनि-धूपन, पिचु, विभिन्न बस्तियाँ तथा आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियाँ इस वर्ग में आती हैं। शिर में अवसेचन एवं हाथ पैर आदि में आलेपित औषधियों की क्रिया-विधि के बारे में निश्चित स्पष्टीकरण कठिन है, परन्तु यह सम्भव है कि किसी प्रत्यावर्तित क्रिया द्वारा अथवा मानसिक प्रभाव के कारण हाइपॉथलमस के मार्ग से पश्चिम पीयूषग्रन्थि के स्राव का निष्क्रमण होकर अपरा-पातन होता हो। उदर में आलेपित औषधियाँ सम्भवतः उदर की पेशियों की क्रियाशीलता बढ़ाकर एवं उदरगुहान्तर्गत भार-वृद्धि कर अथवा प्रत्यावर्तित क्रिया द्वारा अपरा-पातन में सहायक होती हों।

Vaginal fumigations, anointments, tampons, all *basties* and oral medicines come under this group. It is difficult to explain mode of action of the drugs used as an irrigation over the head or anointment over palm or sole, however, it is just possible that either by some reflex action or through psychological effect these might be influencing posterior pituitary via hypothalamus and increase the secretion of posterior pituitary which stimulates myometrium. The drugs applied over abdomen may increase intraabdominal pressure and may also reflexly stimulate the uterus.

४) हस्त-निष्काशन (Manual removal)

सभी विधियाँ असफल होने पर हाथ का प्रवेश कर अपरा निकालना ही अंतिम उपाय है।

When all the drugs/methods fail the placenta is removed manually.

अकाल प्रसव

(Akāla prasava or untimely labour)

पूर्व पृष्ठों में सामान्य प्रसव की मर्यादा नवें मास से लेकर बारह मास तक की बताई गई है। इसके पूर्व या पश्चात् शिशु-जन्म सम्भव है कि नहीं ? यदि है तो उसकी विशिष्ट व्यवस्था क्या है ? आदि विषयों पर संहिताओं में सुस्पष्ट निर्देश

Scanned with CamScanner

नहीं मिलता, फिर भी उपलब्ध संदर्भों के आधार पर विषय का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

सामान्य प्रसव-काल से पूर्व एवं पश्चात् दोनों ही कालों में होने वाले प्रसव को अकाल प्रसव कहा जा सकता है। अकाल प्रसव को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं पूर्वकालिक या अप्रगल्भ शिशु-प्रसव तथा कालातीत प्रसव या अतिप्रगल्भ शिशु-प्रसव।

In preceding pages the description of normal labour said to occur between ninth to twelfth month has been given. Whether labour can take place before or after this period ? If yes, what is its management ? These both the questions are not answered in unequivocal words in the classics. However, available scattered reference related with the topic are being recapitulated.

Untimely labour can take place either before its normal duration i. e. premature labour or after its normal duration i. e. delayed labour or postmaturity.

पूर्वकालिक या अप्रगल्भ शिशु-प्रसव या विप्रसव (Premature labour)

अप्रगल्भ शिशु के जन्म से सम्बन्धित निम्नाङ्कित वर्णन संहिताओं में मिलते हैं।

१) सभी आचार्यों ने ऋतुस्राव के प्रथम तीन दिवसों में संभोग-निषेध करते हुए लिखा है कि यदि गर्भाधान हो भी गया तो या तो गर्भपातादि हो जाँयगें अथवा हीनाङ्ग एवं अल्पायु बालक का जन्म होगा। हीनाङ्ग एवं अल्पायु-जन्म से अप्रत्यक्षतया अप्रगल्भ शिशु का जन्म भी समझ सकते हैं।

२) सभी आचार्यों ने षष्ठ मास तक होने वाले गर्भस्राव या गर्भपात का वर्णन दिया है एवं सप्तम मास में गर्भ सर्वाङ्ग सम्पूर्ण हो जाता है यह लिखा है, परन्तु इस गर्भ का प्रसव सम्भव है कि नहीं ? यदि सम्भव है तो इसे क्या संज्ञा दी जाय ? आदि का वर्णन संहिताकारों ने नहीं दिया परन्तु टीकाकार अरुणदत्त एवं मधुकोष व्याख्याकार ने स्पष्टीकरण देने का प्रयत्न किया है जो निम्नाङ्कित है।

अ) सप्तम मास की गर्भवृद्धि के वर्णन की व्याख्या करते हुए टीकाकार अरुणदत्त ने लिखा है कि इस मास में गर्भ जीवन-योग्य सभी लक्षणों एवं अङ्गों से युक्त हो जाता है। अकाल प्रसव (सप्तम मास में प्रसव होने पर वह अकाल प्रसव होगा) हो जाने के कारण गर्भ में उस प्रकार के (परिपूर्ण कालोत्पन्न शिशु-सदृश) जन्म एवं जीवन के लक्षण नहीं होगें, तथा इस मास में उत्पन्न गर्भ जीवित रहता है, किन्तु अकाल में प्रसवित होने के कारण दीर्घजीवितत्व आदि लक्षण नहीं होते। इसी न्याय के ही आधार पर अष्टम मास में ओज के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस मास में उत्पन्न शिशु जीवित नहीं रहता अन्यथा अकाल प्रसव होने के कारण इस मास में भी (अष्टम मास में भी) गर्भ के जीवन की सम्भावना नहीं रहती यह निश्चित ही था तो "उत्पन्न होने पर जीवित नहीं रहता" यह वाक्य अनर्थक हो जाता है, इससे भली भाँति सिद्ध होता है कि सप्तम मास में उत्पन्न शिशु जीवित रहता है[1]।

आ) मधुकोष व्याख्या में लिखा है कि पञ्चम एवं षष्ठ का कथन (इन मासों में गर्भपात होने का कथन) सप्तम मास में गुणानुसार जन्म होने पर जीव-दर्शन के लिए किया है (अर्थात् बालक जीवित रह सकता है), परन्तु विगुण जन्म

१. .....तेन सर्वेण जन्मजीवनलक्षणेनार्थेनाङ्गैश्च सम्पूर्णो भवतीत्यवतिष्ठते। अकालप्रसवत्वात्तु न तथा गर्भस्य जन्मजीवनलक्षणो योऽसावर्थः सोऽप्यस्मिन् भवतीति ज्ञाप्यते। तथा चास्मिन् मासि गर्भो जातो जीवति, किन्त्वकालप्रसव(पा० भे०-कालप्रभव)त्वान्न तथा दीर्घजीवित्वादिकं स्यात्। वक्ष्यति हि (श्लो० ६६) 'काले सूतेरतः परम्' इति। अमुमेव च न्यायं चेतसि विधायाष्टमे मास्योजःस्वरूपनिगदनप्रस्तावे 'जातो न जीवति शिशुः' इति वक्ष्यति (श्लो० ६३)। अन्यथाऽकालप्रसवत्वादेवास्मिन् गर्भस्य जीवनं न सम्पाद्यत एव। 'जातो न जीवति' इत्येतद्वाक्यमनर्थकमिव स्यात्। तस्मात्सप्तमे मासि जातो जीवतीति सुप्रतिपादितमेतत्॥ (अ० हृ० शा० १/५८ की अरुण० टीका।)

में तो सप्तमादि मासों में भी गर्भपात ही कहा जायगा। अन्य आचार्य पञ्चम एवं षष्ठ मास में ही गर्भपात मानते हैं सप्तमादि में दोष-वैगुण्य के कारण विप्रसव होता है; अर्थात् सप्तम मास में यदि गर्भ-जन्म अनुगुण है (सामान्य स्वरूप में बिना किसी विशिष्ट विकृति के हुआ है) तो उत्पन्न बालक जीवित रहता है परन्तु वह विगुण (विकार युक्त प्रसव) होने पर जीवित नहीं रहता एवं दोष-वैगुण्य के कारण प्रसव होने से इसे विप्रसव कहते हैं[1]।

३) महर्षि चरक ने लिखा है कि गर्भ वृद्धि के लिए आवश्यक भावों में विपर्यय होने पर गर्भ उदर में ही मर जाता है अथवा अचिरजात होता है[2]। टीकाकार चक्रपाणि ने लिखा है कि अल्प दोष होने के कारण थोड़ा विपर्यय होने पर गर्भ अचिरजात होता है[3]। अचिरजात शब्द से अचिर-काल अर्थात् सामान्य से पूर्व-काल के प्रसव का ग्रहण कर सकते हैं।

४) सभी आचार्यों ने अष्टम मास के प्रसव एवं उसके उपद्रवों का वर्णन किया है (पृष्ठ १५६ से १५८) जो स्पष्टतया अप्रगल्भ शिशु के जन्म का वर्णन है।

५) महर्षि हारीत ने लिखा है कि दोषों के बल के कारण (दोषों की विकृति के कारण) वायु से प्रेरित होकर यदि अपूर्ण दिनों में प्रसव हो जाता है तो दुर्बल बालक का प्रसव देखा जाता है[4]।

६) महर्षि चरक ने गर्भ के सामान्य काल में प्रसवित होने के लिए शुक्र, असृग्, आत्मकर्म, आशय, काल तथा माता के आहार-विहार का सामान्य होना आवश्यक माना है अर्थात् इनमें विकार होने पर गर्भ का अकाल में भी प्रसव हो सकता है[5]।

७) महर्षि सुश्रुत ने सिद्धान्त-रूप में वर्णन किया है कि अपप्रजाता की व्याधियों की उत्तरतंत्र वर्णित सामान्य व्याधियों की ही भाँति चिकित्सा करनी चाहिए। टीकाकार डल्हण ने अपप्रजाता शब्द से अकाल-प्रसूता अर्थ किया है जिससे अप्रगल्भ शिशु-जन्म का अर्थ भी ग्रहण कर सकते हैं[6]।

८) शुक्रस्थ विकृत वायु के द्वारा गर्भ का शीघ्र मुञ्जन अथवा उत्सर्ग भी अप्रगल्भ शिशु प्रसव का द्योतक माना जा सकता है[7]।

References pertaining to prematurity of fetus or premature labour are given here :—

i) Coitus during first three days of menstruation has been contraindicated, saying that if woman conceives during this period either she will abort or born child will have less body parts or be short lived. The birth of short-lived child or a child having less body parts etc. can be considered as an indirect reference of prematurely delivered fetus.

१. पञ्चमषष्ठयोरिति सप्तमे अनुगुणजनने जीवदर्शनायोक्तं, विगुणजनने तु सप्तमादिमासेष्वपि गर्भपातः। अन्ये तु पञ्चमषष्ठयोरेव पातः, सप्तमादिशू दोषवैगुण्याद्विप्रसव इति॥ (मा० नि० ६४/२ की मधुकोष टीका)

२. ये ह्यस्य कुक्षौ वृद्धिहेतुसमाख्याता भावास्तेषां विपर्ययादुदरे विनाशमापद्यते, अथवाऽप्यचिरजातः स्यात्॥ (च० सं० शा० ४/२९)

३. .....। अथवाऽप्यचिरजात इति यदा मात्रादीनां सर्वथा दोषवत्त्वेन विपर्ययो भवति, तदा विनाशमापद्यते गर्भः, यदा त्वल्पदोषवत्तया मन्दविपर्ययो भवति, तदा अचिरजातो विपद्यत इति ज्ञेयम्॥ (च० सं० शा० ४/२९ की चक्र० टीका)

४. अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते। वातसम्प्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि॥ २४।
प्रसूयते वाप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृश्यते॥ (हा० सं० षष्ठ० स्था० १/२४, २५)

५. च० सं० शा० २/६ (पृष्ठ १८८ एवं ३२२)

६. अप्रप्रजातारोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद् भिषक्॥ (अपप्रजाता अकालप्रसूता-डल्हण) (सु० सं० उ० ३८/३२)

७. च० सं० चि० २८/३४; अ० सं० नि० १५/१५, १६; अ० हृ० नि० १५/१३ (पृष्ठ १७७, १७९)

Scanned with CamScanner

ii) Upto sixth month the expulsion of fetus is called *garbhapāta*. Exact term to be used for delivery of the fetus in seventh month (having all the body parts) has not been given in any of the classic, commentators Aruṇadatta and Vijayarakṣita have attempted to explain this in following way :—

a) Explaining development of fetus during seventh month Aruṇadatta has mentioned that in this month fetus attains development of all body parts and capability to survive. Though the child born in this month does survive, however, due to *akāla-prasava* (delivery in improper time) it does not possess longevity etc. characteristics as seen in full term delivered child. If the child born prematurely in this month *(akāla-prasava)* was definitely not to survive then specific mention of death of fetus born during eighth month was superfluous. This indicates that the child born in seventh month does survive.

(b) Vijayarakṣita and Śrīkaṇṭhadatta in their Madhukoṣa commentary have elaborated that description of *garbhapāta* in fifth and sixth months has been specifically given to highlight the survivality of child born in seventh months. If delivery in seventh month takes place normally (normal labour) without any abnormality (diseases of the mother or fetus) or birth is *anuguṇa* then the born child survives, however, if delivery has occured due to some abnormality *(viguṇa)* then the child does not survive and delivery in this month also may be called as *garbhapāta*. Since the delivery in seventh month occurs due to abnormality of *doṣas* hence it is called *"viprasava"*.

iii) Caraka has mentioned that abnormalities of factors responsible for normal development cause intrauterine death of the fetus or it ends in *acirajāta*. This has been explained by Cakrapāṇi that if amount of vitiation of *doṣas* is less then it ends in *acirajāta*. Taking the literal meaning of word *acira* (early) *jāta* (born) it can be considered as reference for premature labour.

iv) Complications of delivery in eighth month have already been discussed earlier, which is a clear reference of premature labour.

v) Hārīta has referred that due to abnormalities of *doṣas* specially propelled by *vāyu* the delivery may take place before completing full term. Thus born child is weak.

vi) Caraka says that for normal full term delivery normalcy of *śukra, ārtava, ātmakarma, āśaya, kāla* and diet along with mode of life of mother is essential. This implies that abnormality of either of these factors can cause premature labour.

vii) Suśruta has mentioned that treatment of disorders of *apaprajātā* woman should be done on the lines of any normal individual. Ḍalhaṇa has explained the word *apaprajātā* i.e. *akālaprasūtā* or delivered in abnormal time, which can also be considered as premature labour.

viii) Aggravated *vāyu* located in *śukra* is said to cause premature expulsion of fetus.

कालातीत प्रसव या अतिप्रगल्भ शिशु का प्रसव (Delayed labour or postmaturity)

स्पष्टतर वर्णन न होते हुए भी निम्नाङ्कित सन्दर्भ उल्लेखनीय हैं :-

१) महर्षि चरक ने दशम (जो अधिक युक्तिसंगत है) तथा अन्य आचार्यों ने द्वादश मास के पश्चात् गर्भ की उदरस्थिति को विकारी माना है; टीकाकार चक्रपाणि ने एकादश एवं द्वादश मास को अपेक्षाकृत अल्प दोष-युक्त माना है[1]। महर्षि चरक ने प्रकुपित या विकृत वायु के प्रभावों का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह गर्भ को (गर्भाशयान्तर) अत्यधिक काल तक धारण किए रहती है अर्थात् प्रसव विलम्ब से होता है।[2] टीकाकार इन्दु ने भी एक वर्ष के पश्चात् गर्भ को अन्तःस्थिति वैकारिक ही मानी है[3]। टीकाकार अरुणदत्त ने इस दीर्घकालिक स्थिति का कारण वायु विकार-जन्य गर्भ-निष्क्रमण का अवरोध माना है एवं लिखा है कि यह विकार (प्रसव में) अवश्य करता है[4]। महर्षि चरक द्वारा वर्णित शुक्रस्थ वायु के कारण गर्भ का बन्धन कालातीत स्थायित्व का भी द्योतक माना जा सकता है।[5]

२) लीनगर्भ के वर्णन में महर्षि सुश्रुत ने गर्भ का अतिकाल तक अवतिष्ठित रहना या कालातीत तक बने रहना तथा टीकाकार डल्हण ने वातोपद्रव से गर्भ के निर्गम-मार्ग में संकोच उत्पन्न होने से गर्भ में व्यापत्ति या विनष्ट होने का उल्लेख किया है जो कि प्रसव-काल की सामान्य मर्यादा का उल्लंघन करके स्थित रहने वाले गर्भ का वर्णन प्रतीत होता है[6]।

३) आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने स्पष्ट रूप से प्रसव के समान्यकाल के व्यतीत हो जाने पर भी गर्भ के प्रसव न होने का कारण वात के द्वारा गर्भ का संकोच (प्रसव-मार्ग का संकोच) माना है तथा उसके चिकित्सार्थ उदूखल में धान्य का मूसल से कुट्टन तथा विषम यान एवं आसन के सेवन का विधान बताया है[7]। इस विधि से ऐसी आशा की जा सकती है कि क्षोभन के कारण स्त्री को प्रसव-वेदनाएं प्रारम्भ हो जायें।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महर्षि चरक, सुश्रुत, टीकाकार डल्हण एवं अरुणदत्त तथा आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने गर्भ के अतिकाल तक बने रहने के लिए कारणभूत वायु-विकार माने हैं। आधुनिक-विज्ञान में यह प्रमाणित हो चुका है कि अतिकाल-स्थायी गर्भ की गर्भाशयान्तर मृत्यु हो सकती है जिसका निर्देश टीकाकार डल्हण ने किया है, अथवा प्रसव में विकार हो सकता है जो टीकाकार अरुणदत्त द्वारा उल्लिखित है।

References pertaining to delayed labour or postmaturity are recapitulated here-under:—

i) Intrauterine stay of fetus after tenth or twelfth month has been considered as abnormal by Caraka and others respectively. Caraka has specifically mentioned that aggravated *vāyu* can retain the fetus in uterus for a very prolong duration. Cakrapāṇi says that in eleventh and twelfth month abnormality is comparatively less. Aruṇadatta has explained that obstruction in the exit passage due to vitiated *vāyu* is the cause of prolong intrauterine stay of the fetus and this definitely causes abnormality in labour. The *vāyu* located in *śukra* can also be a cause.

१. च० सं० शा० ४/२५, सु० सं० शा० ३/३०, अ० सं० शा० २/३०, अ० हृ० शा० १/१६, (पृ० ४२३) तथा च० सं० शा० ४/२५ की चक्र० टीका (पृ० ४२४)

२. (वायु ····) कुपितस्तु खलु ···· विनिहन्ति गर्भान् विकृतिमापादयत्यतिकालं वा धारयति। (च० सं० सू० १२/८)

३. संवत्सरात् परञ्च त्रयोदशादिषु मासेषु अन्तस्थितो गर्भो विकारित्वं भजते। (अ० सं० शा० २/३० की इन्दु टीका)

४. वातेन धारितो-रुद्धनिष्क्रमणो, विकारकारी भवेत् विकारमवश्यं करोति। (अ० हृ० शा० १/१६ की अरुण० टी०)

५. च० सं० चि० २८/३४ (पृष्ठ १७७)

६. सु० सं० शा० १०/५७ तथा डल्हण टीका। (पृ० ३७१)

७. वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या। गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः नृपु चिकित्सितम्॥
कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले। विषमं चासनं यानं सेवेत प्रसवार्थिनी॥
(भा० प्र० चि० ७०/१०३, १०४ तथा यो० र० स्त्री रो० चि०)

Scanned with CamScanner

2) *Linagarbha* has been described by Suśruta as the fetus having prolonged intra-uterine stay. Dalhaṇa has clarified that spasm of the exit passage of fetus caused by *vāyu* produces this abnormality, in which there can be even intrauterine death of the fetus. This appears to be description of postmaturity.

3) Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have very clearly mentioned that due to spasm of the exit passage of the fetus caused by *vāyu*, the fetus does not deliver inspite of its full term, which is to be treated by pestling paddy in a mortar or use of jerking vehicle or uneven sitting place. These procedures might be initiating labour due to over increase in intra-abdominal pressure or irritation.

It is clear from above descriptions that postmaturity or prolonged intra-uterine stay of fetus is caused due to vitiated *vāyu*. Intra-uterine death in postmaturity and abnormality in labour has been referred by Dalhaṇa and Aruṇadatta respectively.

प्रसवपूर्व रक्तस्राव
(Antepartum haemorrhage)

सप्तममासोपरान्त गर्भावस्था में अथवा प्रसव-काल में शिशु-जन्म के पूर्व रक्तस्राव का स्पष्ट उल्लेख संहिताओं में नहीं है। अप्रत्यक्ष सन्दर्भ मूढ़गर्भ या अन्तर्मृत-गर्भ के वर्णन के अन्दर सन्निहित हैं; यथा-

१) महर्षि सुश्रुत ने मूढ़गर्भ की तथा वाग्भट ने अन्तर्मृत-गर्भ की सम्प्राप्ति में लिखा है कि विगुण या मूढ़ अपान वायु अनेकों व्याधियों से कष्ट देकर तरुण गर्भ को शोणित-स्राव के द्वारा मार देती[1] है या च्यवित कर देती है[2]। गर्भ की तरुणावस्था सर्वाङ्ग सम्पूर्णता की स्थिति की द्योतक है अतः इस संदर्भ को सप्तम मास एवं उसके बाद के प्रसवपूर्व रक्तस्राव का वर्णन मान सकते हैं।

२) टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि मक्कल (तीव्र उदर शूल) प्रजाता तथा अप्रजाता दोनों में ही होता है। अप्रजाता में गर्भ के गर्भाशय से च्युत होकर योनिमार्ग में सक्त हो जाने या रुक जाने के कारण गर्भाशय से स्रुत रक्त अन्तःस्थित होकर (मार्गावरोध के कारण) अर्थात् गर्भाशय में रुक कर पच्यमान हो मक्कल की संज्ञा प्राप्त करता है[3]। इस रक्त की अन्तःस्रुति शब्द से प्रसव-काल में शिशु के जन्म से पूर्व होने वाले अप्रकट या गुप्त रक्तस्राव का ग्रहण कर सकते हैं। गुप्त रक्तस्राव में अत्यधिक शूल भी होता है।

Antepartum haemorrhage or bleeding from/or into genital tract either during pregnancy after the period of viability of the fetus or during delivery before the birth of the child has not been described in unequivocal words in *āyurvedika* classics, however, indirect reference has been given in the description of intra-uterine death of the fetus and *mūḍhagarbha* or obstructed labour in following way—

1) In the describtion of pathogenesis of *mūḍhagarbha* (obstructed labour) or intra-uterine death of the fetus Suśruta and Vāgbhaṭa respectively have mentioned that vitiated and abnormally moving *apāna vāyu* producing various disorders kills or expels *taruṇa*

१. सु० सं० नि० ८/३ (मूढ़गर्भ सम्प्राप्ति में उद्धृत)
२. अ० सं० शा० ४/२७ (अन्तर्मृतगर्भान्तर्गत वर्णित)
३. सु० सं० सू० ३३/१३ की डल्हण टीका (मूढ़गर्भ की आध्यता के लक्षणों के अन्तर्गत उद्धृत)

(young) fetus with bleeding. *Taruṇa* stage of the fetus refers to the stage of development of complete body parts or seventh month onwards, thus this reference can be considered for antepartum haemorrhage.

2) Ḍalhaṇa says that *makkalla* (severe spasmodic pain) occurs during pregnancy and puerperium both the stages. In pregnant woman during delivery the fetus after getting detached from the uterus descends and gets fixed in the *yoni* (genital passage) and obstructs the flow of blood discharged from the uterus which gets metabolised. This condition is known as *makkalla*. Bleeding before delivery of the child may be considered as description of concealed antepartum haemorrhage associated with severe pain.

मृत एवं मूढ़गर्भ
(Mṛtagarbha and mūḍhagarbha or intrauterine death of fetus and obstructed labour)

गर्भाशयान्तर मृत गर्भ (intrauterine death of fetus)

निदान (Etiology)

यस्याः पुनरतिमात्रदोषोपचयाद्वा तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेवनाद्वा वातमूत्रपुरीषवेगविधारणैर्वा विषमाश(स)नशयनस्थानसंपीडनाभिघातैर्वा क्रोधशोकेर्ष्याभयत्रासादिभिर्वा साहसैर्वाऽपैः कर्मभिरन्तः कुक्षेर्गर्भो म्रियते ॥
(च० सं० शा० ८/३०)

मानसागन्तुभिर्भातुरुपतापैः प्रपीडितः। गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीड़ितः ॥
(सु० सं० नि० ८/१३)

यस्याः पुनरतिमात्रदोषोपचयाद्यथोक्तैर्वा व्यवायादिभिरन्यैर्वा व्याधिभिः पूर्वोपचितेन वा जनन्यपत्ययोः कर्मणा बन्धनान्मुच्यते गर्भः फलमिव वृन्तात् ॥ (अ० सं० शा० ४/२७)

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोऽदि वा॥ २२॥
मृतेऽन्तरुदरं .....। (अ० ह० शा० २)

दोषों के अत्यधिक सञ्चित होने या तीक्ष्ण एवं उष्ण द्रव्यों के अत्यधिक सेवन अथवा वात, मूत्र एवं पुरीष के वेगों के धारण या विषम आसन में अथवा विषम रूप से बैठने, शयन करने या खड़े होने अथवा उदर में दबाव पड़ने या अभिघात लगने से या क्रोध, शोक, ईर्ष्या, भय, त्रास आदि से या साहस (अत्यधिक) अथवा अन्य कारणों से गर्भ कुक्षि में मर जाता है। अन्यत्र महर्षि चरक ने प्रकुपित वायु के कारण गर्भ की मृत्यु का उल्लेख किया है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने संक्षेप में लिखा है कि माता के मानसिक या आगन्तुक उपताप (व्याधियों) से पीड़ित होने या (गर्भ के स्वयं की) व्याधियों से पीड़ित होने से गर्भ कुक्षि में मर जाता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने गर्भ-मृत्यु के लिए भी गर्भस्रावादि के लिए वर्णित कारणों को ही उत्तरदायी माना है, क्योंकि निदान के पश्चात् सम्प्राप्ति लिखकर "पहिले (अर्थात् गर्भस्रावादि में) वर्णित किया जा चुका है"[2] उद्धृत किया है। इसके तुरन्त बाद ही अन्तर्मृत-गर्भ के लक्षणों का उल्लेख है जिसकी टीका में इन्दु ने लिखा है कि यदि "वृद्ध होने के बाद गर्भ की मृत्यु हो तो ये लक्षण होंगे"[3] अर्थात् कारण गर्भस्रावादि वाले ही रहेंगे अतः उन्हीं कारणों का यहाँ उल्लेख किया गया है।

१. (वायुः) कुपितस्तु .....विनिहन्ति गर्भान्। (च० सं० सू० १२/८)
२. स्रोऽभिहितः प्राक्। (अ० सं० शा० ४/२७)
३. यदा तु वृद्धो व्यापद्यते तदा .....। (अ० सं० शा० ४/२८ की इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

स्त्री में दोषों के अत्यधिक उपचित हो जाने, व्यवाय आदि पूर्वोक्त कारणों से, माता या गर्भ के पूर्वजन्म के कर्मों के परिणाम-स्वरूप वृन्त से टूटे हुए फल की भाँति गर्भ बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि दोषों के अतिमात्र-संचय, अपथ्य सेवन एवं दैवयोग के कारण गर्भ की उदरान्तर्गत मृत्यु हो जाती है। टीकाकार अरुणदत्त ने अपथ्य शब्द से "स्वभाव, मात्रा एवं कालादि से विरुद्ध भोजन" तथा दैवयोग से "शिशु के पूर्व-जन्म के अर्जित शुभाशुभ कर्म" माना है[1]।

माधवनिदानकार, आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने महर्षि सुश्रुत का अक्षरशः पालन किया है[2]। अन्यत्र भावप्रकाश में वात के अस्सी विकारों के अन्तर्गत गर्भनाश का उल्लेख है[3] अर्थात् गर्भ के नाश (मृत्यु या स्राव) का मुख्य कारण वात-प्रकोप है।

महर्षि हारीत ने निराहार रहना (माता के निराहार रहने से अथवा गर्भ की नाभिनाड़ी में अवरोध होने से गर्भ का निराहार होना) गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु का कारण माना है[4]।

काश्यप-संहिता वर्णित नाकिनी जातहारिणी, वाग्भट द्वारा वर्णित जातघ्नी योनिव्यापद् तथा जननाङ्गों के जन्मजात विकारों में वर्णित पूतिप्रजा आदि सभी व्याधियों में बारम्बार मृत-पुत्रोत्पत्ति ही एक मात्र लक्षण वर्णित है, जो सभी उपसर्ग-जन्य या जिनेटिक विकृति के कारण बारम्बार मृत सन्तानोत्पत्ति को इङ्गित करते हैं।

Due to excessive accumulation of *doṣas*, excessive use of pungent and hot substances, suppression of natural urges of defecation, micturition and passing of flatus, sitting-sleeping or standing abnormally or on uneven place, compression or injury over the abdomen, anger, sorrow, jealousy, fear, horror, excessive courage and some other causes or else due to excessive aggravation of *vāyu* the fetus dies in uterus.

Suśruta says that due to physical or psychological diseases of the mother or its own disorders the fetus dies in uterus.

Vāgbhaṭa I accepting the causes of abortion as also causes of intra-uterine death of the fetus adds accumulation of *doṣas*, excessive coitus, deeds of previous life of mother or fetus also in the list. Vāgbhaṭa II has included *daiva* and Hārīta absence of diet (to the mother and fetus both) as a causative factor. Mādhavanidāna, Bhāwaprakāśa and Yogaratnākara have followed Suśruta. *Garbhanāśa* (abortion or intra-uterine death of the fetus) is described as one of the eighty disorders of *vāta* by Bhāwaprakāśa or in other words vitiated *vāta* is a causative factor.

Nākinī jātahariṇī and *jātaghnī yonīvyāpad* described by Kāśyapa and both Vāgbhaṭas respectively and *pūtiprajā* mentioned under congenital anomalies of genital organs all are characterized with repeated still births which appear to be description of repeated still births due to infection or genetic abnormality.

१. अपथ्यैः-स्वभावमात्राकालादिविरुद्धस्वभावैर्वा·····दैवात्·····अन्यजन्मार्जितशुभाशुभकर्मवशात्·····॥
(अ० ह० शा० २/२२ का अरु० टीका)

२. मानसा·····प्रपीड़ितः ॥ (सु० सं० सदृश ही)
(मा० नि० ६४/९ प्रपीड़ितः के स्थान में निपीड़ितः; भा० प्र० चि० ७०/११८ एवं यो० र० स्त्री रो० चि०)

३. भा० प्र० चि० २४/१५

४. निराहाराच्च म्रियते यदि गर्भोऽन्तरे स्त्रियः ॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१६)

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सभी आचार्यों द्वारा वर्णित निदानों को यदि एक साथ रखा जाय तो गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु के निम्न कारण होते हैं।

१) **दोषों का उपचय या शारीरिक उपताप**-गर्भिणी का शारीरिक दोषवैषम्य या व्याधियाँ।

२) आहार वैषम्य-गर्भिणी के पोषण-जन्य विकार।

३) **विहार-वैषम्य एवं अभिघात**-आघातादि के कारण अपरा की आंशिक विच्युति हो प्रसव-पूर्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रक्तस्राव एवं गर्भ-मृत्यु।

४) मानसिक उपताप-मानसिक विकार।

५) दैवयोग या पूर्वजन्म-कर्म-अज्ञात कारण।

६) **गर्भ की व्याधियाँ**-व्याधि या विकृति-पीड़ित गर्भ।

७) **विषम आसन, शयन एवं स्थान**-यद्यपि गर्भिणी के विषम रूप से या विषम स्थान में सोने, बैठने या खड़े होने का गर्भ के ऊपर हानिकारक प्रभाव सुनिश्चित रूप से प्रमाणित नहीं है, फिर भी यह सम्भव है कि गर्भिणी स्त्री की विशिष्ट शारीरिक-स्थिति के कारण यदि गर्भाशय में अत्यधिक दबाव पड़े तो वह अपरा के रक्तसंवहन को प्रभावित कर गर्भाशयान्तर गर्भ की मृत्यु का कारण हो जाय। आधुनिक काल में भी कुछ दशकों पूर्व गर्भ के अनुप्रस्थ आसन को सामान्य आसन या उदय में परिवर्तित करने के लिए गर्भिणी द्वारा विशिष्ट शारीरिक आसनों का प्रयोग वर्णित है[1], अतः यह अनुमान लगा सकते हैं कि यदि स्त्री के विभिन्न शारीरिक आसन गर्भ के अनुप्रस्थ आसन को सामान्य आसन या उदय में परिवर्तित कर सकते हैं, तो उसी प्रकार गर्भिणी के द्वारा शारीरिक विषम स्थितियों का सतत प्रयोग गर्भ के आसन या उदय के विकार भी उत्पन्न कर सकता है। असामान्य रूप से प्रसवित होने वाला गर्भ प्रसव के समय मर भी सकता है।

८) **निराहार रहना**-माता के निराहार रहने से स्त्री को पोषण-जन्य विकार हो वे गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु का कारण हो सकते हैं। गर्भ का निराहार रहना दो स्थितियों में सम्भव है (१) अपरा विकृत हो जाय, फल-स्वरूप गर्भ को पोषण एवं शुद्ध वायु पहुँचाने में असमर्थ हो जाय (जो गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु के कारणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है) (२) गर्भ की नाभि-नाड़ी में सत्य ग्रन्थियाँ पड़ जाँय; इस स्थिति में गर्भ को पोषण एवं शुद्ध वायु न मिलने से गर्भ की तात्कालिक मृत्यु हो जाती है।

आधुनिक विज्ञान में भी गर्भाशयान्तर-गर्भ की मृत्यु के कारणों को तीन भागों में विभाजित करते हैं मातृगत, गर्भगत एवं अज्ञात जिसका स्पष्ट उल्लेख आयुर्वेदिक संहिताओं में मिलता है। गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु तथा गर्भस्राव का एक साथ ही वर्णन होने के कारण पूर्ववर्णित गर्भस्राव या पात के अन्तर्गत उल्लिखित निदानों को भी इस व्याधि के कारण-स्वरूप मानना चाहिए।

Considering all above causes together following factors may be held responsible for intra-uterine death of the fetus:

1) Accumulation of doṣas or physical disorders—Various maternal physical disorders.

2) Abnormalities of diet—Nutritional factors.

3) Abnormalities of mode of life and trauma—Trauma causing partial placental detachment resulting into revealed or concealed antepartum haemorrhage and fetal death.

4. Psychological disorders.

१. "मैन्युअँल ऑव् मिडविफ़री" पृष्ठ ४३६

Scanned with CamScanner

5. **Daiva or deeds of previous life**—Idiopathic

6. **Disorders of fetus**—Congenital or acquired abnormalities or disorders of fetus.

7. **Abnormal postures**—Though effect of pregnant woman's posture over the fetus is not established, however, it is just possible that due to abnormal posture if the uterus is compressed for a longer duration, the placental circulation may get influenced and cause fetal anoxia or death. Few decades back postural treatment was advised to correct transeverse lie specially shoulder presentation.[1] Hypothetically it can be presumed that if postural treatment can correct the abnormal position of the fetus, continuous use of a particular abnormal posture can very well produce abnormality of presentation or position of the fetus. Due to delivery in abnormal position the fetus can die during labour.

8. **Absence of diet**—Dietetic deficiency to the mother may produce nutritional disorders thus fetal death. Diet to the fetus may be influenced either due to placental insufficiency resulting in inadequate supply of nutrients including oxygen to the fetus (one of the most important cause of intra-uterine fetal death) or due to true knots of umbilical cord causing complete absence of nutrients as well as oxygen resulting in immediate fetal death.

All above mentioned factors can be summarized into three categories i. e. maternal, fetal and idiopathic. The causes detailed under abortion should be considered here also.

सम्प्राप्ति (Pathogenesis)

बन्धनान्मुच्यते गर्भः फलमिव वृन्तात् स मुक्तबन्धनो गर्भशय्यामतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्रंसमानः कोष्ठसङ्क्षोभमापादयति। ततः कोष्ठसङ्क्षोभाद्वायुरपानो मूढः कुक्षिबस्तिपार्श्वोदरयोनिशूलानाहविण्मूत्रसङ्गानापाद्य गर्भं च्यावयति तरुणं शोणितभावेन। सोऽभिहितः प्राक्। (अ० सं० शा० ४/२७)

निदान की ही भाँति गर्भस्राव के लिए वर्णित सम्प्राप्ति को ही गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु की सम्प्राप्ति मानकर वर्णन किया जा रहा है।

पूर्ववर्णित कारणों से गर्भ अपने बन्धनों से उसी प्रकार मुक्त हो जाता है जिस प्रकार कि फल अपने वृन्त से। वह बन्धनों से मुक्त हुआ गर्भ गर्भशय्या का अतिक्रमण करके यकृत्, प्लीहा और आन्त्र के विवरों (अन्तरालों) से अवस्रंसमान हो कोष्ठ में संक्षोभ उत्पन्न करता है। कोष्ठ के संक्षोभ के कारण अपान वायु मूढ़ (विगुण) होकर कुक्षि, बस्ति, पार्श्व, उदर एवं योनि में शूल, आनाह, मल, मूत्रावरोध आदि व्याधियों को उत्पन्न करके तरुण गर्भ को शोणित के साथ च्यवन करती है अर्थात् नीचे की ओर फेंकती है। जो पहिले कहा जा चुका है (अर्थात् गर्भस्राव का वर्णन पहिले आ चुका है)

(विमर्श मूढ़गर्भ की सम्प्राप्ति के ही साथ वर्णित है)।

Pathogenesis of intra-uterine death of fetus and abortion has been described together which is being recapitulated here.

Due to previously mentioned causes fetus gets detached from its bonds just like a fruit. The fetus getting detached from the bonds, transgressing the uterus, descending from the hallow spaces of liver, spleen and bowels irritates the *koṣṭha* (abdominal cavity). The *apāna vāyu* getting obstructed or moving abnormally due to this irritation produces pain in

1. Manual of midwifery by jellett and Madill; page 436.

pelvic and bladder region and also in flanks, abdomen and vagina, distension of abdomen, retention of urine and feces and expells the young fetus with bleeding.

लक्षण (Clinical features)

तस्याः स्तिमितं स्तब्धमुदरमाततं शीतमश्मान्तर्गतमिव भवत्यस्पन्दनो गर्भः, शूलमधिकमुपजायते, न चाव्यः प्रादुर्भवन्ति, योनिर्न प्रस्रवति, अक्षिणी चास्याः स्रस्ते भवतः, ताम्यति, व्यथते, भ्रमते श्वसिति, अरतिबहुला च भवति, न चास्या वेगप्रादुर्भावो यथावदुपलभ्यते, इत्येवं लक्षणां स्त्रियं मृतगर्भेयमिति विद्यात्॥ (च० सं० शा० ८/३०)

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता। भवत्युच्छ्वासपूतित्वं शूलं चान्तर्मृते शिशौ॥
(सु० सं० नि० ८/१२)

विवृद्धे तु गर्भे स्तब्धं स्तिमितं शीतमश्मगर्भमिवोदरमाभाति। शूलमधिकमुपजायते न च स्पन्दते गर्भो नाव्यः प्रादुर्भवन्ति न स्रवति योनिरक्षिणी चास्याः स्रंस्येते तथा भृशमरतिपरीता व्यथतेऽन्यथा चेष्टते ताम्यति भ्राम्यति रोदित्यहर्निशं न स्वपिति पूत्युच्छ्वासात्कृच्छ्राच्छ्वसित्यतिकष्टं प्राणिति जक्षितीत्येवंविधां स्त्रियं मृतगर्भां विद्यात्॥
(अ० सं० शा० ४/२८)

मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम्। गर्भास्पन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः॥ २३॥
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः॥ २४॥ (अ० हृ० शा० २/२३,२४)

उस (मृतगर्भा) स्त्री का उदर स्तिमित (गति रहित या गीले वस्त्र से अच्छादित सा), स्तब्ध (जकड़ा हुआ सा); आतत (तना हुआ), शीतल, अश्मान्तर्गत सदृश (उदर के अन्दर पत्थर रखे हुए की प्रतीति सदृश) हो जाता है। गर्भ में स्पन्दन नहीं होता। अत्यधिक वेदना उत्पन्न हो जाती है। आवी (प्रसव वेदनायें) प्रारम्भ नहीं होती। योनि से स्राव नहीं होता, आँखें स्रस्त या शिथिल हो जाती हैं, उसे अंधकार की प्रतीति, व्यथा, भ्रम, श्वास तथा अत्यधिक कष्ट होता है, यथावत् वेगों (मल-मूत्रादि के) की उपलब्धि नहीं होती। इन लक्षणों को देखकर यह स्त्री मृतगर्भा है यह जानना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि शिशु के अन्तर्मृत हो जाने पर गर्भ के स्पन्दनों तथा आवी का नाश, श्यावता या पाण्डुता (त्वचा के वर्ण का परिवर्तन), उच्छ्वास में पूति-गन्धि तथा शूल आदि लक्षण होते हैं।

टीकाकार डल्हण ने अन्यत्र मृतगर्भ के लक्षणों का कुछ आचार्यों द्वारा किया गया वर्णन उद्धृत किया है यद्यपि स्वयं पुनरुक्ति दोष के कारण इसे उचित नहीं माना। मृतगर्भ के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार है :-वह अन्तर्मृत गर्भ शोफ-युक्त होकर बस्ति के सदृश फैल जाता है (जिस प्रकार पूर्ण बस्ति उदर में स्वस्थान से ऊपर की ओर फैल जाती है उसी प्रकार शोफ-युक्त गर्भ उदर को आपूरित कर लेता है), उस (गर्भ) से आवृत होने के कारण स्त्री के उदर में अत्यधिक आनाह हो जाता है, वह अपने अङ्गों को उछालती सी है, उसके मूत्रबस्ति, क्लोम, प्लीहा, यकृत, फुफ्फुस तथा हृदय में भेदनवत् पीड़ा होती है। गर्भ के द्वारा पीड़ित हो वह (वायु) ऊपर की ओर जाती है तथा वह (स्त्री) शोथ-युक्त, मोहित (संज्ञा-विहीन) हो जाती है, श्वासकष्ट हो जाता है। पूति-गन्धि, अत्यधिक स्वेदन, जिह्वा एवं तालु की शुष्कता हो जाती है, उसे कम्पन होता है, चक्कर आते हैं तथा उसका जीवन अवरुद्ध सा हो जाता है (प्राणावरोध या श्वासावरोध सा हो जाता है)। इन लक्षणों को देखकर चिकित्सक को मृतगर्भ जानना चाहिए[1]।

१. यदा सोऽन्तर्मृतो गर्भः शूनो वस्तिरिवाततः। तेनावृताया नार्यास्तु कुक्षिरानह्यते भृशम्॥
उत्क्षिप्यन्त इवाङ्गानि मूत्रवस्तिश्च भिद्यते। क्लोम प्लीहा यकृच्चैव फुफ्फुसं हृदयं तथा॥
गर्भेण पीड़ितं ह्येतदूर्ध्वं प्रक्रामति स्त्रियाः।
सा शूयते मुह्यति च कृच्छ्रोच्छ्वासा च जायते। पूतिगन्धस्तथा स्वेदो जिह्वा तालु च शुष्यति॥
वेपते भ्राम्यति तथा जीवितं चोपरुध्यते। एतैर्लिङ्गैर्विजानीयात् मृतं गर्भं चिकित्सकः॥
इति पठन्ति, तत् न पठनीयं पुनरुक्तत्वात्, जेज्झटाचार्यादिभिः परिहृतत्वाच्च। (सु० सं० नि० ८/१४ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि गर्भ के विवृद्ध होकर अन्तर्मृत होने पर गर्भिणी[1] का उदर स्तब्ध, स्तिमित, शीत एवं अश्मगर्भ की तरह प्रतीत होता है। शूल अधिक उत्पन्न होता है। गर्भ का स्पन्दन, आवो का प्रादुर्भाव एवं योनि से स्राव नहीं होता, आँखों का स्रंसन होता है, अत्यधिक बेचैनी अनुभव करती है, व्यथा होती है, अन्यथा (असामान्य) चेष्टा करती है, अँधेरा प्रतीत होता है, चक्कर आता है, रात-दिन रोती रहती है, सोती नहीं, श्वास में पूतिगन्धि एवं अति कष्ट होता है, बहुत ही कठिनाई से प्राण-धारण करती, एवं कुछ भी खाती है, इन लक्षणों वाली स्त्री को मृतगर्भा समझना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि गर्भ की मृत्यु हो जाने पर उदर शीत, स्तब्ध तथा ध्मात (फूला हुआ) हो जाता है, अत्यधिक कष्ट होता है, गर्भ का स्पन्दन नहीं होता, भ्रम, तृष्णा, श्वासकष्ट, क्लम, अरित या खड़े होने-बैठने-सोने आदि में चित्त की अस्थिरता,[2] स्रस्त-नेत्रता तथा आवो या प्रसवकालोत्पन्न वेदनाओं[2] की अनुत्पत्ति आदि लक्षण होते हैं।

आचार्य भावमिश्र एवं योगरत्नाकरकार ने महर्षि सुश्रुत का अक्षरशः अनुसरण किया है। परन्तु माधवकार ने अन्य लक्षण महर्षि सुश्रुत सदृश ही देते हुए शूल के स्थान में शूनता अर्थात् शोफ वर्णित किया है[3]।

महर्षि हारीत ने विभिन्न प्रकार के मूढ़गर्भों के लक्षणों के उपरान्त मृतगर्भा के लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, आध्मान, वायु का अवरोध, विह्वलता या बेचैनी, मूर्च्छा (तन्द्रा), वमि, परुषता या कठोरता (उदर या गर्भाशय की कठोरता) एवं दीनता की उत्पत्ति हो जाय तो उस स्त्री को मृतगर्भा जानना चाहिए; एवं उसकी शीघ्र ही चिकित्सा करनी चाहिए। हे विशारद! अब मैं उस महामोह (मूढ़गर्भा स्त्री) की चिकित्सा कहूँगा[4]।

The abdomen of woman (having dead fetus) becomes still, stiff, streched, cold and stony hard. Fetal movements disappear. She feels severe pain. Labour pains do not start. There is absence of vaginal discharges, eyes become lax. She feels darkness, uneasiness, giddiness, dyspnoea and intense restlessness. She does not get natural urges (pass urine or feces) properly.

Suśruta has mentioned that besides cessation of fetal movements and labour pains, there occurs blackish or whitish discolouration of skin, foul smell in expiration and pain. Ḍalhaṇa has added that the dead fetus getting edematous fills the abdomen just like a full bladder. Due to this, the lady gets abdominal distension, throws her body parts upwards and feels splitting like pain in the region of urinary bladder, pancreas *(kloma)*, spleen, liver, lungs and heart. *Vāyu* getting compressed by fetus moves upwards. She becomes edematous,

१. यदा तु वृद्धो व्यापद्यते तदा गर्भिण्याः ·····॥ (अ० सं० शा० ४/२८ की इन्दु टीका)

२. ·····अरतिः-स्थानासनशयनादिष्वनवस्थितत्वं चेतसः·····आवीनां आसन्नप्रसवकालज शूलविशेषाणां ·····॥ (अ० हृ० शा० २/२४ की अरुण० टीका)

३. अ) गर्भास्पन्दन·····शिशोः। (सु० सदृश ही) (भा० प्र० चि० ७०/११७, यो० र० स्त्रीरो० चि०)
आ) गर्भास्पन्दन·····शूनताऽन्तर्मृते शिशौ। (सु० सं० सदृश ही) (मा० नि० ६४/८)

४. भ्रममूर्च्छातृषाध्मानं चातरोधश्च विह्वलम्। मूर्च्छावमिं सपारुष्यं दीनत्वमुपगच्छति ॥ ९॥
मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी स्त्रियामपि। अतो वक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद! ॥ १०॥
(श्लोक में मूर्च्छा शब्द दो बार आया है, एक स्थान पर तन्द्रा वर्णन अधिक युक्तिसंगत है।)
(हा० सं० तृतीय ५२/९ व १०)

unconscious and suffers from dyspnoea, foul smell, excessive perspiration, dryness of tongue and palate, convulsions and giddiness. Her life in imperilled.

Vāgbhaṭa II has followed Caraka while Mādhavanidāna, Bhāvamiśra and Yogaratnākara the Suśruta, however, Mādhavanidāna has substituted word pain with edema.

Hārīta has mentioned giddiness, unconsciousness, thirst, flatulence, retention of flatus, uneasiness, drowsiness, vomiting, hardness of abdomen and miserable state as clinical features.

चिकित्सा (Treatment)

तस्य गर्भशल्यस्य जरायुप्रपातनं कर्मसंशमनमित्याहुरेके, मन्त्रादिकमथर्ववेदविहितमित्येके, परिदृष्टकर्मणा शल्यहर्त्रा हरणमित्येके ॥ (च० सं० शा० ८/३१)

उस गर्भशल्य के लिए एक आचार्य का मत है कि जरायु-पातनार्थ वर्णित कर्म एवं संशमन-चिकित्सा करें, एक आचार्य का मत है कि अथर्ववेद-वर्णित मन्त्रादि कर्म करे तथा अन्य आचार्य का कहना है कि कर्म को देखे हुए अर्थात् अनुभवी शल्यहर्त्रा द्वारा शल्य का आहरण कराये। टीकाकार चक्रपाणि ने 'एके' शब्द की व्याख्या में लिखा है कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के ही कर्मों से मृतगर्भापहरण समयक्-रूप से साधित होने में सन्देह है अतः इस प्रकार मतमतान्तर दिए गए है[1]। अन्यत्र महर्षि चरक ने आहरण योग्य शल्यों में गर्भशल्य का ही उदाहरण दिया है[2]।

This *garbhaśalya* (dead fetus acting as extraneous substance lodged in the body and giving it very great pain) should be treated either with suppressive measures alongwith the methods prescribed for the treatment of retained placenta or with the use of hymns mentioned in *atharvaveda* or should be extracted by an experienced surgeon. Cakrapāṇi has clarified that since proper extraction of the fetus with either of the methods is difficult, hence these different opinions have been given. At another place Caraka has cited *garbhaśalya* as an example of *śalyas* to be treated by extraction.

शल्योद्धरण के पश्चात् चिकित्सा (Treatment after extraction of fetus)

व्यपगतगर्भशल्यां तु स्विन्नमागर्भां सुरासीध्वरिष्टमधुमदिरासवानामन्यतममग्रे सामर्थ्यतः पाययेद्गर्भकोष्ठशुद्ध्यर्थमर्तिविस्मरणार्थं प्रहर्षणार्थं च, अतः परं संप्रीणनै(बृहणैः-पाठभेद)र्बलानुरक्षिभिरस्नेहसंप्रयुक्तैर्यवाग्वादिभिर्वा तत्कालयोगिभिराहारैरुपचरेद्दोषधातुक्लेदविशोषणमात्रं कालम्। अतः परं स्नेहपानैर्वस्तिभिराहारविधिभिश्च दीपनीय-जीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसमाख्यातैरुपचरेत् ॥

परिपक्वगर्भशल्याः पुनर्विमुक्तगर्भशल्यायास्तदहरेव स्नेहोपचारः स्यात् ॥ (च० सं० शा० ८/३१)

आमगर्भा स्त्री का शल्य निकल जाने के बाद गर्भकोष्ट की विशुद्धि, अर्ति-विस्मरण तथा प्रहर्षण के लिए सुरा, सीधु, अरिष्ट, मधु, (विशिष्ट प्रकार की मदिरा), मदिरा तथा आसव आदि अन्य मद्य-भेदों को स्त्री की सामर्थ्य के अनुसार पीने को दें। तत्पश्चात् बल की रक्षा करने वाले, वृंहण या संतर्पण परन्तु स्नेह रहित यवागू एवं उस समय के लिए उपयुक्त आहार के द्वारा तब तक उपचार करें जब तक कि दोष एवं धातु के क्लेद का विशोषण न हो जाय। तत्पश्चात् दीपनीय,

१. 'एके' इति वचनेन अप्रतिषेधेन च जरायुपातनकर्मादीनां त्रयाणामपि मृतगर्भापहरणं प्रति सम्यक्साधनता नास्तीति दर्शयति। ···॥ (च० सं० शा० ८/३१ का चक्र० टीका)

२. गर्भशल्यमाहार्याणाम्·····॥ (च० सं० सू० २५/४०)

Scanned with CamScanner

जीवनीय, वृंहणीय (गण की औषधियों) तथा मधुर एवं वातहर द्रव्यों से साधित स्नेह का पान, बस्ति तथा आहार-विधि के द्वारा उपचार करें।

परिपक्व गर्भशल्य वाली स्त्री के गर्भशल्य से विमुक्त होने के दिन से ही स्नेह का प्रयोग प्रारम्भ कर दें।

नोट–यद्यपि महर्षि चरक ने यह चिकित्सा स्पष्टरूप से आमगर्भ के शल्य के निकल जाने के बाद की वर्णित की है परन्तु चूँकि इसके पूर्व ही अन्तर्मृत गर्भ के शल्योद्धरण का वर्णन है अतः यह उसकी भी चिकित्सा समझी जा सकती है। महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भटादि ने अन्तर्मृत गर्भ एवं मूढ़गर्भ की एक ही चिकित्सा वर्णित की है जो बाद में लिखी जायगी। चूँकि महर्षि चरक ने "मूढ़गर्भ" शब्द का प्रयोग नहीं किया अतः इनके द्वारा वर्णित विषय को पृथक् लिखा गया है वैसे यह चिकित्सा मूढ़गर्भ के लिये भी की जा सकती है।

After extraction of *śalya* or expulsion of *āma* (immature) fetus, for cleansing the uterus and alleviation of pain along with elevation of her mood the woman should be prescribed *surā, sīdhu, ariṣṭa, madhu* (a type of wine), *madirā* and *āsava* or other alcoholic drinks according to her strength. After this to protect her strength she should be given fat free, anabolic or satiating rice gruel and appropriate diet beneficial for this period. This dietetic regimen should be continued till the *kleda* (moisture) of *doṣas* and *dhātus* is cleared. After this uncting substances, enemas and specific diet medicated with appetizing, life prolonging, anabolic, sweet and *vāta* suppressing drugs should be prescribed.

The woman with mature fetus should be prescribed fats from the day of extraction of the fetus.

मूढ़गर्भ (*Mūḍhagarbha or obstructed labour*)

परिभाषा (*Definition*)

·····तमेव कदाचिद् विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमानं विगुणापानमोहितं गर्भं मूढ़गर्भमित्याचक्षते ॥ (सु० सं० नि० ८/३)

तं तु गर्भं कदाचिदसम्यगपत्यपथमनेकधा प्रतिपन्नं विगुणेन वायुना पीड़ितं मोहितं च मूढ़गर्भमित्याहुः ॥ (अ० सं० शा० ४/२९)

वही गर्भ जब कभी विवृद्ध होकर असम्यक् प्रकार से आया हुआ, अपत्यपथ को प्राप्त होकर भी अनिरस्यमान या निकल सकने में असमर्थ एवं अपान वायु की विगुणता के कारण संमोहित हो जाता है तो मूढ़गर्भ कहा जाता है। टीकाकार डल्हण ने असम्यगागत से विलोमभाग से आया हुआ तथा संमोहित से मूर्च्छित गर्भ अर्थ किया है[1]।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि वही गर्भ जब कभी असम्यक् अपत्यपथ में अनेक रूप से प्रतिपन्न होकर विगुण-वायु के द्वारा पीड़ित एवं मोहित हो जाता है तो मूढ़गर्भ कहा जाता है।

माधवनिदान, योगरत्नाकर तथा भावप्रकाशकार ने लिखा है कि मूढ़ (गति-रहित) वायु गर्भ को मूढ़ कर देती है[2]।

The same fetus (which has not aborted) after getting developed, coming abnormally, unable to come out even after reaching its passage (pelvis and vagina) and stupefied or swooned due to abnormality of *apāna vāyu* is termed as *mūḍhagarbha*.

१. ·····असम्यगागतं विलोमभागेनागतम्। ·····संमोहितं मूर्च्छितम्। (सु० सं० नि० ८/३ की डल्ह० टीका)

२. मूढः करोति पवनः खलु मूढ़ गर्भं ॥ (मा० नि० ६४/३, भा० प्र० चि ७०/११३ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Vāgbhaṭa says that the same fetus reaching abnormal passage, coming with different presentations, troubled by abnormal *vāyu* and unconscious or swooned is known as *mūḍha-garbha*.

Mādhavanidāna, Yogaratnākara and Bhāvaprakāśa have mentioned that stupefied *vāyu* going astray stupefies the fetus.

विमर्श (*Comments*)

मूढ़गर्भ की उपरिलिखित परिभाषा की व्याख्या करने के लिए तीन बातों पर विचार आवश्यक है।

अ) किस स्थिति के गर्भ को मूढ़ता की संज्ञा दी जाय अर्थात् परिभाषा का विश्लेषण।

आ) गर्भ में मूढ़ता उसकी किस अवस्था या आयु में आती है।

इ) मूढ़ता जीवित गर्भ में होती है या मृत में।

अ) मूढ़गर्भ की शास्त्रोक्त परिभाषा का विश्लेषण

'मूढ़' शब्द 'मुह्' धातु से बना है जिसके अनेकों अर्थों में संज्ञाविहीन, मूर्च्छित, विपथगामी एवं दिशाविहीन होना भी है। मूढ़ का शाब्दिक अर्थ 'आलसी' भी होता है। आचार्य भावमिश्र ने मूढ़ का अर्थ रुद्ध-गति किया है[1] जब कि मधुकोष-व्याख्याकार ने व्यासक्त-गति या अवरुद्ध एवं असामान्य गति माना है[2]। मूढ़गर्भ के विवरण को देखते हुए विपथगामी या मूर्च्छित, आलसी या गति-रहित गर्भ को मूढ़गर्भ की संज्ञा देना उचित होगा। आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट वर्णित मूढ़गर्भ की परिभाषा आधुनिक विज्ञान-वर्णित अवरुद्ध-प्रसव की अधिकांश स्थितियों का समावेश कर लेती है, विशेषकर यदि स्पष्टीकरण की सुगमता के लिए 'कदाचित्' को प्रत्येक शब्द के पूर्व लगा लिया जाय यथा "कदाचित् विवृद्धम्" "कदाचित् असम्यक् आगतम्" आदि। संहिताओं में वर्णित विषय को निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं।

१) **विवृद्ध गर्भ**–'वि' उपसर्ग का अर्थ विशिष्टता के लिए ग्रहण करके 'विवृद्ध' से विशिष्ट प्रकार से वृद्ध अर्थात् सामान्य से भी अधिक स्थानिक या सार्वदैहिक वृद्ध अर्थ किया जाय तो इसके अन्तर्गत गर्भ के अतिवृद्धि-जन्य (यथा अतिभार का या सार्वदैहिक अतिवृद्धि, स्थानिक अतिवृद्धि यथा जलोदर, जलशीर्ष, अर्बुद आदि से) प्रसव-अवरोध को समाभूत कर सकते हैं।

२) **असम्यक् आगत या अनेकधा प्रतिपन्न**–असम्यक् अर्थात् असामान्य रूप से प्रसव के लिए अवतरित हुआ गर्भ। अनेक प्रकार से अवतरित गर्भ-वर्णन के अन्तर्गत सभी विकृत आसनों एवं उदयों का समावेश हो जाता है।

३) **अपत्यपथ में अनुप्राप्त हो अनिरस्यमान या असम्यक् अपत्यपथ में प्राप्त गर्भ**–महर्षि वाग्भट ने अपत्यपथ की विकृति का असम्यक् शब्द से उल्लेख किया है। महर्षि सुश्रुत ने यद्यपि अपत्यपथ की विकृति का निश्चित उल्लेख नहीं किया परन्तु अपत्यपथ में (सामान्य रूप से) आकर न निकल पाने के लिए पथ का विकृत होना अवश्यम्भावी है, अर्थात् इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रसव में बाधक अपत्यपथ के सभी विकारों का समावेश हो जाता है।

४) **अपान वायु के वैगुण्य से संमोहित गर्भ**–सामान्यतया संमोहित गर्भ से सभी व्याख्याकारों ने मूर्च्छित गर्भ अर्थ किया है, परन्तु यहाँ यह तथ्य अवलोकनीय है कि विगुणता मातृ-शरीर-स्थित अपान वायु की है जिसका गर्भ की संज्ञा से कोई संबंध नहीं है। गर्भ का संज्ञा-नाशन या मोहन करना गर्भ-शरीर स्थित प्राण वायु का कार्य है जिसकी विगुणता का कोई भी वर्णन नहीं मिलता। अपान वायु का कार्य गर्भाशय को उत्तेजित एवं संकुचित करके गर्भ को बाहर निकालना है अतः इसकी विगुणता होने पर गर्भाशय-पेशी-संकोच सामान्य न होने से गर्भ की गति का सम्मोहन हो सकता है जिससे

१. मूढः = रुद्धगतिः। मूढ़गर्भ रुद्धगतिं गर्भं। (भा० प्र० चि० ७०/११३ की टीका)

२. मूढो व्यासक्तगतिः॥ (मा० नि० ६४/३ की मधु० व्याख्या)

Scanned with CamScanner

प्रसवोन्मुख गर्भ गति के अवरोध होने से आगे नहीं बढ़ पाएगा अर्थात् यह विकार गर्भाशय-क्रिया-विकार-जन्य प्रसव-अवरोध का द्योतक है।

आ) मूढ़ता के योग्य गर्भ की आयु

आचार्यों ने कहीं पर भी मूढ़ता के योग्य गर्भ की आयु का निश्चित उल्लेख नहीं किया। गर्भस्राव के वर्णन के उपरान्त ही 'विवृद्ध' शब्द से गर्भ की आयु का सम्बोधन है। गर्भ का स्राव तीसरे या चौथे मास तक ही होता है अतः चौथे मास के पश्चात् के काल को गर्भ में मूढ़ता आने की आयु मान सकते हैं। टीकाकार डल्हण ने चतुर्थ मास के पश्चात् गर्भ के शरीर में स्थिरता आ जाने के कारण पात स्वरूप होने या घनावयव हो जाने से मूढ़गर्भता होने का निर्देश किया है[1]। परन्तु इन्होंने स्वयं ही अध्याय के प्रारम्भ में 'सर्वावयव सम्पूर्ण, मन एवं बुद्धि आदि से युक्त, विगुण अपान-वायु से संमूढ़ गर्भ को मूढ़गर्भ माना है'[2]। सर्वावयव सम्पूर्णता गर्भ में गर्भावस्था के सप्तम मास में आती है अर्थात् मूढ़ता सप्तम मास के पूर्व नहीं हो सकती। शल्योद्धरण के पश्चात् की चिकित्सा का वर्णन करते समय प्रसवकालोत्पन्न मूढ़गर्भा एवं अकाल मूढ़गर्भा की कुछ पृथक् पृथक् व्यवस्था वर्णित की है[3]; जिससे स्पष्ट होता है कि सम्भवतः टीकाकार डल्हण स्वयं गर्भ की आयु के बारे में सन्देहास्पद थे।

मधुकोष व्याख्याकार ने उचित प्रसव-काल में ही गर्भ में मूढ़ता मानी है[4]। आयुर्वेद में उचित प्रसव-काल नवम मास की प्राप्ति के पश्चात् ही माना गया है।

प्रत्यक्ष क्रियात्मक अनुभव के आधार पर सप्तम मास के पूर्व गर्भ में मूढ़ता की उपस्थिति समुचित प्रतीत नहीं होती अतः 'विवृद्धम्' से 'विशिष्ट रूपेण वृद्धं' अर्थ करने से एवं डल्हण-लिखित 'सर्वावयव सम्पूर्णता' तथा मधुकोष की 'उचित प्रसव-काल' आदि व्याख्या के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने पर गर्भ में मूढ़ता का आना सप्तम मासोपरान्त मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। यह तथ्य अष्टाङ्गसंग्रहोक्त गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु तथा सुश्रुतोक्त मूढ़गर्भ की सम्प्राप्ति को देखने से सुस्पष्ट हो जाता है, क्योंकि आचार्यों ने उस गर्भ का यकृत, प्लीहा और आंत्र के विवर से अवस्रंसमान होना वर्णित किया है। गर्भ-युक्त गर्भाशय यकृत एवं प्लीहा की सीमा तक अष्टम मास में ही पहुँच पाता है अर्थात् इस आयु के बाद ही गर्भ में मूढ़ता होने की सम्भावना मानी जा सकती है।

इ) मूढ़गर्भ जीवित होता है या मृत

यद्यपि महर्षि चरक ने "मूढ़गर्भ" शब्द का प्रयोग नहीं किया, परन्तु शल्यहर्ता आदि द्वारा आहरण करवाने का निर्देश मूढ़गर्भ के वर्णन की ओर ही इंगित करता है। यद्यपि बिना गति की विगुणता के भी यदि मृतगर्भ प्रसवित न हो तो शल्यहर्ता द्वारा आहरण करवाना पड़ सकता है फिर भी अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित विषय से सामञ्जस्य रखते हुए इसे मूढ़गर्भ मान सकते हैं; अर्थात् महर्षि चरक ने स्पष्ट-रूप से मृत गर्भ में ही गति अवरोध या वैगुण्यता की सम्भावना को व्यक्त किया है।

आचार्य वाग्भट ने मृत गर्भ के लक्षणों के वर्णन के पश्चात् ही लिखा है कि 'तं तु' अर्थात् वही मृत गर्भ मूढ़ता

१. तत्र द्रवस्य स्रवणे मूढ़गर्भनाम नास्ति, विगुणानिलसंमोहानिर्गमलक्षणस्याभावात्॥ ·····गर्भ विच्युतिः गर्भविमुक्तिः प्रस्रवेत् स्रावरूपा भवेत्। एतेन मासचतुष्टयं यावत् मूढ़गर्भता नास्तीत्युक्तम्॥ तत इत्यादि। ततश्चतुर्थमासादूर्ध्वं स्थिरशरीरस्य विच्युतिः पातः पातरूपा भवेत्॥ एतेन विच्युतिरियं न स्रावरूपा, तस्माच्चतुर्थमासानन्तरं घनावयवत्वान्मूढ़गर्भो भवतित्युक्तम्॥ (सु० सं० नि० ८/९ एवं १० डल्ह० टीका)

२. सर्वावयवसम्पूर्णो मनोबुद्ध्यादिसंयुतः। विगुणापानसंमूढ़ो मूढ़गर्भोऽभिधीयते॥ (सु० सं० नि० ८/१-२ की डल्ह० टीका)

३. सु० सं० चि० १५/२०-२८ की डल्हण व्याख्या।

४. उचित प्रसवकाले यथा मूढ़ो गर्भः स्यात्ताह। (मा० नि० ६४/३ की मधु० व्याख्या)

को प्राप्त होता है; परन्तु इन्होंने ही मूढ़गर्भ की व्याख्या में मोहित होने का भी वर्णन किया है, 'मोहित' का टीकाकार इन्दु ने 'मूर्च्छित'[1] अर्थ किया है। यदि गर्भ मृत था तो उसके मूर्च्छित होने का प्रश्न ही नहीं उठता! पुनः च चिकित्सा का वर्णन करते समय सचेतन या जीवित गर्भ के अङ्गों के काटने का निषेध तथा उसे प्रसवित कराने के उपायों का वर्णन किया है[2] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाग्भट जीवित गर्भ में भी मूढ़ता होना मानते थे।

महर्षि सुश्रुत एवं उनके अनुयायी अन्य आचार्यों (माधवनिदान, भावप्रकाशादि) ने परिभाषा, निदान या सम्प्राप्ति में कहीं पर भी स्पष्ट नहीं लिखा है कि गर्भ जीवित होता है या मृत, परन्तु चिकित्सा में गर्भ के जीवित होने अर्थात् जीवित मूढ़गर्भ के प्रसव-विधान का स्पष्ट निर्देश किया है[3]। चिकित्सा स्थान वर्णित 'मृते च' के 'च' शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि यदि प्रसव कराने में मन्त्र-तन्त्र चिकित्सा असफल हो जाय तो जीवित गर्भ को भी हाथ से खींचकर बाहर निकालना चाहिए[4]। इन सभी आचार्यों ने भी जीवित गर्भ के छेदन का निषेध लिखा है[5]।

अर्थात् जीवित या मृत कोई भी गर्भ मूढ़ता को प्राप्त हो सकता है।

उपर्युक्त वर्णन को दृष्टिगोचर रखते हुए मूढ़गर्भ की निम्न परिभाषा कर सकते हैं।

"सर्वावयव सम्पूर्ण, जीवित या मृत, असम्यक् प्रकार से आया हुआ अथवा/और असम्यक् अपत्थ पथ को प्राप्त होकर तथा अपान वायु के विगुणत्व-जन्य गर्भाशय-पेशी के असमान्य संकोचों के कारण अनिरस्यमान गर्भ मूढ़गर्भ या अवरुद्धप्रसव होता है"।

In explaining above definition three points have to be considered—

a) Which specific condition should be considered as state of stupefaction *(mūdhatwa)* or clarification of above definition.

b) At what gestational age the fetus can become a *mūḍhagarbha* (obstructed labour).

c) Whether this obstruction occurs in alive or dead fetus.

a) Explanation of definition given in classics

The literal meaning of word *mūḍha* which is derived from *dhātu "muh"* is to become stupefied, unconscious or swooned, to become bewildered or going in wrong direction and become lazy. Obstructed movement and abnormal alongwith obstructed movement is the explanation given for the word *mūḍha* by Bhāvamiśra and Madhukoṣa commentary respectively. Thus *mūḍhagarbha* refers to the condition in which the fetus has gone astray, is swooned with absence of discend. The definition given by Suśruta and Vāgbhaṭa actually includes almost all the conditions of obstructed labour described today, as explained hereunder—

१. मोहितं मूर्च्छितम्। (अ० सं० शा० ४/२९ की इन्दु टीका)

२. अ० सं० शा० ४/३३, अ० ह० शा० २/३७ (सचेतन गर्भछेदनान्तर्गत वर्णित)

३. जीवति तु गर्भे ·····। (सु० सं० चि० १५/५)
गर्भे जीवति मूढे तु·····॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२१)

४. मृते चेति। चकारादफलीभूतेषु मन्त्रतन्त्रप्रसूतिजननव्यापारेषु जीवत्यपीत्यनुक्तं समुच्चिनोति।
(सु० सं० चि० १५/९ की डल्ह० टीका)

५. सु० सं० चि० १५/१०, भा० प्र० चि० ७०/१२३, यो० र० स्त्री० रो० चि० (सचेतन गर्भछेदनान्तर्गत वर्णित)

Scanned with CamScanner

i) Vivṛddha garbha—Prefix '*vi*' denotes 'special' or 'exaggerated' and word *vṛddha* the growth, thus it includes obstruction caused by generalized over size of the fetus i.e. macrosomia or local over-growth of a part of the fetus such as ascites, hydrocephalus or congenital tumours etc.

ii) Asamyak āgata or anekadhā pratipanna (presenting abnormally or with various presentations)—The fetus coming abnormally or with different presentations includes all malpre-sentations and positions.

iii) Unable to deliver after reaching the passage—Vāgbhaṭa has clearly mentioned the word abnormal passage, Suśruta though not mentioning the word abnormal has written that fetus after reaching (normally) to the passage gets obstructed, which is possible only when the passage is abnormal or this heading includes all the conditions of abnormal passage causing obstructed labour.

iv) Abnormality of apāna vāyu causing sammohana of garbha—The word *"sammohana"* has been explained by all the commentators as unconsciousness of the fetus, however, the word also refers to stupefaction. One has to consider that here abnormality is of *apāna vāyu* situated in the maternal body, which is totally unrelated to the consciousness of the fetus. The maintenance of consciousness of the fetus is a function of *prāṇa vāyu* situated in fetal body which is not deranged, thus the question of fetus becoming unconscious does not arise, rather it gets stupefied. Main function of *apāna vāyu* is to expell the fetus by stimulating myometrium, naturally its abnormality will produce obstruction to the movement or delivery of the fetus by influencing myometrial activity. Considering these points this description should be considered as obstruction to the process of descend of fetus or in the progress of labour due to abnormal or feeble uterine contractions or uterine inertia.

b) The gestational age of fetus in which it can get obstructed

None of the classics have mentioned specific gestational age of fetus for this condition. Suśruta after describing *garbhasrāva* (abortion upto fourth month) has mentioned that *mūḍhagarbha* can occur in *vivṛddha* (developed or grown-up) fetus. Explaining this verse Ḍalhaṇa says that in fifth and sixth month since the fetal parts become solidified, hence obstruction to the delivery can occur at this stage, however, in the beginning of the chapter he himself has mentioned that the fetus having all his body parts and association of *mana* and *buddhi*, getting stupefied due to vitiated *apāna vāyu* is known as *mūḍhagarbha*. The development of all body parts is complete in seventh month or in other words obstruction in the delivery can not occur before seventh month. Further he has prescribed postoperative management for *prasavakālotpanna mūḍhagarbhā* (obstrction during normal delivery period) and *akāla mūḍhagarbhā* (obstruction during delivery in improper time) separately. This shows that Ḍalhaṇa was confused about the gestational age of the fetus.

In Madhukoṣa commentary *mūḍhatā* (obstruction) is accepted only during normal delivery period i. e. ninth month onwards.

In practice obstruction to the labour of a fetus before seventh month is generally not

seen. Considering above mentioned three points i. e. *vivṛddha* or over developed, attainment of all body parts and delivery in appropriate time, the *mūḍhagarbhatā* (obstruction to the labour) should be considered only after seventh month.

This hypothesis is strengthened when one considers the pathogenesis of intrauterine death of fetus described by Vāgbhaṭa and of *mūḍhagarbha* given by Suśruta, where-in they have mentioned that the fetus descends from the space in-between liver and spleen. To this height uterus reaches only during eighth month or in other words obstruction to the labour occurs eighth month onwards.

c) Whether this obstruction occurs in alive or dead fetus

Caraka while advising that if intrauterine dead fetus does not deliver with medicines or *mantras*, the woman should be referred to surgeon, has not used the term *mūḍhagarbha*, however, since the descriptions is identical to that of *mūḍhagarbha*, hence it may be concluded that according to Caraka the abnormality or obstruction in labour occurs only in dead fetus.

Vāgbhaṭa after describing the intrauterine dead fetus says further that the same fetus if gets stupefied then is called *mūḍhagarbha*. However, in the definition he himself has mentioned unconsciousness or swooning of the fetus. In the treatment also he has contra-indicated destructive surgery of alive fetus, thus it is clear that he accepted that the obstruction can occur in dead or alive fetus.

Though Suśruta and Mādhava etc. in defining etiopathogenesis have not mentioned specifically that whether fetus in dead or alive, however, in the treatment clear distinction between management of alive or dead *mūḍhagarbha* has been made.

Thus it can be inferred that dead or alive any fetus can get obstructed or become *mūḍhagarbha*.

Considering all above points *mūḍhagarbha* can be defined in following way—

"Alive or dead fetus, after attaining development of all its body parts or after seventh month of pregnancy, presenting abnormally and/or in abnormal passage, associated with abnormal uterine action due to vitiation of *apāna vāyu* is *mūḍhagarbha*".

मूढ़गर्भ-निदान (Etiology of mūḍhagarbha)

जैसा पूर्व वर्णित है अधिकांश संहिताकारों ने गर्भस्राव के निदान एवं सम्प्राप्ति का वर्णन कर उन्हीं निदानों को गर्भाशयान्तर गर्भ-मृत्यु के लिए भी उत्तरदायी माना है। महर्षि वाग्भट ने उसी मृत गर्भ में ही अपत्यपथ विकार एवं उदय विकार आदि के कारण मूढ़ता होना वर्णित किया है अतः गर्भस्राव एवं अन्तर्मृत गर्भ के कारणों को ही मूढ़गर्भ के कारण मानना चाहिए। सभी आचार्यों ने गर्भ की मूढ़ता का मुख्य कारण अपान वायु की विगुणता ही माना है[१]। महर्षि सुश्रुत ने अध्याय का नाम ही मूढ़गर्भनिदान रखकर आगे गर्भस्रावान्तर्गत वर्णित निदानों का उल्लेख किया है अतः वे निदान यहाँ पुनः उद्धृत किए जा रहे हैं।

१. च० सं० शा० ८/३०; सु० सं० नि० ८/३, एवं १३; अ० सं० शा० ४/२७ व २९; अ० ह० शा० २/२२, मा० नि० ६४/३,९; भा० प्र० चि० ७०/११३, ११८ वं यो० र० स्त्री० रो० चि० (पृष्ठ ४७१, ४७२, ४७८)

Scanned with CamScanner

ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीड़नधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरुक्षकटुतिक्तभोजनशोकातिक्षारसेवनातिसारवमनविरेचनप्रेङ्खोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभिर्विशेषैर्बन्धनान्मुच्यते गर्भः, फलमिव वृन्तबन्धनादधिघातविशेषैः ॥ (सु० सं० नि० ८/३)

मैथुन, यान, वाहन, अध्वगमन, प्रस्खलन, प्रपतन, प्रपीड़न, धावन, अभिघात, विषम शयनासन (विषम स्थान में या विषम रूप से सोना या बैठना), उपवास, वेगाभिघात, अतिरुक्ष, कटु, एवं तिक्त भोजन, शोक, क्षार का अतिसेवन, अतिसार, वमन, विरेचन, प्रेङ्खोलना, अजीर्ण एवं गर्भशातक औषधियों के प्रयोग से वृन्त से च्युत फल की ही भाँति गर्भ अपने बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

महर्षि हारीत ने मूढ़गर्भ के विशिष्ट निदानों का वर्णन करते हुए लिखा है कि विरुद्ध आहार के सेवन (माता के द्वारा), गर्भ की व्यथा अथवा अत्यधिक शिरःशूल (माता को) होने से गर्भ पीड़ा (कष्ट) को प्राप्त करता है अथवा वह गर्भ तिर्यक होकर भगद्वार को छोड़ता है (योनिमार्ग से बाहर आने का प्रयत्न करता है) या अन्य किसी कारण से जब गर्भ मर जाता है तो (स्त्री) कष्ट को प्राप्त करती है अथवा लज्जा के कारण (अथवा यूँ भी) भग के संकोच से संकुचित भग (योनिद्वार या मूलाधार) में (गर्भ प्राप्त होने से) मूढ़गर्भ हो जाता है अब उसके लक्षण कहते हैं[1]।

Most of the authors have described etiology of abortion and intrauterine death of fetus together. The description of intrauterine dead fetus by Caraka hints that it can also get obstructed. Vāgbhaṭa has clearly mentioned that the same dead fetus presenting abnormally in abnormal passage is called *mūḍhagarbha*. Thus the etiology of abortions and intrauterine death of fetus should be considered as causative factor for *mūḍhagarbha* also. Suśruta giving caption to the chapter as *"mūḍhagarbhanidāna"* (etiology of obstructed labour) has discussed the causes of abortion which are being recapitulated here.

Due to excessive coitus, riding on carriages or animals, travelling, staggering, falling down, compression, running, trauma, sleeping or sitting abnormally or on uneven place, fasting, suppression of natural urges, use of excessive dry, hot or pungent edibles, grief, excessive use of *kṣāra* (alkalies), diarrhoea, vomiting, purgation, swinging, indigestion and use of abortifacient drugs, the fetus gets detached from its bonds in the same way as a fruit gets detached from its stalk due to trauma.

Hārīta opines that use of incompatible diet by the mother, diseases of the fetus and severe headache to the mother cause troubles to the fetus. Due to these troubles or its expulsion in oblique position or due to other reasons the fetus dies and woman gets trouble. Sometimes due to shyness or otherwise the *bhaga* (vaginal passage or introitus or perineum) gets constricted (spasm), the fetus approaching this constricted passage becomes *mūḍhagarbha*.

विमर्श (Comments)

गर्भस्राव, अन्तर्मृत गर्भ; परिभाषा एवं निदानान्तर्गत वर्णित सम्पूर्ण विषय तथा अन्तर्मृत गर्भ के लक्षण एवं मूढ़गर्भ

१. विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च। अतिमूर्द्धनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥
तिर्य्यग्वापि च गर्भञ्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च। अन्येद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥ २॥
अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात् सङ्कुचिते भगे। मूढ़गर्भञ्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥
(हा० सं० तृतीयस्थान ५२/१ से ३)

की आसाध्यता के लक्षणों को एक साथ अवलोकन करने पर मूढ़गर्भ या अवरुद्ध प्रसव के निम्न कारण सामने आते हैं।

१) गर्भाशय-पेशी के कार्य में विकृति
२) गर्भ की विकृति
३) अपत्यपथ का वैगुण्य

प्रत्येक स्थिति का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१) गर्भाशय-पेशी के कार्य में विकृति

गर्भाशयिक पेशियों की प्रसव के लिए आवश्यक संकुचन शक्ति में विकृति होने से प्रसव में अवरोध हो जाता है। पेशियों के कार्य में निम्न कारणों से विकार हो सकते हैं।

अ) शारीरिक व्याधियाँ–सभी आचार्यों ने आहार-वैषम्य का वर्णन किया है इस आहार-विहार-वैषम्य से स्त्री के सामान्य स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ कर दौर्बल्यादि होने से प्रसव के समय गर्भाशय की संकुचनशीलता में प्रभाव पड़ सकता है। आहार-वैषम्य गर्भजन्य विषमयता का भी एक कारण है जिसका सर्वप्रथम लक्षण शिरःशूल होता है जो महर्षि हारीत द्वारा स्पष्टतः वर्णित है। गर्भजन्य विषमयता में प्रसव अधिकांशतः अवरुद्ध हो जाता है।

आ) मानसिक स्थिति का प्रभाव– यह प्रमाणित तथ्य है कि स्त्री की मानसिक स्थिति (क्रोध, शोक, भय आदि) का गर्भाशय-संकुचन में प्रभाव पड़ता है। महर्षि हारीत-वर्णित लज्जा से भग का संकोच इसी आशय का द्योतक है।

इ) नाड़ी-कार्य में विकार–सभी आचार्यों ने अपान वायु के वैगुण्य का वर्णन दिया है जिसकी विकृति के कारण गर्भ की गति अवरुद्ध हो जाती है। अपान वायु को ही प्रथम प्रसूति मारुत शब्द से सम्बोधित किया गया है। इस वायु या नाड़ीवह संस्थान के कार्य में विकृति होने से गर्भाशय-पेशी का सामान्य संकुचन न होकर प्रसव अवरुद्ध हो सकता है। नाड़ी के कार्य में विकृति होने से गर्भाशय पेशी में दो प्रकार के विकार होते हैं यथा गर्भाशयसंकोचनाल्पता एवं अत्यधिक या असामान्य संकोच। अपान वायु वैगुण्य से गर्भ का सम्मोहन (पृ० ४७९), गर्भ के अवाक् न होने पर (पृ० ४४५ से ४४६) एवं गर्भसङ्ग के लिए वर्णित (पृ० ४५२ से ४५४) चिकित्सा तथा गर्भ का मकुष्ठ या मन्थरगति होना आदि गर्भाशय की संकोचाल्पता के द्योतक हैं। अश्म की भाँति उदरानुभूति, आवी की अनुपस्थिति में अत्यधिक शूल (पृ० ४७५, ४७६) एवं मक्कल्ल गर्भाशय के अत्यधिक या असामान्य संकोच की स्थिति के वर्णन प्रतीत होते हैं। कभी-कभी गर्भाशय में विकार होने से गर्भाशय-ग्रीवा का सामान्य विस्फार नहीं हो पाता जिसका वर्णन योनिसंवृति या योनिसंवरण शब्दों से किया गया है। अपान वायु के वैगुण्य से गर्भ का सम्मोहन सम्भवतः गर्भाशय की प्राथमिक क्रियाविहीनता एवं अन्य द्वितीयक क्रियाविहीनता या अन्य प्रकार की कार्य-विकृति के द्योतक प्रतीत होते हैं।

ई) दैवयोग–अज्ञात कारण से गर्भाशय-पेशी संकोच-विहीनता।

२) गर्भ-विकृति

गर्भ-विकृति पुनः दो प्रकार की हो सकती है आकृति की विकृति एवं आसन या उदय की विकृति।

अ) आकृति की विकृति–महर्षि हारीत ने स्पष्टतया गर्भ की व्यथा को कारणभूत माना है। विभिन्न गर्भाङ्ग विकृतियाँ कभी कभी गर्भ की मूढ़ता का कारण बन जाती हैं जैसे एननसिफैलि आदि। विवृद्ध गर्भ पूर्व (पृ० ४७९) वर्णित है।

आ) उदय या आसन की विकृति–असम्यक् आगत, अनेकधा प्रतिपन्न एवं तिर्यक् आगत आदि वर्णन तथा लक्षणान्तर्गत वर्णित विभिन्न गतियाँ इस विकृति की स्पष्ट द्योतक हैं। गर्भिणी द्वारा विषम आसन-शयन आदि से गर्भ के उदय या आसन में होने वाला प्रभाव पूर्ववर्णित है (पृष्ठ ४७३)।

Scanned with CamScanner

३) अपत्यपथ का वैगुण्य

अपत्यपथ में निम्न विकार हो सकते हैं।

अ) गर्भाशय-विकार–गर्भकोष की आपन्नता या विकृति होने से मूढ़गर्भ के असाध्य होने का स्पष्ट उल्लेख हारीत ने (मूढ़गर्भ की असाध्यता में वर्णित) किया है।

आ) श्रोणिगुहा-विकार–असम्यक् अपत्यपथ में अनुप्राप्त या अपत्य-पथ में अनुप्राप्त परन्तु अनिरस्यमान आदि वर्णन (पृ० ४७९) स्त्री की श्रोणि की अस्थियों के विकार को इंगित करता है।

इ) गर्भाशय-ग्रीवा-विकार–योनिसंवृति या योनिसंवरण (असाध्य मूढ़गर्भ में वर्णित) गर्भाशय-ग्रीवा के संकोच या विस्फार न होने का वर्णन है।

ई) मूलाधारपीठ (पैरिनीअॅम) काठिन्य–हारीत-वर्णित लज्जा से भग-संकोच (पृ० ४८४) इस स्थिति का द्योतक है।

उ) योनिभ्रंश–योनि अर्थात् गर्भाशय-ग्रीवा का भ्रंश होने से प्रसव के समय उसका सामान्य विस्फार नहीं हो पाता एवं प्रसव में अवरोध होता (असाध्य मूढ़गर्भ में वर्णित)।

For understanding the etiology of *mūḍhagarbha*, the etiology of abortion and intra-uterine death of fetus, definition of *mūḍhagarbha*, its etiology and features of bad prognosis have to be considered together. On this basis following causative factors may be held responsible for *mūḍhagarbha* (obstructed labour)—

1) Abnormality in functions of uterine musculature i. e. abnormality or failure of power.
2) Abnormalities of fetus or passenger.
3) Abnormalities in the passage.

Details of each point are given hereunder—

1) Abnormalities in the function of uterine musculature

Following factors may cause uterine inertia or irregular uterine contraction.

a) Nutritional disorders—Improper diet may deteriorate general health of the woman, thus influence the contractility of myometrium, besides unbalanced diet is also one of the causative factor for toxaemia of pregnancy, of which headache a very common symptom is very clearly mentioned by Hārīta. In toxaemia of pregnancy labour often gets obstructed.

b) Effect of psychology—Psychology of an individual influences functions of reproductive system, spasm or constriction of vagina due to shyness mentioned by Hārīta is description in this direction. This shyness or fear can influence myometrial contractions.

c) Abnormality of functions of nervous system—These functional abnormalities are of two types i.e. absence of contraction or uterine inertia and irregular or excessive uterine contraction. The cessation in the process of descend of fetus due to abnormality of *apāna vāyu* and the treatment prescribed for failure of descend of fetus as well as *garbhasaṅga* hint towards uterine inertia. The former probably refers to primary uterine inertia while the latter

to the secondary uterine inertia. Presence of *śūla* (pain) in the absence of *āvīes* (labour pains), feeling of stony hardness of abdomen (uterus) and *makkalla* (tetanic spasm of uterus) etc. seem to be descriptions of irregular/abnormal or excessive myometrial contractions. Sometimes due to ineffectual uterine contractions there is failure of dilatation of cervix which has been described as *yonisaṃvṛti* or *yonisaṃvaraṇa*.

d) Daivayoga—Uterine inertia due to idiopathic cause.

2) Abnormalities of passenger

The passenger had two types of abnormalities i.e. of size or shape and presentation with position.

a) Abnormality of size or shape—Hārīta has mentioned diseases of fetus as a cause which may be considered as abnormality of shape. Abnormality of size has already been discussed earlier under *vivṛddha garbha*.

b) Abnormal presentation or position—Abnormally presented, presenting with other parts, coming obliquely etc. descriptions and various modes of presentations are clear description of abnormal presentations/positions.. Influence of maternal postures over fetal presentation/position has already been discussed earlier.

3) Abnormalities of passage

In the maternal passage following abnormalities are seen.

a) Abnormalities of uterus—Hārīta has stated that in the presence of abnormalities of *garbhakoṣa* (uterus) the *mūḍhagarbha* becomes incurable.

b) Abnormalities of pelvis— 'Reaching abnormal maternal passage' and 'unable to come out' is a clear describtion of abnormalities of maternal pelvis.

c) Abnormalities of cervix—*Yonisaṃvṛti* or *yonisaṃvaraṇa* refer to failure in dilatation of cervix.

d) Rigidity of perineum—Spasm of *bhaga* due to shyness probably denotes rigidity of perineum due to psychogenic factors.

e) Prolapse of cervix—*Yonibhraṃśa* has been enlisted under the clinical features of bad prognosis of *mūḍhagarbha*. In cases of cervical prolapse, proper dilatation of cervix does not take place thus obstructs the labour.

मूढ़गर्भ की सम्प्राप्ति (Samprāpti or pathogenesis of mūḍhagarbha)

निदान की ही भाँति महर्षि वाग्भट द्वारा वर्णित अन्तर्मृत गर्भ की ही सम्प्राप्ति को मूढ़गर्भ की भी सम्प्राप्ति समझना चाहिए, महर्षि सुश्रुत-वर्णित सम्प्राप्ति ही यहाँ दी जा रही है। महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने लगभग एक तरह की ही सम्प्राप्ति लिखी है।

स विमुक्तबन्धनो गर्भाशयमतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्रंसमानः कोष्ठसङ्क्षोभमापादयति। तस्या जठरसङ्क्षोभाद्वायुरपानो मूढः पार्श्ववस्तिशीर्षोदरयोनिशूलानाहमूत्रसङ्गानामन्यतममापाद्य गर्भं च्यावयति (व्यापादयति-पाठभेद) तरुणं शोणितस्रावेण। (सु० सं० नि० ८/३)

Scanned with CamScanner

वह बन्धनों से मुक्त हुआ (गर्भ) गर्भाशय का अतिक्रमण (उल्लंघन[1]) करके यकृत्, प्लीहा और आंत्र के अंतरालों से नीचे की ओर आता हुआ कोष्ठ में (आमाशय, पक्वाशयादि स्थानों में[1]) संक्षोभ (सञ्चलन[1]) करता है। उस जठर के संक्षोभ के कारण मूढ़ (विमार्गगामी या विषम गति युक्त[1]) हुई अपान वायु पार्श्व, बस्तिशीर्ष, उदर तथा योनि में शूल, आनाह, मूत्रसङ्ग आदि अनेक व्याधियों से कष्ट देकर शोणित-स्राव के द्वारा तरुण गर्भ को गिरा देती है या मार देती है। टीकाकार डल्हण ने बन्धन से गर्भाशय-प्रतिबद्ध शिरा एवं पेशी का अर्थ ग्रहण किया है तथा 'च्यावयति' शब्द लिखकर तरुण अर्थात् अघन, अनङ्ग एवं अव्यक्त चेतना वाले गर्भ के च्यवन या द्रवरूप स्राव का वर्णन दिया है[1]।

Pathogenesis described for intrauterine death of fetus by Vāgbhata is applicable to *mūḍhagarbha* also, however, Suśruta's description is being given here, which is also the same as given under abortions.

The fetus getting detached from its bonds, transgressing the uterus, descending from the spaces amongst the liver, spleen and bowels irritates or hyperactivates the *koṣṭha* or *āmāśaya* and *pakwāśaya* etc. Due to this irritation the *apāna vāyu* getting *mūḍha* or having abnormal movements produces pain in flanks, upper region of urinary bladder and *yoni* (reproductive system), tympanites, retention of urine etc. various diseases followed by death of young fetus due to bleeding per vaginum. Dalhaṇa has explained that from the word bonds the muscles and vessels attached to the uterus should be considered, further explaining trickling or expulsion of fetus has mentioned that unsolid or liquid fetus not possessing proper fetal parts and evident consciousness is trickled or expelled in liquid form (this last explanation refers to pathogenesis of only abortion).

विमर्श (Comments)

गर्भ उदर में नाड़ी-निबन्धों के कारण ही स्थित रहता है जिन बन्धनों से मुक्ति ही उसके प्रसव का कारण है (पृष्ठ ४२६) अतः यहाँ पर विमुक्त बन्धन शब्द से नाड़ी-निबन्धों से विमुक्ति अर्थ अधिक युक्तिसंगत होगा न कि टीकाकार डल्हण वर्णित शिरा एवं पेशी, क्योंकि गर्भ का गर्भाशय-प्रतिबद्ध शिरा एवं पेशी से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता। अतिक्रमण का अर्थ उल्लंघन करने पर स्पष्टीकरण में कठिनाई आती है क्योंकि गर्भ गर्भाशय का अतिक्रमण उसे विदारित करने के बाद ही कर पाएगा। अतिक्रमण का अन्य अर्थ अपनी शय्या अर्थात् स्थान का उल्लंघन कर अपत्यपथ की ओर अग्रसर होना भी कर सकते हैं, परन्तु अपत्यपथ की ओर अग्रसरण अवसंसित होने के बाद ही पाएगा न कि पहिले। अतः यहाँ पर 'गर्भाशयमतिक्रम्य' का अर्थ "क्रम् पादविक्षेपे" के आधार पर विमुक्त-बन्धन वाले गर्भ के अत्यधिक पादादि विक्षेप (अत्यधिक सञ्चलन)-जन्य गर्भाशय-विक्षोभ करना उचित होगा। अनङ्ग गर्भ-युक्त गर्भाशय श्रोणिगुहीय अङ्ग रहता है अतः यकृत एवं प्लीहा के अन्तरालों से नीचे आने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वहाँ गर्भाशय अष्टम मास के लगभग पहुँचता है। अतः गर्भस्राव की सम्प्राप्ति में यकृत-प्लीहा का पाठ उचित नहीं है। सम्प्राप्ति में मूढ़ शब्द वायु या अपान वायु की मूढ़ता तथा गर्भ की मूढ़ता दोनों के लिए ही आया है। गर्भस्राव में केवल अपान वायु की मूढ़ता होती है जब कि मूढगर्भ में अपान वायु एवं गर्भ दोनों की ही। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर गर्भस्राव एवं मूढ़गर्भ की निम्नाङ्कित सम्प्राप्ति समझ सकते हैं।

अ) गर्भस्राव–(उपर्युक्त कारणों से) नाड़ी-निबन्धनों से मुक्त हुआ गर्भ आन्त्र-विवर (गर्भाशय-अतिक्रमण एवं यकृत-प्लीहा-विवर का पाठ न करके) से नीचे आता हुआ कोष्ठ का संक्षोभन करता है। कोष्ठ के संक्षोभ से अपान वायु

१. बन्धनमत्र गर्भाशयप्रतिबद्धाः सिराः पेश्यश्च। ·····अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य·····कोष्ठशब्देनामाशयपक्वाशयादिस्थानम्। संक्षोभश्चलनम्।·····मूढ़ो विमार्गगामी। ···तरुणं गर्भमपानो मूढ़ः सन् च्यावयतीति सम्बन्धः। तरुणमघनाङ्गमव्यक्तचेतनम्॥ (सु० सं० नि० ८/३ की डल्ह० टीका)

मूढ़ या विमार्गगामी होकर पार्श्व एवं बस्ति आदि में शूल तथा आनाह आदि उत्पन्न कर रक्तस्राव के साथ गर्भ का स्राव कर देती है।

आ) मूढ़गर्भ–(उपर्युक्त कारणों से) नाड़ी निबन्धनों से मुक्त (प्रसव के लिए उद्यत) गर्भ अपने अङ्गों के अत्यधिक विक्षेप से गर्भाशय को अत्यधिक संक्षुभित या उत्तेजित करता है जिससे उत्पन्न गर्भाशय के संकोचों के कारण यकृत, प्लीहा एवं आंत्र के विवर से नीचे आता हुआ गर्भ कोष्ठ का संक्षोभ या उत्तेजना उत्पन्न करता है, उस संक्षोभ के कारण विगुणित या मूढ़ अपान वायु पार्श्वबस्तिशूलादि लक्षणों के साथ तरुणगर्भ (तरुण=युवा=सर्वाङ्ग सम्पूर्ण) को रक्तस्राव के साथ च्युत करती है अर्थात् अपने स्थान गर्भाशय से बाहर निकालती है एवं वह गर्भ मूढ़ या अवरुद्ध गति (परिभाषा एवं निदानान्तर्गत वर्णित स्पष्टीकरण के आधार पर) होने पर मूढ़गर्भ कहलाता है।

टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि कुछ लोग इस गद्य को (निदान एवं सम्प्राप्ति वर्णन को) दूसरी प्रकार से लिखते हैं पर इन्होंने उसे उद्धृत नहीं किया। विषय का अस्पष्ट वर्णन सम्भवतः पाठभेद का कारण हो[1]।

The fetus remains in the uterus because of its *nāḍī nibandhana*. Release of these bonds initiates labour as explained earlier. In this reference also the release of bonds should be interpretted as release of *nāḍīnibandhana*. Dalhaṇa's explanation about muscles or vessels attached to the uterus is not proper, because the fetus is not directly attached to the muscles or vessels of the uterus. It is difficult to explain the word *atikramaṇa* or transgression, because transgression of uterus will happen only after its rupture. If transgression is explained in a way that leaving its normal situation the fetus descends for expulsion, then also there will be difficulty, because in this condition the descend will precede the transgression, while in description the transgression precedes descend. Due to these facts here the word *'garbhāśayamatikramya'* has to be explained on the basis of *'kram pādavikṣepe'* i.e. over irritation or stimulation of uterus due to hyperactivity of extremities of the fetus caused by detachment of its bonds. The fetus with inconspicuous body parts or in unsolid state (up to 3rd month) remains within the pelvic cavity, thus consideration of spaces inbetween liver and spleen in the pathogenesis of abortion does not arise, because, this level is attained during eighth month of pregnancy. The word *mūḍha* used in pathogenesis denotes abnormality or absence of movement of *apāna vāyu* and fetus both. In abortion the abnormality of movement of only *apāna vāyu* occurs, while in *mūḍhagarbha* both i. e. fetus and *apāna vāyu* have abnormality or absence of movement. On the basis of above explanations pathogenesis of abortion and *mūḍhagarbha* may be considered in following way—

a) Abortion—Due to causes mentioned earlier the fetus getting detached from its bonds of *nāḍīes*, descending from the spaces of bowels irritates the *koṣṭha* (abdomen). Due to this irritation the *apāna vāyu* having abnormal movements producing pain in flanks etc. symptoms followed by bleeding per vaginum produces abortion.

b) Mūḍhagarbha—The fetus getting detached from its bonds of *nāḍīes*, anxious to deliver, having hypermobility of its body parts produces extreme irritation/stimulation to the uterus. Due to this hyperactivity of uterus the fetus descending (forcefully) from the spaces inbetween liver, spleen and bowels causes irritation to the *koṣṭha* (abdomen), which

१. केचिदेतद्गद्यमन्यथा पठन्ति, तत्त्वभावान्नलिखितम्॥ (सु० सं० नि० ८/३ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

in turn excites the *apāna vāyu*. This vitiated and abnormally moving *apāna vāyu* initiates expulsion of young fetus associated with bleeding pervaginum and pain in flanks etc. symptoms. This fetus getting obstructed in its passage and having absence of further progress in known as *mūḍhagarbha*.

मूढ़गर्भ के लक्षण (Clinical features of mūḍhagarbha)

१) सामान्य (General)

महर्षि सुश्रुत एवं अष्टांगसंग्रहकार ने मूढ़गर्भ के सङ्ग तथा गतियों का वर्णन दिया है एवं सम्प्राप्ति के अन्तर्गत पार्श्वादि में शूल तथा मूत्रसङ्गादि का वर्णन है जो कि मूढ़गर्भ के लक्षण माने जा सकते हैं। माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकरकार ने संक्षेप में लिखा है कि मूढ़ (विषम गति) वायु (अपान) गर्भ को मूढ़ कर योनि एवं उदरादि में शूल तथा मूत्रसङ्ग उत्पन्न कर देती है[1]।

Pain etc. symptoms have already been described under pathogenesis. Mādhavanidāna etc. books have mentioned that abnormally moving *apāna vāyu* obstructs the progress of fetus and produces pain in abdomen, vagina and retention of urine.

२) मूढ़गर्भ के विशिष्ट लक्षण या गतियाँ (Specific clinical features or mode of presentations of mūḍhagarbha)

मूढ़ गर्भ के विशिष्ट लक्षण उसकी अनेक प्रकार से प्रसवित होने की गतियाँ ही हैं। चिकित्सा-सौकर्य की दृष्टि से आचार्यों ने तीन प्रकार का सङ्ग (गर्भ का माता की श्रोणिगुहा में अवग्रहण) वर्णन किया है। (१) शिर से[1] या शिर के वैगुण्य[1] से (२) अंस या[2] अंस के वैगुण्य से[3] (३) जघन[2] या जघन के वैगुण्य[3] से। जो क्रमशः असामान्य या विकृत शीर्ष, अनुप्रस्थ तथा स्फिग् आसन के द्योतक हैं।

विभिन्न गतियों (या उदयों) का वर्णन करते समय आचार्यों ने स्पष्ट कर दिया है कि चूँकि मूढ़गर्भ वायु-विकार-जन्य व्याधि है अतः विगुण वायु के द्वारा पीडन एवं उसकी विचित्र गतियों के कारण मूढ़गर्भ की अनेकों गतियाँ होती हैं[4]।

महर्षि सुश्रुत एवं उनके अनुयायी माधवकार आदि ने आसन एवं उदय के आधार पर मूढ़गर्भ के चार भेद तथा आठ गतियों का उल्लेख किया है। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने संक्षेप में ऊर्ध्व, तिर्यक् एवं न्युब्ज तीन गतियों का वर्णन कर सुश्रुतोक्त आठ गतियों को आठ स्थान शब्द से सम्बोधित कर उनका चिकित्सान्तर्गत उल्लेख किया है। महर्षि हारीत ने दोषप्राधान्य के आधार पर मूढ़गर्भ के लक्षणों का उल्लेख किया है। विषय के सम्यक् ज्ञान की दृष्टि से मूढ़गर्भ के भेदों एवं गतियों का पृथक् पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

१. मूढ : करोति पवनः खलु मूढ़गर्भं। शूलं च योनि जठरादिषु मूत्रसङ्गम्॥
(मा० नि० ६४/३; भा० प्र० चि० ७०/११३ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. त्रिविधस्तु सङ्गो भवति। शिरस्यंसे जघने वा। (अ० सं० शा० ४/३४)

३. स्वभावगता अपि त्रयः सङ्गा भवन्ति, शिरसो वैगुण्यादंसयोर्जघनस्य वा।
(शिरसो वैगुण्यात् वक्रत्वात्। अंसयोर्जघनस्य च वैगुण्यमनुवर्तते, वैगुण्यं वक्रता-डल्हण) (सु० सं० चि० १५/४)

४. अ) गर्भस्य गतयश्चित्रा जायतेऽनिलकोपतः॥ (सु० सं० चि० १५/१४)
आ) विगुणानिलप्रतिपीडनवैचित्र्यादसख्यगतिं च। (अ० सं० शा० ४/२९)
इ) गर्भस्य हि गतिं चित्रा करोति विगुणोऽनिलः॥ (अ० ह० शा० २/३६)
ई) भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः, संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम्॥
(मा० नि० ६४/४, भा० प्र० चि० ७०/११३ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Specific clinical features of *mūḍhagarbha* are its various positions and presentations. The fetus engages in the pelvic cavity by its head or shoulder or thighs (breech). These indicate abnormalities of vertex, transverse and breech positions/presentations.

Mūḍhagarbha occurs due to abnormality of *vāyu*, being compressed by this abnormal *vāyu*, having various movements it presents in numerous ways, however, for understanding the subject Suśruta and Mādhavanidāna etc. have described these in two way : (i) types of *mūḍhagarbha* (ii) its *gaties*. Vāgbhaṭa has described only different *gaties* in relation to treatment. Hārīta has envisaged the role of different *doṣas* and classified *mūḍhagarbha* accordingly.

अ) मूढ़गर्भ के भेद (Classification of mūḍhagarbha)

ततः कीलः प्रतिखुरो बीजकः परिघ इति॥ (सु० सं० नि० ८/४)

मूढ़ गर्भ चार प्रकार का होता है[1]।

वह मूढ़गर्भ कील, प्रतिखुर, बीजक एवं परिघ (चार प्रकार का) होता है।

माधवनिदान, भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर पुस्तकों में भी सुश्रुतोक्त चार भेदों का ही उल्लेख है[2]। महर्षि हारीत ने दोष प्राधान्य के आधार पर वातज, पित्तज, श्लेष्मज, द्वन्द्वज एवं सन्निपातिक मूढ़गर्भ के लक्षणों का वर्णन कर मूढ़गर्भ के सात भेदों का उल्लेख किया है[3]।

Suśruta, Mādhavanidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have classified *mūḍhagarbha* under *kīla, pratikhura, bījaka* and *parigha* etc. four categories. Hārīta has described *vātaja, pittaja, kaphaja, dwandwaja* (due to two *doṣas* together) and *sānnipātika* etc. seven types.

आ) सुश्रुतादि वर्णित मूढ़गर्भ के लक्षण (Clinical features of mūḍhagarbhas described by Suśruta etc.)

१) कील या संकीलक (Kīla or saṅkīlaka)

तत्र उर्ध्वबाहुशिरःपादो यो योनिमुखं निरूणद्धि कील इव सः कीलः॥ (सु० स० नि० ८/४)

जो बाहु, शिर एंवं पैर ऊपर की ओर करके योनि मुख को कील की भाँति अवरुद्ध करता है वह कील है (चि० ८ स)।

माधवनिदान, भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर पुस्तकों में भी संकीलक के यही लक्षण हैं। मधुकोष व्याख्या में उद्धृत भोज द्वारा वर्णित लक्षण भी उपर्युक्त वर्णन से सामञ्जस्य रखते हैं[4]।

१. अ) इति चतुर्विधो……। (सु० सं० नि० ८/४)
आ) ……द्वापरा चतुर्था। (मा० नि० ६४/५)

२. संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजः। (मा० नि० ६४/६, भा० प्र० चि० ७०/११४ एवं यो० र० स्त्री० रो० चि०)

३. हा० सं० तृतीयस्थान ५२/४ से ८ (लक्षणान्तर्गत वर्णित)

४. अ) तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम्। सङ्गी च यो भवति कीलकवत् स कीलो॥
(मा० नि० ६४/६, भा० प्र० चि० ७०/११४, यो० र० स्त्रीरो० चि० योनिम् के स्थान में योनौ पाठ)
आ) तेनोर्ध्वबाहुचरणशिरोभिः कीलकवल्लग्नो योन्यां संकीलकः। ……भोजोऽप्येता गतयः पठ्यन्ते। तथाहि-
ऊर्ध्वबाहुशिरःपादो रुन्ध्याद्योनिमुखं तु यः। प्रतिकीलोपमस्थित्या स च कीलक संज्ञितः॥
(मा० नि० ६४/६ की मधुकोष व्याख्या)
इ) उत्थितैर्बाहुचरणशिरोभिः, योनौ यः सङ्गी भवति स कीलः=कीलकाख्यो मूढगर्भः। (भा० प्र० चि० ७०/११४ की व्याख्या)

Scanned with CamScanner

The fetus obstructs just like a wedge having both hands, feet and head upwards. (fig8c)

२) प्रतिखुर (Pratikhura)

निःसृतहस्तपादशिराः कायसङ्गी प्रतिखुरः । (सु० नि० ८/४)

हाथ पैर एवं शिर से निकला हुआ परन्तु काय या शरीर से सङ्गी अर्थात् रुका हुआ गर्भ प्रतिखुर मूढ़गर्भ है (चि० १२) ।

माधवनिदान आदि अन्य लेखकों ने केवल हाथ तथा पैर दिखाई देने का ही वर्णन किया है[1] परन्तु मधुकोष व्याख्याकार ने सुश्रुत सदृश ही शिर का भी साथ ही निर्गमन माना है तथा स्पष्ट कर दिया है कि कौल में सभी ऊपर होकर पृष्ठभाग से अवरोध होता है प्रतिखुर उसका ठीक विपरीत है जिसमें हस्त, पाद एवं शिर सभी बाहर निकलते हैं अर्थात् उदर से अवरोध होता है । भोज ने लिखा है कि योनिमुख से जो गर्भ नीचे से, पार्श्व से अथवा संकुचित होकर निकलता है वह प्रतिखुर है[2] । सभी आचार्यों ने खुर शब्द से हाथ-पैर का साधर्म्य होने से ही ऐसा वर्णन दिया है ।

In this the fetus gets obstructed by its body presenting with head, hands and feet all together

३) बीजक (Bijaka)

यो निर्गच्छत्येकशिरोभुजः स बीजकः । (सु० नि० ८/४)

जो एक भुजा तथा शिर के द्वारा निकलता है वह बीजक है । (चि० १०)

माधवनिदानादि पुस्तकों में दो भुजा तथा शिर का निकलना बीजक का लक्षण माना है[3] । मधुकोष व्याख्या एवं भावप्रकाश के स्पष्टीकरण में लिखा है कि दोनों भुजाओं के बीच में शिर करके निकलता हुआ काय या शेष शरीर से अटका हुआ गर्भ बीजक मूढ़गर्भ है[4] । भोज के भी यही विचार हैं[4] (चि० ११)

Fetus delivers by head alongwith one hand is the opinion of Suśruta. (fig10) Mādhava etc. have mentioned that the fetus delivering with head situated in between both the hands gets obstructed by its remaining body. (fig 11)

४) परिघ (Parigha)

यस्तु परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठति स परिघः । (सु० सं० नि० ८/४)

१. अ) दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरं स हि कायसङ्गी । (मा० नि० ६४/६, भा० प्र० चि० ७०/११४ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०; प्रतिखुरं के स्थान में प्रतिखुरः पाठ)

आ) दृश्यैः बहिर्गतैः । खुरैः=खुरसाधर्म्यात्खुरशब्देनात्र हस्तौ पादौ च गृह्येते । तेन हस्तद्वयपादद्वयैर्बहिर्गतैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी=हस्तपादेतरकायेन सक्तो भवति । (भा० प्र० चि० ७०/१४४ की व्याख्या)

२. ·····। पृष्ठेन योन्यां तथैतद्विपरीतेन दृश्यैर्हस्तपादशिरोभिः प्रतिखुरः, खुर सांधर्म्यात्, खुरशब्देन हस्तपादाबुच्येते । ·····। भोजोऽप्येता-अधस्तात् पार्श्वतो वाऽपि तथैवाकुञ्चितोऽपि वा । यो निःसृत्य मुखं योनेर्ज्ञेयं प्रतिखुरस्तु सः ॥ (मा० नि० ६४/६ की मधुकोष व्याख्या)

३. गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो ॥ (मा० नि० ६४/६, भा० प्र० चि ७/११४ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

४. अ) भुजद्वयशिराः=भुजद्वयमध्ये शिरो यस्य एतादृग, गच्छेत्=निःसरेत् । तच्छेषेण शरीरेण सक्तो भवति, स बीजकाख्यः ॥ (भा० प्र० चि० ७०/११४ का स्पष्टीकरण)

आ) ·····भुजद्वयोपहितं शिरो यस्य स तथाभूतः सन् यो गच्छेत् स बीजकः कायसङ्गी । भोजोऽप्येता·····। योनिद्वारात्तु निर्गच्छेद्यद्यैकः सशिरोभुजः । तमाहुर्बीजकं नाम मूढगर्भचिकित्सकाः ॥ (मा० नि० ६४/६ की मधुकोष व्याख्या)

जो गर्भ योनि मुख को परिघ (अर्गलादण्ड) की भाँति आवृत्त करता है वह परिघ मूढ़गर्भ है । (चि० ९ अ)

माधवकरादि आचार्यों ने भी महर्षि सुश्रुत का अक्षरशः पालन किया है[1] । भोज ने भी यही विचार व्यक्त किए हैं[2] ।

In this position the fetus obstructs the passage just like an iron beam or rod used for shutting the doors. (fig9A)

इ) हारीत संहिता-वर्णित दोषिक मूढ़गर्भों के लक्षण (Clinical features of doṣika mūḍhagarbhas as per Hārīta)

१) वातिक मूढ़गर्भ (Vātika mūḍhagarbha)

वातजन्य गर्भसंरोध में बस्ति-शूल, योनिद्वार का अवरोध, जठर-गर्जन (शब्द), आध्मान, तोद, अङ्गों में टूटने सदृश वेदना तथा निद्रानाशादि लक्षण होते है[3] ।

In the obstruction of fetus caused by *vāta*, the lady gets pain in the region of urinary bladder, obstruction to the vaginal passage, gurgling sound in the abdomen, flatulence, pain (in abdomen), breaking type of severe bodyache and insomnia.

२) पैत्तिक मूढ़गर्भ (Paittika mūḍhagarbha)

पित्तजन्य गर्भावरोध में शूल, त्रिदोषज ज्वर, तृष्णा-दोष, भ्रम, मूत्रकृच्छ्र तथा शिरोवेदना होती है[3] ।

In this condition the woman suffers from pain (in abdomen), fever caused by all the three *doṣas (tridoṣaja jwara)*, thirst, giddiness. dysuria and headache.

३) श्लैष्मिक मूढ़गर्भ (Ślaiṣmika mūḍhagarbha)

श्लैष्मिक मूढ़गर्भ में आलस्य, तन्द्रा, निद्रा, जड़ता, आध्मान, वेपथु (कम्प), कास तथा मुखवैरस्य होता है[3] ।

In this condition the lady has idleness, drowsiness, sleepiness, stillness, flatulence, tremors, cough and testelessness of mouth.

४) द्वन्द्वज एवं सान्निपातिक मूढ़गर्भ (Dwandwaja and sānnipātik mūḍhagarbha)

द्वन्द्वज एवं सान्निपातिक मूढ़गर्भ में में दो दो दोषों अथवा सभी के लक्षण मिलते हैं[3] ।

In these types of *mūḍhagarbhas* the clinical features of two *doṣas* or all the three *doṣas* will be evident.

विमर्श (Comments)

दोषिक मूढ़गर्भ की कल्पना केवल महर्षि हारीत ने की है महर्षि सुश्रुतादि ने इनमें से अधिकांश का समावेश मूढ़गर्भ

१. योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः । (मा० नि० ६४/६, भा० प्र० चि० ७०/११४, यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. भोजोऽप्येता·····-योनिमावृत्य यस्तिष्ठेत् परिघो गोपुरं यथा ।
तथाऽन्तर्गर्भमायान्तं विद्यात् परिघसंज्ञितम् ॥ (मा० नि० ६४/६ की मधुकोष व्याख्या एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

३. बस्तिशूलञ्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति । गर्जते जठरं यस्या आध्मानञ्चैव जायते ॥ ४ ॥
तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च जायते । वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ! ॥ ५॥
शूलं ज्वरस्त्रिदोषश्च तृष्णादोषो भ्रमस्तथा । मूत्रकृच्छ्रं शिरोऽर्त्ति : स्यात्पित्ताद्रोधो भ्रूणस्य च ॥ ६॥
आलस्यतन्द्रानिद्रा च जाड्याध्मानं च वेपथुः । कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढ़गर्भके ॥ ७॥
द्वन्द्वैश्च द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वं स्यात्सान्निपातिकम् ॥ ८॥ (हा० सं० तृती० ५२/४ से ८)

Scanned with CamScanner

लक्षणान्तर्गत (सामान्य अथवा असाध्यता में) किया है। लक्षणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वातिक, पैत्तिक, एवं श्लैष्मिक मूढ़गर्भ के लक्षण गर्भ में मूढ़ता होने के बाद क्रमशः तात्कालिक अथवा प्रारम्भिक; जलाभावादि के लक्षणों युक्त विलम्बित एवं कीटोन की उपस्थिति या अतिविलम्बित स्थिति के द्योतक हैं।

Features of *mūḍhagarbha* caused by *doṣas* are given by Hārīta only, Suśruta etc. have included these under general features or features of incurability. It appears that features of *mūḍhagarbha* due to *vāta, pitta* and *kapha* are the description of features of obstructed labour developing immediately after obstruction, after lapse of sometime having dehydration and after much delay having ketosis respectively.

ई) मूढ़गर्भ की गतियाँ (Gaties or different presentations of mūḍhagarbha)

तत्र कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते, कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन, कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यगागतः, कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते, अन्तःपार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना, कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन, कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः, कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुम्, इत्यष्टविधामूढगर्भगतिरुद्दिष्टा समासेन ॥ (सु० स० नि० ८/५)

कोई दोनों सक्थियों (जंघाओं से) से योनिमुख को प्राप्त होता है; कोई एक सक्थि मुड़ी हुई तथा दूसरी सक्थि से (प्रसवित होता है); कोई सक्थियों को शरीर के ऊपर आभुग्न करके स्फिग्देश से तिर्यक् रूप से आता है; कोई उर, पार्श्व एवं पृष्ठ आदि अन्य अङ्गों से योनिमुख को आच्छादित करके ठहरता है; कोई शिर को (माता के) पार्श्व की ओर करके एक बाहु से; कोई शिर को आभुग्न करके दोनों बाहुओं से; कोई मध्य से आभुग्न होकर हस्त, पाद एवं शिर से तथा कोई एक सक्थि से योनिद्वार तथा दूसरे से पायु (गुदा) द्वारा प्रसवित होता है। ये संक्षेप में मूढ़गर्भ की आठ गतियाँ हैं। टीकाकार डल्हण ने विस्तार में तिर्य्यग्, ग्रीवा, जंघा आदि अनेकों प्रकारों का उल्लेख किया है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने मूढ़गर्भ के पूर्ववर्णित (कीलकादि) चारों भेदों को विगुण वायु-जन्य उत्पन्न गतियों की असंख्यता के कारण असम्यक् बताते हुए उपर्युक्त आठ गतियों का वर्णन दिया है[2]। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने प्रथम ऊर्ध्व, तिर्यक् एवं न्युब्ज तीन प्रकार की गतियों का उल्लेख कर आठ संस्थानों का उल्लेख किया है[3] एवं उन आठों को चिकित्सा वर्णन करते समय ही लिखा है[4]। टीकाकार इन्दु ने सुश्रुतादि एवं चिकित्सान्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर आठ गतियों का उल्लेख किया है तथा ऊर्ध्व, तिर्यक् एवं न्युब्ज का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि ऊर्द्ध्व अर्थात् जिसमें गर्भ अत्यधिक ऊँचा हो जाय (अर्थात् गर्भ का शिर या उदय होने वाला अङ्ग श्रोणिगुहा से अत्यधिक ऊँचा रहे जैसा कि शिर के अत्यधिक बड़े होने, श्रोणिगुहा के छोटे होने या शिर के सामान्य सङ्कोच के अनुपस्थित होने में देखा जाता है); तिरश्चीन अर्थात् गर्भिणी के पार्श्वों में पाद एवं शिर हों या अनुप्रस्थ आसन; तथा न्युब्ज अर्थात् शिर नीचे एवं पैर ऊपर (न्युब्ज के अर्थ के आधार पर यह वर्णन उचित प्रतीत नहीं होता, शिर नीचे की स्थिति सामान्य होती है, न्युब्ज अर्थात् पृष्ठवंश से अवरोध)। इस गर्भ के आठ संस्थान होते हैं, उन्हें कहा जाता है, दोनों सक्थियों से आता हुआ पहिला, एक सक्थि से आता हुआ दूसरा, स्फिग्-मूल से आता हुआ तीसरा, तिर्यक् चौथा, पार्श्वापवृत्त शिर पाँचवा, दोनों बाहुओं से आता हुआ छठवाँ, पीठ को

१. ·····। विस्तरेण तु तिर्यग्ग्रीवोरुजङ्घाप्रकारेणानन्ताः ॥ (सु० सं० नि० ८/५ की डल्हण टीका)

२. इति चतुर्विधो भवतीत्येके भाषन्ते। तत् तु न सम्यक्। कस्मात्? स यदा विगुणानिलप्रपीड़ितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा सङ्ख्या हीयते ॥ (सु० सं० नि० ८/४)

३. समासतस्तु त्रिविधा गतिरूर्ध्वा तिर्यङ्न्युब्जा च। संस्थानानि पुनरष्टौ। तान्यप्येवोत्तरत्र वक्ष्यन्ते ॥ (अ० सं० शा० ४/३०)

४. अ० सं० शा० ४/३९ (चिकित्सान्तर्गत वर्णित)

टेढ़ी करके हाथ, पैर एवं शिर से आता हुआ सातवाँ तथा एक पैर से योनि तथा दूसरे से गुदा में आता हुआ आठवाँ[1] (संस्थान या गति है)।

माधवनिदान में आठ गतियाँ इस प्रकार हैं, कोई द्वार (योनि) को शिर के द्वारा, कोई जठर के द्वारा, कोई परिवर्तित शरीर होकर कुब्ज देह से, कोई एक भुजा से, कोई दोनों भुजाओं से, कोई तिर्यग्गति अर्थात् अर्गला की भाँति होकर योनिमुख को रोककर, कोई अवाङ्मुख हो योनि को रोक कर तथा कोई पार्श्वापवृत्तगति अर्थात् पार्श्वभङ्ग या पार्श्व का संकोच हो विगुण होकर योनि मुख को रोकता है। ये मूढ़गर्भ की आठ गतियाँ हैं[2]।

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर में माधवनिदान तथा सुश्रुत दोनों में ही वर्णित आठों गतियों का उल्लेख है[3]।

चिकित्सान्तर्गत महर्षि वाग्भट द्वारा उद्धृत संस्थान तथा सुश्रुत वर्णित गतियों में विशिष्ट मतभेद नहीं है। परन्तु माधवनिदान के वर्णन में कुछ भिन्नता प्रतीत होती है। अतः इन आचार्यों द्वारा वर्णित गति या संस्थानों को तालिका-१० में दिया जा रहा है। इन गतियों में ही पूर्व वर्णित कीलकादि चारों भेदों का भी समावेश हो जाता है।

तालिका–१०

गति या संस्थान	सु०	अ० सं०	मा० नि०
१) दोनों सक्थियाँ (अपूर्ण स्फिगासन में दोनों सक्थियों से उदय या पादोदय) (चि० ८ अ)	+	+	–
२) एक सक्थि आभुग्न एक से उदय (अपूर्ण स्फिगासन में एक सक्थि का उदय या पादोदय) (चि० ८ ब)	+	+	–
३) स्फिग देश से (स्फिगासन में स्फिगुदय; भेदों में वर्णित कीलक या संकोलक) (चि० ८ स एवं द)	+	+	–
४) उर, पार्श्व, पृष्ठादि (अनुप्रस्थ आसन के विभिन्न उदय; भेदों में वर्णित परिघ) (चि० ९ अ)	+	–	–
५) अन्तःपार्श्वापवृत्त शिर एवं एक भुजा	+	+	+

१. ऊर्ध्वा यस्यामुत्थितो गर्भ आयाति, तिरश्चीना गर्भिणीपार्श्वयोः कृतपादशिरसः। न्युब्जा अधश्शिरस ऊर्ध्वपादस्य। तस्य च गर्भस्याष्टौ संस्थानानि तानि च वक्ष्यन्ते। सक्थिभ्यामागमनमेकम्। एकेन सक्थना द्वितीयम्। स्फिङ्मूलेन तृतीयम्। तिर्यक् चतुर्थम्। पार्श्ववृत्तशिरसः पञ्चमम्। बाहुद्वयेन षष्ठम्। वक्रेण पृष्ठेन पाणिपादशिरसा योनिमुखागमनं सप्तमम्। एकेन पादेन योनिं द्वितीयेन गुदमित्यष्टमम्॥ (अ० सं० शा० ४/३० की इन्दु टीका)

२. द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित्, कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः॥ ४॥
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन, तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः।
पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं ·····॥ ५॥
(···तिर्यग्गत इति अर्गलायमानः। ·····पार्श्वापवृत्तगतिरिति पार्श्वभङ्गेन विगुणीकृतः पार्श्वनत इति यावत्–मधुकोष व्या०) (मा० नि० ६४/४, ५)

३. अ) द्वारं·····परिवर्तितकुब्जकायः। एकेन·····अष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ ॥ ११५॥
(अन्य माधवनिदान सदृश ही)
कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते। कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थना॥
कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशे तिर्यग्गतः। कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते।
अन्यः पार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना। कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन। कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः॥
कश्चिदेके सक्थना योनिद्वारं प्रतिपद्यते, अपरेण पायुमिति॥ (मा० प्र० चि० ७०/११५)
आ) यो० र० स्त्री० रो० चि० (भावप्रकाश सदृश ही)

Scanned with CamScanner

गति या संस्थान	सु०	अ० सं०	मा० नि०
(अनुप्रस्थ आसन अथवा शीर्षोदय में हस्त बहिर्निर्गमन; भेदों में सुश्रुत-वर्णित बीजक) (चि १०)			
६) आभुग्न शिर एवं दोनों बाहु (शीर्षोदय में दोनों भुजाओं का उदय या मिश्रित उदय; भेदों में माधवादि वर्णित बीजक) (चित्र ११)	+	+	+
७) हस्तपाद एवं शिर सभी से उदय (अनुप्रस्थ आसन में अत्यधिक संकोच हो उपर्युक्त उदय; भेदों में वर्णित प्रतिखुर) (चि० १२)	+	+	–
८) एक पैर योनि एवं एक पायु में (स्फिगासन के पादोदय में गर्भाशय एवं गुदा का विदार) (चि० १३)	+	+	–
९) शिर से अवरोध (विकृत शीर्षोदय या श्रोणिगुहा संकोच) (चि० १४ अ एवं ब)	–	–	+
१०) अवाङ्मुख (मुखोदय) (चि० १५)	–	–	+
११) जठर (अनुप्रस्थ आसन में उदरोदय या नालोदय) (चि० ९ ब)	–	–	+
१२) शरीर परिवर्तित एवं कुब्जदेह (अनुप्रस्थ आसन में अतिसंकोच एवं पृष्ठोदय) (चि० १६)	–	–	+
१३) तिर्यगागत या अर्गला सदृश (अनुप्रस्थ आसन में गर्भ-संकुचन-विहीनता; भेदों में वर्णित परिघ)	–	+	+
१४) पार्श्वापवृत्त (अनुप्रस्थ आसन में पार्श्वोदय)	–	–	+

नोट–महर्षि सुश्रुतोक्त नं० ४ की ही गति में माधवनिदान वर्णित अन्तिम चार (११ से १४) गतियाँ अन्तर्भूत हो जाती है। नं० ५ की वर्णित गति में वाग्भट ने पार्श्वापवृत्तशिर तो लिखा है पर भुजा का उल्लेख नहीं किया। भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर पुस्तकों में सुश्रुत तथा माधवनिदान दोनों के ही वर्णन मिलते हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने सामान्य वर्णन या चिकित्सा में कहीं पर भी मूढ़गर्भ की किन्हीं गतियों का उल्लेख नहीं किया परन्तु सुश्रुतोक्त अन्तिम दोनों गतियों को विष्कम्भ नाम से लिखा है यथा–

हस्त, पाद एवं शिर से जो गर्भ योनिमुख में अवतरित होता है अथवा जिसका एक पैर योनि एवं दूसरा गुदा मार्ग से निकला होता है ये दोनों ही विष्कम्भ नाम से कहे जाते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने हाथ अथवा पैर अथवा शिर के भुग्न या कुटिल (असामान्य) रूप से योनि में प्राप्त हुए मूढ़गर्भ को पहिला विष्कम्भ तथा भुग्न रूप से एक पैर से योनि एवं दूसरे से गुदा में प्रतिपादित गर्भ को दूसरा विष्कम्भ माना है[1]।

Suśruta after writting *kīla* etc. four types has explained that this classification is not proper because the fetus has multiple presentations, thus has further described eight *gaties*. Dalhaṇa says that even these eight *gaties* are a summarized description, for detailed under-

१. हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुग्नः प्रपद्यते। पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदं च यः॥ २९॥
विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ ·····॥ ३०॥
(कदाचिद्धस्तेन कदाचित्पादेन कदाचिच्छिरसा, योनिं प्रतिभुग्नः-कुटिलः, प्रपद्यते-आयाति, यः स एको विष्कम्भो नाम मूढ़गर्भः। तथा पादेनैकेन योनिं तथा द्वितीयपादेन गुदं-पायुं, भुग्नः सन् यो मूढ़गर्भः प्रपद्यते, सोऽपरो विष्कम्भः-अरु० टीका) (अ० ह० शा० २/२९,३०)

standing *tiryak* (transverse), *grīvā* (neck), *jaṅghā* (thigh) etc. various more presentations can be envisaged. Three *gaties* or mode of fixations i. e. *ūrdhwa, tiryaka* and *nyubja* described by Vāgbhaṭa I have been clarified by Indu i. e. *ūrdhwa* or in which fetus remains very high up (as seen in marked cephalopelvic disproportions or extension of head), *tiryaka* in which head and feet are situated in both flanks of the woman (transverse lie) and *nyubja* in which head is downwards and foot upwards (considering the verbal meaning of *nyubja i. e.* hump-backed Indu's explanation does not seem to be proper, probably it refers to dorso-anterior position of transverse lie). Vāgbhaṭal describing eight presentations has used the word *saṃsthāna*. There is great difference in eight *gaties* described by Mādhavanidāna and Suśruta etc. In Bhāwaprakāśa and Yogaratnākara the description of Suśruta and Mādhava both the authors is given.

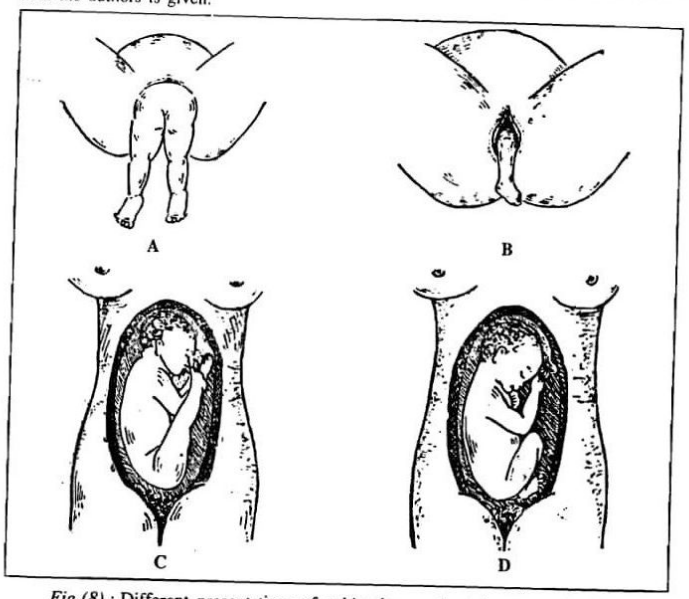

Fig (8) : Different presentations of *sphigudaya* or breech presentation. (A) Presenting with both the legs or footlings presentation in incomplete breech; (B) Presenting with one leg or footling presentation in incomplete breech; (C) Presenting with buttocks in incomplete breech with extended legs or *kīla* (D) Complete breech.

Scanned with CamScanner

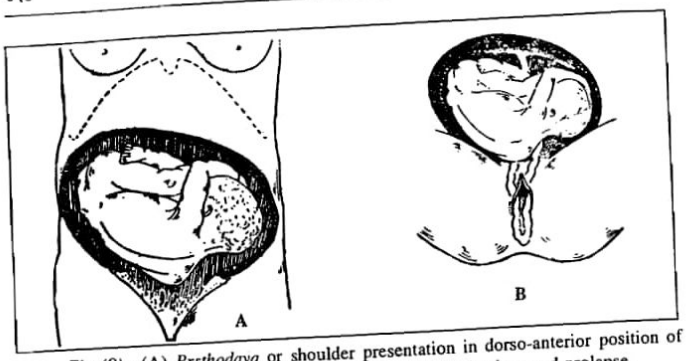

Fig (9) : (A) *Pṛṣṭhodaya* or shoulder presentation in dorso-anterior position of trasverse lie or *parigha;* (B) *Jaṭharodaya* or having cord prolapse.

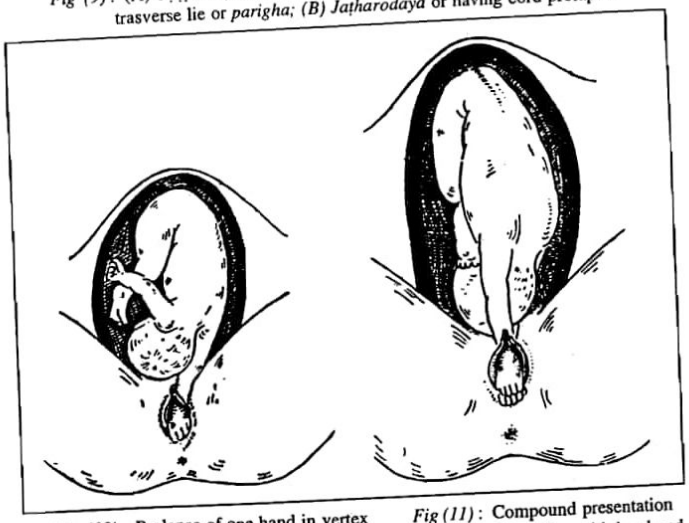

Fig (10) : Prolapse of one hand in vertex presentation or *bījaka.* Note head is deflexed.

Fig (11) : Compound presentation presenting with head and both hands or *bījaka.*

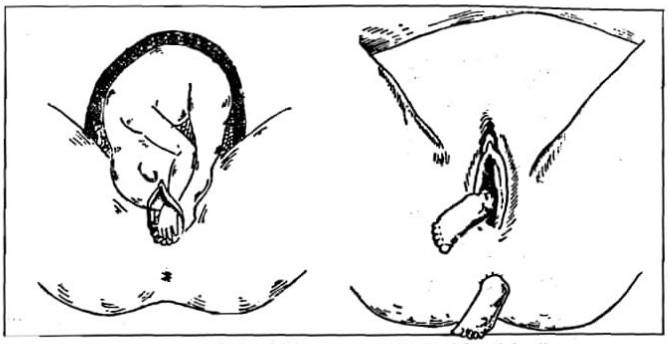

Fig (12) : Exaggerated flexion of fetus in transverse lie; the fetus presents with both the hands, legs and head together or *pratikhura.*

Fig (13) : In delayed footlings presentation one foot is presenting through vagina, while other through anus after perforating the colon or rectum.

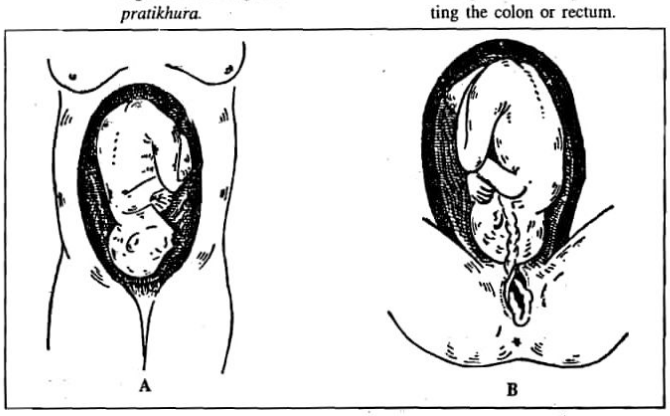

Fig (14) : Obustruction by the *śira* (head). (A) The progress is obstructed due to deflexion of head in brow presentaion or (B) Non-engagement of head with prolapse of cord in contracted pelvis.

Scanned with CamScanner

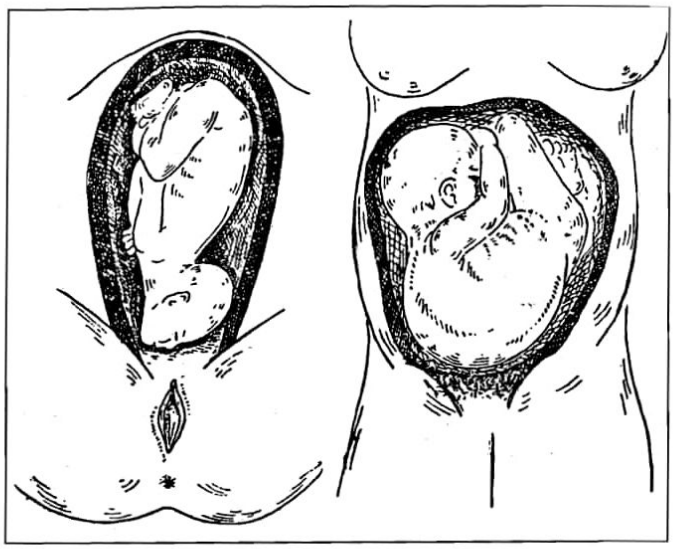

Fig (15) : Obstruction to delivery by *mukha* (face presentation).

Fig (16) : Presenting with *kubjadeha* (hump back) in dorso-anterior position with flexed back.

Different *gaties* (positions/presentations) described by all these authors are being given in tabular form. These *gaties* include *kīlaka* etc. four types described earlier.

Gati or Saṃsthāna (position/presentation)	*Authors*		
	S.S.	*A.S.*	*M.N.*
1	2	3	4
1. Both the *sakthies* or presenting with both the thighs or footlings presentation in incomplete breech (fig. 8A)	+	+	—
2. One *sakthi ābhugna* and *udaya* by the other or one thigh presenting other flexed or footling presentation in incomplete breech (fig. 8B).	+	+	—
3. *Sphigdeśa* or presenting with buttocks in incomplete breech with extension of legs *(kīlaka)*or complete breech (fig. 8c and D)	+	+	—
4. *Ura, pārśwa, pṛṣṭha* or chest, flanks, back etc. presentations of transverse lie in dorso-posterior and dorso-anterior position *(parigha)* (fig. 9A).	+	—	—
5. *Antahpārśwāpavṛttaśira* and delivering with one *bhujā* or head situated in flanks and delivery with one hand i. e. hand prolapse in transverse lie or in vertex presentation (*bījaka* according to Suśruta.) (fig 10)	+	+	+
6. *Ābhugna śira* and both the *bhujā* or flexed head with both hands or compound presentation *(bījaka* described by Mādhava etc). (fig 11)	+	+	+
7. *Hasta, pāda* and *śirodaya* or presenting with both hands, legs and head together in exaggerated flexion of transverse lie (*pratikhura).* (fig 12)	+	+	—
8. One foot in *yoni* (vagina) and other in *pāyu* (anus) or rupture of lower uterine segment alongwith perforation of colon or rectum. (fig 13)	+	+	—
9. Obstruction by *śira* or abnormal vertex as POP, brow presentation (fig 14 A) or in contracted pelvis. (fig 14B)	—	—	+
10. *Awāṅgamukha* or face presentation. (fig 15)	—	—	+
11. *Jaṭhara* or dorso-posterior position and abdomen presentation of transverse lie or cord presentation. (Fig 9B)	—	—	+

Scanned with CamScanner

1	2	3	4
12. *Parivartita śarīra* and *kubjadeha* or body rotated and presenting with humpback. Dorso-anterior with flexed back in transverse lie. (fig 16)	—	—	+
13. *Tiryagāgata* like *argalā* or transverse lie without flexion of fetal body.	—	+	+
14. *Pārśwāpavṛtta* or presenting with flanks or lateral delivery in transverse lie.	—	—	+

Note—Presentation described by Suśruta under No. 4 includes last four presentations of Mādhavanidāna. In No. 5, Vāgbhaṭal has mentioned position of head only but not prolapse of hand. Vāgbhaṭa II has mentioned only two i. e. No. 7 and 8 mentioned above by the name *"viṣkambha"*

असाध्य मूढ़गर्भ के लक्षण (Clinical feature denoting incurability of mūḍhagarbha)

गर्भकोषपरासङ्गो मक्कल्लो योनिसंवृतिः । हन्यात् स्त्रियं मूढ़गर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥
(सु० सं० सू० ३३/१३)

तत्र द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढगर्भौ । शेषानपि विपरीतेन्द्रियार्थाक्षेपक(वातविकार-पाददीका)योनिभ्रंशसंवरणमक्कल्लश्वासकासश्रमनिपीडितान् परिहरेत् ॥ ६॥

प्रविध्यति शिरो या तु शीताङ्गी निरपत्रपा । नीलोद्धतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ११॥
(सु० सं० नि० ८/६ व ११)

द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढगर्भौ ॥ (सु० सं० चि० १५/९)

तेषु सर्वेष्वपि विपरीतेन्द्रियार्थाक्षेपयोनिभ्रंशसंवरणमक्कल्लश्वासश्रमाभिपन्नां शीतगात्रां पूत्युद्गारां च वर्जयते ॥ (अ० सं० शा० ४/३१)

योनिसंवरणभ्रंशमक्कल्लश्वासपीडिताम् । पूत्युद्गारां हिमाङ्गीं च मूढगर्भां परित्यजेत् ॥
(अ० हृ० शा० २/३८)

पूतिगन्धि मुखं यस्याः शूलं चैवोपजायते । निद्रा वाऽभिद्रवत्येनां मूढगर्भां न जीवति ॥ १६८॥
मयूरग्रीवसंकाशं या पश्यति हुताशनम् । शूनपादमुखी चैव मूढ़गर्भां न जीवति ॥ १६९॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना । स्मयते सा शयाना वा श्मशानं याऽधिरोहति ॥ १७४॥
मूढ़गर्भां सगर्भां वा गर्भिणी सा विनश्यति ॥ १७५॥ (का० सं० खिल० १०)

मूढ़गर्भ में गर्भकोष-परासङ्ग, मक्कल्ल, योनिसंवृति आदि तथा अन्य वर्णित (नि० स्थान वर्णित) उपद्रव स्त्री का हनन कर देते हैं। टीकाकार डल्हण ने गर्भकोषपरासङ्ग के दो अर्थ दिये हैं गर्भाशय का अत्यधिक आसङ्ग या निरोध तथा गर्भ का स्वस्थान से परस्थान में जाकर सङ्ग या निरोध; मक्कल्ल पूर्ववर्णित (पृ० ४७०) है; योनिसंवृति अर्थात् योनि-संकोच तथा आक्षेपक, कास, श्वास, भ्रम आदि मूढ़गर्भ निदानाध्याय वर्णित लक्षण होने पर वह मूढ़गर्भ स्त्री का

हनन कर देता है[1]।

पुनश्च महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि दोनों अन्त के (सातवीं एवं आठवीं गति वाले अर्थात् हाथ, पैर एवं शिर से एक साथ प्रसवित तथा एक पैर योनि एवं दूसरा पायु में) मूढ़गर्भ असाध्य हैं। शेष मूढ़गर्भों में भी विपरीतेन्द्रियार्थ अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने कार्य में वैषम्य यथा रूपादि के ग्रहण में भ्रम, आक्षेपक, वातविकार, योनिभ्रंश, (योनि) संवरण, मक्कल्ल, श्वास, कास, एवं भ्रम से पीड़ित स्त्री का परित्याग करना चाहिए।

जो स्त्री अपने शिर को बार बार धुनती या कूटती है, जिसके अङ्ग शीतल हो गए हैं, लज्जा विरहित हो गई है, नीली-नीली शिरायें उभर गई हैं वह स्त्री उस गर्भ को तथा वह गर्भ उस स्त्री को नष्ट कर देता है। यद्यपि यह श्लोक गर्भस्रावादि के वर्णन के बाद उल्लिखित है एवं संहिता में इन लक्षणों के मूढ़गर्भ की असाध्यता के लिए वर्णित होने का निर्देश नहीं है पर टीकाकार डल्हण ने इन्हें असाध्य मूढ़गर्भा के लक्षण होने का स्पष्ट निर्देश दिया है एवं 'प्रविध्यति' के पाठान्तर में 'अपविद्धशिरा' अर्थात् अवनत शिर वाली या शिर को धारण करने की शक्ति से विरहित स्त्री का वर्णन दिया है[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि इन सभी (मूढ़गर्भों या मृतगर्भ[3]) में विपरीतेन्द्रियार्थ, आक्षेप, (योनि) भ्रंश, योनि-संवरण, मक्कल्ल, श्वास, भ्रम आदि से पीड़ित, शीताङ्ग वाली तथा पूतिगन्धि से युक्त उद्गार वाली स्त्री का परित्याग कर देना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि योनिसंवरण, (योनि) भ्रंश, मक्कल्ल तथा श्वास से पीड़ित, पूत्यद्गार-युक्त, शीत-गात्रा स्त्री का परित्याग करना चाहिए।

महर्षि काश्यप ने मूढ़गर्भा के अरिष्ट लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस मूढ़गर्भ वाली स्त्री के मुख से पूति गन्धि आती हो, जिसे शूल उत्पन्न हो जाय तथा सदा नींद आती रहती हो वह जीवित नहीं रहती।

जो मूढ़गर्भा स्त्री अग्नि को मयूर-ग्रीवा-सदृश (नीले वर्ण की) देखती है, जिसके पैर एवं मुख सूजे हुए हैं वह जीवित नहीं रहती।

जो मूढ़गर्भा स्त्री रक्त वर्ण के वस्त्र पहिनती है, रक्त वर्ण की मालायें अथवा अन्य अनुलेपनं प्रयोग करती है, सोते समय मुस्कराती है अथवा श्मशान की ओर जाती है वह जीवित नहीं रहती है।

महर्षि हारीत ने भी सम्भवतः महर्षि सुश्रुत के ही वर्णन का अनुकरण किया है। श्लोक की पहिली लाइन अशुद्ध प्रतीत होती है। फिर भी वास्तविक वर्णन के आधार पर निम्न अर्थ कर सकते हैं–गर्भकोष के आपन्न होने पर (गर्भाशय के विकार युक्त होने पर), मकुष्ठ या मन्थर (गति) वाला होने पर (गर्भाशय की संकुचन क्रिया अत्यधिक कम होने पर) तथा योनि में सङ्ग होने पर (योनिपथ में आकर पथ की संकीर्णता के कारण रुकावट होने पर) तथा आगे वर्णित अन्य उपद्रवों की उपस्थिति में मूढ़गर्भ स्त्री को मार देता है[4]।

१. ……गर्भकोषपरासङ्ग इति गर्भाशयस्य परः श्रेष्ठ आसङ्गोऽतिशयेन निरोध इत्यर्थः ; अन्ये तु स्वस्थानात् परस्थानं गत्वा गर्भस्य सङ्गो निरोध उत्पद्यते, अनेन प्रकारेण परासङ्ग इति कथयन्ति। मक्कल्ल इति गर्भिणीव्याकरणोक्तो ज्ञेयः, तत्राप्रजाताया क्षेति चकारान्नकेवलं प्रजातायाः, अप्रजाताया अपि मक्कल्लो भवति, तथा गर्भाशयाच्च्युतगर्भाया योनिद्वारसक्तगर्भायाश्च रक्तं स्रुतमन्तःस्थितं पच्यमानं मक्कल्लसंज्ञं भवतीति ज्ञेयं। योनिसंवृत्तिः योनिसङ्कोचनम्। यथोक्ताश्चाप्युपद्रवा इति आक्षेपकासश्वासश्रमादयो मूढ़गर्भनिदाने पठिताः॥ (सु० सं० सू० ३३/१३ की डल्ह० टीका)

२. असाध्यमूढ़गर्भगर्भिण्योर्लक्षणं दर्शयन्नाह……अन्ये 'अपविद्धशिरा' इति पठन्ति तत्रावनतशीर्षेत्यर्थः॥ (सु० नि० ८/११ की डल्ह० टीका)

३. तेषु सर्वेष्वपि मृतगर्भेषु……। (अ० सं० शा० ४/३१ की इन्दु टीका)

४. गर्भकोषसमापन्नो मुकष्टो (मुकष्ठो-शु० पा०) योनिसंवृतः।
हन्ति स्त्रियं मूढ़गर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः॥ (हा० सं० द्वि० स्था० ४/४१)

Scanned with CamScanner

माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर में भी लिखा है कि शिर को धारण करने में असमर्थ या अवनत शिर वाली, शीताङ्गी, लज्जा-शून्य, कुक्षि में नील वर्ण की शिराओं से युक्त स्त्री गर्भ को तथा वह गर्भ उस स्त्री को नष्ट कर देता है तथा योनिसंवरण, कुक्षि-सङ्ग (योनिसंवरण जन्य प्रकुपित वायु से गर्भाशय में रुका हुआ गर्भ) तथा मक्कल्ल एवं अन्य उपद्रवों से पीड़ित मूढ़गर्भा स्त्री जीवित नहीं रहती[1]।

In the presence of *garbhakoṣaparāsaṅga, makkalla* and *yonisaṃvṛti* the *mūḍhagarbha* becomes incurable. Last two (i.e. seventh and eighth *gaties* described earlier) are also incurable. Other varieties of *mūḍhagarbha* when associated with hallucination or perception of non existent or opposite things by sensory organs, convulsions, disorders of *vāta, yonibhraṃśa* (prolapse of uterus), *yonisaṃvaraṇa, makkalla, śwāsa* (dyspnoea), cough and giddiness should also be left or should not be treated.

The woman who is unable to hold her head or strikes her head repeatedly, whose body is cold, has become shameless and blue vessels have appeared over her abdomen, she kills her fetus and fetus kills her. Both Vāgbhaṭas have mentioned presence of foul smell in breath also as a sign of incurability.

Kāśyapa has given entirely different description in following way—

A woman with obstructed labour *(mūḍhagarbha)* having foul smell in breath, severe pain in abdomen and over-sleepiness does not survive.

A woman with *mūḍhagarbha* who sees the fire just like neck of a peacock (blue in colour), whose feet and face are swollen does not survive.

The woman having *mūḍhagarbha,* if wears red garments and garlands, uses red anointments, smiles during sleep and goes towards cremation ground (in dream) does not survive.

Hārīta opines that if the *garbhakoṣa* is *āpanna* (uterus is diseased), fetus has slow progress (due to ineffectual uterine contractions) or there occurs *yonisaṅga* (obstruction to the labour due to constriction of *yoni* or pelvis) then also the *mūḍhagarbha* is incurable.

MādhavaNidāna, Bhāvaprakāśa and Yogratnākara etc. books also have expressed similar views.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर असाध्य मूढ़गर्भ के लक्षणों को मुख्यतया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं अपत्यपथ विकार-जन्य तथा सार्वदैहिक विकार-जन्य। यद्यपि महर्षि सुश्रुत ने गर्भ की दो स्थितियों (सातवीं एवं आठवीं गति) को भी असाध्य माना है पर चिकित्सान्तर्गत इन्हीं गतियों में शस्त्रकर्म करने का निर्देश दिया है, अतः यहाँ पर असाध्यता का

१. अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा। निलोद्गतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा॥
(अपविद्धशिरा शिरो धारयितुमशक्तेत्यर्थः, अवनतशिरा इति गदाधरः। ·····। नीलोद्गतसिरा इति नीलवर्णा उद्गता सिरा कुक्षौ यस्याः सा-मुधकोष टीका)
योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल्ल एव च। हन्युः स्विवं मूढगर्भा यथोक्ताक्षाप्युपद्रवाः॥
(सङ्गः कुक्षाविति योनिसंवरणे प्रतिनिवृत्तो वायुर्गर्भाशयं यदा निरुणद्धि तदा गर्भः कुक्षौ सक्तो भवति स उच्यते-सङ्गः कुक्षाविति। -मधुकोष व्याख्या)
(मा० नि० ६४/७ व १० तथा मधुकोष व्याख्या, भा० प्र० चि० ७०/११६ व ११९ एवं यो० र० स्त्री० रो० चि०)

अर्थ हस्तापहरण या मन्त्रादि से चिकित्सा-असाध्यता कहना अधिक उचित होगा। अपत्यपथ एवं सार्वदैहिक विकारों का स्पष्टीकरण निम्नाङ्कित है।

अ) अपत्यपथ-विकार

१) **गर्भकोष-परासङ्ग या गर्भकोष** की आपन्नता—गर्भकोष-परासङ्ग शब्द की डल्हण-व्याख्या पूर्व वर्णित है। गर्भकोष या गर्भाशय का अत्यधिक सङ्ग अर्थ अधिक युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि 'पर' शब्द का अर्थ 'अन्यत्र' होता है न कि 'अधिक'। गर्भकोष से अन्यत्र सङ्ग होने के लिये गर्भकोष या गर्भाशय का विदरित होना आवश्यक है। मोनियर विलियम ने अपने शब्द कोष में 'परासङ्ग' को एक शब्द मान कर इसका अर्थ "क्लीविंग"[1] भी किया है जिसका तात्पर्य 'दो में विभक्त होना' या 'विदरित होना' आदि भी होता है अर्थात् गर्भकोष या गर्भाशय का विदार अर्थ भी लिया जा सकता है। अवरुद्ध प्रसव में होने वाला गर्भाशय-विदार रूपी उपद्रव आज भी यदि असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है अतः यहाँ पर गर्भकोष-परासङ्ग से गर्भाशय-विदार ग्रहण करना अधिक युक्तिसङ्गत होगा।

महर्षि हारीत ने गर्भकोष के आपन्न होने का वर्णन दिया है, यह आपन्नता तात्कालिक गर्भाशय-विदार के रूप में अथवा गर्भाशय के जन्मजात विकारों यथा यूटेरस आक्युइटस, डाइडेल्फिस, सेप्टेट एवं बाद के विकारों यथा गर्भाशय के मांसार्बुद के रूप में हो सकती है। इन सभी स्थितियों में मूढ़गर्भ का शस्त्र द्वारा ही आहरण सम्भव होता है अतः यदि वह असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य तो होता ही है।

२) **मक्कल्ल**—यद्यपि सूत्रस्थान ३३/१३ की टीका में डल्हण ने अप्रजाता (गर्भिणी) में गर्भाशय के अन्दर रक्त के एकत्रीकरण का वर्णन किया है परन्तु निदान ८/६ की टीका में प्रसूता में उत्पन्न वायु द्वारा अवरुद्ध रक्त-जन्य शूल लिखा है[2] जो समुचित नहीं है क्योंकि मूढ़गर्भा स्त्री के असाध्यता के लक्षणों में प्रसव हो जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। टीकाकार आढमल्ल ने वायु एवं रक्त से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट शूल मक्कल्ल के दो भेद दिए हैं (१) गर्भावस्था में (२) सूतिकावस्था में। मानसिक एवं आगन्तुज व्याधियों से पीड़ित गर्भ कुक्षि में वेदना उत्पन्न कर देता है, वह गर्भ-मक्कल्ल है[3]। यद्यपि मक्कल्ल सामान्य रूप से प्रसूता के प्रसवोपरान्त होने वाले शूल का वर्णन है परन्तु मूढ़गर्भा में मक्कल्ल प्रसव-पूर्व रक्त-जन्य शूल या गर्भाशय की मांसपेशियों के अत्यधिक या असामान्य संकोच-जन्य-शूल का द्योतक है क्योंकि प्रसूता में शूल की उत्पत्ति पेशी-संकोच के ही कारण होती है। गर्भाशय-पेशी का अत्यधिक या असामान्य संकोच अथवा प्रसव-पूर्व रक्तस्राव अवरुद्ध-प्रसव की चिकित्सा में बाधक होता है।

३) **योनिसंवृति या योनिसंवरण**—यद्यपि महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने योनिसंवरण या संवृति अर्थात् योनिसंकोच का नामोल्लेख तो किया है पर इस व्याधि के लक्षणों का कहीं उल्लेख नहीं किया। मधुकोष-व्याख्या, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर पुस्तकों में विशिष्ट वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है-

वातल अन्नपान, मैथुन और प्रजागरण का अत्यधिक सेवन करने वाली गर्भिणी स्त्री की योनिमार्ग स्थित वायु प्रकुपित होकर योनिद्वार को संकुचित कर देती है। मार्ग (योनिमार्ग) का अवरोध करके पुनः (वही) वायु अन्दर जाकर आशय (गर्भाशय) के द्वार का अवरोध कर उसके (गर्भाशय के) अन्दर स्थित गर्भ को पीड़ित करती है जिससे गर्भ का मुख एवं श्वास अवरुद्ध हो जाने से वह शीघ्र ही मर जाता है। (वह प्रकुपित अन्तर्गत वायु) गर्भिणी स्त्री के हृदय प्रदेश को

१. सर यम्. मोनियर विलियम शब्द कोष (पृष्ठ ५८८)

२. प्रसूताया वायुरसृग् आरोध्य वस्तिशिरःप्रभृतिषु शूलं करोति स मक्कल्लः॥ (सु० सं० नि० ८/६ डल्हण टीका)

३. मक्कल्ल इति। मक्कल्लो रक्तमारुतजः शूलविशेषः। स द्विविधो भवति। एको गर्भावस्थायां, अपरः सूतिकावस्थायां इति। तद्यथा मनसागन्तुभिरुपतापैः प्रपीडितो यो गर्भः कुक्षौ वेदनां जनयति स गर्भमक्कल्लः॥ (शा० सं० पूर्व० ७/१८१ की आढ. टीका)

Scanned with CamScanner

बाँध कर[1] या बँधे होने सदृश अनुभूति के साथ ऊर्ध्व श्वास[2] अथवा उच्छ्वास करके[3] हृदय की ऊर्ध्व गति कर[2] अथवा उसका अवरोध कर[1,3] गर्भिणी को भी शीघ्र ही मार देती है। इस अत्यन्त कठिन व्याधि का नाम योनिसंवरण है जो यमराज सदृश घातक है अतः इसकी चिकित्सा नहीं प्रारम्भ करनी चाहिए[1,2,3]।

इस व्याधि में वायु अर्थात् नाड़ियों के कार्य में विकार होने के कारण योनि (वॅजाइनॅ) तथा गर्भाशयद्वार (सॅर्विक्स) का संकोच मुख्यतया होता है अर्थात् इसे सैं:वइकॅल डिस्टॉसयॅ समझ सकते हैं जिस व्याधि में उदर-विपाटन द्वारा प्रसव कराना पड़ता है।

४) **योनिभ्रंश**–योनिभ्रंश से गर्भाशयभ्रंश का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। गर्भाशयभ्रंश के साथ अवरुद्ध प्रसव कष्ट-चिकित्स्य होता है।

५) **गर्भ की मकुष्ठ या मन्थर गति या गर्भाशय-पेशी की कार्य विहीनता**–गर्भाशय-पेशियों की अत्यधिक क्रिया-विहीनता की स्थिति में गर्भ की प्रसव के लिए गति मन्थर हो सकती है यद्यपि सामान्यतया गर्भाशय-पेशियों को औषधियों द्वारा उत्तेजित कर उनकी संकुचन शक्ति को बढ़ाया जा सकता है परन्तु कभी-कभी गर्भाशयिक मांसपेशियों में कार्योत्तेजक औषधियों का प्रभाव नहीं होता एवं उदर-विपाटन द्वारा ही गर्भ का आहरण करना पड़ता है अर्थात् गर्भाशयिक क्रिया-विहीनता भी मूढ़गर्भ में असाध्यता उत्पन्न कर सकती है।

६) **योनिसङ्ग**–यदि योनि से स्त्री का प्रजनन-पथ ग्रहण करें एवं इसमें गर्भ का सङ्ग अर्थात् 'अत्यधिक संकुचित श्रोणिगुहा के कारण गर्भ का सङ्ग' अर्थ करें तो यह स्थिति भी मूढ़गर्भ में असाध्यता की द्योतक है क्योंकि शस्त्रापहरण के अतिरिक्त प्रसव सम्भव नहीं होगा।

आ) सार्वदैहिक विकार

संहिताओं में वर्णित सार्वदैहिक विकार यथा इन्द्रियों द्वारा विपरीत ज्ञान (अत्यधिक कष्ट या अनिद्रा अथवा विषमयता के कारण उत्पन्न), आक्षेप (कष्ट अथवा गर्भजन्य विषमयता के कारण), श्वास, भ्रम (दौर्बल्य जन्य या रक्तचाप-वृद्धि-जन्य), पूति-उद्गार (पोषणाभाव के कारण कोटॉन बॉडिज के निःसरण से), शीताङ्गता (अत्यधिक थकान या रक्तवह संस्थान के कार्य की अक्षमता जन्य), लज्जा-विरहितता (संज्ञा-विकार के कारण) तथा नीलोद्धत शिरायें (उदर की पेशियों के अत्यधिक कार्य करने से उत्पन्न) आदि सभी लक्षण स्त्री की सामान्य शारीरिक एवं मानसिक शक्ति के अत्यधिक ह्रास के परिचायक हैं जिनकी उपस्थिति में अवरुद्ध प्रसव असाध्य हो सकता है।

All these signs/symptoms of incurability of *mūḍhagarbha* can be grouped under two headings i. e. abnormalities of passage and general systemic disorders. Though 7th and 8th *gaties* have also been said to be incurable, however, in the description of management

१. वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्म प्रजागरम्। अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गगः॥
मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्। कुरुते रुद्धमार्गत्वात् पुनरन्तर्गतोऽनिलः॥
निरुणद्ध्यशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितम्। निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते॥
वद्धां संरुद्धहृदयां नाशयत्याशु गर्भिणीम्। योनिसंवरणं विद्याद् व्याधिमेनं सुदारुणम्॥
अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम्॥ (मा० नि० ६४/१० की मधु० व्याख्या)

२. वातलान्यन्नपानानि ·····। ·····योनिमार्गगः। मातरिश्वा·····। ·····अनिलः॥
निरुणद्धि·····। निरुद्धवचनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते।
उच्छ्वास ऊर्ध्वहृदयान्नाशयत्यथगर्भिणीम्। योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते॥ अन्तकप्रतिमं ·····॥
(मा० प्र० चि० ७०/११९ की टीका शेष नं० १ सदृश ही वर्णन)

३. यो० र० स्त्रीरो० चि० (मा० प्र० सदृश ही केवल उच्छ्वास ऊर्ध्वहृदयां के स्थान में उच्छासरुद्धहृदयां)

surgical treatment for these both has been advised. This indicates that here the incurability refers to the impossibility of delivery by use of drugs, hymns or manual extraction. Surgical procedures were never free from risk, thus these both the *gaties* have been enlisted as incurable. The clarification of abnormalities of passage and general disorders is being given here.

A) Abnormalities of passage

i) Garbhakoṣa-parāsaṅga — Ḍalhaṇa has offered two explantions to this word i. e. over clinging of fetus in the uterus or attachment of fetus in other than its normal place. Over clinging does not seem to be proper explanation as word *'para'* denctes away not excessive or over. For attachment or stay of fetus at other place than the uterus the rupture of uterus is essential. Sir M. M. William has explained the word *'parāsaṅga'* as 'cleaving' which means split (often asunder, in two) and break also. Rupture of uterus sometimes is seen in cases of obstructed labour and is considered to be one of the serious complication even today. Considering all this, here *garbhakoṣaparāsaṅga* should be considered as rupture of uterus.

Āpannatā of *garbhakoṣa* or diseased state of uterus can be either due to rupture of uterus occurring at the time of delivery or congenital anomalies such as uterus arcuatus, didelphis, septate etc. or else due to fibroid uterus, which produce obstruction in the labour. In all these conditions the delivery can be effected only with cesarean section.

ii) Makkalla—Ḍalhaṇa while commenting on verse of *sūtrasthāna* has referred it as accumulation of blood in uterus during labour before delivery of the child or intrapartum haemorrhage, however, in *nidānasthāna* he explains it as the pain arising after delivery due to blood getting obstructed by *vāyu*. This latter explanation does not seem to be proper as the question of delivery in a case of obstructed labour does not arise. Āḍhamalla has very clearly classified *makkalla* in two i. e. developing during pregnancy and during puerperium. The fetus afflicted with physical and psychological diseases produces pain in abdomen, which is known as *garbhamakkalla. Makkalla* is characterized with spasmodic contraction of uterus, thus in reference to obstructed labour it denotes either intrapartum haemorrhage associated with severe pain or tetanic or spasmodic irregular uterine contractions. Intrapartum haemorrhage and tetanic or irregular uterine contractions are one of the imprortant cause of difficulties in management of obstructed labour.

iii) Yonisaṃvṛti or yonisaṃvaraṇa—Though Suśruta and Vāgbhaṭa have referred this word, yet have not detailed the disease. One finds the description of disease in Madhukoṣa commentary, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara in following words—

Due to use of dietetics capable of vitiating *vāta,* excessive coitus and night awakening the *vāyu* situated in *yonimārga* (vaginal canal) of pregnant woman getting aggravated contracts the vaginal orifice. This very *vāyu* after obstructing the vaginal orifice moving inwards obstructing the apperture of *āśaya* (cervix of uterus) troubles the fetus situated inside the uterus. Fetus dies due to obstruction of its mouth and respiration. This inward moved

Scanned with CamScanner

aggravated *vāyu* causes feeling of ligature or tightness in the cardiac region, shallow expiration (breathing) along with and upward movement (displacement of apex beat due to over distension of abdomen) along with obstruction to the heart of pregnant woman and then kills her. This dreaded disease is known as *yonisaṃvaraṇa* which is always fatal.

In this condition due to abnormality of *vāyu* or nervous functions the spasm of *yoni* (vaginal orifice) and *garbhāśayadwāra* or cervix of uterus occurs or in other words this refers to şevere degree of cervical dystocia in which condition cesarean section is needed.

iv) Yonibhraṃśa—Here with *yonibhraṃśa* the uterine prolapse should be considered. In cases of prolapse the labour is often obstructed and very difficult.

v) Slow progress of fetus or uterine inertia— Due to uterine inertia the progress of labour becomes very slow. Though usually myometrium responds to uterine stimulants, yet, in few cases it becomes totally innert and does not respond to stimulants, thus, the fetus has to be extracted by cesarean section or in other words uterine inertia also causes incurability of *mūḍhagarbha*.

vi) Yonisaṅga— *Yonisaṅga* refers to the obstruction of fetus in the materal passage probably due to contraction of pelvis. In contracted pelvis also the *mūḍhagarbha* becomes incurable as the delivery had to be completed by cesarean section.

B) General disorders

General disorders such as opposite or abnormal perception by cognitive organs and convulsions or tremors (due to excessive trouble, insomnia or toxaemia), dyspnoea, giddiness, foul smelling expiration (smell of ketone bodies due to marked catabolism in absence of nourishment), coldness of body (due to improper functioning of circulatory system), absence of shyness and appearance of blue vessels over the abdomen are indicative of loss of physical and psychological power, in which conditions obstructed labour becomes incurable.

मूढ़गर्भ की चिकित्सा (Treatment of mūḍhagarbha)

१) मूढ़गर्भ की चिकित्सिका/चिकित्सक के गुण (The qualifications of accoucheur or accoucheuse handling mūḍhagarbha)

महर्षि चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट ने प्रसव कराने के लिए बहुप्रसूता आदि स्त्रियों को विशेषतायें लिखी हैं जो पूर्ववर्णित हैं। टीकाकार इन्दु ने अनेक प्रसव कराने से अनुभूत स्त्री को मूढ़गर्भ के प्रसव कराने का निर्देश दिया[1] है। अन्यत्र महर्षि सुश्रुत एवं अष्टाङ्गहृदयकार ने अनल्पमति अर्थात् विद्वान वैद्य को ही इस अवस्था में चिकित्सा करने का निर्देश दिया है[2]। महर्षि चरक एवं अष्टाङ्गसंग्रहकार ने दृष्टकर्मा शल्यहर्ता द्वारा शल्योद्धरण करने का निर्देश दिया है[3]। भावप्रकाश तथा

१. अ० सं० शा० ४/३३ की इन्दु टीका (जोवित मूढ़गर्भ की प्रसव-विधि में वर्णित)

२. सु० सं० चि० १५/१४ व अ० ह० शा० २/३६ (शस्त्रकर्मान्तर्गत वर्णित)

३. अ) परिदृष्टकर्मणा शल्यहर्त्रा हरणमित्येके। (च० सं० शा० ८/३१)
आ) अ० सं० शा० ४/३५ (मूढ़गर्भ के सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त में वर्णित)

योगरत्नाकर में मूढ़गर्भ की शस्त्र-क्रिया करने योग्य स्त्री की विशेषताओं को वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस स्त्री-वैद्य ने संकट काल में भी बहुत सी स्त्रियों का प्रसव कराया हो; जिसे (इस कार्य में) अच्छी प्रकार से यश प्राप्त हो, उसे इस क्रिया (मूढ़गर्भ के प्रसव-कर्म) को करना चाहिए। वह स्त्री वैद्य शस्त्र एवं शास्त्र को जानने वाली, विद्वान, हलके हाथों से काम करने वाली तथा निर्भय होनी चाहिए[1]।

Caraka has prescribed the only qualification that the accoucheuse must be multiparous, however, any qualification for the woman handling *mūḍhagarbha* has not been mentioned. Indu says that the woman having experience of conducting several labours should handle the case of obstructed labour. Sušruta and Vāgbhaṭa II have opined that only wise physician should handle such case, while Caraka and Vāgbhaṭa I say that the surgeon having seen the practical work of extracting the fetus in obstructed labour should handle such case. It appears that during the period of these writers the obstructed labour was handled by general surgeons. Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara giving detailed qualifications say that the accoucheuse having experience of conducting several difficult labours, thus being famous for this procedure and having command over the knowledge of instruments and books should handle the case of *mūḍhagarbha*, besides she should be wise, bold and capable of working with light/gentle hand.

२) मूढ़गर्भ के सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त (General principles of treatment of mūḍhagarbha)

मूढ़गर्भस्य तु जरायुपातनसामान्यं कर्मेत्येके। मन्त्रादिकर्माथर्ववेदविहितमित्येके। दृष्टकर्मणा शल्यहर्त्रा शल्याहरणमित्येके॥ (अ० सं० शा० ४/३५)

मूढ़गर्भ में जरायु-पातन के लिए वर्णित सामान्य कर्म करना चाहिए ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं; अन्य आचार्यों का मत है कि अथर्ववेद में वर्णित मन्त्र आदि कर्म करना चाहिए; अन्य आचार्यों का मत है कि प्रत्यक्ष कर्म देखे हुए शल्य विशेषज्ञों द्वारा शल्य का आहरण करवाना चाहिए।

अन्यत्र महर्षि वाग्भट ने आहरण-योग्य शल्यों के उदाहरण में गर्भ-शल्य को ही कहा है[2], चरक का भी यही मत है (पृष्ठ ४७७)।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि श्रेष्ठ वैद्य ! अब मैं मृतगर्भ की चिकित्सा वर्णित करूँगा। यदि निराहार होने के कारण गर्भाशय में गर्भ की मृत्यु हो जाय तो स्त्री का मर्दन या अभ्यङ्ग करके गर्भ को प्रयत्न पूर्वक निकालना चाहिए[3]।

महर्षि चरक द्वारा गर्भाशयान्तर मृतगर्भ के अन्तर्गत वर्णित चिकित्सा की विधि (पृष्ठ ४७७) का प्रयोग करना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने मूढ़गर्भ को बस्ति-साध्य[4] एवं आहरण-योग्य व्याधि वर्णित किया है[5]। सभी आचार्यों ने अपप्रसूता

१. अ) याभिः सङ्कटकालेऽपि बह्वयो नार्यः प्रसाविताः। सम्यलग्लब्धं यशस्तासु नार्यः कुर्युरिमां क्रियाम्॥ १२०॥
शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता॥ १२२॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२० तथा १२२)
आ) याभिः सङ्कटकाले वैद्यैर्नार्यः प्रसाविताः सम्यक्। लब्धं यशः समग्रास्ता एवातः क्रियाः कुर्युः॥
शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. गर्भशल्यमाहार्याणाम्। (अ० सं० सू० १३/३)

३. मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजां वर।
मर्दयित्वा मानुषीञ्च ततश्चापि प्रयत्नतः। निराहाराच्च म्रियते यदि गर्भोऽन्तरे स्त्रियः॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१५, १६)

४. ·····मूढ़गर्भप्रपृतिषु चात्यर्थमुपयुज्यते। (सु० सं० चि० ३५/५)

५. आहार्याः·····। ·····मूढ़गर्भाश्च ·····॥ (सु० सं० सू० २५/११,१२)

Scanned with CamScanner

या अकालप्रसूता में स्नेह का प्रयोग निषिद्ध किया है (पृष्ठ ३३७)। अष्टाङ्गहृदय के टीकाकर हेमाद्रि ने अप्रसूता से अयथावत-प्रसूता अर्थ किया है अयथावत् से विकृत अर्थ करने पर मूढ़गर्भ में स्नेह का निषेध हो जाता है।

The treatment prescribed for retained placenta should be used in this condition also, besides *mantras* prescribed in *atharvaveda* should also be used. Some physicians opine that surgical procedures should only be done by the surgeons who have seen practical work.

Hārīta says that with the help of massage the fetus should be delivered. The treatment prescribed by Caraka for dead fetus can also be used.

Use of *basti* in beneficial, however, oleation is contraindicated. It is said to be fit for extraction.

३) जीवित मूढ़गर्भ की प्रसव-विधि (औषधि एवं मंत्र चिकित्सा) (Method of delivery of alive mūḍhagarbha with medicine and mantras)

जीवति तु गर्भे सूतिकागर्भनिर्हरणे प्रयतेत। निर्हर्तुमशक्ये च्यावनान् मन्त्रानुपश्रुणुयात्, तान् वक्ष्यामः ॥५॥
इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि। उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥६॥

इदममृतमपां समुद्धतं वै तव लघुगर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्रि।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥
मुक्ताः पाशोर्विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद् गर्भ एह्येहि विरमावितः ॥८॥
औषधानि च विद्यात् यथोक्तानि ॥ (सु० सं० चि० १५/५से९)
(सचेतनश्च)-तस्मात्तत्सङ्गे सूत्यः प्रयतेरन् पूर्वोक्तानि च मन्त्रौषधानि प्रयुञ्जीत ॥
(अ० सं० शा० ४/३३)

तस्याः कोष्णाम्बुसिक्तायाः पिष्ट्वा योनिं प्रलेपयेत्। गुडं किण्वं सलवणं तथाऽन्तः पूरयेन्मुहुः ॥
घृतेन कल्कीकृतया शाल्मल्यतसिपिच्छया ॥
मन्त्रैर्योगैर्जरायूक्तैर्मूढगर्भो न चेत्पतेत् ॥ (अ० ह० शा० २/२४ से २६)

जीवित गर्भ (मूढ़गर्भ) में उस सूतिका के गर्भ को निकालने का (औषधि प्रयोग से) प्रयत्न करना चाहिए। गर्भ-निर्हरण में असमर्थ होने पर च्यवन मन्त्र को सुनाना चाहिए जो अब कहता हूँ–हे स्त्री ! यहाँ तेरे मन्दिर में अमृत, सोम, चित्रभानु और उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा निवास करे। ·····। हे गर्भ अब विलम्ब न कर, बाहर आ, आ, यह जो कुछ कहा गया है सब ठीक है (अन्य मन्त्र पृष्ठ ४५०, ४५१; ४५३, ४५४ में वर्णित हैं)। इसके अतिरिक्त पूर्ववर्णित अन्य औषधियों (शारीरस्थान-वर्णित) अर्थात् अपरा-पातन के लिए निर्दिष्ट औषधियों का प्रयोग करें[1]।

महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि उस सचेतन गर्भ के सङ्ग होने पर प्रसव कराने वाली स्त्री (जिसे अनेक प्रसव कराने का अनुभव हो[2]) पूर्वोक्त (प्रसव एवं जरायुपातनोक्त) मन्त्र एवं औषधि का प्रयोग करे।

अष्टाङ्गहृदयकार ने कुछ औषधि चिकित्सा का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस स्त्री की योनि को कवोष्ण जल से सिक्त करके गुड़, किण्व तथा लवण को पीसकर योनि में लेप करे तथा उसका (योनि का) बार-बार पूरण करे। कल्क किए हुए शाल्मली (निर्यास) तथा अतसी की पिच्छा को घृत के साथ मिलाकर योनि का (अन्दर एवं बाहर[3]) बार-बार पूरण करे। मन्त्रों (प्रसवोक्त) तथा जरायु-पातनान्तर्गत वर्णित विधि का प्रयोग करे इससे मूढ़गर्भ का पतन हो जाता है।

१. तानि पुनः शरीरे अपरापातनोदितानि ॥ (सु० सं० चि० १५/९ की डल्ह० टीका)
२. सत्यो या अनुभूतानेकप्रसवास्ताः प्रसवाय नानाविधैरुपायैः प्रयतेरन् ॥ (अ० सं० शा० ४/३३ की इन्दु टीका)
३. योनेः प्रकृतत्वात्तस्या अन्तः अभ्यन्तरं, अन्तर्बहिश्च। (अ० ह० शा० २/२५ की अरुण० टीका)

महर्षि हारीत ने मूढ़गर्भ के प्रसवार्थ विशिष्ट औषधियों तथा मन्त्रों का उल्लेख किया है यथा[1]–

अ) लाङ्गली-मूल को उष्ण जल के साथ पीस कर स्त्री की नाभि में लेप करने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।

आ) बला-मूल, सूर्यकान्ति तथा सोमवल्ली को कञ्जल (काँजी) के साथ पीसकर लेप करे।

इ) भीरु, भूनिम्ब, वार्ताकी एवं पिप्पलीयक की मूल, यवानी, अग्र तथा वचा को उष्ण जल से पीसकर नाभि के अधोभाग में लेप करने से प्रसव हो जाता है।

ई) लाङ्गली-मूल, देवदाली-मूल, तुम्बिका, कोशातकी आदि सभी का लेप प्रयुक्त करने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

ए) निम्नांङ्कित मन्त्रों का प्रयोग करें–

१) हिमालय से उत्तर कूल में सुरसा नामक राक्षसी रहती है उसके नूपुर का शब्द सुनने से गर्भिणी स्त्री शल्य-विरहित हो जाती है।

२) "ऐ ह्री—चालय स्वाहा" आदि मंत्र से अभिमन्त्रित पय (जल या दूध) के पीने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

३) "ऐं ह्रां—ह्रः" आदि मन्त्र को भूर्जपत्र के ऊर्ध्वभाग (सीधी ओर) में लिखकर उसे दिखाने तथा शय्या के नीचे रख देने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

४) गंगा के किनारे एक काकी (मादा कौआ) रहती है तथा हिमालय में विचरण करती है, उसके पंख से च्युत जल को तत्क्षण पिलाने से स्त्री को प्रसव हो जाता है यह काकरुद्र का वचन है। इस प्रकार (मंत्र को जल्दी जल्दी पढ़ते हुए वैद्य) जब व्याकुल हो जाय (थक जाय) तो उसे (अभिमंत्रित जल को) स्त्री को पिलावे इससे स्त्री काकसुख से (जिस प्रकार काकी बिना कष्ट के ही अण्डे दे देती है उसी प्रकार) प्रसव करती है।

योगरत्नाकरकार ने तीन योगों का प्रयोग मृतगर्भ या मूढ़गर्भ के प्रसवार्थ निर्दिष्ट किया है।

१. लाङ्गल्यामूलेन उष्णेन वारिणा योषितां नाभिलेपेन शीघ्रं गर्भो जायते प्रसूयते च।
बलामूलं सूर्य्यकान्तिसोमवल्लीकानि कञ्जलेन पिष्ट्वा लेपनं करोतु ॥ १८॥
भीरुभूनिम्बवार्ताकीमूलञ्च पिप्पलीयकम्। यवान्यग्रवचाः पिष्ट्वा तथा चोष्णेन वारिणा ॥ १९॥
नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन प्रसूयते। मूलञ्च लाङ्गलिक्याश्च देवदाल्याश्च तुम्बिका ॥ २०॥
कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम्। सूतिलेपाः स्त्रियो ह्येते सुखेन सा प्रसूयते ॥ २१॥
हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी। तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥ २२॥
ऐं ह्रीं भगवति ! भगमालिनि ! चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा। श्री नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने
प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा ॥
एभिर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः ॥ २३॥
ऐं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रों ह्रीं ह्रः ॥ २४॥
इदं यन्त्रं भूर्जपत्रस्योर्ध्वभागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन सुखेन प्रसवः ॥ २५॥
गंगातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये।
तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ २६॥
ततः प्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा। अनेन दूतो व्याकुलो भवेत्तावच्च पाययेत् ॥ २७॥
तेन प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥ २८॥ (हा० सं० तृती० स्था० ५२/१८ से २८)

Scanned with CamScanner

अ) आसुरी, हिंगु एवं सैन्धव नमक को काञ्जी में घोलकर पिलाने से गर्भाशय में मरा हुआ गर्भ शीघ्र ही बाहर आ जाता है[१]।

आ) घोड़ी के मल को काँजी में घोलकर वस्त्र से छानकर उसमें सैंधव, उग्रा, आसुरी तथा तैल (तिल तैल) मिलाकर पान कराने से विषम रूप से आए हुए (मूढ़) गर्भ का प्रसव हो जाता है।[१]

इ) परुषक-शिफा अथवा स्थिरा की मूल (के कल्क) का नाभि, बस्ति तथा भग आदि अङ्गों में लेपन मूढ़गर्भ का अपकर्षण करने वाला होता है।[१]

महर्षि काश्यप ने वरणवन्ध के अन्तर्गत वर्णित मातङ्गीविद्या को कृच्छ्रप्रसवा को सुनाने से शीघ्र प्रसव होने का उल्लेख किया है[२]।

Till the fetus is alive every effort should be made to deliver it. If delivery does not take place then this *cyawanamantra* i.e. "O Woman ! in your this temple *amṛta, soma, citrabhānu* and horse named *uccaiḥśravā* should live.....O Fetus ! do not delay come out, come out, what-so-ever is said is correct" (see under normal labour page 452 and 454, 455) should be used. The medicines prescribed for expelling the retained placenta should also be used.

Vāgbhaṭa II has added that besides above treatment the *yoni* (external genitalia and vaginal canal) should be irrigated with lukewarm water followed by anointing it with jaggery, *kiṇva* (seeds or drugs used for fermentation) and salt. The vagina should be repeatedly filled with these jaggery etc. or with gum of *śālmalī* mixed with mucinous substance obtained from *atasī*.

Hārīta has prescribed following drugs for quick and easy delivery—

a) Root of *lāṅgalī* pestled with hot water should be applied over umbilicus.

b) Root of *balā, sūryakānti* and *somavallī* pestled with *kāñjī* should be applied.

c) Roots of *bhīru, bhūnimba, vārtākī* and *pippalīyaka, yawānī, agra* and *vacā* pestled with warm water should be applied below the umbilicus.

d) Roots of *lāṅgalī* and *devadālī, tumbicā* and *kośātakī* pestled together should be applied.

e) Following *mantras* should be recited for easy delivery.

i) "In northern bank of *himālaya* there lives a *rākṣasī* named *Surasā*, by hearing the sound of her *nūpura* (an ornament) the woman delilvers easily".

ii) Use of water or milk treated with *"Aṅ hrī cālaya cālaya swāha"* etc. *mantra* facilitates delivery.

iii) *"Aṅ hrāṃ....hraḥ"* etc. hymn should be written on upper portion of *bhūrjapatra*, this should either be shown to the woman or kept under her bed.

१. आसुरीहिङ्गुसिन्धूत्थं काञ्जिकेनावलोडितम्। गर्भाशये मृतं गर्भं पातयेत्पानयोगतः॥
आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम्। ससिन्धूग्रासुरी तैलं विषमागतगर्भनुत्॥
परूषकशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽथ वा। नाभिबस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापकर्षणः॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. का० सं० कल्प० ६/८० (पृष्ठ ३५५ से ३५९)

iv) "There lives a she-crow at the bank of ganges, the water dropped from her feathers given immediately to the woman brings her delivery, this is the saying of *kākarudra*" reciting this hymn repeatedly when the physician gets tired, then this treated water should be given to the woman for drinking. By use of this the woman delivers in the same way as she-crow lays the eggs without pain or difficulty.

Yogaratnākara has prescribed following drugs—

i) By using *āsurī, hiṅgu* and rock salt churned with *kāñjī* the dead fetus gets expelled immediately.

ii) The feces of mare should be dissolved in *kāñjī* and strained through a cloth. In this filtrate rock salt, *ugrā, āsurī* and *tila* oil should be mixed. Oral use of this helps in delivery of abnormally presenting obstructed fetus.

iii) Anointment of pestled root of *parūṣaka* or *sthirā* over umbilicus, urinary bladder region and vulva expells the obstructed fetus.

In the benefits of *mātaṅgīvidyā* referred under *varaṇabandha* Kāśyapa says that the woman having difficult labour, if listens to this, delivers easily.

४) दोषिक मूढ़गर्भ की चिकित्सा *(Treatment of mūḍhagarbha due to different doṣas)*

अ) वातिक मूढ़गर्भ की चिकित्सा *(Treatment of mūḍha garbha due to vāta)*

वातिक मूढ़गर्भ में मर्दन, अभ्यङ्ग, अल्प स्वेदन तथा पञ्चकोल की यवागू का पान करावें[१]।

Rubbing, massage, slight sudation and gruel of *pañcakola* should be prescribed.

आ) पैत्तिक मूढ़गर्भ की चिकित्सा *(Treatment of mūḍhagarbha due to pitta)*

पित्तज मूढ़गर्भ में शीतान्न के साथ शीतल जल का पान तथा विभिन्न (शाक आदि) व्यञ्जन एवं यष्टिक को दूध के साथ पीने को दें[२]।

Cooled water after consuming cooled diet, *śāka,* other cold edibles and *yaṣṭīka* with milk should be given.

इ) श्लैष्मिक मूढ़गर्भ की चिकित्सा *(Treatment of mūḍhagarbha due to śleṣmā)*

श्लैष्मिक मूढ़गर्भ में त्रिकटु, त्रिफला, कुष्ठ, रोध्र, वत्सक तथा धातकी (पुष्प) को गुड़ के साथ क्वाथ बनाकर पीने को दें[३]।

Decoction of *tṛkaṭu, triphalā, kuṣṭha, rodhra, vatsaka,* flowers of *dhātakī* alongwith jaggery should be given.

ई) मूढ़गर्भ में रक्त एवं पित्तज विकार होने पर चिकित्सा *(Treatment of rakta and pitta disorders in mūḍhagarbha)*

रक्त एवं पित्त के विकार में मूर्वा, चिञ्चा, वास्तुकर्णी, मञ्जिष्ठ, रोध्र, नीलिका, कर्कन्धु-मूल तथा सौराष्ट्री का गुड़ के साथ क्वाथ बना कर दें इससे कोष्ठ की शुद्धि हो जाती है[४]।

१. वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं वाल्पमेव च। यवागूं पञ्चकोलञ्च पाययेद्भिषगुत्तमः॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/११)
२. पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च। व्यञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत्॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१२)
३. त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्रं वत्सकधातुकी। सगुडं क्वथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१३)
४. मूर्वाचिञ्चावास्तुकर्णीमञ्जिष्ठारोध्रनीलिकाः। कर्कन्धुमूलं सौराष्ट्री क्वाथश्च सगुडो हितः।
रक्तपित्तविकारेषु कुक्षिशुद्धिश्च जायते॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१४ व १५)

Scanned with CamScanner

Decoction of *mūrvā, ciñcā, vāstukarṇī, rodhra, nīlikā,* root of *karkandhu, saurāṣṭrī* and jaggery should be given, this cleanses the *koṣṭha.*

५) *मृत मूढ़गर्भ की चिकित्सा में विलम्ब या उपेक्षा का परिणाम (Effect of negligence or delay in the treatment of dead mūḍhagarbha)*

नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः। स ह्याशु जननीं हन्ति निरुच्छ्वासं पशुं यथा॥
(सु० सं० चि० १५/१५)

न तु क्षणमप्युपेक्षेत गर्भशल्यम्। तद्धि निरुच्छ्वासीकृत्याशु जननीं हन्यात्॥
(अ० सं० शा० ४/३२)

..... न चोपेक्ष्यः क्षणमप्यस्तजीवितः॥ (अ० हृ० शा० २/३७)

पण्डित या विद्वान वैद्य को मृतगर्भ की क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अर्थात् तत्काल ही चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए, क्योंकि वह (मृतगर्भ) शीघ्र ही माता को श्वासावरोध से मरते हुए पशु की तरह मार देता है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि गर्भशल्य की क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह श्वासावरोध करके माता को शीघ्र ही मार देता है।

अष्टाङ्गहृदयकार का भी यही मत है कि मृतगर्भ को क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे जीवन का अस्त हो सकता है।

महर्षि हारीत ने "आशुकारी व्याधि" अर्थात् शीघ्र ही चिकित्सा करने की व्याधि कहकर वर्णन किया है[1]।

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकरकार ने लिखा है कि मृतगर्भ को क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह स्त्री को उसी प्रकार मार देता है जिस प्रकार अत्यधिक अन्न खा लेने से पशु[2] (उदर में आध्मान हो श्वासावरोध होने से मृत्यु सम्भव है)।

The wise physician should not neglect the dead *mūḍhagarbha* even for a moment and start the treatment immediately, because this dead fetus kills the mother by producing asphyxia in the same way as an animal dies due to asphyxia caused by distension of abdomen due to over-eating.

६) *गर्भ-शल्योद्धरण की कठिनाइयाँ (Difficulties during extraction of garbha-śalya)*

नातोऽन्यत् कष्टतममस्ति यथा मूढ़गर्भशल्योद्धरणम्; अत्र हि योनियकृत्प्लीहान्त्रविवरगर्भाशयानां मध्ये कर्म कर्तव्यं स्पर्शेन। उत्कर्षणापकर्षणस्थानापवर्तनोद्वर्तनोत्कर्तनभेदनच्छेदनपीड़नर्जूकरणदारणानि चैकहस्तेन गर्भं गर्भिणीं चाहिंसता॥ (सु० सं० चि० १५/३)

नत्वतः कष्टतममस्ति शस्त्रकर्म। यतो योनियकृत्प्लीहान्त्रगर्भाशयादीनां मध्ये ताननुपहिंसताऽस्पर्शवता शस्त्रमवचार्यमुत्कर्षणव्यावर्तनोत्कर्तनछेदनभेदनपीडनर्जूकरणानि चैकेन पाणिना कार्याणि॥
(अ० सं० शा० ४/३६)

मूढ़गर्भ-शल्योद्धरण के समान कोई अन्य शल्योद्धरण कष्टकारी नहीं हैं। इसमें योनि, यकृत, प्लीहा, आन्त्रविवर

१. मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी स्त्रियामपि। (हा० सं० स्था० ५२/१०)

२. अ) नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः। तदाशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम्॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२४)
आ) नेपेक्षेते.....। स चाऽऽशु जननीं.....। (भा० प्र० सदृश ही) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

(आँतों का स्थान या उदर) तथा गर्भाशय आदि के मध्य में स्पर्श के द्वारा (अर्थात् बिना प्रत्यक्ष देखे) ही कर्म (शल्योद्धरण-कर्म) करना होता है। उत्कर्षण (अत्यधिक नीचे आये हुए को ऊपर खींचना[1]), अपकर्षण (ऊपर चले गये हुए को नीचे खींचना[1]), स्थानापवर्तन (गर्भशय्या में आसक्त उत्तान गर्भ को अवाङ्मुख करना[1]), उद्वर्तन (अवाङ्मुख को उत्तान करना[1]), उत्कर्तन (किसी ऊर्ध्व स्थित अङ्ग का कर्तन[1]), भेदन (आध्मान युक्त गर्भ की कुक्षि का विदारण[1]), छेदन (मृतगर्भ के गर्भाशय में सक्त अङ्गों का छेदन या काटकर दो में बाँटना[1]), पीड़न (बलन या दबाना[1]), ऋजुकरण (टेढ़े अङ्गों का सीधा करना[1]) तथा दारण आदि कर्म गर्भ (यदि जीवित है) एवं गर्भिणी को बिना हिंसा किए या आघात पहुँचाये एक ही हाथ से करने होते हैं। टीकाकार डल्हण ने पाठभेद का वर्णन करते हुए स्थानापवर्तन के स्थान में स्थानव्यावर्तन अर्थात् गर्भशय्या में तिर्य्यगादि स्थिति में स्थित उत्तान गर्भ को अधोव्यावर्तन कर अर्थात् नीचे की ओर लाकर स्थापित करना लिखा है[1]।

महर्षि वाग्भट ने भी यही लिखा है कि यह कष्टतम शस्त्रकर्म है इसमें योनि, यकृत्, प्लीहा, आन्त्र, गर्भाशय आदि के मध्य में इनको हानि पहुँचाये बिना तथा इनको स्पर्श न करते हुए (शल्योद्धरण के समय केवल गर्भ को ही स्पर्श करते हुए) शस्त्र का प्रेवश करके उत्कर्षण, अपकर्षण, व्यावर्तन, उत्कर्तन, छेदन, भेदन, पीड़न तथा ऋजुकरण आदि कर्म एक हाथ से ही करने पड़ते हैं। पाठभेद में अस्पर्शवता के स्थान में स्पर्शवता पाठ मिलता है जिसके स्पष्टीकरण में टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि योनि आदि की रक्षा करते हुए स्पर्श के द्वारा ही ज्ञान करके बिना देखे ही शस्त्र का अवचारण करना होता है जो वर्णन महर्षि सुश्रुत सदृश ही है[2]।

The extractions of fetus is most difficult in comparison to any other *śalya* (foreign body). In this, every manipulation or action has to be done only on the basis of palpation without visualizing any thing, and amongst the *yoni*, liver, spleen, bowels and uterus. *Utkarṣaṇa* (pulling the fetus upwards which has come too much down), *apakarṣaṇa* (dragging the fetus downwards which has moved much upwards), *sthānāpavartana* (rotation or cephalic version), *udvartana* (pushing the face upwards) *utkartana* (cutting), *bhedana* (perforation), *chedana* (excision), *pīḍana* (compression or pressure application) *ṛjukaraṇa* (straightening) and *dāraṇa* (incision) etc. all the acts had to be done only with one hand taking care not to injure the mother and fetus (if alive) both.

७) *शस्त्र-कर्म के पूर्व भोजन-निषेध (Contraindication of ingestion of food before surgical procedure)*

महर्षि शुश्रुत ने शस्त्र-कर्मों के लिये सामान्य निर्देश देते हुए मूढ़गर्भ, उदर, अर्श, अश्मरी, भगन्दर, मुखरोग आदि व्याधियों में बिना खाना दिए या खाली पेट ही शस्त्र-कर्म करने का निर्देश किया है। कारण का स्पष्टीकरण करते हुए टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि इन पाँचों व्याधियों में अन्न से कोष्ठ के पूर्ण होने पर शस्त्र के प्रवेश में कठिनाई अथवा आतुर को मृत्यु तक हो सकती है तथा वायु का भी प्रकोप होता है[3]।

१. उत्कर्षणमधोगतस्योद्ध्वींकरणम्, अपकर्षणमूर्द्ध्वगतस्याधःकर्षणम्, स्थानापवर्तनं स्थानेषु सक्तस्य गर्भशय्यात् उत्तानस्यावाङ्मुखीकरणम्, उद्वर्तनमवाङ्मुखस्योत्तानीकरणम्; अत्र केचित् स्थानव्यावर्तनमिति पठन्ति, तत्र स्थानं स्थितिः स्थाने गर्भशय्यायां तिर्य्यगादिस्थितस्योत्तानस्याधोव्यावृत्त्या स्थापनम्, उर्ध्वस्य कस्यचिदङ्गस्य छेदनमुत्कर्तनं, छेदनमिति मृतस्य तु तेषु तेषु स्थानेषु सक्तस्य तस्याङ्गस्य छेदनं द्वैधीकरणम्, गर्भकुक्षादेराध्मातस्य विदारणम् भेदनम्। पीडनम् बलनम्, ऋजुकरणं वक्रस्य प्राञ्जलीकरणम्। दारणं विदारणम्। (सु० सं० चि० १५/३ की डल्हण टीका)

२. तानुपहिंसतास्पर्शवता (पाठभेद)।
यतो योन्यादीनि रक्ष्याणि स्पर्शनेनैव शस्त्रमवचार्यमदृष्टिगोचरत्वात् .....। .....(अ० सं० शा० ४/३६ की इन्दु टीका की पुस्तक में पाठभेद तथा इन्दु टीका)।

३. मूढगर्भोदरार्शोऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः कर्म कुर्वीत॥ १६॥
(मूढगर्भोदिषु षट्स्वन्नपूर्णकोष्ठत्वाद् यन्नदानादिभिः कष्टं मरणं वा प्राप्नोत्यातुरः, अनिलश्च प्रकोपमेति-डल्ह०)
(सु० सं० सू० ५/१६)

Scanned with CamScanner

वाग्भट-द्वय ने भी मूढ़गर्भ की शस्त्र-चिकित्सा के पूर्व भोजन निषिद्ध किया है। टीकाकार इन्दु ने स्पष्ट किया है कि शस्त्र-कर्म करने से पहिले भोजन नहीं देना चाहिए, टीकाकार अरुणदत्त का मत है कि भोजन का निषेध है परन्तु मद्यपान कराना चाहिए; टीकाकार हेमाद्रि ने भोजन तथा मद्यपान दोनों का ही निषेध किया है।[1]

In five disorders i. e. *mūḍhagarbha, arśa* (piles), *aśmarī* (urinary bladder stones), *bhagandara* (rectal/anal fistula) and *mukharoga* (diseases of mouth) the surgery should be done in empty stomach, because in full abdomen there may be difficulty in insertion of instruments or the patient may die and *vāta* also gets aggravated.

Ingestion of food is contraindicated before surgical treatment of *mūḍhagarbha*. Aruṇa-datta says that though the food is contraindicated, yet the wine should be prescribed, however Hemādri also has contraindicated both.

८) गर्भ-शल्योद्धरण के पूर्व अधिपति की आज्ञा *(Consent of guardian before surgical intervention)*

तस्मादधिपतिमापृच्छ्य परञ्च यत्नमास्थायोपक्रमेत। (सु० सं० चि० १५/३)
तस्मादीश्वरमापृच्छ्य परं च यत्नमास्थाय तद्विद्यसहितस्तमुपक्रमेत्। अक्रियायां ध्रुवं मरणम् उपक्रमे संशयः॥
(अ० सं० शा० ४/३७)

अथापृच्छ्येश्वरं वैद्यो येत्नेनाशुतमाहरेत्। (अ० ह० शा० २/२६)

उसमें (गर्भ-शल्योद्धरण में) अधिपति से पूछकर, यत्नपूर्वक स्थापित करके (स्त्री को उचित स्थिति में सुलाकर) उपक्रम करना चाहिए।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी यही लिखा है कि उसमें ईश्वर (स्वामी या मालिक) से पूछकर यत्नपूर्वक स्थित करके उसकी (मूढ़गर्भ-शल्योद्धरण की) विद्या-सहित (पूर्वकर्माभ्यास से प्राप्त ज्ञान के आधार पर) उपक्रम करे क्योंकि अक्रिया या शल्योद्धरण न करने से मृत्यु (स्त्री की) निश्चित है तथा उपक्रम करने में संशय या सफलता की प्राप्ति में संदेह है। टीकाकार इन्दु का मत है कि ईश्वर से पूछकर कार्य करने में स्त्री की मृत्यु हो जाने पर भी अवश वह नहीं मिलता।[2]

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि वैद्य ईश्वर (नृप-अरुणदत्त) से पूछकर यत्नपूर्वक शीघ्रातिशीघ्र आहरण (गर्भ का) करे।

Before extraction of *mūḍhagarbha* the consent of guardian must be obtained explaining that if the surgical interference is not done death (of mother) is sure and even in surgical procedure there is doubt in success. After this, placing her in proper position surgery should be done. Indu has explained that by obtaining consent the physician does not get defamed even if woman dies.

विमर्श (Comments)

आधुनिक काल में भी शल्य-कर्म से पूर्व चिकित्सा-विधि-दृष्ट्या अधिपति की आज्ञा अनिवार्य है। अपर्युक्त वर्णन

१. अ) अन्यत्र मूढगर्भोदराश्मरीमुखरोगेभ्यः॥ १४॥
(प्राक् शस्त्राच्छस्त्रकर्मणः पूर्वः मूढ़गर्भादिषु भोजनस्य प्रतिषेधः-इन्दु) ॥ (अ० सं० सू० ३८)
आ) अन्यत्र मूढ़गर्भाश्ममुखरोगोदरातुरात्॥ १६॥
(मूढ़गर्भादिभिर्य आतुरस्तं वर्जयित्वेष्ट भोजनं मद्यपानं च कारयितव्यम्-अरुण०) ॥
(मूढ़गर्भादौ भोजनमद्यपाने निषेधति-अन्यत्रेति - हेमाद्रि) (अ० ह० सू० २९)
२. तस्माद्विषगीश्वरमापृच्छ्य यथा मृतायामयशसा योगो न भवतीति। (अ० सं० शा० ४/३७ की इन्दु टीका)

उस काल के चिकित्सा-विधि-विज्ञान के विशिष्ट महत्व का द्योतक है।

The consent of guardian before any surgical procedure is essential specially from medicolegal point even today. This shows the high standard of medical ethics existing at that time.

९) गर्भ-शल्योद्धरण के समय स्त्री की स्थिति एवं वैद्य द्वारा हस्त-प्रवेश-विधि *(The position of woman during extraction of mūḍhagarbha and method of insertion of hand by surgeon)*

मृते चोत्तानाया आभुग्नसक्थ्या वस्त्राधारकोन्नमितकट्या धन्वननगवृत्तिकाशाल्मलीमृत्स्नघृताभ्यां भ्रक्षयित्वा हस्तं योनौ प्रवेश्य गर्भमपहरेत्॥ (सु० सं० चि० १५/९)

अथोत्तानाया व्याभुग्नसक्थ्यावस्त्रचुम्भलोन्नमितकटिप्रदेशायाश्च धन्वनागमृत्तिकाशाल्मलीपिच्छाघृतैरभ्यन्य हस्तं योनिं च गर्भमाहरेत्॥ (अ० सं० शा० ४/३८)

हस्तमभ्यन्य योनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया॥ (अ० ह० शा० २/२७)

गर्भ के मृत हो जाने पर (अथवा औषधि या मंत्र चिकित्सा के विफल होने पर जीवित गर्भ में भी-पृष्ठ ४८०, ४८१) सक्थियों (जंघाओं) को मोड़ कर, उत्तान सोई हुई, कपड़ों की गद्दी से ऊँची की हुई कटि वाली स्त्री (चि० १७) की योनि में धन्वन (बदरी सदृश पत्र का धनुर्वृक्ष), नगवृत्तिका (सल्लकी), शाल्मली, मिट्टी तथा घृत लगाकर (वैद्य) हाथ (चि० १८) का प्रवेश कर गर्भ का आहरण करे। मृत्स्न का प्रयोग उचित नहीं हैं इसी दृष्टिकोण से टीकाकार डल्हण ने मृत्स्न से पिच्छा या निर्यास लेने का निर्देश दिया है अर्थात् उपर्युक्त औषधियों के गोंद तथा घृत से हाथ को चिकना करके योनि में प्रवेश कर गर्भापहरण करे[1]।

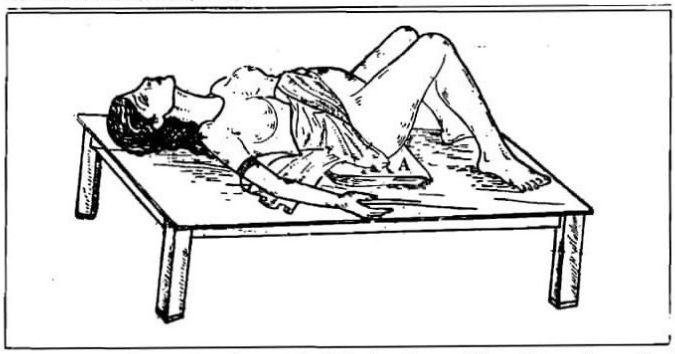

Fig. (17) : The position of woman for delivering obstructed fetus. Note supine position with flexed thighs. (A) hips are elevated with thick pad of cloths.

१. चकारादफलीभूतेषु·····(पृष्ठ ४८१) ·····। धन्वनो धनुर्वृक्षो वदरीसदृशपत्रः। नागवृत्तिका शल्लकी; यद्यपि मृत्स्नशब्दः प्रशस्तायां मृदि वर्तते तथाऽप्यत्र धनुर्वृक्षशल्लकीशाल्मलीनां पिच्छिलेष्वेव मृत्स्नशब्दो बोद्धव्यः॥
(सु० सं० चि० १५/९ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि सक्थियों को मोड़कर, उत्तान लेटी हुई स्त्री जिसकी कटि मुलायम कपड़ों की गद्दी से ऊँची कर दी गई है, की योनि का धन्व, नागमृत्तिका (नागवृत्तिका -पा० भे०; शल्की-इन्दु[1]) तथा शाल्मली की पिच्छा या गोंद तथा घी से अभ्यंग कर इन्हीं द्रव्यों से अभ्यङ्ग किए हुए हाथ का प्रवेश करके गर्भ का आरहण करे।

अष्टाङ्गहृदयकार ने संक्षेप में लिखा है कि हाथ तथा योनि को शाल्मलीनिर्यास से अभ्यक्त करके हाथ को योनि में प्रविष्ट करें।

महर्षि हारीत ने नाभि-बिल के समान गोल कुण्डलिका बनाकर उसके ऊपर जानु फैलाकर बैठी हुई स्त्री में मूढ़गर्भ निकालने का विधान दिया है[2]।

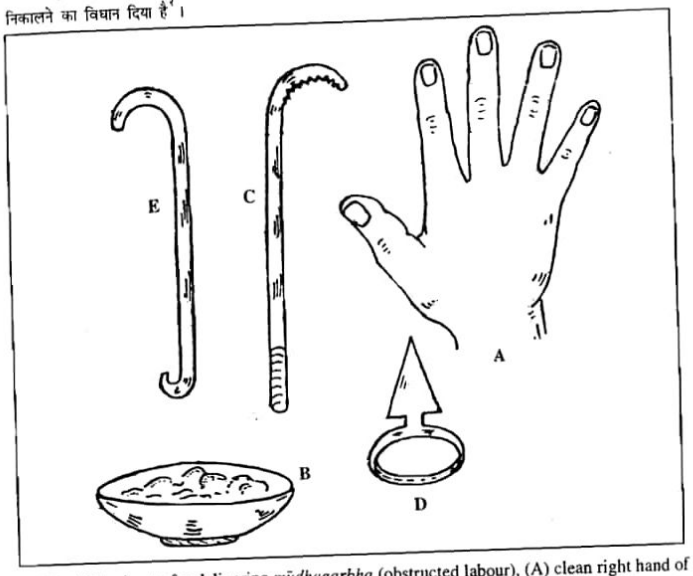

Fig (18) : Assets for delivering *mūdhagarbha* (obstructed labour), (A) clean right hand of surgeon with nails trimmed (B) a bowl containing mucinous substance for lubricating hand and vagina; (C) *maṇḍalāgra śastra* used for cutting the fetal parts; (D) *aṅguli śastra* used for perforating the fetal head, abdomen etc. and; (E), *śaṅku* or hook used for extracting the cut or perforated fetal parts.

१. धन्वनागवृत्तिकाशाल्मली·····(पाठभेद) (नागवृत्तिका सल्की-इन्दु)
(अ० सं० शा० ४/३८ की इन्दु टीका पुस्तक का पाठ भेद तथा इन्दु टीका)
२. (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१७; हाथ से आहारण विधि में उद्धृत)।

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकरकार ने लिखा है कि सर्पिषाक्त हस्त का योनि में प्रवेश करके जीवित गर्भ को यत्न से निकालना चाहिए[1]।

Once the fetus is dead or medicinal treatment has failed, the extraction of fetus should be done by keeping the woman in supine position with flexed thighs, her hips should be elevated by keeping a thick pad of cloths (fig. 17). The vagina and hand (fig.18) should be lubricated with mucinous substance or gum of *dhanwana, nagavṛttikā (sallakī), śālmalī* and *ghṛta*. Now the fetus should be extracted by inserting the hand.

Both the Vāgbhaṭas, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have expressed almost identical views, however, Hārīta says that the lady should be made to sit over a circular thick pad made for the purpose, with extended (abducted) thighs during extraction of *mūḍhagarbha.*

विमर्श (Comments)

कटिप्रदेश को ऊँचा करके सक्थियों को मोड़कर उत्तान लेटने पर स्त्री की स्थिति आधुनिक पुस्तकों में वर्णित लिथाटॉमि स्थिति के सदृश हो जायगी, जिस स्थिति में योनिमार्ग से गर्भ का आहरण अति सुगम होगा। महर्षि हारीत द्वारा वर्णित स्थिति कार्य की दृष्टि से सुगम नहीं है।

Supine position with flexed thighs and elevated hips resembles to a greater extent with lithotomy position used today for all vaginal operations or deliveries. Squatting position advised by Hārīta does not seem to be justified.

१०) मूढ़गर्भ को हाथ से आहरण करने की विधि (Procedure of manual extraction of fetus)

विभिन्न प्रकार से प्रसवित होने वाले गर्भों का निम्नाङ्कित विधि से आहरण करें।

(अ) दोनों सक्थियों (जंघाओं) से प्रसवित होते हुए गर्भ को नीचे की ओर से ही खींचकर निकालें[1,2]। (चि० १९ अ एवं ब)।

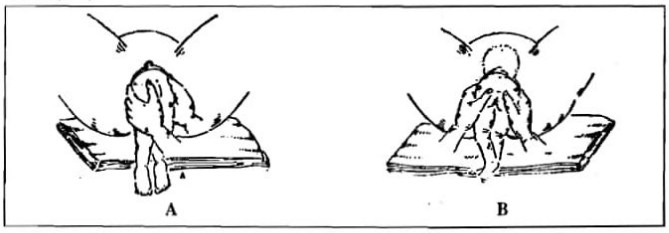

Fig (19) : Method of extraction of fetus delivering with both the thighs (footling presentation); (A) step I—Both the thighs are held and pressure for extraction applied; (B) step II—with further descend the shoulders are held and downwards traction is given.

१. गर्भे जीवति मूढे तु गर्भ यत्नेन निहरेत्। हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेस्तन्तर्गतेन सा॥
(भा० प्र० चि० ७०/१२१ तथा यो० र० स्त्रीरो० चि०-सर्पिषाऽऽक्ते-पाठ)
नोट- आहरण करने की विधि के सन्दर्भ पृष्ठ ५२२ में देखें।

Scanned with CamScanner

आ) एक सक्थि से प्रसवित होने वाले गर्भ की पहिले दूसरी सक्थि को भी फैलाकर या निकाल कर (चि० २० अ) फिर आहरण करें[1,2] (चि० २० ब)

इ) सिफग्-देश से प्रसवित होते हुए गर्भ के स्फिग् प्रदेश को पीड़न करके (स्वस्थान स्थिति से विचलित करके)

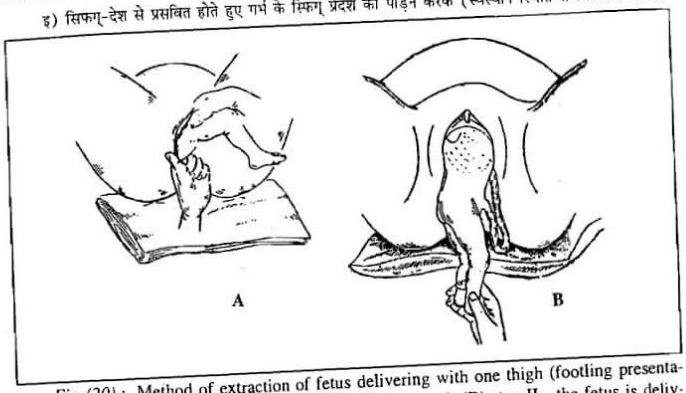

Fig (20): Method of extraction of fetus delivering with one thigh (footling presentation) (A) Step I—second thigh is delivered; (B) step II—the fetus is delivered by downward traction.

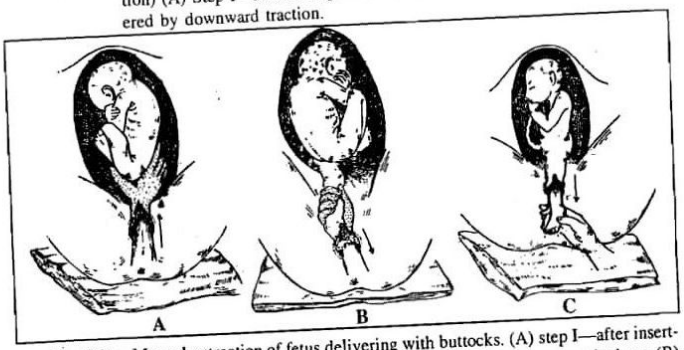

Fig (21): Manual extraction of fetus delivering with buttocks. (A) step I—after inserting the hand in the uterus, the buttocks are dislodged and pushed up; (B) step II—the legs are grasped one by one; (C) step III—the fetus is delivered by downward traction.

नोट -सन्दर्भ पृष्ठ ५२२ में देखें।

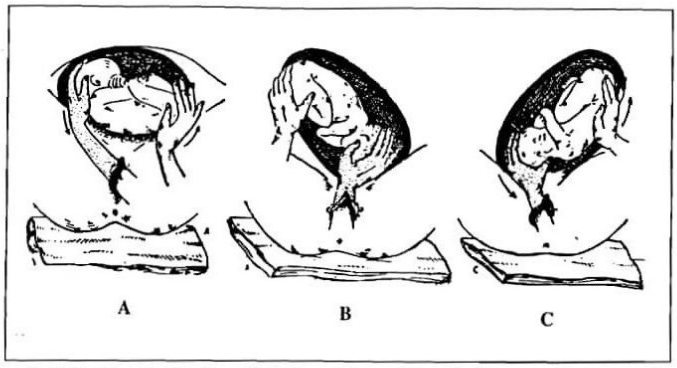

Fig (22): Manual extraction of fetus in *parigha* or oblique lie (dorso-anterior or posterior position); one hand inside the uterus over the head of fetus and other over the abdomen of woman holding buttocks of fetus. Step—I head is pulled downwards and hips pushed upwards in (A) dorso-anterior, (B) or dorso-posterior positions; (C) step—II the head is brought further down to the exit passage.

ऊपर की ओर उछालकर (चि० २१ अ) सक्थियों को प्रसारित करके आहरण करें[1,2] (चि० २१ ब एवं स)।

ई) तिर्यक् प्रसवित होते हुए गर्भ को घुमाकर या परिघ के समान तिर्यक् या तिरश्चीन (अनुप्रस्थ आसन) प्रसवित होते हुए गर्भ के पीछे के भाग (स्फिग् प्रदेश) को ऊपर की ओर उछालकर आगे के भाग (शिर) को अपत्यपथ में लाकर ऋजुभाव में या सीधा करके आहरण करें[1,2] (चि० २२ अ, ब, एवं स)।

उ) पार्श्वपवृत्तशिर (पार्श्व में घूमे हुए शिर) वाले गर्भ के अंस (कंधे) को पीड़न करके ऊपर की ओर उछालकर शिर को अपत्यपथ में लाकर आहरण करें[1,3]।

ऊ) दोनों बाहुओं से उत्पन्न होने वाले गर्भ की बाहुओं को अंसप्रदेश के पीड़न के द्वारा ऊपर की ओर दबाकर (या प्रवेश कराकर) शिर को अनुलोम करके आहरण करें[1,2] (चि० २३)।

संक्षेप में वर्णन करने पर कह सकते हैं कि प्रथम तीन गतियों में गर्भ को सक्थियों या पैरों के द्वारा तथा बाद की तीन गतियों को शोर्षोदय में परिवर्तित करके प्रसवित कराना चाहिए[3]। अन्तिम दो गतियाँ असाध्य हैं अर्थात् आहरण से प्रसव नहीं हो सकता उनमें शस्त्र का प्रयोग आवश्यक है[4]।

गर्भ के विषम-स्थिति में स्थित विभिन्न अङ्गों को आञ्छन (फैलाना या खींचना), उत्पीडन (ऊपर की ओर धकेलना), सम्पीडन (दबाना), निक्षेप (नीचे की ओर धकेलना) तथा उत्क्षेप (ऊपर की ओर उछालना) आदि के द्वारा अनुलोम करके (अपत्यपथ में उचित अङ्ग को लाकर) सीधा करके हाथ के द्वारा आहरण करें[5], उदाहरणार्थ मुखोदय में ललाट का उत्क्षेपण या उत्पीड़न कर के ऊर्ध्वशिर को सम्पीड़न या निक्षेप द्वारा नीचे लाकर प्रसवित करावें (चित्र २४)।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि स्त्री को नाभि के आकार की कुण्डलिका बनाकर उसके ऊपर बैठाकर उसके जानुओं

नोट -सन्दर्भ पृष्ठ ५२२ में देखें।

Scanned with CamScanner

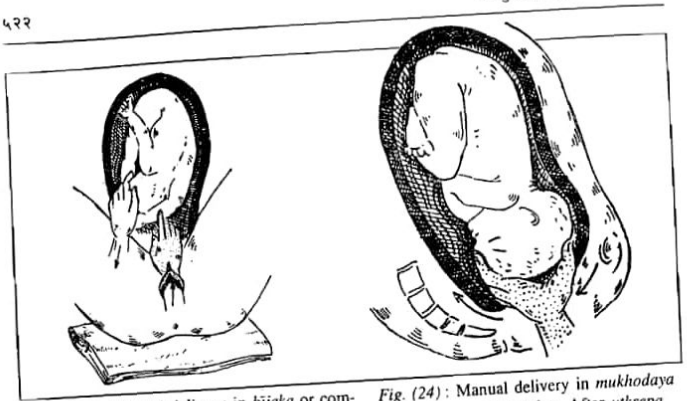

Fig (23): Manual delivery in *bijaka* or compound presentation. With the hand of surgeon inside the uterus the arm of fetus is pushed up and with another hand kept over the abdomen the head of fetus is pushed downwards

Fig. (24): Manual delivery in *mukhodaya* or brow presentation. After *utkṣepa* or pushing the frontal portion of fetal head upwards the appropriate part or vertex is brought to the exit passage.

को फैलाकर पीठ के भाग को कुछ दबाकर उदर के भाग में गर्भ को नीचे की ओर अवतरित करवावे या लावे। योनिद्वार में गर्भ के आ जाने पर तिल-तैल एवं जल से अभ्यङ्ग करके (वैद्य के हाथ एवं स्त्री की योनि का), हाथ को योनिद्वार में डालकर तर्जनी एवं अंगुठे से गलप्रदेश को पकड़ कर गर्भ को बाहर निकाले[६]।

१. तत्र सक्थिभ्यामागतमनुलोममेवाऽऽहेत्। एकसक्थ्ना प्रपन्नस्येतरसक्थि प्रसार्यापहरेत्। स्फिग्देशेनागतस्य स्फिग्देशं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य सक्थिनो प्रसार्यापहरेत्; तिर्यगागतस्य परिघस्येव तिरश्चीनस्य पश्चादर्धमूर्ध्वमुत्क्षिप्य पूर्वार्धमपत्यपथं प्रत्यार्जवमानीयापहरेत्, पार्श्वापवृत्तशिरसमंसं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य शिरोऽपत्यपथमानीयापहरेत्, बाहुद्वयप्रतिपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांसौ शिरोऽनुलोममानीयापहरेत्॥ (सु० सं० चि० १५/९)

२. तत्र सक्थिभ्यामागतस्यानुलोममाञ्छनमेव। एकस्मिन् सक्थिन प्रपन्नस्येतरं सक्थि प्रसार्य, स्फिग्देशागतस्य स्फिग्देशं प्रतिपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य सक्थिनी प्रसार्य तिर्यगागतस्य परिघस्येवापर्धमुपरिवर्त्य वाऽपरार्धमुत्क्षिप्य पूर्वार्धमपत्यपथं प्रत्यार्जवमानीय पार्श्वापवृत्तशिरसोऽंसं प्रतिपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य शिरोऽपत्यपथमानीय बाहुद्वयं प्रपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांऽसौ शिरोमूलमानीय निर्हरेत्॥ (अ० सं० शा० ४/३९)

३. तत्र आद्यं मूढगर्भत्रितय पादाभ्यामाहरणीयम्, तदितरत्तु त्रितयं शिरसा, द्वावितिं शेषन्तु मूढगर्भद्वयमसाध्यम् एवमष्टौ मूढगर्भाः। (सु० सं० चि० १५/९ की डल्ह० टीका)

४. सु० सं० चि० १५/९, अ० सं० शा० ४/४० (शस्त्रकर्माहं मूढगर्भान्तर्गत वर्णित)

५. हस्तेन शक्यं तेनैव गात्रं च विषमं स्थितम्॥ २७॥
आञ्छनोत्पीडसम्पीडनिक्षेपोत्क्षेपणादिभिः। अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम्॥ २८॥ (अ० ह० शा० २/२७, २८)

६. तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व में। नाभिबिलशृंयाच्च सुकुण्डलिकां कृत्वा तु तस्योपरिमूढगर्भामुपवेश्य जानुनीप्रसार्य्य किंचित्पृष्ठभागे साधारणमवष्टभ्य उदरादधोऽवतारयेत्॥ योनिद्वारे प्रगलति तिलतैलेन वारिणा परिप्लाव्य हस्तो याति योनिद्वारङ्ग तस्मात्तर्जन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशे धृत्वा निःसारयेत्॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५२/१७)

The fetuses delivering with different positions/presentations should be extracted in following way—

Presentations/positions	*Manipulations and extraction of fetus*
a) Both the thighs	Draw in the same or downward proper direction (fig. 19a, b).
b) One thigh	First deliver another thigh (fig. 20a) then extract the fetus (fig. 20b).
c) Buttocks	Dislodge the buttocks, push them upwards (fig. 21a), bring both the thighs downwards (fig. 21a) and deliver the fetus (fig. 21c).
d) Oblique or transverse just like a wooden belt used to fasten the door	Push the back side or hips of the fetus upwards, bring the head downwards to the passage (fig. 22 a, b), straighten it and extract (cephalic version) (fig. 22c).
e) Head moved to the lateral side (shoulder presentation)	Dislodge the shoulder, push it upwards, bring the head to the maternal passage and extract the fetus (cephalic version).
f) Both arms	Push both the arms upwards by pressing the shoulder region, (fig. 23), bring the head down to the passage and extract the fetus.

In short, it can be said that in former three presentations delivery is to be completed with thigh or foot presentation, in latter three presentations cephalic version should be done and the fetus should then be delivered. In last two presentations (described under *gaties*) manual extraction is not possible thus surgery has to be done.

The position of various abnormally situated fetal parts should be corrected by drawing, dislodging, compressing, pulling downwards, pushing upwards and bringing appropriate part to the maternal passage, then the fetus should be extracted, such as in face or brow presentation the frontal portion or forehead should be dislodged and pushed upwards then the vertex should be compressed and pulled downwards and delivery conducted (fig. 24).

Hārīta says that after making the woman sit over circular pad with streched or abducted thighs her back should be gently compressed and the fetus should be brought downwards in the abdomen. Once the fetus reaches vaginal passage, the hand lubricated with *tila* oil and water should be inserted in vagina already oleated with *tila* oil and water. Now the neck of fetus should be grasped with index finger and thumb and fetus extracted.

११) *शस्त्रकर्माहं मूढ़गर्भ (The mūḍhagarbha fit for instrumentation)*

द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढ़गर्भौ। एवमशक्ये शस्त्रमवचारयेत्॥ (सु० सं० चि० १५/९)
यस्त्वाभुग्नमध्यः पाणिपादशिरोभिर्योनिं प्रतिपद्यते। यश्चाभुग्न एवैकेन पादेन योनिं द्वितीयेन पाशुम्।
तौ मूढौ हस्तेनाहर्तुमशक्याविति शस्त्रमवचारयेत्॥ (अ० सं० शा० ४/४०)

Scanned with CamScanner

विषकम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः ॥ (अ० हृ० शा० २/३०)

दोनों अन्त के मूढ़गर्भ असाध्य हैं इनमें असफलता मिलने पर (हाथ से आहरण करने में असफलता मिलने पर) शस्त्र का अवचारण करे।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने दोनों अन्तिम गतियों का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि जो बीच से आभुग्न होकर हाथ, पैर एवं शिर से योनि को प्राप्त होता है तथा जो आभुग्न होकर एक पैर से योनि तथा दूसरे से गुदा को प्राप्त होता है, ये दोनों हाथ से आहरण करने के योग्य नहीं होते हैं अतः इनमें शस्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि विषकम्भ नामक दोनों मूढ़गर्भ शस्त्र से दारण के योग्य होते हैं। टीकाकार अरुणदत्त ने स्पष्टीकरण दिया है कि इन दोनों प्रकार के मूढ़गर्भों को हाथ से खींचकर निकालना सम्भव नहीं होता अतः शस्त्र से दारण करना चाहिए[१]।

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर पुस्तकों में लिखा है कि गर्भ के मृत हो जाने पर (मर जाने पर) गर्भिणी की योनि में शस्त्र का प्रदेश करना चाहिए[२]।

महर्षि काश्यप ने गर्भिणी स्त्री के अरिष्ट लक्षणों के वर्णन के साथ ही स्त्री की कुछ उन शारीरिक स्थितियों का वर्णन किया है जिनमें गर्भ के प्रसव के लिए शस्त्र-कर्म आवश्यक होता है; जैसे–

जिस स्त्री की नासा कौए के समान हो जाय तथा जिसके नेत्र स्रस्त हो जाँय (काँपते हों या पलकें नीचे गिर जाँय) तथा जिसमें शकुन्त पक्षी की गंध आती हो उस स्त्री के गर्भ का शस्त्र से मुंचन होता है अर्थात् वह शस्त्र से ही प्रसवित हो सकता है[३]।

जिस स्त्री से बकरे या गोड़े की गंध आती हो, जो श्वेत (पाण्डु के कारण) हो गई हो; जो मोर का मांस खाने की इच्छा रखती हो उस स्त्री का गर्भ शस्त्र से ही निकलता है[३]।

In last two positions or *gaties* i. e. fetus either presenting with both the extremities and head together with body flexed in middle portion (back) or with one foot in vagina and other in anus, manual extraction of *mūḍhagarbha* is not possible, thus in these cases instruments should be used. Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara opine that instrumentation should be done when the fetus in dead.

While enumerating bad prognostic clinical features of a pregnant woman Kāśyapa has enumerated two conditions in which delivery has to be completed with the help of instruments, these are—

a) The woman whose nose assumes the shape like a crow (crow's beak), eyes (eye lids) have drooped and emits the smell of *śakunta* (a bird of prey), her fetus has to be delivered with the help of instruments.

b) The woman who emits the smell of goat or horse, has become white and desires

१. एतौ द्वौ विष्कम्भौ नाम मूढौ-मूढगर्भौ, शस्त्रदारणमर्हतः। हस्तेनाकृष्टुमशक्यत्वात्तयोः शस्त्रदारणं कार्यमित्यर्थः ॥ (अ० हृ० शा० २/३० की अरुण० टीका)

२. मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२२ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

३. नासा तु काकवद्यस्याः स्रस्तनेत्रा च या भवेत्। तथा शकुन्तगन्धा च गर्भः शस्त्रेण मुच्यते ॥ १७२॥
अजाश्वगंधा श्वेता या मायूरं मांसमिच्छति। गर्भस्तस्यापि शस्त्रेण नार्या निर्हियते नृप ! ॥ १७३॥ (का० सं० खि० १०)

to eat peacock's meat, her fetus can be delivered only with the instruments.

१२) *सचेतन गर्भ के छेदन का परिणाम (The effect of rending or decapitation and other destructive procedures of alive fetus)*

सचेतनं च शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत्। दार्यमाणो हि जननीनामात्मानं चैव घातयेत् ॥
(सु० सं० चि० १५/१०)

सचेतनश्च गर्भः शस्त्रेण विदार्यमाणो विषममङ्गानि विक्षिपेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/३३)

छिन्द्याद्गर्भं न जीवन्तं मातरम् स हि मारयेत्। सहात्मना ·····। (अ० हृ० शा० २/३७)

सचेतन या जीवित गर्भ का कभी दारण (छेदनादि) नहीं करना चाहिए क्योंकि दारण करने से वह गर्भ माता को मार देता है तथा स्वयं भी मर जाता है। "घातयेति" शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि हस्तापकर्षण के लिए असमर्थता होने के कारण यह गर्भ दोनों अर्थात् गर्भ एवं गर्भिणी के लिए विपत्तिकारक होता है[४]। महर्षि सुश्रुत ने इस वर्णन के पश्चात् ही लिखा है कि असह्य विकार या व्याधि हो जाने पर गर्भ का पातन श्रेयस्कर होता है, गर्भिणी का विपर्यास न करके अर्थात् उसकी स्थिति को और गम्भीर न करते हुए चिकित्सा के लिए उपलब्ध काल (प्राप्तकाल) का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए[२]। इस वर्णन का अप्रत्यक्ष रूप से यह भी अर्थ निकाल सकते हैं कि यदि स्त्री की स्थिति गम्भीर हो रही है तथा मूढ़गर्भ का प्रसव मन्त्रादि या हस्तापकर्षण से नहीं हो रहा तो स्त्री के जीवन की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार से गर्भ का पात करा देना अर्थात् उसे बाहर निकालना ही श्रेयस्कर है चाहे वह जीवित गर्भ ही क्यों न हो अर्थात् आततायिक अवस्था में जीवित गर्भ का भी दारण कर सकते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि चेतनायुक्त (जीवित) गर्भ का विदारण करने से वह अपने अङ्गों को विषमरूप से (चारो ओर या असामान्य दिशा में) फेंकता है। टीकाकार इन्दु का मत है कि वह गर्भ स्वयं के ही साथ श्वासावरोध करके माता को भी मार देता है[३]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि जीवित गर्भ का छेदन नहीं करना चाहिए क्योंकि छेदन करने से वह माता को भी अपने ही साथ मार डालता है।

भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर के लेखकों ने महर्षि सुश्रुत का अक्षरशः अनुकरण किया है[४]।

Alive fetus should never be split or cut, because due to rending the fetus kills the mother and dies itself.

Once the manual extraction fails the condition becomes dangerous for the mother and fetus both is the opinion of Ḍalhaṇa. Suśruta has further mentioned that if the disease or condition becomes very serious, the expulsion or delivery of fetus must be completed, one

१. घातयेदिति सर्वथैवाशक्यहस्ताकर्षे द्वयोरपि गर्भगर्भिण्योर्विपत्तिसिद्धेः ·····॥ (सु० सं० चि० १५/१० की डल्ह० टीका)

२. अविषह्ये विकारे तु श्रेयो गर्भस्य पातनम्। न गर्भिण्या विपर्यासस्तस्मात् प्राप्तं न हापयेत् ॥ ११॥
(शस्त्रमन्त्रादिनोपायेनासिद्धौ गर्भच्यावनं गर्भिणीरक्षार्थं कार्यमित्याह-अविषह्य इति। सोढुमशक्ये विकारे व्याधौ सति किं कर्तव्यमित्याह-श्रेयो गर्भस्येति श्रेयो भवतीत्यर्थः। ·····तस्मात् प्राप्तकालं न हापयेत्रोलङ्घयेदित्यर्थः-डल्हण)
(सु० सं० चि० १५/११ व डल्ह० टीका)

३. विषमं कृत्वाङ्गानि विक्षिपन् निरुच्छ्वासीकृत्य जननीं हन्यादिति संबन्धः। (अ० सं० शा० ४/३३ की इन्दु टीका)

४. सचेतनं तु शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत्। स दीर्यमाणो जननीनामात्मानं चापि मारयेत् ॥
(भा० प्र० चि० ७०/१२३, एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Scanned with CamScanner

should not neglect the woman lest her condition deteriorates, thus should not waste or cross the limit of available (short) time. This verse indicates that if medicinal treatment and manual extraction has failed and the condition of woman is deteriorating, the delivery must be effected at the earliest, even one may have to split/destruct the alive fetus; or in other words during acute emergency alive fetus can also be destructed.

Vāgbhaṭa I says that when an alive fetus is cut, it throws its body parts all around abnormally (thus poses problem in extraction). Indu says that the mother dies due to asphyxia.

Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have expressed the views identical to Suśruta.

१३) *मूढ़गर्भ का शस्त्र-कर्म (Surgery or destructive operations for mūḍhagarbha)*

अ) सामान्य सिद्धान्त (General principles)

यद् यदङ्गं हि गर्भस्य तस्य सज्जति तद् भिषक् । सम्यग्विनिहरेच्छित्त्वा रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥ १३॥
गर्भस्य गतयश्चित्रा जायन्तेऽनिलकोपतः । तत्रानल्पमतिर्वैद्यो वर्तेत विधिपूर्वकम् ॥ १४॥
मण्डलाग्रेण कर्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता । वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात् कदाचन ॥ १६॥
(सु० सं० चि० १५/१३, १४, १६)

यद्यद्वायुवशादङ्गं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः । तत्तच्छित्वा हरेत्सम्यग्रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥
(अ० सं० शा० ४/४२,)

मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ ३०॥
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत् ॥ ३१॥
यद्यद्वायुवशादङ्गं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः । तत्तच्छित्वाऽऽहरेत्सम्यग्, रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥ ३५॥
गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः । तत्रानल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥ ३६॥
(अ० हृ० शा० २)

वैद्य को स्त्री की यत्नपूर्वक रक्षा करते हुए गर्भ का जो जो अङ्ग संसक्त हो रहा हो (या मार्ग में आकर अवरोध उत्पन्न कर रहा हो) उस अंग का छेदन करके भलीभाँति निकालना चाहिए। वायु के प्रकोप के कारण गर्भ की विचित्र (अनेकों प्रकार की) गतियाँ हो जाती हैं। बुद्धिमान वैद्य को चाहिए कि विधिपूर्वक कार्य करे। ज्ञाता वैद्य मण्डलाग्र शस्त्र से अन्दर का (अन्तर्स्थित गर्भ का) छेदन करे। वृद्धिपत्र के तीक्ष्णाग्र होने के कारण स्त्री की प्राण-हानि की सम्भावना रहती है (स्त्री के अन्दर के अङ्गों यथा गर्भाशय या आन्त्र आदि में आघात होने से मृत्यु की सम्भावना रहती है)।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि वायु के कारण गर्भ का जो जो अङ्ग सक्त हो रहा हो (अपत्यमार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहा हो) उसे स्त्री की रक्षा करते हुए खण्ड-खण्ड काटकर यत्न-पूर्वक भलीभाँति बाहर निकालना चाहिए।

अष्टङ्गहृदयकार ने लिखा है कि मण्डलाग्र एवं अङ्गुलिशस्त्र (चि० १८) के द्वारा यह कर्म (गर्भशल्योद्धरण) प्रशस्त होता है, वृद्धिपत्र को तीक्ष्णाग्र होने के कारण योनि में प्रविष्ट नहीं करना चाहिए। वायु के कारण (गर्भ का) जो जो अङ्ग सक्त हो रहा हो उसे यत्नपूर्वक स्त्री की रक्षा करते हुए खण्ड-खण्ड काटकर भलीभाँति आहरण करना चाहिए। अनिल की विगुणता के कारण गर्भ की अनेकों विचित्र गतियाँ होती हैं अतः बुद्धिमान वैद्य को अवस्थानुसार कर्म करना चाहिए।

भावप्रकाश एवं योगरत्नाकरकार ने अष्टाङ्गसंग्रह का अक्षरशः पालन किया है।[1]

१. यद्यदङ्गं हि गर्भस्य यौनौ सक्तं तु तद्भिषक् । सम्यग्विनिहरेच्छित्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नतः॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२५)
यद्यदङ्गं·····सज्जति तद्भिषक् । ·····॥ (भावप्रकाश सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

The surgeon protecting the woman very carefully should split/cut the part of the fetus which is fixed or is producing obstruction. The fetus has various abnormal presentations/positions due to aggravation of *vāyu*. Taking congnizance of this fact the surgeon should take appropriate decisions and deliver the fetus. The wise surgeon should destruct this inside situated fetus with the help of *maṇḍalāgra* or *aṅguli śarstra*. (fig 18); with the use of *vṛddhipatra* which is very sharp edged instrument there is risk of maternal death (due to injury).

आ) मूढ़गर्भ के शस्त्र से छेदन की विधि (Method of destruction/decapitation of the fetus)

स्त्री को आश्वासन देकर मण्डलाग्र अथवा अङ्गुलि शस्त्र से[1,2]–

१) सर्वप्रथम शिर का विदारण करके (चि० २५ अ) शिर के कपालों (कपालास्थियों) का आहरण कर (चि० २५ ब) शंकु (चि० १८) से उर, कक्षा[1], चिबुक एवं तालु को[2,3] पकड़कर आहरण करें[1,2,3]।

After assuring and encouraging the woman the surgeon with the help of *maṇḍalāgra* or *aṅgulišastra* should—

i) After perforating the head (bregma, vertex or any other central part of head i.e. craniotomy) (fig. 25a) and subsequently extracting the flat bones of skull (fig. 25b) the surgeon should grasp the chest, axilla, chin or palate with the *śaṅku* (hook) and extract the fetus.

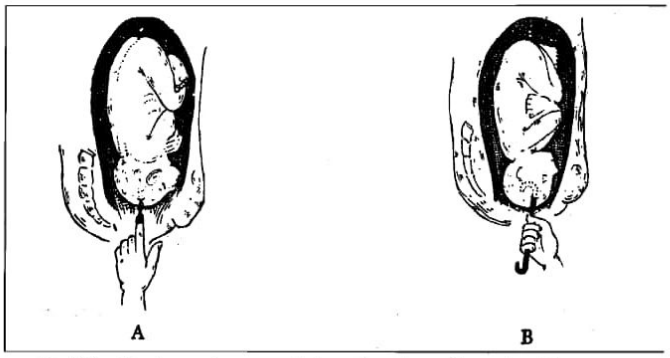

Fig (25) : Craniotomy in a case of obstruction due to *śira* or head (brow presentation)). (A) the bregma is perforated with *aṅgulišastra;* (B) then flat bones of head are extracted with *śaṅku* (hook).

२) शिर का विदारण न होने पर अक्षिकूट (चि० २६ अ) अथवा गण्ड (शंखप्रदेश) (चि० २६ ब) के द्वारा (इनक विदारण करके अथवा इनको पकड़कर आहरण करे)[1,2,3]।

नोट –सन्दर्भ पृष्ठ ५२९ में देखें।

Scanned with CamScanner

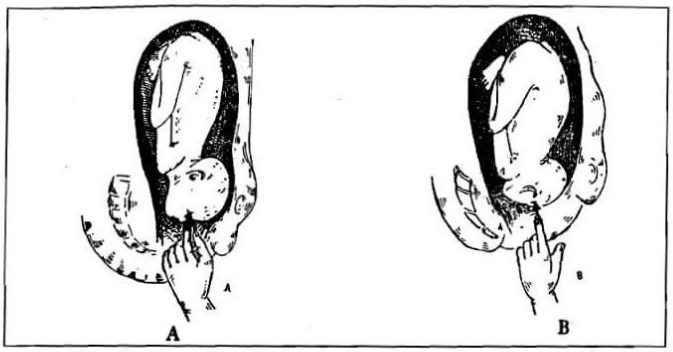

Fig (26) : Craniotomy in *mukhodaya* i.e. face or temporal presentation. (A) eye ball or (B) temporal region is perforated with *aṅgulišastra.*

ii) In case of inability in rending (perforating) the head, *akṣikūṭa* (hallow of eyeball) (fig. 26a) or *śaṅkhapradeśa* (temporal region) (fig. 26b) should be perforated (craniotomy) and fetus extracted.

३) अंस या कंधे से सक्त होने पर स्कन्ध देश से बाहु को काटकर (चि० २७ अ एवं ब) आहरण करें[१,२,३] (चि० २७ स)।

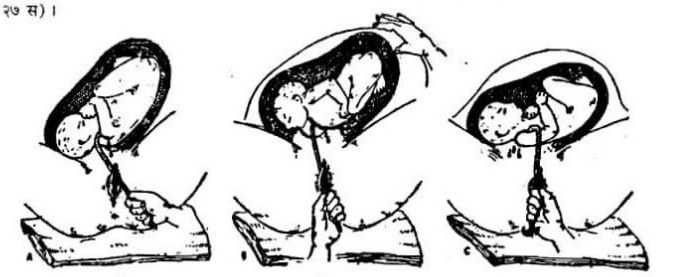

Fig (27) : Destructive operation in *tiryaka-āgata* or shoulder presentation. The arm is cut with the help of *maṇḍalāgra śastra* from the region of shoulder in (A) dorso-anterior or (B) dorso-posterior positions (C) the cut arm is hooked with *śaṅku* (hook) and extracted.

नोट- सन्दर्भ पृष्ठ ५२९ में देखें।

iii) In obstruction being caused due to fixation of *aṃśa* (shoulder), the arm should be cut from the region of shoulder (fig. 27a&b), delivered and fetus extracted (fig. 27c).

४) दृति (मशक) की भाँति फूले हुए वात-पूर्ण उदर को विदारण करके (चि० २८) आन्त्रों के निकल जाने से शिथिल (उदर के) हो जाने पर आहरण करें[१,२,३]।

iv) In case of obstruction being caused due to abdomen full of *vāta* (gases) and distended like *dṛti* (leathern bag for holding water), the abdomen should be split (perforated-evisceration) (fig. 28). After abdomen becomes soft due to protrusion of intestines, the fetus should be extracted.

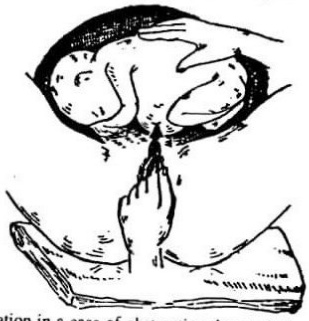

Fig (28) : Evisceration in a case of obstruction due to *Jathara* or distended abdomen. The abdomen is perforated with *aṅguli śastra.*

५) जंघा[१,३] या कटि[३] से सक्त होने पर जघनकपालों (नितम्बास्थियों) को विदीर्ण करके प्रसव करायें[१,२,३]। (चि० २९ अ एवं ब)

v) When the obstruction is due to fixation of thighs or hips, then hipbones should be split and fetus extracted. (fig. 29a & b).

१. ततः स्त्रियमाश्वास्य मण्डलाग्रेणाङ्गुलीशस्त्रेण वा शिरो विदार्य, शिरःकपालान्याहृत्य, शङ्कुना गृहीत्वोरसि कक्षायां वापहरेत्; अभिन्नशिरसमक्षिकूटे गण्डे वा, अंससंसक्तस्यांसदेशे बाहुं छित्त्वा, दृतिमिवाततं वातपूर्णोदरं वा विदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेत्; जघनसक्तस्य वा जघनकपालानीति ॥ (सु० सं० चि० १५/१२)

२. अथ स्त्रियमाश्वास्य मण्डलाग्रेणाङ्गुलिशस्त्रेण वा विदार्य शिरःकपालान्याहृत्य शङ्कुना गृहीत्वा चुबुके तालुन्युरसि कक्षायां वाऽपहरेत्। अभिन्नशिरसं वाऽक्षिकूटे गण्डे वा। तथांऽससंसक्तस्यांसदेशे बाहुं छित्त्वा दृतेरिवाध्मातस्य वातपूर्णमुदरमवदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेत्॥ जघनसक्तस्य जघनकपालानि दारयित्वेति ॥ (अ० सं० शा० ४/४१)

३. पूर्वं शिरः कपालानि दारयित्वा विशोधयेत् ॥ ३१॥
कक्षोरस्तालुचिबुकप्रदेशेऽन्यतमे ततः। समालम्ब्य दृढं कर्षेत्कुशलो गर्भशङ्कुना ॥ ३२॥
अभिन्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि। बाहुं छित्त्वांऽससक्तस्य वाताध्मातोदरस्य तु ॥ ३३॥
विदार्य कोष्ठमन्त्राणि बहिर्वासं निरस्य च। कटीसक्तस्य तद्वच्च तत्कपालानि दारयेत् ॥ ३४॥
(अ० ह० शा० २/३१ से ३४)

Scanned with CamScanner

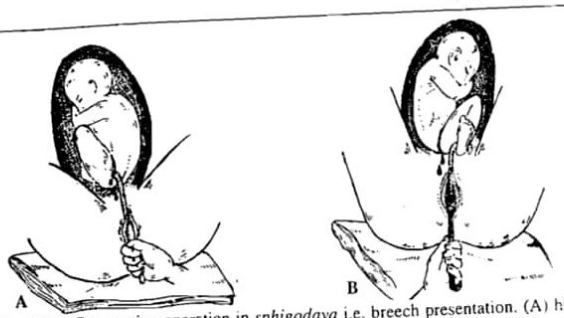

Fig (29) : Destructive operation in *sphigodaya* i.e. breech presentation. (A) hip bones are cut near the thighs with *mandalāgra śastra;* (B) cut leg is hooked with *śaṅku* (hook) and extracted.

संक्षेप में जिस जिस अङ्ग से गर्भ अवरोध उत्पन्न कर रहा हो उसे काटकर प्रसव करावें।

महर्षि हारीत ने संक्षेप में लिखा है कि अर्द्धचन्द्र शस्त्र के द्वारा मृत-गर्भ की दोनों बाहुओं का छेदन कर प्रसव करावे[1]।

In summary, it can be said that what-so-ever part of the fetus is creating obstruction, same should be cut/split and fetus extracted.

Hārīta says that with *ardhachandra śastra* both arms of fetus should be cut and fetus extracted.

१४) मूढ़गर्भ शल्योद्धरण के पश्चात् कर्म *(Post-operative management after extraction of mūḍhagarbha)*

मूढ़गर्भ के निकल जाने के बाद:-

१) पूर्ववर्णित उपायों (पृष्ठ ४५८ से ४६४) से न निकलती हुई अपरा का पातन करायें[1,2,3]।

२) इस प्रकार शल्य (मूढ़गर्भ तथा अपरा) निकल जाने के बाद उस स्त्री को उष्ण जल से अवसिंञ्चन करावें (धुलाकर स्वच्छ करें) तथा देह का अभ्यङ्ग (तैल का मर्दन) करके योनि में स्नेह (तैल) की पिचु धारण करावे। यह करने से योनि मृदु हो जाती है तथा शूल का भी शमन होता है[1,2,3,4,5]।

३) निम्नाङ्कित औषधियों का प्रयोग करें-

अ) कृष्णा, कृष्णामूल, शुण्ठी, एला, हिंगु, भार्ङ्गी, दीप्यका, वचा, अतिविषा, रास्ना तथा चव्य को चूर्ण करके स्नेह (तैल[6]) के साथ रक्त तथा क्लेदादि[7] दोषों के बाहर निकालने, पार्श्व एवं योनि[8] की वेदना तथा काठिन्य[9] की शान्ति के लिये पिलावे, अथवा इन्हीं औषधियों का स्नेह विरहित क्वाथ, कल्क या चूर्ण प्रयोग करें[1]।

आ) शाकत्वक्, हिंगु, अतिविषा, पाठा, कटुकरोहिणी तथा तेजोवती के चूर्ण को पूर्वोक्त विधि से प्रयोग करावें[1,2,3] (दोष निष्कासन तथा वेदना-शमनार्थ[2])।

१. अथवार्द्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं संच्छिद्य बाहू निःसारयेत्॥ (हा० सं० तृ० ५२/१७)

नोट - मूढ़गर्भ-शल्योद्धरण के पश्चात्कर्म के सन्दर्भ पृष्ठ ५३१ व ५३२ में देखें।

इ) दीप्यका, अतिविषा, रास्ना, हिंगु, एला एवं पञ्चकोल के चूर्ण, कल्क या क्वाथ को स्नेह (घृत) के साथ पान करावें[2,3]।

ई) शिरीष एवं ककुभ का क्वाथ आचमन के लिए हितकर है[1]। इसका पिचु योनि में धारण करना चाहिए[2,3]।

उ) वायु का शमन करने के लिए योनि-सन्तर्पण, अभ्यङ्ग, पान, बस्ति एवं भोजन के रूप में बलातैल हितकारी है। बलातैल की ही भाँति (अभ्यङ्ग, पान, पिचु एवं बस्ति आदि में) शतपाक्र बलातैल, अतिबला, गुडूचि तथा नीलोत्पल आदि से निर्मित तैल का प्रयोग करें[1]।

४) विभिन्न औषधियों एवं पथ्यों का प्रयोग-काल निम्नाङ्कित है। उपर्युक्त (अ, आ एवं इ के अन्तर्गत वर्णित औषधियों का प्रयोग तीन[1,2,3] पाँच[1] या सात [1,2,3] दिन तक तत्पश्चात् स्नेह पान एवं सायंकाल सुसंस्कृत आसव या अरिष्ट का पान करना चाहिए (अर्थात् प्रातःकाल स्नेह पान एवं सायंकाल आसव, अरिष्ट का पान करना चाहिए)[6]। तत्पश्चात् एक दशाह (पूर्ववर्णित दस दिन के पश्चात्) वातहर औषधियों से सिद्ध दुग्ध-पान एवं उसके पश्चात् एक दशाह तक मांस रस का प्रयोग करना चाहिए। बाद में (इस प्रकार तीन दशाह अर्थात् एक मास के पश्चात्) स्निग्ध, लघु एवं पथ्य अल्प भोजन, स्वेद, बलातैलादि का अभ्यंग एवं अन्य स्नेह (पिचु, बस्ति, पान के रूप में) का प्रयोग चार मास तक करना चाहिए[1,2,3] उसे इस काल में क्रोध नहीं करना चाहिए। उपद्रवों से रहित, विशुद्ध, बल एवं वर्ण से युक्त हो जाने पर चार मास के पश्चात् यह पथ्य विधि छोड़ दें[1] तथा क्रमशः अन्य सुखों का उपभोग करें[2,3]।

टीकाकार डल्हण का मत है कि उपर्युक्त प्रबन्ध-विधि प्रसव-काल में ही उत्पन्न (पूर्ण प्रगल्भ गर्भ में उत्पन्न) मूढ़गर्भता में गर्भ एवं अपरा के निर्हरण के पश्चात् की है। अकाल मूढ़गर्भा (अप्रगल्भ शिशु या चौथे पाँचवें मासादि) में स्त्री को शल्य-निर्हरण के पश्चात् केवल लंघन कराकर उद्दालक आदि अस्त्रों की स्नेह एवं लवण विरहित यवागू जितने मास का गर्भ हो उतने दिन तक पीने को दें। अनन्तर मास (सप्तम, अष्टम आदि) में उपर्युक्त वर्णित स्नेहादि का विधान अकाल मूढ़गर्भा में भी करें[9]।

१. अथपातन्तीमपरां पातयेत् पूर्ववत् भिषक्। ....॥ १७॥
एवं निर्हृतशल्यां तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा। ततोऽभ्यक्तशरीरायां योनौ स्नेहं निधापयेत्॥ १९॥
एवं मूढ़ीभवेद् योनिस्तच्छूलञ्चोपशाम्यति। कृष्णात्मूलशुण्ठ्येला हिङ्गुभार्गीः सदीप्यकाः॥ २०॥
वचामतिविषां रास्नां चव्यं संचूर्ण्य पाययेत्। स्नेहेन दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च॥ २१॥
क्वाथं चैषां तथा कल्कं चूर्णं वा स्नेहवर्जितम्। शाकत्वग्भिङ्ग्वतिविषापाठाकटुकरोहिणीः॥ २२॥
तथा तेजोवतीं चापि पाययेत् पूर्ववद् भिषक्। त्रिरात्रं पञ्चसप्ताहं ततः स्नेहं पुनः पिबेत्॥ २३॥
पाययेतासवं नक्तमरिष्टं वा सुसंस्कृतम्। शिरीषककुभाभ्यां च तोयमाचमने हितम्॥ २४॥
उपद्रवाञ्ज येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत्। सर्वतः परिशुद्धा च स्निग्धपथ्याल्पभोजना॥ २५॥
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेत् क्रोधविवर्जिता। पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम्॥ २६॥
रसं दशाहं शेषे तु यथायोगमुपाचरेत्। व्युपद्रवां विशुद्धां च ज्ञात्वा च बलवर्णिनीम्॥ २७॥
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो विसृजेत् परिहारतः। योनिसन्तर्पणेऽभ्यङ्गे पाने वस्तिषु भोजने॥ २८॥
बलातैलमिदं चास्यै दद्यादनिलवारणम्। बलामूलकषायस्य .....॥ २९॥ .....घनिनश्चापि ये नराः॥ ३९॥
बलाकषायपीतेभ्य .....॥ ४०॥ .....प्रकीर्तितः॥ ४३॥
बलाकल्पेनातिबला .....। .....बुद्धिमान्॥ ४४॥
नीलोत्पलं .....। ..... दापयेत्॥ ४६॥
सर्वेषामेव जानीयादुपयोगं चिकित्सकः। बलातैलवदेतेषां गुणांश्चैव विशेषतः॥ ४७॥ (सु० सं० चि० १५/१७, १९ से ४७)

क्रमशः .....

Scanned with CamScanner

५) (इस काल में उत्पन्न) उपद्रवों की यथाविधि चिकित्सा करें[१,२,३]।

६) महर्षि चरक वर्णित (पृष्ठ ४७७) मृतगर्भ-शल्योद्धरण के पश्चात् की चिकित्सा का भी प्रयोग करना चाहिए।

७) मूढ़गर्भ निकल जाने के पश्चात् स्वेदन कर्म लाभदायक है[४]। विशेषकर उपद्रव रहित स्त्री का स्वेदन करें।[५]

८) कष्ट से प्रसव वाली स्त्री को शीतल जल पथ्य है[६]।

After extracting the fetus following management should be done—

i) Placenta should be delivered with the methods already described.

ii) After expulsion of fetus and placenta, the woman should be irrigated with hot water (for cleansing), then her body should be massaged (with oil) and tampon of fat (oil) should be placed in vagina. With this treatment her *yoni* (vagina) becomes soft and pain subsides.

iii) Following drugs should be used—

a) Powdered *kṛṣṇā, kṛṣṇāmūla, śunṭhī, elā, hiṅgu, bhārṅgī, dīpyakā, vacā, ativiṣā,*

---

२. अथापतन्तीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक्। एवं निर्हृतशल्यां च सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ४३॥
दद्यादभ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः। योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चास्याः प्रशाम्यति ॥ ४४॥
दीप्यकातिविषारास्नाहिङ्ग्वेलापञ्चकोलकात्। चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्वाथं वा पाययेत्तथा ॥ ४५॥
कटुकाऽतिविषापाठाशाकत्वग्पिण्डहृतेजिनीः। तद्वच्च दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च ॥ ४६॥
त्रिरात्रमेव सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत्। सायं पिबेदरिष्टं च तथा सुकृतमासवम् ॥ ४७॥
शिरोषककुभक्वाथपिचून् योनौ च निक्षिपेत्। उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ ४८॥
पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम्। रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना ॥ ४९॥
स्वेदाभ्यङ्गपरा स्नेहान् बलातैलादिकान् भजेत्। ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च ॥ ५०॥ (अ० सं० शा० ४)

३. अथापतन्तीमपरां .....। एवं निर्हृतशल्यां तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ३९ ॥
दद्यादभ्यक्त .....। .....प्रशाम्यति ॥ ४०॥
दीप्यका .....। .....पाययेत्ततः ॥ ४१॥ कटुका .....। .....वेदनोपशमाय च ॥ ४२॥
त्रिरात्रमेव .....सुखानि च ॥ ४३ से ४६॥ (अ० सं० सदृश ही) (अ० हृ० शा० २/३९ से ४६)

४. एवं निर्हृतशल्यां तां.....स्नेहं विधारयेत् ॥ १२६॥
एवं मृद्वीभवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ (सु० सदृश ही) (भा० प्र० चि० ७०/१२६,१२७)

५. एवं ..... स्नेहं निधापयेत्॥ एवं.....शाम्यति ॥ (भा० प्र० सदृश ही) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

६. एवं सायमरिष्टं प्रातः स्नेहे पीते। (अ० सं० शा० ४/४७ की इन्दु टीका)

७. प्रसवकाल एवं जातमूढगर्भायाः कृतकर्मणापहृतापरायाः पार्श्वयोनिशूलकाठिन्यशान्त्यर्थं रक्तक्लेदादिदोषप्रसेकार्थं च तैलाक्तयोनेस्तैलेन कृष्णादिपानम्, अकालमूढगर्भायास्तु लङ्घितायाः पुनरुत्रकाले उद्दालकादीनामन्नानामस्नेहल-वणाभिर्यवागूभिरुपचारो यावन्तो मासा गर्भस्य तावन्त्येवाहानि; अनन्तरमासे तु स्नेहादिविधानमकालमूढगर्भाया अपि पूर्ववत्॥ (सु० सं० चि० १५/२० से २८ की डल्हण व्याख्या)

८. पश्चात्स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगते तथा। काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या तितम्बिनी ॥ (शा० सं० उ० २/८)

९. पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भाऽनुपद्रवा ॥
सम्यक् प्रजाता काले या पश्चात्स्वेद्या विजानता ॥ (सु० सं० चि० ३२/१८)

१०. क्लेशात् प्रसूते तृषिता च या स्त्री। .....॥ ३६॥
.....तेषां जलं शीतमुशन्ति पथ्यम् .....॥ ४०॥ (का० सं० कल्प० ७)

rāsnā and *cavya* should be prescribed with fat preferably oil for relief of pain and rigidity of vagina and flanks and excretion of *rakta* (blood) and *kleda* (moisture) etc. *doṣas*. Alternatively decoction, paste or powder of these drugs without fat (*ghṛta* or oil) can also be used.

b) For relief of pain and excretion of *doṣas* powdered stembark of *śāka, hiṅgu, ativiṣā, pāṭhā, kaṭukarohiṇī* and *tejovatī* be prescribed with the method described supra.

c) Powder, paste or decoction of *dīpyakā, ativiṣā, rāsnā, hiṅgu, elā* and *pañcakola* should be prescribed with *ghṛta*.

d) Decoction of *śirīṣa* and *kakubha* is beneficial if held in mouth. Tampon soaked with this should be placed in vagina.

e) For suppression of *vāyu* use of *balātaila* in the form of tampon or vaginal irrigation (*yoni-santrapaṇa*), massage, tisane, enema and with diet is beneficial. Just like *balātaila*, others such as *śatapāka balātaila* and oils prepared with *atibalā, guḍūci* and *nīlotpala* etc. can be used.

iv) Duration of use of drugs and congenial diet is as follows—

For three, five or seven days medicine described above (under 3a, b, c), then in the morning fat (medicated *ghṛta* or oil) and in the evening well treated *āsava* and *ariṣta* should be given (total 10 days). For subsequent ten days milk medicated with the drugs capable of suppressing *vāta*, then for another ten days meat soup should be prescribed. After this period (three groups of ten days each i. e. one month) use of unctous, light and congenial diet in little quantity, sudation, and use of *balā* etc. oils as massage, tampon, enema or tisane should be continued for four months (total four months or diet etc. for further 3 months). During this period she should avoid anger. After relief from complications and attainment of proper strength and complexion within these four months, she should discontinue this congenial mode and enjoy other pleasures of life.

Ḍalhaṇa has clarified that above procedure is applicable in cases of extraction of full term fetus. In case of *mūḍhagarbha* of fourth, 5th or 6th month of pregnancy, after extracting the fetus only fasting followed by fat and salt-free gruel made of *uddālaka* etc. cereals should be prescribed for the number of days corresponding to the duration of pregnancy in months (i. e. 4th month pregnancy then four days treatment). After this period i. e. in seventh and eighth month the procedure described above should be prescribed.

v) Complications arising during this period should be managed with appropriate measures.

vi) The treatment described for intrauterine dead fetus by Caraka can also be used.

vii) Use of sudation is beneficial, specially to the one who is free from complications.

vii) Use of cold water is congenial.

Scanned with CamScanner

१५) शल्योद्धरण के पश्चात् चिकित्सान्तर्गत प्रयुक्त बलादि तैलों का वर्णन *(Description of balā etc. oils used in post-operative management of mūḍhagarbha)*

१) *बला तैल (Balātaila)*—

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि बलामूल कषाय, यव, कोल एवं कुलत्थ का क्वाथ, दशमूल क्वाथ तथा दुग्ध प्रत्येक ८-८ भाग अर्थात् ३२ भाग द्रव्यों में एक भाग स्नेह (तैल का) मिलायें[१]। टीकाकार डल्हण ने प्रक्षेप द्रव्यों को स्नेह के चतुर्थांश मिलाने का निर्देश दिया है[२]। अष्टाङ्गसंग्रह[३] एवं अष्टाङ्गहृदय[४] पुस्तकों में बलामूल क्वाथ एवं दुग्ध ६-६ भाग (कुल १२ भाग), यव, कोल एवं कुलत्थ तथा दशमूल सब का क्वाथ मिलाकर एक भाग तथा एक भाग स्नेह लेने का विधान है।

प्रक्षेप द्रव्यों में कुछ मत वैभिन्य है। काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, मधुयष्टी, सैंधव, अगरु, देवदारु, मञ्जिष्ठा, चन्दन, कुष्ठ, कालानुसारिवा, शैलेयक, तेजपत्र, तगर, सारिवा, वचा, शतावरी, अश्वगंधा, शतपुष्पा, एला तथा पुनर्नवा द्रव्यों का वर्णन तीनों ही आचार्यों ने किया[१,३,४] है। (अष्टाङ्गहृदय ने शूर्पपर्णी शब्द जो मुद्ग एवं माषपर्णी दोनों का द्योतक है प्रयुक्त किया है)।

उपर्युक्त द्रव्यों के अतिरिक्त महर्षि सुश्रुत ने छिन्नरुहा, मृद्वीका, कर्कटशृंगी, तुगाक्षीरी, पद्मक, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, जीवन्ती (मधुर अर्थात् काकोल्यादि गण के शेष द्रव्य), सर्जरस, सरल तथा जटामांसी द्रव्यों का उल्लेख किया है[१]।

अष्टाङ्गसंग्रह में क्षीरशुक्ला, वरा (त्रिफला) त्वक्, सरल, रस (बोल) तथा बला का वर्णन है[३]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी क्षीरशुक्ला, वरा (त्रिफला) तथा त्वक् के साथ रस (बोल) का वर्णन किया है[४]।

उपर्युक्त वर्णित क्वाथादि एवं तैल में प्रक्षेप द्रव्यों का कल्क मिलाकर मृदु अग्नि[३,४] में या भलीभाँति[१] पाक कर सिद्ध हो जाने पर[१,३,४] सोने चाँदी या मिट्टी[१] के पात्र में भर कर गुप्त स्थान[१,३] या सुरक्षित स्थान में रखें, इस तैल का नाम बलातैल है। महर्षि धन्वन्तरि से यह तैल स्तुत्य है। इस तैल का निर्माण राजा या राजा की कोटि के मनुष्य, सुखी, सुकुमार तथा धनी व्यक्तियों के लिए करना चाहिए[१]।

महर्षि शार्ङ्गधर ने बलातैल को सूतिका के लिए पथ्य माना है चूँकि नाम एवं घटक लगभग एक से ही हैं अतः उसका भी उल्लेख किया जा रहा है। बलामूल कषाय, दशमूल कषाय, कुलत्थ, यव एवं कोल का कषाय तथा दुग्ध प्रत्येक ८-८ भाग तथा तैल एक भाग (सु० सदृश) में जीवनीयगण, शतावरी, देवदारु, मञ्जिष्ठा, कुष्ठ, शैलेयक, तगर, अगरु, सैन्धव, वचा, पुनर्नवा, सारिवाद्वय, तेजपत्र, शतपुष्पा, अश्वगंधा (सु० सदृश) तथा एला एवं जटामांसी का प्रक्षेप देकर तैल निर्माण करें[१]।

महर्षि काश्यप द्वारा धात्रीचिकित्सान्तर्गत वर्णित बलातैल इस बलातैल से पूर्णतया भिन्न है अतः काश्यप-वर्णित बलातैल का धात्रीचिकित्सा के अन्तर्गत वर्णन किया जायगा।

This oil has been described by Suśruta and both the Vāgbhaṭas. Śārṅgadhara has prescribed this oil to a puerperal woman. Since the ingredients and uses are similar to certain extent, hence the same is also being described here. Kāśyapa has also prescribed *balātaila* for the treatment of diseases of wet-nurse, that being entirely different is not recapitulated here.

Ingredients—

There is some difference of opinion regarding constituents and their proportion amongst various authors, however, drugs used as basic decoction are identical as given

नोट - सन्दर्भ पृष्ठ ५३६ में देखें

hereunder—

a) Decoction—

Suśruta and Śārṅgadhara	Both Vāgbhaṭas
Decoction of root of *balā, daśamūla* and milk each eight parts (total 24 parts) decoctions of *yava, kola, kulattha* all together eight parts and oil one part.	Decoction of root of *balā* and milk each six parts (total 12 parts), decoctions of *yava, kola, kulattha* and *daśamūla* all together one part and oil one part.

b) Drugs—

Drugs described by all—*Kākolī, kṣirakākolī, jīvaka, ṛṣcbhaka, medā, mahāmedā, saindhava, agaru, devadāru, mañjiṣṭhā, kuṣṭha, kālānusārivā. śaileyaka, tejapatra, tagara, sārivā, vacā, śatāwarī, aśwagandhā, śatapuṣpā, elā* and *punarnavā.*

Additional drugs described by Suśruta and both Vāgbhaṭas—*Mudgaparṇī, māṣaparṇī, madhuyaṣṭī, candana* and *sarala.*

Drugs described only by Suśruta—*Chinnaruhā, karkaṭaśṛṅgī, tugākṣīrī, padmaka, prapauṇḍarīka, mṛdwīkā, jīvantī* and *sarjarasa* (not in AH).

Drugs described by Suśruta and Śārṅgadhara—*Ṛddhi, vṛddhi, jaṭāmāṃsī.*

Drugs described by both Vāgbhaṭas—*Kṣiraśuklā, twak, varā (triphalā)* and *rasa* (*bola*) with *balā* (by Vāgbhaṭa I).

Method of preparation—

All the drugs (described under b) together should be taken in 1/4 quantity of oil. The decoctions (described under a) and oil should be mixed with the paste of these drugs and cooked in low fire. When oil is properly prepared this should be filled in the pot made of gold, silver or clay and be kept in secret and protected place.

This oil is praised by lord Dhanwantari. It should be prepared for kings, other influential persons like kings, delicate, cheerful and wealthy persons.

बला तैल के गुण या प्रयोग (Action and uses of balā taila)

इसे पान, नावन, अभ्यङ्ग एवं बस्ति के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

सूतिका स्त्री को बलानुसार पीने को देना चाहिए, जो स्त्री गर्भ की इच्छा रखने वाली हो (वन्ध्या हो), पुरुष क्षीण शुक्रवाला हो, वात-क्षीण, मर्माहत, मथित (कुचले हुए), अभिहत (चोट खाए हुए), भग्न (अस्थि टूटे हुए) तथा श्रम से थके हुए आदि सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए हितकारी है। आक्षेपक आदि वात-व्याधियों में लाभकारी है, हिक्का, कास, अधिमन्थ, गुल्म तथा अति कठिन श्वास में लाभकर है। षड्मास तक प्रयोग करने के पश्चात् आन्त्रवृद्धि ठीक हो जाती है, पुरुष की धातुओं की वृद्धि होती है तथा उसका यौवन स्थिर हो जाता है[१]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी शब्दभेद से लिखा है कि राजा, राजा-सदृश पुरुष, कृश, सूतिका, शिशु, वृद्ध, सुकुमार, शूल पीड़ित महाग्रहों से आक्रान्त, दीर्घकालीन या जीर्ण रोग से पीड़ित, मर्म-विद्ध, पतित, अभिहत, भग्न, विश्लिष्टांग, दैवप्रकोप तथा मानसिक-ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों को पान, नस्य, अभ्यङ्ग, तथा बस्ति के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग

नोट - सन्दर्भ पृष्ठ ५३६ में देखें

Scanned with CamScanner

से बल, पौरुष, स्मृति, मेधा, अग्नि, वीर्य तथा ओज की वृद्धि होती है। पक्षाघात, आक्षेपक तथा अर्दित आदि विविध वात-विकार, गुल्म, हिक्का, श्वास तथा कास का निवारण होता है। नित्यप्रति प्रयोग करने से छह मास में आन्त्रवृद्धि का शमन एवं वन्ध्या स्त्री को इच्छानुकूल गुणवान् पुत्र मिलता है[1]।

अष्टाङ्गहृदय में संक्षेप में लिखा है कि सूतिका, बाल, मर्मास्थि-क्षत, क्षीण व्यक्तियों द्वारा यह पूज्य है। ज्वर, गुल्म, ग्रह-बाधा, उन्माद, मूत्राघात तथा आन्त्रवृद्धि को ठीक करता है। यनिरोगों तथा क्षय का नाश करता है[4]।

महर्षि शार्ङ्गधर मतानुसार यह तैल गर्भेच्छुक (गर्भ की इच्छा रखने वाली स्त्री) क्षीण-रेतस पुरुष, व्यायाम से क्षीण-गात्र-स्त्री, सूतिका तथा राजाओं के योग्य प्रशस्त तैल है। सभी प्रकार के वात-विकारों को यह बलातैल दूर करता है[5]।

१. बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ॥ २९॥
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा। अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ॥ ३०॥
पचेदाक्षैय मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम्। तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ॥ ३१॥
मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुसारिवाम्। मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम्॥ ३२॥
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम्। तत् साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपि वा ॥ ३३॥
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुप्तं निधापयेत्। बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ ३४॥
यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत्। या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ ३५॥
वातक्षीणे मर्महते मथितेऽभिहते तथा। भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते ॥ ३६॥
एतदाक्षेपकादीन् वै वातव्याधीनपोहति। हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं च दुस्तरम् ॥ ३७॥
षण्मासानुपयुञ्जीतदान्त्रवृद्धिमपोहति। प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ॥ ३८॥
राज्ञामेतद्धि कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः। सुखिनः सुकुमाराश्च धनिनश्चापि ये नराः ॥ (सु० सं० चि० १५/२९ से ३९)

२. स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः ॥ (सु० सं० चि० १५/३० की डल्हण टीका)

३. अथबलातैलमुपदेक्ष्यामः-बलामूलकषायस्य भागाः षट् तावन्त एव पयसो यवकोलकुलत्थदशमूलकषायस्य भागो भागश्चतुर्दश-स्तैलस्य तत्सर्वमैकध्यं कृत्वा श्लक्ष्णचूर्णानि चास्याप्य काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदामहामेदाक्षीर-शुक्लामधुकदेवदारुमञ्जिष्ठाचन्दनसारिवाबलातगरकुष्ठशतावर्यश्वगन्धापुनर्नवाशतपुष्पावरापत्रस्सरलशैलेयेलावचाऽगुरुकालानुसार्य-सैन्धवानि शनैर्मृद्वग्निना साधयित्वा सुभाजनेऽनुगुप्तं निदध्यात्। एष भगवतोधन्वन्तरेरभिमतस्तैलराजो राज्ञां राजमात्राणां कृशानां सूतिकानां शिशुनामतीतवयसां सुकुमाराणां शूलीनां महाग्रहगृहीतानां दीर्घरोगश्रपितवपुषां मर्मविद्धपतिताभिहतभग्नविश्लिष्टांङ्गानां दैवोपघाताभिशस्तमनोज्वरपरीतानां पानावनाभ्यङ्गबस्तिषु प्रयोज्यः। तेन बलपौरुषस्मृतिमतिमेधाग्निवीर्यौजांसि वर्धन्ते पक्षघातक्षेपकार्दितादिविविधवातविकारगुल्महिध्माश्वासकासा निवर्न्ते। अहरहश्चोपयुज्यमानेन षण्मासादान्त्रवृद्धिः प्रशममेति। बन्ध्या च पुत्रं गुणवन्तमिच्छया लभत इति ॥ (अ० सं० शा० ४/५१)

४. बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा। यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥ ४७॥
निष्क्वाथभागो भागश्च तैलस्य तु चतुर्दशः। द्विमेदादारुमञ्जिष्ठाकाकोलीद्वयचन्दनैः ॥ ४८॥
सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैन्धवैः। कालानुसार्याशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ॥ ४९॥
अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः। शताह्वाशूर्पपर्ण्येलात्वक्पत्रैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ५०॥
पक्वं मृद्विग्ना तैलं सर्ववातविकारजित्। सूतिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषु पूजितम् ॥ ५१॥
ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातान्त्रवृद्धिजित्। धन्वन्तेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२॥ (अ० ह० शा०२)

५. बलामूलकषायेण दशमूल शृतेन च। कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा ॥ ११४॥
अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम्। गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रदारुणा ॥ ११५॥
मञ्जिष्ठाकुष्ठतैलेयतगरागुरुसैन्धवैः। वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपद्मकैः ॥ ११६॥
शतपुष्पाऽश्वगंधाभ्यामेलया च विपाचयेत्। गर्भार्थिनीनां नारीणां नराणां क्षीणरेतसाम् ॥ ११७॥
व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते। राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः।
बलातैलमितिख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥ ११८॥ (शा० सं० मध्य० ९)

The oil should be used orally, inhaled, massaged and also as an enema, it should be given orally to a puerperal woman; be used by the woman desirous of having a conception (infertile woman), the man suffering from loss or deficiency of *śukra* (frigidity and infertility), others (both sexes) having *vātakṣaya*, injuries to the *marmas* (vital parts), crush injury, other trauma, fracture of bone, dislocations of joints, injury due to fall, or who are tired due to excessive exercise. It can also be used by emaciated persons, puerperal women, children, old persons, persons seized with *grahas*, suffering either from chronic diseases or for a long period, having colic, psychological fever *(mānsikajvara)* or *daiwaprakopa* (curses of god). It is also beneficial in convulsive disorders, paralysis, facial paralysis and other disorders of *vāta, hikkā* (hiccup), *kāsa* (cough), *adhimantha* (hemicrania), *gulma* and severe *śwāsa* (dyspnoea). Its continuous use for six months cures *āntravṛddhi* (hernia), increases *dhātus,* retains youth and gives a woman desired son. It also increases strength, virility, memory, intellect, *agni* (digestive/metabolic power), *vīrya* and *ojas*. It also cures fever, *unmāda* (insanity), *mūtrāghāta* (suppression/retention of urine), *yonivyāpat* (gynec disorders) and *kṣaya* (tuberculosis).

२) *शतपाक बलातैल (Śatapāka balātaila)*

बला कषाय को अनेकों बार पिए हुए (बलाक्वाथ में अनेकों बार भिगा भिगा कर सुखाए हुए) तिलों का तैल निकालकर, उसे बला-क्वाथ के ही साथ सौ बार पाक करे। इस तैल का वायु रहित एकान्त घर में बलानुसार सेवन करे। तैल के जीर्ण हो जाने पर दूध के साथ षष्टिक आदि अन्नों का ओदन स्निग्ध करके (घृत मिलाकर) भोजन करे। तैल को एक द्रोण मात्रा का इस प्रकार सेवन करने से मनुष्य समय पर (भोजन के समय) दुगुना आहार करता है, बल एवं वर्ण से युक्त, सभी पापों से विमुक्त तथा शतायु हो जाता है। एक एक द्रोण तैल सेवन से सौ-सौ वर्ष की आयु की वृद्धि होती है[1]। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि कुछ आचार्यों ने बला क्वाथ के साथ बला-कल्क का तथा अन्य पूर्ववर्णित बलातैल में प्रयुक्त प्रक्षेप द्रव्यों के प्रयोग का विधान बताया है[2]।

The oil extracted from *tilas,* which have already been soaked several times in the decoction of *balā* should be cooked with decoction of *balā* repeatedly for hundred times. This should be taken orally in secluded or peaceful place according to one's own strength. By using this oil in the quantity of one *droṇa* the individual consumes double diet, attains strength and complexion, gets rid of all the sins and survives for hundred years. Consumption of each *droṇa* of oil increases the life by hundred years (by consuming two *droṇa* one will live for two hundred years etc.). Dalhaṇa has quoted the opinion of others that while preparing the oil paste of *balā* and other drugs enumerated under *balā taila* should also be added in this.

१. बलाकषायपीतेभ्यस्तिलेभ्यो वाप्यनेकशः। तैलमुत्पाद्य तत्क्वाथशतपाककृतं शुभम् ॥ ४०॥
निवाते निभृतागारे प्रयुञ्जीत यथाबलम्। जीर्णेऽस्मिन् पयसा स्निग्धमश्नीयात् षष्टिकौदनम् ॥ ४१॥
अनेन विधिना द्रोणमुपयुञ्यान्नमीरितम्। भुञ्जीत द्विगुणं कालं बलवर्णान्वितस्ततः ॥ ४२॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः शतायुः पुरुषो भवेत्। शतं शतं तथोत्कर्षो द्रोणे द्रोणे प्रकीर्तितः ॥ ४३॥ (सु० सं० चि० १५)

२. तत्क्वाथं तत्कल्कमेव वेत्येके, पूर्वबलातैलसमुद्दिष्टैर्मधुरादिकल्कैरेवत्यन्ये ॥ (सु० सं० चि० १५/४० की डल्हण टीका)

Scanned with CamScanner

३) *अतिबला, गुडूचि आदि से निर्मित तैल (The oils prepared with atibalā and guḍūci etc. other drugs)*

बुद्धिमान् वैद्य बलातैल की ही भाँति अतिबला, गुडूचि, आदित्यपर्णी, सैरेयक, वीरतरु, शतावरी, त्रिकण्टक, मधुयष्टी तथा प्रसारिणी से (सभी द्रव्यों से पृथक् पृथक्) तैल का पाक करे। (अथवा) नीलोत्पल तथा शतावरी मूल को गोदुग्ध में पाक करे, इस सिद्ध दुग्ध के साथ ही बलातैल में प्रयुक्त कल्क द्रव्यों को डालकर सौ बार तिल तैल का पाक करे। उपर्युक्त सभी तैलों का उपयोग विशेषकर उनके गुण बलातैल के ही सदृश समझने चाहिए[1]। टीकाकार डल्हण ने वीरतरु से स्वनाम प्रसिद्ध वीरतरु, अर्जुन या कोकिलाक्ष ग्रहण करने का अन्य आचार्यों के मत का उल्लेख किया है तथा अतिबला आदि तैलों को उन्हीं द्रव्यों के क्वाथ एवं कल्क से पाचन करने का विधान लिखा है[2]।

Just like *balā taila* wise physician should prepare the oils with any one out of *atibalā, guḍūci, ādityaparṇī, saireyaka, vīrataru, śatāwarī. trikaṇṭaka, madhuyaṣṭī* and *prasāriṇī* etc. drugs, or else he should cook the cow's milk with *nīlotpala* and root of *śatāwarī* then add paste of all the drugs described under *balā taila,* and cook the *tila* oil with this mixture repeatedly for hundred times. The action and uses specially beneficial effects of all these oils are similar to *balātaila.* While preparing the oils, decoctions and pastes of respective drugs should be used.

मूढ़गर्भ में उदर-विपाटन (Laparotomy or cesarean section for extracting mūḍhagarbha)

वस्तमारविपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि। तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद् भिषक् ॥ १४॥
(सु० सं० नि० ८/१४)

बस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि। जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥
(अ० सं० शा० ४/५२, अ० हृ० शा० २/५३)

मारे जाते हुए बकरे के समान मृत स्त्री की कुक्षि यदि प्रस्पन्दन करती हो तो जन्मकाल में तुरंत ही पाटन (कुक्षि का) करके शिशु का आहरण कर लेना चाहिए। टीकाकार डल्हण ने स्पष्टीकरण में लिखा[3] है कि यह वर्णन माता की मृत्यु हो जाने के बाद जीवित गर्भ के अपकर्षण के लिए है जिस प्रकार ग्रीवा-मोटन करने से बकरा अतिशीघ्र ही बिना कष्ट के मर जाता है उसी प्रकार मृत्यु हुई स्त्री के लिए यह विधान है, जिसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार याज्ञिक श्वासावरोध करके बकरे को मार देते हैं उसी प्रकार (आकस्मिक रूप से) मृत स्त्री के लिए यह विधि वर्णित है उस स्त्री

१. बलाकल्पेनातिबला गुडूच्यादित्यपर्णिषु। सैरेयके वीरतरौ शतावर्यां त्रिकण्टके ॥ ४४॥
तैलानि मधुके कुर्यात् प्रसारण्याञ्च बुद्धिमान्। नीलोत्पलं वरीमूलं गव्ये क्षीरे विपाचयेत् ॥ ४५॥
शतपाकं ततस्तेन तिलतैलं पचेद् भिषक्। बलातैलस्य कल्कांस्तु सुपिष्टांस्तत्र दापयेत् ॥ ४६॥
सर्वेषामेव जानीयादुपयोगं चिकित्सकः। बलातैलवदेतेषां गुणांश्चैव विशेषतः ॥ ४७॥ (सु० सं० चि० १५)

२. वीरतरुः स्वनामप्रसिद्धः, अर्जुन इत्येके, कोकिलाक्ष इत्यपरे। अतिबलादितैलेषु च बलातैलोक्तकल्कप्रक्षेपः, अथवाऽतिबलादीनामेव क्वाथकल्काभ्यां तैलानि पक्तव्यानीति ॥ (सु० सं० चि० १५/४४ व ४६ की डल्हण टीका)

३. मातुर्मृताया अपि जीवितो गर्भस्य अपकर्षणं दर्शयन्नाह-वस्तमारस्येत्यादि। वस्तमारस्छगलवन्मरणम्। एतेन ग्रीवामोटनेन आशुतमं अक्लिष्टं मरणमुक्तं; तेन विपन्नायाः मृतायाः स्त्रिय इत्यर्थः। अयमभिप्रायः-यथा वस्तं निरुच्छ्वासं कृत्वा याज्ञिका मारयन्ति एवं या मृता तस्या इत्यर्थः। तत्क्षणात् घटिकाद्वयमध्ये, परतस्तु गर्भोऽपि म्रियते इति भावः। अन्ये तत्क्षणादित्यत्र मुहूर्तादिति पठन्ति, तत्रापि स एवार्थः। जन्मकाले नवममासादिकाले इत्यर्थः। तं गर्भं। पाटयित्वा स्त्रीकुक्षिं विदार्य।
(सु० सं० नि० ८/१४ की डल्हण टीका)

में उसी क्षण या दो घटी के मध्य में या मुहूर्त मात्र में ही क्रिया करनी चाहिए अन्यथा गर्भ भी मृत हो जायगा। जन्मकाल से तात्पर्य नवम मास से है। उस गर्भ को स्त्री की कुक्षि का विदारण करके प्रसव कराना चाहिए (चि० ३०)।

उपर्युक्त वर्णन का सारांश यह है कि गर्भ की पूर्णावस्था के काल में यदि किसी आकस्मिक कारण से स्त्री की मृत्यु हो जाय तथा कुक्षि में स्पन्दन हो रहा हो तो उसी क्षण कुक्षि का विपाटन करके गर्भ का आहरण कर लेना चाहिए, विलम्ब करने से गर्भ-मृत्यु का भय रहता है। इस आशय का स्पष्ट निर्देश वङ्गसेन में मिलता है कि जब जन्मकाल को प्राप्त

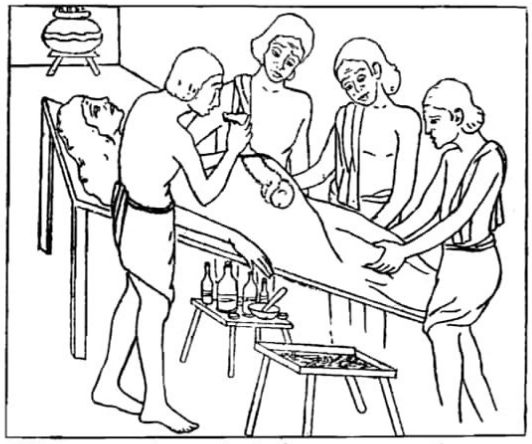

Fig. (30) : Laparotomy for extracting the fetus or cesarean section.

गर्भ-युक्त गर्भिणी स्त्री की अभिघात से मृत्यु हो जाय परन्तु उसका गर्भ प्रस्पन्दन करता हो (गर्भ-हृद्ध्वनि उपस्थित हो) तो उस गर्भ का तत्क्षण ही पाटन (उदर का) करके आहरण कर लेना चाहिए[1]।

वाग्भट-द्वय ने लिखा है कि यदि मृत स्त्री की कुक्षि बस्तिद्वार में (या बस्तिद्वार के पास) स्पन्दन करती हो तो जन्मकाल में (गर्भ की पूर्णावस्था हो तो) शीघ्र ही विपाटन करके शिशु का उद्धरण कर लेना चाहिए। टीकाकार इन्दु ने बस्तिद्वार को विपाटन करके शिशु के आहरण करने का निर्देश दिया है[2]। पाठभेद में महर्षि सुश्रुत ने भी 'बस्तिद्वार' शब्द का प्रयोग किया है[3]। टीकाकार अरुणदत्त ने भी गर्भ-प्रसवोन्मुख-काल (प्रसव की प्रथमावस्था या आसन्नप्रसवा) में मृत गर्भिणी के बस्तिद्वार के पास अत्यन्त चलित कुक्षि होने पर कुशल वैद्य द्वारा कुक्षि-प्रस्पन्दनों के अन्तराल में कुक्षि

१. अभिघातान्मृतायास्तु गर्भः प्रस्पन्दते यदि। जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ १९१॥ (वङ्गसेन० ३८/१९१)

२. गर्भस्य जन्मकाले जीवितो यदि माता विपन्ना स्यात्ततः कुक्षिप्रस्पन्दनेन जीवन्तं गर्भं विदित्वा ततो बस्तिद्वारं विपाट्य तमुद्धरेत् ॥ (अ० सं० शा० ४/५२ की इन्दु टीका)

३. वस्तिद्वारे विपन्नाया इति पाठान्तरम् ॥ (सु० सं० नि० ८/१४ कलकत्ता प्र० की पादटिप्पणी में उद्धृत)

Scanned with CamScanner

का पाटन कर बालक के उद्धरित कर लेने का वर्णन दिया है।[1]

In a woman who has died during labour just like a killed goat *(vastamāra)* if quivering of abdomen still persists, the abdomen should immediately be opened and fetus extracted. Dalhana has explained this verse that the procedure is to be done in ninth month (full term) of pregnancy and in a woman who has died accidentally all of sudden in the same way as a goat throttled or sacrificed by priest dies suddenly without much trouble; in such case immediately within two *ghaṭies* or one *muhūrta* (fortyeight minutes) the fetus should be extracted by laparotomy (fig. 30) or else the fetus will die. In Vangasena this Dalhana's view is given in unequivocal words that when a woman carrying full term fetus dies due to trauma (sudden accidental death) but the quivering of fetus (fetal heart sounds) still persist, then the fetus should immediataly be extracted by laparotomy.

Vāgbhaṭas have mentioned that during *janmakāla* (delivery of full term fetus) if quivering of abdomen over *bastidwāra* (neck of bladder or suprapubic or bladder region) of dead woman is persistent then the fetus should immediately be delivered by laparotomy. Indu opines that the laparotomy should be performed over bladder region. In one edition of Suśruta Saṃhitā the word *bastidwāra* has been used in place of *vastamāra,* which will have similar explantion as that of Vāgbhaṭa.

Aruṇadatta has explained that if the abdomen of woman dieing during first stage of labour excessively quivers near the bladder-region, then the expert physician should perform the laparotomy during interval period of quiverings and extract the child.

विमर्श (Comments)

संहिताओं में विषय के वर्णनार्थ प्रारम्भ में दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं 'वस्तमार' एवं 'बस्तिद्वार'। 'बस्तिद्वार' शब्द से हिन्दी व्याख्याकारों ने दो अर्थ किए है बस्तिद्वार के पास स्पन्दन[2] अथवा बस्तिद्वार के पास आकर गर्भ का अवरुद्ध होना[3]। इन सभी व्याख्याओं को देखने से ऐसा आभास होता है कि विद्वान् स्वयं ही इस वर्णन की युक्तिसंगतता या स्पष्टीकरण के लिए सन्देहास्पद थे। सुश्रुत की अन्य पाण्डुलिपि में इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ वहाँ पर स्पष्ट लिखा हुआ है कि मृत स्त्री की कुक्षि यदि स्पन्दन कर रही हो तो जन्मकाल में उसी क्षण ही पाटन (कुक्षि का) करके (गर्भ का) आहरण चिकित्सक को कर लेना चाहिए[4]।

उपर्युक्त वर्णन से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं–

१) उदर-विपाटन करके परिपूर्ण गर्भावस्था अर्थात् नवम मास पूर्ण हुए गर्भ का ही आहरण करना चाहिए, क्योंकि इसके पूर्व के गर्भ को यदि आहृत कर भी लिया जाय तो बाद में जीवित रहने की आशा कम ही रहती है।

१. विपन्नायाः–मृताया गर्भिण्याः, यदि कुक्षिः प्रस्पन्दते–अत्यन्तं चलति। क्व प्रदेशे ? बस्तिद्वारे-तत्समीपे। कदा? जन्मकाले,–गर्भप्रसवोन्मुखे काले। तदा कुशलो वैद्यः शीघ्रं (ततः -) कुक्षिप्रस्पन्दनादनन्तरं, पाटयित्वा शिशुं-बालं उद्धरेत्॥
(अ० ह० शा० २/५३ की अरुण टीका)

२. अ० ह० शा० २/५३ की लालचन्द वैद्य कृत हिन्दी व्याख्या

३. अ० सं० शा० ४/५२ की आत्रिदेव गुप्त कृत हिन्दी व्याख्या

४. कुक्षिः प्रस्पन्दते यस्याः विपन्नायासमाहितः। तत्क्षणजन्मकाले तं पाटयित्वाऽरेद्भिषक्॥
(सं० संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की पाण्डुलिपि संख्या ४४८२५)

२) कुक्षि या गर्भ का स्पन्दन गर्भ के जीवन का द्योतक है।

३) प्रसव की प्रथमावस्था में गर्भ-शिर या उदय होने वाला अङ्ग अधिकांशतः मिथ्या श्रोणिगुहा में ही रहता है अत्यधिक नीचे नहीं जाता, बस्तिद्वार के पास स्फुरण भी इस तथ्य को इंगित करता है। गर्भ के श्रोणिगुहा में अत्यधिक नीचे चले जाने पर गर्भ का उद्धरण कभी कभी अत्यधिक कठिन हो जाता है। प्रसव की प्रथमावस्था में गर्भिणी की मृत्यु प्रसव-जन्य विकृति से न होकर किसी अन्य कारण से ही होती है। कुक्षि-चलन गर्भाशय के क्रमशः संकुचित एवं प्रसारित होने (जो आवी का लक्षण है) का द्योतक है। गर्भाशय के संकोच की अवस्था में भी गर्भ का उद्धरण कठिन होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए प्रसव की प्रथमावस्था में बस्तिद्वार में स्थित गर्भ को संकोच के अन्तराल में उद्धरण का निर्देश टीकाकार अरुणदत्त ने दिया है।

४) 'वस्तमार' तथा उसका डल्हण-कृत स्पष्टीकरण तथा वङ्गसेन का वर्णन कुछ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि सामान्य रूप से अर्थात् किसी पूर्वकालिक व्याधि या मूढ़गर्भता के कारण यदि स्त्री की मृत्यु होगी तो उसका प्रभाव गर्भ पर भी पड़ेगा और उसकी भी जीवन-शक्ति क्षीण हो जायगी अतः उद्धरण के पश्चात् भी वह जीवित रह सकने में असमर्थ होगा पर यदि किसी आततायिक कारण यथा शिरोभिघात या अन्य अभिघात से स्त्री की मृत्यु हो तो गर्भ पूर्ण स्वस्थ रहेगा एवं आहरण के पश्चात् जीवित रहने की सम्भावना अधिक होगी।

५) सामान्य रूप से माता की मृत्यु के बाद गर्भ भी श्वासावरोध से शीघ्र ही मृत हो जाता है अतः इस वर्णन की उपादेयता सन्देहास्पद हो जाती है फिर भी यह सम्भव है कि आकस्मिक दुर्घटना से मृत स्त्री का पूर्ण प्रगल्भ गर्भ यदि तत्क्षण निकाल लिया जाय तो वह जीवित रह जाय, क्योंकि माता की मृत्यु के लगभग १५ मिनट बाद भी उदर-विपाटन करके जीवित गर्भ के आहरण के उद्धरण मिलते हैं[1]। अथवा गर्भ-युक्त गर्भिणी का दाह न कर दिया जाय इसलिए उसे बाहर निकाल लेना उचित है इस दृष्टिकोण से यह वर्णन दिया गया होगा।

In classics two words have appeared *vastamāra* and *bastidwāra.* The word *bastidwāra* has been explained in two ways by few commentators i. e. quivering near the bladder region or obstruction of fetus near the bladder region. This shows that relevance and explanation of this word is doubtful. Moreover in another Suśruta Saṃhitā this controversial description is replaced with a clear description that the fetus should be extracted immediately after death of the mother. Above description clarifies following points that—

i) Only ninth month or full term fetus should be delivered by laparotomy, because premature fetus even if delivered may not survive.

ii) Quivering of abdomen is indicative of alive fetus.

iii) During first stage of labour fetal head/presenting part remains high up or in false pelvis in majority of cases, it does not descend to pelvic cavity, quivering near bladder-region also indicates this very fact. Extraction of fetus after descent of presenting part in mid-cavity or below becomes very difficult. Death of woman during first stage of labour does not take place due to abnormality of labour, it is always due to some other cause. Excessive movement indicates too-much uterine contractions and relaxations; extraction of fetus durings uterine contraction is difficult, considering these facts Aruṇadatta has advised extraction of fetus situated near urinary bladder, in first stage of labour during inter-contraction period.

१. मुनरौ करें द्वारा लिखित ऑपरेटिव ऑब्स्टेट्रिक्स (पृष्ठ १४२)

Scanned with CamScanner

iv) Explanation given by Ḍalhaṇa and description of Vaṅgasena is more logical, because if the woman dies due to other causes such as toxaemia of pregnancy, very prolonged labour or any other complication, the disorder will have its impact on the fetus which may not survive even if delivered, however, when woman dies an accidental death the chances of survivality of fetus may increase, because the fetus otherwise would be absolutely healthy.

v) Normally fetus dies immediately following death of the mother, hence the utility of this description becomes doubtful, however in rare instances one may deliver a living fetus by laparotomy even after a bit prolong time of woman's death. Munro Kerr in his operative obstetrics (page 142) has reported that in one instance an operation performed atleast fifteen minutes after the death of the mother resulted in the delivery of a healthy baby.

Besides, the extraction of fetus might also have been advised with the view that the dead woman may not be burnt with the fetus inside her abdomen because this practice is still existing.

❐

अध्याय ९

CHAPTER IX

सूतिका-विज्ञानीय

(NORMAL AND ABNORMAL PUERPERIUM)

सूतिका की परिभाषा (Definition of sūtikā or puerperal woman)

सभी आचार्यों ने अपरा-पतन के पश्चात् ही सूतिका-परिचर्या का वर्णन दिया है जिसका अन्तर्निहित अर्थ यह ही होता है कि अपरा-पतन के पूर्व स्त्री को सूतिका नहीं कहा जाना चाहिए। स्पष्टतर निर्देश महर्षि काश्यप ने किया है कि–

(बालक का) प्रसव होने के बाद भी यदि अपरा न गिरे तो उसे प्रसूता नहीं कहा जा सकता[१] अर्थात् अपरा गिरने के पश्चात् ही वह प्रसूता या सूतिका कही जानी चाहिए।

Though all the classics have advised specific management of *sūtikā* (puerperal woman) only after expulsion of placenta, however, explicit description is given only by Kāśyapa. He says that after delivery of child till the placenta is not expelled, the woman can not be called *sūtikā*, in other words *sūtikā* term can be used only after expulsion of placenta.

सूतिकाकाल (Sūtikākāla or duration of puerperium)

महर्षि चरक ने सूतिका-परिचर्या की किसी विशिष्ट अवधि का वर्णन नहीं किया जब कि अन्य आचार्यों ने एक निश्चित काल तक पथ्यादि व्यवस्था का विधान दिया है जो कि सूतिकाकाल की सीमा का निर्धारक है। वर्णन निम्न प्रकार है।

अनेनविधिनाऽध्यर्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात्, पुनरार्तवदर्शनादित्येके ॥
(सु० सं० शा० १०/१६)

एवं साऽध्यर्धमासमुपसंस्कृता क्रमेण विमुक्ताहारविहारयन्त्रणा विगतसूतिकाभिधाना स्यात्। पुनरार्तवदर्शनादित्येके ॥ (अ० सं० शा० ३/४१)

एवं च मासाद्ध्यर्धान्मुक्ताऽहारादियन्त्रणा। गतसूताऽभिधाना स्यात्पुनरार्त्तव दर्शनात् ॥
(अ० हृ० शा० १/१००,१०१)

षड्भिर्मासैः प्रसूताया धातवो रुधिरादयः ॥५२॥
प्रत्यागच्छन्त्यरोगाया यथास्वं परिसंस्थितिम्।
एताच्चान्यच्च सञ्चिन्त्य चिकित्सां संप्रयोजयेत् ॥५३॥ (का० सं० खि० ११)

इस प्रकार (सूतिकापरिचर्यान्तर्गत वर्णित विधि, आहार और आचार से) डेढ़ मास (४५ दिन) तक उपसंस्कृत (संस्कार या चिकित्सा को हुई) स्त्री विशिष्ट आहार एवं आचार (सूतिका के लिए निर्दिष्ट नियमों) तथा सूतिका नाम से रहित हो जाती है (अर्थात् ४५ दिन के बाद सूतिकावस्था समाप्त हो जाती है)। कुछ आचार्य पुनः आर्तव-दर्शन तक

१. सूतायाश्चापि तत्र स्यादपरा चेत्र निर्गता। प्रसूताऽपि न सूता स्त्री भवत्येवं गते सति ॥ (का० सं० खिल० ११/६)

Scanned with CamScanner

(सूतिकाकाल की अवधि) मानते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि (वह स्त्री) इस प्रकार डेढ़ मास तक उपसंस्कृत हो जाने के बाद तथा अन्य आचार्यों के मत से पुनरार्तव-दर्शन के बाद क्रमशः विशिष्ट आहार एवं विहार की यन्त्रणा तथा सूतिका नाम से विरहित हो जाती है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि इस प्रकार डेढ़ मास या पुनरार्तव-दर्शन के पश्चात् स्त्री आहारादि के नियमों तथा सूतिका नाम से रहित हो जाती है।

महर्षि काश्यप के मतानुसार प्रसूता स्त्री के रोग-रहित होने पर उसकी रक्त आदि धातुयें षड् मास में अपनी पूर्व (गर्भावस्था के भी पूर्व की) स्थिति में आ जाती हैं इसका विचार करके ही चिकित्सा आदि की व्यवस्था करनी चाहिए (अर्थात् सूतिका काल ६ मास का होता है)।

भावप्रकाश[1] तथा योगरत्नाकर[2] में लिखा है कि प्रसूता स्त्री डेढ़ मास के पश्चात् अथवा पुनः आर्तव-दर्शन के बाद सूतिका नाम से रहित हो जाती है ऐसा धन्वन्तरि का मत है। उपद्रवों के समाप्त हो जाने पर तथा दोषों के शान्त हो जाने पर स्त्री चार मास के पश्चात् परिहारों (विशिष्ट आहार एवं आचार) का परित्याग कर दे।

काश्यप संहिता, भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर में सूतिका की विशिष्ट पथ्य-व्यवस्था एक मास के लिए वर्णित है[3] परन्तु यह वर्णन सूतिका के विशिष्ट पथ्य का द्योतक है उसके काल का नहीं।

महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट्ट द्वय ने मूढ़गर्भ-शल्योद्धरण के पश्चात चार मास तक पथ्य व्यवस्था करने का निर्देश दिया है[4]।

Caraka has not given any specific duration, however, all other classics have given definite period of specific dietetics etc. management for a puerperal woman, which can be considered as normal duration of puerperium.

Suśruta and both the Vāgbhaṭas have said that after $1^1/_2$ month of regulated or restricted specific dietetics and mode of life the woman becomes free from the epithet of *sūtikā* and have cited the opinion of others that the woman should be called *sūtikā* till she does not restart her menstrual cycle; however after extraction of fetus in obstructed labour four month period for dietetic management is prescribed. Though Kāśyapa, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara have given the duration of specific dietetic management only for one month, yet Kāśyapa has mentioned the duration of *sūtikākāla* as six months and Bhāvaprakāśa etc. besides agreeing with the description of Suśruta (i.e. 1½ month) have mentioned that after subsidence of complications and aggravation of *doṣas* (caused during labour due to *dhātukṣaya*) the woman should give up specific mode of life after four months.

१. प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे। सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम्॥
व्युपद्रवां विशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम्। ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत्॥ (भा० प्र० पूर्व ४/५, ६)
प्रसूता·····मतम्॥ १६६॥
उपद्रवविशुद्धाङ्ग ·····।····· मासेभ्यः परिहारं विवर्जयेत्॥ १६७॥ (उपर्युक्त सदृश ही) (भा० प्र० चि० ७०/१६६, १६७)

२. प्रसूता ····· विसर्जयेत्॥ (भा० प्र० चि० ७० सदृश ही) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

३. का० सं० खि० ११/२७, भा० प्र० चि० ७०/१६५ तथा यो० र० स्त्रीरो० चि० (सामान्य परिचर्यान्तर्गत वर्णित)

४. सु० सं० चि० १५/२८; अ० सं० शा० ४/५०; अ० ह० शा० २/४६ (पृष्ठ ५३१, ५३२)

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णित विषय का समष्टि रूप में अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सूतिकाकाल की अवधि के बारे में आचार्यों ने चार सीमायें रखी हैं। ४५ दिन, पुनः रजोदर्शन तक, चार मास तथा षड्मास। गर्भावस्था में प्रजननसंस्थान के रचनात्मक घटकों में परिवर्तन होते हैं जो सामान्यतया प्रसव के बाद ६ सप्ताह या डेढ़ मास के अन्दर अपनी गर्भावस्था-पूर्व की स्थिति में पुनः पहुँच जाते हैं, परन्तु डिम्बग्रन्थि के रसों के निर्माण को पुनः अपनी पूर्व-स्थिति में आने में अत्यधिक व्यक्तिगत वैभिन्य दृष्टिगोचर होता है यथा कुछ स्त्रियाँ प्रसव के पश्चात् दूसरे मास से ही रजःस्वला होने लगती है एवं कुछ वर्षों तक भी अनार्तवा रहती हैं, सम्भवतः इसी वैभिन्य के कारण आचार्यों ने पुनः रजोदर्शन ही लिखा है कोई निश्चित काल नहीं दिया, अर्थात् डेढ़ मास के काल का वर्णन रचनात्मक घटकों की दृष्टि से है जब कि पुनः रजोदर्शन डिम्बग्रन्थि एवं गर्भाशयान्तःकला के गर्भावस्था-पूर्व सदृश सामान्य क्रिया का द्योतक है। षड् मास की सीमा सम्भवतः रजोदर्शन की उपस्थिति एवं चार मास की सीमा मूढ़गर्भादि या अन्य उपद्रव-युक्त प्रसव की पथ्य-व्यवस्था को दृष्टिगोचर रख कर दी गई है।

Considering above description collectively, four specific durations of *sūtikā* emerge out i.e. 1½ months, reappearance of menstruation, six months and four months.

Anatomic changes occurring in reproductive organs during pregnancy reach their almost prepregnancy stage after about six weeks, however, in resumption of prepregnancy physiology i.e. ovarian and menstrual cycle great individual variations occur, as some women restart their menstruation from the second month of delivery, while others may not get it even for one or two years. Considering this individual variation, the authors have not given any specific time limit, rather have just said that 'reappearance of menstruation', In other words it can be said that 1½ months duration and reappearance of menstruation is given considering anatomical and physiological changes of reproductive system respectively. The limit of six month probably reflects the idea about reappearance of menstrual cycle, while four months period is probably given keeping in view the *mūḍhagarbha* or other abnormal labours, where-in post-operative management for four months has been advised.

प्रसवोपरांत पुनः रजोदर्शन-हेतु (Factors responsible for reappearance of menstruation after delivery)

तथैव गर्भः सूतायाः (शु० पा० गर्भसूताया) सद्यः स्तन्याय कल्पते।
शेषं तु रुधिरीभूतं कायं योनिं च सर्पति॥
धातुषु प्रतिपूर्णेषु शरीरे समवस्थिते। संचितं रुधिरं योनिः पुनः कालेन मुञ्चति॥
(का० सं० खि० ९/२१,१२)

उसी प्रकार (जिस प्रकार गर्भिणी का आहार-रस गर्भ, स्तन एवं स्वशरीर का पोषण एवं वर्धन करता है) गर्भ के प्रसव हो जाने के बाद (माता के आहार-रस से) तत्काल ही स्तन्य की उत्पत्ति होती है। शेष (रस) रुधिर के रूप में होकर शरीर एवं योनि में जाता है। धातुओं के प्रतिपूर्ण हो जाने तथा शरीर के समवस्थित हो जाने पर यही योनि में सञ्चित रक्त समय पर मुञ्चित होता है।

After delivery the *āhāra-rasa* reaches the breasts and immediately forms the milk, remaining *rasa* getting transformed into the blood circulating in whole body reaches the *yoni* (reproductive system). After attainment of replenishment of *dhātus* and steadiness of body, the blood accumulated in *yoni* (uterus) is discharged periodically.

Scanned with CamScanner

विमर्श (Comments)

महर्षि काश्यप ने सूतिका को पुनःरजोदर्शन के लिए तीन बातों का महत्व दिया है। धातुओं की प्रतिपूर्णता, शरीर का स्थिर या दृढ़ होना तथा योनि में रक्त का सञ्चय।

अ) धातु-प्रतिपूर्णतः–शरीर की सप्तधातुओं का अर्थात् रस से शुक्र पर्यन्त धातुओं का प्रतिपूर्ण होना। प्रसवोपरांत कभी कभी अत्यधिक रक्तस्रावादि होने पर उत्पन्न पाण्डु से रजोदर्शन प्रारम्भ होने में विलम्ब होता है। धातु शुक्र तथा उपधातु आर्तव क्रमशः पीयूषग्रन्थि तथा डिम्बग्रन्थि के स्रावों के रूप में पूर्व-वर्णित हैं जिनका सामान्य होना पुनः रजोदर्शन के लिए अत्यावश्यक है।

आ) शरीर का व्यवस्थित होना–यह शरीर के स्थिर, दृढ़ या रोग रहित होने का द्योतक है। शरीर की विभिन्न व्याधियाँ भी अप्रत्यक्षतया धातुओं को प्रभावित कर रजोदर्शन को प्रभावित करती हैं, साथ ही स्त्री की मानसिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ सकता है। शारीरिक एवं मानसिक दृष्ट्या स्त्री के स्थिर, दृढ़ एवं स्वस्थ होने पर ही प्रसवोपरान्त रजोदर्शन प्रारम्भ होता है।

इ) योनि में रक्त का सञ्चय–योनि अर्थात् गर्भाशय की धमनियों में सम्पूर्ण मास तक सञ्चित रक्त ही ऋतुस्राव के समय बाहर निकलता है। शरीर स्वस्थ होने एवं धातुओं के सामान्य होने के बाद भी यदि गर्भाशयान्तःकला में (प्रसवोपरांत तीव्र उपसर्गादि जन्य) विकार आ जाँय तो रक्त का सामान्य सञ्चय नहीं हो पाएगा एवं रजोदर्शन नहीं होगा अतः योनि या गर्भाशय में रक्त का सञ्चय रजोदर्शन के लिए आवश्यक है।

Three factors have been emphasized i.e. replenishment of *dhātus*, steadiness of body and accumulation of blood in *yoni* (uterus). The explanation of each one is given hereunder—

a) Replenishment of dhātus—This indicates replenishment of all the seven *dhātus* i.e. from *rasa* to *śukra*. Sometimes in anaemia caused either due to excessive postpartum haemorrhage or due to certain other causes the onset of menstruation after delivery may be delayed. *Śukra* the seventh *dhātu* and *ārtava* an *upadhātu* refer to anterior pituitary and ovarian hormones respectively. Proper presence of these is indispensible for onset of menstruation.

b) Steadiness of body—Here this steadiness refers to healthy state of body. Certain diseases may influence the formation of proper *dhātus* thus the menstruation. Psychology of woman also plays an important role in menstrual physiology. Only after proper physical and psychological health the woman restarts her menstruation.

c) Accumulation of blood in yoni or uterus—The blood collected in uterus for whole month within its *dhamanīes* is discharged during menstruation. Inspite of proper physical and mental health, if endometrium is diseased (due to acute puerperal infection etc.) the blood will not get accumulated and menstruation will not restart.

सूतिका-परिचर्या (Management of puerperal woman)

अ) सूतिका के लिए मणि (Amulet for puerperal woman)

प्रजाता स्त्री को त्रिवृत् की मणि बनाकर शिर में धारण करनी चाहिए[1]।

The puerperal woman should tie amulet of *trivṛt* over the head.

१. त्रैवृतं तु मणिं कृत्वा तं श्रोण्यां गर्भिणी सदा। प्रजाता शिरसा राजन् धारयेत् ·····॥ (का० सं० खि० १०/१८१)

आ) सामान्य परिचर्या (General care i.e. mode of life and diet)

सूतिकां तु खलु बुभुक्षितां विदित्वा स्नेहं पाययेत परमया शक्त्या सर्पिस्तैलं वसां मज्जानं वा सात्म्यीभावमभिसमीक्ष्य पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गबेरचूर्णसहितम्। स्नेहं पीतवत्याश्च सर्पिस्तैलाभ्यामभ्यज्य वेष्टयेदुदरं महताऽच्छेन वाससा; तथा तस्या न वायुरुदरे विकृतिमुत्पादयत्यनवकाशत्वात्। जीर्णे तु स्नेहे पिप्पल्यादिभिरेव सिद्धां यवागूं सुस्निग्धां द्रवां मात्रशः पाययेत्। उभयतः कालं चोष्णोदकेन च परिषेचयेत् प्राक् स्नेहयवागूपानाभ्याम्। एवं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वाऽनुपाल्य क्रमेणाप्याययेत्। स्वस्थवृत्तमेतावत् सूतिकायाः॥

(च० सं० शा० ८/४८)

अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिष्क्वाथेनोपचरेत्। सशेषदोषां तु तदहः पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गबेरचूर्णं गुड़ोदकेनोष्णेन पाययेत् एवं द्वित्रात्रं त्रित्रात्रं वा कुर्यादादुष्टशोणितात्। विशुद्धे ततो विदारिगन्धादिसिद्धां स्नेहयवागूं वा पाययेत् त्रिरात्रम्। ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जाङ्गलरसेन शाल्योदनं भोजयेद्बलमग्निबलं चा वेक्ष्य॥१६॥

प्रायश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत्। क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत्॥१८॥ (सु० सं० शा० १०/१६,१८)

अथ सूतिकां बलातैलेनाभ्यज्यात्। बुभुक्षितां च पञ्चकोलचूर्णेन यवान्युपकुञ्चिकाचव्यचित्रकव्योषसैन्धवचूर्णेन वा युक्तामहःपरिणामिनीं यथासात्म्यं स्नेहमात्रां पाययेत्। स्नेहायोग्यां वातहरौषधक्वाथं ह्रस्वपञ्चमूलक्वाथं वा पीतवत्याश्च यमकेनाभ्यज्य वेष्टयेदुदरं वस्त्रेण। तथा न वायुरुदरविकृतिमुत्पादयेदनवकाशत्वात्। जीर्णे तु स्नेहे पूर्वौषधैरेव सिद्धां विदार्यादिगणक्वाथेन क्षीरेण वा यवागूं सुस्निग्रां द्रवां मात्रया पाययेत्। प्राक्स्नेहयवागूपानाभ्यां चोभयकालमुष्णोदकेन परिषेचयेत्॥

एवं त्रिरात्रं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वाऽनुपाल्य ततो यवकोलकुलत्थयूषेण लघुना चान्नपानेन द्वादशरात्रात्परं जाङ्गलरसादिभिश्च क्रमादाप्याययेदग्निबलादीन्यपेक्ष्य। क्वथितशीतं च तोयं पाययेत्। तथा जीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धैरभ्यङ्गोच्छादनपरिषेकावगाहैरन्नपानैश्च हर्षौरुपाचरेत्॥ (अ० सं० शा० ३/३८)

मुक्तगर्भापरां योनिं तैलेनाङ्गं च मर्दयेत्॥९१॥
सूतिका क्षुद्वतीं तैलाद् घृताद्वा महतीं पिबेत्। पञ्चकोलकिनीं मात्रामनुचोष्णं गुडोदकम्॥९४॥
वातघ्नौषधतोयं वा, तथा वायुर्न कुप्यति। विशुद्ध्यति च दुष्टास्रं द्वित्रिरात्रमयं क्रमः॥९५॥
स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत्। पीतवत्याश्च जठरं यमकाक्तं विवेष्टयेत्॥९६॥
जीर्णे स्नाता पिबेत्पेयां पूर्वोक्तौषधसाधिताम्। व्यहादूर्ध्वं विदार्यादिवर्गक्वाथेन साधिता॥९७॥
हिता यवागूः स्नेहाढ्या सात्म्यतः पयसाऽथवा। सप्तरात्रात्परं चास्यै क्रमशो बृंहणं हितम्॥९८॥
द्वादशाहेनऽतिक्रान्ते पिशितं नोपयोजयेत्। यत्नेनोपचरेत्सूतां ·····॥९९॥ (अ० हृ० शा० १)
सूतिकाया विशेषेण रक्षोघ्नानि हितानि च॥१८२॥ (का० खि० १०)

उग्रकर्म तु सूतानां सविशेषमतः परम्। संप्रवक्ष्यामि कात्स्न्येन तन्निबोध यथाक्रमम्॥३॥
तदुपक्रमसामान्यं विशेषोपक्रमं तथा। वक्ष्यामि व्यासतो देशविदेशकुलसात्म्यतः॥१७॥
प्रजातमात्रामाश्वास्य सूतां शक्ला विजा(प्रसा)विका॥ न्युब्जां शयानां संवाह्य पृष्ठे संश्लिष्य कुक्षिणा॥१८॥
पीडयेद्वट्टमुदरं गर्भदोषप्रवृत्तये। महताऽदुष्टपट्टेन कुक्षिपार्श्वे च वेष्टयेत्॥१९॥
तेनोदरं स्वसंस्थानं याति वायुश्च शाम्यति। चर्मावनद्धामासन्दीं बलातैलोष्णपूरिताम्॥२०॥
अध्यासीत सदा सूता तथा योनिः प्रसीदति। प्रियङ्गुकानां कृसरैः स्वभ्यक्तां स्वेदयेत्ततः॥२१॥
स्निग्रामुष्णाम्बुना स्नातां विश्रान्तां विगतक्लमाम्। कुष्ठगुग्गुल्वगुरुभिर्धूपयेद्घृतसंयुतैः॥२२॥
ततोऽग्निबलवा(वि)द्वीक्ष्य व्यहं पञ्चाहमेव वा। मण्डानुपानमन्वक्षं पिबेत् स्नेहं हिताशिनी॥२३॥

Scanned with CamScanner

सूतिका को क्रोध, व्यायाम, मैथुन का परित्याग करे।

स्नेहव्यूपमेऽश्नीयादल्पस्नेहामसैन्धवाम् । यवागूं त्र्यहमेवात्र पिप्पलीनागराश्रिताम् ॥ २४॥
स्याद्व्यपेतौषधा पश्चात् सस्नेहलवणोत्तरा। कुलत्थयूषः सस्नेहलवणाम्लस्ततः परम् ॥ २५॥
तथैव जाङ्गलरसः शाकानीमानि चाप्यतः। घृतभृष्टानि कूष्माण्डमूलकैर्वारुकाणि च ॥ २६॥
स्नेहस्वेदी च सेवेत मासमेकमतन्द्रिता। उष्णोदकोपचारं च स्वस्थवृत्तमतः परम् ॥ २७॥
कुलसात्म्यं च बुध्येत् यस्मिन् यस्मिन् यथा यथा।औचित्यात् कुलसात्म्यस्य तत्तथैवानुवर्तते ॥ ३५॥
अतो नैकान्तिकत्वाच्च सूतिकोपक्रमस्य च। देशं च जाति सात्म्यं च संप्रधार्य प्रयोजयेत् ॥ ३६॥
(का० सं० खि० ११)

सूतिका को भूख लगी है यह जानकर उसके सात्म्य का (घृततैलादि की सात्म्यता का) ध्यान रखते हुए शक्ति के अनुसार (जितना स्नेह बल-विरोधी न हो या पच जाय) पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक तथा शृङ्गवेर के चूर्ण से युक्त घृत, तैल, वसा अथवा मज्जा का पान कराए। स्नेह पी लेने के बाद घृत एवं तैल से अभ्यङ्ग (उदर का) करके उदर को बड़े एवं निर्मल वस्त्र से (भली भाँति दबाकर) लपेट दे। इस प्रकार करने से अवकाश न रहने के कारण वायु विकृति नहीं उत्पन्न करती। स्नेह के पच जाने के बाद पिप्पल्यादि (उपर्युक्त पाँचों) औषधियों से ही साधित घृत-युक्त पतली यवागू का पान कराए। दोनों समय स्नेह तथा यवागू के पान के पूर्व उष्णोदक से परिषेचन कराए। इस विधि को पाँच या सात रात्रि पालन करके क्रमशः आप्यायन (बृंहण चिकित्सा या मांसबलवर्द्धक उपाय) करना चाहिए। टीकाकार चक्रपाणि ने लिखा है कि परिषेचन के बाद प्रातःकाल स्नेहपान कराए, स्नेह के जीर्ण हो जाने पर पुनः परिषेचन करके यवागू पिलाए। यह विधि आनूप देश की स्त्रियों के लिए नहीं है क्योंकि वहाँ के प्राणियों में कफ की प्रबलता रहती है, जाङ्गल देशवासियों के लिए इसे प्रयोग करना चाहिए[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि सूतिका का बलातैल (पृष्ठ ५३३ से ५३६) से अभ्यङ्ग करके वातहर औषधियों (भद्रदारु आदि[2]) के क्वाथ से उपचार करे अर्थात् पान एवं परिषेक आदि में प्रयोग करे[3]। दोष शेष रह जाने पर (गर्भाशय में दोष अर्थात् रक्त[4]) के रह जाने पर उसी दिन पिप्पली, पिप्पलीमूल, हस्तिपिप्पली, चित्रक तथा शृङ्गवेर के चूर्ण को उष्ण गुडोदक के साथ पीने को दे। इस प्रकार दो या तीन रात्रि दुष्ट शोणित के निकल जाने तक पिलावे। शुद्ध हो जाने पर विदारिगन्धादि गण की औषधियों से साधित स्नेह-यवागू अथवा क्षीर-यवागू (स्नेह या क्षीर युक्त यवागू) का तीन दिन (प्रसव के तीसरे या चौथे दिन से छठे या सातवें दिन) तक पान कराए। तत्पश्चात् (सातवें या आठवें दिन से) यव, कोल तथा कुलत्थ से सिद्ध जाङ्गल मांसरस के साथ शाली धान्य का ओदन बल एवं अग्नि का ध्यान रखकर खिलाए।

इसका उष्ण जल की अधिक मात्रा से प्रायः परिषेचन करे तथा सूतिका क्रोध, व्यायाम एवं मैथुन आदि (पन्द्रह बातों का जो आतुरोपद्रव चिकित्सान्तर्गत वर्णित हैं[3]) का परित्याग करे। टीकाकार डल्हण का मत है कि परिषेचन उष्णोदक की धारा से करना चाहिए जिसका उद्देश्य गर्भ-क्षोभ से उत्पन्न रक्त का स्राव कराना (अशुद्ध रक्त का स्राव कराना) तथा वायु को विजय करना है[3]।

परिपूर्ण काल में प्रसव होने के पश्चात् स्त्री का स्वेदन करना चाहिए[4]।

१. पौर्वाह्णिकः स्नेहपानपरिषेकः कारयितव्यः तथा जीर्णे स्नेहे परिषेचितां यवागूः पाययितव्येत्यर्थः। अयं तु व्यवहारो नानूपदेशे प्रबलकफत्वात् प्राणिनां, किंतु जाङ्गलदेशव्यवहार इति ज्ञेयम् ॥ (च० सं० शा० ८/४८ की चक्र० टीका)

२. वातहरौषधानि भद्रदार्वादीनि। उपचरेत् 'पानपरिषेकादिभिः' इतिः शेषः। सशेषदोषामित्यत्र दोषशब्दो रक्तवचनः ॥
(सु० सं० शा० १०/१६ की डल्हण टीका)

३. ।·····। एनां स्त्रियं परिषिञ्चेत् धारया, गर्भक्षोभकृतरक्तस्रावणार्थं वातजयार्थं च। ····· क्रोधादयः पञ्चदश आतुरोपद्रव-चिकित्सितोक्ताः। (सु० सं० शा० १०/१८ की डल्हण टीका)

४. सु० सं० चि० ३२/१८ (पृष्ठ ५३२)

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि सूतिका का बलातैल (पृष्ठ ५३३ से ५३६) से अभ्यङ्ग करे। उसे भूख लगने पर पञ्चकोल चूर्ण अथवा यवानी, उपकुञ्चिका, चव्य, चित्रक, व्योष तथा सैन्धव के चूर्ण के साथ दिन भर में पच जाने योग्य मात्रा में यथासात्म्य स्नेह पीने को दे। स्नेह पान के अयोग्य (स्त्री) को वातहर औषधियों अथवा लघुपञ्चमूल का क्वाथ पीने को दें। इस पान के पश्चात् घृत एवं तैल से अभ्यङ्ग (उदर का) करके उदर को कपड़े से लपेट दें इससे अवकाश न मिलने के कारण वायु विकृति नहीं उत्पन्न करती। स्नेह के पच जाने पर पूर्वोक्त औषधियों या विदार्यादिगण की औषधियों के क्वाथ या दुग्ध के साथ भली भाँति पकाई हुई पतली यवागू मात्रा के अनुसार पीने को दें। स्नेह एवं यवागू के पान के पूर्व दोनों काल (प्रातः एवं सायं) उष्णोदक से परिषेचन करें।

इस विधि का तीन, पाँच या सात रात्रि (बलाबल के अनुसार) तक पालन करके तत्पश्चात् यव, कोल एवं कुलत्थ के यूष के साथ लघु अन्नपान प्रयोग करे। बारह रात्रि के पश्चात अग्नि एवं बल को ध्यान में रखकर जाङ्गल मांसरस आदि से क्रमशः आप्यायन (बृंहण) करें। उबाल कर शीतल किया हुआ जल पीने को दें तथा जीवनीय, बृंहणीय, मधुर एवं वातहर (औषधियों) से सिद्ध (तैल या घृत या क्वाथ से) अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, परिषेक एवं अवगाहन तथा हृद्य अन्न-पान से उपचार करें।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि गर्भ एवं अपरा से मुक्त हो जाने के बाद स्त्री की योनि एवं अङ्गों का तैल से मर्दन करे। भूख लगने पर सूतिका तैल या घृत की महती मात्रा (आठ याम में पच जाने योग्य मात्रा[1]) में पञ्चकोल का चूर्ण मिलाकर पान करे तत्पश्चात् उष्ण गुडोदक अथवा वातहर औषधियों का तोय (क्वाथ) पान करे। यह क्रम दो या तीन रात तक करे, इससे वायु प्रकुपित नहीं होती (अन्यथा शून्य-कोष्ठ को प्राप्त कर कुपित हो सकती है[1]) तथा दुष्ट रक्त का शोधन हो जाता है। स्नेहपान के अयोग्य स्त्री को उपर्युक्त (औषधियाँ) स्नेह के बिना ही दें, इस पान के पश्चात् घृत एवं तैल से अभ्यङ्ग करके उदर का आवेष्टन करे। स्नेह के जीर्ण हो जाने पर पूर्वोक्त औषधियों से साधित पेया का पान करे। तीन रात्रि के पश्चात् सात्म्य के अनुसार विदार्यादिगण के क्वाथ से सिद्ध, स्नेह-युक्त अथवा दुग्ध के साथ बनी यवागू हितकारी होती है (इस प्रकार ७ रात्रि तक प्रयोग करें)। सात रात्रि के पश्चात् क्रमशः बृंहण (जीवनीय, बृंहणीय, मधुरवर्ग की औषधियों से सिद्ध अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, परिषेक एवं अवगाह तथा हृद्य अन्नपान[1]) का प्रयोग हितकारी होता है। बारह दिन बीतने के पूर्व तक मांस का प्रयोग नहीं करना चाहिए। टीकाकार अरुणदत्त का मत है कि यह निषेध स्कन्द आदि बारह ग्रहों से अभिषङ्ग होने के कारण किया गया है[1]। इस प्रकार यत्न पूर्वक सूतिका का उपचार करें।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि सूतिका को विशेष करके रक्षोघ्न एवं हित विधान का पालन करना चाहिए तथा लिखा है कि अब मैं देश, विदेश तथा कुल के सात्म्य के आधार पर सामान्य तथा विशिष्ट उपक्रम विस्तार से कहूँगा-

प्रियवादिनी प्रसाविका प्रजातमात्र को आश्वासन देकर न्युब्ज (घुटने मोड़कर अधोमुख होकर या पार्श्व के बल पीठ को बाहर निकाले हुए लेटकर) शयन कराकर पीठ का संवाहन (हाथ से मालिश) करके, कुक्षि को दबाकर, (गर्भ को प्रसवित करने के लिए) वायु (अपान) के द्वारा प्रचालित उदर की मालिश करते हुए गर्भ-जन्य दोषों की प्रवृत्ति के लिए दबाए, तत्पश्चात् बड़े एवं स्वच्छ कपड़े से कुक्षि तथा पार्श्व को लपेटे, इससे उदर स्वस्थान में चला जाता है तथा वायु का भी शमन होता है। प्रसूता स्त्री उष्ण बलातैल से पूरित चर्मावनद्ध (चमड़े से मढ़ी हुई) आसन्दिका (छोटी कुर्सी) पर सदा बैठे, इससे उसकी योनि स्वस्थ हो जाती है एवं प्रियङ्गु आदि की बनी हुई कृशरा से (योनि का) स्वेदन करें। स्वेदन हो जाने के बाद गरम जल से स्नान तत्पश्चात् विश्राम कराकर थकान दूर हो जाने पर कुष्ठ, गुग्गुल तथा अगरु में घृत मिलाकर धूपन करे। तत्पश्चात् अग्नि एवं बल (अथवा अग्नि के बल अर्थात् पाचनशक्ति) को देखकर तीन या पाँच दिन मण्ड

१. ·····अष्टाभिर्यामैर्या जरां गच्छति सा स्नेह मात्रा महती।·····वायुर्नकुप्यति न कोपं याति शून्यकोष्ठं प्राप्य ·····।
बृंहणं च जीवनीयबृंहणीयमधुरवर्गसिद्धैरभ्यङ्गोद्वर्तनपरिषेकावगाहनैर्हृद्यैश्चान्नपानैर्विद्यातव्यम् ·····। नाभ्यवहारयेत्, स्कन्दादिद्वादशग्रहाभिषङ्गपरिहारार्थम्। मांसभोजनेन हि कदाचित्तैरभिषङ्गो भवेत् ·····।
(अ० ह० शा० १/९४, ९५, ९८, ९९ अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

का पान कराए एवं उसके बाद हित भोजन करने वाली स्त्री को स्नेहपान कराना चाहिए। स्नेह के जीर्ण हो जाने पर पिप्पली एवं नागर से युक्त लवण विरहित तथा अल्प-स्नेह युक्त यवागू को तीन दिन तक देना चाहिए। उसके बाद (कुल ६ या ७ दिन के बाद) औषधियों से युक्त पर्याप्त मात्रा के लवण तथा स्नेह से युक्त यवागू का सेवन करना चाहिए। इसके बाद स्नेह, लवण तथा अम्ल से युक्त कुलत्थ-यूष एवं जाङ्गल मांसरस का सेवन तथा कूष्माण्ड, मूलक एवं एर्वारुक आदि शाकों को घी में भून कर खाए। प्रसव के बाद स्त्री को एक मास तक तन्द्रा से रहित होकर स्नेहन, स्वेदन तथा उष्ण जल का सेवन करना चाहिए, यह सूतिका का (सामान्य) स्वस्थवृत्त है। जहाँ जहाँ जिस-जिस प्रकार का कुल-सात्म्य ज्ञात हो उस कुल-सात्म्य के औचित्य को ध्यान में रखकर उस प्रकार का आचरण करना चाहिए। सूतिका के उपक्रम को एकान्तिक (एक देशीय) न समझना चाहिए। देश एवं जाति के सात्म्य को आधार मानकर (चिकित्सा या पथ्य का) प्रयोजन करना चाहिए। प्रसूता को स्नेह के प्रयोग का निषेध किया गया है[१]।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि प्रसव के पश्चात् लोध्र, अर्जुन, कदम्ब, देवदारु, बीजक तथा कर्कन्धु में से यथा उपलब्ध द्रव्यों (के क्वाथ) को रक्त की शुद्धि के लिए देना चाहिए इससे प्रसूता स्त्री की योनि शुद्ध हो जाती है। तैल से आपूरण (योनि का) तथा अभ्यङ्ग करके उष्ण जल से स्वेदन करें। (पहिले दिन) उपवास करके दूसरे दिन नागर, हरीतकी तथा गुड़ (खाने को) दें। दोपहर के बाद उष्ण कुलत्थ-यूष पीने को दें। तीसरे दिन पञ्चकोल की यवागू, (चौथे दिन) चतुर्जातक मिश्रित यवागू तथा पाँचवें दिन शालि या षष्टिक धान्य का ओदन भोजन करने को दें। इस प्रकार दस या पन्द्रह दिन उपचार करें। इस प्रकार श्रेष्ठ वैद्य बारहवें दिन मङ्गल-वचन करके योषार्थ (घर की अन्य स्त्रियों को तथा मङ्गल गीत आदि) दिखावे,[२] या उनमें मिलने की आज्ञा दे।

भावप्रकाश में संक्षेप में लिखा है कि प्रसूता स्त्री को हित या योग्य आहार-विहार का सेवन करना चाहिए तथा व्यायाम, मैथुन, क्रोध एवं शीत-सेवन का परित्याग कर देना चाहिए। उसे एक मास तक अतन्द्रित या सचेष्ट होकर स्निग्ध, पथ्य एवं अल्प भोजन वाली तथा नित्य स्वेद एवं अभ्यङ्ग प्रयोग करने वाली रहना चाहिए। इस प्रकार से वह भलीभाँति शुद्ध हो जाती है[३]।

योगरत्नाकर पुस्तक में उपर्युक्त भावप्रकाश के वर्णन के ही साथ प्रसव के तुरन्त बाद वायु के प्रवेश से संरक्षण के लिए योनि को दबाने का भी निर्देश है[४]।

आचार्यों ने बालक के रक्षाकर्म का वर्णन किया है जो सूतिकागार में स्थित बालक में किया जाता है। महर्षि चरक

१. न स्नेहयेद्गर्भिणीं न प्रसूतां ·····। (का० सं० सू० २२/३०)

२. प्रसूत्यनन्तरं रोध्रार्जुनकदम्बदेवदारुबीजकार्द्ध कर्कन्धूञ्च यथालाभं लोहितविशुद्धे दापयेत्। प्रसूतिजाता योनिः संशोष्यते ॥
तैलेनापूर्य्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत्। उपवासमेवं कृत्वा द्वितीये दिवसे गुडनागरहरीतकीश्च दापयेत्। द्वययामोर्ध्वं
कुलत्थयूषं वा सोष्णं पाययेत्॥ तृतीय दिवसे पञ्चकोलयवागूर्दापयेत्। चतुर्जातक मिश्रा यवागूर्दापयेत्॥
पञ्चमेऽहनिशालिषष्टिकौदनं भोजयेत्॥ अनेन क्रमेण दशपञ्चदशाहं चोपचारयेत्॥ १॥
एवं कृत्वा च नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः। मांगल्यं वाचनं कृत्वा योषार्थञ्च प्रदर्शयेत्॥ ५॥
(हा० सं० तृ० स्था० ५३/१ व ५)

३. प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत्। व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत्॥ २॥
सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना। स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता॥ ४॥ (भा० प्र० पूर्व० ४)
प्रसूता युक्तमाहारं·····शीतसेवाञ्च वर्जयेत्॥ १४५॥
सर्वतः·····तन्द्रिता॥ १६५॥ (भा० प्र० चि० ७० उपर्युक्त सदृश ही)

४. पृथिव्यां पतिते वत्से योनौ पिण्डनमिष्यते। अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणक्रिया॥
प्रसूता·····वर्जयेत्॥ सर्वतः·····मतन्द्रिता॥ (भा० प्र० चि० ७० की ही भाँति) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

ने स्पष्टतया इसे बालक एवं सूतिका दोनों का ही रक्षाकर्म माना है,। इस रक्षाकर्म का तात्पर्य सूतिका एवं बालक का ग्रह या भूताभिवेश (औपसर्गिक व्याधियों) से संरक्षण है[१], अतः अध्याय १० में वर्णित रक्षाकर्म को भी सूतिकापरिचर्या का अङ्ग समझना चाहिए।

आचार्यों ने सूतिका को आस्थापन,[२] शिराबेध[३], नस्य[४], विरेचन[५] एवं स्वेदन[६] का निषेध किया है। महर्षि शार्ङ्गधर ने प्रसव के पश्चात् स्वेदन[७] तथा बलातैल का प्रयोग प्रशस्त माना है[८]।

महर्षि वाग्भट ने सूतिका को बृंहण के योग्य माना है[९] है। महर्षि काश्यप ने मण्ड-प्रयोग का निर्देश दिया है।[१०]

In general all the classics have advised massage, oral administration of fats with medicines and decoctions for three to seven days after delivery. Use of medicated rice gruel is prescribed in diet. From seventh or twelfth day medicated meatsoup is advised. However, there is slight difference of opinion in the list of drugs amongst various authors.

Caraka says that when puerperal woman feels hunger she should be prescribed powdered *pippalī, pippalīmūla, cavya, citraka* and *śṛṅgabera* with any one out of *ghṛta,* oil, *vasā* (animal fat) or *majjā* (marrow) considering her tolerability for these, and in the quantity which she can digest easily. After ingesting this, her abdomen should be massaged and wrapped properly with a big clean cloth. This wrapping produces compression of abdomen, thus prevents presence of hallow space, so the *vāyu* does not get vitiated. After digestion of *ghṛta* etc. fats, liquid gruel made with rice and medicated with *pippalī* etc. drugs mentioned above and mixed with *ghṛta* should be given. During both the times i.e. morning and evening irrigation or bath with hot water should precede use of *ghṛta* etc. and rice gruel. Cakrapāṇi says that in the morning irrigation should be given before ingestion of oleaginous substance and should be repeated after its digestion, afterwards rice gruel should be given. After use of this regimen for five or seven nights (day and nights) gradual administration of *vṛṃhaṇa* substances (anabolic or likely to increase flesh and energy) should be done. This regimen is not suitable for the women of *ānūpadeśa* (marshy land), because in the persons of this area the *kapha* is dominant. This regimen is suitable for the woman of *jāṅgala* (wild or dry) area.

१. च० सं० शा० ८/४७; सु० सं० शा० १०/२३; अ० सं० उ० १/१६ से १८ (अध्याय १० में वर्णित)
२. अनास्थाप्यास्तु·····विसूचिकामप्रजाता ·····। (च० सं० सि० २/१४)
३. अ० सं० सू० ३६/८ एवं अ० हृ० सू० २७/७
४. अ० सं० सू० २९/११ एवं अ० हृ० सू० २०/१२
५. सु० सं० चि० ३३/३०; शा० सं० उ० ४/८ एवं० भा० प्र० पूर्व० २-५/४०
६. अ० सं० सू० २६/३२ एवं अ० हृ० सू० १७/२४
७. पश्चात्स्वेद्या·····प्रजाता ·····। (शा० सं० उ० २/८)
८. शा० सं० मध्य० ९/११४ से ११८ (पृष्ठ ५३३ से ५३६)
९. अ० सं० सू० २४/११
१०. सद्यः प्रसूतास्वपि चाङ्गनासु, मण्डं विदध्यात् ·····। (का० सं० कल्प० ७/६४)

Scanned with CamScanner

Suśruta says that after applying massage with *balātaila* (described under obstructed labour) the puerperal woman should be prescribed decoction of *bhadradāru* etc. drugs capable of suppressing the *vāta* for oral administration or irrigation. If some *doṣas* or blood is still left inside (some blood clots are retained in uterus), powdered *pippalī, pippalīmūla, hastipippalī, citraka* and *śṛṅgabera* with warm jaggery-water should be given. This should be continued for two or three days till the abnormal blood (lochia rubra) is properly excreted. Afterwards rice gruel prepared with the drugs of *vidārigandhādi* group and mixed with *ghṛta* or milk should be given for three days (from third or fourth day to sixth or seventh day after delivery). Then (from 7th or 8th day) cooked *śāli* rice with meat soup of wild animals prepared with *yava, kola* and *kulattha* should be prescribed considering her strength and digestive power. Normally the woman should be given good irrigation with hot water and should avoid anger, exercise and coitus. Dalhaṇa says that irrigation should be done by pouring water in a stream, so that abnormal blood (accumulated in uterus) produced due to irritation by *garbha* (delivery) is excreted properly and *vāta* is also suppressed. After delivery of full term fetus the sudation should be given.

Vāgbhaṭa I has mentioned that massage with *balātaila* should be given to the puerperal woman. After feeling of hunger she should be given congenial oleaginous substances mixed with either powdered *pañcakola* or powder of *yawānī, upakuñcikā, cavya, citraka, vyoṣa* and rock salt, in the quantity which she can digest in whole day. The woman unfit for use of oily substances should be given decoction of either *laghupañcamūla* or drugs capable of suppressing *vāta*. After this oral administration of oily substance or decoction, her abdomen should be massaged with *ghṛta* and oil and wrapped with cloth to prevent vitiation of *vāyu* likely to occur due to availability of hallow space. After digestion of oleaginous substance, liquid rice-gruel properly prepared with either above mentioned drugs or *vidāryādi* group of drugs or milk should be given in the quantity which she can digest properly. During this entire period morning and evening irrigation with hot water should precede use of *ghṛta* etc. or rice-gruel. This regimen used for three, five or seven nights should be followed by use of light diet with soup of *yava, kola* and *kulattha*. After twelve nights giving due consideration to strength and digestive capacity, gradual satiation or strengthening should be done by use of meat soup of wild animals; besides, oil, *ghṛta* or decoction prepared with *jīvanīya, vṛṃhaṇīya, madhura* and *vātahara* drugs should be used in the from of massage, unguent, irrigation and batheing. Agreeable diet or drinks should also be given.

Vāgbhaṭa II has also given almost similar description as Vāgbhaṭa I, however, he has advised massage of even *yoni* alongwith body and use of hot jaggery-water just like Suśruta. Aruṇadatta has explained that if meat preparations are used before twelve days, it invites the danger of infliction by *skanda* etc. twelve *grahas*.

Kāśyapa says that the puerperal woman should use specifically *rakṣoghna* (antiseptic) and beneficial things. Detailed management should be done giving due consideration to place of living (*deśa* and *videśa)* and traditions of the family. The woman immediately after delivery should be encouraged by sweet-spoken accoucheuse, and made to lie down in

hunch-back position. Now she should rub her back, press her abdomen/flanks and then compress her abdomen having been moved by *vāyu* (entire musculature of abdomen acts with force due to effect of *apāna vāyu* to expell the fetus) in order to expel the *doṣas* left-over after delivery. After this, abdomen and flanks should be wrapped with clean big cloth, by this wrapping abdomen reaches its proper place and *vāyu* also subsides. The puerperal woman should always sit over a small chair covered with leather-bag filled with hot *balātaila*, with this her *yoni* becomes healthy. Sudation in the *yoni* should be given with oleo prepared with *priyaṅgu* etc. drugs. After proper sudation hot water bath followed by rest should be given, after overcoming the tiredness, fumigation with *kuṣṭha, guggulu* and *agaru* mixed with *ghṛta* should be done. Now, considering her strength and digestive power scum of boiled rice should be given for three or five days, then the woman using beneficial diet should take orally oleaginous articles (oil, *ghṛta* etc.). After digestion of this oil etc. salt free rice gruel mixed with little quantity of oleaginous substance and powdered *pippalī* and *nāgara* should be given. This should follow (after 6 or 7 days) use of rice gruel mixed with sufficient quantity of salt and oleaginous substance, then meat soup of wild animals and soup of *kulattha* mixed with oleaginous substance, salt and sour articles and *kūṣmāṇḍa* (a kind of pumpkin-gourd), radish, cucumber etc. vegetables fried in *ghṛta*. After delivery the woman should use oleation, sudation and hot water with full alertness for one month. The management of puerperal woman should not be considered in isolation, due consideration had to be paid to traditions as well as beneficial things or diet to the family and also place of living. Sudation is contraindicated.

Hārīta has advised that after delivery the decoction of available drugs out of *lodhra, arjuna, kadamba, devadāru, bījaka* and *karkandhu* should be given for purifying the blood and also *yoni*. Vaginal filling with oil and massage followed by sudation with hot water should be done. After fasting for first day, on second day in the morning *nāgara* and *harītakī* with jaggery, then in the afternoon warm soup of *kulattha* should be given. Rice gruel mixed with *pañcakola* or *caturjātaka* should be given on third and fourth day respectively, on fifth day cooked *śālī* or *ṣaṣṭika* rice be prescribed in diet. This regimen should continue for ten or fifteen days. The wise physician should permit the puerperal woman to see or meet other women on twelfth day.

Bhāvaprakāśa has given very short description, that the puerperal woman should use congenial diet and mode of life; give up exercise, coitus, anger and cold air. She should use unctuous, light, congenial diet and daily sudation and massage for one month with full alertness. Yogaratnākara has added that immediately after delivery her vaginal canal should be pressed to avoid entry of air.

Authors have advised various protective measures described in chapter ten to prevent mother and new born child from the seizure by *grahas* or *bhūtas* (infection), thus this also forms a part of management for puerperal woman.

Use of *āsthāpanabasti* (evacuative enema), venesection, sternutatory drugs, purgatives and sudation is contraindicated, however, Śārṅgadhara has advised sudation after delivery. She is fit for the use of *bṛṃhaṇa* drugs. Use of *maṇḍa* is beneficial.

Scanned with CamScanner

इ) सूतिका को आस्थापन देने का परिणाम (Effect of āsthāpanabasti on puerperal woman)

..... प्रजाताम् ..... आमकृतो दोषः स्यात् ॥ (च० सं० सि० २/१५)

प्रजाता स्त्री (सूतिका) को आस्थापन बस्ति देने से आमदोष की वृद्धि हो जाती है।

Use of *āsthāpana basti* (evacuative enema) increases *āma doṣa* of a puerperal woman.

ई) सूतिका को नस्य देने का परिणाम (Effect of nasya or sternutatory drugs)

स्रुतरक्तस्य क्षामतामरुचिमग्निसादं च ॥ ..... सूतिकायाः स्रुतरक्तोक्तान् दोषान् ॥
(अ० सं० सू० २९/११)

सूतिका को नस्य देने से स्रुतरक्त (रक्त निकाले हुए व्यक्ति) सदृश ही अर्थात् क्षामता (कृशता) अरुचि एवं अङ्गसाद आदि उपद्रव हो जाते हैं।

If *nasya* is given to a puerperal woman, she develops emaciation, anorexia and bodyache.

उ) सूतिकापरिचर्या से लाभ (Benefits of this management)

एवं हि गर्भवृद्धिक्षपितशिथिलसर्वशरीरधातुप्रवाहणवेदनाक्लेदरक्तनिस्रुतविशेषशून्यशरीराच्च पुनर्नवीभवति ॥
(अ० सं० शा० ३/३९)

इस प्रकार (पूर्व पृष्ठों में वर्णित सूतिकापरिचर्या का प्रयोग करने से) गर्भवृद्धि के कारण कृश होने, सभी शरीर की धातुओं के शिथिल होने तथा प्रवाहण की वेदना एवं क्लेद तथा रक्त निकलने के कारण विशेष रूप से शून्य शरीर हुई स्त्री पुनः नवीन हो जाती है अर्थात् उसका शरीर एवं धातुयें पूर्ववत् हो जाती हैं।

The woman becomes weak or emaciated due to development of fetus and also empty bodied due to unsteadiness or languor of all the *dhātus*, labour pains and excretion of *kleda* (moisture) and blood. With this regimen she attains all the lost things and reaches her pre-pregnancy stage.

ऊ) देशादि के आधार पर विशिष्ट सूतिकापरिचर्या (Specific puerperal management on the basis of place of living etc.)

त्रिविधं देशमाश्रित्य वक्ष्यामि त्रिविधं विधिम् ॥ २८॥ (का० सं० खि० ११/२८)

तीनों देशों के आधार पर तीन प्रकार की विधि (सूतिका-स्वस्थवृत्त) वर्णन करूँगा।

Now the puerperal management would be described on the basis of all three living places.

१) आनूपदेशस्थ सूतिकापरिचर्या (Management for puerperal women of ānūpa deśa or living in marshy land)

आनुपदेशे भूयिष्ठं वातश्लेष्मात्मका गदाः ॥ २८॥
तत्राभिष्यन्दभूयस्त्वादादौ स्नेहो विगर्हितः । मण्डादिरत्र कर्त्तव्यः संसर्गोऽग्निबलावहः ॥ २९॥
स्वेदो निवातशयनं सर्वमुष्णं च शस्यते ॥ ३०॥ (का० सं० खि० ११/२८ से ३०)

आनूपदेश में विशेषकर वात एवं श्लेष्मा की बीमारियाँ होती है। वहाँ पर अभिष्यन्द या क्लेद की प्रधानता के कारण प्रारम्भ में स्नेह (प्रयोग) निन्दित है यहाँ पर अग्नि एवं बल-वर्धक मण्डदि प्रयोग करना चाहिए तथा स्वेदन, वायु-रहित

स्थान में शयन एवं सभी उष्ण द्रव्यों का सेवन श्रेयस्कर है।

चक्रपाणि ने आनूपदेशस्थ सूतिका को स्नेहपान वर्जित किया है।[१]

Kāśyapa says that in marshy land usually diseases of *vāta* and *śleṣmā* occur. Due to dominance of moisture in this area initially fat should not be used, instead scum of boiled rice treated with appetizing and strength producing things should be given. Sudation, sleeping in air free place (direct entry of air should not be there) and use of all *uṣṇa* (hot) drugs is beneficial. Oleaginous substances should be avoided is the opinion of Cakrapāṇi.

२) जाङ्गलदेशस्थ सूतिकापरिचर्या (Management of puerperal women of jāṅgala deśa or living in wild or dry place)

धन्वभूमिजातां तु सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् पिप्पल्यादि कषायानुपानां, स्नेहनित्या च स्यात् त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा बलवतीं अबलां यवागूं पाययेत् त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा। अत ऊर्द्धं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपचरेत् ॥
प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत्। क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत् ॥ (सु० सं० शा १०/१७,१८)

नियतं जाङ्गले देशे वातपित्तात्मका गदाः ॥ ३०॥
तदत्र स्नेहसात्म्यत्वात् स्नेहादिः स्यादुपक्रमः। कार्यः प्रजातमात्राया विशेषश्चात्र बुध्यते ॥ ३१॥
(का० सं० खि० ११/३०,३१)

जाङ्गलदेश में प्रसूत हुई स्त्री को पिप्पल्यादि कषाय (सामान्य सूतिकापरिचर्यान्तर्गत वर्णित) के अनुपान से घृत, तैल या अन्य स्नेह को मात्रा के अनुसार पिलाए। (इस प्रकार) बलवती प्रसूता को तीन या पाँच रात्रि तक स्नेह पान करायें, अबला या बलरहित स्त्री को तीन या पाँच रात्रि तक यवागू पान करायें। तत्पश्चात् स्निग्ध अन्न से संसर्जन क्रम के अनुसार उपचार करें। प्रायः इसका उष्णोदक की प्रभूत मात्रा से परिषेक करें तथा यह क्रोध, व्यायाम एवं मैथुनादि का त्याग करे।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि जाङ्गलदेश में वात एवं पित्त की व्याधियाँ अधिक होती हैं वहाँ स्नेह सात्म्य होने के कारण सद्यःप्रसूता का विशेष रूप से स्नेह आदि से उपचार करना है ऐसा जानना चाहिए।

टीकाकार चक्रपाणि ने भी जाङ्गलदेश में स्नेहप्रयोग का वर्णन किया है[१]।

The woman of this area should be given *ghṛta* or oil or any other oily articles in good quantity using decoction of *pippalī* etc. drugs (described under general management) as after-drink. To the strong woman this oleaginous substance and to the weak woman rice gruel should be given for three or five nights. This should follow the use of cereals mixed with unctuous things in gradually increasing manner. She should often be irrigated with good quantity of hot water and should avoid anger, exercise and coitus.

Kāśyapa says that in wild places diseases of *vāta* and *pitta* often occur. Since oleaginous substances are congenial in this areas thus should be used in abundance.

Cakrapāṇi also says that oily substances should be used in good quantity.

३) साधारणदेशस्थ सूतिकापरिचर्या (Management of puerperal women of sādhāraṇa deśa or living in ordinary place)

देशे साधरणे चास्या हितः साधारणी विधिः ॥ (का० सं० खि० ११/३३)

१. च० सं० शा० ८/४८ की चक्रपाणि टीका (पृष्ठ ५४८)

Scanned with CamScanner

साधारण देश में इसके लिए साधारण विधि हितकारी होती है।

For woman of ordinary area general or average (use of neither too oleaginous nor dry substances) management is beneficial.

४) विदेशी जातियों के लिए पथ्य (Management for foreigners)

वैदेश्याश्च प्रयच्छन्ति विविधा म्लेच्छजातयः। रक्तं मांसस्य निर्यूहं कन्दमूलफलानि च ॥ ३४॥
(का० सं० खि० ११/३४)

अनेक विदेशी एवं म्लेच्छ जाति के लोग (इस अवस्था में) रक्त, मांसनिर्यूह तथा कन्द, मूल एवं फल आदि का प्रयोग करते हैं।

Women of *mleccha* caste and other foreigners use blood, meat soups, eatable roots, rhyzomes and fruits during this period.

५) पुत्र अथवा पुत्री के जन्म के बाद सूतिका-पथ्य (Pueperal management according to sex of child)

कुमारप्रसवे तैलं कुमारीप्रसवे घृतम्। पिबेज्जीर्णे यवागूं च दीपनीयोपसंस्कृताम् ॥ ३२॥
पञ्चाहं सप्तरात्रं वा ततो मण्डाद्युपक्रमः ॥ (का० सं० खि० ११/३२ व ३३)

स्त्री को पुत्र उत्पन्न होने पर तैल एवं पुत्री उत्पन्न होने पर घृत पीने को दें, इसके जीर्ण हो जाने के बाद दीपनीय औषधियों से संस्कृत यवागू पाँच या सात दिन पीने को दें तत्पश्चात् मण्ड आदि का क्रम दें।

Oil or *ghṛta* should be given for drinking in case of delivery of male or female child respectively. After proper digestion of this fat, rice gruel prepared with appetizing drugs should be given for five or seven days, then scum of boiled rice etc. should be used in a gradual manner.

६) प्रसूता-स्नान (Bath to a puerperal woman)

दशमे द्वादशे वाह्नि गोत्राचारैः शुभैः शुभे। सूता स्नानोत्सवं कर्यात् ·····॥ (अ० सं० उ० १/२७)

दशम या द्वादश दिन शुभ दिन देखकर गोत्र के आचार (नियम) के अनुसार सूतिका का स्नानोत्सव करना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णन को ही अष्टाङ्गहृदयकार ने सूतिकोत्थान अर्थात् सूतिका को अपने सूतिकागृह से बाहर निकालने के नाम से दिया है जो इस प्रकार है–दशम दिन (प्रसव के बाद) पूर्ण होने पर अपने कुल की उचित विधि के अनुसार सूतिकोत्थान[1] अर्थात् सूतिकागृह से बाहर निकालने का कर्म करना चाहिए।

On auspicious period of tenth or twelfth day, according to rituals of family, the bathing ceremony of puerperal woman should be performed is the advice of Vāgbhaṭa I. Vāgbhaṭa II has advised *sūtikotthāna* (coming out of the house) instead of bath.

सूतिका की व्याधियाँ एवं उनकी चिकित्सा (Diseases of puerperal woman and their management)

बृद्धत्रयी के आचार्यों ने सामान्यतः सूतिका-व्याधियों के कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होने के निर्देश के पश्चात् सामान्य चिकित्सा-सूत्र का वर्णन कर दिया है। मक्कल्ल एवं रक्तविद्रधि को छोड़कर किन्हीं विशिष्ट व्याधियों यथा ज्वर (सूतिका)

१. दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः। कारयेत् सूतिकोत्थानं ·····॥ (अ० हृ० उ० १/२२)

आदि का उल्लेख नहीं किया, जिसका सम्भाव्य कारण यह हो सकता है कि सूतिकाज्वर आदि में भी दोष-दूष्य अन्य ज्वरादि-सदृश ही रहते हैं केवल चिकित्सा-सूत्र में वैभिन्य होता है। महर्षि काश्यप तथा अन्य बाद के आचार्यों ने कुछ विशिष्ट व्याधियों तथा उनकी चिकित्सा का वर्णन किया है।

Caraka, Suśruta and Vāgbhaṭas have given the principles of treatment for puerperal disorders after indicating that these are either incurable or are cured with great difficulty. Except *makkalla* and *raktavidradhi* other disorders like puerperal fever etc. have not been described by these authors, which might have been done with the idea that *doṣas* and *dūṣyas* (etiopathogenesis) of these disorders are not different in any way from a common person. however, only principles of treatment differ. Kāśyapa etc. authors have described in detail certain puerperal disorders.

सूतिका की व्याधियों के कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होने का कारण (Cause of incurability or difficult curability of puerperal disorders)

तस्यास्तु खलु यो व्याधिरुत्पद्यते स कृच्छ्रसाध्यो भवत्यसाध्यो वा, गर्भवृद्धिक्षयितशिथिलसर्वधातुत्वात्, प्रवाहणवेदनाक्लेदनरक्तनिःस्रुतिविशेषशून्यशरीरत्वाच्च; ····· विशेषतो हि शून्यशरीराः स्त्रियः प्रजाता भवन्ति।
(च० सं० शा० ८/४९)

मिथ्याचारात् सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते। स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्यपतर्पणात् ॥
(सु० सं० शा० १०/१९)

अत एव च सूतिकाया व्याधिः कृच्छ्रसाध्यो भवत्यसाध्यो वा ·····। (अ० सं० शा० ३/४०)
····· दुःसाध्यो हि तदामयः ॥ गर्भवृद्धिप्रसवरुक्क्लेदारत्रसुतिपीडनैः ॥
(अ० हृ० शा० १/९९, १००)

उस स्त्री (प्रसूता) को जो भी व्याधियाँ हो जाती हैं वे कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होती हैं क्योंकि उसकी सभी धातुयें गर्भ-वृद्धि के कारण क्षय-युक्त एवं शिथिल हो जाती हैं तथा प्रवाहण की वेदना एवं क्लेद तथा रक्तनिःस्रुति के कारण उसका शरीर विशेष प्रकार से शून्य (सा) हो जाता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि मिथ्याचार के कारण प्रसूता को जो भी व्याधियाँ हो जाती हैं वे कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होती है क्योंकि वे अत्यधिक अपतर्पण-जन्य होती हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि इसलिए (गर्भ की वृद्धि के कारण धातुक्षयादि होने से[1]) सूतिका को जो भी व्याधियाँ होती हैं वे कृच्छ्रसाध्य या असाध्य होती हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि गर्भवृद्धि, प्रसव-वेदना, क्लेद तथा रक्तनिःसृति-युक्त शरीर होने से उसको व्याधियाँ दुःसाध्य होती हैं।

महर्षि काश्यप ने ज्वर के वर्णन के अन्तर्गत ही धातुक्षय के कारण शोधन-चिकित्सा-काठिन्य एवं व्याधि की असाध्यतादि का उल्लेख किया है।

माधवनिदानकार ने सूतिका के अग्नि, मांस एवं बल के क्षीण होने के कारण उसमें उत्पन्न व्याधियों को कष्टसाध्य माना है[2]।

१. अत एव गर्भवृद्धिक्षपितधातुतयेत्यादिहेतुः ·····। (अ० सं० शा० ३/४० की इन्दु टीका)
२. कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ॥ (मा० नि० ६५/४)

Scanned with CamScanner

भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर पुस्तकों में भी उपर्युक्त आशय का ही वर्णन है[1]।

Since all the *dhātus* decrease and become languid or unsteady due to development of fetus, body becomes empty due to labour pains and excretion of moisture and blood; her digestive power, muscle-mass and strength decrease; all the diseases occur due to *apatarpaṇa* (non-satiation) and purifying measures can not be given, hence the diseases developing during this stage become incurable or get cured with difficulty.

***सूतिका की व्याधियों का सामान्य चिकित्सा सूत्र** (General principles of treatment for puerperal disorders)*

१) सूतिकाव्याधियों की निदान-परिवर्जन ही उत्तम औषधि है[2]।

२) यथोक्त-विधि[4] अर्थात् स्नेहपानादि से[3], देश, काल तथा व्याधि के सात्म्य का विशिष्ट ध्यान रखकर चिकित्सा करने से सूतिका का नाश या मृत्यु नहीं होती[5]। उसको भलीभाँति पथ्य के द्वारा[6] प्रयत्न से[7] चिकित्सा करनी चाहिए।

३) उसका भौतिक (भूतहर), जीवनीय, बृंहणीय, मधुर तथा वातहर औषधियों से साधित (घृत, तैल या क्वाथ से) अभ्यङ्ग, उत्सादन, परिषेक, अवगाह तथा अन्न-पान की विशिष्ट विधि से उपचार करें[2,3]।

४) कष्ट-प्रसव होने के कारण जो स्त्रियाँ रुग्ण हो जाती हैं उन्हें स्नेहन एवं स्वेदन दें जिससे तत्काल ही वायु का शमन हो जाता है। बुद्धिमान वैद्य उसे दीपनीय औषधियों से सिद्ध यवागू पीने को दे। इससे वह स्त्री निरोग होकर सुखपूर्वक शयन करती है[8]।

i) Avoidance of etiological factors is the best medicine.

ii) She should be treated with good efforts by giving congenial diet and properly administering oleaginous substances with due consideration to the place of living, time factor and suitability for the disease. If these things are taken care of, she does not die.

iii) She should be treated with massage, anointment, irrigation and *ghṛta*, oil or decoction prepared with *bhautika* (capable of eradicating *bhūta*), *jīvanīya* (life prolonging), *bṛṃhaṇīya* (anabolic), *madhura* (sweet) and *vātahara* (capable of suppressing *vāta*) drugs alongwith specific dietetics.

iv) The woman who is diseased due to difficult labour should be given oleation and sudation which suppress the *vāyu*. The wise physician should prescribe rice-gruel treated with appetizing drugs. With this the woman becomes healthy and sleeps well.

१. अ) मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते। स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत् ·····॥
(भा० प्र० पूर्व० ४/३, भा० प्र० चि० ७०/१४६ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)
आ) कृच्छ्र·····वलाश्रितः। (मा० नि० सदृश) (भा० प्र० चि० ७०/१५०, यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. तस्मात्तां यथोक्तेन विधिनोपचरेत्; भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकावगाहनान्नपानविधिविधिविशेषतश्चोपचरेत्॥ (यथोक्तेनेति स्नेहपानादिना। ····· सूतिकाव्याधेर्निदानवर्जनरूपमुत्तमं भेषजमिति दर्शयति ·····। भौतिकं भूतहरम्-चक्र० ।) (च० सं० शा० ८/४९ एवं चक्र० टीका)

३. तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा। परीक्ष्योपचरेन्नित्यमेवं नात्ययमाप्नुयात्॥ (सु० सं० शा० १०/२०)

४. तस्मात्तां यथोक्तेन विधिना प्रयत्नेनोपचरेत्॥ (अ० सं० शा० ३/४०)

५. याः कृच्छ्रेण प्रजायन्ते प्रसूताश्चाप्यनिलाः याः। स्नेहस्वेदैस्ततस्तासां क्षिप्रं वायुः प्रशाम्यति॥४॥
यवागूं दीपनीयां तु स्मृतिमान् दातुमर्हति। यथा शेते सुखं नारी नीरुजा शयने सुखे॥५॥ (का० सं० चि० ३)

६. अ) तत्पथ्यमाचरेत्। (भा० प्र० पूर्व० ४/३, भा० प्र० चि० ७०/१४६,)
आ) पथ्यं समाचरेत्। (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

७. अ० सं० ने इस विधि का वर्णन सामान्य सूतिकापरिचर्या में दिया है यहाँ पर यथोक्त-विधि शब्द का सम्भवतः तात्पर्य इसी पूर्ववर्णित विधि से है।

***सूतिकाव्यापद्** (Puerperal disorders)*

***सूतिका-व्याधियों की गणना** (Number of puerperal disorders)*

महर्षि काश्यप ने सूतिका को होने वाली विशिष्ट व्याधियों की संख्या ६४ वर्णन करते हुए उनका नामोल्लेख खिलस्थान के सूतिकोपक्रमणीय अध्याय में किया[1] है। इसके पूर्व चिकित्सास्थान के दुष्प्रजाताचिकित्साध्याय में भी दुष्प्रजाता को होने वाली कुछ व्याधियों का वर्णन है[2] जिसकी यद्यपि विशिष्ट संख्या का निर्देश नहीं किया पर वे ३५ हैं इनमें से २५ व्याधियाँ नामान्तर से सूतिकोपक्रमणीयाध्याय में भी वर्णित हैं परन्तु १० व्याधियाँ भिन्न हैं[3], इस प्रकार सूतिका की समस्त व्याधियों की संख्या ७४ हो जाती है जो निम्नाङ्कित है–

दोनों स्थलों पर वर्णित व्याधियाँ – (१) योनिविभ्रंश[1] या योनिभेद[2] (२) योनिशोफ[1] या योनिशूनता[2]। (३) योनिवेदना[1] या योनिशूल[2] (४) पृष्ठशूल[1] या पृष्ठभेद[2] (५) कटिशूल[1] या कटिभेद[2] (६) हृदिशूल (७) प्लीहा या प्लीहोदर (८) शाखावात (९) हनुस्तम्भ[1] या हनुग्रह[2] (१०) मन्यास्तम्भ (११) शोफ[1] या शोथ[2] (१२) कामला (१३) ज्वर (१४) अतिसार (१५) विसर्प (१६) छर्दि (१७) प्रवाहिका (१८) आध्मान (१९) मूत्ररोध (२०) मलरोध (२१) अक्षिरोग (२२) कम्प[1] या वेपथु[2] (२३) वाताष्ठीला (२४) वातगुल्म (२५) विचर्चिका।

दुष्प्रजाताचिकित्साध्यायान्तर्गत अतिरिक्त वर्णन – (१) असृग्दर (२) शूल (उदरशूल), (३) योनिदोष (४) मोह (५) दद्रु (६) पामा (७) किटिभ (८) विस्फोट (९) अर्धशिरोरुजा (१०) हृद्रोग।

सूतिकोपक्रमणीय अध्यायान्तर्गत अतिरिक्त वर्णन – (१) योनिभ्रंश (२) योनिक्षत (३) योनिस्राव (४) योनिप्रसुप्तता (५) पार्श्वशूल (६) विसूचिका (७) महोदर (८) अङ्गमर्द (९) प्रक्षेपक (१०) अपतानक (११) मक्कल्ल (१२) विद्रधि (१३) प्रलाप (१४) मूत्रसङ्ग (१५) उन्माद (१६) दौर्बल्य (१७) भ्रम (१८) कार्श्य (१९) भक्तद्वेष

१. दुष्प्रजातामयाः सन्ति चतुःषष्टिरिति स्थितिः। योनिर्भ्रष्टा क्षता चैव विभिन्ना मूत्रसङ्गिनी॥७॥
सशोफस्राविणी चैव प्रसुप्ता वेदनावती। पार्श्वपृष्ठकटीशूलं हृदि शूलं विषूचिका॥८॥
प्लीहा महोदरत्वं च शाखावातोऽङ्गमर्दकः। प्रक्षेपको हनुस्तम्भो मन्यास्तम्भोऽपतानकः।
मक्कल्लो विद्रधिः शोफः प्रलापोन्मादकामलाः॥९॥
दौर्बल्यं भ्रमली कार्श्यं भक्तद्वेषोऽविपाचकः। ज्वरातिसारौ वैसर्पश्छर्दिस्तृष्णा प्रवाहिका॥१०॥
हिक्का श्वासश्च कासश्च पाण्डुर्गुल्मश्च रक्तजः। आनाहाध्मापने चोभे वर्चोमूत्रग्रहावपि॥११॥
मुखरोगोऽक्षिरोगश्च प्रतिश्यायगलग्रहौ। राजयक्ष्माऽर्दितं कम्पः कर्णस्रावः प्रजागरः॥१२॥
उष्णवातो ग्रहावापस्तनरोगोऽथ रोहिणी। वाताष्ठीला वातगुल्मरक्तपित्तविचर्चिकाः॥१३॥
इत्येते सूतिका रोगाश्चतुःषष्टिरुदाहृताः। तेभ्यः सर्वेभ्य एवासौ रक्षितव्या कथं त्विति॥१४॥ (का० सं० खि० ११)

२. योनिपृष्ठकटीभेदशाखावायुरसृग्दरः। वाताष्ठीला च गुल्मश्च हृदिशूलं प्रवाहिका॥८॥
पुरीषमूत्रसंरोधं आध्मानं शूलमेव च। शूयते दुष्यते योनिर्योनिशूलं च दारुणम्॥९॥
वेपथुश्छर्दनं मोहो मन्यास्तम्भो हनुग्रहः। ज्वरातिसारो वैसर्पो दद्रुपामाविचर्चिकाः॥१०॥
कटिभाग्यथ विस्फोट गात्रे चार्धशिरोरुजा। हृद्रोगाश्चाक्षिरोगाश्च प्लीहा श्वयथुकामले॥११॥
एते चान्ये च बहवो दुष्प्रजाताशरीरजाः। व्याधयः संप्रकुप्यन्ति चिकित्सितमतः परम्॥१२॥ (का० सं० चि० ३)

Scanned with CamScanner

(२०) अविपाक (२१) तृष्णा (२२) हिक्का (२३) श्वास (२४) कास (२५) पाण्डु (२६) रक्तगुल्म (२७) आनाह (२८) मुखरोग (२९) प्रतिश्याय (३०) गलग्रह (३१) राजयक्ष्मा (३२) अर्दित (३३) कर्णस्राव (३४) प्रजागरण (३५) उष्णवात (३६) ग्रहबाधा (३७) स्तनरोग (३८) रोहिणी (३९) रक्तपित्त।

Kāśyapa has described puerperal disorders at two places once in *duśprajātā-cikitsitādhyāya* without giving exact number but numbering thirtyfive and again sixtyfour disorders in *sūtikopakramaṇīya adhyāya*. Twentyfive disorders have been enumerated at both the places while others differ. Thus total puerperal disorders described at both the places taken together become seventyfour which are given here under.

Disease entities described at both the places — (1) *Yonibheda* (vaginal tear), (2) *Yoniśofa*, (inflammation/edema of vagina), (3) *Yonivedanā* or *yoniśula* (pain in vagina) (4) *Pṛṣṭhaśūla* (backache), (5) *Kaṭiśūla* (pain in lower back or sacral region), (6) *Hṛdiśūla* (cardialgia), (7) *Plīhodara* (splenomegaly), (8) *Śākhāvāta* (hemiplegia), (9) *Hanugraha* (lockjaw), (10) *Manyā stambha* (neck rigidity), (11) *Śofa* or *śotha* (edema or inflammation) (12) *Kāmalā* (jaundice), (13) *Jvara* (fever), (14) *Atisāra* (diarrhoea), (15) *Visarpa* (erysipelas), (16) *Chardi* (vomiting), (17) *Pravāhikā* (dysentery), (18) *Ādhmāna* (tympanites), (19) *Mūtrarodha* (retention of urine), (20) *Malarodha* (constipation), (21) *Akṣiroga* (eye disorders), (22) *Kampa* or *vepathu* (tremors), (23) *Vātāṣṭhīlā* (perineal swelling), (24) *Vātagulma* (phantom tumour), (25) *Vicarcikā* (skin disorder).

Disease entities described only under *duśprajātācikitsitādhyāya* — (1) *Asṛgdara* (bleeding per vaginum or menometrorrhagia), (2) *Śūla* (pain in abdomen) (3) *Yonidoṣa* (gynecological disorders), (4) *Moha* (unconsciousness), (5) *Dadru* (ring worm infection), (6) *Pāmā* (skin disorder), (7) *Kiṭibha* (skin disorder), (8) *Visphoṭa* (blisters), (9) *Ardhaśirorujā* (hemicrania), (10) *Hṛdroga* (cardiac disorders).

Disease entities described only in *sūtikopakramaṇīya adhyāya* — (1) *Yonibhraṃśa* (uterovaginal prolapse), (2) *Yonikṣata* (vaginal ulceration), (3) *Yonisrāva* (vaginal discharges) (4) *Yoniprasuptatā* (anaesthesia over vagina/vulva), (5) *Pārśwaśūla* (pain in flanks), (6) *Visūcikā* (pricking pain in abdomen associated with severe diarrhoea or cholera ?), (7) *Mahodara* (ascites), (8) *Aṅgamarda* (bodyache), (9) *Prakṣepaka* (convulsions), (10) *Apatānaka* (emprosthotonos), (11) *Makkalla* (spasmodic contraction of uterus after delivery), (12) *Vidradhi* (abscess), (13) *Pralāpa* (delirium) (14) *Mūtrasaṅga* (suppression of urine), (15) *Unmāda* (insanity or psychotic condition associated with insomnia), (16) *Daurbalya* (weakness), (17) *Bhrama* (giddiness), (18) *Kārśya* (emaciation), (19) *Bhaktadweśa* (anorexia), (20) *Avipāka* (indigestion), (21) *Tṛṣṇā* (thirst), (22) *Hikkā* (hiccup), (23) *Śwāsa* (dyspnoea), (24) *Kāsa* (cough), (25) *Pāṇḍu* (anaemia), (26) *Raktagulma* (molar pregnancy), (27) *Ānāha* (flatulence), (28) *Mukharoga* (diseases of oral cavity), (29) *Pratiśyāya* (coryza), (30) *Galagraha* (stiffness of inner components of throat), (31) *Rājayakṣamā* (tuberculosis), (32) *Ardita* (facial paralysis), (33) *Karṇasrāva* (otorrhoea), (34) *Prajāgaraṇā* (insomnia), (35) *Uṣṇavāta* (gonorrhoea), (36) *Grahabādhā* (acute infective disorders) (37) *Stanaroga* (diseases of breast), (38) *Rohiṇī* (diphtheria) and (39) *Raktapitta* (haemorrhagic diathesis).

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त वर्णित व्याधियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि काश्यप ने प्रसव के काल में उत्पन्न सूतिका के योनिक्षतादि से लेकर तात्कालिक औपसर्गिक व्याधियों एवं अन्य सामान्य शारीरिक रोगों को इस सूची में अन्तर्भूत कर लिया है। त्वचागत एवं श्वसनसंस्थानगत व्याधियों का सूतिका से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी सम्भवत: इसलिए समावेश किया हो कि शारीरिक दौर्बल्य, क्लान्ति आदि के कारण इस काल में इन व्याधियों के होने की सम्भावना अधिक होती हो या सूतिकाकाल में ये व्याधियाँ होने पर उनका विशिष्ट प्रबन्ध करना पड़ता हो। अधिकांश व्याधियाँ प्रजननसंस्थान एवं पाचनसंस्थानगत हैं विभिन्न संस्थानों की दृष्टि से सभी ७४ व्याधियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से कर सकते हैं-

१) **प्रजननसंस्थानगत व्याधियाँ**-

अ) योनि की स्थानिक व्याधियाँ यथा योनिभ्रंश, योनिक्षत, योनिभित्रता, योनिशोफ, योनिप्रसुप्तता एवं योनि वेदना आदि ६ व्याधियाँ।

ब) अन्य ६ व्याधियाँ यथा योनिस्राव, योनिदोष, मक्कल्ल, विद्रधि, रक्तगुल्म एवं असृग्दर।

२) **पाचनसंस्थानगत व्याधियाँ**-विसूचिका, प्लीहोदर, महोदर, कामला, भक्तद्वेष, अविपाक, अतिसार, छर्दि, तृष्णा, प्रवाहिक, हिक्का, आनाह, आध्मान, वर्चगृह, वातगुल्म एवं उदरशूल, ये १६ व्याधियाँ।

३) **नाड़ीवहसंस्थान की विकृतियाँ**-८ व्याधियाँ यथा शाखावात, प्रक्षेपक, हनुस्तम्भ या हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, अपतानक, अर्दित, कम्प या वेपथु एवं गलग्रह।

४) **मूत्रवहसंस्थानगत व्याधियाँ**-दो व्याधियाँ यथा मूत्रसङ्ग एवं मूत्रग्रह।

५) **श्वसनसंस्थानगत व्याधियाँ**-पाँच व्याधियाँ यथा श्वास, कास, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा एवं रोहिणी।

६) **रक्तवहसंस्थानगत व्याधियाँ**-पाण्डु, हृद्रोग एवं रक्तपित्त-तीन व्याधियाँ।

७) **मानसिक विकार**-प्रलाप, उन्माद, प्रजागरण एवं मोह-चार व्याधियाँ।

८) **त्वचागत विकार**-विसर्प, विचर्चिका, दद्रु, पामा, किटिभ एवं विस्फोट-६ विकार।

९) **शालाक्य व्याधियाँ**-४ व्याधियाँ यथा मुखरोग, अक्षिरोग, कर्णस्राव एवं अर्धशिरोशूल।

१०) **अन्य शूल**-पाँच यथा पार्श्वशूल, कटिशूल, पृष्ठशूल, हृदिशूल एवं अङ्गमर्द।

११) **सार्वदैहिक व्याधियाँ**-शोफ, दौर्बल्य, भ्रम, काश्र्य, ज्वर एवं ग्रहबाधा-६ व्याधियाँ।

१२) **अन्य**-३ यथा स्तनरोग, वाताष्ठीला, एवं उष्णवात।

It appears that Kāśyapa has included in the list all the disorders starting from vaginal injuries during labour to general and infective disorders and also complications likely to arise due to puerperal diseases. Though disorders of skin and respiratory system are not directly related to puerperium, however, it is just possible that due to general debility during puerperium, the incidence of these might get increased, besides these need special management during puerperium. Most of the disorders are of reproductive and digestive systems. On the basis of specific systems, these seventy four diseases can be classified in following way—

i) Diseases of reproductive system

a) Local i. e. *bhraṃśa, kṣata, bhinnatā, śofa, prasuptatā* and *vedanā* of *yoni*, these, six disease.

Scanned with CamScanner

b) Others i. e. *yonisrāva, yonidoṣa, makkalla, vidradhi, raktagulma* and *asṛgdara*, these six diseases.

ii) Diseases of digestive system—*Viṣūcikā, plīhodara, mahodara, kāmalā, bhaktadweṣa, avipāka, atīsāra, chardi, tṛṣṇā, pravāhikā, hikkā, ānāha, ādhmāna, varcagraha, vātagulma* and *udaraśūla* these sixteen disorders.

iii) Diseases of nervous system—*Śākhāvāta, prakṣepaka, hanustambha, manyāstambha, apatānaka, ardita, kampa* or *vepathu* and *galagraha*, these eight disorders.

iv) Diseases of urinary system—*Mūtrasaṅga* and *mūtragraha*, these two disorders.

v) Diseases of respiratory system—*Śwāsa, kāsa, pratiśyāya, rājayakṣamā* and *rohiṇī*, these five diseases.

vi) Diseases of circulatory system—*Pāṇḍu, raktapitta* and *hṛdroga*, these three diseases.

vii) Psychological abnormalities—*Pralāpa, unmāda, prajāgaraṇa* and *moha*, these four disorders.

viii) Cutaneous disorders—*Visarpa, vicarcikā, dadru, pāmā, kiṭibha* and *visphoṭa*, these six disorders.

ix) Diseases of head or śālākya roga—*Mukharoga, akṣiroga, karṇasrāva* and *ardha-śirośūla*, these four disorders.

x) Other pains—*Pārśwaśūla, kaṭiśūla, pṛṣṭhaśūla, hṛdiśūla*, and *aṅgamarda*, these five disorders.

xi) General diseases—*Śofa, daurbalya, bhrama, kārśya, jwara* and *grahabādhā*, these six disorders.

xii) Others—*Śiranoroga, vātāṣṭhīlā*, and *uṣṇavāta*, these three disorders.

पूर्ववर्णित सूतिकाव्याधियों के सामान्य निदान *(General etiology of these puerperal disorders)*

रात्री निर्गमनात् त्रासात् सहसोत्पतनादपि। ईर्ष्याशोकभयक्रोधान्नानावेगविधारणात् ॥ ६॥
एतैश्चान्यैश्च नारीणां व्याधयः संभवन्ति हि। सूतिकानां दिवास्वप्नादजीर्णाद्धृयशनादपि ॥ ७॥
(का० सं० चि० ३)

रात्रि में बाहर निकलने, त्रास, सहसा ऊपर से गिरने, ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, नाना वेग-विधारण, दिवास्वप्न, अजीर्ण में भोजन, अध्यशन तथा अन्य कारणों से सूतिका स्त्री को व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। ज्वरान्तर्गत महर्षि काश्यप ने दोष प्रकोपक कारणों का वर्णन किया है जो यहाँ भी मान्य है।

Outing during night, terror or fright, sudden fall from height, jealousy, grief, fear, anger, suppression of various natural urges, day-sleeping, eating even in indigestion, eating before the digestion of previous meals and certain other factors are responsible for puerperal disorders. Etiology of vitiation of *doṣas* described under puerperal fever should be considered here also.

सूतिकाव्याधियों की सामान्य चिकित्सा *(General treatment of puerperal disorders)*

अ) **वैवृतयोग**—दोनों पञ्चमूल, भार्गी, मधुशिग्रु, शतावरी, उशीर, चन्दन, श्वदंष्ट्रा, मदयन्तिका, दोनों बला (बला एवं अतिबला), वसुक (ईश्वरमल्लिका या शिवमल्लिका), पाठा, पयस्या (संदिग्ध-दुग्धिका या अर्कपुष्पी), अमृता, वृषादनी, सुगन्धा, पुनर्नवा, मूर्वा, गृध्रनखी, मुस्ता, मोरट तथा तिल्वक इनमें से जितने द्रव्यों की मूल मिल सके लेकर एकत्र कर लें। यव, कोल एवं कुलत्थ को (समान भाग में) मिलाकर तीन प्रस्थ ले लें एवं इनको आठ गुने जल में पकायें, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर भलीभाँति छान लें तथा उपर्युक्त पञ्चमूलादि (के चूर्ण) का एक मुष्टिक प्रमाण में (प्रत्येक औषधि का एक एक मुष्टिक प्रमाण) प्रक्षेप देकर रख लें। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक, हस्तिपिप्पली, चव्य, दोनों रजनी, शृङ्गबेर, वचा, अभया, कुष्ठ, रास्ना, अजमोदा, विडङ्ग, मरिच, भद्रदारु, एला, भार्ङ्गी तथा कुटज के बीज सभी (का कल्क) एक एक कर्ष, सभी लवण (पाँचों लवण) एक पल, तैल एक प्रस्थ, वसा एक प्रस्थ तथा इनसे दुगुना उपर्युक्त निर्मित क्वाथ एवं दुग्ध, दधि तथा जल एक एक प्रस्थ, मातुलुङ्ग तथा आम्रपेशी का रस आधा प्रस्थ मिलाकर धीरे-धीरे मृदु अग्नि में पाक करें तथा सिद्ध होने पर उतार लें। यह वैवृतयोग सूतिका के लिए अभ्यङ्ग, पान एवं बस्तिकर्म के लिए अतिउत्तम है, इससे वात से उत्पन्न सभी विकार शान्त हो जाते हैं।[1]

आ) उपर्युक्त द्रव्यों के कल्कों का क्वाथ बनाकर पिलाने से सभी सूतिका व्याधियाँ तीन दिन में ही शान्त हो जाती हैं।[1]

इ) दोनों पञ्चमूल, भार्ङ्गी, रास्ना, दोनों पुनर्नवा (श्वेत एवं रक्त), शिग्रु तथा हंसपदी (आदि औषधियों का प्रयोग) सूतिकारोग में लाभप्रद है।[1]

a) **Traivṛta yoga**—Roots of available plants out of both the *pañcamūlas, bhārṅgī, madhuśigru, śatāwarī, uśīra, candana, śwadaṃṣṭrā, madayantikā*, both the *balās, vasuka, pāṭhā, payasyā, amṛtā, vṛṣādanī, sugandhā, punarnavā, mūrvā, gṛdhranakhī, mustā, moraṭa* and *tilvaka* should be collected. *Yava, kola* and *kulattha* in equal quantity should be taken in the amount of three *prastha* and after making coarse powder should be boiled with eight times water. When 1/8th water remains, it should be separated from the

---

१. द्वे पञ्चमूले भार्गी च मधुशिग्रुः शतावरी। उशीरं चन्दनं चैव श्वदंष्ट्रा मदयन्तिका ॥ १३॥
द्वे बले वसुकः पाठा पयस्या ह्यमृता तथा। वृषादनी सुगन्धा च तथा कार्या पुनर्नवा ॥ १४॥
मूर्वा गृध्रनखी मुस्ता मोरटस्तिल्वकस्तथा। इत्येतासां तु मूलानि यथालाभं समानयेत् ॥ १५॥
यवकोलकुलत्थानां त्रयः प्रस्थाः समास्ततः। एतान्यष्टगुणे तोये पाचयेद्धिवगुत्तमः ॥ १६॥
अष्टभागास्थितं तं तु पूरिपूतं निधापयेत्। तत्रावापमिदं दद्यान्मुष्टिकान्यौषधानि तु ॥ १७॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली। चव्यं द्वे रजनी चैव शृङ्गवेरं वचाऽभया ॥ १८॥
कुष्ठं रास्नाऽजमोदश्च विडङ्गं मरिचानि च। भद्रदारुरथैला च भार्गीकुटजतण्डुलाः ॥ १९॥
एतेषां कर्षिका भागा लवणानां पलं भवेत्। तैलप्रस्थं वसाप्रस्थं निष्क्वाथो द्विगुणो भवेत् ॥ २०॥
क्षीरप्रस्थो दधिप्रस्थो जलप्रस्थस्तथैव च। मातुलुङ्गाम्रपेशीनां रसप्रस्थार्धयोजितम् ॥ २१॥
शनैर्मृदुग्निना सिद्धमथैनमवतारयेत्। अभ्यङ्गनेषु पानेषु बस्तिकर्मणि चोत्तमम् ॥ २२॥
येतु वातसमुत्थानाः सूतिकानामुपद्रवाः। सर्वेषां शमनं श्रेष्ठमेतत्तैवृतमुत्तमम् ॥ २३॥
एतेषामेव सर्वेषां कल्कं निष्क्वाथ्य पाययेत्। यः कश्चित् सूतिकाव्याधिस्तं त्रिरात्रेण साधयेत् ॥ २४॥
द्वे पञ्चमूल्यौ भार्गी च रास्ना द्वे च पुनर्नवे। शिग्रुर्हंसपदी·····॥ (का० सं० चि० ३)

Scanned with CamScanner

fire, cooled and strained properly. Now in this decoction powder of above mentioned drugs each in one *muṣṭika* quantity should be mixed. Paste of *pippalī, pippalīmūla, citraka, hastipippalī, cavya,* both *rajanīes, śṛṅgabera, vacā, abhayā, kuṣṭha, rāsnā, ajamodā, viḍaṅga, marica, bhadradāru, elā, bhārṅgī* and *kuṭaja* seed each one *karṣa,* all the five salts together one *pala,* oil one *prastha,* fat one *prastha,* decoction (described above) in double quantity i. e. two *prastha,* milk, curd and water each one *prastha,* juice of *mātuluṅga* and *āmrapeśī* (pulp of mango) both together $^1/_2$ *prastha* should be cooked over low fire, when it is properly prepared it should be removed from the fire. This preparation known as *traivṛtayoga* is very good for the puerperal woman to be used in the form of massage, tisane and enema. This cures all the disorders arising due to vitiation of *vāta.*

b) Decoction prepared with pastes of all the herbs of *traivṛtayoga* cures all puerperal disorders within three days.

c) Use of both the *pañcamūla, bhārṅgī, rāsnā,* both *punarnavās, śigru* and *haṃsapadī* is beneficial in puerperal disorders.

विशिष्ट सूतिकाव्यापद् (Specific puerperal disorders)

१) सूतिकारोग (Sūtikā roga)

महर्षि सुश्रुत ने सूत्ररूप में लिखा है कि अपप्रजाता की ज्वरादि व्याधियों की उत्तरतन्त्रोक्त वर्णित ज्वरादि के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए। टीकाकार डल्हण ने अपप्रजाता से अकालप्रसूता ग्रहण करते हुए लिखा है कि ज्वरादि व्याधियों की उत्तरतंत्र-वर्णित सामान्य ज्वरादि-सदृश चिकित्सा के ही साथ वहाँ पर वर्णित अन्य सभी व्याधियों की भी उत्पत्ति अपप्रजाता में मानी जानी चाहिए तथा उत्तरकाल अर्थात् प्रसव के पश्चात् होने वाली अपतानक आदि व्याधियों की भी चिकित्सास्थान में वर्णित चिकित्सा ही करनी चाहिए[1]। अपप्रजाता की सामान्य ज्वरादि के साथ विशिष्ट अपतानक आदि होते हैं जिनकी सामान्य-वर्णित चिकित्सा ही करनी चाहिए।

महर्षि शार्ङ्गधर ने भी लिखा है कि सूतिका की ज्वरादि जो व्याधियाँ हैं उनकी दोष एवं बल के आधार पर चिकित्सा करें[2], अर्थात् सामान्य व्यक्ति को होने वाली सभी व्याधियाँ सूतिका को हो सकती हैं तथा उनकी सामान्य रूप से ही दोषादि के आधार पर चिकित्सा करनी चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने सूतिका को अर्दित[3] व्याधि तथा महर्षि चरक एवं वाग्भट ने विषम-प्रसूति से अर्श हो जाने का उल्लेख किया है।[4] निज शोथ के कारणों में भी विषम-प्रसूति का उल्लेख है।[5] महर्षि काश्यप ने दुष्प्रजाता, कष्टप्रसवा अथवा सामान्यप्रसवा को भी शोथ होने का उल्लेख किया है[6] (शोथ निदानान्तर्गत)।

१. अपप्रजातारोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद् भिषक् ॥ ३२॥
(अप्रप्रजाता अकालप्रसूता, तस्या रोगान् ज्वरादिकान्। तानुत्तरादुत्तरतन्त्रोक्तज्वरादिचिकित्सितात्। रोगांश्चेति चकार उत्तरतन्त्रादित्यत्र योजनीयः। तेनापप्रजातारोगानुत्तरादुत्तरतन्त्रोक्ताच्चिकित्सेत्, चकारादपतानकादीन् संहितोक्तेन विधिना चिकित्सेदित्यर्थः। अन्ये तु उत्तरान् इति पठन्ति, उत्तरकालभाविनोऽपतानकादीन् भिषक् चिकित्सेत्, 'स्वैश्चिकित्सितैः' इतिः शेषः-डल्हण) (सु० सं० उ० ३८/३२ व डल्हण टीका)

२. .....तथा ये सूतिकागदाः ॥ १८४॥ ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥ १८५॥ (शा० सं० पूर्व० ७)

३. सु० सं० नि० १/६८ से ७२

४. च० सं० चि० १४/९; अ० सं० नि० ७/१०

५. च० सं० सू० १८/६; च० सं० चि० १२/६; भा० प्र० चि० ४२/२

६. का० सं० खि० १७/५,६

माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर पुस्तकों में सूतिकारोग नाम से एक व्याधि का वर्णन है। आचार्यों ने प्रारम्भ में एकवचन (सूतिकारोग) का प्रयोग कर तथा विशिष्ट लक्षणों को लिखकर तत्पश्चात् बहुवचन (सूतिकानाम्ना ते रोगाः) का प्रयोग किया है जिससे यह अर्थ निकलता है कि ये सभी व्याधियाँ एक ही तीव्र व्याधि के लक्षण स्वरूप या एक साथ भी हो सकती हैं यथा अङ्गमर्द, ज्वरातिसारादि एक साथ अथवा पृथक् पृथक् स्वतंत्र व्याधि यथा ज्वर, अतिसार, शोथ आदि के रूप में भी उत्पन्न हो सकती हैं।

Suśruta says that fever etc. disorders developing in a *apaprajātā* (having premature or abnormal delivery) should be treated on the lines of general fever etc. as described in *uttaratantra.* Ḍalhaṇa has clarified that all the diseases described in *uttaratantra* can afflict a puerperal woman and should be treated accordingly. Other diseases like *apatānaka* (tetanus) etc. developing after delivery should be managed with the procedure described in *cikitsāsthāna* (chapter dealing with the treatment). Śārṅgadhara opines that diseases of puerperal woman should be treated on the basis of specific *doṣa* and their amount of vitiation. Suśruta has described *ardita* (facial paralysis) to a *sūtikā.* Abnormal or difficult labour is said to be one of the causative factor for *arśa* (piles) and *nija śotha* (endogenous edema).

Mādhavanidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara etc. books have described a disease named *sūtikāroga.* After initial use of singular number, in subsequent description pleural number has been used, which indicates that all fever, bodyache etc. described under clinical features may develop as a complication of one disease or else independently as individual disorders.

अ) सूतिकारोग निदान (Causes of sūtikāroga)

मिथ्या उपचार (अनुचित आचरण या वायु आदि का सेवन[1]), संक्लेश (दोष जिस प्रकार क्लेश पाते हैं अर्थात् दोषोत्पादक आहार-विहार[2]), विषम तथा अजीर्ण भोजन करने से जो सूतिका रोग उत्पन्न होते हैं वे दारुण होते हैं[1,2,3]।

Sūtikāroga developing due to use of direct air, dietetics and mode of life likely to aggravate *doṣas,* incompatible food and indigestion are very serious.

आ) सूतिकारोग-लक्षण (Clinical features of sūtikā roga)

अङ्गमर्द, ज्वर, कम्प[1,2] या कास[3], पिपासा, गुरुगात्रता, शोथ, शूल तथा अतिसार आदि सूतिकारोग के लक्षण है[1,2,3]।

ज्वर, अतिसार, शोथ, शूल, आनाह, बल-क्षय, तन्द्रा, अरुचि तथा प्रसेक आदि कफवातज व्याधियाँ (सूतिका के) अग्नि, बल एवं मांस के क्षीण होने के कारण कृच्छ्रसाध्य होती हैं। ये सभी (व्याधियाँ) सूतिकारोग के नाम से जानी जाती हैं तथा ये उपद्रव रूप में भी हो सकती[1,2,3] हैं।

१. मिथ्योपचारात् संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात्। सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ (मा० नि० ६५/२)

२. मिथ्योपचारात् .....। सूतिकायास्तु.....दारुणाश्च ते ॥ (मा० नि० सदृश) (भा० प्र० चि० ७०/१४७)

३. यो० र० स्त्रीरो० चि० (भा० प्र० सदृश)

४. (अ) मिथ्योपचारात् = अनुचिदाचरणात्, प्रवातादि सेवनात्। संक्लेशाद् = संक्लेश्यन्ते दोषा अनेनेति संक्लेशो = दोषजनकमात्रं तस्मात्। (भा० प्र० चि० ७०/१४७ की टीका)
(आ) संक्लिश्यते उत्क्लिश्यते दोषोऽनेनेति संक्लेशो दोषजनकमलम्। (मा० नि० ६५/२ की मधुकोष व्याख्या)
नोट - लक्षण के सन्दर्भ पृष्ठ ५६६ में देखें।

Scanned with CamScanner

मधुकोष व्याख्या में लिखा है कि ज्वरातिसार आदि का पुनः उल्लेख (दो बार) रोगों की अधिकता, कृच्छ्रसाध्यता तथा उपद्रव रूप में भी उत्पत्ति होने के कारण किया गया है। तन्द्रादि के साथ ही ज्वरातिसार भी कफवातज तथा कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उपर्युक्त सभी व्याधियाँ सूतिका में होने अर्थात् आश्रित एवं आश्रय में भेद न होने के कारण सूतिकारोग के नाम से कही गई हैं तथा ये सभी स्वतन्त्र व्याधि होने के साथ ही उपद्रवरूप में भी हो सकती हैं[४]।

Bodyache, fever, tremors or cough, thirst, heaviness of body, edema, pain in abdomen and diarrhoea are the clinical features.

Due to loss of digestive/ metabolic fire strength and musculature, these fever, diarrhoea, edema, pain in abdomen, tympanites, loss of energy, drowsiness, anorexia and excessive salivation etc. *kaphavātaja* disorders are difficult to be cured.

All these diseases can develop either together at a time, or separately or as complications. Since all these afflict the puerperal woman hence are termed as *sūtikāroga.*

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सूतिकारोगों में शोथ का उल्लेख आया है सामान्य शोथ के वर्णन में निज शोथ की उत्पत्ति के कारणभूत गर्भपात होना, प्रजाता या सूतिका के द्वारा उचित उपचार का पालन न करना तथा कष्ट से प्रसव होना आदि भी वर्णित हैं[५]। शोथ एकाङ्ग या सर्वाङ्ग हो सकता है। सूतिका के एकाङ्गज शोथ से आधुनिक पुस्तकों में वर्णित श्वेत पादशोफ का भी ग्रहण कर सकते हैं।

Edema (*śotha*) is mentioned as one of the disorders. While describing *śotha* as a disease, amongst *nija* (endogenous) causes the abortion, improper management of puerperium and difficult or abnormal labour have been included. Edema may be generalised (*sarvāṅga*) or localised such as of one extremity or leg *(ekāṅga),* this leg edema can be equated with whiteleg or phlegmasia-alba-dolens.

१. अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता। शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम्॥ १॥
ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः। तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः॥ ३॥
कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः। ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः॥ ४॥ (मा० नि० ६५)

२. अङ्गमर्दो ज्वरः कासः ·····। ·····लक्षणम्॥ १४८॥ ज्वरा·····।·····प्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः॥ १४९॥
कृच्छ्र·····बलाश्रिताः। ·····उपद्रवाः॥ १५०॥ (मा० नि० सदृश) (भा० प्र० चि० ७०)

३. अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः ····· उपद्रवाः॥ (भा० प्र० सदृश) (यो० र०, स्त्रीरो० चि०)

४. ज्वरातिसारादिनामङ्गमर्दादिभ्यः पृथक् पुनरुपादानं रोगाधिक्यं कृच्छ्रत्वमुपद्रवत्वं च ख्यापयितुम्। ·····। कफवातजे विकारे सति येयामुद्भवस्ते कफवातामयोद्भवा ज्वरातीसारादयः कृच्छ्रसाध्या इत्यर्थः। ते सर्वे सूतिकानाम्नेति ते ज्वरातीसारादयः सर्वे सूतिकाभवत्वेनाश्रयाश्रितयोरभेदोपचारात् सूतिकानाम्नोच्यन्ते; ते चाप्युपद्रवाः ते उपद्रवाश्च भवन्ति उक्तानां रोगाणामन्यतमं प्रधानीकृत्य॥ (मा० नि० ६५/३, ४ की मधुकोष व्या०)

५. (अ) निजाः पुनः ·····गर्भसम्पीडनादामगर्भप्रपतनात् प्रजातानां च मिथ्योपचारात् ·····। ·····
(च० सं० सू० १८/६)
(आ) ·····विषमाप्रसूतेः ·····निजस्य हेतुः ·····।
(च० सं० चि० १२/६; मा० नि० ३६/४; भा० प्र० चि० ४२/२ तथा यो० र० शोथनिदान; विषमाप्रसूतेः अकालगर्भपातनादिका; चक्रपाणि तथा मधुकोष दोनों की व्याख्या)
(इ) तथैव दुष्प्रजाताया नार्याः कृच्छ्रेण वा पुनः। सूताया ·····। (का० सं० खि० १७/५,६)

इ) सूतिकारोग-चिकित्सा (Treatment of sūtikā roga)

चिकित्सा-सिद्धान्त (Principles of treatment)

सूतिकारोग को शान्त करने के लिए वायुनाशक[१] अथवा दोष एवं बलानुसार चिकित्सा करनी चाहिए[२]।

Treatment capable of suppressing *vāyu* or else on the basis of aggravation of *doṣas* and strength (of the woman) should be done.

औषधियाँ (Drugs)

क्वाथ (Decoctions)

१) दशमूल के उष्ण क्वाथ को घृत मिलाकर पिलाना चाहिए[३,४]।

२) अमृता, नागर, सहचर, भद्र, उत्कट, पंचमूल तथा जलद[३] एवं जल[४] (बालक) के क्वाथ को शीतल कर मधु मिला कर पान सूतिका-व्याधियों का तत्काल ही शमन कर देता है[३,४]।

३) देवदार्व्यादि क्वाथ :- देवदारु, वचा, कुष्ठ, पिप्पली, विश्वभेषज, भूनिम्ब, कट्फल, मुस्ता, तिक्ता, धान्य, हरीतकी, गज, कृष्णा, दुःस्पर्शा, गोक्षुरु, धन्वयास, बृहती, अतिविषा, छिन्ना, कर्कटशृङ्गी तथा कृष्णजीरक को समान भाग लेकर अष्टमांशावशेष क्वाथ बनाकर सैन्धव एवं रामठ मिलाकर स्त्री को पीने को दें। इस क्वाथ के पीने से, शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरःशूल, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा एवं अतिसार आदि से युक्त वात, पित्त एवं कफ तीनों दोषों से उत्पन्न सूतिकारोग नष्ट होते हैं। इनकी यह श्रेष्ठ औषधि है[३,४,५]।

४) निर्गुण्डी, लशुन तथा नागर का क्वाथ बना, कवोष्ण क्वाथ में कणा-चूर्ण मिलाकर पीने से कफवातज प्रकोप से उत्पन्न सूतिकाव्यापत् नष्ट होते हैं[४]।

५) सहचर, कुलत्थ, पुष्करमूल, दारुनिशा, दारु तथा वेतस के क्वाथ को हिंगु एवं लवण मिलाकर पीने से सूतिका के शूल तथा ज्वर का नाश होता है[४]।

६) पञ्चमूल के क्वाथ में तप्त लौह बुझाकर अथवा सुरा मिलाकर सूतिकारोग नष्ट करने के लिए पिलाना चाहिए[४]।

१. सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम्। (भा० प्र० चि० ७०/१५१ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)
२. शा० सं० पूर्व० ७/१८५ (पृष्ठ ५६४)
३. दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम्॥ १५१॥
अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदम्। शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकाऽऽतङ्कम्॥ १५२॥
देवदार्व्यादि क्वाथ :-
देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी॥ १५३॥
गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः। बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः॥ १५४॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम्। क्वाथभष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम्॥ १५५॥
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिभिः। युक्तं प्रलापपृङ्दाहतन्द्राऽतीसारवान्तिभिः॥ १५६॥
निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्। कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम्॥ १५७॥
(भा० प्र० चि० ७०)
४. दशमूल ·····घृतान्वितम्। अमृता·····पञ्चमूलजलदजलम्।·····सूतिकातङ्कम्॥
देवदारु ·····धान्यं हारीतकी। गजकृष्णा च·····। ····· कर्कटं कृष्णजीरकम्॥
·····सिन्धुरामट ·····। ·····॥ ····· सूतायाः परमौषधम्॥ (भा० प्र० चि० ७० सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)
संयोजितो दलितया कणया कवोष्णो, निर्गुण्डिकालशुननागरजः कषायः।
पीतो निहन्ति कफमारुतकोपजातं, सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तरं च॥

Scanned with CamScanner

For oral administration—

i) Hot decoction of *daśamūla* mixed with *ghṛta,*

ii) Cooled decoction of *amṛtā, nāgara, sahacara, bhadra, utkaṭa, pañcamūla, jalada* and *jala* mixed with honey.

iii) *Devadārvyādi decoction* :— Decoction prepared with equal quantity of *devadāru, vacā, kuṣṭha, pippalī, viśwabheṣaja, bhūnimba, katphala, mustā, tiktā, dhānya, harītakī, gaja, kṛṣṇā, duḥsparśā, gokṣuru, dhanvayāsa, bṛhatī, ativiṣā, chinnā, karkaṭaśṛṅgī* and *kṛṣṇajīraka* mixed with rock salt and *rāmaṭha* (*hiṅgu*) should be given. Use of this, cures *sūtikāroga* produced by vitiation of all the three *doṣas* and associated with pain, cough, fever, dyspnoea, unconsciousness, tremors, headache, delirium, thirst, burning sensation, drowsiness and diarrhoea.

iv) Use of lukewarm decoction of *nirguṇḍī, laśuna* and *nāgara* mixed with powdered *kaṇā* relieves puerperal disorders caused due to *vāta* with *kapha.*

v) Fever and pain of puerperal disorders are cured by use of decoction of *sahacara, kulattha, puṣkaramūla, dāruniśā, dāru* and *vetasa* mixed with *hiṅgu* and salt.

vi) Decoction of *pañcamūla* either after dipping in it heated iron or after mixing wine.

पाक *(Pāka or cooked medicines)*

(१) पञ्चजीरक पाक (Pāñcajīraka pāka)

जीरा, स्थूलजीरा, शतपुष्पाद्वय (सौंफ एवं सोया), यवानी, अजमोदा, धान्यक, मेथिका, शुण्ठी, कृष्णा, कणामूल, चित्रक, हपुष एवं बदरी, गज (गजपिप्पली) तथा कुल (पटोल[1]) या विदारीकन्द एवं कुष्ठ[2] तथा कम्पिल्लक इन सब का चूर्ण एक एक पल, गुड़ सौ पल, दुग्ध दो प्रस्थ तथा घी एक कुड़व लेकर पाक करें, यह पञ्चजीरक पाक है। यह प्रसूता स्त्रियों के लिए श्रेयस्कर है। यह सूतिकारोग, योनिरोग, ज्वर, क्षय, कास, श्वास, पाण्डुरोग, कार्श्य तथा वातविकार में लाभदायक है[1,2]।

..... क्रमशः

सहचरकुलत्थपुष्करदारुनिशादारुवेतसक्वाथः। पीतः सहिङ्गुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः॥
पञ्चमूलस्य वा क्वाथं तप्तलोहेन संगतम्। सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वा तद्घृतं सुराम्॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

५. देवदारु ·····॥ ४९॥ कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्ताधान्या हरीतकी। ····· धन्वयासकम्॥ ५०॥
बृहत्यतिविषा च·····कृष्णजीरकम्। क्वाथमष्टावशेषं·····कम्पिशरोर्त्तिजित्॥ ५१॥
(भा० प्र० चि० ७० सदृश) (शा० सं० मध्य० २/४९ से ५१)

१. जीरकं स्थूलजीरञ्च शतपुष्पाद्वयं तथा। यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकाऽपि च॥ १५८॥
शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषाऽपि च। बदरीगजचूर्णञ्च कुलं कम्पिल्लकं तथा॥ १५९॥
एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम्। क्षीरप्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा॥ १६०॥
पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशान्तये। युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये॥ १६१॥
कासे श्वासे पाण्डुरोगे कार्श्ये वातामयेषु च॥ १६२॥ (भा० प्र० चि० ७०)

२. जीरकं·····मेथिकाऽपि च॥ शुण्ठी·····। विदारीफलचूर्णं तु कुष्ठं ····· ॥ एतानि ·····। ····· कुडवं तथा॥
पञ्चजीरक ·····। ····· वातामयेषु च॥ (भा० प्र० सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)
(विदारीफल के स्थान में विदारीकन्द पाठ युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि विदारी का फल नहीं होता तथा फल अथवा मदनफल का प्रयोग अवांछनीय है–प्रि० व्र० शर्मा)

Powdered *jīrā, sthūla-jīrā, śatapuṣpādwaya, yawānī, ajamodā, dhānyaka, methikā, śunṭhī, kṛṣṇā, kaṇāmūla, citraka, hapuṣa* and *badarī, gaja* with *kula (paṭola)* or *vidārīkanda* with *kuṣṭha* alongwith *kampillaka* each one *pala,* jaggery 100 *pala,* milk two *prastha* and *ghṛta* one *kuḍava* should be cooked together. This *pañcajīraka pāka* is beneficial for puerperal woman in general and *sūtikāroga, yoniroga* (gynec disorder), fever, *kṣaya* (tuberculosis), cough, dyspnoea, anaemia, emaciation and disorders of *vāta* in particular.

(२) नागरखण्ड (Nāgarakhaṇḍa)

घृत २ पल[1] या २ अञ्जली[2], दुग्ध दो प्रस्थ, शर्करा पचास पल तथा नागर-चूर्ण आधा प्रस्थ लेकर गुड़पाक-विधि से पाक करें, इसमें धान्यक तीन पल, मिशि पाँच पल तथा कृमिरिपु, अजाजि, जीरा, व्योष, अम्भोद, दल, उरगेन्द्रसुमन, त्वक् एवं द्राविडी का एक एक पल चूर्ण डाल दें इस प्रकार बनाए हुए पाक को नागरखण्ड संज्ञा दी गई है, यह सूतिकारोग तथा तृष्णा, छर्दि, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, कास, प्लीहा व्याधि तथा कृमिरोग का नाश करता है मन्दाग्नि को तीव्र करता है[1,2]।

Ghṛta two *pala* or two *añjalī,* milk two *prastha,* sugar fifty *pala* and powdered *nāgara* half *prastha* should be cooked together. Now in this, powdered *dhānyaka* three *pala, miśi* five *pala* and *kṛmiripu, ajājī, jīrā, vyoṣa, ambhoda, dala, uragendrasumana, twak* and *drāviḍī* each one *pala* should be mixed. This preparation is known as *nāgarakhaṇḍa* and cures *sūtikāroga,* thirst, vomiting, fever, burning sensation, *śoṣa* (emaciation), dyspnoea, cough, splenic disorders and parasites, besides it also increases appetite.

३) अन्य नागरखण्ड या सौभाग्यशुण्ठी (Other nāgarakhaṇḍa or saubhāgyaśuṇṭhī)

नागर को टुकड़े टुकड़े काट कर एक प्रस्थ लें; इसमें दो आढक बकरी का दूध डालकर धीमी धीमी आँच में पकावे। दुग्ध के घन या गाढ़े हो जाने पर शुण्ठी के टुकड़ों को निकालकर धूप में सुखा कर अत्यन्त महीन पीस लें। एक मानी (आधा प्रस्थ) घृत (गौ) लेकर उपर्युक्त दुग्ध को पुनः पकावें, जब वह दुग्ध पिण्ड रूप में हो जाय तब उसमें यह शुण्ठी चूर्ण डाल दें। अब इसमें चतुर्जात, तुगा, वेल्ल, धान्यक, जीरकद्वय, मिशि, आकल्लक, शुण्ठी, लवंग, शतावरी, तालमूली, त्रिकटु, कपिकच्छू, षट्कटु, जातीफल, जातिपत्री, शृङ्गाटक, वृद्धदारक, त्रिवृत, पद्मबीज, त्रिफला, बलात्रय(बला, अतिबला, नागबला), जल, सेव्य, वाजिगंधा, चन्दन, अगरु, कारवी, कङ्कोल, अजगन्धा, द्राक्षा, आक्षोट, वारिज, अजमोद, बादाम, नारिकेल एवं कर्पूर तथा अभ्रक, लोह, वंग, ताम्र (भस्म), शिलाजतु तथा स्वर्णमाक्षिक (भस्म) प्रत्येक का एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करके हाथ से कसकर मलकर मिला दें। तत्पश्चात् एक तुला (सौ पल) शक्कर लेकर पाक करें,

१. आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः। पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरम्॥
प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिश्याः पञ्चपलं पलं क्रमिरिपोः साजाजिजीरादपि॥ १६३॥
व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वग्द्राविडीनां पलं। पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहृत्॥
तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं। प्लीहव्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसंदीपनम्॥ १६४॥
(भा० प्र० चि० ७०)

२. आजस्याञ्जलि·····साजाजिजीरादपि॥
व्योष·····सुमनः सद्राविडीनां पलं। पक्वं ····· सौभाग्यदं योषिताम्॥
तृट् ····· मन्दाग्निसंदीपनम्। ····· (भा० प्र० सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Scanned with CamScanner

इसे नागरखण्ड कहते हैं इसे बल के अनुसार प्रातः सायं औषधि के रूप में खाए। यह स्त्रियों के लिए अत्यधिक श्रेयस्कर है, इसके सेवन में पथ्यापथ्य का विचार नहीं करना पड़ता। यह क्षय, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, मन्दाग्नि, संग्रहणी, रक्तगुल्म, प्रदर, सोमरोग, दुग्धक्षय, मूत्रकृच्छ्र, कामला, गलग्रह, सभी पित्त-विकार, सभी वातपित्त-विकार तथा सूतिका की वात-व्याधियों में प्रशस्त है, इसमें कोई संशय नहीं है, इस उत्तम योग को अश्विनीकुमारों ने पहिले ही कहा है यह स्त्रियों को सौभाग्य एवं पुत्रप्रद शुण्ठीपाक है[1]।

iii) One *prastha* cut pieces of *nāgara* should be boiled with two *ādhaka* of goat's milk over low fire. When the milk gets condensed, the pieces of *nāgara* should be removed, powdered fine after drying in sun. Left over milk should be reboiled with ½ *prastha* cow's *ghṛta*, when milk becomes solid, the powdered *śuṇṭhī* should be mixed in it. Now in this mixture powdered *caturjāta, tugā, vella, dhānayka, jīrakadwaya, miśi, ākallaka, śuṇṭhī, lavaṅga, śatāwarī, tālamūlī, trikaṭu, kapikacchū, saṭkaṭu, jātiphala, jātipatrī, śṛṅgāṭaka, vṛddhadāraka, trivṛta, padmabīja, triphalā, balātraya, jala, sevya, wājigandhā, candana, agaru, kāravī, kaṅkola, ajagandhā, drākṣā, ākṣoṭa, vārija, ajamoda, bādāma, nārikela, karpūra,* and *bhasmas* of *abhraka, loha, vaṅga, tāmra* and *swarṇamākṣika* with *śilājatu* each one *karṣa* should be mixed by forcibly mashing with hand. This mixture should be cooked with one *tulā* (100 *pala)* sugar by standard procedure. This preparation termed as *nāgarakhaṇḍa* should be taken as medicine both the times i.e. morning and evening according to strength. It is beneficial specially to the women and is free from consideration of congenial or non-congenial diet. It is beneficial in tuberculosis, anaemia, fever, cough, dyspnoea, *mandāgni* (weak digestive fire), *saṅgrahaṇī* (sprue syndrome), *raktagulma* (molar pregnancy), *pradara* (leucorrhoea and menorrhagia), *somaroga* (polyuria due to A.D.H. abnormality), loss of milk secretion, dysuria, jaundice, neck-rigidity and all *pitta, vātapitta* and puerperal woman's *vāta* disorders. In these conditions effect is definite, besides it also provides fortune and male child to the woman.

१. नागरं कणशः कृत्वा प्रस्थमात्रं भिषग्वरः। अजादुग्धाढकद्वे च विपचेन्मन्दवन्हिना॥
घनीभूते तु पयसि तस्माच्छुण्ठीं समुद्धरेत्। अतिसूक्ष्मं विनिश्चिष्य शोषयेदातपे खरे॥
घृतमानीं समावाप्य तद्दुग्धं तु पुनः पचेत्। यावत्पिण्डत्वमायाति ततस्तत्र विनिक्षिपेत्॥
चातुर्जातं तुगा वेल्लं धान्यकं जीरकद्वयम्। मिशिमाकल्कं शुण्ठीं लवङ्गं च शतावरीम्॥
तालमूलीं त्रिकटुकं कपिकच्छूं च षट्कटु। जातीफलं जातिपत्रीं शृङ्गाटं वृद्धदारकम्॥
त्रिवृतां पद्मबीजं च त्रिफलां च बलात्रयम्। जलं सेव्यं वाजिगन्धाचन्दनागरुकारवीः॥
काङ्कोलमजगन्धां च द्राक्षामाक्षोटवारिजे। अजमोदं च बादामं नारिकेलगतं तथा॥
कर्पूरमप्रकं लोहं वङ्गं ताम्रं शिलाजतु। स्वर्णमाक्षिकमप्येतत्प्रत्येकं कर्षमात्रकम्॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र पाणिभ्यां मर्दयेद्दृढम्। ततः खण्डतुलां पक्त्वा तथा तच्च क्रियां चरेत्॥
खण्डनागरकं नाम्ना भैषज्यमिदमुत्तमम्। यथाबलमिदं खोदत्प्रातः सायं च भेषजम्॥
स्त्रीणामतिहितं नात्र पथ्यापथ्यविचारणा। क्षये पाण्डौ ज्वरे कासे श्वासे मन्दानले तथा॥
संग्रहण्यां रक्तगुल्मे प्रदरे सोमरोगके। दुग्धक्षये मूत्रकृच्छ्रे कामलायां गलग्रहे॥
पित्तरोगेषु सर्वेषु वातपित्तगदेषु च। सूतिकापवनव्याधौ शस्तमेतन्न संशयः॥
अश्विन्यां पूर्वमुदितः सेव्यो योगोऽयमुत्तमः। एषा सौभाग्यदा शुण्ठी स्त्रीणां पुत्रप्रदा शुभा॥
(यो० र० स्त्रीरो० चि०)

४) अन्य नागरपाक (Another nāgarapāka)

नागर आठ पल, घृत बीस पल, क्षीर एक आढक मिलाकर आधा तुला शक्कर डालकर पकायें तथा इसमें शताह्वा, जीरक, व्योष, त्रिसुगन्धि, यवानिका, कारवी, मिसि, चव्य, अग्नि तथा मुस्ता का एक-एक पल चूर्ण मिला दें। सिद्ध हो कर लेह बन जाने पर इसे घृतभाण्ड में भरकर रख दें। विशेष रूप से सूतिका इसे अग्नि-बल के अनुसार खाए। यह बल्य, वर्ण्य, आयुष्य, बली-पलित-नाशक, वयःस्थापक, हृद्य, मन्दाग्निदीपक, आमवात-नाशक, उत्तम सौभाग्य देने वाला एवं सूतिकारोग तथा मक्कल्ल नाशक है[1]।

Nāgara eight *pala, ghṛta* twenty *pala,* milk one *ādhaka* and sugar half *tulā (50 pala)* should be mixed and cooked. Now in this powdered *śatāhwā, jīraka, vyoṣa, trisugandhi, yavānikā, kāravī, misi, cavya, agni* and *mustā* each one *pala* should be mixed and cooked. When it is properly prepared in the form of electuary it should be stored in an earthen pot previously used for keeping *ghṛta.* The puerperal woman should use it according to her digestive power. It is beneficial for strength and complexion, increases longevity, cures graying and falling of hair, is *vayaḥsthāpaka* (prevention of aging or maintenance of youth), *hṛdya* (cardiotonic), strong appetizer, cures rheumatic disorders, provides fortune and also cures *sūtikāroga* and *makkalla.*

रस (Rasa)

प्रतापलङ्केश्वर रस (Pratāpalaṅkeśwara rasa)

शुद्ध पारद, अभ्रक (भस्म) एवं गन्धक (शुद्ध) एक-एक भाग, मरिच चूर्ण ३ भाग, लौह भस्म ४ भाग, शंखभस्म ८ भाग, जंगली उपलों की भस्म १६ भाग तथा शुद्ध विष एक भाग लेकर क्रमशः मिलाकर (पारद गन्धक की कज्जली बनाकर फिर सब अन्य औषधियाँ मिला) चूर्ण कर लें। प्रसूति-वात में वायु के कारण दाँत बैठ जाने पर आर्द्रक स्वरस के साथ बल्ल-प्रमाण (१.५ से ३ रत्ती) में चाटे। वातविकार, श्लेष्मविकार, अर्शरोग में इस रस को पुर, अमृता, त्रिफला एवं आर्द्रक के साथ (चूर्ण, कल्क या क्वाथ) सेवन करे। केवल शुण्ठी-जल या आर्द्रक के स्वरस के साथ सेवन करने से यह सन्निपात सहित उग्ररूप के ज्वर को नाश करता है। निज-निज अनुपान एवं पथ्य के साथ यह रस सभी प्रकार के अतिसार तथा ग्रहणी विकारों को नष्ट करता है। इस प्रतापलंकेश्वर नाम के रस का प्रयोग पार्वती जी ने किया[2]।

Pure *pārada,* (mercury), *abhraka* (mica), and *gandhaka* (sulphur) each one part, powdered *marica* three parts, *loha* (iron)-*bhasma* four parts, *śaṅkha* (conch shell)-*bhasma* eight parts, ash of cow-dung-cakes collected from forests sixteen parts and pure *viṣa* one part

१. नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम्। क्षीराढकेन संयुक्तां खण्डस्यार्धतुलां पचेत्॥
शताह्वाजीरकव्योषत्रिसुगन्धियवानिकाः। कारवीमिसिचव्याग्निमुस्तानां च पलं पलम्॥
लेहीभूतमिदं सिद्धं घृतभाण्डे निधापयेत्। तद्यथाग्निबलं खादेत्सूतिका तु विशेषतः॥
बल्यं वर्ण्यं तथाऽऽयुष्यं वलीपलितनाशनम्। वयसः स्थापनं हृद्यं मन्दाग्नेर्दीपनं परम्॥
आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम्। मक्कल्लशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम्॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. एकेन्दुचन्द्रानलवार्धिदन्तीकलैकभागं क्रमशो विमिश्रम्। सूताभ्रगन्धोषणलोहशंखवन्योत्पलाभस्मविषं च पिष्टम्॥
प्रसूतिवातेऽनिलदन्तबन्धे सार्द्राम्भसा वल्लमुपैति लिह्यात्। वातामये श्लेष्मगदेऽग्निसं स्यात्पुरामृताद्रांत्रिफलायुतोऽयम्॥
सन्नत्रवेरद्रव एष हन्ति ससन्निपातं ज्वरमुग्ररूपं। निजानुपानैर्निजपथ्ययुक्तः सर्वातिसारान् ग्रहणीविकारान्॥
प्रतापलङ्केश्वरनामधेयः सूतः प्रयुक्तो गिरिराजपुत्र्या॥ (यो० र० स्त्रीरोग चि०)

Scanned with CamScanner

should be taken. After preparing *kajjalī* of *pārada* and *gandhaka* all other drugs should be mixed and powdered. In case of lock jaw due to vitiated *vayu* in *prasūtivāta* it should be used in the dose of *valla* or three *gunjā* with juice of *ārdraka* (ginger). In cases of *vāta* disorders, *śleṣmā* disorders and piles it should be used with *pura (guggulu), amṛtā, triphalā* and *ārdraka.* If used only with decoction or cold percolation of *śuṇṭhī* or juice of *ārdraka* it cures high fever associated with *sannipāta.* With specific after medicines or adjuvants it cures all types of *atisāra* (diarrhoeas) and *grahaṇī* (sprue syndrome). This *rasa* is known as *pratāpalaṅkeśwara* and was used by goddess Pārvatī.

तैल (Oil)

बला एवं अन्य तैल (Balā and other taila)

मूढ़गर्भ-शल्योद्धरण के पश्चात् की चिकित्सा के अन्तर्गत वर्णित बला आदि तैलों का प्रयोग भी कर सकते हैं।

Balātaila etc. oils prescribed in the treatment of *mūḍhagarbha* can also be used.

सूतिकारोग में पथ्य (Beneficial diet in sūtikāroga)

सूतिकारोगों तथा वातकफ से उत्पन्न रोगों में उन-उन रोगों के अनुसार पथ्यापथ्य व्यवस्था करें[1]।

In *sūtikārogas* and other diseases due to vitiation of *vāta* with *śleṣmā* appropriate congenial diet considering the *doṣa* and diseases should be given.

(२) प्रसूता की योनिभ्रंश-चिकित्सा (Treatment of yonibhraṃśa-i. e. uterovaginal prolapse or inverson of uterus of puerperal woman)

यदि प्रसूता स्त्री की योनि का स्वस्थान से भ्रंश हो जाय तो जिस किसी का रक्त मिले (चाहे स्वयं प्रसूता का अपरा के साथ निर्गत रक्त या किसी भी उपलब्ध पशु का) उससे योनि का अभ्यङ्ग करके कुशल स्त्री उसे स्वस्थान में प्रविष्ट कर दे। प्रवेश के पश्चात् अशोक, रोहिणी, बर्हिष, उशीर, प्रियङ्गु तथा देवदारु के कल्क के द्वारा विपक्व तैल से बार बार स्वेदन तथा आपूरण करे एवं कहे कि हे सुभगे। तू स्वस्थान को चली जा[2]।

सूतिका एवं दुष्प्रजाता को योनिभ्रंश हो जाने पर मद्य-पान कराना अमृत-तुल्य है[3]।

In case of uterovaginal prolapse or inversion of uterus the *yoni* (uterus and vaginal canal) should be anointed with the blood of either the woman herself or any other available animal and then the *yoni* (uterus) should be replaced in its proper place by an expert woman. After this replacement repeated fomentation and filling or tampon of oil prepared with the paste of *aśoka, rohiṇī, barhiṣa, uśira, priyaṅgu* and *devadāru* should be given and a woman

१. सूतिकाख्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोद्भवेषु च। तत्तद्रोगानुकल्पेन पथ्यापथ्यान्विनिर्दिशेत्॥ (यो० र० क्षीरदो० चि०)

२. तस्याश्चेत्स्वस्थानतो योनिर्भ्रश्यते। ततो यस्य कस्यचिच्छोणितेनाभ्यज्य योनिं यथास्थानं कुशला स्त्री निवेशयेत्। निविष्टां चाशोकरोहिणीबर्हिषोशीरप्रियङ्गुदेवदारुकल्कविपक्वेन तैलेन बहुशः स्वेदयेत्पूरयेत्॥ ब्रूयाच्च गच्छ सुभगे स्वस्थानमिति॥ (अ० सं० शा० ३/३६)

३. सूतानां दुष्प्रजातानां योनिभ्रंशे ·····॥९॥
·····मद्यमाहुर्यथाऽमृतम्॥११॥ (का० सं० चि० १६)

should say "O *Subhage* (beautiful vagina) ! go to your proper place".

Drinking of wine by the puerperal woman having undergone normal or difficult labour is like nectar.

३) प्रसूता की योनिक्षत की चिकित्सा (Treatment of yonikṣata or vaginal ulcer of puerperal woman)

तुम्बीपत्र तथा लोध्र को समान भाग लेकर भलीभाँति पीसकर लेप करने से योनि शीघ्र ही क्षत-रहित हो जाती है[1]।

Anointment with nicely pestled leaves of *tumbī* and *lodhra* cures vaginal ulcers quickly.

४) मक्कल्ल शूल (Makkalla śūla or puerperal after-pains)

अ) निदान एवं लक्षण (Etiology and clinical features)

प्रजातायाश्च नार्या रुक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं वायुना तद्देशगेनातिसंरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्बस्तौ बस्तिशिरसि वा ग्रन्थिं करोति; ततश्च नाभिबस्त्युदरशूलानि भवन्ति, सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्यत इव च पक्वाशयः समन्तादाध्मानमुदरे मूत्रसङ्गश्च भवतीति मक्कल्लशूलस्य लक्षणम्॥ (सु० सं० शा० १०/२२)

प्रजातायां चेद्बस्तिमूर्धोदरेषु शूलं मक्कल्लाख्यं स्यात्॥ (अ० सं० शा० ३/३५)
मक्कल्लाख्ये शिरोबस्तिकोष्ठशूले ·····। (अ० हृ० शा० १/९२)

रुक्ष शरीर वाली प्रसूता स्त्री का तीक्ष्ण औषधियों (पञ्चकोलादि) से अविशोधित रक्त (प्रसवोपरान्त या तो औषधियाँ प्रयुक्त ही नहीं हुई या यदि प्रयुक्त हुई तो भी वे प्रसवोत्तर स्रवित रक्त को उचित रूप से बाहर नहीं निकाल पाई) वायु के द्वारा उसी प्रदेश (गर्भाशय) में रुक कर नाभि के नीचे, पार्श्वों, बस्ति या बस्तिशिर में ग्रन्थि पैदा कर देता है, जिससे नाभि, बस्ति तथा उदर में शूल होता है, पक्वाशय में सूची-वेध, भेदन या दारण सदृश वेदना होती है, उदर में चारो ओर आध्मान तथा मूत्रसङ्ग हो जाता है, ये मक्कल्ल शूल के लक्षण हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने अतिसंक्षेप में लिखा है कि प्रसूता स्त्री के बस्तिशीर्ष अथवा बस्ति एवं शिर तथा उदर में उपस्थित शूल को मक्कल्लशूल कहते हैं।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि शिर, बस्ति एवं कोष्ठ के शूल का नाम मक्कल्ल शूल है।

माधवनिदानकार ने लिखा है कि प्रकुपित वायु स्रुत रक्त को रोक कर प्रसूता के हृदय प्रदेश, शिर एवं बस्ति में शूल उत्पन्न कर देती है उसे मक्कल्ल कहते हैं[2]।

भावप्रकाश में वर्णन मिलता है कि प्रसूता स्त्री की रुक्षता के कारण वृद्ध वायु तीक्ष्णोष्ण द्रव्यों के प्रयोग से शोधित रक्त को रोककर नाभि के नीचे पार्श्वों, बस्ति तथा बस्तिशिर में ग्रन्थि उत्पन्न कर देती है जिससे नाभि, बस्ति तथा उदर में शूल होता है पक्वाशय में आध्मान तथा मूत्रसङ्ग हो जाता है। वैद्यों के द्वारा मक्कल्ल शूल के यही लक्षण कहे

१. तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत्। तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२८ एवं यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. (वायुः प्रकुपितः कुर्यात् संरुध्य रुधिरं स्रुतम्। सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञकम्।१।) (मा० नि० ६४)
(सम्भवतः श्लोक प्रक्षिप्त है)

Scanned with CamScanner

गए हैं[1]।

योगरत्नाकर में माधवनिदान सदृश ही वर्णन है[2]।

Unexcreted or unpurified blood, inspite of use of pungent drugs by a puerperal woman having dry (absence of unctuousness) body, gets localised by *vāyu* in the uterus or else the excreted blood is retained by *vāyu* in the uterus. This retained blood produces a glandular structure in any site amongst infraumbilical region, flanks, bladder or bladder-neck (hypogastric) region. Due to this structure there is severe pain in umbilical and bladder regions, abdomen and cardiac region and headache. In the *pakwāśaya* (large bowel) region there is severe pain as if needles are being pricked, the bowel is being torn or perforated. Flatulence and retention of urine also occur.

ब) मक्कल्ल-चिकित्सा (Treatment of makkalla)

१) वीरतर्वादि गण को औषधियों के क्वाथ में ऊषकादि गण की औषधियों का प्रक्षेप देकर[2] घृत, मन्दोष्ण जल या नमक के चूर्ण के साथ पीने को दें[1]।

२) यवक्षार का चूर्ण पिप्पल्यादि गण के क्वाथ[1] अथवा घृत या सुखोष्ण जल[2,3,४,५] के साथ पीने को दें[1]।

३) पिप्पल्यादि गण के चूर्ण को सुरामण्ड के साथ दें[1]।

४) वरुणादि गण के क्वाथ में पञ्चकोल एवं एला (के चूर्ण) का प्रक्षेप देकर पीने को दें[1,2]।

५) पृथक्पर्ण्यादि गण के क्वाथ में भद्रदारु एवं मरिच मिलाकर दें[1]।

६) त्रिकटु, चतुर्जात[1,४,५] अथवा त्रिजात[2,3] एवं कुस्तुम्बुरु के साथ पुराना गुड़ खायें[1,2,3,४,५]।

७) केवल अच्छ अरिष्ट (शुद्ध एवं अच्छे अरिष्ट) का प्रयोग करें[1]।

८) वत्सकादि गण की औषधियों के क्वाथ में लवण का चूर्ण मिलाकर अथवा वत्सकादि गण (की औषधियों के चूर्ण) को मदिरा के साथ दें[2]।

९) अंशुमतीद्वय के क्वाथ में मरिच तथा भद्रदारु के कल्क को मिलाकर प्रयोग करावें[2,3]।

१०) भार्ङ्गी, नागर तथा देवदारु के कल्क को गर्म जल से दें[2]।

११) पिप्पली, पिप्पलीमूल, मरिच, गजपिप्पली, नागर, चित्रक, चव्य, रेणुका, एला, अजमोदा, सर्षप, हिंगु, भार्गी, पाठा, इन्द्रयव, जीरा, महानिम्ब, मूर्वा, विषा, तिक्ता तथा विडङ्ग यह पिप्पल्यादि गण कफ-वात नाशक है। इसके क्वाथ का लवण के साथ प्रयोग गुल्म-शूल, ज्वर, मक्कल्ल-शूल, गुल्म एवं कफ तथा वात-विकारों का नाशक, उत्तम दीपन एवं पाचन है[४,५]।

१२) रक्त वर्ण बोल को घृत तथा पुराने गुड़ के साथ बटी बनाकर खाने से मक्कल्ल शूल तथा अन्य रक्तजन्य उपद्रव शान्त होते है[५]।

१. वनिताया: प्रसूताया वातो रूक्षेण वर्द्धित:। तीक्ष्णोष्मशोषितं रक्तं रुद्ध्वा ग्रन्थिं करोति हि ॥ १३६॥
नाभ्यध:पार्श्वयोर्वस्तौ वस्तिमूर्द्धनि चापि वा। ततश्च नाभौ वस्तौ च भवेच्छूलं तथोदरे ॥ १३७॥
भवेत्पक्वाशयाध्मानं मूत्रसङ्गश्च जायते। एंतद्भिषग्भिरुदितं मक्कल्लामयलक्षणम् ॥ १३८॥ (भा० प्र० चि० ७०)

२. वायु:·····च्युतम्।·····मक्कल्ल संज्ञितम् ॥ (मा० नि० सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

नोट –मक्कल-चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ५७५ में देखें।

१३) शुद्ध हिंगु को घृत के साथ खाने से मक्कल्ल शूल का नाश होता है[५]।

Following preparations should be given orally :—

i) In the decoction of *vīratarvādi* group of drugs, powdered *ūṣakādi* group of drugs should be mixed and be prescribed either with *ghṛta*, lukewarm water or powdered salt.

ii) Powdered *yavakṣāra* with the decoction of *pippalyādi* group of drugs or *ghṛta* or lukewarm water.

iii) Powdered *pippalyādi* group of drugs mixed with *sūrāmaṇḍa* (scum of wine).

iv) Decoction of *varuṇādi* group of drugs mixed with powdered *pañcakola* and *elā*.

v) Decoction of *pṛthakparṇyādi* group of drugs mixed with *bhadrdāru* and *marica*.

vi) *Trikaṭu, caturjāta* or *trijāta* and *kustumburu* mixed with old jaggery.

vii) Only pure and best *ariṣṭa*.

viii) Decoction of *vatsakādi* group of drugs mixed with salt or powdered *vatsakādi* group of drugs with wine.

ix) Decoction of *aṃśumatī-dwaya (śālaparṇī* and *pṛśniparṇī)* mixed with paste of *marica* and *bhadradāru*.

१. तत्र (सर्पिषा सुखोदकेन वा लवणचूर्णेन-कलकत्ता प्र०) वीरतर्वादिसिद्धं जलमूषकादिप्रतीवापं पाययेत् यवक्षारचूर्णं वा सुखोदकेन पिप्पल्यादिक्वाथेन वा, पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामण्डेन, वरुणादिक्वाथं वा पञ्चकोलैलाप्रतीवापं, पृथक्पर्ण्यादिक्वाथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं, पुराणगुडं वा त्रिकटुकचतुर्जातककुस्तुम्बुरुमिश्रं खादेत् अच्छं वा पिवेदरिष्टमिति ॥
(सु० सं० शा० १०/२२)

२. तत्र यवक्षारचूर्णं सर्पिषा सुखोष्णोदकेन वा पिबेत्। वरुणादिं वा सपञ्चकोलमेलाप्रतीवापम्। अथवा वीरतरादि-मूषकादिप्रतीवापं। लवणचूर्णं वा वत्सकादिनिर्यूहेण। वत्सकादिं वा मदिरया। अंशुमतीद्वयक्वाथेन वा मरिचभद्रदा-रुकल्कम्। भार्ङ्गीनागरदेवदारुकल्कं वोष्णाम्भसा। पुराणगुडं वा त्रिकटुत्रिजातकधनिकाचूर्णसंसृष्टं भक्षयेत् ॥
(अ० सं० शा० ३/३५)

३. ····· तु पाययेत्। सुचूर्णितं यवक्षारं घृतेनोष्णं जलेन वा ॥९२॥
धान्याम्बु वा गुडव्योषत्रिजातकरजोऽन्वितम् ॥ (अ० हृ० शा० १/९२, ९३)

४. सुचूर्णितं यवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा। सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये ॥ १३९॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली। नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाऽजमोदिका: ॥ १४०॥
सर्षपो हिङ्गु भार्गी च पाठेन्द्रयवजीरका:। महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ १४१॥
पिप्पल्यादिर्गणो ह्येष कफमारुतनाशन:। क्वाथमेषां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम् ॥ १४२॥
गुल्मशूलज्वरहरं दीपनञ्चामपाचनम्। मक्काशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ १४३॥
त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बुरुचूर्णसंयुतम्। खादेद् गुडं पुराणं नित्यं मक्कल्लदलनाय ॥ १४४॥ (भा० प्र० चि० ७०)

५. संचूर्णितं·····निवृत्तये ॥ पिप्पली ····· मोदिका: ॥ सर्षपो·····विडङ्गकम् ॥
पिप्पल्यादि·····समन्वितम् ॥ गुल्मशूल·····पाचन: । मक्कल्ल·····परम् ॥
त्रिकटुक·····संयुतं नित्यं। खादेत्·····दलनाय ॥ (भा० प्र० चि० ७० सदृश)
शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटकीकृतं गिलितम्। मक्कल्लाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम् ॥
हिङ्गु शुद्धं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कल्लशूलनुत् ॥ (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

Scanned with CamScanner

x) Pestled *bhārṅgī, nāgara* and *devadāru* with warm water.

xi) *Pippalī, pippalīmūla, marica, gajapippalī, nāgara, citraka, cavya, reṇukā, elā. ajamodā, sarṣapa, hiṅgu, bhārṅgī, pāṭhā, indrayava, jīrā, mahānimba, mūrvā, viṣā, tiktā* and *vidaṅga* are the drugs of *pippalyādi* group, which suppresses *kapha* and *vāta,* use of decoction of this group with salt cures pain due to *gulma,* fever, *makkalla śūla, gulma* and disorders of *kapha* and *vāta.* It is good appetizer and digestive.

xiii) Use of tablets prepared with red coloured *bola, ghṛta* and jaggery cure *makkalla śūla* and other complications arising due to *rakta.*

xiv) Use of pure *hiṅgu* with *ghṛta* cures *makkalla śūla.*

५) रक्तविद्रधि *(Raktavidradhi)*

निदान एवं लक्षण (Etiology and clinical features)

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः। दाहज्वरकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः॥ २६॥
अपि सम्यक्प्रजातानाममृक् कायादनिःसृतम्। रक्तजं विद्रधिं कुर्यात् कुक्षौ मक्कल्लसंज्ञितम्॥ २७॥
समाहान्नोपशान्तश्चेत् ततोऽसौ संप्रपच्यते॥ (सु० सं० नि० ९/२६ से २८)

अपप्रजाता (पतित गर्भा[१] अथवा असामान्य रूप से प्रसूता) अथवा प्रजाता (सम्यक् काल[१] में सामान्य रूप से प्रसूता) स्त्री को अहित सेवन (शीत एवं रुक्ष आहार-विहार[१]) से दाह एवं ज्वर उत्पन्न करने वाली तीव्र रक्तविद्राधि उत्पन्न हो जाती है अथवा प्रसूता स्त्री के शरीर से (गर्भाशय से) सम्यक् रूप से रक्त के न निकलने से मक्कल्ल शूल के द्वारा उत्पन्न[२] या मक्कल्ल नाम की रक्तविद्रधि हो जाती है, जो यदि एक सप्ताह में शान्त न हुई तो पाक को प्राप्त हो जाती है जिस पाक का कारण पित्त-जनित आन्तरिक उष्णता है। पक्व हो जाने पर यह असाध्य हो जाती है[३]।

Due to use of non-congenial diet or harmful mode of life, the woman who had abortion, normal or abnormal labour suffers from serious *raktavīdradhi* which produces burning sensation and fever, however, sometimes in normally delivered woman unexcreted blood from the body (uterus) causes *makkallaśūla* which subsequently produces *raktavidradhi,* this *vidradhi* if not relieved within a week gets suppurated. Dalhaṇa has explained that suppuration occurs due to internal heat generated by *pitta* and after suppuration it becomes incurable.

विमर्श (Comments)

सभी संहिताकारों ने विद्रधि के वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रक्त तथा अभिघात आदि से होने वाले ६ भेदों का वर्णन किया है। महर्षि सुश्रुत ने इन ६ विद्रधियों के वर्णन के बाद ही स्त्रियों में होने वाली रक्तविद्रधि का उल्लेख किया है, अर्थात् महर्षि सुश्रुत के मत से धातु-रूप रक्त की अन्तर्विद्रधि स्त्री या पुरुष किसी में भी हो सकती है, परन्तु शरीर (गर्भाशय) से प्रसवोपरान्त समुचित रूप से न निकलने वाले रक्त या मक्कल्ल के कारण होने वाली विद्रधि केवल स्त्रियों में ही होती है। चूँकि यह भी धातु-रूपी रक्त के ही एक परिवर्तित स्वरूप अर्थात् प्रसवोपरान्त गर्भाशय में एकत्रित रक्त में उत्पन्न होती

१. ·····अपप्रजातानां पतितगर्भाणां ·····। प्रजातानां सम्यक्कालप्रसूतानाम्। ····· अहितैः शीतरुक्षाहारविहारैः
मक्कल्लसंज्ञितं मक्कल्लजनितं, कारणे कार्योपचारात्; ····· ससरात्रमप्रशान्तः पित्तोष्मणान्तः प्रपच्यते। पक्वश्चासाध्यः॥
(सु० सं० नि० ९/२६ से २८ की डल्हण टीका)

है अतः इसका समावेश संख्या-गणना में सामान्य रक्तविद्रधि के ही अन्तर्गत हो जाता है। महर्षि वाग्भट का कथन है कि रक्तज अन्तर्विद्रधि केवल स्त्रियों को ही होती है पुरुषों को नहीं[१]। टीकाकार इन्दु का मत है कि बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों ही प्रकार की रक्तविद्रधि केवल स्त्रियों में ही होती है[२]। मधुकोष व्याख्याकार ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि भोजादि आचार्य तो धातु-रूपी रक्त की विद्रधि को न मानकर मक्कल्ल संज्ञक आर्तव-लक्षण रक्त से होने वाली विद्रधि को ही रक्तज विद्रधि के नाम से मानते है। उनके मत से आर्तवज विद्रधि ही छठी या रक्तज विद्रधि है। सुश्रुत में धातुरूप रक्तज तथा मक्कल्ल संज्ञक दोनों ही विद्रधियों को पृथक् पृथक् मानते हुए इसे रक्तज के ही अन्दर समाविष्ट कर दिया है जिससे संख्या छः ही रहती है[३]।

महर्षि सुश्रुत का वर्णन अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि धातुरूपी रक्त की अंतः एवं बाह्य विद्रधि स्त्री या पुरुष किसी को भी हो सकती है जिसे हम इन्फेक्टेड इन्टॅ:नॅल एवं एक्सटॅ:नॅल हीमॅटोमॅ मान सकते हैं, परन्तु मक्कल्ल के बाद या गर्भाशयिक रक्तज अन्तर्विद्रधि केवल स्त्रियों में ही होगी।

आचार्यों ने किन्ही भी अन्तर्विद्रधियों के पृथक् लक्षणों का वर्णन नहीं किया अर्थात् बाह्य विद्रधि में होने वाले लक्षण ही अन्तर्विद्रधि में होंगें। सभी आचार्यों के मत से रक्तविद्रधि कृष्ण स्फोटों से आवृत, श्याव वर्ण को, तीव्र वेदना, दाह, तथा ज्वर युक्त एवं पित्तविद्रधि के लक्षणों वाली होती है[४]।

कृष्ण स्फोटों आदि से आवृत स्त्रियों की विशिष्ट अन्तर्विद्रधि का आधुनिक दृष्टिकोण से सामञ्जस्य कठिन है। सम्भवतः यह गर्भाशय की अतितीव्र पाकावस्था का द्योतक है। महर्षि सुश्रुत वर्णित रक्तविद्रधि का स्पष्टीकरण इस प्रकार दे सकते हैं-

गर्भस्राव या प्रसव के बाद गर्भाशय में गर्भ या अपरादि के किसी अंश के रह जाने से उसमें उपसर्ग-जन्य शोथ अथवा पाकोत्पत्ति हो गर्भाशय-विद्रधि अथवा सामान्य सूतिका को भी कभी कभी उपसर्ग-जन्य गर्भाशय अथवा श्रोणि-गुहा की विद्रधि बन जाती है। गर्भाशय में किसी भी कारण से एकत्रित रक्त जीवाणुओं की वृद्धि में सहायक होता है। प्रसूता की गर्भाशय एवं श्रोणिगुहा की विद्रधि आज भी यदि असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य ही है, अतः रक्तविद्रधि प्रसवोत्तर गर्भाशयान्तर पूयमयता (पायोमेट्रा) अथवा श्रोणिगुहा की विद्रधि का वर्णन प्रतीत होती है।

All the authors have classified *vidradhi* (abscess) into six types i.e., *vātaja, pittaja, kaphaja, sannipātaja, raktaja* and *abhighātaja.* After describing all these six, Suśruta has described *raktavidradhi.* It seems that according to Suśruta *antarvidradhi* (internal abscess) developing from *dhātu* form of *rakta* develops in both sexes i.e., male and female, however, the abscess of unexcreted blood from the uterus after delivery or *makkalla* develops only in woman. Since the blood accumulated in uterus is not different from general blood of

१. (अ) स्त्रीणामेव तथाऽऽन्तरः॥ (अ० सं० नि० ११/१२)
(आ) स्त्रीणामेव तथान्तरः॥ (अ० हृ० नि० ११/१०)

२. स च बाह्योऽभ्यन्तरो वा स्त्रीणामेव भवति॥ न तु पुरुषाणां इति रक्तविद्रधिः॥ (अ० सं० नि० ११/१२ की इन्दु टी०)

३. भोजप्रभृतयस्तु धातुरक्तजं विद्रधिं परित्यज्य मक्कल्लसंज्ञयाऽऽर्तवलक्षणरक्तजं पठन्ति। तेषां मते आर्तवजेन सह षड्विद्रधयः, सुश्रुते तु धातुरक्तजोऽपि तथा मक्कल्लसंज्ञकोऽपि विद्रधिः सामान्येन रक्तजं एवेति षड्विद्रधय इति बोद्धव्यम्।
(मा० नि० ४०/१० की मधुकोषव्या०)

४. (अ) कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः॥ पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते॥ (सु० सं० नि० ९/१३, १४)
(आ) कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः। पित्तलिङ्गोऽसृजा बाह्यः स्त्रीणामेव तथाऽन्तरः॥
(अ० सं० नि० ११/१२)
(इ) कृष्ण·····। पित्त·····तथान्तरः॥ (अ० सं० सदृश) (अ० हृ० नि० ११/१०)

Scanned with CamScanner

body, hence under classification this is included in *raktavidradhi*.

According to Vāgbhaṭa internal *raktaja vidradhi*, while according to Indu external and internal both *raktaja vidradhi* develop only in woman.

Bhoja (quoted in Madhukoṣa commentary) says that from *dhātu* form of *rakta* the *vidradhi* does not develop, however, it develops only from the *rakta* accumulated in uterus after delivery or *makkalla* which is a form of *ārtava*.

Opinion of Suśruta seem to be more logical because internal and external *raktaja-vidradhi* (infected internal and external haematomas) can develop in either of the sex, however, uterine abscess of unexcreted blood after delivery develops only in females.

Clinical features of only external abscesses have been described in the books with the indication that internal abscesses are indentical to external ones. Clinical features of external *raktaja vidradhi* are—that it is covered with black blisters, is of black colour and associated with severe pain, burning sensation, fever along with other features of *pittaja vidradhi*.

On the basis of these clinical features it is difficult to establish congruence with any uterine disorder. It could be some acute infective/pyogenic condition of uterus. Explanation of *raktavidradhi* described by Suśruta is being given here.

After abortion or abnormal delivery, if some products of conception are retained, these may get infected and cause inflammation and suppuration thus produce abscess in the uterus. However, sometimes even in normally delivered woman due to infection some inflammation and suppuration inside the uterus or pelvic cavity may occur. If blood clots are retained in the uterus these may facilitate growth of pyogenic bacterias. The abscess of uterus and pelvic cavity if not incurable are difficult to be cured even to-day. Considering these points this *raktavidradhi* seems to be description of acute puerperal pyometra or pelvic abscess.

चिकित्सा (Treatment)

अ) सिद्धान्त (Principles of treatment)

अपक्व विद्रधि में शोफ तथा आभ्यन्तर विद्रधि में गुल्म-सदृश चिकित्सा करनी चाहिए[१]।

रक्तज एवं आगन्तुज (क्षतज) विद्रधि में पित्तविद्रधि के सदृश ही कुशल वैद्य को सम्पूर्ण चिकित्सा इसके पूर्णरूपेण समाप्त हो जाने तक करनी चाहिए[२]। चूँकि यह रक्तज विद्रधि अन्तर्विद्रधि है अतः सामान्य अन्तर्विद्रधि के लिए वर्णित चिकित्सा का भी प्रयोग करना चाहिए।

१. (अ) सर्वमेवविद्रधिभामं शोफविधिना यथादोषमुपाचरेत्। .....। यथादोषं च सर्वशो गुल्मवदुपक्रमेत्॥ (अ० सं० चि० १५/२ व ३)

(आ) विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत् समुपाचरेत्॥ १॥
सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत्॥ २५॥ (अ० हृ० चि० १३/१ एवं २५)

२. (अ) पित्तविद्रधिवत् सर्वाः क्रिया निरवशेषतः। विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः॥ (सु० सं० चि० १६/२७)
(आ) रक्तगन्तूद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया॥ (अ० हृ० चि० १३/७)

Vidradhi during its stage of inflammation *(apakwa)* should be treated like *śopha*, *antarvidradhi* should be treated like *gulma*.

The wise physician should treat this *raktavidradhi* on the line of *pittaja vidradhi*, which treatment should continue till it is completely cured.

औषधियाँ (Drugs)

पित्तविद्रधिवत् होने से पित्त-विद्रधि तथा अन्तर्विद्रधि के अन्तर्गत वर्णित औषधियाँ प्रयोग की जानी चाहिए।

बाह्य प्रयोग

१) पित्तविद्रधि में शर्करा, लाजा, मधुक तथा सारिवा अथवा पयस्या, उशीर एवं चन्दन को दुग्ध के साथ पीसकर लेप करना चाहिए[१] अथवा मधुयष्टी, अमृता एवं तिल का अथवा मधुशिग्रु-त्वचा का लेप करें[२,४,५]।

२) उपर्युक्त औषधियों के क्वाथ या शीतकषाय अथवा दुग्ध या गन्ने के रस या शर्करा युक्त जीवनीय घृत (जीवनीय गण की औषधियों से सिद्ध घृत)[३] अथवा क्षीरी वृक्षों के क्वाथ से परिषेचन करें[५]।

३) स्नेहन, उपनाह तथा अनुलोमन का सदा प्रयोग करना चाहिए[२]।

४) पक्व विद्रधि का उत्पाटन (विदारण) करके क्षीरी वृक्ष अथवा औदकज (जल में उत्पन्न होने वाले कमल, कुमुदिनी आदि) द्रव्यों के कषाय से (व्रण का) प्रक्षालन करके तिल एवं मधुयष्टी (के कल्क) को मधु एवं घृत के साथ मिलाकर लेप करके पतले कपड़े से बाँध देना चाहिए[१]।

(गर्भाशयिक विद्रधि का उदरभित्ति के मार्ग से उत्पाटन सामान्यतया वांछित नहीं होता, अतः उत्पाटन के स्थान में गर्भाशयग्रीवा के मार्ग से पूय-निर्हरण कर उपर्युक्त औषधियों का बस्तिनेत्र के द्वारा गर्भाशय में प्रवेश एवं श्रोणिगुहा-विद्रधि में योनिनलिका के पश्चिम भित्ति के उन्नत स्थान से उत्पाटन तत्पश्चात् औषधि प्रयोग अथवा डगलस पाउच के मार्ग से पूय-निर्हरण करना चाहिए।) रोपण के लिए निम्न घृतों का प्रयोग करना चाहिए[१]।

अ) प्रपौण्डरीक, मञ्जिष्ठा, मधुक, उशीर, पद्मक तथा हरिद्रा (के कल्क) एवं दुग्ध से निर्मित घृत व्रणरोपक होता है[१]।

आ) क्षीरशुक्ला, पृथक्पर्णी, समङ्गा, लोध्र, चन्दन तथा न्यग्रोधादि (वर्ग की औषधियों) के कोमल पत्र अथवा त्वक् से सिद्ध घृत व्रणरोपक होता है[१]।

इ) **करञ्जाद्य घृत** – नक्तमाल (करञ्ज) के पत्ते तथा कच्चे फल, सुमना, पटोल एवं अरिष्ट के पत्ते, दोनों हरिद्रा, मधूच्छिष्ट (मोम), मधुक, तिक्तरोहिणी, प्रियङ्गु, कुशमूल, निचुल की त्वचा, मञ्जिष्ठा, चन्दन, उशीर, उत्पल, सारिवा (पाठभेद सारिवे या सारिवाद्वय) तथा त्रिवृत सभी के एक-एक कर्ष (कल्क) के साथ एक प्रस्थ घृत का पाक करें। यह दुष्टव्रण-शामक, नाड़ीव्रण-शोधक, सद्योव्रण एवं छिन्नव्रण आदि के लिए लाभदायक करञ्जाद्य घृत है[१]।

ई) मंजिष्ठा, उशीर, पद्मक, पयस्या, निशाद्वय, श्रेष्ठा, यष्टी तथा दुग्ध से साधित घृत से रोपण करें[५]।

उ) न्यग्रोधादि गण के वृक्षों के कोमलपत्र, त्वचा एवं फलों से साधित घृत से रोपण करें[५]।

आभ्यन्तर प्रयोग

१) त्रिवृत एवं हरीतकी का चूर्ण मधु मिलाकर चाटना चाहिए[१]।

नोट-सन्दर्भ पृष्ठ ५८१ से ५८३ में देखें।

Scanned with CamScanner

२) अपक्व अन्तर्विद्रधि में ऊषकादिगण के प्रक्षेप से युक्त वरुणादि गण का सुखकारी क्वाथ पूर्वाह्न में[५] पिलाना चाहिए[२,४,५]।

३) इन्हीं दोनों वर्गों (ऊषकादि एवं वरुणादि) एवं विरेचन द्रव्यों से सिद्ध घृत का प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन विद्रधि को शीघ्र ही नष्ट कर[२,४,५] देता है।

४) दोषानुसार प्रक्षेप के साथ पान एवं भोजन में मधुशिग्रु वृक्ष (की त्वचा) का प्रयोग अपक्व विद्रधि का नाश करता है[२,४,५]। टीकाकार डल्हण का कथन है कि मधुशिग्रु स्वभावतः ही आम विद्रधि में लाभदायक होता है। इसके कषाय-पाचन के समय दोष प्राधान्य के आधार पर वात, पित्त एवं कफ नाशक द्रव्यों का प्रक्षेप दे देना चाहिए[३]।

५) जल (पित्तज विद्रधि में[३]), काँजी (वातज विद्रधि में[३]), मूत्र (कफज विद्रधि में[३]) अथवा सुरा के साथ मधुशिग्रु (के चूर्ण) अथवा दोषहर (वातादि दोष-नाशक) द्रव्यों के क्वाथ के साथ शिलाजतु का सेवन करना[२,४,५] चाहिए।

६) शुण्ठी (कफज में[३]) एवं सुरदारु (वातिक में[३]) के साथ प्रधान (महिषाक्ष[३]) गुग्गुलु का सेवन करना चाहिए[२] अथवा केवल गुग्गुलु का सेवन करें[४,५]।

७) त्रिफला, पिचुमन्द, मधुक, कटुका, पटोल प्रत्येक एक एक शाँण, त्रिवृत एवं त्रायमाण एक-एक कर्ष एवं मसूर एक पल मिलाकर आठ गुणे जल के साथ क्वाथ बनाकर उसमें घृत मिलाकर पिए। इससे विद्रधि नष्ट होती[१] है; अथवा त्रायन्ती, त्रिफला, निम्ब, कटुका तथा मधुक १-१ भाग, त्रिवृत एवं पटोल की मूल चार-चार भाग तथा छिलका रहित मसूर ८ भाग का क्वाथ उपर्युक्त विधि से प्रयोग करें[५]।

८) त्रायमाण का क्वाथ एक प्रस्थ, मुस्ता, कटुका, तामलकी, त्रायमाण, चन्दन, दुरालभा, जीवन्ती, वीरा एवं उत्पल प्रत्येक एक एक पल, घृत एक प्रस्थ, दुग्ध एवं आमलकी-स्वरस एक-एक प्रस्थ लेकर घृत पाक करें। यह घृत भी पूर्व-वर्णित घृत के समान गुणकारी है[४]। अष्टांगहृदयकार ने प्रस्थ के स्थान पर कुड़व तथा पल के स्थान पर कर्ष मात्रा वर्णित की है[५]।

९) द्राक्षा, मधुक, खर्जूर, आभीरु, विदारी, परूषक एवं त्रिफला के क्वाथ में दुग्ध, इक्षु एवं धात्री-स्वरस तथा अभया-कल्क मिलाकर घृत पाक करें। शीतल होने पर इसमें चौथाई भाग मधु एवं शर्करा मिला दें यह भी पूर्व के समान हितकारी है[४,५]।

अनुवासन एवं आस्थापन-बस्ति

वरुणादि, ऊषकादि एवं विरेचक द्रव्यों के क्वाथ में स्नेह (तेल) मिलाकर आस्थापन एवं अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना[२,४,५] चाहिए।

विद्रधि में रक्तमोक्षण या शिरावेध

जलौका[१] अथवा शृंग[४,५] के द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिए[४,५]। रक्तज एवं पित्तज विद्रधि में बाहु की शिरा का बेध करना[२,४,५] चाहिए।

कोष्ठगत पच्यमान विद्रधि में उपनाह का निर्देश

कोष्ठ की पच्यमान विद्रधि जो बाहर की ओर उन्नत हो गई हो उस पर उपनाह का प्रयोग करें[४,५]।

विद्रधि की पाक से रक्षा एवं पाक का परिणाम

विद्रधि में पाक न हो इसका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। शीघ्र विदाही होने के ही कारण इसे विद्रधि कहते हैं। पक

नोट-सन्दर्भ पृष्ठ ५८१ से ५८३ में देखें।

जाने पर चिकित्सा देवाधीन ही होती है एवं सभी व्याधियों की अपेक्षा इसकी अतिशीघ्र चिकित्सा करनी होती है[४,५]।

विद्रधि की पक्वावस्था की परीक्षा एवं पूय निर्हरण की विधि

विद्रधि में शूल के एक स्थान पर पिण्डिताकार (सीमित) हो जाने, (विद्रधि के) पार्श्व में दबाने पर सुप्तता (शून्यता या वेदना रहितता) होने, दाह आदि कम होने एवं शस्त्र-कर्म में वर्णित लक्षणों को देखकर इसे पका हुआ जानकर इसका भेदन करके व्रण की भाँति चिकित्सा करें[४,५]। आभ्यन्तर विद्रधि को इसी प्रकार से पका हुआ जानकर अथवा पूय के ऊर्ध्व या अधो मार्ग से प्रवृत्त होने पर, उपद्रवों से रक्षा करते हुए दस दिन[५] या १२ दिन[५] तक प्रतीक्षा करनी चाहिए[४,५]।

आभ्यन्तर विद्रधि में पूय का सम्यक् निर्हरण न होने पर चिकित्सा

पूयस्राव सम्यक् प्रकार से न होने या क्लेद होने पर इसके निर्वाहण करने के लिए अम्ल (काँजी), सुरा, आसव, मैरेय या उष्णोदक के साथ वरुणादि गण की औषधियों अथवा मधुशिग्रु (के कल्क या क्वाथ) का पान करें[४,५]।

उन्हीं के (वरुणादि गण की औषधियों अथवा मधुशिग्रु के) मूल से साधित यवागू को यव, कोल एवं कुलत्थ के यूष के साथ खायें[४,५]।

दश दिन के पश्चात् तिल्वक घृत या त्रायमाण घृत के द्वारा बलानुसार शोधन करें (विरेचन दें)[४,५]।

शोधन हो जाने के बाद मधु मिलाकर तिक्तक घृत का अल्प-अल्प मात्रा में (बार बार परन्तु थोड़ी-थोड़ी मात्रा) प्रयोग करें[४,५]।

१. पैत्तिकं शर्करालाजा मधुकः सारिवयुतैः। प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः॥ १०॥
पाक्यैः शीतकषायैर्वा क्षीरैरिक्षुरसैस्तथा। जीवनीयघृतैर्वाऽपि सेचयेच्छर्करायुतैः॥ ११॥
त्रिवृद्धरीतकीनां च चूर्णं लिह्यान्मधुद्रवम्। जलौकोभिहरेच्चासृक् पक्वं चापाट्य बुद्धिमान्॥ १२॥
क्षीरिवृक्षकषायेण प्रक्षाल्यौदकजेन वा। तिलैः सयष्टिमधुकैः सक्षौद्रैः सर्पिषा युतैः॥ १३॥
उपदिह्य प्रतनुना वाससा वेष्टयद् व्रणम्। प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः॥ १४॥
सहरिद्रैः कृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम्। क्षीरशुक्लाप्रथक्पर्णीसमङ्गारोध्रचन्दनैः॥ १५॥
न्यग्रोधादिप्रवालेषु तेषां त्वक्स्वथवा कृतम्। नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च॥ १६॥
सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा। द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी॥ १७॥
प्रियङ्गुः कुशमूलं च निचुलस्य त्वगेव च। मञ्जिष्ठाचन्दनोशीरमुत्पलं सारिवे त्रिवृत्॥ १८॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। दुष्टव्रणप्रशमनं नाड़ीव्रणविशोधनम्॥ १९॥
सद्यश्छिन्नव्रणानां च करञ्जाद्यमिदं शुभम्। (सु० सं० चि० १६/१० से २०)

२. वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते। ऊषकादिप्रतीवापं पिबेद् सुखकरं नरः॥ २८॥
अनयोर्वर्गयोः सिद्धं सर्पिर्वैरेचनेन च। अचिराद् विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितम्॥ २९॥
एभिरेव गणैश्चापि संसिद्धं स्नेहसंयुतम्। कार्यमास्थापनं क्षिप्रं तथैवाप्यनुवासनम्॥ ३०॥
पानलेपनभोज्येषु मधुशिग्रुद्रुमोऽपि वा। दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम्॥ ३१॥
तोयधान्याम्लमूत्रैस्तु पेयो वापि सुरादिभिः। यथादोषगणक्वाथैः पिबेद् वाऽपि शिलाजतु॥ ३२॥
प्रधानं गुग्गुलुं चापि शुण्ठीं च सुरदारु च। स्नेहोपनाहौ कुर्याच्च सदा चाप्यनुलोमनम्॥ ३३॥
यथोद्दिष्टां सिरां विध्येत् ·····। रक्तपित्तानिलोत्थेषु केचिद् बाहौ वदन्ति तु॥ ३४॥ (सु० सं० चि० १६/२८ से ३४)

३. स्वभावत एवामविद्रधिप्रत्यनीको मधुशिग्रुः, कषायपाचनादिषु तस्य तु दोषस्य प्रत्यनीक दोषानतिक्रमेण व्रणहितवायुपित्त-कफहरद्रव्यप्रक्षेपः। ·····। तत्र तोयेन पित्तविद्रधौ, धान्याम्लेन वातविद्रधौ, मूत्रेण कफविद्रधौ। ····· प्रधानं गुग्गुलुं

क्रमशः .....

Scanned with CamScanner

विद्रधि के साथ प्रमेह होने पर चिकित्सा-सूत्र

प्रमेह होने पर प्रमेह की भी चिकित्सा करनी चाहिए[४५]।

Since it is to be treated on the line of *pittaja vidradhi* and is an *antarvidradhi* hence,

..... क्रमशः

महिषाक्षमित्यर्थः। ..... तत्र गुग्गुलुकल्पेन वातिके देवदारु, श्लैष्मिके शुण्ठीति ॥
(सु० सं० चि० १६/३१ व ३३ की डल्हण टीका)

४. आभ्यन्तरे तु विद्रधौ वरणादिक्वाथमूषकादिप्रतीवापं पिबेत्। आभ्यामेव च वर्गाभ्यां विरेचनद्रव्यैश्च पानाय सर्पिः प्रकल्पयेत्। आस्थापनमनुवासनं च। मधुशिग्रुं च पानभोजनलेपनेषु। शिलाह्वयं वा कल्पविधानेनोपयुञ्जीत। गुग्गुलुं वा ॥ ३॥
त्रिफलापिचुमन्दमधुककटुकापटोलानि शाणांशानि। त्रिवृत्त्रायमाणयोः कर्षम्। मसूरपलं चैकमध्यमष्टगुणेऽम्भसि साधयित्वा पूतं रसं घृतमूर्च्छितं पिबेत्॥ तेन विद्रधि.....प्रशाम्यन्ति ॥ ४॥
त्रायमाणाप्रस्थक्वाथे मुस्ताकटुकातामालकीत्रायमाणाचन्दनदुरालभा जीवन्तीवीरोत्पलैः पालिकैर्घृतप्रस्थं क्षीरामलकरसप्रस्थद्वयोपेतं विपक्वं समानं पूर्वेण ॥ ५॥
द्राक्षामधूकखर्जूराभीरुविदारीपरूषकत्रिफलाक्वाथे क्षीरेक्षुधात्रीस्वरससमेतमभयागर्भं सर्पिर्विपाचयेत्। तच्छीतं मधुशर्कराप्रदुग्धं समानं पूर्वेण ॥ ६॥
भृशं च शृङ्गादिभिः शोणितमवसेचयेद्यथासत्रम्। बाहुमध्ये वा शिरां व्यधेत्। पच्यमानं च कोष्ठगतं वहिरुन्नतमुपनाहयेत् ॥ ७॥
तत्रैव च पिण्डिते शूले तत्पार्श्वपीडनेन लब्धसुप्तौ शस्त्रकर्मविधिनिर्दिष्टैश्च चिह्नैः पक्वमुपलक्ष्य भित्त्वा व्रणवत् साधयेत् ॥ ८॥
आभ्यन्तर एव च पक्वमूर्ध्वमधो वा प्रवृत्तं पूयमुपद्रवान् परिरक्षन् उपेक्षेत दशाहमात्रम् ॥ ९॥
असम्यक्त्वहति वा क्लेदे तन्निर्वाहणार्थमम्लसुरासवमैरेयोष्णोदकान्यतमेन वरणादिं मधुशिग्रुं वा पिबेत्। तन्मूलैर्वा कृतां यवागूं यवकोलकुलत्थयूषेण चाश्नीयात्। ऊर्ध्वं च दशाहात्तित्वकघृतेन त्रायमाणघृतेन वा यथाबलं शोधयेत् ॥ १०॥
विशुद्धश्च तिक्तकमल्पमल्पं सर्पिर्मधुनोपेतमुपयुञ्जीत ॥ यथा न नोपैति पाकं तथा प्रयतितव्यम्। शीघ्रविदाहित्वात्तस्य विद्रधिरिति संज्ञा। पक्वे तु पुनर्दैविकी सिद्धिराशुकारितांश्च सर्वामयोध्यो विद्रधिः। सति च प्रमेहे प्रमेहचिकित्सतमोक्षेत ॥ ११॥ (अ० सं० चि० १५/३ से ११)

५. क्षालितं क्षीरितोयेन लिम्पेद्यष्टयमृतातिलैः। पैत्तं घृतेन सिद्धेन मञ्जिष्ठोशीरपद्मकैः ॥ ४॥
पयस्याद्विनिशाश्रेष्ठायष्टीदुग्धैश्च रोपयेत्। न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वा .....॥ ५॥
वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तरस्थिते। ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वद्धि विद्रधौ पिबेत् ॥ ८॥
घृतं विरेचन द्रव्यैः सिद्धं ताभ्यां च पाययेत्। निरूहं स्नेहबस्तिं च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥ ९॥
पानभोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः। दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम् ॥ १०॥
त्रायन्तीत्रिफलानिम्बकटुकामधुकं समम्। त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चात्वारोंऽशाः पृथक् पृथक् ॥ ११॥
मसूरान्निस्तुषादष्टौ तत्क्वाथः सघृतो जयेत्। विद्रधीः.....॥ १२॥
कुडवं त्रायमाणायाः साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ॥ १३॥
कुडवं तद्रसाद्धात्री स्वरसात्क्षीरतो घृतात्। कर्षांऽशं कल्कितं तिक्तात्रायन्तीधन्वयासकम् ॥ १४॥
मुस्तामालकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलम्। पचेदेकत्र संयोज्य तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः ॥ १५॥
द्राक्षामधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी। परूषकाणि त्रिफला तत्क्वाथे पाचयेद्घृतम् ॥ १६॥
क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम्। तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः ॥ १७॥
हरेच्छृङ्गादिभिस्सृक् सिरया वा यथान्तिकम्। विद्रधिं पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरुन्नतम् ॥ १८॥
ज्ञात्वोपनाहयेत् शूले स्थिते तत्रैव पिण्डिते। तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेषु च ॥ १९॥
पक्वः स्याद्विद्रधिं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत्। अन्तर्भागस्य चाप्येतच्चिह्नं पक्वस्य विद्रधेः ॥ २०॥
पक्वः स्रोतांसि सम्पूर्य स यात्यूर्ध्वमधोऽथवा। स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः ॥ २१॥

क्रमशः .....

the drugs prescribed for *pittaja vidradhi* as well as *antarvidradhi* are being enumerated here.

External medicines

i) Either sugar, *lājā* (parched paddy), *madhuka* and *sārivā* or *payasyā*, *uśīra* and *candana* pestled with milk should be anointed, or else unguent prepared with paste of *madhuyaṣṭī*, *amṛtā* and *tila* or else stem bark of *madhuśigru* should be applied.

ii) Irrigation with either decoction or cold percolation of above drugs or milk or sugar-cane-juice or *jīvanīya ghṛta* mixed with sugar or decoction of *kṣīrī* plants should be done.

iii) *Snehana* (oleation), *upanāha* (poultice) and *anulomana* (carmination) should always be used.

iv) Once suppuration has occurred, it should be incised followed by irrigation with the decoction of either *kṣīrī* (latex yielding such as banyan tree etc.) or aquatic plants (lotus etc). After this irrigation it should be anointed with paste of *tila* and *yaṣṭīmadhu* mixed with honey and *ghṛta* then bandaged with thin cloth.

(Drainage of pyometra through laparotomy is seldom done, hence this should be drained through cervix then intrauterine irrigation or instillation of above drugs should be done with the help of uterine cannula, however, in pelvic abscess drainage through bulging point of posterior fornix or pouch of Douglas can be done).

For proper healing of wound following *ghṛtas* should be used—

a) *Ghṛta* prepared with paste of *prapauṇḍarīka*, *mañjiṣṭhā*, *madhuka*, *uśīra*, *padmaka*, and *haridrā* alongwith milk promotes healing of wound.

b) *Ghṛta* prepared with *kṣīraśuklā*, *pṛthakparṇī*, *samaṅgā*, *lodhra*, *candana* and leaves or stem bark of *nyagrodhādi* group of drugs promotes healing.

c) Karañjādya ghṛta— Paste of leaves and unripe fruits of *naktamāla*, leaves of *sumanā*, *paṭola* and *ariṣṭa*, *haridrā*, *dāruharidrā*, wax, *madhuka*, *tiktarohiṇī*, *priyaṅgu*, root of *kuśa*, bark of *nicula*, *mañjiṣṭhā*, *candana*, *uśīra*, *utpala*, *sārivā* (one or both) and *trivṛta* each one *karṣa* should be mixed with one *prastha ghṛta* and cooked. Thus prepared with standard procedure this *karañjādya ghṛta* is beneficial for *duṣṭa vraṇa* (infected or sloughed wound), sinus, fresh wound and wounds caused by crush injury.

d) *Ghṛta* prepared with *mañjiṣṭhā*, *uśīra*, *padmaka*, *payasyā*, both *niśās*, *śreṣṭhā*, *yaṣṭī* and milk should be applied for healing of wound.

e) *Ghṛta* prepared with tender leaves, stem bark and fruits of *nyagrodhādi* group of

..... क्रमशः

दशाहं द्वादशाहं वा रक्षेद्विषगुपद्रवान्। असम्यग्वहति क्लेदे वरुणादिसुखाम्भसा ॥ २२॥
पाययेन्मधुशिग्रुं वा यवागूं तेन वा कृताम्। यवकोलकुलत्थोत्थयूषैश्च रसान्वितैः ॥ २३॥
ऊर्ध्वं दशाहात्त्रायन्तीसर्पिषा तैल्वकेन वा। शोधयेद्बलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत् ॥ २४॥
सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत्। सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलं विद्रधीषु च ॥ २५॥
कषायैर्यौगिकैर्युञ्ज्यात् स्वैः स्वैस्तद्वच्छिलाजतु। पाकं च वारयेद्धलात् सिद्धिः पक्वे हि दैविकी ॥ २६॥
अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते। सति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम् ॥ २७॥ (अ० ह० चि० १३)

Scanned with CamScanner

drugs should be applied for healing of wound.

Oral medicines

i) Powdered *trivṛt* and *harītakī* mixed with honey should be licked.

ii) Lukewarm decoction of *varuṇādi* group of drugs mixed with powdered *ūṣakādi* group of drugs should be given in a case of *apakwa antarvidradhi* (non-suppurated internal abscess).

iii) *Ghṛta* prepared with the drugs of *ūṣakādi, varuṇādi* and *virecanīya* group if used daily in the morning hours cures abscess very quickly.

iv) Use of stem-bark of *madhuśigru* in the form of tisane and diet mixed with drugs on the basis of vitiation of specific *doṣa* is beneficial in non-suppurated abscess, or else the drugs capable of suppressing *vāta* etc. dominant *doṣa* should be mixed while preparing the decoction.

v) Use of powdered *madhūśigru* with water in *pittaja vidradhi,* with *kāñjī* in *vātaja vidradhi,* with cow's urine in *kaphaja vidradhi* or with wine is beneficial or else *śilājatu* should be used with the decoction prepared with the drugs capable of suppressing specific *doṣa.*

vi) *Pradhāna (mahiṣākṣa) guggulu* should be used with *śuṇṭhī* in *kaphaja vidradhi* and with *suradāru* in *vātika vidradhi* or else only *guggulu* can be used.

vii) Use of decoction of *triphalā, picumanda, madhuka, kaṭukā, paṭola* each one *śāṇa, trivṛt* and *trāyamāṇa* each one *karṣa* and *masūra* one *pala,* mixed with *ghṛta* cures abscess, or else decoction of *trāyantī, triphalā, nimba, kaṭukā* and *madhuka* each one part, roots of *trivṛt* and *paṭola* each four parts and husk free *masūra* eight parts mixed with *ghṛta* should be used.

viii) Decoction of *trāyamāṇa* one *prastha,* pestled *mustā, kaṭukā, tāmalakī, trāyamāṇa, candana, durālabhā, jīwantī, vīrā* and *utpala* each one *pala, ghṛta,* milk and juice of *āmalakī* each one *prastha* should be taken and *ghrta* prepared. This is also beneficial in abscess.

ix) *Ghṛta* should be prepared with the decoction of *drākṣā, madhūka, kharjūra, ābhīru, vidārī, parūṣaka* and *triphalā* mixed with milk, juice of sugar-cane and *āmalakī* and pestled *abhayā.* When this *ghṛta* is cooled it should be mixed with honey and sugar in $^1/_4^{th}$ quantity of *ghṛta.* This *ghṛta* is also beneficial.

Anuwāsana and āsthāpana basti (uncting and evacuative enema)

Anuwāsana (uncting) and *āsthāpana* (evacuative) *basti* (enemas) prepared with the decoction of *varuṇādi, ūṣakādi* and *virecanīya* group of drugs mixed with fat (oil) should be used.

Bloodletting or venesection

Bloodletting should be done either with leeches or horn. In *raktaja* and *pittaja vidradhi* venesection of vein of middle arm (cubital vein) should be done.

Indication for use of poultice

In the abscess of *koṣṭha* (abdomen) in which suppuration has just begun and it is protruding out side, poultice should be applied.

Prevention of suppuration of abscess and effect of suppuration

All-out efforts should be made that the abscess does not suppurate, since it has the tendency of getting *vidāhī* (suppurated), hence, is termed as *vidradhi.* Once it is suppurated, treatment (result) is at the mercy of god. In comparison to other diseases the treatment of this disease should be started very quickly.

Examination of abscess for its suppuration and method of its drainage

When pain is localized, there is no pain on pressure around the abscess, burning sensation etc, have decreased and other clinical features suitable for instrumental interference have appeared, then the abscess should be incised and future treatment done like a wound.

In a case of *antarvidradhi* (internal abscess) after knowing about its suppuration by above clinical features or else when the pus is draining through upper or lower orifices, one should wait for ten or twelve days protecting the patient from complications.

Treatment of incompletely drained internal abscess

In a case of incomplete drainage of pus or presence of *kleda* (moisture), decoction of paste of *varaṇādi* group of drugs or *madhuśigru* should be given with any one out of *kāñjī, surā, āsava, maireya* or hot water for its proper drainage.

Rice gruel prepared with the decoction or paste of roots of above drugs (drugs of *varaṇādi* group or *madhuśigru)* mixed with soup of *yava, kola* and *kulattha* should be given.

After ten days giving due consideration to strength of the patient, *śodhana* (cleansing/ laxation) should be done with *tilwaka* or *trāyamāṇa ghṛta.*

After this purification *tiktaka ghṛta* mixed with honey should be given repeatedly in small quantity.

Principles of treatment of vidradhi associated with prameha

In a case of abscess associated with *prameha* (diabetes) treatment of *prameha* should also be done.

सूतिकाज्वर *(Sūtikājwara or puerperal fever)*

ज्वर का महत्व *(Importance of fever)*

सर्वेषामेव रोगाणां ज्वरः कष्टतमो मतः । तस्यादौ विधिं वक्ष्ये निदानाकृतिभेषजैः ॥ ३८॥
(का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

सभी व्याधियों में ज्वर सबसे अधिक कष्टदायी होता है अतः सर्वप्रथम ज्वर का निदान, स्वरूप तथा औषधि का वर्णन करूँगा।

As the fever is most troublesome in comparison to all other disorders, hence its etiology, clinical features and treatment would be described first.

ज्वर के भेद *(Classification of fever)*

षड्विधस्तु प्रसूतानां नारीणां जायते ज्वरः। निजागन्तुविभागेन निदानं तस्य मे शृणु॥ ३९॥
(का० सं० खि० ११)

निज (वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज) तथा आगन्तुज (स्तन्योत्थ एवं ग्रहोत्थ) के विभाग से प्रसूता स्त्रियों को ६ प्रकार के ज्वर होते हैं अब उनका निदान मुझसे सुनो।

The puerperal woman suffers from six types of fevers classified under *nija* (endogeneous i.e. *vātaja, pittaja, kaphaja* and *sannipātaja*) and *āgantuja* (exogenous i.e. *stanyottha* and *grahottha*) two major groups.

ज्वर के निदान *(Etiology of fever)*

अ) सामान्य निदान *(General etiology)*

स्त्रीणां च विषमप्रजननात् प्रजातानां च मिथ्योपचारात् यथोक्तानां च हेतूनां मिश्रीभावाद्यथानिदानं द्वन्द्वनामन्यतमः सर्वे वा त्रयो दोषा युगपत् प्रकोपमापद्यन्ते, ते प्रकुपितास्तयैवानुपूर्व्या ज्वरमभिनिर्वर्तयन्ति॥
(च० सं० नि० १/२८)

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः। (सु० सं० उ० ३९/२२)
वेगसन्धारणाद्रौक्ष्याद् व्यायामदत्यसूक्ष्यात्। शोकादत्यग्निसन्तापात् कट्वाम्लोष्णातिसेवनात्॥ ४०॥
दिवास्वप्नात् पुरोवाताद् गुर्वभिष्यन्दिभोजनात्। स्तन्यागमाद् ग्रहबाधादजीर्णाद्दुष्प्रजायनात्॥ ४१॥
ज्वरः संजायते नार्याः षड्विधो हेतुभेदतः॥ ४२॥ (का० सं० खि० ११)

महर्षि चरक ने द्वन्द्वज एवं सान्निपातिक ज्वर के निदानान्तर्गत लिखा है कि स्त्रियों में सामान्य रूप से प्रसव न होने अथवा प्रसव के बाद अनुचित आहार-विहार करने एवं पूर्वोक्त कारणों (दोष प्रकोपक विशिष्ट कारणों) के मिश्रित होने से निदानानुसार दो-दो या तीनों दोष एक साथ प्रकुपित हो उसी प्रकार का ज्वर उत्पन्न कर देते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने आगन्तुज ज्वर के निदानान्तर्गत लिखा है कि असामान्यरूप से प्रसूता या सामान्य रूप से प्रजाता स्त्री को अहित सेवन से ज्वर हो जाता है।

महर्षि काश्यप का कथन है कि वेगों को धारण करने, रुक्षता, (रुक्ष आहार एवं विहार से), व्यायाम, अत्यधिक रक्तस्राव; शोक, अग्नि के अत्यधिक संताप (के सेवन), कटु, अम्ल एवं उष्ण के अतिसेवन, दिवा-स्वप्न, पुरोवात (पूर्व की ओर से आने वाली वायु का)-सेवन, गुरु एवं अभिष्यन्दी भोजन, स्तन्यागमन, ग्रहबाधा, अजीर्ण तथा प्रसव में कठिनाई या असामान्य प्रसव होने से स्त्रियों में हेतु-भेद के अनुसार ६ प्रकार का ज्वर होता है।

The woman either having abnormal delivery or using non-congenial diet after normal delivery suffers from fever, is the opinion of Caraka and Suśruta given while describing causes of fever due to two or three *doṣas* and *āgantuja* fever.

Kāśyapa says that due to suppression of natural urges, dryness (use of fat free diet or other dry measures), exercise (excessive), excessive haemorrhage (PPH), grief, use of excessive heat of fire, excessive use of bitter, sour and hot articles, day sleeping, use of wind blowing from eastern side, consumption of heavy and *abhiṣyandī* (moisture producing) diet, appearance of milk in the breasts, affliction by *grahas*, indigestion and difficult or abnormal labour the puerperal woman suffers from six types of fevers.

आ) सूतिका के सान्निपातिक ज्वर के कारण *(Causes of sānnipātika puerperal fever)*

स एव पूर्वरूपेषु व्यभिचीर्णो विरोधिभिः॥ ४२॥
संसृष्टैः स्नेहशीताम्बुस्नानपानाशनादिभिः। सन्निपातज्वरो घोरो जायते दुरुपक्रमः॥ ४३॥
(का० सं० खि० ११)

इन्हीं पूर्वरूपों के साथ (पूर्वोक्त कारणों के साथ) विरोधी वस्तुओं का संयोग होने, स्नेह एवं स्नान, पान तथा अशन आदि में शीताम्बु का प्रयोग किए जाने से कठिनता से चिकित्सा करने योग्य घोर सन्निपात ज्वर हो जाता है।

तीनों दोषों के प्रकोप के सामान्य कारणों के वर्णन के अन्तर्गत लिखा है कि प्रसूता स्त्री में मैथुन, विषमाशन, प्रजागरण (रात्रिजागरण), दिवास्वप्न, चिन्ता, ईर्ष्या, लौल्य (जिह्वा-लौल्य) एवं कर्शन तथा दुष्प्रजाता में अनेकों प्रकार के व्यभिचार से तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं एवं ज्वरादि अनकों रोगों को उत्पन्न कर कष्ट देते हैं। सभी दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने के कारण ये व्याधियाँ दुश्चिकित्स्य होती हैं[1]।

Alongwith above mentioned causes if one uses incompatible things or articles contrary to each other in qualities, fats or unctuous substances and cold water in the form of bath, drink and with diet, then suffers from severe *sannipātaja jwara.*

While describing general etiology of vitiation of all the three *doṣas*, Kāśyapa says that if puerperal woman indulges in coitus, consumes incompatible or abnormal eadibles, does night awakening, day-sleeping, worry, jealousy, greed, and uses non-satiating (emaciating) measures, or the woman having undergone abnormal/difficult labour, does various types of abnormal acts, then all the three *doṣas* get vitiated and produce fever etc. various disoders, which are difficult to cure.

इ) प्रसूता में ज्वरोत्पादक दोषों के प्रकोप का कारण *(Factors responsible for vitiation of doṣas which produce fever in a puerperal woman)*

तस्या तीव्राभिरावीभिः प्रततं वाहनश्रमैः। शैथिल्यं चागते देहेसंक्षुब्धेष्वनिलादिषु॥ ४४॥
क्लान्तेष्विन्द्रियमार्गेषु सारशून्येषु धातुषु। एकोऽपि दोषः कुपितः कृच्छ्रतो वहते महत्॥ ४५॥
परिजीर्णं यथा वस्त्रं मलदिग्धं समन्ततः। क्लेशेन शोध्यते तज्ज्ञैः प्रदृश्य तत्तदाश्रयम्॥ ४६॥
तथा शरीरं सूतायाः परिक्लिष्टं परिस्रुतम्। भृशं दोषबलैर्दिग्धं क्लेशेन परिशोध्यते॥ ४७॥
यथा च जीर्णे भवनं सर्वतः श्लथबन्धनम्। वर्षावातविकम्पानामसहं स्यात्तथाविधम्॥ ४८॥
तथा शरीरं सूतायाः खिन्नं प्रस्रवणश्रमैः। वातपित्तकफोत्थानां व्याधीनामसहं भवेत्॥ ४९॥
दोषैरेव शरीराणि धार्यन्ते सर्वदेहिनाम्। तेषु क्षीणेषु सूताया ज्वरः संतापलक्षणः॥ ५०॥
देहं सन्तापयत्याशु शुष्केन्धनमिवानलः॥ ५१॥ (का० सं० खि० ११)

१. शीतोपचारात् सूतानां मैथुनाद्विषमाशनात्। प्रजागराद्दिवास्वप्नाच्चिन्तेर्ष्यालौल्यकर्शनात्॥ १३॥
तथा दुःखप्रजातानां व्यभिचारात् पृथग्विधात्॥ १४॥
त्रयो द्वोषाः प्रकुप्यन्ति ·····॥ १८॥
ततो ज्वरादयो रोगाः पीडयन्ति भृशं नरम्। सर्वदोषविरोधाच्च दुश्चिकित्स्यो महागदः॥ १९॥ (का० सं० कल्प० ८)

Scanned with CamScanner

उस स्त्री के लगातार तीव्र आवियों के संवहन करने के श्रम के कारण शरीर में शिथिलता आ जाने, वायु आदि दोषों के संक्षुब्ध हो जाने, इन्द्रिय-मार्ग (इन्द्रियों के कार्य) के क्लान्त हो जाने एवं शरीर की धातुओं के सार-शून्य (रक्त-स्राव के कारण) हो जाने के कारण एक भी दोष प्रकुपित हो जाने पर अत्यधिक कष्ट देता है।

जिस प्रकार चारो ओर से मल से आच्छादित जीर्ण वस्त्र ज्ञानी के द्वारा उसके आश्रय को देखते हुए बहुत ही कठिनता से शुद्ध (स्वच्छ) होता है (अर्थात् असम्यक् विधि से शोधन करने से मल का आश्रय या कपड़ा ही फट जायगा) उसी प्रकार प्रसूता स्त्री का शरीर अत्यन्त कष्ट प्राप्त किए हुए एवं परिस्रुत (रक्त के निकल जाने) होने के कारण तथा दोषों के अत्यधिक बल (विकृति) तथा दिग्धता के (शरीर में चिपके हुए होने) के कारण कठिनता से शुद्ध किया जा सकता है।

जिस प्रकार पुराना मकान चारो ओर के बन्धन शिथिल हो जाने के कारण वर्षा, वायु एवं कम्प आदि को सहने में असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार प्रसूता स्त्री का शरीर प्रसव के श्रम एवं (रक्त के) स्राव के कारण वात, पित्त एवं कफोत्थ व्याधियों को सहन कर सकने में असमर्थ होता है।

सभी प्राणियों के शरीर को दोष ही धारण करते हैं उनके क्षीण होने पर प्रसूता स्त्री को संताप (उष्णता) लक्षण वाला ज्वर हो जाता है और वह शरीर में उसी प्रकार शीघ्र ही सन्ताप उत्पन्न कर देता है जिस प्रकार शुष्क इन्धन में अग्नि।

As the body of puerperal woman becomes languid due to over exertion caused by continuous strong labour pains, *vāta* etc. *doṣas* are irritated, *indriyas* (conative and cognitive organs) are exhausted and *dhātus* have loss of their *sāra* (essence) due to haemorrhage, hence even if one *doṣa* gets aggravated it gives too much trouble.

As it becomes very difficult even for a expert person to clean an old extremely dirty cloth, because it gets tattered with slightest negligence, similarly it becomes very difficult to cleanse (purify) the body of puerperal woman, because due to haemorrhage the *doṣas* are too much aggravated and adhered to the body parts.

As an old house can not withstand rain, wind and tremors due to looseness of its bonds, similarly the puerperal woman is unable to tolerate the diseases caused by *vāta, pitta* or *kapha* due to exhaustion of labour and blood loss.

The *doṣas* sustain the body. In case of their decline the puerperal woman suffers from fever characterized with rise in temperature. The temperature shoots very quickly in the same way as the dry wood catches fire.

***ई) ज्वर के बल को बढ़ाने के कारण** (The causes of increase or aggravation of fever)*

शीतोपवासे व्यायामायासमहिताशनम्। तद्धेतुसेवनं चैव क्षिप्रं ज्वरबलावहम् ॥७६॥
(का० सं० खि० ११)

शीत; उपवास, व्यायाम, थकावट, अहित भोजन तथा ज्वरोत्पादक निदानों का सेवन करने से ज्वर के बल में शीघ्र ही वृद्धि हो जाती है।

Due to use of cold articles, fasting, exercise, tiredness, consumption of non-congenial food and use of other things capable of causing fever, the virulence of fever increases immediately.

***लक्षण** (Clinical features)*

अतः परं ज्वराणां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते। (का० सं० खि० ११/५४)

अब ज्वरों के लक्षण कहे जाएंगे।

Now the clinical features of different types of fevers would be described.

***अ) वातज्वर के लक्षण** (Clinical features of fever due to vāta)*

विषमोष्माऽङ्गमर्दश्च जृम्भथू रोमहर्षणम् ॥५४॥
कषायविरसास्यत्वं शीतद्वेषोष्णकामते। दन्तहर्षः प्रलापश्च शुष्कोद्गारः प्रजागरः ॥५५॥
आध्मानमङ्गसङ्कोचो वातज्वरनिदर्शनम् ॥५६॥ (का० सं० खि० ११)

विषम ऊष्मा (शरीर के किसी स्थान में अधिक किसी में कम उष्णता या क्षण में अधिक क्षण में कम ताप); अङ्गमर्द, जृम्भा, रोमहर्ष, मुख में कषाय स्वाद या विरसता, शीत पदार्थों से द्वेष, उष्ण पदार्थों की इच्छा, दन्तहर्ष, प्रलाप, सूखे उद्गार (बिना वमन के), प्रजागरण (निद्रानाश), आध्मान तथा अङ्गों में संकोच आदि वातजन्य (सूतिका) ज्वर के लक्षण हैं।

Irregular temperature (sometimes or in some body parts low, sometimes or in other body parts very high), bodyache, yawning, horripilation, tastelessness or astringent taste of mouth, disliking for cold and desire for hot articles, morbid sensitiveness of the teeth, delirium, dry eructation (without association of vomiting), insomnia, flatulence and feeling of contraction/spasm of body parts etc. are the clinical features of fever due to *vāta.*

***आ) पित्तज्वर के लक्षण** (Clinical features of fever due to pitta)*

तृष्णा दाहः प्रलापश्च वमथुः कटुकास्यता ॥५६॥
पीतास्यनखदन्ताक्षिविण्मूत्रत्वं च लक्ष्यते। कण्ठस्य शोषः सर्वं च प्रदीप्तमिव मन्यते ॥५७॥
भ्रमः शीताभिलाषश्च पित्तज्वरनिदर्शनम् ॥५८॥ (का० सं० खि० ११)

तृष्णा, दाह, प्रलाप, वमन, मुख का कडुआपन, मुख, नख, दन्त, अक्षि, मल तथा मूत्र का पीला दिखाई देना, कण्ठ का सूखना, सभी कुछ जलता हुआ प्रतीत होना, भ्रम तथा शीताभिलाषा आदि पित्तज्वर (सूतिका) के लक्षण हैं।

Thirst, burning sensation, delirium, vomiting, bitter taste of mouth, yellow appearance of face, nails, teeth, eyes, feces and urine, dryness of throat, feeling as if every thing is burning, giddiness, and desire for cold things are the clinical features of fever due to *pitta.*

***इ) श्लेष्मज्वर के लक्षण** (Clinical features of fever due to śleṣmā)*

उष्णाभिकामता कासः शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥५८॥
मन्दोष्मता प्रतिश्यायः शुक्लमूत्रपुरीषता।
निद्रा तन्द्रीर्हिमद्वेषः (तन्द्रा हिमद्वेषः-शु०पा०) ष्ठीवनं मधुरास्यता ॥५९॥
गात्रसादोऽन्नविद्वेषः कफज्वरनिदर्शनम् ॥६०॥ (का० सं० खि० ११)

उष्ण पदार्थों की इच्छा, कास, शिरःशूल, शरीर में भारोपन, मन्द ऊष्मा (अपेक्षाकृत कम तापमान वृद्धि), प्रतिश्याय, मूत्र एवं पुरीष की श्वेतता, निद्रा, तन्द्रा, शीत-विद्वेष (शीत पदार्थों की अनिच्छा), ष्ठीवन, मुख में मीठेपन की अनुभूति, गात्र-साद तथा अन्न-विद्वेष आदि कफज्वर के लक्षण हैं।

Liking for hot things, cough, headache, heaviness of body, comparatively low grade

Scanned with CamScanner

temperature. coryza, white colouration of urine and feces, sleepiness, drowsiness, dislike for cold articles, repeated spitting, sweet taste of mouth, exhaution of body, hatred for food etc. are clinical features of fever due to *kapha*.

ई) सान्निपातिक ज्वर के लक्षण (Clinical features of fever due to sannipāta or all the three doṣas)

महुः शीतं मुहुर्दाहो मुहुरूष्मा समोऽसमः ॥ ६०॥
कृच्छ्रविण्मूत्रवातत्वं वाताङ्गान्त्राभिसङ्जनम् (वातादान्त्राभिसङ्जनम् शु० पा०)।
दाहस्तृष्णाग्रलापश्च पित्ताद्विक्षिप्तचित्तता ॥ ६१॥
गुरुत्वं कण्ठसंरोधः कफाच्च प्रतिशीतता (परिशीतता शु० पा०)।
सन्निपातज्वरस्यैतान्लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ६२॥ (का० सं० खि० ११)

क्षण में शीत, क्षण में दाह, क्षण में ऊष्मा (शरीर में) तथा कभी सम एवं कभी विषम अग्नि; वायु के कारण मल, मूत्र तथा वायु के निकलने में कठिनाई एवं आन्त्रों में पीड़ा; पित्त के कारण दाह, तृष्णा, प्रलाप तथा चित्त की विक्षिप्तता; कफ के कारण गुरुत्व, कण्ठ-संरोध तथा सर्दी लगना आदि सन्निपात ज्वर के लक्षण कहे गए हैं।

In a moment feeling of coldness while at other the burning sensation, frequent rise and fall in temperature, sometimes normal sometimes abnormal *agni* (fever and digestive power); difficulty in excretion of feces, urine and flatus alongwith pain in abdomen due to vitiation of *vāyu*; due to vitiation of *pitta* burning sensation, thirst, delirium and unstabiliy of mind; heaviness, feeling of obstruction in throat and shivering etc. due to vitiation of *kapha* are the clinical features of fever due to *sannipāta* or all the three *doṣas*.

उ) स्तन्योत्पत्ति जन्य ज्वर के लक्षण (Clinical features of milk fever)

स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रवर्तते। (सु० सं० उ० ३९/२२)
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा नार्याः स्तन्यं प्रवर्तते। पयोवहानि स्रोतांसि संवृतान्यभिधट्टयेत् ॥ ६३॥
करोति स्तनयोः स्तम्भं पिपासां हृदयद्रवम्। कुक्षिपार्श्वकटीशूलमङ्गमर्दं शिरोरुजाम् ॥ ६४॥
एतत् स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणम्। स हि पीयूषसंशुद्धौ क्रममात्रेण तिष्ठति ॥ ६५॥
(का० सं० खि० ११)

महर्षि सुश्रुत ने सामान्य ज्वर के वर्णन के अन्तर्गत लिखा है कि स्त्रियों को स्तन्य के अवतरण के समय दोषों के (विकार के) कारण ज्वर हो जाता है।

(प्रसवोपरांत) तीसरे या चौथे दिन स्त्रियों को स्तन्य की प्रवृत्ति होती है। (वह स्तन्य) स्तन्यवह स्रोतसों को प्राप्त होकर प्रभाव डालता है (स्रोतसों का अवरोध करता है) तथा स्तनों में स्तम्भ, पिपासा, हृदयद्रव (हृदयगति का तीव्र होना), कुक्षि, पार्श्व एवं कटि में शूल, अङ्गमर्द, शिरःशूल आदि उत्पन्न करता है, ये स्तन्य के आगम के कारण उत्पन्न ज्वर के लक्षण हैं। दुग्ध के शुद्ध हो जाने पर (निकल जाने पर) वह ज्वर क्रमशः शान्त हो जाता है।

Suśruta has included appearance of milk in the breasts as a causative factor in the description of fever in general.

Kāśyapa opines that on third or fourth day the milk starts appearing in the breasts. This milk reaches the *stanyavahasrotasa* (breasts), influences them and produces stiffnes of breasts, thirst, *hrdayadrava* (tachycardia), pain in abdomen, flanks and sacral region, bodyache and headache. These are the symptoms of milk fever. The fever subsides as soon as the milk is properly drained.

ऊ) ग्रहोत्थ ज्वर के लक्षण (Clinical features of fever caused by grahas)

ग्रहावलोकितत्रासवाताघातावधूननैः। ज्वर्यते चेत् प्रसूता स्त्री तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ६६॥
उद्वेपको निष्टननं चक्षुषो विभ्रमः श्रमः। कम्पनं हस्तनेत्राणां हारिद्रमुखनेत्रता ॥ ६७॥
क्षणेन श्यावताऽङ्गानां क्षणेन च सवर्णता। सुप्रबोधः सह ''' ''' क्रोशः केशलुञ्चनम् ॥ ६८॥
पवनज्वररूपाणि भूयिष्ठानि करोति च। विधिर्ग्रहघ्नोऽस्य हितः क्रमो यश्चानिलज्वरे ॥ ६९॥
(का० सं० खि० ११)

ग्रहों के देखने, भय, वात, आघात अथवा कम्पन से जो प्रसूता स्त्री को ज्वर हो जाता है उसके लक्षण कहूँगा-

उद्वेपन (पूरे शरीर का कँपना), चिल्लाना या दीर्घ श्वास लेना, नेत्र-विभ्रम, थकावट, हाथों एवं नेत्रों में कम्प, मुख तथा नेत्र का पीला हो जाना, क्षण में अङ्गों में श्यामता एवं दूसरे ही क्षण सामान्य वर्ण का हो जाना, भलीभाँति ज्ञान रहते हुए भी चिल्लाना एवं केश नोचना तथा अन्य वातज्वर के लक्षणों से विशिष्ट रूप से आक्रान्त होती है। इसमें ग्रह नाशक तथा वातज्वर-नाशक विधि हितकर है।

Clinical features of fever arising due to sight (effect) of *grahas*, fear, *vāta*, trauma and shaking or trembling are as follows—

Tremors of whole body, crying or deep breathing, abnormal visual perception, tiredness, tremors/twitching of hands and eyes, yellowishness of face and eyes, quick alteration in body complexion into blackness or normal colour, inspite of full consciousness crying and plucking of hair and other features of fever caused by *vāta* are the clinical features of fever caused by *grahas*. In this disease measures to pacify *grahas* and other treatment prescribed for fever due to *vāta* should be used.

चिकित्सा (Treatment)

चिकित्सा-सिद्धान्त (Principles of treatment)

१) सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त (General principle of treatment)

तद्धेतुमात्रवृद्धानां दोषाणां तु यथोच्छ्रयम् ॥ ५१॥
कुर्यादुपशमं धीमान् धातूनां च प्रसादनम् ॥ ५२॥
स्वेदोऽपतर्पणं युक्त्या पाचनौषधसेवनम्। कषायोऽभ्यञ्जनं सर्पिर्ज्वरघ्नं परमो विधिः ॥ ७५॥
(का० सं० खि० ११)

बुद्धिमान् (वैद्य) साधारण कारणों से भी बढ़े हुए दोषों का वृद्धि के अनुसार उपशमन करे तथा धातुओं का प्रसादन करे।

युक्तिपूर्वक प्रयोग किया गया स्वेद, अपतर्पण (लंघन), पाचन औषधियों का सेवन, कषाय-प्रयोग, अभ्यञ्जन एवं सर्पि-प्रयोग ज्वर को नाश करने की विशिष्ट विधि है।

अन्यत्र आचार्य ने वातादि दोषों के बल के क्षीण होने के कारण शोधन होने में कठिनाई का वर्णन किया है[1]।

The wise physician should pacify the *doṣas* vitiated due to even very simple reason, giving due consideration to the quantum of aggravation and should also purify or gratify the *dhātus*.

१. का० सं० खि० ११/४७ (पृ० ५८७, ५८८)

Scanned with CamScanner

Methodically used sudation, fasting, use of digestive drugs or measures, drugs, decoctions, massage and *ghṛta* cure fever.

Difficulty in cleansing the body due to decreased strength of *doṣas* has been described earlier (page 588).

२) श्लेष्माभिष्यन्दी आदि स्त्री के ज्वर में चिकित्सा सूत्र (Principles of treatment of woman having abhiṣyanda i.e. moisture due to kapha etc.)

श्लेष्माभिष्यन्दिनीं स्थूलामक्लिन्नामल्पनिःस्रुताम्। विदग्धभक्तां स्निग्धां च लङ्घनेनोपपादयेत्॥७०॥
लङ्घितायाश्च मण्डादिः·····॥७२॥ (का० सं० खि० ११)

श्लेष्मा (के प्रकोप) के कारण अभिष्यन्दी, स्थूल (अधिक), आम के क्लेद से युक्त, अल्प निःस्रुता (जिसे रक्त का स्राव अधिक न हुआ हो), विदग्धभक्ता (जिसका भोजन पचता न हो या विदग्ध हो जाता हो) तथा स्निग्ध स्त्री की लंघन के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। लंघन कराने के बाद मण्डादि का प्रयोग करना चाहिए।

The puerperal woman suffering from fever and having *abhiṣyanda* (excessive moisture) due to vitiation of *kapha*, obesity, moisture due to *āma*, and who has not bled much, whose food does not get digested and has unctuous body should be treated with fasting. After observance of fasting scum of boiled rice should be prescribed.

३) रुक्ष आदि शरीर की सूतिका का चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of woman having dry body etc.)

रूक्षां निःस्रुतरक्तां च कृशां वातज्वरार्दिताम्। क्षुत्तृष्णाभिहतां क्लान्तां शमनेनोपपादयेत्॥७१॥
तस्यास्तदहरेवेह पेयादिः क्रम इष्यते। लङ्घितायाश्च मण्डादित्येष द्विविधः क्रमः॥७२॥
(का० सं० खि० ११)

रुक्ष शरीर वाली, जिसको रक्त स्राव (अत्यधिक) हुआ हो, कृश, वातज्वर से पीड़ित, भूख-प्यास से आक्रान्त तथा क्लान्त स्त्री की शमन (औषधियों) द्वारा चिकित्सा करें। उसे उसी दिन से पेयादि क्रम से भोजन करायें।

लंघन कराई गई स्त्री को मण्डादि क्रम से पथ्य दें। यह दो प्रकार का क्रम (पथ्य) वर्णित है।

The woman whose body is dry, has bled profusely, is emaciated, suffering from fever due to *vāta*, hungry, thirsty and exhuasted should be treated with pacifying or suppressive measures and be prescribed diet from the same day following *peyādi krama* (specific sequence of diet i.e. first liquid, then semisolid then solids etc.).

The woman who has been fasting should be given scum of boiled rice etc. in serial order.

४) पेयादि प्रयोग की उपादेयता (Benefits of peyā or tisane and maṇḍa or scum etc)

पेया हि दीपयत्यग्निं धातून् संशमयत्यपि। गर्भदोषावशेषघ्नो मण्डो दोषविपाचनः॥७३॥
तस्मात् पेया च मण्डश्च क्रमादौ विहितौ हितौ। अकृतञ्च कृतश्चैव द्विस्त्रिर्यूषरसौ तथा॥७४॥
(का० सं० खि० ११)

पेया अग्नि को दीप्त करती है, धातुओं का संशमन करती है, विशेष कर गर्भ-दोषों का नाश करती है, मण्ड दोषों का पाचन करता है, अतः पेया एवं मण्ड का क्रम से प्रारम्भ में प्रयोग हितकर माना गया है तथा दो-तीन दिन तक अकृत (असंस्कृत) तथा कृत (संस्कृत) यूष एवं मांसरस का प्रयोग करना चाहिए।

The *peyā* (tisane) inhances the digestive fire, pacifies the *dhātus*, specially removes the *garbha-doṣas* (abnormalities caused by fetus or delivery). The *maṇḍa* (scum of boiled rice) digests the *doṣas*. Due to these reasons initial use of *peyā* and *maṇḍa* is said to be beneficial. For two or three days medicated or non-medicated soups (of cereals) and meat-soups should also be prescribed.

५) कषाय-प्रयोग का काल (Period of use of decoctions)

संसर्गपाचिते दोषे ज्वरे च मृदुतां गते। पञ्चाहात् सप्तरात्राद्वा कषायमवचारयेत्॥८३॥
पाचनीयं तु पञ्चाहात् सप्ताहादानुलोमिकम्॥८४॥ (का० सं० खि० ११)

संसर्ग से (संसर्जन क्रम में पेयादि प्रयोग से) दोषों का पचन हो जाने पर तथा ज्वर के मृदु हो जाने पर पाँच या सात दिन के बाद कषाय का प्रयोग करें। पाँच दिन के बाद पाचनीय तथा सात दिन के बाद अनुलोमक (कषाय) का प्रयोग करना चाहिए।

Once with *saṃsarjana krama* (regulated use of diet i.e. liquid-semisolid-solid or *peyā-maṇḍa-vilepī* etc.) the *doṣas* are digested (*āma* is digested) and fever has decreased, then after five days digestive and after seven days *anulomaka* (carminative or excretory) decoctions should be used.

६) कफपित्त ज्वर का चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of fever due to kapha with pitta)

कफपित्तज्वरे दद्यात् पञ्चाहे शमनौषधम्॥८४॥
स्वभावतैक्ष्ण्यादल्पेन कालेन परिपच्यते। दुर्बलत्वाच्च धातूनां च्युतत्वादामयस्य च॥८५॥
(का० सं० खि० ११)

कफपित्त ज्वर में पाँचवें दिन संशमन औषधि का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि स्वभाव (औषधियों के स्वभाव) से तीक्ष्णता, धातुओं के दुर्बल तथा व्याधि के (विशेषकर आमदोष के) च्युत होने के कारण (घटने के कारण) दोष अल्प-काल में ही पच जाते हैं।

In *kaphapittaja* fever pacifying drugs should be used from fifth day. Due to sharpness of action of drugs, weakness of *dhātus* and decline in disease specially *āma doṣa*, the *doṣas* get digested in very short time.

७) वातज्वर का चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of fever due to vāta)

वातज्वरे जितेऽभ्यङ्गैस्तथैव रसभोजनैः। पक्वाशयस्थे विमले विदग्धादानुलोमिकम्॥८६॥
भोजयेल्लघु चान्नं तनुभिर्जाङ्गलैः रसैः॥८७॥ (का० सं० खि० ११)

वातज्वर के अभ्यङ्ग एवं रस (मांसरस) के भोजन से शान्त हो जाने तथा पक्वाशयस्थ दोषों (वायु) के विमल (शान्त) हो जाने पर आनुलोमिक कषाय तथा लघु अन्न को जाङ्गल प्राणियों के पतले मांसरस के साथ भोजन के लिए देना चाहिए।

Once the fever due to *vāta* is pacified by use of massage and meat-soup and *doṣas* situated in *pakwāśaya* (large bowel) are suppressed, the *ānulomika* (carminative) decoctions should be used. Light cereals mixed with liquid meat soup of wild animals should be prescribed in diet.

Scanned with CamScanner

८) वातपित्तात्मक ज्वर का चिकित्सा सूत्र (Principles of treatment of fever due to vāta with pitta)

यश्च नैवं शमं याति वातपित्तात्मको ज्वरः ॥ ८७॥
सर्पिस्तं शमयेदाशु दावाग्निमिव तोयदः । विमलेऽग्नौ मृदौ (व्याधौ) सर्पिरेव परायणम् ॥ ८८॥
स्नेहवध्यास्तु भूयिष्ठं व्याधयो दुष्प्रजातयः ॥ ८९॥ (का० सं० खि० ११)

जो उपर्युक्त विधि से शान्त न हो वह वातपित्तात्मक ज्वर होता है, उसे घृत (प्रयोग) उसी प्रकार शीघ्र ही शान्त कर देता है जिस प्रकार बादल दावाग्नि को।

अग्नि के विमल (शुद्ध) होने तथा व्याधि के मृदु होने पर घृत ही मुख्य औषधि है। दुष्प्रजाता की व्याधियाँ अधिकांशतः घृत प्रयोग से शान्त होती हैं।

The fever which is not cured with above described measures is due to *vāta* and *pitta* together. It gets cured with the use of *ghṛta* in the same way as fire of forest subsides with rain.

Once the digestive fire gets purified and disease subsides, use of *ghṛta* is the main treatment. Most of the diseases of woman having undergone abnormal labour get cured by use of *ghṛta*.

९) सान्निपातिक ज्वर में चिकित्सा-सूत्र (Principles of treatment of fever due to sannipāta)

सन्निपातज्वरे नार्या मारुते च बलीयसि ॥ ८९॥
संस्कृतं रसयूषाभ्यां पुराणं सर्पिरिष्यते ॥ ९०॥ (का० सं० खि० ११)

सान्निपातिक ज्वर तथा वायु के बलवान होने पर संस्कृत मांसरस तथा यूष एवं पुराने घृत का प्रयोग करना चाहिए।

In *sānnipātika* fever, specially when *vāyu* is strong, medicated soup of meat or cereals and old *ghṛta* should be used.

सूतिका में शोधन कर्मों का निषेध या प्रयोग (Indications and contraindications for use of cleansing measures in a puerperal woman).

१) सूतिका को वमनादि निषेध का कारण (Reasons of contraindications for use of emesis etc. cleansing measures in a puerperal woman)

गर्भाशये च्युते नार्या दोषास्तदनुगामिनः । च्यवन्ति तस्माद्वमनं नस्यं बस्तिर्विरेचनम् ॥ ७७॥
न कार्यमल्पदोषायाः शरीरे परिसंस्थिते । तदेव युक्तितः कार्यं वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ ७८॥
वमनं वा विरेकं वा तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधान्वितम् । न ह्यतिच्युतदोषाया ज्वरिताया: प्रशस्यते ॥ ७९॥
संतप्ते तूष्मणा देहे धातवः परिपाचिताः । भूयस्तीक्ष्णौषधं प्राप्य गच्छेयुरमितां गतिम् ॥ ८०॥
(का० सं० खि० ११)

स्त्री के गर्भाशय में च्युत होने से (प्रसव-काल एवं प्रसवोपरान्त रक्त के गर्भाशय मार्ग से च्युत या स्रवित हो जाने से) उसका अनुगमन करते हुए दोष भी च्युत (शरीर से च्युत) हो जाते हैं अतः वमन, नस्य, बस्ति तथा विरेचन नहीं देना चाहिए, क्योंकि दोष अल्प मात्रा में ही शरीर में स्थित होते हैं। उनके (दोषों के) बलाबल को देखकर युक्तिपूर्वक ही कर्म (शोधन कर्म) करना चाहिए।

ज्वर से पीड़ित एवं दोषों के अत्यधिक च्युत हो जाने पर तीक्ष्ण औषधियों से युक्त तीक्ष्ण वमन एवं विरेचन नहीं देना चाहिए। ऊष्मा (ज्वर की) से शरीर के संतप्त हो जाने से धातुओं का परिपाक हो जाता है, पुनः तीक्ष्ण औषधियों

(वमन एवं विरेचनार्थ प्रयुक्त) के प्रयोग से (धातुयें) अमित (असमान्य) स्थिति को प्राप्त हो जाती हैं।

Due to excretion of blood through uterus after delivery, the *doṣas* following it also get dropped or trickle down; emetics, sternutatory drugs (suberrhines), enemas and purgatives should not be prescribed, because the *doṣas* in the body are comparatively in lesser amount. Giving due consideration to the strength of *doṣas* these cleansing measures should be used very judiciously.

The woman suffering from fever and having lost sufficient amount of *doṣas* should not be prescribed sharp emetics and purgatives with pungent drugs. *Paripāka* (metabolic changes) of *dhātus* occur due to heat generated by fever in the body and use of pungent drugs as emetics or purgatives makes these *dhātus* abnormal.

२) सूतिका ज्वर में वमनार्ह स्थिति (Indications for use of emetics in a woman suffering from puerperal fever)

उत्क्लिशयमाने हृदये कफे चाप्युरसि स्थिते । कफज्वरे क्षमे देहे विदध्याद्वमनं मृदु ॥ ८१॥
(का० सं० खि० ११)

कफ ज्वर में हृदय का उत्क्लेश होने, कफ के वक्षस्थल में स्थित होने तथा शरीर के (वमन को सहन करने में) समर्थ होने पर मृदु वमन देना चाहिए।

Mild emetics should be prescribed in the fever due to *kapha* associated with disquietude of heart (nausea) alongwith situation of *kapha* in chest region and the body being capable of tolerating emesis.

३) सूतिका ज्वर में नस्यार्ह स्थिति (Indications for use of suberrhines in puerperal fever)

अरुचौ कण्ठसंरोधे कफे चैव शिरोगते । अशक्यमाने कवले नस्यं तत्र विधापयेत् ॥ ८२॥
(का० सं० खि० ११)

अरुचि तथा कण्ठरोध होने, कफ के शिरोगत हो जाने तथा कवल के धारण में असमर्थ होने पर नस्य का प्रयोग करना चाहिए।

When the woman has anorexia and feeling of obstruction in throat, the *kapha* has reached head and the woman is unable to retain mouthful of medicated water *(kawala)*, she should be prescribed sternutatory drugs.

सूतिका ज्वर की विशिष्ट चिकित्सा (Specific treatment of puerperal fever)

अ) सूतिका के वातज्वर की चिकित्सा (Treatment of fever due to vāta of a puerperal woman)

अब मैं वातज्वर की चिकित्सा का वर्णन करूँगा[1]।

Now I shall describe the treatment of fever due to *vāta*.

(अ १) स्वेद (Sudation)

क्रव्याद-मांस (मांसभक्षी पशु-पक्षी का मांस), धान्य, माष, तिल, यव, दशमूल, अपामार्ग, भण्टी, एरण्ड, आटरूषक,

१. तत्र वातज्वरे तावत् प्रवक्ष्यामि चिकित्सतम् ॥ ९०॥ (का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

अश्वगंधा, श्वदंष्ट्रा तथा वंशपत्र को एकत्र कर करीष (गोबर चूर्ण) एवं अम्ल (काञ्जी) मिलाकर दिया गया संकरस्वेद वात-ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में लाभदायक है[1]।

Saṅkara type of sudation prepared with meat of carnivorous animals, cereals, *māṣa, tila, yawa, daśamūla, apāmārga, bhaṇṭī, eraṇḍa, āṭarūṣaka, aśwagandhā, śwadaṃṣṭrā* and leaves of *vaṃśa* mixed with powdered cow-dung and pestled with *kāñjī* is beneficial if given in the beginning of fever due to *vāta.*

(अ २) वातज्वर का वेपथु शान्त न होने पर बाह्य प्रयोग (External application in convulsions associated with fever due to vāta)

यदि वात की प्रधानता से उत्पन्न वेपथु शान्त न हो तो निम्न औषधियाँ प्रोयग करें–

१) उष्ण तैल से भली भाँति अभ्यङ्ग करके सुरादारु का धूपन तथा सर्वगन्ध द्रव्यों को काँजी में पीस कर सुखोष्ण लेप करें[2]।

२) श्योनाक, वासा, वंश, तर्कारी, एरण्ड, अपामार्ग, काश्मरी तथा भङ्ग को उष्ण काँजी में डालकर अवगाहन करायें[3]।

३) सूखपूर्वक अवगाहन की हुई स्त्री को आसन्दी (गद्दी), अजिन (चर्मच्छद), कम्बल आदि से भली भाँति आश्वस्त करके (सुखपूर्वक चर्मच्छद बिछी हुई गद्दी के ऊपर कम्बल से ढक कर बिठाकर) कुष्ठ एवं गुग्गुलु में घृत मिलाकर धूपन तत्पश्चात् उष्ण अन्न-पान का प्रयोग करें[4]।

If convulsions associated with fever due to *vāta* do not subside, then following treatment should be given—

i) After giving good massage with hot oil, fumigation with *suradāru* should be done and lukewarm paste of *sarvagandha* drugs (the drugs having fragrance i.e. *elā* etc.) with *kāñjī* should be anointed.

ii) Bath (tub-bath) with hot *kāñjī* mixed with decoction of *śyonāka, vāsā, vaṃśa, tarkārī, eraṇḍa, apāmārga, kāśmarī* and *bhaṅga* should be given.

iii) Fumigation with *guggulu* mixed with *ghṛta* should be given to the woman having received pleasing tub bath then wrapped with a blanket and seated over a skin-covered seat, this should follow the use of hot eadibles and drinkables.

(अ ३) वातज्वरहर तैल का आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयोग (Internal and external use of oil capable of curing fever due to vāta)

तैल के वर्णन में कहीं पर भी यह निर्देश नहीं है कि इसका प्रयोग आभ्यन्तर होगा या बाह्य, अतः यह अर्थ कर

१. क्रव्यादानां च मांसानि धान्यमाषतिला यवाः। दशमूलमपामार्गभण्ठ्योरण्डाटरूषकाः॥ ९१॥
अश्वगंधां श्वदंष्ट्रां च वंशपत्रं च संहरेत्। इत्येष संकरस्वेदः सकरीषोऽम्लसंयुतः॥ ९२॥
वातज्वरेऽवचार्यः स्यात् संसर्गादौ सुखावहः॥ ९३॥ (का० सं० खि० ११)

२. स चेद्वातोल्बणत्वाच्च वेपधुर्नोपशाम्यति। स्वभ्यक्तमुष्णतैलेन धूपयेत् सुरादारुणा॥ १०६॥
सुखोष्णैरम्लपिष्टैश्च सर्वगन्धैः प्रलेपयेत्। श्योनाकवासावंशानां तर्कारेरण्डयोस्तथा॥ १०७॥
अपामार्गस्य काश्मर्या भङ्गोष्णाम्लेऽवगाहयेत्। सुखावगाढामाश्वस्तां मांसाद्याजिनकम्बलैः॥
(सुखावगाढामाश्वस्तामासान्याजिनकम्बलैः शु० पा०) ॥ १०८॥
कुष्ठगुग्गुलुधूपेन घृतमिश्रेण धूपयेत्। उष्णानि चान्नपानानि ·····॥ १०९॥ (का० सं० खि० ११)

सकते हैं कि इस वातज्वर-नाशक तैल का नस्य, बस्ति, अभ्यङ्ग एवं पान सभी प्रकार से प्रयोग करना चाहिए।

दोनों पञ्चमूल, वृश्चीव, एकेषीका (त्रिवृत या पाठा या गंधतृण), पुनर्नवा, सहस्रवीर्या, नादेयी, शतवीर्या, शतावरी, विश्वदेवा (गाङ्गेरुकी या बला), शुकनस, सहदेवी, नाकुली, रास्ना, अजगन्धा, पूतीक, देवाह्वा, देवताडक, दोनों बला तथा हंसपादी का क्वाथ बनावें तथा कृष्ण अगरु, व्याघ्रनख, शतपुष्पा, पलङ्कषा, कायस्था, वयस्था, चोरक, जटिला, जटा, अपेतराक्षसी, वृक्षगुहा, महा (?), उष्टलोमिका (?), हरेणु, हेमवती (श्वेता वचा), कैरव, सुवहा, वचा, वृश्चिकाली, भार्गी, श्यामा तथा शिग्रु के कल्क के साथ (उपर्युक्त क्वाथ मिलाकर) तैल का पाचन करें, यह तैल वातज्वर नष्ट करता है[1]।

Since in the description, mode of administration of oil has not been prescribed, hence it can be presumed that it has to be used externally and internally both.

Decoction of both *pañcamūla, vṛścīva, ekeṣīkā, punarnavā, sahasravīryā, nādeyi, śatavīryā, śatāwarī, viśwadevā, śukanasa, sahadevī, nākulī, rāsnā, ajagandhā, pūtīka, devāhwā, devatāḍaka,* both *balās* and *haṃsapādī* should be prepared. In this decoction paste of *black agaru, vyāghranakha, śatapuṣpā, palaṅkaṣā, kāyasthā, vayasthā, coraka, jaṭilā, jaṭā, apetarākṣasī, vṛkṣaguhā, mahā. uṣṭralomikā, hareṇu, hemavatī, kairava, suwahā, vacā, vṛścikālī, bhārṅgī, śyāmā* and *śigru* should be mixed and with this mixture oil should be prepared. This oil cures fever due to *vāta.*

(अ ४) आभ्यन्तर प्रयोग के लिए औषधियाँ (Oral medicines)

१) बृहत्पञ्चमूल अथवा विदारिगन्धा के क्वाथ में सैन्धव मिलाकर पान करना चाहिए[2]।

२) रास्ना, सरल, देवाह्वा, यष्टीमधु, बृहती, सरल, दारु, भार्गी, वरुणक, एरण्डमूल, रास्ना तथा वृश्चिकाली का क्वाथ बनाकर कवोष्ण पान करना चाहिए यह वातज्वर-नाशक है, बाद में बिल्वमूल से सिद्ध जल का पान करना चाहिए[3]।

३) यव, कोल, कुलत्थ तथा दोनों पञ्चमूल के क्वाथ में दही, यवक्षार, चव्य, चित्रक, नागर तथा पिप्पली मिला कर सिद्ध किए हुए घृत का पान ज्वरहर, वातश्लेष्म-जन्य विबन्ध तथा ग्रहणी (व्याधि) नाशक एवं अग्नि-दीपक है। (इसके बाद) श्यामा एवं तिल्वक से सिद्ध घृत से विरेचन करायें[4]।

i) Decoction of *bṛhatpañcamūla* or *vidārigandhā* mixed with rock salt should be taken orally.

ii) Lukewarm decoction of *rāsnā, sarala, devāhwā, yaṣṭīmadhu, bṛhatī, sarala, dāru,*

१. द्वे पञ्चमूल्यौ वृश्चीवमेकेषीकां पुनर्नवाम्॥ ९३॥
सहस्रवीर्यां नादेयीं शतवीर्यां शतावरीम्। विश्वदेवां शुकनसं सहदेवां सनाकुलीम्॥ ९४॥
रास्नाऽजगन्धे पूतीकं देवाह्वां देवताडकम्। बले द्वे हंसपादीं च क्वाथार्थमुपसंहरेत्॥ ९५॥
कृष्णागुरुं व्याघ्रनखं शतपुष्पां पलङ्कषाम्। कायस्थां च वयस्थां च चोरकं जटिलां जटाम्॥ ९६॥
अपेतराक्षसीं यक्षगुहां (वृक्षगुहा-शु० पा०) महोष्टलोमिकाम्। हरेणुकां हैमवतीं कैरवं सुवहां वचाम्॥ ९७॥
वृश्चिकालीं च भार्गीं च श्यामां शिग्रुं च कल्कशः। संहृत्य तैलं विपचेद्वातज्वरनिबर्हणम्॥ ९८॥ (का० सं० खि० ११)

२. महतः पञ्चमूलस्य पिबेत् क्वाथं ससैन्धवम्। पेयो विदारिगन्धाया निष्क्वाथो वा ससैन्धवः॥ ९९॥

३. रास्नां सरलदेवाह्वयष्टीमधुकसंयुताम्। बृहतीं सरलं दारुं भार्गीं वरुणकं तथा॥ १००॥
एरण्डमूलं रास्नां च वृश्चिकालीं च संहरेत्। एतदुत्क्वथितं कोष्णं पिबेद्वातज्वरापहम्॥ १०१॥
पिबेदन्तरपानं च बिल्वमूलशृतं जलम्॥ १०२॥

४. यवकोलकुलत्थानां पञ्चमूलद्वयस्य च॥ १०३॥
क्वाथे दधियवक्षारचव्यचित्रकनागरैः। पिप्पलीभिश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वहरं पिबेत्॥ १०४॥
वातश्लेष्मविबन्धघ्नं ग्रहणीदीपनं परम्। श्यामातिल्वकसिद्धेन सर्पिषा च विरेचयेत्॥ १०५॥ (का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

bhārṅgī, varuṇaka, root of *eraṇḍa, rāsnā* and *vṛścikālī* should be taken. This cures fever due to *vāta*. After use of this decoction water medicated with root of *bilva* should be used.

iii) Use of *ghṛta* medicated with decoction of *yava, kola, kulattha* and both the *pañcamūlas* alongwith curd, *yavakṣāra, cavya, citraka, nāgara* and *pippalī* cures fever and constipation caused by *vāta* with *śleṣmā* and also cures *grahaṇī*, besides it is appetizer. Use of this *ghṛta* should be followed by purgation given with *ghṛta* medicated with *śyāmā* and *tilwaka*.

(अ ५) पथ्य (Congenial diet)

उचित काल में भोजन के साथ पञ्चमुष्टिक यूष, अम्ल (काञ्जी), लवण तथा जाङ्गल मांसरस का प्रयोग करना चाहिए[१]।

At appropriate period soup of *pañcamuṣṭika, kāñjī*, salt and meat soup of wild animals should be used along with diet.

आ) सूतिका के पित्तज्वर की चिकित्सा (Treatment of puerperal fever due to pitta)

आ१) सामान्य चिकित्सा-सिद्धान्त एवं पथ्य (Principles of treatment and congenial diet)

उष्णो वर्ज्यश्च पवनः पित्ते चोष्णं विरुद्धयते । अतीक्ष्णोपद्रवं तस्मात् पित्तज्वरमुपक्रमेत ॥ ११०॥
कषायतिक्तमधुरैः प्रदेहाभ्यङ्गनीषधैः ॥ १११॥
अम्लानि चान्नपानानि तथोष्णकटुकानि च । पित्तज्वरे विवर्ज्यानि प्रत्यनीकानि चाचरेत् ॥ १२६॥
(का० सं० खि० ११)

उष्णता (उष्ण द्रव्य प्रयोग) पित्त विरोधी है अतः उष्ण वायु (सेवन) (पित्तज्वर में) वर्जित है। जिसमें तीक्ष्ण उपद्रव नहीं है ऐसे पित्तज्वर में कषाय, तिक्त एवं मधुर औषधियों से प्रदेह तथा अभ्यङ्ग द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

पित्तज्वर में अम्ल, उष्ण तथा कटु अन्न-पान का परित्याग तथा इनके विपरीत गुण वाले (मधुर, तिक्त, कषाय रस वाले शीत) पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए।

Heat or hot things are harmful in *pitta* disorders, hence use of hot air is contra-indicated. Fever due to *pitta* not associated with complications should be treated with unctions or massage with *kaṣāya, tikta* and *madhura* drugs.

In fever due to *pitta*, the *amla* (sour), *uṣna* (hot) and *kaṭu* (bitter) things should not be used in eadibles or drinkables. The things of opposite character i.e. *madhura* (sweet) *tikta* (purgent), *kaṣāya* (astringent) and *śīta* (cold) should be used.

(आ २) बाह्य औषधि-प्रयोग (Medicines for external application)

१) शरीर पर दारु, तालीस (पत्र), उशीर तथा चन्दन का प्रदेह करना चाहिए[२]।
२) मधुक तथा तगर के कल्क से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग ज्वर का नाश करता है[३]।

i) Unction over body of pestled *dāru*, leaves of *tālīsa, uśīra* and *candana* should be given.

१. पञ्चमुष्टिकयूषेण युक्ताम्ललवणेन च ॥ १०२॥
भुञ्जीत भोजनं काले जाङ्गलानां रसेन वा ॥ १०३॥ (का० सं० खि० ११)
२. प्रदिहेद्दारुसंयुक्तैस्तालीसोशीरचन्दनैः ॥ १२२॥
मधुकस्य च कल्केन कल्केन तगरस्य च । तैलमभ्यञ्जनं सिद्धं पीतं ज्वरमपोहति ॥ १२३॥ (का० सं० खि० ११)

ii) Massage of oil prepared with paste of *madhuka* and *tagara* relieves fever.

(आ ३) आभ्यन्तर औषधि-प्रयोग (Oral medicines)

१) शार्ङ्गेष्टा, मरुवा, पाठा, नक्तमाल, वत्सक, निम्ब, आरग्वध तथा उशीर का आसव बनाकर मधु के साथ पीना चाहिए[१]।

२) स्थिरादय पञ्चमूल, केशर, कशेरुक, गोपी, पर्पटक, उशीर तथा धान्यक को मिलाकर सिद्ध कर (क्वाथ बनाकर) चतुर्थांश शेष रहने पर शीतल करके मधु एवं शर्करा के साथ पीना चाहिए[१]।

३) मुस्त, दोनों सारिवा, उशीर, यष्टिका, लोध्र, पद्मक तथा सप्तपर्ण आदि आठ द्रव्यों को आधे आढक पानी में भिगोकर रात्रि पर्यन्त रखने के बाद छानकर शर्करा तथा बारीक पिसी हुई कटुरोहिणी को एक कर्ष की मात्रा में मिलाकर पिलाना चाहिए। यह अभिषवराज सभी ज्वरों का निवारण करता है[१]।

४) मृद्वीका, नागपुष्प, मरिच, शर्करा, पत्र, एला तथा चव्य का पानक पैत्तिकज्वर में देना चाहिए[१]।

५) भद्रश्री, तिन्दुक, मुस्ता, पयस्या, मधुक तथा वचा के कषाय का पान ज्वरातिसार-नाशक है[१]।

६) पृश्निपर्णी तथा स्थिरा से युक्त मुद्ग-यूष पीने को देना चाहिए (यह भी ज्वरातिसार-नाशक है)[१]।

७) सारिवा, चन्दन, उशीर, द्राक्षा तथा पद्मक से सिद्ध की हुई लाजा से बनी पेया वमन, मूर्छा, दाह तथा ज्वर का नाश करती है। इस (लाज-पेया) को मुद्ग-यूष अथवा मधुर-रस के द्रव्यों के साथ पीना चाहिए[१]।

८) मधुक, केशर, गोपी, निम्बपत्र, कशेरु तथा शर्करा एवं मधु मिलाकर बनाया हुआ लेह मुख-शोधन करता है[१]।

९) मधुक एवं तगर के कल्क से सिद्ध तैल का पान ज्वर का नाश करता है[१]।

१०) पटोल, गुडूची, रोहिणी, आरग्वध तथा चन्दन के कल्क से सिद्ध घृत ज्वर का नाश करता है[१]।

११) चन्दनादि अथवा पटोलादि वर्ग की औषधियों से सिद्ध घृत अथवा तिक्तसर्पि या तिक्तिराद्य घृत का प्रयोग करना चाहिए[१]।

i) The *āsava* prepared with *śārṅgiṣṭhā, maruvā, pāṭhā, naktamāla, vatsaka, nimba, āragvadha* and *uśīra* should be given with honey.

ii) *Sthirādya pañcamūla, kešara, kaśeruka, gopī, parpaṭaka, uśīra* and *dhānyaka* all in

१. शार्ङ्गेष्टां मरुवां पाठां नक्तमालं सवत्सकम् ॥ १११॥
निम्बमारग्वधोशीरमासुतं मधुनां पिबेत्। स्थिराद्यं पञ्चमूलं च केशरं सकशेरुकम् ॥ ११२॥
गोपीं पर्पटकोशीरं धान्यकं चेति साधयेत्। पादावशिष्टं तच्छीतं पिबेत् समधुशर्करम् ॥ ११३॥
मुस्तद्विसारिवोशीरयष्टिकालोध्रपद्मकैः। ससप्तपर्णैरष्टार्द्धार्यर्धाढकमाप्लुतम् ॥ ११४॥
तत्रिशामुषितं पूतं पातव्यं शर्करायुतम्। कर्षेण कटुरोहिण्याः श्लक्ष्णपिष्टेन चान्वितम् ॥ ११५॥
सर्वाभिषवराजोऽयं सर्वज्वरनिवारणः। मृद्वीकानागपुष्पं च मरिचान्यथ शर्करा ॥ ११६॥
पत्रमेला च चव्यं च पानकं पैत्तिके ज्वरे। भद्रश्रीस्तिन्दुकोमुस्ता पयस्या मधुकं वचा ॥ ११७॥
कषाय एषां पातव्यो ज्वरातीसारनाशनः। पिबेन्मुद्गरसं वाऽपि पृश्निपर्णीस्थिरायुतम् ॥ ११८॥
सारिवाचन्दनोशीरद्राक्षापद्मकसाधितम्। लाजपेयां पिबेच्छर्दिमूर्च्छादाहज्वरापहाम् ॥ ११९॥
मुद्गयूषेण वाऽश्नीयान्मधुरेण रसेन वा। मधुकं केशरं गोपी निम्बपत्रकशेरुकम् ॥ १२०॥
शर्करामधुसंयुक्तो लेहो मुखविशोधनः ॥ १२१॥
मधुकस्य च कल्केन कल्केन तगरस्य च। तैलमभ्यञ्जनं सिद्धं पीतं ज्वरमपोहति ॥ १२३॥
पटोलस्य गुडूच्याश्च रोहिण्यारग्वधस्य च। चन्दनस्य च कल्केन सिद्धं सर्पिर्ज्वरापहम् ॥ १२४॥
चन्दनाद्येन वा सिद्धं पटोलाद्येन वा घृतम्। पाययेत्तिक्तसर्पिर्वा तिक्तिराद्यमथापि वा ॥ १२५॥ (का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

equal quantity should be boiled (with sixteen times water), when one fourth remains it should be (strained) cooled and be given with honey and sugar.

iii) *Mustā*, both the *sārivās, uśīra, yaṣṭikā, lodhra, padmaka,* and *saptaparṇa* etc. eight drugs should be kept overnight with half *āḍhaka* water. In next morning after straining properly, it should be mixed with sugar and finely powdered or pestled *kaṭurohiṇī* in the amount of one *karṣa* and given for drinking. This *abhiṣavarāja* (king of beverages) cures all types of fevers.

iv) Use of cold percolation of *mṛdvīkā, nāgapuṣpa, marica,* sugar, *patra, elā* and *cavya* is beneficial in *paittika* fever. .

v) Use of decoction of *bhadraśrī, tinduka, mustā, payasyā, madhuka* and *vacā* cures fever associated with diarrhoea.

vi) Soup of *mudga* (a kind of bean) mixed with *pṛśniparṇī* and *sthirā* cures fever associated with diarrhoea.

vii) The beverage prepared with *lājā* (parched paddy) medicated with *sārivā, candana, uśīra, drākṣā* and *padmaka* cures vomiting, unconsciousness, burning sensation and fever. This beverage should be taken either with soup of *mudga* or decoction of the drugs of *madhura* group.

viii) An electuary prepared with *madhuka, keśara, gopī,* leaves of *nimba, kaśeru,* sugar and honey cleanses the mouth.

ix) Drinking of oil medicated with paste of *madhuka* and *tagara* cures fever.

x) Use of *ghṛta* medicated with paste of *paṭola, guḍūcī, rohiṇī, āragvadha* and *candana* cures fever.

xi) *Ghṛta* either prepared with *candanādi* group or *paṭolādi* group of drugs or else *tikta-sarpi* or *tittirādya ghṛta* should be used.

(आ ४) पित्तज्वर का वेग शान्त होने पर चिकित्सा (Treatment after remission of fever due to pitta)

शान्तवेगे ज्वरे चास्यै दद्यान्मृदुविरेचनम् ॥ १२१॥
चतुरङ्गुलमृद्वीकात्रिवृत्कल्केन बुद्धिमान्। प्रदिहेद्दारुसंयुक्तैस्तालीसोशीरचन्दनैः ॥ १२२॥
(का० सं० खि० ११)

ज्वर का वेग शान्त हो जाने पर बुद्धिमान् (वैद्य) को चतुरङ्गुल, मृद्वीका तथा त्रिवृत-कल्क से मृदु विरेचन तथा देवदारु, तालीसपत्र, उशीर एवं चन्दन का प्रदेह करना चाहिए।

After remission of fever, the wise physician should prescribe purgation with paste *of caturaṅguala, mṛdwīkā,* and *trivṛt* and unction with paste of *devadāru,* leaves of *tālīsa, uśīra* and *candana.*

इ) सूतिका के श्लेष्मज्वर की चिकित्सा (Treatment of fever due to śleṣmā of a puerperal woman)

(इ १) चिकित्सा-सिद्धान्त एवं पथ्य (Principles of treatment and congenial diet)

सम्यक्संसर्गयोगेन भग्नवेगं कफज्वरम्। जयेद्धैषज्यपानैश्च सर्पिषाऽभ्यञ्जनेन च ॥ १२७॥

नागरामरदारुभ्यां श्रृतमुष्णं पिबेज्जलम्। बालमूलकयूषेण जाङ्गलानां रसेन वा ॥ १३१॥
कटूष्णद्रव्ययुक्तेन मन्दस्निग्धेन भोजयेत् ॥ १३२॥
शेषं वातज्वरहितं कार्यमत्र चिकित्सितम्। मधुराण्यन्नपानानि स्निग्धानि च गुरूणि च ॥ १३८॥
कफज्वरे विवर्ज्यानि प्रत्यनीकानि चाचरेत्॥ १३९॥ (का० सं० खि० ११)

भली भाँति प्रयुक्त संसर्जन क्रम से (पेयादि के प्रयोग द्वारा) कफज्वर का वेग भग्न हो जाने पर अर्थात् कम हो जाने पर उसे औषधि-पान तथा घृत एवं अभ्यङ्ग द्वारा ठीक करना चाहिए।

नागर एवं अमरदारु से पकाया हुआ उष्ण जल पीने को देना चाहिए।

बाल-मूलक का यूष अथवा जाङ्गल-मांसरस को कटु एवं उष्ण द्रव्य तथा थोड़ा स्नेह डालकर भोजन के लिए देना चाहिए। वातज्वर में हितकारी चिकित्सा यहाँ भी करनी चाहिए।

मधुर, स्निग्ध तथा गुरु अन्नपान का कफज्वर में परित्याग करना चाहिए तथा इनके विपरीत गुण वाले द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

After remission of fever due to *kapha* by use of diet in *saṃsarjana-krama* (regulated diet) it should be managed by use of beverages of medicines, *ghṛtas* and massage.

Hot water cooked with *nāgara* and *amaradāru* should be given for drinking.

Soup prepared with young radish or meat of wild animals mixed with bitter and hot substances/drugs and little quantity of fat should be given in diet. Treatment prescribed for fever due to *vāta* is also beneficial.

In fever due to *kapha* use of *madhura* (sweet), *snigdha* (unctuous) and *guru* (heavy) diet and drinkables is contraindicated, the things of opposite character to these sweet etc. should be used.

(इ २) बाह्य औषधि-प्रयोग (Medicines for external application)

(१) लाक्षा, मुस्ता, दोनों हरिद्रा, शताह्वा, भद्ररोहिणी, देवपुष्पा, वचा, दारु तथा सरल को समान भाग लेकर इनसे तैल पाक करके, उससे वैद्य अभ्यङ्ग करवावे[1]।

(२) कुष्ठ, अगर, व्याघ्रनख, मांसी, धान्यक, सामक (कोई द्रव्य नहीं है अतः शु० पाठ रामठ), वक्र, हरेणु, ह्रीबेर, स्थौणेय, केसर, त्वचा, एलाद्वय, सरल, दारु, मूर्वा, कालानुसारिवा, बर्हिष्ठ, शतपुष्पा, पृथ्वीका तथा देवपुष्यक को समान भाग लेकर बुद्धिमान (वैद्य) तैल का पाक करे। उसके मर्दन मात्र से ही कफज्वर नष्ट हो जाता है[1]।

i) The physician should prescribe massage of oil prepared with equal quantity of *lākṣā, mustā,* both *haridrās, śatāhwā. bhadrarohiṇī, devapuṣpā, vacā, dāru* and *sarala.*

ii) Wise physician should prepare oil with equal quantity of *kuṣṭha, agara,*

१. लाक्षा मुस्ता हरिद्रेद्वे शताह्वा भद्ररोहिणी ॥ १३३॥
देवपुष्पा वचा दारु सरलं चेति तैः समैः। पचेत्तैलं तदेतेन कुर्यादभ्यञ्जनं भिषक् ॥ १३४॥
कुष्ठागरुव्याघ्रनखं मांसी धान्यकसामकम् (रामठम्-शु० पा०)।
वक्रं हरेणुं ह्रीबेरं स्थौणेयं केसरं त्वचम् ॥ १३५॥
एले द्वे सरलं दारु मूर्वा कालानुसारिवा। बर्हिष्ठं (बर्हिष्ठं-शु० पा०) शतपुष्पा च पृथ्वीका देवपुष्पकम् ॥ १३६॥
एतैर्हि समभागैस्तु तैलं धीरो विपाचयेत्। एतदभ्यञ्जनादेव कफज्वरमपोहति ॥ १३७॥ (का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

vyāghranakha, māṃsī, dhānyaka, rāmaṭha, vakra, hareṇu, hrībera, sthauṇeya, kesara, twacā, both the *elās, sarala, dāru, mūrvā, kālānusārivā. barhiṣṭha, śatapuṣpā, pṛthvīkā* and *devapuṣpaka*. Massage with this oil cures fever due to *kapha*.

(इ ३) आभ्यन्तर औषधि प्रयोग (Oral medicines)

(१) प्रारम्भ में दोनों, बृहती, पुष्करमूल, दारु, पिप्पली, नागर तथा शटी के उष्ण क्वाथ का पान दोषों का पाचन करता है[1]।

(२) दोनों पञ्चमूल, भार्ङ्गी, कर्कटा, दुरालभा, नागर, पिप्पली तथा दारु को (के क्वाथ को) सैन्धव मिलाकर पीने को देना चाहिए[1]।

(३) पटोल, धान्यक, मुस्ता, मूर्वा, पाठा, निदिग्धका इन छहों द्रव्यों को समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर मधु के साथ पीने को देना चाहिए[1]।

(४) विरेचनार्थ त्रिवृत्-कल्क को गोमूत्र के साथ देना चाहिए[1]।

(५) उचित काल में कल्याणक अथवा दाशमौलिक (दशमूल से सिद्ध) घृत का सेवन करना चाहिए[1]।

i) Initially use of hot decoction prepared with both *bṛhatīs, puṣkaramūla, dāru, pippalī, nāgara* and *śaṭī* metabolises *doṣas*.

ii) Decoction of both *pañcamūla, bhārṅgī, karkaṭā, durālabhā, nāgara, pippalī* and *dāru* mixed with rock salt should be prescribed.

iii) Decoction prepared with equal quantity of six drugs i.e. *paṭola, dhānyaka, mustā, mūrvā, pāṭhā*, and *nidigdhikā* mixed with honey should be given.

iv) For purgation paste of *trivṛt* with cow urine should be prescribed.

v) *Kalyāṇaka* or *daśamūla ghṛta* should be used in suitable and appropriate period.

(ई) सूतिका के सान्निपातिक ज्वर की चिकित्सा (Treatment of fever due to sannipāta or all the three doṣas together of puerperal woman)

सन्निपातज्वरस्यातः प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥ (का० सं० खि० ११/१३९)

अब मैं सान्निपातिक ज्वर की चिकित्सा कहूँगा।

Now I shall describe the treatment of fever due to *sannipāta*.

(ई १) साध्यासाध्यता (Prognosis)

स सर्वलक्षणोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्योऽल्पलक्षणः। बलहीनस्य नष्टाग्नेः सर्वथा नैव सिद्धयति ॥ १४०॥
किमङ्ग ! सूतिकानां तु क्षीणधातुबलौजसाम्। तथाऽपि यत्नमातिष्ठेदानृशंस्याद्भिषग्वरः ॥ १४१॥
(का० सं० खि० ११)

१. बृहत्यौ पुष्करं दारु पिप्पल्यो नागरं शटी। क्वाथमेषां पिबेदुष्णमादौ दोषविपाचनम् ॥ १२८॥
द्विपञ्चमूलीं भार्ङ्गीं च कर्कटाख्यां दुरालभाम्। नागरं पिप्पलीं दारुं पिबेद्वा सैन्धवान्वितम् ॥ १२९॥
पटोलं धान्यकं मुस्ता मूर्वा पाठा निदिग्धिका। कषाय एषां पातव्यः षडङ्गो मधुसंयुतः ॥ १३०॥
पिबेद्गोमूत्रसंयुक्तं त्रिवृत्कल्कविरेचनम् ॥ १३२॥
काले कल्याणकं सर्पिः पिबेद्वा दाशमौलिकम् ॥ १३३॥ (का० सं० खि० ११)

सर्व लक्षण-युक्त सान्निपातिक ज्वर असाध्य तथा अल्प लक्षण-युक्त कष्टसाध्य होता है। बलहीन एवं नष्टाग्नि सूतिका में भी यह सर्वथा असाध्य होता है। उस सूतिका का क्या कहना जिसकी धातुयें, बल एवं ओज क्षीण हो गया हो अर्थात् उसका सान्निपातिक ज्वर ठीक नहीं हो पाता, फिर भी श्रेष्ठ चिकित्सक को दया पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

Fever due to *sannipāta* having manifestation of all the clinical features is incurable, while with few signs and symptoms is cured with difficulty. In the puerperal woman having lost her *bala* (strength) and *agni* (digestive or metabolic capacity) also this fever never gets cured. What to say about the puerperal woman whose *dhātus, bala* (strength) and *ojas* have decreased or in other words *sānnipātika* fever of such woman also does not get cured, however, good physician should make proper efforts with compassion.

ई २) सान्निपातिक ज्वर के चिकित्सा-सिद्धान्त (Principles of treatment of fever due to sannipāta)

सन्निपातेषु दोषेषु यो दोषो बलवान् भवेत्।
तमेवादौ प्रशमयेच्छेषदोषमतः (दोषावतः-शु० पा०)परम् ॥ १४२॥
अल्पान्तरबलेष्वेषु दोषेषु (मति)मान् भिषक्। श्लेष्माणमादौ शमयेत् स ह्येषामनुबन्धकृत् ॥ १४३॥
गुरुत्वात् कृच्छ्रपाकित्वाद्ऊर्ध्वकायाश्रयात्तथा।
तस्माज्ज्वरेण दुर्दिष्टं (तस्माज्ज्वरे तु निर्दिष्टं-शु० पा०) वातपित्तकफात्मके ॥ १४४॥
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत् कार्यं चिकित्सितम्। सामान्येन तु वक्ष्यामि तद्विशेषं भिषग्जितम् ॥ १४५॥
शीतोष्णैरौषधैस्तैलं सर्वैरेवोपसंस्कृतम् ॥ १५७॥
अभ्यङ्गनं विधातव्यं यच्चान्यत्रिमलापहम् ॥ १५८॥ (का० सं० खि० ११)

सन्निपात के दोषो में जो दोष सबसे अधिक बलवान हो सर्वप्रथम उसका प्रशमन करना चाहिए, अन्य दोषों की चिकित्सा बाद में करनी चाहिए। बुद्धिमान वैद्य को ज्वर के अल्पान्तरबल (यदि दोषों के प्राबल्य में विशेष अन्तर न हो सभी लगभग एक मात्रा में हो प्रकुपित होने पर) वाले दोषों में सर्वप्रथम श्लेष्मा का शमन करना चाहिए क्योंकि यह अनुबन्धकारक, गुरु, कृच्छ्रपाकी तथा ऊर्ध्वकाय में आश्रित होता है। तत्पश्चात् उस स्त्री के सन्निपातिक ज्वर की वातपित्तकफात्मक ज्वर में निर्दिष्ट चिकित्सा, अवस्था (ज्वर में दोष प्राधान्य की अवस्था) के अनुसार सामान्य रूप में करनी चाहिए। विशिष्ट चिकित्सा का अब मैं वर्णन करूँगा।

सम्पूर्ण शरीर का उष्ण एवं शीत औषधियों से संस्कृत तैल से अभ्यङ्ग करना चाहिए तथा अन्य सभी त्रिदोष को नाश करने वाली चिकित्सा करनी चाहिए।

Amongst all the three *doṣas* of *sannipāta* most predominant *doṣa* should be pacified first and other *doṣas* should be treated afterwards. In a case where all the *doṣas* are vitiated almost in identical strength, the wise physician should first of all pacify *kapha*, because it involves or attaches other *doṣas*, is *guru* (heavy), gets metabolised with great difficulty and is situated in upper part of the body. After pacifying this *kapha* she should be treated giving due consideration to the stage of fever on the general lines of fevers due to *vāta, pitta, kapha* etc. Now I will describe specific treatment.

Whole body should be massaged with oil medicated with hot or cold drugs and other measures capable of suppressing *tridoṣa* should be used.

Scanned with CamScanner

(ई ३) बाह्य औषधि-प्रयोग (Medicines for external application)

(१) कुश, काश, श्वदंष्ट्रा, अर्क, सुधा, एरण्ड, परूषक तथा अन्न (शालि ?) एवं यव एक द्रोण मात्रा में लेकर (पका कर कृशरा के रूप में) चमड़े में युक्तिपूर्वक फैलाकर (उसी चमड़े में फैली कृशरा के ऊपर लेटी) सूतिका स्त्री को भारी कपड़ों से आच्छादित करके स्वेदन करें[१]।

(२) हरीतकी, प्रियङ्गु, मालती एवं आमलकी से अथवा वासा या खदिर से मुख का प्रच्छालन करना चाहिए[१]।

(३) श्लक्ष्ण पिष्ट आघ्रास्थि तथा रसाञ्जन को मिलाकर दन्तमांस, ओष्ठ तथा जिह्वा का प्रतिसारण करना चाहिए[१]।

(४) शिर में अत्यधिक संताप (तीव्र ज्वर एवं शिरःशूल) होने पर दधि, सर्जरस, अक्षत (यव) एवं अश्वगंधा (कल्क) को मधु के साथ मिलाकर ललाट पर उपलेहन (आलेपन) करना चाहिए[१]।

i) *Kuśa, kāśa, śwadaṃṣṭrā, arka, sudhā, eraṇḍa, parūṣaka,* cereals (*śāli* rice) and *yawa* (barley) (all in equal quantity) should be taken in the amount of one *droṇa,* cooked in the form of oleo, spreaded properly over a sheat of leather and sudation with this should be given to the woman (lying over this oleo) after covering her with heavy cloth.

ii) Oral cavity should be washed with either *harītakī, priyaṅgu, mālatī* and *āmalakī* or *vāsā* or *khadira.*

iii) Gums, lips and tongue should be rubbed with finely powdered stone of mango fruit mixed with *rasāñjana.*

iv) In case of severe headache due to high fever paste of *sarjarasa, yawa* and *aśwagandhā* mixed with curd and honey should be applied over forehead.

(ई ४) आभ्यन्तर औषधि प्रयोग (Oral medicines)

(१) नागर, दशमूल, कट्वङ्ग, दारुकद्वय, पिप्पली, त्रिफला, भार्गी, कर्कटक तथा दुरालभा के क्वाथ को पूर्वाह्न एवं अपराह्न में होने वाले ज्वर में सैंधव के साथ तथा सायंकाल होने वाले ज्वर में मधु तथा हिङ्गु के साथ मिलाकर देना चाहिए[१]।

(२) पटोल, मुस्ता, मधुक, रोहिणी ..... आदि (द्रव्यों के क्वाथ को) को वातप्रधान सान्निपातिक ज्वर में घृत के साथ पिलाना चाहिए[१]।

(३) कफप्रधान सान्निपातिक ज्वर में इन्हीं (पटोल, मुस्ता, मधुक एवं रोहिणी) औषधियों को त्रिफला एवं सुरदारु के साथ मधु मिलाकर पीने को देना चाहिए[१]।

(४) सान्निपातिक ज्वर में पित्त की अधिकता होने पर एला, मधुक, मधूक, शीतपाकी, परूषक, त्रिफला, सारिवा, पाठा, मञ्जिष्ठा तथा चतुरङ्गुल (के क्वाथ) में मधु एवं शर्करा डालकर पीना चाहिए[१]।

१. कुशकाशश्वदंष्ट्रार्कसुधैरण्डपरू(षकैः)। ..... त्रयवद्रोणं चर्मण्यास्तीर्य युक्तितः॥ १४६॥
स्वेदयेत् सूतिकां तत्र गुरुप्रावरणावृताम्॥ १४७॥
हरीतक्या प्रियंग्वा च मालत्याऽऽम(लकेन) च॥ १५८॥
मु(ख)प्रक्षालनं कार्यं वासया खदिरेण वा। श्लक्ष्णपिष्टं तथाऽऽघ्रास्थि रसाञ्जनसमन्वितम्॥ १५९॥
दन्तमांसौष्ठजिह्वानां प्रधानं प्रतिसारणम्। सन्तप्यमाने शिरसि दधिसर्जरसाक्षतैः॥ १६०॥
साश्वग-न्धैर्मधुयुतैर्ललाटमुपलेहयेत्॥ १६१॥ (का० सं० खि० ११)

नोट – आभ्यन्तर औषधि के सन्दर्भ पृष्ठ ६०५ में देखें।

(५) भार्गी, शृङ्गी, त्रिवृत्, दन्ती, दशमूल, दुरालभा, कट्वङ्ग, त्रिफला, शुण्ठी तथा पिप्पली से बनाए हुए क्वाथ में सैन्धव तथा क्षार मिलाकर अनुलोमन (दोषों के) के लिए पान कराए अथवा गोमूत्र में मिलाकर त्रिवृत या केवल वचा का पान करे। दोषों के अनुलोमित तथा ग्रहणी के बलवान (अग्नि के दोष) हो जाने पर भलीभाँति संस्कृत घृत का पान कराना चाहिए[१]।

(६) मधुक, अतिविषा, रोहिणी तथा भद्रदारु से सिद्ध घृत अथवा कल्याणक या महाकल्याणक या पञ्चगव्य घृत का उचित काल में प्रयोग सान्निपातिक ज्वर का नाश करता है[१]।

(७) ज्वर के आठ दिन बीत जाने के बाद लघु अन्न को संसर्ग क्रम से प्रयोग करने के पश्चात् द्वन्द्वज या सान्निपातिक ज्वर में वायु की प्रधानता के कारण प्रलाप होने, विशेष कर शूल के साथ मल-मूत्र का विबन्ध तथा श्वासकष्ट होने पर पुराने घृत से संस्कृत जाङ्गल मांसरस देना चाहिए। दशमूल, कुलत्थ, यव, कुवल, कुलीरशृङ्गी, रास्ना, शटी, पुष्करमूल, भार्गी तथा दुरालभा के भलीभाँति सिद्ध निर्यूह के प्रयोग से रोगी का विगुणित हुआ वायु तथा ज्वर शान्त होता है[१]।

(८) पाचन द्रव्यों के प्रयोग से ज्वर का वेग शान्त होने, परन्तु पक्वावशेष मल रहने तथा बल (दोषों के बल) के कम हो जाने पर इन दो संशमन द्रव्यों का शीतल क्वाथ मधु के साथ प्रयोग करना चाहिए-पिप्पली तथा दुरालभा अथवा मृद्वीका तथा पिप्पली[१]।

(९) गुडूची एवं आमलक के स्वरस तथा सारिवा, शुण्ठी, लोध्र, दाडिम एवं चन्दन के कल्क से सिद्ध किए घृत का नाम मङ्गल्यक घृत है यह विषमज्वर-नाशक तथा सभी ज्वरों में अमृत के समान लाभदायक है[१]।

i) Decoction of *nāgara, daśamūla, kaṭwaṅga, dārukadwaya, pippalī, triphalā, bhārṅgī, karkaṭaka* and *durālabhā* should be given with rock salt in the fever rising in morning and

१. नागरं दशमूलं च कट्वङ्गं दारुकद्वयम्॥ १४७॥
पिप्पल्यस्त्रिफलाभार्गी कर्कटाख्या दुरालभा। ससैन्धवः कषायोऽयं ज्वरे पूर्वाह्णिके॥ १४८॥
मधुहिङ्गुसमायुक्तो देयः सायाह्निके ज्वरे। पटोलमुस्तामधुकरोहि·····॥ १४९॥
सर्पिषा सह पातव्यं सन्निपातेऽनिलोत्तरे। एतदेव त्रिफलया युक्तं च सुरदारुणा॥ १५०॥
पाययेन्मधुनाऽऽलोड्य सन्निपाते कफोत्तरे। एलामधूकमधुकशीतपाकीपरूषकैः॥ १५१॥
त्रिफला सारिवा पाठा मञ्जिष्ठाचतुरङ्गुलैः। पित्तोत्तरे त्वभि(न्यासे)पिबेत् समधुशर्करम्॥ १५२॥
भार्गी शृङ्गी त्रिवृद्दन्ती दशमूली दुरालभा। कट्वङ्गं त्रिफला शुण्ठी पिप्पली चेति तैः शृतम्॥ १५३॥
क्वाथं ससैन्धवक्षारं पाययेच्चानुलोमिकम्। गोमूत्रयुक्तां त्रिवृतां केवलां वा वचां पिबेत्॥ १५४॥
अनुलोमं गते दोषे सज्जाते ग्रहणीबले।·····ततः सर्पिर्वा साधु संस्कृतम्॥ १५५॥
मधुकेनातिविषया रोहिण्या भद्रदारुणा। सिद्धं सर्पिः पिबेत् काले सन्निपातज्वरापहम्॥ १५६॥
कल्याणकं महात्तं वा पञ्चगव्यमथापि वा॥ १५७॥
लघ्वन्नकृतसंसर्गे निरुद्धाहरे ज्वरे॥ १६१॥
संसर्गे सन्निपाते वा सप्रलापेऽनिलोत्तरे। सशूलबद्धविण्मूत्रे सश्वासे च विशेषतः॥ १६२॥
पुराणसर्पिः संस्कारो विधेयो जाङ्गलो रसः। दशमूलकुलत्थानां यवानां कुवलस्य च॥ १६३॥
कुलीरशृङ्ग्या रास्नायाः शटीपुष्करमूलयोः। भार्ग्या दुरालभायाश्च निर्यूहे साधु साधितः॥ १६४॥
तेनास्य विगुणो वायुर्ज्वरश्चास्य प्रशाम्यति। पाचनीयैरुपक्रान्ते भग्नवेगे सति ज्वरे॥ १६५॥
पक्वावशेषे च मले बले मन्दत्वमागते। पेयं सुशीतं सक्षौद्रमिदं संशमनद्वयम्॥ १६६॥
पिप्पली सदुरालम्भा मृद्वीका वा सपिप्पली। गुडूच्यामलकानां च स्वरसे साधितं घृतम्॥ १६७॥
कल्केन सारिवाशुण्ठी लोध्रदाडिमचन्दनैः। तद्धि मङ्गल्यकं नाम विषमज्वरनाशनम्॥ १६८॥
ज्वराणां चापि सर्वेषामेतदेवामृतोपमम्॥ १६९॥ (का० सं० खि० ११)

Scanned with CamScanner

evening both the times and in the fever rising only in the evening with honey and *hiṅgu*.

ii) Decoction of *paṭola, mustā, madhuka, rohiṇī* etc. mixed with *ghṛta* should be prescribed in fever due to *sannipāta* having predominance of *vāta*.

iii) In fever due to *sannipāta* having predominance of *kapha*, decoction of *paṭola, mustā, madhuka, rohiṇī, triphalā* and *suradāru* mixed with honey should be given.

iv) In fever due to *sannipāta* having predominananence of *pitta*, decoction of *elā, madhūka, madhuka, śītapākī, parūṣaka, triphalā, sārivā, pāṭhā, mañjiṣṭhā* and *caturaṅgula* mixed with honey and sugar should be given.

v) For *anulomana* of *doṣas* (movement of *doṣas* in their normal channels) either decoction of *bhārṅgī, śṛṅgī, trivṛt, dantī, daśamūla, durālabhā, kaṭwaṅga, triphalā, śuṇṭhī* and *pippalī* mixed with rock salt and *yawakṣāra* or *trivṛt* mixed with cow urine or only *vacā* (decoction) should be given. Once *doṣas* have started moving in their proper channels and *grahaṇī* (digestive capacity or appetite) has become strong, then properly prepared *ghṛta* should be given for drinking.

vi) Use of either *ghṛta* prepared with *madhuka, ativiṣā, rohiṇī* and *bhadradāru*, or *kalyāṇaka* or *mahākalyāṇaka* or *pañcagavya ghṛta* in appropriate and suitable period cures fever due to *sannipāta*.

vii) After lapse of eight days of fever, then use of light diet with *saṃsarjanakrama* (serial way) if in the fever caused by two *doṣas (dwandwaja)* or all the three *doṣas (sānnipātika)* delirium due to predominance of *vāyu*, specially retention of urine and constipation associated with pain and dyspnoea occur, then meat soup of wild animals mixed with old *ghṛta* should be given. Afterwards use of decoction of *daśamūla, kulattha, yava, kuwala, kulīraśṛṅgī, rāsnā, śaṭī, puṣkaramūla, bhārṅgī* and *durālabhā* pacifies vitiated *vāyu* and fever both.

viii) Two pacifying cooled decoctions prepared with either *pippalī* and *duralabhā* or *pippalī* and *mṛdwīkā* should be used with honey in the cases having remission of fever due to use of digestive or metabolising drugs but retention of *mala* (feces) left over after proper metabolisation and reduction in the strength of *doṣas*.

ix) *Ghṛta* prepared with juice of *guḍūcī* and *āmalaka* alongwith paste of *sārivā, śuṇṭhī, lodhra, dāḍima* and *candana* is known as *maṅgalyaka ghṛta*. This cures *viṣamajwara* (intermittent fever) and is beneficial like nectar in all types of fevers.

ए) सूतिका के स्तन्योत्थ एवं ग्रहोत्थ ज्वर की चिकित्सा (Treatment of milk-fever and fever due to grahas of puerperal woman)—

स्तन्य की संशुद्धि से स्तन्योत्थ ज्वर (पृ० ५९०) तथा ग्रहघ्न विधि एवं वातज्वर नाशक चिकित्सा करने से ग्रहोत्थ ज्वर (पृ० ५९१) का शमन होता है।

स्तन्योत्थ ज्वर में लक्षणानुसार दोषप्रकोप का ज्ञान कर उस दोष के लिए वर्णित संशमन चिकित्सा करें। टीकाकार

डल्हण ने संशमन से पाचन का भी ग्रहण किया है[1]।

The milk-fever is cured by expressing out the milk and fever due to *grahas* by use of measures capable of eradicating *grahas* and other treatment prescribed for fever due to *vāta*.

In milk fever, diagnosing the aggravation of *doṣa* on the basis of specific clinical features, the pacification prescribed for that *doṣa* should be used. Ḍalhaṇa says that besides pacification, metabolisation of *doṣas* should also be done.

सामान्य प्रसवान्तराल (Normal duration of inter-pregnancy period)

एक बार प्रसव होने के कितने वर्षों के बाद स्त्री दुबारा गर्भाधान-योग्य हो जाती है इस विषय में स्पष्ट वर्णन संहिताओं में नहीं मिलता। महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि एक बार प्रसव से निवृत्त हो कर छह वर्षों के बाद गर्भाधान होने पर कुमार अल्पायु होता है[2]। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि छह के अवयव अर्थात् पाँच, चार, तीन या दो वर्ष में गर्भ का पुनः जन्म सामान्य होता है, तदुपरान्त प्रसव होने पर कुमार के अल्पायु होने के कारण का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि गर्भाशय या योनि आदि के दोष के कारण ही गर्भाधान नहीं होता। शोधनादि चिकित्सा, आहार-विहार-व्यवस्था तथा आकांक्षा होने पर जब (छह वर्ष की अवधि के बाद) गर्भाधान होता है तो योनि एवं गर्भाशय आदि के अस्फुटित या अस्पष्ट दोषों के कारण (यद्यपि चिकित्सा से दोष शान्त होकर गर्भाधान तो हो गया पर दोषों का पूर्ण निराकरण न हो सकने के कारण) उत्पन्न शिशु अल्पायु होता है[3]।

महर्षि वाग्भट ने शारीरस्थान अध्याय ३ के समापन में केवल इतना लिखा है कि इस अध्याय में प्रथम मास से लेकर जब वह पुनः गर्भधारण योग्य हो जाती है तब तक की सम्पूर्ण विधि का वर्णन कर दिया[4]। इन्होंने इस अध्याय के अन्त में सूतिकाकाल की मर्यादा वर्णन करते हुए पुनरार्तवदर्शन इसकी सीमा मानी है।

जो स्त्रियाँ स्तनपान कराती रहती हैं, अधिकांशतः उन्हें रजःस्राव प्रसव के एक वर्ष के बाद ही प्रारम्भ होता है, यद्यपि किन्हीं किन्हीं स्त्रियों को तो प्रसव के दूसरे मास से ही रजःस्राव प्रारम्भ हो जाता है, अर्थात् एक प्रसव के बाद जितने दिनों में स्त्री शरीर-क्रिया-दृष्ट्या सामान्य हो जाय वह गर्भधारण-योग्य हो जाती है। अधिकतम अन्तराल की मर्यादा ६ वर्ष रखने का सम्भवतः यह कारण होगा कि इतने दिन के बाद स्त्री की श्रोणिगुहा की अस्थियाँ एवं अन्य प्रजनन अङ्ग प्रथम गर्भावस्था के पूर्व सदृश स्थिति में पहुँच जाते हैं एवं स्त्री को प्रथम प्रसव की ही भाँति अधिक कष्ट होता है।

What should be the normal duration in between two pregnancies has not clearly been spelled in classics. Suśruta says that after one delivery, if the woman delivers subsequently after six years then the born child is short lived. Ḍalhaṇa explaines that subsequent delivery should take place in five, four, three or two years, after lapse of this period the born child is short lived, because she has not conceived due to existence of certain abnormalities in uterus and other reproductive organs. After taking purifying treatment, regulated dietetics

१. सु० सं० उ० ३९/१६७ (पृष्ठ ३४९)

२. निवृतप्रसवायास्तु पुनः षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वं प्रसवमानाया नार्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति ॥ ६६॥ (सु० सं० शा० १०/६६)

३. ·····। षट्सु षडवयवेषु पञ्चचतुस्त्रिद्विवर्षेसु गर्भानुजननस्य जन्मकाल इति; कुतः पुनरस्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति ? उच्यते गर्भाशययोन्यादिदोषेण हि निवर्तते प्रसवः; तत्र तच्छोधनक्रियामन्तरेणाहारविहारादिगुणमात्रेण यदुच्छयोपगृहीतगर्भाया योनि-गर्भाशयादिष्वनिःस्फोटितदोषेषु जातोऽल्पायुरेवेति ॥ (सु० सं० शा० १०/६६ की डल्हण टीका)

४. इत्याद्यं मासमादाय यावद्गर्भक्षमा पुनः। स्त्री स्यात्तावद्विधिः सर्वः सर्वथा साधु दर्शितः ॥ (अ० सं० शा० ३/४२)

Scanned with CamScanner

and mode of life and also due to one's own desire though the pregnancy takes place, but due to presence of subtle abnormalities in uterus and other reproductive organs the born child is short lived.

Vāgbhata considering limit of puerperal period upto reappearance of menstruation after delivery has indirectly set this very period as the physiological gap period, because in third chapter of *śarīrasthāna* he says that "I have dealt in this chapter the subject concerned with first month of pregnancy upto the period when she is capable of becoming pregnant again", he has finished the chapter after describing management of puerperium.

After delivery during lactation most women do not menstruate, though some of them do start menstruation from first month itself. Reappearance of menstruation denotes pre-pregnancy physiological status or in other words as soon as the woman reaches her pre-pregnancy physiological state, she becomes fit for subsequent pregnancy. Maximum limit of six years might have been given with the view that after such a long period, reproductive organs of the woman become just like her nulliparous state, thus subsequent deliveries become difficult just like the first labour.

प्रसवोपरान्त योनि-गाढ़ीकरण-विधि (Medicines for constriction of vagina after delivery)

पलाश (बीज) तथा उदुम्बर-फल के महीन पिसे हुए कल्क या चूर्ण को तिल-तैल के साथ मिलाकर योनि में भलीभाँति लेप करना योनि को गाढ़ी करने के लिए (शिथिल योनि को सुदृढ़ करने के लिए) उत्तम है[1]।

For constriction of lax vaginal canal, anointment with fine powder or paste of seeds of *palāśa* and fruits of *udumbara* mixed with oil of *tila* is a good medicine.

प्रसवोपरान्त कुक्षि-ह्रासार्थ-औषधि (Prescription for reducing the belly after delivery)

प्रसव होने के बाद स्त्री को बढ़ी हुई कुक्षि (उदर) घटाने के लिए तीन सप्ताह तक प्रातःकाल मट्ठे के साथ कणा-जटा (चूर्ण या कल्क) को मिलाकर पीना चाहिए[2]।

For reducing the abdominal girth after delivery buttermilk mixed with powder or paste of *kaṇājaṭā* should be used.

गर्भाधानरोधक एवं गर्भस्रावकारक औषधियाँ या विधि (Contraceptives and abortifacients)

आधुनिक विज्ञान में परिवार-नियोजन या गर्भाधान-निरोधक विधियों का उपदेश सूतिका-परिचर्या का एवं कृत्रिम-गर्भपात परिवार-नियोजन का एक अङ्ग माना जाता है। यद्यपि इन दोनों की ही आवश्यकता विवाहोपरान्त कुछ वर्ष तक भी मानी जाती है फिर भी पूर्ण वयस्क का विवाह होने पर इनकी उपादेयता प्रसवोपरान्त ही अधिक होती है। इसी आधार पर इस विषय की सम्प्रति प्रयुक्त ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री का संकलन किया जा रहा है।

१. (अ) पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्। योनौ विलिप्तं मधुना गाढ़ीकरणमुत्तमम्॥ (भा० प्र० चि० ७०/१२९)
(आ) पलाशो ·····। योनौ प्रलिप्तं ·····॥ (भा० प्र० सदृश) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

२. (अ) प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्रासाय सम्पिबेत्। प्रातर्मथितसंमिश्रां त्रिसप्ताहात्कणाजटाम्॥ (भा० प्र० चि० ७०/१३०)
(आ) प्रसूता ·····। ·····त्रिःसप्ताहात् ·····॥ (भा० प्र० सदृश ही) (यो० र० स्त्रीरो० चि०)

वृद्धत्रयी के साथ ही काश्यप, शार्ङ्गधर, भेल तथा हारीत आदि किन्हीं भी संहिताओं में स्पष्टरूप से गर्भाधाननिरोधक उपायों का वर्णन नहीं मिलता। गर्भाधान के लिए उपयुक्त सामग्री अर्थात् ऋतु, क्षेत्र, बीज एवं अम्बु के वर्णन से अप्रत्यक्ष संदर्भ निकाला जा सकता है कि इनमें यदि कृत्रिम रूप से परिवर्तन किया जाय तो गर्भाधान नहीं होगा। ऋतुकाल के वर्णन से ऋतावतीत काल को सुरक्षित काल का संदर्भ (पृ० ७२, ७६) मान सकते हैं। इसी प्रकार स्त्री की विभिन्न शारीरिक स्थितियों में मैथुन निषेध के वर्णन (पृ० ८५) से यह समझ सकते हैं कि यदि गर्भाधान की आकांक्षा न हो तो संभोग इन स्थितियों में किया जाय, क्योंकि सम्भवतः ये स्थितियाँ अपूर्ण संभोग की ओर इंगित करती हैं। गर्भपातक औषधियों के प्रयोग का उल्लेख गर्भस्राव निदानान्तर्गत किया गया है[1]।

भावप्रकाश में गर्भाधान निरोधक तथा योगरत्नाकर में गर्भाधान-निरोधक एवं गर्भपातक कुछ योगों का वर्णन है जो यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है।

Now-a-says description or advice of contraceptives is one of the integral part of postnatal management. Induction of abortion is also now considered as one of the methods to limit the family. Though need of contraceptives is sometimes felt by recently married couples, however, now-a-days when marriage of fully mature individuals take place, its necessity is felt only after delivery. Considering this point references pertaining to contraception or induction of abortion availabe in the books included in present work are being recapitulated here.

None of the Caraka, Suśruta, both Vāgbhatas, Kāśyapa, Śārṅgadhara, Bhela and Hārīta etc. have mentioned contraceptives or methods of contraception in unequivocal terms. With the description of four factors i.e. *ṛtu* (ovulation period), *kṣetra* (reproductive organs), *bīja* (sperm and ovum) and *ambu* (nutrients) essential for conception, it can be indirectly inferred that if these factors are influenced artificially conception will not take place. All the methods of contraception available to-day influence one or the other factor out of these four. With the description of *ṛtukāla* (fertile period) the inference for "safe period" can be drawn, similarly contraindication of various postures of woman during coitus probably hints for incomplete coitus. In the causes of abortions use of abortifacient drugs is also included.

In Bhāvaprakāśa contraceptives and in Yogaratnākara contraceptives and abortifacients have been described which are being recapitulated here.

१) गर्भाधाननिरोधक औषधियाँ (Contraceptives)

(अ) बाह्य प्रयुक्त औषधियाँ (External or local contraceptives)

१) जो स्त्री सैन्धव-खण्ड को तैल में भिगोकर अपनी योनि के रन्ध्र (योनिनलिका) में रखकर पुरुष के साथ मैथुन करती है वह कभी भी गर्भधारण नहीं करती[1]।

२) जो स्त्री ऋतु के अंत में योनिरन्ध्र का निम्बकाष्ठ से युक्तिपूर्वक धूपन करके मैथुन करती है उसे गर्भ स्थिर नहीं होता[1]।

३) जो स्त्री कृष्णचतुर्दशी को धतूरे की जड़ को उखाड़कर, कमर में धारण करके, पति के साथ मैथुन करती है

१. सु० सं० नि० ८/३ एवं भा० प्र० चि० ७०/७० (पृष्ठ ३२१ से ३२३)

नोट - बाह्य प्रयुक्त औषधियों के सन्दर्भ पृष्ठ ६१० में देखें।

Scanned with CamScanner

उसे गर्भ की कोई भी सम्भावना नहीं रहती, उसे खोल देने पर गर्भधारण हो जाता है, ऐसा नागार्जुन का मत है[1]।

४) उपर्युक्त धतूरे की मूल के चूर्ण को योनि में रखने से (सम्भोग से पूर्व) गर्भ कभी भी स्थिर नहीं होता[1]।

i) The woman having coitus after placing in the vaginal canal a piece of rock salt moistened with oil, never conceives.

ii) The woman who after *ṛtukāla* properly fumigates her vaginal canal with the wood of *nimba* never conceives.

iii) There is no chance of conception to the woman having coitus after tieing in the waist the root of *dhattūra* uprooted on fourteenth day of first fortnight of lunar month. Once she removes this root, she conceives.

iv) Filling of vaginal canal with the powder of above mentioned root of *dhattūra* before coitus also prevents conception.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त सभी द्रव्य प्रत्येक बार मैथुन करते समय प्रयुक्त करने चाहिए। औषधियाँ मार्गावरोध करके शुक्राणु-प्रवेश-बाधक या शुक्राणु-नाशक के रूप में कार्य करती होंगी। कटि में धारण से गर्भनिरोध की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण कठिन है।

All above methods are to be used at every coitus. These might be acting as mechanical barriers and spermicidal agents. It is difficult to explain mode of action of the drug tied in the waist.

आ) आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियाँ (Oral contraceptives)

१) जो स्त्री ऋतु के समय (ऋतुकाल में) पिप्पली, विडङ्ग एवं टंकण के समान भाग चूर्ण को दूध या जल के साथ पान करती है उसे गर्भ कदापि नहीं रहता[1,2]।

२) जो पुष्पिणी स्त्री (रजःस्राव के समय) जपाकुसुम को काञ्जी के साथ पीसकर तीन दिन तक पीती है और एक सौ वर्ष पुराना गुड़ एक पल मात्रा में सेवन करती है वह स्त्री कभी भी गर्भधारण नहीं करती[1,2]।

३) तण्डुलीयकमूल को चावल के धोवन के साथ पीसकर ऋतु के अन्त में (रजःस्राव के अंत में) तीन दिन तक पान, स्त्री को वन्ध्या बना देता है[2]।

४) तालीस और गैरिक को (समान भाग) बिडालपद मात्रा में चौथे दिन (रजःस्राव के चौथे दिन) शीतल जल के साथ पीने से स्त्री वन्ध्या हो जाती है[3]।

१. तैलाक्तिं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये।
नरेण सार्धं रतिमातनोति या न सा हि गर्भं लभते कदाचित्॥
घृषिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठैश्च युक्तितः। ऋत्वन्ते रमते या स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात्॥
ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां धत्तूरस्य च मूलकम्। कटौ बद्ध्वा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवेत्क्वचित्॥
मुक्ते न (च शु० पा०) लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम्।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभवेत्क्वचित्॥ (यो० र० योनिव्या० चि०)

नोट- आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधियों के सन्दर्भ पृष्ठ ६११ में देखें।

i) The woman who uses equal quantity of powdered *pippalī*, *viḍaṅga* and *taṅkaṇa* with water or milk during *ṛtukāla* never conceives.

ii) The menstruating woman who uses flowers of *japā* mixed with *kāñjī* followed by one hundred years old jaggery in the dose of one *pala* for three consecutive days never conceives.

iii) Use of root of *taṇḍulīyaka* pestled with washings of rice for three consecutive days after menstruation makes the woman infertile.

iv) Use of equal quantity of powdered leaves of *tālīsa* and *gairika* in the dose of one *karṣa* with cold water on fourth day of menstruation makes the woman infertile.

विमर्श (Comments)

उपर्युक्त औषधियाँ गर्भाधान का निरोध सम्भवतः निम्न प्रकार से करती हों-

१) स्त्रीबीज को परिपक्व या उत्सर्जित होने से रोक कर।

२) गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था में ही उसकी वृद्धि को रोक कर।

३) गर्भ को गर्भाशयान्तःकला में संलग्न होने से रोक कर।

४) स्त्री-प्रजननाङ्ग विशेषकर गर्भाशय-ग्रीवा के श्लेष्मा में इस प्रकार के परिवर्तन कर, कि वह शुक्राणु प्रवेश न होने दे।

उपर्युक्त सभी सैद्धान्तिक सम्भावनायें हैं प्रयोगात्मक परीक्षणों से ऐसा सिद्ध हुआ है कि इस प्रकार प्रयुक्त औषधियाँ अधिकांशतः गर्भ को गर्भाशयान्तःकला में संलग्न होने से रोककर परिवार-नियोजन का कार्य करती हैं।

Above mentioned preparations might be preventing conception by acting as antiovulatory, antizygotic or antiimplantation agents, besides these also might be producing some such changes in the cervical mucus that it becomes hostile to sperm penetration. However, all these are hypothetical possibilities, experiments have shown that most of the drugs prevent conception by preventing implantation of fertilized egg.

२) गर्भपातक औषधियाँ (Abortifacients)

अ) स्थानिक प्रयोग (Local application)

एरण्डपत्र-काण्ड को योनि में आठ अंगुल प्रवेश करने से चार मास का गर्भ तुरन्त ही स्रवित हो जाता है[3]।

१. पिप्पलिविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा। ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि॥३३॥
आरनालपरिपेषितं ज्यहं या जपाकुसुममिति पुष्पिणी। सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमङ्गना॥३४॥
(भा० प्र० चि० ७०)

२. पिप्पलि·····क्वापि॥ आरनाल ·····। ·····सा दधाति ·····॥ (भा० प्र० सदृश)
तुण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा। ऋत्वन्ते तु ज्यहं पीत्वा वन्ध्या कुर्वन्ति योषितः।
तालीसगैरिकेपीते बिडालपदमात्रके। शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि बन्ध्या नारी प्रजायते॥ (यो० र० योनिव्या० चि०)

३. काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत्। चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात्॥ (यो० र० योनिव्या० चि०)

Scanned with CamScanner

Insertion of leafstalk of *eraṇḍa* upto eight *aṅgulas* (approximately six inches) in vaginal canal produces abortion of even four months pregnancy.

आ) आभ्यन्तर प्रयोग (Oral medicines)

१) गृञ्जन के बीज तीन टङ्क, दाडिम मूल तीन टङ्क, तुवरी २ टङ्क और सिन्दूर २ टङ्क लेकर खरल में भली भाँति पीसकर जल के साथ गर्भवती, विधवा या वेश्या पान करे तो अपना गर्भ शीघ्र ही गिरा लेती है[१]।

२) चित्रकमूल को निर्गुण्डी के स्वरस में पीसकर मधु मिलाकर एक कर्ष की मात्रा में पीने से उच्चकुलोत्पन्न विधवा स्त्री अपना गर्भ गिरा लेती है[१]।

३) गर्भवती स्त्री यदि देवालय के एक कर्ष चूने को शीतल जल के साथ पीसकर पान करे तो गर्भ शीघ्र ही स्रवित हो जाता है[१]।

४) घोटी के पुरीष को काञ्जी में घोलकर कपड़े से छानकर उसमें सैन्धव, उग्रा, आसुरी, तैल तथा विष मिला पान करना स्थिर गर्भ का नाश कर देता है[१]।

i) Seeds of *gṛñjana* three *taṅka*, roo: of *dāḍima* three *taṅka*, *tuvarī* two *taṅka* and *sindūra* two *taṅka* properly powdered and mixed in mortar, if used with water by pregnant widow or prostitute woman produce abortion immediately.

ii) Widow woman of high family gets herself aborted by using one *karṣa* root of *citraka* pestled with juice of *nirguṇḍī* and mixed with honey.

iii) If pregnant woman takes lime of temple (scrappings of white washings with lime from the walls of temples) in the dose of one *karṣa* mixed with cold water, she aborts quickly.

iv) Dung of mare dissolved with *kāñjī* should be strained through cloth, in this filtrate powdered rock salt, *ugrā*, *āsurī*, oil and *viṣa* should be mixed. Use of this produces abortion.

❐

१. गृञ्जनबीजं टङ्कत्रितयं तावच्च दाडिमीमूलम्। तुवरीटङ्कद्वितयं सिन्दूरं टङ्कयुगलं च॥
संमर्द्य खल्वमध्ये तोयेनैतन्निपीय गर्भवती। रण्डा योषिद्गर्भं वेश्या वा पातयत्याशु॥
निर्गुण्डीद्रवसंपिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम्। कर्षं पीत्वा स्रवत्याशु गर्भं रण्डा कुलोद्भवम्॥
देवालये तु यच्चूर्णं कर्षैकं तोयपेषितम्। पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात्॥
आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम्। ससिन्धूग्रासुरी तैलविषमागतगर्भनुत्॥ (यो० र० योनिव्या० चि०)

अध्याय १०

CHAPTER X

नवजात शिशु-परिचर्या विज्ञानीय
(MANAGEMENT OF NEW BORN CHILD)

शिशु-परिचर्या के क्षेत्र मे प्रसूति एवं बालरोग विशेषज्ञ दोनों का ही योगदान होता है। वर्तमान चिकित्सिकीय स्थिति के आधार पर यह विषय बालरोग चिकित्सकों के अधिकारक्षेत्र में माना जाता है, फिर भी प्रसव के तत्काल पश्चात् प्रसूति-विशेषज्ञ को ही नवोत्पन्न शिशु की परिचर्या का भार अधिकांशतः वहन करना पड़ जाता है, साथ ही स्त्री को स्तनपान कराने आदि की शिक्षा भी देनी पड़ती है; इसी आधार पर इस अध्याय में नवजात शिशु की तत्काल परिचर्या तथा स्तनपान विधि आदि का उल्लेख किया जा रहा है।

Though now-a-days the management of new born child comes under the jurisdiction of neonatologist, however, at most of the times the obstetrician is confronted with the problem of immediate management of new born, besides advice for method of feeding etc. has also to be given. Considering this point the management of new born child, specific method of breast feeding etc. are described in this chapter.

नवजात शिशु की तत्काल परिचर्या (Care of new born immediately after birth)

तस्यास्तु खल्वपरायाः प्रपतनार्थे कर्मणि क्रियमाणे जातमात्रस्यैव कुमारस्य कार्याण्येतानि कर्माणि भवन्ति; तद्यथा-अश्मनोः संघट्टनं कर्णयोर्मूले, शीतोदकेनोष्णोदकेन वा मुखपरिषेकः, तथा स क्लेशविहतान् प्राणान् पुनर्लभेत। ..... ॥ ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्य स्नानोदकग्रहणाभ्यामुपपादयेत्॥ ४२॥

अथास्य तालोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेताङ्गुल्या सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या। प्रथमं प्रमार्जितास्यस्य चास्य शिरस्तालु कार्पासपिचुना स्नेहगर्भेण प्रतिसंछादयेत्। ततोऽस्यानन्तरं सैन्धवोपहितेन सर्पिषा कार्यं प्रच्छर्दनम्॥ ४३॥ ततः कल्पनं नाड्याः॥ ४४॥

अतोऽनन्तरं जातकर्म कुमारस्य कार्यम्। तद्यथा-मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते यथाम्नायं प्रथमं प्राशितुं दद्यात्॥ ४६॥ (च० सं० शा० ८/४२, ४३, ४४, ४६)

अथ जातस्योल्वं मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य, घृताक्तं मूर्द्ध्नि पिचुं दद्यात्। ततो नाभिनाड़ीम् ..... छेदयेत्॥ ..... ॥

अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्तचूर्णमङ्गुल्याऽनामिकया लेहयेत्; ततो बलातैलेनाभ्यज्य ..... स्नापयेदेनम् ..... ॥ (सु० सं० शा० १०/१२,१३)

तद्वच्चान्यतमा स्त्री जातमात्रमेव बालं बालोपचरणीयेन विधिनोपपादयेत्। तमुपदेक्ष्यते तृत्तरेषु॥ (अ० सं० शा० ३/३७)

अथ खलु जातमात्रमेव बालमुल्बात् सैन्धवसर्पिषा मार्जयेत्॥ २॥

ततोस्यातिप्रबलमोहन्चरपरीतसर्वगात्रस्य क्रोशितुमपिरुजानुरूपमसमर्थस्यानवस्थिताशेषदेहयातोरसम्भाव्ययैव-

Scanned with CamScanner

नाद्यवस्थस्यक्रकचस्पर्शमिव करवसनशयनसंसर्ग मन्यमानस्याविकल्पितमङ्गानि विक्षिपतः पुनरिव मरणमनुभवतो लीयमानसंज्ञस्यातिसंबाधयोनिपुटावपीडितप्राणप्रत्यानयनाय बलातैलेन परिषेकं कुर्यात्। कर्णमूले चाश्मनोः संघट्टनम् ॥ ३॥

प्रत्यागतप्राणस्य च प्रकृतिभूतस्य नाभिनालं ····· वर्धयेत् ॥ ५॥

ततः ····· स्नापयेत् ॥ ६॥

ततोऽस्य सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपवानया कार्पासपिच्छगुण्ठितया दक्षिणप्रदेशिन्या जिह्वौष्ठकण्ठमनुसुखं प्रमृज्यात्। तालु चोन्नाम्य स्नेहपिचुनोपरिष्टादवगुण्ठयेत् ॥ ७॥

ततश्चैन्द्रीब्राह्मीशङ्खपुष्पीवचाकल्कं मधुघृतोपेतं हरेणुमात्रं कुशाग्राभिमन्त्रितं सौवर्णेनाश्वत्थपत्रेण मेधायुर्बलजननं प्राशयेत्। तद्वत् ब्राह्मीबलानन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णं वा ॥ ८॥

ततः सैन्धवोपहितेन सर्पिषा गर्भोदकानि वामयेत्। तथास्योरःकण्ठविशुद्ध्या लाघवमभिलाषश्च जायते ॥ ९॥

अथास्य जातकर्म प्राजापत्येन विधिना कुर्यात्। अपि च ॥ १०॥ (अ० सं० उ० १/२, ३,५ से १०)

जातमात्रं विशोध्योल्बाद् बालं सैन्धवसर्पिषा। प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् ॥ १॥
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत्। अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम् ॥ २॥
स्वस्थी भूतस्य नाभिं च ····· । ····· वर्धयित्वा ····· ॥ ५॥
·····स्नपयेदनु ॥ ····· ॥ ६॥
·····निमज्जनैः। ततो दक्षिणतर्जन्या तालूत्रम्यावगुण्ठयेत् ॥ ७॥
शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत्। हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमन्त्रितम् ॥ ८॥
ऐन्द्रीब्राह्मीवचाशङ्खपुष्पीकल्कं घृतं मधु। चामीकरवचाब्राह्मीताप्यपथ्याजीकृताः ॥ ९॥
लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा। गर्भाम्भः सैन्धवता सर्पिषा वामयेत्ततः ॥ १०॥
प्रजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत् ॥ ११॥ (अ० ह० उ० १/१, २, ५ से ११)

उस प्रसूता स्त्री की अपरा के पातन के लिए कर्म करते हुए, उत्पन्न हुए कुमार के लिए ये कर्म करने योग्य होते हैं (अर्थात् ये कर्म करने चाहिए)। कर्णमूल में दो पत्थरों को लेकर बजाना तथा शीत अथवा उष्णोदक से मुख का परिषेक अर्थात् गर्मी में शीतोदक एवं जाड़े में उष्णोदक से मुख का परिषेक[1] करना चाहिए। इन (क्रियाओं) से वह (शिशु) क्लेश से रहित होकर अर्थात् प्रसव के समय प्राप्त योनि अथवा यंत्र के पीड़न से उत्पन्न क्लेश से रहित हो प्राणों को पुनः प्राप्त करता है (अर्थात् पूर्णरूपेण चैतन्य हो जाता है)। प्राणप्रत्यागत एवं प्रकृतिभूत हो गया हुआ देखकर, उसे स्नान तथा उदक-ग्रहण अर्थात् उसके मलमार्ग का शोधन करना चाहिए[1]।

तत्पश्चात् भलीभाँति कटे हुए नाखून वाली उँगली के ऊपर भलीभाँति धुले हुए कार्पास का आवरण करके बालक के तालु, ओष्ठ, कण्ठ एवं जिह्वा को स्वच्छ करना प्रारम्भ करना चाहिए। मुख स्वच्छ किए हुए इस (बालक) के शिरस्तालु (ब्रह्मरन्ध्र के स्थान के ऊपर) को स्नेह से आप्लावित कार्पास पिचु से आच्छादित कर दें। तत्पश्चात् सैन्धव से मिश्रित घृत के द्वारा वमन करावें।

तत्पश्चात् नाभि का उपकल्पन करें (अर्थात् नाभिनाड़ी को काटें)। इसके बाद जातकर्म (वेदोक्त कर्म) करें अर्थात् यथाम्नाय (यथाविधि या देश, काल, जाति के आधार पर या उनमें प्रचलित) मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके मधु एवं सर्पि का प्रथम प्राशन दें।

१. शीतोदकेनोष्णोदकेन **वेति** विकल्पो ऋतुभेदेन ज्ञेयः; ग्रीष्मकाले शीतोदकेन, शीतकाले तूष्णोदकेनेत्यर्थः क्लेशविहितानिति योनियन्त्रपीडनादिक्लेशपरिग्रहतान्। ·····। उदकग्रहणं मलमार्गशौचार्थम्। (च० सं० शा० ८/४२ की चक्र० टीका)

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि उत्पन्न हुए बालक के उल्व (शरीर के ऊपर आच्छादित श्वेत द्रव्य) को हटाकर मुख को सैन्धव एवं सर्पि से शोधन करके (मुख एवं कण्ठगत श्लेष्मा को दूर करके) मूर्द्धा में घृताक्त पिचु रखें। तत्पश्चात् नाभिनाड़ी का छेदन करें।

इसके बाद (योनि एवं यंत्र के पीडन से मूर्छित[1]) कुमार को शीतल जल से (जल से परिषेचन के द्वारा) आश्वासित करके, जातकर्म करने के पश्चात् मधु-सर्पि एवं अनन्त (स्वर्ण) चूर्ण को गुञ्जा-मात्रा[1] में मिला कर अनामिका अङ्गुलि से लेहन करायें। तत्पश्चात् इस बालक का बलातैल से अभ्यङ्ग कर इसे स्नान करायें। टीकाकार डल्हण ने ब्रह्मदेव के मत का उद्धरण देते हुए लिखा है कि घृत के स्थान में मूर्द्धा में बलातैलाक्त पिचु का धारण कराना[1] चाहिए।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि अन्य स्त्री उत्पन्न शिशु की बालोपचारणीय विधि से परिचर्या करे। जो मै उत्तरतन्त्र में वर्णन करूँगा।

उत्पन्न होते ही बालक का उल्व सैन्धव एवं सर्पि के द्वारा साफ करें।

तत्पश्चात् इस अति प्रबल मोह एवं ज्वर से पीड़ित सर्वाङ्ग वाले, पीड़ा के अनुरूप रोने में असमर्थ, देह की धातुओं के अशेष (क्षीण) एवं अनवस्थित (अस्थिर) स्थिति वाले, यौवनावस्था की प्राप्ति की असम्भाव्यता वाले (मृत्यु हो जाने से यौवनावस्था प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठेगा अर्थात् मरणासन्न); हाथ, वस्त्र एवं शय्या के स्पर्श को आरी के समान अनुभव करते हुए, निरन्तर अङ्गों को इधर उधर फेंकते हुए, योनिपुटकों के बीच (प्रसवकाल जन्य) अत्यधिक दबाव के कारण संज्ञा के लीन होने से पुनः मरण का अनुभव करते हुए (बालक) का बलातैल से परिषेचन एवं उसके कर्णमूल में अश्म का संघटन करना चाहिए।

प्राणों के प्रत्यागमन से सामान्य प्रकृतिभूत होने पर नाभिनाल का बर्धन (कर्तन) कर स्नान कराना चाहिए।

तत्पश्चात् भलीभाँति नाखून कटी हुई एवं भली प्रकार धोकर, हवा से सुखाकर, कार्पास पिचु से अवगुण्ठित (लिपटी हुई) दक्षिण तर्जनी उँगली से जिह्वा, ओष्ठ एवं कण्ठ को सुखपूर्वक या धीरे-धीरे साफ करें। तालु को ऊपर उठाकर स्नेह पिचु से शिरस्तालु को आच्छादित करें।

तत्पश्चात् ऐन्द्री, ब्राह्मी, शंखपुष्पी एवं वचा के कल्क को मधु एवं घृत मिलाकर हरेणु (सूक्ष्म) की मात्रा में, कुशा के अग्र भाग से अभिमंत्रित करके, स्वर्ण से निर्मित अश्वत्थपत्र के द्वारा मेधा, आयु एवं बल को उत्पन्न करने के लिए प्राशन करायें। इसी प्रकार ब्राह्मी, बला, अनन्ता तथा शतावरी या अन्य औषधियों के चूर्ण का भी प्रयोग करें।

इसके बाद सैन्धव मिले हुये सर्पि से गर्भोदक का वमन करायें, इससे उर एवं कण्ठ का शोधन हो जाता है, लघुता आ जाती है तथा (आहार की) इच्छा उत्पन्न होती है।

तत्पश्चात् प्रजापति विधि से जातकर्म करना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि उत्पन्न हुए बालक के उल्व को सैन्धव एवं सर्पि के द्वारा साफ करें तथा प्रसूति-क्लेश-निवारणार्थ बलातैल से अनुसेचन कर कर्णमूल में अश्म-संघटन करें, तथा दक्षिण कर्ण में इस मन्त्र का उच्चारण करे (मन्त्र पृष्ठ ६२० में देखें)। बालक के स्थिर हो जाने पर नाभि का बर्धन (कर्तन) कर स्नान करायें। तत्पश्चात् दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से तालु का उन्नमन कर, शिर का स्नेह-पिचु से आच्छादन कर, मेधा, आयु तथा बल के लिए आगे वर्णित प्राशनों को अभिमन्त्रित करके हरेणु प्रमाण की मात्रा में प्रयोग करें। ऐन्द्री, ब्राह्मी, वचा, शंखपुष्पी का कल्क अथवा चामीकर (स्वर्ण), वचा, ब्राह्मी, ताप्य (स्वर्णमाक्षिक) एवं पथ्या का चूर्ण अथवा हेम (स्वर्ण) तथा धात्री का चूर्ण घृत

१. उल्वं जरायुं, विशोध्य अपनीय, मुखं च विशोध्य निर्मलीकृत्य, तदपि मुखकण्ठगतजरायुकफापनयनेन। ·····। ब्रह्मदेवस्तु घृताक्तमिति पदं परित्यज्य पिचुं दद्यादित्यत्र **'बलातैलाक्तमिति शेषः'** इति व्याख्याति। ·····। आश्वास्य योनियन्त्रपीडन-मूर्च्छितम्। अनन्तचूर्णं सुवर्णचूर्णं·····। चूर्णप्रमाणंतु जातमात्रस्य गुञ्जामात्रम्।
(सु० सं० शा० १०/१२, १३ की डल्ह० टी०)

Scanned with CamScanner

एवं मधु के साथ लेहन करायें। तत्पश्चात् सैन्धव युक्त घृत से गर्भादक का वमन करायें एवं प्रजापति विधि से जातकर्म करवायें।

महर्षि हारीत ने संक्षेप में लिखा है कि उत्पन्न होने के बाद बालक का जातकर्म करना चाहिए[1]।

आचार्य भावमिश्र ने लिखा है कि कुल की वृद्ध स्त्रियों के आदेशानुसार व्यवहार एवं परम्परा के आधार पर उत्पन्न बालक के विभिन्न विधान सम्पन्न करने चाहिए[2]।

Caraka says that the attendant should care the new born in following way. She should produce sound by striking or rubbing two stones together near the base of ear of the neonate, sprinkle over face of the child the hot or cold water alternately or on the basis of season i.e. cold water during summer and hot water during winter. With these procedures the child gets relief from the troubles caused by compression in the *yoni* (maternal passage) or from the instruments used at the time of delivery, besides it also regains the life. Once the child has properly regained life and has become totally normal, bath should be given and anal orifice should also be cleaned. Now the woman should wrap the finger, nail of which is already trimmed, with well washed cotton swab and cleanse the palate, lips, throat and tongue of the child with this finger and then cover the *brahmarandhra* (anterior fontanelle) with cotton impregnated with oil. Now *ghṛta* mixed with rock salt should be given orally for producing emesis, cutting of umbilical cord and *jātakarma* should be done according to the rituals prevalent in country at that period and also in one's own caste or family, then first feeding with honey and *ghṛta* treated with *mantras* should be given.

Suśruta says that after removing *ulva* (vernix caseosa) from the body and cleaning the oral cavity with rock salt and *ghṛta, mūrdhā* (forehead or anterior fontanelle) should be covered with tampon soacked with *ghṛta* or *balā taila*, then umbilical cord should be cut. Now the child unconscious due to compression in *yoni* and by instruments should be revived or encouraged by sprinkling or irrigating cold water, and after performing the *jātakarma* honey, *ghṛta* and powder of *anantā* (gold) in the dose of one *guñjā* with index finger should be given for licking, then after massaging with *balā taila* the bath should be given.

Vāgbhaṭa I has advised removal of *ulba* (vernix caseosa) with rock salt and *ghṛta*. After this the child who is suffering from fever and deep unconsciousness, is unable to cry as per intensity of pain, whose *dhātus* have decreased and are unstable, attainment of youth is doubtful or is unable to survive long, touch of hand, cloths or bed gives the pain as if being cut by saw and appears to be dieing due to unconsciousness caused by compression in *yoni*, should be irrigated with *balā taila*. Striking of two stones together should be done near the base of ear. After proper revival, umbilical cord should be cut and bath given. Now tongue, lips and throat should be gently cleaned with nail trimmed, properly washed, dried and cotton wrapped index finger of right hand. After elevating the *tālu* (palate) bregma should be covered with tampon soaked with fat. Now the child should be given paste of *aindrī*,

१. जातके सुतमोक्षञ्च ..... । (हा० सं० तृ० स्था० ५३/६)

२. अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं तथा। यथैव कुलवृद्धस्त्रीव्यवहारपरम्परा ॥ १॥ (भा० प्र० पूर्व० ४)

brāhmī, śaṅkhapuṣpī and *vacā* with honey and *ghṛta* in the dose of *hareṇu* (a kind of pea) after consecrating it with the tip of *kuśa*. This preparation is to be fed with a spoon resembling leaf of *aśwattha* made of gold for producing/increasing *medhā* (intellect), *āyu* (longevity) and *bala* (strength). Powder of *brāhmī, balā, anantā, śatāwarī* and other drugs can also be used with similar procedure. Now the child should be made to vomit the liquor amni by giving rock salt and *ghṛta*. This emesis clears the throat and chest, produces lightness and also desire for food. After all this the *jātakarma* should be done by usual rituals.

Vāgbhaṭa II giving the description almost like Vāgbhaṭa I has prescribed certain *mantras* to be recited in the right ear of child and also either paste of *aindrī, brāhmī, vacā* and *śaṅkhapuṣpī* or powders of gold, *vacā, brāhmī, tāpya* and *pathyā* or gold and *dhātrī* with honey and *ghṛta* in the list of drugs to be given to the child.

Hārīta has advised only *jātakarma*. Bhāwamiśra says that various rituals should be performed according to the advice of old ladies based on the practice and traditions.

विमर्श (Comments)

वृद्धत्रयी में नवजात शिशु-परिचर्या का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें तत्काल के प्राण प्रत्यागमन, स्नान, प्रच्छर्दन, नाभि-उपकल्पन, जातकर्म, तत्पश्चात् प्राशन या स्तनपान आदि का सुस्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन दिया गया है। परन्तु आचार्यों में इन प्रक्रियाओं की पूर्वापरता में मत-वैभिन्य है, यथा महर्षि चरक नाभि-उपकल्पन शिशु के स्नान एवं वाग्भट ने प्राणप्रत्यागमन तथा मुख-शोधन के बाद लिखा है, स्नान उसके बाद की प्रक्रिया है। शिशु के जन्म के पश्चात् की प्रक्रियाओं का विभिन्न आचार्यों के मत से क्रमानुसार वर्णन तालिका ११ में दिया जा रहा है। महर्षि सुश्रुत सदृश लब्ध-प्रतिष्ठ शल्य-वेत्ता ने प्रच्छर्दन तथा अचेष्ट शिशु की चिकित्सा का कोई विधान वर्णित नहीं किया यद्यपि टीकाकार डल्हण ने विषय का संक्षिप्त विवरण दे दिया है।

तालिका–११

क्रम संख्या	चरक सं०	सुश्रुत सं०	अं० सं०	अ०हृ०
१)	कर्णमूल में अश्म-संघट्टन	उल्व-अपनयन	उल्ब-मार्जन	उल्ब-मार्जन
२)	क्लेश निवारणार्थ शीतोष्णोदक से मुख-परिषेक	सैन्धव-सर्पि से मुख-शोधन	प्रसव-कष्ट-निवारणार्थ बलातैल-अभिसिञ्चन	बलातैल अभिसिञ्चन
३)	प्राणप्रत्यागमनार्थ (अचेष्ट को) कृष्णकपालिका शूर्पादि से वायु करना	मूर्धा में स्नेहाक्त पिचु-धारण	कर्णमूल में अश्म-संघट्टन	कर्णमूल में अश्म-संघट्टन
४)	स्नान एवं उदक ग्रहण	नाभिनाड़ी-उपकल्पन	अचेष्ट शिशु की चरक-सदृश चिकित्सा	नाल-छेदन
५)	तालु आदि का परिमार्जन	शीतादि क्रिया से आश्वासन	नाभिनाल-उपकल्पन	स्नान
६)	शिर में तैलाक्त कार्पास पिचु-धारण	जातकर्म	स्नान	तालु अवगुण्ठन एवं उन्नमन

Scanned with CamScanner

क्रम संख्या	चरक सं०	सुश्रुत सं०	अं० सं०	अ० हृ०
७)	सैन्धव सर्पि से प्रच्छर्दन	मधु, सर्पि एवं अनन्ता का प्रथम लेहन	तालु एवं कण्ठ का परिमार्जन तथा तालु उठाना	मूर्धा में स्नेह-पिचु-धारण
८)	नाभि-उपकल्पन	बलातैल अभ्यङ्ग	मूर्धा में स्नेह-पिचु-धारण	विशिष्ट औषधियों का अवलेहन
९)	जातकर्म	स्नान	विशिष्ट औषधि-प्राशन	वमन
१०)	मधु एवं सर्पि का प्रथम प्राशन	-	सैन्धव-सर्पि से वमन-कराना	जातकर्म
११)	-	-	जातकर्म	-

महर्षि चरक द्वारा नाभि-उपकल्पन क्रिया का स्नान एवं प्रच्छर्दन के बाद वर्णन तथा सुश्रुत एवं वाग्भट द्वारा अचेष्ट-शिशु की चिकित्सा के पूर्व उल्व-परिमार्जन एवं वाग्भटद्वय द्वारा लेहन के बाद गर्भोदक-वमन का उल्लेख क्रियात्मक दृष्टया उचित प्रतीत नहीं होता।

अश्म-संघटन सम्भवतः केन्द्रीय नाड़ीवहसंस्थान की क्रियाशीलता की परीक्षा के लिए किया जाता हो जिसका आधुनिक प्रतिरूप मोरोज रीफ्लेक्स है। चरक द्वारा वर्णित मलमार्ग-शोधन एवं वाग्भट द्वारा वर्णित तालु-उन्नमन सम्भवतः इन अङ्गों की विशिष्ट परिक्षा के परिचायक हैं।

महर्षि चरक द्वारा वर्णित शीतोष्णोदक के द्वारा मुख-परिषेक के वर्णन को टीकाकार चक्रपाणि ने ऋतुभेद-परिचायक माना है। यह भी सम्भव है कि शीत अथवा उष्ण जल एकान्तर (बारी-बारी से)-प्रयोग के लिए वर्णित हों, क्योंकि नील-श्वासावरोध में इस प्रकार के प्रयोग से त्वचा की संज्ञावह नाड़ियों को प्रभावित कर प्रत्यावर्तित क्रिया के द्वारा श्वसन केन्द्र को उत्तेजित करने की प्रथा बीसवी शती में भी वर्णित मिलती है[१]।

Though all the classics have given description of various procedures to be employed in the management of new born child, however, there is difference of opinion in sequence of these procedures as shown in following table.

TABLE

S.No.	C.S.	S.S.	A.S.	A.H.
1.	Striking of Stones.	Cleaning of vernix caseosa.	Cleaning of vernix caseosa.	Cleaning of vernix caseosa.
2.	Irrigation of mouth with cold or hot water.	Cleaning of oral cavity with rock salt and *ghṛta.*	Irrigation of body with *balā taila*	Irrigation with *balā taila.*
3.	Resuscitation (described later).	Tampon application on forehead.	Striking of stones.	Striking of stones.
4.	Bath and cleaning of anus.	Cutting of umbilical cord.	Resuscitation.	Cutting of umbilical cord.

१. हेनरी जेलेट एवं मॅडिल द्वारा लिखित "मैन्युअॅल ऑव मिडविफॅरी" (पृष्ठ ११५४)

S.No.	C.S.	S.S.	A.S.	A.H.
5.	Cleaning of palate.	Revival with sprinkling of cold water.	Cutting of umbilical cord.	Bath.
6.	Application of tampon on head.	*Jātakarma.*	Bath.	Cleaning and elevation of palate.
7.	Induction of emesis.	Licking of honey *ghṛta,* gold etc.	Cleaning of throat and elevation of palate.	Tampon application on forehead.
8.	Cutting of umbilical cord.	*Balātaila* massage.	Tampon on head.	Licking of drugs etc.
9.	*Jātakarma.*	Bath.	Licking of drugs etc.	Induction of emesis.
10.	Licking of honey & *ghṛta.*	—	Induction of emesis.	*Jāta-karma*
11.	—	—	*Jātakarma.*	—

Description of cutting of umbilical cord after bath etc. procedures (described above) by Caraka and indication for cleaning the vernix caseosa before revival or resuscitation by Suśruta and Vagbhaṭā-I and induction of emesis after oral feeding of specific drugs by Vāgbhaṭas does not seem to be proper.

Striking of stones near the base of ear might have been advised to examine the condition of central nervous system which resembles to certain extent with Moro's reflex. Advice to clean anus and elevate the palate is probably given to emphasize specific examination of these body parts.

Sprinkling with hot and cold water advised by Caraka has been explained by Cakrapāṇi that the hot or cold water is to be used according to specific season. However, it might have been prescribed for alternate use. The practice of stimulating respiratory centre in asphyxia-livida through skin reflexes produced by alternate hot and cold bath was prevalent in twentieth century also.[1]

जन्मोत्तर अचेष्ट बालक की चिकित्सा-विधि (Resuscitation of unconscious or asphyxiated child)

कृष्णकपालिकाशूर्पेण चैनमभिनिष्पुणीयुर्यद्यचेष्टः स्याद् यावत् प्राणानां प्रत्यागमनम् (तत्तत् सर्वमेव कार्यम्)॥ (च० सं० शा० ८/४२)

यदि वाचेष्ट एव स्यात्ततः कृष्णकपालिकया शूर्पेण चैनमभिनिष्पुनीयात्। दक्षिणकर्णमूले च मन्त्रमस्योच्चारयेत्॥ (अ० सं० उ० १/४)

1. "Manual of midwifery" by H. Jellet and D. G. Mandill pp 1154

Scanned with CamScanner

यदि बालक (जन्मोपरान्त) अचेष्ट हो तो कृष्णकपालिका अर्थात् ईषिका या नल, मुञ्ज, वंश आदि से बनाए हुए शूर्प[1] अथवा काले किए गए टूटे हुए मिट्टी के बर्तन के द्वारा हवा तब तक करें जब तक कि प्राणों का प्रत्यागमन न हो जाय (अर्थात् शिशु का सामान्य श्वासोच्छ्वास न प्रारम्भ हो जाय) एवं यह सभी कार्य करना चाहिए; अर्थात् अचेष्ट शिशु-चिकित्सार्थ कर्णमूलों में अश्म-संघटन एवं शीतोष्णोदक से मुख-प्रक्षालन भी करना चाहिए।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि यदि वह बालक अचेष्ट हो तो कृष्णकपालिका शूर्प (अर्थात् वह शूर्प जिसका मध्य भाग धूम का कज्जल लगा कर काला कर दिया गया हो[2]) से उसे हवा करें एवं दक्षिण कर्णमूल में इस मन्त्र का उच्चारण करें (मन्त्र इसी पृष्ठ में हैं)। अन्यत्र भी लिखा है कि आधान (गर्भाधान) एवं जन्म (प्रसव) के समय होने वाली व्याधि क्लेश या मरण के लिए होती है[3], अर्थात् उसकी चिकित्सा तत्काल करनी चाहिए।

If the born child is unconscious (asphyxiated) then fanning with winnowing basket made of *kṛṣṇakapālikā* i.e. *īṣikā* or *nala, muñja, vaṃśa* etc. or a blackened broken earthen pot should be done. This fanning and other procedures i.e. striking of stones near the ear-base and irrigation of face with hot or cold water (alternately) should be continued until the neonate is revived or its respiration has established properly.

Vāgbhaṭa I expressing almost similar views has advised fanning with the winnowing basket blackened by applying domestic soot and also enchantation of *mantras* (described here-under), at other place has mentioned that the disease developing during fertilization or deiivery cause pain or death, in other words this should be treated immediately.

विमर्श (Comments)

महर्षि सुश्रुत एवं अष्टाङ्गहृदयकार ने अचेष्ट बालक की किसी भी चिकित्सा-विधि का वर्णन नहीं किया। सम्भवतः जन्मोपरान्त जातकर्म के पूर्व शीतल जल से (मूर्छित शिशु को-डल्हण) आश्वासन का सुश्रुत तथा मन्त्रोच्चारण का अष्टाङ्ग-हृदय द्वारा निर्देश अचेष्ट शिशु के प्राणप्रत्यागमनार्थ ही दिया गया है।

Suśruta and Vāgbhaṭa II have not described any management specifically to be done for asphyxiated child, however, mention of revival of child by sprinkling cold water by Suśruta and description of *mantras* by Vāgbhaṭa II hint towards this topic.

अचेष्ट बालक के चिकित्सार्थ प्रयुक्त मन्त्र (Mantras for resuscitation)

अङ्गादङ्गात् संभवसि हृदयादभिजायते। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां शतम्॥
शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि। नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु॥
(अ० सं० उ० १/४ एवं अ० हृ० उ० १/३ व ४)

तू अङ्ग अङ्ग से उत्पन्न हुआ है, हृदय से उत्पन्न हुआ है आत्मा का ही नाम पुत्र है। तू सौ वर्ष जिए; शतायु शतवर्षों का हो (अर्थात् तेरी आयु का एक एक वर्ष सौ वर्षों का हो या तू १०० x १०० = १०००० वर्ष जीवे), तू दीर्घायु प्राप्त करे। नक्षत्र, दिशायें, रात्रि एवं दिन तेरी रक्षा करें।

१. कृष्णकपालिका ईषिका नलमुञ्जवंशादिभवा, तत्कृतः शूर्पः कृष्णकपालिका शूर्पः। (च० सं० शा० ८/४२ की चक्र० टीका)

२. कृष्णया धूमकज्जलेन मृदितमध्यया कपालिकया शूर्पेण। (अ० सं० उ० १/४ की इन्दु टीका)

३. आधानजन्म ·····।
·····व्याधिरुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय वा॥ (अ० सं० नि० १/२१)

Thou is born from different body parts and from the heart. *Ātmā* itself is named as son. Thou live for hundred years, in which each year should be of hundred years (total 10, 000 years). Thou attain longevity. *Nakṣhatras* (planets), *diśās* (directions), nights and days should protect thy.

नाभि-उपकल्पन-विधि (Method of cutting the umbilical cord)

अतस्तस्याः कल्पनविधिमुपदेक्ष्यामः–नाभिबन्धनात् प्रभृत्यष्टाङ्गुलमभिज्ञानं कृत्वा छेदनावकाशस्य द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वा तीक्ष्णेन रौक्मराजतायसानां छेदनानामन्यतमेनार्धधारेण छेदयेत्। तामग्रे सूत्रेणोपनिबध्य कण्ठेऽस्य शिथिलमवसृजेत्॥ (च० सं० शा० ८/४४)

ततो नाभिनाड़ीमष्टाङ्गुलमायम्य सूत्रेण बद्ध्वा छेदयेत् तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात्॥ (सु० सं० शा० १०/१२)

प्रत्यागतप्राणस्य च प्रकृतिभूतस्य नाभिनालं नालाभिबन्धनाच्चतुरङ्गुलस्योर्ध्वं क्षौमसूत्रेण बध्वा तीक्ष्णेन शस्त्रेण वर्धयेत्। ग्रीवायां चैनमासज्जेत्। नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्॥ (अ० सं० उ० १/५)

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरङ्गुलात्। बद्धोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवसज्जयेत्॥५॥
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत् ·····॥६॥ (अ० हृ० उ० १/५, ६)

अब उस (बालक) की नाभि के उपकल्पन विधि का उपदेश किया जा रहा है–नाभिबन्धन (नाभि के उदर में संयोग-स्थान) से आठ अङ्गुल स्थान का ज्ञान कर या उस स्थान पर चिह्न लगाकर[1] छेदन करने वाले स्थान को दो (अङ्गुलियों) के बीच में धीरे से ग्रहण करके, स्वर्ण, रजत, लौह या अन्य किसी (धातु) के छेदनार्थ बने हुए तीक्ष्ण अर्धधार शस्त्र से छेदन कर दें। उसके अग्रभाग को सूत्र से भली भाँति बाँध कर (बालक के) कण्ठ में ढीला सा लटका दें।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि उसकी नाभिनाड़ी को अष्टाङ्गुल नापकर सूत्र से बाँधकर छेदन करें। उस सूत्र के एक भाग को कुमार की ग्रीवा से भलीभाँति बाँध दें। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि नाभिनाड़ी को खींचकर ग्रीवा में बाँधना उससे होने वाले स्राव के परिहारार्थ है तथा गयी के वचनों का उद्धरण देते हुए लिखा है कि गर्भनाड़ी को आठ अङ्गुल की दूरी पर सूत्र से न अधिक कसे हुए न अधिक ढीले तरीके से बाँधकर फिर उसे काट कर कुष्ठतैल से परिषेचन करना चाहिए[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि प्राणों के प्रत्यागमन हो जाने एवं प्रकृतिभूत हो जाने के बाद नाभिनाल को नाभि के बन्धन से चार अङ्गुल ऊपर क्षौमसूत्र से बाँधकर तीक्ष्ण शस्त्र से वर्धन (कर्तन) करें; तथा इसे ग्रीवा में (खिंच कर लम्बा होने से बचाने के लिए[3]) लटका दें। नाभि का कुष्ठतैल से (नित्य प्रति) सिञ्चन करें।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि कुमार के स्थिरीभूत हो जाने के बाद चार अङ्गुल की दूरी पर सूत्र से बाँध कर, (नाभिनाल को) काटकर गले से लटका देना चाहिए। नाभि का कुष्ठतैल से अवसेचन करना चाहिए।

The umbilical cord, eight *aṅgulas* (approx. 4") distal to the umbilicus held gently in between two fingers should be cut with the *ardhadhāra śastra* (one sided sharp instrument

१. अष्टाङ्गुलमभिज्ञानं कृत्वेति अष्टाङ्गुले चिह्नं कृत्वा ·····। (च० सं० शा० ८/४४ की चक्र० टीका)

२. ततो नाभिनाडीमिति आयम्य आकृष्य, ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात् स्रावपरिहारार्थम्; गयी तु 'गर्भनाडीमष्टाङ्गुलमायम्य नातिगाढं नातिशिथिलमग्रे सूत्रेणाबध्य वर्धयित्वा कुष्ठतैलेन सिक्त्वा·····॥ (सु० सं० शा० १०/१२ की डल्हण टीका)

३. सूत्रेणासज्जेत्स्रावपरिहाराय। (अ० सं० उ० १/५ की इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

i.e. knife etc.) made specifically for the purpose with gold, silver, iron or any other metal. The cut end should be tied properly with thread and hung loosely on the neck.

According to Suśruta tying of umbilical cord with thread should precede its cutting. Dalhaṇa has explained that hanging of cut umbilical cord with neck prevents further discharge (of blood) and has advised irrigation of cut umbilical cord with *kuṣṭha taila.*

Both the Vāgbhaṭas have advised that only four *aṅgulas* (about 2") distal to the umbilicus the umbilical cord should be cut.

विमर्श (Comments)

महर्षि चरक एवं सुश्रुत द्वारा वर्णित आठ अङ्गुल का प्रमाण कुछ अधिक प्रतीत होता है एवं चरक द्वारा वर्णित नाल का कर्तन के बाद बन्धन उतना उचित प्रतीत नहीं होता, विशेषकर जब कि नाभिनाल को केवल दो उंगलियों के बीच धीरे से ग्रहण करना है; क्योंकि धीरे से ग्रहण करने पर बाँधने के पूर्व के समय तक उसमें से रक्तस्राव होते रहने की सम्भावना है।

Eight *aṅgulas* distance of umbilical cord given by Caraka and Suśruta seems to be slightly more. Tying of umbilical cord after its cutting as advised by Caraka does not seem to be proper, specially when it is to be held only gently between two fingers, because the bleeding may persist in the interval between cutting and tying of umbilical cord.

नवजात शिशु के सद्यः स्नान के लिए प्रयुक्त विशिष्ट जल एवं स्नान-विधि (Procedure of bath of neonate and water to be used for batheing)

ततो बलातैलेनाभ्यन्य, क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च। (सु० सं० शा० १०/१३)

ततः क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा तप्ततपनीयरजतनिर्वापणकवोष्णेन कपित्थपत्रकषायेण वा तद्विधेन स्नापयेत्॥ (अ० सं० उ० १/६)

..... स्नपयेदनु॥ क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा॥ ६॥
कोष्णेन तप्तरजततपनीय निमज्जनैः॥ ७॥ (अ० हृ० उ० १/६, ७)

(नवजात शिशु का) बलातैल से अभ्यङ्ग करके, दोष, काल एवं विभव के आधार पर (जिस प्रकार के काल या दोष का अतिक्रमण या जैसी सामर्थ्य हो[१]) ईषदुष्ण क्षीरिवृक्ष के कषाय, सर्वगन्धोदक (एलादिगण निर्मित कषाय), स्वर्ण या चाँदी से तप्त जल (स्वर्ण या चाँदी को गरम करके जल में बुझाकर प्राप्त जल) अथवा कपित्थपत्र के कषाय से स्नान कराना चाहिए। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि क्षीरिवृक्ष कषाय का पित्तघ्न होने के कारण पित्तप्राधान्य में, सर्वगन्धोदक का वातघ्न होने के कारण वात प्रधान्य में एवं सामर्थ्य का अतिक्रमण हो जाने पर स्वर्ण या चाँदी से तप्त जल अथवा कपित्थ-पत्रकषाय का स्नान के लिए प्रयोग कराना चाहिए[२]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी लिखा है कि क्षीरिवृक्ष-कषाय, सर्वगन्धोदक, तप्त स्वर्ण या रजत से निर्वापित कवोष्ण जल अथवा कपित्थपत्र-कषाय से विधि पूर्वक (बालक को) स्नान कराए। टीकाकार इन्दु का मत है कि क्षीरिवृक्ष-कषाय,

१. सर्वगन्धा एलादिकाः। यथाकालं कालानतिक्रमेण।.....। यथादोषं दोषानतिक्रमेण। क्षीरिवृक्षकषायेण पित्तघ्नेन, सर्वगन्धोदकेन वा वातघ्नेन, विभवानतिक्रमेण रूप्यहेमतप्तेन वारिणा, कपित्थपत्रकषायेण वा स्नापयेत्॥
(सु० सं० शा० १०/१३ की डल्हण टीका)

सर्वगन्धोदक या कपित्थपत्र-कषाय सभी को स्वर्ण या रजत से निर्वापित करना चाहिए[१]।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि क्षीरिवृक्ष-कषाय या सर्वगन्धोदक या तप्त रजत-निमज्जित जल से शिशु को स्नान कराए। टीकाकार अरुणदत्त ने रजत के ही साथ स्वर्ण का भी वर्णन दिया है[२]।

After massaging the child with *balātaila* and giving due consideration to the period, vitiation or influence of *doṣas* and also strength of the child, the bath should be given with luke warm decoction of *kṣīrivṛkṣa* (latex yielding plants) in case of dominance of *pitta,* with luke warm *sarvagandhodaka* i.e. decoction of *elādi* group of drugs if *vāta* is dominant and with the luke warm water in which heated gold or silver has been dipped or luke warm decoction of leaves of *kapittha* when the child has comparatively less strength.

बालक की सामान्य परिचर्या (General nursing care of the child)

अथ बालं क्षौमपरिवृत्तं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत्॥ (सु० सं० शा० १०/२३)
अहरहश्चास्य श्रोत्रशृङ्गाटकं स्नेहाप्लुतेन प्लोतेन प्रच्छादयेत्॥ १४॥
प्राक्शिरसं चैनं क्षौमनिचये संवेशयेदुच्छीर्षके चास्याभिमन्त्रितमुदकुम्भं स्थापयेत् द्वारपक्षयोश्च॥ १५॥
(अ० सं० उ० १/१४, १५)

बालक को क्षौम वस्त्र से लपेटकर क्षौम वस्त्र से आच्छादित शय्या पर सुलायें॥

महर्षि वाग्भट ने लिखा है कि बालक के कर्ण एवं शंखप्रदेश को स्नेह से भीगे हुए पिचु से आच्छादित करें। बच्चे को मुलायम वस्त्र की गद्दी पर पूर्व की ओर सिर रखकर लिटायें। शिर की ओर तथा (रहने वाले कमरे के) दरवाजे के दोनों ओर मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से भरे हुए कलश (कमरे में वांछित आर्द्रता बनाए रखने के लिए) रखें।

The child should be wrapped with linen cloth and made to sleep on a bed covered with linen cloth.

Vāgbhaṭa I says that ear and temporal region of the child should be covered with tampon impregnated with fat (oil or *ghṛta).* He should be made to sleep on a cushion made of linen cloth keeping the head on east side. Ewers filled with water and consecrated with *mantras* should be kept towards the head of the child and also on both sides of door of the room (to maintain proper humidity).

रक्षा कर्म (Rakṣākarma or measures adopted to protect the child against diseases)

अथास्य रक्षां विदध्यात्–आदानीखदिरकर्कन्युपीलुपरूषकशाखाभिरस्या गृहं समन्ततः परिवारयेत्। सर्वतश्च सूतिकागारस्य सर्षपातसीतण्डुलकणकणिकाः प्रकिरेयुः। तथा तण्डुलबलिहोमः सततमुभयकालं (उभयतः कालम्-पाठभेद) क्रियेतानामकर्मणः (प्राङ्नामकर्मणः-पाठभेद)। द्वारे च मुसलं देहलीमनुतिरश्चीनं न्यसेत्। वचाकुष्ठ-क्षौमकहिङ्गुसर्षपातसीलशुनकणकणिकानां रक्षोघ्नसमाख्यातां चौषधीनां पोट्टलिकां बद्ध्वा सूतिकागारस्योत्तरदेह-

१. ततोऽनन्तरं तं बालं क्षीरिवृक्षाणां वटादीनां कषायेण तप्तानां तपनीयरजतानां निर्वापणेन तत्र तापोपशमेनोष्णीकृतेन स्नापयेदिति। अथवा सर्वगन्धद्रव्योदकेन तपनीयादितप्तेन। अथवा कपित्थपत्राणां कषायेण तद्विधेनेति तपनीयादिकवोष्णेन। तपनीयं सुवर्णम्.....। (अ० सं० उ० १/६ की इन्दु टीका)

२. .....रूप्यसुवर्णाभ्यां निमज्जनैः.....। (अ० हृ० उ० १/७ की अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

ल्यामवसृजेत, तथा सूतिकायाः कण्ठे सपुत्रायाः, स्थाल्युदककुम्भपर्यङ्केष्वपि, तथैव च द्वयोर्द्वारपक्षयोः। कणककण्टकेन्धनवानग्निस्तिन्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निः सूतिकागारस्याभ्यन्तरतो नित्यं स्यात्। स्त्रियश्चैनां यथोक्तगुणाः सुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहं द्वादशाहं वा। अनुपरतप्रदानमङ्गल्याशीःस्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविशेषमनुरक्तप्रहृष्टजनसंपूर्णं च तद्वेश्म कार्यम्। ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित् सततमुभयकालं शान्तिं जुहुयात् स्वस्त्ययनार्थं कुमारस्य तथा सूतिकायाः। इत्येतद्रक्षाविधानमुक्तम्॥ (च० सं० शा० ८/४७)

अथ बालं क्षौमपरिवृत्तं क्षौमवस्तास्तृतायां शय्यायां शाययेत्, पीलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं परिवीजयेत्, मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचुमवचारयेत्, धूपयेच्चैनं रक्षोघ्नैर्धूपैः, रक्षोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवास्वबसृजेत्, तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत्, अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत्, वृणितोपासनीयं चावेक्षेत॥

(सु० सं० शा० १०/२३)

आदारीविदारीबदरीखदिरनिम्बपीलुपरूषकशाखाभिरेनं वीजयेत्। ताभिश्च समन्ततः सूतिकागारं परिवारयेत्। सर्षपातसीकणकणिकाश्चन्तर्बहिः प्रकिरेत्। सायंप्रातश्च बलिम्॥ १६॥

वृणोक्तैश्च गुग्गुल्वादिभिर्धूपं कुर्वीत। तथा ब्राह्मणोऽथर्ववेदविद्दशाहं शान्तिकर्म कुर्यात्। मायूरीमहामायूरीमार्यारत्नकेतुधारिणीं चोभयकालं वाचयेत्॥ १७॥

हिङ्गुवचातुरुष्करक्षौघ्नैः पोटलिकामुत्तरदेहल्यामासजेत् कुमारस्य च सह मात्रा कण्ठे उच्छीर्षके च। तद्वदार्यापर्णशबरीमार्यापराजितां च गोरोचनाभिलिखताम्॥ १८॥

द्वारे च देहलीमनुतिर्यङ्मुसलं निधापयेत्। कणकण्डकतिन्दुकेन्धनाग्निं नक्तं दिवं च जागृयात्। तथानुरक्ताः स्त्रियः सुहृदश्च। प्रहृष्टजनसम्पूर्णं च तद्वेश्म कार्यम्॥ १९॥ (अ० सं० उ० १/१६ से १९)

अब इसको (बालक की) रक्षा का विधान करें–आदानी (घोषकभेद[1]), खदिर, कर्कन्धु, पीलु एवं परूषक की शाखाओं को चारों ओर फैला दें (सूतिकागार के चारों ओर लटका भी दें)। सूतिकागार के चारों ओर सर्षप, अतसी, तण्डुल तथा कणकणिका फैला दें एवं नामकरण संस्कार तक (दस दिन तक)[1] लगातार दोनों काल (प्रातः एवं सायं) तण्डुलबलि होम करें। द्वार में देहली पर मूसल को टेढ़ा कर के रखें। वचा, कुष्ठ, क्षौमक (क्षौमवस्त्र) हिङ्गु, सर्षप, अतसी, लशुन एवं कणकणिका आदि रक्षोघ्न (गुग्गुलु आदि[1]) द्रव्यों की पोटली बाँधकर सूतिकागार के द्वार के ऊपर लटका दें। टीकाकार चक्रपाणि ने अन्य मत का उद्धरण देते हुए लिखा है कि देहली का तात्पर्य द्वार का नीचे का काष्ठ होता है[1]। इन्हीं (औषधियों की पोटली) को सूतिका एवं बालक के कण्ठ (गले), स्थाली, उदक-कुम्भ एवं पलंग तथा दरवाजे के दोनों पल्लों में भी बाँध दें। कणककण्टक अथवा तिन्दुक काष्ठ के इन्धन से सूतिकागार के अन्दर नित्य अग्नि प्रज्वलित रखें। यथोक्त गुण (प्रजनन के सम्बन्ध में वर्णित कुशल, सुहृद) स्त्रियाँ तथा अन्य हितैषी स्त्रियाँ दस या बारह दिन तक जागती रहें (अर्थात् सूतिका एवं बालक की निरन्तर देखभाल तथा सुरक्षा करती रहें)। सूतिकागार को लगातार प्रदान (उपहार), मङ्गल (पाठ), आशीर्वचन, स्तुति, गीत, वादन आदि तथा स्वच्छ अन्न-पान एवं अनुरक्त, प्रहृष्ट, जनसमुदाय से परिपूर्ण रखना चाहिए। कुमार एवं सूतिका के कल्याण की कामना के लिए अथर्ववेद ज्ञाता ब्राह्मणों को लगातार दोनों काल शान्ति होम करना चाहिए। इस प्रकार यह रक्षाविधान कहा गया है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि बालक को क्षौमवस्त्र में लपेटकर क्षौमवस्त्र बिछे हुए बिस्तर पर सुला दें। पीलु, बदरी,

१. आदानी घोषकभेदः·····आनामकर्मण इति।–दशाहं यावदित्यर्थः; दशाहे तु नामकर्म भविष्यति। .....
रक्षोघ्नसमाख्यातानामित्यनेन गुग्गुल्वादीन् ग्राहयति। उत्तरदेहल्यामिति द्वारोपरि अन्ये तु देहलीं द्वाराधःकाष्ठमाहुः॥
(च० सं० शा० ८/४७ की चक्र० टीका)

निम्ब एवं परूषक की शाखाओं से पंखा करें, नित्यप्रति सिर में तैलाक्त पिचु रखें, रक्षोघ्न (वचादि[1]) द्रव्यों से धूपन करें, रक्षोघ्न द्रव्यों (की पोटली) को इसके (बालक के) हाथ, पैर, सिर एवं ग्रीवा में बाँधें। तिल, अतसी, सर्षप एवं कण चारो ओर बिखेर दें। अधिष्ठान में (घर के अन्दर) अग्नि प्रज्वलित करें एवं वृणितोपासनीय (अध्याय) में वर्णित अर्थात् पूर्व की ओर शिर करके सोना, पूर्व की ओर ही दीपक जलाना, माला रखना[2] आदि विधि का पालन करें।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि आदारी (काकहन्ताली[1]?), विदारी, बदरी, खदिर, निम्ब, पीलु एवं परूषक की शाखाओं से इसे हवा करें, इन्हें सूतिकागार के चारो ओर फैला दें। सर्षप, अतसी एवं कणकणिका को (घर के)भीतर तथा बाहर बिखरा दें। सायं एवं प्रातः बलि दें।

वृण के लिए कहे गए गुग्गुलु, अगुरु, सर्जरस, वचा एवं गौरसर्षप[1] आदि से धूपन करें तथा अथर्ववेद के ज्ञाता ब्राह्मणों से दस दिन तक शान्तिकर्म करावें। मायूरी, महामायूरी, आर्या, रत्नकेतुधारिणी आदि का दोनों काल पाठ करें।

हिङ्गु, वचा एवं तुरुष्क आदि रक्षोघ्न द्रव्यों की पोटली बनाकर उत्तर देहली में लटका दें। (इन्हीं द्रव्यों की पोटली) कुमार तथा माता के गले में एवं सिरहाने बाँध दें। इसी प्रकार आर्या, पर्णशबरी, आर्या-अपराजिता (मन्त्र) को गोरोचना से (भूर्जपत्र में) लिखकर (गले एवं सिरहाने) बाँध दें।

(प्रवेश) द्वार पर देहली में मूसल को तिरछा करके रखें। कणकण्डक, तिन्दुक के इन्धन की अग्नि को रात-दिन जलायें। अनुरक्त एवं सुहृद स्त्रियों तथा प्रसन्न व्यक्तियों से घर भरा रहना चाहिए।

All around the dwelling place of puerperal woman and the child (*sūtikāgāra* or labour ward) the twigs of *ādānī, khadira, karkandhu, pīlu* and *parūṣaka* should be hung or strewen and *sarṣapa, atasī, taṇḍula* and *kaṇakaṇikā* should be strewen. Until the period of naming ceremony i.e. for ten days *taṇḍula bali* oblation should be performed continuously morning and evening both the times. A pestle should be placed in oblique position over door-sill. A packet containing *vacā, kuṣṭha, kṣaumaka, hiṅgu, sarṣapa, atasī, laśuna, kaṇakaṇikā* and *guggulu* etc. *rakṣoghna* (antiseptic) drugs should be hung on the upper portion of door-frame or else kept over the door-sill. Small packets of these very drugs should be tied on the neck of the puerperal woman and child, over *sthālī* (cooking pot), ewer filled with water, bed and both the pannels of door. Fire should be lit daily with the woods of *kaṇakakaṇṭaka* or *tinduka* inside the labour ward. The women having qualities described earlier (under labour) and other well wisher women should remain awaken for ten or twelve days (in order to take special care of mother and child). The labour ward should be full of gifts, auspicious recitations, blessings, praises, playings of music and musical instruments, clean and dainty food and drinkables alongwith loyally devoted and delighted persons. For the fortune and welfare of the mother and child the *brāhmaṇas* possessing knowledge of *atharvaveda* should perform *śāntihoma* (pacifying oblations to avert or remove evils) morning and evening both the times.

Suśruta says that the child should be wrapped in a linen cloth and made to sleep on

१. रक्षोघ्नैर्धूपैर्वचादिभिः। अधिष्ठाने सूतिकागारे। वृणितोपासनीयं चावेक्षेतेति तेन प्राक्शीर्षशयनमजस्रदीपस्रग्दामादि सर्वमत्रापि तत्रोक्त वेदितव्यम्॥ (सु० सं० शा० १०/२३ की डल्ह० टीका)

२. आदारी काकहन्ताली ·····। व्रणोक्ता गुग्गुल्वादयः सूत्रस्थाने शस्त्रकर्मविधौ गुग्गुल्वगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपेत्यादिना पठिताः। ·····। (अ० सं० उ० १/१६ व १७ की इन्दु टीका)

Scanned with CamScanner

a bed covered with linen cloth. Fanning with twigs of *pīlu, badarī, nimba* and *parūṣaka,* application of tampon impregnated with oil over head and fumigation with *rakṣoghna* drugs should be done. Small packets made with these very drugs should be tied on arms, legs, head and neck of the child. *Tila, atasī, sarṣapa* and *kaṇa* (pieces of rice) should be strewen all around. Other management advised for wounded or ulcerated person such as position of head (during sleep), burning lamp and garlands all on eastern side etc. should also be done.

Vāgbhaṭa I has followed Caraka, however, he has included *vidārī* alongwith *ādārī* etc. drugs, and also has advised fanning with these twigs alongwith fumigation with *guggulu, sarjarasa, vacā,* yellow *sarṣapa* etc. *rakṣoghna* drugs prescribed for a wounded person. For *śāntikarma* (pacifying acts to avert evils) he has advised recitation of *māyūrī, mahāmāyūrī, āryā, ratnaketudhāriṇī* (specific procedures of recitations) etc. and tying of small packets of *hiṅgu, vacā* and *turuṣka* on the head and neck of the child and mother, and on the upper door sill; and also *bhūrjapatra* having *āryā, parṇaśabarī, āryā-aparājitā* etc. hymns scribed with *gorocanā* (a bright yellow pigment prepared from the urine or bile of a cow or found in the head of a cow) on the head and neck.

***षष्ठी रात्रि का रक्षाकर्म** (Rakṣākarma or protective measures to be done on ṣaṣṭhī rātri or on 6th night after birth)*

षष्ठीनिशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः। जागृत्युर्बान्धवास्तस्य दधतः परमां मुदम्॥
(अ० सं० उ० १/२६)

षष्ठीं ..... ॥ ..... वान्धवास्तत्र .....॥ (अ० सं० सदृश ही) (अ० ह० उ० १/२१)

(जन्म की) छठवीं रात्रि को विशेष कर बलि आदि के द्वारा रक्षाकर्म करना चाहिए। बन्धु-बान्धव प्रसन्न रह कर जागरण करें।

On 6th night after birth, *rakṣākarma* by offering sacrifices etc. should specifically be done. The family members and friends should remain awaken happily.

विमर्श (Comments)

सम्पूर्ण रक्षाकर्म का उद्देश्य माता एवं बालक को विभिन्न औपसर्गिक व्याधियों से बचाना है। प्रयुक्त औषधियाँ सम्भवतः वातावरण को कीटाणु-रहित या उनकी आक्रमक शक्ति का ह्रास कर देती हों। ६ दिन तक टेटॅनॅस व्याधि का भय अत्यधिक रहता है, सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से यह विशिष्ट रक्षाकर्म किया गया हो अथवा यह वर्णन प्रचलित सामाजिक व्यवस्था का परिचायक है।

Entire *rakṣākarma* is aimed at offering protection from infective disorders to the mother and child. It is just possible that various drugs prescribed for the purpose might be either making the environment free from infective organisms or else reduce the virulence of these organisms.

The sixth day's rituals might have been advised because the risk of tetanus to the neonate is maximum upto this period, if not, this might be reflecting the social custom prevailing even to-day.

***शिशु की जन्म से लेकर चतुर्थ दिवस तक की आहार व्यवस्था** (Feeding schedule of neonate from first to fourth day after birth)*

तद्यथा-मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते यथाम्नायं प्रथमं प्राशितुं दद्यात्। स्तनमत ऊर्ध्वमेतेनैव विधिना दक्षिणं पार्तुं पुरस्तात् प्रयच्छेत्। अथातः शीर्षतः स्थापयेदुदकुम्भं मन्त्रोपमन्त्रितम्॥ (च० सं० शा० ८/४६)

तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तामिश्रं मन्त्रपूतं त्रिकालं पाययेत्, द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिः,तृतीये च; ततः प्राङ्निवारितस्त्र्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत्। (सु० सं० शा० १०/१५)

तस्मात् प्रथमेऽहन्यनन्तामिश्रिते मधुसर्पिषी मन्त्रपूते त्रिकालं प्राशयेत्॥ द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च॥ १२॥

ततः प्राङ्निवारितस्तस्य स्वपाणितलसम्मितं सर्पिर्द्विकालं दापयेदनन्तरं च स्तन्यमिष्टतः॥ १३॥
(अ० सं० उ० १/१२, १३)

प्रथमेदिवसे तस्मात् त्रिकालं मधुसर्पिषी॥ १२॥
अनन्तामिश्रिते मन्त्रपाविते प्राशयेच्छिशुम्। द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं ततः॥ १३॥
प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य तत्पाणितलसम्मितम्। स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत्॥ १४॥
(अ० ह० उ० १/१२ से १४)

वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित करके मधु एवं सर्पि का प्रथम प्राशन देना चाहिए। इसके बाद इसी विधि अर्थात् मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके[1] दक्षिण स्तन में बालक को पीने के लिए लगायें। इसके शीर्ष की ओर मन्त्रों से उपमन्त्रित जल से पूर्ण कलश की स्थापना करें।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि प्रथम दिवस मन्त्र से अभिमन्त्रित, मधु-सर्पि का अनन्ता (स्वर्ण, दूर्वा या यवासक) के साथ मिश्रित करके तीन बार (प्रातः, मध्यान्ह एवं अपरान्ह) प्राशन दें। दूसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध सर्पि तथा वही तीसरे दिन भी दें। तत्पश्चात् (चौथे दिन) पहिले माता का दूध न पिलाए गए उस (बालक) को उसकी हथेली में आने योग्य मात्रा में मधु एवं सर्पि दो बार पिलायें। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि चौथे दिन प्रातः एवं मध्याह्न मधुसर्पि का प्राशन, तत्पश्चात् तृतीय काल से आरम्भ करके पाँचवें आदि दिन यथेष्ट स्तनपान करायें[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी सुश्रुत सदृश ही लिखा है कि पहिले दिन अनन्ता मिश्रित मधु-सर्पि को मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके तीनों कालों में प्राशन दें। दूसरे एवं तीसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध सर्पि तत्पश्चात् पहिले स्तनपान न कराए गए बच्चे को दो काल उसके पाणितल में आने योग्य मात्रा में मधु-सर्पि तत्पश्चात् यथेच्छ मात्रा में स्तनपान करायें।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि पहिले दिन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके अनन्ता मिश्रित मधु-सर्पि का तीनो कालों में प्राशन करायें। दूसरे एवं तीसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध घृत दें; क्योंकि इस काल तक माता में क्षीर का अभाव रहता है[3]। तत्पश्चात् पहिले से स्तनपान के लिए निषिद्ध या स्तनपान न कराए गए शिशु को स्वपाणितलसम्मित नवनीत दो कालों में प्रयुक्त करके स्तनपान करायें।

Caraka says that on first day of birth first feeding of honey and *ghṛta* consecrated with *mantras* should be given, there-after with similar procedure (i.e. consecration with *mantras)*

१. यथाम्नायमिति यथागमं मन्त्रोपमन्त्रिते। एतेनैव विधिनेतिस्तन(न्य)मप्यभिमन्त्रितं पाययेदित्यर्थः॥ (च० सं० शा० ८/४६ की चक्र० टीका)

२. ततश्चतुर्थ दिवसे प्रातर्मध्याह्नदिलक्षणे मधुसर्पिः प्राशयेत्, तदनन्तरं चतुर्थदिवसस्य तृतीयकालमारभ्य पञ्चमादिदिवसेषु यथेष्टं स्तन्यपानं कारयेत्। (सु० सं० शा० १०/१५ की डल्ह० टीका)

३. यत एवं दिनत्रिचतुर्मात्रं क्षीराभावः॥ (अ० ह० उ० १/१२ की अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

right breast should be offerd for suckling. An ewer filled with water and consecrated with *mantras* should be kept towards head of the child.

Suśruta and both Vāgbhaṭas say that on first day honey and *ghṛta* mixed with *anantā* (gold, *dūrvā* or *yawāsaka)* and consecrated with *mantras* should be given thrice. On second and third day *ghṛta* medicated with *lakṣamaṇā,* on fourth day twice i.e. morning and noon honey and *ghṛta* in the amount which fills the palm of neonate, there-after from evening free breast feeding, as desired by the child, should be started.

विमर्श (Comments)

महर्षि चरक ने जातकर्म के तुरन्त बाद मधु-सर्पि का प्राशन तत्पश्चात् स्तनपान का विधान दिया है। महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट ने जातकर्म के पश्चात् मधु-सर्पि एवं अनन्ता का प्राशन, तत्पश्चात् प्रथम दिन इन्हीं चीजों को केवल तीन काल एवं दूसरे तथा तीसरे दिन भी केवल लक्ष्मणा से सिद्ध घृत बताया है। त्रिकाल से दिन के तीनों काल अर्थात् प्रातः, मध्यान्ह एवं सन्ध्या अर्थ निकलता है इन कालों में उपर्युक्त प्राशन कितनी बार देना है ऐसा निर्देश न होने से यह माना जा सकता है कि इन वस्तुओं को अनेक बार भी प्रयुक्त कर सकते हैं। यदि तीनों कालों में एक बार ही प्रयोग माने तो शिशु की आवश्यकताओं विशेषकर जलीयांश की आवश्यकता की पूर्ति का प्रश्न ही नहीं उठता, यदि अनेकों बार देने का अर्थ ग्रहण करें तो इतने अधिक मधु-सर्पि का प्रयोग सम्भवतः हानिकारक होगा। क्रियात्मक दृष्ट्या महर्षि चरक का मत मान्य है। आधुनिक काल में प्रसव के तत्काल बाद ही माता एवं शिशु के स्वस्थ होने पर स्तनपान कराया जाता है।

सभी आचार्यों ने मधु-सर्पि का प्रयोग निर्दिष्ट किया है। मधु मधुमक्खियों द्वारा विभिन्न पुष्पपरागों को एकत्र कर निर्माण किया जाता है। पुष्पपराग ज्ञात प्रतिजनात्मक (ऐण्टिजेनिक) द्रव्य हैं। यह सम्भाव्य है कि विभिन्न प्रकार के पुष्प-परागों से निर्मित मधु के प्रयोग से शरीर की रोगप्रतिषेधात्मक शक्ति की वृद्धि होती हो। सर्पि आन्त्र-स्थित भ्रूण-मल को बहिःनिस्सरित कर आन्त्र-शोधन में सहायक होता होगा।

Feeding schedule for first three days advised by Suśruta and both the Vāgbhaṭas does not seem to be proper, because respective feeds are advised thrice or during three periods i.e. morning, noon and evening. If it is inferred that any number of feeds can be given during these periods, then amount of honey and *ghṛta* ingested by the neonate would be much beyond his digestive capacity, however, if the feeding is given only thrice, then it will not be sufficient for nourishment specially for requirement of water. Advice of Caraka i.e. breast feeding from first day is more logical. Breast feeding at the earliest possible time after delivery to a healthy neonate by healthy mother is said to be beneficial for both. All the authors have advised use of honey and *ghṛta.* Honey is collected from pollens of various flowers by bees. Pollens are known antigenic substances, it is possible that this honey might be containing antigens thus produces non-specific immunity in the child; the *ghṛta* might be helping in clearing the meconium from bowels.

शिशु का नामकरण संस्कार (Naming ceremony of the child)

दशमे त्वहनि सपुत्रा स्त्री सर्वगन्धौषधैर्गौरसर्षपलोध्रैश्च स्नाता लघ्वहतशुचिवस्त्रं परिधाय पवित्रेष्टलघुविचित्र-भूषणवती च संस्पृश्य मङ्गल्यानुचितामर्चयित्वा च देवता शिखिनः शुक्लवाससोऽव्यङ्गांश्च ब्राह्मणान् स्वस्तिवाचयित्वा कुमारमहतानां च वाससां संचये (कुमारमहतेन वाससाऽऽच्छादयेत्-पाठभेद) प्राक्शिरसमुदकशिरसं वा संवेश्य देवतापूर्वं द्विजातिभ्यः प्रणमतीत्युक्त्वा कुमारस्य पिता द्वे नागनी कारयेन्नाक्षत्रिकं नामाभिप्रायिकं च। तत्राभिप्रायिकं

घोषवदाद्यन्तस्थान्तमूष्मान्तं वाऽवृद्धं त्रिपुरुषानूकमनवप्रतिष्ठितं, नाक्षत्रिकं तु नक्षत्रदेवता समानाख्यं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा॥ (च० सं० शा० ८/५०)

ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमङ्गलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा॥
(सु० सं० शा० १०/२४)

दशमे द्वादश वाह्नि गोत्राचारैः शुभैः शुभे।..... पितापत्यस्य नाम च॥ २७॥
दिने शततमे वाख्यां पूर्णे संवत्सरेऽथवा। विभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्वालरोचनागरुचन्दनम्॥ २८॥
पूज्यं त्रिपुरुषानूकमादौ घोषवदक्षरम्। अवृद्धं कृतमूष्मान्तमनरातिप्रतिष्ठितम्॥
नक्षत्रदेवतायुक्तं तदेवं तु न केवलम्। मङ्गल्यमन्तरन्तस्थं न दुष्टं न च तद्धितम्॥ २९॥
पुंसो विसर्जनीयान्तं समवर्णा स्त्रियाः पुनः। विषमाक्षरमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोरमम्॥
सुखोद्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥ ३०॥ (अ० सं० उ० १/२७ से ३०)
दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः। कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चाऽर्चितम्॥ २२॥
विभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्वाऽऽलरोचनाऽगुरुचन्दनम्। नक्षत्रदेवतायुक्तं वान्धवं वा समाक्षरम्॥ २३॥
(अ० हृ० उ० १/२२, २३)

दशवें दिन प्रसूता स्त्री अपने बालक के साथ सर्वगन्ध औषधियों, श्वेत सर्षप एवं लोध्र (निर्मित जल) से स्नान, हलके, अहत तथा स्वच्छ वस्त्र एवं पवित्र, हलके, मनोनुकूल एवं विचित्र (अनेकों प्रकार के) आभूषण धारण, मङ्गल द्रव्यों का स्पर्श, उचित देवताओं की पूजा (अर्थात् जिन देवताओं की हर समय पूजा करती हो उन्हीं की पूजा[1]) एवं अग्नि[1] अथवा शिखाधारी (अमुण्ड), श्वेत वस्त्रधारी, अव्यङ्ग (सर्वाङ्ग सम्पूर्ण) ब्राह्मणों की पूजा कर तथा ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्तिवाचन करा करा, कुमार को बिना फटे हुए कपड़ों के सञ्चय अर्थात् कपड़ों के पर्तों से निर्मित मोटी गद्दी में रख कर, पूर्व या उत्तर की ओर शिर (मुख) करके बैठे (बालक को सुलाकर स्त्री स्वयं बैठे)। यह बालक पहले देवता बाद में ब्राह्मणों को प्रणाम करता है ऐसा कह कर, पिता दो नाम एक नाक्षत्रिक तथा दूसरा अभिप्रायिक (नित्य प्रति प्रयुक्त होने वाला) रखे। अभिप्रायिक नाम के आदि में घोष वर्ण (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द), एवं अन्त में अन्तस्थ (य, व, र, ल, आदि) या ऊष्मान्त (श, ष, स, ह आदि) अक्षर हों। वह नाम अवृद्ध अर्थात् आ, ऐ, औ के प्रारम्भ से रहित, कुल के तीन पुश्तों के अनुकूल और प्रसिद्ध हो। नाक्षत्रिक नाम नक्षत्रदेवता (जन्म के नक्षत्र या देवता) के समान दो या चार अक्षर वाला होना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने संक्षेप में लिखा है कि दसवें दिन माता-पिता मङ्गल एवं कौतुक (विशिष्ट पूजन-विधि) स्वस्ति-वाचन करके अभिप्रेत एवं नक्षत्र नाम रखें।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि दसवें या बारहवें दिन गोत्राचारानुसार शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में अथवा सौवें दिन या एक वर्ष पूरा होने पर पिता पुत्र का नामकरण करे। उस दिन अङ्गों में मनोह्वा, आल, रोचना, अगरु तथा चन्दन का लेप करे। नाम पूज्य, तीन पुश्तों के अनुकूल, घोष युक्त प्रथम अक्षरवाला, अवृद्ध (बहुत बड़ा न हो या वृद्ध रहित), अंत में ऊष्म वर्ण वाला, शत्रु वर्ग में अप्रतिष्ठित तथा नक्षत्र एवं देवता से युक्त होना चाहिए। इतना ही नहीं वह नाम मङ्गल-वाची, मध्य में अन्तस्थ वर्णवाला होना चाहिए। दूषित एवं तद्धित वर्ण वाला नहीं होना चाहिए। पुरुष का नाम विसर्जनीयान्त एवं समवर्ण का तथा स्त्रियों का नाम विषम अक्षरों वाला, अक्रूर, स्पष्ट अर्थ वाला, मनोरम, सुखपूर्वक उच्चारण किए जाने वाला होना चाहिए, उसके अन्त का वर्ण दीर्घ हो तथा उच्चारण में आशीर्वाद जैसा प्रतीत हो।

अष्टाङ्गहृदयकार ने संक्षेप में लिखा है कि दशम दिन पूर्ण हो जाने पर अपने कुल की विधि के अनुसार सूतिकोत्थान

१. उचितामिति या यस्य देवता सदा पूज्यत्वेनोचिता तामर्चयित्वा। शिखिन इति पावकान्, किंवा शिखा चूड़ा तद्वतो ब्राह्मणान्-मुण्डान्॥ (च० सं० शा० ८/५० का चक्र० टीका)

Scanned with CamScanner

करके बालक का नामकरण करें। (बालक के) अङ्गों में मनोह्वा, आल, रोचना, अगरु तथा चन्दन का लेप करके नक्षत्र (जन्म के नक्षत्र), देवता से युक्त बान्धवों के नाम के सदृश सम अक्षरों वाला नाम रखें।

महर्षि हारीत ने संक्षेप में लिखा है कि बारहवें दिन (मङ्गल कर्म करके) नामकरण-कर्म करें[१]।

On tenth day after delivery, the woman alongwith her child should take bath with water medicated with *sarvagandha* drugs, yellow *sarṣapa* and *lodhra;* dress herself with light, intact, clean garments and sacred, desired, light and splendid ornaments. Now she should touch auspicious objects, worship the god (whom she has always worshipped), fire and *brāhmaṇas* possessing lock of hair on crown of their head, having all the body parts intact and wearing white garments. After having recitations for welfare and prosperity by *brāhmaṇas* and placing the son on pack of intact cloths, she should sit keeping head of the child towards north or east. 'The child has offered obeisance to diety and *brāhmaṇas,*' saying this the father should give him two names i.e. *nākṣatrika* (based on the planets of birth) and *abhiprāyika* (popular to be used daily). The popular name should begin with *ghoṣa varṇa (ha, ya, va, ra, la, ña, ma, ṅa, ṇa, jha, bha, gha, ḍha, dha, ja, ba, ga, ḍa, da),* and end with *antastha (ya, va, ra, la)* or *ūṣmānta (śa, ṣa, sa, ha).* The name should not have a letter with *vṛddha* i.e. *ā, ai, ou,* be identical with the names of three generations and be famous. The *nākṣatrika* name should be according to the planet of birth consisting of two or four letters.

Suśruta says that parents of the child after performing *maṅgala* and *kautuka* worships (worships with specific rituals) and having recitations for welfare and prosperity should give two names i.e. *abhipreta* and *nakṣatra.*

Vāgbhaṭa I has mentioned that the father of child should perform the naming ceremony on auspicious period of tenth, twelfth or hundredth day or after completion of one year according to traditions of one's family. On the day of ceremony body of the child should be anointed with *manohwā, āla, rocanā, agaru* and *candana.* The name should be venerable, benedictory, uncommon with the enemies and consists the letters described by Caraka. The name should not have *duṣṭa varṇa* (inauspicious or defective letters) or *taddhita varṇa* (an affix added to primary bases to form derivative or secondary bases from them). The name of boy should consist even number of letters and end with *visarga* (a symbol in writing, representing a hard aspiration and marked by two perpendicular dots). The name of girls should possess odd number of letters, not be cruel, be distinct in sense or meaning, attractive, and easy to pronounce. Its last letter should consist *dirgha varṇa (ā, ī, ū* etc.) and should echo like blessing.

Vāgbhaṭa II and Hārīta have advised the naming ceremony to be held on tenth and twelfth day respectively.

विमर्श (Comments)

नामकरण संस्कार का आचार्यों ने दशम दिन ही विधान दिया है। अष्टाङ्गसंग्रह-वर्णित दिनों का अन्तर सम्भवतः पुस्तक-लेखन-स्थान एवं काल के वैभिन्य के कारण हो।

१. ·····द्वादशाहं तथापुनः। नामकर्मकृती ·····। (हा० सं० तृती० ५३/६)

Difference in the days of naming ceremony reflect the customs prevailing in the area or period to which author belonged.

अन्य परिचर्या (Other general management)

नामकरण के पश्चात् आचार्यों ने बालक की आयु के प्रमाण के ज्ञानार्थ उसकी शारीरिक परीक्षा तथा कुमारागार में कुमार का रखना, कुमारधार के द्वारा शिशु का पालन, कुमारागार (चि० ३१) तथा कुमारधार की विशेषताओं के वर्णन के उपरान्त बालक के सूतिका या कुमारागार से बाहर निकालने से लेकर अन्य परिचर्या एवं बालक की शैय्या, खिलौने, क्रीड़ा-स्थल, उपवेशन, अन्नप्राशन, कर्णवेधनादि सभी संस्कारों का विस्तृत वर्णन किया है। बालक की आयु, बल, बुद्धि एवं मेधा के वर्धनार्थ अनेकों स्वर्ण-युक्त या अन्य औषधियों के प्राशन भी उल्लिखित हैं।

मातृशरीर से पृथक् होने के क्षण से लेकर सम्पूर्ण बालावस्था के विभिन्न आहार-विहार एवं व्याधियों का भी विस्तृत विवरण संहिताओं में उपलब्ध है। महर्षि चरक ने जात-शिशु के व्याधि-रहित होकर सामान्य वृद्धिकारक एवं व्याधि-उत्पादक कारणों का संक्षेप में उल्लेख करते हुए लिखा है कि जातिसूत्रीय अध्याय (शरीरस्थान अध्याय ८) में उपदिष्ट आहार एवं उपचार शिशु के लिए अविकारकारी तथा वृद्धिकर होते हैं। विषम रूप से सेवित (आहार एवं उपचार) उत्पन्न शिशु



Fig. (31): Well ventilated and protected against the *grahas* etc. *Kumārāgāra* or abode for new-born having separate (A) latrine; (B) bath room; (C) kitchen; (D) with a pestle placed near the door in oblique postion; (E) the packets of drugs are tied over the door, ewer and bed of the child; (F) fire is constantly burning; (G) water filled ewers are placed near the head of the child and door; (H) *Brāhmaṇa;* (I) *Kumāradhāra* or male attendant and (J) few women remain present there; (K) The twigs of *ādānī, nimba* etc. plants are also hung and strewen, (L) Yellow *sarṣapa* etc. are strewen all around.

Scanned with CamScanner

को तत्काल ही उसी प्रकार हनन कर देते हैं जिस प्रकार की शीघ्र ही रोपित किए गए हुए, अप्रतिष्ठित (जो सुदृढ़ न हो) मूल वाले वृक्ष को वात एवं आतप[१]। विषय बालरोग-विशेषज्ञ के अधिकार-क्षेत्र का होने के कारण अप्रासंगिक है अतः वर्णन नहीं किया जा रहा।

After naming ceremony, physical examination of the child to assess longevity, stay in *kumārāgāra* (a house or room specifically constructed or maintained for the child), care by *kumāradhāra* (male attendant to look after the child), detailed description of *kumārāgāra* (fig. 31) and *kumāradhāra* and period for leaving the *kumārāgāra* or *sūtikāgāra* etc. have been described by all the authors. Besides, special bed for child, his toys and playground; *upaveśana, annaprāśana* and *karṇavedhana* etc. *saṃskāras* (specific rituals performed while making the child sit for the first time, beginning of cereal feeding and piercing of ear respectively), have also been elaborated. Specific recipes of gold or other medicine for longevity, inhancement of *bala* (strength), *buddhi* (intellect) and *medhā* (memory), diet required and diseases inflicting during entire span of childhood have also been described. Caraka giving short description of the factors responsible for proper growth or diseases of the new born says that dietetics and other mode of life prescribed for the woman during antenatal period are congenial to the new born and beneficial for proper growth and development. Abnormally used dietetics and mode of life kill the new born in the same way as a recently planted plant, not possessing strong roots, gets destroyed by wind and heat. Since the subject comes under the jurisdiction of pediatrician, hence is not being described here.

नवजात शिशु की असम्यक् परिचर्या जन्य व्याधियाँ (Diseases afflicting the child due to improper care immediately after birth)

नवजात शिशु को बालकों में होने वाली सभी व्याधियाँ हो सकती हैं जिनका वर्णन बालरोग की पुस्तक का विषय है। इस स्थान पर केवल उन्हीं विकारों का उल्लेख किया जायगा जो नवजात शिशु की परिचर्या में असावधानी के कारण हो सकते हैं। अचेष्ट बालक की चिकित्सा का वर्णन पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। उपशीर्षक, गर्भोदक के सम्यक् वमन न कराने से उत्पन्न उल्बक व्याधि तथा नाभि के असम्यक् उपकल्पनादि जन्य व्याधियों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

Method of resuscitation has already been described, *upaśīrṣaka*, diseases of umbilicus and *ulbaka* (caused due to improper emesis of liquor amni) only are being described here, because these arise due to negligence in care of new born child.

उपशीर्षक (Upaśīrṣaka)

दुष्ट वायु के कारण गर्भ अथवा नवजात शिशु के कपाल में सवर्ण एवं नीरुज शोफ उत्पन्न हो जाता है जिसे उपशीर्षक कहते हैं[२]।

१. तस्याहारोपचारौ जातिसूत्रीयोपदिष्टाविकारकरौ चाभिवृद्धिकरौ भवतः॥ २५॥
ताभ्यामेव च विषमसेविताभ्यां जातः सद्य उपहन्यते तरुरिवाचिरव्यपरोपितो वातातपाभ्यामप्रतिष्ठितमूलः॥ २६॥
(च० सं० शा० ६/२५, २६)

२. (अ) कपाले पवने दुष्टे गर्भस्यस्यापि जायते। सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम्॥ (गर्भस्थस्यापिशब्दज्जातस्यापि-इन्दु) (अ० सं० उ० २७/१४)
(आ) कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते। सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम्॥ (अ० हृ० उ० २३/२१)

यह प्रसव-काल में उत्पन्न शिशु के शिर में होने वाले 'कप्युट सॅक्सिडेनिअॅम' का वर्णन प्रतीत होता है।

Vitiated *vāyu* produces painless swelling of body-colour over the head of the fetus or newborn, which is known as *upaśīrṣaka*.

This appears to be description of caput succedaneum.

नाभिगत व्याधियाँ (Diseases of umbilicus)

१) नाभिपाक-चिकित्सा (Treatment of nābhipāka or suppuration of umbilical wound)

(१) नाभिपाक में हरिद्रा, लोध्र एवं मधुयष्टी के साथ प्रियङ्गु[३,४] अथवा प्रियङ्गु एवं सुरदारु[४] अथवा श्यामा[३] के कल्क से निर्मित तैल से अभ्यङ्ग करें।

(२) उपर्युक्त औषधियों के चूर्ण का अवचूर्णन करें[१,२,३,४]।

(३) छाग-शकृत को जलाकर उसका अवचूर्णन करें[३]। योगरत्नाकर में 'दग्धेन' के स्थान में दुग्धेन अर्थात् छाग-शकृत को दुग्ध के साथ मिलाकर प्रयोग वर्णित है, पर यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि दुग्ध मिलाकर अवचूर्णन नहीं हो सकता अतः 'दग्धेन' पाठ ही युक्तिसंगत है[४]।

(४) क्षीरी वृक्षों के त्वक्-चूर्ण का अवचूर्णन करें[३,४]।

(५) चन्दन-रेणु का अवचूर्णन करें[३,४]।

i) Oil prepared with pestled *haridrā, lodhra* and *madhuyaṣṭī* with either *priyaṅgu* or *priyaṅgu* and *suradāru* or *śyāmā* should be applied.

ii) Fine powders of following should be sprinkled over wound—

a) Drugs mentioned for preparing above oil.

b) Ash of burnt pellets of goat.

c) Stem-bark of *kṣīri vṛkṣas* (latex yielding trees).

d) Dust of *candana*.

२) नाभि के असम्यक् उपकल्पन से उत्पन्न व्याधियाँ एवं उनकी चिकित्सा (Diseases developing due to improper cutting of umbilical cord and their treatment)

अ) व्याधियाँ (Diseases)

असम्यक् कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामोत्तुण्डिता पिण्डलिका विनाभिका विजृम्भिकाबाधेभ्यो भयम्॥
(च० सं० शा० ८/४५)

१. तस्य चेन्नाभिः पच्येत्, तां लोध्रमधुकप्रियङ्गुसुरदारुहरिद्राकल्कसिद्धेन तैलेनाभ्यज्यात्, एषामेव तैलौषधानां चूर्णं नावचूर्णयेत्॥
(च० सं० शा० ८/४४)

२. यष्टीलोध्रनिशाश्यामाकल्कपक्वेन सेचयेत्। नाभिं पाके तु तैलेन तज्जूर्णक्षावचूर्णयेत्॥ (अ० सं० उ० २/८८)

३. नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः श्रृतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चाप्यवधूलनम्॥
दग्धेन छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम्। त्वक्चूर्णः क्षीरिणा वाऽपि कुर्याच्चन्दनेणुना॥ (भा० प्र० चि० ७१/१७९, १८०)

४. नाभिपाके ·····। ·····शस्तमेभिश्चात्रावधूलनम्। दुग्धेन कृच्छागशकृता (दग्धेन छागशकृता-शु० पा०)····· त्वक्चूर्णैः ·····॥ (भा० प्र० सदृश) (यो० र० बालरोग० चि०)

Scanned with CamScanner

असम्यक्कल्पनान्नाभेः स्याद्विनामो विजृम्भिका ॥ (अ० सं० उ० २/९०)

नाभि के असम्यक् उपकल्पन से आयाम-व्यायाम से उत्तुण्डित (लम्बाई एवं चौड़ाई से उठी हुई[१]), पिण्डलिका (परिमण्डलयुत या गोल एवं कठिन[१]), विनामिका (किनारे उठी हुई एवं मध्य में निम्न[१]) तथा विजृम्भिका (बार बार बढ़ने वाली[१]) आदि व्याधियों का भय रहता है।

महर्षि वाग्भट ने संक्षेप में लिखा है कि नाभि के ठीक से न काटने से विनाम एवं विजृम्भिका व्याधियाँ हो जाती हैं।

Due to improper cutting of umbilical cord following abnormalities of umbilicus of child may develop i.e. *uttuṇḍita* in *āyāma* and *vyāyāma* (protuberant in length and width or having broader base but less protuberance), *piṇḍalikā* (round and hard protuberance), *vīnāmikā* (protuberant in edges and depressed in centre) or *vijṛmbhikā* (having recurrence of protrusion).

आ) चिकित्सा (Treatment)

गुरुता एवं लघुता (विकारोत्पादक वात एवं पित्त आदि दोषों की) का विचार करके अविदाही, वातपित्त-शामक अभ्यङ्ग, उत्सादन, परिषेचन तथा सर्पि (वातपित्त शामक सर्पि का आभ्यन्तर प्रयोग) के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए[२], अर्थात् अन्तः एवं बहिः दोनों प्रकार से वातपित्त-शामक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए[३]।

Giving due consideration to *gurutā* (heaviness) and *laghutā* (lightness) of *vāta, pitta* etc. *doṣas*, specific massage, anointments and irrigations with *avidāhī* (which do not produce burning sensation) drugs capable of suppressing *vāta* and *pitta* should be done. *Ghṛta* (treated with the drugs of above qualities) should be used internally and externally.

३) नाभितुण्डी-लक्षण एवं चिकित्सा (Clinical features and treatment of nābhituṇḍī)

वात से आध्मापित अर्थात् फूली हुई तथा पीड़ायुक्त नाभि को तुण्डी कहते हैं[४]।

इसकी चिकित्सा के लिए वातहर स्नेह, स्वेदन तथा उपनाहन का प्रयोग करें[४]।

The umbilicus inflated by *vāyu* and having pain is known as *nābhituṇḍī*.

Oleation, sudation and unction with the drugs capable of suppressing *vāta* should be done for its cure.

४) नाभिशोथ-चिकित्सा (Treatment of inflammation of umbilicus)

(१) मिट्टी के ढेले को अग्नि में तपाकर दूध में बुझायें, उसकी ऊष्मा से नाभि का स्वेदन करें। इससे नाभिशोथ

१. ·····आयामो दैर्घ्यं, व्यायामो विस्तारः। ताभ्यामुत्तुण्डिता आयामव्यायामोत्तुण्डिता, दीर्घपीनत्वयुतेत्यर्थः, पिण्डलिका परिमण्डलयुताः, विनामिका अन्तोच्छ्रिता मध्यनिम्नाः, विजृम्भिका तु मुहुर्मुहुर्वृद्धिमती ॥ (च० सं० शा० ८/४५ की चक्र० टीका)

२. तत्राविदाहिभिर्वातपित्तप्रशमनैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकैः सर्पिर्भिश्चोपक्रमेत गुरुलाघवमभिसमीक्ष्य ॥ (च० सं० शा० ८/४५)

३. वातपित्तहरं कर्म तत्रान्तर्बहिराचरेत् ॥ (अ० सं० उ० २/९०)

४. वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुण्डिसंज्ञिताम्। मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाहनैः ॥ (सु० सं० शा० १०/४३, ४४ एवं अ० सं० उ० २/८९)

का शमन हो जाता है[१]।

Sudation should be done with the vapour obtained by dipping heated clod of earth in milk.

५) नाभि का समय पर पात न होने पर चिकित्सा (Treatment if umbilical cord does not fall off)

यदि (नाभि उपकल्पन के) पाँचवें दिन भी नाल का पात न हो तो जले हुए अङ्गारों की ठण्डी राख का अवचूर्णन करें अथवा भूमि पर गाढ़े घिसे हुए गुड़ का लेप करें[२]।

If the umbilical cord attached to the umbilicus does not fall off even after five days of birth then cooled ash of burnt charcoal should be sprinkled over it or else thick paste of jaggery prepared on the ground should be applied locally.

६) नालपातोपरान्त भी उन्नत रहने पर चिकित्सा (The treatment of protuberance or growth after detachment of umbilical cord)

नालपात हो जाने के बाद भी यदि उन्नत (उभरी हुई) रह जाए तो छाग-शकृत को दग्ध करके अवचूर्णन करना चाहिए[३]।

If protuberance or growth after detachment of umbilical cord persists then burnt pellets of goat should be sprinkled over it.

७) नाभिव्रण की चिकित्सा (Treatment of umbilical ulcer)

अनुन्नत नाभि में (व्रण के) रोपण के लिए अश्वगन्धा, अञ्जन, बकरी एवं भेड़ का शकृत् तथा यष्टीमधुक के चूर्ण को घृत में मिलाकर लेप करना चाहिए[४]।

For healing of umbilical wound powdered *aśwagandhā, añjana.* pellets of goat and sheep and *yaṣṭimadhuka* mixed with *ghṛta* should be applied.

विमर्श (Comments)

नाभिपाक, नाभिशोथ, नालपतन के बाद भी उन्नत रहना तथा नाभिव्रण इन चारों स्थितियों के यद्यपि विशिष्ट लक्षणों का निर्देश नहीं दिया गया है, पर नाम के आधार पर नाभि का शोथ एवं पाक नाभिगत उपसर्ग की ही दो स्थितियाँ मानी जा सकती हैं। पूयोत्पत्ति के पूर्व नाभिशोथ एवं तत्पश्चात् पूयोत्पत्ति हो जाने पर नाभिपाक। कभी कभी रोपण की प्रक्रिया में विकार आने से किसी भी व्रण में अत्यधिक उभार (ओवर ग्रैन्यूलेशन) बन जाता है, जो सम्भवतः नालपतन के बाद उभार के नाम से दिया गया है। नाभिगत व्रण सामान्य व्रण का वर्णन है। नाभि के असम्यक् उपकल्पन से उत्पन्न सभी व्याधियाँ व नाभितुण्डी विभिन्न प्रकार की नाभिगत आन्त्रवृद्धि का वर्णन प्रतीत होती हैं। नाभितुण्डी में विद्यमान रुजा का स्पष्टीकरण कुछ कठिन है क्योंकि सामान्यतया अनवरुद्ध आंत्रवृद्धि में रुजा नहीं होती, फिर भी कभी कभी उदर्याकला

१. मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ (भा० प्र० चि० ७१/१७८ एवं यो० र० बा० रो० चि०)

२. प्रदीप्ताङ्गाररजसा प्रशान्तेनावचूर्णयेत्। पञ्चमेऽहन्यपतन्नालं लेपयेद्वा गुडाम्भसा ॥ सान्द्रेण भूमौ घृष्टेन ·····॥ (अ० सं० उ० २/८५)

३. ·····नालपातेऽपि चोन्नताम्। नाभिं छागेन शकृता दग्धेनान्तर्विचूर्णयेत् ॥ (अ० सं० उ० २/८६)

४. अश्वगन्धाञ्जनाजाविविडघ्यष्टीमधुकादिभिः। रोपयेच्चूर्णितैर्नाभिं स्नेहयुक्तैरनुन्नताम् ॥ (अ० सं० उ० २/८७)

Scanned with CamScanner

में खिंचाव होने से रुजा की अनुभूति होती है। उपर्युक्त आधार पर संहिताओं में वर्णित विभिन्न व्याधियों का निम्न व्याधियों से सामञ्जस्य किया जा सकता है-

नाभिशोथ	–	नाभि में शोथ
नाभिपाक	–	नाभि की पूयमयता
पतन के बाद उन्नता	–	अत्यधिक रोपणवस्तु बन जाना
नाभिव्रण	–	नाभि के पतनोपरान्त अपूरित व्रण
उत्तुण्डित, विजृम्भिका, विनामिका, नाभितुण्डी	}	विभिन्न आकार की नाभिगत आन्त्रवृद्धि

Clinical features of above described disorders except *nābhituṇḍī* have not been given; however, on the basis of their nomenclature, these can be equated with the diseases described to-day in following way—

Nābhiśotha	:	Inflammation of umbilicus.
Nābhipāka	:	Suppuration of umbilical wound.
Unnatā after its *patana*	:	Over granulation tissue of umbilical wound.
Nābhivraṇa	:	Umbilical ulcer.
Uttuṇḍiā, Vijṛmbhikā, Vināmikā and *Nābhituṇḍī*	:	Umbilical hernias.

उल्बक (Ulbaka)

अ) हेतु, सम्प्राप्ति एवं लक्षण (Etiopathogenesis and clinical features)

गर्भाम्भसामवमनाच्छ्लेष्मणः कण्ठगस्य वा। सम्पर्कादूधृदये दुष्टो मार्गानावृणुते रसः॥
बद्धमुष्टिस्ततो मुह्यत्रोगैर्बालोऽभिभूयते। हृद्रोगाक्षेपकश्वासकासच्छर्दिज्वरादिभिः॥
उल्बकं सहजं व्याधिमम्बुपूर्णं च तं वदेत्॥ (अ० सं० उ० २/९१)

गर्भोदक का वमन न होने अथवा कण्ठगत श्लेष्मा का हृदय से सम्पर्क होने से दूषित हुआ रस मार्गों का (प्राणवह स्रोतस् का) आवरण कर लेता है। इससे बालक की मुट्ठियाँ बँध जाती हैं, वह हृद्रोग, आक्षेपक, श्वास, कास, छर्दि तथा ज्वर आदि रोगों से पीड़ित हो जाता है। इस व्याधि को उल्बक, सहज या अम्बुपूर्णव्याधि के नाम से कहा जाता है।

Due to improper emesis of *garbhodaka* (liquor amni) or contact of *śleṣmā* situated in throat with the heart, the *rasa* gets vitiated and encircles or obstructs the *mārgas* (channels or *prāṇavaha srotasas).* Due to this the fists of the child get tightened and he suffers from *hṛdroga* (cardiac disorders), *ākṣepaka* (convulsions), *śwāsa* (dyspnoea), *kāsa* (cough) *chardi* (vomiting) and *jwara* (fever) etc. disorders. This disease is known as *ulbaka, sahaja* or *ambupūrṇa vyādhi.*

विमर्श (Comments)

सामान्य बालक के कण्ठ में श्लेष्मा रहता है जो प्रसवोपरान्त मुखशोधन से स्वच्छ किया जाता है, यही श्लेष्मा या गर्भोदक यदि कण्ठ से नीचे हृदय की ओर अर्थात् फुफ्फुसों में पहुँच जाय तो चूषण-जन्य श्वसनक ज्वर (एस्पैरेशन न्युमोनयें) हो जाता है। उल्बक नाम से सम्भवतः इसी व्याधि का वर्णन है।

Throat of new born is covered with mucus, which is cleaned immediately after delivery, however, some times this mucus and/or liquor amni is inhaled by the child which produce aspiration pneumonia. Probably *ulbaka* is description of this very aspiration pneumonia.

आ) चिकित्सा (Treatment)

१) प्रातःकाल (स्तन)पान के अन्तराल में छागमूत्र का स्रोतोविशोधनार्थ पान करायें[१]।
२) बालक को स्नान एवं अभ्यङ्ग न करायें[१]।
३) निम्नलिखित घृत का पान करायें[१]।

बिल्वादिमूल (बृहत् पञ्चमूल), बृहती तथा पञ्चकोल एक एक पल, धन्वमांस (जाङ्गल मांस) आठ पल तथा शशमूष्नं (खरगोश के सिर का मांस) आठ पल लेकर सोलह गुने जल के साथ आठ भाग (आधा) शेष रहने तक पकायें। क्वाथ के सम भाग बकरी का मूत्र, मदिरा, दधि तथा क्षीर प्रत्येक मिलाकर उसमें विडङ्ग, सैन्धव, अजाजी, चविका, देवदारु, हिंगु, हिङ्गु, लशुन तथा व्योष का चिकना पिसा एक-एक कर्ष कल्क डालकर एक प्रस्थ घृत पाक करें। इस घृत को पीने से सहज (उल्बक), गुल्म, हिध्मा, वातव्याधि तथा वातजन्य पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। यह स्वस्थ बालक को भी पुष्टिदायक है[१]।

i) In the morning inbetween breast feeding, goat's urine should be given orally for cleansing the *srotasas* (channels).

ii) Bath and massage should not be given.

iii) Following *ghṛta* should be given orally.

Bilvādimūla (bṛhat pañcamūla), bṛhatī, and *pañcakola* each one *pala,* meat of wild animals and head of rabbit each eight *palas* should be cooked with sixteen times water, when half remains, it should be filtered. Now in this decoction, goat's urine, wine, curd and milk each equal to the quantity of decoction should be mixed, besides finely pestled *viḍaṅga,* rock salt, *ajājī, cavikā, devadāru, himsrā, hiṅgu, laśuna* and *vyoṣa* each one *karṣa* should also be mixed. With this mixture, one *prastha ghṛta* should be cooked with standard procedure. Use of this *ghṛta* cures *ulbaka, gulma, hidhmā,* disorders of *vāta* and *vātaja pāṇḍu.* This also gives strength and nourishment even to a healthy child.

□

---

१. स्रोतोविशोधनं प्रातस्तस्मिन्नन्तरपानकम्। विदध्याच्छागलं मूत्रं स्नानाभ्यङ्गौ च वर्जयेत्॥
बिल्वादिमूलबृहतीपञ्चकोलं पलांशकम्। धन्वमांसपलान्यष्टौ शशमूर्ध्नः पलाष्टकम्॥
साधयेत् षोडशगुणे सलिलेऽष्टांशशेषितम्॥
तेन क्वाथेन कर्षांशैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। छगलीमूत्रमदिरादधिक्षीरसमांशकम्॥
विडङ्गसैन्धवाजाजीचविकादेवदारुभिः। सहिंस्राहिङ्गुलशुनैः सव्योषैः श्लक्ष्णकल्कितैः॥
तत् पानाद्धन्ति सहजगुल्महिध्मानिलामयान्। पाण्डुरोगं च वातोत्थं स्वस्थवृत्ते च पुष्टिदम्॥ (अ० सं० उ० २/९२, ९३)

Scanned with CamScanner

अध्याय ११

CHAPTER XI

स्तन्य एवं धात्री प्रकरण

(STANYA OR BREAST MILK AND DHĀTRĪ OR WET NURSE)

स्तन्य-निर्माण (Formation of stanya or breast milk)

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः। कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते॥

(सु० सं० नि० १०/१८)

पक्व आहार से उत्पन्न रस का मधुर प्रसाद भाग, सारे शरीर से जाकर स्तनों को प्राप्त होकर स्तन्य कहा जाता है। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि व्यान वायु के द्वारा रस धातु सारे शरीर में पहुँचती है[1] (अतः स्तनों में भी जाती है)।

आचार्य भावमिश्र तथा योगरत्नाकरकार ने भी महर्षि सुश्रुत सदृश ही अपने विचार व्यक्त किए हैं[2]।

गर्भिणी-आहार के द्वारा गर्भपोषण का वर्णन करते समय महर्षि चरक एवं भेल ने स्पष्ट किया है कि गर्भिणी के आहार का एक अंश स्तन्य के निर्माण के लिए प्रयुक्त होता है[3], यद्यपि महर्षि काश्यप ने इस अंश को स्तन-पोषक माना है परन्तु स्तन पुष्ट होकर स्तन्य का ही निर्माण करेंगे ऐसा मान सकते हैं[4]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने भी गर्भ-पोषण-वर्णन के अन्तर्गत माता के आहार रस से ही स्तन्य की उत्पत्ति मानी है एवं रज तथा स्तन्य दोनों को ही रस के प्रसाद के उत्पन्न माना है[5]। स्तन्य को रस धातु से निर्मित या रस धातु का उपधातु भी माना गया है[6]।

यद्यपि उपर्युक्त सभी स्थानों में आचार्यों ने रस से ही स्तन्य की उत्पत्ति मानी है, परन्तु महर्षि काश्यप ने रक्तगुल्म

१. कृत्स्नदेहादित्यादि। रसधातोर्व्यानविक्षिप्तस्य सर्वदेहगतत्वात्॥ (सु० सं० नि० १०/१८ की डल्ह० टीका)

२. (अ) रसप्रसादो ·····। कृत्स्नादेहात् ·····। रसप्रसादः रसस्य सारः। (सु० सदृश)
(भा० प्र० पूर्व० ४/७ व टीका)
(आ) रसप्रसादो ·····। (सु० सं० सदृश ही) (यो० र० क्षीरदोषचि०)

३. च० सं० शा० ६/२३ (पृष्ठ १४४); भे० सं० शा० ५/७ (पृष्ठ १४६)

४. का० सं० सू० १८/६,७ (पृष्ठ १४५)

५. (अ) रस एव च पयोभूतः॥ (अ० सं० शा० २/३३)
(आ) स्त्रीणां रजसः·····। स्तन्य ·····। उभयमपि चैतद्रसप्रसादात्मकमिति॥ (अ० सं० शा० ५/२८)

६. (अ) रसात् स्तन्यं ····· रसात् स्तन्यं प्रसादजं। (च० सं० चि० १५/१७ की चक्र० टीका)
(आ) रसात् स्तन्यमार्तवं च। (सु० सं० सू० १४/१० की डल्ह० टीका)
(इ) वनितानां प्रसूतानां धमनीभ्यां स्तनौ गतात्। रसादेव हि जायते स्तन्यं स्तनयुगाशयम्॥ २१०॥
स्तन्यं ·····। ····· क्रमात् ससोपधातवः॥ २१२॥ (पृ० ५३) (भा० प्र० पूर्व० ३/२१०, २१२)
(ई) स्तन्यं ····· ससोपधातवः॥ (शा० सं० पूर्व० ५/१६, १७) (पृष्ठ ५३)

के वर्णन के अन्तर्गत रक्त से भी स्तन्य की उत्पत्ति मानी है; महर्षि वाग्भट एवं टीकाकार डल्हण ने अपरा-निर्माण-वर्णन में यही विचार व्यक्त किए है[1] कि यही रक्त स्तनों में जाकर कफ के द्वारा उपरञ्जित हो, स्तन्यता को प्राप्त होकर प्रसूता में पुनः आहार रस से वर्धित होता है।

महर्षि हारीत ने क्षीरोत्पत्ति, स्तन्य की श्वेतवर्णता एवं कन्याओं तथा वन्ध्याओं में इसकी अनुपस्थिति आदि का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो जो आहार (स्त्री द्वारा प्रयुक्त द्रव, जल, भक्ष्य पदार्थ) लिया जाता है वह उरस् स्थित शिरा (अन्नप्रणाली) अथवा क्षीरवाही शिराओं का अनुगमन करता हुआ, पित्त से संयुक्त होकर जठर में पहुँच, वहाँ की अग्नि से पचित हो, पुनः पित्त से मूर्छित (धात्वन्तर्गत पचित) होकर एवं पच्यमान होकर, शिराओं (स्तन्यवाही शिराओं) को प्राप्त हो क्षरण करता है अर्थात् बाहर निकलता है, यह अग्निसोमात्मक पदार्थ क्षीर कहलाता है। जिस प्रकार पित्त के द्वारा पक्वता को प्राप्त होकर रक्त (पूय में परिणत होकर) श्वेतत्व को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पित्त के संयोग से क्षीर श्वेत हो जाता है। क्षीर स्निग्ध एवं श्वेत होता है[2]।

कन्याओं में धातुओं के अल्प बल होने तथा वन्ध्याओं की क्षीरनाड़ियों के वात से परिपूरित होने के कारण क्षीर की उत्पत्ति नहीं होती[3]।

महर्षि भेल ने स्तन्य का प्राणायतनों में समावेश किया है[3]।

After digestion of food the *rasa* is formed. Sweet essence part of this *rasa* circulating through entire body by the action of *vyāna vāyu* reaches breasts and is termed as *stanya* (breast milk) or in other words the *stanya* is formed from *rasa*. It is also *upadhātu* of *rasa*. though Kāśyapa, Vāgbhata I and Ḍalhana accept the formation of *stanya* from *rasa*, however, while describing *raktagulma* or placenta formation they have mentioned that one part of *rakta* or the *rakta* left over after formation of placenta reaches breasts, gets coloured by *kapha* and forms *stanya*, after delivery it is increased or formed form *rasa*. *Raja* (menstrual blood) and *stanya* both are said to be derived from essence part of *rasa*.

१. (अ) ····· शोणितम्। ·····॥ १९॥
····· किञ्चित् स्तन्याय कल्पते·····। ॥ २०॥ तथैव गर्भः सूतायाः सद्यः स्तन्याय कल्पते॥ २१॥
(का० खि० ९/१९, २०, २१)
(आ) जरायुशेषं चोर्ध्वमसृक् प्रतिपद्यते। ·····। स्तनाश्रयमेव च कफोपरञ्जितं स्तन्यतामुपगतं प्रसूतायाः पुनराहाररसेनाप्याप्यते॥ (अ० सं० शा० २/११,१२ तथा सु० सं० शा० ४/२४ की डल्ह० टीका-कलकत्ता प्र०)

२. यद्यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम्। (यद्यदाहारसञ्जातं उरस्थितशिरानुगम्-पाठ-भेद)।
सरोजलं च भुक्तं च ('सरं' जलं तथा 'तद्तद् जठरमायाति' दो पाठ-भेद) तथा पित्तेन संयुतम्॥ २॥
पाचितं जाठरे वह्नौ पित्तेन सह मूर्च्छितम्। पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरतोयेन (क्षरते येन-पाठभेद) पुत्रक!॥ ३॥
तेन क्षीरमतिख्यातमग्निसोमात्मकं (सोमात्मकं-पाठ भेद) पयः॥ ४॥
क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां (शु० पा० पक्वतां) गतम्। रक्तं श्वेतत्वमायाति तथा क्षीरं सितं भवेत्॥ ८॥
क्षीरनाडी कुमारीणां वन्ध्यानां च कथं भवेत्। अल्प धातुबलं यस्मात्तस्मात् क्षीरं न जायते॥ ९॥
वन्ध्यानां क्षीरनाड्यस्तु वातेन परिपूरिताः। क्षीरं च न भवेत्तस्मात् ·····॥ १०॥ (हा० सं० प्रथ० स्था० ८)
(पाठभेद एली राजन द्वारा इन्स्टिट्यूट फ्रान्सेस डे इण्डॉलॉजि पाण्डुचेरी से १९७४ में प्रकाशित 'हारीत संहिता' के पृष्ठ ८६ एवं २४३ से उद्धृत)

३. स्त्रियाः स्तन्येन ·····। इत्येभिर्दशभिः प्राणः ·····॥ (भे० सं० सू० १७/२)

Scanned with CamScanner

Hārīta says that what-so-ever is ingested by the woman, same travelling through the *śirās* of chest (esophagus) or milk-carrying *śirās* and getting mixed with *pitta* reaches *jaṭhara* (stomach). There it gets metabolised by digestive fire and then again getting processed and metabolised by *pitta*, reaches *śirās* or breasts and is ultimately discharged. This secretion having association of *agni* and *soma* is knwon as milk. As the blood due to action of *pitta* gets suppurated and becomes white, so is the case with milk. In young girls due to less strength of *dhātus* and in infertile women due to filling of milk-carrying channels by *vāyu*, the milk is not formed.

Bhela has included milk amongst ten *prāṇāyatanas* (seats of life).

विमर्श (Comments)

सामान्य दृष्ट्या उपर्युक्त वर्णन में आचार्यों के स्वयं के मत में ही विरोधाभास सा लगता है क्योंकि रक्त एवं रस दोनों से ही स्तन्य की उत्पत्ति वर्णित की है। परन्तु थोड़ा विचार करने पर विषय सुस्पष्ट हो जाता है, क्योंकि रक्त से स्तन्य-निर्माण गर्भावस्था के काल में वर्णित है। गर्भावस्था में स्तन्य का निर्माण करने वाली ग्रन्थियों, स्तन्यवाही नलिकाओं आदि का नवनिर्माण, पोषण एवं वर्धन आदि प्रक्रियायें होती हैं जिनके लिए रक्त अत्यावश्यक है। पोषणादि प्रक्रियायें गर्भावस्था के ही काल में परिपूर्ण हो प्रथम स्तन्य या कॅलास्ट्रॅम का भी निर्माण हो जाता है, जिसके निर्माण में भी रक्त का योगदान है। प्रसव के पश्चात् केवल स्तन्य-निर्माण का कार्य होता है जो रस के द्वारा सम्पादित होता है।

Though apparently it looks that there is difference of opinion regarding formation of *stanya*, because it is described to be formed from *rakta* or *rasa* both. However, careful scrutiny clarifies it. Formation of *stanya* from *rakta* is described during pregnancy period. During pregnancy new lactic glands and lactiferous tubules are formed, existent ones grow and develop. For this growth and development during pregnancy period the *rakta* (blood) is essential, first milk secretion or colostrum is also formed during pregnancy from *rakta*. After delivery there is no further growth of lactic glands, but their function i.e. formation of milk is increased, which is accomplished by *rasa*.

स्तन्य-प्रवृत्ति-हेतु (Cause of stanya pravṛtti or milk ejection)

आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ २१॥
तदेवापत्यसंस्पर्शाद् दर्शनात् स्मरणादपि। ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् सम्प्रवर्तते ॥ २२॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ (सु० सं० नि० १०/२१ से २३)
धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम्। चतुरात्रात् त्रिरात्राद् वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥
(सु० सं० शा० १०/१४)

सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात् प्रसूतितः। तृतीयेऽन्हि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥
(अ० सं० उ० १/११ एवं अ० हृ० उ० १/११, १२)

महर्षि सुश्रुत ने सर्वशरीर स्थित शुक्र के स्त्री के दर्शनादि से प्रस्रवण के साथ स्तन्य का सामञ्जस्य स्थापित करते हुए लिखा है कि आहार-रस से उत्पन्न होने के कारण स्त्रियों का स्तन्य भी अपत्य के स्पर्श, दर्शन, स्मरण तथा शरीर के सम्पर्क से शुक्र-सदृश ही प्रवर्तित होता है। परन्तु इन सभी (स्पर्शादि चारों) में निरन्तर स्नेह (बच्चे के प्रति वात्सल्य एवं स्त्री के प्रति काम) ही प्रधान रूप से प्रस्रुति का कारण होता है।

पुनः च लिखा है कि बाद में (प्रसव के अनन्तर) हृदय-प्रदेश में स्थित धमनियों के विवृत हो जाने से तीन या चार रात्रि के पश्चात् स्त्रियों में स्तन्य की प्रवृत्ति होती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार तथा अ० हृदयकार ने धमनी के स्थान में सिरा का उल्लेख किया है कि प्रसव के पश्चात् हृदयस्थ सिराओं के विवृत होने से तीन या चार रात्रि के पश्चात् स्त्रियों में स्तन्य की प्रवृत्ति होती है।

महर्षि काश्यप ने रक्तगुल्म अध्याय में स्तन्य-प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए बालक के प्रति माता के प्रेम को ही मुख्य कारण माना है[1]।

महर्षि हारीत ने लिखा है कि स्त्रियों में प्रसव (बालक का जन्म) बल के साथ (अति प्रवाहण के लिए प्रयुक्त बल के साथ सम्पन्न) होता है जिसके कारण स्रोतों की विशुद्धि होती है एवं क्षीर तत्काल प्रवर्तित हो जाता है। जिससे (तत्काल प्रवर्तन के कारण) सद्यःप्रसूता स्त्रियों का दुग्ध श्लैष्मिक या कफ-प्राधान्य वाला होता है, तथा (कफ की प्रधानता के कारण) दुग्ध में कठिनता (गाढ़ापन) आ जाती है अतः इसका परित्याग करना चाहिए अर्थात् बच्चे को नहीं देना चाहिए[2]।

माधवनिदानकार ने महर्षि सुश्रुत के ही वर्णन को उद्धृत कर दिया है[3]। भावप्रकाश में भी शब्दान्तर से यही वर्णन है[4]।

As semen is ejaculated by thought, sight or touch of the woman or coitus with her, similarly milk is also ejected by thought, sight or touch of the child and also with his physical contact (suckling). For proper flow of milk uninterrupted affection for the child is mainly responsible.

After delivery on third or fourth day the *dhamanīs* or *sirās* situated in cardiac region get dilated and initiate milk ejection.

Hārīta says that due to force used during bearing-down efforts by the parturient woman, her *srotasas* get cleared leading to sudden milk ejection, however, this milk is thick due to dominance of *kapha*, hence should be discarded.

विमर्श (Comments)

सद्यःप्रसूता स्त्री के स्तन्य अर्थात् कॅलॉस्ट्रॅम में सामान्य स्तन्य की अपेक्षा प्रोभूजिन एवं लवण की मात्रा अधिक तथा शर्करा एवं वसा की मात्रा कम होती है, इन गुणों के ही कारण सम्भवतः महर्षि हारीत ने इसका पान निषिद्ध किया हो, यह प्रथा आधुनिक काल में भी प्रचलित थी, परन्तु कॅलॉस्ट्रॅम में प्रतिरक्षी घटकों (एन्टिबॉडि) एवं महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की उपस्थिति के ज्ञान के उपरान्त इसका प्रयोग लाभदायक माना जाने लगा है।

The first milk or colostrum is rich in protein and salt and deficient in sugar and fat

---

१. का० सं० खिल० ९/४५। (पृष्ठ ३९८)

२. प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूयते। तेन स्रोतो विशुद्धिः स्यात् क्षीरमाशु प्रवर्तते ॥
तस्मात् सद्यः प्रसूतायां जायते श्लैष्मिकं पयः। तेन कठिनतां याति तस्मात्त् परिवर्जयेत्।
(हा० सं० प्रथ० स्था० ८/११, १२)

३. आहाररस योनित्वात् ..... प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ (सु० सं० सदृश) (मा० नि० ६७/३,४)

४. स्तन्यं त्रिरात्रात्स्त्रीणां वा चतुरात्रादनन्तरम्। प्रवर्त्तयन्ति विवृता धमन्यो हृदये स्थिताः ॥
पयः पुत्रस्य संस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि। ग्रहणादप्युरोजस्य शुक्रवत्सम्प्रवर्तते ॥
स्नेहो निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/८ एवं ९)

Scanned with CamScanner

contents in comparision to normal breast milk, probably due to these qualitative changes its use was contraindicated by Hārīta, this practice was prevalent even in 20th century, however, after the knowledge of presence of good amount of antibodies and essential nutrients in this colostrum, its use is being considered beneficial.

स्तन्य का प्रमाण (Amount of stanya)

स्तन्यस्य द्वौ (अञ्जलयः) । (अ० सं० शा० ५/९८)
द्वावञ्जली तु स्तन्यस्य ॥ (अ० हृ० शा० ३/८१)

स्तन्य का प्रमाण दो अञ्जली होता है ।

Amount of milk is two *añjali*.

विमर्श (Comments)

स्तन्य की मात्रा में अत्यधिक वैभिन्य मिलता है तथा उपर्युक्त मात्रा को सम्पूर्ण मात्रा मानना भी उचित नहीं होगा, परन्तु इसे सामान्य स्वास्थ्य की स्त्री में स्तनों से एक बार में निकलने वाले स्तन्य की मात्रा मान सकते हैं ।

Total amount of milk varies greatly in different individuals, the quantity mentioned above can not be considered as total quantity, however, two *añjali* amount may be considered as the amount normally excreted by a healthy woman at one sitting.

धात्री (Dhātrī or wetnurse)

मातृ-स्तन्य के समकक्ष अन्य दुग्ध न होने के कारण माता की दैहिक या मानसिक व्याधियों की उपस्थिति में उसके द्वारा स्तन-पान न कराए जा सकने पर प्राचीन-काल में धात्री द्वारा स्तन-पान कराने की व्यवस्था का वर्णन है । वाग्भट ने स्पष्ट लिखा है कि माता के स्तन्य के समकक्ष देहवृद्धिकारक अन्य कोई भी स्तन्य नहीं है अतः उसके अभाव में स्तन्य-युक्त दो धात्रियों की व्यवस्था करनी चाहिए[१] । अन्य सभी आचार्यों ने भी धात्री-व्यवस्था का वर्णन तो दिया है पर उनकी संख्या का उल्लेख नहीं किया । धात्री-व्यवस्था-वर्णन का एक यह भी कारण हो सकता है कि उस काल में संहितायें अधिकांशतः राजाओं के आश्रित विद्वानों द्वारा लिखी जाती थीं, बालकों की सभी व्यवस्था कुमार या राजकुमार को ही ध्यान में रखकर वर्णित प्रतीत होती है । साम्राज्ञियों द्वारा सौन्दर्य-ह्रास के भय से स्तनपान न कराए जा सकने के कारण धात्री-व्यवस्था की गई हो ।

सभी आचार्यों ने धात्री की विशिष्ट परीक्षा-विधि का वर्णन किया है जिस परीक्षण के उपरान्त ही उसे स्तन-पान कराने के लिए रखा जाता था ।

As no other milk can be compared with mother's milk for proper growth and development of the child, so in the conditions of inability for feeding the child by the mother due to her physical or psychological disorders, alternative arrangement for a wet-nurse has been advised in *āyurvedika* classics. Vāgbhaṭa II has advised arrangement of two wet-nurses, while other authors have not specified the number. Another reason for detailed description of wet-nurse could be that during the era of these *āyurvedika* texts the authors used to live under the patronage of rulers, all the texts were written under monarchism. Entire management of child is described considering the children of kings or *kumāras*. Probably, the

१. मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये । स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये ..... ॥ (अ० हृ० उ० १/१५)

queens might not be preferring breast-feeding, lest their beauty is lost, naturally the wetnurse was arranged.

Specific qualities of the wet-nurse have been described or in other words thorough assessment of physical and psychological status of wet-nurse was done before her appointment.

धात्री-परीक्षा (Dhātrī-parīkṣā or examination of wet-nurse)

अतो धात्रीपरीक्षामुपदेक्ष्यामः । अथ ब्रूयात्–धात्रीमानय समानवर्णां यौवनस्थां निभृतामनातुरामव्यङ्गामव्यसनामविरूपामजुगुप्सितां देशजातीयामक्षुद्रामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातां वत्सलामरोगां जीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीमप्रमत्तामनुच्चारशायिनीमनन्त्यावसायिनीं कुशलोपचारां शुचिमशुचिद्वेषिणीं स्तनस्तन्यसंपदुपेतामिति ॥
(च० सं० शा० ८/५२)

ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयस्कामरोगां शीलवतीम् अचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलम्बौष्ठीमलम्बोद्वहस्तनीमव्यङ्गामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य ॥ (सु० सं० शा० १०/२५)

अथास्य समानवर्णां मध्यमवयाः शुचिरलोलुपा निभृतानातुरा जीवद्वत्सा वत्सला दक्षिणा ब्रह्मचारिण्यव्यङ्गा बहुक्षीरा शुक्लाम्बराचारा दीर्घह्रस्वादिदेहदोषाष्टकरहिता अलम्बोर्ध्वचूचुकातिपीनहीनस्तनदोषमुक्ता युक्तचूचुका धात्री स्यात्तस्या एवं स्तन्यं पिबेत् । (अ० सं० उ० १/२०)

स्तन्यधात्र्यावुभेकार्ये तदसम्पदि वत्सले ॥ १५॥
अव्यङ्गे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः समे । नीरुजे मध्यवयसौ जीवद्वत्से न लोलुपे ॥ १६॥
हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्च ते ॥ (अ० हृ० उ० १/१५ से १७)
तस्मात् संशोधनपरा नित्यं धात्री प्रशस्यते ॥ (का० सं० सू० १९/४)
समानसत्त्वा बालानां तस्माद्धात्री प्रशस्यते । उद्वेगवित्रासकरी विपरीता न शस्यते ॥
न जीवन्त्यथ जीवन्ति कृच्छ्रा धात्रीविपर्यये । समानसत्त्वा बालानां पुष्टिरायुर्बलं सुखम् ॥
(का० सं० सू० २८/३३,३४)

अब धात्री-परीक्षा का उपदेश किया जा रहा है । धात्री को लाने के लिए (वैद्य) कहे । धात्री समान वर्ण की (बालक के ब्राह्मणादि वर्ण के अनुरूप), युवती (बाला या वृद्धा का असम्पूर्ण या क्षीण-धातु की होने के कारण परित्याग करना चाहिए[१]), विनीत या शांत स्वभाव की, आतुरता रहित, अव्यङ्ग (हीनाधिकाङ्ग-विरहित), व्यसन रहित (किसी मादक वस्तु का व्यसन न करने वाली), विरूपता रहित (सुन्दर), जुगुप्सा रहित, देश एवं जाति में समान, क्षुद्रता रहित, क्षुद्रकर्म न करने वाली (ऊँचे विचार एवं कर्त्तव्य वाली), (उत्तम) कुल में उत्पन्न, वत्सला (पुत्र को प्रेम करने वाली), अरोग अर्थात् स्वस्थ, जीवित सन्तान एवं पुमान् पुत्र वाली, प्रचुर मात्रा के दुग्ध वाली, अप्रमत्त (बहुत ही सावधानी से कार्य करने वाली), बालक के मल-मूत्रादि के ऊपर शयन न करने वाली (अर्थात् उन्हें तत्काल ही साफ करने वाली), नीच कुल में न ब्याही गई हुई, उपचार-कुशल, पवित्र या स्वच्छ, अपवित्रता या अस्वच्छता से द्वेष करने वाली तथा स्तन एवं स्तन्य के सम्पत् से युक्त उत्तम होती है ।

महर्षि सुश्रुत ने शब्दान्तर से उपर्युक्त आशय का ही वर्णन करते हुए लिखा है, कि तदनन्तर वर्ण के अनुसार, मध्यम शरीर-प्रमाण की (न बहुत लम्बी, न नाटी), मध्यम वयस्का, रोग रहित, शीलवती, चञ्चलता रहित (शान्त स्वभाव वाली),

१. यौवनस्थामित्यनेन बालावृद्धयोरसम्पूर्णक्षीणधातुत्वेन तयोर्निरासं करोति ॥ (च० सं० शा० ८/५२ की चक्र० टीका)

Scanned with CamScanner

अलोलुप (लालची न हो), न बहुत पतली न बहुत मोटी, प्रसन्न क्षीर (विकार रहित दुग्ध) से युक्त, जिसके होठ बहुत लम्बे एवं स्तन बहुत लम्बे अथवा बहुत उर्ध्व (छोटे) न हों, अव्यङ्ग, अव्यसना, जीवित वत्सा, प्रचुर दुग्ध वाली, वात्सल्य करने वाली, क्षुद्र कर्म न करने वाली, उत्तम कुलोत्पन्न, अनेक उत्तम गुणों से युक्त तथा श्यामा (श्यामा स्त्रियाँ अधिकांशत: अधिक दुग्धवाली होती हैं[1]) धात्री को बालक के आरोग्य तथा बल की वृद्धि के लिए नियुक्त करें।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि धात्री समान वर्ण एवं मध्यम आयु की (क्योंकि तरुणी स्त्री अवत्सला एवं वृद्धा क्लेश सहने में असमर्थ होती है, वृद्धा का स्तन्य भी पुष्टिकर नहीं होता[2]), पवित्र, अलोलुप, विनीत या शान्त, निरोग, जीवित वत्सा, चतुर या अनुकूल[2], ब्रह्मचारिणी, अव्यङ्गा, प्रचुरदुग्धा, श्वेत (स्वच्छ) वस्त्र पहनने तथा शुद्ध विचारों वाली, दीर्घ, ह्रस्व आदि शरीर के आठ दोषों (अति दीर्घ, अति ह्रस्व, अति श्वेत, अति कृष्ण, अति लोम, अलोम, अति स्थूल एवं अति कृश[3]) से रहित, अत्यधिक लम्बे या अधिक ऊँचे आदि दोषों से रहित चूचुक तथा अति पीन एवं हीन दोषों से मुक्त स्तन एवं युक्त चूचुक (सुदृढ़ एवं सामान्य) वाली होनी चाहिए। उसका स्तन्य बच्चे को पीने को दें। अन्यत्र पारिगर्भिक होने के भय के कारण गर्भिणी स्त्री के द्वारा स्तनपान का निषेध किया है।[3]

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि वात्सल्य करने वाली, अव्यङ्ग, ब्रह्मचारिणी, वर्ण एवं प्रकृति में समान, निरोग, मध्यम वयस्का, जीवित वत्सा तथा अलोलुप धात्री हित आहार-विहार के द्वारा यत्नपूर्वक बालक का उपचार करती है।

महर्षि काश्यप ने अति संक्षिप्त वर्णन किया है कि नित्य संशोधन से युक्त (शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहारिक तीनों दोषों से रहित) धात्री उत्तम होती है। पुनश्च सत्त्व का प्राधान्य वर्णन करते हुए लिखा है कि बालक के समान सत्त्व वाली धात्री (यदि बालक सात्त्विक प्रकृति का है तो सात्त्विक प्रकृति की, यदि राजसिक प्रकृति का है तो राजसिक प्रकृति की धात्री आदि) प्रशस्त मानी गई है। विपरीत गुण वाली धात्री उद्वेग तथा वित्रासकारी होने से प्रशस्त नहीं है। विपरीत सत्त्व वाली धात्री होने से या तो बालक जीवित ही नहीं रहता या यदि जीवित रहता है तो अति कष्ट से। समान सत्त्व वाली धात्री बालकों को पुष्टि, आयु, बल एवं सुख देने वाली होती है।

यद्यपि महर्षि हारीत ने धात्री का विशिष्ट वर्णन नहीं दिया परन्तु क्षीर वर्णन में स्त्री के शरीर के वर्ण का प्रभाव मानते हुए कृष्ण एवं पीत वर्ण की स्त्री को ही श्रेष्ठ दुग्ध वाली कहा है। वर्णन इस प्रकार है–कृष्ण वर्णा स्त्री (स्त्री का दुग्ध) वृष्य तथा वातघ्न होती है अत: इसका स्तन्य अच्छा होता है। श्वेत वर्ण की स्त्री का दुग्ध श्लेष्मकारक, रक्त वर्ण की स्त्री का दुग्ध वातकारक होता है। पीत वर्ण की स्त्री का दुग्ध पित्तशामक होता है और यह अच्छा है[4]।

आचार्य भावमिश्र ने बालक के पालन के लिए भलीभाँति विचार कर ही धात्री के रखने का उपदेश देते हुए उपर्युक्त वर्णित गुणों के साथ स्वाधीन, अल्पतुष्टा, कपटरहितता आदि गुणों का उल्लेख करते हुए निषिद्ध धात्री का पृथक् विस्तृत उल्लेख किया है कि शोकाकुल, क्षुधित, श्रान्त, सदा व्याधियुक्त, अत्यन्त ऊँची (लम्बी), अत्यन्त नीची (नाटी), अति स्थूल, अति कृश, गर्भिणी, ज्वर-पीड़ित, लम्बोन्नत स्तन वाली, अजीर्णकारक वस्तुओं का भोजन करने वाली, पथ्य विरहित या

१. श्यामा हि प्रायशः प्रचुरक्षीरा भवति। (सु० सं० शा० १०/२५ की डल्ह० टीका)

२. तरुणीस्यादवत्सला। क्लेशं न सहते वृद्धा स्तन्यं चास्या न पुष्टिकृदिति। ..... दक्षिणा अनुकूला। .....।
अष्टौदेहदोषाः अतिदीर्घत्वमतिह्रस्वत्वमतिलोमत्वमलोमत्वमतिशुक्लत्वमतिकृष्णत्वमतिकार्श्यमतिस्थूलत्वं च।
(अ० सं० उ० १/२० की इन्दु टीका)

३. न गर्भिण्याः पिबेत् स्तन्यं पारिगर्भिककृद्धि तत्॥ (अ० सं० उ० १/३८)

४. कृष्णा वृष्या च वातघ्नी, पयस्तस्या विशेष्यते। श्वेतायाः श्लेष्मकृच्च वातलं रक्तिकायाः।
पित्तसंशमना पीता तस्याः क्षीरं विशेष्यते॥ (हा० सं० प्रथ० ८/१४, १५)

कुपथ्य सेविनी, क्षुद्र कार्यों में आसक्ति वाली, दु:ख से पीड़ित, चञ्चल (स्वभाव वाली) धात्री के स्तनपान कराने से बालक व्याधियों से पीड़ित हो जाता है[1]।

Caraka says that the wet-nurse should be identical in *varṇa* (similar in the caste i.e. for *brāhmaṇa* child the *brāhmaṇa* wet-nurse etc.), young (very young or old woman should be discarded due to presence of incomplete or decreased *dhātus* respectively), humble or modest, free from impatience, not possessing deficient or accessory body parts, non-addict, beautiful, free from disgust, similar in *deśa* (living place) and *jāti* (sub-caste), neither mean-minded nor indulging in mean acts, born in high family, affectionate to the child, free from diseases, having alive male child and good amount of breast-milk, over cautious, not habituated of sleeping over excrements or used to clean the feces etc. immediately, not married in low cast, expert in nursing, pious, clean and having hatred from unpiousness or uncleanliness and possessing good quality of breasts and milk.

Suśruta giving almost similar description says that the wet-nurse should be of average height, middle-aged, free from diseases, well-behaved or urbane, free from fickleness, non-greedy, neither too thin nor too obese, possessing milk of good quality, not having too long or protuberant lips, having neither too short nor too long breasts and other non-addiction etc. qualities described by Caraka. The wet-nurse should be *śyāmā* (dark complexioned) because the women of this complexion possess profuse milk. The wet-nurse is to be appointed for betterment of health, growth, development and strength of the child.

Vāgbhaṭa I agreeing with above description adds that wet-nurse should be clever, chaste or celibate, wear clean garments and keep pious ideas. She should be free from eight (i. e. too tall or too short in height, over fair or very dark in complexion, having excessive body hair or their total absence, obese or lean and thin) physical disorders. Her teats should be strong but neither too high nor too low. The breast milk of pregnant woman is contra-indicated because it causes *pārigarbhika* disorder. Indu has clarified that middle aged woman is to be preferred because young woman does not have affection for the child and old woman can not withstand troubles as well as her milk also is not nutritious to the child.

Vāgbhaṭa II has given similar but very short description.

Kāśyapa says that wet-nurse should use daily purifying measures (internal and external; physical and psychological). Wet-nurse belonging to similar *satwa (sātwika, rājasika* etc. *mānasika prakṛtis)* to which child belongs is praiseworthy. Belonging to opposite *satwa* is forbidden, because she will produce uneasiness and troubles to the child, thus the child will either not survive or survive with great difficulty. The wet-nurse of identical *satwa*

१. पीताय यदि बालस्य विदध्यादुपमातरम्। सुविचार्य गुणान्दोषान्कुर्याद्धात्रीं तदेदृशीम्॥ २४॥
सवर्णां मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा। शुद्धदुग्धां बहुक्षीरां सवत्सामतिवत्सलाम्॥ २५॥
स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम्। कैतवेन परित्यक्तां निजपुत्रसदृशं शिशौ॥ २६॥
शोकाकुलाक्षुधार्ता च श्रान्ताव्याधिमती सदा। अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलातीव भृशं कृशा॥ २७॥
गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोन्नतपयोधरा। अजीर्णभोजिनी चापि तथा पथ्यविवर्जिता॥ २८॥
आसक्ता क्षुद्रकार्येषु दु:खार्ता चञ्चलाऽपि च। एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः॥ २९॥
(भा० प्र० पूर्व० ४/२४ से २९)

Scanned with CamScanner

gives nourishment *(puṣṭi)*, longevity *(āyu)*, strength *(bala)* and pleasure *(sukha)* to the child.

Hārīta has not described wet-nurse, however, describing effect of body-complexion of mother over her breast milk says that the milk of woman having dark complexion is *vṛṣya* (aphrodisiac/anabolic) and pacifies *vāta*, thus its use is beneficial. Milk of whitish or reddish complexioned women vitiates *śleṣmā* and *vāta* respectively, the breast milk of the woman having yellowish complexion pacifies *pitta*, thus, its use is beneficial.

Bhāvaprakāśa has advised to give due consideration to her ability to nurse the child at the time of appointment of a wet-nurse, besides above qualities, he has added the habit of independence, getting contented easily and non-insidious. Besides, obesity etc. disqualifications described above, the one who is striken with grief, is hungry, tired, always diseased, pregnant, afflicted with fever and consumes diet which produces indigestion or non-congenial diet and is miserable, should also not be appointed. Lactation by the wet-nurse possessing above disqualifications produces diseases in the child.

स्तनसम्पत् (Stanasampat or merits of breasts)

यद्यपि धात्री-वर्णन के अन्तर्गत सभी आचार्यों ने सामान्य स्तनों वाली धात्री को श्रेष्ठ तथा अधिक लम्बे आदि स्तनों वाली धात्री को निषिद्ध बताया है, परन्तु महर्षि चरक ने विषय को स्पष्टतर करने के लिए इसका पृथक् रूप से भी वर्णन दिया है।

तत्रेयं स्तनसंपत्–नात्यूर्ध्वौ नातिलम्बावनतिकृशावनतिपीनौ युक्तपिप्पलकौ सुखप्रपानौ चेति (स्तनसंपत्)॥
(च० शा० ८/१३)

यहाँ यह उत्तम स्तन का वर्णन है–स्तन अधिक ऊर्ध्व (छोटे), लम्बे, कृश (बहुत ही पतले या वसा-रहित) एवं मोटे न हों। उचित रूप के स्तन-चूचुक वाले, एवं सुख पूर्वक पिये जा सकने वाले (ऐसे चूचुक एवं स्तन जिनसे बालक सुख पूर्वक स्तन पान कर सके) स्तनों को श्रेष्ठ स्तन कहा गया है।

While describing the examination of wet-nurse, the qualities of breasts have already been included, however, to make the subject more explicit, Caraka has described following types of breasts as perfect ones.

The breasts should not be *ati ūrdhwa* (too much erect or upwards), *ati lamba* (too long or over dangling) *ati pīna* (excessive corpulent), *ati kṛśa* (too emaciated) and should have appropriate nipple. The breasts which are comfortable for sucking are said to be the best or perfect ones.

असम्पत् स्तनजन्य दोष (Abnormalities due to feeding with imperfect breasts)

तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्यात्। लम्बस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत्॥
(सु० सं० शा० १०/२५)

पीनोऽतिकन्धरास्तम्भं कुर्यादूर्ध्वाक्षमूर्ध्वगः। उच्छ्वासरोधान्लम्बोऽतिस्तनोजीवितसंशयम्॥
(अ० सं० उ० १/३८)

ऊर्ध्व स्तन वाली स्त्री बालक को कराल (विचित्र या भयानक) कर देती है तथा लम्ब स्तनी (बालक के) नासिका एवं मुख का आच्छादन करके मृत्यु उत्पन्न करती है।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि अति स्थूल स्तन वाली धात्री (बालक को) ग्रीवास्तम्भ, ऊर्ध्व स्तनी बालक को ऊर्ध्वाक्ष तथा लम्ब स्तनी उच्छ्वासावरोध कर (बालक के) जीवन में ही संशय उत्पन्न कर देती है।

Suckling with over erect breasts makes the child *karāla* (terrible face with wide oral aperture) or *urdhwākṣa* (upwards looking), corpulent breasts produce neck-rigidity and dangling breasts cover the face and nose thus cause asphyxia and death of the child.

विमर्श (Comments)

चूचुक-विकृति में उन्हें भलीभाँति पकड़ सकने की असमर्थता के कारण बालक पूर्णरूपेण दुग्ध-पान नहीं कर पाता अतः पोषण जन्य विकारों से पीड़ित हो सकता है, परन्तु क्रियात्मक क्षेत्र में स्तनों के आकार से बालक में किसी भी प्रकार के विकार देखने को नहीं मिलते, फिर भी उपर्युक्त वर्णन के आधार पर ऐसा मान सकते हैं कि स्तन अधिक ऊँचे या स्थूल होने पर बालक के लगातार ऊपर देखने से या उसकी ग्रीवा पर वजन पड़ने से कुछ शारीरिक विकृतियाँ आ जाँय।

Abnormalities of nipples do cause difficulty in sucking, thus, due to deficient intake of milk the child may suffer from various nutritional abnormalities. Shape and size of the breasts are not related with their capacity of production of milk and also do not influence in any way the child's facial expression. However, it may be presumed that while sucking the too high breasts the child may have to look continuously upwards with strain to the neck, which may cause some facial abnormality.

स्तनपान-विधि (Method of breast feeding)

धात्री तु यदा स्वादुबहुलशुद्धदुग्धा स्यात्तदा स्नातानुलिप्ता शुक्लवस्त्रं परिधायैन्द्रीं ब्राह्मीं शतवीर्यां सहस्रवीर्यामयोघामव्यथां शिवामरिष्टां वाट्यपुष्पीं विष्वक्सेनकान्तां वा बिभृत्योषधिं कुमारं प्राङ्मुखं प्रथमं दक्षिणं स्तनं पाययेत्। इति धात्रीकर्म॥ (च० सं० शा० ८/५८)

ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातमहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीं चोपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत्॥ २५॥

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिनः। भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये॥ २६॥
पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने। दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा॥ २७॥
(सु० सं० शा० १०/२५ से २७)

अथ धात्री स्नातानुलिप्ता नित्यमहतवासाः सुमनाः प्रजास्थापनौषधीः शिरसा बिभ्राणा प्राङ्मुखी स्तनं प्राग्दक्षिणं धौतमीषत्परिस्रुतं पाययेत्॥ (अ० सं० उ० १/२२)

धात्री जब प्रचुर मात्रा तथा मधुर दुग्ध वाली हो तब वह स्नान, अनुलेपन एवं श्वेत (स्वच्छ) वस्त्र धारण कर; ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या, सहस्रवीर्या, अमोघा, अव्यथा, शिवा, अरिष्टा, वाट्यपुष्पी एवं विष्वक्सेनकान्ता (ये सभी प्रजास्थापन औषधियाँ हैं) आदि में से सभी या उपलब्ध द्रव्यों को धारण कर; पूर्व की ओर मुख करके (बैठकर) बालक को सर्वप्रथम दक्षिण स्तन का पान कराए। यह धात्री-कर्म समाप्त हुआ।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि तदनन्तर प्रशस्त तिथि में, शिर से स्नान करवाए हुए, नए वस्त्र पहनाए हुए बालक को, पूर्वाभिमुख बैठी हुई धात्री की गोद में उत्तर की ओर मुख करके बैठाए एवं स्तनों को धोकर थोड़ा सा (स्तन्य) बाहर निकाल कर निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके स्तनपान कराए।

"हे सुभगे। बालक की बल-वृद्धि के लिए चारों समुद्र तेरे स्तनों से निरन्तर क्षीरवाहक हों। हे शुभानने! जिस

Scanned with CamScanner

प्रकार अमृत-प्राशन करके देवताओं ने दीर्घायु प्राप्त किया, उसी प्रकार अमृत रूप दुग्ध को पी कर कुमार दीर्घायु प्राप्त करे"।

महर्षि वाग्भट ने संक्षेप में लिखा है कि धात्री स्नान एवं अनुलेपन तथा नए वस्त्र पहन कर, प्रजास्थापन औषधियों को शिर में धारण कर, पूर्वाभिमुख बैठकर, स्तनों को धोकर तथा थोड़ा सा (स्तन्य) बाहर निकाल कर पहिले दक्षिण स्तन का पान कराए।

आचार्य भावमिश्र ने शब्दभेद से महर्षि सुश्रुत का अनुगमन करते हुए मन्त्रोल्लेख भी किया है[1]।

सम्भवतः महर्षि सुश्रुत एवं अनुगामी भावमिश्र का उपर्युक्त वर्णन धात्री के द्वारा स्तनपान प्रारम्भ कराने के प्रथम दिन का ही है क्योंकि नित्यप्रति पान कराने में प्रशस्ततिथि के विचार का प्रश्न नहीं उठता।

When the wet-nurse has sweet milk in sufficient quantity, then after taking bath, anointing herself and wearing white garments, should tie (on head or any other body part) all or available drug out of *aindrī, brāhmī, śctavīryā, sahasravīryā, amoghā, avyathtā, śivā, ariṣṭā, vāṭyapuṣpī* and *viṣwaksenakāntā* (all these are *prajāsthāpana* drugs). Now she should sit facing to the east and give first her right breast to the child.

Suśruta says that on auspicious date the child should be bathed form head to toe, clothed with new garments and made to sit facing towards north, over the lap of wet-nurse who is sitting facing east-wards. The wet-nurse after washing the breasts and expressing out little quantity of milk, should start breast feeding with enchantation of following *mantra.*

"O fortunate pretty woman ! all the four seas should produce constant flow of milk from your breasts for increase in strength of the child. O beautiful woman ! as the deities obtained longevity by consuming nectar, similarly the child should also get longevity by consuming your milk which is similar to nectar".

Almost identical description is given by Vāgbhaṭa I and Bhāwaprakāśa.

नाना स्तन्यपान का परिणाम (Effect of lactation by different women)

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्यासात्म्याद् व्याधिजन्म भवति ॥ (सु० सं० शा० १०/२८)
नानास्तन्यस्य ह्यसात्म्यत्वान्नानाविधा व्यापदो भवन्ति ॥ (अ० सं० उ० १/२३)

नाना स्तन्योपयोग (अनेकों स्त्रियों के दुग्ध का पान) से, असात्म्य होने के कारण व्याधियों का जन्म होता है।

महर्षि वाग्भट ने भी लिखा है कि नाना प्रकार के स्तन्य असात्म्य होने के कारण अनेकों व्याधियों के उत्पादक होते हैं।

If the child is given breast milk of different women or in other words lactating woman is frequently changed, then the child suffers from various diseases because this changed milk becomes non-congenial to him.

१. तत्र माता प्रशस्ताङ्गो चारुवस्त्रा पुरोमुखी। उपविश्यासने सम्यग्दक्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३०॥
प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम्। उदङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धाय पाययेत् ॥ ३१॥
(माता-इत्युपलक्षणम्। धात्री चेषत्परिस्राव्य)
क्षीरनीरनिधिस्तेऽस्तु स्तनयोः क्षीरपूरकः। सदैव सुभगो बालो भवत्वेष महाबलः ॥ ३३॥
पयोऽमृतसमं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने। दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४॥ (भा० प्र० पूर्व० ४)

विमर्श (Comments)

धात्री-नियुक्ति के महत्व को दर्शाते हुए आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि यदि एक धात्री के अतिरिक्त अनेकों स्त्रियों का स्तन-पान शिशु को कराया जाय तो वह स्तन्य शिशु को असात्म्य हो सकता है। स्तन्य में उपस्थित पोषक एवं अन्य तत्वों में व्यक्तिगत वैभिन्य होता है; शिशु को एक प्रकार का स्तन्य सात्म्य हो जाता है। यह सम्भव है कि बार-बार दुग्ध का परिवर्तन होने से वह उसे सात्म्य न कर पाए एवं असात्म्य होने के कारण अनेकों व्याधियों से ग्रसित हो जाए।

There may be slight variation in the composition of breast-milk of individual woman. The child may get acclimatized to one particular composition, naturally if milk is changed frequently, the child might not be able to digest it properly.

अपरिस्रुत स्तन्यपान जन्य विकार (Diseases due to feeding with unexpressed breasts)

अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानात् उत्सुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः ॥
(सु० सं० शा० १०/२९)
अपरिस्रुते चातिस्तन्यपूर्णस्तनपाननेनोत्स्नेहनात् कासश्वासज्वरच्छर्दिषां सम्भवः ॥
(अ० सं० उ० १/२३)

परिस्रुत न करने पर, अतिस्तब्ध एवं स्तन्य से पूर्ण स्तन का पान कराने से, ऊर्ध्व स्रोतसों के भर जाने के कारण बालक को कास, श्वास एवं वमन हो जाता है।

महर्षि वाग्भट ने भी यही लिखा है कि अपरिस्रुत होने पर स्तनों के स्तन्य से अति परिपूर्ण होने के कारण उनके पान से स्तन्य के विमार्ग में जाने या उसके स्नेह के अन्तर्गमन[1] से (स्तन्य के सामान्य मार्ग या अन्न प्रणाली में न जा श्वासप्राणाली में जाने से) बालक को कास, श्वास, ज्वर एवं छर्दि होने की सम्भावना रहती है।

आचार्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त विचार ही व्यक्त किए हैं[2]।

If the breasts are not slightly squeezed or milk is not drained, then these become tense due to over accumulation of milk. If child sucks these tense breasts, his *srotasas* (situated in upper body part) get filled or else milk goes in abnormal passage and produces cough, dysponea, vomiting and fever etc. disorders.

विमर्श (Comments)

अधिक देर तक स्तन-पान न कराने से या कभी कभी ऐसे भी स्तनों में अत्यधिक स्तन्य एकत्र हो जाता है, जिसके कारण स्तन कड़े हो जाते हैं, एवं शिशु द्वारा स्तन-पान किए जाने पर कड़ेपन के कारण उसे प्रारम्भ में कुछ कष्ट भी हो सकता है। दुग्ध के अति मात्रा में सञ्चय के कारण वह अधिक मात्रा में तथा बहुत ही तेजी से आ सकता है, बच्चा उस मात्रा को सामान्य रूप से निगलने में असमर्थ हो सकता है, तथा कुछ अंश विमार्ग या श्वासनलिका में जाकर या गले में अटक कर उपर्युक्त व्याधियाँ उत्पन्न कर सकता है। थोड़ा सा दूध निकाल देने से यह स्थिति नहीं होगी। महर्षि सुश्रुत ने इसीलिए नाना-स्तन्य तथा अपरिस्रुत-स्तन्य-पान का निषेध किया है[3]।

The child may find some difficulty in sucking a breast which is tense and over filled

१. उत्स्नेहनं तत्स्नेहस्यान्तर्गमनम्। (अ० सं० उ० १/२३ की इन्दु टीका)
२. अस्रावितं स्तनं बालः पिबन्स्तन्येन भूयसा। पूर्णस्रोता वमीकासश्वासैर्भवति पीडितः ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/३२)
३. तस्मादेवं विधानां स्तन्यं न पाययेत् ॥ (सु० सं० शा० १०/२९)

Scanned with CamScanner

with milk, besides he may not be able to swallow the milk properly due to its sudden overflow, thus the milk may trickle into trachea and produce cough etc. complications. Gentle squeezing of breasts before lactation ensures patency of lactiferous tubules and also avoids above complications.

स्तन्यपान वर्जित अवस्थायें (The woman unfit for suckling)

न च क्षुधितशोकार्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्तविरुद्धाहारतर्पितायाः स्तन्यं पाययेत्, नाजीर्णौषधं च बालं, दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥ (सु० सं० शा० १०/३१)

न तु क्षुधितशोकार्तश्रान्तक्रुद्धप्रदुष्टधातुगर्भिणीविरुद्धाहारभुक्तानां स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधं च बालमिति। भवति चात्र ॥ (अ० सं० उ० १/२५)

विरुद्धाहारभुक्तायाः क्षुधिताया विचेतसः। प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः ॥
(अ० हृ० उ० १/१९)

क्षुधित, शोकार्त, श्रान्त, धातु-दोष-पीड़ित, गर्भिणी,ज्वर-पीड़ित, अतिक्षीण, अतिस्थूल, विदाहजनक तथा विरुद्ध आहार की हुई (माता या धात्री) बच्चे को दूध न पिलावें। दोष, औषध एवं मलों की तीव्र वेगोत्पत्ति के भय से बालक के द्वारा प्रयुक्त औषधि के जीर्ण हो जाने तक भी स्तन-पान न करावे।

अष्टाङ्गसंग्रह में भी लिखा है कि क्षुधित, शोकार्त, श्रान्त, क्रुद्ध, प्रदुष्ट-धातु, गर्भिणी, विरुद्धाहार-भुक्त स्त्री तथा औषधि के जीर्ण न होने तक बालक को दुग्ध-पान न करावे।

अष्टाङ्गहृदय में भी यही लिखा है कि विरुद्ध आहार खाई हुई, क्षुधित, विकृत चित्त वाली (शोक, क्रोधादि मानसिक-व्याधि पीड़ित या अन्यमनस्क), प्रदुष्ट-धातु तथा गर्भिणी स्त्री का स्तन्य शिशु के लिए रोगकारक होता है।

The woman who is hungry, striken with grief, tired, has vitiation of *dhātus*, is pregnant, suffering from fever, emaciated, obese and has consumed diet likely to produce *vidāha* (burning sensation or indigestion) or the edibles opposite in character, should not give breast-feeds to the child. The child whose recently ingested medicine is not assimilated should also not be given the feed, because at this stage the force of *doṣa, auṣadhi* (drugs) and *mala* (excretas) is too much.

Vāgbhaṭa I has advised to avoid breast feeding even by the woman who is angry and Vāgbhaṭa II by the woman who has psychological abnormalities or reluctance for feeding.

विमर्श (Comments)

माता की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उसके स्तन्य की मात्रा को प्रभावित एवं उसे दूषित भी कर सकती है; यह भी संभव है कि मानसिक रूप से शान्त न होने के कारण असम्यक् रूप से स्तन-पान कराने पर दूध बालक की श्वासनलिका में जाकर व्याधियाँ उत्पन्न करे। यदि बालक ने औषधि-सेवन किया है और वह औषधि पूर्णरूपेण पचित नहीं हुई, उस स्थिति में उसके शरीर में स्थित दोष, औषध एवं मलों का वेग तीव्र होता है, ऐसे समय में यदि वह बालक दुग्ध पियेगा तो उसे व्याधियाँ हो सकती हैं।

Physical and psychological disorders of woman influence quality and quantity of milk, besides psychologically upset woman may not take proper care while feeding, thus, milk may trickle in the trachea of the child and may produce various disorders. *Doṣas* and *malas*

remain agitated and force of medicine is a bit more at the time of assimilation of medicine taken by the child, thus, ingestion of mother's milk during this stage may produce diseases to the child.

स्तन्यसम्पत् या शुद्ध स्तन्य के लक्षण (Stanyasampat or characteristics of normal breast-milk)

स्तन्यसंपत्तु प्रकृतिवर्णगन्धरसस्पर्शम्, उदपात्रे च दुह्यमानमुदकं व्येति प्रकृतिभूतत्वात्; तत्पुष्टिकरमारोग्यकरं चेति, (स्तन्यसंपत्) ॥ (च० सं० शा० ८/५४)

यत्क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्। मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद् विनिर्दिशेत् ॥
(सु० सं० नि० १०/२५)

अथास्याः स्तन्यमप्युपरीक्षेत, तच्चेच्छीतलममलं तनु शङ्खावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमव्रो-त्प्लवतेऽवसीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्, तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति ॥
(सु० सं० शा० १०/३१)

तच्चोदकपात्रे दुह्यमानमेकतां यदुदकेन सह गच्छति वक्ष्यमाणदोषरहितं च तच्छुद्धमारोग्यबलजननम् ॥
(अ० सं० उ० १/२१)

यदद्भिरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम्। तद्विशुद्धं पयः ·····॥ (अ० हृ० उ० २/२)
अव्याहतबलाङ्गायुररोगो वर्धते सुखम्। शिशुधात्र्योरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम् ॥
(का० सं० सू० १९/२६)

जिस दुग्ध का वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श प्राकृत रूप में अर्थात् सामान्य हो, जल-युक्त पात्र में दुहे जाने पर उसके साथ एक समान मिल जाय, वह सामान्य या उत्तम होने के कारण पुष्टि एवं आरोग्य कारक (बालक को) होता है। यह दुग्ध का सम्पत् होना या उत्तमता है।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि जो दुग्ध पानी में डालने पर एकीभूत हो जाय, पाण्डुवर्ण, मधुर तथा विवर्णता रहित हो उसे शुद्ध स्तन्य जानना चाहिए।

पुनःश्च लिखा है कि अब इसके (धात्री के) स्तन्य की जल में परीक्षा करनी चाहिए, यदि वह शीतल, निर्मल या स्वच्छ, तनु, शंख के समान आभा (वर्ण) वाला हो, जल में डालने पर एक हो जाय (अर्थात् उसमें भली भाँति मिल जाय, पृथक करना सम्भव न हो), फेन तथा तन्तु रहित हो, जल में (डालने पर) न तैरता हो न ही डूबता हो, उसे शुद्ध स्तन्य समझना चाहिए। इससे (इस प्रकार के दुग्ध पान से) बालक के आरोग्य, शरीर के उपचय तथा बल की वृद्धि होती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने संक्षेप में लिखा है कि यदि वह दुग्ध उदकपात्र में दुहे जाने पर तत्काल ही पानी में मिल जाय तो उसे दोष रहित समझना चाहिए। यह शुद्ध स्तन्य आरोग्य एवं बलदायक होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी यही लिखा है कि जो जल के साथ एकरूपता को प्राप्त हो जाता है, दोषों से व्याप्त (दूषित) नहीं रहता वह शुद्ध दुग्ध है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि (जिस दुग्ध के पान से) बालक के बल, अङ्ग, आयु तथा आरोग्य निर्बाध रूप से, सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त हों, शिशु एवं धात्री को कोई कष्ट न हो, यही शुद्ध क्षीर के लक्षण हैं।

महर्षि हारीत ने स्तन्यविकारों के पाँच भेद वर्णन करते हुए मृदु क्षीर को सामान्य माना है तथा उसके पान से बालक

Scanned with CamScanner

को सत्त्व एवं बल की प्राप्ति तथा आरोग्य-लाभ होने के साथ ही उसे रूपवान होने का वर्णन दिया है[1]।

अन्यत्र दुग्ध के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि दुग्ध स्रोतों को शुद्ध करने वाला, बलकारक, दोषनाशक, त्रिदोषशामक, वृष्य एवं अग्निवर्धक होता है[1]।

माधवनिदान एवं योगरत्नाकर[2] पुस्तकों में सुश्रुत निदानस्थान वर्णित लक्षणों का तथा भावप्रकाश में शारीरस्थान वर्णित लक्षणों का ही उल्लेख है[3]।

The milk which is normal in colour, smell, taste and touch, and when milked in a pot filled with water mixes evenly, is known as pure milk. This milk provides nourishment and good health to the child.

Suśruta says that the pure milk is cold, clean or free from impurities, whitishyellow or white just like the colour of conch-shell, sweet in taste and free from discolouration, when put in water, it mixes evenly, neither produces froth nor streaks, neither floats nor seitles down. This type of milk provides good health, growth and development of body as well as strength to the child.

Both the Vāgbhaṭas agreeing with above say that it should not be vitiated by *doṣas*.

Kāśyapa without mentioning any physical characters says that the pure milk is that which provides unobstructed, easy and good growth of strength, different body parts, longevity as well as good health to the child and does not cause any pain or trouble to the child and wet-nurse.

Hārīta defining *mṛdukṣīra* as pure milk adds *satwa* and beauty also in the list which are achieved by using pure milk.

MādhavaNidāna, Yogaratnākara and Bhāwaprakāśa have followed Suśruta.

तैल वर्णादि स्तन्य-पान का प्रभाव (Effect on the child of the milk having different colours)

तैलवर्णे बली तुल्या घृतवर्णे महाधनः। यशस्वी धूमवर्णे तु शुद्धे सर्वगुणोदितः॥ (का० सं० सू० १९/३,४)

तैल वर्ण के स्तन्य का पान करने से बालक बलवान, घृत वर्ण के स्तन्य-पान से महान धनी (अत्यधिक धन एवं ऐश्वर्य वाला), धूम वर्ण के स्तन्य-पान से यशस्वी तथा शुद्ध स्तन्य-पान से सर्वगुण सम्पन्न होगा।

Consumption of milk having different colours produces following qualities in the child—

Colour of milk resembling to	Qualities in the child
Oil	Very strong
Ghṛta	Very rich
Smoke	Renowned.
Pure milk	All the qualities.

स्तन्यनाश एवं स्तन्यक्षय (Stanyanāśa and stanyakṣaya)

(१) स्तन्यनाश-हेतु (Causes of stanyanāśa or cessation of milk formation)

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियाः स्तन्यनाशो भवति॥ (सु० सं० शा० १०/३०)
रुक्षान्नपानकर्शनक्रोधशोककामादिभिः स्तन्यनाशः॥ (अ० सं० उ० १/२४)
शुक्क्रोधलङ्घनाऽऽयासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः। (अ० हृ० उ० १/१७)
शोधनाद्वा स्वभावाद्वा यस्याः क्षीरं विशुष्यति। तस्याः क्षीरप्रजनने प्रयतेत विचक्षणः॥
(का० सं० सू० १९/१८)

क्रोध, शोक, अवात्सल्य (बच्चे के प्रति प्रेम न होना) आदि स्त्रियों में स्तन्यनाश के कारण है। टीकाकार डल्हण ने आदि शब्द से लंघन एवं व्यायाम का भी समावेश किया है[1]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि रुक्ष अन्न-पान का सेवन, कर्शन, क्रोध, शोक तथा काम (अत्यधिक मैथुन) आदि स्तन्यनाश के कारण हैं।

अष्टांङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि शोक, क्रोध, लंघन एवं आयास स्तन्यनाश के कारण हैं।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि शोधन (द्रव्यों या कर्म) के प्रयोग (अतियोग) से अथवा स्वभाव के कारण जिस स्त्री का दुग्ध सूख जाय उसे क्षीरजनन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

आचार्य भावमिश्र ने अवात्सल्य, भय, शोक के ही साथ अत्यन्त अपतर्पण एवं (दूसरा) गर्भधारण करना भी लिखा है[2]।

Anger, grief, absence of affection for the child, fear, fasting, excessive exercise, consumption of dry (free from oleaginous substances) edibles and drinks, emaciation, excessive use of purifying measures and re-pregnancy are the causes of cessation of milk.

२) स्तन्यक्षय के लक्षण (Clinical features of stanyakṣaya or loss of milk)

स्तन्यक्षये स्तनयोर्म्लानता स्तन्यासम्भवोऽल्पता वा। (सु० सं० सू० १५/१२)

स्तन्यक्षय में स्तनों में म्लानता (ढीलापन) तथा स्तन्य की असम्भवता या अनुपस्थिति तथा अल्पता लक्षण होते हैं।

आचार्य भावमिश्र ने भी उपर्युक्त आशय का ही वर्णन दिया है[3]।

---

१. (अ) मृदुक्षीरा भवेत्सौख्या·····॥ २॥
सुसत्त्वं बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः। मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि॥ ६॥ (हा० सं० तृती० ५४/२, ६)
(आ) स्रोतोविशुद्धिकरणं बलकृद्दोषनाशनम्। पयस्विदोषशमनं वृष्यङ्गाग्निप्रवर्द्धनम्॥ (हा० सं० प्र० ८/१३)

२. (अ) अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम्। मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तत् प्रशस्यते॥ (मा० नि० ६७/८)
(आ) अदुष्ट ·····। ····· तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत्॥ (मा० नि० सदृश) (यो० र० क्षीरदोष चि०)

३. नीरे स्तन्यं यदेकि स्यादविवर्णमतन्तुमत्। पाण्डुरं तनु शीतं च तद् दुग्धं शुद्धमादिशेत्॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/२३)

१. आदिशब्दाल्लङ्घनव्यायामादयः॥ (सु० सं० शा० १०/३० की डल्ह० टीका)

२. अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात्। स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात्॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/१०)

३. ·····स्तन्यस्य भवतस्तथा॥ ९१॥
म्लानौ पयोधरावेतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये॥ (भा० प्र० पूर्व० ७/९१, ९२)

Scanned with CamScanner

Laxity of breasts alongwith decrease in quantity or absence of milk secretion are the clinical features.

***स्तन्यनाश एवं स्तन्यक्षय की चिकित्सा** (Treatment of stanyanāśa and stanyakṣaya)*

***(अ) स्तन्यक्षय-चिकित्सा** (Treatment of stanyakṣaya)*

(१) श्लेष्म-वर्धक द्रव्यों का प्रयोग करने से स्तन्यक्षय दूर होता है[1]।

(२) सुरा, शालि अन्न, मांस, गोक्षीर, शर्करा, आसव, दधि तथा हृद्य (वांछित) वस्तुओं का प्रयोग स्तन्यक्षय-पीड़ित स्त्री के लिए लाभदायक होता है[2]।

(३) स्तन्यक्षय या स्तन्यनाश में वमन का प्रयोग निषिद्ध है[3]।

i) Use of articles capable of increasing the *śleṣmā* cure *stanyakṣaya.*

ii) Wine, *śāli* cereals, meat, cow's milk, sugar, *āsava,* curd and use of desired things cure *stanyakṣaya.*

iii) Emesis is contraindicated.

***आ) स्तन्यजनन द्रव्य या क्षीरवर्धक कषाय** (Stanya janana drugs or the drugs increasing quantity of milk)*

वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकतृणमूलानि दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति ॥

(च० सं० सू० ४/१७)

वीरण, शालि, षष्टिक (दोनों धान्य विशेष), इक्षुवालिका, दर्भ, कुश, काश, गुन्द्रा (एरका या भद्रमुस्ता) इत्कट एवं कतृण के मूल ये दश स्तन्यजनन औषधियाँ हैं।

Roots of *vīraṇa, śāli, saṣṭika, ikṣuvālikā, darbha, kuśa, kāśa gundrā, itkaṭa* and *katṛṇa* are ten *stanyajanana* drugs. These may be used in the form of decoction.

***(इ) स्तन्यनाश की अन्य चिकित्सा या क्षीरवर्धक द्रव्य** (Other treatment of stanyanāśa or drugs capable of increasing amount of milk)*

स्तन्य के वर्धन के लिए निम्न औषधियों या द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए-

(१) सीधु नामक मदिरा को छोड़कर अन्य सभी मदिरायें[1,3,4] या मद्य[5]।

(२) ग्राम्य, आनूप[3,4] तथा औदक शाक, धान्य[1] एवं मांस[1,3,4] अथवा केवल मांसरस विशेषकर वराह एवं महिष को छोड़कर[6] अन्य सभी।

(३) द्रव[1,5], मधुर[1,3], अम्ल एवं लवण भूयिष्ठ अन्नपान[1,3,5]।

(४) क्षीरिणी औषधियाँ अर्थात् जिन औषधियों में दृश्यमान क्षीर रहता है यथा दुग्धिका, कलम्बिका आदि[1,3,4]।

१. तत्र श्लेष्मवर्धनद्रव्योपयोगः ॥ (सु० सं० सू० १५/१२)

२. सुशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा। आसवं दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणाऽभिवाञ्छति ॥ (भा० प्र० पूर्व० ७/११२)

३. ·····अल्पक्षीरा लघुक्षीरा नष्टक्षीरा·····न वाम्याः·····॥ (का० सं० सि० ७/५)

नोट – स्तन्यनाश की अन्य चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ६५६, ६५७ में देखें।

(५) क्षीर-पान[1,3,4,5,6]।

(६) परिश्रम न करना या आराम करना[1,3,5] तथा निद्रा-सुख[5]।

(७) वीरण, षष्टिक, शालि, इक्षुवालिका, दर्भ, कुश, काश, गुन्द्रा, इत्कट एवं कतृण के मूल के कषाय का पान क्षीर-जनक होता है[1]।

(८) स्तन्य-क्षय के अन्तर्गत वर्णित सभी चिकित्सा।

(९) मन की प्रसन्नता[2,3,6] तथा शोक[4] एवं क्रोध, अत्यधिक मार्ग-गमन तथा भय एवं आयास का परित्याग[5]।

(१०) यव, गेहूँ, शालि[6], षष्टिक[6], मांसरस[6], सुरा, सौवीर (काञ्जी), पिण्याक (तिलकल्क), लशुन, मत्स्य या क्षुद्रमत्स्य[6], कशेरुक[6], शृङ्गाटक[6], बिस, विदारीकन्द, मधुक, शतावरी, नलिका, अलाबू[6], कालशाक[6] तथा नारिकेल[6] आदि का सेवन करावें[2]।

(११) गुड़ के साथ सिद्ध किया हुआ तथा हिङ्गु एवं जातीफल से सुसंस्कृत नाड़ी शाक[5]।

(१२) वाजीकरण औषधियों से सिद्ध क्षीर[5]।

(१३) घृत एवं तैल का सेवन[5]।

(१४) आस्थापन बस्ति-प्रयोग[2,3,5]।

(१५) लशुन एवं पलाण्डु का सेवन[5]।

(१६) सिद्धार्थक को छोड़कर अन्यशाक[5]।

(१७) वट आदि क्षीरि वृक्षों तथा क्षीरिका के वल्कल का क्वाथ बनाकर उसके साथ दुग्ध को सिद्ध करें तथा इसमें पाक्य (पांशु या सौवर्चल लवण) गुड़, विड (विड् लवण) तथा घृत मिलाकर शालि (चावलों का ओदन) का भोजन करें, इस प्रयोग से शुष्क स्तनों वाली स्त्री को भी स्तन्य की उत्पत्ति हो जाती है[5]।

(१८) शालि, षष्टिक, दर्भ, कुश, गुन्द्रा, इत्कट, सारिवा, वीरण, इक्षु, कुश तथा काश की मूल से उपर्युक्त विधि के द्वारा क्षीरपाक करके सेवन करें। स्वभाव से ही नष्ट, शुष्क अथवा दूषित (दृष्टि दोष से) दुग्ध के लिए यह उत्तम औषधि है[5]।

(१९) मरिच एवं पिप्पलीमूल से सिद्ध दुग्ध[6]।

(२०) मागधी, नागर तथा पथ्या एवं घी मिलाकर दुग्ध-पान[6]।

(२१) कलम नामक धान्य विशेष के चावलों को दुग्ध में पीस कर जो स्त्री सेवन करती है उसके दोनों स्तन दुग्ध के भार से अति उन्नत हो जाते हैं[6]।

(२२) विदारीकन्द का रस अथवा विदारीकन्द का चूर्ण दुग्ध के साथ[6] अथवा भूमिकूष्माण्ड मूल (विदारीकन्द) को दुग्ध के साथ पीस कर उसका रस निकाल कर शर्करा[6] मिलाकर पान अथवा विदारीकन्दचूर्ण का सुरा के साथ पान[6]।

(२३) शतावरी को गोदुग्ध के साथ पीसकर पान[6]।

(२४) कवोष्ण दुग्ध के साथ कणा-चूर्ण का पान[6]।

(२५) वनकर्पास तथा इक्षु के जड़ के चूर्ण का सौवीर (काञ्जी) के साथ पान[6]।

(२६) **वज्रकाञ्जी** नामक योग का प्रयोग-पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, शुण्ठी, यवानिका, दोनों जीरक, दोनों हरिद्रा,

१. नोट-सन्दर्भ पृष्ठ ६५६, ६५७ में देखें।

Scanned with CamScanner

विड् तथा सौवर्चल लवण को (पोसकर) काञ्जी के साथ पकावें। इसे प्रसूता स्त्री अग्नि-बल के अनुसार पिये। यह वज्रकाञ्जिक नामक योग आमवातहर, वृष्य, कफघ्न, वातनाशक, अग्निवर्धक, मक्कल्लशूल-नाशक तथा क्षीरवर्द्धक है[८]।

Use of the following increases quantity of milk—

i) Except *sīdhu* all other wines.

ii) Vegetables growing wildly or on marshy land or water, cereals, meat or meat soup except meat of hog and buffalo.

iii) Eatables and drinkables which are predominantly liquid, sweet, sour or saltish.

iv) Drugs which possess apparent latex such as *dugdhikā* and *kalambikā* etc.

v) Milk.

vi) Not to toil or work hard, rest and good sleep.

vii) Decoction of roots of *vīraṇa, saṣṭika, śāli, ikṣuvālikā, darbha, kuśa, kāśa, gundrā, itkaṭa* and *katṛṇa.*

viii) Treatment prescribed for *stanyakṣaya.*

---

१. क्षीरजननानि तु मद्यानि सीधुवर्ज्यानि, ग्राम्यानूपौदकानि च शाकधान्यमांसानि, द्रवमधुराम्ललवणभूयिष्ठाक्षाहाराः, क्षीरिण्य-क्षौषधयः क्षीरपानमनायासश्च, वीरणषष्टिकशालीक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकतृणमूलकषायाणां च पानमिति (क्षीरजननानि) ॥ (क्षीरिण्यश्च दुग्धिकाकलम्बिकादयो दृश्यमानक्षीराः—चक्रपाणि) (च० सं० शा० ८/५७ एवं चक्र० टीका)

२. (अ) अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृङ्गाटक-बिसविदारिकन्दमधुकशतावरीनलिकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ॥ (सु० सं० शा० १०/३०)
(आ)····बस्तिकर्म·····स्तन्यनाश·····चात्यर्थमुपयुज्यते ॥ (सु० सं० चि० ३५/५)

३. (अ) स्तन्यजननानि तु मद्यानि सीधुवर्ज्यान्यानूपमांसानि द्रवाः स्वाद्वम्ललवणप्रायाश्चाहाराः क्षीरिण्यक्षौषधयः क्षीरपानमनायासः सौमनस्यं च ॥ (अ० सं० उ० १/२४)
(आ) ····तत्रास्थाप्या·····स्तन्यनाश·····। (अ० सं० सू० २८/१०)

४. स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः। क्षीरं क्षीरिण्य औषध्यः शोकादीनां विपर्ययः ॥ (अ० ह० उ० १/१८)

५. (अ) नाडिका सगुडा सिद्धा हिङ्गुजातिसुसंस्कृता। क्षीरं मांसरसो मद्यं क्षीरवर्धनमुत्तमम् ॥
वाजीकरणसिद्धं वा क्षीरं क्षीरविवर्धनम्। घृततैलोपसेवा च बस्तयश्च पयस्कराः ॥
मधुराण्यन्नपानानि द्रवाणि लवणानि च। मद्यानि सीधुवर्ज्यानि शाकं सिद्धार्थकादृते ॥
वराहमहिषादूर्ध्वं मांसानां च रसो हितः। लशुनानां पलाण्डूनां सेवनं शयनं सुखम् ॥
(क्रोधाध्व)भयशोकानामायासानां च वर्जनम्। अ·····या भवति वत्स इति क्षीरविवर्धनम् ॥
वटादीनां च वृक्षाणां क्षीरिकायाश्च वल्कलम्। पाक्यः कषायः क्रथितः क्षीरं तेन पुनः शृतम् ॥
पाक्यं गुडविडोपेतं सघृतं शालिमाशयेत्। अपि शुष्कस्तनीनां तत् क्षीरोपजननं परम् ॥
शालिषष्टिकदर्भाणां कुशगुन्द्रेत्कटस्य च। सारिवावीरणेक्षूणां मूलानि कुशकाशयोः ॥
पेयानि पूर्वकल्पेन श्रेष्ठं क्षीरविवर्धनम्। स्वभावनष्टे शुष्के वा दुष्टे साध्वीक्षिते हितम् ॥
(का० सं० सू० १९/१०, ११, १९ से २५)
(आ) ·····अल्पविशुष्कदुग्धा·····। (का० सं० कल्प० ७/८४)

क्रमशः .....

ix) Happiness, absence of sorrow, anger, fear, and tiring work as well as avoidance of excessive walking.

x) Barley, wheat. *śāli, saṣṭika,* meat-soup, wine, *kāñjī* (fermented sour drink), pestled *tila, lašuna,* fish, *kaśeruka, śṛṅgāṭaka, bisa, vidārīkanda, madhuka, śatāwarī, nalikā, alābū, kālaśāka* and *nārikela* etc.

xi) *Nāḍīśāka* cooked with jaggery and mixed with *hiṅgu* and *jātīphala.*

xii) Milk treated with *vājīkaraṇa* drugs.

xiii) Use of *ghṛta* and oil.

xiv) Use of *āsthāpana basti* (evacuative enema).

xv) Use of *lašuna* and *palāṇḍu.*

xvi) Except *siddhārthaka* all other leafy vegetables.

xvii) Milk should methodically be cooked with the decoction of stem bark of *vaṭa* etc. latex-yielding trees and *kṣīrikā.* This milk mixed with *sauwarcala* and *wiḍ* salts, jaggery and *ghṛta* should be taken with cooked *śāli* rice. With the use of this preparation even the women whose breasts are totally dry, start milk formation.

xviii) Milk methodically cooked with the decoction of roots of *śāli, śaṣṭika, darbha, kuśa, gundrā, itkaṭa, sārivā, vīraṇa, ikṣu, kuśa* and *kāśa* is a good prescription for the woman who is basically unable to produce milk or for the milk vitiated by evil-eye.

xix) Milk treated with *marica* and *pippalīmūla.*

xx) Powdered *māgadhī, nāgara* and *pathyā* alongwith *ghṛta* mixed with milk.

..... क्रमशः

६. मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये। मागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥
पानं जनयते क्षीरं स्त्रीणाञ्च क्षीरपादपि ॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५३/३,४)

७. शालिषष्टिकगोधूमान्मांसक्षुद्रझषानपि। कालशाकमलाबूं च नारिकेलं कसेरुकम् ॥ ११॥
शृङ्गाटकं वरीं चापि विदारीकन्दमेव च। लशुनं दुग्धवृद्ध्यै स्त्री सेवेत सुमना भवेत् ॥ १२॥
कलमस्य तण्डुलानां कल्कं या क्षीरपेषितं पिबति। सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभारेणैव तुङ्गकुचयुगला ॥ १३॥
विदारिकन्दस्य रसं पिबेत्तन्यस्य वृद्धये। तच्चूर्णं तस्य वृद्धयर्थं पिबेद्वा क्षीरसंप्लुतम् ॥ १५॥
(भा० प्र० पूर्व० ४/११ से १३ व १५)

८. भूमिकूष्माण्डमूलस्य क्षीरपिष्टस्य यो रसम्। पिबेत्सशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ॥
शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धिनी। कवोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ॥
वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा। विदारिकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥
(वज्रकाञ्जिकम्)
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका। जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥
एतैरौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत्। तद्यथाग्निबलं पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ॥
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वातनाशनम्। तद्वज्रकाञ्जिकं नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीरविवर्धनम् ॥ (यो० र० क्षीरदोष चि०)

Scanned with CamScanner

xxi) Grains of specific cereal named *kalama* pestled either with water or milk, if used by the woman, produce so much milk that her breasts become too much erect.

xxii) Juice or powder of *vidārīkanda* mixed with milk or expressed juice of *vidārīkanda* pestled with milk and mixed with sugar or powder of *vidārīkanda* mixed with wine.

xxiii) *Śatāwarī* pestled with milk.

xxiv) Powdered *kaṇā* with luke-warm milk.

xxv) Powdered roots of *banakārpāsa* and *ikṣu* mixed with *sauwīra (kāñjī).*

xxvi) ***Vajrakāñjika—***

Powdered *pippalī, pippalīmūla, cavya, śuṇṭhī, yawānikā,* both *jīrakas,* both *haridrās, widˌ* and *sauwarcala* salts should be cooked with *kāñjī* and given to the woman according to her digestive power. This preparation known as *vajrakāñjika* cures *āmavāta,* is *vṛṣya* (aphrodisiac), suppressess *kapha* and *vātu,* increases appetite, cures *makkalla śūla* and increases quantity of milk.

विमर्श (Comments)

महर्षि सुश्रुत तथा उनके अनुयायी भावमिश्र ने धातुओं एवं उपधातुओं के क्षयादि लक्षणों तथा चिकित्सा के साथ स्तन्यक्षय के लक्षण एवं चिकित्सा का वर्णन कर पुनः स्तन्यनाश के हेतु तथा उसकी चिकित्सा का वर्णन किया है। यह वास्तविकता में पुनरुक्ति मात्र ही है, परन्तु पुस्तकों में पृथक् वर्णन के कारण यहाँ भी उसका पृथक् निर्देश कर दिया गया है। महर्षि सुश्रुत एवं वाग्भट आदि ने स्तन्य-नाश के हेतु गिनाकर, उसकी चिकित्सा का तथा महर्षि चरक ने सीधे ही क्षीरजनन द्रव्यों या आहार-विहारादि का वर्णन किया है, वस्तुतः दोनों में कोई भेद न होने के कारण सभी का एक साथ ही वर्णन दिया गया है।

Suśruta and Bhāvaprakāśa while describing clinical features and treatment of *kṣaya* (decrease) of various *dhātus* and *upadhātus*, have included *stanya* also. In subsequent description clinical features and treatment of *stanyanāśa* have been described. Actually there is no difference in both these conditions, however, since in the classics both have been described separately, hence *stanyakṣaya* and *stanyanāśa* both are recapitulated here also. Suśruta etc. have described the treatment of *stanaynāśa* after elaborating its etiology, drugs prescribed are likely to increase the amount of milk. Caraka has prescribed drugs for the same purpose but without giving the name of disease or its etiology. Since aim of the drugs prescribed by both is identical, hence all the prescriptions have been recapitulated at one place.

स्तन्यवृद्धि (Stanyavṛddhi or increase in amount of milk)

लक्षण (Clinical features)

स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं तोदश्च ॥ (सु० सं० सू० १५/१६)

स्तन्य की अतिवृद्धि होने से स्तनों में भारीपन, बार-बार (स्तन्य की) प्रवृत्ति तथा (स्तनों में) तोद होता है।

आचार्य भावमिश्र ने भी यही विचार व्यक्त किए हैं[1]।

In case of *stanyavṛddhi,* the breasts become heavy and painful associated with recurrent flow of milk.

चिकित्सा (Treatment)

तेषां यथास्वं संशोधनम् क्षपणञ्च क्षयादविरुद्धैः क्रियाविशेषैः प्रतिकुर्वीत ॥
(सु० सं० सू० १५/१६)

उन सभी (वृद्ध धातुओं, मलों तथा उपधातुओं) में यथावश्यक संशोधन, क्षपण (संशमन), क्षय के अविरुद्ध (जो वृद्ध धातु आदि का शमन तो करें पर उनके क्षयकारक न हों), क्रियाविशेष अर्थात् संशोधन, संशमन आहार एवं आचार[2] आदि का प्रयोग करें।

आचार्य भावमिश्र ने संक्षिप्त वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके (वृद्ध धातुओं आदि के) ह्रासकारक आहार-विहार आदि का सेवन करायें[3]।

स्तन्य वृद्धि में मण्ड[4] एवं इक्षु[5] का प्रयोग निषिद्ध है। यह वमन साध्य[6] व्याधि है। निरन्तर स्राव वाले स्तन्य में विरेचन[7] देना चाहिए।

Appropriate *samśodhana* (purifying measures), *samśamana* (suppressive measures), dietetics and other mode of life and drugs which inspite of suppressing the increased *dhātu* do not produce its *kṣaya* (decline) should be used. Use of sugarcane juice and *maṇḍa* (scum of boiled rice) is contraindicated, emesis is beneficial. Purgatives should be given to the woman having continuous flow of milk.

धात्री या माता के स्तन्य के अभाव में अन्य-उपयोगी दुग्ध (Substitute milk in case of non-availablity of milk of mother or wet-nurse)

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा। दद्यादास्तन्यपर्यायेबालानां वीक्ष्य मात्रया ॥
(सु० सं० शा० १०/४८)

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्। मूलैः सिद्धं बृहत्याद्यैः स्थिराभ्यां वा सितायुतम् ॥
(अ० सं० उ० १/३९)

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्। ह्रस्वेन पञ्चमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥
(अ० ह्र० उ० १/२०)

---

१. स्तनयोरतिपीनत्वं क्षीरस्रावो मुहुर्मुहुः। तोदश्च तत्र भवति स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥७२॥ (भा० प्र० पूर्व० ७/७२)

२. क्रियाविशेषैरिति क्रिया संशोधनसंशमनाहारचाराख्या। (सु० सं० सू० १५/१६ की डल्ह० टीका)

३. ततद्ध्रासकराहारविहारपरिषेवणात्। दोषधातुमलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम्॥ (भा० प्र० पूर्व० ७/७४)

४. ·····धात्र्याः प्रवृद्धे पयसि·····। मण्डं भिषङ्नोपदिशेद्विपश्चित्॥ (का० सं० कल्प० ७/६७, ६८)

५. ·····पयोऽतिवृद्धौ। इक्षुः प्रयोगो न हितो ·····। (का० सं० कल्प० ७/१०८, १०९)

६. ·····क्षीरवृद्धि ·····वमनसाध्या इति। (का० सं० सि० ७/३)

७. ·····स्रवत्क्षीरा·····। (का० सं० सि० ७/५)

Scanned with CamScanner

(माता या धात्री का स्तन्य प्राप्त न होने पर[1]) बालक को दुग्ध ही सात्म्य होने के कारण बकरी अथवा गाय का दूध आस्तन्यपर्यायत्ति (जब तक आवश्यकतानुसार स्त्री-स्तन्य की पुनर्प्राप्ति न हो जाय अथवा स्तन्य-पान की योग्यता रहे[1]) तक मात्रा के अनुसार दें।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि स्तन्य के अभाव में बकरी अथवा गाय का दुग्ध, तद्गुण अर्थात् धात्री के स्तन्य के सदृश गुणों वाला करके तथा बृहत्यादि वर्ग (बृहती द्वय, गोक्षुरु, शालपर्णी, पृश्निपर्णी अर्थात् लघुपञ्चमूल) की औषधियों से अथवा दोनों स्थिराओं से सिद्ध करके तथा सिता मिश्रित कर के पीने को दें।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि स्तन्याभाव में तद्गुण अजा अथवा गाय का दूध, लघुपञ्चमूल अथवा स्थिरा से सिद्ध एवं सिता मिश्रित कर पीने को दें।

आचार्य भावमिश्र ने महर्षि सुश्रुत तथा टीकाकार डल्हण के मत का ही अनुमोदन किया है[2]।

Suśruta says that milk is the only congenial diet to the child, when mother or wet-nurse is unable to feed, goat or cow's milk should be given in appropriate amount. This substitute feed is to be continued until the mother or wet nurse does not regain sufficient milk or else till the child can not thrive properly without milk.

Both the Vāgbhaṭas have said that goat or cow's milk should be given to the child making it similar to the mother's milk, after medicating it either with decoction of *laghu-pañcamūla* or both *sthirās* and mixed with sugar.

विमर्श (Comments)

अजा अथवा गौ के दुग्ध में स्त्री-दुग्ध की अपेक्षा प्रोभूजिन की मात्रा किञ्चित अधिक तथा शर्करा की कम होती है। साधन-काल में विभिन्न औषधियों के मिश्रण से सम्भवतः गौ या अजा दुग्ध की प्रोभूजिन की मात्रा कुछ कम एवं वह सुपाच्य हो जाती हो, सिता का मिश्रण शर्करा की मात्रा की पूर्ति की दृष्टि से किया गया होगा, अतः महर्षि वाग्भट का वर्णन अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

In comparison to human milk, the milk of cow or goat contains more protein and less carbohydrate (lactose). Treatment of milk, with these drugs might be reducing amount of protein and also converting it to more assimilable form. Mixture of sugar compensates carbohydrate or in other words these alterations will make the milk of cow or goat more similar to human milk.

स्तन्य अपनयन का काल (Stanya apanayanakāla or weaning period)

अथैनं जातदशनं क्रमशोऽपनयेत् स्तनात्। पूर्वोक्तं योजयेत् क्षीरमन्नं च लघुबृंहणम्॥

(अ० सं० उ० १/५३)

१. स्त्रीस्तन्याभावे च क्षीरान्तरं निर्दिशन्नाह·····। आस्तन्यपर्यत्तिरिति यावत् स्तन्यस्य पुनः पर्याप्तिः परि समन्ततो भावेन प्राप्तिर्भवति, अथवा यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः॥ (सु० सं० शा० १०/४८ की डल्ह० टीका)

२. क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा। दद्यादास्तन्यपर्यत्तिर्बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया॥
क्षीरसात्म्यतयेति। यतः शिशोः क्षीरमेव सात्म्यं भवति न त्वन्नादिकम्। आस्तन्यपर्यत्तिरिति। यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य समन्ततोभावेन प्राप्तिर्भवति। अथवा यावत्स्तन्यपानस्य योग्यता भवेदित्यर्थः॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/३५ व टीका)

अथैनं जातदशनं क्रमेणापनयेत् स्तनात्। पूर्वोक्तं योजयेत्क्षीरमन्नं च लघु बृंहणम्॥

(अ० हृ० उ० १/३८)

अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदयकार दोनों ने ही लिखा है कि (बालक को) दन्तोत्पत्ति के बाद क्रमशः या धीरे-धीरे स्तन-पान का परित्याग कराना चाहिए तथा पूर्वोक्त क्षीर (पूर्ववर्णित अजादि) तथा लघु एवं बृंहण अन्न का सेवन कराना चाहिए। टीकाकार इन्दु ने दन्तोत्पत्ति के पश्चात् अर्थात् एक वर्ष की आयु के पश्चात् स्तन-अपनयन कराने का विधान दिया है[1]।

After eruption of teeth, gradual weaning should be done and child should be given milk of cow or goat described earlier alongwith light and anabolic cereals. Indu says that weaning should be done after one year of age.

स्तन्य-अपनयन-विधि (Stanya-apanayana-vidhi or method of weaning)

कुर्यादपस्तनं स्नेहसंक्रान्त्या स्तनलेपनैः।
बीभत्सैर्वाव्रकासेक(यावकासेक-शु० पाठ)कृत्रिमक्षतदर्शनैः॥ (अ० सं० उ० १/५४)

(बालक को दूध छुड़ाने के लिए) स्नेह (पुत्र-प्रेम) को धीरे धीरे कम करके, स्तनों में बीभत्स लेप करके (ताकि बच्चे को घृणा हो जाय) या अलक्तक आदि लगाकर कृत्रिम क्षत (का रूप एवं रंग) दिखाकर (जिससे बालक स्वयं ही स्तन ग्रहण न करे) स्तनपान (धीरे धीरे) छुड़ाना चाहिए।

Mother should show less affection to the child and make her breasts either hideous by applying loathsome anointments, or with artificial ulcer by applying *alaktaka* (red resin of certain trees, red lac or sap used by the woman to dye soles of feet etc.). Having seen these types of breasts, the child himself will not touch them. Weaning should be gradual.

धात्री की चिकित्सा (Dhātrīcikitsā or treatment of wetnurse)

मात्रा या धात्री को स्तन अथवा स्तन्यविकार के अतिरिक्त अन्य वही व्याधियाँ होती हैं, जो कि किसी उस आयु की सामान्य स्त्री को हो सकती हैं; सम्भवतः इसी कारण से काश्यपसंहिता के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुस्तक में इस-प्रकार का वर्णन नहीं मिलता, परन्तु काश्यप संहिता में गुरु-शिष्य परम्परा की प्रश्नोत्तरी के रूप में[2] बालक के सुख-दुःख धात्री के ही आधीन होने के कारण, धात्री की चिकित्सा के महत्त्व को दर्शाते हुए इस अध्याय का विशिष्ट उल्लेख हुआ है, अतः यहाँ पर भी इस वर्णन को उद्धृत किया जा रहा है। महर्षि काश्यप ने स्पष्ट किया है कि संसार में वैद्य, धात्री एवं बालक तीन ही ऐसे हैं जिन्हें अत्यधिक दुष्कर कार्यों को करना होता है, ये ही सुखी एवं दुःखी भी होते[3] हैं।

Except the diseases of breasts and milk, there are no other diseases which afflict exclusively mother or wet nurse. Probably due to this reason, the authors (except Kāśyapa) have not prescribed even a single recipe for any of their disorder. However, Kāśyapa says that all the pleasures and sorrows of the child depend upon the wet-nurse, hence, her proper

१. अथवर्षादनन्तरं जातदशनं बालं ·····। (अ० सं० उ० १/५३ की इन्दु टीका)

२. अथातो धात्रीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माह भगवान् काश्यपः।
धात्रीचिकित्सां निखिलां वक्तुमर्हसि मे मुने। सुखं दुःखं हि बालानां धात्रीमूलमसंशयम्॥
इति पृष्टः स शिष्येण स्थविरेण महातपाः। धात्रीचिकित्सितं कृत्स्नं प्रोवाच वदतां वरः॥ (का० सं० चि० १८/१ से ४)

३. वृद्धजीवक ! लोकेऽस्मिंस्त्रयो दुष्करकारिणः। भिषग्धात्री च बालश्च त एव सुखदुःखिताः॥ (का० सं० चि० १८/५८)

Scanned with CamScanner

treatment is most essential, and has attributed one full chapter named "Dhātrīcikitsā" for the purpose, in which dietetics, mode of life and drugs for wet-nurse have been mentioned. In his opinion, in whole world the physician, the wet-nurse and the child had to perform most difficult tasks, thus only these three are afflicted by sorrows and happiness or are much more vulnerable to be seized with pain or pleasure. The description of Kāśyapa is being recapitulated here.

धात्री का महत्व (Importance of dhātrī or wet-nurse)

धात्री पुत्रशरीरार्थं स्वशरीरोपशोषणम्। स्नेहात् प्राप्नोति सुबहून क्लेशांश्चान्यान् सुदारुणान्॥
आशास्नेहकृपाधर्माद्रक्षणार्थं च मातरः। सहन्ते सर्वदुःखानि मानिनी चात्र कीर्त्यते॥
गर्भात् प्रभृति बालोऽपि ·····। अधिकं पीड्यते दुःखैरकुर्वन्नपि तत् स्वयम्॥
तस्माच्च धात्री सततं शुभचेष्टाऽशनस्थितिः। माता भवति पुत्राणां भुक्ते पुत्रफलानि च॥
(का० सं० चि० १८/६३-६५)

धात्री स्नेहवश पुत्र-शरीर के लिए (पुत्र के पालन एवं संवर्धन के लिए) अपने शरीर का शोषण तथा अनेकानेक दारुण क्लेशों को प्राप्त करती है। मातायें आशा (पुत्र से भावी जीवन में अनेकों आशायें), स्नेह, कृपा, धर्म (पुत्र-पालन रूपी धर्म) तथा बालक की रक्षा के लिए अनेकों दुःखों को सहन करती है तथा इसमें वे अपने मान (गौरव) का अनुभव करती हैं। गर्भ से लेकर बालक भी (अपने कष्टों आदि का) स्वयं प्रतिकार (तथा इच्छाओं की पूर्ति) न कर सकने के कारण अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित होता है। धात्री पुत्र के लिए निरन्तर शुभ चेष्टाओं एवं आहार-व्यवस्था करने के कारण उसकी माता रूप होकर पुत्र-फल का उपभोग करती है।

The wet-nurse nurtures the child out of sheer affection and during this process gets herself deprived of nourishment or gets emaciated and also tolerates various troubles. The mothers withstand troubles due to hope (for future protection to be offered by the child), affection, compassion, duty and protection of the child; and by this they feel proud or honoured. the child, also, since intra-uterine life suffers various pains because of inability to defend oneself and fulfill own requirements. The wet-nurse by her auspicious/beneficial acts and management of diet for the child becomes a foster mother, thus enjoys the fruits of having a son.

धात्री की अग्नि का वर्णन (Description of agni or digestive capacity of wet-nurse)

····· ····· ····· ····· ॥
·····(पु)ष्पिकी धात्री तीक्ष्णाग्निर्वातपैत्तिकी। समधातुः समाग्निस्तु विषमैर्विषमाग्निकी॥
आयुरारोग्ययोर्मूलं प्रजानां च समाग्निता। विषमः सर्वरोगाणां मूलं ह्रास ····· ॥
(का० सं० चि० १८/५,६)

जिस धात्री को ऋतुस्राव (नियम पूर्वक) हो रहा हो तथा वात एवं पित्त का प्राधान्य हो, वह धात्री तीक्ष्णाग्नि वाली होती है। समधातु धात्री (जिसके वातादि तीनों समावस्था में हों वह) समाग्नि तथा विषम धातु वाली विषमाग्नि होती है।

सम अग्नि की धात्री प्रजा अर्थात् सन्तति के आयु एवं आरोग्य की आधार तथा विषमाग्नि वाली सभी रोगों की मूल तथा ह्रास (शरीर के) का कारण है।

The wet-nurse having regular menstruation and dominance of *vāta and pitta* possesses *tīkṣṇāgni* (strong digestive capacity). The wet-nurse having *samadhātu* (all the three *doṣas* in equilibrium) has *samāgni* (normal digestive capacity) and having *viṣama dhātu* (unequal amount of *doṣas)* possesses *viṣamāgni* (irregular digestive power).

Samāgni is the basis of health and longevity of the child, while *viṣamāgni* is the root cause of various diseases and also of decline or loss of health.

धात्री के अग्नि-विकार की चिकित्सा (Treatment of abnormalities of agni or digestive capacity of wet nurse)

तीक्ष्णस्य बृंहणं नित्यं मन्दाग्नेर्दीपनक्रिया। पथ्याशनं तु सततं विषमाग्नेः सुखावहम्॥
कल्याणकं षट्पलं वा प्रयोगेनोपयुज्यते। यथाबलं यथायोगं पञ्चक ····· ॥
····· ····· ····· ····· ति यथाविधि॥ (का० सं० चि० १८/७-९)

(इस वर्णन में 'तीक्ष्ण अग्नि वाले' अर्थात् पुलिंग शब्द का प्रयोग हुआ है, पुरुष को सामान्य मानव मात्र का उपलक्षण मानकर तथा इस विवरण का उल्लेख धात्रीचिकित्सा अध्याय में ही होने के कारण विषय यहाँ उद्धृत किया जा रहा है)।

तीक्ष्णाग्नि में सदा बृंहण, मन्दाग्नि में दीपन क्रिया तथा विषमाग्नि में पथ्य भोजन सुख को लाने वाले होते हैं। इसमें कल्याणक अथवा षट्पल घृत का उपयोग करना चाहिए तथा बलाबल को देखकर आवश्यकतानुसार पञ्चकर्म करना चाहिए।

In *tīkṣṇāgni* (strong digestive fire) the *vṛṃhaṇa karma* (anabolic substances), in *mandāgnī* (less digestive fire) *dīpana kriyā* (appetizing substances) and in *viṣamāgni* (irregular digestive fire) congenial diet always gives relief. *Kalyāṇaka ghṛta* and *ṣaṭpala ghṛta* should also be used; considering strength and energy *pañcakarma* can be used as and when needed.

धात्री की अजीर्ण जन्य व्याधियाँ (Diseases caused by ajīrṇa or indigestion to a wet-nurse)

अजीर्णं चापि धात्रीणां नित्यमेव न शस्यते। अजीर्णदूषि (ता दोषा धात्रीणां जनयन्ति हि)।
·····(ऽ)रुचिग्लानिमदमोहविचर्चिकाः। पामाकुष्ठालजीगुल्महृद्रोगश्वासकासकाः।
हिक्कातन्द्राश्रमश्वासच्छर्दापस्मारविग्रहाः॥
रक्तपित्तभ्रमोन्मादशूलशोषगलग्रहाः। उरुस्तम्भः ससंन्यासस्तथाऽन्ये च महागदाः॥
(का० सं० चि० १८/५४-५६)

धात्री को अजीर्ण होना उचित नहीं है। अजीर्ण के कारण दूषित या प्रकुपित दोष धात्री को अरुचि, ग्लानि, मद, मोह, विचर्चिका, पामा, कुष्ठ, अलजी, गुल्म, हृद्रोग, श्वास, कास, हिक्का, तन्द्रा, श्रमश्वास (परिश्रम करने में श्वासकष्ट), छर्दि, अपस्मार, ग्रहबाधा, रक्तपित्त, भ्रम, उन्माद, शूल, शोष, गलग्रह, उरुस्तम्भ, सन्यास तथा अन्य भी बहुत से भंयकर रोग उत्पन्न कर देते हैं।

Ajīrṇa (indigestion) to a wet-nurse is not proper, because the *doṣas* vitiated or aggravated due to *ajīrṇa* produce *aruci* (anorexia), *glāni* (lassitude), *mada* (intoxication), *moha* (unconsciousness), *vicarcikā, pāmā, kuṣṭha* and *alajī* (all skin disorders), *gulma, hṛdroga* (cardiac disorders), *śramaśwāsa* (exertional dyspnoea), *chardi* (vomiting), *apasmāra* (epilepsy), *grahabādhā* (acute infective disorders), *raktapitta* (bleeding diathesis), *bhrama* (giddiness), *unmāda* (insanity), *śūla* (colic), *śoṣa* (emaciation), *galagraha* (stiffness of neck),

Scanned with CamScanner

urustambha (stiffness of muscles of thighs), *sanyāsa* (coma) and many serious disorders to the wet-nurse.

***धात्री को परिमित आहार करने का निर्देश** (Advice to a wet-nurse to consume limited diet and its benefits)*

मितपथ्याशनान्मातुः पुत्रे तेषामसंभवः । सुखोदयश्च धात्रीणां तस्मात्तदुपपादयेत् ॥ (का० सं० चि० १८/५७)

परिमित तथा पथ्य आहार करने वाली माता के पुत्र को ये (उपर्युक्त) व्याधियाँ नहीं होतीं तथा धात्रियों को भी सुख (शारीरिक एवं मानसिक प्रसन्नता) की प्राप्ति होती है अतः इनको (मित एवं पथ्य आहार का) सेवन करना चाहिए।

The mother/wet-nurse who consumes limited and congenial diet, her child does not suffer from above disorders and she herself also gets physical/psychological pleasure, thus she should always use congenial and limited diet.

***विमर्श** (Comments)*

अजीर्ण से उत्पन्न होने वाली उपर्युक्त वर्णित व्याधियाँ धात्री के ही साथ पुत्र को भी हो जाती हैं। इस कथन की पुष्टि "पुत्र को ये व्याधियाँ नहीं होती" इस वाक्य से हो जाती है।

Above saying that the "child dose not suffer" indicates that the diseases caused by indigestion afflict wet-nurse and child both.

***धात्री की नित्यचर्या** (Daily routine of wet-nurse)*

प्रक्षणोद्वर्तनस्नानं शुक्लाम्बरनिषेवणम् । मृष्टमन्नं सुखा .... ॥
.... । ....(ध)र्मरतिर्धात्रीणां सुखहेतवः ॥
(का० सं० चि० १८/११,१२)

अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, स्नान, श्वेत (स्वच्छ) वस्त्रों का धारण तथा शुद्ध-पवित्र अन्न का भोजन आदि धात्री के धर्म, रति (संभोग अथवा मानसिक सुख एवं शान्ति) तथा सुख के कारण हैं।

स्वस्थ अथवा रुग्ण किसी भी धात्री को विशेषकर शीतल जल का प्रयोग करना चाहिए। शीतल जल विपाक में मधुर होने के कारण पित्तघ्न होता है[1]।

Massage, use of unguents, bath, white garments and clean and pure food produce virtue, satisfaction and happiness to the wet-nurse. Healthy as well as diseased wet-nurse should use cold water. Cold water being *madhura* (sweet) in *vipāka* suppresses *pitta*.

***धात्री को क्षार-प्रधान औषधि के प्रयोग का निषेध** (Contraindication for use of kṣāra by wet-nurse)*

न तूपयोजयेत् क्षारं क्षारप्रायौषधानि वा । प्रजाविनाशनः क्षारो धात्रीणां स न शस्यते ॥
(का० सं० चि० १८/१०)

(धात्री-चिकित्सा में) क्षार अथवा क्षार-प्रधान औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि सन्तान-नाशक होने के कारण धात्रियों के लिए यह प्रशस्त नहीं माना गया है।

१. धात्रीणां च विशेषेण स्वस्थानां रोगिणामपि । पूर्वोक्तगुणबाहुल्यात् पानीयं सेव्यमिष्यते ।
विपाके मधुरं शैत्याद्वारि पित्तघ्नमुच्यते ॥ (का० सं० खि० २३/१८,१९)

Kṣāras or the drugs having predominance of *kṣāra* should not be prescribed to the wet-nurse, because these are harmful to the child.

***धात्री के मेदोरोग की चिकित्सा** (Treatment of medo-roga or obesity of wet-nurse)*

मेदस्विनीनां धात्रीणां सिराकर्म प्रशस्यते । स्नेहस्वेदोपपन्नानामूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥
ततः सा मेदसि क्षीणे स्रोतःसु विवृतेषु च । ....॥
.... यो रसः ॥ (का० सं चि० १८/१३,१४)

मेदस्वी धात्रियों के लिए सिराकर्म प्रशस्त माना गया है (अर्थात् मेदोरोग पीड़ित धात्री का सिरावेध करना चाहिए)।

स्नेहन तथा स्वेदन कराकर ऊर्ध्व तथा अधःशोधन (वमन एवं विरेचन) कराना चाहिए। इससे वह मेद के क्षीण हो जाने से स्रोतों के खुल जाने के कारण.....(स्वस्थ हो जाती है)।

Venesection is beneficial in obesity of wet-nurse. After giving oleation and sudation, emetics and purgatives should be prescribed. With these measures her fat decreases thus *srotasas* open-up and she attains normal health.

***धात्री की कृशता एवं अनार्तव की चिकित्सा** (Treatment of emaciation and amenorrhoea of wet-nurse)*

कृशां च नष्टपुष्पां च बृंहयेत्तेन सिद्ध्यति । (का० सं० चि० १८/१४)

कृश तथा नष्टपुष्पा धात्री को बृंहण कराने से सफलता मिलती है।

To a emaciated and amenorrhic wet-nurse *vṛṃhaṇa* (anabolic) treatment should be prescribed.

***बला तैल** (Balā taila)*

सभी आचार्यों ने मूढ़ गर्भ के निकालने के पश्चात् की चिकित्सा में बलातैल का वर्णन किया है (पृष्ठ ५३४ से ५३७)। बला के अतिरिक्त अन्य घटकों में महर्षि काश्यप तथा अन्य आचार्यों में पूर्णतया मतवैभिन्य है। यद्यपि यह बला-तैल अनेकों व्याधियों में उपयोगी है परन्तु धात्री-चिकित्सान्तर्गत वर्णित होने से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

Though *balātaila* has already been described in eighth chapter, for the management after extraction of *mūḍhagarbha*, however, since in this description except *balā* all other ingredients are entirely different, and has been indicated for treatment of wet-nurse, hence is being recapitulated here.

***(अ) बलातैल निर्माण-विधि** (Method of preparation of balā-taila)*

बलामूलतुला धौता दशमूलं शतावरी । गुडूची रोहिषं रास्ना वृश्चिकाली पुनर्नवा ॥
वृषः सहचरोशीरसारिवामूर्व च .....। .... ॥
.... काकजङ्घांऽशुमत्यपि । अश्वगन्धा मृगैर्वारुः कालाऽथ नवमालिका ॥
अतिमुक्तकशाङ्गेष्टाकपित्थं त्रिफलेति च । दशमूलात् प्रभृत्येते भागा दशपलाः स्मृताः ॥
यवाः कुलत्था माषाश्च .... । .... ॥
....(जल)द्रोणे चतुर्भागावशेषिते । तं कषायं परिस्राव्य पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥
अथेमान्यौषधान्यत्र पालिकानि निधापयेत् । द्वे मेदे द्वे हरिद्रे च काकोल्यौ वृषजीवकौ ॥

Scanned with CamScanner

माषपर्णी .... । .... ॥
त्वक्पत्रचन्दनोशीरं द्वे बले लवणद्वयम्। मूर्वा श्वदंष्ट्रा शार्ङ्गेष्टा श्यामा द्राक्षा सुरोहिणी ॥
मधुकं हस्तिपिप्पल्यः कुष्ठं व्याघ्रनखं वचा। सुक्ष्मैलागुरुकाश्मर्यः शतपुष्पा परूषकम् ॥
.... । .... नि च ॥
शंखपुष्पी विशल्या च वृश्चिकाली मधूलिका। दाडिमानि चाम्लानि गुग्गुल्वादि सुगन्धि च ॥
अक्षोटं पनसं भव्यं प्राचीनामलकानि च। शतावरी विदारी च मधुपर्णी विषा(णिका)।
.... । ..... (क)षायार्धाढकं भवेत् ॥
लवङ्गपुष्पं कर्पूरं स्पृक्काऽथ कटुकाफलम्। आढकं तिलतैलस्य क्षीरद्रोणं च पाचयेत् ॥
तत् सिद्धं प्रतिसंहृत्य बलातैलं निधापयेत्। घृतभाण्डे दृढे दान्ते .... ॥
.... । .... सां प्रक्षणेषु (प्र)शस्यते ॥

(का० सं० चि० १८/१५-३०)

धोकर स्वच्छ की हुई बलामूल १ तुला (१०० पल), दशमूल, शतावरी, गुडूची, रोहिष (तृण), रास्ना, वृश्चिकाली, पुनर्नवा, वृष, सहचर, उशीर, सारिवा, मूर्वा, (चव्य), ...काकजंघा, अंशुमती, अश्वगन्धा, मृगैवारु, काला, नवमालिका, अतिमुक्तक, शार्ङ्गेष्टा, कपित्थ तथा त्रिफला लें। दशमूल से लेकर (त्रिफला तक) सभी द्रव्य समभाग में मिलाकर दस पल; यव, कुलत्थ एवं माष....., तथा जल एक द्रोण (४ आढक) लेकर पकायें, चतुर्थ भाग अवशेष रहने पर इस कषाय को छानकर पुनः आग पर रख दें, अब इसमें दोनों मेदा, दोनों हरिद्रा, दोनों काकोली, वृष, जीवक, माषपर्णी....., त्वक्, पत्र, चन्दन, उशीर, दोनों बला, दोनों लवण (सैन्धव तथा सौवर्चल), मूर्वा, श्वदंष्ट्रा शार्ङ्गेष्टा, श्यामा, द्राक्षा, रोहिणी, मधुक, हस्तिपिप्पली, कुष्ठ, व्याघ्रनख, वचा, सूक्ष्मैला, अगुरु, काश्मरी, शतपुष्पा, परूषक, ...शंखपुष्पी, विशल्या, वृश्चिकाली, मधूलिका, दाड़िम आदि अम्ल द्रव्य, गुग्गुलु आदि सुगन्धि द्रव्य, अक्षोट, पनस, भव्य, पुराने आमलक, शतावरी, विदारी, मधुपर्णी, विषाणिका..... सभी एक एक पल की मात्रा में डालकर पकायें। जब वह कषाय आधा आढक बच जाय, तब इसमें लवङ्गपुष्प, कर्पूर, स्पृक्का, कटुकाफल (आदि का चूर्ण) एवं एक आढक तिलतैल तथा एक द्रोण (चार आढक) दुग्ध डालकर पकायें। इस बला तैल के सिद्ध हो जाने पर इसे हस्तिदन्त निर्मित, सुदृढ़ घृतभाण्ड में भर कर भली भाँति बाँध कर रख दें। यह .....अभ्यङ्ग के लिए प्रशस्त माना जाता है।

Properly cleaned (by washing) root of *balā* one *tulā*, *daśamūla*, *śatāwarī*, *guḍūcī*, *rohiṣa* (*tṛṇa*), *rāsnā*, *vṛścikālī*, *punarnavā*, *vṛṣa*, *sahacara*, *uśīra*, *sārivā*, *mūrvā*, *(cavya)*, ... *kākajaṅghā*, *aṃśumatī aśwagandhā*, *mṛgairvāru*, *kālā*, *navamālikā*, *atimuktaka*, *śārṅgeṣṭā*, *kapittha* and *triphalā* all in equal quantity together ten *pala* and *yava*, *kulattha* and *māṣa*-should be boiled with one *droṇa* (four *āḍhaka)* water. When onefourth (one *āḍhaka)* remains, it should be strained and again put over the fire. Now in this filtrate both *medās*, both *haridrās*, both *kākolīs*, *vṛṣa*, *jīvaka*, *māṣaparṇī*, ... *twak*, *patra*, *candana*, *uśīra*, both *balās*, both salts (rock salt and common salt), *mūrvā*, *śwadaṃṣṭrā*, *śārṅgeṣṭā*, *śyāmā*, *drākṣā*, *rohiṇi*, *madhuka*, *hastipippalī*, *kuṣṭha*, *vyāghranakha*, *vacā*, small *elā*, *aguru*, *kāśmarī*, *śatapuṣpā*, *parūṣaka*, ...*śaṅkhapuṣpī*, *viśalyā*, *vṛścikālī*, *madhūlikā*, *dāḍima* etc. sour drugs, *guggulu* etc. aromatic drugs, *akṣoṭa*, *panasa*, *bhavya*, old (dried) *āmalaka*, *śatāwarī*, *vidārī*, *madhuparṇī* and *viṣāṇikā* ..... etc. each drug in the amount of one *pala* should be mixed and boiled, till only half *āḍhaka* decoction remains. In this decoction powdered *lavaṅgapuṣpa*, *karpūra*, *spṛkkā* and *kaṭukāphala* etc. drugs, oil of *tila* one *āḍhaka* and milk four *āḍhakas* should be mixed and oil prepared with standard procedure. When

this *balātaila* is properly prepared, it should be stored in a strong ivory pot previously used for storing *ghṛta* and mouth of the pot should be properly wrapped and secured. This oil is very good for ..... massage.

***(आ) बलातैल-उपयोग** (Action and uses of balātaila)*

शखागतं कोष्ठगतमस्थिमज्जसिरागतम्। बहिराभ्यन्तरायामं हनुस्तम्भं शिरोभ्रम् ॥
एकपक्षबधं शोषम्लानकार्दितगुल्मिनम्। बधिरं वेप(मानं च) .... ॥
.... (ऽ)पस्मारमुन्मादं कटपूतनाम् (कटिवेदनाम्-शु० पा०)।
कर्णशूलं शिरःशूलं ब्रध्नं मारुतकुण्डलम्।
अशीतिं वातिकान् रोगान् योनिदोषांश्च विंशतिम्। रेतोदोषान् ग्रहान् सर्वान् बलातैलमपोहति ॥
वृद्धयां .... । .... ॥
.... ज्वरे जीर्णे तृतीयकचतुर्थके। नारीणां दुष्प्राजातानां योनिशूले श्रमेषु च ॥
नानातिसारज्वरयोः कफरोगेषु सर्वशः। नाजीर्णकृशमूर्च्छासु न च्छर्द्यां च प्रयोजयेत् ॥

(का० सं० चि० १८/३१-३७)

यह बला तैल शाखा, कोष्ठ, अस्थि, मज्जा या सिरा की व्याधियों, बहिरायाम, अन्तरायाम, हनुस्तम्भ, शिरोभ्रम, एकपक्षबध, शोष, म्लानक (क्षय), अर्दित, गुल्म, बधिरता, वेपन (कम्पन), अपस्मार, उन्माद, कटिवेदना (कटपूतना एक बालग्रह है, यहाँ वेदनाओं का सन्दर्भ होने के कारण पाठशोध किया गया है), कर्णशूल, शिरःशूल, ब्रध्न (आन्त्रवृद्धि), वातकुण्डलिका, वात के अस्सी विकार, योनि के बीसों विकार, शुक्रदोष तथा सम्पूर्ण ग्रहरोगों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त वृद्धि, जीर्ण ज्वर, तृतीयक तथा चतुर्थक ज्वर, दुष्प्रजाता स्त्रियों के योनिशूल एवं श्रम (थकान) तथा अनेकों प्रकार के अतिसार, ज्वर तथा सभी प्रकार के कफरोगों में इसका प्रयोग करना चाहिए। अजीर्ण, कृशता, मूर्च्छा तथा छर्दि में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

This *balātaila* cures the disorders of *śākhā* (extremities), *koṣṭha* (abdomen), *asthi* (bones), *majjā* (bone marrow) and *sirā* (veins), and also cures *bahirāyāma* (opisthotonos), *antarāyāma* (emprosthotonos), *hanustambha* (lock-jaw), *śirobhrama* (giddiness), *ekapakṣabadha* (hemiplegia), *śoṣa* (emaciation), *mlānaka* (wasting), *ardita* (facial paralysis), *gulma*, *bādhirya* (deafness), *vepana* (tremors), *apasmāra* (epilepsy), *unmāda* (insanity), *kaṭivedanā* (pain in sacral region), *karṇaśūla* (earache), *śirośūla* (headache), *bradhna* (hernia), *vātakuṇḍalikā* (retention of urine due to obstruction in the passage), eighty disorders of *vāta*, twenty *yonivyāpad* (gynec. disorders), *śukra doṣas* (seminal dise.) and all the *graha* disorders. This should also be used in *vṛddhi* (hernias), chronic fever, *tṛtīyaka* and *caturthaka* fever (tertain and quartan fevers), vaginal pain of the woman having undergone abnormal labour, *śrama* (tiredness), different types of *atisāra* (diarrhoea) and fevers, and all types of *kapha* disorders.

It is contraindicated in *ajīrṇa* (indigestion), *kṛśatā* (emaciation), *mūrchā* (unconsciousness) and *chardi* (vomiting).

***अन्य तैल** (Other oils)*

***(१) रास्नातैल** (Rāsnātaila)*

एतेनैव विधानेन रास्नातैलं विपाचयेत्। निहन्ति रोगान् भूयिष्ठं य एते परिकीर्तिताः ॥

(का० सं० चि० १८/३८)

Scanned with CamScanner

(बलातैल की) उपर्युक्त विधि से ही रास्ना का तैल पकाना चाहिए, यह भी उपर्युक्त रोगों का नाशक है।

The *rāsnātaila* should also be prepared just like *balātaila*. this oil cures all the diseases indicated under *balātaila*.

(२) शतावरी आदि अन्य द्रव्य-निर्मित तैल (Oils of śatāwarī etc. other drugs)

शतावर्या बदर्याश्च गुडूच्या मधुकस्य च। पुनर्नवाया द्राक्षायाः पीलो सहचरस्य च॥
वृषस्य नागवीर्यायां अनन्ताशतपुष्पयोः। स्वनामपाकतैलानामेष एव (विधिः स्मृतः)॥
····· ····· लं पक्वं तैले सहाचरे। दद्यान्निर्मथ्य सततमेतदत्र विशेषणम्॥

(का० सं० चि० १८/३९-४१)

इसी प्रकार अपने-अपने नाम के अनुसार शतावरी, बदरी, गुडूची, मधुक, पुनर्नवा, द्राक्षा, पीलु, सहचर, वृष, नागवीर्या, अनन्ता तथा शतपुष्पा आदि के तैल की भी यही पाक-विधि है।

यद्यपि सहचर का भी इसी भाँति तैल निर्माण किया जाता है परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसे पानी में मथकर (तैल में) डाला जाता है।

Oils with *śatāwarī, badarī, guḍūcī, madhuka, punarnavā, drākṣā, pīlu, sahacara, vṛṣa, nāgavīryā, anantā,* and *śatapuṣpā* should also be prepared with similar procedure and be named according to the principal drug.

Though *sahacarataila* is also prepared with the same procedure, however, the decoction of *sahacara* is churned before mixing with oil.

(३) श्योनाक तैल (Śyonāka taila)

श्योनाकतैलस्य विधिः स एव परिकीर्तितः। कषाये मधुमांसस्य दद्यात् त्रिंशत्पलानि तु॥

(का० सं० चि० १८/४२)

श्योनाक तैल की भी यही पाक-विधि है, परन्तु इसके कषाय में मधुमांस[1] ३० पल की मात्रा में डालना चाहिए।

Oil with *śyonāka* should also be prepared with identical method, however, *madhumāṃsa* (?) in the amount of thirty *pala* is to be added in this.

(४) कपित्थ तैल-निर्माण-विधि एवं प्रयोग (Method of preparation and uses of kapitthataila)

कपित्थतैलस्य विधिः स एव परिकीर्तितः। कपित्थानां तु पक्वानां तुलां दद्यात् स·····॥
योनिनासामुखश्रोत्रदौर्गन्ध्ये पिच्छिलेषु च। कपित्थतैलं पिचुभिर्धारयेयुः सदा स्त्रियः॥

(का० सं० चि० १८/४३,४८)

कपित्थ तैल की भी यही निर्माण-विधि है, पके हुए कपित्थ (के गूदे) को एक तुला लेना चाहिए।

स्त्रियों की योनि, नासिका, मुख तथा कर्ण की दुर्गन्धि एवं पिच्छिलता में कपित्थतैल की पिचु का सदैव धारण करना चाहिए।

१. मधु या मद्य का तैल-पाक में प्रयोग नहीं होता। मांस का भी प्रयोग अप्रांगिक सा है, क्योंकि यह काष्ठौषधियों से निर्मित तैल का वर्णन है। विभिन्न मांसो से निर्मित तैलों का वर्णन आगे दिया गया है। मधुमांस शब्द एकवचन में प्रयुक्त है, जिससे ऐसा प्रतीत होता हैं कि यह एक ही द्रव्य है, परन्तु यह द्रव्य क्या है ? कह सकना संभव नहीं।

With one *tulā* pulp of ripe fruit of *kapittha*, the oil should be prepared as per procedure described earlier.

Tampon soaked with this oil should be used in foul smell and unctuousness of vagina, nose, mouth and ear.

(५) अन्य तैल (Other oils)

····· ····· देव प्रकीर्तितम्। केवलं स्वरस्यात्र दद्यात्तैलाच्चतुर्गुणम्॥

(का० सं० चि० १८/४४)

(द्रव्य-नाम खण्डित हैं) की भी यही विधि है, (भेद इतना है कि) केवल स्वरस की मात्रा तैल से चतुर्गुण ली जाती है।

(Names of drugs are missing in the text). The oils with other drugs should also be prepared in the same way, however, juice of drugs should be four times to the oil.

(६) मीनतैल की निर्माण-विधि एवं उपयोगिता (Preparation and uses of mīnataila or the oil prepared with fish)

मीनतैलं च मीनानां कषायेण रसेन च। पक्वं बलातैलमिव वातव्याधिषु शस्यते॥

(का० सं० चि० १८/४५)

मत्स्य के कषाय तथा रस के बला तैल की ही भाँति पाक करके (मीनतैल का) निर्माण किया जाता है यह वात-व्याधियों के लिए प्रशस्त है।

Just like *balātaila*, the oil is also prepared with decoction and juice of fish. This is beneficial for disorders of *vāta*

(७) बलाकादि तैल-निर्माण-विधि एवं प्रयोग (Preparation and uses of balākā etc. oils)

बलाकाहंसवल्गूनां क्रौञ्चसारसयोरपि। आटीशकुनकानां च तैलान्याहुः स्वनामभिः॥
····· ····· (दीर्घ)व्यनाशनम्। विधानं कीर्तितं पुण्यं षण्ढवन्ध्याप्रजाकरम्॥

(का० सं० चि० १८/४६,४७)

अपने अपने नाम के अनुसार बलाका (बगुला विशेष), हंस, वल्गु[1], क्रौंच, सारस, आटी आदि शकुन (पक्षियों) का भी तैल निर्माण करना चाहिये।

ये दुर्गन्धि को नष्ट करते हैं। षण्ढ तथा बन्ध्या स्त्री को पुत्रोत्पत्ति एवं पुण्य प्राप्ति के लिए इनका विधान किया गया है।

Oils with decoction or juice of meat of *balākā* (a kind of heron), *haṃsa* (swan), *valgu* (*valgula ?* a kind of bat), *krauñca* (a kind of curlew or osprey), *sārasa* (indian crane) and *āṭī* (a kind of heron or *Turdus gingindanus)* etc. birds should be prepared and named accordingly.

१. वल्गु नाम का कोई पक्षी शब्दकोषों या अन्य वर्णनों में उपलब्ध नहीं है; वरन् वल्गुल (चमगादड़) नाम का एक स्थलचर पक्षी होता है। संदर्भ में 'वल्गु' के अतिरिक्त सभी जलचर पक्षी हैं, अतः 'वल्गु' से लेखक का अभिप्रेत पक्षी समझना कठिन है।

Scanned with CamScanner

These oils cure foul smell and are prescribed for achievement of conception to a *sandha* (amenorrhic) and *vandhyā* (infertile woman) and are pious.

(९) सहकारादि अन्य तैल (Sahakāra etc. other oils)

सहकाररसेनापि **तद्वत्तैलं** प्रशस्यते । विविधानां च तैलानां हृद्या ····· ····· ॥
····· ····· **भक्षानां च** निषेवणम् ॥ (का० सं० चि० १८/४९)

सहकार (आम) के **रस से भी** इसी प्रकार तैल बनाया जाता है । इसी प्रकार अनेकों प्रकार के हृदय को अच्छे लगने वाले द्रव्यों से तैल का **निर्माण** कर प्रयोग करना चाहिए ।

Oil can also be prepared with juice of *sahakāra* (mango-fruit) and other *hṛdya* (desired) drugs.

धात्री के मिथ्याहार जन्य षष्ठी रोग (Ṣaṣṭhi disease caused by abnormal dietetics of wet-nurse)

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि **धात्र्यां** शेषकर्म यत् । स्नेहपानात् प्रसूतानां षष्ठीमल्लकभक्षणात् ॥
अतिमात्राशनाच्चैव विरुद्धाजीर्णभोजनात् । षष्ठिग्रहः कुमाराणां जायते देहनाशनः ॥
असाध्यश्चानुषङ्गी **च**) ·····। ····· ····· (मिता)हारा धर्मशीला तपस्विनी ॥
जीर्णाशिनी च **सततं** षष्ठीमतितरत्यसौ । प्राप्तायां वञ्चनायां च पञ्चकर्माणि कारयेत् ॥
अथवा तपसोग्रेण **शिवं स्कन्दं च तोषयेत्** ॥ (का० सं० चि० १८/५०-५३)

अब इसके पश्चात् मैं **धात्रियों** के लिए शेष कर्मों का वर्णन करूँगा ।

प्रसूता के द्वारा स्नेहपान, **षष्ठी** (चावल), मल्लक (एक प्रकार की मछली) के प्रयोग अथवा अत्यधिक मात्रा में खाने तथा विरुद्ध एवं अजीर्णकारक भोजन करने से कुमारों को देहनाशक षष्ठी रोग हो जाता है । यह रोग असाध्य एवं अनुषङ्गी (दीर्घकाल तक लगा रहने वाला) होता है । मित आहार करने वाली, धर्मपरायण, तपस्विनी, सदैव ही (पूर्व) भोजन के जीर्ण हो जाने पर भोजन करने **वाली** (स्त्री) इस षष्ठी रोग को पार कर जाती है अर्थात् इस ग्रह से प्रभावित नहीं होती । यदि धात्री षष्ठी से आक्रान्त हो ही जाय तो पञ्चकर्म करना चाहिए अथवा उग्र तपस्या के द्वारा भगवान शिव तथा स्कन्द को सन्तुष्ट करना चाहिए ।

When puerperal women drink oleaginous substances, eat *saṣṭhī* (rice) and *mallaka* (a bind of fish), over eat, consume incompatible foods or foods producing indigestion, then their sons suffer from fatal *saṣṭhī* disorder. This disease is incurable and has tendency of chronicity. The woman who consumes measured amount of food, is virtuous, ascetic and always eats when previous meal is digested, never gets afflicted with *saṣṭhī*, however, if at all she gets afflicted by *saṣṭhī*, then *pañcakarma* should be done and lord *Śiva* and *Skanda* should be pleased by severe penance.

विमर्श (Comments)

भोजन आदि अपथ्य के सेवन से धात्री का स्तन्य षष्ठी ग्रह से दूषित होकर, पान करने वाले शिशु को आक्रान्त करता है पर धात्री-शरीर में प्रविष्ट होते हुए भी यह षष्ठी उसे कोई कष्ट नहीं पहुँचाती ।

Due to use of non-congenial diet etc. mentioned above, the milk of wet-nurse gets afflicted with *saṣṭhī graha* and attacks the suckling child. Though *saṣṭhī* initially enters the body of wet-nurse, yet does not cause any trouble to her.

धात्री की प्रकृति, प्रजा या स्तन्य की मात्रा का शिशु पर प्रभाव (Effect of prakṛti, parity or amount of milk of wet-nurse on the child)

पित्तानिलप्रकृतिकी पटुक्षीरा पटुप्रजा । कुतः (ततः शु० पा०) षड्गुजडा मूका त्रिदोष क्षीरभोजिनः ॥
(का० सं० चि० १७/५)

पित्त एवं वात प्रकृति, अत्यधिक स्तन्य या लवण रस युक्त स्तन्य तथा अत्यधिक सन्तानों वाली धात्री का अथवा त्रिदोष-दूषित स्तन्य-पान करने से बालक पङ्गु, जड़ या मूक हो जाता है ।

The child, sucking the milk vitiated by *tridoṣa* or of wet nurse, who is multiparous, is of *vāta* or *pitta prakṛti*, has excessive or salty milk, becomes lame, idiot and dumb.

शिशु के व्याधि-युक्त होने पर धात्री की शोधन-चिकित्सा (Purifying measures for wet-nurse in the diseases of breast-fed infant)

शिशोर्व्याधौ समुत्पन्ने धात्रीणामेव शोधनम् । अलं बालसुखायेति को लोके नावबुद्ध्यते ॥
यस्तु कायगतस्तस्य दोषाणां पूर्वसञ्चयः । अनुद्धृते कथं तस्मिन् ····· ···· ॥
····· ····· (व्याधिस्तस्य) प्रशाम्यति । अनागतविघातस्तु न वर्धयति वाऽऽशयम् ॥
उभयोस्तु यदा सम्यक् शोधनं कुरुते भिषक् । तदाऽऽरोग्यं भवत्याशु शिशोर्लेखायथाऽश्मनि ॥
दोषाणामाशयो धात्री भूधराः सरिता(मिव) ॥ ····· ····· ····· ····· ॥
····· ···· रोभूतो दोषो बालं प्रबाधते ॥ तयोः संशोधनमृते न शान्तिरिति धारणा ॥
(का० सं० सि० ३/६-११)

शिशु को व्याधि उत्पन्न होने पर धात्री का ही शोधन करना चाहिए, इसीसे बालक को सुख प्राप्त हो जाता है; इस तथ्य को लोक में कौन नहीं जानता (अर्थात् सभी जानते हैं) । परन्तु (बालक के) शरीर में पहुँचे हुए दोषों का जो पूर्व सञ्चय होता है उसे बिना उद्धृत किए या निकाले, उसकी व्याधि किस प्रकार शान्त हो सकती है ? (अर्थात् व्याधि का नाश नहीं होता) तथा उसके भविष्य का नाश होता है एवं उसके आशय (शरीर के विभिन्न आशयों) की वृद्धि नहीं होती । जब वैद्य दोनों (धात्री एवं शिशु दोनों) का सम्यक् प्रकार से शोधन करता है तो बालक को तत्काल ही आरोग्य-लाभ हो जाता है, यह तथ्य पत्थर के लेख के समान सत्य है ।

जिस प्रकार पर्वत नदियों के आशय (उद्गमस्थान) हैं, उसी प्रकार धात्री दोषों का आशय होती है । (धात्री के शरीर में प्रकुपित हुए) दोष (बालक के शरीर में पहुँच कर) बालक को कष्ट पहुँचाते हैं अतः उन दोनों (धात्री एवं बालक) के संशोधन के बिना निश्चित रूप से (बालक के) रोगों की शान्ति नहीं होती ।

If the child (breast fed infant) becomes ill, *śodhana* (use of purifying measures) therapy given to the wet-nurse eradicates diseases of the child. However, if the *doṣas*, already accumulated in the child, are not removed, he is not cured, his future is destroyed and his body does not grow properly. When the physician uses purifying measures in both of them i.e. wet-nurse and child, then the child becomes immediately free from diseases.

As the rivers originate from hills, similarly wet-nurse is source of origin of all the *doṣas*. The *doṣas* vitiated in the body of wet-nurse, reach of child (through milk) and trouble him, thus till the *śodhana* is not used in both (wet-nurse and child) of them, the diseases of child are not cured.

Scanned with CamScanner

स्तन्यदुष्टि (Abnormalities of breast milk)

स्तन्यदुष्टि के सामान्य कारण एवं सम्प्राप्ति (Etiopathogenesis of vitiation of milk)

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात्। लवणाम्लकटुक्षारप्रक्लिन्नानां च सेवनात्॥ २३२॥
मनःशरीरसंतापादस्वप्नान्निशि चिन्तनात्। प्राप्तवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेन च॥ २३३॥
परमान्नं गुडकृतं कृशरां दधिमन्दकम्। अभिष्यन्दीनि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च॥ २३४॥
भुक्त्वा भुक्त्वा दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात्। अनायासादभीघातात् क्रोधाच्चातङ्ककर्शनैः॥ २३५॥
दोषाः क्षीरवहाः प्राप्य सिराः स्तन्यं प्रदूष्य च। कुर्युरष्टविधं भूयो दोषतस्तन्निबोध मे॥ २३६॥
(च० सं० चि० ३०/२३२ से २३६)

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥ ३२॥
मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः। दूषयन्ति पयस्तेन ·····॥ ३३॥
(सु० सं० शा० १०/३२ व ३३)

क्षीरं हि यथोक्तैर्दोषकोपनैराहारविहारैर्धात्र्या व्यापन्नं विविधामयोदयाय बालस्य प्रकल्पते॥
(अ० सं० उ० २/३)

अजीर्ण, असात्म्य, विषम, विरुद्ध तथा अत्यधिक भोजन, लवण, अम्ल, कटु, क्षार तथा प्रक्लिन्न (द्रव्यों के) सेवन; मन एवं शरीर के संताप, रात में न सोने, चिन्ता (अधिक) करने, प्राप्त वेगों के धारण तथा अप्राप्त वेगों के उदीर्ण करने; परमान्न (खीर), गुड़ से बने भक्ष्य पदार्थों, कृशरा, दधि, मन्दक (पाठभेद मत्स्यक या मछली) एवं अभिष्यन्दी द्रव्यों के प्रयोग, ग्राम्य, आनूप तथा औदक प्राणियों के मांस आदि के सेवन, बार बार भोजन कर दिन में सोने, मद्य के अतिसेवन; परिश्रम न करने, अभिघात, क्रोध, अन्य व्याधियों तथा कर्शन (शरीर के अपतर्पण द्वारा या अन्य कारणों से अतिकृश हो जाने से) आदि से दूषित दोष क्षीरवहा सिराओं में जाकर स्तन्य को दूषित कर अष्टविध क्षीरदोष उत्पन्न करते हैं। उन्हें उनके (दोषों के) अनुसार कहा जा रहा है।

महर्षि सुश्रुत ने भी लिखा है कि धात्री के द्वारा गुरु, विषम तथा दोषोत्पादक आहार का सेवन करने से शरीर के दोष प्रकुपित हो जाते हैं, जिसके कारण स्तन्य भी दूषित हो जाता है। मिथ्या आहार-विहार करने वाली स्त्री के वातादि दोष दूषित होकर दुग्ध को भी दूषित कर देते हैं।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने कहा है कि पूर्ववर्णित (सूत्रस्थान वर्णित) दोषों को प्रकुपित करने वाले आहार-विहार का सेवन करने से धात्री का दुग्ध दूषित हो जाता है तथा बच्चों को अनेकों प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर आदि पुस्तकों में भी महर्षि सुश्रुत के विचारों का अनुसरण किया गया है[1]।

१. (अ) गुरुभिर्विविधैस्तैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्। क्षीरं मातुः कुमारस्य नाना रोगाय कल्पते॥ (मा० नि० ६७/५)
(आ) धात्र्यागुरुभिराहारैर्विहारैर्दोषलैस्तथा। देहे दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥
मिथ्याऽऽहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः। दूषयन्ति पयस्तेन शरीरं व्याधयः शिशोः॥
(मा० प्र० पूर्व० ४/१६, १७)
(इ) गुरुभि·····प्रदूषितम्। क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य·····। (मा० नि० सदृश) (यो० र० क्षीरदोषचि०)
(ई) धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा। दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥
मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टाः वातादयस्त्रयः। दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः॥
(मा० प्र० चि० ७१/११६, ११७ एवं यो० र० बालरो०)

महर्षि काश्यप ने वातज, पित्तज एवं कफज स्तन्यदुष्टि के विशिष्ट निदानों का वर्णन किया है जिनका उल्लेख विशिष्ट शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

Due to indigestion, consumption of non-congenial, unusual or unfavourable and incompatible food and over-eating; use of (excessive) salty, sour, hot, *kṣāra* (alkaline) and humid or putrified articles; diseases of body and mind, awakening in the night, over worry, suppression of natural urges and attempt to excrete feces etc. in the absence of their urge; use of *paramānna* (a dish made with rice, milk and sugar boiled together), dishes made of jaggery, oleo, curd, slowly formed curd or fish, *abhiṣyandī* (moisture producing) articles, meat of wild or aquatic animals or animals frequenting marshy places, sleeping during day after eating repeatedly, over use of wine, absence of exercise, trauma, anger, other diseases and emaciation (either due to over use of purging etc. purifying measures or due to other causes), the *doṣas* get vitiated. These vitiated *doṣas* moving through *kṣīravahā sirās* (milk channels) vitiate the milk and produce eight types of milk disorders.

Suśruta, Vāgbhaṭa I, Mādhava Nidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara etc. have also given similar causes but in summarized way.

Kāśyapa has described specific etiology of vitiation of milk by *vāta, pitta* and *kapha*, which is recapitulated under specific headings.

दूषित स्तन्य-पान जन्य सामान्य व्याधियाँ (Diseases caused by use of vitiated milk)

सभी आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है कि वातादि दोषों से दूषित स्तन्य का पान करने से, बालकों को उन दोषों से उत्पन्न अनेकों शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती[1] है।

महर्षि काश्यप ने भी उपर्युक्त मत का अनुमोदन[2] किया है।

Due to consumption of milk vitiated by *vāta* etc. *doṣas*, the child suffers from various physical disorders of the same *doṣa*, by which the milk is vitiated.

स्तन्य-दोषों के भेद (Classification of disorders of milk)

सभी आचार्यों ने वातादि तीनों दोषों से पृथक्-पृथक् तीन तथा सन्निपात जन्य इस प्रकार चार प्रकार के स्तन्य-दोषों का वर्णन किया है। महर्षि सुश्रुत ने अभिघातज एवं अष्टाङ्गहृदयकार तथा माधव आदि ने द्वन्द्वज स्तन्यदुष्टि की भी कल्पना

१. (अ) क्षीरे वातादिभिर्दुष्टे संभवन्ति तदात्मकाः॥ (च० सं० चि० ३०/२५१)
(आ) दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधयः शिशोः॥ (सु० सं० शा० १०/३३ तथा भा० प्र० पूर्व० ४/१७ शरीरं-पाठ)
(इ) स्तन्यदोषात् गदास्तस्य यथोक्तं तत् पिबेच्चतः॥ (अ० सं० उ० १/३८)
···विविधामयोदयाय बालस्य प्रकल्पते॥ तदुपयुज्यमानं यथास्वलिङ्गान् व्याधीनभिनिर्वर्तयति॥
(अ० सं० उ० २/३, ७)
(ई) ·····दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः॥ १॥
यथास्वलिङ्गास्तद्व्याधीन् जनयत्युपयोजितम्॥ ५॥ (अ० हृ० उ० २/१,५)
(उ) ····· कुमारस्य नाना रोगाय कल्पते॥ (मा० नि० ६७/५ तथा यो० र० क्षीरदो० चि०)

२. संभवन्ति महारोगा अशुद्धक्षीरसेवनात्॥ (का० सं० सू० १९/२७)

Scanned with CamScanner

की है। इस सामान्य स्तन्यदुष्टि के वर्णन के उपरान्त महर्षि चरक ने वातादि तीनों दोषों से उत्पन्न होने वाले अष्ट क्षीर-दोषों का वर्णन किया है। सम्भवतः इन अष्ट क्षीरदोषों की कल्पना वातादि जन्य विशिष्ट लक्षण-प्राधान्य यथा फेनसंघात आदि के आधार पर ही की गई है, अर्थात् स्तन्य में जिस विशिष्ट लक्षण का अन्य लक्षणों से अपेक्षाकृत प्राधान्य हो उसे उसी नाम से लिखा गया; इस कथन की पुष्टि इस तथ्य से और हो जाती है कि चिकित्सा स्थान में वे लिखते हैं कि वातादि दुष्ट स्तन्य के लक्षण तथा चिकित्सा एवं अष्ट क्षीरदोष का वर्णन मैं पूर्व पृष्ठों में कर चुका हूँ, यहाँ मध्यम एवं मन्द बुद्धि शिष्य के ज्ञानार्थ विस्तृत विवेचना दे रहा हूँ।[1] जब कि शरीरस्थान वर्णित दुग्ध-दोषों में वातादि के वर्णन के अन्तर्गत वैरस्य, फेनसंघात आदि लक्षणों का उल्लेख तो अवश्य है परन्तु अष्ट क्षीरदोष का नामोल्लेख नहीं है। सूत्रस्थान में अष्टक्षीर-दोषों की गणना की गई है। महर्षि हारीत ने पञ्च क्षीरदोषों की कल्पना की है, तथा महर्षि काश्यप ने ग्रह-दूषित स्तन्य की। महर्षि काश्यप ने त्रिदोष दूषित, स्वादु एवं कषाय रस स्तन्य-जन्य लक्षणों का उल्लेख किया है। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने विभिन्न स्तन्य-दोषों की चिकित्सा का वर्णन करते हुए तिक्तानुरस, कषायानुरस, फेनिल, विच्छिन्न, प्लवमान, तनु, सान्द्र एवं ग्रथित आदि विकारों की चिकित्सा तथा ताम्रावभास, अम्लानुरस, कटुकानुरस, भृशोष्ण, लवणानुरस तथा तनुमत् स्तन्य-पान से होने वाले विकारों एवं इनकी चिकित्सा का वर्णन दिया है। इस प्रकार इन्होंने चौदह लक्षणों का विशिष्ट वर्णन दिया है।

शार्ङ्गधर संहिता में वातादि दोष-जन्य के ही साथ क्षतज स्तन्य-दुष्टि का भी वर्णन है, परन्तु इन्होंने केवल नामोल्लेख ही किया है[2]।

विषय के सम्यक् ज्ञानार्थ सभी आचार्यों द्वारा वर्णित भेदों का उल्लेख तालिका १२ में किया जा रहा है।

तालिका १२

स्तन्यदुष्टि	वर्णित-ग्रन्थ
१. वातज	च०सं०; सु०सं०; अ०सं०; अ०ह०; का०सं०; मा०नि०; शा०सं०; भा०प्र०; यो०र०
२. पित्तज	उपर्युक्त सभी
३. कफज	उपर्युक्त सभी
४. द्वन्द्वज	अ०ह०; मा०नि०; भा०प्र०; यो०र०; चक्रपाणि टीका
५. सान्निपातज	सु०सं०; अ०सं०; अ०ह०; का०सं०; मा०नि०; भा०प्र०; यो०र०; चक्रपाणि टीका
६. क्षतज	शा०सं० (केवल नामोल्लेख)
७. अभिघातज	सु०सं० एवं० मधु०व्या०
८. अष्ट क्षीरदोष	च०सं०
९. तिक्तकषायानुरस, फेनिल, विच्छिन्न,	अ०सं० (केवल चिकित्सा)

क्रमशः .....

१. धात्रीस्तनस्तन्यसंपदुक्ता विस्तरतः पुरा। स्तन्यसंजननं चैव स्तन्यस्य च विशोधनम्॥
वातादिदुष्टे लिङ्गं च क्षीणस्य च चिकित्सितम्। तत्सर्वमुक्तं ये त्वष्टौ क्षीरदोषाः प्रकीर्तिताः॥
वातादिष्वेव तान्विद्याच्छास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः। त्रिविधास्तु यतः शिष्यास्ततो वक्ष्यामि विस्तरम्॥
(च० सं० चि० ३०/२२९ से २३१)

२. षडेव स्तनरोगाः स्युर्वातापित्तात्कफादपि। सन्निपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः॥ (शा० सं० पूर्व० ७/१८२)

..... क्रमशः

स्तन्यदुष्टि	वर्णित-ग्रन्थ
प्लवमान, तनु, सान्द्र एवं ग्रथित	
१०. ताम्रावभास, अम्ल एवं कटुकानुरस, भृशोष्ण, लवणानुरस, तनुमत्, गुरु	अ०सं० (विकार एवं चिकित्सा)
११. षष्ठी, स्कन्द, पूतना एवं शकुनि ग्रह से दूषित	का०सं० केवल लक्षणों का वर्णन, धात्री के अपथ्य सेवन-जन्य षष्ठी से आक्रान्त स्तन्य (पृष्ठ ६७०)
१२. स्वादु एवं कषाय रस का स्तन्य	का०सं० (विकार वर्णन)
१३. घन, उष्ण, अम्ल, एवं क्षार क्षीर (पञ्चक्षीर दोष)	हा०सं० (विकार वर्णन)

The authors have classified various disorders of milk, according to dominance of *doṣa* or physical characters of milk. Some of these disorders have been described in detail, while for others only symptoms in the child and their treatment is given. To have a comprehensive idea regarding various abnormalities described by different authors the same are being given in tabular form.

No	Disorders of milk	Subject described	Authors
1-3	*Vātaja, Pittaja* and *Kaphaja*	Etiology, physical characters of milk, Symptoms in the child and treatment.	C.S.; S.S.; A.S.; A.H.; Kā.S.; M.N. (excluding treatment); Śā S. (only name); B.P. and Y.R.
4.	*Dwandwaja*	do	A.H.; M.N.; B.P.; Y.R. and C.P.
5.	*Sānnipātaja*	do	S.S.; A.S.; A.H.; Kā.S.; M.N.; B.P.; Y.R. and C.P.
6.	*Kṣataja*	Name only	Śā.S.
7.	*Abhighātaja*	Etiology and clinical features.	S.S.; Madhu.
8.	*Aṣṭa kṣīradoṣa*	Etiopathogenesis, physical characters, symptoms of the child and treatment.	C.S.
9.	*Tiktakaṣāyanurasa, phenila, vicchinna,*	Only treatment.	A.S.

Cont. .....

Scanned with CamScanner

..... Cont.

No	Disorders of milk	Subject described	Authors
	plavamāna, tanu, sāndra and *grathita.*		
10.	*Tāmrāvabhāsa, amla* and *kaṭukānurasa, bhṛśoṣṇa, lavaṇānur-asa, tantumat* and *guru.*	Symptoms and treatment.	A.S.
11.	Milk. afflicted with *ṣaṣṭhī, skanda, pūtanā* and *śakunī grahas.*	Symptoms of the child.	Kā.S.
12.	*Swādu* and *kaṣāya taste.*	Only symptoms.	Kā.S.
13.	*Ghana, uṣṇa, amla, alpa* and *kṣāra kṣīra* etc. five disorders.	Only symptoms.	Hā.S.

वातादि दोषों से दूषित स्तन्य का वर्ण एवं रस तथा शिशु में उत्पन्न होने वाले लक्षण (Physical characters of milk vitiated by different doṣas and symptoms produced in the child)

(अ) वातज स्तन्य-दुष्टि (Milk vitiated by vāta)

श्यावारुणवर्णं कषायानुरसं विशदमनालक्ष्यगन्धं रुक्षं द्रवं फेनिलं लघ्वतृप्तिकरं कर्शनं वातविकाराणां कर्तृ वातोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम् ॥ (च० सं० शा० ८/५५)

तत् कषायं भवेद् वातात् क्षिप्तञ्च प्लवतेऽम्भसि ॥ (सु० सं० नि० १०/२३)

तत्र श्यावारुणवर्णं तिक्तकषायानुरसं विशदं रुक्षमलक्ष्यगन्धं फेनिलमतृप्तिकरमाध्मानमूत्रवर्चोविबन्धकृत् कर्शनमप्सु विसर्पति विच्छिन्नं च प्लवते वातदुष्टम् ॥ (अ० सं० उ० २/४)

..... वाताद् दुष्टं तु प्लवतेऽम्भसि ॥ २॥

कषायं फेनिलं रुक्षं वर्चोमूत्रविबन्धकृत् ॥ ३॥ (अ० ह० उ० २/३,२)

तत्र या बालस्य माता वा धात्री वा रूक्षसमुदाचाराहारोदावर्तनोपवसनशीला तथाऽतिचङ्क्रमणव्यायामक्लेशा-नत्यर्थमुपसेवते तस्या वायुः प्रकुपितः स्तन्यं दूषयति । तस्य लक्षणम्–उदके प्रक्षिप्तं प्लवते विच्छिद्यते छत्रायते श्यावावभासं, रसेन तिक्तकषायं विरसं चेति । (का० सं० खि० १५/७)

श्याव या अरुण वर्ण, कषाय अनुरस वाले (पीने के बाद मुख में कषाय रस की अनुभूति हो), विशद, अनालक्ष्य-गन्ध (जिसकी गन्ध का परिज्ञान न हो अर्थात् गन्ध-रहित), रुक्ष, द्रव, फेनिल, लघु, अतृप्तिकर, कर्शन (पीने वाले शिशु के शरीर को कृश बनाने वाला) तथा वात-विकारों को उत्पन्न करने वाले स्तन्य को वात से दूषित जानना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने संक्षेप में लिखा है कि वात से दूषित स्तन्य कषाय रस वाला होता है, तथा जल में डालने पर तैरता

रहता है। टीका डल्हण ने तनु आदि लक्षणों के ग्रहण का भी निर्देश दिया है[1]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि वात से दूषित स्तन्य श्याव या अरुण वर्ण, तिक्त एवं कषाय अनुरस, विशद, रुक्ष, अलक्ष्य-गन्ध, फेनिल, अतृप्तिकारक, आध्मान तथा मूत्र एवं मल विबन्ध-कारक तथा कर्शन करने वाला होता है। जल में डालने पर फैलता है एवं विच्छिन्न होकर अर्थात् अलग अलग या टुकड़े टुकड़े होकर तैरता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि वात से दूषित स्तन्य जल में तैरने वाला, कषाय रस, फेनिल, रुक्ष तथा मल-मूत्र का विबन्ध-कारक होता है।

महर्षि काश्यप का कथन है कि जब बालक की माँ या धात्री अत्यधिक रुक्ष आहार एवं आचार, उदावर्तन (वेगावरोध) एवं उपवास करती है तथा अत्यधिक घूमना एवं व्यायाम आदि क्लेशों का सेवन करती है, तब उसकी वायु प्रकुपित होकर स्तन्य को दूषित कर देती है। उसके (उस दूषित स्तन्य के) ये लक्षण हैं-वह जल में डालने पर तैरता है, विच्छिन्न हो जाता है अर्थात् फट सा जाता है, छत्राकार (आकृति का) हो जाता है, वर्ण में श्यावावभास तथा रस में तिक्त, कषाय अथवा विरस होता है।

इस स्तन्य के पीने से वातज चर्मदल होने का भी उल्लेख है[2]।

माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर आदि पुस्तकों में लिखा है कि वात से दूषित स्तन्य कषाय रस तथा जल में तैरने वाला होता है[3]। मधुकोष-व्याख्याकार ने डल्हण की ही भाँति तनु आदि का भी उल्लेख किया है[4]। पुनश्च बालरोगों का वर्णन करते हुए इन्हीं आचार्यों ने लिखा है कि वात से दूषित स्तन्य पान से बालक अनेकों वातव्याधियों से पीड़ित होता है। वह क्षाम-स्वर (थके हुए स्वर वाला या धीमे स्वर वाला), कृशाङ्ग तथा मूत्र, मल एवं वायु के विबन्ध या अवरोध से पीड़ित होता है[5]।

The milk vitiated by *vāyu* is blackish brown or pinkish in colour, has *kaṣāya anurasa* (feeling of *kaṣāya* or astringent taste after sucking the milk or after taste), is *viśada* (pellucid or non slimy), has indiscernible smell, is *rukṣa* (dry or absence of unctuousness), *drava* (liquid), frothy and *laghu;* does not give satisfaction to the child, produces emaciation and various disorders of *vāta.*

Suśruta says that it has *kaṣāya rasa* (astringent taste) and if put in the water, it floats.

Vāgbhaṭa I corroborating Caraka has added that it has *tikta anurasa* also and produces flatulence, oliguria and constipation, the milk floats in the water in scattered manner. Vāgbhaṭa II has also given almost similar description.

Kāśyapa says that when mother or wet-nurse of the child constantly uses dry mode of life and dietetics, does retention (suppression of natural urges), observes fasting and in-

---

१. क्षिप्तञ्चेति चकारेण अनुक्तमपि तनुत्वादिकम् समुच्चीयते ॥ (सु० सं० नि० १०/२३ की डल्ह० टीका)

२. का० सं० खि० १५/७

३. कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ (मा० नि० ६७/६, भा० प्र० पूर्व० ४/१८ एवं यो० र० क्षीरदोषचि०)

४. तेन तनुत्वाद्यपि बोद्धव्यम् ॥ (मा० नि० ६७/६ की मधु० व्या०)

५. वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः। क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥
(मा० नि० ६८/१; भा० प्र० चि० ७०/११८ एवं यो० र० बालरो० चि०)

Scanned with CamScanner

dulges in too much or over walking, excercise etc. troubles, then her *vāyu* getting aggravated vitiates breast-milk. Its features are :— it floats when put in water, gets scattered, spreads like umbrella, it appears blackish in colour, it is bitter and astringent in taste or tasteless.

Carmadala (allergic dermatitis) due to *vāta* is said to develop due to consumption of this milk.

MādhavaNidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara etc. giving description like Suśruta, have added that the child has very weak cry, is scraggy and suffers from suppression or retention of urine and feces.

(आ) पित्तज स्तन्य-दुष्टि (Milk vitiated by pitta)

कृष्णनीलपीतताम्रावभासं तिक्ताम्लकटुकानुरसं कुणपरुधिरगन्धि भृशोष्णं पित्तविकाराणां कर्तृ च पित्तोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम् ॥ (च० सं० शा० ८/५५)

पित्तादम्ल सकटुकं राज्योऽम्भसि च पीतिका: । (सु० सं० नि० १०/२४)

कृष्णनीलताम्रावभासं तिक्तावभासं[1] तिक्ताम्लकटुकानुरसं कुणपरुधिरगन्धि भृशोष्णमप्सु पीतराजिमद्विदाहकरं च पित्तदुष्टम् ॥ (अ० सं० उ० २/५)

पित्ताद् दुष्टाम्लकटुकं पीतराज्यप्सु दाहकृत् ॥ (अ० हृ० उ० २/३)

यदा तु धात्री क्रोधसंतापोष्णाम्ललवणकटुकविदग्धाध्यशनविवशा(ता)नुपसेवते तस्या: पित्तं प्रकुपितं वायुना विक्षिप्यमाणं स्तन्यवहाभि: सिराभिरनुसृत्य स्तन्यं दूषयति । तस्य लक्षणानि–उदके प्रक्षिप्तं हरितरक्तासितावभासं भवत्यथ रसेन कट्वम्ललवणतिक्तं स्पर्शेनोष्णमिति । (का० सं० खि० १५/८)

कृष्ण, नीले, पीले या ताम्र वर्ण; तिक्त, अम्ल एवं कटु अनुरस तथा कुणप एवं रुधिर गन्धि वाला, अत्यधिक उष्ण तथा पित्त-विकार-कारक स्तन्य पित्त से दूषित समझना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि पित्त से दूषित स्तन्य अम्ल एवं कटु रस का होता है तथा इसे जल में डालने पर पीले वर्ण की रेखायें बनती हैं। टीकाकार डल्हण ने लिखा है कि स्तन्य सकटुक अर्थात् कुछ तिक्त रस वाला होता है क्योंकि कटु शब्द तिक्त को भी बोधित करता है तथा जल में पीले के ही साथ नीली एवं लाल रेखायें भी बनती है[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि पित्त दुष्ट स्तन्य कृष्ण, नीले या ताम्र वर्ण का, तिक्त, अम्ल एवं कटु अनुरस, कुणप एवं रुधिर गन्धि वाला, अत्यधिक उष्ण, (जल में डालने पर) पीली रेखायें बनाने वाला तथा विदाहकारी होता है।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि पित्त से दूषित स्तन्य अम्ल एवं कटु रस, जल में पीली रेखायें बनाने वाला तथा दाहकारक होता है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि जब धात्री क्रोध, सन्ताप, उष्ण, अम्ल, लवण, कटु रस युक्त तथा विदग्ध आहार एवं अध्यशन आदि के विवश हो जाती है अर्थात् इनके वशीभूत हो जाती है, तब उसका प्रकुपित पित्त वायु के द्वारा प्रक्षेपित

१. तिक्तावभास शब्द का कोई औचित्य इस स्थल पर प्रतीत नहीं होता। चरक के वर्णन में यह शब्द नहीं है। यहाँ पर सम्भवत: मुद्रण-त्रुटि के कारण उल्लिखित है। यह शब्द आठवले द्वारा पुणे से प्रकाशित ग्रन्थ में नहीं है।

२. सकटुकं ईषत्तिक्तं, तिक्तेऽपि कटुशब्दस्य प्रवृत्ते:। अम्भसि चेति चकारात्नीललोहिताश्च राज्यो दृष्टव्या: ॥
(सु० सं० नि० १०/२४ की डल्ह० टीका)

हो स्तन्यवहा सिराओं का अनुसरण करते हुए स्तन्य को दूषित करता है। इसके (इस स्तन्य के) ये लक्षण हैं :-जल में डालने पर हरे, लाल या काले से वर्ण का, रस में कटु, अम्ल, लवण एवं तिक्त तथा स्पर्श में उष्ण होता है।

इस स्तन्य के पान से बालकों को पैत्तिक चर्मदल होने का भी उल्लेख है[4]।

माधवनिदान तथा योगरत्नाकर आदि ग्रन्थों में इसके कटु, अम्ल एवं लवण रस तथा पीत राजी युक्त होने का उल्लेख है[3]। भावप्रकाश ने लवण रस नहीं माना[3]। मधुकोष व्याख्या में कटु शब्द से तिक्त रस के भी ग्रहण का तथा नील, लोहित आदि रेखाओं एवं जल में डूबने का उल्लेख है[3]। पुनश्च बालरोगों का वर्णन करते समय इन आचार्यों ने लिखा है कि पित्त से दूषित स्तन्य के पान से बालक स्विन्न (अत्यधिक स्वेद से आक्रान्त), मलभेद, कामला तथा अन्य पैत्तिक रोगों से पीड़ित, तृष्णातु होता है तथा उसके सभी अङ्ग उष्ण होते है[5]।

The milk vitiated with *pitta* is black, blue, yellow or coppery in colour, possesses *tikta* (bitter), *amla* (sour) and *kaṭu* (pungent)*anurasa* (after taste), smells like blood or dead body (stinking), is very hot and produces disorders of *pitta.*

Suśruta says that it has *amla* and *kaṭurasa* (taste); when put in the water, it produces yellow streaks. Ḍalhaṇa has added that it also has *tikta rasa* and produces blue or red streaks also.

Vāgbhaṭa I agreeing with Caraka has not described yellow colour but has added formation of yellow streaks in water and *vidāha* (burning sensation) to the child. Vāgbhaṭa II has also given almost similar description.

Kāśyapa says that when wet-nurse becomes helpless by anger, heat of sun and hot sour, salty and pungent diet, ill-digested food; eats again before digestion of previously taken food; then her aggravated *pitta,* being thrown by *vāyu,* following the veins (channels) carrying breast-milk vitiates the breast-milk. Its (breast-milk's) features are - when splashed in water it becomes greenish, reddish or slight blackish in colour. In taste it is pungent, sour, salty and bitter and in touch it is hot.

By consuming this milk, the child is said to suffer from *carmadala* (allergic dermatitis) due to *pitta.*

MādhavaNidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara agreeing with above description have added that the child consuming this milk, suffers from excessive perspiration, diarrhoea, *kāmalā* (jaundice) and other disorders of *pitta.* He feels excessive thirst and body parts become hot. Madhukoṣa commentary has mentioned that this milk settles down in the water.

१. का० सं० खि० १५/८

२. कट्वम्ललवणं पीतराजीमत् पित्तसंज्ञितम् ॥ (मा० नि० ६७/६, यो० र० क्षीरदोष चि०)

३. पित्तादम्लं च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीतिका: ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/१८)

४. कट्वम्ललवणमिति कटु तिक्तं, तिक्तेऽपि कटुशब्दप्रवृत्तेरिति वदन्ति। पीतराजीमदिति पीतरेखायुक्तं, तत्रापि नीललोहिताश्च राज्यो ज्ञेय:। निमज्जति पित्तदुष्टसंज्ञितम् ॥ (मा० नि० ६७/६ की मधु० व्या०)

५. स्विन्नो भिन्नमलो बाल: कामलापित्तरोगवान्। तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्ग: पित्तदुष्टं पय: पिबन् ॥
(मा० नि० ६८/२; भा० प्र० चि० ७१/११९ एवं, यो० र० बालरो०)

Scanned with CamScanner

(ङ) श्लेष्मज स्तन्य-दुष्टि (Milk vitiated by śleṣmā)

अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्योपपन्नं लवणानुरसं घृततैलवसामज्जगन्धि पिच्छिलं तन्तुमदुदकपात्रेऽवसीदच्छ्लेष्म-विकाराणां कर्तृ श्लेष्मोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम् ॥ (च० सं० शा० ८/५५)

कफाद् घनं पिच्छिलं च जले चाप्यवसीदति ॥ (सु० सं० नि० १०/२४)

अत्यर्थशुक्लमधुरं लवणानुरसं घृततैलवसामज्जगन्धि पिच्छिलं बहलं तन्तुमत् गुरु सलिलेऽवसीदति निद्राबहुलं च श्लेष्मदुष्टम् ॥ (अ० सं० उ० २/६)

कफात् सलवणं सान्द्रं जले मज्जति पिच्छिलम् ॥ (अ० हृ० उ० २/४)

अथ या धात्री गुर्वम्ललवणमधुराभिष्यन्दिदिवास्वप्नालस्याहितानि चात्यर्थमुपसेवते तस्याः प्रकुपितः श्लेष्मा वायुना समुदीर्यमाणः स्तन्यमभिदूषयति । तस्य लक्षणं–जले निषीदत्यधस्ताद्रूपेण सान्द्रं स्नेहबहलं स्पर्शेन शीतपिच्छिलं रसेन मधुरमिति । (का० सं० खि० १५/९)

अत्यधिक श्वेत, अत्यधिक मधुर, लवणानुरस, घृत, तैत्त, वसा या मज्जा तुल्य गन्ध युक्त, पिच्छिल, तन्तु युक्त, जल-पात्र में डालने पर डूब जाने वाला तथा श्लेष्म-विकार-कारक स्तन्य को कफ से दूषित जानना चाहिए। टीकाकार चक्रपाणि ने लवणरसता का कारण दोष-दूष्य सम्मूर्छना बताया है[1]।

महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि कफ-दूषित स्तन्य घन (गाढ़ा), पिच्छिल एवं जल में डूबने वाला होता है।

अष्टाङ्गसंग्रह में वर्णन है कि अत्यधिक श्वेत, अत्यधिक मधुर, लवणानुरस, घृत, तैल, वसा या मज्ज गन्धि, पिच्छिल, बहल (घन-इन्दु), तन्तुमत्, गुरु, जल में डूबने वाला, अत्यधिक निद्राकारक स्तन्य कफ से दूषित जानना चाहिए।

अष्टाङ्गहृदयकार ने लिखा है कि कफ (से दूषित होने) से स्तन्य लवण रस वाला, सान्द्र, पिच्छिल एवं जल में डूबने वाला होता है।

महर्षि काश्यप का कथन है कि जब धात्री गुरु, अम्ल, लवण, मधुर एवं अभिष्यन्दी (भोजन) तथा दिवास्वप्न एवं आलस्य आदि अहितकारी (विहार) का अत्यधिक सेवन करती है, तब उसका प्रकुपित श्लेष्मा वायु के द्वारा उदीर्यमान (प्रेरित) होकर स्तन्य को दूषित कर देता है। उसके (दूषित स्तन्य के) ये लक्षण हैं :- जल में डालने पर नीचे डूब जाता है। देखने में सान्द्र (गाढ़ा), अत्यधिक स्निग्ध, स्पर्श में शीत एवं पिच्छिल तथा रस में मधुर होता है।

माधवनिदान तथा योगरत्नाकरकार ने महर्षि सुश्रुत का ही अनुगमन किया है[2]। आचार्य भावमिश्र ने केवल पिच्छिलता एवं जल में अवसीदन का ही वर्णन किया है[3]। मधुकोष व्याख्या में अति माधुर्य आदि लक्षणों का भी उल्लेख है तथा जल में डूबने का कारण अति गुरुत्व होना बताया है[4]। पुनश्च इन्हीं आचार्यों ने बालरोगाधिकार में लिखा है कि कफ से दूषित स्तन्य-पान करने से शिशु लालालु (अत्यधिक लाला स्राव पीड़ित), श्लेष्मरोगों से पीड़ित, निद्रान्वित (हर समय सोया रहने वाला) तथा जड़ (क्रिया विहीन) होता है; उसके मुख एवं नेत्र शोथ युक्त होते हैं तथा वह वमन से पीड़ित होता

१. लवणानुरसमिति श्लेष्मदुष्टे क्षीरे दोषदूष्यसंमूर्छनप्रभावाज्ज्ञेयं, येन श्लेष्मदुष्टे लवणरसता भवति ॥
(च० सं० शा० ८/५५ की चक्र० टीका)

२. कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सपिच्छिलम् ॥ (मा० नि० ६७/७)
कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति च सुपिच्छिलम् (यो० र० क्षीरदोष चि०)

३. कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/१९)

४. तोये निमज्जति गुरुत्वात् । अतिमाधुर्याद्यपि बोध्यम् । (मा० नि० ६७/७ की मधु० व्या०)

है[1,2]। आचार्य भावमिश्र ने मुखशोथ न लिख, नेत्र के शोथ-युक्त तथा रक्त होने का वर्णन दिया है[3]। रक्ताक्ष के स्थान में वक्त्राक्ष (नेत्र एवं मुख में शोथ) वर्णन अधिक युक्तिसंगत है, क्योंकि रक्ताक्षता पित्तदुष्टि में होना अधिक सम्भाव्य है न कि कफदुष्टि में।

कफ से उत्पन्न होने वाले उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त आचार्य वाग्भट ने श्लेष्म-दूषित स्तन्य से बालशोष नामक[4] बच्चों की व्याधि तथा महर्षि काश्यप ने फक्क रोग[5] एवं चर्मदल[6] की उत्पत्ति का भी वर्णन किया है, (जिनका वर्णन नहीं किया जा रहा है।)

The milk vitiated with *kapha* is excessivly white and sweet, has *lavaṇa anurasa* (after taste), smells like *ghṛta*, oil, fat or marrow, is *picchila* (slippery), has *tantu* (thread like structures), settles down at the bottom when put in the water and produces various disorders of *kapha*.

Suśruta says that it is *ghana* (thick), *picchila* and settles down in the water.

Vāgbhaṭa I has added that it is also *vahala* (viscous or thick), *guru* (heavy) and causes over sleepiness to the child. Vāgbhaṭa II has followed Suśruta.

Kāśyapa says that the wet-nurse who uses excessively heavy, sour, salty, sweet, moisture producing articles, day-sleeping, indolence and noncongenials, her aggravated *śleṣmā*, being thrown by *vāyu*, vitiates breast-milk. Its (breast-milk's) features are—that it settles down in the water, is thick in appearance and over unctuous, is cold and slimy in touch and sweet in taste.

MādhavaNidāna, Bhāvaprakāśa and Yogaratnākara, giving almost similar description, have added that the child suffers from excessive salivation, various disorders of *kapha*, always feels sleepy, is numb or idiot, has swelling of face and eyes and suffers from vomiting. Bhāvaprakāśa has mentioned edema and redness of eyes instead of edema of face and eyes, which does not seem to be proper because redness is the characteristic of *pitta* not of *kapha*.

While describing various pediatric disorders, Vāgbhaṭas and Kāśyapa have mentioned *bālaśoṣa* and *phakka* alongwith *carmadala* (allergic dermatitis) respectively due to consumption of milk vitiated with *kapha*. Since specific pediatric disorders do not come under perview of this book, hence, are not being described here.

(ई) द्वन्द्वज स्तन्य-दुष्टि (Milk vitiated by two doṣas together or dwandwaja)

संसृष्ट लिङ्गम् संसर्गात् ·····। (अ० हृ० उ० २/४)

१. कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्रान्वितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ (मा० नि० ६८/३)

२. कफदुष्टं····· । निद्रार्दितो ·····॥ (मा० नि० सदृश) (यो० र० बालरो०)

३. श्लेष्मदुष्टं पिबन्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्राऽर्दितो जडः शूनो रक्ताक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ (भा० प्र० चि० ७१/१२०)

४. अ० सं० उ० २/४६; अ० हृ० उ० २/४४, ४५, ४६

५. धात्री श्लैष्मिकदुग्धा तु फक्कदुग्धेतिसंज्ञिता ॥ (का० सं० चि० १७/४)

६. का० सं० खि० १५/९

Scanned with CamScanner

दोषों का संसर्ग होने पर उन दोनों दोषों के मिश्र लक्षण होते हैं।

इन्हीं विचारों का प्रतिपादन चक्रपाणि[1] टीका, माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर आदि में किया गया[2,3,4] है।

When the milk is vitiated with two *doṣas*, physical characters of both the *doṣas* appear and child also manifests the symptoms of both the *doṣas*.

(ङ) सन्निपातज स्तन्यदुष्टि (Milk vitiated by all the three doṣas or sannipātaja)

सर्वैर्दुष्टैः सर्वलिङ्गम् ..... ॥ (सु० सं० नि० १०/२४)
..... त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ (अ० हृ० उ० २/४)
..... षड्गुजडामूका त्रिदोषक्षीरभोजिनः ॥५॥ (का० सं० चि० १७)

सभी दोषों से दूषित होने से उन सबके मिश्रित लक्षण होगें। अष्टाङ्गहृदय, माधवनिदान, भावप्रकाश तथा योगरत्नाकर आदि पुस्तकों में भी यही वर्णन है[5,6,7]।

महर्षि काश्यप ने त्रिदोष-दूषित क्षीर पान से बालक को पङ्गुता, जड़ता एवं मूकता के साथ उसके त्रिदोषज चर्म-दल से पीड़ित[8] होने का वर्णन दिया है।

अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय पुस्तकों में स्तन्य दोषों की चिकित्सा का वर्णन करते समय पुनः सान्निपातिक स्तन्य-दुष्टि का विस्तृत वर्णन किया है। अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि जब धात्री तीनों दोषों को प्रकुपित करने वाले आहार का सेवन करती है, तो तीनों दोष एक साथ वक्ष में आकर क्षीरवहा रसायनियों (नलिकाओं) का अनुसरण कर (उनके द्वारा स्तनों में पहुँचकर), स्तन्य को दूषित कर, मिश्रित लक्षण उत्पन्न करते हैं। जब अज्ञान, निरन्तर ध्यान न देने या (माता के) प्रमाद के कारण माता का दुग्ध बच्चा पीता है तो उसे विभिन्न लक्षणों वाला क्षीरालसक रोग हो जाता है[9]। अष्टाङ्गहृदयकार ने भी लिखा है कि त्रिदोष दूषित स्तन्य पान से क्षीरालसक रोग हो जाता है[10]। क्षीरालसक बालरोग का विषय होने के कारण यहाँ वर्णित नहीं किया जा रहा।

योगरत्नाकरकार ने भी त्रिदोषज स्तन्यपान-जनित लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि त्रिदोष दूषित स्तन्य-

१. एतत्पृथग्लक्षणयोगाच्च द्वन्द्वसन्निपातदुष्टिरप्युन्नेयः ॥ (च० सं० शा० ८/५५ की चक्रपाणि टीका)

२. द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात् ॥ (मा० नि० ६७/७; यो० र० क्षीरदो०)

३. द्वन्द्वजं तु द्विलिङ्गं स्यात् ..... ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/१९)

४. द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं ..... ॥ (मा० नि० ६८/४; भा० प्र० चि० ७१/१२१)

५. सर्वलिङ्ग त्रिदोषजम् ॥ (मा० नि० ६७/७; यो० र० क्षीरदोष)

६. त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/१९)

७. ..... सर्वजे सर्वलक्षणम् ॥ (मा० नि० ६८/४; भा० प्र० चि० ७१/१२१)

८. का० सं० खि० १५/१०

९. यदा पुनर्धात्री सन्निपातप्रकोपनान्यासेवेत तदास्यास्त्रयो मला युगपद्वक्षोऽभिप्रपन्नाः क्षीरवहा रसायनीः समनुसृत्य संकीर्णलिङ्ग स्तन्यमावहन्ति। तच्चेदविज्ञानात् सततमप्रत्यवेक्षणात् प्रमादाद्वा मातुः कुमारः पिबति ततः स तेन.....प्रादुर्भवन्ति। तं क्षीरालसकमत्ययं चाचक्षते ॥ (अ० सं० उ० २/१७)

१०. स्तन्ये त्रिदोषमलिने.....। क्षीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम् ॥ (अ० हृ० उ० २/२० से २३)

पान से बालक को आम-युक्त, जल के समान (पतला), अनेकों प्रकार के वर्ण तथा वेदनाओं से युक्त तथा आधा बँधा एवं आधा पतला मल होता है[1]।

Milk vitiated with all the *doṣas* together exhibits physical characters as well as symptomatology of all the *doṣas*.

Vāgbhaṭa I has described this entity in detail in the treatment of milk-vitiation. He writes that when wet-nurse consumes the dietetics capable of vitiating all the *doṣas*, then these aggravated *doṣas* reach chest and following milk carrying channels vitiate the milk and produce mixed symptoms. When the mother due to ignorance, absence of constant care and negligence suckles the child, then the child suffers from disease *kṣīrālasaka* having various symptomatology. Vāgbhaṭa II has also mentioned that consumption of this type of milk produces *kṣīrālasaka*. Since the disease relates to the children, hence is not being described here.

Child becomes lame, numb and dumb besides suffers from *carmadala* (allergic dermatitis) by consuming the milk vitiated with *tridoṣas* as per opinion of Kāśyapa.

Yogaratnākara has mentioned that due to consumption of milk vitiated by *tridoṣas*, the child passes stool which is mixed with *āma* (mucus), is liquid like water, has various colours, is associated with different types of pain and is semisolid or half solid and half liquid.

(ऊ) अभिघात जन्य स्तन्य दुष्टि (Milk vitiation due to abhighāta or trauma)—

.....अभिघाताच्च दुष्यति ॥ (सु० सं० नि० १०/२४)

अभिघात से भी स्तन्य दूषित होता है। महर्षि सुश्रुत ने इस अभिघात जन्य स्तन्यदुष्टि के लक्षणों का उल्लेख नहीं किया है। अभिघात का स्पष्टीकरण टीकाकार डल्हण ने पतन एवं प्रपीडन आदि शब्दों से किया है[2]। मधुकोषव्याख्याकार ने लिखा है कि अभिघात जन्य स्तन्य दुष्टि में वातज स्तन्यदुष्टि-सदृश ही लक्षण होते हैं[3]।

Milk gets vitiated due to trauma also, which is caused by fall or compression (of breasts). Madhukoṣa commentary has explained that this causes similar symptoms as seen in milk vitiatied due to *vāta*.

(ए) ग्रह दूषित स्तन्य (Milk vitiated by grahas)

.....शकुनि कटुतिक्तके। स्कन्दषष्ठीग्रही ज्ञेयौ व्यापन्ने सान्निपातिके।
पूतना स्वादुकटुके शेषाः संसृष्टदोषजाः ॥ (का० सं० सू० १९/२)

शकुनि ग्रह से आक्रान्त होने पर स्तन्य (का स्वाद) कटु एवं तिक्त होता है। यदि सान्निपातिक या सभी दोषों के मिश्र लक्षण दिखाई दें तो दुग्ध को स्कन्द एवं षष्ठी ग्रह से प्रभावित समझना चाहिए। पूतना से प्रभावित होने पर मधुर एवं कटु तथा अन्यों (ग्रहों से आक्रान्त होने) में संसृष्ट या दो दो दोषों के लक्षण होते हैं।

१. स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शकृदामं जलोपमम्। नानावर्णरुजं चार्धविबद्धमुपवेश्यते ॥ (यो० र० क्षीरदोषचि०)

२. अभिघातात् पतनपीड़नादिकात् ॥ (सु० सं० नि० १०/२४ की डल्ह० टीका)

३. अभिघातेनापि स्तन्यं दुष्टं संभवत्येव, किन्तु तस्य वातिकस्तन्यलक्षणीरेव संग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥
(मा० नि० ६७/७ की मधु० व्या०)

Scanned with CamScanner

Milk vitiated by *śakuni graha* is hot and bitter. If the milk has the characteristics of vitiation of *tridoṣa*, then it should be considered as afflicted by *skanda* and *ṣaṣṭhī graha*. Milk vitiated by *pūtanā* is sweet and hot and affliction by other *grahas* shows the features of two *doṣas*.

(ऐ) गर्भिणी स्त्री के स्तन्य-पान एवं अन्न के साथ दुग्ध-पान से विकृति (Effect of sucking milk of pregnant woman and use of milk along with cereals)—

गर्भिणी स्त्री के स्तन्य का पान करने से बालकों को पारिगर्भिक[1] या फक्क व्याधि[2] हो जाती है। अन्न के साथ दुग्ध-पान करने से भी पारिगर्भिक व्याधि के लक्षणों यथा कास आदि की[3] उत्पत्ति हो जाती है। यह बाल रोग का विषय है अतः विवेचन नहीं दिया जा रहा।

Sucking of pregnant mother's milk produces *pārigarbhika* or *phakka*, a pediatric disorder. Use of milk with cereals also produces cough etc. symptoms just like *pārigarbhika*.

विभिन्न वर्ण या रस वाले स्तन्य के पान से होने वाले विकार (Effect of consumption of milk of different colours or tastes upon the child)

(अ) कषाय एवं मधुर स्तन्यपान जन्य लक्षण

बहुविण्मूत्रता स्वादौ कषाये मूत्रविड्ग्रहः ॥ (का० सं० सू० १९/३)

मधुर रस के स्तन्य-पान से अत्यधिक मल, मूत्र प्रवृत्ति तथा कषाय रस के स्तन्य से मूत्र एवं मल का अवरोध या विबन्ध होता है।

(आ) पैत्तिक स्तन्यदुष्टि के विशिष्ट लक्षणों से सम्बन्धित व्याधियाँ

(१) ताम्रावभास स्तन्यपान जन्य लक्षण

ताम्रावभासं पयो हृदयमुद्वेष्टयति ॥ (अ० सं० उ० २/१४)

ताम्र वर्ण का स्तन्य (बालक के) हृदय (वक्षप्रदेश) का उद्वेष्टन (दबाव की प्रतीति या शूल) करता है।

(२) अम्लानुरस स्तन्यपान जन्य लक्षण

अम्लानुरसं अम्लपित्तकरम् ॥ (अ० सं० उ० २/१४)

अम्लानुरस स्तन्य (बालक को) अम्लपित्त उत्पन्न करता है।

(३) कटुकानुरस स्तन्यपान जन्य लक्षण

कटुकानुरसं छर्द्यतीसारकासश्वासकरम्॥ (अ० सं० उ० २/१४)

कटुकानुरस स्तन्य (शिशु को) वमन, अतिसार, कास एवं श्वास कारक होता है।

१. अ० सं० उ० २/६४; मा० नि० ६८/१०, ११; भा० प्र० चि० ७१/१३३, १३४; यो० र० बालरोग चि०

२. का० सं० चि० १७/११

३. अ० सं० उ० २/६६

(४) भृशोष्ण स्तन्य-पान-जन्य लक्षण

भृशोष्णामनामदाहज्वरकरं विरेचनं च ॥ (अ० सं० उ० २/१४)

अत्यधिक उष्ण दुग्ध का पान अनाम (अनामक या गुदकुट), दाह, ज्वर तथा विरेचन आदि उत्पन्न करता है।

(इ) कफज स्तन्य-दुष्टि के विभिन्न लक्षणों से बालकों में उत्पन्न विशिष्ट लक्षण

(१) लवणानुरस स्तन्यपान जन्य लक्षण

लवणानुरसं विसर्पकोठकण्डूकरम् ॥ (अ० सं० उ० २/१६)

लवणानुरस स्तन्य विसर्प, कोठ तथा कण्डू आदि व्याधियों का उत्पादक होता है।

(२) तन्तुमत् स्तन्यपान जन्य लक्षण

तन्तुमद्दौर्बल्यश्वासकासकरम् ॥ (अ० सं० उ० २/१६)

तन्तुमत् स्तन्य दौर्बल्य, श्वास एवं कास का उत्पादक होता है।

(३) गुरु स्तन्यपान जन्य लक्षण

गुरु सदनात्मकं प्रतिश्यायसिङ्घाणकक्षीरालसककरम् ॥ (अ० सं० उ० २/१६)

गुरु दुग्ध सदन (आलस्य), प्रतिश्याय, सिङ्घाणक (अत्यधिक नासामल की प्रवृत्ति) तथा क्षीरालसक व्याधि को उत्पन्न करता है।

Due to consumption of milk having different abnormal qualities, the child exhibits various symptoms given here-under in tabular from—

S.N.	Character of milk	Effect on the child
a)	**Specific taste**	
i)	*Madhura rasa* (sweet)	Excessive excretion of urine and feces.
ii)	*Kaṣāya rasa* (astringent)	Retention of urine and feces or oliguria and constipation.
b)	**Disorders produced by *pitta*—**	
i)	*Tāmrāvabhāsa* (coppery colour)	Feeling of compression, cramps or pain in cardiac region.
ii)	*Amlānurasa* (secondary or after taste is sour)	*Amlapitta* (hyperacidity)
iii)	*Kaṭukānurasa* (after taste is pungent).	Vomiting, diarrhoea, cough, dyspnoea.
iv)	*Bhṛśoṣṇa* (very hot)	*Anāma* (napkin rash), burning sensation, fever and diarrhoea.

Scanned with CamScanner

(c)	**Disorders produced by *kapha*—**	
i)	*Lavaṇānurasa* (after taste is saltish)	*Visarpa* (erysipelas), *koṭha* (skin rashes and *kaṇḍu* (itching).
ii)	*Tantumat* (having appearance like thread)	Weakness, dyspnoea and cough.
iii)	*Guru* (heavy)	Lethargy, coryza, *siṅghāṇaka* (excessive thick nasal mucus) and *kṣīrālasaka*.

Note : 'a' has been described by Kāśyapa and 'b' and 'c' by Vāgbhata I.

महर्षि चरक वर्णित अष्ट क्षीरदोष (Aṣṭa kṣīradoṣas or eight disorders of milk described by Caraka)

अष्टौ क्षीरदोषा इति वैवर्ण्यं वैगन्ध्यं वैरस्यं पैच्छिल्यं फेनसङ्घातो रौक्ष्यं गौरवमतिस्नेहश्च ॥
(च० सू० १९/३-१)

वैरस्यं फेनसंङ्घातो रौक्ष्यं चेत्यनिलात्मके । पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्ये स्नेहपैच्छिल्यगौरवम् ॥
कफाद्भवति .... ॥ (च० सं० चि० ३०/२३७)

वैवर्ण्य, वैगन्ध्य वैरस्य, पैच्छिल्य, फेनसङ्घात, रौक्ष्य, गौरव तथा अतिस्नेह ये आठ क्षीरदोष हैं।

(इन आठ क्षीर दोषों में से) वैरस्य, फेनसङ्घात तथा रौक्ष्य वातज, वैवर्ण्य तथा दौर्गन्ध्य पित्तज तथा (अति) स्नेह, पैच्छिल्य एवं गौरव कफज होते हैं।

महर्षि काश्यप ने संख्योल्लेख (८ का) तो किया[1] है, परन्तु विशिष्ट भेदों के नामों का वर्णन नहीं है।

All these eight disorders are also caused by *vāta* etc. three *doṣas*. However, this description is based on different physical characters of milk, which, inspite of having dominance of a particular *doṣa*, produce entirely different symptoms in the child.

These eight disorders are *vaivarṇya* (discolouration) and *vaigandhya* or *daurgandhya* (foul smelling) due to *pitta*; *vairasya* (tastelessness), *phenasaṅghāta* (frothy) and *raukṣya* (dryness) due to *vāta* and *atisneha* (excessive unctuous), *paicchilya* (slimy) and *gaurava* (heaviness) due to *kapha*.

Kāśyapa has mentioned only number as eight without any further description.

(१) वैरस्य स्तन्यदुष्टि के निदान तथा पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of vairasya or tastelessness or insipidity of milk)

..... रुक्षाद्यैरनिलः स्वैः प्रकोपणैः । क्रुद्धः क्षीराशयं प्राप्य रसं स्तन्यस्य दूषयेत् ॥
विरसं वातसंसृष्टं कृशीभवति तत् पिबन् । न चास्य स्वदते क्षीरं कृच्छ्रेण च विवर्धते ॥
(च० सं० चि० ३०/२३८, २३९)

रुक्ष आदि वात-प्रकोपक (आहार-विहार) के सेवन से कुपित हुआ वायु क्षीराशय (स्तनों) को प्राप्त होकर स्तन्य के रस को दूषित कर देता है (अर्थात् उसके सामान्य मधुर रस को वायु विकृत कर देती है)।

१. .....पयोदोषा.....अष्टौ.....। (का० सं० सू० २७/५५, ५६)

वात के संसर्ग से उत्पन्न विरस दुग्ध को पीने वाला बालक कृश हो जाता है, इस दुग्ध में कोई स्वाद नहीं आता तथा (बालक) बहुत ही कठिनता से बढ़ता है।

Dut to use of *rukṣa* etc. dietetics and mode of life capable of vitiating *vāta*, the aggravated *vāta* reaches breasts and vitiates the taste of milk or in other words normal sweet taste of milk is influenced and changed.

The child sucking this *virasa* (tasteless) milk, becomes emaciated, does not feel any taste in the milk and attains growth and development with great difficulty.

(२) फेनसङ्घात स्तन्यदुष्टि के निदान तथा पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of phenasaṅghāta or frothy milk)

तथैव वायुः कुपितः स्तन्यमन्तर्विलोडयन् । करोति फेनसङ्घातं तत्तु कृच्छ्रात् प्रवर्तते ॥
तेन क्षामस्वरो बालो बद्धविण्मूत्रमारुतः । वातिकं शीर्षरोगं वा पीनसं वाऽधिगच्छति ॥
(च० सं० चि० ३०/२४०, २४१)

उसी प्रकार से (रुक्षादि सेवन से) कुपित वायु (स्तनों में पहुँच कर) अन्तर्स्थित स्तन्य का विलोडन (मन्थन) कर देती है। जिससे फेनसङ्घात अर्थात् फेन की उत्पत्ति हो जाती है। यह स्तन्य बहुत ही कठिनता से प्रवर्तित होता है।

इसके पान करने से बालक क्षाम-स्वर (दुर्बल या थके हुए स्वर वाला) मल, मूत्र एवं वायु के विबन्ध या अवरोध से पीड़ित तथा वातिक शीर्षरोग एवं पीनस से आक्रान्त हो जाता है।

The *vāyu*, vitiated due to use of *rukṣa* etc. articles, reaches breasts and churns the milk there. Due to this churning froth is produced. This milk is ejected with great difficulty.

The child sucking this milk has weak cry, retention or suppression of feces, urine and flatus, suffers from head-disorders of *vāta* and *pīnasa* (chronic rhinitis)

३) रुक्ष स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of rukṣa or dry or non-unctuous milk)

पूर्ववत् कुपितः स्तन्ये स्नेहं शोषयतेऽनिलः । रूक्षं तत् पिबतो रौक्ष्याद्बलहासः प्रजायते ॥
(च० सं० चि० ३०/२४२)

उपर्युक्त कारणों से कुपित वायु स्तन्य के स्नेहांश का शोषण कर देती है, जिससे (स्तन्य में) रुक्षता हो जाती है। इसे पान करने वाले बालक का बल-ह्रास हो जाता है।

The *vāyu*, vitiated due to causes mentioned above, reaches breasts and desiccates the fatty substances of milk, so the milk becomes non-unctuous. The child consuming this milk suffers from loss of energy.

(४) वैवर्ण्य स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of vaivarṇya or discolouration of milk)

पित्तमुष्णादिभिः क्रुद्धं स्तन्याशयमभिप्लुतम् । करोति स्तन्यवैवर्ण्यं नीलपीतासितादिकम् ॥
विवर्णगात्रः स्विन्नः स्यात्तृष्णालुर्भिन्नविट्शिशुः । नित्यमुष्णशरीरश्च नाभिनन्दति तं स्तनम् ॥
(च० सं० चि० ३०/२४३, २४४)

Scanned with CamScanner

उष्णादि (पदार्थों के सेवन या विहार) से कुपित पित्त, स्तन्याशय (स्तनों) पहुँच कर स्तन्य में नील, पीत या असित (काला) आदि वर्णों को उत्पन्न कर देता है।

पान करने वाले शिशु का शरीर विवर्ण हो जाता है। अत्यधिक स्वेद आता है, वह तृष्णालु होता है, उसे विड्भेद हो जाता है, उसका शरीर हमेशा ही उष्ण रहता है तथा उसे स्तन्य-पान करने की इच्छा नहीं होती।

The *pitta*, aggravated due to use of hot etc. articles, reaches the breasts and produces blue, yellow and black etc. colours in the milk.

The child sucking this milk suffers from discolouration of body, excessive perspiration, thirst and diarrhoea. His body is always very hot and has no desire for sucking.

(५) दौर्गन्ध्य स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of daurgandhya or foul smelling milk)

पूर्ववत् कुपिते पित्ते दौर्गन्ध्यं क्षीरमृच्छति। पाण्ड्वामयस्तत्पिवतः कामला च भवेच्छिशोः॥
(च० सं० चि० ३०/२४५)

उपर्युक्त कारणों से ही कुपित हुआ पित्त दुग्ध में दुर्गन्ध उत्पन्न कर देता है।

इसके पीने से शिशु को पाण्डुरोग तथा कामला हो जाता है।

The *pitta* vitiated due to above mentioned causes produces foul smell in the milk.

The child sucking this milk suffers from *pāṇḍu* (anemia) and *kāmalā* (jaundice).

(६) अतिस्निग्ध स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of atisnigdha or excessive unctuous milk)

क्रुद्धो गुर्वादिभिः श्लेष्मा क्षीराशयगतः स्त्रियाः। स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमतिस्निग्धं करोति तु॥
छर्दनः कुन्थनस्तेन लालालुर्जायते शिशुः। नित्योपदिग्धैः स्रोतोभिर्निद्राक्लमसमन्वितः॥
श्वासकासपरीतस्तु प्रसेकतमकान्वितः। (च० सं० चि० ३०/२४६, २४७, २४८)

गुरु आदि (आहार के सेवन) से क्रुद्ध श्लेष्मा स्त्रियों के क्षीराशय (स्तनों) में जाकर, वह स्नेहान्वित (स्वयं स्नेह-गुण युक्त) होने के कारण दुग्ध को अतिस्निग्ध कर देता है।

(इस दुग्ध के पान से) शिशु को वमन, कुन्थन, अत्यधिक लालास्राव, स्रोतों (नाक, मुख आदि) में उपदिग्धता (कफ से आच्छादित होने की अनुभूति) के कारण निद्रा, क्लम, श्वास, कास, प्रसेक तथा तम आदि (व्याधियाँ) उत्पन्न हो जाती हैं।

The *śleṣmā* getting aggravated due to use of *guru* (heavy) etc. articles, reaches breasts. This *kapha* by its unctuous property makes the milk excessively unctuous.

The child sucking this milk suffers from vomiting, tenesmus, excessive salivation; as his *srotasas* (channels) are constantly smeared or covered thus suffers from excessive sleep, has tiredness, dyspnoea, cough, excessive expectoration or discharges and darkness.

(७) पिच्छिल स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of picchila or slimy milk)

अभिभूय कफः स्तन्यं पिच्छिलं कुरुते यदा। लालालुः शूनवक्त्राक्षिर्जडः स्यात्तत् पिबच्छिशुः॥
(च० सं० चि० ३०/२४८ व २४९)

(उपर्युक्त कारणों से कुपित) कफ स्तन्य को अभिभूत करके उसे (अति) पिच्छिल कर देता है।

पान करने से शिशु को अत्यधिक लालास्राव, मुख एवं आँखों में शोथ तथा जड़ता आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

The *kapha* vitiated due to above mentioned causes overpowers the milk and makes it excessive *picchila* (slimy).

The child consuming this milk suffers from excessive salivation, edema of eyes and face and dullness.

(८) गुरु स्तन्यदुष्टि के निदान एवं पानोत्पन्न व्याधियाँ (Etiopathogenesis and clinical manifestations of guru or heavy milk)

कफः क्षीराशयगतो गुरुत्वात् क्षीरगौरवम्॥
करोति गुरु तत् पीत्वा बालो हृद्रोगमृच्छति। अन्यांश्च विविधान् रोगान्कुर्यात्क्षीरसमाश्रितान्॥
(च० सं० चि० ३०/२४९, २५०)

क्षीराशय में पहुँचा हुआ कफ अपनी गुरुता के कारण दुग्ध में भी गुरुता उत्पन्न कर देता है।

इसके पान करने से बालक को हृद्रोग हो जाते हैं तथा यह दुग्ध से होने वाले अन्य भी अनेकों रोगों को उत्पन्न करता है।

The aggravated *kapha* reaching the breasts makes the milk *guru* (heavy) due to its own heaviness.

The child sucking this milk suffers from *hṛdroga* (cardiac disorders) as well as other disorders of milk.

हारीतसंहिता वर्णित पञ्च क्षीरदोष (Five milk disorders described by Hārīta)

पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता बुधैः। घनक्षीरोष्णाक्षीराम्लक्षीरा चैव तथा परा॥
अल्पक्षीरा क्षारक्षीरा मृदुक्षीरा तथा परा। मृदुक्षीराभवेत्सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः॥
(हा० सं० तृ० स्था० ५४/१, २)

विद्वानों ने स्त्रियों के पाँच ही क्षीरदोष कहे हैं। स्त्रियाँ घनक्षीरा, उष्णक्षीरा, अम्लक्षीरा, अल्पक्षीरा, क्षारक्षीरा तथा मृदुक्षीरा होती हैं। इनमें से मृदु क्षीर वाली स्त्री (बालक के लिए) सुखकारक होती है, अन्य पाँच प्रकार के क्षीर दोषोत्पादक होते हैं।

(१) घनदोष युक्त क्षीरपान जन्य व्याधियाँ

घनाध्माननिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः। उत्फुल्लकुक्षितैवं हि घनक्षीरस्य सेवनात्॥
(हा० सं० तृ० ५४/३)

घन विकार-युक्त क्षीर के सेवन से अत्यधिक आध्मान, निरोध (मल, मूत्र एवं वायु का निरोध), श्वास, कास आदि होने की सम्भावना रहती है तथा कुक्षि (पेट) फूल जाती है।

(२) अल्पदोष युक्त क्षीरपान जन्य व्याधियाँ

अल्पसत्वः कृशो दीनः श्वासातीसार पीड़ितः। अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्धतवाक्सुतः॥
(हा० सं० तृ० ५४/४)

Scanned with CamScanner

अल्पदोष युक्त (अल्प मात्रा के) दुग्ध के सेवन से बालक के कृश, दीन (दुखी), श्वास एवं अतिसार से पीड़ित होने की सम्भावना रहती है तथा उसकी वाणी का नाश हो जाता है।

(३) उष्णदोष युक्त स्तन्यपान जन्य व्याधियाँ

ज्वरः शोषस्तथाल्पत्वमुष्णक्षीरेण बालके। तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातीसार एव च॥

(हा० सं० तृ० ५४/५)

उष्णदोष से दूषित क्षीर के पान से बालक को ज्वर, शोष तथा अल्पत्व (शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि में अल्पता) हो जाते हैं। उसी प्रकार उष्ण क्षीर से ज्वरातिसार भी हो जाता है।

(४) क्षारदोष युक्त स्तन्यपान जन्य व्याधियाँ

चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावस्राविता। संक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके॥

(हा० सं० तृ० ५४/७)

क्षारदोष युक्त दुग्ध के सेवन से बालक को चक्षुरोग, कण्डू, क्षत, श्लेष्मा का स्राव (मुख एवं नासिका से कफ का निकलना) तथा नासिका एवं मुख का क्लेद-युक्त होना आदि व्याधियाँ हो जाती हैं।

(५) अम्ल दुग्ध के सेवन से उत्पन्न होने वाले लक्षणों का कोई वर्णन नहीं है।

उष्णक्षीर के वर्णन में एक ही श्लोक में "उष्णक्षीरेण" शब्द दो बार आया है। इतनी पुनरावृत्ति अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती, संख्या-गणना में उष्ण के बाद अम्ल का उल्लेख है अतः यदि "चोष्णक्षीरेण" के स्थान में "चाम्लक्षीरेण" पाठ कर दें तो पुनरावृत्ति दोष समाप्त हो जायगा तथा अम्लदोष युक्त क्षीरपान से ज्वरातिसार की उत्पत्ति भी मानी जा सकेगी। वैसे रस के आधार पर, अम्लपित्त, पाण्डु या कामला की भी उत्पत्ति मानी जा सकती है।

The wise persons have enumerated only five disorders of milk of a woman. The woman possesses *ghana* (thick), *uṣṇa* (hot), *amla* (sour), *alpa* (scanty), *kṣāra* (alkaline) or *mṛdu* (soft) milk. Only those woman having *mṛdu* milk are pleasurable/felicific/comfortable to the child. All other five types of milk cause diseases and produce following symptoms.

S. No.	**Abnormality of milk**	**Diseases produced to the sucking child.**
1)	*Ghana* (thick)	May have excessive flatulence, suppression of feces, urine and flatus, dyspnoea, cough and gets distension of abdomen.
2)	*Alpa* (scanty)	May suffer from emaciation, misery, dyspnoea, diarrhoea and becomes aphonic.
3)	*Uṣṇa* (hot)	Fever, emaciation, retardation of growth and development and also diarrhoea with fever.
4)	*Kṣāra* (alkaline)	Eye disorders, itching, ulcers, excessive mucoid discharges from mouth and nose and excessive humidity of nose and mouth.
5)	*Amla* (sour or acidic)	Not described.

In the description of *uṣṇakṣīra* the word *'uṣṇakṣīreṇa'* has been mentioned twice in

the same verse, this type of repetition is not seen else where. In enumeration of disorders *'amla'* is mentioned just after *'uṣṇa'*. If *'uṣṇa'* word of second line is replaced with *'amla'*, then the question of repetition will not arise and reference of clinical manifestation i.e. fever with diarrhoea due to use of *amla* (sour) milk can also be seen. On the basis of particular *rasa*, hyperacidity, anemia and jaundice can be emagined to be developing by use of sour milk.

विमर्श (Comments)

संहिताओं में वर्णित विभिन्न रसों एवं वर्णों का प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर निश्चित स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है, फिर भी बालक में होने वाले प्रभावों के आधार पर ऐसा मान सकते हैं कि समस्त वातजन्य स्तन्य-दुष्टियाँ दुग्ध में स्थित पोषक तत्वों के अभाव को प्रदर्शित करती हैं, जिसके पान से बालक में कृशता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। श्लेष्म-जन्य स्तन्य-दुष्टि में सम्भवतः दुग्ध में अपेक्षाकृत वसा की मात्रा अधिक होती है, या कुछ अपचनीय द्रव्य उपस्थित रहते हैं जिसके पान से बालक को वमन तथा अन्य श्लेष्म-विकार हो जाते हैं। यह भी सम्भव है कि इस दुग्ध से शिशु को पतिजनात्मक क्रिया (एलर्जिक मैनिफ़ेस्टेशन) होती हो, जिसके कारण मुखशोफ आदि व्याधियाँ एवं वमन हो जाता हो। पित्तज स्तन्य-दुष्टि, स्तन्य-स्थित उपसर्ग, शोथ या विद्रधि के कारण रक्त या पूय मिश्रित होने से उत्पन्न प्रतीत होती है। द्वन्द्वज एवं सान्निपातिक में दोष-प्राबल्य के आधार पर उपर्युक्त का सम्मिश्रण होगा। काश्यपसंहिता वर्णित ग्रह-जन्य स्तन्यदुष्टि का स्पष्टीकरण विषय के अतिसंक्षिप्त वर्णन के कारण कठिन है। महर्षि हारीत वर्णित पञ्चक्षीर दोषों का अन्य संहिताओं में वर्णित दोषिक स्तन्यदुष्टि के अन्दर ही समावेश हो जाता है यथा अल्पदोष का वातिक, घन का कफज तथा उष्ण एवं अम्ल का पैत्तिक में अन्तर्भाव हो जाता है। यद्यपि क्षार गुण वात का होगा कफ का नहीं, परन्तु उत्पन्न व्याधियाँ कफ के ही समकक्ष लगती है अतः इसे वातकफज मान सकते हैं।

On the basis of practical observations, it is not possible to offer any probable explanation for various colours and tastes of milk described in *āyurvedika* classics. However, considering only clinical manifestations produced in the child, it can be presumed that probably all the milk disorders produced by *vāta* reflect some deficiency of nutrients in the milk, naturally the child consuming this milk suffers from emaciation etc. disorders produced due to under-nourishment. Probably in all the milk disorders caused by *kapha* the milk contains relatively more amount of fat or any such thing which child can not digest, thus vomits the milk or else the child is allergic to this milk, thus, either ejects it or suffers from edema of face etc. disorders. In milk disorders caused by *pitta*, probably the milk carries bacteria or blood or pus from inflammation or abscess of breast. This infection produces fever etc. in the child. Since the description of Kāśyapa Saṃhitā about milk disorder caused by *grahas* is very short, hence probable congruence can not be established.

On the basis of physical character of milk explicit by their names and clinical manifestation produced, all the five disorders described by Hārīta can be included under the disorders caused by *doṣas*, such as *alpa doṣa* may be considered under *vātika; ghana doṣas* under *kaphaja; uṣṇa* and *amla doṣas* under *pittaja* disorders. Though the *kṣāra* is a property of *vāta*, however, the symptoms of the child show the features of *kapha* thus it may be considered as *vātakaphaja*.

स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of stanyaduṣṭi or vitiation of milk)—

यद्यपि स्तन्य-दुष्टि धात्री की व्याधि है, पर उससे आक्रांत या पीड़ित होता है कुमार। क्योंकि स्तन के द्वारा दोष

Scanned with CamScanner

बालक में पहुँच कर बालकों को मुखपाक एवं धात्री को ज्वर इत्यादि कर देते हैं।[1] अतः चिकित्सा करते समय धात्री के साथ ही बालक की भी चिकित्सा करनी पड़ती है। बालक को औषधि भी चूचुक द्वारा ही बलपूर्वक दी जाती है[1]। बालकों की चिकित्सा बालरोग का विषय होने के कारण यहाँ वर्णित नहीं की जा रही, फिर भी कुछ धात्री-चिकित्सा वर्णन के ही बीच में आचार्यों ने कहीं कहीं बालकों की भी थोड़ी बहुत चिकित्सा या चिकित्सा सिद्धान्तों का उल्लेख कर दिया है। संहितान्तर्गत धात्री-चिकित्सा-वर्णन के संदर्भों को पूर्णरूपेण उद्धृत करने के उद्देश्य से एकाध बालचिकित्सा का भी वर्णन कर दिया गया है। विस्तृत बालचिकित्सा का नहीं।

Though vitiation of milk occurs in the body of mother/wet nurse, yet the abnormalities caused by this are produced in the child, because the *doṣas* reach the child from breast and produce stomatitis to the child and fever to the wet-nurse, naturally while managing the milk disorders, mother/wet-nurse and child both are to be treated simultaneously. Medicine to the child is mainly given through teats of the mother. Treatment of children comes under the jurisdiction of pediatrician, naturally that is not being described here. However, certain principles of treatment or recipes prescribed for children are almost inseparable from the description of treatment of wetnurse. In order to recapitulate complete management of wet nurse, few such references for children are also included. Detailed description of treatment for the child is not being given here.

चिकित्सा सिद्धान्त (Principles of treatment)

तेषां तु त्रयाणामपि क्षीरदोषाणां प्रतिविशेषमभिसमीक्ष्य यथास्वं यथादोषं च वमनविरेचनास्थापनानुवासनानि विभज्य कृतानि प्रशमनाय भवन्ति ॥ (च० सं० शा० ८/५६)

तत्रादौ स्तन्यशुद्ध्यर्थे धात्रीं स्नेहोपपादिताम् ॥ २५१॥
संस्वेद्य विधिवद्वैद्यो वमनेनोपपादयेत् ॥ २५२॥
सम्यग्वान्तां यथान्यायं कृतसंसर्जनां ततः ॥ २५३॥
दोषकालबलापेक्षी स्नेहयित्वा विरेचयेत् ॥ २५४॥
सम्यग्विरिक्तां मतिमान् कृसंसर्जनां पुनः।
ततो दोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ २५६॥ (च० सं० चि० ३०)

स्तन्ये गते विकृतिमाशु भिषक् तु धात्रीं; पीतां घृतं परिणतेऽहनि वामयेत् तु ॥ ४२॥
निम्बोदकेन मधुमागधिकायुतेन वान्तागतेऽहनि च मुद्गरसाशना स्यात्।
एवं त्र्यहं चतुरहं षडहं वमेद् वा सर्पिः पिबेत् त्रिफलया सह संयुतं वा ॥ ४३॥
सामान्यमेतदुपदिष्टमतो विशेषाद्, दोषान् पयोनपतितान् शमयेद् यथास्वम् ॥ ४५॥
(सु० सं० चि० १७/४२, ४३, ४५)

अथ यथामयं यथादोषं च धात्र्याः शमनशोधनानि प्रयुञ्जीत ॥ (अ० सं० उ० २/१०)
अथ धात्र्याः क्रियां कुर्याद्यथादोषं यथामयम् ॥ (अ० हृ० उ० २/९)
कषायपानैर्वमनैर्विरेकैः पथ्यभोजनैः। वाजीकरणसिद्धैश्च स्नेहैः क्षीरं विशुध्यति ॥ ५॥
(का० सं० सू० १९)

१. स्तनमौ ·····। ····· रार्यते ॥ १३॥
मुखपाकं च बालानां कुर्याद्धात्र्या ज्वरं तथा। तस्माद्दत्वादिवाचूष्य दद्यादेवौषधं शिशोः ॥ १४ ॥ (का० सं० सि० ३)

उन सभी तीनों प्रकार के स्तन्य दोषों में, उनकी प्रतिविशेषता को देखकर (अर्थात् प्रत्येक वातादि दोष का कोष्ठाश्रयित्व, उदीर्णत्व, शोधन के लिए उपयुक्तता आदि विशेषताओं को देखकर[1]), यथास्व (अर्थात् कफ के लिए वमन, पित्त के लिए विरेचन तथा वात के लिए आस्थापन एवं अनुवासन वस्ति[2]) एवं यथादोष (अर्थात् प्रवृद्ध दोष में अत्यधिक मात्रा का संशोधन तथा अल्प कुपित दोष में अल्प शोधन[1]) वमन, विरेचन, आस्थापन एवं अनुवासन आदि का विभाजन कर प्रयोग करने से शमन होता है, अर्थात् वे स्तन्य-दोष ठीक हो जाते हैं। टीकाकार चक्रपाणि के अनुसार धात्री की प्रकृति को भी देखकर वमनादि का अधिक या कम प्रयोग करना चाहिए[1]।

महर्षि चरक पुनः लिखते हैं कि स्तन्य की शुद्धि के लिए स्नेह प्रयोग की हुई धात्री का स्वेदन करके, वमन करवावे। भलीभाँति वमन हो गई हुई (धात्री को) नियम पूर्वक संसर्जनक्रम करके, स्नेहन कराकर, दोष, काल एवं बल का ध्यान रखते हुए विरेचन करावे। बुद्धिमान् वैद्य भलीभाँति विरेचन हो जाने के पश्चात् पुनः संसर्जनक्रम करके, बाद में अवशेष दोषों के (शोधनादि से पूर्णरूपेण बाहर न निकले हुए दोषों के) नाश (शमन) के लिए (शामक) अन्न-पान का प्रयोग करावे।

महर्षि सुश्रुत ने भी लिखा है कि स्तन्य में विकृति हो जाने पर भिषक् घृत पी हुई स्त्री को सायंकाल मधु एवं मागधिका मिश्रित निम्ब-क्वाथ पिलाकर वमन करावे। वमन कराने वाले दिन के बीत जाने पर मुद्गरस आदि का भोजन दे। इस प्रकार तीन, चार अथवा ६ दिन वमन तथा त्रिफला-युक्त घृत का पान कराना चाहिए, यह स्तन्य-दोषों की सामान्य चिकित्सा है। स्तन्य-विकारोत्पादक दोषों के प्रकोप के आधार पर उनकी यथास्व (कफ के लिए वमन, पित्त के लिए विरेचन, वात के लिए बस्ति) आदि विशिष्ट चिकित्सा करनी चाहिए। टीकाकार डल्हण ने कफघ्न द्रव्यों से संस्कृत या शमन द्रव्यों से साधित घृत पी हुई धात्री को 'परिणतेऽहनि' से सायंकाल अर्थ करके इसी काल में वमन कराने का निर्देश दिया है, तथा सामान्यतया स्नेहपान के लिए वर्णित स्वर्ण सदृश पीले या लोहित, प्रतप्त, सूर्यकाल (प्रातःकाल) का धात्री के लिए अपवाद बताया है अर्थात् यह काल धात्री के लिए उचित नहीं है। जेज्जट आदि ने 'परिणत' शब्द से 'स्नेहफल की निष्पन्नता' अर्थ करके, स्नेह के प्रयोग से स्निग्ध स्त्री को उसी दिन वमन कराने का वर्णन दिया है। परन्तु 'गयी', का विचार है कि यह गलत है क्योंकि सामान्य वाक्य से ही स्निग्ध को वमन कराना वांछित है (अर्थात् गयी, डल्हण के स्पष्टीकरण को ही उचित मानते हैं)। स्नेहन के पश्चात् स्वेदन कर के वमन देना चाहिए। वमन वाले दिन ही भोजन नहीं देना चाहिए, उसके अगले दिन देना चाहिए। पहिले वमन से कफ का पूरा निस्सरण न होने से अशुद्ध देह वाली स्त्री को स्नेह एवं स्वेद का बीच बीच में प्रयोग करके तीन, चार या ६ दिन या जब तक देह शुद्ध न हो जाय, वमन कराना चाहिये। देह के शुद्ध हो जाने पर वमन का परित्याग कर देना चाहिए, अन्यथा उस स्त्री को ग्लानि तथा स्तन्यक्षय हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध देह धात्री को वात एवं पित्त के अनुबन्ध में (अर्थात् इन दोषों का अनुबन्ध दूर करने के लिए) स्नेहपाक परिभाषा के अनुसार त्रिफला से सिद्ध घृत का पान कराए। यह घृतपान उस धात्री को व्यवस्थित अर्थात् स्वस्थ करता है[2]।

अष्टाङ्गसंग्रहकार ने लिखा है कि व्याधि एवं दोष के अनुसार धात्री को शमन एवं शोधन चिकित्सा देनी चाहिए।

१. प्रतिविशेषमभिसमीक्ष्येति प्रति प्रति वातादीनां कोष्ठाश्रयित्वोदीर्णत्वादिशोधनानुगुणं विशेषमभिवीक्ष्य। यथास्वमित्यनेन श्लेष्मणि वमनं, पित्ते विरेचनं, वायावास्थापनानुवासने, इति आत्मीयमात्मीयं संशोधनं दर्शयति। यथादोषमित्यनेन प्रवृद्धे दोषेऽतिमात्रं संशोधनं, स्तोके स्तोकमात्रं दर्शयति। ····· । 'प्रकृतिविशेषम्' इति यदा पाठस्तदा प्रकृतिविशेषमपि धात्र्या अवेक्ष्य वमनादीनां बहुत्वाल्पत्वविशेषः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ (च० सं० शा० ८/५६ की चक्र० टीका)

२. ·····परिणतेऽहनि सायंकाले, पीतां घृतं संशमनमेव घृतं पीतवतीम्, एतच्च प्रतप्तकनकनिकरपीतलोहिते सवितरि स्नेहपानकल्पस्यापवादः। सामान्योक्तमपि कफघ्नद्रव्यसंस्कृतं घृतम्। जेज्जटादयस्तु परिणते निष्पन्ने स्नेहफले सति स्निग्धामित्यर्थः, अहनि तस्मिन्नेव दिवसे। तन्नेच्छति गयी, सामान्यवाक्येनैव स्निग्धाय वमनस्य विहितत्वात्।·····स्विन्नां निम्बोदकेन निम्बक्वाथेन वामयेत्। वान्तागतेऽहनि च मुद्गरसाशना स्यात् न तु वमनदिवसे भोजयेदित्यर्थः। तत्र प्रथमवमने कफस्य निःशेषमनपहतत्वादशुद्धदेहां स्नेहस्वेदावन्तरान्तरा सेवयित्वा षडहं वा चतुरहं त्र्यहं वा यावत् विशुद्धिरिति, शुद्धदेहायास्तु पुनर्वमनं त्याज्यम्, अन्यथा ग्लानिः स्तन्यक्षयश्च। तस्मात् शुद्धदेहाया वातपित्तानुबन्धे स्नेहपाकपरिभाषया त्रिफलासिद्धं सर्पिः पिबेदेवेति वा शब्दात् व्यवस्थितार्थात् लभ्यते ॥ (सु० सं० चि० १७/४२,४३ की डल्ह० टीका)

Scanned with CamScanner

अष्टाङ्गहृदयकार ने भी व्याधि एवं दोषानुसार ही कर्म करने का निर्देश दिया है।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि कषाय-पान, वमन, विरेचन, पथ्य-भोजन तथा वाजीकरण द्रव्यों से सिद्ध स्नेह के प्रयोग से स्तन्य का शोधन होता है।

स्तन्यदोष वमन-योग्य कहे गए हैं[1] अर्थात् इनमें वमन देना चाहिए।

While managing the vitiation of milk caused by either of the *doṣa*, specific attention should be paid to the peculiarity of *doṣa* i.e its situation in *koṣṭha* (viscera) or *śākhā* (extremities), the intensity of vitiation and also suitability for use of purifying measures. According to the amount of vitiation of *doṣa* (in excessive aggravation strong or drastic purification and in slight aggravation mild purification) specific purifying measures i.e. emesis in *kapha*, purgation in *pitta* and *āsthāpana* and *anuvāsana basti* (evacuative and nutritive enemas) in vitiation of *vāta* should be given. Besides *doṣas*, the *prakṛti* (nature) of wet-nurse should also be taken into account during use of purifying measures. With the use of these specific purifying measures, the aggravated *doṣas* are suppressed and vitiation of milk is corrected.

The wet-nurse having already been given *snehana* (use of oleaginous substances) should be given sudation followed by emesis. After proper emesis, methodical *saṃsarjana-krama* (use of diet in gradual manner i.e. first *peyā* or liquid then *maṇḍa* or scum of boiled rice then *vilepī* or rice-gruel etc.) should be done and then, after readministering *snehana*, the *virecana* (purgative drugs) should be given, giving due consideration to vitiated *doṣa*, *kāla* (period or time of disease) and *bala* (strength of the woman). After proper purgation and reapplication of *saṃsarjana krama*, the wise physician should prescribe such diet which can suppress the *doṣa* left-over after purification.

Suśruta says that to the wet-nurse after giving *ghṛta*, emesis should be induced in the evening by oral administration of decoction of *nimba* mixed with honey and *māgadhikā*. Next day soup of *mudga* should be given in diet. In this way emesis should be induced for three, four or six days. This should follow use of *ghṛta* medicated with *triphalā*. This is general treatment. Specific treatment should be given on the basis of *doṣas*. Ḍalhaṇa has clarified that the *ghṛta* to be given before emesis should be prepared with the drugs capable of suppressing either the *kapha* or *śamana* drugs (drugs having properties of suppressing the *doṣas*). Usual period i.e. in the morning when sun is red or golden, normally suitable for administration of *ghṛta*, is exception for wet nurse or is not suitable for her. Naturally, it is to be given in the noon. After oleation, the sudation should also be given before emesis. On the day of emesis diet should not be given. Emesis preceded with oleation and sudation should be continued for three, four or six days till the *kapha* is completely expelled and body is fully purified. Once the body is purified, the emesis should be stopped, otherwise

१. अ) शेषास्तु वाम्याः,.....दुष्टस्तन्यादयः .....। (च० सं० सि० २/१०)
आ) वाम्यास्तु.....स्तन्यदोष .....। (सु० सं० चि० ३३/१८)
इ) तत्र वमनसाध्य.....स्तन्यदोषादयो .....। (अ० सं० सू० २७/६)
ई) .....विशेषेण तु वामयेत् ॥ ..... स्तन्यदोषोर्ध्वरोगिणः ॥ (अ० ह० सू० १८/१,३)
ए) ..... स्तन्यरोगे ..... वमनं कारयेद्भिषक् ॥ (शा० सं० उ० ख० ३/३, ५ एवं भा० प्र० पूर्व० ५/४,६)

the woman will become languid and quantity of her milk will also decrease. *Triphalāghṛta* used after this emesis supresses associated *vāta* and *pitta*, besides, this also makes the wet-nurse healthy.

Both the Vāgbhaṭas have also advised purification according to vitiation of *doṣa*.

Kāśyapa opines that milk is purified by use of decoction, emesis, purgation, congenial diet and *ghṛta* medicated with *vājikaraṇa* drugs.

धात्री वमनार्थ औषधि (Emetics to be prescribed for wet-nurse)

वचाप्रियङ्गुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः ॥ २५२॥
कल्कैर्निम्बपटोलानां क्वाथैः सलवणैर्वमेत् ॥ २५३॥ (च० सं० चि० ३०)
निम्बोदकेन मधुमागधिकायुतेन.....। (सु० सं० चि० १७/४३)

वचा, प्रियङ्गु, यष्ट्याह्व, फल, वत्सक एवं सर्षप के कल्क को निम्ब (त्वक्) एवं पटोल (पत्र) के क्वाथ के साथ लवण (सैन्धव) मिलाकर वमनार्थ देना चाहिए।

महर्षि सुश्रुत ने मधु एवं मागधिका युक्त निम्ब-क्वाथ का वमनार्थ प्रयोग बताया है।

i) Paste of *vacā, priyaṅgu, yaṣṭyāhwa, phala, vatsaka* and *sarṣapa* mixed with the decoction of stem bark of *nimba*, leaves of *paṭola* and rock salt should be given to induce emesis.

ii) Decoction of stem bark of *nimba* mixed with honey and *māgadhikā* can be used for emesis.

धात्री विरेचनार्थ औषधि (Purgatives for wetnurse)

त्रिवृतामभयां वाऽपि त्रिफलारससंयुताम् ॥ २५४॥
पाययेन्मधुसंयुक्तामभयां वाऽपि केवलाम्।
(पाययेन्मूत्रसंयुक्तां विरेकार्थं च शास्त्रवित्) ॥ २५५॥ (च० सं० चि० ३०)

त्रिवृत अथवा अभया को त्रिफला रस (त्रिफला-क्वाथ) के साथ अथवा केवल अभया (चूर्ण) को मधु के साथ दें। शास्त्रज्ञाता विद्वान अभया के चूर्ण को मूत्र (गोमूत्र) में घोलकर पिलावे।

i) Powdered *trivṛta* or *abhayā* with decoction of *triphalā*.

ii) Powdered *abhayā* with honey.

iii) Powdered *abhayā* mixed with cow urine.

पथ्य (Congenial diet to the wet-nurse during treatment of vitiation of milk)

पानाशनविधिस्तु दुष्टक्षीराया यवगोधूमशालिषष्टिकमुद्गहरेणुककुलत्थसुरासौवीरमैरेयमेदकलशुनकरञ्जप्रायः स्यात्। क्षीरदोषविशेषांश्चावेक्ष्य तत्तद्विधानं कार्यं स्यात्। (च० सं० शा० ८/५६)

शालयः षष्टिका वा स्युः श्यामाका भोजने हिताः। प्रियङ्गवः कोरदूषा यवा वेणुयवास्तथा ॥
वंशवेत्रकलायाश्च शाकार्थे स्नेहसंस्कृताः। मुद्गान् मसूरान् यूषार्थे कुलत्थांश्च प्रकल्पयेत् ॥
निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैः शृतान्। स व्योषसैन्धवान् यूषन्दापयेत्तन्यशोधनान् ॥
शशान् कपिञ्जलानेमान् संस्कृतांश्च प्रदापयेत् ॥ (च० सं० चि० ३०/२५७ से २६०)
मसूराः षष्टिका मुद्गाः कुलत्थाः शालयो घृतम्। गव्यमाजं पयः काले लवणं चाप्यनौद्भिदम् ॥१६॥

Scanned with CamScanner

आहारविधिरुद्दिष्टः स्तन्यशोधनकालिकः ॥ १७ ॥ (का० सं० सू० १९)

दुष्ट दुग्ध वाली स्त्री को पानाशन के लिए यव, गेहूँ, शालि एवं षष्टिक (चावल), मुद्ग, हरेणुक, कुलत्थ, सुरा, सौवीरक, मैरेय एवं मेदक (विभिन्न प्रकार की सुरायें), लशुन और करञ्ज देना चाहिए। क्षीरदोष को देखकर उसके अनुसार कार्य करना चाहिए अर्थात् बढ़े हुए दोषों के प्रतिकूल आहार का विधान करना चाहिए[1]।

पुनश्च महर्षि चरक लिखते हैं कि शाली, षष्टिक, श्यामाक (साँवा), प्रियङ्गु, कोरदूष, यव तथा वेणुयव (बाँस का जौ) भोजन के लिए हितकारी है। शाक के लिए वंश, वेत्र (बाँस के अङ्कुर एवं बेंत का अग्रभाग) तथा कलाय को स्नेह से संस्कृत करके तथा यूष के लिए मूद्ग, मसूर तथा कुलत्थ का प्रयोग करें। निम्ब, वेत का अग्रभाग, कुलक, वार्ताक तथा आमलक से शृत (इनके स्वरस या क्वाथ के साथ पक्व), व्योष तथा सैन्धव मिलाए हुए स्तन्य-शोधक यूषों का प्रयोग करना चाहिए। शशक, कपिञ्जल (तित्तिर) तथा एण (विशिष्ट हिरण) का संस्कृत मांस देना चाहिए।

महर्षि काश्यप ने लिखा है कि स्तन्य-शोधन काल में मसूर, षष्टिक, मुद्ग, कुलत्थ, शालि (चावल), घृत, गौ तथा बकरी का दुग्ध, समय पर भोजन, अनौद्भिद (कृत्रिम या सैन्धव) लवण आदि का आहार में प्रयोग करना चाहिए।

आचार्य भावमिश्र ने लिखा है कि धात्री को स्तन्य-शोधन के लिए मुद्ग का यूष तथा रस (मांसरस) का सेवन करना चाहिए[2]।

Giving due consideration to the vitiation of milk such dietetics should be prescribed which are opposite in the qualities of aggravated *doṣas.*

Following are the congenial things to be used in diet or drinks by the woman having vitiation of milk i.e. barley, wheat, *śāli* and *saṣṭika* (varieties of rice), *veṇu yava* (seeds of bamboo), *śyāmāka* (a kind of millet), *priyaṅgu* (italian millet) and *koradūṣa* (little millet), etc. cereals; sprouts of bamboo, tip of *vetra* and leaves or seeds of *kalāya* as vegetables after proper preparation and mixing with fat; *mudga* (a kind of bean), *hareṇuka* (pea), *kulattha* (horse-bean) and *masūra* (pulse of lentil) for preparation of soup; *surā, sauvīraka, maireya* and *medaka* (different types of wines) etc. wines and *laśuna* (garlic) and *karañja.* Soups cooked with juice or decoction of *nimba*, tip of *vetra, kulaka, vārtāka* and *āmalaka* and mixed with *vyoṣa* and rock salt should be used. Properly medicated meat of rabbit, partridge and *eṇa* (variety of deer) should be given for eating.

Kāśyapa says that during the period of purification of milk *(stanyaśodhana) masūra, saṣṭika, mudga, kulattha, śāli* rice, *ghṛta,* milk of goat or cow, timely eating and rock salt etc. should be used.

Bhāvamiśra has enumerated only soup of meat and *mudga* in the list.

***अपथ्य** (Non-congenial or harmful things)*

गुर्वन्नस्नेहमांसानि दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ १७ ॥ (का० सं० सू० १९)

गुरु अन्न, स्नेह, मांस तथा दिवास्वप्न का परित्याग करना चाहिए, स्तन्यदोष-पीड़ित धात्री को मण्ड का प्रयोग नहीं करना चाहिए[3]।

१. तत्तद्विधानं कार्यं स्यादिति तत्तद्वृद्धदोषप्रतिकूलमाहारविधानं कार्यं स्यात्। (च० सं० शा० ८/५६ की चक्र० टीका)

२. धात्रीक्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ॥ (भा० प्र० पूर्व० ४/२०)

३. धात्र्याः प्रवृद्धे पयसि प्रदुष्टे ..... मण्डं भिषङ्नोपदिशेद्विपक्षित् ॥ (का० सं० कल्प० ७/६७,६८)

Guru (heavy) cereals, oleaginous substances, meat and day sleeping should be discarded as these are harmful. *Maṇḍa* (scum of boiled rice) is also noncongenial.

***विमर्श** (Comments)*

पथ्यान्तर्गत महर्षि काश्यप ने घृत एवं अन्य आचार्यों ने मांस का समावेश किया है। काश्यप संहिता में पुनः ये वस्तुयें अपथ्य लिखी हैं, सम्भवतः अपथ्यान्तर्गत वर्णित स्नेह एवं मांस से आचार्य का गुरु स्नेह (महिषी घृत आदि) तथा गुरु मांस (औद्भिद आदि जीवों का मांस) तात्पर्य हो।

Since *ghṛta* and meat have already been included under congenial diet, hence here *guru ghṛta* (heavy *ghṛta* as of buffalo etc.) and *guru māṃsa* (meat of aquatic etc. animals) should be considered as harmful.

***स्तन्यदुष्टि की सामान्य चिकित्सा** (General treatment of vitiation of milk)*

***(अ) स्तन्य शोधक द्रव्य** (Drugs possessing milk-purifying properties)*

पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तककटुरोहिणीसारिवा इति दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति ॥ (च० सं० सू० ४/१८)

पाठा, महौषध, सुरदारु, मुस्त, मूर्वा, गुडूची, वत्सकफल, किराततिक्त, कटुरोहिणी तथा सारिवा ये दस द्रव्य स्तन्य-शोधक होते हैं।

Pāṭhā, mahauṣadha, surādāru, musta, mūrvā, guḍūcī, fruit of *vatsaka, kirātatikta, kaṭurohiṇī* and *sārivā* these ten drugs are known as *stanyaśodhaka* (milk purifying) drugs.

***आ) अन्य औषधियाँ** (Common preparation for treatment of vitiation of milk)*

(१) पाठा, महौषध, सुरदारु, मुस्त, मूर्वा, गुडूची, वत्सकफल, किराततिक्त, कटुरोहिणी तथा सारिवा (उपर्युक्त वर्णित स्तन्यशोधक द्रव्य) आदि सभी का पृथक पृथक अथवा एक साथ अथवा गुडूची के अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्यों का[1] कषाय (क्वाथ) पान करना चाहिए[1]।

(२) दुग्ध के विशिष्ट विकार या दोष-प्राधान्य[2], विकृति की मात्रा तथा दुष्टि के काल का विचार कर तिक्त, कषाय (पाठा आदि सभी कषाय द्रव्य), कटु एवं मधुर द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए[1]।

(३) शार्ङ्गेष्टा, सप्तपर्ण की छाल तथा अश्वगंधा का क्वाथ पीने को[1] दें।

(४) रोहिणी का क्वाथ पीने को दें[1]।

(५) अमृता, सप्तपर्ण-त्वक् एवं नागर का क्वाथ पानार्थ दें[1]।

(६) किराततिक्त का क्वाथ पीने को दें[1]।

(७) भार्गी, वचा, अतिविषा, सुरदारु, पाठा, मुस्तादि गण, मधुरसा तथा कटुरोहिणी के क्वाथ का पान करें[2]।

(८) आरग्वधादि गण की औषधियों का कषाय मधु के साथ पीना श्रेष्ठ है[3]।

(९) मूर्वा, व्योष, वरा (त्रिफला), कोल, जम्बूत्वक्, दारु, सर्षप एवं पाठा के चूर्ण को मधु के साथ चाटना[3] या इन द्रव्यों के साथ वचा मिला कर पीस कर एक प्रसृत की मात्रा में ले मधु मिश्रित कर पीना चाहिए[4]।

नोट–सन्दर्भ पृष्ठ ६९९ में देखें।

Scanned with CamScanner

(१०) पाठा, शुण्ठी, अमृता, तिक्त, तिक्ता, देवाह्व, सारिवा, मुस्ता, मूर्वा तथा इन्द्रयव का क्वाथ उत्तम स्तन्य-दोष नाशक है[४]।

(११) शृङ्गवेर एवं पटोल (पत्र के स्वरस) के साथ पिप्पली के चूर्ण का सेवन करें तथा पथ्य में यूष एवं लघु अन्न-पान का प्रयोग करें[५]।

(१२) धातकीपुष्प, एला, समङ्गा (मञ्जिष्ठा), मरिच, जम्बूत्वक् तथा मधुक (का चूर्ण या क्वाथ) उत्तम क्षीरशोधक है[६]।

(१३) पाठा, महौषध, दारु, मूर्वा, मुस्ता, वत्सक, सारिवा, अरिष्ट, कटुका, कैरात, त्रिफला, वचा, गुडूची, मधुक, द्राक्षा, दशमूल, दीपनीय द्रव्य, रक्षोघ्न गण एवं पटोलादि गण के द्रव्य आदि सभी स्तन्यशोधक हैं। इनमें से उपलब्ध द्रव्यों का क्वाथ पान करने से चिरकालीन स्तन्यदोष भी दूर हो जाते हैं[७]।

इस उपर्युक्त कषाय को कफदूषित स्तन्यदुष्टि में मधु के साथ तथा अन्यों (वातज, पित्तज) में घृत के साथ सेवन करना चाहिए, कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसा नहीं (घृत का सेवन) करें, क्योंकि (घृत) श्लेष्मा का स्थान है एवं क्षीर कफ से उत्पन्न हुआ है[८]।

(१४) पिप्पली, पिप्पलीमूल, नागर, घन, वालुक, कुस्तुम्बुरु तथा मञ्जिष्ठा को दुग्ध के साथ कल्क करें, इस कल्क को क्षीर-शोधन के लिए पान करें, तत्पश्चात् मरिच एवं पिप्पलीमूल के चूर्ण को दुग्ध के साथ क्षीर-वर्धन के लिए प्रयुक्त करें[९]।

(१५) भार्ङ्गी, दारु, वचा तथा अतिविषा को पीसकर पीना चाहिए[१०]।

(१६) पटोल, निम्ब, असन, दारु, पाठा, मूर्वा, गुडूची, कटुरोहिणी तथा नागर का क्वाथ धात्री को दुग्ध की शुद्धि के लिए दें[११]।

Following preparations should be prescribed for oral administration—

i) Decoction of above mentioned milk purifying drugs singularly or collectively or except *guḍūcī* other nine drugs.

ii) *Tikta* (bitter), *kaṣāya* (*pāṭhā* etc. all astringent drugs), *kaṭu* (pungent) and *madhura* (sweet) drugs, on the basis of predominance of vitiated *doṣa* and also period of vitiation or disease.

iii) Decoction of *śārṅgeṣṭā*, stem bark of *saptaparṇa* and *aśwagandhā*.

iv) Decoction of *rohiṇī*.

v) Decoction of *amṛtā*, stem bark of *saptaparṇa* and *nāgara*.

vi) Decoction of *kirātatiktā*.

vii) Decoction of *bhārṅgī*, *vacā*, *ativiṣā*, *suradāru*, *pāṭhā*, *mustādi* group of drugs, *mudhurasā and kaṭurohiṇī*.

viii) Decoction of *āragwadhādi* group of drugs mixed with honey.

ix) Powder of *mūrvā*, *vyoṣa*, *varā* (*triphalā*), *kola*, stem bark of *jambū*, *dāru*, *sarṣapa* and *pāṭhā* mixed with honey or else with these drugs *vacā* pestled with water in the dose of one *prasṛta* and mixed with honey.

नोट-सन्दर्भ पृष्ठ ६९९ में देखें।

x) Decoction of *pāṭhā*, *śunṭhī*, *amṛtā*, *tikta*, *tiktā*, *devāhwa*, *sārivā*, *mustā*, *mūrvā* and *indrayava*.

xi) Powdered *pippalī* with juice of *śṛṅgabera* and leaves of *paṭola*, followed by use of soup, light diet and beverages.

xii) Powder or decoction of flowers of *dhātakī*, *elā*, *samaṅgā*, *marica*, stem bark of *jambū* and *madhuka*.

xiii) Decoction of available drugs out of *pāṭhā*, *mahauṣadha*, *dāru*, *mūrvā*, *mustā*, *vatsaka*, *sārivā*, *ariṣṭa*, *kaṭukā*, *kairāta*, *triphalā*, *vacā*, *guḍūcī*, *madhuka*, *drākṣā*, *daśamūla*, *dīpanīya* drugs, *rakṣoghna* and *paṭolādi* group of drugs, is good milk-purifier and cures even chronic vitiation of milk.

Above mentioned decoction should be used with honey in case of milk vitiation caused

---

१. अ) पाठामहौषधसुरदारुमुस्तमूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तककटुकरोहिणीसारिवाकषायाणां च पानं प्रशस्यते, तथाऽन्येषां तिक्तकषायकटुकमधुराणां च द्रव्याणां प्रयोगः क्षीरविकारविशेषानभिसमीक्ष्य मात्रां कालं च ॥ (कषायाणामिति बहुवचनाद् व्यस्तसमस्तानां पाठादीनां कषाया गृह्यन्ते-चक्र० टीका) (च० सं० शा० ८/५६)

आ) शार्ङ्गेष्टा सप्तपर्णत्वगश्वगंधामृतम् जलम् ॥ २६०॥
पाययेताथवा स्तन्यशुद्धये रोहिणीशृतम् । अमृतासप्तपर्णत्वक् क्वाथं चैव सनागरम् ॥ २६१॥
किराततिक्तकक्वाथं श्लोकपादेरितान् पिबेत् । त्रीनेतान्स्तन्यशुद्ध्यर्थमिति सामान्यभेषजम् ॥ २६२॥ (च० सं० चि० ३०)

२. भार्गीं वचामतिविषां सुरदारुपाठां मुस्तादिकं मधुरसां कटुरोहिणीं च ।
धात्री पिबेत् तु पयसः परिशोधनार्थं, आरग्वधादिषु वरं मधुना कषायम् ॥ (सु० सं० चि० १७/४४,४५)

३. मूर्वाव्योषवराकोलजम्बूत्वग्दारुसर्षपाः । सपाठा मधुना लीढाः स्तन्यदोषहराः परम् ॥
(अ० सं० उ० २/३० एवं अ० हृ० उ० २/३४, ३५)

४. पाठाशुण्ठ्यमृतातिक्तातिक्तादेवाह्वसारिवाः । समुस्तमूर्वेन्द्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम् ॥ (अ० हृ० उ० २/२५)

५. त्रिफला सत्रिकटुका पाठा मधुरसा वचा । कोलचूर्णं त्वचो जम्ब्वा देवदारु च पेषितम् ॥ ६॥
सर्षपप्रसुतोन्मिश्रं पातव्यं क्षौद्रसंयुतम् । एतत् स्तन्यस्य दुष्टस्य श्रेष्ठं शोधनमुच्यते ॥ ७॥
शृङ्गवेरपटोलाभ्यां पिप्पलीचूर्णचूर्णितम् । यूषपथ्यं विदध्याच्च ह्लक्षपानं च यत्नधु ॥ ८॥
धातकीपुष्पमेला च समङ्गा मरिचानि च । जम्बूत्वचं समधुकं क्षीरशोधनमुत्तमम् ॥ ९॥
पाठा महौषधं दारु मूर्वामुस्तकवत्सकाः । सारिवारिष्टकटुकाः कैरातं त्रिफला वचा ॥ १२॥
गुडूची मधुकं द्राक्षा दशमूलं सदीपनम् । रक्षोघ्नश्च पटोलश्च गणः क्षीरविशोधनः ॥ १३॥
लाभतः क्वथितस्तेषां कषायः स तु सेवितः । क्षीरं शोधयति क्षिप्रं चिरव्यापन्नमप्युत ॥ १४॥
सक्षौद्रः कफसंसृष्टे सघृतः शेषयोर्भवेत् । नेत्येके श्लेष्मणः स्थानात् क्षीरं हि कफसंभवम् ॥ १५॥ (का० सं० सू० १९)

६. पिप्पलीपिप्पलीमूलं नागरं घनवालुकम् । कुस्तुम्बुरूणि मञ्जिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत् ॥
पानं क्षीरविशुद्धयर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् । मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ॥ (हा० सं० तृ० स्था० ५३/२, ३)

७. भार्गीदारुवचाः पिष्ट्वा पिबेत्साऽतिविषास्तथा ।
पाठामूर्वाऽब्दभूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकैः ॥ सारिवामत्स्यपित्ताऽख्यैः क्वाथः स्तन्यविशोधनः । (मत्स्यपित्ता कटुकी-टीका) ॥
पटोलनिम्बासनदारुपाठा, मूर्वां गुडूचीं कटुरोहिणीं च । सनागरां च क्वथितां च तोये धात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धि हेतोः ॥
(भा० प्र० पूर्व० ४/२०, २१, २२)

Scanned with CamScanner

by *kapha* and with *ghṛta* in cases of vitiation caused due to *vāta* and *pitta*. However, other authors contradict it on the logic that since *ghṛta* is similar in the qualities of *kapha* and milk also has natural predominance of properties of *kapha*, hence, use of *ghṛta* may be harmful.

xiv) *Pippalī, pippalīmūla, nāgara, ghana, vāluka, kustumburu* and *mañjiṣṭhā* should be pestled with milk and taken for purification of milk. After this, powdered *pippalī* and *pippalīmūla* should be taken with milk for increasing the quantity of milk.

xv) Pestled *bhārṅgī, dāru, vacā* and *ativiṣā* with water.

xvi) Decoction of *paṭola, nimba, asana, dāru, pāṭhā, mūrvā, guḍucī, kaṭurohiṇī* and *nāgara*.

वातादि दोषानुसार स्तन्य-दुष्टि की विशिष्ट चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk according to predominance of vāta etc. doṣas)

(अ) वातिक स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा (Treatment of milk vitiation caused by vāta)

(१) देवदारु, सरल, कटुरोहिणी, वचा, कुष्ठ, पाठा, भार्ङ्गी, मागधिका, वृश्चिकाली, चित्रक, अजमोदा, शुण्ठी एवं मरिच का क्वाथ अथवा दशमूल का क्वाथ तीन रात पिलाकर तत्पश्चात् वातव्याधि के लिए निर्दिष्ट घृतों[१] में से कोई या वातहर-द्रव्यों से साधित घृत को निर्दोष या स्वच्छ मदिरा के अनुपान से दें[१,२]।

अष्टाङ्गहृदय में अजमोदा के स्थान में दीप्यका का पाठ है तथा शुण्ठी का पाठ नहीं है अन्य औषधियाँ यही हैं[३]।

इस प्रकार स्निग्ध हो जाने पर मृदु विरेचन देकर बस्तिकर्म से चिकित्सा करें[१,२]।

योगरत्नाकर में केवल दशमूल क्वाथ का तीन दिन पान करके वातहर सर्पि से स्नेहन के पश्चात् मृदु विरेचन का निर्देश है[३]।

(२) वातघ्न अभ्यङ्ग, स्वेद, उपदेह एवं मर्दन का प्रयोग करें[१,२]।

(३) सरल, रास्ना, अजमोदा तथा देवदारु का चूर्ण घृत के साथ बालक को चटावें अथवा इन्हीं औषधियों से साधित घृत शर्करा के साथ चटावें[१,२]।

(४) सर्वप्रथम धात्री को स्नेहन एवं स्वेदन कराकर नीलिका अथवा त्रिवृत् चूर्ण से युक्त घृत का पान कराएं। तत्पश्चात सुसंस्कृत लघु एवं स्निग्ध यूष में दाडिम तथा सैन्धव मिला कर मृदु ओदन भोजन के लिए दें। उसे निवात स्थान में सोना

१. तत्र वातदूषिते स्तन्ये देवदारुसरलकटुरोहिणीवचाकुष्ठपाठाभार्ङ्गीमागधिकावृश्चिकालीचित्रकाजमोदशुण्ठीमरीचानां क्वाथं दशमूलक्वाथं वा त्रिरात्रं पाययित्वा वातव्याधिविहितानां सर्पिषामन्यतमं निगदमदिरानुपानं दद्याद्वातहरद्रव्यसिद्धं वा। ततः स्निग्धां मृदु विरेच्य बस्तिकर्मणोपचरेत्। वातघ्नैश्चाभ्यङ्गस्वेदोपदेहोन्मर्दनैः। सरलरास्नाअजमोदादेवदारुचूर्णं सर्पिषा बालमवलेहयेत्। एवंविधैरेव च विपक्वं सशर्करं सर्पि॥ (अ० सं० उ० २/११)

२. तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिबेत्॥९॥
अथवाऽग्निवचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम्। सभार्ङ्गीदारुसरलवृश्चिकालीकणोषणम्॥१०॥
ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम्। अनु चाच्छसुरामेवं स्निग्धां मृदु विरेचयेत्॥११॥
बस्तिकर्म ततः कुर्यात्स्वेदार्दोक्तानिलापहान्। रास्नाऽजमोदासरलदेवदारुरजोऽन्वितम्॥१२॥
बालो लिह्याद् घृतं तैर्वा विपक्वं ससितोपलम्॥१३॥ (अ० ह० उ० २/९ से ९३)

३. तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीं त्र्यहं पिबेत्। वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत्॥ (यो० र० क्षीरदो० चि०)

एवं बैठना चाहिए। व्यायाम, अजीर्ण एवं मैथुन का परित्याग करें[१]।

(५) स्तन्य-शोधन के लिए विदारिगन्धा, एरण्ड, वृहती, गोक्षुरक, पुनर्नवा एवं पृश्निपर्णी अथवा द्विपञ्चमूल कषाय का पान करावें।[१]

(६) रास्ना, सुगन्धा तथा नाकुली के कल्क का स्तनों मे लेप करें।[१]

(७) अजगन्धा, अवल्गुजक, बृहती एवं कण्टकारिका अथवा शताह्वा, मधुक, अजगन्धा, काश्मरी, बृहती, कण्टकारिका, बला, पीलु एवं गुडूची के कल्क अथवा भद्रमुस्ता, त्वग् एवं अगरु के कल्क अथवा पुराण सर्पि एवं तिलकल्क से स्तन का प्रदेह करें[१]।

(८) उरुपूग, पलाश, पाटलि एवं रास्ना के क्वाथ अथवा सुखोष्ण दुग्ध से परिषेक करें[१]।

i) Decoction of *devadāru, sarala, kaṭurohiṇī, vacā, kuṣṭha, pāṭhā, bhārṅgī, māgadhikā vṛścikālī, citraka, ajamodā* or *dīpyakā* and *marica*, with or without *śuṇṭhī* or else decoction of *daśamūla* should be given for three nights. After this, any *ghṛta* described for the treatment of *vātavyādhi* or else the *ghṛta* prepared with the drugs capable of suppressing the *vāta*, followed by pure wine as after-drink should be given. Once the woman is oleated with the use of this *ghṛta*, mild laxatives followed by enema should be used.

ii) Inunction, anointment, and massage with the oil and sudation with decoction prepared with the drugs capable of suppressing *vāta* should be given.

iii) The child should be made to lick either powdered *sarala, rāsnā, ajamodā* and *devadāru* with *ghṛta* or *ghṛta* prepared with these drugs and mixed with sugar.

iv) After giving oleation and sudation to the wet-nurse she should be given powdered *nīlikā* or *trivṛt* with *ghṛta*. Then with well prepared, light, unctuous soup mixed with *dāḍima* and rock-salt the soft-cooked rice should be given for eating. She should sit and sleep in a place not having direct entry of air. Excercise, indigestion and coitus should be given up by her.

v) To purify milk, decoction of *vidārigandhā, eraṇḍa, bṛhatī, gokṣuraka, punarnavā* and *pṛśniparṇī* or both *pañcamūlas* be given.

vi) Paste of *rāsnā, sugandhā*, and *nākulī* should be applied over breasts.

vii) Breasts be anointed/irrigated with paste/decoction of *ajagandhā, avalguja, bṛhatī* and *kaṇṭakārikā*, or *śatāhwā, madhuka, ajagandhā, kāśmarī, bṛhatī, kaṇṭakārikā, balā, pīlu*, and *guḍūcī* or *bhadramustā, twak* and *agaru* or old *ghṛta* with paste of *tila*.

viii) Irrigation with decoction of *urupūga, palāśa, pāṭali* and *rasnā* or luke warm milk should be given.

१. तत्रादितश्चैव धात्रीं स्नेहाभ्यङ्गस्वेदोपपन्नां नीलिकाचूर्णयुतं सर्पिः पाययेत्, त्रिवृच्चूर्णघृतं वा। ततः संसर्गोपपादितात्लघुस्निग्धैर्यूषैर्दाडिमसैन्धवयुतैर्मृदुमोदनमश्नीयान्निवातशयनासनपरा। व्यायामाजीर्णमैथुनं च नानुचरेत्। विदारिगन्धैरण्डबृहतीगोक्षुरकपुनर्नवापृश्निपर्ण्य इति कषायमेनां पाययेत् स्तन्यशोधनार्थं, द्विपञ्चमूलकषायं वा। रास्ना सुगन्धा नाकुलीति कल्कः स्तनालेपः, तथाऽजगन्धाऽवल्गुजकबृहतीकण्टकारिकायुतः प्रदेहः, शताह्वामधुकाजगन्धाकाश्मर्यबृहतीकण्टकारिकाबलापीलुगुडूचीकल्को वा भद्रमुस्तात्व(ग)गरुकल्को वा पुराणसर्पिस्तिलकल्को वेति। अथोरुपूगपलाशपाटलिरास्नाक्वाथः परिषेकः, पयसा वा सुखोष्णेन चेति। (का० सं० छि १५/१५)

Scanned with CamScanner

(आ) पित्तज स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk due to pitta)

(१) धात्री को स्नेह का अभ्यङ्ग कराकर वमन तथा विरेचन कराए। दोषों के निर्हरण के लिए निम्बोदक में पिप्पली-कल्क मिलाकर अथवा पिप्पली एवं लवण के द्वारा वमन करावें; धात्री के बलानुसार उसे मृद्वीका, इक्षुरस तथा अभया अथवा मृद्वीका के साथ आमलक को मिश्रित कर अथवा आरग्वधफलमज्जा-कषाय से युक्त क्षीर से विरेचन करावें।[1] पित्तघ्न विरेचन दें।[2,3] ततपश्चात् संसर्जन क्रम द्वारा कृताकृत विधान से यवागू अथवा यूष दें[1] एवं निम्न क्वाथ में सो कोई भी धात्री को स्तन्य शोधनार्थ पीने को दें।

(अ) काश्मरी, मधुक, परूषक एवं शीतपाकी का सुशीतल शर्करा एवं मधु मिश्रित कषाय।[1]
(आ) पयस्या, सारिवा, अमृता, मधूक एवं मृद्वीका का शर्करा मिश्रित कषाय[1]।
(२) निम्न क्वाथ धात्री एवं बालक को पिलावें।
(अ) अमृता, पटोलपत्र, सारिवा, शतावरी, निम्ब एवं चन्दन का क्वाथ[2,3]।
(आ) त्रिफला, भूनिम्ब, कटुका एवं मुस्ता का क्वाथ[2,3]।
(इ) जीवक, ऋषभक, काकोलीद्वय, मधुक, कट्फल एवं कर्कटशृङ्गी का क्वाथ[2]।
(ई) पटोलादि[2] अथवा पद्मकादि गण[2] का क्वाथ मधु के साथ[1]।
(उ) शारिवादि[2] अथवा न्यग्रोधादि गण की औषधियों का क्वाथ[2]।
(ऊ) अमृता, अभीरु, पटोल, निम्ब एवं चन्दन का क्वाथ शर्करा से[4]।
(३) उपर्युक्त अ से उ में वर्णित द्रव्यों से सिद्ध घृत दें[2,3]।
(४) शीतल अभ्यङ्ग, प्रदेह, सेक[1] अथवा अभ्यङ्ग तथा आलेप[1] आदि का प्रयोग करें[2,3]।
(५) निम्नाङ्कित में से किसी एक कल्क का स्तनों में लेप करें–
अ) प्रपौण्डरीक, सारिवा, उशीर एवं चन्दन का कल्क[1]।
आ) मधुक, क्षीरशुक्ला, चन्दन, रसाञ्जन एवं तुङ्ग का कल्क[1]।
(इ) यष्टीमधुक एवं चन्दन का कल्क[1]।

१. धात्रीं स्नेहाभ्यङ्गोपपन्नां वमनविरेचनेनोपक्रमेत्, निम्बोदकपिप्पलीकल्केन वामयेत् पिप्पलीलवणयुक्तेन वा दोषनिर्हरणार्थं, मृद्वीकेक्षुरसाभयादिभिर्विरेचयेन्मृद्वीकामलकसंयोगेन वा आरग्वधफलमज्जकषायसंयुक्तेन वा क्षीरेणेति यथाबलं वीक्ष्य। संसर्गं कारयेद्यवाग्वा यूषकृताकृतविधानेन वा। काश्मर्यमधुकपरूषकशीतपाक्य इति कृत्वा सुशीतं शर्करामधुलिखितं कषायं पाययेत् स्तन्यशोधनार्थं, पयस्यासारिवामृतामधूकमृद्वीकानां कषायं शर्करायुतं चेति। प्रपौण्डरीकसारिवोशीरचन्दनकल्कः स्तनालेपः, मधुकक्षीरशुक्लाचन्दनरसाञ्जनतुङ्गयुतः प्रदेहः, यष्टीमधुकचन्दनकल्को वा, मधुकचन्दनभद्रमुस्तामञ्जिष्ठारसाञ्जनकल्को वा, रसाञ्जनसारिवामधुकचन्दनोशीरकल्को वा, ककुभोदुम्बराश्वत्थवटनलमूलशालूकवञ्जुलकल्कोवा घृतयुतः, विशमृणालपद्मकमञ्जिष्ठापद्मरसाञ्जनकल्को वेति (का० सं० खि० १५/१६)

२. पित्तेऽमृतापटोलपत्रशारिवाशतावरीनिम्बचन्दनक्वाथं धात्रीं बालञ्च पिबेत्। त्रिफलाभूनिम्बकटुकामुस्तक्वाथं वा । जीवकर्षभकद्विकाकोलीमधुककट्फलकर्कटशृङ्गीक्वाथं वा। सक्षौद्रं पटोलादिं पद्मकादिं वा। शारिबादिं न्यग्रोधादिं वा। एभिरेव च द्रव्यैः सर्पींषि पित्तघ्नानि च विरेचनानि शीतांश्चाभ्यङ्गप्रदेहसेकान् कुर्यात्॥ (अ० सं० उ० २/१३)

३. पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्बचन्दनम्॥१३॥
धात्री कुमारञ्च पिबेत् क्वाथयित्वा ससारिवम्। अथवा त्रिफलामुस्तभूनिम्बकटुरोहिणीः॥१४॥
सारिवादिं पटोलादिं पद्मकादिं तथा गणम्। घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम्॥१५॥
शीतांश्चाभ्यङ्गलेपादीन् युञ्ज्यात् ·····॥ (अ० हृ० उ० २/१३ से १६)

४. पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम्। धात्री कुमारञ्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशर्करम्॥ (यो० र० क्षीरदो० चि०)

(ई) मधुक, चन्दन, भद्रमुस्ता, मञ्जिष्ठा एवं रसाञ्जन का कल्क[1]।
(उ) रसाञ्जन, सारिवा, मधुक, चन्दन, एवं उशीर का कल्क[1]।
(ऊ) ककुभ, उदुम्बर, अश्वत्थ, वट, नलमूल, शालूक एवं वञ्जुल के कल्क को घृत में मिला कर[1]।
(ए) विश, मृणाल, पद्मक, मञ्जिष्ठा, पद्म एवं रसाञ्जन का कल्क[1]।

i) After giving massage to the wet-nurse with oleaginous substances, she should be given emetics and purgatives. For expulsion of *doṣas*, decoction of *nimba* with paste of *pippalī*, or *pippalī* with salt should be given for emesis, and looking into her strength, *mṛdvīkā*, sugarcane-juice and *abhayā*, or *mṛdvīkā* mixed with *āmalaka*, or decoction of pulp of fruit of *āragvadha* mixed with milk should be given for purgation. Purgatives capable of suppressing the *pitta* should be given. Afterwards medicated or mixed with *ghṛta* and non-medicated or without adding *ghṛta* the *yavāgu* or *yūṣa* should be given in serial order, and then any one of the following decoction should be given to the wet-nurse for purification of milk.

a) Well cooled decoction of *kāśmarī, madhuka, parūṣaka* and *śītapākī* mixed with sugar and honey.

b) Decoction of *payasyā, sārivā, amṛtā, madhūka* and *mṛdvīkā* mixed with sugar.

ii) Decoctions prepared with following drugs should be given to the child and wet-nurse/mother both—

a) *Amṛtā*, leaves of *paṭola, sārivā, śatāwarī, nimba* and *candana.*

b) *Triphalā, bhūnimba, kaṭukā* and *mustā.*

c) *Jīvaka, ṛṣabhaka*, both *kākolīs, madhuka, katphala* and *karkaṭaśṛṅgī.*

d) *Paṭolādi* or *padmakādi* group of drugs mixed with honey.

e) *Sārivādi* or *nyagrodhādi* group of drugs.

f) *Amṛtā, abhīru, paṭola, nimba* and *candana* mixed with sugar.

iii) *Ghṛta* prepared with the drugs mentioned above under 'a' to 'e' should be given.

iv) Cold inunctions, poultice, pourings or bathings and anointments should be prescribed.

v) Any one of the following be anointed over breasts.

a) Paste of *prapauṇḍarīka, sārivā, uśīra* and *candana.*

b) Paste of *madhuka, kṣīraśuklā, candana, rasāñjana* and *tuṅga.*

c) Paste of *yaṣṭīmadhuka* and *candana.*

d) Paste of *madhuka, candana, bhadramustā, mañjiṣṭhā* and *rasāñjana.*

e) Paste of *rasāñjana, sārivā, madhuka, candana* and *uśīra.*

f) Paste of *kakubha, udumbara, aśwattha, vaṭa*, root of *nala, śālūka* and *vañjula* mixed with *ghṛta.*

नोट–सन्दर्भ पूर्व पृष्ठ संख्या ७०२ में दे दिए गए हैं।

Scanned with CamScanner

g) Paste of *viśa, mṛṇāla, padmaka, mañjiṣṭhā, padma* and *rasāñjana.*

(इ) कफजन्य स्तन्य दुष्टि-चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk due to kapha)

(१) सैन्धव एवं पिप्पली[1] अथवा सैन्धव एवं यष्टयाह्व[2,3] से युक्त घृत बालक को पीने को दें।

(२) सैन्धव एवं मधुक[1] अथवा सैन्धव एवं पिप्पली[2] के साथ मदनपुष्प को पीसकर मधु मिलाकर[1,2] अथवा केवल मदनपुष्प का[1] (धात्री के) स्तनों एवं बच्चे के ओठों पर लेप करें, इस योग से बच्चे को सुखपूर्वक वमन हो जाता है।

(३) धात्री को तीव्र वामक औषधियों से वमन करावें[1,2]; तत्पश्चात् संसर्जन-क्रम करके पञ्चमूल (वृहत्पञ्चमूल), घन, वचा एवं अतिविषा[1] अथवा मुस्तादि गण की औषधियों[2] अथवा निम्न द्रव्यों में से किसी एक का क्वाथ पान करायें।

(अ) तगर, सुरदारु, सुरेन्द्रयव, पृथ्वीका तथा वृश्चिकाली[1] अथवा वृश्चिकाली के अतिरिक्त अन्य द्रव्य[1,2]।

(आ) अतिविषा, मुस्ता, षड्ग्रन्था एवं पञ्चकोल का क्वाथ[1]।

(इ) आरग्वधादि अथवा मुस्तादिगण की औषधियों का क्वाथ[1]।

(४) धात्री का पूर्ववर्णित विधि से उपचार करके अर्थात् स्नेहाभ्यङ्ग आदि देकर, उसे निम्बकषाय एवं मदनफल, से सिद्ध तथा पर्याप्त मात्रा में लवण से युक्त अथवा मदनफल, तिलपिष्ट एवं तण्डुल से सिद्ध यवागू का वमन के विधान से पान कराएं; अथवा लवण से युक्त द्रव्यों से सुखपूर्वक स्नेहन हो जाने पर, श्लेष्मा के उद्धरण के लिए उष्णोदक में पिप्पली मिश्रित कर पान करा वमन करावें, वमन कराने के पश्चात् शिरोविरेचन करावें, तत्पश्चात् मुद्ग, सतीन, वेत्राग्र, पटोल, निम्ब एवं मुस्तक में से किसी एक के यूष के साथ मृदु ओदन भोजन के लिए दें[4]।

५) कुटजफल, मुस्ता, प्रियङ्गु, शार्ङ्गेष्टा, पाठा, लोध्र, गुडूची एवं मूर्वा में से यथोपलब्ध द्रव्यों का एक अक्ष चूर्ण अथवा पाठा एवं शृङ्गबेर का कल्क अथवा कुटजफल एवं पाठा का कल्क सुखोष्ण जल के अनुपान से पीने को दें, अथवा किरातितिक्तक एवं मुस्ता का चूर्ण मधु से लेहन करें[4]।

(६) भद्रमुस्ता, अरिष्ट, पटोल, मूर्वा, दारुहरिद्रा, त्रिफला एवं सप्तपर्णत्वक् के क्वाथ को सन्धान कर मधु के साथ पाक के रूप में प्रयोग करें।[4]

(७) मुस्तक एवं मालतीपत्र के कल्क का स्तनों में लेप करें[4]।

(८) त्रिवृत्, त्रिफला एवं उष्ण जल में लवण मिला कर प्रयोग कर (विरेचन देकर) यूष का आहार विधि से सेवन करें।[4]

(९) रुक्ष एवं उष्ण नस्य, धूम, गण्डूष, प्रदेह एवं परिषेक का प्रयोग करें तथा अविरुद्ध अन्न-पान दें[4]।

i) child should be given *ghṛta* either mixed with rock salt and *pippalī* or rock salt and *yaṣṭyāhwa*

ii) Rock salt and flowers of *madana* should be pestled either with *pippalī* or *madhuka* or else only flowers of *madana* should be pestled and applied over the teats of the wet-nurse and lips of the child. These applications induce pleasurable emesis to the child.

iii) Wet-nurse should be given strong emetics. After this emesis and *saṃsarjanakrama* (gradually increasing diet), decoction of *vṛhatpañcamūla, ghana vacā* and *ativiṣā* or else *mustādi* group of drugs or any one out of following should be given—

a) Decoction of *tagara, suradāru, surendrayava, pṛthwīkā* with or without *vṛścikālī.*

नोट-कफजन्य स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा के सन्दर्भ पृष्ठ ७०५ में देखें।

b) Decoction of *ativiṣā, mustā, ṣaḍgranthā* and *pañcakola.*

c) Decoction of *āragvadhādi* or *mustādi* group of drugs.

iv) After treating wet-nurse with the method described earlier (unctuous massage), she should be given *yavāgū* either made with decoction of *nimba,* medicated with fruit of *madana* and mixed with good qunatity of salt or made with fruit of *madana,* paste of *tila* and *taṇḍula* (pieces of rice), with the procedure of emesis; or else after pleasurable oleation given with articles mixed with salt. emesis should be induced with hot water mixed with *pippalī* for extraction of *śleṣmā;* after emesis, the head-evacution should be given, then soft cooked rice with soup of any one out of *mudga, satīna, vetrāgra, paṭola, nimba* and *mustaka* be given in diet.

v) One *akṣa* powder of available drugs out of fruit of *kuṭaja, mustā, priyaṅgu, śārṅgiṣṭhā, pāṭhā, lodhra, guḍūcī* and *mūrvā* or paste of *pāṭhā* and *śṛṅgabera* or paste of fruit of *kuṭaja* and *pāṭhā* should be given using luke-warm water as after drink, or powder of *kirātatikta* and *mustā* with honey be given for licking.

vi) After fermenting decoction of *bhadramustā, ariṣta, paṭola, mūrvā, dāruharidrā, triphalā* and stem-bark of *saptaparṇa* the honey should be mixed in it and should be used as electuary.

vii) paste of *mustaka* and leaves of *mālatī* be anointed over breasts.

viiii) After using (for purgation) *trivṛt* and *triphalā* with hot water mixed with salt, the soup should be given with the method of diet.

१. कफे तु सैन्धवपिप्पलीयुक्तं सर्पिर्बालं पाययेत्। सैन्धवमधुकसंसृष्टं वा मदनपुष्पकल्केन च सक्षौद्रेण स्तनं बालस्य चोष्ठमालिम्पेत्। तेन सुखं वमति। धात्रीं तु तीक्ष्णैर्वामयेत्। ततः कृतसंसर्जनां पञ्चमूलघनवचातिविषाक्वाथं पाययेत्। तगरसुरदारुसुरेन्द्रयवपृथ्वीकावृश्चिकालीक्वाथं वा। आरग्वधादिं मुस्तादिं वा। रूक्षोष्णांश्च नस्यधूमगण्डूषप्रदेहपरिषेकान् शीलयेत्। अविरुद्धं चान्नपानं योजयेत्॥ (अ० सं० उ० २/१५)

२. .....श्लेष्मात्मके पुनः। यष्ट्याह्वसैन्धवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम्॥ १६॥
सिन्धूत्थपिप्पलीमद्वा पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ। राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ॥ १७॥
सुखमेवं वमेद्बालः तीक्ष्णैर्धात्रीं तु वामयेत्। अथाऽचरितसंसर्गीं मुस्तादिं क्वथितं पिबेत्॥ १८॥
तद्वत्तगरपृथ्वीकासुरदारुकलिङ्गकान्। अथवाऽतिविषां मुस्तषड्ग्रन्थापञ्चकोलकम्॥ १९॥ (अ० हृ० उ० २/१६ से १९)

३. कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम्। राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ॥
सुखमेव वमेद्बालः कफकोपश्च शाम्यति॥ (यो० र० क्षीरदो० चि०)

४. अथ धात्रीं पूर्वेण विधिनोपचार्य निम्बकषायमदनफलसिद्धां व्यक्तलवणां यवागूं पाययेन्मदनफलतिलपिष्टतण्डुलसिद्धां वा वमनविधानेन सुखसलवणस्निग्धायाः श्लेष्मोद्धरणार्थं च पिप्पल्युष्णोदकं पीत्वा च्छर्दयेत्, कृतवमनायाः शिरोविरेचनं विदध्यान्मुद्गसतीनवेत्राग्रपटोलनिम्बमुस्तकानामन्यतमपरिगृहीतेन यूषेण मृदुमोदनं भोजयेत्। कुटजफलमुस्ताप्रियङ्गुशार्ङ्गेष्टा-पाठालोध्रगुडूचीमूर्वेत्यक्षमात्राणि यथालाभं सुखोष्णोदकेनानुपिबेत्, पाठाशृङ्गबेरकल्कं वा, कुटजफलपाठाकल्कं वा, किराततिक्तकमुस्ताचूर्णं वा मधुना लिहेत्। भद्रमुस्तारिष्टपटोलमूर्वादारुहरिद्रात्रिफलासप्तपर्णत्वगित्येतैः कषायमासुतं मधुना पाकव्यपदेशतक्षौपयोजयेत्, मुस्तकमालतीपत्रकल्केन स्तनावालेपयेत्। अथ विरेचनं त्रिवृत्त्रिफलोष्णोदकलवणसंयुक्तमुपयोज्य यूषक्षाहारविधिः। (का० सं० खि० १५/१७)

Scanned with CamScanner

ix) *Rukṣa* (dry) and hot inhalations, fumigation, retention in mouth, poultice and bathings sould be given. Congenial eatables and drinkables should also be given.

(ई) द्वन्द्वज स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा (Treatment of milk vitiation caused by two doṣas or dwandwaja)

स्तन्य को दूषित करने वाले दोनों दोषों को शमन चिकित्सा करनी चाहिए[1]।

Treatment capable of pacifying both the *doṣas* responsible for vitiation of milk should be prescribed.

(उ) सान्निपातिक स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा (Treatment of milk vitiated by all the three doṣas or sānnipātaja)

(१) सर्वप्रथम धात्री एवं बालक को शीघ्र ही वमन करावें[2,3]। तत्पश्चात् संसर्जनक्रम करके, मुस्ता, पाठा, अतिविषा, कुष्ठ एवं कटुकी का क्वाथ[2] पीने के लिए दें।

वचादि या हरिद्रादि गण का क्वाथ[2,3] या मद्य आदि[5] अथवा निम्न क्वाथों में से कोई एक दें।

(अ) रास्ना, अजमोदा, प्रियङ्गु, भद्रदारु का क्वाथ[2]।
(आ) पाठा, तेजोवती, पुनर्नवा, वृश्चिकाली का क्वाथ[2]।
(इ) भूनिम्ब, अमृता, कुटज-फल एवं शारिवा का क्वाथ[2]।
(ई) पाठादि महाकषाय[4]।
(उ) जम्बू, आम्र, तिन्दुक एवं कपित्थ के पत्रों का क्वाथ[2]।
(ऊ) बेल को तोड़कर उसका क्वाथ[2]।
(ए) माद्री, पाठा, तिक्त घन एवं आमय (कुष्ठ) का क्वाथ[2]।
(ऐ) पाठा, मूर्वा, भूनिम्ब, दारु, शुण्ठी, कलिङ्गक, सारिवा, घन तथा तिक्ता का क्वाथ[4]।

(२) अनुबन्ध होने पर (दोषों या अन्य उपद्रव स्वरूप उत्पन्न व्याधियों को) दोषानुसार एवं कालानुसार चिकित्सा करें[2,3]।

i) First of all emesis should be induced immediately to the child and wet-nurse both. Now after doing proper *saṃsarjana-krama* (use of regulated diet in gradual manner i. e. tisanes or soups—scum of boiled rice—rice gruel then oleo etc.). decoction of either *mustā, pāṭhā, ativiṣā, kuṣṭha* and *kaṭukī* or *vacādi* or *haridrādi* group of drugs or else only wine should be given. Alternatively, decoction prepared with any one out of following groups should be used.—

a) *Rāsnā, ajamodā, priyaṅgu* and *bhadradāru.*
b) *Pāṭhā, tejovatī, punarnavā* and *vṛścikālī.*
c) *Bhūnimba, amṛtā, kuṭaja-phala* and *śārivā.*
d) *Pāṭhādi* group of drugs.
e) Leaves of *jambū, āmra, tinduka* and *kapittha.*
f) Pulp of *bilva.*
g) *Mādrī, pāṭhā, tikta, ghana* and *āmaya* (*kuṣṭha*).
h) *Pāṭhā, mūrvā, bhūnimba, dāru, śuṇṭhī, kaliṅgaka, sārivā, ghana* and *tiktā.*

ii) In the cases having association of other complications, the treatment should be done considering the dominance of *doṣa* and period of disease.

अष्टाङ्गसंग्रह वर्णित वर्णरसादि के अनुसार विशिष्ट चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk on the basis of specific taste etc. described by Vāgbhaṭa I)

(अ) वात से दूषित स्तन्य की रसादि के अनुसार चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk on the basis of its rasa or taste etc. caused by vāta)

तिक्तानुरसं स्तन्यं मुद्गमाषपलाशाभ्यां काकोलीयुगलेन च शोधयेत्। प्रियङ्गुधातकीपुष्पपद्मकदेवदारुक्षौद्रैर्वा। कषायानुरसं हिङ्गुसैन्धवता घृतेन। फेनिलं विच्छिन्नं प्लवमानं च बिल्वाग्निमन्थशृतेन पयसा हविषा च। सूप्यपर्णीकाकोलीबृहत्यवल्गुजफलैर्वा॥ (अ० सं० उ० २/१२)

तिक्तानुरस स्तन्य को मुद्ग, माष, पलाश एवं काकोलीद्वय (के क्वाथ के प्रयोग) अथवा प्रियङ्गु, धातकीपुष्प, पद्मक, देवदारु एवं मधु (के प्रयोग) से शुद्ध करें।

कषायानुरस को हिङ्गु एवं सैन्धव से युक्त घृत के प्रयोग से शुद्ध करें।

फेनिल, विच्छिन्न एवं तैरने वाले दुग्ध को बिल्व एवं अग्निमन्थ से सिद्ध दुग्ध एवं घृत अथवा सूप्यपर्णी, काकोली, बृहती तथा अवल्गुजफल के प्रयोग से शुद्ध करें।

The vitiated milk having *tiktānurasa* (bitter after-taste) should be purified by use of decoction of either *mudga, māṣa, palāśa* and both *kākolīs,* or else *priyaṅgu,* flowers of *dhātakī, padmaka* and *devadāru* mixed with honey.

Kaṣāyānurasa (astringent after-taste) should be purified by use of *ghṛta* mixed with *hiṅgu* and rock salt.

In *phenila* (frothy), *vicchinna* (having irregular precipitate) and *plavamāna* (floating if put in water) etc. disorders, the milk and *ghṛta* medicated with *bīlva* and *agnimantha* or else decoction of *sūpyaparṇī, kākolī, bṛhatī* and fruits of *avalguja* should be given.

(आ) पैत्तिक स्तन्यदुष्टि में रस एवं वर्णानुसार चिकित्सा (Treatment of vitiation of milk on the basis of rasa or taste and colour caused by pitta)

ताम्राबभासं ·····। तत् प्रियङ्गुमुस्ताशाबरलोद्धैः शोधयेत्। आम्लानुरसं ·····। तत् द्राक्षामधुकपयस्याश्री-

---

१. द्वन्द्वदुष्टं द्वियोगाभ्यां विशोधयेत्॥ (यो० र० क्षीरदोष० चि०)

२. तत्र धात्रीं बालं च पूर्वमेवाशु वामयेत्। विहितसंसर्गयोश्च भुस्तापाठातिविषाकुष्ठकटुकानां क्वाथं पानाय दद्यात्। रास्नाजमोदाप्रियङ्गुभद्रदारूणां वा। पाठातेजोवतीपुनर्नवावृश्चिकालीनां वा। भूनिम्बामृताकुटजफलशारिवाणां वा। वचाहरिद्रादिगणयोर्वा। पाठादिमहाकषायस्य वा। जम्ब्वाम्रतिन्दुककपित्थपत्राणां वा। बिल्वभङ्गस्य वा। अनुबन्धे च यथाव्याधिं प्रतिकुर्वीत।
(अ० सं० उ० २/१८)

३. तत्राशु धात्रीं बालं च वमनेनोपपादयेत्॥ २३॥
विहितायां च संसर्ग्यां प्रतिकुर्वीत योजयेद्गणम्। निशादिं वाऽथवा माद्रीपाठातिक्तघनामयान्॥ २३॥
अनुबन्धे यथाव्याधिं प्रतिकुर्वीत कालवित्॥ (अ० हृ० उ० २/२३, २४ व २६)

४. पाटामूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः। सारिवाघनतिक्ताख्यं तच्च स्तन्यविशोधनम्॥ (यो० र० क्षीरदो० चि०)

५. मद्यादीनां वा योजयेत्॥ (अ० हृ० उ० २/२४ की अरुण० टीका)

Scanned with CamScanner

पर्णीभिः । कटुकानुरसं·····। तत् काकोलीविदारीभ्यां मधुपर्ण्या च । भृशोष्णं ····· तच्चन्दनोत्पलकमलैः ॥

(अ० सं० उ० २/१४)

ताम्रावभास स्तन्य को प्रियङ्गु, मुस्ता एवं शाबरलोध्र (के क्वाथ के प्रयोग) से शुद्ध करें।

अम्लानुरस में द्राक्षा, मधुक, पयस्या (क्षीरविदारी ?) तथा श्रीपर्णी (के क्वाथ) का प्रयोग करें।

कटुकानुरस में काकोली, विदारी तथा मधुपर्णी (गुडूची या विकंकत) का प्रयोग करें।

अतिउष्ण दुग्ध की चिकित्सा के लिए चन्दन, उत्पल एवं कमल का प्रयोग करें।

For purifying the milk, having coppery colour, decoction of *priyaṅgu, mustā* and *śābaralodhra* should be used.

Amlānurasa (sour after-taste) should be treated with decoction of *drākṣā, madhuka, payasyā* and *śriparṇī.*

In *kaṭukānurasa* (pungent after-taste) *kākolī, vidārī* and *madhuparṇi* should be used.

In *ati uṣṇa* (excessively hot) milk *candana, utpala* and *kamala* should be prescribed.

(इ) श्लैष्मिक स्तन्यदुष्टि की रसादि के अनुसार चिकित्सा (Treatment of disorders of milk on the basis of rasa or taste caused by kapha)

लवणानुरसं ·····। तत् पिचुमन्दपटोलीक्षीरीवृक्षैः शोधयेत्। तन्तुमत् ·····। तत् पिप्पलीनागरचूर्णेन समधुघृतेन। गुरु·····। तत् पाठाव्योषकल्केन पञ्चकोलचूर्णेन वा क्षौद्रघृताप्लुतेन। दोषोपक्रमणीयं चेक्षेत।

(अ० सं० उ० २/१६)

लवणानुरस स्तन्य का पिचुमन्द, पटोली और क्षीरीवृक्षों (वट, अश्वत्थादि के क्वाथ) से शोधन करें।

तन्तुमत् स्तन्य में पिप्पली एवं नागर के चूर्ण को मधु एवं घृत के साथ प्रयोग करें।

गुरु स्तन्य में पाठा एवं व्योष या पञ्चकोल के चूर्ण को अधिक मात्रा में मधु एवं घृत मिला कर दें।

दूषित स्तन्य की चिकित्सा के लिए दोषोपक्रमणीय अध्याय में वर्णित उपाय भी करें।

The vitiated milk having *lavaṇānurasa* (saltish after-taste) should be purified by the use of decoction of *picumanda, paṭolī,* and *kṣīrīvṛkṣa* (latex yielding trees).

In *tantumat* (presence of thread like structures) disorder of milk, powdered *pippalī* and *nāgara* with honey and *ghṛta* should be used.

In *guru* (heavy) disorder of milk, powder of either *pāṭhā* and *vyoṣa* or *pañcakola* mixed with good quantity of honey and *ghṛta* should be prescribed.

For all disorders of milk, the measures prescribed to suppress that particular *doṣa* should be used.

(ई) तनु एवं सान्द्र आदि स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of liquid and thick etc. other disorders of milk)

इक्षुमूलकशेर्वाख्ययष्ट्याह्वैस्तनु शुद्धयति। सान्द्रं तु क्षौद्रकाश्मर्यगुडूचीतण्डुलाम्बुभिः ॥
शृतैर्वा सुरसश्वेतसर्षपाबृहतीद्वयैः । ग्रथितं पद्मकोशीरफलिनीश्वेतचन्दनैः ॥

(अ० सं० उ० २/३०)

तनु स्तन्य, इक्षुमूल, कशेरु एवं यष्ट्याह्व के प्रयोग से शुद्ध हो जाता है।

सान्द्र स्तन्य में मधु, काश्मरी तथा गुडूची को तण्डुलाम्बु के साथ अथवा सुरसा, श्वेत सर्षप तथा दोनों बृहती के क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए, सान्द्र अर्थात् घन स्तन्य वमन-साध्य व्याधि है[१]।

ग्रथित स्तन्य-दुष्टि में पद्मक, उशीर, फलिनी एवं श्वेत चन्दन (के क्वाथ) का प्रयोग करना चाहिए।

The *tanu* (liquid) milk gets purified by use of root of *ikṣu, kaśeru* and *yaṣṭyāhwa.*

In *sāndra* (thick) disorder of milk, either powdered *kāśmarī* and *guḍūcī* with honey and rice-water or decoction of *surasā, śweta sarṣapa* and both the *bṛhatīs* should be used. Emesis is beneficial.

In *grathita* (coagulated or clotted) disorder of milk, decoction of *padmaka, uśīra, phalinī (priyaṅgu)* and *śweta candana* should be prescribed.

चरकसंहिता वर्णित अष्ट क्षीरदोष-चिकित्सा (Treatment of eight milk disorders described by Caraka)

(१) विरस स्तन्य की चिकित्सा (Treatment of virasa or tasteless or insipid milk)

आभ्यन्तर प्रयुक्त औषधि (Oral medication)

पाययेद्विरसक्षीरं द्राक्षामधुकसारिवाः ॥ २६३॥
श्लक्ष्णपिष्टां पयस्यां च समालोड्य सुखाम्बुना ॥ २६४ ॥ (च० सं० चि० ३०)

विरस क्षीरदुष्टि में द्राक्षा, मधुक, सारिवा तथा पयस्या को खूब महीन पीसकर सुखोष्ण जल में घोलकर पीने को दें।

Finely powdered *drākṣā, madhuka, sārivā* and *payasyā* mixed with luke-warm water should be given.

बाह्य प्रयोग (External application)

पञ्चकोलकुलत्थैश्च पिष्टैरालेपयेत्स्तनौ। शुष्कौ प्रक्षाल्य निर्दुह्यात्तथा स्तन्यं विशुध्यति ॥

(च० सं० चि० ३०/२६४, २६५)

पञ्चकोल एवं कुलत्थ को महीन पीसकर स्तनों पर लेप दें। इस लेप के सूख जाने पर उसे धोकर दूध को निकाल दें (स्तनों में भरे हुए दूध को निचोड़ दें), इस प्रकार दुग्ध शुद्ध हो जाता है।

Finely pestled *pañcakola* and *kulattha* should be applied over breasts. When this paste gets dried up, it should be washed and then milk should be expressed out properly.

(२) फेनसङ्घात स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of phenasaṅghāta or frothy milk)

आभ्यन्तर प्रयुक्त ओषधियाँ (Oral medicines)

फेनसङ्घातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत् स्त्रियम् ॥ २६५॥
पाठा नागरशार्ङ्गेष्टापूर्वाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना ॥ २६६॥
किराततिक्तकं शुण्ठीं सामृतां क्वाथयेद्भिषक् ॥ २६७॥
तं क्वाथं पाययेद्धात्रीं स्तन्यदोषनिबर्हणम् ॥ २६८॥ (च० सं० चि० ३०)

१. ·····क्षीरघनत्व ····· वमनसाध्या इति। (का० सं० सि० ७/३)

Scanned with CamScanner

जिस स्त्री का फेनसङ्घात सदृश दुग्ध हो गया हो उसे पाठा, नागर, शार्ङ्गेष्टा तथा मूर्वा को पीसकर सुखोष्ण जल के साथ पिलावें।

अथवा किराततिक्त, शुण्ठी एवं अमृता के क्वाथ को स्तन्य-दोष निवारणार्थ पीने को दें।

The woman whose milk resembles like collection of froth or mixed with froth should be given paste of *pāṭhā, nāgara, śārṅgeṣṭā* and *mūrvā* with luke-warm water. Alternatively decoction of *kirātatikta, śuṇṭhī* and *amṛtā* can also be used.

***बाह्य प्रयोग** (External application)*

अञ्जनं नागरं दारु विल्वमूलं प्रियङ्गवः ॥ २६६॥
स्तनयोः पूर्ववत् कार्यं लेपनं क्षीरशोधनम् ॥ २६७॥
स्तनौ चालेपयेत् पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः ॥ २६८॥ (च० सं० चि० ३०)

अञ्जन, नागर, दारु, विल्वमूल (त्वक्) तथा प्रियङ्गु (फल) का (महीन पीस कर) पहिले की भाँति (विरस दुग्धान्तर्गत वर्णित विधि से) स्तनों पर लेप दुग्ध-शोधक होता है।

अथवा स्तनों पर यव, गेहूँ तथा सरसों पोसकर लेप करना चाहिए।

Nicely pestled *añjana, nāgara, dāru,* root bark of *bilva* and fruit of *priyaṅgu* should be applied over breast. When this plaster gets dried up, it should be washed and milk squeezed out. Similarly pestled *yava* (barley), *godhūma* (wheat) and *sarṣapa* (mustard) can also be applied.

***(३) रूक्ष स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा** (Treatment of rukṣa or dry milk or milk having no fat)*

***आभ्यन्तर प्रयोग** (Oral medicine)*

षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैः स्तन्यशोधनैः। रुक्षक्षीरा पिबेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिबेत् ॥
(च० सं० चि० ३०/२६९)

रुक्ष क्षीर वाली स्त्री, षड्विरेकाश्रितीय अध्याय में वर्णित स्तन्यशोधक औषधियों (पृष्ठ ६९७) से सिद्ध दुग्ध या घृत का पान करे।

The woman having *rukṣa* milk, should use milk or *ghṛta* treated with *pāṭhā*, etc. ten milk-purifying drugs described earlier.

***बाह्य प्रयोग** (External application)*

पूर्ववज्जीवकाद्यै च पञ्चमूलं प्रलेपनम्। स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोधनम् ॥
(च० सं० चि० २३०/२७०)

जीवक आदि जीवनीय वर्ग की (दस) औषधियों एवं पञ्चमूल के सुखोष्ण कल्क का पूर्ववर्णित विधि से लेप स्तन्य-शोधक होता है।

Luke-warm paste of *jīvaka* etc. ten drugs of *jīvanīya* group and *pañcamūla* should be applied, then washed when dried, followed by expression of milk.

***(४) विवर्ण स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा** (Treatment of vivarṇa or discoloured milk)*

***आभ्यन्तर प्रयोग** (Oral medicine)*

यष्टीमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिकाः। शीताम्बुना पिबेत्कल्कं क्षीरवैवर्ण्यनाशनम् ॥
(च० सं० चि० ३०/२७१)

यष्टीमधुक, मृद्वीका, पयस्या, सिन्धुवारिका के कल्क का शीतल जल से पान, क्षीर के वैवर्ण्य दोष का नाशक है। इस व्याधि को महर्षि काश्यप ने विरेचन के योग्य माना है[१]।

Use of pestled *yaṣṭīmadhuka, mṛdwīkā, payasyā* and *sindhuvārikā* with cold water cures *vaivarṇya* disorder. Use of purgatives is beneficial.

***बाह्य प्रयोग** (External application)*

द्राक्षामधुककल्केन स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्। प्रक्षाल्य वारिणा चैव निर्दुह्यात्तौ पुनः पुनः ॥
(च० सं० चि० ३०/२७२)

स्तनों पर द्राक्षा तथा मधुक के कल्क का लेप कर (उस कल्क के) सूख जाने पर (स्तनों को) पानी से धोकर, बार बार दूध निकालना चाहिए।

Paste of *drākṣā* and *madhuka* should be applied over breasts, when dried, should be washed and milk expressed out repeatedly.

***(५) दौर्गन्ध्य स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा** (Treatment of daurgandhya or foul smell of milk)*

***आभ्यन्तर प्रयोग** (Oral medicine)*

विषाणिकाजशृङ्ग्यौ च त्रिफलां रजनीं वचाम्। पिबेच्छीताम्बुना पिष्ट्वा क्षीरदौर्गन्ध्यनाशिनीम् ॥
लिह्याद्वाऽप्यभयाचूर्णं सव्योषं माक्षिकप्लुतम्। क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थं धात्री पथ्याशिनी तथा ॥
(च० सं० चि० ३०/२७३, २७४)

विषाणिका (आवर्तकी, कर्कटशृङ्गी या मेषशृङ्गी ?), अजशृङ्गी, त्रिफला, रजनी तथा वचा को शीतल जल के साथ पीसकर पान करना दुग्ध की दुर्गन्धता का नाश करता है।

अथवा अभया तथा व्योष के चूर्ण को मधु के साथ क्षीर-दुर्गन्धि नाशार्थ प्रयोग करें। साथ ही धात्री पथ्य आहार का प्रयोग करे।

Use of *viṣāṇikā, ajaśṛṅgī, triphalā, rajanī* and *vacā* pestled with cold water cures bad smell of milk.

Powdered *abhayā* and *vyoṣa* with honey should also be used for the purpose.

Alongwith these drugs, the wet nurse should use congenial diet.

***बाह्य प्रयोग** (External application)*

सारिवोशीरमञ्जिष्ठाश्लेष्मातककुचन्दनैः। पत्राम्बुचन्दनोशीरैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् ॥
(च० सं० चि० ३०/२७५)

१. .....विवर्णक्षीरा .....। (का० सं० सि० ७/५)

Scanned with CamScanner

सारिवा, उशीर, मञ्जिष्ठा, श्लेष्मातक तथा कुचन्दन अथवा पत्र, अम्बु, चन्दन तथा उशीर (के कल्क) का धात्री के स्तनों पर लेप करें।

Paste of either *sārivā, uśīra, mañjiṣṭhā, śleṣmātaka* and *kucandana* or *patra, ambu, candana* and *uśīra* should be applied over breasts.

(६) अति स्निग्ध स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of atisnigdha or over unctuous milk)

स्निग्धक्षीरा दारुमुस्तपाठाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना। पीत्वा ससैन्धवा क्षिप्रं क्षीरशुद्धिमवाप्नुयात्॥
(च० सं० चि० ३०/२७६)

अतिस्निग्ध क्षीर-दोष से दूषित धात्री को दारु, मुस्ता, पाठा को पीसकर सैन्धव नमक मिलाकर सुखोष्ण जल से पिलाने पर दुग्ध की शुद्धि हो जाती है।

Oral use of paste of *dāru, mustā, pāṭhā* and rock salt with luke warm water purifies the milk.

(७) पिच्छिल स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of picchila or slimy milk)

आभ्यन्तर प्रयोग (Oral medicine)

पाययेत् पिच्छिलक्षीरां शार्ङ्गेष्टाभयां वचाम्। मुस्तनागरपाठाश्च पीताः स्तन्यविशोधनाः॥
तक्रारिष्टं पिबेच्चापि यदुक्तं गुदजोपहम्॥ (च० सं० चि० ३०/२७७, २७८)

पिच्छिल दोष से दूषित दुग्ध वाली धात्री के द्वारा शार्ङ्गेष्टा, अभया, वचा, मुस्ता, नागर तथा पाठा (के कल्क को सुखाम्बु में मिलाकर) का पान स्तन्य-शोधक है।

गुद-व्याधियों (अर्श) में वर्णित तक्रारिष्ट का भी पान करना चाहिए।

Use of pestled *śārṅgeṣṭā, abhayā, vacā, mustā, nāgara* and *pāṭhā* mixed with luke-warm water purifies the milk of wet-nurse having *picchila* milk.

Use of *takrāriṣṭa* prescribed for *guda-vyādhi* (diseases of anus or piles) is also beneficial.

बाह्य प्रयोग (External application)

विदारीबिल्वमधुकैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्। (च० सं० चि० ३०/२७८)

धात्री के स्तनों पर विदारीकन्द, बिल्व तथा मधुक (के कल्क) का लेप करना चाहिए।

Pestled *vidārīkanda, bilva* and *madhuka* should be applied over breasts.

(८) गुरु स्तन्यदुष्टि की चिकित्सा (Treatment of guru or heavy milk)

आभ्यन्तर प्रयोग (Oral medicine)

त्रयमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम्। गुरुक्षीरा पिबेदाशु स्तन्यदोषविशुद्धये॥
पिबेद्वा पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्॥ (च० सं० चि० ३०/२७९, २८०)

गुरु दोष से दूषित स्तन्य वाली धात्री स्तन्यदोष की शुद्धि के लिए त्रायमाण, अमृता, निम्ब, पटोल तथा त्रिफला का क्वाथ पिए।

अथवा पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक एवं नागर का क्वाथ पिए।

महर्षि काश्यप ने इसे वमन-साध्य व्याधि माना है[1]।

The wet-nurse having *guru* (heavy) milk disorder, should use decoction of either *trāyamāṇa, amrtā, nimba, paṭola* and *triphalā* or else *pippalīmūla, cavya citraka* and *nāgara*. These preparations purify her milk. Emesis is also beneficial.

बाह्य प्रयोग (External application)

बलानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाभिर्लेपयेत् स्तनौ॥ पृश्निपर्णीपयस्याभ्यां स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत्॥
(च० सं० चि० ३०/२८०, २८१)

बला, नागर, शार्ङ्गेष्टा तथा मूर्वा (के कल्क) का स्तनों पर लेप करें।

या पृश्निपर्णी एवं पयस्या का धात्री के स्तनों पर लेप करें।

Paste of either *balā, nāgara, śārṅgeṣṭā* and *mūrvā* or else *pṛśniparṇī* and *payasyā* should be applied over the breasts.

□

१. ·····क्षीरगौरव·····वमनसाध्यता इति। (का० सं० सि० ७/३)

Scanned with CamScanner

सन्दर्भ ग्रन्थ

(Bibliography)

अँग्रेजी-हिन्दी-कोश : फ़ॉद कामिल बुल्के; कैथॉलिक प्रेस, राँची, १९६८ (प्रथम संस्करण)

An English-Hindi Dictionary : By Father C. Bulcke, Catholic Press, Ranchi, 1968; (Ist ed.)

अमरकोष (अमरसिंह विरचित) : भानुजि दीक्षित कृत रामाश्रमी (व्याख्यासुधा) टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७० (प्रथम संस्करण)

Amarakoṣa (of Amarasiṃha) : With Rāmāśramī (Vyākhyāsudhā) commentary of Bhānuji Dīkṣita; Chaukhambha Sanskrit Series Office, Varanasi, 1970 (Ist ed.)

अष्टाङ्गसंग्रह, (प्रथम भाग*): अत्रिदेव भुस कृत हिन्दी टीका; निर्णयसागर मुद्रणालय, बम्बई, १९५१, (प्रथम संस्करण)

वही : (द्वितीय भाग*): अत्रिदेव विद्यालंकार कृत हिन्दी टीका; अत्रिदेव विद्यालंकार, बाँसफाटक वाराणसी, १९६२, (प्रथम संस्करण)

वही: (प्रथम एवं द्वितीय भाग**); इन्दु व्याख्या सहित; रुद्रपाराशव द्वारा त्रिचूर में प्रकाशित, १९१३ (प्रथम संस्करण)

वही: इन्दु व्याख्या सहित** महेश अनन्त आठवले, श्रीमद् आत्रेय प्रकाशनम् 'नंदनंदन', पुणे, १९८० (प्रथम संस्करण)

AṣṭāṅgaSaṅgraha (Part I*) : Hindi Comm. by Atrideva Gupta; Nirṇaya Sāgara Press, Bombay, 1951 (Ist ed.)

Ibid : (Part II*) : Hindi comm. by Atrideva Vidyalankara; Atrideva Vidyalankar; Bansaphataka, Varanasi, 1962 (Ist ed.)

Ibid : (Part I & II**) : With Indu Commentary; Rudraparashava, Trichura, 1913 (Ist ed.)

Ibid : With commentary by Indu**, Maheśa Ananta Āṭhawale, Śrīmad Ātreya Prakāśanaṃ 'Nandanandana' Pune, 1980 (Ist. ed.)

अष्टाङ्गहृदय* : लालचन्द्र वैद्य कृत हिन्दी टीका; मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६३ (प्रथम संस्करण)।

वही** : अरुणदत्त कृत सर्वाङ्गसुन्दरा एवं हेमाद्रि कृत आयुर्वेदरसायन टीका; चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९८२ (सप्तम संस्करण)

Aṣṭāṅga Hṛdaya* : Hindi Comm. by Lal Chandra Vaidya, Motilal Benarasi Dass, Varanasi, 1963 (Ist ed.)

Ibid** : With Sarwāṅgasundarā comm. of Aruṇadatta and Āyurvedarasāyana comm. of Hemādri ; Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 1982 (VIIth ed.)

ऑपरेटिव् ऑब्स्टेट्रिक्स (मुनरोकर की) : जे. चस्सार मॉयर एवं पी. आर. म्येरक्रफ़, बैल्लीरे; टिण्डाल एवं कास्सेल लन्दन, १९७१ (अष्टम संस्करण)

Operative Obstetrics (Munro Kerr's) : J. Chassar Moir and P. R. Myerscough; Baillire, Tindall and Cassell London, 1971 (VIIIth ed.)

आयुर्वेदिक कॉन्सेप्ट्स इन गाइनिकॉलॅजि : नि. ग. जोशी; ज. ग. जोशी, शुभदा प्रकाशन १३९९, सदाशिव पेठ, पूना, १९६५ (प्रथम संस्करण)

Āyurvedic Concepts in Gynaecology : By N. G. Joshi; J. G. Joshi, Shubhada Prakashan, 1399, Sadashiv Peth, Poona, 1965 (Ist ed.)

काश्यप संहिता* : प्रो० प्रेमवती तिवारी कृत सम्पादन एवं आँग्लभाषा अनुवाद, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन वाराणसी, १९९६ (प्रथम संस्करण)

वही**: श्री सत्यपालभिषगाचार्य कृत हिन्दी टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९५३, (प्रथम संस्करण)

KāśyapaSaṃhitā* : Edi. and translated by Prof P.V. Tewari, Chaukhambha Viswabharati. Prakashan 1996, (Ist edi.)-

Ibid** : Hindi comm. by Shri Satyapāla Bhisagācārya; Chaukhambha Sanskrit series office, Varanasi 1953, (Ist ed.)

चरक संहिता (चक्रपाणिदत्त कृत आयुर्वेददीपिका टीका सहित) : पं० काशीनाथ शास्त्री कृत "विद्योतिनी" टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी,

प्रथम भाग, १९६९ (प्रथम संस्करण)

द्वितीय भाग, १९७० (प्रथम संस्करण)

Caraka Saṃhitā : With Āyurvedadīpikā comm. of Cakrapāṇidatta; 'Vidyotini' comm. by Pt. Kāśīnātha Śāstrī; Chaukhambha Sanskrit series office, Varanasi;

Part I 1969 (Ist ed.)

Part II 1970 (Ist ed.)

टेक्स्ट बुक ऑब् गाइनिकॉलॅजि (शॉ की) : जॉन हाकिन्स एवं गॉर्डन बॉन द्वारा परिस्कृत; दि इंग्लिस लैंग्वेज बुक सोसाइटी एवं चर्चिल लिविंग स्टोन, लन्दन, १९७५ (नवम संस्करण)

Text Book of Gynaecology (Shaw's) : Revised by Jhon Howkins and Gordon Bourne; The English language book Society & Churchill Living Stone, London, 1975 (IXth ed.)

पाराशरस्मृति : श्री वासुदेव कृत हिन्दी टीका; चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८३ (द्वितीय संस्करण)

Pārāśara Smṛti : Hindi Comm. by Śrī Vāsudeva, Chowkhambha Amarabharati Prakashan, Varanasi, 1983 (2nd ed.)

प्रत्यक्षशारीरम् : (महामहोपाध्याय गणनाथ सेन विरचित), प्रथम भाग:-कविराज यस. के. सेन, कल्पतरु पैलेस, कलकत्ता, १९४० (चतुर्थ संस्करण)

वही : द्वितीय भाग: कविराज चारुचन्द्र विशारद, कल्पतरु आयुर्वेदिक वर्क्स, ग्रे स्टीट, कलकत्ता, १९२४ (प्रथम संस्करण)

Pratyakṣa Śārīraṃ : By Gaṇanātha Sen, Part I—Kavirāja S. K. Sen, Kalpataru Palace, Calcutta, 1940 (IVth ed.)

Parts II—Kavirāja Cārucandra Viśārada, Kalpataru Ayurvedic works, Grey Street Calcutta. 1924 (Ist ed.)

Scanned with CamScanner

प्रिन्सिपल्स ऑव् गाइनिकॉलॅजि : सर नार्मन जेफकॉट : बटरवर्थ एण्ड क० (प्रकाशक) लिमि० लन्दन एवं बास्टन, १९७५ (चतुर्थ संस्करण)

Principles of Gynaecology : By Sir Norman Jeffcoate; Butterworth and Co. (Publishers) Ltd. London and Boston, 1975 (IVth ed.)

भावप्रकाश : श्री ब्रह्मशङ्कर मिश्र कृत 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी;

प्रथम भाग १९६९ (पञ्चम संस्करण);

द्वितीय भाग १९६४ (तृतीय संस्करण)

Bhāwaprakāśa : 'Vidyotinī' Hindi comm. by Śrī Brahma Śaṅkara Miśra; Chaukhambha Sanskrit series office Varanasi;

Part I 1969 (Vth ed.)

Part II 1964 (IIIrd ed.)

भेलसंहिता : चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५९ (प्रथम संस्करण)

BhelaSaṃhitā : Chaukhambha Vidyabhawana, Varanasi, 1959 (Ist ed.)

माधवनिदानम् (पूर्वार्द्धम्) : श्रीविजयरक्षित श्रीकण्ठदत्त कृत 'मधुकोष व्याख्या' एवं सुदर्शन शास्त्री कृत 'यशोवती' टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६६ (तृतीय संस्करण)

वही : (उत्तरार्द्धम्) : 'श्रीविजयरक्षित श्रीकण्ठदत्त कृत 'मधुकोष व्याख्या' एवं श्री दीनानाथ शर्मा कृत 'यशोवती' टीका; मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दरियागञ्ज दिल्ली, १९५० (द्वितीय संस्करण)

MādhawaNidānaṃ Pūrvārddhaṃ) : With 'Madhukoṣa' comm. of Vijayarakṣita Śrīkaṇṭhadatta and 'Vidyotinī' Hindi Comm. by Sudarshana Shastri; Chaukhambha Sanskrit series office, Varanasi, 1966 (IIIrd ed.)

Ibid (Uttarāddham) : With 'Madhukoṣa' comm. of Vijayarakṣita Śrīkaṇṭhadatta and 'Yaśowatī' Hindi comm, by Śrī Dināṇatha Sharma; Mehara chandra Lakshamana dasa, Dariya Ganja Delhi, 1950 (IInd ed).

मैन्युअॅल ऑव् ऑब्स्टेट्रिक्स (हालैण्ड एवं ब्रिउ की) : राबर्ट परसीवल, इंग्लिस लैंग्वेज बुक सोसाइटी एण्ड जे० एण्ड ए० चरचिल लिमि० लन्दन, १९६९ (त्रयोदश संस्करण)

Manual of Obstetrics (Holland and Brew's) : Robert Percival; The English language book Society and J. & A. Churchill Ltd, London, 1969 (XIIIth ed.)

मैन्युअॅवल ऑव् मिड्विफॅरि : हेनरी जेलेट एवं डेविड जी० मैण्डिल-लिखित; बैल्लॅरे टिण्डाल एण्ड क०, लन्दन, १९२१ (तृतीय संस्करण)

Manual of Midwifery : By Henry Jellett and David G. Mandill; Baillire Tindall and Co-London, 1921 (IIIrd ed.)

योगरत्नाकर : लक्ष्मीपति शास्त्री कृत 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वारणसी, १९५५ (प्रथम संस्करण)

Yogaratnākara : 'Vidyotinī' Hindi comm. by Lakshmipati Shastri, Chaukhambha Sanskrit series office, Varanasi, 1955 (Ist ed.)

वङ्गसेन संहिता : राजीवकुमार राय कृत हिन्दी टीका; प्राच्य प्रकाशन वाराणसी, १९८३ (प्रथम संस्करण)

Vaṅgasena Saṃhitā : Hindi comm. by Rajiva Kumara Rai, Prachya Prakashan Varanasi, 1983 (Ist ed.)

शार्ङ्गधर संहिता* : प्रयागदत्त शर्मा कृत हिन्दी टीका; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६६ (चतुर्थ संस्करण)

वही** : आढ्यमल्ल कृत 'दीपिका' एवं काशीराम वैद्य कृत 'गूढार्थदीपिका' टीका; चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९८३ (तृतीय संस्करण)

Śaṁgadhara Saṃhitā*; Hindi comm. by Shri Prayagadatta Sharma, Chaukhambha sanskrit series office Varanasi, 1966 (IVth ed.)

Ibid** : With 'Dīpikā' comm. of Ādhamalla and 'Gūḍhārtha Dīpikā' comm. of Kāśīrāma Vaidya, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 1983 (IIIrd ed.)

संस्कृत इंग्लिश डिक्शॅनरि : सर मोनियर मोनियर-विलियम विरचित; मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९७० (प्रथम संस्करण)

Sanskrit English Dictionary : By Sir Monier Monier-Williams; Motilal Benarasi Das Delhi, 1970 (Ist ed. Indian)

संस्कृत इंग्लिश डिक्शॅनरि : वामन शिवराम आप्टे विरचित; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७३ (प्रथम संस्करण)

Sanskrit English Dictionary : by Vaman Shivram Apte; Motilal Benarasi Das, Delhi, 1973 (Ist ed.)

सुश्रुत संहिता* : डल्हणाचार्य कृत निबन्धसंग्रह एवं निदानस्थान में गयदासाचार्य कृत न्यायचन्द्रिका पञ्जिका टीका; चौखम्भा ओरियन्टालिया १९८० (चतुर्थ संस्करण-पुनर्मुद्रण)

वही** : डल्हनाचार्य कृत 'निबन्धसंग्रह' टीका; सी० के० सेन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता.

पूर्वभाग**-तमकाब्द १८५९ (प्रथम संस्करण)

पर भाग**-तमकाब्द १८६० (प्रथम संस्करण)

वही** : चक्रपाणिदत्त कृत 'भानुमती व्याख्या'; श्यामसुन्दर शर्मा, एम्० ए०, रजिस्ट्रार आगरा विश्वविद्यालय एवं मन्त्री स्वामी लक्ष्मीराम निधि, १९३९ (प्रथम संस्करण)

वही** : श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर कृत 'आयुर्वेद रहस्य दीपिका' टीका; जयकृष्णदास हरिदास गुप्त चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९५० (द्वितीय संस्करण)

वही** : अम्बिकादत्त शास्त्री कृत 'आयुर्वेद तत्त्वसन्दीपिका' व्याख्या; चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी,

भाग १ - १९६६ द्वितीय संस्करण

भाग २ - १९६८ द्वितीय संस्करण

Suśruta-Saṃhitā* : With Nibandha Saṅgraha comm. of Ḍalhaṇācārya and Nyāyacandrikā Pañjikā comm. of Gayadāsācārya on Nidāna Sthāna; Chaukhambha orientalia, 1980 (IVth edi. reprint)

Scanned with CamScanner

Ibid : With 'Nibandha-Sangraha' comm. of Ḍallanācārya, C. K. Sen and Co. Ltd. Calcutta.,
Pūrva Bhāga** (Part I) Tamakābda 1859 (Ist ed.) :
Para Bhāga** (Part II) Tamakābda 1860 (Ist ed.)

Ibid** : With 'Bhānumatī' comm. of Cakrapānidatta; Shyamasundara Sharma, Registrar Agara University and Secretary Swami Lakshmi Rama Trust, 1939 (Ist ed.)

Ibid** : 'Āyurveda Rahasya Dipikā. Comm. by Shri B. G. Ghanekara, Jaikrishnadasa. Haridasa Gupta, Chowkhambha Sanskrit series office, Varanasi, 1950 (IInd ed.)

Ibid** : 'Āyurveda Tatwa Samdīpikā' comm. by Ambikadatta Shastri; Chaukhambha Sanskrit series office, Varanasi,
Part I - 1966 (IInd edi.)
Part II - 1968 (IInd edi.)

हारीतसंहिता* : रविदत्तशास्त्री कृत टीका सहित; गङ्गाविष्णु, गणपतकृष्णजी मुद्रणालय, बम्बई, १८९३ (प्रथम संस्करण)

वही** : एलीराजन, इन्स्टीट्यूट डे फ्रान्सिस, इण्डॉलाजी, पाण्डुचेरी, १९७४ (प्रथम संस्करण)

HārītaSaṃhitā* : Hindi comm. by Ravidatta Shastri; Gangavishnu, Ganapatakrishnaji Press, Bombay, 1893 (Ist ed.)

Ibid** : Elirajan, Institute De Fransis Indology, Panducheri, 1974 (Ist ed.)

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक में '**' चिह्नित पुस्तकों को विषयवस्तु का भी प्रयोग किया गया है, परन्तु सन्दर्भसंख्या '*' चिह्नित पुस्तकों से ही उद्धृत की गई है।

(Though subject matter of '**' marked books is also taken, however, in references, the verse numbers from books marked '*' only have been cited.)

परिशिष्ट - एक
(Appendix - I)
मान (Measures)

आयुर्वेदिक संहिताओं में तीन प्रकार के मानों का वर्णन है। पौतव मान (भार मान), द्रुवय मान (आयतन मान) एवं पाय्य मान (लम्बाई का मान)। सम्प्रति ग्रन्थ का सम्बन्ध केवल पौतव मान से है।

पौतव मान दो प्रकार का है, मागध एवं कालिङ्ग। यद्यपि मागध मान ही अधिक मान्य रहा है, परन्तु दाशम्लविक या मीटरी पद्धति से तुलनात्मक विवरण करने पर कालिङ्ग मान अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि आजकल सामान्य रूप में १ माष (मासा) को १ ग्राम तथा १ कर्ष को १० ग्राम मान लेते हैं जो कालिङ्ग मान सदृश (१० माष = १ कर्ष) है। अतः मानतालिका कालिङ्ग मान के ही आधार पर वर्णित है।

In *āyurvedika* classics three types of measures are described, i.e. *pautava māna* (measure of weight), *druvaya māna* (measure of volume) and *pāyya māna* (measure of length). The present book is concerned only with *pautava māna*.

This *pautava māna* is of two types i.e. *māgadha* and *kāliṅga*. Though earlier, *māgadha* was more acceptable to *āyurvedika* world, however, in attempting to correlate these measures with today's prevalent measures of metric system, *kāliṅga māna* is convenient, because now a days generally one *māṣa (māsā)* is taken as one gramme and one *tolā* or *karṣa* as ten grammes, which is in conformity with *kāliṅga māna* (ten *māṣa = 1 karṣa).* Thus, present table is given on the basis of *kāliṅga māna.*

संहिताओं में वर्णित मान (Measure described in āyurvedika classics)		अधुना मान्य दाशम्लविक पद्धति का मान (Presently acceptable measure of metric system)		
गुञ्जा *(Guñjā)*	=	१२५ मि० ग्रा० (125 mgm)		
८ गुञ्जा	=	१ माष	=	१ ग्राम
(8 Guñjā	=	*1 Māṣa*	=	*1 gms)*
४ माष	=	१ शाण	=	४ ग्राम
(4 Māṣa	=	*1 Śāṇa*	=	*4 gms)*
१० माष	=	१ कर्ष	=	१० ग्राम
(10 Māṣa	=	*1 Karṣa*	=	*10 gms)*
२ कर्ष	=	१ शुक्ति*	=	२० ग्राम
(2 Karṣa	=	*1 Śukti**	=	*20 gms)*
२ शुक्ति*	=	१ पल	=	४० ग्राम
*(2 Śukti**	=	*1 Pala*	=	*40 gms)*

Scanned with CamScanner

२ पल	=	१ प्रसृत*	=	८० ग्राम
(2 Pala	=	*1 Prasṛta**	=	*80 gms)*
२ प्रसृत*	=	१ कुडव	=	१६० ग्राम
*(2 Prasṛta**	=	*1 Kuḍava*	=	*160 gms)*
२ कुडव	=	१ मानिका	=	३२० ग्राम
(2 Kuḍava	=	*1 Mānikā*	=	*320 gms)*
२ मानिका	=	१ प्रस्थ	=	६४० ग्राम
(2 Mānikā	=	*1 Prastha*	=	*640 gms)*
४ प्रस्थ	=	१ आढक	=	२.५६ कि० ग्राम
(4 Prastha	=	*1 Āḍhaka*	=	*2.56 Kgs)*
४ आढक	=	१ द्रोण	=	१०.२४ कि० ग्राम
(4 Āḍhaka	=	*1 Droṇa*	=	*10.24 Kgs)*
१०० पल	=	१ तुला	=	४ कि० ग्राम
(100 Pala	=	*1 Tulā*	=	*4 Kgs)*

मुष्टिक प्रमाण**
*(Muṣṭika Pramāna * *)*

एक मुट्ठी में आने योग्य द्रव्य की मात्रा
(Fistful quantity)

* कालिङ्गमान में वर्णित न होकर मागधमान में वर्णित हैं।
* (Not described in *kāliṅga māna* but described in *māgadha māna)*
** इन मानों में वर्णित नहीं है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में उद्धृत है।
** (Not described in measures, but referred in the book)

परिशिष्ट-२

औषधि योग सूची

यद्यपि पुस्तक में यत्र-तत्र अनेकों द्रव्यों से निर्मित चूर्ण, कल्क, क्वाथ, घृत एवं तैल आदि कल्पनाओं का वर्णन है, परन्तु उन सभी का विशिष्ट नाम नहीं दिया गया है। प्रस्तुत सूची में विशिष्ट नाम से वर्णित योगों के ही साथ एकौषधि या एक विशिष्ट औषधि वर्ग से साधित घृत, तैलादि का भी अकारादि क्रम से व्यवस्थापन है।

योग-नाम	पृष्ठ-संख्या	प्रयोग-विधि	चिकित्स्य-व्याधि
अरिष्ट–			
अच्छ अरिष्ट	५७४	आभ्यन्तर	मक्काल शूल
अभयारिष्ट	३३७	आभ्यन्तर	गर्भपातोपरान्त बस्ति एवं उदर का शूल
,,	४०९	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
तक्रारिष्ट	७१२	आभ्यन्तर	पिच्छिल स्तन्यदुष्टि
अवलेह–			
कल्याणकावलेह	२६९	आभ्यन्तर	गर्भिणी-अतिसार
क्वाथ–			
देवदार्व्यादि क्वाथ	५६७	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
ह्रीबेरादि क्वाथ	२७०	आभ्यन्तर	गर्भिणी-अतिसार
घृत–			
अम्लसर्पि	४१४	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
करञ्जाद्य घृत	५७९	स्थानिक प्रयोग	रक्तविद्रधि
कल्याणक घृत	४०८	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
,, ,,	६०२	आभ्यन्तर	सूतिका का श्लेष्म ज्वर
,, ,,	६०५	आभ्यन्तर	सूतिका का सान्निपातिक ज्वर
,, ,,	६६३	आभ्यन्तर	धात्री का अग्नि विकार
काकोल्यादि घृत	४०७	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
गुग्गुल्वादि घृत	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
जीवनीय घृत	५७९	परिषेचन	रक्तविद्रधि
तिक्तक घृत	४०८	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
,, ,,	५८१	आभ्यन्तर	रक्तविद्रधि
तिक्त सर्पि	५९९	आभ्यन्तर	सूतिका का पित्तज्वर
तिक्तिराद्य घृत	५९९	आभ्यन्तर	सूतिका का पित्तज्वर
तिल्वक घृत	५८१	आभ्यन्तर	रक्तविद्रधि
त्रायमाण घृत	५८१	आभ्यन्तर	रक्तविद्रधि

Scanned with CamScanner

योग-नाम	पृष्ठ-संख्या	प्रयोग-विधि	चिकित्स्य-व्याधि
त्रिफला घृत	६९३	आभ्यन्तर	स्तन्य-दुष्टि
दशमूल घृत	६०२	आभ्यन्तर	सूतिका का श्लेष्मज्वर
पञ्चगव्य घृत	४०८	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
,, ,,	६०५	आभ्यन्तर	सूतिका का सान्निपातिक ज्वर
पिप्पल्यादि घृत	४१३	उत्तरबस्ति	रक्तगुल्म
फल घृत	९३	आभ्यन्तर	संभोग के पूर्व
मङ्गल्यक घृत	६०५	आभ्यन्तर	सूतिका का सान्निपातिक ज्वर
महाकल्याण घृत	९३	आभ्यन्तर	संभोग के पूर्व
,, ,,	६०५	आभ्यन्तर	सूतिका का सान्निपातिक ज्वर
महापैशाचिक घृत	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
वचा घृत	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
शतधौत घृत	३३९	अधोदर में लेप	परिहार्य गर्भस्राव
षट्पल घृत	४०८	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
,, ,,	६६३	आभ्यन्तर	धात्री का अग्निविकार
सहस्रधौत घृत	३३९	अधोदर में लेप	परिहार्य गर्भस्राव
वर्गौषधि साधित घृत–			
अम्लौषध	४१४	आभ्यन्तर	रक्तगुल्म
गर्भस्थापन द्रव्य	२३९	आभ्यन्तर	गर्भस्थापन
चन्दनादि वर्ग	५९९	आभ्यन्तर	सूतिका का पित्तज्वर
जीवनीय गण	२३९	आभ्यन्तर	गर्भस्थापन
,, ,,	३६७	आभ्यन्तर	उपशुष्क एवं उपविष्टक गर्भ
,, ,,	४१४	पान, बस्ति	रक्तगुल्म
,, ,,	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
,, ,,	५७९	परिषेचन	रक्तविद्रधि
तिक्त द्रव्य	४१४	अनुवासन बस्ति	रक्तगुल्म
त्रिफला	६९३	आभ्यन्तर	स्तन्यदुष्टि
न्यग्रोधादि गण	५७९	स्थानिक प्रयोग	रक्तविद्रधि
पटोलादि वर्ग	५९९	आभ्यन्तर	सूतिका का पित्तज्वर
भौतिक द्रव्य	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
मधुरौषध	९३	आभ्यन्तर	संभोग के पूर्व
,,	२२३	अनुवासन बस्ति	गर्भिणीपरिचर्या
,,	२५२	आभ्यन्तर	किक्किस

योग नाम	पृष्ठ-संख्या	प्रयोग-विधि	चिकित्स्य व्याधि
मधुरौषध	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
,,	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,,	५५८	बाह्यप्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
वाजीकरण	६९४	आभ्यन्तर	स्तन्यदुष्टि
वातहर द्रव्य	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
,, ,,	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
वृंहणीय	३६७	आभ्यन्तर	उपविष्टक एवं उपशुष्क गर्भ
,,	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
तैल–			
अतिबला तैल	५३१, ५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
अनन्ता तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
आटी तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
आदित्यपर्णी तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
कदम्बमाष तैल	२२४	अनुवासन बस्ति	गर्भिणी की परिचर्या
कपित्थ तैल	६६८	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
कुष्ठ तैल	६२१	सिञ्चन	शिशु की नाभि का
क्रौञ्च तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
गुडूची तैल	५३१, ५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
,, ,,	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
त्रिकण्टक तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
द्राक्षा तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
नागबीर्या तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
नीलोत्पल तैल	५३१	बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग	मूढ़गर्भ
पीलु तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
पुनर्नवा तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
प्रसारिणी तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
फल तैल	४१३	अनुवासन बस्ति	रक्तगुल्म
बदरी तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
बलाका तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
बला तैल	५३१, ५३४	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ

Scanned with CamScanner

योग नाम	पृष्ठ-संख्या	प्रयोग-विधि	चिकित्स्य व्याधि
बला तैल	५४८	अभ्यङ्ग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५७२	अभ्यङ्ग, पान	सूतिकारोग
,, ,,	६१५, ६२२	अभ्यङ्ग	नवजात शिशु
,, ,,	६६५	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
मधुक तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
मधुयष्टी तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
मौन तैल	६६९	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
रास्ना तैल	६६७	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
लाक्षादि तैल	३४०	अभ्यङ्ग	परिहार्य गर्भस्राव
वल्गु तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
वीरतरु तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
वृष तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
शतपाक बला तैल	५३१, ५३७	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
शतपुष्पा तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
शतावरी तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
,, ,,	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
श्योनाक तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
सहकार तैल	६७०	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
सहचर तैल	६६८	अभ्यङ्ग	धात्री की व्याधियाँ
सारस तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
सिद्धार्थकादि तैल	४६१	उत्तरबस्ति	अपरा-पातनार्थ
सैरेयक तैल	५३८	बाह्य एवं आभ्यन्तर	मूढ़गर्भ
हंस तैल	६६९	अभ्यङ्ग, पिचु	धात्री की व्याधियाँ
वर्गौषधि साधित तैल–			
जीवनीय गण	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
भौतिक द्रव्य	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
मधुर द्रव्य	२२२, २२३	अनुवासन बस्ति, पिचु	गर्भिणी-परिचर्या
,, ,,	२६६, २६७	अनुवासन बस्ति	गर्भिणी-उदावर्त
,, ,,	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ

योग नाम	पृष्ठ-संख्या	प्रयोग-विधि	चिकित्स्य व्याधि
वातहर द्रव्य	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
वृंहणीय द्रव्य	५४९	बाह्य प्रयोग	सूतिका की परिचर्या
,, ,,	५५८	बाह्य प्रयोग	सूतिका की व्याधियाँ
पाक			
अन्य नागर पाक	५७१	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
नागर खण्ड	५६९	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
पञ्चजीरक पाक	५६८	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
सौभाग्य शुण्ठी	५६९	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
योग–			
त्रैवृत योग	५६३	अभ्यङ्ग, पान, बस्ति	सूतिकाव्यापद्
वज्रकाञ्जिक योग	६५५	आभ्यन्तर	स्तन्यनाश
रस–			
प्रतापलङ्केश्वर रस	५७१	आभ्यन्तर	सूतिकारोग
वर्ति–			
फलवर्ति	४३२	स्थानिक	गर्भिणी का मलमूत्र-विबन्ध

Scanned with CamScanner

APPENDIX - II

LIST OF RECIPES

Though in the text, good number of recipes i.e. powders, decoctions, pastes, *ghrtas* and oil etc. prepared with various drugs are referred, however, majority of these have not been given specific names, Here, in the list, only those having been referred with specific name or prepared with single or a particular group of drug are enlisted.

Name of recipe	Page No.	Method of use	Indications
Ariṣtas—			
Abhayāriṣṭa	337	Oral	Pain in abdomen after abortion.
,,	411	Oral	Raktagulma.
Ariṣṭa	575	Oral	Makkalla śūla.
Takrāriṣṭa	712	Oral	Slimy milk.
Awaleha—			
Kalyāṇakāwaleha	269	Oral	Diarrhoea during pregnancy.
Decoctions—			
Devadārvyādi	568	Oral	Sūtikāroga.
Hrīberādi	270	Oral	Diarrhoea during pregnancy.
Ghṛtas—			
Daśamūla	602	Oral	Fever due to śleṣmā of a puerperal woman.
Phala	95	Oral	Prior to conjugation.
Guggulwādi	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha.
Jīvanīya	583	Irrigation	Raktavidradhi.
Kākolyādi	408	Oral	Raktagulma.
Kalyāṇaka	411	Oral	Raktagulma.
,,	602	Oral	Fever due to śleṣmā of a puerperal woman.
,,	606	Oral	Fever due to sannipāta of a puerperal woman.
,,	663	Oral	Abnormalities of agni of dhātrī.

Name of recipe	Page No.	Method of use	Indications
Karañjādya	583	Local	Raktavidradhi.
Mahākalyāṇaka	95	Oral	Prior to conjugation.
,,	606	Oral	Fever due to sannipāta of a puerperal woman.
Mahāpaiśācika	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha.
Maṅgalyaka	606	Oral	Fever due to sannipāta of a puerperal woman.
Pañcagavya	411	Oral	Raktagulma.
,,	606	Oral	Fever due to sannipāta of a puerperal woman.
Pīppalyādi	413	Uttarabasti	Raktagulma.
Ṣatpala	411	Oral	Raktagulma.
,,	663	Oral	Abnormalities of agni of dhātri.
Tikta	600	Oral	Fever due to pitta of a puerperal woman.
Tiktaka	411	Oral	Raktagulma.
,,	585	Oral	Raktavidradhi.
Tilwaka	585	Oral	Raktavidradhi.
Tittirādya	600	Oral	Fever due to pitta of a puerperal woman.
Trāyamāṇa	585	Oral	Raktavidradhi.
Triphalā	695	Oral	Stanyaduṣṭi.
Vacā	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha.
Ghṛtas prepared with group of drugs—			
Bhautika	559	External	Puerperal disorders.
Bitter	415	Anuwāsana basti	Raktagulma.
Candanādi	600	Oral	Fever due to pitta of a puerperal woman.
Garbhasthāpana	240	Oral	Maintenance of pregnancy.
Jīvanīya	240	Oral	Maintenance of pregnancy.

Scanned with CamScanner

Name of recipe	Page No.	Method of use	Indications
Jīvanīya	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka-garbha.
,,	415	Oral, uttara basti	Raktagulma
,,	552	External	Puerperal management.
,,	559	External	Puerperal disorders.
,,	583	External	Raktavidradhi
Madhura	94	Oral	Prior to conjugation.
,,	224	Anuwāsana basti.	Antenatal care.
,,	252	Oral	Striae gravidarum.
,,	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka-garbha.
,,	552	External	Puerperal management.
,,	559	External	Puerperal disoroders.
Nyagrodhādi	583	Local	Raktavidradhi.
Paṭolādi	600	Oral	Fever due to pitta of a puerperal woman.
Sour	415	Oral	Raktagulma.
Triphalā	695	Oral	Stanyaduṣti
Vājīkaraṇa	695	Oral	Stanyaduṣti
Vātahara	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha.
,,	552	External	Puerperal management.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Vṛṃhaṇīya	368	Oral	Upaviṣṭaka and upaśuṣka garbha.
,,	552	External	Puerperal management.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Pākas—			
Another nāgara pāka	571	Oral	Sūtikārogas.
Nāgara khaṇḍa	569	Oral	Sūtikārogas.
Pañcajīraka pāka	568	Oral	Sūtikārogas.
Saubhāgya śuṇṭhī	569	Oral	Sūtikārogas.
Rasa—			
Pratāpalaṅkeśwara rasa	571	Oral	Sūtikāroga.

Name of recipe	Page No.	Method of use	Indications
Tailas or oils—			
Ādityaparṇī	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Anantā	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Āṭī	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Atibalā	533, 538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Badarī	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Balā	553, 534	Oral and external	Mūḍhagarbha.
,,	552	Massage	Puerperal woman.
,,	572	Massage, oral	Sūtikā roga.
,,	616, 623	Massage	New born.
,,	665	Massage	Diseases of wet-nurse.
Balākā	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Drākṣā	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Fish	669	Massage	Diseasess of wet-nurse.
Guḍūcī	533, 538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
,,	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Haṃsa	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Kadmbamāṣa	225	Anuwāsana basti	Antenatal care.
Kapittha	668	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Krauñca	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Kuṣṭha	622	Local	Umbilical wound.
Lākṣādi	341	Massage	Threatened abortion.
Madhuka	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Madhuyaṣṭī	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Nāgavīryā	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Nīlotpala	533	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Phala taila	413	Anuwāsana basti	Raktagulma.
Pīlu	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Prasāriṇī	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Punarnavā	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Rāsnā	667	Massage	Diseases of wet-nurse.
Sahacara	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Sahakāra	670	Massage	Diseases of wet-nurse.

Scanned with CamScanner

Name of recipe	Page No.	Method of use	Indication
Saireyaka	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Sārasa	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Śatapāka balā	533, 537	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Śatāpuṣpa	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Śatāwarī	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
,,	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Śyonāka	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Trikaṇṭaka	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Valgu	669	Massage, tampon	Diseases of wet-nurse.
Vīrataru	538	Oral and external	Mūḍhagarbha.
Vṛṣa	668	Massage	Diseases of wet-nurse.
Oils prepard with group of drugs—			
Bhautika	559	External	Puerperal disorders.
Jīvanīya	552	External	Puerperal woman.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Madhura	223, 224	Anuwāsana basti, tampon	Antenatal care.
,,	267	Anuwāsana basti	Udāwarta during pregnancy.
,,	552	External	Puerperal woman.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Vātahara	552	External	Puerperal woman.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Vṛṃhaṇīya	552	External	Puerperal woman.
,,	559	External	Puerperal disorders.
Yogas—			
Traivṛta yoga	563	Massage, enema, oral	Puerperal disorders.
Vajrakāñjika	658	Oral	Stanyanāśa
Varti or suppository—			
Phalavarti	433	Local	Constipation etc. during pregnancy.

❑

अनुक्रमणिका

अ

अकाल, प्रवाहण ४४७
- प्रसव ४६५
- प्रसूता ५६४
- - स्नेहन निषेध ३३७
- मूढ़गर्भा ५३१
अङ्गरस ४६
अचिरजात-गर्भ ४६७
अचेष्ट बालक चिकित्सा ६१९
- - - मन्त्र ६२०
अति प्रगल्भ शिशु प्रसव ४६८
अतिस्निग्ध स्तन्य दुष्टि, देखे क्षीरदोष अष्ट
अनस्थि, गर्भ ५०
अनागत, आवी ४४८
- प्रसव ४४५
अनिरस्यमान गर्भ ४७८
अन्तरावर्तन ४३५, ४३९
अन्तर्मुख स्रोतस् १३
अन्तर्मृत गर्भ ४७१
अपतानक २७८, ३३२, ५५९, ५६१, ५६४
अपप्रजाता ५६४
अपप्रसूता ३३७
अपरा १४१, ३२१
- पतन ४५७
अपरा पातन विधि ४५८
- हस्त-निष्कासन ४६३
अप्रगल्भ शिशु प्रसव ४६६
अम्बुपूर्ण व्याधि ६३६
अरिष्ट लक्षण २८६
- - उत्पन्न पुत्र के २८८
- - गर्भ के २८६
- - गर्भिणी के २८९
अवरुद्ध प्रसव ४८१
अवस्थायें
- शारीरिक वृद्धि की ३२
- - मध्यमावस्था ३२, ३४
- - बालावस्था ३३
- - बाल्यावस्था ३२
- - वृद्धावस्था ३२, ३६
- विशिष्ट स्त्री शरीर की ३६
- स्थिति दोषों की ३८
अष्ट क्षीरदोष ६७४
देखे क्षीरदोष अष्ट
अष्टम मास में ओज १५६
- - प्रसव प्रतिषेधार्थ कर्तव्य १५८
असम्यगागत गर्भ ४७८
असृक् ४०, ४२

आ

आम-गर्भ ३२०
- चिकित्सा ३३२
आम-गर्भ पात ३२९, ३९०
आर्तव ४०, ५७
- उपस्थिति, बाल्यावस्था में ५७
- एकत्रीकरण, धमनियों में ६३
- का आग्नेयत्व, स्वरूप ६०
- गर्भ लिङ्गोत्पत्ति, कारणभूत ४५
- गर्भावस्था जन्य रक्तस्राव ४६
- परिमाण ६०
- वाही धमनी १४
- विमोचनी धमनी १४
- शुद्ध ६४
- समागम काल स्राव ४५
आयु, गर्भधारण योग्य ८०
- रजोदर्शन ७१
- रजोनिवृत्ति ७१
- विवाह योग्य ७९
आवी ४३७, ४४१, ४४५
- प्रभाव, प्रसव में ४४१
आसन्न-प्रसवा ४३६, ४३९

इ

इमेसिस ग्रेविडेरम २४७

उ

उपविष्टक गर्भ ३६१, ३८०
- चिकित्सा ३६७
- - दोष प्रकोप पर ३६८

Scanned with CamScanner

उपविष्टकगर्भ, चिकित्सा
– – पातन ३७०
– निदान, सम्प्राप्ति ३६१
– प्रसव-काल ३६६
– लक्षण ३६१
– – पित्त प्रकोप पर ३६६
– – वाताधिक्य में ३६५
– – श्लेष्मा प्रकोप पर ३६६
उपशोषक ६२२
उपशुष्क गर्भ ३६३, ३८१
– चिकित्सा ३६७
– – दोष प्रकोप पर ३६८
– – पातन ३७०
– कारण, सम्प्राप्ति ३६३
– प्रसव-काल ३६६
– लक्षण ३६३
उपस्थ ७
उपस्थ-गर्भ ७
उपस्थित-प्रसवा ४३६
– – लक्षण ४३६
उल्वक ५३६
– चिकित्सा ५३७
– लक्षण, सम्प्राप्ति, हेतु ५३६
उल्व ६१५
– मार्जन ६१७

ऋ

ऋतुकाल ७१, ७७
– अवधि ७१
ऋतुकाल उत्तरोत्तर रात्रि, गर्भाधान ९०
– के पश्चात् गर्भाधान ७४
– में ही गर्भाधान ७३
ऋतुचक्र ६२
– में दोष-प्राधान्य ७७
ऋतमती, लक्षण ७५
– क्षारकर्म निषेध ७६
– वमन निषेध ७६
ऋतुव्यतीतकाल ७६, ७७

ए

एस्पिरेशन न्यूमोनयँ ६३८

क

कन्दर्पगेह ७
कप्युट सक्सिडेनिअँम ६३३
कफ-जन्य स्तन्य-दुष्टि देखे स्तन्य दुष्टि
कॉडिनल बन्धन २२
कॉनियस मोल ४१९
कालातीत प्रसव ४६८
किक्किस २५१
– चिकित्सा २५२
– निदान, लक्षण २५१
कुक्षि १०५
कुक्षि, सङ्ग ५०४
– ह्रासार्थ औषधि, प्रसवोपरान्त ६०८
क्लिटॅरिस २८
क्षीरदोष अष्ट ६७४, ६८६
– अतिस्निग्ध ६८६, ६८८
क्षीरदोषअष्ट अतिस्निग्ध, चिकित्सा ७१२
– – निदान ६८८
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८८
– गुरु / गौरव ६८६, ६८९
– – चिकित्सा ७१२
– – निदान ६८९
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८९
– दौर्गंध्य ६८६, ६८८
– – चिकित्सा ७११
– – निदान ६८८
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८८
– पिच्छिल ६८६, ६८८
– – चिकित्सा ७१२
– – निदान ६८८
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८८
– फेनसङ्घात ६८६, ६८७
– – चिकित्सा ७०९
– – निदान ६८७
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८७
– रुक्ष ६८६, ६८७
– – चिकित्सा ७१०
– – निदान ६८७
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८७
– विरस / वैरस्य ६८६
– – चिकित्सा ७०९
– – निदान ६८६
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८६
– विवर्ण / वैवर्ण्य ६८६, ६८७

क्षीरदोषअष्ट, विवर्ण, चिकित्सा ७११
– – निदान ६८७
– – पानोत्पन्न व्याधियाँ ६८७
क्षीरदोष, पञ्च ६७४, ६८९
– अम्ल ६९०
– अल्प ६८९
– उष्ण ६९०
– क्षार ६९०
– घन ६८९

ग

गर्भ १०५
– अङ्गावयव ११४
– – आकाशीय ११४
– – आग्नेय ११६
– – जन्मोपरान्त उत्पन्न १६६
– – जलीय ११७
– – पाञ्चभौतिक ११४
– – पार्थिव ११८
– – वायवीय ११५
– अस्थि-विरहित १८४
– उत्पत्ति मातृजादि समुदाय से १३३
– कार्य १७२
– की गर्भाशयान्तर स्थिति ४३५
– के घटक अङ्ग प्रत्यङ्ग के १६१
– के भाव, आत्मज १३१
– – तामस १३८
– – पितृज १२९
गर्भ, के भाव, मातृज १२८
– – रसज १३५
– – राजस १३८
– – शुभ अशुभ १८७
– – सत्वज १३७
– – सात्म्यज १३४
– – स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक कर १६४
गर्भ के षड्घटक ११०
– षड्धातु ११०
– षड्भाव १२३
गर्भ, कोमलस्थि युक्त १८४
– कोष-परासङ्ग ५०५
गर्भक्षय ३७४
– चिकित्सा ३७५
– लक्षण ३७४
गर्भ, चलन चिकित्सा ३५२
– – मासानुमासिक ३५२
गर्भ, जात्यन्धता १६८
– परिभाषा १०५
– पोषण १४३
गर्भ में अवतरण, आत्मा का १११
– – पञ्चमहाभूतों का १११
– – मन का १११
– में कारणता, पिता की १२९
– – माता की १२७
– – रस की १३५
– – सत्व की १३७
गर्भ में कारणता, सात्म्य की १३३
– में कारणत्व का खण्डन आत्मा के १२५
– – माता पिता के १२५
– – रस के १२६
– – सत्व के १२७
– – सात्म्य के १२६
– में पञ्चमहाभूतों के स्रोत ११२
– में मल अभाव कारण १८६
– में महत्व आत्मा का १३१
– मोल ४१९
– लिङ्ग निर्माण १६९
– वर्णोत्पत्ति १६६
– – नेत्र की १६८
गर्भ, सर्वप्रथम उत्पन्न अङ्ग १५८
– स्वरूप, चतुर्थ मास में १५२
– – तृतीय मास में १५१
– – द्वितीय मास में १५०
– – पञ्चम मास में १५३
– – प्रथम मास में १४८
– – षष्ठ मास में १५४
– – सप्तम मास में १५५
गर्भज वमन २४६
– चिकित्सा २४८
– – कृमिज २५०
– – दोष प्रधान्य पर २४९
गर्भजन्य, विषमयता २९०
– – में गर्भपात २९३

Scanned with CamScanner

गर्भस्थ शिशु अरुदन १८५
गर्भपात ३२० (देखे गर्भस्राव भी)
- अपरिहार्य ३३१
- अपूर्ण ३३१
- असम्भावित ३३१
- कृत्रिम ३३१
- परिभाषा ३२०
- परिहार्य ३३१
- प्रतिषेधार्थ वरण बन्ध ३५५
- प्रायिक ३३१
- सम्भावित ३३१
गर्भपातक औषधियाँ ६११
- आभ्यन्तर ६१२
- - स्थानिक ६११
गर्भस्थापक औषधियाँ २३८
गर्भवृद्धि ३७५
- चिकित्सा ३७५
- लक्षण ३७५
- मासानुमासिक १४८
- में षड्महाभूतों का कार्य ११९
- में वायु की प्रधानता १२१
गर्भशोष ३५९, ३८०
- चिकित्सा ३६०
गर्भसङ्ग चिकित्सा ४५२
गर्भस्थापक औषधियाँ २३८
गर्भस्राव ३२१
- उपद्रव ३३१, ३३६
- - चिकित्सा ३४६
गर्भस्राव उपद्रव चिकित्सा
- - - अदृष्ट शोणित वेदना ३४७
- - - आनाह ३४७
- - - गर्भस्फुरण ३४६
- - - ज्वर ३४८
- - - दाहादि ३४८
- - - मूत्रसङ्ग ३४७
- - - वेदना ३४६
- चिकित्सा ३३४
- - आचार, विहार ३४६
- - आमगर्भ स्राव ३३४
- - आमान्वय में कठिनता ३३३
- - परिहार्य ३३८, ३३९
- - प्रसंसमान ३३८
- - मासानुमासिक ३४९
- - रक्तस्राव ३४५
- - सिद्धान्त ३३८
- निदान ३२१
- परिभाषा ३२१
- लक्षण ३२९
- - प्रसंसमान ३२९
- - सामान्य ३२९
- - स्थानान्तर गमन ३३०
- सम्प्राप्ति ३२८
गर्भस्राव कारक औषधियाँ ६०८
गर्भाङ्ग विकृति १७६
- आहारजन्य १८१
- - त्रिदोषज १८३
गर्भाङ्गविकृति, आहाजन्य, पित्तल १८२
- - वातल १८१
- - श्लेष्मल १८२
- सामान्य कारण १७६
गर्भाधान, अतिबाला, अतिवृद्धा में ८२
- निरोधक-औषधियाँ ६०८
- - आभ्यन्तर प्रयुक्त ६१०
- - बाह्य प्रयुक्त ६०९
गर्भावक्रान्ति १०६
गर्भाशय १०
- अधो भाग २४
- इस्थमँस २४
- ग्रीवा १२, २६
- फन्डस २४
- वृध्न २४
- शारीर २५
गर्भाशयान्तर, गर्भ, वास १८९
- - स्थिति १८८
- मृत गर्भ ३८३, ४७१
गर्भाशयिक, धमनियाँ १४
- रक्तज अन्तर्विद्रधि ५७७
गर्भिणी, अतिसार २६८
- - चिकित्सा २६९
- - निदान २६८
गर्भिणी-चिकित्सा, अपतानक २७८
- अरुचि २७५
- आक्षेपक २७८
- उदावर्त २६६
- ऊर्ध्ववात २८३

गर्भिणी-चिकित्सा, कामला २८०
- कास २८१
- गर्भदाह २८६
- गुदवेदना २७७
- गुल्म २७६
- ग्रहणी २७५
- परिकर्तिका २७७
- पार्श्वग्रह २७८
- प्रवाहिका २७४
- मुखपाक २७८
- मुखशोष २८३
- मूत्रग्रह २८३
- रक्तपित्त २८५
- वातरोग २८४
- विबन्ध २७५
- विष या सर्पदंष्ट २८५
- शोफ २८४
- श्वास कास २८२
- हिक्का २८३
- हृच्छूल २८०
गर्भिणी-ज्वर २५४
- चिकित्सा, उपद्रव २६५
- - दोषानुसार २६०
- - मद्यपा स्त्री २६५
- - विषम २६५
- - सामान्य २६०
- - सूत्र चतुर्थमास पूर्व २५४
- - चतुर्थमासोपरान्त २५५
गर्भिणी-ज्वर, निदान २५४
- परिणाम शोधन-कर्म २५५
गर्भिणी, परिचर्या २१३
- आहार, विहार २१३
- मणिधारण २१७
- मासानुमासिक पथ्य २१८
- - अष्टम मास में २२२
- - चतुर्थ मास में २२०
- - तृतीय मास में २१९
- - द्वितीय मास में २१९
- - नवम मास में २२४
- - पञ्चम मास में २२०
- - प्रथम मास में २१८
- - षष्ठ मास में २२१
- - सप्तम मास में २२१
- - से लाभ २२५
- वर्ज्य आहार विहार २२८
- सेवन परिणाम २३४
- स्नानार्थ जल २१७
गर्भिणी-लक्षण १९७
- गर्भलिङ्गद्योतक २०३
- मासानुमासिक २०१
- युग्म गर्भ में २०५
- व्यक्तगर्भा १९८
- सद्योग्रहीतगर्भा १९७
गर्भिणी-व्याधियाँ २४१
- अर्दित २४१
- अर्श २४१
गर्भिणी-व्याधियाँ, शोफ २४१
गर्भिणी-व्याधियों का चिकित्सा सूत्र २४२
- - विभिन्न मासों में २४४
गर्भिणी, स्तन-परिवर्तनों का कारण २०५
गर्भोत्पत्ति आवश्यक घटक ७८
गर्भोदक ३२१
- आधिक्य ३८७
- न्यूनता ३८७
- प्रसेक ४३७
- वमन ६१५, ६३६
गर्भोपघातकर भाव २२८
गर्भोपद्रव २४१
- अतिसार, अरुचि २४१
- छर्दि, ज्वर २४१
- शोफ, शोष २४१
- विवर्णता, हल्लास २४१
गुरु स्तन्य दुष्टि देखे क्षीरदोष आष्ट

च

चुचुक, दोष रहित ६४४

छ

छर्दि, आगन्तुज २४६
- दौहृदजा २४८
- द्विष्टार्थजा २४६
- लक्षण स्वरूप २४६
- वैकारिक २४६

ज

जन्मोत्तर अचेष्ट बालक चिकित्सा ६१९

Scanned with CamScanner

जरायु ३२१
- उत्पत्ति १४१
- दोष ३८७
जातकर्म ६१४, ६१७, ६१८
जातहारिणी २९३
- आक्रमण, काल २९४
- - योग्य स्थिति २९४
- भेद २९५
- - संक्रमण दृष्टि से २९५
- - - तिरश्चीन २९५, ३०४
- - - दैवी २९५, ३००
- - - मानुषी २९५, ३०१
- - साध्यासाध्यता से २९५
- - - असाध्य २९५, ३१४
- - - याप्य २९५, ३१२
- - - साध्य २९५, ३०९
- प्रवेश कारण २९६
जातहारिणी-तिरश्चीन ३०४
- निराकरण उपाय ३०४
- प्रवेश विधि ३०४
जातहारिणी-मानुषी ३०१
- निराकरण उपाय ३०१
- प्रवेश विधि ३०१
जातहारिणी-लक्षण ३०८
- अण्डघ्नी ३११
- आसुरी ३१३
- इन्द्रवडवा ३१६
- कटम्भरा ३१०
जातहारिणी-लक्षण, कपालमालिनी ३१४
- कर्कोटकी ३१५
- कलि ३१३
- कालरात्रि ३११
- कुलक्षयकरी ३१५
- क्रोशना ३१२
- चण्डिका ३१४
- दुर्धरा ३११
- नाकिनी ३१२
- परिसृता ३११
- पिलिपिच्छिका २९४, ३१४
- पिशाची ३१२
- पुण्यजनी ३१५
- पुष्पघ्नी ३१०
- पौरुषादिनी ३१५
- बडवामुखी ३१६
- भद्रकाली ३१४
- भीरुका ३१३
- मातङ्गी ३१४
- मोहिनी ३११
- यक्षी ३१३
- याम्या ३१३
- रौद्री २९४, ३१४
- वर्धिका ३१४
- वश्या ३१४
- वारुणी २९४, ३१३
- विकुटा ३१०
- शुष्करेवती ३१०
जातहारिणी-लक्षण, षष्ठी ३१३
- संदंशी ३१५
- सामान्य ३०८
- स्तम्भिनी ३१२
जात्यन्धता का कारण, गर्भ की १६९
जिनेटिक विकृतियाँ १८१
- व्याधियाँ १८४
जीव १०५

ड

डिम्ब १३
डिम्बग्रन्थि १७, २८
डिम्बप्रणाली २२, २५, २६

त

ताम्रावभास स्तन्य देखे स्तन्यदुष्टि

द

दिव्य गर्भ ३७६
दीर्घजिह्वी २९४
दौर्गन्ध्य स्तन्यदुष्टि देखें स्तन्यदुष्टि
दौहद २०६
- उत्पत्ति का कारण २०७
- काल २०६
- जन्य वमन २४६
- पूर्ति, अपूर्ति परिणाम २०९
- शिशु चरित्र प्रदर्शनकारी २११

ध

धमनियाँ अधोगामी १४
धमनी १४
- उर्ध्वगा १४

धरा १२
धात्री ६४२, ६६१
- अग्नि ६६२
- - विकार-चिकित्सा ६६३
- अजीर्ण जन्य व्याधियाँ ६६३
- अनार्तव चिकित्सा ६६५
- अपथ्य ६९६
- की प्रकृति आदि का प्रभाव ६७१
- कृशता चिकित्सा ६६५
- क्षार प्रधान औषधि-निषेध ६६४
- चिकित्सा ६६१
- नित्यचर्या ६६४
- पथ्य ६९५
- परिमित आहार ६६४
- परीक्षा ६४३
- महत्व ६६२
- मिथ्याहारजन्य षष्ठी रोग ६७०
- मेदोरोग चिकित्सा ६६५
- वमनार्थ औषधि ६९५
- विरेचनार्थ औषधि ६९५
- शोधन चिकित्सा ६७१

न

नवजात शिशु, तत्काल परिचर्या ६१३
- व्याधियाँ ६३२
- - उपशीर्षक ६३२
- - नाभिगत ६३३
- स्नान विधि ६२२
नागोदर ३६३, ३८१
नागोदर, चिकित्सा ३६७
नाना स्तन्यपान परिणाम ६४८
नाभि-उपकल्पन ६२१
- असम्यक्, से व्याधियाँ ६३३
- - उत्तुण्डित ६३४
- - पिण्डलिका ६३४
- - विजृम्भिका ६३४
- - विनामिका ६३४
नाभिगत व्याधियाँ ६३३
नाभितुण्डी ६३४
नाभिपाक ६३३
नाभिव्रण ६३५
नाभिशोथ ६३४
नामकरण संस्कार ६२८
नैगमेषहृत गर्भ ३७६

प

पञ्चक्षीर दोष देखें क्षीरदोष
परिप्लुत गर्भ ३७६
पायोमेट्रा ५७७
पिच्छिल स्तन्य दुष्टि देखें स्तन्य दुष्टि
पित्तज-स्तन्य दुष्टि देखे स्तन्य दुष्टि
पुंसवन-कर्म १९०
- उपयुक्त काल १९०
- विधि १९२
पुत्रीय-विधि ९१
- पूर्वकर्म, संयोग विधि ९२
- लाभ १०३
पुत्रेष्टि यज्ञ ९६
पुत्रोत्पत्ति सूचक लक्षण २०३
पुष्प ४०, ४४
पूर्वकालिक प्रसव ४६६
पेशियाँ / पेशी
- अपत्यपथ २१
- - आभ्यन्तर प्रसृत २१, २३
- - मुखाश्रित वर्तुलाकार २१
- आर्तव प्रवेशिनी २५, २६
- गर्भच्छिद्र संश्रित / संस्थित २१, २३
- गर्भमार्ग की २१
- जननाङ्ग की २१
- डा:र्टस २९
- बल्वाकैवॅनोसस् २२
- लक्षण एवं मुष्क, समकक्ष २८
- लिवेटॅएनी २२
- शुक्रप्रवेशिनी २६
- शुक्रार्तव प्रवेशिनी २१, २५, २६
- स्तन-स्थित २१
- स्फिन्कूटॅवॅजाइनी २२
पैत्तिक स्तन्य दुष्टि देखे स्तन्य दुष्टि
प्यूबॉस:वइकॅल, फेशॅ २२
- बन्धन २३
प्रजायिनी लक्षण ४३६
प्रजावरण-बन्धन विधि ३५५
प्रजास्थापन औषधियाँ २३८
प्रवाहण, अकाल, परिणाम ४४७
- प्रसव के लिये ४४७
प्रसव, अकाल ४६५
- अतिप्रगल्भ शिशु ४६८
- अनागत-कर्तव्य ४४५
- अप्रगल्भ शिशु ४६५

Scanned with CamScanner

प्रसव, अवस्थाओं के लक्षण ४३६
– – आसन्न प्रसवा ४३६, ४३९
– – उपस्थित प्रसवा ४३६
– – द्वितीय ४३९
– – परिवर्तित होने पर ४३८
– – प्रजायिनी ४३६
– – प्रथम ४३९
– प्रारम्भ होने का कारण ४२६
– काल-सामान्य ४२३
– कालातीत ४६८
– परिचर्या ४४२
– – अनागत प्रसव में ४४५
– – आसन्न-प्रसवा ४४२
– – गर्भ के अवाक् हो जानेपर ४५०
– – विलम्ब होने पर ४५२
– पूर्व, रक्तस्राव ४७०
– – स्राव ४४१
प्रसवान्ताल ६०७
प्रसवोत्सुका स्त्री ४३६
प्रसवोपरान्त, कुक्षिह्रास ६०८
– योनिगाढ़ीकरण ६०८
प्रसूता, योनिक्षत चिकित्सा ५७३
– योनिभ्रंश चिकित्सा ५७२
– स्नान ५५६

फ

फल २८
फलयोनि, अपवृत्त २८
– उद्वृत्त २८
फेनसङ्घात स्तन्य दुष्टि देखे स्तन्य दुष्टि

ब

बह्वपत्यता १७२
– कारण १७२
बाइनोक्युलॅर्ट्विन १७४
बालक, सामान्य परिचर्या ६२३
बाला, रजोदर्शन पूर्व, परिवर्तन ६०
बालावस्था ३२
बाल्यावस्था ३२
बृहत्भगोष्ठ २९
ब्रॉड लिगॅमेन्ट २२

भ

भग ५
भगशिश्निका ६, ७, २९
भूतहृत गर्भ ३७६, ३८३

म

मक्कल्ल ५०५, ५७३
– शूल ५७३
– – चिकित्सा ५७४
– – निदान ५७३
– – लक्षण ५७३
मदनातपत्र ६
मध्यमावस्था ३४
मनोभवागार मुख ७
मर्म, गुदा १६, १८
– फलस्रोतस् १७
– बस्ति १६, १८
– मुष्कस्रोत १६, १८
– मूत्रप्रेसक १६, १७
मर्म, मूत्रवह १६, १८
– योनि १६, १७
– शुक्रवह १६
– सेवनी १६, १७
– स्तनमूल १६
– स्तनरोहित १६
मॉ:निन्ग सिक्रिस २४७
मिथ्या गर्भ ३८३
मूढ़गर्भ ४७८
– असाध्य, लक्षण ५०२
– गतियाँ ४९०, ४९४
– – आसन ४९५, ४९६
– – – अनुप्रस्थ ४९५, ४९६
– – – अपूर्णस्फिग् ४९५
– – – स्फिग् ४९५, ४९६
– – मुखोदय ४९६, ५२१
– – शीर्षोदय ४९६, ५२१
– चिकित्सा ५०८
– – उपेक्षा परिणाम ५१४
– – जीवित प्रसव विधि ५१०
– – दोषिक ५१३
– – विलम्ब परिणाम ५१४
– – शल्योद्धरण ५१४
– – – अधिपति की आज्ञा ५१६
– – – कठिनाइयाँ ५१४
– – – पश्चात कर्म ५३०
– – – स्त्री की स्थिति ५१७
– – सिद्धांत ५०९

मूढ़गर्भ, चिकित्सा, हाथ से आहरण ५१९
– चिकित्सिका / चिकित्सक ५०८
– दोषिक ४९३
– निदान ४८३
– परिभाषा ४७८
– भेद ४९१
– – कील ४९१
– – परिघ ४९२, ५२१
– – प्रतिखुर ४९२
– – बीजक ४९२
– – संकीलक ४९१
– लक्षण ४९०
– – सामान्य ४९०
– विष्कम्भ ४९६
– शस्त्रकर्म ५२६
– – उदरपाटन ५३८
– – पूर्व भोजन निषेध ५१५
– – सिद्धान्त ५२६
– शस्त्रकर्माह ५२३
– सम्प्राप्ति ४८७
मूत्रस्रावी व्रण १८
– बस्ति गर्भाशयगत १९
– बस्ति योनिगत १९
– मूत्रनलिका योनिगत १९
मृतगर्भ ४७१
– गर्भाशयान्तर ३८३, ४७१
– चिकित्सा ४७७
– – शल्योद्धरण के पश्चात ४७७
मृतगर्भ, निदान ४७१
– लक्षण ४७५
– सम्प्राप्ति ४७४
मैथुन, के अयोग्य स्त्री ८२
– निषेध ८५
– सामान्य स्थिति ८५
मोल, कॉनियस ४१९
– हाइडॅटिफॉर्म ४१९

य

यमल १७३
– एक बीजात्मक १७४
– द्विबीजात्मक १७४
युग्म गर्भ, पुत्र पुत्री का कारण १७५
– पुष्ट, दुर्बल होने का कारण १७६
– सुख दुःखादि का कारण १७४
यूटॅरोसैकॅरल बन्धन २२
यूँटरोसैकरल लिगॅमेन्ट २२
यूनिओव्यूलॅ ट्विन १७४
योनि ६
– आकृति ७
– आवर्त ७, ८
– गाढ़ीकरणविधि, प्रसवोपरान्त ६०८
– नाड़ियाँ ७
– – गौरी ७
– – चन्द्रमसी ७
– – समीरणा ७
– पेशियाँ २२
– – आभ्यन्तर प्रसृत २३
योनि, पेशियाँ, बहिर्मुख, वर्तुलाकार २२
– – बहिर्मुख ६
– भ्रंश ४८६, ५०६, ५५९
– – चिकित्सा ५७२
– संवरण ५०५
– संवृति ५०५
– सङ्ग ५०६

र

रक्तगुल्म ३८७
– उपद्रव ४०२
– चिकित्सा ४०३
– – औषधियाँ आभ्यन्तर ४०८
– – प्रसवपूर्व रक्तस्राव में ४०५
– – बस्ति ४१२
– – भेदन ४१३
– – योनि-विशोधक, पिचु ४१२
– – – वर्ति ४१२
– – सिद्धांत, विशिष्ट ४०६
– – – सामान्य ४०५
– निदान ३८९
– पार्थक्य गर्भ से ३९९
– पूर्वरूप ३९३
– में कारण, गर्भवतचेष्टा का ३९७
– – दौहृद का ३९८
– – पाण्डुता का ३९८
– – वृद्धि का ३९९
– – स्तन्योत्पत्ति का ३९८
– लक्षण ३९३

Scanned with CamScanner

रक्तगुल्म, लक्षण, असाध्यता के ४०२
- सम्प्राप्ति ३८१
- स्त्रियों में होने का कारण ३८८
रक्तवह स्रोतस् ६
रक्तविद्रधि ५७६
- चिकित्सा ५७८
- निदान ५७६
- लक्षण ५७६
रक्षाकर्म ६२३
- षष्ठी रात्रि का ६२६
रज ५७
- निर्माण ५८
रज: काल ७७
रज:स्राव ४०, ४२, ४३, ४४, ६२
- अन्तराल ६२
- काल ६२
- के अन्त में पतिदर्शन ६९
- में सम्भोग परिणाम ७०
रज:स्वला ३७
- अज्ञनादि से हानि ६७
- चर्या ६५
रजोदर्शन, आयु ६१
- प्रसवोपरान्त, हेतु ५४५
रजोनिवृति आयु ६१
रजोमती ३७, ३८
रजोवह स्रोतस् ७
रजोवाही स्रोत १३
रूक्ष स्तन्यदुष्टि देखें स्तन्यदुष्टि
रूधिर ४०,४४
रेवती देखें जातहारिणी
रोमराजि २०३

ल

लीनगर्भ ३७१, ३८१
- चिकित्सा ३७२
- निदान ३७१
- पातन ३७४
- प्रसव काल ३७२
- लक्षण ३७१
लोहित ४०, ४४

व

वरणबन्ध ३५५
- उपादेयता ३५५
- विधि ३५६
वातज स्तन्य दुष्टि देखें स्तन्य दुष्टि
वाताभिपन्न गर्भ ३५९
- चिकित्सा ३६०
वातोदर ३७६
विप्रसव ४६६
विवाह योग्य आयु ७९
विष्कम्भ मूढ़गर्भ ४९६
वृद्धावस्था ३६
वैरस्य स्तन्य दुष्टि देखें स्तन्य दुष्टि

श

शङ्ख ५२७
शस्त्र, अङ्गुलि ५२७
- अर्धचन्द्र ५३०
शस्त्र, मण्डलाग्र ५२७
शिशु की, आहार व्यवस्था ६२७
- परिचर्या, अन्य ६३१
शुक्र १०५
शुक्रधातु, स्त्री में ५०
शोणित ५७, १०५
श्रोणि ३
- अस्थियाँ ४
- गुहा ४
- प्रमाण ३
- फलक ४
- माप ३
- सन्धियाँ ५
श्लेष्मज स्तन्य दुष्टि देखे स्तन्य दुष्टि

ष

षड्धातु गर्भ को ११०
षड्धात्वात्मक गर्भ ११०
षड्भाव गर्भ के १२३
षष्ठी रात्रि-रक्षा-कर्म ६२६
- रोग, धात्री-मिथ्याहार-जन्य ६७०

स

सम्भोग ८२
- क्षम आयु ८०
- युग्मायुग्म दिवस में ८८
- - पुत्र, पुत्री जन्म कारण ८९
- रज:स्राव में, परिणाम ७०
सूतिका ५४४
- आस्थापन परिणाम ५५४

सूतिका, काल ५४४
- नस्य परिणाम ५५४
- परिभाषा ५४४
सूतिकागार ४२७
- आकृति, निर्माण-विधि ४२८
- निवास विधि ४३२
- प्रवेश ४३२
- संग्रहणीय पदार्थ ४३१
सूतिका-ज्वर ५८५
- कारण सान्निपातिक के ५८७
- चिकित्सा-सिद्धान्त ५९१
- चिकित्सा-सूत्र, कफपित्त ५९३
- - रूक्ष-शरीर स्त्री ५९२
- - वात ५९३
- - वातपित्तात्मक ५९४
- - शोधनकर्म निषेध ५९४
- - श्लेष्माभिष्यन्दी स्त्री ५९२
- - सान्निपातिक ५९४
- निदान ५८६
- महत्व ५८५
- भेद ५८६
- लक्षण ५८९
- - ग्रहोत्थ ५९१
- - पित्त ५८९
- - वात ५८९
- - श्लेष्म ५८९
- - सान्निपातिक ५९०
- - स्तन्योत्पत्ति जन्य ५९०
सूतिका-ज्वर, विशिष्ट चिकित्सा ५९५
- - ग्रहोत्थ ६०६
- - पित्त ५९८
- - वात ५९५
- - श्लेष्म ६००
- - सान्निपातिक ६०२
- - स्तन्योत्थ ६०६
सूतिका-पथ्य पुत्र पुत्री जन्म में ५५६
- विदेशी जाति, ५५६
सूतिका-परिचर्या ५४६
- आनूप देशस्थ ५५४
- जाङ्गल देशस्थ ५५५
- मणिधारण ५४६
- लाभ ५५४
- साधारण देशस्थ ५५५
- सामान्य ५४६
सूतिका-रोग ५६४
- चिकित्सा ५६७
- निदान ५६५
- पथ्य ५७२
- लक्षण ५६५
सूतिका-व्याधियाँ ५५६
- असाध्य होने का कारण ५५७
- गणना ५५९
- चिकित्सा ५५६
- - सूत्र ५५८
- निदान ५६२
सूतिका व्यापद् ५५९
सूतिकोत्थान ५५६
स्तन असम्पत् जन्य दोष ६४६
- पान-विधि ६४७
- सम्पत् ६४६
स्तन्य ६३९
- अपनयन-काल ६६०
- - विधि ६६१
- अभाव में अन्य दुग्ध ६५९
- क्षय ६५३
- - चिकित्सा ६५४
- - लक्षण ६५३
- जनन-द्रव्य ६५४
- नाश ६५३
- - चिकित्सा ६५४
- - हेतु ६५३
- निर्माण ६३९
- प्रमाण ६४२
- प्रवृत्ति हेतु ६४०
- वृद्धि ६५८
- - चिकित्सा ६५९
- लक्षण ६५८
- शुद्ध लक्षण ६५१
- सम्पत् लक्षण ६५१
स्तन्यदुष्टि ६७२
- अतिस्निग्ध ६८६, ६८८
- अभिघातज ६७४, ६८३
- कफज ६७४, ६८६
- कारण-सामान्य ६७२

Scanned with CamScanner

स्तन्यदुष्टि, क्षतज ६७४
- गुरु ६८९
- गौरव ६८६
- ग्रह-दूषित ६८३
- दौर्गन्ध्य ६८६, ६८८
- द्वन्द्वज ६७४, ६८१
- पिच्छिल ६८६, ६८८
- पित्तज ६७४, ६७८, ६८६
- फेनसङ्घात ६८६, ६८७
- रुक्ष ६८६, ६८७
- वातज ६७४, ६७६
- वैगन्ध्य ६८६
- वैरस्य ६८६
- वैवर्ण्य ६८६, ६८७
- श्लेष्मज ६८०
- सन्निपातज ६७४, ६८२
- सम्प्राप्ति ६७२
स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा ६९१
- अतिउष्ण ७०८
- अम्लानुरस ७०८
- कटुकानुरस ७०८
- कफजन्य ७०४
- कषायानुरस ७०७
- गुरु ७०८
- ग्रथित ७०९
- तनु, सान्द्र ७०८
स्तन्यदुष्टि-चिकित्सा, तन्तुमत् ७०८
- ताम्रावभास ७०८
- तिक्तानुरस ७०७
- द्वन्द्वज ७०६
- पित्तज ७०२
- फेनिल ७०७
- लवणानुरस ७०८
- वातिक ७००
- विच्छिन्न ७०७
- सान्निपातिक ७०६
- सामान्य ६९७
- सिद्धान्त ६९२
स्तन्य-दोषों के भेद ६७३
स्तन्य-पान, अपरिस्रुत ६४९
- गर्भिणी का, प्रभाव ६८४
- तैलवर्णादि प्रभाव ६५२
- दूषित, जन्य व्याधियाँ ६७३
- नाना, परिणाम ६४८
- वर्जित अवस्थायें ६५०
- विभिन्न वर्ण-रस से विकार ६८४
- लक्षण, अम्लानुरस ६८४
- - कटुकानुरस ६८४
- - कषाय ६८४
- - गुरु ६८५
- - तन्तुमत् ६८५
स्तन्यपान, लक्षण, ताम्रावभास ६८४
- - भृशोष्ण ६८५
- - मधुर ६८४
- - लवणानुरस ६८५
स्तन्य शोधक द्रव्य ६९७
स्त्रीबीज ४१, ४२, ४३, ४४
स्त्री की, मानसिक, अवस्था-प्रभाव गर्भ में ६९, १०१, १०२
- - स्थिति परिणाम पुत्र में ६९
स्त्रीशुक्र ४९
स्मरमन्दिर ३, ४
स्मरातपत्र ६
स्युडोसाईसिस ३८३
स्रोतस् आध्यन्तर १३
- आर्तववह ६, १३, ४७, १४१
- बहिर्मुख ६, १३
- मुष्क १६
- रक्तवह ६
- रजोवाही १३
- शुक्रवाही १३, १६, ५१
- स्तन्यवाही १३
ह
हाइडॅटिफॉर्म मोल ४१९
हाइपॅइमेसिस ग्रेविडेरम २४८
होमैटोमेट्रा ४१८

INDEX

A
Abnormalities, of amnion 387
of breast milk 672
of fetus, 179
of nipples, 647
teratologic 176
Abortifacients 328, 608
local 611
oral 612
Abortion 320
causes, 321
incurability of 332
clinical features, 329
general 329
prasraṃsamāna 329
sthānāntaragamana 330
complete 331
complication of 331
definition of 320
habitual 331
incomplete 331
induced 331
inevitable 331
in toxaemia of pregnancy 293
pathogensis 328
threatened 331
treatment, 334
after stability 346
āmagarbha 334
complications, of 346
monthwise 349
prasraṃsamāna 338
sthānāntaragamita 338
threatened 338
Accouchement force 441
effect of 441
Accouchement ward 427
articles in 431
shape, size, of 428
stay, in 432
Accoucheur 508
Accoucheuse 447, 508
duties of 447
qualifications, of 508
Age, for conception 79
for maturity 80
for marriage 79
of menarche 61
of menopause 61
Akāla-prasava 465
Akāla-prasūtā 337
Āma garbha 333
treatment 334
after expulsion 335, 337
before expulsion 334
difficulty, in 333
Ambupūrṇa vyādhi 636
Amnionitis 387
Amnion nodosum 387
Amniotic adhesion 387
Aṅguli śastra 527
Antarvidradhi 577
Antenatal care 213
amulet 217
dietetics, 213
contraindicated 228
effect of 234
mode of life, 213
contraindicated 228
effect of 238
monthwise regimen 218
benefits, of 225
for eighth month 222
for fifth month 220
for first month 218
for fourth month 220
for ninth month 224
for second month 219
for seventh month 221
for sixth month 221
for third month 219
water for bath 217
Antepartum haemorrhage 470
Aparā 142
Apavṛtta phala-yoni 30

Scanned with CamScanner

Ardha candra śastra 530
Ārtava 40
  āgneya character of 60
  amount of 60
  functions of 60
  vaha srotas 13, 49, 142
  vāhī dhamanī 13, 14
Arteries, tending, downwards 14
  upward 14
  memmary 16
  ovarian 16
  uterine 16
Āsanna-prasawā 436
Aspiration pneumonia 637
Asṛk 40, 42
Aṣṭa kṣīra doṣa 675, 686
  atisnigdha 686, 688
    clinical manifestations 688
    etiopathogenesis 688
    treatment 712
  daurgandhya 686, 688
    clinical manifestations 688
    etiopathogenesis 688
    treatment 711
  guru 686, 689
    clinical manifestations 689
    etiopathogenesis 689
    treatment 712
  phenasaṅghāta 686, 687
    clinical manifestations 687
    etiopathogenesis 687
    treatment 709
  picchila 686, 688
    clinical manifestations 688
    etiopathogenesis 688
    treatment 712
  rukṣa 686, 687
    clinical manifestations 687
    etiopathogenesis 687
    treatment 710
  vairasya / virasa 686
    clinical manifestations 686
    etiopathogenesis 686
    treatment 709
  vivarṇa / vaivarṇya 686, 687
    clinical manifestations 687
    etiopathogenesis 687
    treatment 711
Ātmā, descent. of 111
  features developing from 131
  in embryogenesis 131
Ātmaja bhāwas 109, 131
Āvīs 441

B

Bad signs/symptoms 286
  indicating death,
    of child 288
    of fetus 287
    of pregnant woman 289
Bālāwasthā 33
Bath of neonate 622
Bearing down 447
  effect of 447
  instructions for 447
Bhaga 5
Bhūtahṛta garbha 376
  contradiction of 379
  treatment 378
Body complexion 166
  factors for 166
  formation 166
Breast milk 638
  abnormalities, of 672
  formation of 638
  normal characteristics 651
Breasts 646
  abnormalities due to imperfect 646
  diseases with unexpressed 649
  feeding method 647
  merits, of 646
Broad ligaments 26

C

Caputsuccedaneum 633
Cardinal ligament 26, 31
Care of newborn 613
Carneous mole 422
Causes of birth of female 89
  of male. 89
Cephalic version 523
Cephalo-pelvic disproportion 497
Cervical dystocia 508
Cesarean section 538

Chardi 246, 247
  āgantuja 247
  dauhṛda janya 247
  doṣaja 247
  dwiṣṭārthajā 247
  garbha janya 247
Childhood 33
Clitoris 6, 8, 30
Coition days 88
  for female 88
  for male 88
Coitus, contraindicated conditions, for 82
  menstruation, during 70
  posture abnormal, during 85
  posture normal, during 85
Conception, age, of 80, 81
  essential factors, for 86
  rituals, for 91
  specific acts, for 91
Congenital blindness cause of 168
Conjugation method 92
Contraceptives 608
  local 609
  oral 610
Craniotomy 527

D

Dauhṛda 206
  cause of 207
  denoting characters of child 211
  effect, of fulfilment 209
  effect, of non-fulfilment 209
  period 206
Dauhṛdinī 206
Daurgandhya milk see aṣṭaksira doṣa
Delivery, līna-garbha, of 372
  upaśuṣka, of 366
  upaviṣṭaka, of 366
Destructive operations 526
Dhamanī, Dhamanis 14
  adhoga 14
  ārtavavāhī 14, 15
  ārtavavimocanī 15
Dhātrī 642
  cikitsā 661
  importance, of 662
  parikṣā, of 643
Dīrghajihwī 294
Discoloration of milk, 686
Divya garbha 378
Dohṛda 206
Drugs beneficial for pregnancy 238

E

Effect, āvīs, of 441
  lactation by different women, of 648
  milk with cereals, of 648
  over child, psychological status, of 69
  over fetus psychology, of 101
Eight disorders of milk see aṣṭakṣīra doṣa
Embryo body parts,
  derived from ātmā 131
    father 129
    mother 128
    rajas 138
    rasa 135
    sātmya 134
    satwa 137
    tamas 138
Embryo, definition, of 105
  descent, process, of 106
  descent, sequence, of 111
    ātmā, of 111
    mana, of 111
    pañcamahābhūtas, of 111
  development of 148
    first month, in 148
    second month, in 150
    third month, in 151
    sources of pañcamahābhūtas 112
Embryogenesis, factors, ātmā, as 131
    father, as 129
    mother, as 127
    rasa, as 135
    sātmya, as 133
    satwa, as 137
  contradiction of, only
    ātmā 125
    mother and father 125
    rasa 126

Scanned with CamScanner

sātmya 126
satwa 127
Emesis gravidarum 248
Endometrium 26
Endosalpinx 26
Epochs of life 36
status of doṣas in 39
Evisceration 529
Excessive unctuous milk 686,688
F
Factors for sex formation 169
Fallopian tubes 26, 28, 31
Father in embryogenesis 129
body parts from 129
Female śukra 49
Fetal cry, absence of 185
Fetal development 119
functions of pañcama-hābhūtas in 119
importance of vāyu, in 121
Fetal excreta, absence of 186
Fetal nourishment 143
Fetus, see also embryo
bhautika components 114
from agni 116
from ākāśa 114
from jala 117
from pṛthvī 118
from vāyu 115
boneless 184
constitution of body parts, of 161
effects of mother's diseases of 187
factors for delivery of full term 188
Fetus,
features aśubha, of 187
features sex, of 164
features śubha, of 187
first born body part, 158
intrauterine death of, see mṛta garbha
situation of 188, 434
monthwise development, of 148
in fifth 153
in fourth 152
in seventh 155
in sixth 154
ojas in eighth months, of 156
saddhātu of 110
why does not cry 185
why does not excrete 186
Fistula, urethrovaginal 20
uterovesical 20
vesicovaginal 20
Foul smell of milk 686, 688
Frothy milk 686, 687
G
Garbha, body complexion, of 166
body parts after birth, of 166
Garbha chalana, treatment of 352
general 352
monthwise 352
Garbha, colour of eyes, of 168
congenital blindness, of 168
definition, of 105
formation with maternal etc. components, of 123
functions, of 172
Garbha kośaparāśaṅga 504,507
Garbhakṣaya 374
clinical features, of 374
treatment, of 375
Garbhapāta see abortion
Garbhasaṅga 452
treatment of 452
Garbhaśoṣa 359, 383
Garbhasrāva see abortion
Garbhasthāpaka drugs 238
Garbha, vātābhipanna 359
Garbhavṛddhi 375
clinical features 375
treatment 375
Garbhāśaya 12, 13
Garbhavyāpat 321
Garbhiṇī-atisāra 268
etiology 268
treatment, āmātisāra of 270
general 269
in dominance of kapha 271
pitta 272
vāta 272

principles, of 269
with blood 273
with fever 270
Garbhiṇī-jwara see pregnant woman fever
Garbhiṇī viṣama jwara 265
Garbhodaka 437, 636
Garbhopaghātakara bhāwas 228
Guru milk 686, 689
H
Heavy-milk 686, 689
Hydatiform mole 422
Hydramnios 387
Hyperemesis gravidarum 248
I
Infected hematoma 578
external 578
internal 578
Insipidity of milk 686
Intermenstrual period 62
Internal mammary veins 16
Inter-pregnancy-period 607
Intrapartum haemorrhage 507
Intrauterine death 286, 471
see mṛtagarbha
Inversion of uterus 572
J
Jarāyu 142, 387
doṣa 387
Jātahāriṇī 293
aṇḍaghnī 311
aśādhya 295, 314
āsurī 313
baḍavāmukhī 316
bhadrakālī 314
bhīrukā 313
caṇḍikā 314
catuṣpadī 304
causes of affliction, by 296
clinical features, of 308
curable 295, 309
daivī 296, 300
durdharā 311
incurable 295, 314
indravaḍawā 316
kālarātri 311
kali 313
kapālamālinī 314
karkoṭakī 315
kārukī 296, 301
kaṭambharā 310
krośanā 312
kulakṣayakarī 315
liṅginī 296, 301
mānuṣī 296, 301
mātaṅgī 314
matsī 304
mohinī 311
nākinī 312
parisrutā 311
pauruṣādinī 315
period for seizure, by 294
pilipicchikā 294, 314
piśācī 312
puṇyajanī 315
puṣpaghnī 310
raudhrī 294, 314
sādhya 295
śakunī 305
saṃdaṃśī 315
sarpā 305
ṣaṣṭhī 313
stambhinī 312
śuṣkarevatī 310
tiraścīna 296
vanaspati 304
vardhikā 314
varṇā 296, 301
varṇāntarā 296, 301
vāruṇī 294, 313
vaśyā 314
vikuṭā 310
yakṣī 313
yāmyā 313
yāpya 295, 312
K
Kandarpageha 8
Kikkisa 241
treatment 242
L
Labia majora 26, 31
Labia minora 26
Labour 424
causes, of onset 426
delayed 452, 468
treatment of 452

Scanned with CamScanner

fetus during 434
management, of 442
after descent 450
āsanna prasawā 442
failure in descent 445
first stage, during 442
normal gestational period, for 424
normal situation of fetus during 434
obstructed see mūḍhagarbha
premature 466
Labour, stages 436
clinical features, of 436
after descent 438
after parivartana of garbha 438
āsanna prasawā 436
prajāyinī 436
prasavotsukā 436
upasthita prasawā 436
Labour untimely 465
Laparotomy 538
Lie transverse 501, 502
Ligament, cardinal 26, 31
pubocervical 25, 31
transverse cervical 25, 31
uterosacral 26, 31
Līnagarbha 371, 385
clinical features 371
etiology 371
period of delivery 372
treatment 372
for expulsion 374
Linea nigra 200
Liquor amni 437, 636
Lohita 40, 44

M

Madanātapatra 6, 8
Madhyamāwasthā 33
Makkalla 507, 573
śūla 573
clinical features 573
etiology 573
treatment 574
Mana, in embryogenesis 137
features developing from 137
Maṇḍalāgra śastra 527
Manobhavāgāramukha 8
Marma 19
basti 19, 20
guda 19, 20
muṣkasrotas 19
mūtrapraseka 19
mūtravaha 19, 20
phalasrotas 19
sewanī 19
stanamūla 19
stanarohita 19
śukravaha 19
yoni 19
Marriageable age 79, 81
Mātṛja bhāwās 109
Menarche 60
age of 61
changes before 60
Menstrual cycle 62
Menstruation 62
coitus, effect during 70
duration of 62
mode of life during 65
normal character of 64
reappearance after delivery 545
Middle age 34
Milk-breast 638, 672
abnormalities of 672
amount of 642
cessation, causes of 653
diseases by vitiated 673
disorders classification of 673
disorders five 689
alpa 690
amla 690
ghana 690
kṣāra 690
uṣṇa 690
effect on child, 676
colours, of 652, 685
physical characters of 676
tastes of 685
ejection, causes of 640
formation of 638
substitute 659
Milk-fever 590

treatment 606
Milk purifying drugs 697
Milk-vitiated, by
abhighāta 675, 683
grahas 675, 683
pitta 675, 677
ślesmā 675, 680
three doṣas 675, 682
trauma. 675, 683
two doṣas 675, 681
vāta 675, 676
Milk-vitiation, 672
etiopathogenesis, of 672
treatment, of 691
caused by, all doṣas 706
two doṣas 706
vāta 700
due to kapha 704
pitta 702
general 697
principles, of 692
tastes etc. caused by
kapha 708
others 708
pitta 707
vāta 707
Molar pregnancy 422
Morning sickness 248
Mother, in embryogenesis 127
fetal parts, from 128
Mṛta-garbha 471
clinical features 475
etiology 471
pathogenesis 474
treatment 477
after extraction 477
Mūḍhagarbha 471, 478
classification, of 491
clinical features 490
bījaka 492, 501
doṣika, of 493
incurability of 502
kīla 491, 501
parigha 492, 501
pratikhura 492, 501
saṃkīlaka 491
definition, of 478
destructive operations 526
general principles 526
method of 527
effect of rending alive fetus 525
etiology, of 523
extraction 514
difficulties in 514
laparotomy, for 538
manual 519
position of woman 517
postoperative management 530
fit for instrumentation 523
gaties of 494
lie transeverse 502
method of delivery with medicine 510
pathogenesis, of 487
positions, of 490
dorsoanterior 501, 502
dorsoposterior 501
presentations, of 490, 494
brow 501
complete breech 501
compound 501
cord 501
face 501
footlings 500, 501
incomplete breech 500
surgical intervention for 510
consent of guardian 516
treatment 508
alive of 510
doṣika, of 513
effect of delay in 514
general principles 509
Multiple pregnancy 172
factors for 172

N

Nābhipāka 633
Nābhiśotha 634
Nābhitundī 634
Nādis of yoni 7
cāndramasī 8
gaurī 8
samīraṇā 8
Nāgodara 363, 384
treatment, of 367
Naigameṣahṛta garbha 376

Scanned with CamScanner

Naming ceremony 628
Neonate, bath, for 622
feeding schedule, of 627
New-born child 613
care after birth, of 613
diseases due to improper care, of 632
general nursing care, of 623
rakṣākarma, of 623
resuscitation, of 619
mantra, for 620
Non-unctous milk, 686, 687
Nursing care of child 623

O

Obstructed labour 471
Old age 36
Orifice external 6
Ovarian hormones 46
Ovum 41, 42

P

Pariplutagarbha 378
Pelvic abscess 578
Pelvic cavity bones 4
Pelvis 3
joints of 5
normal measurement, of 3
Peśī, peśīs 20, 26
apatyapatha, of 21
ārtava-praveśinī 24
breasts of 26
garbhachidra, of 21, 27
mārga of 21
lakṣaṇa, of 21, 28
muṣka, of 27
outer circular 27
spreaded inside 27
śukrapraveśinī 24
Phala 29
Phalayoni apavṛtta 30
Phalayoni udvṛtta 30
Phenasaṅghāta milk see aṣṭakṣīradoṣa
Picchila milk see aṣṭakṣīradoṣa
Pitṛja bhāwas 109
Placenta, formation 141
expulsion normal 457
Placental retention
complication, of 457
treatment, of 458
external manipulation, for 458
use of drugs, for 459
manual removal, of 463
oral medicines, for 462
Polyhydramnios 387
Position, dorsoanterior 501, 502
dorsoposterior 501
Postmaturity 468
Prajāsthāpana drugs 240
Prajāvaraṇa bandha 356
Pregnancy, breast changes, in 205
diarrhoea, during 268
see garbhiṇī atisāra
drugs beneficial, for 238
Pregnancy-disorders 241
treatment of
ākṣepaka 278
anal fissure 277
anal pain 277
anorexia 275
apatānaka 278
bleeding diathesis 285
cardialgia 280
constipation 275
convulsive disorders 278
cough 281
dryness of mouth 283
dyspnoea 282
edema 284
grahaṇī 275
gulma 276
hiccup 283
inflammation 284
jaundice 280
pārśwagraha 278
poison 285
pravāhikā 274
principles, of 242
gestational months in 244
retention of urine 283
rigidity of flanks 278
skin disorders 284
snake bite 285
stomatitis 278

udāvarta 266
Pregnancy, heartburn 286
Pregnancy signs/symptoms 197
after conspicousness of body parts 198
denoting fetal sex 203
gestational period, in 201
fifth month 201
fourth month 201
seventh month 202
sixth month 202
immediately concieved woman 197
sadyograhīta garbhā 197
twin 205
vyakta-garbhā 198
Pregnancy toxaemia 290
Pregnancy-vomiting 246
treatment, of 248
according to doṣa 249
due to pitta 249
śleṣmā 250
vāta 249
principles, of 248
recipes, for 248
Pregnant woman, fever of 254
etiology 254
treatment, according to doṣa 260
caused of pitta 262
śleṣmā 264
vāta 260
complications of 265
effect of cleansing mesures 255
general 260
principles before fourth month 254
after fourth month 255
wine addict of 265
Premature labour 466
Presentations, 500, 501
abdomen 501
breech, complete 501
incomplete 500
brow 501
compound 501
cord 501
face 501
footling 501
vertex 501
Pseudocyesis 387
Psychological status, effect of 69
Pubocervical fascia 26, 31
Pubocervical ligament 25, 31
Puerperal after pains 573
Puerperal disorders 559
etiology 562
incurability causes, of 557
number 559
specific 564
inversion of uterus 572
makkalla 573
raktavidradhi 576
sūtikāroga 565
utero-vaginal prolapse 572
vaginal ulcer 573
yonibhramśa 572
yoniksata 573
treatment 563
principles, of 567
Puerperal-fever 585
aggravation of 588
causes of sānnipātika 587
classification 586
clinical features 589
due to grahas 591
milk 590
pitta 589
sannipāta 590
śleṣmā 589
vāta 589
etiology 585
importance of 585
treatment 591, 595
Puerperal pyometra 577
Puerperal woman, bath for 556
cleansing measures 594
contraindications 594
indications 594
definition of 543
diseases of 556
management of 546
according to sex 556

Scanned with CamScanner

amulets for 546
benefits of 554
for foreigners 556
general care 546
specific for place of living 554
treatment, principles of 558
Puerperium, duration of 543
Puṃsawanakarma 190
appropriate period for 190
methods of 192
Puṣpa 40, 44
Putreṣṭiyajña 96, 97
Putrīyavidhi, benefits of 103

R

Raja 40, 42, 56
formation 58
since childhood 57
Rajaḥ kāla 78
Rakṣākarma 623
on 6th night of birth 626
Rakṣoghna drugs 626
Rakta 40, 42
Raktagulma 387
cause of, appearance of anaemia 398
dohṛda 398
milk 398
only in females 388
resemblance with fetus 397
clinical features 393
complications of 402
differenting features 400
etiopathogenesis 389
prodromal symptoms 393
prognosis 402
treatment of 403
appropriate period for 403
basti for 412
bhedana for bleeding, after expulsion 413
414
before expulsion 414
before labour 405
oral medicines for 408
principles, general 405
in doubt 405
specific 407
separation of 413
vaginal pessary, for 412
why increases 399
Raktavidradhi 576
clinical features 576
etiology 576
treatment 578
Rasa in embryogenesis 135
Rasaja bhāwas 109
Resuscitation of child 619
Retention of placenta see placenta
Revatī see jātahāriṇī
Romarājī 61, 200, 205
Ṛtukāla 71, 76, 78
duration 71
effect of impregnation, in 90
Ṛtumatī, characteristics, of 75
contraindications for 76
Ṛtuvyatīta kāla 76, 78
Rudhira 40, 44
Rukṣa milk see aṣṭakṣīradoṣa

S

Śaṅku 527
Ṣaṣṭhī disease of wet nurse 670
Ṣaṣṭhī rātri, protective measures, in 626
Śastra, aṅguli 527
ardhacandra 530
maṇḍalāgra 527
Sātmya in embryogenesis 133
Sātmyaja bhāwas 109
Satwa, in embryogenesis 137
features from 137
Show, colour of 441
Slimy milk 686, 688
Smaramandira 6
Smarātapatra 6
Śoṇita 40, 42
Srotas-ārtava vaha 13, 49, 142
Stages of labour see labour
Stanasampat 646
Stanya, amount of 642
apanayana kāla 660
apanayana vidhi 661
formation 638
janana drugs 654
pravṛtti, causes of 640
sampat 651
Stanyaksaya 653
clinical features 653
treatment 654
Stanyanāśa 653
causes 653
treatment 654
Stanyavṛddhi 658
clinical features 658
treatment 659
Striae gravidarum 241
Strī śukra 56
Substitute milk 659
Śukra, female 49, 50
Śukravaha srotas 19
Sūtikā 543
definition, of 543
kāla 543
Sūtikāgāra see accouchement ward
Sūtikā jwara see puerperal fever
Sūtikāroga 564
beneficial diet, in 572
causes 565
clinical features 565
treatment 567

T

Tama, features derived from 138
Teratologic abnormalities 176
causes, of 176
due to diet vitiating kapha 182
pitta 182
tridoṣa 183
vāta 181
Toxemia of pregnancy 290
Transverse lie 501, 502
Twin 174
see also multiple pregnancy
binovular 174
causes of specific sex, in 175
uniovular 174

U

Udvṛtta phalayoni 30
Ulbaka 636
clinical features 636
etiopathogenesis 636
treatment 637
Ulba 616
Umbilical cord 621
diseases, treatment of 633
method of cutting, of 621
growth after detachment 635
if does not fall 635
ulcer, treatment of 635
suppuration, of 633
Umbilicus-diseases of 633
inflammation of 634
piṇḍalikā 634
uttuṇḍita 634
vijrambhikā 634
vināmikā 634
Uniovular twins 174
Upaśīrṣaka 632
Upasthagarbha 8
Upaśuska garbha, 363, 384
clinical features 363
domination of pitta, in 366
śleṣmā, in 366
vāyu, in 365
etiopathogenesis 363
time of delivery 366
treatment 367
abortifacient 370
general 367
specific for doṣa 368
Upviṣtaka garbha 361, 384
clinical features 361
domination of pitta, in 366
śleṣmā, in 366
vāyu, in 365
etiopathogenesis 361
time of delivery 366
treatment 367
abortifacient 370
general 367
specific for doṣa 368
Uterosacral ligaments 26, 31
Uterus 10, 12
corpus, of 24, 27
fundus, of 24, 27
isthmus, of 24, 27

V

Vagina 6

Scanned with CamScanner

after delivery constriction of 608
introitus, of 27
Vaginal introitus 7
Varaṇabandha 355
benefits of 355
method of 356
period of 355
Vātābhipanna garbha 359
etiology and clinical features 359
treatment 360
Vātodara 376
Veins 16
Vernix caseosa 616
Virasa milk, treatment, of see aṣṭakṣīra doṣa
Viṣkambha mūḍhagarbha 502
Vital parts 16
Vivarṇa milk, treatment, of see aṣṭakṣīra doṣa
Vṛddhāwasthā 33
Vulva 5

W

Weaning method 661
Weaning period 660
Wet-nurse 642
amount of milk, effect on child 671
congenial diet, for 695
contraindication for kṣāra 664
daily routine, of 664
diseases caused by ajīrṇa, to 663
digestive capacity, of 662
emetics, for 695
examination, of 643
importance, of 662
limited diet, for 664
non-congenial diet, for 696
parity, effect on child 671
prakṛti, effect on child 671
purgatives for 695
purifying measures, for 671
treatment, of 661
amenorrhoea 665
emaciation 665
obesity 665
Woman, unfit suckling for 650

Y

Yoni 7
āvartas of 9, 10
bhraṃśa 508
nāḍī, of 7
cāndramasī 8
gaurī 8
samīraṇā 8
saṃvaraṇa 507
saṃvṛti 507
saṅga 508
shape of 7

Scanned with CamScanner